आधुनिक काल का इतिहास

१७८९ से अब तक

सी. डी. एम. केटलबी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

15.4
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक काल का इतिहास

(१७८९ से)

(Being the Hindi Edition to 'A History of Modern Times From 1789' by C. D. M. Ketelbey)

लेखक

सी० डी० एम० केटलबी

एम० ए०, एफ० आर० एच० एस०

अनुवादक

विश्वप्रकाश

एम० ए०, डी० पी० ए०

1986

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०

रामनगर—नई दिल्ली-110055

VISHWAVIDYALAYA PRAKASH
P. O. BOX-114
VARANASI-221001

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Hindi edition to 'A History of Modern Times' by Ketelbey
Published in India
by M/s S. Chand & Company Ltd. New Delhi,
by arrangement with
Messrs. George G. Harrap & Co. Ltd., London.

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०

मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-110055
शो रूम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

शाखाएँ :

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-226001
285/जे, बिपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-700012
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500001
3, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-440002
खजांची रोड, पटना-800004
माई हीरां गेट, जालन्धर-144008
152, अना सलाए, मद्रास-600002
ब्लैकी हाउस, 103/5, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-400001
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेसकोर्स रोड, बंगलौर-560009
613-7, महात्मा गांधी रोड, एरनाकुलम, कोचीन-682018

पुन : मुद्रित 1986

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित एवं राजेन्द्र रविन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय हिन्दी संस्करण की प्रस्तावना

'आधुनिक काल का इतिहास' का तृतीय हिन्दी संस्करण अपने पाठकों के सन्मुख रखते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है। यह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी के माध्यम से विश्व इतिहास के अध्ययन की रुचि दिनोंदिन बढ़ रही है। आशा है प्रस्तुत पुस्तक सामान्य पाठकों तथा इतिहास के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

मई, १९७४ —प्रकाशक

द्वितीय हिन्दी संस्करण की प्रस्तावना

'आधुनिक काल का इतिहास' का प्रथम संस्करण १९५८ में प्रकाशित हुआ था। इसका पहला संस्करण समाप्त हो गया और दूसरे संस्करण का अवसर प्राप्त हो रहा है, इसके लिए मैं सुधी पाठकों का आभारी हूँ। मालूम पड़ता है कि अब विश्व-विद्यालय-कक्षाओं के लिए हिन्दी ग्रन्थों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है। यह हमारे बौद्धिक नवजागरण के लिए शुभ लक्षण है।

प्रस्तुत संस्करण मूल पुस्तक के १९५८ के संस्करण के आधार पर तैयार किया गया है। इसमें विश्व इतिहास की नवीनतम घटनाओं का समावेश कर दिया गया है। प्रायः प्रत्येक अध्याय में ही सामग्री का संशोधन-परिवर्द्धन हुआ है। दूसरे महायुद्ध का प्रकरण काफी बढ़ गया है। औपनिवेशिक जगत् के परिवर्तनों को विश्व इतिहास के संदर्भ में आँकने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी संस्करण की भाषा तथा शब्दावली में आवश्यकतानुसार सुधार कर दिए गए हैं। आशा है कि अपने नये रूप में पुस्तक अधिक उपयोगी प्रमाणित होगी।

प्रस्तुत संस्करण तैयार करने में अनुज प्रो० राजेन्द्रप्रकाश गुप्त तथा पत्नी सुश्री मनमोहिनी गुप्त का सहयोग पग-पग पर रहा है। एक प्रकार से यह संस्करण उनके परिश्रम, उत्साह और पांडित्य का फल है। उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

जनवरी, १९६८ —विश्वप्रकाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम हिन्दी संस्करण की प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास के ख्यातनामा विद्वान् श्री सी० डी० एम० केटलबी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **A History of Modern Times From 1789** का हिन्दी संस्करण है। आज, जब कि हमारे देश में हिन्दी को राजभाषा स्वीकार कर लिया गया है और कुछ वर्षों बाद समस्त राज्य-कार्यों में उसका प्रयोग होने लगेगा तथा वह भारतीय विश्वविद्यालयों की ऊँची-से-ऊँची परीक्षाओं एवं शिक्षा का माध्यम हो जायेगी, (कुछ में वह भी हो गई है), यह अतीव आवश्यक है कि उसमें विविध सामाजिक एवं वैज्ञानिक विषयों पर श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण हो। इस प्रकार के श्रेष्ठ एवं मौलिक साहित्य का सृजन उसी समय हो सकता है जबकि हमारा विद्वत्समाज पश्चिम की मानसिक दासता से स्वतन्त्र हो जाए तथा उसका स्वयं अपना चिन्तन अपनी भाषा में होने लगे। जब तक ऐसा नहीं होता, हमारे लिए दूसरा रास्ता यह रह जाता है कि हम विदेशी भाषाओं के, विशेषकर अंग्रेजी के उत्तमोत्तम ग्रन्थों को हिन्दी में ले आयें। प्रस्तुत कृति इस दिशा में एक लघु प्रयास है।

आधुनिक काल का इतिहास १७८९ से १९४५ तक के काल की विश्व-इतिहास एवं राजनीति की विविध प्रवृत्तियों एवं घटनाओं का विश्लेषणात्मक इतिवृत्त उपस्थित करता है। १७८९ की फ्रेंच क्रान्ति से लेकर १९४५ में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय तक का यह युग मानवता के सम्पूर्ण इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सबसे अधिक निर्णायक युग है। इन डेढ़ सौ वर्षों में मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन के विविध क्षेत्रों में जो अपूर्व परिवर्तन हुए हैं एवं मानव मूल्यों के सम्बन्ध में हमारे दृष्टिकोण में जो युगान्तर उत्पन्न हो गया है, वह मानव-जाति के पहले के सहस्रों वर्षों के इतिहास को देखते हुए सर्वथा आश्चर्यजनक एवं अतुलनीय है। इस काल में संसार के एक-एक देश में महान् क्रांतिकारी उलट-फेर हुए हैं। इस युग में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली और स्पेन जैसे यूरोपीय देशों ने, जो पहले सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत हीनावस्था में थे, अपनी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं का ही कायाकल्प नहीं किया, प्रत्युत एशिया और अफ्रीका के पिछड़े हुए देशों को भी अपनी शृंखलाओं में जकड़ा तथा उनके आर्थिक एवं प्राकृतिक संसाधनों का अपने लाभ के लिए शोषण किया। इस शोषण के परिणामस्वरूप इन देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर उठी और असंख्य बाधाओं के होते हुए भी वे अब एक-एक करके स्वतन्त्रता प्राप्त करते जा रहे हैं।

गत १५० वर्षों के इतिहास के अनुशीलन से कुछ ऐसा ज्ञात होता है कि संसार शायद एक संतुलन की खोज में है और वह उसे अभी तक नहीं मिल सका है। जनतन्त्रवाद और समाजवाद, राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्र, ये सब विचारधाराएँ और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाएँ इसी संतुलन को प्राप्त करने के प्रयास हैं। फ्रांस की क्रांति के बाद से यूरोप की छाती पर जो अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गयीं या जो अनेक आन्दोलन हुए, या संसार के अन्य देशों में जो सुदूरव्यापी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उलट-फेर हुए थे सब इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं, मानो दुनियाँ के पास कुछ कमी है, कुछ छूटा हुआ है और वह उसकी तलाश में है। यह हलचल, यह तलाश अब भी जारी है और शायद उस समय तक जारी रहेगी जब तक संसार के विभिन्न भागों का समान विकास नहीं हो जाता तथा वे अपनी आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार के साहचर्य में नहीं बँध जाते।

पिछले १५-१६ दशकों में संसार के सामने अनेक जटिल समस्याएँ रही हैं और उनका कुछ संतोषजनक तथा कुछ असंतोषजनक रीति से समाधान हुआ ही है। आज भी संसार के सामने समस्याओं का एक अम्बार-सा खड़ा हुआ है और इन समस्याओं का समाधान शायद उस समय तक नहीं हो सकेगा जब तक कि उनको शक्ति के प्रदर्शन द्वारा नहीं, प्रत्युत आपसी बातचीत एवं सुलह के द्वारा ही तय करने का मार्ग नहीं अपनाया जाता। संसार का पिछले कुछ समय का इतिहास इस बात की स्पष्ट चेतावनी है कि शक्ति ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सवालों को केवल अस्थायी रूप से ही हल किया है और वे किसी-न-किसी रूप में अब तक चले आ रहे हैं। इन सवालों के स्थायी हल का उपाय शान्ति एवं सद्भावना ही है।

प्रस्तुत पुस्तक में इन समस्याओं का तथा इन जैसी अन्य समस्याओं का अधिकृत रीति से विवेचन किया गया है। इस पुस्तक की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें घटनाओं के क्रमिक विकास पर उतना नहीं, जितना उनके मूल में कार्य करने वाली प्रवृत्तियों के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। लेखक का लक्ष्य यह नहीं रहा है कि वह पाठक को इतिहास के बेजान विवरणों से उबा दे। लेखक का उद्देश्य तो यह रहा है कि पाठक घटनाओं के अन्तःसम्बन्धों को, उनकी पृष्ठभूमि को और उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया को अच्छी तरह समझ ले। पुस्तक की शैली एवं भाषा सहज, सुबोध तथा आकर्षक है और उस पर साहित्यिकता की स्पष्ट छाप है।

दो शब्द अनुवाद के बारे में। किसी विषय का और फिर इतिहास जैसे गंभीर विषय का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना काफी कठिन कार्य है। अनुवाद का अर्थ यह कदापि नहीं है कि अंग्रेजी शब्द के स्थान पर हिन्दी शब्द रख दिया जाये। अनुवाद में भाषा एवं शब्दों की अपेक्षा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति अधिक अभीष्ट है। सफल अनुवादक से आशा की जानी चाहिए कि वह विषय का अच्छा ज्ञाता हो एवं दोनों भाषाओं पर अधिकार रखता हो। मैं अपने इस प्रयास में कहाँ तक सफल हुआ हूँ—इसका निर्णय तो सुविज्ञ पाठक ही कर सकेंगे। अपनी ओर से मैं केवल यही निवेदन कर सकता हूँ कि मैंने भाषागत सौंदर्य के साथ-साथ लेखक के मूल भावों की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया है। मैं आशा करता हूँ कि भारतीय विश्वविद्यालयों के अध्यापक एवं छात्र तथा विश्व-इतिहास में रुचि रखने वाले अन्यान्य व्यक्ति इस प्रकाशन का उचित स्वागत करेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक के निर्माण में मेरे पूज्य पिता श्री ओमप्रकाश जी गुप्त, पुस्तकाध्यक्ष, गवर्नमेंट डिग्री कालिज, रामपुर का बहुत हाथ है। पुस्तक का अनुवाद उनकी देख-रेख में ही तैयार किया गया था। मुझे आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी के इतिहास साहित्य में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगी।

जनवरी, १९५८ —विश्वप्रकाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

(Contents)

अध्याय १ (Chapter I) — पृष्ठ (Page)

विषय-प्रवेश
(Introduction)

अठारहवीं शताब्दी—एक सभ्यता का अन्त और दूसरी का जन्म—भौगोलिक ज्ञान, अन्तर्महाद्वीपीय संचार—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति—जर्मन साम्राज्य—रूस-ब्रिटिश साम्राज्य—संयुक्त राज्य अमेरिका—इटली-ऑस्ट्रिया का पतन—तुर्की की अधोगति—पोलैण्ड, डेनमार्क, स्वीडन और स्पेन—महान सामाजिक, आर्थिक और वित्तीय परिवर्तन—अठारहवीं शताब्दी में इन परिवर्तनों का पूर्वाभास—युद्ध—धार्मिक सहिष्णुता—दास व्यापार—कारावास—समाचारपत्र—नारी समाज—इंग्लैण्ड का स्वरूप—विज्ञान-कला—सामान्य विरासत—वास्तविक अन्तर—फ्रेंच और औद्योगिक क्रांतियों का युगान्तरकारी महत्त्व। १—११

अध्याय २ (Chapter II) — पुरानी शासन-पद्धति के अन्तिम वर्ष (The Last Years of the Ancient Regime)

फ्रांस की दशा
(The State of France)

पापात्मा लुई पन्द्रहवें की मृत्यु १७४४ की मई में—अशुभ राज्यारोहण—पुराने शासन के फूल गोबर के ढेर के ऊपर खिल रहे थे—उत्तेजना और निर्दयता का अजीब सम्मिश्रण—अव्यवस्था और व्यग्रता—दो प्रमुख विचार—(१) सामंती विचारों की सर्वव्यापकता—(२) राजतन्त्रीय विचार—राजा के हाथों में प्रशासनिक, राजनीतिक और न्यायिक शक्ति का अधिकाधिक संकेन्द्रण—राजा की विनष्ट शक्ति—अव्यवस्था—प्रान्तीय विशेषाधिकार—आर्थिक विनिमय—अंकुश का अभाव—जनता पर प्रभाव—किसान—औद्योगिक और व्यावसायिक वर्ग—सेना—चर्च—कुलीन वर्ग—राजा—साहित्य—मांटेस्क्यू—वाल्टेयर—रूसो—सामाजिक संविदा (१७६२)—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

अन्य लेखक—क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार—प्रायश्चित्त-पूर्ण निरंकुशता (Repentant Despotism)—लुई पन्द्रहवाँ—मेरी एंटोइनेट—सुधार के पहले सात वर्ष—टर्गट (१७७४-७६)—नेकर (१७७६-८१)—राजकीय सुधारों के प्रथम युग की असफलता—सुधारों की विफलता ने क्रांति को तेजी से ला दिया—आर्थिक प्रश्न की उग्रता। १२—३६

अध्याय ३ फ्रेंच क्रान्ति (१७८६-६५)
(Chapter III) (The French Revolution, 1789-95)

१. संविधान सभा (मई १७८६-सितम्बर १७६१)
(The Constituent Assembly, May 1789—Sept., 1791)

स्टेट्स-जनरल—काहियर—प्रथम संघर्ष—जनसाधारण के प्रतिनिधियों का कार्य (मई-जून १७८६)—तीन पादरियों का आगमन—सर्वसाधारण वर्ग का राष्ट्रीय सभा के रूप में संगठन—राजा द्वारा हस्तक्षेप का निश्चय—मोनियर द्वारा प्रस्तावित टेनिस कोर्ट की शपथ—राजा की अवेहलना—तीन वर्गों की एकता—पेरिस की कार्यवाही—१२ जुलाई—१३ जुलाई—१४ जुलाई—बेस्टील का पतन—बेस्टील के पतन की प्रतिक्रिया—१७ जुलाई—प्रान्तों की कार्यवाही—राष्ट्रीय सभा की नीति—नए संविधान का निर्माण (जुलाई-दिसम्बर १७८६)—मानव-अधिकारों की घोषणा (अगस्त १२, १७८६)—'स्त्रियों का अभियान' (अक्तूबर १७८६)—प्रशासनिक सुधार—आर्थिक नीति—एसाइनेट—सामाजिक परिणाम—धार्मिक परिणाम—सिविल कॉस्टीट्यूशन ऑफ दी क्लर्जी—प्रतिक्रिया—क्रांति के शत्रुओं में वृद्धि—संकटपूर्ण महीने (जनवरी-जुलाई १७६१)—सभा—मिराबो की मृत्यु—क्रांति पर्व (१४ जुलाई, १७६०)—विदेश-नीति—राज-परिवार का पलायन (जून, १७६८)—व्यावहारिक गणतन्त्रवाद का प्रारम्भ—राजा के पक्ष में अल्पकालीन प्रतिक्रिया—संविधान सभा का अन्त

२. विधान सभा (अक्तूबर, १७६१—सितम्बर, १७६२)
(The Legislative Assembly, October, 1791—September, 1792)

विधान सभा—जिरोंडिस्ट—जिरोंडिस्टों की नीति—प्रवासी कुलीनों और संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ न लेने वाले कुलीनों के विरुद्ध आज्ञप्तियाँ—विदेशी हस्तक्षेप की वृद्धि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ-संख्या

—हस्तक्षेप की अपरिहार्यता—विदेशी हस्तक्षेप में विलम्ब—यूरोप की पूर्व-व्यस्तता—इंग्लैंड—प्रशा—स्वीडन—पूर्वी यूरोप—जोसेफ द्वितीय की मृत्यु (फरवरी, १७९०)—लियोपोल्ड द्वितीय का नीति-परिवर्तन—वेरेला की सन्धि (अगस्त, १७९०)—कैथराइन द्वितीय द्वारा बूरबन शासकों का समर्थन—राजा के पलायन का प्रभाव—पाडुआ की घोषणा (जुलाई, १७९१)—पिलनिट्ज की घोषणा (अगस्त, १७९१)—एलेक्टर ऑफ ट्रायर के विरुद्ध आज्ञप्तियाँ—'महान्' या जिरोंडिस्ट मंत्रिमण्डल (मार्च, २३)—युद्ध (२० अप्रैल, १७९२)—पराजय तथा अपमान के पाँच महीने (अप्रैल-सितम्बर)—फ्रांस का आक्रमण (अगस्त, १९)—पेरिस में पाँच महीने—क्रांति का मोड़—जैकोबिन्स एवं जिरोंडिस्टों की जानी-बूझी नीति—राजतन्त्र को बचाने के प्रयासों की असफलता—तीन घटनाएँ—२० जून—१० अगस्त—टुइलेरीज की विजय और राजतन्त्र का पतन—जैकोबिन्स और जनता की विजय—सितम्बर, १७९२ का हत्याकांड।

३. सम्मेलन (सितम्बर, १७९२—अक्तूबर, १७९५)
(The Convention, Sept. 1792—Oct. 1795)

क्रान्ति के स्वरूप में परिवर्तन—जनता का जनार्दन रूप—वाल्मी (२० सितम्बर, १७९२)—शत्रु का प्रत्यावर्तन—विजय के दो महीने—नवम्बर की आज्ञप्तियाँ—राजा की मृत्यु (२१ जनवरी, १७९३)—पहला गठबन्धन—पराजय और आक्रमण (मार्च-जुलाई, १७९२)—गृह-युद्ध—ला वेण्डी (मार्च-सितम्बर, १७९३)—नगरों का विद्रोह (जून-सितम्बर १७९३)—जिरोंडिस्टों का अन्त—जैकोबिन्स की नीति—सार्वजनिक सुरक्षा समिति—अप्रैल में संशोधित (डैन्टन)—जुलाई में पुनः संशोधित (रोबेस्पीयर) डेन्टन—मैक्सीमिलिएन रोबेस्पीयर—आतंक (जुलाई, १७९३—जुलाई, १७९४)—आतंक का अन्त—सार्वजनिक सुरक्षा समिति का कार्य—एकता और विजय—डायरेक्टरी। ४०-९२

अध्याय ४ (Chapter IV) नेपोलियन (Napoleon)

१. "भाग्य की ओर" (१७६९-९९)
("To Destiny"—1769-99)

जन्म—स्कूल—तारुण्य—कोर्सिका—असफलता और पलायन—तूलों—कारागार—वेंडेमेयर काण्ड (५ अक्टूबर,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

१७६५)—इटली की कमान—जोज़ेफाइन—इटली का पहला युद्ध (मार्च १७९६—अक्टूबर १७९७)—मिलान—मांटुआ-ट्रांसपेडेन गणराज्य—पोपशाही—शान्ति की पारस्परिक तैयारियाँ—लेओबेन और कैम्पोफोर्मियो (१७९७)—जिनोआ—सिसेल्पाइन गणराज्य—नेपोलियन का पेरिस वापस आना—मिस्र का अभियान—माल्टा—पिरामिडों की लड़ाई—नील पर नेल्सन की विजय—सीरिया का अभियान (१७९९)—एक्के (अप्रैल-मई १७९९)—पेरिस को वापस आना—"मैं ठीक समय पर आया हूँ।"

२. फ्रांस का अधिपति (१७९९-१८०४)
(Master of France, 1799-1804)

ब्रूमेयर का राज्य-परिवर्तन (नवम्बर ९-१०, १७९९)—नेपोलियन—प्रथम कॉन्सल (१७९९-१८०४)—वैदेशिक कार्य—इटली का दूसरा युद्ध (१८००)—मारेंगो (१८००)—ल्यूनेविल की सन्धि (फरवरी, १८०१)—महाद्वीपीय महत्त्वाकांक्षाएँ—औपनिवेशिक योजनाएँ—इंग्लैंड के साथ सन्धि—फ्रांस का संगठन, वित्त और शिक्षा—स्थानीय शासन—भूमि की व्यवस्था—पेरिस की सौन्दर्य-वृद्धि—सम्मानसूचक उपाधियाँ—नेपोलियन की विधान-संहिता—कोन्कोर्डेट—षड्यन्त्र—ड्यूक डी एंघीन की हत्या—नेपोलियन का सम्राट् बनना।

३. यूरोप की प्रभुता के लिए प्रयास (१८०४—९)
(The Bid for the Mastery of Europe, 1804—9)

युद्ध का फिर से आरम्भ (१८०३)—नेपोलियन की कुछ महत्तम योजनाओं का अवरोध—कारण—इंग्लैंड पर आक्रमण की चेष्टा—नाविक दुर्बलता के कारण असफलता—तीसरा गुट (१८०५)—दूसरा शार्लमैन—आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ाई—उल्म (अक्टूबर, १८०५)—ट्राफलगर (२१ अक्टूबर, १८०५)—आस्टरलिट्ज (दिसम्बर, १८०५)—प्रेसबर्ग की सन्धि (दिसम्बर, १८०५)—पवित्र रोमन साम्राज्य का अंत—राजाओं के परिवार की संघात्मक व्यवस्था—इंग्लैंड का आर्थिक अवरोध—प्रशा के साथ लड़ाई—जेना और आवरस्टैट (१४ अक्टूबर, १८०६)—रूस से लड़ाई—एल्यू (फरवरी, १८०७)—फ्रीडलैंड (जून, १८०७)—टिल्सिट की सन्धि (जुलाई, १८०७)—महाद्वीपीय व्यवस्था—पोप—पुर्तगाल—स्पेन—बेलन (जून, १८०८)—स्पेन में नेपोलियन—एरफर्ट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

(सितम्बर १८०८)—आस्ट्रिया द्वारा युद्ध का पुनः आरम्भ—आस्ट्रिया की पराजय—वाग्राम—शोनब्रन की सन्धि (अक्टूबर, १८०९)—जोज़ेफाइन का तलाक और मेरी लुइसा से विवाह।

४. पतन (१८१०-१५)
(The Downfall, 1810-15)

नेपोलियन की शक्ति का चरमोत्कर्ष—पुर्तगाल में असफलता (सितम्बर, १८१०)—टोरेस वेड्रास की रक्षा-पंक्तियाँ (अक्टूबर-नवम्बर, १८१०)—फ्यूएण्टेस डी ऑनरो (मई १८११)—स्पेन की लड़ाई—सलामांका (जुलाई, १८१२)—विटोरिया (मई, १८१३) पिरेनीज की लड़ाइयाँ—महाद्वीपीय व्यवस्था का लागू करना—रूस की लड़ाई (जून-दिसम्बर, १८१२)—वोरोडिनी—मास्को—प्रत्यावर्तन—स्वातन्त्र्य-युद्ध (१८१३)—सैक्सनी का युद्ध—लुट्जन और वौट्जन—चौथा गुट—ड्रेस्डेन (अगस्त १८१३)—लिप्जिग, "राष्ट्रों का युद्ध", (अक्टूबर, १८१३)—फ्रांस में प्रतिरक्षात्मक लड़ाई—नेपोलियन का पहला सिंहासन-त्याग (११ अप्रैल, १८१४)—एल्बा—सौ दिन (मार्च-जून, १८१५)—युद्ध—लिग्नी—क्वाट्रेब्रस—वाटरलू—दूसरी बार सिंहासन-त्याग (जून, १८१५)—सेंट हेलेना। ९३—१५४

अध्याय ५ यूरोप (१८१५ से १८५० तक)
(Chapter V) (Europe From 1815 to 1850)

१. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (१८१५-२५)
(The Concert of Europe, 1815-25)

नगण्य राजनीतिक सफलता का काल—दो अचानक और निर्माणकारी विचारों से लाभ नहीं उठाया गया—प्रतिक्रिया और तैयारी—वियेना की सभा (१८१४-१५)—महान् व्यक्तित्व—मैटरनिक (१७९३-१८५९)—एलैक्जैण्डर प्रथम—वियना की सभा का कार्य—एक आलोचना—प्रादेशिक व्यवस्था—यूरोप की संयुक्त व्यवस्था—पवित्र संधि या संबन्ध—चतुःसूत्री या पंच-सूत्री संधि—(१) ए-लाशैपेल की काँग्रेस (१८१८)—(२) ट्रौपो और लेबैक की सभाएँ (१८२०—१८२१)—(३) वैरोना की काँग्रेस (१८२२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

२. यूरोप में लोकतन्त्र और राष्ट्रीय भावना की लहर (१८१५-१८५०)
(The Democratic and Nationalist Aspirations of Europe, 1815-1850)

१८१५-१८५० का काल, कला, विज्ञान और उद्योगों के क्षेत्र में महान् उन्नति का काल किन्तु राजनीति के क्षेत्र में केवल पवित्र अभिलाषाओं का काल—सफलताओं का अभाव-लोकतन्त्र—राष्ट्रवाद—यूनाइटेड किंगडम—किसी सीमा तक एक अपवाद—लगातार विकास और प्रगति की ओर—१८३०-१८३५ का काल—इंग्लैंड के इतिहास का निर्माण-काल—फ्रांस—लुई अठारहवाँ (१८१५-२४)—चार्ल्स दशम (१८२४-३०)—१८३० की जुलाई क्रान्ति—१८४८ का विद्रोह—द्वितीय फ्रेंच गणराज्य और लुई नेपोलियन—स्पेन और पुर्तगाल—स्पेन—१८२० का विद्रोह—स्पेन के हाथों से उपनिवेश निकल गये—डॉन कार्लास के युद्ध—पुर्तगाल—क्रान्ति—ब्राजील पर से अधिकार उठ गया—डॉना मेरिया डा ग्लोरिया (१८३४-१८५३)—इटली—इटली में पृथकता और निरंकुशता का पुनः बोलबाला—इटली की दो मुख्य समस्याएँ—प्रान्तीयतावाद और आस्ट्रिया का प्रभुत्व—असन्तोष—१८२०-१८२१ के विद्रोह—१८३१—मेज़िनी और इटली का युवक संगठन—मध्यमार्गी विचार—पोप द्वारा सुधार—१८४८-१८४९—स्वतन्त्रता की लड़ाई—रोमन गणराज्य—असफलता—जर्मनी—परिसंघ—आस्ट्रिया का नियन्त्रण—संविधान—कार्ल्सवाड आज्ञाएँ, १८१९—प्रशा का आगम शुल्क संघ (१८१९)—सर्वजर्मनवाद का प्रसार—जर्मनी में विद्रोह का वर्ष—प्रशा—फ्रेंकफर्ट संसद् (१८४८-४९)—एफर्ट संघ की योजना—आस्ट्रिया—हंगरी—राष्ट्रीय समस्याएँ—१८४८—पाँच मुख्य आन्दोलन—असफलता और प्रतिक्रिया—पोलैंड—डेनमार्क—स्वीडन और नार्वे—सर्बिया—ग्रीस—यूनानी स्वतन्त्रता का युद्ध (१८२१-१८२९)—पराजय—विदेशी हस्तक्षेप—नैवेरीनो (अक्टूबर १८२७)—रूस और तुर्की का युद्ध (१८२८-२९)—एड्रियानोपिल की संधि—बेल्जियम—स्विट्जरलैंड—सोंदरबन्द का युद्ध (१८४७)—एकता की शक्तियों की विजय—जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली में क्रान्ति आन्दोलनों की मुख्य घटनाएँ (Chief Events of the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

Revolutionary Movements in Germany, Austria, and Italy) १५५-२२९

अध्याय ६ (Chapter VI) यूरोप (१८५० से १८७१ तक) (Europe From 1850 To 1871)

१. क्रीमिया का युद्ध (१८५३-५६) (The Crimean War, 1853-56)

सफलता और निर्माण का काल—पूर्वी प्रश्न—तुर्की—पतनोन्मुखी सत्ता—तुर्की के विभाजन में विलम्ब—सैनिक और भौगोलिक कारणों से तुर्की के विभाजन में विलम्ब—तुर्की और रूस—रूस की बल्कान प्रदेश में महत्त्वाकांक्षाएँ—कुजुक-कैनार्डजी की सन्धि (१७७४)—जैसी की सन्धि (१७९२)—बुखारेस्ट की सन्धि (१८१२)—१९ वीं शताब्दी की कुछ नई घटनाएँ—(१) यूरोपीय शक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन—(२) ईसाई राष्ट्रों का विद्रोह—एड्रियानोपिल की सन्धि (१८२९)—मेहमत अली (१८३१—४१)—अन्कियर स्कैलेसी की सन्धि (१८३३)—लन्दन का कन्वेंशन (१८४०)—क्रीमिया का युद्ध—लुई नेपोलियन, सम्राट् नेपोलियन तृतीय बन बैठा—२ दिसम्बर से लेकर ४ दिसम्बर १८५१ का राज्य-परिवर्तन—रूस ने अपने आप को तुर्की की ईसाई प्रजा का संरक्षक मान लिया—रूस द्वारा तुर्की के विभाजन की माँग—यूरोप का बीमार आदमी—तुर्की ने रूस के साथ युद्ध की घोषणा कर दी (अक्टूबर, १८५३)—फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी (मार्च १८५४ में) रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—ऑस्ट्रिया—प्रशा—सार्डीनिया—युद्ध—युद्ध का प्रथम भाग (मार्च-जुलाई १८५४)—युद्ध का द्वितीय भाग, सितम्बर १८५४ से सितम्बर १८५५ तक—बेलाक्लावा का युद्ध (अक्टूबर २५)—इन्करमैन का युद्ध (नवम्बर ५)—पेरिस की सन्धि (मार्च १८५३)।

२. इटली का एकीकरण (१८५०-७०) (The Unification of Italy, 1850-70)

१८४९ में इटली के देशभक्तों की दुःखमय असफलता—देशभक्तों की आशाएँ पीडमौंट की ओर—कैवूर की इटली सम्बन्धी नीति—बौद्धिक एवं साहित्यिक प्रचार—क्रीमिया का युद्ध—फ्रांस के साथ मैत्री—प्लौम्बियर्स की सन्धि (जून-जुलाई १८५८)—नेपोलियन ने युद्ध से मुँह मोड़ा—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

विलाफ्रैंका की सन्धि, ११ जुलाई—ज्यूरिक की सन्धि (नवम्बर १८५९)—मध्य डचियाँ—कैवूर की नीति में परिवर्तन—नेपिल्स और सिसिली के राज्य—गैरीबाल्डी (१८०७-८२)—सिसिल में विद्रोह—अप्रैल, १८६०—कैवूर की स्थिति की कठिनाई—गैरीबाल्डी की शानदार विजय—गैरीबाल्डी और कैवूर—गैरीबाल्डी इटली की मुख्य भूमि में जा पहुँचता है—नेपिल्स के राज्य का पतन—गेरीबाल्डी को रोकने के लिए कैवूर ने दृढ़ और निश्चयात्मक कदम उठाये—कैवूर द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण—नेपिल्स, सिसिली, अम्ब्रिया और मार्चेस का इटली में मिलाया जाना—कैवूर की मृत्यु—इटली और प्रशा—वैनीशिया, १८६६—रोम, १८७०—लॉ ऑफ गारंटीज—पायस नवम का पोप काल, १८४६-७८।

३. जर्मनी का एकीकरण (१८५०-७१)
(The Unification of Germany, 1850-71)
(क)

जर्मनी के एकीकरण का इतिहास इटली के एकीकरण के इतिहास के समान है—१८५० का जर्मनी—प्रिंस विलियम रीजेंट बना (१८५८)—प्रशा का सम्राट बना (१८६१)—बिस्मार्क (१८१५—९८)—बिस्मार्क (१८४७ से १८५१ तक)—फ्रैंकफर्ट में—सेंट पीटर्सबर्ग में—पेरिस में—प्रशा की नीति में नया तेज—सेना के प्रश्न पर वैधानिक गतिरोध—प्रशा के मन्त्रि-अध्यक्ष के रूप में बिस्मार्क (सितम्बर १८६२)—पोलैण्ड का विद्रोह (१८६३)—जर्मन राजाओं की सभा (१८६३)—श्लैसविग होल्स्टीन का प्रश्न—श्लैसविग और होल्स्टीन का डेनमार्क के साथ प्राचीन किन्तु नियम विरुद्ध सम्बन्ध—पृथक् होने के कारण (१) राष्ट्रीयता के भाव—(२) आपत्तिजनक उत्तराधिकारी का प्रश्न—१८४८ से लेकर १८५१ तक डचियों में उपद्रव—लन्दन की सन्धि (१८५२)—अब डेनमार्क ने डचियों पर अनधिकृत प्रभाव डालना प्रारम्भ किया—१८५५ और १८६३ के संविधान—क्रिश्चियन नवम ने उसी संविधान को जारी किया—जर्मन परिसंघ की संसद् ने आगस्टनबर्ग के पक्ष में हस्तक्षेप किया (दिसम्बर १८६३)—प्रशा और ऑस्ट्रिया का संयुक्त हस्तक्षेप—बिस्मार्क की महत्त्वाकांक्षाएँ—आस्ट्रिया और प्रशा द्वारा स्वतन्त्र कार्यवाही—१८५२ की सन्धियों की आड़ लेकर डेनमार्क के विरुद्ध कार्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

वाही—डेनमार्क के साथ युद्ध, फरवरी-अप्रैल, १८६४—लन्दन का सम्मेलन (अप्रैल से जून तक, १८६४)—डेनमार्क के अधिकार में से डचियों को निकालने के अभिप्राय से प्रशा और ऑस्ट्रिया द्वारा युद्ध पुनः आरम्भ (जून से लेकर अगस्त १८६४ तक)—"हमने दरार को कागज से ढक दिया है"—ऑस्ट्रिया गैस्टीन के कन्वेन्शन की उपेक्षा करता है—बिस्मार्क फ्रांस की निष्पक्षता प्राप्त करता है—बिअरिट्ज में नेपोलियन और बिस्मार्क की भेंट (अक्तूबर, १८६५)—इटली की मित्रता—८ अप्रैल, १८६६—प्रशा का सम्राट युद्ध से हटना चाहता है—किन्तु बिस्मार्क ने सम्राट को युद्ध के लिए राजी कर ही लिया—बिस्मार्क फेडरल सुधारों के प्रश्न पर ऑस्ट्रिया को उत्तेजित करता है—ऑस्ट्रिया कुछ समय के लिए युद्ध को रोकता है—फ्रांस का रुख—अखिल यूरोपीय कांग्रेस का प्रस्ताव—छोटी रियासतों ने ऑस्ट्रिया का पक्ष लिया—दोनों का पक्ष—युद्ध—सैडोवा—अथवा कोनीग्रेज का युद्ध (२ जुलाई)—अन्य रण-क्षेत्रों में भी प्रशा की विजय—बिस्मार्क की शान्ति सन्धि के लिए उत्सुकता—नेपोलियन तृतीय के साथ कूटनीतिक वार्ता—प्रशा के सम्राट द्वारा विरोध—प्रेग की सन्धि (२३ अगस्त, १८६६)—ऑस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के परिणाम—ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध के परिणामों की अमेरिकी गृह-युद्ध के परिणामों से तुलना—ऑस्ट्रिया और हंगरी के बीच समझौता—फ्रांस और जर्मनी का युद्ध—वास्तविक कारण—फ्रांस द्वारा प्रतिकार की माँग—लन्दन की संधि (मई, १८६७)—लक्सेम्बर्ग की तटस्थता स्वीकार कर ली गई—होहेन्जोलर्न परिवार का उम्मीदवार—एम्स का तार (१३ जुलाई)—फ्रांस युद्ध के लिए पूरी तरह तैयार नहीं था—फ्रांस अकेला पड़ गया—जर्मन आक्रमण—वीसेनबर्ग का युद्ध (४ अगस्त)—स्पिक्रेन (६ अगस्त)—वर्थ का युद्ध—ग्रेवलांट का युद्ध (१८ अगस्त) सीडान का युद्ध (१ सितम्बर)—प्रशा के राजा को जर्मनी का राजाधिराज अभिषिक्त किया गया—थायर्स और बिस्मार्क के बीच भेंट और बातचीत के दौरान फ्रेंकफर्ट की सन्धि (मई १८७१)—युद्ध के फल—पोप की सांसारिक शक्ति का नाश हो गया और रोम संगठित इटली की राजधानी बन गया—बोनापार्टवाद का अन्त।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

४. रूस (१८५५-८१)

निकॉलस प्रथम का शासन (१८२५-१८५५)—एलेक्जैंडर द्वितीय (१८५५-८१)—सुधारों के प्रथम दस वर्ष—कृषक दासों की मुक्ति (१८६१)—क्या यही स्वतन्त्रता थी? कानून सम्बन्धी सुधार—शासन सम्बन्धी सुधार—निराशा—१८६३ का पोलैण्ड का विद्रोह—असफलता—एशिया में रूस का विस्तार। २३०—३७९

अध्याय ७ (Chapter VII) निकट पूर्वी समस्या (१८५६ से १९१४ तक) (The Near Eastern Question, 1856-1914)

पूर्वी समस्या की जटिलता और उसका महत्त्व—१८५६ में तुर्क साम्राज्य—और १९१४ में तुर्क साम्राज्य—चार मुख्य समस्याएँ—राजकुमार कर्नल कौजा (१८५९-६६)—राजकुमार कैरोल, १८८६-१९१४—तुर्की द्वारा दमन और अत्याचार—ईसाइयों का विरोध—सर्वस्लाववाद—बोस्निआ और हर्जेगोबिना—हर्जेगोबिना का विद्रोह (१८७५)—बल्गेरिया में तुर्की के अत्याचार (१८७६)—रूस और तुर्की में युद्ध (१८७७—७८)—सेन स्टेफ़नो की सन्धि (मार्च १८७८)—बल्गेरिया—प्रिंस एलेक्जैंडर ऑफ बैटेनबर्ग (१८७९—१८८६)—बल्गेरिया के दोनों भागों का संघ (१८८५—८६)—सर्बिया और बल्गेरिया का युद्ध (१८८५)—यूरोपीय शक्तियों की नीति में परिवर्तन—फ़र्डीनेण्ड ऑफ सेक्सकोबर्ग-गोथा; प्रिंस ऑफ बल्गेरिया (१८८७—१९१८)—किंग ऑफ बल्गेरिया (१९०८—१९१८)—आर्मीनिया के कत्ले-आम (१८९४—९६)—यूरोपीय शक्तियों में क्लीवता—ग्रीस और तुर्की—किंग ऑटो ऑफ ग्रीस (१८३३—६२)—राजा जार्ज प्रथम (१८६३—१९१३)—ग्रीस की पूर्वी महत्त्वाकांक्षाएँ—क्रीट—ग्रीस और तुर्की का युद्ध—तुर्क साम्राज्य में जर्मन प्रभाव की वृद्धि—बर्लिन से बागदाद तक की रेल-सड़क—युवक तुर्कों का आन्दोलन (१९०८—९)—बल्गेरिया को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया—ऑस्ट्रिया द्वारा बोस्निआ और हर्जेगोबिना पर अधिकार—ऑस्ट्रिया और सर्बिया की प्रतिद्वन्द्विता—इटली और तुर्की के बीच ट्रिपोली का युद्ध (१९११—१२)—बल्कान राज्यों का संगठन—प्रथम बल्कान युद्ध (१) अक्तूबर-दिसम्बर १९१२—प्रथम बल्कान युद्ध (२) फरवरी से मई तक, १९१३—द्वितीय बल्कान-युद्ध (जून से अगस्त १९१३ तक) ३८०—४२२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

अध्याय ८ सशस्त्र शान्ति का युग (१८७१—१९१४)
(Chapter VIII) (The Age of Armed Peace, 1871-1914)

१. यूरोप के मुख्य देशों का आन्तरिक इतिहास
(Internal Affairs in the Chief Countries of Europe)

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का काल—तीन मुख्य विशेषताएँ—(१) उद्योगीकरण—स्त्रियों की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर—(२) श्रमिकों का या श्रमिकों के पक्ष में आन्दोलन—(क) ट्रेड यूनियनवाद का जन्म और उसकी वृद्धि—(ख) ऊपर से सुधार—(ग) समाजवाद—कार्ल मार्क्स (१८१८—१८८३)—कई अन्तर्राष्ट्रीय या इन्टरनेशनल्स—(३) सैनिक राष्ट्रवाद—जर्मनी (१८७१-१९१४)—साम्राज्यवादी संविधान—बिस्मार्क, जर्मन साम्राज्य का चाँसलर (१८७१—९०)—कुल्टुर्केम्फ (१८७१-७८)—समाजवादियों के साथ संघर्ष—सम्राट फ्रेडेरिक तृतीय (९ मार्च-१५ जून १८८८)—सम्राट विलियम द्वितीय (१८८८-१९१८)—बिस्मार्क का पतन (मार्च, १८९०)—फ्रांस (१८७०—१९१४)—कम्यून (मार्च-मई १८७२)—हानि-पूर्त्ति—सेना का पुनर्गठन—राजतन्त्रवादियों की हलचलें—गणतन्त्र की विजय (१८७५)—संविधान—गणतन्त्रवाद की पूर्ण विजय—बुलेंजिस्ट आन्दोलन—ड्रेफ़स का झगड़ा—चर्च को राज्य से अलग कर दिया गया (१९०५)—सामाजिक और समाजवादी समस्याएँ—रूस (१८८१—१९१४)—एलेक्ज़ैण्डर तृतीय (१८८१—१८९१) और निकॉलस द्वितीय (१८९४—१९१७) के कालों में प्रतिक्रिया जिसके कारण क्रांति हुई—अधीन अ-रूसी जातियों के प्रति रूसीकरण की नीति—निकॉलस द्वितीय—रूस-जापान का युद्ध—१९०५ का विद्रोह—इटली (१८७१—१९१४)—पोप तथा राज्य में सम्बन्ध—सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयाँ—विदेशों से सम्बन्ध—इटली की औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षाएँ।

२. प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व की घटनाएँ और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

बिस्मार्क (१८७१—९०)—तीन सम्राटों की लीग (Dreikaierbund) (१८७२)—रूस और जर्मनी की मैत्री कमजोर पड़ जाती है (१८७५—७८)—दो देशों की सन्धि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय — पृष्ठ संख्या

(१८७८)—तीन देशों की लीग (१८८२)—बिस्मार्क के मैत्री सम्बन्धों की व्यवस्था का विनाश—फ्रांस और रूस के मध्य ड्यूअल एलायंस (१८९१ व पुनः १८९५)—ग्रेट ब्रिटेन के साथ जर्मनी के सम्बन्ध—जर्मनी को १८९० में हैलीगोलैण्ड प्राप्त हुआ—ब्रिटेन, जर्मनी को मध्य अफ्रीका के उपनिवेश देना चाहता है किन्तु कैसर लेने को तैयार नहीं—ब्रिटेन की दक्षिणी अफ्रीका सम्बन्धी नीति के कारण इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध खराब हो गए—बोअर युद्ध के दिनों में इंग्लैंड राजनीतिकतः अकेला रह गया—प्रस्तावित आंग्ल-जर्मन मैत्री (१८९९—१९०१)—बगदाद रेलवे योजना से ब्रिटेन चिंतित—जर्मनी की नई नौसैनिक नीति और ग्रेट ब्रिटेन से प्रतियोगिता—इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच समझौता (१९०४)—१९०७ की आंग्ल-रूसी सन्धि १९०४-५ के रूस-जापान युद्ध का परिणाम थी—मोरक्को का संकट (१९०५—६)—जर्मन नौ-सेना संशोधन अधिनियम (१९०४)—निकट पूर्व में युद्ध की आशंका—अगादिर का संकट (१९११)—ऑस्ट्रिया के आर्च ड्यूक की सैराजिवो में हत्या और १९१४ का विश्वयुद्ध—ऑस्ट्रिया द्वारा सर्बिया को चेतावनी और जवाबतलब (२३ जुलाई)—सर्बिया का जवाब (२५ जुलाई) और ऑस्ट्रिया-हंगरी द्वारा सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा रूस द्वारा सैन्य-सज्जा—जर्मनी द्वारा रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (पहली अगस्त)—जर्मनी द्वारा फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (३ अगस्त) इटली तटस्थ—ग्रेट ब्रिटेन—ग्रेट ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (४ अगस्त)। ४२३—५१२

अध्याय ९ (Chapter IX) यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) और उसके पश्चात् (The World War of 1914—18 and After)

१. महायुद्ध

(क) (१) युद्ध के प्रथम पाँच महीने (अगस्त से दिसम्बर १९१४)—जर्मनी पश्चिमी यूरोप पर प्रहार करता है—मार्न का युद्ध (सितम्बर ६ से १० तक)—समुद्र पर अधिकार करने के प्रयत्न—बेल्जियम की हानियाँ—येप्रीस का प्रथम युद्ध—पूर्वी मोर्चा—रूसियों की पराजय—टैनेनबर्ग का युद्ध (२६ अगस्त १९१४ से १ सितम्बर १९१४ तक)—ऑस्ट्रिया के आक्रमण की विफलता—जर्मनी का प्रत्याक्रमण—ऑस्ट्रिया द्वारा सर्बिया के विरुद्ध असफल आक्रमण—समुद्र पर युद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

—(ख) १९१५—येप्रीस का द्वितीय युद्ध (अप्रैल, १९१५)—पूर्वी मोर्चा—दर्रे दानियाल का युद्ध (फरवरी से दिसंबर १९१५) —बल्गेरिया का युद्ध में प्रवेश (अक्तूबर, १९१५)—सर्बिया पददलित—मेसोपोटामिया—जर्मन पनडुब्बियों द्वारा ब्रिटिश जहाजी बेड़े को अपार हानि—उपनिवेशों में सफलता : इटली का युद्ध में प्रवेश (मई १९१५)—(ग) १९१६—जर्मनी का वर्दून पर आक्रमण (फरवरी-जून १९१६) सोम पर मित्र-राष्ट्रों का प्रत्याक्रमण—इटली—रूस—रूमानिया—पुर्तगाल —यूनान—समुद्री लड़ाइयाँ—जटलैंड का युद्ध—(घ) १९१७ —पनडुब्बियों द्वारा मुक्त युद्ध—संयुक्त राज्य अमेरिका—रूस—मार्च १९१८ की ब्रैस्ट-लिटोस्क की सन्धि—पश्चिमी रणक्षेत्र—हिंडेनबर्ग रक्षा-पंक्ति—आरास के रणक्षेत्र में ब्रिटेन द्वारा आक्रमण—निवेले द्वारा आक्रमण—येप्रीस का तृतीय युद्ध—केम्ब्राय का युद्ध (नवम्बर, १९१७)—इटली के रण-क्षेत्र में मित्रराष्ट्रों की अपार हानि—(ङ) १९१८—ल्यूडेन-डार्फ द्वारा पश्चिमी रणक्षेत्र में चार विशाल आक्रमण—मित्र-राष्ट्रों का अन्तिम आक्रमण—युद्ध का अन्त (११ नवम्बर, १९१८)—युद्ध-विश्रान्ति दिवस—पेरिस का सम्मेलन (१९१९) —विल्सन के चौदह प्रस्ताव—प्रादेशिक हेर-फेर—जर्मनी की हानियाँ और आर्थिक शर्तें—राजनीतिक धाराएँ।

२. दोनों महायुद्धों के बीच का इतिहास (१९१९-१९३९)

नया मानचित्र—विजयी राष्ट्रवाद—राष्ट्रसंघ—आन्तरिक समस्याएँ—क्रान्तिकारी साम्यवाद—क्रान्ति-विरोधी आन्दोलन—फासिज्म—नाज़ी क्रान्ति—दूसरा महायुद्ध (१९३९-४५) (The Second World War, 1939-45)

५१३—६२३

अध्याय १०
(Chapter X) यूरोप का विस्तार (१७८९-१९५०)
(The Expansion of Europe, 1789-1950)

यूरोपीय शक्तियों का अ-यूरोपीय संसार पर छा जानें का प्रयत्न—साम्राज्यों का पतन—फ्रांस—नीदरलैंड्स—स्पेन—पुर्तगाल—ग्रेट ब्रिटेन—आस्ट्रेलिया—कनाडा—भारत—फ्रेंच युद्धों के काल में ब्रिटेन की विजयें—१८२५-७८—कनाडा—आस्ट्रेलिया—न्यूजीलैंड—दक्षिणी अफ्रीका—भारत—साम्राज्य के सम्बन्ध में बदले हुए एवं उदार विचार—मुक्त व्यापार—क्रमपूर्ण उपनिवेशीकरण—मानववादी और दयालु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय — पृष्ठ संख्या

भावना—उपनिवेशों में स्वशासन की लहर—कनाडा—विद्रोह—लार्ड डरहम—स्वशासन (१९४०)—कनाडा का संघ—संसार में ब्रिटिश एकाधिकार का युग (१८२५-७८)—संयुक्त राज्य अमेरिका—रूस—फ्रांस १८७८-१९१४—अफ्रीका का विभाजन—बेल्जियम के अधीन कांगो प्रान्त—पुर्तगाली बस्तियों का विस्तार—इटली—जर्मनी—स्पेन—फ्रांस—ग्रेट ब्रिटेन—मिस्र—एशिया में यूरोप का विस्तार—महायुद्ध। ६२४—६६७

अध्याय ११ (Chapter XI) सुदूर पूर्व (The Far East)

चीनियों का ऐकान्तिक जीवन और विदेशियों के प्रति उनका घृणा-भाव—यूरोप द्वारा चीन को पटाने का प्रयत्न—यूरोप द्वारा चीन के ऊपर बेजा दबाव—प्रथम चीन युद्ध १८३९-४२ या प्रथम अफ़ीम युद्ध—नानकिंग की सन्धि (१८४२)—द्वितीय चीन-युद्ध (१८५७-५८)—टींटसिन की सन्धियाँ (१८६१)—सुदूर पूर्व की समस्या (१८६१-९५)—तीन समान्तर विकास—(१) आर्थिक विस्तार, (२) राजनीतिक लूट, और (३) जापान की शक्ति का विकास—आर्थिक विस्तार—जापान १८६७ से पूर्व—जापान की क्रांति (१८६७)—विदेशी विरोधी आन्दोलन वास्तव में मिकाडो की शक्ति के प्रत्यास्थापन का प्रयत्न था—शक्तिशाली विदेश नीति—जापान और चीन के बीच युद्ध (१८९४-९५)—सुदूर पूर्व की समस्या (१८९५-१९१९)—तीन शक्तियों का हस्तक्षेप (१८९५)—फ्रांस, रूस और जर्मनी द्वारा चीन से रियायतों की माँग—फ्रांस—रूस—जर्मनी—रूस—फ्रांस—ग्रेट ब्रिटेन—रेलें—उन्मुक्त द्वार का सिद्धान्त—बॉक्सर विद्रोह (१९००)—चीन में पहले से ही पश्चिमी देशों के विरुद्ध घृणा थी—पश्चिमीकरण सम्बन्धी आन्दोलन—पश्चिमीकरण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विदेशियों के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख—एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना द्वारा बॉक्सर विद्रोह दबा दिया गया—बॉक्सर विद्रोह के कारण होने वाली हानि के लिए हर्जाने की शर्तें—रूसी नीति—आंग्ल-जापानी मैत्री—रूस और जापान के बीच युद्ध—सुषिमा में जापान की नौ-सैनिक विजय—पोर्टसमाउथ की सन्धि—चीन की क्रांति—डा० सनयात सेन और उनका गणतन्त्री दल—जापानी साम्राज्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

वाद और महायुद्ध—जापान की चीन के विरुद्ध इक्कीस माँगें —पेरिस का सन्धि सम्मेलन—चीन की निराशा—महायुद्ध के पश्चात् सुदूर पूर्व समस्या। ६६८—७११

अध्याय १२ संयुक्त राज्य अमेरिका
(Chapter XII) (The United States of America)

१. नए राज्य की स्थापना और आरम्भिक कठिनाइयाँ
(New State—Its Formation and Early Problems)

आर्थिक और राजनीतिक कठिनाइयाँ—संगठन—या संघ के पक्ष में दलीलें—राष्ट्रीय-भूमि—फ़िलाडेल्फिया की प्रसभा—संविधान—संघात्मक विधान—न्यायपालिका—कार्यपालिका—विधानमण्डल—केन्द्रीय सरकार का देश के नागरिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध—अमेरिका के संविधान के दोष—जार्ज वाशिंगटन, प्रथम राष्ट्रपति—प्रारम्भिक कठिनाइयाँ—उसका मन्त्रिमण्डल—एलेक्जैण्डर हैमिल्टन (१७५७-१८०४) —शासन की आर्थिक नीति—विरोध—विदेश नीति और विदेशी सम्बन्ध—निष्पक्षता की घोषणा (२३ अप्रैल, १७९३) —राजनीतिक दल—वाशिंगटन का त्यागपत्र (१७९३)—जॉन एडम्स, राष्ट्रपति (१७९७-१८०१)—विदेश सम्बन्ध —फ्रांस के साथ युद्ध की सी स्थिति, १७९८—विदेश और राज-द्रोह निरोधक अधिनियम—टामस जैफ़रसन (१७४३-१८२६)—राष्ट्रपति (१८०१-१८०९)—डेमोक्रैटिक दल का सत्तारूढ़ हो जाना १८०१ की महान् क्रान्ति थी—जैफ़रसन का राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठापन—दलीय प्रतिशोध—सड़क-निर्माण का कार्यक्रम—ट्रिपोली का युद्ध (१८०१-५)—लूसियाना का क्रय (१८०३)—इंगलैंड-अमेरिका (१८१२-१४) के युद्ध के प्रधान कारण—युद्ध (१८१२-१४)।

२. अमेरिका का विस्तार (१८१५-५०)
(The Development of America, 1815-50)

राष्ट्रीय चेतना का विकास—विदेशी सम्बन्ध—मनरो सिद्धान्त—क्षेत्रीय आर्थिक विकास—उत्तरी अमेरिका के उत्तरी राज्य—दक्षिणी अमेरिका—पश्चिमी राज्य—सीमांत प्रादेशिक विस्तार—नया लोकतन्त्र—एण्ड्रयू जैक्सन (१८२९-३७)—पुराने दलों का नया वर्गीकरण—डेमोक्रेट दल और ह्विग दल।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय पृष्ठ संख्या

३. दास-प्रथा और राज्यों का संघ से सम्बन्ध-विच्छेद (१८५०-७०)
(Slavery and Secession, 1850-70)

दास व्यापार के प्रति आम अरुचि—आरम्भ से ही दास-व्यापार पर समझौता करने की आम प्रवृत्ति थी—मिसूरी समझौता १८२०-२२—उत्तर में दास-व्यापार की जड़ खोदने वाले अनेक व्यक्ति थे—संवैधानिक आपत्तियां—आर्थिक हानियां—कैलिफोर्निया का संघर्ष (१८५०)—कैन्सास—नेब्रास्का अधिनियम (१८५४)—ड्रेड स्काट निर्णय (१८५७)—१८६० की मर्दुमशुमारी—अब्राहम लिंकन (१८०९-६५)—दक्षिणी कैरोलिना का संघ से सम्बन्ध विच्छेद—क्रिटेण्डन के समझौते को अस्वीकृत कर दिया गया—इन राज्यों का समूह भी यूनियन से अलग होता गया—युद्ध—लिंकन द्वारा दासों की मुक्ति की घोषणा—दक्षिण की पराजय—लिंकन की हत्या—पुनर्निर्माण।

४. सीमान्त का लोप
(The End of the Frontier)

अमेरिका का आन्तरिक विकास—रैड इण्डियनों की समस्या—पूर्वी जातियों का देशान्तरवास—देशान्तरवास—औद्योगिक विकास—विदेश-नीति—राजनीति

७३२—८२३

American Presidents ८२४

Genealogical Tables ८२५-२९

A Few Suggestions for Further Reading ८३०-३३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक काल का इतिहास

(A History of Modern Times)

अध्याय १

(CHAPTER I)

विषय-प्रवेश

(Introduction)

यूरोपीय इतिहास की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें समय-समय पर असामान्य सक्रियता और प्रबल उसाह के दिग्दर्शन होते हैं।[1] उन्नीसवीं शताब्दी ऐसा ही युग था। इस युग का निर्माण फ्रेंच और औद्योगिक क्रांतियों (French and Industrial Revolutions) द्वारा जनित महती शक्तियों ने किया था। इन दो विशाल आन्दोलनों के बीच में अठारहवीं शताब्दी का तो अन्त हुआ और उन्नीसवीं का जन्म। फ्रेंच क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति प्रायः एक ही समय में हुई थीं। उनका सम्मिलित प्रभाव नवजागरण (Renaissance) या धर्म-सुधार आन्दोलन (Reformation) से, रोम के पतन या सेंट पीटर (St. Peter) के बलिदान से कहीं अधिक शक्तिशाली और प्रत्यक्ष रहा है। उन्होंने शताब्दियों के बीच व्यवधान (Chasm) खड़ा कर दिया है और संसार का कायाकल्प कर दिया है। यदि हम अठारहवीं शताब्दी और आज के विश्व की तुलना करें, तो हमें उनमें आश्चर्यजनक वैषम्य दिखाई देगा। उनमें मानव-स्वभाव और अविच्छिन्न इतिहास के अतिरिक्त अन्य साम्य ही क्या है? लेकिन फ्रेंच और औद्योगिक क्रान्तियाँ (French and Industrial Revolutions) अपनी पूर्ववर्ती घटनाओं का परिणाम हैं। वे देशज आन्दोलन (indigenous) हैं; उन्हें बाहर की किसी सभ्यता ने नहीं लादा। बाहर की सभ्यताएँ इस प्रकार के आन्दोलनों को कैसे जन्म देती हैं, इसके हमें इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं। रोम का ट्यूटनों के प्रभाव में आना, पूर्व का पश्चिमीकरण, अरबों का स्पेन को, स्पेन का मैक्सिको को, तातारों का रूस को, या इंग्लैंड का भारत को जीतना और फिर वहाँ अपने विचारों का प्रसार करना—इसी प्रकार के उदाहरण हैं। फ्रेंच और औद्योगिक क्रान्तियाँ अन्तर्भूत शक्ति (Innate energy) और

अठारहवीं शताब्दी

एक सभ्यता का अन्त और दूसरी का जन्म

---

१. इस प्रकार के उत्साह का मूल कारण नूतन ज्ञान की वृद्धि, नये विश्वासों का जन्म तथा नवीन तकनीकों का आविष्कार हैं। विस्फोटक शक्ति का एक ऐसा 'स्फुरण बिन्दु' (flash point) प्रतीत होता है जिसे निश्चित रूप से पुरानी और नई विचार-पद्धतियों के संयोग से प्रज्वलित नहीं किया जा सकता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशीय संस्कृति (Native culture) की स्वतःप्रेरित अभिव्यक्ति हैं। विनष्ट संसार के अन्तिम अवशेष—अठारहवीं शताब्दी में नये संसार के—जो उसका स्थान ग्रहण कर चुका है, अंकुर और बहुत से निर्माणकारी प्रभाव (formative influences) पाये जा सकते हैं। वह एक युग की तो समाधि है और दूसरी का पालना।

भौगोलिक ज्ञान

कोपर्निकस (Copernicus) की खोजों ने अठारहवीं शताब्दी तक विश्व के भू-केन्द्रीय सिद्धान्तों (Geocentric theories of the Universe) को नष्ट कर दिया था। लेकिन अभी विशुद्ध ज्योतिष विज्ञान (Science of Astronomy) का विकास नहीं हो सका था और वह फलित ज्योतिष (Astrology) के प्रभाव से विकृत था। दूसरी ओर अठारहवीं शताब्दी में भौगोलिक ज्ञान अपनी आधुनिक पूर्णता को प्राप्त कर रहा था। अभी तक अमेरिका के अधिकांश भाग में वहाँ के मूल निवासी (Natives) ही रहते थे। अफ्रीका का अन्ध महाद्वीप (Dark Continent of Africa) भी अभी अपरिचित ही पड़ा था। लोगों को उत्तर-पश्चिम की दिशा में एक रास्ते की तलाश थी। न्यूजीलैण्ड की मुश्किल से ही परिक्रमा हो सकी थी। न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) उन ब्रिटिश अपराधियों की नई निर्वासन-भूमि (Deportation Ground) थी जिन्हें १७८३ ई० के पश्चात् अमेरिका ने अपने यहाँ रखना अस्वीकार कर दिया था। न्यू साउथ वेल्स में अभी ऐसा बहुत सा भू-भाग सम्मिलित था जिसे 'टेरा आस्ट्रालीज इन्कोग्निटा' (Terra Australies Incognita) कहते थे। लेकिन, इस समय तक संसार के प्रमुख प्रदेशों की स्थिति, आकार और आकृति की खोज हो चुकी थी। प्रशान्त महासागर की दक्षिणी सीमा तक का परिचय पाया जा चुका था। बेरिंग (Bering) इसकी खोज पहले ही कर चुके थे कि एशिया और अफ्रीका दो पृथक् महाद्वीप हैं। यद्यपि संसार के अनेक बृहद भू-भागों पर अभी तक अधिकार नहीं हुआ था, फिर भी वे आर्थिक और राजनीतिक महत्त्व के स्थायी तत्त्व बन चुके थे। अठारहवीं शताब्दी ने भौगोलिक ज्ञान की उस आधारशिला को पूर्ण कर दिया था, जिस पर उन्नीसवीं शताब्दी का निर्माण करना था।

अन्तर्महाद्वीपीय संचार

एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को आना-जाना कम ही होता था, लेकिन उसमें कोई बाधा नहीं थी। अठारहवीं शताब्दी के बाद तो एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को लगातार आना-जाना कम होने लगा। अधिकांश सम्पर्क केवल स्थानीय क्षेत्रों (Local areas) तक ही सीमित था। पनामा का भूडमरूमध्य (Isthmus) अब भी समुद्रों के बीच में एक रुकावट थी। ऊंट नील नदी का अनाज रेगिस्तान को पार करके अरब में ले जाते थे। अब स्वेज नहर का निर्माण हो जाने से जहाज इस मार्ग से ही होकर भारत को जाते हैं। पूर्व अभी पश्चिम से विरोध करता था। कैप्टेन कुक (Captain Cook) की पहले तो पूजा हुई थी लेकिन फिर उन्हें हवाई द्वीप (Island of Hawaii) में सभ्यताओं के संघर्ष में मार डाला गया। हिन्द महासागर (Indian Ocean) के चारों ओर के मुस्लिम विश्व ने अभी अपनी स्वतन्त्रता यूरोप के चरणों में समर्पित नहीं की थी। अभी न तो सन्धि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्तन (Treaty Ports) ही थे और न प्रशान्त सागर सम्बन्धी प्रश्न (Pacific Question) ही। फिर भी, आधुनिक युग की प्रमुख विशेषताएँ उस समय विद्यमान थीं। कभी-कभी तो वे उस समय आज से भी ज्यादा विकसित रूप में दिखाई देती थीं। भारत पर इंग्लैंड का कड़ा नियंत्रण था। चीन की पृथकता का भी अन्त हो रहा था। रूस के अभिकर्त्ता (Agents) तो उसमें उत्तर दिशा से जमीन के रास्ते प्रवेश कर रहे थे। और अफ़ीम के आँग्ल-भारतीय व्यापारी उसमें दक्षिण दिशा से समुद्र के मार्ग से घुस रहे थे। चीन का विदेशी दानव (Foreign Devil) पर संदेह हो गया था और उसने उन जेसुएट मिशनरियों (Jesuit Missionaries) को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था जो उसके साम्राज्य को पलटने के विचार से वहाँ दो सौ वर्षों से रहते आ रहे थे। इंग्लैंड और हालैण्ड के प्रतियोगी व्यापारी मसाले के द्वीपों (Spice Islands) में व्यापार करते थे। हालैण्ड के व्यापारिक कम्पनियों का तटकर (Tariffs) के प्रश्न पर जापान के सीमा-शुल्क अधिकारियों (Customs Officials) से कलह होता रहता था। जापान में पुर्तगालियों ने तम्बाकू का चलन शुरू कर दिया था और वहाँ के सभी नर-नारी एवं आबाल-वृद्ध उसका सेवन करते थे। सभी दिशाओं में सक्रियता और विस्तार के चिन्ह दृष्टिगत होते थे। आर्कटिक प्रदेशों (Arctic Regions) में, जापान और तार्तारी (Tartary) के तटों पर अपरिचित प्रशान्त द्वीप-समूह में, अफ्रीका के तटों और नाइगर (Niger) के किनारों पर विज्ञान तथा अभियान (Exploration) के महारथी पाये जाते थे। रूस, डेन्मार्क, नार्वे, फ्रांस, हालैण्ड और इंग्लैण्ड के यात्री कहीं तो आमस्टर्डम की बोटानिकल सोसायटी (Botanical Society of Amsterdam) के लिए नमूने खोज रहे थे, कहीं वे इंग्लिश रॉयल सोसायटी (English Royal Society) के लिए दक्षिणी प्रायद्वीप (Southern Hemisphere) के नक्षत्रों का अनुशीलन कर रहे थे, कहीं वे उत्तर-पश्चिम की ओर रास्ते की खोज कर रहे थे, कहीं वे धन एकत्रित कर रहे थे, साम्राज्य बना रहे थे और उस ज्ञान-कोष की वृद्धि कर रहे थे, जिसे उन्नीसवीं शताब्दी ने प्राप्त किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में अठारहवीं शताब्दी के बाद से राजनय (Diplomacy) की पद्धतियों में कुछ सुधार हुए हैं और राज्यों की आपेक्षिक स्थिति में कुछ सन्तुलन स्थापित हो गया है। लेकिन नेपोलियन के युद्धों के अवरोध के बावजूद पिछले दो सौ वर्षों का राजनीतिक इतिहास आश्चर्यजनक रूप से अविच्छिन्न रहा है। राजनय के सूत्र अब न तो शासक के हाथों में हैं और न उसकी प्रियतमा के। लीग ऑफ नेशन्स (League of Nations) ने अपने स्थायी सचिवालय द्वारा यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के विचार को आगे बढ़ा दिया है; लेकिन लोकतन्त्र के उत्कर्ष ने युद्धों को बन्द नहीं किया है। आर्थिक और औपनिवेशिक प्रतिस्पर्द्धा ने अठारहवीं शताब्दी की शांति भंग कर दी थी। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में यह प्रतिस्पर्द्धा और बढ़ गई है। उन्नीसवीं शताब्दी की अधिकांश प्रमुख सफलताओं का आभास फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से पहले ही होने लगा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जर्मनी' केवल भूखण्ड मात्र था जिसमें तीन सौ पृथक् राज्य थे। लेकिन प्रशा के एक राजा को सिपाही एकत्रित करने का शौक था और १८७१ के जर्मन साम्राज्य को जिस तरह सैडोवा (Sadowa) तथा सीडान (Sedan)

जर्मन साम्राज्य

में जीता गया था, उसी तरह रोशबेच (Rossbach) और मिंडेन (Minden) में भी विजित किया गया था।

रूस पश्चिमी राज्यों में हीन समझा जाता था। जिस समय बेस्टील (Bastille) का पतन हुआ था, सेंट पीटर्सबर्ग को बने हुए सौ वर्ष भी न हो पाये थे। लेकिन इस समय तक कैथेराइन द्वितीय (Catherine II)

रूस

ने पोलैण्ड में अपने पैर जमा लिये थे, क्रीमिया से तैमूरलंग के वंशजों को बाहर निकाल दिया था और साइबेरिया तथा मध्य एशिया में अपने अभिकर्त्ताओं का एक जाल-सा बिछा रक्खा था। पीटर महान् ने रूस के जीवन और राजनीति में व्यापक परिवर्तन कर दिये थे। इन परिवर्तनों से परिचित व्यक्ति को रूस की क्रांति पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

यद्यपि १७६३ में कनाडा की विजय कुछ क्षेत्रों में पश्चिमी द्वीप-समूह (West-Indian Island) की अपेक्षा कम मूल्यवान् समझी जाती थी, हाइट्स ऑफ अब्राहम (Heights of Abraham) तथा प्लासी के मैदानों में

ब्रिटिश साम्राज्य

ब्रिटिश साम्राज्य का वास्तविक शिलान्यास हुआ था। यह साम्राज्य इंग्लैण्ड की नौ-शक्ति पर आधारित था। अमेरिकी उपनिवेशों के विद्रोह ने औपनिवेशिक सिद्धान्त को जो चुनौती दी, उसने राष्ट्रमंडल साम्राज्य की एक नई संकल्पना को जन्म दिया तथा राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की क्रिया-प्रतिक्रिया शुरू कर दी। यह क्रिया-प्रतिक्रिया अभी तक संसार में चल रही है।

निर्वासितों के देश अमेरिका का विकास ज्यादा विचित्र है। १७८९ में वह अमेरिका के पूर्वी तट पर विशृंखलित बस्तियों का एक ताना-बाना था लेकिन उसकी

संयुक्त राज्य अमेरिका

नवजात एकता और स्वतन्त्रता रक्त से अभिनन्दित थी और यूरोप का सभ्यतम राष्ट्र उनकी मित्रता पर गर्व करता था।

संभवतः जापान और इटली अठारहवीं शताब्दी में अपने भविष्य की सबसे कम आशा प्रकट करते थे, तथापि जापान में आत्मरक्षा की भावना बल पकड़ रही थी। इटली[1] बूरबन तथा हैप्सबर्ग, चर्च और नगर राज्य तथा अन्य कई राजवंशीय

---

१. १७६३ के एक अज्ञात लेखक ने जार्ज षष्ठ के शासन १९००-१९२५ की भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि उन्नीसवीं शताब्दी में नियापोलिटन बूरबनों (Neapolitan Bourbons) की अधीनता में वेनिस को छोड़कर सारा इटली एक हो जायेगा। उसने यह भी कल्पना की थी कि १९०० तक रूस न केवल पोलैण्ड फिनलैण्ड और क्रीमिया ही, प्रत्युत स्कैन्डिनेविया के राज्य को भी हड़प लेगा। इस छोटी सी रोचक पुस्तक को प्रो० ओमन (Prof. Oman) ने सम्पादित किया था और इसे १८९९ में दुबारा छपवाया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवारों में बँटा हुआ था। इन राजवंशीय परिवारों में एक सैवॉय वंश था जो पहाड़ों में रहता था और धीरे-धीरे अपनी शक्ति तथा प्रतिष्ठा बढ़ा रहा था। वह फ्रांस और आस्ट्रिया की प्रतिद्वंद्विताओं में बड़ी सावधानी से हस्तक्षेप करता था और धीरे-धीरे अपने प्रादेशिक विस्तार में संलग्न था।

इटली

अठारहवीं शताब्दी में पतन और अभ्युदय दोनों की भविष्यवाणियाँ पाई जा सकती हैं। जब बूरबनों का पतन हुआ था, हैप्सबर्ग वंश यूरोप का सबसे प्रतिष्ठित वंश था। लेकिन बाद में प्रशा ने उसको पराजित किया, बेल्जियम ने उसका तिरस्कार किया और नेपोलियन (Napoleon) ने उसका अपमान किया था। उसकी रचना मध्ययुगीन थी। उसकी प्रतिष्ठा उस पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी। उसके अवसान पर वाल्टेअर पहले ही अश्रुपात कर चुका था। ऐहिक पोपतन्त्र (temporal papacy) की भाँति ही वह भी एक विसंगति था।

आस्ट्रिया का पतन

यद्यपि तुर्की की शक्ति डेन्यूब के पार तक विस्तृत थी, यूरोप में उसके साम्राज्य का पतन हो रहा था। तुर्की साम्राज्य की दुर्बलता ने कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) के प्रलोभन को बढ़ा दिया था। अधीनस्थ ईसाई राज्य विद्रोह करने लगे थे, आस्ट्रिया और रूस ने स्वयं को उसका शत्रु घोषित कर दिया था। उसका विभाजन न हो सका था, इसका एकमात्र कारण यह था कि यूरोप के देश अन्य समस्याओं में उलझे हुए हुए थे।

तुर्की की अधोगति

जहाँ तक दूसरे राज्यों का सम्बन्ध है, पोलैण्ड की स्वतन्त्रता, जो शताब्दी के गत पच्चीस वर्षों से लड़खड़ा रही थी, १७९५ में समाप्त हो गई। यद्यपि अभी डेन्मार्क का नार्वे पर अधिकार था, स्वीडेन वॉस-वंश के अस्ताचलगामी सूर्य से प्रकाशित था, स्पेन इंग्लैण्ड को अपनी शत्रुता से सशंकित कर सकता था फिर भी डेन्मार्क, स्वीडेन और स्पेन छोटी शक्तियाँ रह गई थीं।

पोलैण्ड, डेन्मार्क, स्वीडेन और स्पेन

सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में, पद्धति और तकनीक में, वित्त-संगठन और मानव-प्राणियों के एक-दूसरे के प्रति वैयक्तिक व्यवहारों में अठारहवीं शताब्दी और आज की दुनिया में बहुत अन्तर है। आधुनिक युग का युद्ध और सेना-संगठन भी अठारहवीं शताब्दी के युद्ध और सेना-संगठन से बिल्कुल भिन्न है। १७८९ के यूरोपीय दास (serf) और आज के मुक्त सर्वहारा की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर है। अठारहवीं शताब्दी में प्रबुद्ध शासन, कुशासन, राजतन्त्रों, कुलीनतन्त्रों और सम्पत्ति-तन्त्रों की प्रधानता थी। उस समय कुलीन किसान को घृणा से कुचल सकता था। इंग्लैण्ड में एक तरुण को इसलिए फाँसी दे दी गई थी क्योंकि उसने

महान् सामाजिक, आर्थिक और वित्तीय परिवर्तन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़क पर सम्राट् के एक संदेशवाहक से घड़ी छीन ली थी। अठारहवीं शताब्दी में प्रस्थानकारी जहाजों (sailing ships), हथकरघों और बग्घियों[1] का प्रचलन था। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों और चाय-बागानों के तेज काम करने वाले मजदूरों, जल-दस्युओं और चोर व्यवसायियों, दास व्यापारियों और पत्रकारों, कर्फ्यू और चुनाव-कार्यक्रमों, प्लेग और अग्निकाण्डों, शिष्टता और आमोद, मदिरा-सेवन और रूक्षता, बाहरी टीम-टाम और विनष्ट उद्देश्यों, होगार्थ (Hogarth) और वाट्यू (Watteau); चेस्टरफ़ील्ड (Chesterfield) और वाल्टेयर (Voltaire), डॉ० जॉनसन (Dr. Johnson) और यंग शिवेलियर (Young Chevalier) आदि की तूती बोल रही थी। ये अठारहवीं शताब्दी की प्रमुख विशेषताएँ थीं। आधुनिक युग की क्या प्रमुख विशेषताएँ हैं? वे हैं—बड़े-बड़े औद्योगिक नगर और महान् यांत्रिक आविष्कार, हवाई जहाज, मोटर कार और लोहावृत (ironclads), कारखाने और सिनेमा, ग्रामोफोन और उपनगरों के पिछले भाग के उद्यानों में बेतार के हल्के खम्भे, पक्की सड़कें और दियासलाई, अन्तर्राष्ट्रीय ऋण (internatinal loans) और प्रचार, पुलिस मैन और स्टेशन के बुकस्टाल, लोकतन्त्र की सम्पूर्ण साज-सज्जा, बहुमत का शासन, स्त्रियों की मुक्ति, जनता के समाचारपत्र और राष्ट्रीय शिक्षा आदि। अठारहवीं शताब्दी की उक्त विशेषताओं और आधुनिक युग की इन विशेषताओं में आश्चर्यजनक अन्तर है।

अठारहवीं शताब्दी में इन परिवर्तनों का पूर्वाभास

उन्नीसवीं शताब्दी में जिस विज्ञान, उद्योगवाद और मानववाद (humanitarianism) की प्रधानता हो रही थी, अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक उनमें काफी प्रगति हो चुकी थी। जब १७९८ में फ्रेडरिक महान् (Frederick the Great) ने इस सिद्धान्त का निरूपण किया था कि "युद्ध गोला-बारूद की श्रेष्ठता से जीते जाते हैं," उसने आधुनिक युद्ध-नीति के एक आधारभूत सिद्धान्त की घोषणा की थी। इस सिद्धान्त की पूर्ण मान्यता का ही यह फल हुआ है कि युद्ध में घुड़सवारों और पदाति सेना की बन्दूकों की लड़ाई का महत्त्व कम हो गया है। इनके स्थान पर अब दूर की मार करने वाली बन्दूकों और खाई-युद्ध की महिमा बढ़ गई है। ये अब आधुनिक युद्ध-नीति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। यहूदी, कैथोलिक और नास्तिक ब्रिटिश संसद (British Parliament) से वर्जित थे। १७४५ में स्काटलैण्ड में एक चुड़ैल को जला दिया गया था। १७८० में लन्दन में प्रोटेस्टैंट धर्मान्धों ने तीन दिन तक अराजकता मचाये रक्खी थी। फिर भी अठारहवीं शताब्दी एक श्रेष्ठ युग था। इस काल में धार्मिक मदान्धता कम हो रही थी और सहिष्णुता के विचार बल पकड़ रहे

युद्ध

धार्मिक सहिष्णुता

---

१. एक बार लंदन से एडिनबर्ग की यात्रा में ४० घण्टे लगे थे। इस तेज ड्राइविंग के ऊपर काफी शोरगुल मचा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। यद्यपि दास-व्यापार प्रचलित था और कारावास की दशाएँ बहुत खराब थीं, फिर भी विल्बरफोर्स (Wilberforce), होवर्ड (Howard) और एलिजाबेथ फ्राइ (Elizabeth Fry) के प्रयास निरर्थक नहीं जा रहे थे। 'यद्यपि आज की पत्र-पत्रिकाओं की शैली भिन्न है, फिर भी वे The Gentleman's Magazine और The Annual Register की पैतृक वंशज हैं।'[1] फ्रांस की क्रांति से पहले Encyclopaedia Britannica के तीन संस्करण हो चुके थे। जन-शिक्षा और जन-सम्पर्क के साधन के रूप में समाचारपत्रों का जन्म अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। उस समय के कई मसिजीवी भूखे थे क्योंकि साहित्यिक संरक्षण की परम्परा का अन्त हो रहा था। लेखकों और प्रकाशकों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे विशाल पाठक जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं को संतुष्ट करें। यह सिद्धान्त आजकल के समाचारपत्रों के लिए भी प्राथमिक महत्त्व का है।

दास-व्यापार

कारावास

समाचारपत्र

अठारहवीं शताब्दी में स्त्रियों को काफी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उन्हें अपनी वैयक्तिक सुरक्षा (Personal safety) के लिए मठों में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं थी। वे जाति के सामाजिक और बौद्धिक जीवन में काफी महत्त्वपूर्ण भाग लेती थीं। हन्ना मोर (Hannah More) और फेनी बर्नी (Fanny Burney) के दिनों में विदुषी महिला का चरित्र चाहे कितना बदनाम रहा हो, तथापि स्त्रियों का बौद्धिक स्तर निरन्तर बढ़ रहा था और लौकिक क्षेत्र में भी वे निरन्तर उन्नति कर रही थीं।

नारी-समाज

इंग्लैण्ड के देहात और अंग्रेज के चरित्र में भी बहुत सी चिर-परिचित विशेषताएँ दिखाई देती थीं। शतरंज के दौर प्रचुरता से चलते रहते थे। यद्यपि आजकल के शहरों को संसद् (Parliament) में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था, फिर भी वे कोयला क्षेत्र के किनारे विकसित होने लगे थे। उन दिनों शिकारी आजकल की अपेक्षा ज्यादा दिखाई देते थे। अठारहवीं शताब्दी में मुर्गों की लड़ाई और मल्ल-युद्ध भी काफी लोकप्रिय मनोरंजन थे।[2] ये खेल उन लोगों के पूर्वजों को अपनी ओर बड़ी संख्या में खींचते थे, जो आजकल फुटबाल और क्रिकेट के मैच देखते हैं।[3] लेकिन अंग्रेजों के खेलों, आमोद-

इंग्लैण्ड का स्वरूप

---

१. The Annual Register (1758) के प्रथम अंक की सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया था—"यद्यपि विद्वत्समाज तो इसका तिरस्कार कर सकता है, लेकिन यह एक अन्य प्रकार के पाठकों के लिए है। हमारा कार्य इन पाठकों के लिए ऐसी सामग्री तैयार करना है जो हल्की हो और जो अपनी विविधता, चपलता और सामान्यता से उनकी ज्ञान-वृद्धि कर सके।"

२. क्रिश्चियन हम्फ्रेज और यहूदी मेंडोजोक मैच में २०,००० पौण्ड का दाव लगाया गया था।

३. इंग्लैण्ड में अठारहवीं शताब्दी में लाटरियों का बहुत प्रचलन था। उनसे काफी धन एकत्रित किया जा सकता था। समाज के सभी वर्गों को इसका शौक था। इंग्लैण्ड में अब लाटरियों का अन्त कर दिया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमोद और चरित्र पर प्रोटेस्टैंटिज्म (Protestantism) ने अपना असर डालना प्रारम्भ कर दिया था। वाल्टेयर (Voltaire) यह पहले ही लिख चुका था—"दर्शन, स्वतंत्रता और जलवायु लन्दन में विश्व-द्वेष की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है।"

विज्ञान

गणित, चिकित्साशास्त्र, इंजीनियरिंग, रसायनशास्त्र और दर्शन के बहुत से आधारभूत सिद्धान्त पहले से ही सुविज्ञात थे। नैपियर का लोगारिथम (Logarithms) और लीबनीट्ज (Leibnitz) का कैलकुलस (Calculus) प्रायः दो सौ वर्ष पुराने पड़ चुके थे। चार्ल्स प्रथम (Charles I) के चिकित्सक हार्वे (Harvey) ने रक्त-संचार (Circulation of blood) की खोज की थी। आधुनिक गतिशास्त्र (dynamics) न्यूटन के गतिशास्त्र पर आधारित है। आधुनिक रसायनशास्त्र के जनक लेवोइशियर (Lavoisier) का फ्रेंच राज्य-क्रान्ति में वध कर दिया गया था। जिस वर्ष नेपोलियन सम्राट् बना था, उसी वर्ष ८० वर्ष की आयु में कांट (Kant) का स्वर्गवास हुआ था। अमेरिका के स्वतंत्रता-संग्राम (American War of Independence) में एक अंग्रेजी जहाज के विरुद्ध पहली पनडुब्बी का प्रयोग किया गया था। अठारहवीं शताब्दी के समाप्त होने के पहले ही भाप के प्रारम्भिक इंजनों का हालैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड में आविष्कार हो रहा था। इसी समय चुम्बकीय विद्युत् द्वारा पौधों की खेती के क्षेत्र में भी परीक्षण हो रहे थे।

कला

कला के क्षेत्र में, यदि कलाकारों और साहित्यिकों की जाति फ्रेंच राज्य-क्रान्ति में समूल नष्ट हो जाती, तो भी संसार के पास शेक्सपीयर (Shakespeare) और दान्ते (Dante), सर्वेन्टीज (Cervantes) और कोर्नील (Cornielle), लिओनार्डो (Leonardo), रेम्ब्रेन्ट (Rembrant), वेलाज़क्वेज (Velasquez) और बच (Bach) रहते। उसके पास अब भी स्ट्रेडिवेरियस सारंगी, डच पच्चीकारी और फ्रांस की चित्र-कला रहती। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में एक सामान्य बात यह है कि

सामान्य विरासत

दोनों ने ही नवजागरण (Renaissance) और धर्म-सुधार आन्दोलन (Reformation) की विरासत (Heritage) को प्राप्त किया था। लेकिन इसके साथ-साथ यह सामान्य विरासत ही उनके बीच अन्तर का कारण है। इन दो महान् आन्दोलनों के विचार

वास्तविक अन्तर

अठारहवीं शताब्दी की आपेक्षिक शान्ति और समृद्धि में बहुत अच्छी तरह परिपक्व हुए। इस काल में उनका विकास कुछ ऐसी तेजी से हुआ कि उन्होंने फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के बाद की दुनिया में और पहले की दुनिया में एक विभाजन-रेखा खींच दी है। पिट (Pitt) के शब्दों में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति "संसार के साथ एक पृथकत्व (A schism with the universe) है।" वस्तुतः इस विशेषता ने ही, शताब्दी के अन्त में इन विचारों के चरमोत्कर्ष ने ही, 'क्रान्ति' (Revolution) को उत्पन्न किया है। पिछले दो सौ वर्षों के इतिहास की अविच्छिन्नता के बावजूद यह सही है कि एक आधारभूत परिवर्तन हो गया है और इस परिवर्तन की समाज के जीवन पर तथा मनुष्यों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माओं पर अमिट छाप अंकित है। जीवन-यापन और चिंतन-मनन की पद्धतियों, ईश्वर, माता-पिता, संतान, सेवक और कर्मचारियों के प्रति दृष्टिकोण, कर्त्तव्य की धारणा और मूल्यों का मान, व्यवसायों, स्वार्थों, रुचियों और ऐसी अन्य बहुत सी चीजों में, जो मनुष्य के हृदय में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति पैदा करती हैं, हम अठारहवीं शताब्दी के अपने पूर्वजों के सामने बिलकुल अजनबी हैं। आज हमारे पास ऐसी विद्या और शक्ति है, जिसे तब दैवी समझा जाता। जहाँ हमारे पूर्वजों को ईश्वर का हाथ दिखाई देता था, वहाँ हमें केवल प्राकृतिक घटना-चक्र या मानवीय योजना ही दिखाई देती है।

फ्रेंच और औद्योगिक क्रान्तियों का युगान्तरकारी महत्त्व

फ्रेंच और औद्योगिक क्रान्तियाँ अठारहवीं शताब्दी और आज की दुनिया के बीच में एक दीवार के रूप में खड़ी हैं। इस बीच में एक दुनिया गुजर चुकी है। अब वह लौटकर नहीं आयेगी। वह दुनिया थी जिस पर यूरोप और पुरानी परम्पराओं का प्रभुत्व था। उसी दुनिया में मध्ययुगीन साम्राज्य था, सामन्ती कुलीनतन्त्र था और विशेषाधिकार युक्त वर्गों के लिए अनन्त सुविधाओं का जीवन था। यांकी डूडले (Yankee Doodle) और मार्सेलीज (Marseillaise) की तान के साथ एक नये युग का सूत्रपात हो गया है। अब नये मान हैं, नये मूल्य हैं और नई आवाजें हैं। पुराने यूरोप ने नई दुनिया को उठते हुए और अधिकार ग्रहण करते हुए देखा है। राज्यों का पृथकत्व समाप्त हो गया। अब सारे संसार में ही व्यक्ति और जातियाँ एक-दूसरे के ऊपर निर्भर रहने लगी हैं। यदि बर्मिंघम (Birmingham) में कोई हड़ताल हो जाये, तो होटेंटोट (Hottentot) की सुन्दरी अपने अलंकरण से वंचित हो सकती है। यदि लॉस एंजल्स (Los Angeles) में कोई भूचाल आ जाये, तो कैथनेस (Caithness) के गाँव में सारा आमोद-प्रमोद ठंडा पड़ सकता है। सेराजीवो (Serajivo) में एक हत्या होती है, तो इसके परिणामस्वरूप यूरोप के आधे कुबेर लुट जाते हैं और विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। युद्ध समाप्त नहीं हुए हैं। हमारे उत्पादकों, राजस्वों, फैशनों और कलाओं की भाँति वे भी बृहत्तर परिमाण पर और अधिक विस्तृत तथा व्ययसाध्य यंत्रों की सहायता से लड़े जाते हैं।

विज्ञान, उद्योगवाद और लोकतन्त्र अपने समस्त विकृत अर्थों और अदृष्टपूर्व विकासों सहित एक साथ आये हैं और विजयी हुए हैं। उन्होंने सारे संसार को घेर लिया है और वे संकोची पूर्व पर भी विजयी हुए हैं। उन्होंने आदिम जातियों के पृथकत्व को और प्राचीन संस्कृतियों की निरासक्ति को भंग कर दिया है, उन्होंने जाति और बिरादरी के एकाधिकारों को समाप्त कर दिया है और परम्परागत अनुशासनों की नींव हिला दी है।

उन्होंने पूर्वकालीन दास और अर्द्धदास की निकृष्ट शृंखलाओं को हटा दिया है और शक्ति जनता के हाथों में या उन लोगों के हाथों में, जो जनता पर नियंत्रण रख सकते हैं अथवा जनता के लिये बोल सकते हैं, सौंप दी है। लेकिन उन्हें भी प्राचीन व्यवस्थाओं की भाँति एक कीमत पर खरीदा गया है और इस कीमत को पूरी तरह चुकाया नहीं गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने हमें गति दी है, लेकिन हमसे अवकाश छीन लिया है। उन्होंने हमें मशीनें दी हैं, लेकिन हमसे हस्तकलाएँ छीन ली हैं। उन्होंने हमें नयी शक्तियाँ दी हैं, लेकिन हमसे पुराने धर्म ले लिये हैं। विशाल संगठनों और सुदूर नियंत्रण के कारण उत्तरदायित्व बंट गया हैं। आधुनिक संसार के विविध आकर्षणों और बहुमुखी सम्पर्कों ने उस सतर्कता से हमारा ध्यान हटा दिया है जो मानव स्वतन्त्रता की आवश्यक शर्त है। वे खतरे और बुराइयाँ जो पहले छिपी हुई मालूम पड़ती थीं, अब खुलकर सामने आ गई हैं। नयी मानववादी विचारधाराओं ने नई असहिष्णुताओं, महान् जनमत संग्रहों और जननिर्णयों, नये अत्याचारों, अज्ञात प्रशासनों और नयी गैर-जिम्मेदारियों को जन्म दिया है। विशेषाधिकार और दफ्तरशाही में गठबंधन हो गया है तथा इसकी वजह से व्यक्ति बिलकुल असहाय सा होता जा रहा है। जनसमुदाय की संख्या अधिक है और उसने सर्वहारा का रूप धारण कर लिया हैं। लेकिन, नौकरशाही की बटालियनों ने उसके अधिकारों और उपाधियों को ध्वस्त कर दिया है। राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा अंश इस नौकरशाही के ऊपर खर्च होता है। नौकरशाही का प्रधान लक्ष्य देश में एकरूपता स्थापित करना है।

बड़े-बड़े शासकों की भाँति जनता की भी कुछ सनकें हुआ करती हैं। जनता रिश्वत से नष्ट हो सकती है और धमकियों से डर सकती है। उसने अपनी कल्पना में बड़े विचित्र और आतंकपूर्ण देवताओं का निर्माण किया है और उनकी पूजा की है। जिस युग का अवतरण 'मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न होता है' की भैरवी के साथ हुआ था, उस युग ने ऐसे सर्वाधिकारवादी अत्याचारी शासनों को उत्पन्न किया है जिनकी निर्ममता की इतिहास में कोई सानी नहीं मिलती। शुरू की आशाएँ और स्वर्णिम कल्पनाएँ भौतिकवाद के कुहरे में समा गई हैं और अभूतपूर्व युद्धों में नष्ट हो गई हैं। पहले यह विश्वास किया जाता था कि ज्यों-ज्यों तकनीकी ज्ञान बढ़ेगा, जनसाधारण के गौरव में वृद्धि होगी तथा लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद की नैतिक मान्यताएँ व्यावहारिक रूप धारण करेंगी, समाज में समरसता का प्रसार बढ़ता जायेगा। लेकिन ज्यों-ज्यों प्रखर यथार्थवाद की विषमताएँ सामने आती गई हैं, यह विश्वास शिथिल पड़ता जा रहा है। यदि यूरोप का यह मिशन था कि वह अपने झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाए, तो उसका यह मिशन असफल हो गया है। उसने विनाशक युद्ध में अपनी शक्ति को नष्ट किया है। उसने संसार को जो तकनीकी ज्ञान और राजनैतिक विचार दिये थे, वे अब उसके खिलाफ ही जा रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी उसकी प्रधानता के साथ प्रारम्भ हुई थी, बीसवीं शताब्दी एक पृथक् व्यवस्था के रूप में उसके ऐतिहासिक अस्तित्व को धमकी देती हुई समाप्त हो सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य का अपने ऊपर अपूर्व विश्वास था, यूरोप की सुरक्षा में उसकी पूरी आस्था थी, वह राष्ट्रीय दृष्टि से संतुष्ट था, अनिवार्य उन्नति और समृद्धि में उसे रंचमात्र भी सन्देह नहीं था। अब इन सादी बातों के आगे एक प्रश्नवाचक चिन्ह खड़ा हो गया है। पुरानी लड़ाई, स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व की पुरानी अनन्त लड़ाई नये रूपों में चल रही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

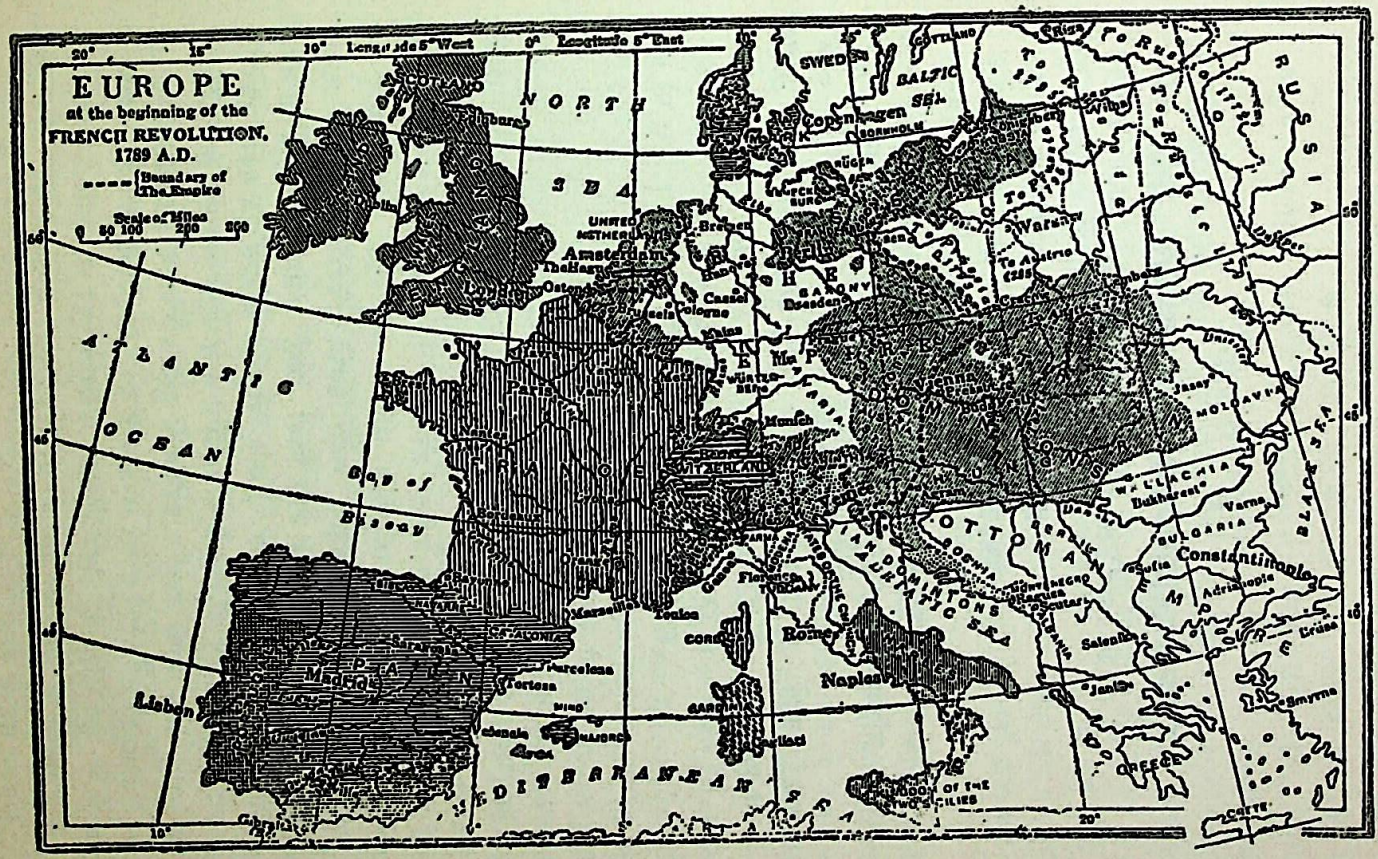

ट्यूटन वैबस्टर के 'European History' से उद्धृत (डी०सी० हैथ एण्ड कम्पनी)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २

(CHAPTER II)

पुरानी शासन-पद्धति के अन्तिम वर्ष

(The Last Years of the Ancient Regime)

फ्रांस की दशा

(The State of France)

स्टेट्स-जनरल अर्थात् फ्रांस की सामन्ती संसद् (States-General) के उस ऐतिहासिक अधिवेशन के लगभग १५ वर्ष पूर्व, जिसमें फ्रांस की क्रान्ति का श्रीगणेश होने को था, लुई पन्द्रहवाँ (Louis XV)—महान् दुष्टात्मा और पापात्मा राजा—चेचक और अपने दुष्कर्मों के कारण वार्साई के राजमहल (Chateau of Versailles) में दम तोड़ रहा था। अन्तिम समय पर सम्राट ने परमात्मा से अपने गुनाहों की क्षमा माँगी और उसको क्षमा मिल भी गई।

पापात्मा लुई पन्द्रहवें की मृत्यु १७४४ की गई में

सभी धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न हुईं, राज-दरबार छूत के डर से दूर हटने लगा, सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र को चेचक की छूत के कारण कहीं भागने नहीं दिया गया और १२ तथा १३ मई के बीच की रात्रि को, भूतपूर्व प्रिय सम्राट की शव-यात्रा सेंट डेनिस (Saint Denis) नामक गिरजेघर को चली। उस शव-यात्रा में तीन शिकारी-गाड़ियाँ थीं, उन गाड़ियों के नौकर थे, मशालें जल रही थीं, प्रहरी साथ में थे। वार्साई से किसी सम्राट् की यह अन्तिम शव-यात्रा थी। कहा जाता है कि लोगों की भीड़ ने गन्दे नारे लगाए और शराबियों ने अशिष्ट गाने गाये। इस सम्राट् की मृत्यु पर किसी ने आँसू नहीं बहाये, केवल उसकी पुत्रियों ने अवश्य प्रेम प्रदर्शित किया और उन मन्त्रियों ने भी शोक प्रकट किया जिन्हें सम्राट की मृत्यु में अपना पतन दिखाई दे रहा था। अब फ्रांस के लोगों की आशाएं २० वर्षीय नये फ्रेंच सम्राट की ओर लगी हुई थीं जिसके श्रीचरणों के साथ उदार सुशासन का श्रीगणेश हो रहा था। उसने अपने दादा के दरबार के मुख्य परिचारक (Steward of the Royal Palaces) को पदच्युत कर दिया और अपने भाइयों सहित स्वयं चेचक से रक्षा करने के हेतु चेचक का टीका लगवाया। यद्यपि ऐसी सावधानी उत्तरीय राज-दरबारों में अवश्य ली जाती थी फिर भी पेरिस (Paris) में इसको भय और तिरस्कार के योग्य समझा जाता था।

फिर भी जिस समय लुई सोलहवें (Louis XVI) का राज-तिलक हुआ उस समय लोगों में उल्लास भी था और भय भी था। जिस फ्रेंच जाति ने प्राचीन अथवा सामन्ती फ्रांस को उजाड़कर उसके स्थान पर नवीन फ्रांस की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना करने का संकल्प किया था, वह अब प्रौढ़ता प्राप्त करती जा रही थी। क्रान्ति के अधिकतर नेताओं की आयु लगभग २० वर्ष की थी, जिनमें ब्रिसाट (Brissot), मैडम रोलैंड (Mme Roland), लेफ़ेयैट (La Fayette), राबेस्पियर (Robespierre), वरजनियोड (Vergniaud), कैमिले (Camille), डैसमौलिन्स (Desmoulins) और बार्नवे (Barnave) प्रमुख हैं, केवल कौण्डॉरसेट (Condorcet) की आयु ३२ वर्ष थी और मिराबो (Mirabeau) की आयु २९ वर्ष की थी। १७७५ ई० में सम्राट के राज्यारोहण के अवसर पर एक १६ वर्ष का बालक भी था जो ७० मील दूरस्थ अपने स्कूल को छोड़कर यह देखने के लिए भाग आया था कि राज्यारोहण कैसे होता है। उसका नाम था जैक्स डैण्टन (Jacques Danton), और १८ वर्षों बाद उसी बालक ने उसी सम्राट को अपने हाथों गद्दी से उतार दिया।

अशुभ राज्यारोहण

सम्राट के राज्यारोहण के समय किसी ने राज-सिंहासन के लिए होने वाले संघर्ष की कल्पना नहीं की थी, फिर भी बहुत से लोग उस समय के लोगों की स्वतन्त्रतावादी मनोवृत्ति से परिचित थे। लोगों में सुधारों के लिए, अत्याचार के विरुद्ध संरक्षण पाने के लिए और विद्रोह के लिए भी अपार जोश था। वे समझते थे कि फ्रांस, लुई (Louis) को न केवल सम्राट बनाना चाहता था, बल्कि फ्रांस को सम्राट से अधिक मसीहा (Saviour) की आवश्यकता थी और फ्रांस वासियों को पूरा भय था कि न तो लुई (Louis) और न कोई अन्य व्यक्ति यह कार्य कर सकता है। जब मैडम मिल डी लैसपिनासे (Mlle de Lespinasse) ने यह सुना कि सम्राट लुई पन्द्रहवें (Louis XV) का शासन-काल समाप्त हो गया तो उसके मुँह से यह वाक्य निकला : "मेरे प्रिय एवे, अभी और बुरा समय आने वाला है।" यह ठीक है कि उसका हृदय व्यक्तिगत निराशाओं से पूर्ण था किन्तु वह डी एलेम्बर्ट (d' Alembert) की मित्र थी, और विश्वकोश के लेखकों (Encyclopaedists) की संरक्षिका थी। उसका यह शोकोद्गार सच निकला।

पुराने शासन के फूल गोबर के ढेर के ऊपर खिल रहे थे

फ्रांस की पुरानी शासन-पद्धति अपनी सारी चमक के बावजूद अव्यवस्था के अशुभ लक्षणों को छिपाने में असमर्थ थी। 'रॉय सोलील' (Roi Soleil) का राज्य अब भी यूरोप के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक समृद्धिशाली था।[1] उसका दरबार राजकुमारों के लिए आदर्श दरबार था और उस राज्य की भाषा एवं साहित्य की सभी राजकुमारों को अपनी भाषा और साहित्य की अपेक्षा अधिक जानकारी थी, फ्रांस के विद्वानों और नर्तकों का जितना पेरिस (Paris) में आदर होता था उतना ही सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) में। राजधानी का समाज यूरोपीय संस्कृति और सभ्यता का पुष्प था। वहाँ मैडम डयू-डिफैण्ड (Mme du Deffand) अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त

१. २½ करोड़ की जनसंख्या, इंग्लैण्ड या प्रशा की जनसंख्या से दूनी थी और जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी की सम्मिलित जनसंख्या भी इससे अधिक नहीं थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों का समारोह आमन्त्रित करती थी। वह स्वयं ऐसे समारोह का सभापतित्व करती थी। सत्तर वर्ष की आयु में भी उसके प्रशंसक लोगों में ऐसे-ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति थे जैसे होरेस (Horace), वालपोल (Walpole), बर्क (Burke) और गिबन (Gibbon)। श्रीमती नेकर (Mme Necker) का कक्ष मानो राजनीतिक अर्थशास्त्र का विद्यालय था, और मैडम मिल डी लैसपिनासे (Mlle de Lespinasse) का मकान मानो दार्शनिकों की संगोष्ठी था। ऐसी आकर्षक मण्डलियों में प्रवेश पाने के लिए यूरोप के सामाजिक और बौद्धिक वर्ग के सर्वश्रेष्ठ लोक-नेता लालायित रहते थे।[1] इन आकर्षक मण्डलियों में कुछ ऐसे आकर्षण थे जिनके आधार पर लोगों में सामाजिक सम्पर्क के श्रेष्ठ गुण आते थे। इन मण्डलियों के साथ बड़े-बड़े नामों की चकाचौंध जुड़ी रहती थी, बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि का चमत्कार रहता था, आमोदों और मनोरंजनों का वैविध्य रहता था, सिद्धान्त और विवेचन की उर्वरता और सामान्य हितों की मैत्रीयुक्त चेतना इन मण्डलियों के साथ जुड़ी हुई थी।

लेकिन इस चित्र का एक पहलू और भी है। वाल्टेयर (Voltaire) जो यूरोप का बौद्धिक देवता था, फर्नी (Ferney) में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा था। विश्वकोश के लेखक, जिन्होंने संसार को नये विचार दिये थे, अपने देश की परम्पराओं को कुचल रहे थे। नोवेल हिलौइस (Nouvelle Heloise), जो सदय व्यक्ति की आँखों से अश्रुजल प्रवाहित कर सकता था, काण्ट्रेट सोशल (Contrat Social) का पूर्वगामी था। यह काण्ट्रेट सोशल ही आगे चलकर क्रान्ति की पाठ्य-पुस्तक बना। ऐसे अन्धकार में, जो प्रकाश की छाया के कारण और भी गहरा हो गया था, वह राजतंत्र देखा जा सकता था जो निरंकुश भी था और दुर्बल भी। फिर उस समय का चर्च सांसारिक और भ्रष्ट था। उस समय के कुलीन वर्ग में पक्षाघात-सा हो गया था। तत्कालीन अर्थव्यवस्था खोखली थी, मध्यमवर्ग रुष्ट था, कृषक वर्ग दलित था। देश में वित्तीय, प्रशासनिक और आर्थिक अराजकता छायी हुई थी। राष्ट्र उबल रहा था और पारस्परिक संदेह और कुशासन के कारण विभक्त था। संक्षेप में उस समय फ्रांस में जैसा कि चैस्टरफील्ड (Chesterfield) ने कहा था—"वे सभी तत्त्व उपस्थित थे जो किसी देश को क्रान्ति की ओर ले जाते हैं।"[2]

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि फ्रेंच राज्य-क्रान्ति के कारणों में उपर्युक्त

---

१. किसी भद्र परिवार के अंग्रेज के लिए यह आवश्यक माना जाता था कि उसे पेरिस के समाज का थोड़ा-सा ज्ञान हो। इसके विपरीत यह भी याद रखना चाहिए कि लुई चौदहवें की मृत्यु के उपरान्त फ्रेंच राज्य-क्रान्ति तक की दो पीढ़ियों के समय प्रायः प्रत्येक प्रसिद्ध फ्रांस-निवासी इंग्लैंड जाता था या अपने घर पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अर्जित करता था अथवा बहुत से तो इंग्लैंड जाते भी थे और अंग्रेजी भाषा भी सीखते थे।

२. चैस्टरफ़ील्ड की भविष्यवाणी थोड़ी ही ग़लत हुई क्योंकि उसने इंग्लैंड के लिए भी इसी अन्त की कल्पना की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषों के अतिरिक्त उच्च फ्रेंच सभ्यता भी थी। पूंजीपति वर्ग (bourgeoisie) यद्यपि असन्तुष्ट था, किन्तु खुशहाल था और व्युत्पन्न था।

उत्तेजना और निर्दयता का अजीब सम्मिश्रण

फ्रांस के किसानों की तथाकथित स्वतन्त्रता प्रायः ऐसी ही थी जैसी कि पास-पड़ोस के अन्य राज्यों जैसे प्रशा (Prussia), आस्ट्रिया (Austria), पोलैंड (Poland) और रूस (Russia) के किसानों की गुलामी की दशा थी। केवल विचारों और संस्कृति के प्रति संवेदनाशील राष्ट्र के लिए ही यह सम्भव हो सकता था कि वह मौण्टेस्क्यू (Montesquieu), वाल्टेयर (Voltaire), रूसो (Rousseau) और सर्वांगीण शिक्षावादियों (Encyclopaedists) को पैदा करता अथवा उनको पैदा हो जाने पर उनकी बातों को सुनता। सत्य यह है कि फ्रांस शिकायत (irritation) और स्वतन्त्रता, अनुदारता (obscurantism) और उदारता (enlightenment), रोष और उत्प्रेरणा का वह समन्वय उपस्थित करता था जो क्रान्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ सामग्री प्रदान करता है।

अव्यवस्था और व्यग्रता

फ्रांस के प्राचीन शासन की अत्यन्त विचित्र विशेषता उसकी अव्यवस्था थी। क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में परम्परा (Tradition), राज्यादेश (Edict,) कानून (Law) और विशेषाधिकार (Privilege) की, प्रान्तीय स्वतन्त्रता, सामन्ती अधिकारों और राजकीय शक्ति की जो मिली-जुली अव्यवस्था थी, उसे 'अतिव्ययी अराजकता' (A prodigal anarchy) और 'शक्तियों की विशृंखलता' (Debris of Powers) के नाम से व्यक्त किया गया है। ऐसे ऐतिहासिक जंगल में सुनिर्दिष्ट रास्तों को निकालना मुश्किल और शायद भ्रामक है, लेकिन अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक जो जटिल परिस्थितियाँ पैदा हो गई थीं, उनके विकास और निर्माण में दो मुख्य विचारधाराएँ कार्य कर रही थीं।

दो प्रमुख विचार

(१) सामंती विचारों की सर्वव्यापकता

पहले विचार को फ्रांस की इस प्राचीन कहावत में प्रकट किया गया है—"कुलीन लड़ते हैं, पादरी प्रार्थना करते हैं और जनता पैसा देती है"। यह मुख्यतः एक सामन्ती विचार था। इसका अर्थ था—कार्यों, दायित्वों और वर्गों का विभाजन जो सारे फ्रेंच समाज में व्याप्त था। इससे कुलीनों की सामाजिक श्रेष्ठता सिद्ध होती थी। फ्रांस में जातीयता की भावना कुछ इतनी गहरी थी कि कुलीनों के बच्चे तक कुलीन बन जाते थे हालाँकि इंग्लैंड में उन्हें जनसाधारण ही समझा जाता था। फ्रांस में उच्च कुलोत्पन्न लोगों को ही सेना और चर्च में ऊँचे-ऊँचे पद मिलते थे। इसकी वजह से किसी अकिंचन कुलीन के लिए यह कठिन था कि वह किसी औद्योगिक धनी परिवार में विवाह करके पुनः अपना भाग्य-निर्माण कर सके। जातिवाद की यह धारणा वधस्थल (Scaffold) तक पहुँची हुई थी। जिस अपराध के लिए कुलीन का शिरच्छेद किया जाता था, उसी अपराध के लिए जनसाधारण को फांसी दी जाती थी। यही प्रवृत्ति उस विकट आर्थिक विषमता का कारण थी जो परोक्षतः और प्रत्यक्षतः मुख्य रीति से क्रान्ति के लिए उत्तरदायी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। राजमुकुट (Crown) का प्रायः सम्पूर्ण राजस्व जनसाधारण, अकुलीन और पादरियों से इतर वर्ग के लोग देते थे। ग्रामीण वर्ग धर्माधिकारियों और कुलीनों की अधिकांश आय के स्रोत थे। इस तरह किसानों को तिहरे कर देने पड़ते थे—वे राज्य को कर देते थे, वे चर्च को उपज पर कर देते थे और कुलीनों को सामन्ती देय (Feudal dues) प्रदान करते थे।[1]

इसके विपरीत, कुलीन, जो "लड़ते थे" और पादरी जो "प्रार्थना करते थे" राजस्व का बहुत कम अंश देते थे। कुलीन वर्ग पर कुछ युद्ध-कर लगते थे लेकिन साधारणतया वे उनका भुगतान नहीं करते थे। १७१० में पादरी वर्ग को सब प्रकार के करों से मुक्ति मिल गई थी। हाँ, वे समय-समय पर कुछ "स्वतन्त्र अनुदान" अवश्य दे देते थे। जब कभी उनके ऊपर कर लगाने का प्रस्ताव किया जाता, वे बड़ी गम्भी-

---

१. वित्त के सम्बन्ध में टिप्पणी—(१) किसान राज्य को निम्नलिखित कर देते थे—

(क) 'अनैतिक नमक कर' और अन्य कर जैसे परोक्ष कर।

(ख) टेली (taille) जैसे प्रत्यक्ष कर। यह कर कुछ प्रान्तों में सम्पत्ति कर होता था और कुछ में पोल कर (poll tax)। कभी-कभी यह कर इतना ज्यादा होता था कि १०० लिवर्स (फ्रेंच मुद्रा) में से ५३ लिवर्स ले लिए जाते थे।

२. किसान चर्च को उपज पर कर देते थे। यह कर कुल उपज के १/२० भाग से लेकर १/१२ भाग होता था। यह कर सब तरह की जमीनों पर लगता था; चाहे वह जमीन कुलीनों के अधिकार में हो या अकुलीनों के। लोग इस कर से जहाँ तक हो सकता था, बचने की कोशिश करते थे। जिस समय क्रान्ति शुरू हुई थी, इस मामले के ४,००,००० मुकद्दमे न्यायालयों में लटक रहे थे।

३. किसान कुलीनों को सामंती देय (feudal dues) देते थे। ये देय विभिन्न स्थानों में अलग-अलग थे। इसके अनेक रूप थे। इसमें दो-तीन दिन का बेगार शामिल था, चंदे शामिल थे और हर तरह की खेती तथा व्यापार सम्बन्धी मामलों पर अनेक प्रकार के चुंगी-कर सम्मिलित थे। कुलीनों को इस बात की छूट थी कि उनके जानवर किसानों के खेतों में घुसकर उनकी वह फसल नष्ट कर सकते थे जिसके आधार पर वे कर देते थे और अपनी जीविका का उपार्जन करते थे।

कुलीनों के मुख्य सामंती अधिकार निम्नलिखित थे—

(क) बलात् श्रम का अधिकार (Corvee Seigneuriale)।

(ख) कुलीन अपने काश्तकारों को इस बात के लिए विवश कर सकता था कि वे अपने अंगूर उसके यहाँ शराब बनाने के लिए भेजें, वे अपना अन्न उसकी चक्की में पिसवायें और अपनी रोटी उसके तन्दूरे में सेकें। किसानों को इन सब चीज़ों के उपयोग के लिए पैसा तो देना ही पड़ता था। कुलीनों के इन अधिकारों को बेनालिटिज (Banalites) कहते थे।

(ग) कुलीन का अपने जिले में शराब के ऊपर एकाधिकार रहता था। यह अधिकार बेनाविन (Banavin) के नाम से प्रख्यात था।

(घ) किसानों को सड़कों, नावों और पुलों पर चुंगी देनी पड़ती थी। यह अधिकार पीज़ेज (Peages) कहलाता था।

(ङ) किसानों को विशेष फसलों के अवसर पर कुछ कर देने पड़ते थे। इसे टीरेज (Terrage) कहते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रता से जवाब देते थे, "हमें परमात्मा तथा राजा के बीच चुनाव करने के लिए बाध्य मत कीजिए क्योंकि आप जानते हैं कि हमारा जवाब क्या होगा ?"

इस प्रकार, करों का वितरण कुछ ऐसा था कि जो वर्ग उनका भुगतान करने में सबसे कम समर्थ था, उसे सबसे ज्यादा कर देने पड़ते थे। बहुत से पद और प्रशासनिक नौकरियाँ ऐसी थीं जिनमें कोई कर नहीं देना पड़ता था। उन सबने, जो कर दे सकते थे, कुलीनता के पेटेंट खरीदकर इसी तरह के विशेषाधिकार प्राप्त कर लिए थे। मेलेशर्ब्स (Melesherbes) ने लिखा है, "यद्यपि प्रत्येक कुलीन धनी व्यक्ति नहीं है, लेकिन प्रत्येक धनी कुलीन व्यक्ति है।" धनिक वर्ग किसी-न-किसी तरह सबसे कम कर देते थे।[1]

कर केवल दमनात्मक ही नहीं थे, वे राजकीय परिषद् (Royal Council) के गोपनीय सत्र (secret session) में मनचाहे ढंग से बढ़ाये जा सकते थे। मध्य-युग का यह विचार अब भी प्रचलित था कि राज्य का राजस्व राजा का व्यक्तिगत धन है। कर उन लोगों के बीच भी, जो उन्हें देते थे, विषम रीति से बँटे हुए थे। परोक्ष करों को बड़ी निर्दयता से वसूल किया जाता था। प्रत्यक्ष करों के लिए किसान स्वयं ही उत्तरदायी थे। इन करों को भी बड़ी कठिनता और असुविधा से एकत्रित किया जाता था।

इस प्रकार फ्रांस के सामाजिक, वित्तीय और आर्थिक संगठन में सामन्ती विचारधारा के अवशेष देखे जा सकते हैं। लेकिन इसके साथ-ही-साथ फ्रांस में एक अन्य विचार—राजतन्त्रीय विचार—भी प्रचलित था। इस

(२) राजतन्त्रीय विचार

विचार को लुई चौदहवें के इस ऐतिहासिक सूत्र में व्यक्त किया जा सकता है "मैं ही राज्य हूँ" (L'Etat, c'est, moi) इस सूत्र में उग्र सामन्तवाद के खतरे के विरुद्ध राजा और जनता की असंदिग्ध और स्वाभाविक मित्रता की गई है। जनता ने राजा का इसलिए समर्थन किया था जिससे कि वह राष्ट्र की एकता अक्षुण्ण रख सके और कुलीनों की शक्ति को दबाये रख सके। लेकिन राजा के हाथों में समाज के अन्य सभी वर्गों के

(च) कपोत पालने और शिकार खेलने के अधिकार—ये अधिकार सबसे ज्यादा घृणास्पद थे। इन्हें फ्रेंच में 'ड्रोइट्स डी कोलाम्बियर एट डी चेस' (Droits de colombier et de chasse) कहते थे।

(छ) अन्य बहुत से कर और भुगतान।

१. यह हिसाब लगाया गया है कि १७८५ में एक वर्ग से कितना कर एकत्रित किया गया था, १८७० के युद्ध के समय उतना ही कर फ्रांस की सम्पूर्ण जनसंख्या से एकत्रित किया गया था जो अब पहले की अपेक्षा तीन गुनी बढ़ गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य पर राजनीतिक और प्रशासनिक शक्ति का अधिकाधिक संकेन्द्रण (Concentration) हो गया था। ट्यूडरों के शासन-काल में कौंसिल ड्यू रोई (Consel du Roi) प्रिवी कौंसिल (Privy Council) की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण थी। वह पूर्ण रूप से राजा के ऊपर निर्भर थी। उसके पास अधिशासनिक शक्ति (Executive power) का एकाधिकार था। उसकी विधायी और न्यायिक शक्ति भी अमर्यादित थी। उसका नियन्त्रण इतना व्यापक था कि वह युद्ध की घोषणा कर सकती थी, कर निश्चित कर सकती थी, कानून बना सकती थी, महत्त्वपूर्ण अभियोगों पर विचार कर सकती थी। उसकी अनुमति के बिना गाँव के गिरजाघर की मरम्मत तक नहीं की जा सकती थी। वह प्रान्तीय शासकों (Intendants) की नियुक्ति करती थी। ये लोग कुलीनेतर वंश के होते थे और जिले के प्रशासन का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से उनके ऊपर ही रहता था। वे ग्रामीण पुलिस का नियंत्रण, सेना का अभिभाजन (Apportionment) और कर-संग्रह का निरीक्षण करते थे। वे अपराधियों को प्राण-दण्ड तक दे सकते थे। अपने क्षेत्र के अधिकांश दीवानी और फौजदारी मामलों पर वही विचार करते थे। वे प्रान्तीय फ्रांस के असली नियन्ता थे। वे अज्ञात रूप से कार्य करते थे। सामाजिक दृष्टि से कुलीन और राजनीतिक दृष्टि से नाममात्र के गवर्नर और कुछ अन्य अधिकारी उनसे आगे बढ़े हुए थे, फिर भी उनकी शक्तियाँ विस्तृत थीं। इन अधिकारियों ने उनकी सत्ता को छिपा भले ही दिया हो, लेकिन सीमित नहीं किया था। लॉ (Law) ने आश्चर्य में लिखा था, "क्या आप जानते हैं कि यह राज्य तीस इंटेंडेंटों (Intendants) द्वारा शासित होता है?" वे नेपोलियन के प्रिफेक्टों (Prefects) की भाँति ही, जो उनके ऐतिहासिक उत्तराधिकारी थे, शक्तिशाली थे।

राजा के हाथों में प्रशासनिक, राजनीतिक और न्यायिक शक्ति का अधिकाधिक संकेन्द्रण

इस तरह राज-कर्मचारियों के संवर्ग ने प्रशासनिक शक्ति हथिया ली थी। इस समय विधायी शक्ति भी लुप्त हो गई थी। पहले वह पादरियों, कुलीनों और जनसाधारण की एक विधान सभा (States General) में निवास करती थी, लेकिन १६१४ ई० से इस संस्था का कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। राष्ट्रीय कानूनों का स्थान राज्यादेशों (Royal edicts) ने ले लिया था। राजमुकुट (Crown) के न्यायिक कृत्य, जो पूर्वकाल में बहुत सीमित थे, अठारहवीं शताब्दी में काफी बढ़ गये थे। कुछ मरणासन्न सामन्ती अदालतों को छोड़कर न्याय की सारी शक्ति राजा की अदालतों (King's Courts), राजा की कौंसिल (King's Council) और तेरह राजकीय पार्लमेंटों (Parlements) के हाथों में थी। पार्लमेंट मुख्य नगरों की अदालतें होती थीं। वे राजा के लिए ऐसी बाधाजनक सिद्ध हुईं मानो वे राजकीय न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हों।[1]

प्रशासनिक, विधायी और न्यायिक शक्तियों के इतने अधिक केन्द्रीकरण के कारण राजा की शक्ति विनष्ट हो गई थी। यद्यपि वह स्टेट्स-जनरल का निवारण कर सकता था, कानूनी अदालतों को अकड़ के साथ आतंकित कर सकता था; प्रान्तीय सभाओं के स्थानीय जीवन को निष्प्राण कर सकता था, लेकिन उसमें इतनी ताकत नहीं थी कि वह आवश्यक सामाजिक या न्यायिक सुधार कर सके या कुलीन और पादरी वर्गों के महत् सामन्ती और वित्तीय विशेषाधिकारों को स्पर्श कर सके। यद्यपि राजकोष रिक्त हो गया था, फिर भी वह उन लोगों के ऊपर कर नहीं लगा सकता था, जो करों से बचे हुए थे। राजकोष की कमी को पूरा करने के लिये उसने निंद्य और अवांछनीय तरीके अपनाए—उसने पदों, उपाधियों, सम्मानों और म्युनिसिपल अधिकारों को बेचा। जो लोग इन चीजों को खरीदते थे, उन्हें कर से छुटकारा मिल जाता था। इस पद्धति से कुछ काल के लिए राजकोष का भार अवश्य हल्का हो जाता था, लेकिन आगे के लिए मुसीबत और बढ़ जाती थी। राजा की उदारता का लाभ उठाकर बहुत से लोगों ने अपने लिये तरह-तरह के धन्धे प्रारम्भ कर दिए थे और हजारों प्रशासनिक या अर्द्धप्रशासनिक पद बना लिये थे। इनमें से अधिकांश काम ऐसे थे जिनमें वेतन तो मिलता था लेकिन काम कुछ नहीं करना पड़ता था। कुछ काम ऐसे थे, जो अपनी थोड़ी-बहुत उपयोगिता का प्रदर्शन करते रहते थे और अपने को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रकट करते थे।[2] जब राजा का बुद्धि-बल और राजकोष फिर रिक्त हो जाता था, तो नया राजा पिछले राजा द्वारा स्वीकार किये गये सम्मानों और म्युनिसिपल अधिकारों को फिर से वापस लेकर उन्हें पुनः बेच सकता था। उस समय इस प्रकार की नीति के समर्थन में राज्यादेश "हमारी आर्थिक आवश्यकता" (The necessity of our finances) की दुहाई देता था।

राजा की विनष्ट शक्ति

इस तरह, उस समय दो राजनीतिक विचार—सामन्ती और राजतन्त्रीय साथ-

---

१. सत्रहवीं शताब्दी तक पार्लिमेंट (Parlements) आनुवंशिक अधिकारियों की शक्तिशाली वैधानिक संस्थाएँ बन गई थीं। फ्रांस में इङ्गलैंड की भाँति न्यायपालिका तथा राज्य के अन्य विभागों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। राजा ने अभियोगों को अदालतों (Courts) से कौंसिल (Council) और इन्टेंडेंटों (Intendants) के पास हस्तान्तरित कर पार्लमेंटों (Parlements) की शक्ति को कम करने की चेष्टा की। दूसरी ओर पार्लमेंटों, विशेषकर पेरिस की पार्लमेंट ने अपनी शक्ति को बढ़ाने की कोशिश की। पेरिस की पार्लमेंट पहले राजा के आदेशों को पंजीकृत करती थी। अब वह स्टेट्स जनरल (States General) की अनुपस्थिति में कानून बनाने लगी थी। पेरिस की पार्लमेंट विधायी संस्था के रूप में विफल हुई। लेकिन, उसने फ्रोंडे (Fronde) के समय से क्रान्ति के समय तक ऐसी विग्रहकारी और दुराग्रही नीति अपनायी कि उसमें केवल एक अविच्छिन्न विशेषता दिखाई देती है और वह है राजा के प्रति विरोध-भाव।

२. नमककर कार्यालय (Gabelle office) के क्लर्क बारी-बारी से एक साल के लिए कार्य करते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ चल रहे थे। वे एक-दूसरे को सीमित कर रहे थे। राजतन्त्रीय विचार सामन्ती विचार के ऊपर आरोपित था, कभी उसे नष्ट कर देता था और कभी उसके सामने झुक जाता था। इस स्थिति का परिणाम असमानता और निरंकुशता का सम्मिश्रण था। उस समय अव्यवस्था अभूतपूर्व थी। वह पदों के बार-बार बिकने से और बढ़ गई थी। काम काफ़ी एकत्रित हो गया था। राजा की चपलता और अस्थिरता ने स्थिति को और बिगाड़ दिया था।[1]

अव्यवस्था

प्रान्तों के विशेषाधिकारों और दावों ने इस अराजकता को और बढ़ा दिया था। इन प्रान्तों में से कुछ को विजय द्वारा, कुछ को विवाह दहेज द्वारा और कुछ को सन्धि द्वारा फ्रांस में मिलाया गया था। इन सभी प्रान्तों का अपना इतिहास था। इनके अपने कानून थे, अपनी परम्पराएँ थीं। उन्हें फ्रांस से पूर्व अपनी सत्ता का भान था। लैंग्यूडोक (Languedoc) और ब्रिटेनी (Brittany) के प्रान्तों ने अपनी स्थानीय सभाओं (Local Assemblies) को और काफ़ी हद तक अपने स्थानीय शासन को बनाए रखा था। अन्त में, सारे देश में आर्थिक प्रतिबन्ध लगे हुए थे—गिल्ड-विनियम, नगर विनियम, प्रान्तीय सीमा शुल्क, सामन्ती सीमा-शुल्क। ये प्रतिबन्ध कहीं एक-दूसरे के विरोधी थे, कहीं एक-दूसरे के ऊपर थे। इनकी वजह से अव्यवस्था बढ़ गई थी और व्यापार की उन्नति में बाधा पड़ रही थी।

प्रान्तीय विशेषाधिकार

आर्थिक विनियम

इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक था कि असमानता बढ़े और राजा की सत्ता—जहाँ वह स्थानीय शक्तियों को दबा सके—निरंकुश हो। सरकार के ऊपर ऐसा कोई अंकुश नहीं था जैसा कि प्रतिनिधिक शासन (representative system) के अन्तर्गत रहता है। फ्रांस में न तो आय-व्यय का कोई हिसाब था, न संसदीय आलोचना थी। समाचारपत्रों को कोई स्वतन्त्रता नहीं थी और यदि सरकार के किसी काम की आलोचना की जाती, तो आलोचक को दण्ड मिलना स्वाभाविक था। देश में एक से कानून नहीं थे, प्रत्युत ३८४ विभिन्न प्रथाएँ (Customs) प्रचलित थीं। वहाँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (personal liberty) की

अंकुश का प्रभाव

---

१. डी० टोकियावेली (De Tocqueville) ने लिखा था, "सरकार ऐसे आवश्यक सुधारों को, जिनके लिए अथक परिश्रम की आवश्यकता होती है, बहुत कम तो अपने हाथों में लेती है और अगर उन्हें लेती भी है, तो शीघ्र ही छोड़ देती है। वह अपने नियमों को बार-बार बदल देती है। जिस काम में भी वह हाथ डालती है, उसे अधूरा ही छोड़ देती है। एक के बाद दूसरे नियम इतनी द्रुतगति से आते हैं कि राज्य के कर्मचारी यह नहीं समझ पाते कि उनका किस रीति से पालन करें। म्युनिसिपल अधिकारी स्वयं कण्ट्रोलर-जनरल (Controller-General) से शिकायत करते हैं। उनका कहना है कि वित्तीय नियमों में ही इतने परिवर्तन होते रहते हैं कि किसी अधिकारी को उनके अनुशीलन के अतिरिक्त अन्य कोई समय नहीं मिलता जिससे कि वह कोई और काम कर सके।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई गारण्टी नहीं थी और न कोई बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (Habeas Corpus Act) ही था।

फ्रांस में **लेटर्स डी कैचेट** (Lettres de cachet)[1] इतने सामान्य थे कि "न तो कोई इतना ऊँचा था कि वह मंत्री के रोष से बच सके और न इतना महत्त्वहीन था कि वह क्लर्क के रोष को जाग्रत न कर सके।" प्रशासन के अन्दर की गोपनीयता से भ्रष्टाचार और सन्देह को पनपने का अवसर मिलता था। अक्सर सरकार के माथे ऐसे अच्छे या बुरे कार्य मढ़े जाते थे, जिसके लिये वह उत्तरदायी नहीं होती थी। डी० टोकियावेली (De Tocqueville) ने लिखा था—

लोग शिकायत करते हैं कि फ्रेंच कानून से घृणा करते हैं। शोक, वे इसका आदर करना सीख ही कहाँ सकते थे ? हम कह सकते हैं कि प्राचीन शासन-व्यवस्था (ancient regime) में आदमियों के दिमागों में कानून को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। प्रत्येक वादकर्त्ता (suitor) परम्परागत नियम से हटना चाहता है, उतनी ही दृढ़ता के साथ मानो वह उसका पालन कर रहा हो। केवल उस समय को छोड़कर जबकि अधिकारी वर्ग उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करना चाहते हों, शायद ही कोई नियम कभी उसके विरोध में खड़ा किया जाता हो।

फ्रेंच समाज का आधार कानून नहीं, प्रत्युत् विशेषाधिकार, रियायत और छूट था। उसके शासकों की नीति किसी सिद्धांत पर नहीं प्रत्युत् अवसर की अनुकूलता पर आधारित थी। इसलिए, कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि क्रान्तिकारियों (Revolutionaries) की सबसे पहली माँग 'संविधान' (Constitution) के लिए थी। इससे उनका अभिप्राय था कि देश में कुछ व्यवस्था, कुछ संगठन होना चाहिए।

जनता पर प्रभाव

इसका जनता के ऊपर यह प्रभाव पड़ा कि उसके अन्दर अविश्वास, संदेह और असंतोष पैदा हो गया। वर्ग वर्ग के खिलाफ थे। समूह समूह के खिलाफ थे। जहाँ तक संभव था, हर कोई अपने को अलग रखता था। वह अपने से ऊँचे वर्ग पर अविश्वास करता था और नीचे वर्ग से घृणा।

किसान

यह सही है कि किसानों का दमन होता था, लेकिन उनके साथ ऐसा व्यवहार नहीं होता था जैसा कि ला ब्रुयेर (La Bruyere) ने चित्रित किया है।[2] न वे ऐसी क्रूरता के ही शिकार थे जैसा कि आर्थर यंग (Arthur Young) की अपने से कम भाग्यशाली जाति के प्रति उदार सहानुभूति ने बताया है।[3] वे कृषक दास या सर्फ (serfs)[4]

---

१. बिना आभयोग के गिरफ्तारी के वारंट।

२. लाब्रुयेर के "Characters" नामक ग्रंथ को देखिए।

३. आर्थर यंग (Arthur Young) का यात्रा सम्बन्धी वृत्तान्त (Travels) देखिए (जुलाई १२, १७८९) कन्वेंशन (Convention) ने आर्थर यंग की यात्राओं का बहुत प्रचार किया था। आर्थर यंग ने १७९३ में 'The Example of France' नाम से एक प्रतिवाद प्रकाशित किया था, इन सम्बन्ध में जेफरसन (Jefferson) के विचार उल्लेखनीय हैं। उसने लिखा था, "मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि लोगों को उतना कष्ट नहीं है जितनी मैंने आशा की थी।" (Correspondence अप्रैल ११, १७८७)

४. केवल कुछ सर्फ धार्मिक क्षेत्र (ecclesiastical territory) में रहे थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थे। वे आ-जा सकते थे, क्रय-विक्रय कर सकते थे, वाणिज्य या वधू को अपनी इच्छानुसार चुन सकते थे।[1] फ्रांस की तिहाई जमीन कृषक स्वामियों (Peasant proprietors) के पास थी। लेकिन पुराने सामन्तवाद में उनके लिये अवसर ही क्या थे? यदि उनके जीवन पर नहीं, तो उनकी सम्पदाओं के ऊपर काफी भार थे। खेती से उन्हें न्यूनतम लाभ होता था, उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ रुद्ध थीं। खाद्य के स्रोत के रूप में, लाभ के स्रोत के रूप में और राष्ट्रीय उद्योग के रूप में खेती पर कुलीनों का नियंत्रण था। इसके दो परिणाम हुए—एक कृषिजीवियों की उन्नति रुक गई और दूसरे देहात में हमेशा भुखमरी फैली रहती थी।[2]

बोर्जुआ (Bourgeois) अर्थात् शहरों के औद्योगिक और व्यावसायिक वर्ग[3] ज्यादा समृद्ध थे। वे बहुत सुसंस्कृत थे, उनके ऊपर करों का भी कम बोझा रहता था। उन्हें सैनिक सेवा भी नहीं करनी पड़ती थी। लेकिन, वे

औद्योगिक और व्यावसायिक वर्ग

धार्मिक असहिष्णुता, अभियोग के समय न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग, मनमानी गिरफ्तारियों और निर्दय तथा विषम दंडों से बहुत रुष्ट रहते थे। वे कुलीनों या धनी पादरियों की सामाजिक श्रेष्ठता तथा व्यर्थ के अपव्यय से ईर्ष्या करते थे। तत्कालीन लोकतन्त्रात्मक साहित्य का उनके ऊपर ज्यादा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। क्रांति के प्रमुख नेता इसी वर्ग से आये थे। लेकिन, नेपोलियन (Napoleon) का मत था कि मुख्य प्रेरणा स्वतंत्रता की नहीं, प्रत्युत अहम्मन्यता की थी।

सेना और चर्च में भी असंतोष था। यदि १७८९ ई० में सिपाहियों और निम्न-वर्गीय पादरियों की सहायता न मिली होती, तो जनता का लक्ष्य पराभूत हो सकता था। सेना की सभी श्रेणियों में लोकतन्त्रात्मक विचारों का

सेना

प्रसार हो गया था। सिपाही कठोर अनुशासन, अपोषक भोजन और कम वेतन का विरोध करते थे। उन्हें स्वयं ही कमीशन की श्रेणी नहीं मिल सकती थी। सेना के पदों पर जिन हीन व्यक्तियों की नियुक्ति होती थी, उनके प्रति उनके मन में कोई सम्मान नहीं होता था। लेकिन यह हालत सारे यूरोप की थी। प्रशा में, जहाँ की सैनिक प्रतिष्ठा यूरोप में सबसे ऊँची थी, सैनिक अनुशासन इससे कठोर था। इंग्लैंड में बच्चों में शुरू से ही सेनापति बनने का

---

१. यह स्मरणीय है कि किसान अपनी जमीन के लिए कोई लगान नहीं देते थे। किसानों से कर उनके धन के बाहरी प्रदर्शन के आधार पर लिया जाता था। इसलिये उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे अपनी धन-सम्पत्ति को ज्यादा-से-ज्यादा छिपाएँ और अपने को गरीब व्यक्त करें।

२. फ्रांस में कृषि के ऊपर जो सामंती नियंत्रण था, उसकी सबसे कठोर निंदा इस आधार पर की जा सकती है कि यदि कभी कोई फसल खराब हो जाती थी, तो समस्त उर्वरता के बावजूद फ्रांस में भुखमरी फैल जाती। गरीब कारीगरों को उस आपत्ति का सबसे पहले शिकार होना पड़ता था।

३. अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिकतर समृद्ध किसान शहरों में आकर रहने लगे थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव पैदा किया जाता था। अकेले रूस में ही कोई अधिकारी निम्न श्रेणियों से ऊँचा उठ सकता था।

सेना की तरह चर्च में भी फूट थी। वाल्टेयर (Voltaire) जैसे व्यक्ति तथा हजारों फ्रांसीसी, जो उसके विचारों को मानते थे, फ्रांस के रोमन कैथोलिक चर्च को असह्य रूप से स्वेच्छाचारी समझते थे। अनुयायियों का विश्वास भी उसका उद्धार नहीं कर सकता था। जेन्सेनिस्ट्स (Jansenists) और जेसुइट्स (Jesuits) के विवादों ने उसे बदनाम कर दिया था। सांसारिकता और भ्रष्टाचार ने उसे मानहीन कर रखा था। धन, विशेषाधिकार और एकाधिकार ने उसकी जड़ उखाड़ दी थी। संदेह और नास्तिकता ने उसे अन्दर-बाहर दोनों ओर से खोखला कर दिया था। जब लुई सोलहवें (Louis XVI) को पेरिस का एक आर्चबिशप नियुक्त करना था और तुलूस का आर्चबिशप ब्रिएन (Brienne) भी इस पद का एक उम्मीदवार था, लुई सोलहवें ने उसको अस्वीकार करते हुए कहा था, "हमें कम-से-कम पेरिस का तो ऐसा आर्चबिशप रखना चाहिए जो ईश्वर में विश्वास रखता हो।" उच्च पादरी-वर्ग और निम्न पादरी-वर्ग में पापों के अतिरिक्त और कोई समानता नहीं थी। उच्च पादरी-वर्ग जन्म से ही अभिजात होता था। वह निम्न पादरियों से केवल वेश-भूषा की दृष्टि से ही भिन्न होता था, शिष्टाचार की दृष्टि से नहीं।[1] निम्न पादरी अधिकतर किसानों में से आते थे। वे किसानों की भाँति ही अज्ञानी और असंस्कृत होते थे। उच्च पादरियों के पास अथाह धनराशि रहती थी। निम्न पादरी इतने गरीब थे कि उनके वेतन को बढ़ाकर २५ पौंड प्रति वर्ष करना पड़ा था। शहरों के निम्न पादरियों ने चर्च के पतन में सबसे ज्यादा योग दिया था। वे अपने समय के सुधारवादी आन्दोलन के प्रति जागरूक थे। वे विश्व-कोश (Encyclopaedia) के ग्राहक थे। वे प्लूटार्क (Plutarch) तथा रूसो (Rousseau) को पढ़ते थे और जनतन्त्रवादी हो गए थे। जब १७८९ ई० के जून दिवस को मेनस प्लेसर्स (Menus Plaisirs) के प्रकोष्ठ में पादरी जनता के प्रतिनिधियों के साथ मिले, फ्रांस की सबसे धनी और राजनीतिक संस्था, प्राचीन शासन-व्यवस्था का चर्च अपने सारे गौरव और भ्रष्टाचार के सहित नवजागरण कालीन पोपशाही (Renaissance Papacy) की भाँति, सदैव के लिए धराशायी हो गया।

चर्च

वास्तव में कुलीन पुरानी शासन-व्यवस्था के सबसे ज्यादा शिकार थे यद्यपि वे उससे सबसे ज्यादा लाभ उठाते हुए मालूम पड़ते थे। यह वर्ग विशेषाधिकारयुक्त था लेकिन शक्तिहीन था। राजा की ईर्ष्या ने उसे राजनीतिक जीवन से वंचित कर दिया था और उसे क्लान्त, उपेक्षणीय तथा असहाय बना दिया था। लुई चौदहवें ने कुलीनों को दरबारी बना दिया था, उन्हें उनकी जमींदारियों से—जिन्हें वे अपने लिए निर्वासन-

कुलीन वर्ग

---

१. एबे सिकार्ड (The Abbe Sicarde) को १३० पादरियों में से केवल १५ पवित्र पादरी मिल सके थे। ये पादरी सोडोम (Sodom) को बचा सकते थे, लेकिन फ्रांस के चर्च को नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र समझने लगे थे—अलग कर दिया था, उनसे जनता का स्वाभाविक नेतृत्व, जो उन्हें मिलना चाहिए था, छीन लिया था, उन्हें उस प्रशासनिक अनुभव और प्रशिक्षण से वंचित कर दिया था जो कठिनाई के समय उनकी और फ्रांस की रक्षा कर सकता था। वे उस जमीन से अलग हो गए थे जो उनकी शक्ति का वास्तविक स्रोत थी। किसान उनसे घृणा करते थे। उनका न तो किसानों के ऊपर शासन था और न वे किसानों से परिचित थे। उनका एकमात्र हथियार दरबारी षड्यन्त्र था, उनका एकमात्र सहारा वर्ग विशेषाधिकार था। जब क्राँति का विस्फोट हुआ, राज्य में उनका कहीं कोई मित्र नहीं था। वे एक ऐसे राजा के ऊपर आश्रित थे, जो स्वयं उनसे भी ज्यादा दुर्बल था। वे अनुभवहीन थे, बदनाम थे, निराश्रित थे। उन्हें उस दर्शन से सहानुभूति थी जो उनके विरुद्ध था। इस तरह से वे बिलकुल निहत्थे और निस्सहाय थे।

राजा

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक राजा भी अपनी निरंकुशता का स्वामी होने की बजाय दास ही अधिक बन गया था। राजा अब उस व्यवस्था में कोई संशोधन नहीं कर सकता था, जिसको वह नापसंद करता हो और जिसके लिए निश्चिततः वही उत्तरदायी ठहराया जाता। यदि वह किसी दोष को दूर करने की चेष्टा करता या किसी काम में मितव्ययिता करता, तो दरबार उसे इसकी तिलांजलि के लिए विवश कर देता था। यह कुलीनों का प्रतिशोध था। वह युद्ध में सेना का नेतृत्व नहीं करता था। यह विश्वास किया जाता था कि वह राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन भी ठीक से नहीं कर रहा है। वास्तव में राजपद लुई पन्द्रहवें (Louis XV) के समय से ही किसी काम का नहीं था। लुई सोलहवें ने स्टेट्स जनरल को बुलाकर जनसाधारण से अपील करने की कोशिश की थी। लेकिन उसकी और जनसाधारण की मित्रता समाप्त हो चुकी थी। नागरिकों और सैनिकों का कोई ऐसा समूह नहीं था जिसके ऊपर कि वह विश्वास कर सकता था। फिर भी १७६१ तक देश में काफी लोग राजतन्त्र की ओर झुके हुए थे। यदि फ्रांस में हेनरी चतुर्थ (Henry IV) जैसा कोई चतुर राजा होता, तो वह राजमुकुट की रक्षा कर सकता था।

साहित्य

असंतुष्ट वर्गों के इस समाज के अन्दर लेखक जनता के असंतोष को और उभाड़ रहे थे। वे जनता को प्रेरणा दे रहे थे, उसके असंतोष को व्यक्त कर रहे थे, उसकी शिकायतों को सामने रख रहे थे, उसे नेतृत्व और विश्वास दे रहे थे। संसद्-विहीन देश में साहित्यकार ही राजनीतिज्ञ हो गए थे।[1] उन्होंने फ्रांस की संस्थाओं के खोखलेपन को हजारों तरह से प्रकट कर दिया था—व्यंग तथा हास्य द्वारा, आलोचना तथा तुलना द्वारा, रूपक तथा वक्रोकित द्वारा, वैज्ञानिक व्यवस्था द्वारा, समाजशास्त्रीय विचारधारा द्वारा और स्पष्ट निन्दा द्वारा। लेकिन, उन्होंने अपने इस कार्य

---

1. Cf. Bolingbroke and the *Craftsman*.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निरन्तर सावधानी का प्रयोग किया था। वे इस बात को समझते थे कि कलात्मकता यही है कि प्रत्येक चीज इस ढंग से कही जाय कि उसके लिए जेल (बेस्टील) न जाना पड़े। इसके अतिरिक्त इस काल के साहित्यकारों को प्रशासन की व्यावहारिक कठिनाइयों का कोई अनुभव नहीं था। यही कारण है कि इस समय के साहित्य में साधारणीकरण और भावुकता, काल्पनिक सिद्धान्त और अतिवादी तर्क, सूत्रों और भावात्मक रूपकों की प्रचुरता है। ये चीजें १७९१ और १७९३ में फ्रांस के संविधान-निर्माण के लिए श्रेष्ठ आधार सिद्ध नहीं हो सकीं। १८४८ में जर्मनी में अथवा १९१७ में रूस में भी यही हुआ था। फिर भी, इस काल का साहित्य राज्य को नष्ट करने के लिए बढ़िया गोलाबारूद का सामान था। इसके पूर्व क्रान्ति इतने शब्दों और सूत्रों से कभी सज्जित नहीं हुई थी। जिनेवा (Geneva) से उठने वाले धार्मिक लोकतन्त्र का भी, जो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोप में छा गया था, अपना साहित्य था। लेकिन प्युरिटेनिज्म (Puritanism) के प्रचारकों ने, क्षेत्र और प्रभाव दोनों की दृष्टि से रूसो (Rousseau) के राजनीतिक सन्देश के वाहकों से बिलकुल भिन्न कार्य किया था। प्युरिटेनिज्म के प्रचारक नगण्य और व्याख्यात्मक थे। वे धर्मप्राण भी थे। इसके विपरीत रूसो के अनुयायी मुक्त थे। वे प्राकृतिक स्वतन्त्रता और सद्गुण (Original Virtue) के स्वच्छन्द विचारों में अबाध विचरण करते थे। उन्होंने जिस आन्दोलन को जन्म दिया था, उस पर शीघ्र ही अधिकार पा लिया। उन्होंने इस आन्दोलन को शक्ति, दिशा और चरित्र दिया। यही कारण है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस की क्रान्तियों में बहुत से परिवर्तन आए।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति को सभी तरह के लेखकों ने तैयार किया था। इस शताब्दी के प्रारम्भ में मॉंटेस्क्यू (Montesquieu) हुआ था। वह वंश तथा महत्त्वाकांक्षाओं की दृष्टि से भाग्यशाली था। उसने दूर-दूर के देशों का भ्रमण किया था। वह शान्त प्रकृति का व्यक्ति था। उसे अपने जीवन में बोझिलपन या दुर्भाग्य का कभी अनुभव नहीं हुआ था। न तो उसके विचार ही क्रांतिकारी थे और न दृष्टिकोण ही। वह कैथोलिक भी था और राजतंत्रवादी भी। लेकिन मॉंटेस्क्यू ने उदारवादी ढंग से चर्च के दोषों और राज्य की निरंकुशता की आलोचना की। उसके विचार से निरंकुशता कुछ-कुछ ऐसी ही चीज थी जैसे कि फल को पाने के लिए पेड़ को काट डाला जाये। उसने छद्म ईरानी यात्रियों के बहाने फ्रांस के रीति-रिवाजों और आचार-विचारों पर व्यंगात्मक टीकाएँ कीं। उसने तुलना द्वारा यह बतलाया कि इंग्लैंड में स्वतन्त्रता और समानता तथा ऐसी संस्थाएँ थीं जो स्वाधीनता के प्रहरी का कार्य करती थीं। मॉंटेस्क्यू (Montesquieu) की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'L' Esprit des lois' है। इस पुस्तक में उसने शासन के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है और यह बताया है कि कानूनों और संविधानों का किस प्रकार विकास हुआ है।

मॉंटेस्क्यू (१६८५-१७५५)

मॉंटेस्क्यू की प्रतिष्ठा धूमिल हो गई है। लेकिन, यद्यपि वह न तो प्रथम दार्शनिक ही था और न प्रथम राजनीतिक विचारक ही, फिर भी यह कहा जा सकता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसने ऐतिहासिक विकास के वैज्ञानिक अनुशीलन की नींव डाली। माँटेस्क्यू ने ऐतिहासिक तथ्यों को एकत्रित किया और उनमें सन्तुलन स्थापित किया तथा उनसे सामान्य निष्कर्ष निकाले। उसने इतिहास की एक अविच्छिन्न और खुलते हुए विचार के रूप में व्याख्या की। वह कानूनों और सरकारों को अन्तर्भूत प्राकृतिक शक्तियों की उत्पत्ति समझता था। वह इतिहास दर्शन के व्याख्याता के रूप में हीगेल (Hegel) का पूर्वगामी था। उसने यह सब ऐसी प्रतिभा तथा कुशलता से किया था कि न्याय शास्त्र (Jurisprudence) साहित्य की श्रेणी में आ गया।

वाल्टेयर (१६९४-१७७८)

शैली और प्रकृति की दृष्टि से वाल्टेयर (Voltaire) माँटेस्क्यू (Montesquieu) से बिलकुल भिन्न था। वह माँटेस्क्यू का कनिष्ठ समसामयिक था लेकिन उससे ज्यादा यशस्वी था। उसका पूरा नाम फ्रांसिस-मेरिये-एरुएट (Francois Marie Arouet) था। वह अठारहवीं शताब्दी के बीच में यूरोप का सबसे अधिक सम्मानित व्यक्ति था। "उसके जीवन में प्रत्येक परिस्थिति कोलाहल की कलह से परिपूर्ण थी।" उसका स्वास्थ्य क्षीण था और स्वभाव क्रोधी था। उसने बचपन में ही अपने धर्म-गुरु से, जो एक सनकी पादरी था, वास्तविकता की भाषा ग्रहण की थी। उसका पुस्तकालय निनोन डी एनलेस (Ninon de l' Enles) की एक वसीयत से बना था। वाल्टेयर का पिता, जो एक प्रान्तीय विपत्र-प्रमाणक (Provincial notary) था, अपने पुत्र के साहित्यिक जीवन को पसन्द नहीं करता था। लेकिन वाल्टेयर ने अपने पिता के सतत विरोध के बावजूद अपने साहित्यिक जीवन को जारी रक्खा। पेरिस की अभिजात साहित्य मण्डली में उसका प्रवेश हो गया था, लेकिन उसके एक व्यंग ने उसे बेस्टील (Bastille) के कारावास की हवा खिलाई। उसे अपनी एक स्पष्टोक्ति के कारण एक कुलीन के भृत्य से पिटना पड़ा था। वह फ्रेडेरिक महान् (Frederick the Great) से पेंशन पाता था और उसका सम्मानित अतिथि था। लेकिन उसे प्रशा के दरबार को क्रोधावेष्टित हृदय से छोड़ना पड़ा। चलते समय उसने अपने संरक्षक की कुछ कविताएँ जेब में रख लीं। इस चोरी के कारण उसे फ्रेडेरिक के आदेश से पकड़ लिया गया और फ्रेंकफर्ट (Frankfort) की हवालात में बन्द कर दिया गया। जीवन के उत्तरार्द्ध में वाल्टेयर जिनेवा झील के किनारे बड़े यश-वैभव के साथ रहने लगा। उसके साथ उसकी भतीजी रहती थी। वाल्टेयर ने अपना अधिकांश धन सफल सट्टेबाजी से पैदा किया था। उसने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में यूरोप को अपनी लेखनी के व्यंगों, आलोचनाओं और चुनौतियों से आतिङ्कित रक्खा। अन्त में वह स्वदेश वापस लौटा जहाँ से वह इतने लम्बे समय से निर्वासित रहा था। लेकिन अपने चरमोत्कर्ष के समय ही वाल्टेयर (Voltaire) की मृत्यु हो गई। वाल्टेयर ने मृत्यु-शय्या पर ईश्वर से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। परन्तु इस आधार पर जिस पादरी ने उसे कब्रगाह में दफनाया उसे इस कृत्य के कारण अपनी नौकरी से वंचित कर दिया गया। बारह वर्ष पश्चात क्रांतिकारियों ने रूसो की अस्थियों के साथ-ही-साथ उसकी अस्थियाँ भी राष्ट्रीय कब्रगाह (Pan-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation and eGangotri

theon) स्थानांतरित कीं और इस प्रकार अपने महान् सहयोगी के प्रति सम्मान प्रकट किया।

वाल्टेयर एक महान् लेखक, कवि, दार्शनिक, नाटककार, पत्रकार, आलोचक और सबसे बढ़कर व्यंगकार (Satirist) था। उसे व्यापक परोपकार वृत्ति, मार्मिक मेधा और चर्च के प्रति कठोर विरोध-भाव से प्रेरणा मिली थी। उसके सम्पूर्ण साहित्य में रोमन कैथोलिक चर्च के प्रति विरोध-भाव नीर-क्षीर की भाँति व्याप्त है। वह धार्मिक निरंकुशता (Ecclesiastical despotism) के विनाश को न्याय तथा ज्ञान का आदि और शायद अन्त समझता था। यद्यपि वाल्टेयर ने ईसाइयत का काफी तिरस्कार किया था और चर्च के बन्धनों पर भी प्रहार किया था, फिर भी वह नास्तिक नहीं था, उसने फेरी (Ferry) में जो ग्राम चर्च बनवाया था, उसके शिलालेख में Deo Erexit Voltaire लिखा था। वाल्टेयर (Voltaire) का विचार था कि, "यदि ईश्वर नहीं है तो उसको बनाना आवश्यक होगा।"

वाल्टेयर (Voltaire) को जनतन्त्रवादी भी नहीं कहा जा सकता। चर्च राज-सिंहासन के ऊपर ही टिका हुआ था। चर्च पर प्रहार करने का अभिप्राय सिंहासन को दुर्बल करना था। लेकिन वाल्टेयर ने जान-बूझ कर राजतन्त्र को अपना लक्ष्य कभी नहीं बनाया। वह जन-शासन के खतरों से पूर्णतः परिचित था। १७६४ में डक डी चोईसुएल (Duc de Choiseul) ने नए दार्शनिकों से कहा था, 'आप वहाँ क्यों नहीं रुक जाते जहाँ वाल्टेयर रुक गया था। हमें उसका अनुसरण करना चाहिए। अपने समस्त व्यंग के बावजूद वह सत्ता का आदर करता था।"

जीन जेकस रूसो (Jean Jacques Rousseau) को अपने प्रारम्भिक जीवन में वाल्टेयर से प्रेरणा मिली थी। वाल्टेयर जिस सत्ता का आदर करता था, उसे रूसो ने नष्ट कर दिया। बाद में रूसो और वाल्टेयर के बीच शत्रुता पैदा हो गई। उन बहुत से व्यक्तियों के बीच, जिनके बारे में भावी पीढ़ी समझती है कि उन्होंने एक ही उद्देश्य के लिए कार्य किया है, ऐसी शत्रुता अक्सर पैदा हो जाती है। लेकिन यह शत्रुता उनके विभिन्न उद्देश्यों और स्वभावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति थी। रूसो ने वहीं से प्रारम्भ किया जहाँ से वाल्टेयर ने छोड़ दिया था। वाल्टेयर ने बुद्धि पर ज़्यादा बल दिया था, रूसो ने भावना पर।

रूसो
(१७१२-७८)

रूसो ने अपने ग्रंथ 'Confessions' में अपनी जीवन-गाथा स्वयं लिखी है। शायद यह पुस्तक किसी धर्मात्मा को पसन्द न आए लेकिन पाठक के लिए यह पुस्तक रोचक सिद्ध होगी। वह जिनेवा के एक बदनाम घड़ीसाज का पुत्र था। उसकी शिक्षा ऐसी थी जो यायावर जीवन, व्यवसाय-वैविध्य और अक्षर, विविध लेकिन सतत, परिवर्तनशील निजी अध्ययन से प्राप्त होती है। उसने देश-देश का भ्रमण किया, एक मित्र के लिए दूसरा मित्र तथा एक [illegible] के लिए दूसरा शौक छोड़ा। उसने सेवक, शिक्षक और सचिव का कार्य किया। उसने गोटा (lace) बनाया, संगीत का अध्ययन किया, नये [illegible]कोश (Encyclopaedia) के लिए लेख लिखे, काउंटेस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(countess) और रसोई बनाने वाली सेविका से प्रेम किया। उसने एक नाट्यशाला का निर्माण किया और प्रायः आधा दर्जन साहित्यिक कृतियों की रचना की। इनमें से एक 'Nouvelle Heloise' अपने समय का सबसे ज्यादा बिकने वाला उपन्यास था। उसकी एक अन्य कृति 'Emile' शिक्षा सिद्धान्तों का निरूपण करती है। यह अब भी शिक्षा शास्त्र (Pedagogy) की एक पाठ्य-पुस्तक है। तथापि रूसो के अपने बच्चे एक अनाथालय में रख दिए गये थे। उसकी तीसरी कृति 'Contrat Social' मुख्यतः ननेहम कोर्टनी (इंग्लैंड) के जंगलों में लिखी गई थी। इस पुस्तक ने एक क्रांति को जन्म दिया था।

रूसो (Rousseau) को अपना जीवन के अन्तिम दिनों में दैवी कोप का सन्देह और भय बना रहा था। अकेली यही चीज उसे पागल सिद्ध कर सकती है। उसके जीवन से न केवल कायरता और विश्वासघात की ही प्रत्युत उत्तरदायित्व-हीनता, तुनुकमिजाजी और अनियन्त्रित वासना की झलक मिलती है जो मानसिक असंतुलन का परिचय देती है। डी एलमबर्ट (d' Alembert) ने लिखा था, "जीन जेकस एक जंगली जानवर है और उसका सम्मान पिंजड़े के सीखचों के माध्यम से होना चाहिए।" इसके विपरीत रूसो ने काल्पनिक प्रतिभा, भावुकता, ओज और दलितों के प्रति सहानुभूति का परिचय दिया। कुछ लोगों के ऊपर तो उसने मोहिनी ही डाल रक्खी थी।

रूसो की राजनीतिक कृतियों का, विशेषकर 'Contrat Social' और Discours Sur l' inegalite का न केवल फ्रांस में प्रत्युत सारे यूरोप में बहुत प्रभाव हुआ। उसका आधारभूत सिद्धान्त यह था कि प्राकृतिक मनुष्य (Natural Man) स्वभाव से ही अच्छा होता है। सभ्यता और संस्थाओं ने उसका पतन कर दिया है और उसे स्वतन्त्रता तथा प्रसन्नता के प्राकृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया है। "मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है लेकिन वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ रहता है।" तब फिर मनुष्यों को अपनी आदिकालीन सरलता और प्रसन्नता की ओर लौट जाना चाहिए तथा उन संस्थाओं को नष्ट कर देना चाहिए जिन्होंने उसे दास बनाया है। कानूनों को सामान्य इच्छा (general will), समाज की गहरी प्रेरणामयी चेतना की अभिव्यक्ति होना चाहिए। राजा उस मूल संविदा की उत्पत्ति थे जिसे लोगों ने अपने कल्याण के लिए किया था और उनका स्वत्व इसी बात पर निर्भर है कि वे अपने प्रजाजनों के अधिकारों का कहाँ तक संरक्षण करते हैं। फ्रांस की जनता अपने अधिकारों से वंचित हो चुकी थी, समझौता टूट चुका था और राजा को इस बात का कोई अधिकार नहीं रह गया था कि वह राष्ट्र की निष्ठा पाता रहे। रूसो का अधिकांश सिद्धान्त ऐसा था जो स्विस कैन्टन जैसे छोटे-छोटे समाजों के ऊपर ही लागू हो सकता था। लेकिन उसने फ्रांस के राजतन्त्र को नष्ट कर दिया। उसकी रचनाओं, आचरण और अलंकारपूर्ण वाणी का मूल मन्त्र था विद्रोह "युग की विषाक्त और कृत्रिम सामाजिक पद्धति के विरुद्ध प्रकृति के नाम में विद्रोह।"

सामाजिक संविदा (१७६२)

प्रमाणहीन धारणाएँ और भावात्मक साधारणीकरण आजकल के पाठकों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में जो क्रान्ति के बाद रहते हैं और उन बहुतों से तर्क-वितर्कों को भूल चुके हैं जिनमें युग की बुराइयों के विरुद्ध जिहाद की ज्वलन्त भावना भरी हुई थी, बहुत कम विश्वास पैदा कर सकेंगे। हो सकता है कि सामाजिक संविदा का सिद्धान्त (The Theory of the Social Contract) इतिहास-समर्थित नहीं है, लेकिन वह यह कहने का कि जो शासन करते हैं, अपने उत्तरदायित्वों को समझें, एक दूसरा ढंग था। फ्रांस के लोग इसलिए मुसीबत उठा रहे थे क्योंकि राजा के स्वार्थ राज्य के स्वार्थों से विच्छिन्न थे क्योंकि अब न कुलीन लड़ते थे, न पादरी प्रार्थना करते थे, क्योंकि सामाजिक संविदा टूट चुका था। लेकिन, रूसो की शान्ति का रहस्य राजनैतिक तर्क से ऊपर की वह अपील थी जो त्रुटिपूर्ण थी और वे सामाजिक तथा शिक्षा संबंधी सिद्धान्त थे जो परस्पर विरोधी थे। उसका आधार आत्म-औचित्य (self-justification) और संतोष का व्यक्तिगत दर्शन था। उसकी मनोवैज्ञानिक भित्ति उसकी अपनी कहानी और मानवीय परिवर्तनशीलता थी। रूसो का विश्वास था कि मनुष्य का मस्तिष्क समाज के दबाव से विभक्त और पीड़ित हो रहा है तथा उसे अधिक एकतापूर्ण समाज में ही व्यवस्थित किया जा सकता है। सामाजिक पुनर्निर्माण की काल्पनिक योजनाओं में वह समाज के ऊपर दायित्व डाल सकता था तथा आदर्श संसार में शान्ति प्राप्त कर सकता था।

रूसो की सामाजिक संविदा एक ऐसी पाठ्य पुस्तक थी जिसे सभी आदमी अपना सकते थे। इसकी रचना-शैली इतनी सशक्त और कल्पनापूर्ण थी तथा इसके तर्क इतने अकाट्य थे कि पीड़ित और निराश व्यक्ति इसके ओज में आग, विरोध में प्रोत्साहन, वचन में आशा और शब्दावली में हथियारों के दर्शन करते थे। इस ग्रंथ का मूल आधार 'प्रकृति' थी जो हृदय-तंत्री के तारों को झंकृत कर देती थी। वह 'मूल अच्छाई' (original goodness) का प्रचार करता था। यह मूल पाप के प्रश्न का एक संतोषजनक, सरल मुक्तिदायी उत्तर था। यह ईव (Ive) के समस्त निर्वासित बच्चों की इस संसार में अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए प्रखर आवाज थी।

इस प्रकार रूसो 'अशांत आत्माओं का अमर अपवाहक' जिस किसी को यह शक हो कि उसे गलत समझा जा रहा है और अधिकार वंचित किया जा रहा है, उसका प्रवक्ता, आत्माभिव्यक्ति के नए स्वच्छंदतावाद का दार्शनिक, सत्य के अन्तिम प्रमाप के रूप में मानव संतोष का मसीहा[1], लौकिक मुक्ति का उग्र देवदत, धर्मनिरपेक्ष समाज के आगामी युग का वैतालिक बन गया।

---

१. "ईसाई संवत् में अपने से पूर्ववर्त्ती दर्शनों की भाँति रूसो का दर्शन समर्थन या अनुमोदन नहीं करता। वह विवेक के नाम पर उसके विरुद्ध जिहाद भी नहीं करता, यह एक व्यक्तिगत दर्शन है जो विवेक का स्थानापन्न है। यह अपने ढंग का पहला दर्शन है। इसका उद्देश्य प्रोत्साहन और सुविधा देना अधिक है, जानकारी देना कम। यह विवेक का प्रयोग दूसरी स्थितियों पर हमला करने के लिए अधिक करता है, अपनी स्थिति बनाने के लिए कम।" इस उद्धरण के लिए तथा इस प्रकार के अन्य उद्धरणों के लिए १६ मार्च, १९५६ के Times Literary Supplement का 'The Citizen Hermit' देखिए। यह अत्यन्त उत्कृष्ट और विचारपूर्ण लेख है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मॉंटेस्क्यू, वाल्टेयर और रूसो अपने युग के देव थे। अन्य लेखक उनसे छोटे दर्जे के थे। दिदरो (Diderot), डी० एलमबर्ट (d'Alembert), और प्रभावशाली विश्वकोश (Encyclopaedia) के लेखकों तथा सम्पादकों का वर्ग भी अपने समय में काफी असर रखता था।[1] विश्वकोश १७५०-६० में छपा था। उसके अधिकांश लेखक धर्म में सन्देहवादी और राजनीति में विद्रोही थे। इन लेखकों में कुछ फिजियोक्रेट (physiocrats) थे। इनमें क्वेज़ने (Quesnay) मुख्य था। टर्गट (Turgot) भी एक प्रभावशाली सदस्य था। उसने फ्रांस की आर्थिक दशा की आलोचना की और श्रम तथा विनिमय-वाणिज्य (barter) की स्वतन्त्रता का तथा भूमि के अधिक लाभप्रद उपयोग का समर्थन किया। इनमें कुछ ब्यूमारकायस (Beaumarchais) थे जो सामाजिक व्यंग (social satire) में विशेष रुचि रखते थे। अन्य लेखकों के नाम शायद इतिहास के विद्यार्थी को ही ज्ञात हों। उनमें से कुछ ये हैं : हेल्वेटियस (Helvetius), डी० हालबाश (d' Holbach), एबे डी रेनल (Abbe de Raynal) जिसने 'Philosophical History of the Two Indies' नामक पुस्तक लिखी थी, और समाजवादी प्रचारक एबे डी० मेब्ली (Abb. di Mably) जिससे प्रत्येक श्रेष्ठ क्रान्तिकारी परिचित था।

अन्य लेखक

लेखकों तथा प्रचारकों द्वारा प्रतिपादित विचार समाज के सभी वर्गों में व्याप्त हो गए थे। पेरिस का तरुण वर्ग इंग्लैंड के कुशल घुड़सवारों की भाँति मस्ती से अपने घोड़ों पर सवारी करता था। समाज ताश खेलता था और क्लेरिसा हारलोव (Clarissa Harlowe) के ऊपर रोता था जो वास्तव में नोवील हेलोदस (Nouvelle Heloise) का एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी था। पहले डेविड ह्यूम (David Hume) और फिर जब अमेरिका के उठते हुए सूर्य के आगे इंग्लैंड हतप्रभ हो गया, बैंजमिन फ्रेंकलिन (Benjamin Franklin) पेरिस में सबसे ज्यादा लोकप्रिय मनुष्य था। सादा जीवन युगधर्म बन गया। सत्रहवीं शताब्दी के कृत्रिम उद्यानों के स्थान पर 'प्राकृतिक' सरिताओं और जलाशयों की स्थापना की गई। मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette) ने वर्साय (Versailles) के विस्तृत शिष्टाचारों से ऊबकर पेटिट ट्रायनान (Petit Trianon) ग्वालिन का अभिनय किया। उसने अपनी बच्ची के परिचारकों की संख्या घटा कर अस्सी कर दी जिससे कि उसके अन्दर राजकीय स्थिति के अनुपयुक्त विचार न पनपने पायें। वस्त्र, भूषा और कला के अन्दर प्रतीकात्मक अन्तर हो गया था। कुलीनों और साधारण लोगों में कोई विशेष भेद नहीं रहा था। महिलाओं ने रानी की वस्त्र

क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार

---

1. Encyclopedie on dictionnaire universel des arts et des sciences अपने ढंग की अद्वितीय चीज थी। इसका अधिकांश सम्पादन दिदरो ने किया था। इसमें अपने समय के योग्यतम व्यक्तियों की रचनाएँ संकलित थीं। Encyclopaedia Britannica का पहला संस्करण एडिनवर्ग में १७६८-७१ के बीच में प्रकाशित हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचारिका श्रीमती बर्थिन (Mime Berthin) की देखा-देखी लुई क्विज़ (Louis Quinze) के भारी-भरकम गाउन छोड़ दिये थे और उनके स्थान पर यूनानी शैली अपना ली थी। वेट्यू (Watteau) की पशुचारण भंगिमा (pastoral pose) ने डेविड (David) की परम्परागत भंगिमा (classical pose) के आगे घुटने टेक दिये थे।[1] धार्मिक क्षेत्र में ईसाइयत के स्थान पर वास्तिकवाद और रहस्यवाद के परिवर्तनशील फैशन जम गये थे। कुछ लोग विश्वकोश के लेखकों और उनके विचारों की आलोचना करते थे लेकिन यह आलोचना सैलूनों[2] (saloons) की प्रतिद्वंद्विता में एक प्रसंगमात्र होती थी और बहुत कुछ उसी भाँति की थी जैसे ग्लक (Gluck) और पिसिनी (Piccini) के समर्थकों में संगीतशास्त्र के प्रश्न को लेकर विवाद होता रहता है।

राजा, रूसो (Rousseau) की रचनाएँ पढ़ता था और उसका विचार था कि मनुष्य श्रेष्ठ है। ब्यूमारकायस (Beaumarchais) का नाटक 'Mariage de Figaro' काफी समय तक बंद रहने के बाद १७८४ में अस्सी दिन तक चलता रहा था। इस नाटक में प्राचीन शासन-व्यवस्था की बड़ी खिल्ली उड़ाई गई थी। लेकिन कुलीन ही इसमें सबसे ज्यादा रस लेते थे। इस नाटक के नायक फिगारो (Figaro) ने एक स्थल पर कहा है, "कुलीन ने पैदा होने के कष्ट सहन के अतिरिक्त अपने विशेषाधिकारों का और किया ही क्या है?" कुलीन उसे अच्छी-खासी दिल्लगी समझते थे। जब राजा ने कहा कि इस तरह के मजाक भयावह हैं, तो कुलीनों ने नाटक की शब्दावली में ही जवाब देते हुए कहा, "छोटे दिमाग ही छोटी रचनाओं से डरते हैं।"

इस तरह, पीड़ितों की गाथा पीड़कों के लिए आमोद की वस्तु बन गई थी। उदार समाज को लोकतन्त्र के सूत्र दुहराने की शिक्षा दी गई थी। उनके बहुत से अनुयायी उनका अर्थ ही नहीं समझते थे और उनके व्यावहारिक प्रयोग ने जहाँ सम्पत्ति या स्थिति के लिए खतरा पैदा किया, वहीं उन्हें त्याग दिया गया। कुछ लोगों का इन सूत्रों में दृढ़ विश्वास था। इसके परिणामस्वरूप या तो वे लोग क्रान्तिकारियों में मिल गये या वे ऐसी भयावह स्थिति में पहुँच गये जहाँ स्वार्थ विश्वास के साथ लड़ाई करता है और इसके फलस्वरूप मनुष्य की दशा धोबी के उस कुत्ते की-सी हो जाती है जो न घर का रहता है और न घाट का।

प्रायश्चित्तपूर्ण निरंकुशता
(Repentant Despotism)

लुई पन्द्रहवाँ

आलसी, विलासी, उच्छृंखल और अनुत्तरदायी लुई पन्द्रहवें (Louis XV) ने उन घुमड़ते हुए बादलों से अपनी आँखें फेर ली थीं जिनके अस्तित्व का उसे अच्छी तरह भान था। तूफान ने उसको तो अक्षत छोड़ दिया, लेकिन वह उसके अबोध उत्तराधिकारी के ऊपर टूटा। राज्यारोहण के समय लुई सोलहवें की आयु बीस वर्ष

---

१. डेविड के कुछ चित्रों के शीर्षक (१७४८-१८२५) निम्नलिखित हैं: Date obolum Belisario (१७८०), The Grief of Andromache (१७८२), The Oath of the Horatit (१७८५), The Death of Socrates (१७८८), The Love of Paris and Helen (१७८८), Brutus (१७८९)।

२. पेरिस की संभ्रान्त महिलाओं के स्वागत कक्ष।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी। उसने कहा था, "मालूम पड़ता है कि सारा संसार मेरे ऊपर गिर रहा है। हे ईश्वर! मेरा भार कितना अधिक है और उन्होंने मुझे कुछ भी नहीं सिखाया।" वह गम्भीर, उत्तरदायी, बुद्धिमान्, सदाशय, स्नेहपूर्ण, गुणी और दयालु था। लेकिन समय को देखते हुए उसमें अन्य गुणों की अपेक्षा थी। नेपोलियन् का कहना था, "जब लोग किसी राजा को दयालु बताते हैं तो इसका अर्थ यह हैं कि उसका शासन् असफल रहा है।" लुई दुर्बल-हृदय व्यक्ति था। उसके साले जोजेफ द्वितीय (Joseph II) ने लिखा था, "वह कुछ समझता नहीं। अभी उसमें परिपक्वता नहीं आयी है।" वह कोई कार्य आन्तरिक शक्ति से प्रेरित होकर नहीं, प्रत्युत बाहरी दबाव से, अपनी पत्नी के आँसुओं से, अपने मन्त्रियों और दरबारियों की माँगों से विवश होकर करता था। लोगों को ज्ञात था कि उसे विवश किया जा सकता है और यह क्रान्ति का एक प्रधान कारण था। लुई की चाची राजकुमारी एडेलेड (Princess Ade' laide) ने कहा था, "अपने भाई आर्टोइस (Artois) की तरह चीखो-चिल्लाओ और शोर मचाओ·····संसार में कुछ कोलाहल करो।" लुई का कोई महत्त्व नहीं था क्योंकि वह संसार में शोर नहीं मचा सकता था। वह इच्छा-शक्ति का प्रदर्शन तक नहीं कर सकता था जिसे कि वास्तविक इच्छा-शक्ति समझ लिया जाता। मेरी आँटोइनेट (Marie Antoinette) उसे अपना 'गरीब आदमी' कहती थी और रात को घड़ी टाँग देती थी जिससे कि लुई जल्दी ही सो जाये और वह अपनी ताश खेलने की मेज शीघ्र ही निकाल सके।

मूलतः लुई शासन-कला में कोई रुचि नहीं लेता था और उसमें राज्य करने की प्रखर प्रतिभा भी नहीं थी। जब मेलेशर्ब्स (Melesherbes) ने त्याग-पत्र दिया था, लुई ने उससे कहा था, "तुम कितने भाग्यशाली हो। मेरी इच्छा है कि मैं भी त्याग-पत्र दे पाता।" उसके जीवन का सबसे सुखी समय वह था जब कि वह कैदी रहा था। हाँ, यह अवश्य है कि इस काल में वह शिकार खेलने से वंचित रहा था। उसकी डायरी एक शिकारी की डायरी थी। उसने बूरबन शासकों की जिस विशेषता को प्राप्त किया था वह थी खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ की प्रवृत्ति। उसकी हाबी एक व्यक्तिगत निजी भट्टी (forge) थी जिसे वह अपनी स्त्री से छिपाकर वर्साय (Versailles) के एक ऊँचे कमरे में रखता था। उसे भूगोल और ज्योतिष के अध्ययन में विशेष तृप्ति मिलती थी। लेकिन उसे अपनी जनता का ध्यान था। उसने राजा के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में फेनेलोन (Fenelon) को पढ़ा था। प्रान्तीय सभाओं

---

* मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette) के सम्बन्ध में होरेस वाल्पोल (Horace Walpole) और एडमन्ड बर्क (Edmund Burke) के निम्नलिखित उद्धरण उल्लेख्य हैं--

"जब वह खड़ी होती है या बैठती है, सौन्दर्य की प्रतिमा होती है; जब वह चलती है, तब गरिमा का साक्षात् अवतार होती है, लेकिन यदि ऐसा है तो वह स्वयं समय की ही गलती है।" (होरस वाल्पोल)

"मैंने फ्रांस की रानी को आज से सोलह वर्ष पूर्व वर्साय में देखा था। उस समय वह युवराज्ञी थी। रानी पृथ्वी की प्राणी ही नहीं मालूम पड़ती थी। वह तो एक मनोहर स्वप्नवत् थी। मैंने उसे क्षितिज के तनिक ऊपर देखा था; वह उस उन्नत क्षेत्र को, जिस पर उसने अभी चलना ही प्रारम्भ किया था, अलंकृत और हर्षोत्फुल्ल कर रही थी। वह जीवन, गौरव और आल्हाद से परिपूर्ण सुबह के सितारे की भाँति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Provincial Assemblies) के सम्बन्ध में उसने नेकर की योजना पर जो विचार प्रकट किये थे, उनसे ज्ञात होता था कि वह राजनीतिक दृष्टि से वंचित नहीं है।

१७७४ में मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette) की आयु १९ वर्ष की थी। उसका व्यक्तित्व दृढ़ और शक्तिशाली था तथा वह अपने पति के ऊपर काफी प्रभाव रखती थी। मिराबो (Mirabeau) ने लिखा था, "राजा के इर्द-गिर्द केवल एक ही पुरुष है। वह है उसकी स्त्री।" यद्यपि रानी गौरवपूर्ण, राजोचित* और कुछ कष्टों के प्रति सदय थी, उसका राजनैतिक अनुभव बिलकुल नहीं था, उसका राजनीतिक ज्ञान बहुत कम था और उसका जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण बहुत सीमित था। चूंकि उसके हाथों में असली शक्ति आ गई थी, अतः ये दुर्बलताएँ और भी भयंकर थीं। राजनीति में वह महान् मेरिया (Maria) की अयोग्य पुत्री थी। यदि वह राजनीति से पृथक् रहकर व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करती, तो बहुत सफल रहती। उसने ऐलिजाबेथ ट्यूडर (Elizabeth Tudor) के समान यह नहीं समझा कि उसकी वैयक्तिक रुचि-अरुचि चाहे वह अच्छी ही हो, राजकीय न बननी चाहिए। उसके गुणों ने ही उसे हानि पहुँचाई। जिन मित्रों पर उसे विश्वास था, उन्होंने ही उसे धोखा दिया। उसकी सहानुभूति ने उसे दरबारी षड्यन्त्र और महत्त्वाकांक्षी दलों के हाथों में अबोध खिलौना बना दिया। उसकी आमोदप्रियता और शिष्टाचार सम्बन्धी अरुचि ने कलंक (scandal) के लिए बहाना दे दिया। उसकी फिजूलखर्ची आलोचना का कारण बन गई यद्यपि वह काफी हद तक गलत थी।[1] उसके आत्मत्याग के कृत्य उसकी लापरवाही और भूलों के कारण धूमिल पड़ गये। लोग यह भूल गए कि उसने अपना व्यक्तिगत भत्ता गरीबों की सहायता के लिए दे दिया था। लेकिन लोगों ने यह याद रखा कि उसने अपने अन्तःपुर में युवती विधवा राजकुमारी डी लाम्बेल (Princesse de Lamballe) के लिए एक महत्त्वपूर्ण पद का पुनरुत्थान किया था। उसके उपदेशक भाई जोजेफ (Joseph) ने, जो अपने रिश्तेदारों की बड़ी आसानी से आलोचना किया करता था, उसकी कार्य-पद्धति को गलत बताते हुए उससे कहा था, "तुम राज्य-कार्य में क्यों हस्तक्षेप करती हो? तुम्हें क्या पड़ी है

मेरी एंटोइनेट

शोभायमान थी। आह क्रान्ति क्या है! मैंने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि रानी को, जो इतनी स्नेहपूर्ण, सम्मानपूर्ण और उत्साहपूर्ण थी, इतना अपमानित होना पड़ेगा। मैंने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उसके ऊपर महानाश का ऐसा वज्रपात होगा और वह भी शूर-वीरों तथा सम्मानपूर्ण व्यक्तियों के राष्ट्र में। मैंने तो सोचा था कि यदि किसी व्यक्ति ने जरा भी टेढ़ी आँख से उसकी ओर देखा तो उसके अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए दस हजार तलवारें तुरन्त म्यान से निकल पड़ेंगी। लेकिन वीरता का युग बीत चुका है। अब तो तार्किकों, अर्थशास्त्रियों और गणितज्ञों का युग है तथा यूरोप का गौरव सदैव के लिए समाप्त हो चुका है।"—(एडमंड बर्क—१७९० में लिखित)

१. उसकी फिजूलखर्ची की गाथाएँ बहुत व्यापक थीं। जब सर्वसाधारण के प्रतिनिधि १७८९ में वर्साय पहुँचे, उन्होंने ट्रायनोन में उस कमरे के दिखाये जाने की माँग की जो उनके विचार से निरे हीरे-जवाहरातों से भरा हुआ था।—(मैडम डी कैम्पन)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि किसी मंत्री को तो अपदस्थ करो, किसी को उसकी जमींदारी में भेजो, किसी के लिए यह करो, किसी के लिए वह करो। किसी को उसके काम में सहायता दो और कहीं दरबार में किसी व्ययसाध्य पद का सृजन करो। क्या तुमने कभी अपने आप से यह प्रश्न किया है कि तुम किस अधिकार से फ्रांस के शासन में हस्तक्षेप करती हो?" वह अन्त समय तक अबोध ही बनी रही। उसने अपने देश-काल को बिलकुल नहीं समझा। जब उसके ऊपर दुर्भाग्य आ पड़ा, उसकी असहायता ने उसे छल-छद्म का आश्रय लेने को बाध्य किया। उसने कपट तथा गोपनीय नीति से कार्य किया जिसे फ्रांस ने देश-द्रोह बताया। घृणा, द्वेष और प्रपंच रानी के नाम के साथ जुड़ गये। जो कोई भी बदनाम कार्य होता उसके लिए उसी को दोषी ठहराया जाता था।[1] उसका किसी वर्ग ने समर्थन नहीं किया और वह अपनी रक्षा के लिए अधिकाधिक अपने परिवार की ओर आकृष्ट होती गई।

कभी-कभी क्रान्तियों में भी व्यंग की भावना रहती है। राजा और रानी बीस वर्ष पश्चात् ही अपने लोगों के हाथों मृत्यु-मुख में चले गये, लेकिन उन्होंने अपना राज्य-काल बहुत अच्छे इरादों के साथ प्रारम्भ किया था। उन्होंने जनता के कष्टों को बड़े ध्यान से सुना और उन्हें दूर करने की यथासम्भव चेष्टा की। जिन उपलब्धियों पर उनका अधिकार था, उन्होंने उन्हें इस प्रकार छोड़ दिया जिससे कि करदाता का भार न बढ़ने पाए। चूंकि लोगों की ऐसी इच्छा थी अतः लुई (Louis) ने पेरिस की पार्लमेंट (Parlement of Paris) को और इस प्रकार अपने एक पुराने शत्रु को फिर से बुला लिया। नये मन्त्रियों में टर्गट (Turgot) और मलेशेरब्स (Malesherbes) ऐसे थे जिन्हें शायद क्रान्तिकारी स्वयं मनोनीत करते। मैडेम ड्यू डिफेंड (Mme du Deffand) ने लिखा था—"हम दार्शनिकों द्वारा शासित होते हैं।"[2] सचाई यह है कि अपने शासन के पहले सात वर्षों में लुई ने अपने मन्त्रियों द्वारा सुधार की नीति को चालू रखने और जनता की कठिनाइयों को दूर करने की अविच्छिन्न तथा साहसपूर्ण चेष्टा की।

सुधार के पहले सात वर्ष

सली (Sully) और कोल्बर्ट (Colbert) के काल में फ्रांस के पास आन्तरिक सुधारों के इतने व्यापक कार्यक्रम वाला कोई राज-नेता नहीं था जो टर्गट की तुलना में टिक सके। टर्गट (Turgot) ने बीस महीनों के अपने संक्षिप्त मन्त्रिकाल में सजग अर्थ-व्यवस्था और सुचारु प्रशासन द्वारा राज्य की वित्तीय अवस्था में सुधार कर दिया। उसने बिना

टर्गट (१७७४-७६)

---

१. (राजकीय पलायन के बाद) २२ जून १७९१ के L'Orateure du Peuple में कहा गया था, यह अभिशप्त रानी जो मेसालिना की उच्छृंखलता के साथ मेडिकी की रक्त पिपासा को समन्वित करती है, फ्रांस की ज्वाला, तिरस्कृत नारी, तुम्हीं इस कांड की आत्मा थीं।'

२. मैडेम ड्यू डिफेंड दार्शनिकों को पसन्द नहीं करती थी। अधिकांश दार्शनिक उसकी प्रतिद्वंद्वी श्रीमती डी० एस्पिनासी (Mlle de l'Espinasse) की बैठक को आबाद करते थे। उसने उनके बारे में लिखा है, "उनमें बुद्धि काफी होती है, प्रतिभा कम होती है और रुचि बिलकुल नहीं होती।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋण लिये या बिना कर लगाये ही आय और व्यय में सन्तुलन स्थापित कर दिया। उसने देश के अन्दर अन्न के निःशुल्क परिचालन की उद्घोषणा की और राजकीय विशेषाधिकार (royal privilege) का प्रयोग कर पेरिस की पार्लमेंट से छः राज्यादेश (edicts) पास करवा लिये। इनमें से एक आदेश ने किसानों को कोर्वी (corvee) नामक राजकर से छुटकारा दे दिया और उसकी जगह एक सम्पत्ति-कर लगाया। एक अन्य राज्यादेश ने एकाधिकारी वाणिज्य संघों (monopolistic trade guilds) और शहरों की वार्डेनशिप का अन्त कर कारीगरों को राहत दी।[1] गृह-मन्त्री मालेशेरब्स (Malesherbes) ने टर्गट की उसके समस्त सुधारों में सहायता की। मालेशेरब्स विनम्र और सहृदय व्यक्ति था। उसने मुख्य रूप से केवल दो ही छोटे सुधार किये। एक तो उसने लेटर्स डी० कैचेट (Lettres de cachet) की संख्या घटा दी। दूसरे, उसने कठोर दंड कम किये। युद्ध-मन्त्रालय का भार काम्टे डी सेंट जर्मेन (Comte de Saint Germain) पर था। यह व्यक्ति एक पुराना सिपाही था और दुराग्रही (intractable) विचारों का था। उसने फ्रेंच सेना के व्यय में कमी की, बहुत से व्यर्थ के पदों को समाप्त किया, अन्तःपुर-सैनिकों की संख्या कम की और अनुशासन को दृढ़ किया।

टर्गट के पश्चात् उसका स्थान एक अन्य सुधारक नेकर (Necker) ने ग्रहण किया। नेकर एक स्विस प्रोटेस्टैंट था। वह राजनेता होने की अपेक्षा एक सुप्रतिष्ठित व्यावहारिक बैंकर ही अधिक था। उसने शासन में टर्गट की अपेक्षा अधिक मितव्ययिता लाने की चेष्टा की। वह विवरण की ओर इतना अधिक ध्यान देता था कि उसने राज-परिवार के फ़र्श (linen) का प्रति तीसरे वर्ष के स्थान पर प्रति सातवें वर्ष पुनर्नवन प्रारम्भ कर दिया। वह स्वयं अपने पद की उपलब्धियाँ ग्रहण नहीं करता था। उसके शासन-काल में फ्रांस की इंगलैंड के साथ लड़ाई हुई। यद्यपि इस लड़ाई में फ्रांस जीता, लेकिन इसमें काफी खर्च हुआ। फलतः नेकर को भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष नीति से कुछ नए ऋण लेने पड़े।

नेकर (१७७६-८१)

नेकर ने धीरे-धीरे कुछ अन्य सुधार भी किए। उसने राजा को इस बात की प्रेरणा दी कि वह अपने दासों को स्वतन्त्र कर दे और कुछ सामंती अधिकार छोड़ दे। उसने प्रान्तीय सभाओं को स्थापित करने का भी प्रयास किया। उसने टर्गट के आर्थिक सुधारों को जारी रक्खा और अपराधियों को शारीरिक यातनाएँ देना कम कर दिया। उसने प्रोटेस्टैंटों को पूर्ण नागरिक अधिकार देने का प्रस्ताव किया। १७८८ में प्रोटे-

---

१. यदि टर्गट ज्यादा समय तक अपने पद पर रहता, तो वह संविधान सभा के बहुत से रचनात्मक कार्यों को पहले से ही कर देता। वह जमीन पर से टाइथ (tithe) तथा अन्य सम्पत्ति-कर उठाना, व्यापार तथा निर्माण के मार्ग में उपस्थित होने वाली बाधाओं को दूर करना, प्रान्तीय सभाओं की स्थापना करना, चर्च के धन को कम करना, उसकी कुछ सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करना तथा उसके कुछ विहारों को समाप्त करना चाहता था। वह विधियों को संहिताबद्ध कर देता, व्यवसायों को सभी वर्गों के लिए खोल देता तथा उपासना और समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता स्थापित कर देता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टैटों को समस्त नागरिक अधिकार मिल गये।

लेकिन नेकर भी शीघ्र ही अपदस्थ हो गया। उसके पतन के साथ-ही-साथ राजा के ऐच्छिक सुधारों का युग समाप्त हो गया। चेष्टा असफल हो चुकी थी। निरंकुशता ने अपने भूतकाल पर पश्चात्ताप किया। लेकिन यह तो 'चिड़िया चुग गई खेत अब पछताए होत क्या' वाली बात थी। राजतन्त्र अपने दुष्कृत्यों की ही शृङ्खलाओं में बंध गया था और उसके परिणामों से बचकर नहीं निकल सकता था।

राजकीय सुधारों के प्रथम युग की असफलता

इस असफलता के कारण अनेकमुखी हैं। कुछ सैद्धान्तिक हैं, कुछ प्रबल शक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ केवल आकस्मिक हैं। टर्गट और नेकर में से कोई भी व्यवहार-पटु सुधारक नहीं था। टर्गट बहुत रूखी तबीयत का आदमी था। वह विनम्र नहीं था। उसे मनुष्य की दुर्बलताओं से कोई सहानुभूति नहीं थी। वह मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति से कोई समझौता नहीं कर सकता था। उसने अपने सुधारों में बहुत जल्दबाजी की। उसका कहना था, "लोगों की आवश्यकताएँ अमित हैं और मेरे परिवार में गठिया की बीमारी (gout) हमें पचास वर्ष की आयु में उठा ले जाती है।" इसके विपरीत नेकर चंचल, अभिमानी और अहम्मन्य था। सामाजिकता की दृष्टि से वह बोझिल व्यक्ति था। उसने टर्गट की सार्वजनिक रूप से आलोचना की और इस प्रकार सुधार के कार्य को बदनाम किया। नेकर एक विदेशी तथा प्रोटेस्टैंट था तथा उसकी नियुक्ति से लुई (Louis) की सहनशीलता का ही ज्ञान होता था। नेकर (Necker) ने दरबारियों को उनकी पेंशनों और विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया था। इससे दरबारी नाराज हो गए थे और उन्होंने सुधार-कार्यों में निरन्तर रोड़ा अटकाया। टर्गट और नेकर दोनों को अपने एक साथी मौरपस (Maurepas) का निरन्तर विरोध सहना पड़ा था। इस व्यक्ति को रानी एडेलेड (Princesse Adelaide) ने, जो लुई की चाची होती थी, लुई के ऊपर जबरदस्ती थोप दिया था। मौरपस (Maurepas) वृद्ध था। वह इस बात के लिए बहुत उत्सुक रहता था कि वह दरबार में लोकप्रिय हो जाये। उसकी धारणा थी कि संसार की समस्त समस्याओं को बड़ी आसानी से सुलझाया जा सकता है।

फिर भी मन्त्री केवल निम्न अधिकारी थे। उन्हें अपने पद से हटाया जा सकता था। उनके पीछे राजा था। मूलतः, टर्गट और नेकर अपने आनुषंगिक दोषों के कारण असफल नहीं हुए, वे राजा के चरित्र और अपने विरोधी हितों की सम्मिलित शक्ति के कारण विफल हुए। यदि राजा उनका दृढ़ता से समर्थन करता, तो यह सम्भव था कि उन्हें कुछ-न-कुछ सफलता अवश्य मिलती। मई, १७७६ में राजा ने शिकायती दरबार के दबाव में आकर टर्गट को पदच्युत कर दिया। फलतः क्रान्ति अर्थात् राजा द्वारा या राजा के सहित नहीं, प्रत्युत राजा के बावजूद सुधार-अपरिहार्य हो गई।

सुधार के विरुद्ध अनेक शक्तियाँ थीं। दरबारी, पार्लमेंट के सदस्य, महाजन, कर-संग्राहक, व्यापारी और उद्योगपति सुधार के विरुद्ध थे। यह आशा की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती थी कि वे उन नवीनताओं (innovations) का विरोध करेंगे जो उन्हें विशेषाधिकारों या मुनाफों से वंचित करती थीं या उस नपी-तुली समाज व्यवस्था में विक्षोभ पैदा करती थीं जो उनके भली-भाँति अनुकूल थी। एक कुलीन ने कहा था, "नई-नई बातों को क्यों करते हो ? क्या सब काम ठीक नहीं चल रहा ?" यह भी स्वाभाविक था कि वे रानी पर और उसके माध्यम से राजा पर दबाव डालें। उसके लिए यह कैसे सम्भव था कि वह अपने मित्रों के आग्रहों और लुई पन्द्रहवें के प्रख्यात मंत्री चोईजुएल (Choiseul) की युक्तियों को, जिसने उसे फ्रांस की रानी बनाया था, अस्वीकार कर देती। और तो और जनता भी टर्गट के सुधारों के विरुद्ध हो गई। आन्दोलनकर्त्ताओं, गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अन्न के एकाधिकारियों (monopolists) ने, जिनके हित इसी बात में थे कि परिवहन की स्वतन्त्रता रुकी रहे, जनता को भड़काया। यह भी सन्देह किया जाता था कि अंग्रेजों, तांत्रिकों (free masons) और राजा के चचेरे भाई और सम्भावित प्रतिद्वन्द्वी ड्यूक डी० ओर्लियंस (Duc d'Orleans) ने सुधारों के मार्ग में रोड़े अटकाये हैं। मुक्त और गुप्त शक्तियों, व्यक्तिगत स्वार्थों, पथभ्रष्ट रूढ़िवाद, स्थानभ्रष्ट उदारता और दुर्बलता—इन सबने उस खाई के सामने कुहरा पैदा कर दिया था जिसकी ओर फ्रांस तेज़ी से जा रहा था। टर्गट और नेकर ही—शायद टर्गट ही अकेला फ्रांस की इस महानाश से रक्षा कर सकता था।

सुधारों की चेष्टा ने और इस चेष्टा की असफलता ने क्रान्ति को तेज़ी से ला दिया। डी० टोकियावेली (De Tocqueville) का कहना है, "राज्य केवल तभी क्रान्ति में नहीं पड़ता, जबकि वह हीन से हीनतर स्थिति की ओर जाता है।" राजा ने बेहतर दशाओं का रास्ता दिखाया था, उसने जनता को सुधार के विचार का अभ्यस्त कर दिया था, उसने शृङ्खलाओं को तोड़ दिया था, जिन्होंने जनता को पुरानी शासन-व्यवस्था से बाँधे रक्खा था, उसने दिन के प्रकाश में अपनी निरर्थकता और विशेषाधिकारयुक्त वर्ग की हठवादिता को स्पष्ट कर दिया था। चूंकि सुधारों का प्रयास किया गया था और वे असफल हो गये थे, अतः उसने राजतन्त्र का राज्य के अन्य वर्गों के साथ सम्पर्क दुर्बल कर दिया था। राजा अन्त में सेना के ऊपर ही निर्भर रह सकता था। लेकिन, सेंट जर्मेन (Saint Germain) के सुधारों ने सेनाओं को विद्रोही बना दिया था। अन्तःपुर के सैनिक सबसे ज्यादा राजभक्त थे। लेकिन उनकी सख्या कम कर दी गई थी। १७८१ के बाद से, जब कि नेकर की पदच्युति हुई, १७८९ तक, जब कि स्टेट्स-जनरल का अधिवेशन हुआ, कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई।

सुधारों की विफलता ने क्रान्ति को तेज़ी से ला दिया

हम इस काल के इतिहास को ज़रा संक्षिप्त रूप में समझ लें। इस समय फ्रांस का राजतंत्र अन्य काल की अपेक्षा ज्यादा प्रखर प्रतीत होता था। वर्जीन (Vergennes) की विदेश-नीति ने फ्रांस को उस ऊँचाई पर पहुँचा दिया था जिस पर वह लुई चौदहवें के समय से अब तक नहीं पहुँचा था। उसने सम्राट की शक्ति को मर्यादित कर दिया था और इंग्लैंड का ऐसा अपमान किया था जो उससे कहीं अधिक था जो उसे नेपो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लियन के समय सहना पड़ा था। कुछ समय के लिए उसने समुद्र पर आधिपत्य जमा लिया था। उसने ब्रिटेन के ऊपर आक्रमण करने की धमकी दी थी और अमेरिका में गणराज्य की स्थापना में योग दिया था।

उस समय राष्ट्रीय क्षेत्र में भी समृद्धि रही थी। यह युद्ध ने कृत्रिम रूप से पैदा कर दी थी। इसके अतिरिक्त चहल-पहल और सक्रियता भी काफी थी। राजा ने अपने लिए रेम्बुलेट नामक स्थान पर और रानी के लिए सेन्ट क्लाउड नामक स्थान पर एक-एक महल खरीदा था। चारों ओर स्वाँगों, त्यौहारों, नाटकों और आध्यात्मिक प्रयोगों की बाढ़-सी आई हुई थी। इस काल में आश्चर्यजनक आविष्कारों, बोलते जानवरों और उड़ते पक्षियों की बहार थी। एक फ्रांसीसी ने हवाई गुब्बारे द्वारा चैनल को पार किया था और फ्रांस के झंडे को इंग्लैंड के ऊपर लहराया था। कैगलियोस्ट्रो (Cagliostro) नामक एक कीमियागर था जिसके बारे में कार्डिनल डी रोहन (Cardinal de Rohan) जैसे व्यक्ति तक ने स्वयं गारण्टी दी थी कि उसने सोना बनाने का रहस्य पा लिया है।

लेकिन क्रान्ति की तैयारी हो रही थी। फ्रांस ने इंग्लैंड के विद्रोही उपनिवेशों को सहायता दी थी। इंग्लैंड ने इसका डटकर बदला लिया। अमेरिकी स्वातन्त्र्य-युद्ध की कड़क सारे फ्रांस में शंखनाद की तरह गूँजी। फ्रांसीसी इस सद्यःजात गणतन्त्र के लिए लड़े थे। जनतन्त्रवादियों ने रूसो के सिद्धान्तों को कार्यान्वित होते देखा। उन्होंने देखा कि स्वतन्त्रता एक अपरिचित देश में स्थापित हो रही है। लाफायेत (La Fayette) जैसे व्यक्ति अमेरिका को उसी भावना से गये थे जिस भावना से कि कोई जिहादी धर्म-युद्ध में जाता है। जब वे फ्रांस वापस लौटे, वे एक व्यावहारिक उदाहरण की प्रेरणा से ओत-प्रोत थे।

राजा की आवश्यकता ही उनका अवसर बन गई। उस समय आर्थिक प्रश्न ने अन्य समस्त प्रश्नों को ग्रस्त कर लिया था। स्टेट्स-जनरल (States-General) के पहले तीन वर्षों का जरा विस्तार से अध्ययन करना चाहिए और देखना चाहिए कि राजा ने किस तरह एक के बाद दूसरे रास्ते को अपनाया और वह अन्त में किस प्रकार जनता के प्रतिनिधियों को बुलाने के लिए विवश हो गया। देश दिवालियेपन की ओर जा रहा था। इंग्लैंड के साथ फ्रांस का जो युद्ध हुआ था, वह फ्रांस के लिए बहुत मँहगा पड़ा था। १७८३ ई० में कैलोन (Calonne) फ्रांस का वित्त-मंत्री नियुक्त हुआ था। वह 'मुँह में राम बगल में छुरी' रखने वाला व्यक्ति था। उसकी कपट-नीति ने स्थिति को और भी बिगाड़ दिया। उसने राज्य की अर्थ-व्यवस्था का उसी सिद्धान्त पर संचालन किया जिस पर वह अपनी अर्थ-व्यवस्था का संचालन करता था। उसका सिद्धान्त था, "यदि कोई व्यक्ति उधार लेना चाहता है, तो उसे अमीर दीखना चाहिए। अमीर दीखने के लिए उसे काफी खर्च करना चाहिए।" कैलोन ने अन्धाधुन्ध खर्च किया और नये ऋण लिए। लेकिन एक समय ऐसा आया जब कि राजकोष बिलकुल रिक्त हो गया। पार्लमेंट (Parlement) ने और ऋण की स्वीकृति न दी। कैलोन अन्य किसी उपाय से धन एकत्रित नहीं कर सका। नेकर ने एक आलोचना 'The

आर्थिक प्रश्न की उग्रता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Administration of the Finances of France' लिखी। इस पुस्तक की १२००० प्रतिक्रियाँ बिक गईं। नेकर को देश-निकाला हो गया। लेकिन इससे स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सका। केवल एक ही रास्ता था—कर और लगाये जायें। लेकिन किस पर? कैलोन ने एक "कुलीन सभा" (Assembly of Notables) का प्रस्ताव किया। यह हेनरी चतुर्थ (Henry IV) की परम्परा में धोखा देने की एक शानदार चेष्टा थी, परन्तु वह सफल न हो सकी। बहुत से कुलीन बड़े-बड़े जमींदार थे और कैलोन ने उन्हें लाखों का मुनाफा करवाया था, लेकिन वे दुराग्रही सिद्ध हुए और उन्होंने करों को स्वीकार नहीं किया। लाफायेत (La Fayette) ने स्टेट्स-जनरल की माँग की। कैलोन (Calonne) अपने पद से हट गया और उसने यह समस्या अपने उत्तराधिकारी ब्रिएन (Brienne) के लिए छोड़ दी। यद्यपि ब्रिएन "स्वयं को आजीवन उच्चतम पदों के लिए उपयुक्त" समझता रहा था, लेकिन वह भी कुछ नहीं कर सका।

कुलीन सभा का विघटन कर दिया गया, लेकिन पेरिस की पार्लमेंट (Parlement of Paris) ने स्टेट्स-जनरल (States-General) की मांग को बराबर जारी रक्खा। पार्लमेंट को एक बार भंग कर दिया गया, फिर बुलाया गया। उसे करा-धान के प्रस्तावों को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया और फिर यह अनुमति दी गई कि वह उन्हें रद्द कर सकती है। प्रान्तों की पार्लमेंटों ने अपने आवेदन भेजे। जनता की उत्तेजना बढ़ती गई। सब पार्लमेंटों को भंग कर दिया गया और नई अदालतों की स्थापना की गई जो मजाक सिद्ध हुई। लेटर्स डी कैचेट (Lettres de cachet) फिर से तैयार किये गये। ड्यूक डी आर्लियेन्स (Duc d'Orleans) अपनी जमींदारी में भाग गया।

लेकिन, इन समस्त आतंककारी उपायों से धन हाथ नहीं लगा और आर्थिक दबाव अप्रतिहत होता गया। प्रोटेस्टैंटों को नये ऋण एकत्रित करने की आशा से नाग-रिक अधिकार दिये गये। नेकर (Necker) को पुनः वित्त-मंत्री के पद पर बुलाया गया। पादरियों, दार्शनिकों, रानी और अन्त में—लुई तथा उसके मंत्री एक युक्ति के बाद दूसरी युक्ति का आश्रय लेते-लेते इतने भ्रान्त हो गये थे कि—जनता से अपील की गई।

जनवरी, १७८९ में अभूतपूर्व उत्तेजना के वातावरण में फ्रांस की स्टेट्स-जनरल की बैठक के लिए निर्वाचन होने लगे। स्टेट्स-जनरल का यह अधिवेशन १७५ वर्षों के बाद बुलाया गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ३

(CHAPTER III)

फ्रेंच क्रान्ति (१७८९-९५)

(The French Revolution, 1789-95)

१. संविधान सभा (मई १७८९ से सितम्बर १७९१)

(The Constituent Assembly, May 1789-Sept. 1791)

स्टेट्स-जनरल का अधिवेशन ५ मई, १७८६ को पेरिस से प्रायः दस मील दूर वर्साय (Versailles) में हुआ। स्टेट्स-जनरल की सदस्य संख्या इस प्रकार थी—२८५ कुलीन, ३०८ पादरी, जिनमें दो-तिहाई पेरिस-पादरी थे और ६२१ जनसाधारण के प्रतिनिधि। जनसाधारण के प्रतिनिधियों को २५ वर्ष या इससे अधिक आयु के उन समस्त व्यक्तियों ने चुना था जो राज्य को कुछ कर देते थे। स्टेट्स-जनरल का स्वरूप अब भी बहुत कुछ मध्ययुग का-सा था। प्रतिनिधि अपने को विधायक कम मानते थे। वे स्वयं को राजा के सन्मुख शिकायतें उपस्थित करने वाले आवेदक (petitioners) ही अधिक समझते थे। प्रत्येक सदस्य अपने साथ एक काहियर (cahier) या अपने निर्वाचन क्षेत्र की शिकायतों की एक सूची लाया था। इन सूचियों में अनेक विषयों का समावेश था। लेकिन उनमें कुछ-न-कुछ एकरूपता विद्यमान थी और इस एकरूपता से संगठन की चेष्टा का आभास मिलता था। इसका श्रेय राजा को नहीं मिल सकता क्योंकि उसने तो निर्वाचन की रंचमात्र भी व्यवस्था नहीं की थी। इसका श्रेय तो उन क्रान्तिकारी और लोकतंत्रात्मक एजेंसियों को ही मिल सकता है जो पहले से ही क्रियाशील थीं।

स्टेट्स-जनरल

जनता न तो राजतन्त्र से ही असंतुष्ट थी और न सत्तारूढ़ राजवंश से ही। लेकिन उसकी आम माँग यह थी की संविधान (constitution) होना चाहिए, कारागारों और चिकित्सालयों में, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक मामलों में सुधार होने चाहिएँ। कुछ प्रार्थनाएँ एक दूसरे की विरोधी थीं, कुछ केवल स्थानीय थीं। कुछ सिसरो (Cicero) की दुहाई देते थे और कुछ रूसो (Rousseau) की। कुछ व्यक्ति की स्वतंत्रता पर निबंध थे, कुछ केवल विनम्र आवेदन थे—जैसे कि बिल्ली पालने की आज्ञा दी जाये, बिना कुछ पैसे दिये ही आग जलाने की अनुमति दी जाए, लावारिस कुत्तों को लँगड़ा नहीं किया जाये, मार डाला जाये, शराब खुले आम बेची जाये, विवाह और अंत्येष्टि-क्रिया के शुल्क तथा निकृष्ट नमक-कर (vile salt tax) कम कर दिया

काहियर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाये, जलाशयों को साफ रखा जाये या पेरिस में ज्यादा लैम्प लगाए जायें।[1] ये शिकायतें अंशतः प्रतिनिधियों के लिए आदेशों के समान थीं। बाद में उनका कुछ हद तक नये संविधान के निर्माण में प्रयोग किया गया।

तथापि, प्रतिनिधियों की तात्कालिक आवश्यकता यह थी कि उनके पास कोई व्यावहारिक कार्यक्रम होना चाहिए था। सबसे पहले उन्हें अपनी कार्यवाही निश्चित करनी थी, अपने अधिकारों की जाँच करनी थी और अपने नेताओं की खोज करनी थी। वे एक-दूसरे से अपरिचित थे, अनुभव-हीन थे। इतने महान् कार्य को करने लायक उनकी कोई परम्परा भी नहीं रही थी। सर्वसाधारण (Third Estate) को अपने उत्तरदायित्वों का ज्ञान था। उसको जिन सामाजिक तिरस्कारों का सामना करना पड़ा था, उनके कारण वह कुछ क्षुब्ध था और अपनी ओर से सावधान था। वह राजा तथा विशेषाधिकारसम्पन्न वर्गों के प्रति सशंक था। वह अतिक्रमणों (encroachments) के प्रति सजग था। वह राजभक्त था, लेकिन कुछ अधीर, कुछ उद्धत था। राजा को भी प्रतिनिधियों की भाँति जन-शासन (popular government) का कोई अनुभव नहीं था। यदि कहीं लुई सोलहवें (Louis XVI) ने किसी अंग्रेज मंत्री से संसदीय शासन की कुछ शिक्षा पाई होती, तो फ्रांस का इतिहास कुछ दूसरा ही होता। लुई के पास न तो ऐसा कोई कार्यक्रम ही था जिसे वह प्रतिनिधियों के सामने रखता और न उसके पास ऐसी कोई योजना ही थी जिसके द्वारा वह उसकी कार्यवाही का संचालन करता। उसने स्टेट्स-जनरल की कार्यवाही का अपने एक भाषण के साथ श्रीगणेश किया। भाषण देते समय उसने अपने परों वाले टोप को अपने सर पर ही रक्खा। भाषण में, उसने उच्च स्वर में अपने अधिकारों का निरूपण किया और अपनी 'भावनाओं' (sentiments) के अस्पष्ट से आश्वासन दिये। इसके बाद उसके एक मंत्री बैरनटिन (Barentin) ने कुछ और आशाप्रद वचन कहे जिनमें से अधिकांश ठीक से सुनाई नहीं दिये। तत्पश्चात् नेकर (Necker) ने अपना निराशाजनक वित्तीय विवरण पढ़ा। इसके उपरान्त राजा, रानी तथा राजकीय दल के साथ स्टेट्स-जनरल से हट गया। वह हट तो गया लेकिन उसने सर्वसाधारण की मुख्य समस्या पर कोई प्रकाश नहीं डाला—स्टेट्स-जनरल का संगठन कैसे होना था, एक सदन में या तीन सदनों में? मतदान किस प्रकार होना था—सदनों द्वारा या व्यक्तियों द्वारा? पादरियों और कुलीनों ने राजा का अनुसरण किया और वे पृथक कक्षों में चले गए। अब सर्वसाधारण के प्रतिनिधि अपनी समस्याओं पर विचार करने के लिए अकेले रह गए। यह, जैसा कि लोरेन (Lorraine) के एक प्रतिनिधि ने लिखा था, "युद्ध का श्रीगणेश था।"

दूसरे दिन जनसाधारण के प्रतिनिधि राजा के विनोद-गृह (Menus Plaisirs)

---

१. ५०,००० या ६०,००० कैहियरों में से केवल ४०० ही प्रकाशित हुए हैं। यह याद रखना चाहिए कि ये शिकायतों की ही सूचियाँ हैं और इससे फ्रांस की स्थिति की एकपक्षीय तस्वीर ही उपलब्ध होती है। शिकायतों की एक प्रभावोत्पादक सूची किसी भी देश में किसी भी शासन के अन्तर्गत तैयार की जा सकती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एकत्रित हुए। क्रान्ति की पहली ज्वाला यहीं दिखाई दी। कुल मिलाकर यह आठ सप्ताह तक—५ मई से ३० जून तक—चलती रही थी।

प्रथम संघर्ष

थी। इस बीच लोग अपने हाथों में मशालें ले-लेकर वर्साय और पेरिस की गलियों में दौड़ते-भागते रहे और राजा के झुक जाने पर खुशी मनाते रहे।

लुई ने सर्वसाधारण वर्ग को कुलीनों अथवा पादरियों की अपेक्षा दूसरे प्रतिनिधियों को चुनने की अनुमति दे दी थी, लेकिन यदि स्टेट्स-जनरल तीन सदनों में विभक्त हो जाती और वर्गों (Orders) के रूप में मत देती,

जन-साधारण के प्रतिनिधियों का कार्य (मई-जून १७८९)

तो सर्वसाधारण के प्रतिनिधियों (Third Estate) को अपने दूने प्रतिनिधित्व का कोई लाभ नहीं रहता। सर्वसाधारण का आग्रह यह था कि उन्हें एक सदन के रूप में बैठना चाहिए और उसके विचार से राजा की भी यही इच्छा थी। लेकिन फिर उसने निश्चित आदेश क्यों नहीं दिये और पृथक कक्षों (Apartments) की क्यों व्यवस्था की? सर्वसाधारण ने एक सदन के लिए ही संघर्ष करने का निश्चय किया। प्रत्येक वर्ग का यह कर्त्तव्य था कि वह अधिकारियों को नियुक्त करने और प्रतिनिधियों के निर्वाचन को प्रमाणीकृत करने के लिए अपना संगठन करता। सर्वसाधारण वर्ग ने कह दिया कि वह यह कार्य उस समय तक नहीं करेगा जब तक अन्य वर्ग उसके साथ सम्मिलित नहीं हो जाएँगे। उन्होंने निष्क्रियता की नीति अपनायी। पाँच सप्ताह तक उन्होंने प्रतीक्षा और बातचीत की। लेकिन अन्य दोनों सदनों ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। २८ मई को पेरिस के प्रतिनिधि आ पहुँचे। वे जरा विलम्ब से आये थे, लेकिन उत्साह से परिपूर्ण थे। उन्होंने सर्वसाधारण वर्ग के निश्चय को और भी दृढ़ कर दिया। ज्योतिषी बेली (Bailly) उनके ही साथ था। बाद में वह उनका अध्यक्ष तथा पेरिस का मेयर बना। अवसरवादी एबे सयीज (Abbe Sieyes) भी उनके साथ आया था। सर्वसाधारण वर्ग (Third Estate) पर उसने एक पैम्फलेट लिखा था जो बहुत लोकप्रिय हुआ था। इस पैम्फलेट के कारण एबे सयीज पहले से ही काफी विख्यात था। सयीज (Sieyes) के प्रस्ताव पर १२ जून को अन्य दोनों वर्गों के पास अन्तिम निमंत्रण भेजा गया। लेकिन उन्होंने यह निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। १३ जून को सर्वसाधारण वर्ग ने यह निश्चय किया कि वह अन्य वर्गों के बिना भी अपना संगठन कर ले। इसी समय अचानक तीन पादरियों ने सदन में प्रवेश किया। उनके नाम उल्लेखनीय हैं—लेसीव

तीन पादरियों का आगमन

(Lecesve), बेलर्ड (Ballard), और जेलेट (Jallet)। जेलेट (Jallet) ने कहा, "विवेक की ज्योति में लोक कल्याण तथा अपनी अन्तरात्मा की आवाज से प्रेरित होकर हम अपने साथी नागरिकों तथा भाइयों का साथ देने के लिए आए हैं।" यह

---

१. इस पैम्फलेट में निम्नलिखित सुप्रसिद्ध प्रश्न भी थे—
प्रश्न—सर्वसाधारण वर्ग क्या है? उत्तर—कुछ नहीं।
प्रश्न—उसे क्या होना चाहिए? उत्तर—सब कुछ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय की शैली के अनुसार एक सुन्दर भाषण था। तीनों पादरियों का आँसुओं, आलिंगनों और असीम उल्लास के साथ स्वागत हुआ। दूसरे दिन नौ पादरी और आ गए। उनका भी इस तरह प्रेमपूर्ण स्वागत हुआ। यह संख्या लघु थी, लेकिन इससे विशेषाधिकारसम्पन्न वर्गों के आत्म-समर्पण का संकेत मिल गया था। अब सर्वसाधारण वर्ग एक कदम और आगे बढ़ा। उसने राजा की अनुमति की प्रतीक्षा नहीं की—"क्या अमेरिका ने इंग्लैंड के राजा की अनुमति माँगी थी ?"—और स्वयं को फ्रांस का पूर्ण तथा एक मात्र प्रतिनिधि घोषित कर दिया तथा "राष्ट्रीय सभा" (National Assembly) की उपाधि धारण की। इसके बाद, उसने देश से कहा कि जिस दिन से सभा का विघटन हो, उस दिन से "राज्य के प्रत्येक प्रान्त में से सब कर बन्द हो जायें जिन पर सभा ने स्पष्ट, औपचारक तथा मुक्त रूप से मत न दिया हो। अपने सम्पूर्ण स्पष्ट साहस के बावजूद नई राष्ट्रीय सभा (National Assembly) को अपने हृदय में विघटन का डर था।" एक प्रतिनिधि ने लिखा था, "हम शीघ्र ही अपने प्रान्तों में पहुंच जायेंगे।"

सर्वसाधारण वर्ग का राष्ट्रीय सभा के रूप में संगठन

इस बीच पादरी और कुलीन अपने पृथक् सदनों में सर्वसाधारण वर्ग में शामिल होने के प्रश्न पर निरन्तर विचार करते रहे थे। १६ जून को पादरियों ने काफी उग्र वाद-विवाद के पश्चात् १४६ के बहुमत से सर्वसाधारण में शामिल होने का निर्णय किया। कहा जाता है कि जब इस निर्णय का समाचार फैला, तो बहुत जोर का कोलाहल हुआ, जो राजप्रासाद तक पहुँचा। दूसरी ओर कुलीन कुछ निर्णय न कर सके। उनमें अव्यवस्था फैल गई। एक-दूसरे को धमकियाँ तथा चुनौतियाँ दी जाने लगी और कुछ ने अपनी म्यानों से तलवारें निकाल ली। इस स्थिति में जन-विरोधी वर्ग ने राजा से अपील की। इस स्तर पर लुई (Louis) राज-दरबार तथा अपने भाई आर्टोयस (Artois) के प्रतिक्रियावादी तर्कों के आगे झुक गया और उसने कुलीनों की ओर से हस्तक्षेप तथा दमन की नीति का आश्रय लिया। यह नीति छः सप्ताह पहले तो सफल हो सकती थी, लेकिन अब बिलकुल व्यर्थ थी। इस समय तो पादरियों के सहयोग के कारण सर्वसाधारण वर्ग की शक्ति बहुत बढ़ गई थी और वह राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार था। राजा ने अधिवेशन की तिथि २३ जून निश्चित की थी और सभा-कक्ष बन्द करवा दिया था जिससे कि पिछले दिनों की घटनाएँ फिर से न हों। फलतः जब २० ता० को प्रतिनिधि आये, उन्हें बताया गया कि सभा-कक्ष में २३ ता० के लिए तैयारियाँ हो रही हैं। सर्वसाधारण वर्ग बहुत निराश हुआ और वह काफ़ी देर तक बरसात में निराश भाव से खड़ा रहा। बाद में वह पास के एक टेनिस-कोर्ट में चला गया। चित्रकार डेविड ने उनका उस समय का जो चित्र खींचा है, वह दो-एक ऐतिहासिक अशुद्धियों के बावजूद बहुत भव्य है। चित्र में दिखाया गया है कि ६०० प्रतिनिधि अपने अध्यक्ष

राजा द्वारा हस्तक्षेप का निश्चय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेली (Bailly) के चारों ओर खड़े हैं। उन्होंने बेली को एक मेज पर खड़ा कर दिया है और वे आकाश में अपने दायें हाथों को उठाकर शपथ ले रहे हैं, वह शपथ, जिसने कि राजतन्त्र को हिला दिया। शपथ के शब्द थे, "हम यहाँ से उस समय तक नहीं हटेंगे जब तक कि संविधान नहीं बन जाता और वह पक्की बुनियाद पर नहीं रख दिया जाता।" इस शपथ का प्रस्ताव मोनियर (Mounier) ने किया था—इस व्यक्ति के इतिहास की आगे चर्चा की जाएगी। इस शपथ को सब प्रतिनिधियों ने स्वीकार किया, केवल एक प्रतिनिधि ने नहीं। उसको सब लोगों ने पागल समझा।

मोनियर द्वारा प्रस्तावित टेनिस कोर्ट की शपथ

ऐसे लोगों को भयभीत नहीं किया जा सकता था। काम्टे डी० आर्टोयस (Comte d' Artois) ने उन्हें इस बहाने कि, टेनिस कोर्ट में मैच होने वाला है, वहाँ से सेन्ट लुई (Saint Louis) के चर्च की ओर भगा दिया। पर इससे सर्वसाधारण वर्ग के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

राजा शोकाकुल और चिंतित था। कुलीन अपनी विजय के बारे में विश्वस्त थे। सर्वसाधारण वर्ग दृढ़, शान्त और आशंकित था। पहले तो कुछ वैधानिक रियायतें दी गईं, फिर राजा का आदेश आया। तीनों सदनों को अपने अलग-अलग सदनों में विचार करना था और वह भी केवल कराधान के प्रश्न पर। उन्हें संविधान के स्वरूप, सामंती-सम्पत्ति और पहले दो वर्गों के उचित अधिकारों की कोई चर्चा नहीं करनी थी। राजा की यही इच्छा थी। उसकी यह भी इच्छा थी कि सर्वसाधारण वर्ग अब अपने-अपने स्थानों को वापस लौट जाये। राजा सभा-कक्ष से बाहर निकल आया। उसके पीछे कुलीन तथा पादरी आ गये। सर्वसाधारण वर्ग पीछे 'श्मशान शांति' में खड़ा रहा। इसी समय राजा का शिक्षक ड्यूब्रेज (Duex-Breze) अपनी पूरी दरबारी पोशाक में आया। दरवाजे पर पदाति सैनिक खड़े थे।[1] उसने सर्वसाधारण वर्ग से कहा, "राजा ने प्रार्थना की है कि सर्वसाधारण वर्ग के प्रतिनिधि चले जायें।" तभी मिराबो (Mirabeau), जो इसी समय से उनका नेता बन गया, आगे आया। उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। उसकी मुद्रा से अवज्ञा का भाव झलक रहा था। उसकी आँखें अंगारे-सी लाल हो रही थीं। उसने कहा, "श्रीमान् जाइये और अपने स्वामी से कह दीजिए कि हम यहाँ जनता की राय से आये हैं और हमें यहाँ से गोलियाँ ही हटा सकती हैं।" ड्यूब्रेज ने यह सन्देश राजा को दे दिया, इस पर लुई ने जरा परेशान होकर कहा, "उनका रुकने का इरादा है, ठीक है उन्हें रुकने दीजिए।" लुई को अपने पदाति सैनिकों का भरोसा नहीं था।

राजा की अवहेलना

---

१. ये सैनिक राज-परिवार की रक्षा के लिये थे। शान्तिकाल में वे राज-प्रासाद के आस-पास के प्रदेश की निगरानी करते रहे थे। इस तरह वे जनता के सम्पर्क में आते रहते थे। क्रान्तिकारी विचारों का उनमें भी प्रचार हो गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा को विवश किया जा चुका था ; जनसाधारण की विजय हो चुकी थी। सैंयीज अपने उपयुक्त भाषण के साथ तैयार था। चार दिन बाद लुई (Louis) ने लिखा कि वह तीनों वर्गों की एकता चाहता है। लेकिन यह एकता तो सम्पन्न हो चुकी थी। एक फ्रांसीसी ने लिखा था, "क्रान्ति समाप्त हो चुकी है।" लेकिन यह तो क्रान्ति का पहला दृश्य था। इसमें जनता के प्रतिनिधियों को विजय प्राप्त हुई थी। जनता के प्रतिनिधियों ने राजा तथा विशेषाधिकार सम्पन्न वर्गों की अवहेलना की थी और वे अभी जीवित थे। उन्होंने अपना अस्तित्व ही कायम नहीं रक्खा था। उन्होंने अपने अधिकार की घोषणा कर दी थी और उसे प्रमाणित कर दिखाया था। उन्होंने अपनी पताका फहरा दी थी और अपनी शक्तियों का संगठन कर लिया था। राजा का प्रभाव समाप्त हो गया था और उसकी मूर्खता स्पष्ट हो गई थी।

तीनों वर्गों की एकता

लेकिन, जनसाधारण के प्रतिनिधि अभी राजा से डरते थे। जब वर्साय के निकट सेनाएँ एकत्रित होने लगी, उन्हें अपनी सामूहिक सत्ता और अपनी वैयक्तिक सुरक्षा तक काफी खतरे में जान पड़ी। जुलाई, १९१४ की घटनाओं के प्रति राष्ट्रीय सभा (National Assembly) के दृष्टिकोण की व्याख्या इसी सन्दर्भ में की जा सकती है।

पेरिस की कार्यवाही

क्रांति का दूसरा दृश्य पेरिस में सम्पन्न हुआ। राजधानी में खुले और गोपनीय क्रांतिकारी संगठनों, विदेशी एजेंटों, सार्वजनिक आन्दोलनकर्त्ताओं और उन सबको, जो बूरबन राजतन्त्र को परेशान करना चाहते थे, अपने कार्य के लिए काफी क्षेत्र मिला। वहाँ लोकतंत्रात्मक वाग्वीरों को जल्दी ही भड़क उठने वाले श्रोता काफी संख्या में मिल गये। ये श्रोता विशेष प्रतिष्ठा के व्यक्ति नहीं होते थे। इनमें सब तरह के व्यक्ति रहते थे ; इनमें हाथों में लाठी लिये भयानक आकृति और कुरूप चेहरों वाले उपद्रवकारियों के झुण्ड थे। इन लोगों ने अप्रैल से पेरिस में आतंक मचा रखा था। इनमें कुछ ऐसे लुच्चे लफंगे थे जो प्रत्येक राजधानी में रहते हैं और अशांति के समय बाहर निकल आते हैं। कुछ देहात के किसान थे जो गरीबों को वितरित की गई खैरातों से आकृष्ट होकर पेरिस खिंचे चले आये थे। कुछ दक्षिण के डाकू थे जो या तो लूटमार के प्रलोभन से आ गये थे या जिन्हें पेरिस के एजेंटों ने जान-बूझकर आमंत्रित किया था। यह निश्चित है कि बहुत से क्रीत लुटेरे ड्यूक डी ऑर्लियन्स (Duc d'Orleans) के आमंत्रण पर आये थे। ऑर्लियन्स इन लोगों की सहायता से क्रांति के उत्साह को अपने पक्ष में मोड़ना और अपने चचेरे भाई के राजमुकुट को अपने सिर पर रखना चाहता था।[1] सम्भ्रान्त नागरिकों को हिंसा या लूटमार का कोई अनुभव नहीं था। वे बहुत ज्यादा आतंकित थे और उन्होंने उपद्रवों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए एक नागरिक सेना का निर्माण किया था और होटल डी विले (Hotel de ville) में उसकी एक अनौपचारिक समिति स्थापित

१. इस सम्बन्ध में साक्ष्य के लिए एन० एच० वेस्टर की पुस्तक '*The French Revolution*' देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी थी।[1]

पेरिस की यही वह मिली-जुली जनसंख्या थी जिसे उस समय के सबसे प्रभावशाली वक्ता कैमाइल डेसमौलिन्स (Camille Desmoulins) ने क्रान्ति और वर्ग संघर्ष के लिये उत्तेजित किया था। वह कहा करता था—"पशु जाल में फँस गया है, हमें मार डालना चाहिए। विजेताओं को इससे अच्छा पुरस्कार कभी नहीं मिला है। वीरता का पारितोषिक होगा—चालीस हजार महल, शहर के मकान, देहात की अट्टालिकाएँ।" सारी जुलाई सैनिक दस्तों के संकेन्द्रण और अकाल के बढ़ते हुए भय ने जनता के अन्दर बेहद उत्तेजना पैदा कर दी थी। ११ ता० को वह अवसर, जिसकी नेता खोज कर रहें थे, आता हुआ मालूम पड़ा। इस दिन राजा ने नेकर (Necker) को पदच्युत कर दिया। जनताने कर को राज-दरबार में अपने उद्देश्यों का समर्थक मानने लगी थी। रविवार, १२ जुलाई को कैमाइल डेसमौलिन्स ने पैलेस रायल उद्यान में उछल-कूद मचाकर और एक जलपान गृह के सामने एक मेज पर खड़े होकर यह आवाज बुलन्द की, "हथियार! हथियार! एक क्षण भी नष्ट नहीं होना चाहिए। मोशियो नेकर को पदच्युत कर दिया गया है। उनकी पदच्युति देशभक्तों के लिये खतरे की घण्टी है। आज रात को स्विट्ज़रलैण्ड और जर्मनी की सेनाएँ यहाँ आकर हमें कत्ल कर देंगी। हमारे लिये

१२ जुलाई

केवल एक ही रास्ता है—हम हथियारों को उठायें।" कैमाइल डेसमौलिन्स के इस आवाहन पर एक अच्छी-खासी भीड़ उसके पीछे हो ली। उसने पेड़ों की पत्तियों को बिल्ला बना लिया। पास के मूर्ति गृह से उसने नेकर तथा ऑलयन्स की मूर्तियाँ ले लीं। इन मूर्तियों को सर पर रख कर वह आगे बढ़ी। लुई पंचदश पार्क में उसे जर्मन घुड़सवारों का एक दस्ता मिला। इस दस्ते ने उन्हें तुलीरीज गार्डन्स की ओर भगा दिया। यदि इसी समय नियमित सेना के कुछ पैदल दस्ते (Gardes Francaises) आकर भीड़ के साथ न मिल जाते तो जर्मन घुड़सवार विद्रोह को ठंडा कर सकते थे। उनका सेनापति रक्तपात से हिचकता था। उसने उन्हें हट जाने की आज्ञा दी। उनके हट जाने से शहर विद्रोहियों के हाथों में आ गया।

विद्रोह की सूचना मिलते ही उस रात को २० से लेकर ४० हजार तक लुटेरे शहर में घुस आये। उन्होंने लूटमार और आतंक का जोर बाँधे रक्खा जिससे लोगों की नींद हराम हो गई और "बच्चों को छोड़कर और

१३ जुलाई

कोई नहीं सो सका।" दूसरे दिन भीड़[2] ने रोटी की दुकानों, जेलों, पुलिस-कप्तान के घर और एक मठ (Convent of Saint Lazare) को, जहाँ शराब पाई गई थी, उजाड़ दिया और आगे जाकर

---

१. पेरिस में २८ अप्रैल को एक बलवा हो चुका था।

२. भीड ने हरे रंग को त्याग कर अब तिरंगा रंग अपना लिया था। हरा रंग काम्टे डी आर्टोयस (Comte d' Artois) का था। नये तिरंगे में लाल और पीला रंग तो पेरिस का था और उनके बीच में सफेद रंग बूरबनों का था। ये रंग ऑलियन्स की वर्दी (livery) के थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होटेल डी विले (Hotel de Ville) को घेर लिया तथा वहाँ हथियारों के लिए शोर मचाने लगी। वहाँ खतरे की घण्टी सुनकर कुछ अच्छे नागरिक भी पहुँच गये थे। घंटी का आशय यह था कि जिस खतरे की इतने समय से प्रतीक्षा की जा रही थी, वह अब आ पहुँचा था और अब नगरवासियों को नगर की रक्षा के लिए तैयार हो जाना चाहिए था। इस बीच व्यापारी वर्ग के मुखिया डी फ्लेजेल्स (De Flesselles) ने ढील डालने की कोशिश की। उसने भीड़ को हथियार देने के सम्बन्ध में धोखा देने की कोशिश की। नागरिकों को वह हथियार देते हुए डरता था। उसने वर्साय (Versailles) से आदेश मँगाये।

१४ जुलाई

१४ ता० को भीड़ को अनेक प्रकार के हथियार मिल गये थे। इन शस्त्रास्त्रों में राज-सैनिकों के विविध हथियार थे, दो बड़ी बन्दूकें थीं (इन बन्दूकों को स्याम के राजा ने भेंट किया था), ३२ हजार छोटी बन्दूकें थीं जिन्हें राजकीय शस्त्रागार पर आक्रमण करके प्राप्त किया गया था और ५० हजार बर्छियाँ थीं जिन्हें उपद्रवकारियों ने रात-रात में तैयार कर लिया था। इसी बीच यह अफ़वाह फैल गई कि बेस्टील (Bastille) में गोला-बारूद है। यह योजना नेताओं ने रात को ही तैयार कर ली थी। लोगों को बेस्टील से कुछ लेना-देना नहीं था, लेकिन उसे निरंकुश राजतन्त्र का कठोर, रहस्यात्मक प्रतीक माना जा सकता था।[1] वहाँ का गवर्नर डि लौने (De Launay) दुर्ग की रक्षा करने में असमर्थ था। उसके पास कुल ९५ साधारण सैनिक और ३० स्विस गार्ड थे। उसके पास हथियारों का भी अभाव था। क्रांति के नेताओं ने गवर्नर से समझौते की बातचीत की लेकिन भीड़ के सामने किसी की कुछ न चली। भीड़, जिसमें सैनिक भी काफी संख्या में थे, दुर्ग के अन्दर घुस गई। एक-दो गोलियाँ चलीं और इसके तुरन्त बाद ही डि लौने (De Launay) ने इस शर्त पर आत्म-समर्पण कर दिया कि किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जायेगा। बेस्टील (Bastille) के कैदियों को बड़े आडम्बर के साथ स्वतन्त्र कर दिया गया। इनमें से चार तो खोटे सिक्के बनाने वाले थे, दो पागल थे और एक हत्यारा था। डिलौने को लोग हँसी-खुशी होटेल डी विले की ओर ले चले। रास्ते में भीड़ काबू से बाहर हो गई और उसने गवर्नर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। जिन-जिन लोगों ने दुर्ग की रक्षा करने का प्रयास किया था और इस प्रयास में मारे गये थे, उनके सिरों को लोगों ने बर्छियों की नोक पर लटका लिया। भीड़ ने इन भयनक विजय-चिन्हों के साथ शोर-गुल मचाते हुए होटेल डी विले में प्रवेश किया। कुछ समय बाद ही डी फ्लेजेल्स का सिर भी औरों के साथ शामिल हो गया और स्त्रियों तथा बच्चों ने उनके चारों ओर नृत्य किया।" भीड़ को रक्त का स्वाद मिल चुका था। कुछ दिन बाद दो मन्त्रियों—

बेस्टील का पतन

---

१. बेस्टील कुलीनों का कारागार था। साधारण अपराधियों को तो बिसेट्रे में रखा जाता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फौलोन (Foulon) तथा बर्थियर (Berthier) को जिन्होंने नेकर (Necker) के पतन के बाद मन्त्रि-पद सम्हाला था, ऐसी ही निर्दयता से मार डाला गया। फौलोन (Foulon) के एक अनुचित वचन[1] की स्मृति में उसके मुँह में भूसा भरकर उसके सिर को ऊँचा टाँग दिया गया।

समसामयिकों ने बेस्टील के पतन को अत्यन्त महत्त्व की घटना माना।[2] वह ऐसी सिद्ध भी हुई लेकिन वह सभा (Assembly) ही थी जिसने उसे राजनीतिक रूप दिया और डाकूपन के एक कार्य को दमन के विरुद्ध जनता के गौरवपूर्ण तथा स्वतः प्रेरित उत्थान की पुराण कथा बना दिया। सभा (Assembly) दरबार के प्रति कटुता और भय से भरी हुई थी। वह जनता का समर्थन पाने के लिए उत्सुक थी। वह कुछ समय से असंतोष व्यक्त कर रही थी।[3] उसे बेस्टील के पतन से कोई तृप्ति नहीं हुई थी। सभा ने १४ जुलाई की घटनाओं का अनुमोदन किया। इस पर होटेल डी विले की समिति (Committee of the Hotel de Ville) तथा राष्ट्रीय रक्षक दल (National Guard) ने उस सारे कार्य का श्रेय, जिसे वह रोक न सका था, लेना प्रारम्भ कर दिया और शोचनीय घटनाओं के लिए डि लौने के विश्वासघात को दोषी ठहराया। राष्ट्रीय सभा और पेरिस के बीच संतोष-जनक समझौता हो गया। ला फायेत (La Fayette) को राष्ट्रीय रक्षक दल का प्रधान तथा बेली (Bailly) को पेरिस का मेयर बनाया गया। पेरिस के आर्चबिशप ने, जो एक प्रतिनिधि था और जिसने एक सप्ताह पूर्व ही तीनों वर्गों के सम्मिलन पर आपत्ति की थी, नोट्रे-डैम (Notre-Dame) में एक ईश्वर-भक्ति का गीत (Te Deum) गाया और वहाँ राजसैनिकों के विद्रोहपूर्ण व्यवहार की प्रशंसा में एक श्रेष्ठ प्रवचन दिया गया।

बेस्टील के पतन की प्रतिक्रिया

तब, राजा से इस समझौते पर स्वीकृति की मुहर लगाने के लिए कहा गया। उसने नेकर को वापस बुलाना और विदेशी सैनिकों को हटा देना पहले ही स्वीकार कर लिया। १७ ता० को राजा पेरिस की ओर चला। उसके पीछे राष्ट्रीय सभा के तीन-चौथाई सदस्य थे और आगे-आगे कुछ मछियारिनें तथा बाजार की स्त्रियाँ थीं। इन स्त्रियों के हाथों में अलंकृत शाखाएँ थीं और वे उसके सामने नाच रही थीं। होटेल डी विले में मेयर तथा नगर प्रतिनिधियों (Electors) ने उसका स्वागत किया। राजा ने मूर्खतापूर्ण मुस्कराहट के साथ एक तिरंगा तमगा पहन लिया। "क्या खूब, वह तो जनसाधारण का आदमी है।" लेकिन कुछ व्यक्तियों ने यह कटु सत्य भी कहा,

१७ जुलाई

---

१. "लोगों को भूसा खाने दो।"

२. "यह अब तक की सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ घटना है।"—सी० जे० फाक्स।

३. "जब एक राजा था, हमें रोटी मिलती थी; अब १,३०० राजा हैं लेकिन हमें कुछ भी नहीं मिलता।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या राजा ने अपने समर्पण-पत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिए हैं।"[1] कुछ समय बाद, यद्यपि इस बीच में उसके मंत्रियों की हत्या की जा चुकी थी, लुई इस बात के लिए सहमत हो गया कि भग्न बेस्टील के स्थान पर उसकी एक मूर्ति खड़ी की जाये। इस पर फैशनेबिल महिलाओं ने, जो कभी पीछे नहीं रहतीं, पुराने किले के पत्थरों को खरीदा और उन्हें आभूषणों की तरह प्रयुक्त किया।

इस तरह "एक सशक्त असत्य द्वारा एक नये युग का जन्म हुआ। स्वतन्त्रता का उसके जन्म के समय ही दम घोट दिया गया।"[2] एक झूठ-मूठ की कार्यवाही को राष्ट्रीय स्वीकृति तथा राजकीय संरक्षण का रूप दे दिया गया। इसका परिणाम हुआ—भयंकर अराजकता।

प्रान्तों की कार्यवाही

यह आशा की जाती थी कि पेरिस के उदाहरण से प्रान्तों में अव्यवस्था फैल जाएगी। प्रान्तों में भी चालीस हजार छोटे-मोटे 'बेस्टील' थे, जिन्हें नष्ट करना था। लोग कुलीनों से पहले ही रुष्ट थे। अकाल के भय ने उनकी रोषाग्नि में घृत का काम किया था। अब वे कुलीनों से बिना किसी दंड-भय के बदला ले सकते थे। पेरिस की तरह यहाँ भी लुटेरों ने अपना करतब दिखाया और सारे देश में आतंक की लहर पैदा कर दी। यह आतंक अकारण ही था और इसने भंयकर-से-भंयकर कार्यों को करने की प्रेरणा दी। इसकी वजह से किसानों को आत्म-रक्षा के लिए शस्त्रसज्जित होना पड़ा। जहाँ किसान एक बार शस्त्रसज्जित हुए, उन्हें कुलीनों से भिड़ाया जा सकता था। उपद्रवकारियों ने इन भयंकर और झूठी अफवाहों का अन्धाधुन्ध प्रचार किया कि कुलीन अन्न को छिपा रहे हैं या पादरी कुँओं में विष डाल रहे हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि राजा ने स्वयं कुलीनों का नाश करने के लिए किसानों की सहायता माँगी है। उन सब लोगों को—जिनमें कर-संग्राहक और वित्तीय अभिकर्त्ता, बिशप और एबीज, मेयर तथा किसान थे, जिन्होंने उपद्रवकारियों में शामिल होना अस्वीकार कर दिया था—पकड़ा गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उनके मकानों को गिरा दिया गया। उपद्रवकारियों के महलों तथा अन्नागारों को जला दिया, लगान के अभिलेख नष्ट कर दिए, धार्मिक गृहों को लूट लिया, जंगलों का नाश कर दिया और खड़ी फसलों को कुचल डाला। इसके फलस्वरूप अकाल, जिससे किसान परेशान थे, और बढ़ा। कुलीन देश छोड कर भाग गये। अधिकारी छिप गए। सारी शासन-व्यवस्था तहस-नहस हो गई और अराजकता की बाढ़-सी आ गई। गाँवों और शहरों में भी पेरिस की देखा-देखी अनौपचारिक 'कम्यूनल' सरकारों की स्थापना की गई, लेकिन वे भी उस समय अशांति और अव्यवस्था को रोकने में असमर्थ रहीं।

और राष्ट्रीय सभा ने क्या किया? बहुत से उदार प्रतिनिधियों को यह समा-

---

१. देखिए, बेली का भाषण : "हेनरी चतुर्थ ने अपनी जनता को जीता था, यहाँ जनता ने अपने राजा को" —वह यह और जोड़ सकता था—"और अपनी संसद् को" जीत रही है।

2. L. Madelin : *The French Revolution.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार सुनकर वेदान पहुँची। कुछ उग्रवादी प्रतिनिधियों को इससे प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने अनुयायियों को और अधिक उत्तेजित करने की कोशिश की।[1] बहुत से लोगों का मिराबो (Mirabeau) की भाँति यह विचार था कि "राष्ट्र को भी अपने शिकार मिलने चाहिए" अन्यथा वह सब कुछ नष्ट कर देगा।

राष्ट्रीय सभा की नीति

अचानक ही ४ अगस्त की रात को—जो आगे चलकर प्रपंच-रात्रि कहलाई—जब कि सभा की कार्यवाही चल रही थी, एक अकिंचन कुलीन, जो अपने परिचितों में 'बेपेंदी के लोटे (Jean Sans Terre) के नाम से प्रख्यात था, और जिसके बारे में लोगों का कहना था कि वह ओर्लियेन्स का एजेन्ट है, बोलने के लिये उठ खड़ा हुआ। उसने कहा कि सारी कठिनाइयों का कारण सामंती करों का घृणित बोझा है और यह आवश्यक है कि उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। इन शब्दों का चामत्कारिक प्रभाव यह हुआ कि प्रतिनिधियों में उदारता की होड़ सी लग गई। उस रात को इतना ज्यादा विधान पास हुआ कि वह अधिवेशन सभा के इतिहास में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया। सभी प्रतिनिधियों ने या तो स्वेच्छा से या अपने पड़ोसियों के दबाव से, वे जो कुछ दे सकते थे, उसे दिया। कुलीनों ने अपने कर त्याग दिए, बिशपों ने अपने टाइथ (Tithe) त्याग दिए, सामंतों (Seigners) ने अपने क्रीड़ा-अधिकार छोड़ दिए, प्रान्तों ने अपने विशेषाधिकारों और नगरों ने अपनी विमुक्तियों (Immunities) को तिलांजलि दे दी। उस रात कुल मिलाकर तीस आज्ञप्तियाँ पास की गईं। इन आज्ञप्तियों (decrees) ने कृषि दासता (Serfdom), सामंती क्षेत्राधिकार, जमींदारी लगान, टाइथ, क्रीड़ा-विधियों, विक्रय योग्य पदों, विषम कराधान और म्युनिसिपल तथा प्रान्तीय अधिकारों को समाप्त कर दिया। सुबह तक आँसुओं तथा आलिंगनों, हर्षोल्लास तथा करतल ध्वनि के बीच एक सामाजिक क्रांति हो चुकी थी।[2] दो-दो कुलीनों ने लुई सोलहवें के लिए धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया और उसे "फ्रांसीसियों की स्वतंत्रता का प्रतिष्ठापक" (Restorer of French Liberty) कहा। सभा ने यह धन्यवाद-प्रस्ताव बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। सभा की कार्यवाही पेरिस के आर्च बिशप के अन्तिम भजन (Te Deum) के साथ समाप्त हुई।

प्रान्तों के लिए सभा का यह उत्तर था। इस तरह लोगों ने यह सोचा कि वे जो चाहें सो कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप अराजकता का बोलबाला हो गया।

अब प्रतिनिधियों ने नये संविधान पर विचार करना प्रारम्भ किया जिसकी फ्रांस उनके निर्वाचन के बाद से ही प्रतीक्षा कर रहा था। ला फायेत (La Fayette) के प्रस्ताव पर उन्होंने अमेरिकी उपनिवेशवादियों की देखादेखी प्रस्ताव के रूप में,

---

१. देखिए सर आर्थर यंग '*Travels*' २४ जुलाई, १७८९ : "क्रान्ति के दौरान एक बदमाश लिखता है और हजारों मूर्ख विश्वास करते हैं।"

२. इसके बावजूद अभी बहुत सामन्ती बोझे मौजूद थे जिन्हें आगे चलकर १७९२ और १७९३ में समाप्त किया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य सिद्धान्तों ने एक विवरण-पत्र को प्रकाशित करने का निर्णय किया। तद-

नये संविधान का निर्माण (जुलाई दिसम्बर १७८९)

नुसार १ अगस्त को उन्होंने मानव-अधिकारों का घोषणापत्र (Declaration of the Rights of Man) प्रकाशित किया। इस घोषणा-पत्र को जिनेवा (Geneva) और फिला-डेल्फिया (Philadelphia) से प्रेरणा मिली थी। यह घोषणा पत्र "सभी मनुष्यों के लिए, सभी कालों के लिए, प्रत्येक देश के लिए और सारे संसार के लिए उदाहरणस्वरूप था।" इसमें कहा गया था कि 'चूंकि सभी मनुष्य समान पैदा होते हैं, अतः उन्हें समान अधिकार मिलने चाहिए।' यह घोषणा-पत्र राजा के प्रति अवहेलना का ही प्रतीक नहीं था। इसने एक ऐसी चीज दी जिसकी सभी मतों और राजनीतिक दलों को आवश्यकता थी और जिसका राजतंत्रवादियों (monarchists) के पास बहुत अभाव था। वह चीज थी—एक सिद्धान्त की व्याख्या, एक कार्यक्रम जिसके इर्द-गिर्द क्रान्ति के सभी समर्थक एकत्रित हो सकें। लेकिन उसकी व्यापकता के कारण लोकतंत्र को

मानव अधिकारों की घोषणा (अगस्त १२, १७८९)

बहुत हानि पहुँची और इसलिए नीति की दृष्टि से वह एक गलत कदम था। प्रथमतः, जैसा कि मिराबो (Mirabeau) ने कहा था, ज्यादा अच्छा यह होता कि लोगों को अधिकारों की नहीं, प्रत्युत नागरिक कर्त्तव्यों की याद दिलाई जाती। दूसरे, इसने कुछ ऐसी आशाएँ पैदा कर दीं, जिन्हें बाद में सभा पूरा न कर सकी और कुछ ऐसी समस्याएँ उठा दीं जिन्हें वह सुलझा न सकी। मनुष्यों के अधिकार "ऐसे रहस्य के समान थे जिन्हें उस समय तक छिपाये रखना चहिए था जब तक कि नया संविधान न बन जाता और वह लोगों को इस स्थिति में न कर देता कि वे बिना किसी खतरे के सुन सकें।" मैलो (Melouet) का यह कहना सही था, "क्योंकर हम मनुष्यों को पहाड़ की चोटी पर ले जाएँ और वहाँ से उन्हें उनके अधिकारों का पूर्ण रूप दिखायें जब कि हम उन्हें नीचे लाने के लिए, मर्यादाओं में बाँधने के लिए और ऐसी दुनिया में रखने के लिए, जहाँ उन्हें पद-पद पर सीमाओं में रहना पड़ेगा, बाध्य हैं?" घोषणा-पत्र में और नये संविधान में अनिवार्य अन्तर्विरोध था जिसके कारण आगे के पाँच वर्षों तक निरन्तर संघर्ष चलता रहा। सभा ने घोषणा-पत्र में वह परदा उठा दिया, जिसके पीछे असम्भव स्वतन्त्रता छिपी हुई थी और उसने संविधान में उस परदे को फिर से गिरा दिया।

१७८९ के अन्त तक नये संविधान का राजनीतिक ढाँचा तैयार हो गया। राष्ट्र की विधायी शक्ति (Legislative Power) एक सदन में विहित की गई। इस सदन का कार्य-काल दो वर्ष रखा गया। यह सदन सार्वभौम मताधिकार (Universal suffrage) द्वारा नहीं प्रत्युत कर देने वाले चालीस हजार से कुछ अधिक निर्वाचकों द्वारा चुना जाता था।[1] केवल वही व्यक्ति, जो कम से कम ५० लिवर कर देते थे

---

१. समानता के प्रश्न को इस तरह टाल दिया गया: 'सब नागरिक समान हैं, लेकिन गरीब निष्क्रिय नागरिक हैं और कर-दाता सक्रिय नागरिक हैं। केवल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जिनके पास जायदाद थी, निर्वाचन में खड़े हो सकते थे। यहीं नागरिक अधिकार प्रोटेस्टेंटों, यहूदियों और उपनिवेशों के निवासियों (mulattoes) को दिये गये। उपाधियों का अन्त कर दिया गया और जनसाधारण के लिए समस्त पदों के दरवाजे खोल दिए गये।

आनुवंशिक राजतंत्र (hereditary monarchy) को कायम रखा गया। राजा की उपाधि 'फ्रांसीसियों का राजा' (King of the French) हो गई। उसे सेना तथा प्रशासन का अध्यक्ष बनाया गया। वह ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारियों को मनोनीत कर सकता था और मंत्रियों को चुन तथा पदच्युत कर सकता था। वह मुद्रा जारी कर सकता था और सभा द्वारा प्राधिकृत होने पर युद्ध की घोषणा कर सकता था। राजा को स्थगन-निषेधाधिकार (suspensory veto) दिया गया था। इस अधिकार द्वारा वह तीन क्रमिक सभाओं के कार्य-काल में किसी भी विधान को छः वर्ष तक के लिए रोके रख सकता था। लेकिन राजा सभा का विघटन नहीं कर सकता था, न वह उसके ऊपर बल का प्रयोग कर सकता था। सभा के चारों ओर के ६० हजार गज के क्षेत्र में सेना का प्रवेश निषिद्ध था। इन मर्यादाओं के बावजूद अधिशासनिक प्रधान होने के नाते, राजा के पास कुछ शक्ति बनी रही। व्यवहार में उसके लिए इस शक्ति का प्रयोग करना कठिन था। उसके पास कर लगाने की शक्ति नहीं थी। वह विधान प्रारम्भ नहीं कर सकता था। उसका विधानमण्डल के साथ कोई सम्पर्क नहीं था। उसका कोई भी मंत्री विधानमंडल का सदस्य नहीं हो सकता था। संविधान-निर्माताओं को कार्यपालिका के ऊपर यह अंकुश लगाने की प्रेरणा मॉंटेस्क्यु (Montesquieu) के सिद्धान्त और अमेरिका के उदाहरण से मिली थी। उसकी नियुक्तियों पर प्रश्न किया जा सकता था, उसके निषेधाधिकार को भीड़ चुनौती दे सकती थी। जनता ने निषेधाधिकार के प्रश्न को बिलकुल नहीं समझा।[1] इस प्रश्न को लेकर कुछ व्यक्ति जन-हिंसा का दूसरा प्रदर्शन करना चाहते थे। ब्रिटेन के प्रतिनिधि, ड्यूक डी ओर्लियन्स (Duke d' Orleans), मिराबों (Mirabeau), जो इस प्रश्न द्वारा शक्ति प्राप्त करना चाहता था और क्रान्तिकारियों का सबसे हिंसक

सक्रिय नागरिकों को ही मत देना चाहिए। जो लोग तीन दिन के काम के बराबर कर देते थे, वे निर्वाचकों (Electors) के लिए मत देते थे। निर्वाचक जो दस दिन के काम के बराबर कर देते थे, प्रतिनिधियों को चुनते थे। इस प्रकार मनुष्य के समान अधिकारों के ऊपर तुरन्त परदा डाल दिया गया था। कॅंडोर्सेट (Condorcet) ने सार्वभौम मताधिकार (Universal suffrage) और स्त्रियों के अधिकार का प्रस्ताव अवश्य किया था।

१. जनवक्ता कहते थे, क्या तुम्हें मालूम है कि निषेधाधिकार का क्या अर्थ है ? सुनो ! तुम घर जाते हो। तुम्हारी स्त्री ने तुम्हारे लिए खाना बनाया है। राजा कहता है—निषेधाधिकार। अब तुम्हें खाना नहीं मिलेगा। स्थगन निषेधाधिकारों को अकाल के लिए दोषी ठहराया गया। कहा गया कि उनके द्वारा कुलीन लोग अन्न अपने पास रोके रखते हैं।

—*Quoted by* L. Madelin : *The French Revolution.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग, जिसका विचार था, क्रान्ति का दूसरा दौर जरूरी है—इन सबने पेरिस से वर्साय तक स्त्रियों का अभियान' (March of Women) संगठित किया। अन्न का अभाव तो पहले से ही था। १ अक्टूबर को कुछ राजभक्तों ने प्रदर्शन किया। इससे 'स्त्रियों के अभियान' का आधार मिल गया। ४ अक्टूबर से ६ अक्टूबर तक वर्साय, सभा और राज-परिवार स्त्रियों की भीड़ के हाथों में रहे। बहुत से पुरुषों ने भी स्त्रियों का वेश बना रखा था। वे सब वर्साय से पेरिस तक रोटी-रोटी चिल्लाती हुई आईं। उन्होंने राज-प्रासाद को घेर लिया। वे रानी के टुकड़े-टुकड़े कर डालने के लिए उत्सुक थीं और ५ अक्टूबर को ऐसा कर भी डालतीं लेकिन रानी के शरीर-रक्षकों ने उसकी रक्षा की। सभा को एक बार फिर भीड़ की हिंसा का उतना नहीं, जितना रानी की कूटनीति का डर लगा। इसके परिणाम-स्वरूप वह पुनः उपद्रवकारियों के हाथों में खिलौना बन गई और कई खराब दृश्य हुए। ला फायेत (La Fayette) भी अपने राष्ट्रीय रक्षक दल को लेकर पेरिस से आ गया था। कहा नहीं जा सकता कि दुर्बलता से या कूटनीति के कारण, वह भी उनके हाथों में खिलौना बन गया। उसके सुझाव पर ६ ता० को स्त्रियाँ पेरिस की ओर वापस लौटीं और उनके साथ राज-परिवार—'रोटीवाला, रोटी वाले की स्त्री और रोटी वाले का पुत्र' (the baker, the baker's wife and the baker's son) भी चला। उस दिन से राजा अपने लोगों के हाथों कैदी-सा बन गया और उसकी स्वतंत्रता दिन-प्रति-दिन कम होती गई। राजा के पीछे-पीछे सभा भी राजधानी में आ गई। अब सभा पर भीड़ का जिसकी, "बर्छी नीति" ('Pike' methods) स्पष्ट होने के साथ-ही-साथ, कारगर भी होती थी, और भी अधिक प्रभाव पड़ गया।

'स्त्रियों का अभियान' (अक्टूबर १७८९)

नये संविधान के निर्माण के पश्चात् सभा ने प्रशासनिक पुनर्गठन की ओर ध्यान दिया। इंटेंडेंटों (Intendants) और पुराने प्रान्तों को समाप्त कर दिया गया और उनके स्थान पर ८५ डिपार्टमेंटों की स्थापना हुई। प्रत्येक डिपार्टमेंट के शासन के लिए एक निर्वाचन परिषद् की व्यवस्था की गई। पुरानी पार्लमेंटों (Parlements) के स्थान पर क्रमबद्ध न्यायालयों (graded courts) की स्थापना हुई। इसके न्यायाधीश संक्षिप्त कार्यालय के लिए ही निर्वाचित हुआ करते थे। पुराने कार्पोरेशनों और नई प्रान्तीय एस्टेटों को समान रूप में समाप्त कर दिया गया। वर्तमान प्रशासन के इस आमूल परिवर्तन की काफी आलोचना हुई। मिराबो के शब्दों में, "राज्य के विघटन की इससे बेहतर योजना नहीं बन सकती थी।" इसके परिणामस्वरूप अधिशासनिक सत्ता सारे देश में बहुत कमजोर हो गई। इसके तीन फल हुए। पहला तो यह कि अनौपचारिक कम्यूनों और राष्ट्रीय गार्डों का, जो सारे फ्रांस में पैदा हो गए थे अत्याचार बहुत बढ़ गया। दूसरे, इसकी वजह से '९३ का प्रातंक हुआ। तीसरे, इसने नेपोलियन की अधिनायकता (dictatorship) का पथ प्रशस्त कर दिया।

प्रशासनिक सुधार

इस बीच आर्थिक सवाल बहुत उग्र हो गया था और अब तक उसके समा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धान की कोई चेष्टा नहीं की थी गई। सरकार को अब और अधिक ऋण नहीं मिल सकते थे। अब कर भी ज्यादा नहीं लगाये जा सकते थे। कुछ देशभक्तों ने दान दिये, लेकिन वह राशि भी बहुत कम थी। दिवालियापन अब फिर दरवाजे तक आ गया था। सभा के सामने यह ऐसी समस्या थी जिसे और अधिक नहीं टाला जा सकता था। एक-एक करके कई योजनाएँ बनाई गईं, लेकिन अमल किसी पर नहीं हुआ। अब धन का केवल एक ही स्रोत था—चर्च की सम्पत्ति। टाइथ को समाप्त कर दिया गया था, चर्च की सम्पत्ति को भी क्यों न समाप्त कर दिया जाए? कैथोलिक विरोधी लोगों ने इस प्रस्ताव का सहर्ष समर्थन किया। उदार सिद्धान्तवादियों ने कहा कि चर्च की संचित निधि जनता के हित में प्रयुक्त होनी चाहिए। १० अक्टूबर को ऑटन के सनकी और चालाक बिशप टेलीरांड (Talleyrand) ने प्रस्ताव किया कि चर्च की सम्पत्ति राज्य के प्रयोग के लिए छोड़ दी जानी चाहिए। मिरावो (Mirabeau) ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। आखिर में लम्बे और उग्र वाद-विवाद के पश्चात् यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इस प्रस्ताव के पक्ष में ३६८ और विपक्ष में ३४६ मत आये। ३० सदस्यों ने मतदान में भाग नहीं लिया और ३०० सदस्य, जो प्रायः सभी दक्षिण पक्ष के थे, मतदान में उपस्थित नहीं हुए।

आर्थिक नीति

लेकिन इतनी बड़ी सम्पदा को धन के रूप में बदल लेना कोई आसान काम नहीं था।[1] चर्च की सम्पत्ति का अर्जन शुरू-शुरू में सहायक होने की अपेक्षा बाधक ही अधिक सिद्ध हुआ। इसलिए म्युनिस्पैलिटियों की सहायता से, जो चर्च की जमीन को खरीदने के लिए तैयार थीं, चर्च की सम्पदा के आधार पर नोट निकालने का निश्चय किया गया। यही सुप्रसिद्ध एसाइनेट (Assignate) थे जो प्रारम्भ में तो चर्च की सम्पत्ति पर धरोहर (mortgage) थे लेकिन शीघ्र ही कागज की नियमित करेंसी बन गए। वे हर किसी के हाथ में गए और उन्होंने नई व्यवस्था को स्थायित्व देने में बहुत मदद की। हेनरी अष्टम (Henry VIII) ने इंग्लैंड के मठों की जमीनें कुलीनों को दे-देकर सुधार आन्दोलन को सफल किया था। राजनीतिक दृष्टि से फ्रांस में यह व्यवस्था हेनरी अष्टम की व्यवस्था से ज्यादा सफल हुई। लेकिन आर्थिक दृष्टि से उसने देश को दिवालिया बना दिया। शुरू-शुरू में यह इरादा था कि केवल जमीन के आधे मूल्य के नोटों को ही जारी किया जाए। लेकिन आगे चलकर यह इरादा छोड़ दिया गया। १७९० में जहाँ ४०,००,००,००० नोट निकलते थे, १७९६ में उनकी संख्या बढ़कर ४,५०,००,००,००,००० हो गई। इसके परिणामस्वरूप उनका मूल्य कुछ नहीं

एसाइनेट

---

१. चर्च की जमीन में बाद में राजमुकुट की जमीन, राजा की व्यक्तिगत जमीन और प्रवासी कुलीनों की जमीन भी जोड़ दी गई। इस तरह सभा के पास काफी जमीन आ गई और इसका प्रबन्ध करना बड़ा मुश्किल था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा।[1]

चर्च की सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण से दो समस्याएँ और उठ खड़ी हुईं बहुत से धार्मिक सदन गरीबों की देखभाल करते थे। उनका विघटन हो जाने से गरीबों की देखभाल का भार, जैसा कि १६ वीं शताब्दी में इंग्लैंड में हुआ था, देश के ऊपर आ पड़ा। चर्च की उस "निकृष्ट और भयानक दान दया के स्थान पर" जो लोगों में "अकर्मण्यता और धर्मान्धता पैदा करती थी" राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने ऐसी कर्मशालाएँ स्थापित करने का निश्चय किया जो "राज्य के लिए उपयोगी सिद्ध हों और जिनमें निर्धन अपने परिश्रम के फलस्वरूप जीविका उपार्जित करें। इस तरह उन लोगों को छोड़कर जो निर्धन बने रहना चाहें, और कोई निर्धन नहीं रहेगा।" यह तर्क परिचित है। मई, १७९० में ११,८०० कर्मचारी इन परोपकारी कर्मशालाओं (charity workshops) में थे। अक्टूबर में उनकी संख्या बढ़कर १८,८०० हो गई और उनके ऊपर १,५०,००,००० लीवर धन खर्च हो चुका था।

सामाजिक परिणाम

दूसरा प्रश्न, पादरियों के निर्वाह का था क्योंकि अब उन्हें जीविका के लिए धर्मस्व (Endowments) मिलने बन्द हो गए थे। इसके परिणामस्वरूप सिविल

---

१. एसाइनेटों के परिचालन से ऋण और मुद्रा की वे सुविधाएँ बढ़ गईं जिनकी फ्रांस को इतनी आवश्यकता थी। फ्रांस में बैंकिंग व्यवस्था का कभी विकास नहीं हुआ था। इसकी वजह से चर्च और राजमुकुट की विशाल सम्पदाएँ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में किसानों, पूँजीपतियों और व्यापारियों के हाथों में आ गईं। इस प्रक्रिया ने सामन्ती उलझनों से मुक्त उन छोटी-छोटी सम्पदाओं का निर्माण कर दिया जिन्हें क्रान्तिकारी व्यवस्था की गारण्टी मिली हुई थी। फ्रांस की अर्थ-व्यवस्था में इन सम्पदाओं का उस समय से अब तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भूमि का यह पुनर्वितरण ही क्रांति का आधार था। पुरानी शासन-व्यवस्था के पुनरुद्धार को रोकने में छोटे-छोटे सम्पदाधारियों का विरोध सबसे अधिक निर्णायक सिद्ध हुआ। ये सम्पदाएँ राष्ट्र की स्थिरता का भी आधार रही हैं। इनके कारण ही राष्ट्र उन्नीसवीं शताब्दी के राजनैतिक उतार-चढ़ावों को सुगमता से सहन कर सका है। यह एक ऐसा राजनैतिक तत्त्व रहा है जिसका पूरा महत्त्व कई दशकों तक नहीं समझा गया। इसके अतिरिक्त नई कागजी मुद्रा और जमीन की काश्त को दिये गये नये प्रोत्साहन ने, जिसकी ओर सामंती युग में कभी ध्यान नहीं दिया गया, राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में नये प्राण फूँक दिये। अर्थ-व्यवस्था के इस पुनर्गठन के कारण ही क्रांतिकालीन और नैपोलियनकालीन युद्धों का भार सहन किया जा सका था। लेकिन, इसके लिए फ्रांस को मंहगी राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक कीमत चुकानी पड़ी थी। इस सारी जमीन पर नाजायज तरीकों से कब्जा किया गया था। समाज के वे वर्ग, जो अपने को नई अर्थ-व्यवस्था के अनुकूल नहीं ढाल सके थे, संकट में पड़ गए। देश में मुद्रास्फीति अत्यधिक बढ़ गई और मुद्रा की कीमत गिर गई। क्रान्ति से पहले या उसके बाद फ्रांसीसियों ने पहली बार ही यह नहीं सीखा कि भूमि निधियों की अपेक्षा ज्यादा अच्छा विनियोग है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक परिणाम

कांस्टीट्यूशन ऑफ दी क्लर्जी (Civil Constitution of the Clergy) की रचना हुई। इसने फ्रांस के चर्च का इस तरह से पुनर्गठन किया कि वे पादरी, जिनकी सम्पत्ति पहले ही छीन ली गई थी, बिलकुल समाप्त से ही हो गये। इससे फ्रेंच जनता का एक बहुत बड़ा भाग नाराज हो गया। राजा ने भी इसका विरोध किया। यद्यपि पादरी अब तक क्रान्ति के मूल्यवान सहायक रहे थे, लेकिन 'सार्वजनिक उपासना के बजट (Budget of the Public Worship) ने

सिविल कांस्टीट्यूशन ऑफ दि क्लर्जी

१७८९ से भी पुराने विरोधों को उत्पन्न और प्रकट किया। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के पीड़ित ह्यूगेनॉट (Huguenots) जेन्सेनिस्ट (Jansenists) और गेलिकन्स तथा अठारहवी शताब्दी के संदेहवादियों (Sceptics) और अनुमानवादियों (Deists)—इन सबने मिलकर सिविल कांस्टीट्यूशन ऑफ क्लर्जी का निर्माण किया, इस व्यवस्था द्वारा चर्च के सभी अधिकारी राज्य के वैत-

प्रतिक्रिया-क्रान्ति के शत्रुओं में वृद्धि

निक कर्मचारी हो गए। पहले धार्मिक क्षेत्र (Dioceses) बहुत अनियमित ढंग के थे। अब उनके स्थान पर नियमित विभागों की स्थापना की गई। बिशपों तथा पादरियों का निर्वाचन तथा काफी हद तक नियंत्रण उन असैनिक अधिकारियों के हाथों में रखा गया जो निश्चितत: कैथोलिक नहीं होते थे। इस तरह, सिविल कांस्टीट्यूशन वास्तव में एक प्रशासनिक सुधार, एक राजनीतिक उपाय था। उसने फ्रांस और पोप शाही के १५१६ के समझौते को समाप्त कर दिया। निर्वाचन के सिद्धान्त के सम्बन्ध में वह प्रारम्भिक चर्च की ओर प्रत्यावर्तन था।

लेकिन, इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस का चर्च राज्य का एक विभाग बन गया और देश की सम्पूर्ण कैथोलिक जनसंख्या नाराज हो गई। जब सभा ने उसे पास कर दिया, उसके १५ दिन बाद राजा ने उस पर स्वीकृति दी और तत्पश्चात् वह पश्चात्ताप में डूब गया। इससे प्रान्तों में अव्यवस्था फैल गई। नवम्बर की एक आज्ञप्ति ने सभी पादरियों के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वे राज्य तथा संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लें। यह तो कैथोलिक फ्रांस और कैथोलिक यूरोप के मुँह पर सीधी चुनौती थी। प्राय: आधे पादरियों ने शपथ लेना अस्वीकार कर दिया। बिशपों में चार को छोड़ और किसी ने शपथ नहीं ली। इन चार बिशपों में भी एक तो टेलीरेंड (Talleyrand) था और दूसरा ब्रिएन (Brienne) था जो लुई का मंत्री रह चुका था। मार्च और अप्रैल १७९१ में पोप ने सिविल कांस्टीट्यूशन की निन्दा की और उसके आदेश को राजा, पादरी तथा आधा फ्रांस मानने के लिए और सभा का प्रतिरोध करने के लिए तैयार थे। सिविल कांस्टीट्यूशन ने क्रांति को और उसके शत्रुओं को बिल्कुल आमने सामने कर दिया।

इसने सभा के लिए संकट का दूसरा युग पैदा कर दिया।[1] सभी ओर खतरे

---

१. संकट का पहला युग मई और जून १७८९ में उत्पन्न हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कठिनाइयाँ थीं। नेकर (Necker) ने त्याग-पत्र दे दिया था और देश को निराशा की भँवर में छोड़ दिया था। राज्य के बहुत से वर्ग नष्ट हो गये थे और असंतुष्ट थे। पार्लमेंटें उनके विनाश का विरोध कर रही थीं। व्यापारी नये विनियमों (regulations) से हक्के-बक्के हो गये थे। प्रान्त परेशान थे, चर्च विद्रोही था। आधी दूकानें और तिहाई कारखाने बन्द हो गये थे। निर्धनता और आर्थिक अराजकता बढ़ रही थी। देश राजनीति से थक गया था और वह अपने सामान्य कार्य-व्यापार की ओर फिर से लौट जाना चाहता था। केमाइल डेस्मौलिन्स (Camille Desmoulins) अपने पत्र *Les Revolutions de France Brabant et de Brabant* द्वारा विद्रोह भड़का रहा था। मरत (Marat) अपने पत्र *'L' Ami du Peuple'* माध्यम से सिरों की माँग कर रहा था। फ्रांस के सभी क्षेत्रों से सभा के खिलाफ शिकायतें आ रही थीं। कुछ लोग कह रहे थे कि सभा बहुत आगे बढ़ गई है, कुछ कह रहे थे कि वह अभी पर्याप्त आगे नहीं बढ़ी है। कुछ लोगों को शिकायत थी कि उसने छोटे पादरियों (Cahiers) की उपेक्षा कर दी है और लोगों को कोई सुख नहीं पहुँचाया है।

संकटपूर्ण महीने (जनवरी-जुलाई, १७९१)

वदनाम और क्लान्त सभा में स्वयं ही फूट थी। सभा में बायीं ओर ब्रिटन के प्रतिनिधि बैठते थे। वे उग्र कार्यवाही के लिए जोर दे रहे थे। वे आदेशों के लिए सभा से बाहर जैकोबिन क्लब (Jacobin club) के ऊपर निर्भर रहते थे। जैकोबिन क्लब उग्रवादियों का क्लब था। वह फ्रांस का सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक क्लब था। वह मूल ब्रिटन क्लब से बना था। उसका कार्यालय जैकोबिन के गिरजे में था। इसलिए उसका नाम जैकोबिन क्लब पड़ा। राजधानी में उसके १,१०० सदस्य थे। उसकी ४०० शाखाएँ सभी प्रान्तों में फैली हुई थीं। वह शीघ्रता से पेरिस तथा देश दोनों में सार्वजनिक मत का प्रमुख केन्द्र होता जा रहा था। सभा के रूढ़िवादी और उदार सदस्य उसकी कार्यवाहियों से हट रहे थे। अक्टूबर, १७८९ में मोनियर (Mounier) ने, जो मई और जून का प्रबल उच्चात्मा क्रांतिकारी था, जिसने टेनिस कोर्ट की शपथ का प्रस्ताव किया था और जो 'अक्टूबर दिवसों' में सभा का अध्यक्ष रहा था, सभा की सदस्यता त्याग दी, और अपने साथियों से अपने उदाहरण का अनुसरण करने के लिए कहा, अपने प्रान्त डौफाइन (Dauphine) में विद्रोह करवाने की चेष्टा की और फिर अन्त में वह बर्छियों के शासन (Rule of the pikes) के विरोधस्वरूप देश छोड़कर भाग गया। अप्रैल १७९१ में सभा के अध्यक्ष मिराबो (Mirabeau) की मृत्यु हो गई। इससे सभा की अपरिमित क्षति हुई। मिराबो भावनाओं, अन्तर्दृष्टियों, तूफानों, जेलों, ऋणों, रोग और अवगुणों का व्यक्ति था। उसकी कुरूपता ही उसकी शक्ति थी। मृत्यु के समय उसकी अवस्था ४२ वर्ष की थी। अत्यधिक कार्यव्यस्तता और उग्रताओं ने उसको असमय में ही काल-कवलित कर दिया। वह क्रूर पिता का दुर्दमनीय

सभा

मिराबो की मृत्यु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र था। वह राजनीतिक आक्रमणों और अश्लील व्यंगों का धनी था। वह स्वभाव से अक्खड़, सनकी, महत्त्वाकांक्षी, कटु और उग्र था। फिर भी वह क्रांति का सबसे महान् व्यक्ति था। वह सिद्धान्तवादी नहीं था, किसी नीति का दास नहीं था। वह किसी नियमित दल का नेता भी नहीं था। लेकिन, वह एक व्यावहारिक, स्पष्टदर्शी और दूर-दर्शी व्यक्ति था। उसने किसी निश्चित नीति का पालन नहीं किया। उसे राज-दरबार से कुछ पैसा अवश्य मिलता था, लेकिन वह राज-दरबार के हाथों बिक नहीं गया था। वह अपनी ही शक्ति के लिए रानी की भी खुशामद कर सकता था और भीड़ की भी। वह निरंकुशता का निंदक लेकिन राजतन्त्र का प्रतिपादक था। वह वैधानिक स्वतन्त्रता का समर्थक था, लेकिन शक्तिशाली कार्यपालिका भी रखना चाहता था। वह एक पतनशील समाज में अद्भुत प्रतिभा का व्यक्ति था। मिराबो ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति था, जो सभा तथा राज-दरबार में समन्वय रख सकता था। उसने पुराने फ्रांस को जड़ से हिला दिया था और ऐसा लगता था कि वह उसे जो, अभी तक धराशायी नहीं हुआ था, अपने अकेले हाथों से थामे हुए था। सभा की ईर्ष्या ने उसे मन्त्रालय से दूर रखा था, दरबारियों के संदेह ने उसे राज-परिषदों से पृथक् रखा था। लेकिन अन्त में उसने दोनों को ही जीत लिया था। जब उसकी मृत्यु हुई, पेरिस ने तीन दिन तक शोक मनाया। उसकी मृत्यु पर डिप्टियों ने रुदन किया। उसकी श्मशान-यात्रा में, जो ६ मील लम्बी थी, राजा के प्रतिनिधि, जैकोबिन क्लब के प्रतिनिधियों के साथ-ही-साथ शामिल हुए थे। पुराना फ्रांस उसके साथ ही दफना दिया गया। उसने कहा था, "मैं राजतन्त्र के अन्तिम अवशेषों को अपने साथ ही लिये जा रहा हूँ।" नये फ्रांस ने एक दूरदर्शी कर्णधार खो दिया। उसका कहना था, "मैं बिलकुल स्पष्टता से देख रहा हूँ कि हम अराजकता के बीच में हैं और उसमें प्रतिदिन अधिकाधिक नीचे धँसते जा रहे हैं।" मोनियर (Mounier) की भाँति ही अपने किये हुए पर उसे पश्चात्ताप था। "मुझे इस विचार से आन्तरिक वेदना होती है कि मैंने केवल महानाश में सहायता दी है।" यदि वह जीवित रहता तो यह सम्भव था कि राजतन्त्र को बचा लेता और क्रांति को वैधानिक रास्ते पर मोड़ देता।

मैडेम डी कैम्पन (Mme de Campan) ने व्यंगात्मक ढंग से कहा था कि "मिराबो अपने को एक एटलस समझता था।" यह सही है कि उसकी मृत्यु के बाद ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहा जो उसके बोझे को सम्हाल सकता। ला फायेत (La Fayette) वीरता, आदर्शवाद और अनिश्चय का सम्मिश्रण था। उसकी उसके राष्ट्रीय रक्षक दल ने ही अवहेलना की। नियमित सेनाओं ने विद्रोह कर दिया था। अक्टूबर, १७८९ के पश्चात् सेनाओं में अवज्ञा की लहर-सी आ गई थी। नैन्सी (Nancy) का विद्रोह इसका चरमोत्कर्ष था। महत्त्वाकांक्षी तरुण अधिकारियों और लोकतन्त्रात्मक सार्जेन्टों ने एक के बाद दूसरे विद्रोह का नेतृत्व किया था। उन्होंने अपने से ऊँचों को जेल में डाला, साथियों को छुड़ाया, फ़ौज के कोष को छीना, अफसरों का अपमान किया और सामान्यतः सत्ता की अवज्ञा की। सभा ने शिथिलता की नीति अपनायी, जिससे विद्रोहियों को और भी प्रोत्साहन मिला। सभा सिपाहियों को नये आदर्श के प्रति राजभक्त बनाना चाहती थी। अतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने उन्हे क्रान्ति पर्व में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए आमन्त्रित किया। यह पर्व बेस्टील के पतन की पहली सालगिरह के रूप में मनाया गया था। यह एक शानदार भावना का विकृत रूप था। राष्ट्रीय रक्षक दल की सभी शाखाओं के साठ हजार प्रतिनिधि पेरिस में एकत्रित हुए। स्वयंसेवकों, पादरियों, सैनिकों और चंचल स्त्रियों, सबने मिल कर चैम्प डी मार्स (Champ de Mars) में मिट्टी की एक विशाल रंगशाला बनाई। रंगशाला के बीच में 'ला पैट्री (La Patrie) के लिए भव्य वेदी बनाई। इस उपलक्ष्य में झंडियाँ लगाई गईं, फूल बिखेरे गये, सैनिक प्रदर्शन हुए, जुलूस निकाले गये और तोपें छोड़ी गईं। आटन के सुप्रसिद्ध बिशप टेलीरैंड (Talleyrand) ने चार सौ पादरियों के साथ, जो श्वेत वस्त्र (surplices) और तिरंगे लबादे (stoles) पहन रहे थे. कोरस गाया और इस प्रकार जनता का मनोरंजन किया। राजा ने संविधान की रक्षा की शपथ ली। रानी ने उस समय के उत्साहजनक वातावरण से प्रभावित होकर शिशु राजकुमार को बाहर निकाला जिसका जनता ने करतल ध्वनि से स्वागत किया। यह राजा के लिए नहीं, प्रत्युत ला फायेत (La Fayette) के लिये विजय का दिन था। राजा तो पृष्ठभूमि में पड़ गया था। लाफायेत हिलते हुए झंडों और चमकती हुई तलवारों के बीच वेदी पर खड़ा हुआ। उसके हाथ में शपथ-पत्र था। उस समय ला फायेत क्रान्ति का रक्षक ही मालूम पड़ता था। इस अवसर पर नियमित सेनाओं के प्रतिनिधि राष्ट्रीय रक्षक दल के साथ खूब हिल-मिल गये थे। अब जब वे अपने रेजीमेंट को वापस लौटे, तो पहले से भी अधिक विद्रोही थे। मेट्स सीमान्त पर बोइल के दस्ते उस पंक्ति के अंतिम राजभक्त रेजीमेंट थे। विद्रोह की छूत उन्हें भी लग गई थी। सेना अब बिलकुल अनुशासनहीन थी। वह राजा के लिए बेकार थी और सभा के लिए कष्टप्रद थी। अब कुछ लोग इस प्रश्न पर विचार करने लगे थे कि क्या विदेशी युद्ध से सेना में अनुशासन लाया जा सकता है?

क्रान्ति-पर्व (१४ जुलाई १७९०)

यद्यपि सभा किसी विदेश-नीति का अनुसरण करने के लिए तैयार नहीं थी, लेकिन वह इच्छा न होने पर भी वैदेशिक समस्याओं के भँवर में फँस गई थी। यूरोप के हस्तक्षेप की सम्भावना भी प्रतिदिन प्रबल होती जा रही थी। यूरोप की शक्तियाँ कुछ अन्य प्रश्नों में उलझी हुई थीं। सभा ने भी अभी तक शान्ति की नीति अपनाई थी। फलतः, युद्ध एक वर्ष के लिये और टल गया, लेकिन उसके बीज बोये जा चुके थे। जर्मन शासकों के एल्सेस (Alsace) प्रान्तों में कुछ सामन्ती अधिकार थे। फ्रांस ने उन्हें समाप्त कर दिया था। इससे फ्रांस और जर्मन साम्राज्य के बीच कुछ तनाव पैदा हो गया था। सिविल कॉंस्टीट्यूशन तथा एविग्नान के जबरदस्ती मिला लेने (Annexation) से पोप नाराज हो गया था। कुलीन भी चोटें सहते-सहते तंग आ गए थे और वे ज्यादा-से-ज्यादा संख्या में देश छोड़कर भाग रहे थे। ये कुलीन कॉम्टे डी आर्टोयस (Comte d' Artois) के नेतृत्व में संगठित हो रहे थे। कॉम्टे डी आर्टोयस पहले तो वर्साय (Versailles) में उपद्रव मचाता रहता था। फिर वह तूरिन (Turin) चला गया था और वहाँ से कॉब्लेंज (Coblenz) आ गया था।

विदेश-नीति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी कुलीन फ्राँस की सीमा पर जमा होकर या तो आमोद-प्रमोद करते रहते थे या क्रान्ति के विरुद्ध सहायता पाने के लिए विदेशी राज-दरबारों से साँठ-गाँठ करते रहते थे। उनका व्यवहार सहानुभूति के स्थान पर उपहास ही ज्यादा पैदा करता था। लेकिन सभा इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि राजा या रानी का एक शब्द तक, इन गौरवहीन प्रयत्नों को एक भयंकर संकट का रूप दे सकता था। इस तरह सभा के तीर सभी क्षेत्रों से विषाक्त और नुकीले होकर उसके पास ही वापस आ रहे थे। लेकिन, सबसे बड़ा खतरा राज-दरबार की ओर से आया। वहाँ काफी दिनों से एक ऐसी योजना तैयार हो रही थी जिसकी सफलता या विफलता पर क्रान्ति का भाग्य निर्भर था।

राज-परिवार का पलायन (जून १७८९)

राजा ने १७८९ के ग्रीष्म काल में क्रान्ति का विरोध करने की दो-एक निर्जीव और निष्फल चेष्टाएँ की थीं लेकिन बाद में उसने कथा डाल दिया था और क्रान्ति को अपने स्वाभाविक प्रवाह पर छोड़ दिया था। उसके इस व्यवहार का कारण मुख्य रूप से यह था कि वह अपने प्रजाजनों की इच्छा को समझना चाहता था। लेकिन अधिकांश लोगों को उसका यह व्यवहार घृणायोग्य ही जान पड़ा। जुलाई में बेस्टील के पतन पर वह मुस्करा दिया था। उसने उन स्त्रियों की माँगों को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था जो उसे अक्टूबर में पेरिस खींच कर ले गई थीं। टुइलेरीज़ (Tuileries) में उसने राजनीतिक अवकाश ग्रहण कर लिया था। वहाँ से सभा उसे कभी-कभी क्रान्ति-उत्सव में भाग लेने के लिए, जनता का उत्साह बढ़ाने के लिए और राष्ट्रीय आज्ञप्तियों पर स्वीकृति देने के लिए बुलाती थी। ऐसे अवसरों पर लुई का स्नेहपूर्ण स्वागत होता था और उसे 'सर्वश्रेष्ठ राजा' (best of kings) कहा जाता था। लेकिन लुई राजभक्ति की इस अभिव्यक्ति से कोई लाभ नहीं उठा सका।

लेकिन मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette) का सचेष्ट मस्तिष्क योजनाएँ बनाने में तल्लीन था। वह मिराबो (Mirabeau) तथा ला फायेत (La Fayette) पर विश्वास नहीं करती थी हालाँकि दोनों ही उसकी सहायता कर सकते थे। सेनाओं पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता था। अब उसे केवल अपने भाई सम्राट लिओपोल्ड (Leopold) का ही भरोसा था। लेकिन लिओपोल्ड बहुत चतुर था। वह उस समय तक कोई कदम नहीं उठा सकता था। जब तक कि लुई उससे सीधे अपील न करता। लुई के बारे में ऐसा लगता था कि उसने क्रान्ति को स्वीकार कर लिया है। वह अब तक तो शान्त रहा था, लेकिन सिविल कांस्टीट्यूशन ऑफ दी क्लर्जी (Civil Constitution of the Clergy) ने उसे क्रान्ति-विरोधी बना दिया। अब रानी की योजना को उसने अपनी योजना बना लिया और सम्राट से सहायता की प्रार्थना की। राजा या रानी में से कोई यह तो नहीं चाहता था कि फ्रांस के ऊपर नियमित आक्रमण हो। राजा मुख्य रूप से अपनी स्वतन्त्रता चाहता था। उसकी स्वतन्त्रता दिन-प्रतिदिन सीमित होती जा रही थी। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए रानी तथा उसके कुछ शुभेच्छुओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने योजनाएँ बनाना और तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन गुप्तचर और शत्रु सभी तरफ थे। राजा के अपने सेवक राष्ट्रीय रक्षक दल की पोशाक पहनते थे। रानी की वस्त्र-परिचारिका (Mistress of the Wardrobe) ने उसकी तैयारियों का भंडा-फोड़ कर दिया। राज-दम्पति अपने ही महल में बन्दी थे। भीड़ उनकी गति-विधियों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। राष्ट्रीय रक्षक दल उनके कार्यों में बाधा डालता था। राष्ट्रीय सभा भी उन्हें परेशान करती थी। राजा के लिए यह आवश्यक था कि वह बड़े दिन को एक वैधानिक पादरी से पूजा-पाठ करवाये। लुई को यह साफ दिखाई देने लगा था कि अब उसे यूरोप के राजाओं को एक परिपत्र लिखकर उनसे अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। लुई बहुत निराश हो गया था। अब उसने भाग जाने का निश्चय कर लिया था। दर्शकों को लगता था कि लुई अपने अपमान की पराकष्ठा पर पहुँच गया है। लेकिन अभी तो और भी अधिक अपमान हो सकता था।

२० जुलाई को अन्तः पुररक्षक (Valet de chambre) ने शोर मचाया। राजा रानी तथा उनके बच्चों के शयन-कक्ष खाली पड़े थे। फौरन ही खतरे की घंटी बजा दी गई। इस समय, जब कि पेरिस आतंक, रोष, क्रोध और अशिष्टता में डूबा हुआ था और मालिनें तथा सड़क के लड़के बड़ी उत्सुकता से टुइलेरीज़ (Tuileries) की ओर जा रहे थे, एक बहुत बड़ी गाड़ी जिसमें बैरनेस डी कोर्फ (Baroness de Korff) उसका परिवार, परिचारिका, यात्रा साथी और प्रबन्धक था, पूर्व की ओर शेम्पेन की धूल भरी सड़कों पर बढ़ी चली आ रही थी।[1] राज-परिवार सीमान्त की ओर जा रहा था। शैलोन्स (Chalons) गुजर गया और अब सुरक्षा दिखाई देने लगी थी। मोंट-मेडी (Montmedy) के पास ही बुली (Bouille) का रेजीमेंट था और यह आशा की जाती थी कि वह राज-परिवार को सुरक्षित ढंग से लिवा जाने के लिए कुछ घुड़-सवार भेज देगा। बुली (Bouille) की सेनाएँ अपनी पीठ पर होने पर लुई सभा से अपनी मनचाही करवा सकता था। घुड़सवार भेज दिये गये लेकिन कुछ तो वे पहले से ही विद्रोही थे और कुछ जिन-जिन गाँवों से होकर वे गुजरे, वहाँ के लोगों ने उन्हें बरगला दिया। राजा की धीरे-धीरे चलने वाली गाड़ी ने लोगों के मन में संदेह कर दिया। ज्यों-ज्यों वह गाड़ी सेंट मेनेहोल्ड (Sainte-Menehould) के रास्ते पूर्व की ओर बढ़ रही थी, पोस्ट मास्टर के पुत्र तरुण द्रुएत (Drouet) ने रातरात में एर्गोनीज

१. गाड़ी में बैरनस डी कोर्फ (राजकुमारों की शिक्षिका श्रीमती टूज़ोल) दो बच्चे, परिचारिका (जिप्सी हैट पहने रानी), एक यात्रा साथी (राजा की बहन मैडेम एलिजाबेथ) और प्रबन्धक (राजा) थे। राजा का भाई काम्टे डी प्रोवेन्स (Comte de Provence) उसी रात को पेरिस से भाग गया था और एक भिन्न रास्ते से सुरक्षित ही सीमान्त तक पहुँच गया था। यदि राज-परिवार का पलायन योग्य हाथों में रहता और सब सदस्य अलग-अलग बिना सेनाओं और साज-सज्जा के यात्रा करते तो वह सफल हो जाता। काम्टे डी आर्टोयस (Comte d' Artois) बेस्टील के पतन (१७८९) के बाद ही चला गया था। राजा की चाची १७९१ के प्रारम्भ में चली गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Argonnes) को पार किया।[1] उसकी यह अश्व यात्रा ऐतिहासिक थी क्योंकि उसने फ्रांस तथा क्रान्ति का भाग्य निर्णय कर दिया। वह सुबह ही वेरेनीज (Varennes) में पहुँचा और उसने वहाँ के निवासियों को सोते से जगा दिया। जब राजा गाँव के बाहर मोंटमेडी (Montmedy) के मोड़ पर पहुँचा और सीमान्त से केवल बीस मील की दूरी पर रह गया था, उसने देखा कि उसके रास्ते को रोके हुए गाड़ियों की एक कतार खड़ी हुई है। शहर में कुछ राजसैनिक भी थे और थोड़ी सी शस्त्र झंकार से ही राजा की विजय हो सकती थी। लेकिन लुई हमेशा हिंसा से भागता रहा था। उसने फौरन ही आत्म-समर्पण कर दिया और ऐसा लगता था कि उसने राहत की भावना से आत्म-समर्पण किया है। अधनंगी भीड़ के सामने अपनी आँखों में आँसू भरकर उसने गाली देने वाले का आलिंगन कर लिया। जब वे पेरिस वापस लौट रहे थे, उनके चारों ओर झुंड-के-झुंड लोग एकत्रित हो गए। उन्होंने रानी का उपहास किया और राजा के ऊपर थूका। जब वे आधे रास्ते में थे, सभा के प्रतिनिधि भी आ गये। पेटिअन (Petion) बड़े लोकतन्त्रात्मक ढंग से सैंडविचें खाता रहा और उस दिन की चर्चा करता रहा जब फ्रांस इतना भाग्यशाली होगा कि वह गणराज्य बन सके। राजधानी की गलियों में कोई हर्ष-ध्वनि नहीं हुई और न कोई सर ही नंगा था। राष्ट्रीय रक्षक दल अपने हथियारों को झुकाये ले चला मानो वह किसी शव-यात्रा में जा रहे हों। दूसरे दिन सभा ने राजा को अपने कार्यों से अलग कर दिया।

व्यावहारिक गणतंत्रवाद का प्रारम्भ

राजा की सफलता के चाहे कुछ भी परिणाम होते उसकी असफलता का परिणाम तो महाविनाश ही हो सकता था। राजा के गौरव के साथ-ही-साथ राजतन्त्र की प्रतिष्ठा भी धूल में मिल चुकी थी। सितम्बर १७९२ का गणराज्य जून, १७९१ के पलायन का स्पष्ट उत्तर था। राजा क्रान्ति के प्रति विश्वासघाती ही सिद्ध हुआ था। राजा अपने पीछे एक पत्र छोड़ गया था। इस पत्र में उसने स्वतन्त्रता से वंचित होने के बाद से पास किये गये समस्त अधिनियमों की निन्दा की थी। संकट के समय में सभा ने सत्वरता और दृढ़ता के साथ कार्य किया था। राष्ट्र ने यह समझ लिया था कि राजा के हट जाने से राज्य नष्ट नहीं हो जाता। अब तक फ्रांस में राजतन्त्र के विनाश का प्रश्न वैधानिक कल्पना के क्षेत्र में ही आता था। जून २१-२२ के विद्युत आघात ने उस व्यावहारिक राजनीति का प्रश्न बना लिया।

---

१. इसमें कोई सन्देह नहीं कि द्रुएत इस काण्ड का 'हीरो' था। वापसी जलूस में उसको बड़े समारोह से लाया गया। पेरिस में उसका इतने उत्साह से स्वागत हुआ कि उसका हैट, पगड़ी, म्यान और कपड़े सब इधर-उधर हो गये। उसे १,२०० पौ० का अनुदान मिला। १७९२ में वह कन्वेशन के लिने निर्वाचित हुआ। आस्ट्रेलियनों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और बाद में उसे राजा की पुत्री के बदले में छोड़ दिया गया। नैपोलियन ने उसे सम्मानसूचक उपाधि (Legion of Honour) दी थी और सेन्ट मैनेहोल्ड का सब-प्रिफेक्ट बनाया था। बाल्मी में वह उसका अतिथि भी रहा था। सौ दिवसों के बाद द्रुएत लापता हो गया। १८२४ में उसकी मृत्यु हुई तब पता चला कि लापता होने के बाद वह छद्म नाम से रह रहा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजतन्त्र को समाप्त करने के प्रश्न पर क्लबों में, सड़कों पर सब जगह खुले आम चर्चा होने लगी।

लेकिन अभी गणराज्य का जन्म नहीं होना था। इसके विपरीत, सभा के भीतर और बाहर राजा के पक्ष में निश्चित प्रतिक्रिया दिखाई देने लगी। इस प्रश्न को लेकर जैकोबिन क्लब में फूट पड़ गई। जैकोबिन क्लब का उदारवादी वर्ग जिसके नेता लामेथ (Lameth) और बार्नेव (Barnave) थे, उससे अलग हो गया और उसने फ्यूलैन्ट (Feuillant) नामक एक नया वर्ग बनाया। संविधान के अन्दर कुछ प्रतिक्रियावादी खण्ड रखे गये। १७ जुलाई को चैम्प डी मार्स (Champ de Mars) में गणतन्त्र के पक्ष में एक प्रदर्शन हुआ लेकिन सेना ने बेली (Bailly) और ला फायेत (La Fayette) के आदेश से उसे तितर-बितर कर दिया। यह जनता के विरुद्ध अभूतपूर्व दृढ़ता का कार्य था। इसके फलस्वरूप बेली (Bailly) को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। लेकिन इस प्रकरण ने यह सिद्ध कर दिया कि क्रांति के पुराने नेता अब राजतन्त्र से बिलकुल नहीं डरते थे और वे उसकी रक्षा करने के लिए तैयार थे।

राजा के पक्ष में अल्पकालीन प्रतिक्रिया

सितम्बर तक ऐसा मालूम पड़ने लगा था कि राजा और क्रांति में पूरा समझौता हो गया है। लुई (Louis) ने क्रांति के प्रति निष्ठा की शपथ ली। सभा ने राजा को पुनः अपने कार्य पर लगा दिया और प्रवासी कुलीनों को क्षमा कर दिया जो धीरे-धीरे वापस आने लगे। सभा ने नये विधानमण्डल की व्यवस्था करके अपना विघटन कर दिया। परम्परा के अनुसार ही नये संविधान की उद्घोषणा के लिए एक विशाल उत्सव हुआ। उत्सव के उपलक्ष्य में आतिशबाजियाँ हुईं, रोशनी की गई और तिरंगे झंडे लगाए गये। राजा टुइलेरीज़ (Tuileries) के बाग में लोगों के साथ चहलकदमी करता रहा और उसका सब ओर हार्दिक स्वागत हुआ। उसने कहा, "अब राष्ट्र का स्वभाव फिर से आह्लादमय हो जाना चाहिए क्योंकि क्रांति का अन्त हो गया है।" हर्ष का ज्वार सा आ गया था। राजा की इस भावना का सबने समर्थन किया। शाम को पाँच बजे एक बैलून बादलों में उड़ाया गया। बैलून के ऊपर पंख फैलाये हुए एक चील थी। बैलून के साथ एक कार थी। इस कार में दो वीर यात्री बैठे हुए थे जो उन आकाशीय स्थलों की खोज में चले जहाँ बिजली आँधी की गड़गड़ाहट (thunderstorms) पाई जाती है। श्री मैडेलिन (M. Madelin) ने कहा है, "यह रूपक बिलकुल सही था। संविधान बादलों में था और गरीब भूमण्डल बिलकुल छिन्न-भिन्न हो जाने को था। अकेली गरीब चील ही तूफान से त्रस्त फ्रांस के ऊपर मँडराने और अपने समय को व्यतीत करने के लिए थी।" जहाँ तक सभा का सम्बन्ध है, उसका कार्य अब समाप्त हो चुका था, उसने पच्चीस हजार आज्ञप्तियाँ पास की थीं और एक नया संविधान बनाया था। प्रतिनिधि थक गये थे। उन्होंने संविधान सभा को समाप्त करने के पूर्व यह कानून बना दिया था कि संविधान सभा का कोई भी सदस्य नये विधानमण्डल के लिए निर्वाचित नहीं हो सकेगा।

संविधान सभा का अन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा के कार्य की आलोचना करना आसान है। उसने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत सी समस्याएँ छोड़ दी थीं। उसने प्रशासन की पूरी व्यवस्था नष्ट कर दी थी। उसने भीड़शाही के लिए रास्ता खोल दिया था। उसने धर्म के प्रति अविश्वास का भाव पैदा कर दिया था और अन्तर्राष्ट्रीय कानून की अवहेलना की थी। उसने, जो किसी अंग्रेज को भूल मालूम पड़ेगी, व्यवस्थापिका को कार्यपालिका से अलग कर दिया था। इससे भी अधिक गम्भीर बात यह थी कि उसने अपनी अन्तिम आज्ञप्ति द्वारा नई सभा को पुरानी सभा के अनुभव से वंचित कर दिया था। उसका बहुत सा कार्य बाद में बेकार हो गया लेकिन बहुत कुछ स्थायी भी रहा। यह स्मरणीय है कि उसकी अधिकांश भूलों का कारण कछ तो राजमुकुट का भय और कुछ सामूहिक तथा व्यक्तिगत अरक्षा का वह भाव था जो हर समय उसके सर पर मँडराता रहता था।

उसने प्रतिरक्षा की प्रारम्भिक कार्यवाही की थी और पुराने कूड़े-कर्कट को साफ कर दिया था। उसने फ्रांस की एकता प्राप्त की थी और नए राजनीतिक संगठन में लोकतन्त्र के लिए एक स्मारक खड़ा कर दिया था। उसने जनता के उत्साह को जाग्रत कर दिया था और इस बात का प्रयास किया था कि देश में एक से कानून प्रचलित हों तथा करों का बोझ सबके ऊपर एक-सा पड़े। उसने एक नागरिक और सामाजिक क्रांति कर दी थी और सार्वजनिक नीति का आधार जनता की इच्छा को माना था। उसने सब काल के लिए और सारी दुनिया के लिए एक नये सन्देश की—जनसाधारण के वैयक्तिक महत्त्व के संदेश की—उद्घोषणा कर दी थी।

२. विधान सभा (अक्टूबर, १७९१ से सितम्बर, १७९२)
(The Legislative Assembly, October, 1791-September 1792)

विधान सभा

संविधान सभा के विघटन के एक दिन पश्चात् विधान सभा का अधिवेशन हुआ। उसके अधिकांश सदस्य नये थे। यद्यपि वे विचारों और वाणी के धनी थे, लेकिन उन्हें अनुभव बिलकुल नहीं था। सत्ता प्राप्त करने का यह उनके लिए पहला अवसर था। उसके बहुत से सदस्य वकील थे। उन्होंने क्रांति के प्रति उत्साह के कारण स्थानीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी और अब वे ज़रा बृहत्तर क्षेत्र में कार्य करने के लिए उत्सुक थे। यह तरुण क्रांतिकारियों की एक नई पीढ़ी थी। यह पीढ़ी अभूतपूर्व अवसरों के स्वप्नों से भ्रान्त और पेरिस की चकाचौंध से चमत्कृत थी। विधान सभा के प्रत्येक सदस्य को अठारह फ्रांक रोज मिलता था। प्रतिनिधिगण इसकी ओर से भी उदासीन न थे।

दायीं ओर फ्यूलूलैंट्स (Feuillants) और संविधानवादी (Constitutionalists) बैठते थे। ये लोग बार्नेव (Barnave) और लामेथ (Lameth) के मित्र थे। ये लोग पुरानी सभा में बायीं ओर बैठते थे। उनके इस स्थान-परिवर्तन से यह स्पष्ट प्रकट होता था कि क्रांति कितनी आगे बढ़ चुकी है और राजनीतिक गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र बदल चुका है। नई सभा में बायीं ओर जैकोबिन उग्रवादी और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्तिकारी बैठते थे। इन लोगों ने प्रक्रिया सम्बन्धी प्रारम्भिक वाद-विवादों, सैन डोमिंगो (San Domingo) के विद्रोह और एविग्नान (Avignon) की अव्यवस्था के समय यह स्पष्ट कर दिया था कि वे सबसे प्रभावशाली दल हैं। धीरे-धीरे इन लोगों में से एक नया वर्ग उठ खड़ा हुआ। यह वर्ग जिरोंडिस्ट (Girondist) या ब्रिसोटिन्स (Brissotins) कहलाया था। इसका नाम जिरोंडिस्ट इसलिए था क्योंकि इसके अधिकांश सदस्य जिरोंड (Gironde) प्रान्त के थे। उसका नाम ब्रिसोटिन इसलिए था क्योंकि ब्रिसट (Brissot) उसकी नीति-संचालन करता था। अपने इतिहास के एक संकट-काल में उसने सभा पर प्रभुत्व जमा लिया, मन्त्रिमण्डल को बनाया और फ्रांस का भाग्य-निर्माण किया। उसने राजतन्त्र का पतन कर दिया और एक ऐसे युद्ध को प्रारम्भ कर दिया जो कुछ कालों को छोड़कर बीस वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा था। अन्त में, अपनी दुर्बलता में उसने क्रान्ति का संचालन पेरिस, भीड़ और क्लबों के हाथों में छोड़ दिया।

जिरोंडिस्ट

इसलिये, जिरोंडिस्ट फ्रांस के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रयोगवादी थे। उनकी गतिविधियों का अध्ययन अत्यन्त रोचक है। लामार्टीन (Lamartine) ने उन्हें दुःखान्त आदर्शवादी (tragic idealists) कहा है। कुछ अन्य मूर्ति-पूजा के विरोधी इतिहासकारों (Iconoclastic historians) ने उन्हें केवल भावुक और बातूनी (sentimental windbags) बताया है। मुख्य रूप से वे उत्साहपूर्ण व्यक्ति थे। उनमें सिद्धान्तवादिता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उनकी वाणी प्रखर थी। वे अपने और फ्रांस दोनों के लिए भयानक थे। उनका नाटकीयता से स्नेह था और वे स्वयं को प्राचीन काल के वीरों के सदृश मानते थे। उनके देवता ब्रूटस (Brutus) और अरिस्टाइड्स (Aristides) और धर्मगुरु प्लूटार्क (Plutarch) थे। वे उदार थे और अच्छी तरह मरे लेकिन वे भीड़ को वश में करने की कला जानते थे। उनमें कूटनीति का अभाव था। उन्होंने जिन उग्र भावनाओं को पैदा कर दिया था, उनके ऊपर वे कोई नियंत्रण नहीं रख सके। वे थोथे आदर्शवादी (Idealogues) थे। उनके बीच कोई व्यावहारिक राजनेता नहीं था। उनके मुख्य नेता कोंडोरसेट (Condorcet) तथा वर्गनौड (Vergniaud) थे। इनमें कोंडोरसेट तो मुख्य रूप से विद्या-व्यसनी और उच्चकोटि का विद्वान् था। वर्गनौड प्रथम श्रेणी का ओजस्वी वक्ता था। उनकी उपास्य देवी शहीद चार्लोट कोर्डे (Charlotte Corday) थी। उसने मरत (Marat) को इस आशा से हत्या कर दी थी कि "स्वर्ग में वह भी ब्रूटस के साथ रह सके"। अजस्र रोमांटिक मदाम रोलां (MMe. Roland) उनकी प्रेरणा-स्रोत थी। उनका 'हीरो' पेटिअन (Petion) था। वह क्षीणकाय और सुन्दर, गुणी और अभिमानी था। वह पेरिस का मेयर था और कुछ समय के लिए नए धर्म का पैगम्बर था। जिरोंडिस्टों का नेता ब्रिसट (Brissot) था। वह क्वेकर जैसे वस्त्र पहनता था और साम्यवादियों जैसी बात करता था। वह एक पत्रकार रह चुका था और स्वयं को सर्वज्ञानी समझता था। उसकी कार्यक्षमता अथाह थी। वह धुन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आदमी था—कभी बिलकुल काम नहीं करता था और कभी बहुत ज्यादा। यह व्यक्ति शब्दों का धनी था। यद्यपि इस व्यक्ति में बहुत त्रुटियाँ थीं—उसमें अन्तर्दृष्टि और संगठन-क्षमता का अभाव था—फिर भी फ्रांस के भाग्य-निर्णायकों में उसका स्थान मिराबो (Mirabeau) और डैंटन (Danton) के बीच का था।

जिरोंडिस्टों की नीति

जिरोंडिस्टों के मन में अपने और अपने लक्ष्य के लिए पूरा उत्साह था। वे "क्रांति के लिए एक प्रहार करना" चाहते थे जिसका व्यावहारिक अभिप्राय पुरानी अट्टालिका के, जो अभी तक खड़ी हुई थी, कुछ भाग को नीचे गिराना था। पुरातन शासन-व्यवस्था में राजमुकुट को छोड़कर और ऐसी क्या चीज रह गई थी जिसे नष्ट करना बाकी था। जिरोंडिस्टों ने जैकोबिन्स के साथ मिल कर सभा के बाद-विवाद जनता के लिए खोल दिये थे। उन्होंने यह प्रथा भी चालू की थी कि प्रत्येक प्रतिनिधि को नाम लेकर पुकारा जाए जिससे कि वह अपना मत दर्ज करा सके। इस पद्धति को **एपेल नोमिनल** (*appel nominal*) कहते थे।[1] इन कार्यों के कारण सदन के अन्दर और बाहर उनकी शक्ति बढ़ गई थी। इसके बाद उन्होंने जरा उग्र नीति का आश्रय लिया। क्रान्ति के दो प्रबलतम शत्रु थे—फ्रांस के बाहर प्रवासी कुलीन और फ्रांस के अन्दर वे पादरी, जिन्होंने संविधान की शपथ नहीं ली थी। जिरोंडिस्टों ने उनकी तीव्र निन्दा की और उन्हें उपद्रवकारी तथा राजा का मित्र बताया। उन्होंने प्रवासी कुलीनों और संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ न लेने वाले कुलीनों के विरुद्ध कड़ी आज्ञप्तियाँ जारी कीं।

प्रवासी कुलीनों और संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ न लेने वाले कुलीनों के विरुद्ध आज्ञप्तियाँ

उन्होंने उन प्रवासी कुलीनों के प्रति, जो १ जनवरी, १७९२ तक फ्रांस वापस नहीं आयेंगे, मृत्यु-दण्ड का विधान किया। उन्होंने सभी पादरियों को एक सप्ताह के भीतर ही शपथ लेने की आज्ञा दी और कहा कि जो ऐसा नहीं करेंगे, उन्हें उनकी जीविका या पेंशनों से ही वंचित कर दिया जाएगा। लेकिन ये आज्ञप्तियाँ एक महत्तर उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए जारी की गयी थीं। प्रवासीकुलीनों तथा शपथ न लेने वाले पादरियों के पीछे सिंहासन था जिसे जिरोंडिस्ट हस्तगत करना चाहते थे। चर्च का प्रश्न राजा की अन्तरात्मा को छूता था। यद्यपि लुई को उन प्रवासी कुलीनों से कोई स्नेह नहीं था, जिनके षड्यन्त्रों ने उसकी स्थिति को घर और बाहर दोनों जगह विषम कर दिया था, फिर भी वह अपने भाइयों को प्राण-दण्ड नहीं दे सकता था। इसलिए, उसने दोनों आज्ञप्तियों को अस्वीकार कर दिया। जिरोंडिस्ट यही चाहते थे और उन्होंने यही सोचा था। राजा के इस कृत्य से यह सिद्ध हो गया कि वह क्रान्ति का शत्रु है और विद्रोहियों के साथ गठबन्धन कर रहा है। इससे राजा की बची-खुची लोकप्रियता भी शीघ्र नष्ट हो गई। लेकिन जिरोंडिस्ट इससे भी आगे बढ़े। वे स्वयं राजा को

---

१. कहा जाता है कि इस पद्धति ने जनता के भय के कारण कम-से-कम सौ मतों का अन्तर कर दिया था।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही देशद्रोही सिद्ध करना चाहते थे। ऐसा करने के लिए एक विदेशी युद्ध आवश्यक था क्योंकि वह राजा को अपने शत्रुओं से सहानुभूति रखने और अपने मित्रों से लड़ने की असंभव स्थिति में रख देता। जिरोंडिस्टों को आशा थी कि उस स्थिति में सभी देश-द्रोह स्पष्ट हो जायेंगे और सभी भेद एक महान् प्रयोजन में विलीन हो जायेंगे। उग्र क्रान्ति विजय का रूप धारण कर लेगी। उसकी वजह से राजमुकुट जनता के पैरों पर आ गिरेगा। वह लोकतंत्र की विचारधारा को दूसरे देशों में ले जायेगा और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह देशभक्ति के प्रवाह में जिरोंडिस्टों को सत्तारूढ़ कर देगा। इसलिए, जिरोंडिस्टों ने जानबूझ कर विदेशी युद्ध पैदा किया। शांतिवादी कोंडोरसेट (Condorcet) ने यूरोप के एक संयुक्त राज्य (United States of Europe) की कल्पना की।

विदेशी हस्तक्षेप की वृद्धि

फ्रांस के मामलों में विदेशी शक्तियों का हस्तक्षेप अब तेजी से अपरिहार्य होता जा रहा था। इसका पहला कारण तो यह है कि अब क्रांतिकारी स्वयं ही तेजी से प्रचारवादी होते जा रहे थे। क्रांति के नेताओं ने फ्रांस की क्रांति को कभी विशुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं समझा था। वार्सा तथा फिलाडेल्फिया में मानव अधिकारों (The Rights of Man) की पहले ही घोषणा हो चुकी थी। विश्व-बन्धुत्व को केवल फ्रांस की सीमाओं में ही नहीं बाँधा जा सकता था। क्रांतिकारी लोकतंत्र एक नये दर्शन और एक नये आचारशास्त्र पर आधारित एक नई विचारधारा थी और उसे एक नये लोकतंत्र की भाँति सारे संसार में प्रचारित किया जा सकता था। संविधान सभा (The Constituent Assembly) किसी विदेश-नीति के पक्ष में नहीं थी लेकिन विधान सभा एक सशक्त विदेश-नीति के लिए कृत-संकल्प थी। वह एक राजनीतिक विश्वास को एक ऐसे संघर्षरत बल के रूप में बदलना चाहती थी जो इस्लाम की भाँति एक साथ ही राजनीतिक और आध्यात्मिक विजय प्राप्त करे। फ्रांस का लक्ष्य 'राजाओं के विरुद्ध सभी लोगों का लक्ष्य' बन गया। इस तरह, यूरोप के शासकों ने क्रांति को अनेक रूपों में उठते हुए देखा और वह फ्रांस के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के लिए विवश हो गये। कारण स्पष्ट था—या तो उन्हें फ्रांस का विनाश कर देना था, या फ्रांस उनकी ही राजधानियों में उनका विनाश कर देता।

हस्तक्षेप की अपरिहार्यता

लेकिन, राजा की दुर्बलता और अपनी अन्तरात्मा के अनुसार चलने की हठ-वादिता ने क्रान्ति-विरोधियों के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि वे अधिकाधिक विदेशी शक्तियों पर ही निर्भर रहें। यदि लुई (Louis) मिराबो की एवं अपने अन्य समस्त पक्षपातियों की राय मान लेता तथा पेरिस के बाहर फ्रांस में कहीं भी विद्रोह का झंडा खड़ा कर देता, जैसा कि चार्ल्स प्रथम (Charles I) ने नौटिंघम (Nottingham) में किया था, या जैसा कि नेपोलियन ने कहा था, "वह अपने घोड़े पर भी सवार हो जाता", तो वह क्रान्ति के विरुद्ध एक केन्द्र का निर्माण कर सकता था जिसकी इतनी अधिक आवश्यकता थी। लेकिन उसने यह सब नहीं किया। उसने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया यह कि वह शरणार्थी की भाँति पूर्वी सीमान्त की ओर भागा। इस तरह, उसने यह खुले आम स्वीकार कर लिया कि क्रान्ति का वास्तविक और कारगर विरोध केवल विदेशी शक्तियों द्वारा ही किया जा सकता है। अपदस्थ कुलीन विदेशी शक्तियों की ओर पहले ही झुक चुके थे। इस तरह, क्रांति का पूरा प्रवाह बदल गया। राजतंत्र ने सहायता के लिए सीमा के पार देखा और वह राजद्रोह बन गया। लोकतंत्र देशभक्ति के साथ मिलकर आग्नेय हो गया। घबराहट में चारों ओर अव्यवस्था-सी फैल गई और लोकतन्त्र ने आक्रामक सैनिकवाद का रूप धारण कर लिया। इसके परिणाम-स्वरूप आतंक और साम्राज्य का उदय हुआ। इन्होंने सभी प्रश्नों को घटाटोप में डाल दिया और फ्रांस तथा यूरोप के इतिहास को एक शताब्दी तक पेंडुलम की भाँति अस्थिर रक्खा।

विदेशी हस्तक्षेप में विलम्ब

इसलिए, विदेशी शक्तियों का हस्तक्षेप बिलकुल आश्चर्यजनक नहीं है। आश्चर्यजनक तो यह है कि यह हस्तक्षेप बहुत बाद में हुआ और जब हुआ, तब कारगर न हो सका। इसका कारण यह है कि जिस समय फ्रांस में क्रांति हुई, यूरोप अपनी ही समस्याओं में उलझा हुआ था और यूरोप के विभिन्न देशों में आपस में फूट थी। वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) और कॉलरिज (Coleridge) ने एक नये युग का अभिनन्दन किया, फॉक्स (Fox) ने बेस्टील (Bastille) के पतन को इतिहास की सबसे बड़ी घटना माना, सेंट पीटर्सबर्ग के उदार व्यक्तियों ने यह शुभ समाचार सुनकर एक दूसरे का अभिनन्दन किया और सारे यूरोप में प्रबुद्ध तथा उत्साहशील व्यक्तियों ने स्वतंत्रता के वृक्ष लगाये तथा एक दूसरे को प्रसन्नतापूर्वक सह-नागरिक कहा, लेकिन यूरोप के राज-दरबारों ने फ्रांस की क्रांति को भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनय (International diplomacy) में एक अन्य तत्त्व मात्र समझा। उसके समाचार से पहले-पहल उन्हें न तो कोई धक्का ही पहुँचा और न वे सशंकित ही हुए। विद्रोही तो राज्यों के दुर्भाग्य ही होते हैं। उन्होंने केवल इस बात पर ध्यान दिया कि फ्रांस की क्रांति का शक्ति-संतुलन (Balance of Power) पर क्या प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने सोचा कि राजतंत्र के दुर्बल हो जाने से फ्रांस का विघटन हो जायेगा। इस विचार से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि अब तक फ्रांस बहुत शक्तिशाली था और क्रांति की उलट-फेर ने उसे कुछ काल के लिए निष्क्रिय कर दिया। अब उन्होंने फ्रांस की ओर से निश्चिन्त होकर आपसी प्रतिद्वंद्विताओं एवं अपनी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं की ओर ज्यादा ध्यान देना प्रारम्भ किया। पिट बहुत से अनुदार अंग्रेजों की भांति क्रांति का विरोधी नहीं था। उसने पहले-पहल फ्रेंच क्रांति को १६८८ की गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution of 1688) के समान ही समझा था। फिर भी, उसको इंग्लैण्ड के एक पुराने शत्रु की परेशानी से कुछ राहत मिली। अब उसने राष्ट्रीय क्षेत्र में सुधारों की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। अमेरिकी युद्ध ने इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय मानहानि की थी और उसकी आर्थिक व्यवस्था को बिगाड़ दिया था। पिट ने अपनी सारी शक्ति

यूरोप की पूर्व व्यस्तता

इंग्लैण्ड

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस क्षति-पूर्ति की ओर लगाई। उसने उस समय तक पक्की तटस्थता बनाये रखने का निश्चय किया जब तक कि उसके अपने देश के हितों को कोई चोट न पहुँचे। प्रशा के फ्रैडरिक विलियम (Frederick William of Prussia) ने समझा कि क्रांति ने चोइसुएल (Choiseul) द्वारा की गई बूरबन-हैप्सवर्ग अभिसन्धि को नष्ट कर दिया है। फलतः उसने राष्ट्रीय सभा (National Assembly) के नेताओं के साथ औपचारिक सम्बन्ध स्थापित करने की बातचीत की। स्वीडन का गस्टावास तृतीय (Gustauas III) एक शूरवीर व्यक्ति था और वह फ्रांस की रानी की दयनीय स्थिति से बहुत क्षुब्ध था। लेकिन वह बहुत दूर था और अपने निकट के एक सवाल में इतना उलझा हुआ था कि उसके लिए कोई ठोस कार्यवाही नहीं कर सकता था। यूरोप के पश्चिम में जो समस्या उठी थी, उससे कहीं अधिक जटिल समस्या यूरोप के पूर्व में उठ खड़ी हुई थी।

प्रशा

स्वीडन

रूस, जिसे उद्योगशील जंगली पीटर महान् (Peter the Great) ने एक पश्चिमी शक्ति बना दिया था, धीरे-धीरे यूरोप का एक अत्यधिक शक्तिशाली राज्य बनता जा रहा था। कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) के शासन-काल में उसका निरन्तर विकास यूरोपीय राजनय की एक प्रमुख समस्या था। कैथेराइन एक जर्मन महिला थी। वह एक कुशल शासक थी और उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ पुरुषों को भी मात देती थीं। रूस के विस्तार से उसके दुर्बल पड़ोसियों स्वीडन, पोलैण्ड और तुर्की की सुरक्षा को खतरा पहुँचता था और शक्तिशाली तथा दूरस्थ राज्यों प्रशा और आस्ट्रिया की शांति भंग होती थी। उसने अंतिम दो देशों के सहयोग से १७७२ में पोलैण्ड के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। जब फ्रेंच क्रांति प्रारम्भ हुई, उसने तुर्की के विभाजन की योजना बनाई। उसने सम्राट जोजेफ द्वितीय (Emperor Joseph II) को अपना साथी बना लिया था, यद्यपि बाद के इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि रूस और आस्ट्रिया के बल्कान हित एक-दूसरे के विरोधी रहे हैं। जोजेफ (Joseph) इस बात के लिए उत्सुक था कि वह आस्ट्रिया और प्रशा के वर्तमान सद्भाव को नष्ट कर दे। वह मध्य जर्मनी में अपने अधिकार को बढ़ाने में कैथेराइन की सहायता चाहता था।

पूर्वी यूरोप

इधर, जब रूस बल्कान-प्रायद्वीप में उलझा हुआ था, स्वीडन ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रशा ने पोलों को भड़काया, जोजेफ के विरुद्ध विद्रोह में बेल्जियम को सहायता दी और आस्ट्रिया तथा रूस के समझौते के प्रत्युत्तर में इंग्लैण्ड, प्रशा तथा हालैण्ड की एक त्रिदेशीय संधि (Triple Alliance) की। इस तरह, यूरोप की प्रमुख शक्तियाँ पूर्ण रूप से व्यस्त थीं।

फरवरी १७९० में जोज़ेफ द्वितीय की मृत्यु हो गई। वह उपदेशक और महत्त्वाकांक्षी सम्राट था। वह दार्शनिक विचारों का शासक था। उसका मत था कि श्रेष्ठ इरादे राज्य का शासन करने के लिए पर्याप्त योग्यता हैं। उसके बाद उसका भाई लियोपोल्ड द्वितीय (Leopold II) गद्दी पर बैठा। उसने अपने को टस्कनी (Tuscany)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक चतुर सुधारक और सजग राजनेता पहले ही प्रमाणित कर दिया था। जोजेफ द्वितीय ने जिन नूतन समस्याओं को खड़ा कर दिया था, लियोपोल्ड द्वितीय ने उन समस्याओं के समाधान की तुरन्त चेष्टा की। उसने हंगरी को शांत किया, बेल्जियम के विद्रोह को दबाया, तुर्की के साथ शांति की और रीशेनबाश (Reichenbach) में फ्रैडरिक विलियम के साथ समझौता करके प्रशा की शत्रुता को दूर किया। आस्ट्रिया और रूस की मित्रता टूट जाने पर कैथेराइन ने अपने प्रबलतम शत्रु स्वीडन के साथ मित्रता की। पोलैंड में कुछ उपद्रव प्रारम्भ हो गए थे और तुर्की में भी उसका विस्तार रुक गया था। गस्टावस तृतीय भी, यद्यपि उसकी बन्दूकें सेंट पीटर्सबर्ग के राजमहल में सुनायी दे चुकी थीं, शांति के लिए इच्छुक था। वह भी राज्य के अन्दर तो विद्रोही कुलीनों से और राज्य के बाहर डैन्मार्क के आक्रमणों से परेशान था।

जोजेफ द्वितीय की मृत्यु (फरवरी १७९०)

लियोपोल्ड द्वितीय का नीति-परिवर्तन

फलतः वेरेला की शांति संधि (Peace of Verela) ने रूस और स्वीडन के बीच गहरी मित्रता पैदा कर दी। उसके बाद कैथेराइन द्वितीय ने निरन्तर तथा प्रबलता से बूरबन राजवंश का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया। वाल्टेयर (Voltaire) की मूर्ति सार्वजनिक संग्रहालय में डाल दी गई। गस्टावस तृतीय को इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया गया कि वह लुई के पलायन में मदद दे और फ्रैडरिक विलियम से प्रार्थना की गई कि वह फ्रांस में जैकोबिनिज्म का नाश कर दे जब कि कैथेराइन ने पोलैण्ड और तुर्की में उसका नाश करने का बीड़ा उठाया। कैथेराइन ने फ्रांस के दार्शनिकों की, पश्चिम में ख्याति पाने के लिए, एक बार स्वयं ही प्रशंसा की थी, लेकिन फिर भी वह उनके क्रांति-रूपी फलों से घृणा करती थी। कुछ हद तक यह स्वाभाविक भी था। लेकिन उसका मुख्य लक्ष्य पोलैण्ड का पुनर्विभाजन था। यदि जर्मन शक्तियाँ राइन (Rhine) की ओर अपना विस्तार कर लें तो वह विस्टुला (Vistula) और डेन्यूब (Danube) में जरा स्वतन्त्र ढंग से आचरण कर सकती थी। इसलिए, उसने इस बात की हर चंद कोशिश की कि उसके प्रतियोगी फ्रेंच राजनीति में फँस जाएँ। अन्त में वह अपने इस उद्देश्य में सफल भी हो गई। बूरबन शासकों के प्रति अपने समस्त उत्साह के बावजूद उसने अपना एक भी सिपाही रणभूमि में नहीं भेजा। जब फ्रेंच गणराज्य (French Republic) के विरुद्ध एक गुट तैयार हुआ, सबसे पहले उसी ने उसको तोड़ा।

वेरेला की संधि (अगस्त १७९०)

कैथराइन द्वितीय द्वारा बूरबन शासकों का समर्थन

तथापि, लियोपोल्ड को फ्रेंच नरेश की ओर से जिहाद करने की कोई जल्दी नहीं थी। उसे पोलैंड के सम्बन्ध में कैथेराइन के इरादों का अच्छी तरह पता था। उसने प्रवासी कुलीनों या मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinetee) की प्रार्थनाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया। १७८० के जाड़े में बहुत से शरणार्थी जर्मन या स्विस या इटालियन जमीनें और स्वतन्त्रता फ्रांस को देने के लिए पेरिस गए लेकिन लियोपोल्ड

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऊपर इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बर्क (Burke) इस समय प्रवासी कुलीनों का बहुत शक्तिशाली प्रवक्ता हो गया था। उसकी प्रखर चेतावनियाँ भी लियोपोल्ड के ऊपर कोई असर नहीं डाल सकीं। फ्रांस ने एविग्नान[1] (Avignon) पर अधिकार कर लिया और जर्मन शासकों के अल्सेशियन अधिकारों को चोट पहुँचाई, लियोपोल्ड इससे भी विचलित नहीं हुआ। राष्ट्रीय सभा (National Assembly) इस काल में निरन्तर शाँति की उद्घोषणाएँ करती रही थी। लियोपोल्ड की बहुत सी शंकाएँ इससे भी दूर हो गई थीं। रोबेस्पीयर (Robespierre) ने कहा था, "हम यह घोषणा करते हैं कि फ्राँस विजय के सारे विचारों को त्यागता है। उसका विचार है कि उसकी सीमाएँ एक शाश्वत भाग्य (an eternal destiny) ने निश्चित कर दी हैं।" १७९१ में यह भाव किसी भी तरह गलत नहीं था। इसे स्थायित्व देने के विचार से संविधान में भी समाविष्ट कर लिया गया था।

राजा के पलायन का प्रभाव

लुई ने फ्राँस से भाग जाने की चेष्टा की। लेकिन वह इसमें असफल हुआ। फलतः उसका अपमान हुआ और वह गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन इस प्रकरण से भी विदेशी शक्तियों ने तुरन्त हस्तक्षेप नहीं किया यद्यपि इससे हस्तक्षेप का कार्य काफी नजदीक आ गया था। लियोपोल्ड ने जुलाई में पाडुआ (Padua) से एक घोषणा जारी की जिसमें उसने यूरोप के समस्त राजाओं से प्रार्थना की कि वे फ्रांस के राजा की सहायता करें और उसके कार्य को अपना कार्य समझें।

पाडुआ की घोषणा (जुलाई, १७९१)

अगस्त में उसने पिलनिट्ज (Pillnitz) में प्रशा के राजा से भेंट की। यहाँ बहुत से प्रवासी कुलीनों को भी उपस्थित रहने की अनुमति मिल गई थी, लेकिन उनकी उपस्थिति का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पिलनिट्ज में फ्रैडरिक और लियोपोल्ड ने यह संयुक्त विज्ञप्ति जारी की कि यदि यूरोप के अन्य राजा सहायता दें, तो वे फ्रांस के मामले में सशस्त्र हस्तक्षेप करने के लिए तैयार हैं। लेकिन संयुक्त कार्यवाही की कोई आशा नहीं थी। कुछ गारण्टियाँ दी जानी थीं। फिर कैथेराइन ने भी मौसम की प्रतिकूलता का बहाना किया। इस तरह पिलनिट्ज की घोषणा ने हस्तक्षेप में देरी कर दी। इधर सितम्बर में लुई ने संविधान स्वीकार कर लिया। इस पर, लियोपोल्ड ने विरोध के सारे विचार त्याग दिये।

पिलनिट्ज की घोषणा (अगस्त १७९१)

---

१. एविग्नान तथा वेनेसिन (Venaissin) के आस-पास का प्रदेश चौदहवीं शताब्दी से पोपों के नियन्त्रण में रहा था। पोप उसके ऊपर उदार नीति से शासन करते रहे थे। जब फ्राँस में क्रांति प्रारम्भ हुई, एविग्नान के नागरिकों ने फ्राँस से मिलने की माँग की। संविधान सभा एविग्नान को फ्राँस में मिलाने से हिचकिचाती रही क्योंकि इससे अन्तर्राष्ट्रीय कानून भंग होता। इस पर एविग्नान की जनता ने स्वयं ही पोप के शासन को पलट दिया। तदुपरान्त वहाँ काफी अव्यवस्था फैल गई। इस स्थिति में अपने सत्र के अन्त में संविधान सभा ने एविग्नान को फ्रांस में मिलाने का निर्णय किया। नवम्बर, १७९१ में फ्रांस की सेनाओं ने एविग्नान पर अधिकार जमा लिया। सितम्बर १७९२ में उसे नियमतः फ्रांस में मिला लिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि पिलनिट्ज की घोषणा ने और कॉब्लेंज के घोषणा-पत्र (Manifesto of Coblens) ने, जिसमें क्रांति की तीव्र निन्दा की गई थी और जिसे प्रवासी कुलीनों ने पिलनिट्ज की घोषणा के साथ जोड़ दिया था, नई सभा में जिरोंडिस्टों के हाथ मजबूत कर दिये। उन्होंने इस बहाने फ्रांस की जनता में युद्ध की भावना जाग्रत कर दी। अकाल ने और सामाजिक तथा आर्थिक अव्यवस्था ने जनता को पहले से ही बहुत उत्तेजित कर रखा था। इसलिए, फ्रांस के सभी दल लड़ाई चाहते थे। जिरोंडिस्ट क्यों लड़ाई चाहते थे, इसका कारण पहले ही दिया जा चुका है। फ्यूलैंट (Feuillants) और राजतन्त्रवादी इसलिए लड़ाई चाहते थे क्योंकि उनका विचार था कि इससे कार्य-पालिका (Executive) मजबूत हो जाएगी। उन्होंने सोचा कि सफल युद्ध से लोगों की छिपी हुई राजभक्ति जाग उठेगी, अन्य प्रश्न पीछे पड़ जायेंगे और लुई को फिर से शक्ति, लोकप्रियता एवं सेना की कमान प्राप्त हो जाएगी। रानी को आशा थी कि वह विदेशी सेनाओं की सहायता से या कम-से-कम विदेशी सेना के प्रदर्शन से लुई को पुनः जनता के ऊपर लाद सकेगी। केवल उग्रवादी जैकोबिन ही जिन्होंने अब जिरोंडिस्टों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था, युद्ध के विरुद्ध थे। वे इसी कारण युद्ध के विरुद्ध थे जिस कारण कि राजतन्त्रवादी युद्ध चाहते थे। उनको भय था कि युद्ध से या तो विकृत राजतन्त्र पैदा होगा या अधिनायकवाद। आगे चलकर उनकी धारणा सही निकली। युद्ध का पहला उत्तर तो सितम्बर १७९२ का गणराज्य था तथा दूसरा नैपोलियन।

डैन्टन (Danton) तथा रोबेस्पीयर (Robespierre) के नेतृत्व में उग्र जैकोबिन्स को छोड़कर अन्य सभी पक्षों ने १७९१ के जाड़े और १७९२ के बंसत में युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। ब्रिसट (Brissot) ने सभा में जोशीले भाषण दिए। जिरोंडिस्टों ने कुछ अत्यावश्यक आज्ञप्तियाँ (peremptory decrees) पास कीं और राजा को बाध्य किया कि वह उन्हें एलेक्टर ऑफ ट्रायर (Elector of Trier) के पास भेज दे। इन आज्ञप्तियों में एलेक्टर से प्रार्थना की गई थी कि वह प्रवासी कुलीनों को अपने यहाँ से हटा दे और यह निश्चित कर दे कि जर्मन शासकों (German Princes) को कितना प्रतिकर दिया जाए। रानी ने अपने सम्राट भाई से विनती की कि वह यूरोप के राजाओं की एक सभा का आयोजन करे और फ्रांस के राजा की ओर से हथियार उठाये। राजा के मन्त्री नारबोन (Narbonne) ने युद्ध की तैयारी में जिरोंडिस्टों को भी मात दी। वह इस बात के लिए कृत-संकल्प था कि लड़ाई को राजा की लड़ाई के रूप में बदल दे। उसने सीमांत पर तीन सेनाएँ भेजीं। उसने एक युद्ध अनुदान की माँग की। यह अनुदान प्रवासी कुलीनों की जब्त की गई जमींदारियों से एकत्रित किया गया था। उसने निरीक्षण के लिए स्वयं दौरा किया और रिपोर्ट दी कि सेनाएँ तथा किले सब लड़ाई के लिए तैयार हैं। जाड़े भर स्वयंसेवक, किसान, क्लर्क, मजदूर और कुछ कुलीन आते रहे।

एलेक्टर ऑफ ट्रायर के विरुद्ध आज्ञप्तियाँ

इसी बीच सम्राट लियोपोल्ड भी, जो प्रतीक्षा करने की कला में खूब निपुण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, लड़ाई के लिए तैयार हो गया। उसने एलेक्टर ऑफ ट्रायर (Elector of Trier) एवं जर्मन शासकों की सहायता करने का अपना विचार प्रकाशित किया। उसने एविग्ना तथा जर्मन शासकों की रियासतों की माँग की और प्रशा के साथ एक आक्रामक एवं प्रतिरक्षात्मक सन्धि की। जब सभा ने उससे तत्काल माँग की कि वह फ्रांस के मामलों में हस्तक्षेप न करे, तो उसने क्रांति एवं जैकोबिनिज्म (Jacobinism) की कठोर निन्दा की। लेकिन १ मार्च को जब उसका उत्तर सभा में पढ़ा गया, उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से आस्ट्रिया तथा प्रशा की सन्धि नष्ट होती हुई मालूम पड़ी। वह सम्राट होने के साथ-ही-साथ उच्चकोटि का राजनेता भी था। महान् मेरिया थेरेसा (Maria Theresa) के पुत्रों में वह सबसे ज्यादा बुद्धिमान था। उसके बाद उसका पुत्र फ्रांसिस द्वितीय (Francis II) गद्दी पर बैठा। वह क्रान्ति का अपने पिता से ज्यादा विरोधी था। जिरोंडिस्टों ने लड़ाई की तैयारियाँ फिर से प्रारम्भ कर दीं। कैथेराइन ने पोलैंड के विभाजन में प्रशा को एक भाग देकर फ्रैडरिक विलियम के अन्तिम संदेहों को भी दूर कर दिया। वियेना (Vienna) और बर्लिन (Berlin) में फ्रांस विरोधी पक्ष की पुनः विजय हुई।

'महान्' या जिरोंडिस्ट मन्त्रिमण्डल (मार्च २३)

लेकिन यह युद्ध जिरोंडिस्ट युद्ध हुआ। मार्च के प्रारम्भ में नैरबोन (Narbonne) अपदस्थ हो गया और २३ मार्च को एक नया मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ़ हुआ। इस मन्त्रिमण्डल का निर्माण ब्रिसोट (Brissot) के ब्रेकफास्ट टेबिल पर हुआ था। राजा को भी हताश भाव से इस मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करना पड़ा। ड्यूमोरेज (Dumouricz) नया विदेश मन्त्री था। वह ब्रिसोट का सच्चा अनुयायी नहीं था। विदेश नीति के सम्बन्ध में उसके विचार अपरिपक्व तथा पुराने ढर्रे के थे। उसने प्रशा को आस्ट्रिया की मित्रता से विरत करने की कोशिश की लेकिन वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। इस पर तत्कालीन उग्रता के सामने उसे भी झुकना पड़ा। वह सेनापति की पोशाक में अपने सर पर लाल टोपी रखकर जैकोबिन क्लब में उपस्थित हुआ।

युद्ध (२० अप्रैल १७९२)

२० अप्रैल को असहाय और शिथिल दृग राजा ने हंगरी (Hungary) एवं बोहेमिया (Bohemia) के राजा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। एक जिरोंडिस्ट वक्ता ने कहा था, "लोग लड़ाई चाहते हैं। उनके न्यायोचित और उदार अधैर्य के आगे झुकने के लिए शीघ्रता कीजिए। शायद, आप सारे संसार को स्वतन्त्रता का संदेश देने वाले हैं।" सभा के केवल सात सदस्यों ने युद्ध के विपक्ष में मत दिया। सड़कों पर लोगों ने युद्ध की घोषणा को बड़ी प्रसन्नता से सुना।

इस तरह, युद्ध-गीत को गाते हुए फ्रेंच राष्ट्र ने लड़ाई प्रारम्भ की। पाँच महीनों तक इसे पराजय, अपमान और आक्रमण का सामना करना पड़ा। उसकी सेना असंगठित, छोटी और विप्लवी थी। पुराने सैनिक विद्रोही थे, स्वयंसेवक अवज्ञापूर्ण और अनुभवहीन थे। दो-तिहाई अफसर विश्वासघात कर चुके थे। कमान में बिलकुल एकता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी। अफसरों तथा आदमियों का एक दूसरे के ऊपर बिल्कुल विश्वास नहीं था। राशन अपर्याप्त था। दुर्ग जीर्ण अवस्था में थे। रानी ने फ्रांस की सारी योजनाएँ शत्रुओं को बता दी थीं। फ्रांस की सेनाओं ने आस्ट्रिया के नीदरलैण्ड्स पर तीन दिशाओं से आक्रमण किया था और उन्हें तीनों स्थानों पर मुँह की खानी पड़ी। ला फायेत (La Fayette) को पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा और थियोबाल्ड डिल्लन (Theobald Dillon) की उसके ही आदमियों ने हत्या कर दी। फ्रेंच अपने शत्रुओं की गोली वर्षा न सह सके। यह अनुभव उपहासास्पद, अपमानजनक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

पराजय तथा अपमान के पाँच महीने (अप्रैल-सितम्बर)

आस्ट्रियन हँसे। उन्होंने कहा, "हमें तलवारों की नहीं, प्रत्युत कोड़ों की आवश्यकता है।" उन्होंने अपने शत्रुओं के प्रति घृणा प्रकट की और वे यह सोचकर कि विजय तो हमारी निश्चित ही है, आलस्य में पड़े रहे। उन्होंने सीमान्त के दुर्गों तक को हथियाने की कोशिश नहीं की। उन्हें कैथेराइन पर सन्देह था जिसने १ मई को पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया था। वे प्रशा की भी, जिसने २५ जुलाई तक युद्ध की घोषणा नहीं की थी, प्रतीक्षा करते रहे। सम्मिलित सेनाएँ प्रशा के सेनापति ब्रुन्सविक (Brunswick) की अधीनता में रखी गईं। प्रवासी कुलीनों के दबाव से ब्रुन्सविक ने २८ जुलाई को एक घोषणा निकाली। यह घोषणा किसी कुलीन ने ही तैयार की थी। इसमें फ्रांसीसियों को चेतावनी दी गई थी कि "यदि वे अपनी रक्षा करने का प्रयास करेंगे, तो उनके साथ युद्ध की सारी निर्दयताएँ बरती जायेंगी।" उसकी इस चुनौती ने फ्रांस में राजतन्त्र की स्थिति को बहुत शोचनीय कर दिया। चुनौती के परिणामस्वरूप १० अगस्त को राजतन्त्र के ऊपर घातक आक्रमण हुआ। १९ अगस्त को ब्रुन्सविक ने २०,००० आस्ट्रियनों, ४२,००० प्रशन सैनिकों और ८,००० प्रवासी कुलीनों को साथ लेकर फ्रांस के ऊपर आक्रमण किया। यह तो केवल एक परेड मात्र थी। २२ तरीख को लोंग्वी (Longwy) और १ सितम्बर को वर्दून (Verdun) का पतन हो गया और फ्रेंच सेनापति ने आत्म-हत्या कर ली। आस्ट्रो-प्रशन सेना और पेरिस के बीच एक भी दुर्ग नहीं था और आस्ट्रो-प्रशन सेना १५ दिन में ही पेरिस पहुँच सकती थी। लेकिन इस द्रुतगति के पूर्व तीन महीने तक आस्ट्रो-प्रशन सेना निष्क्रिय पड़ी रही थी। इस अवधि में फ्रांस में सुदूरव्यापी परिवर्तन हो गए।

फ्रांस का आक्रमण (अगस्त १९)

२० अप्रैल से लेकर, जबकि युद्ध की घोषणा हुई थी, प्रशन सैनिकों के वर्दून पर आधिपत्य तक पाँच महीने हुए थे। इन महीनों में शुरू-शुरू में फ्रांस की पराजय हुई, फिर आक्रमण स्थगित रहा और अन्त में अगस्त के आखिर में फिर आक्रमण हुआ। इस काल में क्रांति का प्रवाह बिलकुल बदल गया। यह अवधि फ्रांस के लिए बड़ी संघर्षात्मक थी। एक ओर तो राजतन्त्र तथा उसके समस्त समर्थक तत्त्व थे और

पेरिस में पाँच महीने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर गणतन्त्रवाद तथा उसके समस्त समर्थक तत्त्व थे। अप्रैल में फ्रांस मध्यम वर्ग पर आधारित वैधानिक राजतन्त्र था। उसकी एक संसद् थी जिसकी सत्ता अभी चलती थी। सितम्बर में अप्रैल का फ्रांस कहीं दिखाई भी नहीं देता था। राजतन्त्र के अन्तिम स्तम्भ भी गिर चुके थे। मध्यमवर्ग लाल टोपीवाले प्रचण्ड प्रजातन्त्रवादियों (*Sans-culottes*) की दया पर निर्भर था। संसद् विद्रोही कम्यून (Commune) के बन्धन

क्रांति का मोड़

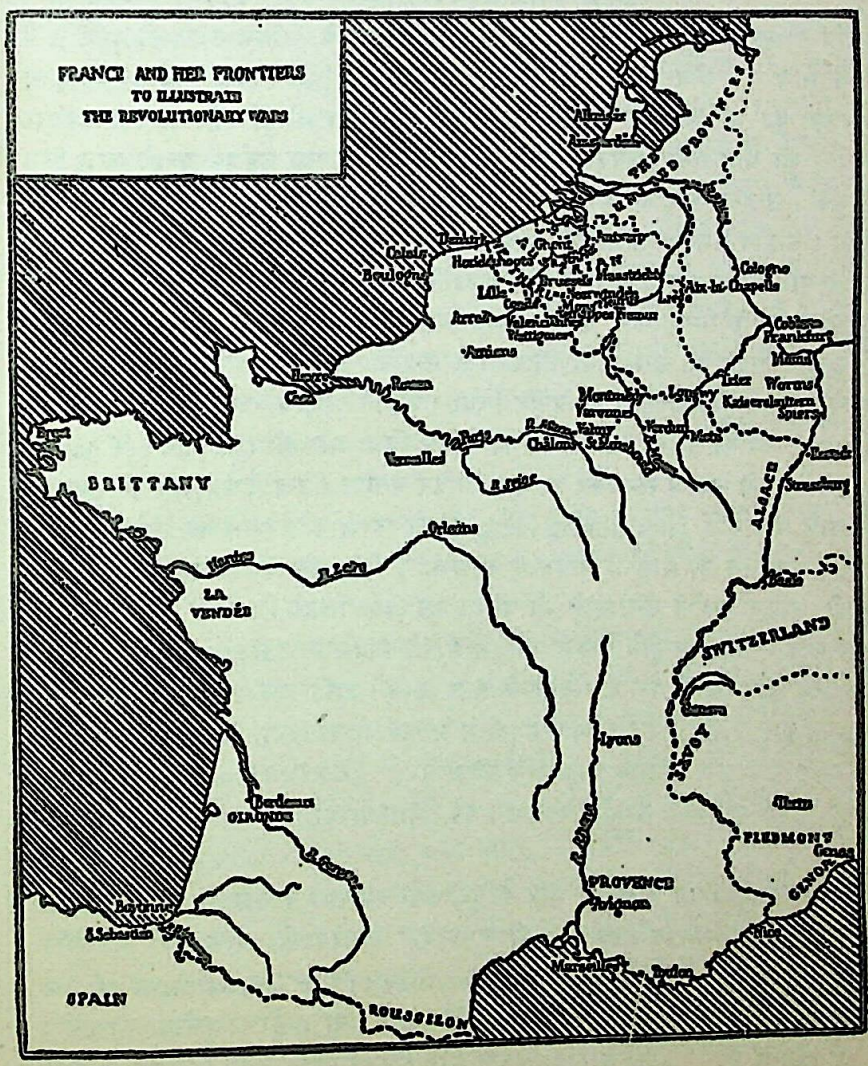

में थी। जैकोबिन्स ने जिरोंडिस्टों और डैन्टन (Danton) ने ब्रिसोट (Brissot) एवं रोलां (Roland) को दबा दिया था। पुरानी समस्याएँ नष्ट हो गई थीं और नई समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं और उनके बीच में रक्त तथा आतंक और अमिट स्मृतियाँ थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध और पराजय ने फ्रांस में आतंक की लहर पैदा कर दी थी। नई स्थिति कुछ तो इसी आतंक का मनोवैज्ञानिक परिणाम थी। इसी वजह से विधानमण्डल की महिमा नष्ट हो गई थी और जनता पर पागलपन का भूत-सा सवार हो गया था। लेकिन इस स्थिति को कुछ हद तक जैकोबिन्स और जिरोंडिस्टों ने जान-बूझ कर पैदा किया था। जिरोंडिस्टों ने अप्रैल में युद्ध की घोषणा की थी। उनका परोक्ष उद्देश्य राजतन्त्र पर आक्रमण करना था। यद्यपि साधन की दृष्टि से जैकोबिन्स उनसे असहमत थे, लेकिन लक्ष्य की दृष्टि से वे उनके साथ थे। दोनों ही पक्षों ने राजमुकुट (Crown) के विरुद्ध कार्य करने वाली शक्तियों को उत्तेजित किया, उसके समर्थकों की स्थिति को दुर्बल किया, उसकी कठोर भर्त्सना की और ऐसी अव्यवस्था पैदा की जिससे कि उनका उद्देश्य अच्छी तरह सिद्ध हो सके। उन्होंने भीड़ की प्रशंसा की और उसके आतंक के प्रति विनम्र आदर प्रकट किया। उन्होंने सभा के कक्षों को उसके लिए पहले ही खोल दिया था, उसे वहाँ बैठने का सम्मान दिया। मुनाफाखोरों और देशद्रोहियों के विरुद्ध जो आवाज थी, उसे उन्होंने राजा के विरुद्ध कर दिया। अकाल-उपद्रवों और आर्थिक अव्यवस्था के लिए भी उन्होंने राजा को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने गुण्डों को पेरिस बुलाया और प्रान्तों के उत्साही व्यक्तियों का आदर किया। उन्होंने राष्ट्रीय रक्षक दल (National Guard) की निष्ठा को कम करने का प्रयास किया और चैम्प डी मार्स (Champ De Mars) में सशस्त्र समर्थकों का एक शिविर बनाया। उन्होंने संविधान की शपथ न लेने वाले पादरियों (non-juring clergy) की निन्दा की जिससे कि राजा विरोध के लिए उत्तेजित हो जाय। संविधान ने राजा के लिए कुछ अंगरक्षकों की व्यवस्था की थी, लेकिन उन्होंने उसे उनसे भी वंचित कर दिया जिससे कि राजा की रक्षा करने वाला कोई न रहे। उन्होंने प्रत्येक कोने में भरती-कार्यालय (Recruiting offices) खोल दिए और सड़कों पर गाजे-बाजे के साथ गश्त जारी की। होटल डी विल (Hotel De Ville) में उन्होंने एक काला झण्डा लटका दिया, जिस पर सफेदी से चार शब्द अंकित थे "सम्राट् पितृ-भूमि संकट में है (*La Patrie en Danger*)। ये सब राजमुकुट के विरुद्ध संगठित आक्रमण की तैयारियाँ थीं।

जैकोबिन्स एवं जिरोंडिस्टों की जानी-बूझी नीति

इसके विपरीत राजतन्त्र और कानून तथा व्यवस्था के पक्ष में जो इस समय समीकृत थे, निम्नलिखित तत्त्व थे—राजदरबार, डायरेक्टरी ऑफ दि डिपार्टमैंट ऑफ दि सीन (Directory of the Department of the seine) और सभा के अन्दर तथा बाहर फ्यूलैंट्स का दर्ग। लेकिन राजा दुर्बल और संकल्प-रहित था। यद्यपि रानी में संकल्प-शक्ति थी, लेकिन उसमें बुद्धि का अभाव था। उसने विदेशी सेनाओं के भरोसे अपने सर्वस्व की बाजी लगा दी थी। सीन के डिपार्टमैंट की डायरेक्टरी ने जिरोंडिस्ट मेयर पेटिअन (Petion) के आचरण के सम्बन्ध में देरी से एक जाँच की थी। लेकिन राजधानी के अधिकारियों के

राजतन्त्र को बचाने के प्रयासों की असफलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर उसकी सत्ता कुछ अनिश्चित और अस्पष्ट थी। राजा या सभा की सहायता के बिना वह बढ़ती हुई अव्यवस्था को रोकने के लिए कुछ नहीं कर सकता था। फ्यूलैंट्स (Feuillants) असंगठित थे और उनके प्रयत्न असामयिक, असंगत और अप्रभावी थे। जिरोंडिस्टों ने स्विस अपराधियों को एक दावत दी, उन्होंने भी जिरोंडिस्टों की देखा-देखी एक दावत दी। लेकिन चूंकि यह उत्सव बाद में हुआ था, अतः सफल न हो सका। ला फायेत (La Fayette) ही जिरोंडिस्टों एवं जैकोबिन्स का दृढ़ विरोध कर सकता था और वह सफल भी हो सकता था लेकिन राजा ने उस पर, जिसने क्रान्ति के लिये इतना कार्य किया था, भरोसा नहीं किया। यह एक व्यंग ही है और फ्रेंच क्रान्ति में ऐसे व्यंग प्रचुरता से मिलते हैं कि ला फायेत का, जो क्रांति का वीर सेनानी था, जीवन राजा को बचाने की चेष्टा में समाप्त होता। पहला अवसर २० जून के बाद आया जब कि ला फायेत जैकोबिन क्लब को बन्द करने और राज-तन्त्री प्रतिक्रिया का जिसके चिन्ह दिखाई देने लगे थे, नेतृत्व करने के विचार से राजधानी में वापस आया था। लेकिन वह सफल न हो सका और उसे सेना की ओर वापस लौट जाने के लिए विवश किया गया। पुनः उसने १० अगस्त के बाद राजा की रक्षा में अपनी सेनाएँ पेरिस में भेजने की कोशिश की लेकिन सेना ने उसका अनु-सरण करना अस्वीकार कर दिया। वह दो बार पराजित हुआ। अन्त में उसने निराश होकर सीमान्त पार किया और उसने शत्रु के हाथों में आत्मसमर्पण कर दिया।[1] इस तरह अवसरहीनता, असंगठन, संयोग और राजा के अविश्वास ने राजतन्त्र को बचाने की सारी चेष्टाएँ विफल कर दीं।

तीन घटनाएँ

जिरोंडिस्टों एवं जैकोबिन्स की नीति की प्रगति में तीन घटनाएँ प्रमुख थीं—२० जून की घटना, १० अगस्त की घटना और २-६ सितम्बर की घटनाएँ।

२० जून

२० जून को जिरोंडिस्टों ने स्वयं को मंत्रिमण्डल से हटा दिये जाने के उपलक्ष्य में विरोध-प्रदर्शन आयोजित किया। उनका एक बहाना तो यही था। दूसरा बहाना था—संविधान की शपथ न लेने वाले पादरियों के विरुद्ध जारी की गई आज्ञप्ति पर राजा का निषेधाधिकार। भीड़ टुइलेरीज़ (Tuileries) के राजप्रासाद में घुस गई। वह सारे दिन राजा को घेरे रही, उसने राजा को कड़वी शराब पीने के लिये विवश किया, और उसके सर पर एक लाल टोपी रख दी लेकिन विद्रोह का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। राजा के साहस ने उसके सर की रक्षा की। वह इस बात के लिए भी तैयार नहीं हुआ कि मंत्रियों को वापस बुला ले या अपने निषेधाधिकार को वापस ले ले। विद्रोह असफल हो गया लेकिन शुरुआत हो चुकी थी। जैकोबिन्स तथा जिरोंडिस्टों ने एक अन्य आक्रमण की तैयारी की जो कुछ विक्षेपों के पश्चात् अन्त में १० अगस्त को सम्पन्न हुआ।

१० अगस्त पुराने राजतन्त्र का अन्तिम दिन और इस युग की एक महत्त्वपूर्ण

---

१. १८३० में ओरलियेंस की ओर से वह एक अन्य क्रांति में प्रमुख नेता के रूप में प्रकट हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथि थी। २८ जुलाई को ब्रुन्सविक की घोषणा के प्रकाशन ने जनता के उत्साह को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया। ३० ता० को पेरिस में मार्सेलीज़ (Marseillais) का एक बैंड आया जो अपने विख्यात क्रान्ति-गीत को गा रहा था। उसके आ जाने से राजमुकुट पर आक्रमण करने वाले तत्त्वों की शक्ति बढ़ गई थी।

१० अगस्त

इस दिन की सारी घटनाएँ यहाँ नहीं बताई जा सकतीं—केवल एक या दो दृश्यों का ही चित्र खींचा जा सकता है। रात्रि-जागरण की भयंकर शंकाकुलता जब कि चर्चों और सार्वजनिक स्थानों से घण्टियाँ बजती रहीं, मैडम एलिजाबेथ का प्रातः उठना और सुहावनी उषा की रानी की प्रशंसा करना, भयभीत तथा निराश राजा द्वारा जिसके बाल अस्त-व्यस्त हो रहे थे, राष्ट्रीय रक्षक दल का अवलोकन, रानी का पिस्तौलों की ओर इशारा, लेकिन उसके पति का उन्हें अस्वीकार करना, फिर राज-परिवार का मेनीज[1] (Manege) की ओर हटना, राजकुमार का उन बागों में जहाँ से होकर वे गुजरें, गिरी हुई पत्तियों को ठुकराना, टुइलेरीज के बचाव की वीरतापूर्ण चेष्टा, गलत आदेश, स्विस रक्षक दल की हत्या, भीड़ का राजप्रासाद में प्रवेश, कमरों को घेरना, रानी के शीशों का टूटना और समस्त राज-सेवकों की मृत्यु।

टुइलेरीज की विजय और राजतन्त्र का पतन

ऐसे दृश्यों के बीच विश्वासघात और निर्दयता, करुणा और वीरता, राजा की असहायता, उसकी प्रजा की रक्त-पिपासा और वेतनभोगी सैनिकों की राजभक्ति के बीच—फ्रांस के पुराने राजतन्त्र का अन्त हुआ। जिस समय यह सब हो रहा था—एक कोर्सिकन लैफ्टिनेंट, जिसे राजा और जनता दोनों से घृणा थी, यह देख रहा था।

जिस समय राजा अपने परिवार के साथ कुछ खा-पी रहा था, सभा उसके भाग्य पर बहस कर रही थी। सभा के ७५० सदस्यों में से ४५० से अधिक तो अनुपस्थित थे। उस समय सभा के कक्ष दर्शकवृन्दों से भरे हुए थे। उपस्थित सदस्य राजा की पदच्युति के पक्ष में मत देने के लिए तैयार नहीं थे लेकिन उनके ऊपर भीड़ का आतंक था और वे ऐसा न करने से भी डरते थे। उन्होंने इस समस्या को दूसरों के कन्धों पर डाल दिया। उन्होंने उसे राजकीय कार्यों से छुट्टी दे दी और उसे एक नई शक्ति के हाथों में सौंप दिया। यह नई शक्ति पेरिस का विप्लवी कम्यून था। इसके साथ ही उन्होंने उसकी पदच्युति का निर्णय करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) का आयोजन किया।

१० अगस्त को राजतन्त्र का पतन हो गया। विधान सभा, कार्यपालिका, जिरोंडिस्टों, मध्यवर्ग और स्वयं क्रान्ति को उस दिन एक नया स्वामी—जनता—तथा जनता के साथ जैकोबिन्स—मिला। जैकोबिन्स जनता द्वारा और जनता के माध्यम से कार्य करते थे। इस बीच जैकोबिन्स और जिरोंडिस्टों के बीच की खाई चौड़ी हो गई थी। क्लब में जैकोबिन्स का संगठन ज्यादा अच्छा था। उस पर उनका अधिकार

---

१. वह हॉल, जहाँ सभा की बैठक हो रही थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी था। उनमें दृढ़ता भी ज्यादा थी। सबसे बड़ी बात यह है कि उनका प्रधान डैन्टन (Danton) था जो उस समय का एकमात्र व्यावहारिक राज-नेता था। जिरोंडिस्ट जरा दयालु थे। वे बर्छियों के शासन से डरते थे और अपने हृदय में राजा से भी यदि वह उन्हें सत्तारूढ़ कर देता, समझौता करने के लिए तैयार थे।

जैकोबिन्स और जनता की विजय

लेकिन राजा ने उनकी उपेक्षा कर दी ठीक उसी तरह जिस तरह कि उसने उन अन्य बहुत से व्यक्तियों की उपेक्षा कर दी थी जिन्होंने कि उसको बचाने की चेष्टा की थी। जिरोंडिस्टों ने इस बात का निरन्तर प्रयास किया कि उत्साह के प्रदर्शन में वे भी जैकोबिन्स से पीछे न रहें यद्यपि उनका अन्तिम रूप से जून, १७९३ तक पतन नहीं हुआ, लेकिन वास्तव में वे १० अगस्त, १७९२ को ही पराजित हो गये थे। उस दिन असली विजय जैकोबिन्स की रही। उन्होंने जिरोंडिस्टों को भी अपने साथ मंत्रिमण्डल में शामिल किया। उन्होंने राजा तथा उसके परिवार को पकड़ लिया था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्होंने पेरिस की नगरपालिका पर भी काबू पा लिया। कानूनन उस पर जिरोंडिस्टों का शासन था लेकिन जैकोबिन्स ने बलपूर्वक उसे हटाकर वहाँ एक विद्रोही शासन की स्थापना की जो इतिहास में कम्यून (Commune) के नाम से विख्यात है। जैकोबिनिज्म व्यवहार में अल्पमत की प्रभुता थी लेकिन सिद्धान्त में वे प्रत्यक्ष लोकतन्त्र या 'जनक्रांति' का समर्थन करते थे। उनका कहना था, "जब जनता विद्रोह की अवस्था में होती है, तब वह सारी शक्तियाँ छीन लेती है और उन्हें अपने हाथों में कर लेती है।" इस सिद्धान्त के अनुसार ही कम्यून पेरिस का, सभा का, फ्रांस का और क्रांति का रास्ता बन गया। इस विजय का प्रतीक जनता का नेता मिराबो डैन्टन था। उसने कहा था, "मैं टुइलेरीज में छेद करके आया हूँ।"

१० अगस्त का जनता के ऊपर प्रभाव पड़ा और उसने सितम्बर के प्रारम्भ के घटना-चक्र का पथ प्रशस्त किया। राजतंत्र के पतन के नौ दिन बाद प्रशा और आस्ट्रिया के सैनिकों ने फ्रांस पर आक्रमण किया और पन्द्रह दिन के भीतर ही अपने और पेरिस के बीच के प्रत्येक दुर्ग को जीत लिया। मंत्रिमण्डल में रोलां (Roland) और ब्रिसोट (Brissot) घबड़ा से गये, उन्होंने पेरिस छोड़ने का विचार किया और इस गलत क्षण को ही देशद्रोही मोंटमरिन (Montmorin) को निर्दोष घोषित करने के लिए चुना। उस समय चारों ओर देशद्रोह की आवाज गूंज रही थी। राज-दरबार में देशद्रोह था, प्रत्येक घर में देशद्रोह था। डैन्टन ने हथियारों की खोज के लिए एक-एक घर की तलाशी का आदेश दिया। शीघ्र ही कारागार संदेहास्पद व्यक्तियों, कुलीनों, राजा के मित्रों, शत्रु के मित्रों, पादरियों, प्रवासी कुलीनों के रिश्तेदारों और उन सबसे, जिन्होंने १० अगस्त की घटनाओं का समर्थन नहीं किया था, भर गये। जनता ने १० अगस्त को अपनी शक्ति समझ ली थी, उसमें हिंसा की ज्वाला जाग्रत हो चुकी थी और जैसा कि डैन्टन ने कहा था, "कोई भी मानवीय शक्ति उसे नहीं रोक सकती थी।" २ सितम्बर को वर्दून का पतन हो गया। उस

सितम्बर, १७९२ का हत्याकाण्ड

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन १५० हत्यारों का एक झुण्ड—उसके पीछे जनता थी—एक-एक करके कारागार में गया। उसने वहाँ कैदियों को बाहर घसीटा, उनके अभियोगों की परीक्षा का अभिनय किया और फिर उनके साथ न्याय किया। उस दिन कुल मिलाकर १,६०० आदमी मार डाले गये।

एक मात्र डैन्टन ही इस हत्याकाण्ड को रोक सकता था। लेकिन उसने कुछ नहीं किया। उसने जनता के इस कुकर्म को 'उसका न्यायोचित रोष' (Just anger of the People) बताया। इस बात का साक्ष्य मिलता है कि उसने मरत (Marat) के साथ मिलकर हत्याकाण्ड को प्रोत्साहन दिया और इस बात की चेष्टा की कि प्रान्त भी पेरिस के उदाहरण पर चलें। चाहे कुछ हो, ये हत्याएँ उसके राजनीतिक हथकंडों की एक अंग थीं। जिन हथियारों से वह फ्रांस की रक्षा करना चाहता था, उनमें जनता की शक्ति भी बहुत महत्त्वपूर्ण थी। वह घर में तथा शत्रुओं के विरुद्ध समान रूप में उपयोगी थी। सितम्बर के उन दिनों में राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के लिए निर्वाचन हो रहे थे। इस बार निर्वाचन १७९१ के सीमित मताधिकार के आधार पर नहीं प्रत्युत सार्वभौम पुरुष मताधिकार (Universal manhood suffrage) के आधार पर हो रहे थे।

३. सम्मेलन (सितम्बर १७९२ से अक्टूबर १७९५)
(The Convention, Sept. 1792-Oct. 1795)

क्रान्ति के स्वरूप में परिवर्तन

विधान सभा के विघटन के साथ ही एक दृष्टि से क्रान्ति का, पुरानी शासन-व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई के रूप में, स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष के रूप में, अन्त हो गया। पुरानी व्यवस्था के ऊपर कई प्रगतिशील आघात, चाहे वे आकस्मिक रहे हों, हो चुके थे। कुलीन वर्ग छिन्न-भिन्न हो गया था, चर्च अपमानित हो गया था, प्रशासन तहस-नहस हो गया था और राजतन्त्र नष्ट हो गया था। लोकतन्त्र विनाश में विजयी हुआ था। लेकिन उसने राज्य के अस्तित्व तक को खतरे में डाल दिया था। फ्रांस की सुरक्षा और एकता पर विदेशी शत्रुओं के आक्रमण हो ही रहे थे। गृह-युद्ध ने उसे और भी खतरे में डाल दिया। गणराज्य अपने जन्म के समय ही संकट में पड़ गया था।

जनता का जनार्दन रूप

इसलिए अब राज्य एवं गणराज्य की रक्षा की और जो शक्ति नष्ट हो गई थी, उसके स्थान पर एक नई शक्ति को लाने की आवश्यकता सबसे प्रबल हो गई। सितम्बर १७९२ के बाद से क्रान्ति का प्रवाह कुछ व्यावहारिक प्रवृत्तियों से सबसे ज्यादा निर्धारित हुआ। अब सिद्धान्त और स्वतन्त्रता, करुणा और मानवता सब पीछे पड़ गई। अब मुख्य प्रश्न यही था कि एक शक्तिशाली कार्यपालिका का निर्माण हो और राष्ट्र की रक्षा के लिए संगठन किया जाये। मानव अधिकारों के नाम पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातन शासन-व्यवस्था को नष्ट किया गया; सार्वजनिक सुरक्षा के नाम पर उसके खंडहरों में से एक नए राज्य का संगठन किया गया। अभी जिस निरंकुशता को समाप्त किया गया था, कुछ समय के लिए उससे भी प्रबल निरंकुशता स्थापित हो गई।

यह स्वाभाविक है कि जब शत्रु सामने दिखाई देता हो, तो एक विशेष प्रकार के संगठन की आवश्यकता हो जाती है। इस संगठन के लिए जनता को स्वतन्त्रता देने की अपेक्षा आक्रामक से रक्षा करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है। यह चीज उस हालत में और भी जरूरी हो जाती है जब कि बाहर तो लड़ाई चल रही हो और अन्दर देश-द्रोह हो। इसलिए सार्वजनिक सुरक्षा की बुनियादों पर इतिहास के कठोरतम अन्यायी शासनों में से एक की स्थापना हुई। लोकतन्त्र अधिनायकवाद और फिर प्राणहन्ता बन गया। '९२ के गणराज्य ने '९३ और '९४ के आतंक का रूप धारण कर लिया।

१७९२-९७ के जटिल इतिहास का पहला उद्देश्य यह था कि युद्ध की आवश्यकताओं को देखते हुए राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिए दृढ़ संगठन किया जाए। इसके साथ-ही-साथ एक धारा और चल रही थी। वह थी—विभिन्न गुटों का नई शक्ति और नई व्यवस्था पर नियन्त्रण पाने के लिए पारस्परिक संघर्ष। इस तरह, जहाँ एक ओर तो राष्ट्र के ऊपर अद्वितीय निरंकुशता की स्थापना की गई, दूसरी ओर सत्ता के अधिकारियों में ही, परमेष्ठता के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहा।

२० सितम्बर, १७९२ को सम्मेलन (Convention) की बैठक हुई। उसने दूसरे दिन ही राजा की पदच्युति के पक्ष में मत दिया। यह पहले से ही निश्चित था। लेकिन जिस दिन सम्मेलन की बैठक हुई, उस दिन एक अनहोनी घटना घटित हुई। वाल्मी नामक स्थान पर फ्रांस और प्रशा की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। यह लड़ाई थोड़ी ही देर तक चली लेकिन इस अवसर पर गणराज्य के सैनिक पहली बार शत्रुओं की गोली के सामने अडिग खड़े रहे। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। शत्रु का आगे बढ़ना रुक गया। इस अवसर पर गेटे (Goethe) उपस्थित था। उसका कहना है, "उस दिन हमने एक नई दुनिया में प्रवेश किया।" फ्रांस जो राष्ट्रीय विनाश के कगार पर खड़ा था, बच गया। डैन्टन (Danton) ने सम्मेलन द्वारा जाग्रत उच्च अभियान की उपेक्षा की और शत्रु से आतुरतापूर्वक पीछे हटने की बातचीत की। सितम्बर के अन्त में प्रशा के सैनिक फ्रांस की सीमा के बाहर चले गए। उन्होंने एक ऐसे सुअवसर से हाथ धोया जो उन्हें बीस वर्ष तक नहीं मिल सकता था। लेकिन प्रशा का राजा आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं था। ब्रुन्सविक (Brunswick) को अपनी प्रतिष्ठा से हाथ धोने का भय था और सैनिकों को पेचिश हो गई थी। प्रशा का राजा आस्ट्रिया से ईर्ष्या करता था। उसे पोलैण्ड में रूस की ओर से खटका लगा हुआ था। वह प्रवासी कुलीनों के प्रति भी विशेष सदय नहीं था। फिर उसका कुछ यह भी विचार था कि दूसरे के भाड़ में वह अपना सर क्यों दे। लुई सोलहवें के लिए

वाल्मी (२० सितम्बर, १७९२)

शत्रु का प्रत्यावर्त्तन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशन सैनिकों का प्रस्थान भी कुछ ऐसा ही असामयिक रहा था जैसा कि उनका आक्रमण। एक ने तो उसके पतन में शीघ्रता की थी और दूसरे ने उसकी मृत्यु को शीघ्र ला दिया।

वाल्मी (Valmy) का अवरोध तो क्रांतिकारियों की एक-एक करके कई विजयों का पूर्व संकेतमात्र था। लेकिन ये विजयें जितनी शीघ्रता से हुई थीं, उतनी ही अल्पजीवी सिद्ध हुईं। माँटेस्क्यू (Montesquieu) ने सेवाय (Savoy) और नाइस (Nice) के प्रदेश बिना विशेष कठिनाई के जीत लिए। वहाँ की जनता ने उसे अपना मुक्तिदाता समझा। रेनिंश देशभक्तों के आमंत्रण पर कस्टाइन (Custine) जर्मनी में घुस गया और उसने स्पाइर्स (Spires), वॉर्म्स (Worms) तथा मेंज (Mainz) पर अपना नियन्त्रण जमा लिया और फ्रेंकफर्ट (Frankfurt) को अपने बन्धन में रखा। सम्मेलन (Convention) ने ट्यूरिन (Turin), जिनोआ (Genoa) और 'रोम के पोप' (Pope of Rome) तक को धमकाया तथा नवम्बर में ड्यूमोरेज़ (Dumouriez) ने बेल्जियम की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया। ६ तारीख को उसने जेम्पीज़ (Jemappes) नामक स्थान पर गणराज्य की पहली विजय प्राप्त की। दूसरे दिन उसने मोंस (Mons) में प्रवेश किया। वहाँ की जनता ने भी उसका स्वागत किया। इसके बाद वह ब्रुसेल्स पहुँचा। ड्यूमोरेज़ (Dumouriez) ने लीज (Liege) में अपना प्रधान कार्यालय बनाया। उसके लैफ्टिनेंट मिरांदा (Miranda) ने एंटवर्प (Antwerp) में प्रवेश किया। आस्ट्रियन नीदरलैंड्स भी फ्रांसीसियों की अधीनता में हो गया।

विजय के दो महीने

फ्रांस के ऊपर इन विजयों का असर नशे की तरह पड़ा। जनता का गणराज्य में विश्वास बढ़ गया था। उसकी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं में भी बहुत वृद्धि हुई। क्रान्तिकारियों ने पतित बूरबन शासकों के प्रबल-से-प्रबल प्रदेशवाद (territorialism) का पुनरुत्थान किया और उसके साथ-ही-साथ नए लोकतन्त्र की आक्रामक परोपकार वृत्ति की घोषणा की। शेल्ट (Scheldt) नदी पर व्यापार के जो प्रतिबन्ध लगे हुए थे, गणराज्य ने उन्हें दूर कर दिया। उसने यूरोप के संघर्षरत लोकतन्त्रों को सशस्त्र सहायता देने का वचन दिया लेकिन यह शर्त थी कि वे उसके व्यय को सहन करें। उसके साथ ही गणराज्य ने निश्चय किया कि उसकी प्राकृतिक सीमाएँ राइन, आल्प्स और पिरेनीज़ होंगी। इसलिए उसने नाइस, सेवॉय और बेल्जियम अपने अन्दर मिला लिये। फ्रांस के इतिहास में, चाहे वह गणतन्त्र के अन्तर्गत रहा हो और चाहे राजतन्त्र के, समय-समय पर अपूर्व शक्ति का प्रदर्शन होता रहा है। जैकोबिन्स (Jacobins) ने भी इसी शक्ति का परिचय दिया है। उन्होंने यूरोप के देखते-देखते अनेक विजयें प्राप्त कीं और आज्ञप्तियों पर आज्ञप्तियाँ पास कीं। अन्त में उन्होंने एक सबसे बड़ा काम किया। उन्होंने पुरानी दुनिया के अभिषिक्त सम्राटों को पुरानी दुनिया के पवित्रतम राजा का सर भेंट किया। २१ जनवरी, १७९३ को जीर्ण विश्वास

नवम्बर की आज्ञप्तियाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपनी ही कमजोर सदिच्छा के शहीद लुई को प्लेस लुई क्विज़ (Place Louis-Quinze) में फाँसी दे दी गई। यह जैकोबिन्स की इच्छा थी। जिरोंडिस्ट इसे रोक न सके। सम्मेलन (Convention) में इतना साहस नहीं था।

राजा की मृत्यु (२१ जनवरी १७९३)

एक प्रतिनिधि ने लिखा था, "निरपराध घोषित करने के लिए निन्दा करने की अपेक्षा अधिक साहस की आवश्यकता थी।" यद्यपि लुई सोलहवाँ चार्ल्स प्रथम की तरह एक वीर-चरित्र नहीं है, तथापि उसने राजोचित साहस के साथ मृत्यु का आलिंगन किया। उसने अपने को निर्दोष बताया और यह विश्वास प्रकट किया कि उसकी मृत्यु से उसकी जनता की प्रसन्नता में वृद्धि होगी। भीड़ ने उसकी आवाज़ को डुबाने के लिए ढोल बजाए। बाद में कोलाहलपूर्ण भीड़ को केवल यही शब्द सुनाई दिए—"राष्ट्र चिरजीवी हो।" एक क्रान्तिकारी ने कहा था, "हमने अपने पीछे के रास्ते तोड़ दिए हैं।" राजा की मृत्यु क्रांति के नाटक का अन्तिम दृश्य था। अब उसके परिणामों से कोई छुटकारा नहीं था। अब पीछे फिरना बिलकुल नहीं हो सकता था। अब तो नेपोलियन के उत्थान तक निरन्तर आगे ही बढ़ते जाना था। अन्त में नेपोलियन ही इतना शक्तिशाली सिद्ध हुआ कि उसने राष्ट्र को प्रतिकारों (reprisals) से रोका।

पहला गठबन्धन

यूरोपीय युद्ध कई कारणों से पहले ही दिखाई दे रहा था। लुई सोलहवें की हत्या ने उसे शीघ्रता से ला दिया। फ्रांस की उद्घोषणाओं और विजयों से प्रत्येक राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ गई क्योंकि फ्रांस की कार्यवाहियों से वहाँ के असन्तुष्ट वर्गों को भी उत्तेजना मिलती थी। इंगलैण्ड का हित सदैव इस बात में रहा है कि वह कैन्टिश तट के दूसरी ओर के छोटे-छोटे राज्यों की स्वतन्त्रता को कायम रखे। शेल्ट नदी के खुल जाने और बेल्जियम के फ्राम में मिल जाने से उसकी व्यापारिक सर्वोच्चता को खतरा पैदा हो गया। हालैण्ड को तुरन्त खतरा था। फ्रांस की सेनाएँ उसके दरवाजे पर थीं। प्राकृतिक सीमाओं का सिद्धान्त फ्रांस का सीमान्त राइन तक ले जाकर उसके प्रदेश को दो भागों में बाँट देता। सम्मेलन में उसके ऊपर आक्रमण के विचार पर खुले आम बहस हुई और २९ जनवरी को उसका निश्चित आदेश भी हो गया। मार्च के अन्त तक फ्रांस का यूरोप के अधिकांश भाग से, आस्ट्रिया और प्रशा, इंगलैण्ड और हालैण्ड, स्पेन और सार्डीनिया, पुर्तगाल, नेपल्स, टस्कनी और साम्राज्य की अन्य रियासतों से युद्ध प्रारम्भ हो गया। रूस की कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) ने स्वर्गीय राजा के भाई कोन्टे डी आर्टोयस (Comte d' Artois) को सेंटपीटर्सबर्ग में ठहराया और उसने सेंट बार्थोलोम्यू के हत्याकाँड (Massacre of St. Bartholomew) के बाद इंगलैंड की एलिजाबेथ की भाँति राजदरबार सहित शोक मनाया लेकिन उसने स्वयं को युद्धग्रस्त नहीं किया। पश्चिम के युद्ध ने उसे पूर्वी यूरोप में अपनी महत्त्वाकांक्षा सिद्ध करने का अपूर्व अवसर दिया। राजा की मृत्यु के दो दिन बाद ही, जिसकी मृत्यु का वह शोक मना रही थी, उसने प्रशा के साथ मिलकर पोलैण्ड के द्वितीय विभाजन की व्यवस्था की। अमेरिका तक को जिसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वातन्त्र्य-युद्ध ने फ्रांस को इतनी प्रेरणा दी थी, राजा की हत्या से धक्का पहुँचा। केवल स्विट्ज़रलैण्ड ही मित्रतापूर्ण रहा।

पराजय और आक्रमण (मार्च-जुलाई, १७९२)

सम्मेलन भी युद्ध से नहीं घबड़ाया। ड्यूमोरेज़ (Dumouriez) ने ९२ के संकट में ऐसे ही साहसपूर्ण अभियान का समर्थन किया था। उसने हालैण्ड पर आक्रमण करके संघर्ष का श्रीगणेश किया। लेकिन वह मेस्ट्रिच्ट (Maestricht) के सामने पराजित हो गया। सम्मेलन ने उसे आस्ट्रियन नीदरलैंड्स की रक्षा के लिए वापस बुला लिया। लेकिन ड्यूमोरेज की अपनी महत्त्वाकांक्षाएं थीं। वह दूसरा मोंक (Monk) बनना चाहता था। उसने पेरिस की राजहत्यारी सरकार को पलटने का निश्चय कर लिया था। उसने आस्ट्रियनों के साथ घनघोर युद्ध किया जिससे कि पेरिस जाने के पूर्व उसे विजय मिल जाये। ड्यूमोरेज़ दुस्साहसी था ही। उसकी यह नीति दुस्साहसपूर्ण थी। उसने सर्वस्व बाजी पर लगाया और उससे हाथ धोया। वह १८ मार्च को नीरविंडेन (Neerwinden) नामक स्थान पर पराजित हो गया। फ्रांस के लिए इस युद्ध का परिणाम यह निकला कि आस्ट्रियनों ने बेल्जियम पर फिर से अधिकार पा लिया। ड्यूमोरेज़ (Dumouriez) की सारी योजनाओं का भंडाफोड़ हो गया। उसकी सम्पूर्ण प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। उसका अपमान हुआ। कुछ सिपाही उसे गिरफ्तार करने के लिए भेजे गये। उसने उन्हें पकड़कर मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette) के जीवन के बन्धक के रूप में आस्ट्रियनों को सौंप दिया। उसने इस बात का भरसक प्रयास किया कि उसकी सेना उसके पीछे चले। लेकिन वह अपने इस प्रयास में सफल न हो सका। विवश होकर वह शत्रु के साथ जा मिला। उसके साथ ही लुई फिलिप, प्रिंस ईगेलाइट (Louis Philippe, Prince Egalite) भी था। इसका नाम आगे भी आयेगा। लुई फिलिप ईगेलाइट (Philippe Egalite) ड्यूक डी ओर्लियेन्स (Duc d' Orleans) का पुत्र था। ड्यूक डी ओर्लियेन्स सम्मेलन (Convention) का सदस्य था। उसने अपनी सुरक्षा के विचार से, जो असफल सिद्ध हुई, अपने चचेरे भाई लुई सोलहवें के प्राणदण्ड के पक्ष में मत दिया था।

बेल्जियम की हानि के बाद फ्रांस के ऊपर आक्रमण भी हुआ। अंग्रेजों ने डन्कर्क को घेर लिया। आस्ट्रियन धीरे-धीरे आगे बढ़े। उन्होंने जुलाई में कोण्डी (Condi) और वैलेनसिंयनीज (Valenciennes) पर अधिकार जमा लिया। अब वे लिले (Lille) की ओर बढ़ चले। फ्रांस को अन्यत्र भी पराजय और आक्रमण का सामना करना पड़ा। प्रशा और साम्राज्य की सेनाओं ने फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) और मेंज (Mainz) को फिर से वापस जीत लिया था और वह एल्सेस (Alsace) के नज़दीक पहुँच गई थी। दक्षिण में स्पेन की सेनाओं ने पिरेनीज को पार कर लिया था, रोज़िलन (Roussillon) को जीत लिया था और बिडासोआ (Bidassoa) को घेर लिया था।

इस बीच फ्रांस में भयंकर गृह-युद्ध छिड़ गया था। पश्चिम में ब्रिटेनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Brittany) और ला वेण्डी (La Vendee) में कैथोलिक चर्च और पुराने कुलीनों का जनता के ऊपर फ्रांस के अन्य किसी भाग की अपेक्षा ज्यादा प्रभाव था। इन स्थानों पर कुलीन अपनी गरीबी के कारण राज-दरबार में न जाकर अपनी जमींदारियों में ही रहते थे। वहाँ राजा की प्रतिष्ठा थी। इसलिए जब फरवरी की आज्ञप्ति प्रकाशित हुई, किसानों ने विद्रोह कर दिया। इस आज्ञप्ति में गणराज्य के लिए किसानों के बीच में से अनिवार्य सैनिक भरती की बात कही गई थी। किसानों ने निश्चय किया कि यदि उन्हें लड़ना ही पड़ा, तो वे राज-हत्यारों की ओर से नहीं प्रत्युत उनके विरुद्ध लड़ेंगे। किसानों का पहला विद्रोह आसानी से दबा दिया गया। दूसरा विद्रोह, जो ईस्टर के बाद हुआ, ज्यादा भयंकर था। उसे बहुत से निम्न कुलीनों की सहायता मिली। इस विद्रोह के कुछ नेता भी प्रखर और रोचक व्यक्तित्व के मनुष्य थे। विद्रोहियों ने लुई अठारहवें को राजा घोषित किया और एक समय इंगलैण्ड की सहायता पाने की भी कोशिश की यद्यपि वह व्यर्थ रही। उन्होंने ब्रेस्ट (Brest) और ला रोशेल (La Rochelle) की दो सेनाओं का जो उन्हें दबाने के लिए भेजी गई थीं, प्रतिरोध किया और जुलाई में वेस्टरमैन (Westermann) एवं उसकी सेनाओं को पराजित कर दिया। यह विद्रोह पतझड़ तक चलता रहा। बाद में मेंज (Mainz) का पतन होने पर कुछ नियमित सैनिक खाली हो गए और इन सैनिकों को विद्रोह का दमन करने के लिए भेजा गया। इस बीच विद्रोहियों को भी अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा था और उनका साहस जवाब दे गया था। अन्त में सितम्बर में उन्होंने घुटने टेक दिए।

गृह युद्ध—ला वेण्डी (मार्च-सितम्बर, १७९३)

इधर तो वेंडी का विद्रोह चल रहा था, उधर एक और विद्रोही आन्दोलन भी खड़ा हो गया था। यह आन्दोलन वेंडी के विद्रोह से भिन्न था। इस आन्दोलन ने नागरिक विद्रोह का रूप लिया। फ्रांस के बहुत से शहरों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। यह आन्दोलन वर्ष के उत्तरार्द्ध में हुआ था और जैकोबिन्स एवं पेरिस के कम्यून के अत्याचार के विरुद्ध था। जून में जिरोंडिस्टों का जिस ढंग से पतन हुआ था, उससे भी इस आन्दोलन को उत्तेजना मिली थी। इसलिए यह एक पृथकतावादी आन्दोलन था। इस आन्दोलन में किसी भी शहर को अपने पड़ोस के किसानों से कोई सहायता नहीं मिली थी। किसी शहर ने दूसरे किसी शहर के साथ मिलकर कोई संयुक्त सैनिक कार्यवाही भी नहीं की। बहुत से जिरोंडिस्ट, जो जून में पेरिस से भाग गए थे, विद्रोहियों के साथ मिलकर कैएन (Caen) और बोर्डे (Bordeaux) में मिल गए। लेकिन वे अकर्मण्य और असमर्थ नेता सिद्ध हुए। इसलिए जैकोबिन्स के लिए इन असम्बद्ध और असंगठित विद्रोहों को एक-एक करके कुचल देना आसान था। मार्सेलीज़ (Marseilles) के अन्दर कुछ लोगों के मन में जैकोबिन्स के प्रति सहानुभूति थी। उसने अगस्त के अन्त में घुटने टेक दिये। बोर्डे (Bordeaux) और लियोन्स (Lyons) को अक्टूबर में जीत लिया

नगरों का विद्रोह (जून-सितम्बर १७९३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। तूलों (Toulon) में एक अंग्रेजी टुकड़ी आ गई थी। उसे एक तरुण सेनापति बोनापार्ट (Buonapart) ने दिसम्बर में हस्तगत किया। इन सभी शहरों में जैकोबिन्स ने डटकर बदला लिया। इन सभी स्थानों पर आतंक का शासन स्थापित हो गया। लियोन्स (Lyons) का नाम बदलकर कम्यून अफ्रांची (Commune Affranchi) रख दिया गया। उसने इस नाम-परिवर्तन का विरोध भी किया, पर उसकी एक न चल सकी। इस प्रतिरोध के कारण फ्रेंच शहरों की क्रांतिकारी नामावलि में से उसका नाम हटा दिया गया।

कैएन (Caen) में सत्रह शरणार्थी जिरोंडिस्ट थे। इस कारण इसका महत्त्व बढ़ गया था। लेकिन वहाँ जैकोबिन कमिश्नर रॉबर्ट लिंडेट (Robert Lindet) ने उदारता का व्यवहार किया। उसकी उदार नीति ने आन्दोलन की विफलता में काफी योग दिया। १७९३ के संविधान के प्रकाशन के बाद तो यह आन्दोलन धीरे-धीरे समाप्त ही हो गया। इस संविधान में वार्षिक विधानमण्डलों, पुरुष मताधिकार (Manhood suffrage) और जनमतसंग्रह (referendum) जैसी लोकतन्त्रात्मक पद्धतियों का समावेश कर दिया गया था। इसकी एकमात्र महत्त्वपूर्ण घटना एक नार्मन लड़की चार्लोट कोर्डे (Charlotte Corday) द्वारा पेरिस में मरत (Marat) की हत्या थी।

जिरोंडिस्टों का अन्त

जिरोंडिस्टों के इतिहास में यह विद्रोह अन्तिम दुःखान्त चरण था। '९२ के पतझड़ में वे जैकोबिन्स के आगे पराभूत हो चुके थे। नवम्बर में वे बेल्जियम के आधिपत्य के प्रश्न पर अपदस्थ हो गए थे। उन्होंने जनवरी '९३ से राजा के अभियोग और प्राण-दण्ड का कदम-कदम पर विरोध किया था। वे आर्थिक प्रश्नों पर और सेना की भरती के प्रश्न पर पराजित हो चुके थे। उन्हें अप्रैल में सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) से बाहर रखा गया था। ड्यूमोरेज़ (Dumouriez) के विश्वासघात के बाद तो उनका रहा-सहा प्रभाव भी जाता रहा था। जून में एक जन-विद्रोह द्वारा उन्हें सम्मेलन (Convention) से बाहर निकाल दिया गया। कुछ को गिरफ्तार कर लिया गया और अक्टूबर में फाँसी दे दी गई। कुछ जिनकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है, प्रान्तों में भाग गए और उन्होंने वहां गृह-युद्ध को बढ़ावा दिया।

जिरोंडिस्टों की नीति शुरू से ही असंगत और अनुचित रही थी। वे फ्रांस की आवश्यकता के समय, अपने दल के इतिहास के संकट के समय कोई भी शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण कार्यक्रम उपस्थित नहीं कर सके। वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और स्थानीय स्वायत्तता के अपने सिद्धान्तों के दल-दल में ही फंसे रहे। बढ़ते हुए खतरे को हटाने के लिए उन्होंने नए संविधान के लिए प्रारूप और ओजस्वी वाक्यांश प्रदान किये। उन्होंने अपनी सारी शक्ति जैकोबिन्स और पेरिस की निन्दा करने में लगा दी। एक समय उन्होंने माँग की थी, पेरिस का प्रभाव घटाकर तिरासीवाँ कर देना चाहिए।" एक बार उन्होंने धमकी दी थी कि "राजधानी को जलाकर खाक कर देना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए जिससे कि भावी पीढ़ियाँ पूछें कि वह सीन (Seine) के किस ओर खड़ी थी।" जब डैन्टन (Danton) ने उनके साथ समझौता करना चाहा, तब भी वे अपनी घृणा से छुटकारा नहीं पा सके। डैन्टन ने कहा था, "तुम यह नहीं जानते कि क्षमा किस तरह किया जाता है।" ये सब उनकी दुर्बलताएं थीं। फिर जब उन्होंने अपने देश में आस्ट्रियनों के साथ मिलकर जैकोबिन्स के विरुद्ध हथियार उठाये, तब उन्होंने फ्रांसीसियों की दृष्टि में अक्षम्य अपराध किया। लेकिन अपनी सारी दुर्बलता और अंधता, अस्थिरता और सैद्धान्तिक कठोरता के बावजूद उनके साथ अधिक अच्छा व्यवहार होना चाहिए था।

इस तरह अव्यावहारिक आदर्शवादियों का यह ओजस्वी वर्ग इतिहास से मिट गया। वह अपने पीछे दुःख और करुणा की अमिट स्मृतियाँ छोड़ गया है। पेरिस के एक फाँसीघर के पास बीस व्यक्ति राष्ट्र-गीत (*Marseillaise*) गाते रहे और फिर मृत्यु ने एक-एक कर उनकी आवाज को शान्त कर दिया। मृत्यु के समय वर्गनौड (Vergniaud) फाँसी के तख्ते की ओर घूरता ही रहा जो उसके देशवासियों ने उसके लिए तैयार किया था। मैडेम रोलां (Mme Roland) की अन्तिम आवाज थी—"आह, स्वतंत्रते! तेरे नाम में क्या-क्या पाप किये जाते हैं?" बहुत से जिरोंडिस्ट शरणागत एक स्थान से दूसरे स्थान को भागते रहे और जैकोबिन्स उनका पीछा करते रहे। फिर उनको एक-एक करके तलवार के घाट उतार दिया गया। गैरोन (Garonne) के नजदीक एक जंगल में मैडेम रोलां (Mme Roland) के प्रेमी बुजोट (Buzot) और पेटियन (Petion) की, जिसे पेरिस कभी ईसा की तरह पूजता था, लाशों पर कुत्ते लड़ते रहे। जिरोंडिस्टों के पीछे यही हृदयस्पर्शी स्मृतियाँ रह गई हैं।

इस तरह १७९३ के अधिकांश भाग में फ्रांस की दशा १७९२ की अपेक्षा कहीं खराब रही थी। हालैंड का आक्रमण असफल हो चुका था। बेल्जियम तथा राइन की विजयें भी हाथ से जाती रही थीं। शत्रुओं ने फ्रांस पर आक्रमण कर दिया था। अब वे फ्रांस का विभाजन नहीं चाहते थे, प्रत्युत वहाँ फिर से बूरबन शासकों को लाना चाहते थे। गृह-युद्ध उनकी शक्ति और सेनाओं को खाये जा रहा था। उसका सबसे प्रतिष्ठित सेनाध्यक्ष शत्रुओं से जा मिला था।

जैकोबिन्स की नीति

जैकोबिन्स ने फ्रांस की दयनीय स्थिति और जिरोंडिस्टों की दुर्बलता से पूरा-पूरा लाभ उठाया। वे कर्मठ और व्यावहारिक लोग थे। वे इस दृष्टि से भाग्यशाली थे कि उनके अपने हित प्रखर देशभक्ति के साथ समीकृत थे। वे भी अब युद्ध के पक्षपाती हो गए थे। उनका विचार था कि घेरे की स्थिति में उनके अपने हितों की और साथ-ही-साथ जनता के कल्याण की भी सबसे अच्छी तरह पूर्ति हो सकती है। इसलिए, जहाँ उन्होंने फ्रांस की एकता को बढ़ाने, एक नई कार्यपालिका बनाने और शत्रु से देश की रक्षा करने का प्रयास किया, वहाँ इसके साथ-ही-साथ अपनी शक्ति और अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने का भी उद्योग किया। उन्होंने विदेशी शत्रुओं, जिरोंडिस्टों, आन्तरिक विद्रोहियों, संविधान की शपथ न लेने वाले पादरियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रवासी कुलीनों के विरुद्ध प्रचंड संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने '९१ और '९२ के स्वयंसेवकों की अनुपूर्ति के लिए नई सेनाओं को एकत्रित करने का कार्य अपने हाथों में लिया। उन्होंने गरीबों की भलाई के लिए आर्थिक कार्यक्रम बनाया और इस तरह लोकप्रियता अर्जित की। उन्होंने अमीरों पर कर लगाया और काम के अधिकार की गारण्टी दी जिसका व्यवहार में अर्थ वेतन पाने का अधिकार था। उन्होंने रोटी की अधिकतम कीमत निश्चित कर दी और उद्योग तथा व्यापार का जनता के हित में नियमन किया। उन्होंने पेरिसवासियों को भोजन देना प्रारम्भ किया। उन्होंने राजधानी की शक्ति पर बल देकर अपने दल और इसके साथ-ही-साथ फ्रांस की एकता को मजबूत किया "पेरिस प्रकाश का केन्द्र है। पेरिस ने क्रांति की है और जब वह नष्ट हो जायेगा, क्रान्ति नहीं रहेगी।" जिरोंडिस्टों की धमकियों के बदले में डैंटन का यह जवाब था। फिर भी जैकोबिनिज्म (Jacobinism) को स्वार्थ-पूर्ति की नीति मानना गलत होगा। जैकोबिनिज्म किसी विचारधारा या स्वार्थ-वृत्ति का फल नहीं था प्रत्युत वह "कुछ विशेष परिस्थितियों के प्रति अर्द्धव्यावहारिक, अर्द्धधर्मान्ध मस्तिष्क की सहज प्रतिक्रिया थी।"[1]

सार्वजनिक सुरक्षा समिति

इस प्रतिक्रिया से जैकोबिन्स ने सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) का निर्माण किया। राजतन्त्र के पतन के बाद से फ्रांस पर शासन करने के लिए यह पहली वास्तविक कार्यपालिका थी। १७९३ के पूर्वार्द्ध में उसका धीरे-धीरे विकास किया गया और ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय खतरे बढ़ते गये, उसकी शक्तियों में भी वृद्धि होती गई। ९ मार्च को एक क्रांतिकारी न्यायाधिकरण (Revolutionary Tribunal) की स्थापना की गई और २१ मा० को प्रत्येक कम्यून में अधिशासनिक शक्तियों सहित क्रांतिकारी समितियों (Revolutionary Committees) की स्थापना की गई। नीरविंडैन (Neerwinden) की लड़ाई के बाद जो पहली सार्वजनिक सुरक्षा समिति बनी थी, उसके पच्चीस सदस्य थे। इन सदस्यों में कुछ जिरोंडिस्ट भी थे। लेकिन ड्यूमोरेज़ (Dumouriez) के विश्वासघात के बाद ५ अप्रैल को समिति में से जिरोंडिस्ट निकाल दिए गये। अब समिति के सदस्यों की संख्या घटकर नौ रह गई।

अप्रैल में संशोधित (डैन्टन)

इस तरह, अप्रैल तक यह व्यवस्था पूरी हो गई। डैन्टन (Danton) के शब्दों में इसका उद्देश्य "स्वतन्त्रता की अल्पकालीन निरंकुशता स्थापित करना" था जो "राजाओं की निरंकुशता को कुचलने के लिए आवश्यक थी"। इस समिति की नीति आतंक पैदा करने की थी। यह नीति जुलाई तक पूर्णरूप से लागू नहीं की गई। जुलाई में रोबेस्पीयर ने समिति का फिर से संगठन किया। उसने डैंटन (Danton) को उसमें से निकाल दिया और स्वयं उसका कर्त्ता-धर्त्ता बन गया। मिराबो (Mirabeau) के बाद डैंटन (Danton) सबसे बड़ा राजनेता था। लेकिन

जुलाई में पुनः संशोधित (रोबेस्पीयर)

1. G. Elton, *The Revolutionary Idea in France, 1789-1871*.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इतना योग्य, उद्योगी और दृढ़संकल्प नहीं था कि शक्ति के सूत्रों को अपने हाथों में रख सकता। एक महान् संकट ने उसके अन्दर प्रखर शक्ति जाग्रत कर दी थी और वह शौर्य एवं साहस का प्रतीक मालूम पड़ता था। ऐसे अवसरों पर वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में या शत्रु का विनाश करने में किसी प्रकार का संकोच या शैथिल्य नहीं दिखाता था। लेकिन जब संकट समाप्त हो गया, उसकी प्रेरणामयी शक्ति भी समाप्त हो गई और वह ढीला एवं आलसी हो गया जो उसकी सर्वोच्चता के लिए घातक था। उसमें प्रतिशोध की भावना नहीं थी और उसने अपने शत्रुओं तक से अपना बचाव करने की कोशिश नहीं की। वह महत्त्वाकांक्षी भी नहीं रहा तथा अन्य मनुष्यों से विमुख हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रोबेस्पीयर (Robespierre) ने पहले तो उसे जुलाई '९३ में समिति में नीचा दिखाया और फिर अप्रैल १७९४ में उसकी हत्या कर दी। रोबेस्पीयर (Robespierre) उससे घृणा करता था और उसके बारे में कहता था कि उसे एक अंडा तक पकाने की बुद्धि नहीं है। रोबेस्पीयर भ्रष्टाचार से कोसों दूर था। उसकी महत्त्वाकांक्षा अपार थी। वह बहुत सजग और चतुर व्यक्ति था। वह सद्गुणी था। उसे रिश्वतों और स्त्रियों से घृणा थी। वह संकीर्ण हृदय, अहम्मन्य, धर्मान्ध, कठोर और बर्बर सिद्धान्तवादी था। वह अपने मिशन की सफलता के लिए शत्रु और मित्र सबको समभाव से फांसी के तख्ते पर उतार देता था। संविधान सभा (Constituent Assembly) के दिनों से ही रूसो के इस मसीहा ने उसका नाम जनता के सामने रखा था। उसने अपनी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ाई और आखिर में वह सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) का शासक, फ्रांस का अधिनायक और जून १७९४ के बाद से जब कि उसने परमात्मा की उपासना प्रचलित की, उसके नये धर्म का सबसे बड़ा आचार्य हो गया। इस अद्वितीय सर्वोच्चता को जिसे उसने विश्वास एवं सजगता से प्राप्त किया था, उसने बढ़ते हुए आतंकवाद (Terrorism) की नीति द्वारा ही कायम रखा था। जुलाई १७९३ से जुलाई, १७९४ तक उसने अपनी शक्ति को पेरिस और प्रान्तों में समान रूप से हिंसा और भय द्वारा कायम रखा था। हजारों लोग उसकी आतंक नीति के भक्ष्य बने। सरकार के एजेंट सारे देश में, पूर्व से पश्चिम तक, नान्टीज (Nantes) से लियोन्स (Lyons) तक अपने काम करते रहे। अठारह सौ आदमियों को गिगेन्ट (Gigandet) के पाषाण-पर्वतों और मौवे (Mauve) के मैदानों में गोली से भून दिया। अन्य अठारह सौ व्यक्तियों को लोर (Loire) में फेंक दिया गया। ली बोन (Le Bon) ने एरस (Arras) में, फ्रेरोन (Freron) ने प्रोवेंस (Provence) में और फौश (Fouche) ने लियोन्स (Lyons) में "अच्छा कसाईपन" दिखाया। पेरिस में "सर स्लेटों की तरह गिरे।" मैडेम रोलां (Mme Roland), मैडेम ड्यू बेरी (Mme du Barry), मैडेम एलिजाबेथ (Mme Elizabeth), चार्लोट कोर्डे (Charlotte Corday) और मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette), हबर्ट (Hebert) के अनुयायी

डैन्टन

मैक्सीमिलिएन रोबेस्पीयर

आतंक (जुलाई १७९३-जुलाई १७९४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वे नास्तिक थे और बुद्धि की उपासना करते थे[1], डैन्टन (Danton), कैमाइल डेस्मोलिन्स (Camille Desmoulins) और फेवरे डी ईगलेंटाइन (Fabre d' Eglantine) क्योंकि वे घर में सहिष्णुता और बाहर शान्ति की दुहाई देते थे और 'सच्चे देशभक्त' नहीं थे, जिरोंडिस्ट (Girondists) और फ्यूलेंट (Feuillants), मेलेशेरब्स (Malesherbes) जिससे राजा की प्राण-रक्षा के लिये कहा था और फिलिप ईगेलाइट (Philippe Egalite), जिसने उसकी मृत्यु के पक्ष में मत दिया था, '८९ के श्रेष्ठ मनुष्य, बेली (Bailly) और बार्नवे (Barnave), सेनापति वेस्टरमान (Westermann) और कस्टाइन (Custine), कवि आंद्रे शेनियर (Andre Chenier), रसायनशास्त्री लेवोइशियर (Lavoisier), राजतन्त्रवादी (Royalists) और गणतंत्रवादी (Republicans), नास्तिक और रोमन कैथोलिक, आचारों को बिगाड़ने वाले और आर्थिक नियमों को तोड़ने वाले, प्रतिनिधि और असफल सेनाध्यक्ष, किसान, सट्टेबाज और दुकानदार—सबको सद्गुण और आतंक के संयुक्त शासन में हानि सहनी पड़ी। हबर्ट (Hebert) ने स्वयं कहा था, "हिफाजत के लिये तुम्हें सबको मार देना चाहिये।" मुकद्दमे कम होते गये और प्राणदण्ड बढ़ते गये। पहले दो दिन में १ प्राणदण्ड होता था, फिर एक महीने में ६५ प्राणदण्ड होने लगे। फिर एक महीने में ११६, फिर १५५ और फिर ३८१ प्राणदण्ड होने लगे। बाद में जब संदेह कानून (Law of Suspects) पास हो गया जिसके अनुसार किसी भी आदमी को केवल संदेह के आधार पर ही गिरफ्तार किया जा सकता था, तब तो ४७ दिनों में १,३६६ आदमियों को मौत के घाट उतार दिया गया। अब तो प्रायः सभी को अपनी जान के लाले पड़ गये। फलतः जुलाई १७९४ में समिति के कुछ सदस्य रोबेस्पीयर (Robespierre) के खिलाफ उठ खड़े हुए और उन्होंने उसको उसके ९२ साथियों सहित मार डाला। संघर्ष में उसके जबड़े में गोली लगी। यह गोली शायद उसने स्वयं ही अपने मार ली थी। लेकिन लोग उससे जिसने इतने आदमियों को पहले यमलोक भेज दिया था, बहुत डरते थे। वे उसे जल्दी से फाँसी के तख्ते पर ले गये और वहाँ उसकी ऐहिक लीला समाप्त कर दी गई। रोबेस्पीयर (Robespierre) अपनी तरुणाई में एरस (Arras) में दंड-न्यायाधीश था। उसने किसी को मृत्यु-दंड देने की अपेक्षा अपने पद से त्याग-पत्र देना ज्यादा पसन्द किया। मृत्यु के समय वह वही कोट पहन रहा था जिसको पहनकर उसने ब्रह्मोत्सव (Festival of the Supreme Being) की अध्यक्षता की थी। रोबेस्पीयर (Robespierre) के पतन के साथ-साथ जैकोबिन संगठन नष्ट हो गया और आतंक समाप्त हो गया।

आतंक का अन्त

---

१. बुद्धि उपासना (Worship of Reason) का उद्घाटन नवम्बर १७९३ में नोट्रे-डम (Notre Dame) में हुआ था। बुद्धि की उसी धुन में जब कि हबर्ट (Hebert) का प्रभाव सबसे ज्यादा था, एक नया क्रांति-पंचांग (Revolutionary Calendar) प्रारम्भ किया गया। यह पंचांग गणराज्य की उद्घोषणा २१ सितम्बर, १७९२ से प्रारम्भ होता था। पुराने पंचांग का क्रिश्चियन महत्त्व नष्ट कर दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि आतंक के समय जो कुछ भी हुआ—अच्छा या बुरा—उसके लिए रोबेस्पीयर (Robespierre) के साथ-साथ सार्वजनिक सुरक्षा समिति के अन्य नौ सदस्य भी उत्तरदायी थे। सेंट जस्ट (Saint Just) के हाथों में पुलिस, पत्र-व्यवहार और गुप्तचर विभाग की व्यवस्था थी। हेरॉल्ट डी शेलैस (Herault de Sechelles), राजनय (Diplomacy) के लिए, सेंट आंद्रे (Saint Andre) नौसेना के लिये, "विजय का संगठनकर्त्ता" (Organizer of Victory) कार्नट (Carnot) गणराज्य की चौदह सेनाओं के लिये उत्तरदायी था। सारा कार्य समिति में केन्द्रित था। वही सारी व्यवस्था का संचालन करती थी। उसका गुप्तचर विभाग बहुत शक्तिशाली था। सम्मेलन पर उसका नियंत्रण था। वह लड़ाइयों की योजना तैयार करती थी, सेनापतियों को नियुक्त करती थी और असैनिक अधिकारियों का चुनाव करती थी। वह सैनिकों की भरती करती थी, व्यापार और रोटी की कीमत का नियमन करती थी। उसका शिक्षा, धर्म, उत्सवों और ललित कलाओं तक का विभाग था। अविश्रांत कर्मण्यता द्वारा उसने फ्रांस के ऊपर निरंकुश अधिनायकवाद (Absolute dictatorship) स्थापित कर दिया था।

सार्वजनिक सुरक्षा समिति का कार्य

नेपोलियन ने यह स्वीकार किया था कि सार्वजनिक सुरक्षा समिति का उसके ऊपर बहुत ऋण था। उसके शासन या एक्जेक्यूशनर सैमसन (Samson) की गतिविधि के फलस्वरूप एकता और विजय प्राप्त हुई। घर में विद्रोह दबा दिया गया, विदेशी शत्रु को देश से बाहर निकाल दिया गया और विजयों का एक सिलसिला बंध गया। शत्रुओं में एकता नहीं थी। वे एक दूसरे से ईर्ष्या करते थे। पोलैण्ड के सवाल ने उनके ध्यान को बँटा दिया था। इन दुर्बलताओं के कारण १७९३ के अन्त तक उन्हें बिलकुल पराजित कर दिया गया। अंग्रेजों को डन्कर्क (Dunkirk) और तूलों (Toulon) में, आस्ट्रियनों को वेटिगनीज (Wattignies) में और प्रशा की सेना को वीसेनबर्ग (Weissenburg) में खदेड़ दिया गया। इधर कैलरमान (Kellermann) ने सेवॉय जीत लिया। फ्रांसीसी केवल पिरेनीज में ही सफल न हो सके।

एकता और विजय

विजयों का सिलसिला १७९४ में भी जारी रहा। फ्लेरस (Fleurus) की लड़ाई के फलस्वरूप बेल्जियम फ्रांस के हाथों में आ गया। कैसरस्लांटर्न (Kaiserslantern) ने उसे राइन दिया। १ जुन को इंगलैंड ने फ्रांस की नौ सेनाओं को अवश्य पराजित किया, अन्यथा फ्रांसीसी सैनिक सब जगह सफल हुए। जनवरी, १७९५ में हालैंड पदाक्रान्त हो गया। अप्रैल में प्रशा और स्पेन ने फ्रांस के साथ बैसेल (Basel) की संधि की। इस तरह जब सम्मेलन (Convention) समाप्त हुआ, गणराज्य की मिश्नरी भावना ने और सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) की अपूर्व संगठन-क्षमता ने पहले गठबंधन (First Coalition) को नष्ट कर दिया था।

रोबेस्पीयर (Robespierre) के पतन और आतंक के अन्त के बाद सम्मे-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन के केन्द्रीय दल ने जोर बाँधा। पेरिस के कम्यून (Commune of Paris), क्रांति न्यायाधिकरण (Revolutionary Tribunal) और सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) को दबा दिया गया। १७९३ का लोकतन्त्रात्मक संविधान जो अपने प्रकाशन के बाद से सन्दूक में बन्द पड़ा था, रद्द कर दिया गया। अब फ्रांस के लिए एक नया संविधान बना। यह संविधान पेरिस के निम्न वर्गों के गणतन्त्रवाद (Sansculottism) में विरुद्ध प्रतिक्रिया को प्रकट करता था। इस संविधान में मत देने का अधिकार सम्पत्ति के ऊपर आधारित था। इसने एक कार्यपालिका और द्विसदनात्मक विधानमण्डल की स्थापना की जिसने चार वर्षों तक देश का भाग्य-संचालन किया। ज्यादा सही यह कहना होगा कि सरकार तो केवल कहने भर को थी और स्वयं उसका संचालन देश ने एवं एक तरुण महत्त्वाकांक्षी सेनापति ने किया। क्रान्ति से लेकर अब तक कोई भी सरकार इतनी स्थायी नहीं रही थी, जितनी कि डायरेक्टरी (Directory) रही। लेकिन इसका प्रधान कारण इसकी अपनी शक्ति नहीं थी। इसका प्रधान कारण यह था कि इसको नष्ट करने वाले तत्त्व अभी एकत्रित नहीं हो सके थे। तरुण सैनिक अधिकारी को छोड़कर सारा राष्ट्र, जनता और सरकार समान रूप से अनिश्चय, अनिर्णय और आशामय उत्सुकता की स्थिति में थी। १७९५-९९ के वर्षों का सबसे अच्छा वर्णन यही हो सकता है कि यह क्रांति और नेपोलियन के उत्कर्ष के बीच का विराम-काल है।

डायरेक्टरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ४

(CHAPTER IV)

नेपोलियन

(NAPOLEON)

१. "भाग्य की ओर" (१७६९-९९)

("To Destiny"—1769-99)

रूसो (Rousseau) ने १७६२ में लिखा था, "मेरा विचार है कि एक दिन यह छोटा-सा द्वीप सारे यूरोप को आश्चर्यचकित कर देगा!" उस समय रूसो कोर्सिका (Corsica) के स्वतंत्र्य-संघर्ष पर विचार कर रहा था।[1]

जन्म

इसके सात वर्ष बाद ही १५ अगस्त, १७६९[2] को बालक नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म हुआ। आगे चलकर इसी बालक ने रूसो (Rousseau) की भविष्यवाणी को सही साबित किया और इस द्वीप को वह अमरत्व प्रदान किया जो उसके बिना इतिहास के अज्ञात गर्भ में ही पड़ा रह जाता। उसके पूर्वज इटली के रहने वाले थे और वे कोर्सिका में आकर बस गये थे। नेपोलियन जूलियस सीजर (Julius Caesar) को, अपने पिता कार्लो बोनापार्ट (Carlo Buonaparte) की काव्यमय कल्पनापूर्ण प्रतिभा और अपनी जननी लीट्जिया (Letizia) के अभिमान, अपूर्व शौर्य और चातुर्य को स्मरण किया करता था। उसका बाल्यकाल बड़ी कठिनाइयों में बीता था। देश स्वातंत्र्य-संघर्ष का उसके ऊपर भी विपुल प्रभाव पड़ा था। कोर्सिका की पर्वतीयता, स्वातंत्र्य-प्रियता, आत्म-निर्भरता, राष्ट्रीय विशिष्टता, जातीयता और सुसंगठित पारिवारिकता ने उसके ऊपर काफी असर डाला था। कोर्सिका के राष्ट्रीय संग्राम के असफल होने पर उसका पिता फ्रांस की अधीनता में आ गया और वहाँ कुलीन हो गया। नेपोलियन की शिक्षा ब्रिएन के सैनिक विद्यालय (Ecole Militaire of Brienne) में निःशुल्क हुई थी। इस तरह यह एक व्यंग ही माना जा सकता है कि उसके जीवन की बुनियाद फ्रांस के राजा के खर्चे पर रखी गई थी और वह जन्मजात विशेषाधिकारों के ऊपर आधारित थी।

स्कूल में नेपोलियन में असाधारण गाम्भीर्य, अपने कार्य और अपने परिवार के प्रति असीम उत्तरदायित्व, धैर्य, धुन, अल्पभाषिता और कभी-कभी क्रोध-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। नेपोलियन के सहपाठी उसकी दरिद्रता से घृणा करते थे और उसके विदेशी उच्चारण तथा नाम पर हँसते थे। उसके एक शिक्षक ने उसके बारे में कहा था, "यह लड़का ग्रेनाइट का बना हुआ है, लेकिन इसके अन्दर एक ज्वालामुखी है।"

स्कूल

---

१. कोर्सिका १७६८ में जिनोआ के हाथ से निकल कर फ्रांस के हाथ में आ गया था। इंगलैंड के प्रति स्थानांतरण पर विचार किया जा चुका था।

२. आर्थर वेलजली बाद में ड्यूक ऑफ वेलिंगटन भी इसी साल पैदा हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद नेपोलियन वेलेन्स (Valence) में सब-लैफ्टिनेंट नियुक्त हुआ। इस काल में अर्थाभाव के कारण उसे अपने भोजन और कपड़ों में काफी मितव्ययिता बरतनी पड़ती थी। वह रंगीन तबीयत के फ्रेंच तरुणों को, जो उसके सहयोगी अधिकारी थे, घृणा की दृष्टि से देखता था। वह नागरिकों के साथ वाल्टेयर (Voltaire) और मॉंटेस्क्यू (Montesquieu) के विचारों तथा रूसो (Rousseau) और रेनल (Raynal) के सिद्धान्तों के बारे में बात किया करता था। वह अपने होटल के कमरे में इतिहास और गणित, प्लूटार्क (Plutarch) और प्लेटो (Plato) का अध्ययन किया करता था हालाँकि उसके अगले कमरे में ही जुए का खेल चलता रहता था। उसने फ्रेडरिक (Frederick the Great) के युद्धों का और इंगलैंड, स्विट्ज़रलैंड, स्पार्टा, मिस्र एवं तुर्की के संविधानों का अध्ययन किया था। उसने कोर्सिका की प्रतिरक्षा के लिए कुछ योजनाएँ बनाईं और उसकी विषयवस्तु को लेकर एक उपन्यास की भी रचना की थी। उसने राजतंत्रीय तत्ता, मानवीय विषमता और आत्महत्या जैसे विषयों पर कुछ निबन्धों की भी रचना की। नेपोलियन को कभी-कभी अपने या अपने देश के दुर्भाग्यों से या अपनी सैनिक पदोन्नतियों के धीमेपन से बड़ी निराशा होती थी। कभी वह वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा के स्वप्न देखता था और कभी कोर्सिका की स्वतंत्रता के। उसके मन में सदैव कोर्सिका और अपने घर की समस्याएँ घूमती थीं। जब फ्रांस में क्रांति हुई, तो उसे ऐसा ज्ञात हुआ, मानो पराधीनता की दीर्घ निशा के उपरान्त स्वतंत्रता का स्वर्णोदय हुआ हो। नेपोलियन को आशा थी कि शायद फ्रांस की क्रांति के फलस्वरूप कोर्सिका को स्वतंत्र किया जा सके।

तारुण्य

१७८९ से १७९३ तक लैफ्टिनेंट बोनापार्ट ने अपना अधिकांश समय कोर्सिका में ही बिताया। कुछ दृष्टियों में कोर्सिका में भी फ्रेंच क्रान्ति का लघु संस्करण हुआ। सबसे पहले क्रान्तिकारी नेपोलियन ने फ्रेंच राजतंत्री गवर्नर से युद्ध किया। इसके बाद राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने कोर्सिका को फ्रांस का एक जिला (Department) बना दिया और उसे पूर्ण राजनीतिक अधिकार दिए। जब कोर्सिका का राष्ट्रीय नेता पाओली (Paoli) अपने निर्वासित साथियों सहित कोर्सिका वापस आया, तो नेपोलियन ने एक फ्रांसीसी और जैकोबिन के रूप में उससे युद्ध किया। पहले, नेपोलियन इसी व्यक्ति को अपना हीरो मानता था। इस समय पाओली ने उदार नीति का समथन किया था और वह अंग्रेजों की सहायता स्वीकार करने के लिए तैयार तक हो गया था। लेकिन नेपोलियन पराजित हो गया। उसे कानूनन बहिष्कृत और देश से निर्वासित कर दिया गया। जून १७९३ में वह फ्रांसीसियों के संरक्षण में सपरिवार फ्रांस चला गया। इस प्रकार अपनी मातृभूमि से निर्वासित होकर उसने एक ऐसे देश में शरण ली जिससे वह जन्म भर घृणा करता रहा था और जिसे अत्याचारी विदेशी की जमीन समझता रहा था।

कोर्सिका

असफलता और पलायन

नेपोलियन के परिवार ने मार्सेलीज़ (Marseilles) के एक कुलीन के यहाँ जिसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फाँसी दे दी गई थी, शरण ली और 'उत्पीड़ित देश-भक्तों' (Persecuted patriots) के नाते कमांडेंट से राशन की प्रार्थना की। लेकिन नेपोलियन अपने रेजीमेंट के साथ ही ठहरा और इधर-उधर घूमता रहा। जब जिरोंडिस्टों और जैकोबिन्स में संघर्ष चल रहा था, नेपोलियन ने स्वयं को '*Le Souper be Beaucaire*' नामक एक पुस्तिका में जैकोबिन्स के पक्ष में घोषित किया। जब अगस्त, १७९३ में एक विद्रोही शहर तूलों (Toulon) ने एक अंग्रेजी दस्ता स्वीकार किया, बोनापार्ट को फ्रेंच सेना के एक दस्ते का सेनापति बनाकर वहाँ विद्रोह दबाने के लिए भेजा गया। उसने विद्रोह को बड़ी कुशलता से दबा दिया और दिसम्बर में अंग्रेजों को शहर से निकाल दिया।

तूलों

यह उसके गौरवमय भविष्य की सूचक पहली विजय थी। उसे ब्रिगेडियर जनरल का पद दिया गया और तूलों से नाइस तट के समुद्र-तट पर दुर्गों की देख-भाल के लिए भेजा गया। लोग उसकी शक्ति का अनुभव करने लगे। मार्मोंट (Marmont) और जुनोट (Junot) नामक दो अधिकारी उसके अनन्य अनुयायी हो गये। वे उसके अधिकांश जीवन में उसके साथ रहे थे। 'सितारा' जिसके बारे में वह कभी-कभी बोला करता था, आकाश में चढ़ना शुरू हो गया था।

इसके एक वर्ष बाद ही रोबेस्पीयर (Robespierre) का पतन हुआ। नेपोलियन भी इस कांड में फँस गया और उसने अपना पच्चीसवाँ सालगिरह नाइस (Nice) के नजदीक कैरे (Carre) के कारावास में बिताया। लेकिन नेपोलियन ने अपनी स्थिति को गिराने का कोई काम नहीं किया था, अतः उसे शीघ्र ही आजाद कर दिया गया।

कारागार

अभी तक फ्रांस के सामने नेपोलियन की प्रतिभा का थोड़ा अंश ही आया था। १७९५ के अक्टूबर या क्रान्ति की शब्दावली में वेंडेमेयर तृतीय के बाद से नेपोलियन का व्यक्तिगत जीवन राष्ट्र के भाग्य के साथ समीकृत हो गया और यह क्रम बीस वर्षों तक चलता रहा। यह भी कम महत्त्व की बात नहीं है कि वह इतिहास में 'सेनापति वेंडेमेयर' (General Vendemiaire) के नाम से प्रविष्ट हुआ और उसने अपनी बन्दूकों का सबसे पहले जनता के ऊपर परीक्षण किया। जब अगस्त १७९२ में टुइलेरीज़ (Tuileries) के ऊपर आक्रमण हुआ था, नेपोलियन को यह देखकर बहुत धक्का पहुँचा था कि भीड़ का बिलकुल सामना नहीं किया गया। जब तीन वर्ष बाद लड़खड़ाते और आतंकग्रस्त सम्मेलन[1] (Convention) ने राजतंत्रवादियों और पेरिसवासियों के सम्भावित आक्रमण से अपने बचाव के लिए उसका संरक्षण चाहा, तो उसकी अनुशासन-व्यवस्था और शक्तिप्रियता इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सकी। उसने आध घन्टे के विचार के पश्चात् इस प्रस्ताव का स्वीकार कर लिया। उस समय भी उसमें अपनी यह शर्त मनवाने की ताकत थी कि उसके ऊपर किसी तरह का निरीक्षण नहीं रखना चाहिए।

वेंडेमेयर काण्ड (५ अक्टूबर, १७९५)

१. २६ अक्तूबर, १७९५ को पहले डायरेक्टरों की नियुक्ति के बाद सम्मेलन भंग हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह, सात वर्षों में पहली बार पेरिस की भीड़ का संगठित रूप से विरोध हुआ। टुइलेरीज़ (Tuileries) के रास्तों में मरत (Marat) की अधीनता में ४० बड़ी-बड़ी बन्दूकें लगा दी गईं। उस दिन मरत (Marat) का नाम भी बोनापार्ट के नाम के साथ जुड़ गया। सम्मेलन के वकीलों तक को हथियार दिए गये। दो घण्टों में गलियाँ साफ हो गईं, सम्मेलन की रक्षा हो गई और भीड़ की शक्ति कुचल दी गई। इस संघर्ष में चार सौ लोग खेत रहे, सैनिक शक्ति के इस सफल प्रदर्शन ने क्रांति को समाप्त कर दिया यद्यपि उसने राजा की हत्या करने वाले गणराज्य को, "प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों के लिए अवसरों को" जीवित रखा। गोलियों की उस बौछार ने जिसने राजतंत्र की प्रतिष्ठा के अंतिम अवशेषों को छिन्न-भिन्न कर दिया, प्रतिभा के अधिनायकवाद की स्थापना के लिए रास्ता तैयार कर दिया।

इटली की कमान

नेपोलियन को गृहसेना (Army of the Interior) की कमान मिल गई थी, लेकिन १७९४ के बाद से ही उसकी तबीयत इटली की सेना पर आ गई थी। इसके अतिरिक्त इस बात की आशा नहीं थी कि उसे फ्रांस में राजनीतिक अनुग्रह मिल सकेगा। फिर, पेरिस उसके लिए सुरक्षित स्थान भी नहीं था। इसके अतिरिक्त डायरेक्टर भी, जो उस समय फ्रांस का शासन कर रहे थे, इस भयंकर तरुण को जिसने अपनी महत्त्वाकांक्षा, योग्यता और स्वतंत्रता पहले ही सिद्ध कर दी थी, प्रभाव-केन्द्र से हटाना चाहते थे। कार्नट (Carnot) उसकी सैनिक शक्ति से वस्तुतः प्रभावित था तथा दूसरे व्यक्ति भी इस बात के लिये राजी कर लिए गये कि इटली की सेना की कमान नेपोलियन को ही दी जाये। इटली की सेना तीन वर्षों से आल्प्स की तलहटी में निष्क्रिय अर्द्ध-क्षुधित और रुग्णावस्था में पड़ी थी। इसलिए, जब इटली की सेना के प्रधान सेनापति को नेपोलियन की युद्ध-योजना भेजी गई, उसने कहा कि जिस "सिरफिरे" ने इस योजना को बनाया है वही इसे कार्यान्वित करे। डायरेक्टरों ने उसकी बात को मान लिया और उसका स्थान नेपोलियन को दे दिया।

जोज़ेफाइन

नेपोलियन ने अपने इटली-अभियान के दो दिन पूर्व जोज़ेफाइन नामक एक स्त्री से विवाह किया। जोज़ेफाइन अपने जन्म से और अपने पहले विवाह से कुलीन वर्ग की थी। उसके पूर्व पति का नाम विकोम्टे डी ब्यूहारनाइस (Vicomte de Beauharnais) था। वह पहले क्रांतिकारी रह चुका था। १७९१ में राजा के भागने के समय राष्ट्रीय सभा (National Assembly) का अध्यक्ष था। बाद में उसे फाँसी हो गई। जोज़ेफाइन की रक्षा रोबेस्पीयर (Robespierre) के पतन के कारण ही हो सकी थी। १७९४ में जिस दिन नेपोलियन को जेल में रखा गया था, उसी दिन जोज़ेफाइन को आजादी मिली। वह निर्धन थी और दो बच्चों यूजेन (Eugene) तथा होर्टेंस (Horterse) की माँ थी। यद्यपि उसकी प्रतिष्ठा भी ऊँचे दर्जे की नहीं थी फिर भी नेपोलियन उसके सौन्दर्य, चातुर्य और औदार्य के कारण उसके ऊपर मोहित हो गया। नेपोलियन जोज़ेफाइन की सामाजिक स्थिति से प्रभावित था ही। उसने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचा कि जोज़ेफाइन की सामाजिकता से मेरी स्थिति सबल होगी। जोज़ेफाइन ने नेपोलियन की छिपी हुई ज्वालामुखी सदृश वासना जाग्रत कर दी। इधर जोज़ेफाइन भी नेपोलियन की प्रतिभा पर अनुरक्त थी। उसकी शक्तिमत्ता और आत्मविश्वास पर उसे आश्चर्य होता था। नेपोलियन का प्रेम-पारावार उसके प्रति इस तरह हिलोरें लेता था कि कभी-कभी तो वह पागलपन तक मालूम पड़ने लगता था। यदि कोई और स्त्री होती तथा वह नेपोलियन के स्नेह का ठीक से प्रतिदान देती, तो नेपोलियन का जीवन-प्रवाह और जीवन-मूल्य बिलकुल बदल सकते थे। लेकिन जोज़ेफाइन इस अवस्था में नेपोलियन की अकथनीय प्रेम-पिपासा शान्त नहीं कर सकती थी। जोज़ेफाइन के प्रभाव से डायरेक्टर बैरस (Barras) ने नेपोलियन को इटली की कमान कहाँ तक दिलवाई, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन समय की दृष्टि से विवाह और इटली की कमान का मिलना एक साथ ही, मार्च १७९६ के शुरू में हुए। नेपोलियन की विवाह की अँगूठी में 'भाग्य की ओर' लिखा था। संयोगवश, यह अन्धविश्वास आगे चलकर सत्य प्रमाणित हुआ।

इटली का पहला युद्ध (मार्च १७९६—अक्टूबर १७९७)

इटली के पहले युद्ध में ऐसी कवित्वमय विशेषता थी जो बाद के किसी युद्ध में इस सीमा तक नहीं दिखाई दी। २७ वर्ष के तरुण सेनापति ने पहली बार एक-एक करके अनेक विजयें प्राप्त कीं, कई बार तो वह मृत्यु के कराल गाल तक में से निकला। इस युद्ध में उसने यह प्रकट कर दिया कि वह किस धातु का बना हुआ है। कोर्सिकन पहली बार राजाओं के महलों में, सोया, उसने विदेशी शासकों के साथ बातचीत की और पोप के प्रति अपनी इच्छा घोषित की। यौवन, स्वास्थ्य, उत्साह और वासना की उस प्रेरणा में जो अभी तक निराश नहीं हुई थी, उसने पहली बार अपना अपूर्व युद्ध-कौशल और असीम कर्मठता प्रदर्शित की जिसको देखकर उसके विरोधी दाँतों तले उँगली दबा गए और उसके सामने कुछ न कर सके। आधे दर्जन वृद्ध पुरुष, जिनमें कुछ बहरे और गठिया-ग्रस्त थे और जो कठोर साम्राज्यिक परिषद् (Imperial Council) से बाध्य रहते थे, इस कठोर कोर्सिकन का कैसे सामना कर सकते थे। जो घर के आदेशों से कभी बाध्य नहीं होता था, जिसने अपने आने के तीसरे दिन ही एक सौ दस आदमियों को सड़क बनाने के लिए भेज दिया, एक ब्रिगेड का विद्रोह कुचल दिया, तोपचियों के वर्गों को चार वर्गों में विभक्त किया, घोड़ा चुराने के एक केस के बारे में आदेश दिए, कमानों के सम्बन्ध में दो सेनापतियों की प्रार्थनाओं के उत्तर दिए, एक सेनापति को एंटाइव्स का नेशनल गार्ड बुलाने की आज्ञा दी, एक अन्य आदेश यह पता लगाने के लिए दिया कि विद्रोही ब्रिगेड में सबसे प्रवीण अधिकारी कौन है, जनरल स्टाफ के सामने भाषण दिया, सेनाओं का निरीक्षण किया और उस दिन के आदेश दिए।" क्या वे एक सेनापति का सामना कर सकते थे, जो एक सैनिक युद्ध के साथ-ही-साथ डायरेक्टरों के साथ पत्र-युद्ध भी चलाता रहता था और फिर प्रत्येक विश्राम स्थल से एक प्रेम-पत्र लिखने की शक्ति भी रखता था।

यहाँ श्री बोनापार्ट ने मनुष्यों के ऊपर प्रेरणा, अनुशासन और उनकी भाव-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाओं को स्पर्श करने की योग्यता की शक्ति प्रदर्शित की। उसने अपने सैनिकों से कहा था, "मैं तुम्हें संसार के सबसे ज्यादा उपजाऊ प्रदेशों में ले चलूंगा। वहाँ तुम्हें सम्मान, गौरव और धन मिलेगा।" उसने अपने इस वचन को पूरा किया। उसने नौकरों को सेनापति बना दिया, उसने एक विद्रोही और निकम्मी सेना को वीरों की एक सेना बना दिया, उसने अपने नाम का कुछ ऐसा सिक्का जमाया कि लोग दो दशकों तक उस पर मरते रहे।

उसने शब्दों के जादू और विचारों की शक्ति को जान लिया था। वह युद्ध-घोष खड़ा कर सकता था और घर पर एक ऐसी रिपोर्ट भेज सकता था जिसको पढ़कर समाचारपत्र के किसी सम्वाददाता तक को ईर्ष्या हो। वह 'स्वतन्त्रता', 'मित्रता', और 'वीरतापूर्ण', नामों के उच्चारण से विजित लोगों के ऊपर ऐसा असर डाल सकता था कि वे उसका मुक्तिदाता के रूप में स्वागत करें। उसने उँची अन्तर्राष्ट्रीय नीति के मामलों में दीक्षा ग्रहण की, उसने राजनेतृत्व के लिए अपनी क्षमताएँ प्रदर्शित कीं। उसने इटली की स्थिति को ठीक से समझा और वेनिस के विभाजन में अपने राजनीतिक यथार्थवाद (Political realism) का सबसे पहले परिचय दिया।

उसने मनुष्यों के शासन में रिश्वतें और धमकियाँ देना तथा राजनय (Diplomacy) के व्यवहार में प्रवंचना, स्पष्टवादिता और आदेश देने की प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण करना सीख लिया था। उसका यह कहना कितना प्रभावशाली था "मेरी सेनाओं को दो बजे आक्रमण करने का आदेश है।"

सभी दिशाओं से अपार महत्त्वाकांक्षाओं का जन्म, महान् शक्तियों का जागरण और अमित सम्भावनाओं का बोध हो रहा था। नेपोलियन के मन में यह भावना भी दृढ़ होती जा रही थी कि अब वह इतिहास की निगाहों में जीवित रहने लगा है। फिर भी उसका कहना था, 'अभी तो रिकार्ड आधे पेज से ज्यादा नहीं लेगा।' लेकिन वह यह भी कहता था, "मेरा विचार है कि अभी तो कुछ ऐसे कार्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं जिनकी वर्तमान पीढ़ी की कोई कल्पना भी नहीं है।"

२७ मार्च, १७९६ को नेपोलियन ने नाइस (Nice) में इटली की कमान सम्भाली। आल्प्स में होकर उसने अपनी सेना सहित पीडमौंट में प्रवेश किया। उसने पो नदी को पार करके आस्ट्रियनों एवं सार्डीनियनों को पराजित किया। छोटी-मोटी लड़ाइयों के बाद २८ अप्रैल को उसकी सार्डीनियनों से सन्धि हुई। सन्धि में नेपोलियन का पक्ष प्रबल रहा। उसने सार्डीनिया को इस बात के लिए बाध्य किया कि वह सेवॉय (Savoy) तथा नाइस (Nice) पर, जिसे फ्रांस ने १७९२ में अपने नियंत्रण में कर लिया था, तथा तीन अन्य दुर्गों पर और पीडमौंट से गुजरने वाली सड़कों पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार करे। नेपोलियन ने इस बात की सावधानी बरती थी कि उसने सार्डीनिया की राजधानी ट्यूरिन (Turin) पर आक्रमण नहीं किया था। सार्डीनिया से सन्धि होने के बाद उसने पूर्व में आस्ट्रियनों के विरुद्ध अभियान किया। १० मई को उसने अदा (Adda) नदी पर लोदी के पुल को पर किया। १५ मई को उसने एक रोमन सेनापति की भाँति विजेता के रूप में मिलान (Milan)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवेश किया। वहाँ उसका उत्साह और फूलों से मुक्तिदाता के रूप में स्वागत हुआ। उसने मिलान को आस्ट्रिया के नियन्त्रण से स्वतंत्र कर दिया।

मिलान

उसने वहाँ परिषदों और राष्ट्रीय रक्षक दल की स्थापना की। उसने वहाँ के कलाकारों और साहित्यकारों को संरक्षण प्रदान किया। कुछ दिनों बाद उसने वहाँ २ करोड़ फ्रांकों का कर लगाया और वहाँ की असंख्य कलाकृतियाँ एवं मूल्यवान् पांडुलिपियाँ फ्रांस को भेज दीं।

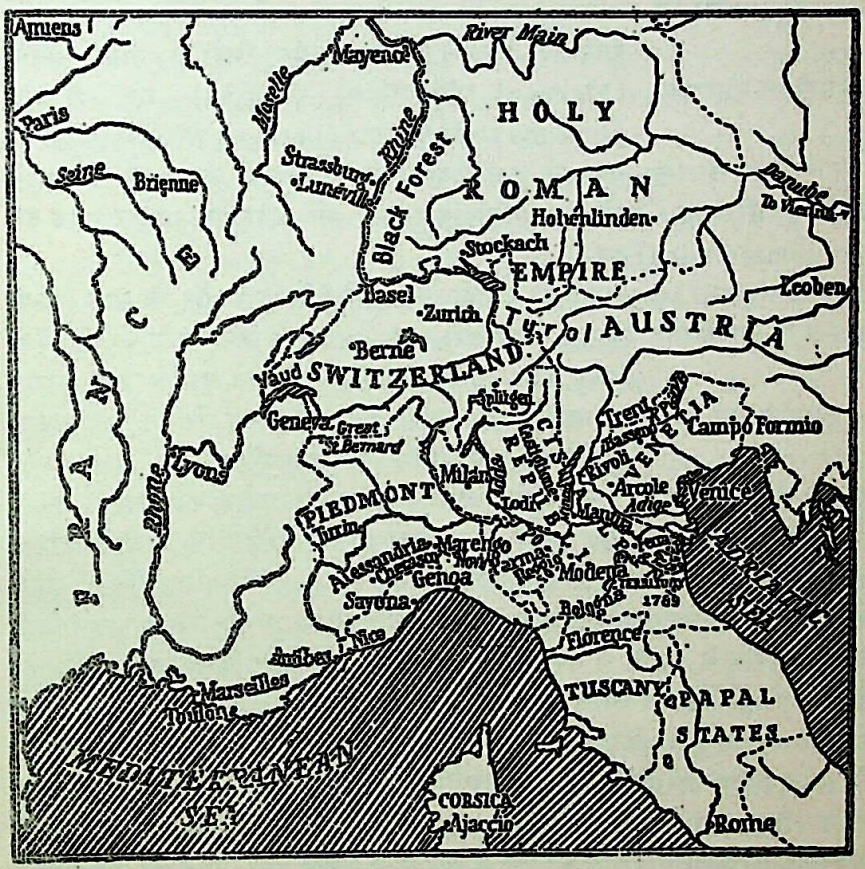

Napoleon's Italian Campaigns

इसके बाद नेपोलियन मांटुआ की ओर बढ़ा जहाँ अब आस्ट्रियन ठहरे हुए थे। आस्ट्रियनों ने मांटुआ को बचाने की चार बार कोशिश की लेकिन फ्रांसीसियों के सामने उन्हें हर बार मुँह की खानी पड़ी। पहली चेष्टा

मांटुआ

अगस्त में केस्टिग्लिओन (Castiglione) में हुई। दूसरी चेष्टा इसके एक महीने बाद बेसानो (Bassano) की लड़ाई में हुई। तीसरी लड़ाई नवम्बर में आर्कोला (Arcola) में हुई। यह लड़ाई जरा विकट थी। इसमें नेपोलियन स्वयं बाल-बाल बचा। म्यूरोन (Muiron) उसके आड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गया और उसने स्वयं वीर-गति प्राप्त कर नेपोलियन की रक्षा की। चौथी चेष्टा आगामी जनवरी में हुई और वह रिवोली (Rivoli) में पराजित कर दी गई। २ फरवरी, १७९७ को मांटुआ (Mantua) ने घुटने टेक दिये। अब नेपोलियन (Napoleon) ने वियना (Vienna) की ओर कूच किया। ७ अप्रैल को वह लिओबेन (Leoben) पहुँचा। यहाँ से आस्ट्रिया की राजधानी सौ मील से भी कम नहीं रह जाती थी।

बेसानो के बाद नेपोलियन ने ट्रांसपेडेन गणराज्य (Transpadane Republic) की स्थापना की। दलित, कुशासित और विभक्त इटली के लोकतन्त्रात्मक और राष्ट्रवादी तत्त्वों ने उसका समर्थन किया। उसने मोडेना (Modena) और रेगिओ (Reggio) तथा बोलोग्ना (Bologna) और फेरारा (Ferrara) के पोप नगरों को मिलाकर एक छोटा-सा गणराज्य बना दिया। यह गणराज्य जनता की इच्छा के ऊपर आधारित था। इसमें एक प्रतिनिधिक सभा थी और एक राष्ट्रीय रक्षक दल (National Guard) था।

ट्रांसपेडेन गणराज्य

मांटुआ (Mantua) की पराजय के बाद नेपोलियन ने पोप के साथ दो-दो हाथ करने का फैसला किया। डायरेक्टरी (Directory) की नीति कैथोलिकों के विरुद्ध थी। उसके आदेश पर नेपोलियन चर्च के कुछ राज्यों पर पहले ही आक्रमण कर चुका था। लेकिन वह इतना बुद्धिमान अवश्य था कि उसने डायरेक्टरों की इच्छा होते हुए भी रोम के ऊपर आक्रमण करके कैथोलिक यूरोप को नाराज नहीं किया। लेकिन उसकी प्रतिष्ठा को देखते हुए इसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ी थी। थोड़े से शक्ति-प्रदर्शन ने ही दब्बू पादरियों के होश ठिकाने लगा दिए थे। लेकिन, समझौते की वार्ता को बढ़ाने की प्रवृत्ति ने और जब आस्ट्रियन जीतते हुए मालूम पड़ रहे थे, फ्रांसीसियों के प्रति विरोध के प्रदर्शन ने नेपोलियन को यह विश्वास दिला दिया था कि पोप को एक सबक और सिखाने की आवश्यकता है। फरवरी, १७९७ में उसने दूसरी बार पोप के प्रदेश पर आक्रमण किया और १९ ता० को टोलेन्टिनो (Tolentino) की सन्धि की। इस सन्धि द्वारा पोप ने ये शर्तें स्वीकार कीं—अंग्रेजों का पोप के बन्दरगाहों से निष्कासन, ट्रांसपेडेन गणराज्य की मान्यता, एविग्नान (Avignon) पर फ्रांस के अधिकारों की स्वीकृति, फ्रांस को भेंट के रूप में ३ करोड़ फ्रांक, पाँच सौ पांडुलिपियाँ (Manuscripts), सौ तस्वीरें और कलाकृतियाँ देना जिनमें एक जूनियस ब्रूटस (Junius Brutus) की तांबे की मूर्ति और एक मार्कस ब्रूटस (Marcus Brutus) की संगमरमर की मूर्ति भी शामिल थी। इस संधि में फ्रांस एवं चर्च के धार्मिक प्रश्नों की कोई चर्चा नहीं की गई थी। नेपोलियन ने कैथोलिक धर्म की शक्ति को समझ लिया था। जब वह सम्राट बना था, उसने पहले तो उसका समर्थन प्राप्त किया, बाद में उसकी अवहेलना अवश्य की।

पोपशाही

जब अप्रैल १७९७ में नेपोलियन वियना से केवल १०० मील की दूरी पर रह गया था, दोनों पक्ष ही शान्ति-सन्धि के लिए तैयार थे। इटली के विजयी फ्रेंच सेनापति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya·Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को घर से और सेना मिलने की आशा नहीं थी यद्यपि जर्मनी में पराजित सेनापतियों को इनकी बहुत आवश्यकता थी। नेपोलियन को इस बात का भी ज्ञान था कि उसकी सेना से कुछ लोग असन्तुष्ट हैं और फ्रांस में एक विजेता की अपेक्षा एक शान्ति-निर्माता की अधिक कद्र होगी। डायरेक्टरी निर्वाचनों के पूर्व ही शान्ति की इच्छुक थी। जर्मनी में उसकी सेनाएँ पराजित हो चुकी थीं, कैम्परडाउन (Camperdown) में डन्कन (Duncan) द्वारा डच जहाजी बेड़े के विनाश में और केप सेंट विंसेंट (Cape St. Vincent) में जर्विस (Jervis) द्वारा स्पेन के जहाजी बेड़े के विनाश में फ्रांस की नौ शक्ति को अपार क्षति हुई थी। वह सैनिक या राजनीतिक दृष्टि से सदैव इटली की रक्षा करने के लिए तैयार नहीं थी। वह एक ऐसे सेनापति को भी ज्यादा बढ़ावा नहीं देना चाहती थी जो किसी भी समय अपने को इटली का राजा घोषित कर दे और अपनी सेनाओं को स्वयं फ्रांस के विरुद्ध कर दे।

शान्ति की पारस्परिक तैयारियाँ

जहाँ तक आस्ट्रिया का सम्बन्ध है, उसे दो ओर से लड़ाई लड़नी पड़ रही थी। वह इटली में निर्णायक रूप से हार चुका था। यद्यपि वह जर्मनी में अस्थायी रूप से जीत गया था, लेकिन वहाँ से भी कुछ आदमियों को नहीं दे सकता था। उसके साथी भी उसका साथ छोड़ रहे थे। कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) की पहले नवम्बर में मृत्यु हो चुकी थी। उसका उत्तराधिकारी पॉल (Paul) आस्ट्रिया के विस्तार की योजनाओं में सहायता देने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था। इंग्लैण्ड ने कोर्सिका (Corsica) छोड़ दिया था और वह भूमध्यसागर से भी हट गया था। इस तरह इटली और फ्रांस के बीच आने-जाने का रास्ता खुल गया था। प्रशा गणराज्य के साथ समझौता करके जर्मनी में अपनी सर्वोच्चता कायम करने के लिए उत्सुक था। आर्चड्यूक चार्ल्स (Archduke Charles) की विजयों ने दक्षिणी राज्य की अस्थिर निष्ठा को कुछ समय के लिए स्थिर कर दिया था। समझौते की शर्तें तय करने में उससे लाभ उठाया जा सकता था।

इस तरह नेपोलियन ने शान्ति सन्धियाँ करके अपनी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा लिए। सेनापति के रूप में उसकी ख्याति पहले ही थी, अब वह प्रथम श्रेणी का राजनयज्ञ भी माने जाने लगा। लिओबेन की प्रारम्भिक बातों को कैम्पो फोर्मियो (Campo Formio) की शान्ति-सन्धि (अक्टूबर, १७९७) में समाविष्ट कर लिया गया। इस सन्धि ने पाँच वर्ष के लम्बे उस युद्ध को समाप्त कर दिया जिसे जिरोंडिस्टों (Girondists) ने अप्रैल १७९२ में बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रारम्भ किया था। सन्धि के अनुसार यह तय हुआ कि आस्ट्रिया फ्रांस की सीमा राइन तक मानेगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आस्ट्रिया को आस्ट्रियन, नीदरलैंड्स, ट्रियर (Trier), मेंज (Mainz) और पैलेटिनेट (Palatinate) के इम्पीरियल एलेक्टोरेटों (Imperial Electorates) से हाथ धोना पड़ा। आस्ट्रिया ने फ्रांस को लोम्बार्डी (Lombardy) देना भी स्वीकार किया। इसके बदले में उसे वेनिस के गणराज्य का कुछ भाग मिल गया। इस लड़ाई में वेनिस गणराज्य आस्ट्रिया

लेओबेन और कैम्पो फोर्मियो (१७९७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फ्रांस के बीच दयनीय और प्रतिरक्षाहीन तटस्थता बनाए रखने की चेष्टा करता रहा था।

इधर तो १७९७ के ग्रीष्म में समझौते की बात हो रही थी, उधर नेपोलियन इटली में व्यवस्था स्थापित करने और उसका पुनर्गठन करने के अपने कार्य को आगे बढ़ाता रहा। वह अपनी पत्नी, माता, तीन भाइयों, तीन बहनों और मामा के साथ मोंटेबेलो (Montebello) के महल में दरबार करता था। फ्रांसीसी कैदियों की हत्या के लिये वेरोना (Verona) को दण्ड दिया जाना था। आस्ट्रिया को मजा चखाने के लिए वेनिस (Venice) को जीतना था। इसी तरह की अन्य राजनीतिक योजनाएँ भी नेपोलियन के दिमाग में थीं। वेनिस ने आसानी से घुटने टेक दिये। नेपोलियन ने पहले तो उसे तटस्थता छोड़ने के लिए प्रेरित किया, फिर वहाँ जान-बूझकर क्रान्ति करवा दी। तदनन्तर, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की दुहाई देकर उसको आसानी से अपने काबू में कर लिया। इस प्रकार नेपोलियन ने फ्रांस के लिए इओनियन द्वीप प्राप्त किया और सेंट मार्क (St. Mark) का शहर तथा इस्ट्रिया (Istria) और डाल्मेशिया (Dalmatia) में एडिज (Adige) तक वेनेशिया के सारे प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिए। लेकिन, नेपोलियन इस बात को कभी नहीं भूला कि जब वेनेशिया का प्रधान आस्ट्रिया के प्रति निष्ठा की शपथ ले रहा था, वह मृत होकर गिर पड़ा।

जिनोआ

जिनोआ (Genoa) के श्रेणीतन्त्र (Oligarchy) को भी समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर फ्रांस की अधीनता में एक उदार लोकतन्त्र की स्थापना की गई। लेकिन जिस प्रकार आर्कोला की लड़ाई (Battle of Arcola) ने नेपोलियन के सेनापतित्व की धाक जमा दी थी, उसी प्रकार सिसेल्पाइन गणराज्य (Cisalpine Republic) की स्थापना ने उसके राजनेतृत्व का स्थायी स्मारक खड़ा कर दिया।

सिसेल्पाइन गणराज्य

नेपोलियन ने यह गणराज्य लोम्बार्डी (Lombardy), ट्रांसपेडेन (Transpadane) और वेनेशिया एवं स्विट्जरलैंड के कुछ भागों से मिलाकर बनाया था। यह एक ऐसा नया राजनीतिक एकक था जो राजवंशीय हितों और इटली के स्थानीय विभाजनों को पार कर जाता था। यह रिसोरजिमेंटो (Risorgimento) की पहली विजय थी और उस राष्ट्रीय एकता की दिशा में पहला प्रयास था जो नेपोलियन के साम्राज्य के पतन के दो पीढ़ियों के बाद सिसेल्पाइन गणराज्य (Cisalpine Republic) की बुनियादों पर रखी गई थी।

अब जनरल बोनापार्ट फ्रांस के उस अधिनायकवाद की ओर स्पष्ट रूप से आगे बढ़ रहा था, जिसे उसने बाद में प्राप्त किया। फ्रांस में सितम्बर में राजतन्त्रवादियों ने

नेपोलियन का पेरिस वापस आना

फिर से एक बार विद्रोह कर दिया था और नेपोलियन द्वारा भेजे गये सैनिक दस्तों ने ही सरकार की इस विद्रोह से रक्षा की थी। रैस्टे (Rastadt) में एक साम्राज्य सम्मेलन (Imperial Conference) हुआ। यह सम्मेलन उन समस्याओं पर विचार करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए आहूत किया गया था जो राइन के बायें किनारे पर फ्रांस का अधिकार हो जाने से उठ खड़ी हुई थीं। नेपोलियन ने इस सम्मेलन में भाग लिया और वह वहाँ से पेरिस पहुँचा। पेरिस में उसका राष्ट्रनायक के रूप में स्वागत हुआ। उसकी उपस्थिति से डायरेक्टर कुछ घबड़ा से गए। उन्होंने लुक्जेमबर्ग (Luxembourg) में उसका सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन किया और उसे इंग्लैण्ड की सेना का प्रधान नियुक्त किया। बैरस (Barras) ने लोगों के सामने उनका आलिंगन करते हुए कहा था, "जाओ और उस मुनाफाखोर को पकड़ लो जो समुद्र में डाकेजनी करता है।"

लेकिन, नेपोलियन को अपनी भाग्य-सिद्धि के पूर्व एक मुँह की और खानी थी जिसके लिए अंशतः उसकी अपनी प्रतिभा ही उत्तरदायी थी।

'९३ के गठबन्धन के अन्य सब शत्रु पराजित हो चुके थे। उनमें केवल इंग्लैंड ही बच रहा था। वह राजतंत्रात्मक षड्यन्त्रों का केन्द्र एवं महाद्वीपीय विरोध का मुख्य आधार था। उसकी नौ-शक्ति और द्वीपीय स्थिति बहुत अच्छी थी। फ्रांस की नौ-शक्ति क्रान्ति के कारण बहुत दुर्बल हो गयी थी। फ्रांस के डायरेक्टरों ने हालैंड और स्पेन के जहाजी बेड़ों को अपनी सेवा में पहले ही ले लिया था लेकिन स्पेन का जहाजी बेड़ा तो जर्विस (Jervis) द्वारा केप सेंट विंसेंट (Cape St. Vincent) में और हालैंड का जहाजी बेड़ा डन्कन (Duncan) द्वारा कैम्परडाउन (Camperdown) में उसी वर्ष १७९७ में पराजित कर दिया गया था। फ्रांस ने आयरलैंड में विद्रोह पैदा करने की भी कोशिश की थी लेकिन उसकी वह कोशिश भी व्यर्थ हो गयी थी। "जो इंग्लैंड को जीत लेगा, वह सारे यूरोप को अपने चरणों में पायेगा।" लेकिन नेपोलियन ने यह शीघ्र ही समझ लिया था कि इंग्लैंड के ऊपर आक्रमण करना उस समय तक ठीक नहीं होगा जब तक कि कोई मजबूत जहाजी बेडा न हो। लेकिन, नेपोलियन की दूरदृष्टि में यह बात भी आ गई थी कि इंग्लैंड केवल एक द्वीपमात्र नहीं है, प्रत्युत वह दूर-दूर तक फैले हुए प्रदेशों का एक साम्राज्य है और इन प्रदेशों में भारत सबसे धनी है। भूमध्य सागर के द्वीपवासी के लिए पूर्व एक लुभावना स्वप्न था, सिकन्दर का अनुसरण करने वाले के लिए मिस्र एक अथाह क्षेत्र था।

मिस्र का अभियान

नेपोलियन ने एड्रियाटिक से ही पूर्व की ओर देख लिया था। उसने लड़-खड़ाते तुर्की साम्राज्य के विनाश का इरादा कर लिया था। उसको यह भी शिकायत थी कि यूरोप उसके लिए काफी नहीं है। ऐसी स्थिति में उसने मिस्र को जीतने का इरादा किया। उसका विचार था कि वहाँ से वह भारत या तुर्की के विरुद्ध कार्यवाही कर सकेगा या "यूरोप को पीछे से ले सकेगा," या यदि चाहेगा तो सिकन्दर की तरह एक नये साम्राज्य की स्थापना कर सकेगा।

पेरिस में उसके करने लायक कोई भी काम नहीं था। अभी "फल नहीं पका था।" उसकी न तो इतनी आयु ही थी और न ऐसी इच्छा ही थी कि वह डायरेक्टरी में सम्मिलित हो। उसे नष्ट करने के लिए वह तैयार नहीं था। पेरिस के लोगों की स्मृति बड़ी क्षीण थी। उसे नित्य नए-नए अभियानों से ताजा करने की जरूरत थी। "यदि मैं ज्यादा समय तक यहाँ यों ही अकर्मण्य पड़ा रहूँगा, तो मैं कहीं का न रहूँगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ तो सब कुछ शान्त हो जाता है। मेरा गौरव नष्ट हो ही चुका है। यह छोटा-सा यूरोप मेरे लिये काफी नहीं है। मुझे पूर्व की ओर चलना चाहिए। सारा महान् यश उसी क्षेत्र में आता है।"

डायरेक्टरों को ऐसी योजना से प्रसन्नता हुई जो एक भयंकर आदमी को दूर हटा देगी। दुर्भाग्यवश, फ्रांस दिवालिया हो रहा था और दो-तिहाई राष्ट्रीय ऋण अभी रद्द किया जा चुका था। लेकिन स्विट्जरलैण्ड और रोम पर आक्रमण किया गया और उन्हें भेंट देने के लिये बाध्य किया गया। जोज़ेफाइन भी अपने पति की उपस्थिति में इतनी प्रसन्न नहीं होती थी जितनी कि उसकी प्रतिष्ठा से। नेपोलियन के मिस्र जाने से उसे भी राहत मिली। उसने नेपोलियन से कह दिया कि इटली अभियान की भाँति इस बार उससे पेरिस का सीज़न छोड़कर साथ चलने के लिए नहीं कहा जायेगा।

मई, १७९८ में ४०० जहाजों ने तूलों (Toulon) से प्रस्थान किया। इन जहाजों में सेना और विद्वानों का एक पूरा स्टाफ था। ३८ हजार तो सैनिक थे और १७५ विद्वान सिविलियन थे जिनमें "ज्योतिषी, रेखा गणितज्ञ, खनिज विशेषज्ञ, रसायन शास्त्री, पुरातत्त्वविद्, पुलों को बनाने वाले, सड़कों के इंजीनियर, प्राच्यवादी राजनीतिक अर्थशास्त्री, चित्रकार और कवि" आदि सम्मिलित थे। यह केवल एक सैनिक विजय ही नहीं होने को थी, यह सभ्यता की भी विजय होने को थी।

नेल्सन (Nelson) की अधीनता में अंग्रेजों का एक जहाजी बेड़ा भूमध्यसागर का चक्कर लगा रहा था। लेकिन जिस तूफान ने नेपोलियन के प्रस्थान में २४ घण्टों की देरी कर दी, उसने नेल्सन के जहाजी बेड़ों को भी इधर-उधर कर दिया था। इस तरह फ्रांसीसी बिना किसी कठिनता के आगे बढ़ सके। उन्होंने पहले तो माल्टा पर अधिकार कर लिया और फिर वे सिकन्दरिया की ओर बढ़े। वहाँ नेल्सन उनसे तीन दिन पहले पहुँच चुका था। लेकिन वहाँ पहुँचकर नेल्सन को ज्ञात हुआ कि फ्रांसीसी जहाजी बेड़े ने भूमध्य रेखा के पूर्वी भाग पर अधिकार कर लिया है। यह समाचार मिलते ही वह पुनः पीछे की ओर लौटा। इस तरह आधुनिक काल के सबसे बड़े सेनापति और सबसे बड़े नौ-सेनापति के बीच एक संघर्ष टल गया जिसकी बाद के इतिहास को निन्दा करनी चाहिए।

माल्टा

सिकन्दरिया लेने के बाद नेपोलियन रेगिस्तान से होकर नील नदी की ओर बढ़ा। उसने पिरामिडों की लड़ाई (Battle of the Pyramids) में मिस्र की सेना को बुरी तरह से हराया और काहिरा में प्रवेश किया। वहां उसने मुस्लिम जातियों का नैतिक समर्थन पाने का प्रयास किया। खेद है कि वह दो हजार वर्ष पहले नहीं हुआ था और स्वयं को जुपिटर का पुत्र घोषित नहीं कर सकता था। लेकिन वह वहाँ के धर्म को अपना संरक्षण प्रदान कर सम्मानित कर सकता था। वह काहिरा के दीवान की चापलूसी कर सकता था, कुरान से उद्धरण दे सकता था, यह तर्क कर सकता था कि नास्तिक फ्रांस ईसाई कम मुस्लिम अधिक है, अपने धर्म-परिवर्तन (Conversion)

पिरामिडों की लड़ाई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संकेत दे सकता था, फ्रेंच सेना के लिए एक मस्जिद की योजना बना सकता था और कह सकता था कि फ्रांसीसियों ने अल्लाह और उसके पैगम्बर को खतना (circumcision) एवं मद्य-निषेध की आवश्यकता के कारण ही स्वीकार नहीं किया है।

नील पर नेल्सन की विजय

तभी नील नदी के मुहाने पर नेल्सन की विजय से नेपोलियन की सारी महत्त्वाकांक्षाएँ छिन्न-भिन्न हो गईं। फ्रांस के चार जहाजों को छोड़कर बाकी सब जहाज नष्ट कर दिये गये। नेपोलियन भी मिस्र में चारों ओर से घिरा रह गया। वहाँ की जनसंख्या धर्मान्ध थी और उसके विरुद्ध थी। वहाँ की गरमी, प्यास और बीमारी भी असह्य थी। उसकी सेना भी विद्रोही होती जा रही थी। लेकिन, नेपोलियन जिस प्रकार विजयों और सफलताओं में अपनी प्रतिभा का परिचय देता था, उसने उसी प्रकार संकट के समय भी अपनी प्रतिभा का और स्वयं को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की क्षमता का परिचय दिया। फ्रांस से समाचार सुनने की प्रतीक्षा-काल को उसने वैज्ञानिक और पुरातत्त्वीय खोजों में लगाया। इन खोजों ने उसे मिस्र के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान (Egyptology) का सबसे बड़ा हितैषी बना दिया है। सेना के कष्ट को कम करने के लिए उसने अंगूरों और अन्न की फसलें लगाईं। उसने तन्दूरों, हवा-चक्कियों, धातु गलाने के उपकरणों (Foundries), जूते की दुकानों और गोल-बारूद तैयार करने के कारखानों की स्थापना की। नील और नेट्रन झीलों के खनिजों की खोज की गयी, ज्योतिषीय और भूतत्त्वीय सवक्षण (surveys) किये गये, चिकित्सकों ने पूर्व की बीमारियों के कारणों की खोज की, पुरातत्त्वादों (archaeologists) ने मेम्फिस के मन्दिरों और मोसेज के कुओं का पता लगाया। एक इंजीनियर को रोसेटा (Rosetta) में एक ऐसा पत्थर मिला जिसमें तीन और कुछ लिखा हुआ था। इसमें लेखन-कला (Hieroglyphs), का रहस्य खुल गया। नेपोलियन स्वयं स्वेज गया। वहाँ उसने पुरानी नहर का प्रवाह तलाश किया और एक नई नहर की योजना बनाई जिसे पचास वर्ष बाद डी लेसेप्स (De Lesseps) ने पुष्ट किया।

सीरिया का अभियान (१७९९)

अन्त में यह समाचार आया कि तुर्की ने फ्रांस के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी है और तुर्की की एक फौज सीरिया से होकर मिस्र में आ रही है। काहिरा में एक विद्रोह हो गया जिसे नेपोलियन ने बड़ी निर्दयता से दबा दिया। उसने जल्दी से अपनी योजनाएँ बनाईं और सीरिया पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसका इरादा था कि वह एक्रे (Acre) से दमिश्क (Damascus) जाये, वहाँ से ईरान होता हुआ, जहाँ का शाह उसका मित्र था, भारत पहुँचे और वहाँ टीपू सुलतान से सहयोग करे। उसकी कल्पना इतनी बड़ी योजना के सामने बिलकुल नहीं थकी या उसका विचार यह था कि वह कुस्तुंतुनिया (Constantinople) ले ले, तुर्की साम्राज्य को समाप्त कर दे और वियना होकर हैब्सबर्ग वंश को समाप्त करने के बाद अपने देश का रास्ता पकड़े।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन सीरिया की ओर बड़ी कठिनाइयाँ सहकर बढ़ सका। जाफा (Jaffa) में उसने तीन हजार कैदियों को तलवार के घाट उतार दिया क्योंकि उसके पास इतनी रसद नहीं थी कि उन्हें एक्रे तक खाना खिलाया जा सके। वहाँ एक राज-इंजीनियर फिलिप (Phelippeaux) और एक अंग्रेज नौ-सेनापति सर सिडनी स्मिथ (Sir Sidney Smith) ने उसे रोक लिया। उसके पास एक लम्बा घेरा डालने के लिए न तो समय ही था और न उत्साह ही। पेरिस से भी कुछ अशुभ समाचार आ रहे थे। उसकी सेना भी भुनभुना रही थी। उसके पास मिस्र की ओर वापस लौटने के अलावा और कोई चारा ही नहीं था। चूँकि पर्याप्त घोड़े नहीं थे, अतः यह पैदल प्रत्यावर्तन (retreat) बहुत ही भयानक था। प्रत्येक चार आदमी अपनी पीठ पर एक बीमार आदमी को लादे ले जा रहे थे। प्लेग और प्यास चिर-सहचरी रहीं। लेकिन, इतने पर भी नेपोलियन ने अबूकर खाड़ी (Aboukir Bay) के पास तुर्की की एक पूरी सेना का नाश कर दिया। इसी समय उसके पास यह समाचार आया कि जब वह फ्रांस से अलग रहा था, उस बीच में फ्रांस के विरुद्ध एक और गुट (Coalition) तैयार हो गया है, इटली हाथ से निकल गया है और डायरेक्टर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। नेपोलियन ने मिस्र के अभियान (Egyptian expedition) के पूर्व अपने भाई को लिख दिया था, "यदि फ्रांस को मेरी आवश्यकता हुई, तो मैं वापस लौट आऊँगा।"

एक्रे (अप्रैल-मई १७९९)

नेपोलियन एक असफल यात्री की भाँति मिस्र से मुँह छिपाकर भागा और इंग्लैण्ड के एक जहाजी बेड़े पर बैठकर फ्रांस आ गया। उसने अपनी सेना क्लेबर (Kleber) में छोड़ दी थी—एक पत्र द्वारा—जिससे कि उसमें विद्रोह न फैल जाये। वह दो वर्ष तक जाल में फँसी वहीं पड़ी रही। फिर अंग्रेजी सेना ने उसे हरा दिया। जो कुछ सेना बच रही थी, वह अंग्रेजी जहाजों में बैठकर वापस आयी। एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक उद्योग के रूप में मिस्र का प्रयास व्यर्थ गया।[1] भारत में अंग्रेज की शक्ति अक्षत रही। फ्रांस की कोई नई बस्ती स्थापित नहीं हुई। माल्टा को, जिसकी मध्य-युगीन शान्ति नेपोलियन ने बहुत निर्दयता से भंग कर दी थी, अंग्रेजों ने १८०० में पुनः वापस ले लिया। नेपोलियन अपने जीवन के प्रारम्भ में और सारे जीवन समुद्र और उसके स्वामी इंग्लैण्ड से पराजित हुआ। यद्यपि उसका रुचि-वैचित्र्य, नियन्त्रण शक्ति, विशेष ज्ञान, प्राविधिक प्रवीणता सब कुछ प्रथम कोटि की थी, लेकिन वह सामुद्रिक शक्ति में सदैव इंग्लैण्ड से पीछे रहा।

पेरिस को वापस आना

उसकी वापसी पर डायरेक्टर आतंकग्रस्त हो गये। उन्होंने उसे मरा हुआ समझ लिया था। जोजेफाइन (Josephine) का भी यही विचार था। उसकी वासना और मूढ़ता ने उसके प्रथम प्रेम के श्रेष्ठ विश्वास को नष्ट कर दिया था। तीस वर्ष के सेनापति ने अनमना होकर कहा

---

१. तथापि, नैपोलियन का अभियान मिस्र के नवजागरण में बहुत सहायक हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, "मेरे लिए केवल एक ही साधन रह गया। मैं निरपेक्ष अहंवादी हो जाऊँ।" लेकिन लोगों ने उसके आने की प्रसन्नता में सड़कों पर एक दूसरे का आलिंगन किया। "ऐसा मालूम पड़ता है कि हर कोई मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। यदि मैं कुछ समय पूर्व आता, तो बहुत शीघ्रता होती। यदि मैं कुछ समय बाद आता, तो बहुत देरी हो जाती। मैं ठीक समय पर आया हूँ।" अब फल पक गया था।

"मैं ठीक समय पर आया हूँ"

फ्राँस का अधिपति (१७९९-१८०४)
(Master of France, 1799-1804)

ब्रूमेयर के राज्य-परिवर्तन (Coup d' etat of Brumaire) के बारे में, जिसने नेपोलियन के मिस्र से वापस आने के तीन सप्ताह बाद ही उसे फ्रांस का अधिपति बना दिया, कोई शौर्यपूर्ण बात नहीं है। नेपोलियन ने १८०३ में मैडेम डी रेमूसट (Mme de Remusat) से कहा था, "मैंने अपने जीवन में इससे ज्यादा प्रवीणता से कभी आचरण नहीं किया है।" लेकिन प्रवीणता षड्यन्त्र के आयोजन और साथियों के, मुख्यतः '८९ के आदमियों—सैयीज (Sieyes) और टेलीरैंड (Talleyrand)—के जिनमें से एक तो डायरेक्टर था और दूसरा विदेश-मंत्री था, चुनाव में थी। अधिनायक के उदय की भाँति ही इस षड्यन्त्र का क्रियान्वयन भी बड़ा अशुभ था।

ब्रूमेयर का राज्य परिवर्तन (नवम्बर ९-१०, १७९९)

दिखाने के लिए, सरकार को वैधानिकता के सम्पूर्ण प्रदर्शन के साथ अपदस्थ करना था। पाँचों डायरेक्टरों को त्यागपत्र देना था तथा दोनों विधान-परिषदों—एन्शियंट्स (Ancients) और फाइव हंड्रेड (Five Hundred) को पूर्णरूप से वैधानिक ढंग से संविधान के संशोधन के लिए मत देना था। लेकिन सावधानी फिर भी बरतनी थी। एक डायरेक्टर को रिश्वत दी गई, दूसरे को डरा दिया गया, तीसरे को जोजेफाइन द्वारा नाश्ते पर आमन्त्रित किया गया, कुछ विश्वस्त सेनापतियों को सैनिकों सहित पास में छिपा दिया गया। नेपोलियन के सौभाग्य से उस महीने उसका भाई ल्यूसियन (Lucien) फाइव हंड्रेड (Five Hundred) का अध्यक्ष था।

लेकिन वैधानिकता के प्रदर्शन की चेष्टा टूट गई। डायरेक्टरों को तो शीघ्रता से निबटा दिया गया, लेकिन परिषदें जरा हठी सिद्ध हुईं। एन्शियेंट्स (Ancients) ने यह नहीं माना कि नेपोलियन राज्य का रक्षक है। फाइव हंड्रेड (Five Hundred) के हाल में नेपोलियन का स्वागत इन ध्वनियों के साथ हुआ "अत्याचारी का नाश हो!" "उसको कानून से बाहर करो!" अपने को अवैधता (Outlawry) से बचाने के लिए नेपोलियन ने अपनी सेनाओं को बुलाया। उन्होंने हर्षध्वनि की लेकिन वे हिलीं नहीं। उसने भाषण देना प्रारम्भ किया। उसके भाई ल्यूसियन (Lucien) ने कहा, "ईश्वर के लिए अपनी जबान बन्द करो!" जब तक ल्यूसियन ने अपनी तलवार निकाल कर यह प्रतिज्ञा नहीं की कि यदि नेपोलियन ने फ्रांस की स्वतन्त्रताओं को खतरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचाया तो वह नेपोलियन के शरीर के दो टुकड़े कर देगा, तब तक सिपाहियों ने हॉल में प्रवेश नहीं किया। सिपाहियों के हॉल में आते ही कौंसिलर दरवाजे और खिड़कियों के रास्ते भाग गये। आधी रात को कुछ प्रतिनिधि वापस आये और उन्होंने संविधान संशोधन के पक्ष में मत दिया और उसे तीन अस्थायी कांसलों (Consuls) बोनापार्ट, सेयीज (Sieyes) और ड्यूकोज (Ducos) के हाथों में सौंप दिया।

इस तरह, नेपोलियन अपने छोटे भाई के प्रयत्न से जिसने उससे अपनी जबान बन्द करने के लिए कहा था, अवैधता की स्थिति से सत्ताधीश की स्थिति में पहुँच गया। नेपोलियन भी अपने भाई के इस ऋण को नहीं भूला। सेयीज़ (Sieyes) द्वारा निर्मित और बोनापार्ट द्वारा संशोधित नये संविधान पर एक महीने बाद जनमत लिया गया। यह संविधान भारी बहुमत से स्वीकृत हुआ। नेपोलियन की वास्तविक शक्ति यही थी। परम्परागत गणतांत्रिक नामों की स्वीकृति और अधिशासनिक शक्ति (Executive power) के तीन अधिकारियों के बीच विभाजन से यह तथ्य नहीं भुलाया जा सकता कि सर्वोच्च शक्ति बोनापार्ट के हाथों में है। प्रथम कॉन्सल के नाते नेपोलियन के पास विपुल शक्तियाँ और पर्याप्त कार्य था तथा वह प्रायः अधिनायक (dictator) बन गया था। वह मंत्रियों, प्रशासनिक अधिकारियों और अधिकांश न्यायाधीशों को नियुक्त करता था। वह प्रधान सेनापति था और स्थानीय शासन (local government) का निरीक्षण करता था। वह वैदेशिक मामलों और कूटनीतिक सेवाओं पर नियंत्रण रखता था। वह राज्य-परिषद् (Council of State) का अध्यक्ष एवं नामांकन-कर्त्ता (nominator) था। राज्य परिषद् विधान (legislation) प्रारम्भ करती थी और वह कार्यों तथा क्षेत्रों की दृष्टि से बूरबन राजाओं की राजसभा (*Conseil du Roi*) से मिलती-जुलती थी। वास्तव में, कांसल शासनगत राजवंश की निरंकुशता की पुनर्प्रतिष्ठा थी, लेकिन इसमें थोड़ा अन्तर था। यह निरंकुशता प्रवीणता और जन-समर्थन पर आधारित थी और इसका जन्मगत विशेषाधिकारों से कोई सम्बन्ध नहीं था। नेपोलियन के मत से फ्रांस को स्वतन्त्रता से नहीं प्रत्युत समानता से प्रेम था। उसके शासन में उसके परिवार के दुर्भाग्यपूर्ण अपवाद को छोड़कर उन्नति करने का योग्यता के सिवाय और कोई रास्ता नहीं था।

नपोलियन प्रथम कान्सल (१७९९-१८०४)

फ्रांस के लोगों ने इस निरंकुशता को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया। इसका कारण यह था कि वे शासन-परिवर्तनों के अभ्यस्त थे, वे एक ऐसा सशक्त शासक चाहते थे और उसको मान्यता देते थे जो दल से स्वतन्त्र हो। वे डायरेक्टरी से, उसके षड्यन्त्रों और अयोग्यता से थक गये थे। डायरेक्टरी ने देश की एक भी समस्या का समाधान नहीं किया था। वह उसे लूटमार, विद्रोहों और विदेशियों के हाथों से पराजय से नहीं बचा सकी थी। । नेपोलियन ने जनता के सामने संविधान प्रस्तुत करते समय कहा था, "नागरिको, क्रांति उन सिद्धान्तों की ओर वापस आ गई है, जिनके साथ वह प्रारम्भ हुई थी।" आठ वर्ष पूर्व लुई सोलहवें (Louis XVI) ने भी एक नये संविधान की उद्घोषणा की थी और क्रान्ति के अन्त की घोषणा की थी। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच में फ्रांस अव्यवस्था, आतंक, युद्ध और परेशानी का सामना कर वैधानिक राजतन्त्र (constitutional monarchy) से अधिनायकवाद की ओर आ गया था जो क्रान्ति की असामान्य परिणति नहीं है।

नेपोलियन ने अब तुरन्त ही फ्रांस के अन्दर व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश की। उसने ला वेंडी (La Vendee) और ब्रिटेनी (Brittany) के विद्रोहों को दबा दिया। उसने वित्तीय स्थिरता की आधारशिला रखी। उसने सभी दलों में से नियुक्तियाँ करना और केवल उन्हीं व्यक्तियों को छोड़कर, जो उसके साथ किसी भी तरह मेल न कर सके, नये अधिनायकवाद की उदारता का परिचय दिया। विदेश मंत्रालय पुरातन शासन व्यवस्था के धार्मिक कुलीन टेलीरैंड (Talleyrand) की अधीनता में था। जैकोविन राज-हत्यारा फौश (Fouche) उसका पुलिसमंत्री था। उसने प्रवासी कुलीनों को फ्रांस वापस आने का आमंत्रण दिया, पदारियों से केवल राज-भक्ति का वचन देने की माँग की और नॉन-ज्यूरर्स (Non-jurors) को भी उन स्थानों पर जहां विरोध पैदा नहीं हुआ था, कार्य करने की अनुमति दी।

वैदेशिक कार्य

१८०० में लड़ाइयों का नया दौर प्रारम्भ करने पर नेपोलियन ने फ्रांस के शत्रुओं की ओर ध्यान दिया। पिछले साल उसके विरुद्ध दूसरा गुट तैयार हो गया था। इस गुट में रूस, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, नैपिल्स, पुर्तगाल और तुर्की थे। ड्यूक ऑफ यार्क (Duke of York) की अधीनता में एक आँग्ल-रूसी सेना ने हालैण्ड पर आक्रमण किया था। इटली में आस्ट्रिया और रूस की संयुक्त सेना ने लोम्बार्डी में मांटुआ को और पीडमौंट में एलेक्जेंड्रिया को जीत लिया था। सुवेरोफ (Suvaroff) की अधीनता में रूस की एक सेना ने नोवी (Novi) में फ्रांसीसियों को हराया और उन्हें जिनोआ (Genoa) तक भगा दिया। नेपोलियन की विजयों में से अब फ्रांसीसियों के पास केवल यही शेष रहा था। लेकिन मित्रदेशों की सफलताएँ नेपोलियन के मिस्र वापस आने से पहले ही रोक दी गयी थीं। सितम्बर में मेसेना (Massena) ने ज्यूरिच (Zurich) में रूसियों को हरा दिया और स्विट्ज़रलैंड के रास्ते से भाग जाने के लिए विवश किया। अक्टूबर में ब्रून (Brune) ने असमर्थ ड्यूक ऑफ यार्क (Duke of York) को हरा दिया और उसे अल्कमार के सम्मेलन द्वारा इस बात के लिए विवश किया कि वह अपनी सेनाओं को वापस हटा ले। ज़ार पाल (Tsar Paul) ने निश्चय किया कि अब वह थल युद्धों में भाग नहीं लेगा और अपनी गतिविधियों को केवल भूमध्यसागर तक ही सीमित रखेगा। जिस काम को फ्रांस की सेनाओं ने प्रारम्भ किया था, मित्र देशों की ईर्ष्या ने उसे जारी रखा। कुछ तो इस ईर्ष्या को भड़काने के लिए और कुछ समय पाने के विचार से नेपोलियन ने जार्ज तृतीय (George III) और सम्राट फ्रांसिस (Emperor Francis) को एक-एक पत्र लिखा जिसमें उसने शान्ति की इच्छा व्यक्त की थी। पिट (Pitt) ने उसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि समझौते की बातचीत की पहली शर्त यह है कि बूरबन शासकों को गद्दी पर बैठाया जाये। लेकिन चूँकि नेपोलियन ने कोई निश्चित प्रस्ताव नहीं रखे थे चूँकि वह इटली पर फ्रांस का आधिपत्य फिर से स्थापित करना चाहता था और चूँकि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने इस बात को समझ लिया था कि ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ वह अभी तक अपराजित था, नई-नई सफलताएँ प्राप्त करने से राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी स्थिति सुदृढ़ हो जायेगी, अतः यह विश्वास करना कठिन है कि वह सच्चा था।

नेपोलियन ने १८०० के शुरू में लड़ाई प्रारम्भ की। पहले उसका इरादा दक्षिणी जर्मनी में युद्ध करने का था। वहाँ से वह वियना (Vienna) पर आक्रमण करना चाहता था लेकिन फ्रांसीसी सेनापति मोरे (Moreau) के साथ कार्य करने की कठिनाई ने उसे यह इरादा छोड़ने के लिए और फिर पो नदी की घाटी में आने के लिए बाध्य किया। लेकिन, इस बार नेपोलियन आल्प्स का चारों ओर का चक्कर लगाकर वहाँ नहीं पहुँचा। वह आल्प्स के ऊपर से वहाँ पहुँचा। सेंट बरनार्ड के साधुओं ने वीरता का जो सबसे बड़ा करिश्मा देखा, वह यह था कि फ्रांस की सेना ने अपने गोला-बारूद और शस्त्रास्त्रों सहित किस प्रकार दर्रे से होकर इटली में प्रवेश किया। १५ मील का रास्ता वाहनों द्वारा तो तय नहीं किया जा सकता था। तोपों को पेड़ों के खोखले तनों में रखा गया और उन्हे किसान या सिपाही रस्सियों से खींचकर ले गये।

इटली का दूसरा युद्ध (१८००)

यह संघर्ष, जिसका प्रारम्भ इतनी प्रतिभा के साथ हुआ, योजना और सक्रियता की दृष्टि से अद्भुत था। जून १८०० में मारेंगो (Marengo) की आशातीत विजय इसका चरमोत्कर्ष थी। लेकिन ब्रूमेयर के राज्य-परिवर्तन की भाँति यह विजय भी अपने अंतिम चरणों में एक अन्य व्यक्ति द्वारा प्राप्त की गई थी। नेपोलियन इस लड़ाई को ३ बजे हार चुका था। लेकिन ७ बजे डीसे (Desaix) एवं उसकी सेनाओं ने और केलरमैन (Kellermann) के घुड़सवारों ने इस लड़ाई का पाँसा पलट दिया। डीसे ने कहा था, "लड़ाई हारी जा चुकी है, लेकिन दूसरी जीती जा सकती है।" यह वाक्य उसके लिए उचित श्रद्धांजलि है क्योंकि वह लड़ाई में हत हो गया।

मारेंगो (१८००)

थोड़ी देर के लिए मिलान (Milan) जाने के बाद नेपोलियन शीघ्र ही पेरिस गया। वह दो महीने ही पेरिस से बाहर रहा था। इस बीच में, इटली में जो कुछ हाथ से गया था, नेपोलियन ने वह सब पुनः प्राप्त कर लिया था। नेपोलियन ने जिस प्रकार इटली में विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार दिसम्बर में, जर्मनी में मोरे (Moreau) ने होहेनलिण्डेन की विजय (Victory of Hohenlinden) प्राप्त की। वह बढ़ते-बढ़ते वियना (Vienna) से केवल ७१ मील दूर ही रह गया था। उसी महीने मैक्डॉनल्ड (Macdonald) की अधीनता में इटली से फ्रांस की एक सेना और आ गई तथा उसने मिंसिओ (Mincio) के दुर्ग को जीत लिया। इस पर आस्ट्रिया समझौते के लिए राजी हो गया।

ल्यूनेवाइल की संधि (Peace of Luneville, February 1801) में आस्ट्रिया के प्रतिकूल पड़ने वाले कुछ संशोधन के साथ कैम्पो फोर्मियो (Campo Formio) की प्रायः सब बातें दुहराई थीं। आस्ट्रिया ने एक बार फिर बटेवियन, हेल्वेटिक और सिसेल्पाइन गणराज्यों को, एवं बेल्जियम व राइन के बायें किनारे पर फ्रांस के अधि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार को स्वीकार किया। लेकिन जहाँ इटली का पहला युद्ध गणराज्य की सेवा में नियुक्त एक सेनापति और राजनयज्ञ की बिजय का संकेतमात्र था, वहाँ दूसरा युद्ध फ्रांस के शासक द्वारा इच्छित महाद्वीपीय और औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षा की विशाल योजना का एक अंग और संकेत था। नेपोलियन कभी जड़ नहीं रहा। स्थिति को यथावत् बनाये रखने की जड़वादी मान्यता उसकी प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध थी। उसके उत्तरदायित्वों और अवसरों के साथ-ही-साथ उसका दृष्टिकोण भी विस्तृत हो गया था। मिस्र के अभियान ने यह प्रकट कर दिया था कि वह कितने बड़े परिमाण पर इंग्लैण्ड का सामना करने के लिए तैयार है। ल्यूनेवाइल (Luneville) के बाद उसकी गतिशील कल्पना आस्ट्रिया की पराजय और गुट के विनाश से कहीं आगे बढ़ गई थी। उसने यूरोपीय राज्यों के एक संघ बनाने की योजना पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। यह संघ इंग्लैण्ड के विरुद्ध होता जिसका वह जल या थल में कहीं भी सामना नहीं कर सकता था। उसने इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए जितना हो सकता था, प्रयत्न भी किया, लेकिन वह सफल न हो सका।

ल्यूनेवाइल की सन्धि (फरवरी १८०१)

महाद्वीपीय महत्त्वाकांक्षाएँ

उसने यूरोप के बाहर इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक साम्राज्य का दमन कर फ्रांस के एक औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना का विचार किया। उसने सैन डोमिन्गो[1] (San Domingo) के वेस्ट इण्डियन द्वीप में फ्रांस की सत्ता स्थापित करने की कोशिश

---

१. हैटी (Haiti) या सैन डोमिन्गो (San Domingo) की कहानी में मुख्य पात्र टूसों ओरट्योर (Toussaint l'Ouverture) था। उसने नेतृत्व और शासन की वास्तविक शक्तियाँ प्रकट कीं। उसके बारे में डा० फिशर (Dr. Fisher) ने लिखा है, "शुद्ध रक्त का एक मात्र वही ऐसा हब्शी हुआ है जिसने कभी राजनेता के गुणों को प्रकट किया है।" उसने द्वीप को अपने नियन्त्रण में किया, देश में शान्ति स्थापित की, शासन और व्यापार के क्षेत्र में सुधार किए। उसने राज्य के लिए एक संविधान बनाया जिसमें प्राणदंड तक की शक्ति अपने हाथों में रखी और फ्रांस की सत्ता को बिलकुल शून्य कर दिया। वास्तव में वह "सैन डोमिन्गो का बोनापार्ट" (Bonaparte of San Domingo) था। नेपोलियन ने इस व्यक्ति के दाँत खट्टे करने की सोची। उसने लेकलर्क (Leclerc) की अधीनता में २५,००० सिपाहियों और ५० लड़ाकू जहाजों का दस्ता वहाँ फ्रांस की प्रभुता स्थापित करने के लिए भेजा। टूसों (Toussaint) को धोखे से गिरफ्तार कर लिया गया और फ्रांस भेज दिया गया। वह वहाँ दुर्व्यवहार और जलवायु के कारण मर गया। लेकिन वेस्ट इण्डिया का जलवायु फ्रांसीसी सेना के प्रतिकूल पड़ा। लेकलर्क की मृत्यु हो गई और १२ महीनों के अन्दर केवल ८,००० सैनिक ही बचे रहे। लेकिन टूसों के सहायकों और अंग्रेजों से वे भी अपनी रक्षा नहीं कर सके। दिसम्बर १८०३ में यह द्वीप खाली कर दिया गया। सेंट हेलना में नेपोलियन ने यह स्वीकार किया था कि सैन डोमिन्गो के सम्बन्ध में उसकी नीति बिलकुल गलत रही थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की लेकिन इस प्रयत्न में उसके तीस हज़ार आदमी, २० सेनापति, जिनमें उसका बहनोई—पॉलिन (Pauline) का पति लेकलर्क (Leclerc) भी शामिल था—मारे गये। उसने स्पेन को लुइसियाना (Louisiana) देने के लिए बाध्य किया। लेकिन अमेरिका के विरोध करने पर उसने उसे तुरन्त ही यूनाइटेड स्टेट्स को बेच दिया। उसने भारत में देशी हितों और फ्रेंच हितों के बीच सन्धि करने की और इंग्लैंड के प्रति विरोध जाग्रत करने की कोशिश की। उसने एक राजनीतिक-वैज्ञानिक दल (politico-scientific expedition) आस्ट्रेलिया भेजा। लेकिन नेपोलियन को यूरोप के मामलों से इतनी फ़ुर्सत नहीं मिली कि वह इस क्षेत्र में अपनी योजनाएँ पूरी कर पाता।

औपनिवेशिक योजनाएँ

लेकिन ब्रूमेयर के राज्योत्क्षेपण (Coup d' etat of Brumaire) के ढाई साल के भीतर ही नेपोलियन ने इंग्लैंड के साथ शान्ति-सन्धि की जो १७९३ में लड़ाई शुरू होने के बाद की गई थी।

१८०० में ज़ार पॉल (Tsar Paul) दूसरे गुट से निकल गया था। उसका इंग्लैंड के साथ मतभेद हो गया था और उसने इंग्लैंड की नौ-शक्ति के विरोध में दूसरी सशस्त्र तटस्थता (Armed Neutrality) बना ली थी।[1] लेकिन मार्च १८०१ में ज़ार पॉल (Tsar Paul) की हत्या होने और नेल्सन (Nelson) द्वारा कोपेनहेगेन (Copenhagen) में डेन्मार्क के जहाजी बेड़े के विनाश के कारण यह सशस्त्र तटस्थता भंग हो गई। इंग्लैंड लड़ाई से तंग आ गया था। पिट (Pitt) के बाद एडिंगटन (Addington) का मन्त्रिमण्डल बना था। वह दुर्बल था और लड़ाई को जारी रखने के पक्ष में नहीं था। नेपोलियन भी राष्ट्रीय कार्यों और समुद्र पार की योजनाओं में व्यस्त रहने के कारण शान्ति चाहता था। शांतिकाल में वह इंग्लैंड के टक्कर की नौ-सेना तैयार करने को उत्सुक था। इस तरह मार्च १८०२ में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच अमीन्स (Amiens) की सन्धि हुई। इंग्लैंड में इस सन्धि से प्रसन्नता तो सबको हुई, लेकिन अभिमान किसी को नहीं हुआ। इंग्लैंड ने श्रीलंका (Ceylon) और ट्रिनिडाड (Trinidad) छोड़कर अपनी समस्त औपनिवेशिक विजयें त्याग दीं। उसने माल्टा नाइट्स ऑफ़ सेंट जॉन (Knights of St. John) को देना और मिनोर्का (Minorca) स्पेन को देना स्वीकार किया। उसने फ्रांस की राजकीय उपाधि (Royal title of France) छोड़ना भी स्वीकार कर लिया। यह उपाधि एडवर्ड तृतीय (Edward III) के समय से चली आ रही थी और एक असंगतिमात्र थी। नेपोलियन ने मिस्र, जहाँ एबरक्रोम्बी (Abercromby) ने उसकी सेना को अभी हराया था, और नेपिल्स तथा पुर्तगाल छोड़ना स्वीकार किया। लेकिन नेपोलियन इन दोनों को बड़ी आसानी से जीत सकता था क्योंकि उनके अधिकांश प्रायद्वीप पर उसका अधिकार था।

इंग्लैण्ड के साथ संधि

---

१. पहली सशस्त्र तटस्थता १७८० में अमेरिकी स्वातंत्र्य-युद्ध के समय बनी थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन, इस समय नेपोलियन की विदेश नीति और उसकी समस्त राजनीतिक विजयों से भी ज्यादा महत्त्व के सुधार थे जो उसने फ्रांस के आन्तरिक शासन में किये। नेपोलियन स्वयं प्रवीणता, उद्यमशीलता और ईमानदारी का उदाहरण था। उसने प्रशासन में भी इन चीजों की माँग की और इनकी स्थापना की। एक अधिकारी ने लिखा था, "हमारे चिंतन के स्वभाव तक में आमूल परिवर्तन हो गया।" पिट की भाँति नेपोलियन ने भी ठेकेदारों के अनुचित मुनाफों और सार्वजनिक सेवाओं के भ्रष्टाचारों को दूर करने का प्रयास किया। उसने सट्टेबाजी रोकी, श्रेष्ठि चत्वरों (Stock Exchanges) पर नियन्त्रण स्थापित किया और फ्रांस के बैंक (Bank of France) की स्थापना की। उसने एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की स्थापना की जिसमें विभिन्न दर्जे के स्कूल थे और छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती थीं।

फ्रांस का संगठन

वित्त और शिक्षा

नेपोलियन ने राजा के समय के और क्रांति के समय के दोनों प्रकार के अनुभवों से लाभ उठाया। नये नौकरशाही स्थानीय शासन में उसने पुरातन शासन-व्यवस्था का केन्द्रीकरण स्थापित किया। कम्यून के मेयर से लेकर डिपार्टमेंट के प्रिफेक्ट तक स्थानीय प्रशासन के समस्त अभिकर्त्ता बूरबन राजाओं के इंटेंडेंटों (intendants) की भाँति ही केन्द्रीय सरकार की अधीनता में रहते थे।[1]

स्थानीय शासन

राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने एकाधिकारी वाणिज्य संघों (monopolistic trade guilds) का अन्त कर दिया था। नेपोलियन ने उन्हें फिर से स्थापित नहीं किया और इस प्रकार क्रान्तिकाल में भूमि-व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले जो छोटे-मोटे हित पैदा हो गये थे, वे यथावत् बने रहे। उसने किसानों से इस बात की माँग नहीं की कि वे अपनी वह जमीन छोड़ दें, जो उन्होंने पादरियों या कुलीनों से नाममात्र के मूल्य पर खरीदी थी।

भूमि की व्यवस्था

नेपोलियन ने बेरोजगारों को काम देने की यथासम्भव चेष्टा की। "बहुत से मोची, हैट बनाने वाले, दरजी और जीन बनाने वाले बेरोजगार हैं, पाँच सौ जोड़ी जूते रोज बनने चाहिएँ।" फिर यह आदेश निकाल दीजिये कि "सेंट-एंटोइन (Saint Antoine) के दो हजार मजदूरों को कुर्सियों और मेज की दराजें बनानी हैं।" नेपोलियन ने इसलिए पेरिस में नगर आयोजन (town planning) की बहुत-सी योजनाएँ कार्यान्वित की थीं। "हमें काम देना है.....ओर्क नहर के निर्माण का काम जारी रखो। इसके साथ ही साथ क्वाइ डीसेक्स (Quai Desaix) बनाने और गलियों को तैयार करने का भी काम जारी रखिये।" नेपोलियन यह भी चाहता था कि पेरिस यूरोप का कला-केन्द्र बन जाये जिससे कि फ्रांसीसी अपनी राजधानी को

पेरिस की सौन्दर्य-वृद्धि

---

१. उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस की राजनैतिक स्थिरता की दृष्टि से यह अच्छी बात थी कि शासन में परिवर्तन होने के साथ-साथ वे नहीं बदल जाते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर अभिमान और सौन्दर्य की अपनी प्रवृत्तियों को संतुष्ट कर सकें। यही कारण था कि वह फ्रांस को सजाने के लिए इटली से बहुत-सी कलाकृतियाँ ले आया था। इसी कारण उसने साहित्य और कला को प्रोत्साहन दिया। "दस सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों, मूर्तिकारो, कवियों, संगीतज्ञों, शिल्पकारों और अन्य कलाकारों की सूचियाँ बनानी थीं। लोगों को शिकायत है कि हमारे पास साहित्य नहीं है, यह गृहमंत्री की गलती है।" चित्रकारों से कहा गया कि वे फ्रांस की विजयों से प्रेरणा ग्रहण करें। कवियों को सलाह दी गई कि वे फ्रांस के ऐतिहासिक मिशन पर कविताएँ लिखें। लेकिन पूर्ववर्ती बूरबन शासकों की भाँति नेपोलियन का भी यह विचार था कि कला राजनीति की अनुचरी होनी चाहिए। इस काल में इंग्लैंड और फ्रांस ने तो जहाँ श्रेष्ठ साहित्य का सृजन किया, फ्रांस समस्त प्रोत्साहन के बावजूद केवल दो ही उच्चकोटि के साहित्यकार—चेटेब्रिएंड (Chateaubriand) और मैडेम डी स्टेल (Mme de Stael) ही पैदा कर सका था। लेकिन, ये दोनों ही साहित्यकार नेपोलियन के क्रोध-भाजन थे।

सम्मान-सूचक उपाधियाँ

नेपोलियन ने इसी उद्देश्य से कुछ सम्मानसूचक उपाधियाँ भी देना प्रारम्भ किया। "फ्रांसीसी केवल एक ही भावना, सम्मान-प्रेम से बहुत ज्यादा प्रभावित होते हैं। यह एक नये प्रकार का धन है जिसका मूल्य चालू मुद्रा से भिन्न है। यह अक्षत भी है।" खिलौने ? हाँ, लेकिन "मनुष्य खिलौनों से आगे बढ़ते हैं।"

नेपोलियन की विधान-संहिता

लेकिन, नेपोलियन के राजनेतृत्व के दो सबसे बड़े स्मारक हैं—नेपोलियन की विधान-संहिता (Code Nepoleon) और कान्कोर्डेट (Concordat)। पुरातन शासन-व्यवस्था की एक बड़ी बुराई यह थी कि उसमें किसी एकरूप विधान-संहिता का अभाव था। क्रांतिकाल की सभाओं ने यद्यपि पाँच प्रारूपों को तैयार किया था, लेकिन उनमें से कोई भी कार्यान्वित नहीं किया गया था। नेपोलियन ने इस कार्य को सबसे पहले अपने हाथ में लिया। नेपोलियन विधान-संहिता (Code Napoleon) १८०४ में कार्यान्वित हो गई। वह कानूनी सिद्धान्तों का एक संक्षिप्त संग्रह है। वह अब भी फ्रांस का कानून है। वह सिद्धान्त पर नहीं, प्रत्युत व्यावहारिक बुद्धि और अनुभव पर आधारित थी। इसके अन्दर किसी तरह का राजनीतिक या धार्मिक पक्षपात नहीं किया गया था। इसमें धार्मिक सहिष्णुता और न्याय की गारंटी थी। इसमें नागरिक विवाह (civil marriage) और विवाह-विच्छेद का उपबन्ध था। इसमें पारिवारिक जीवन के महत्त्व, पिता की सत्ता और व्यक्तिगत सम्पत्ति की पवित्रता पर बल दिया गया था। नेपोलियन का विचार था कि "सभी स्त्रियाँ दास हैं", अतः उसके विधान ने स्त्रियों की अधीनता पर भी बल दिया था।

कोन्कोर्डेट

नेपोलियन सिद्धान्तवादिता से कितना स्वतंत्र रहता था, कोन्कोर्डेट (Concordat) इसका एक और प्रमाण है। रोमन चर्च (Roman Church) क्रान्ति के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा रहा था। नेपोलियन का स्वयं अपना कोई धर्म नहीं था। हाँ, यह अवश्य है कि वह चर्च की घंटी सुनकर या तारों भरे आकाश को देखकर रहस्य का कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभास अवश्य पाता था। उसका धर्म इसी रहस्याभास तक ही सीमित था। उसका कहना था, "लोग कहेंगे कि मैं पोपवादी हूँ। मैं ऐसा कुछ नहीं हूँ। मैं मिस्र में मुसलमान था। मैं यहाँ जनता की भलाई के लिए कैथोलिक हो जाऊँगा।"

आध्यात्मिक या दार्शनिक विचारों के क्षेत्र में नैपोलियन की सीमाएँ निश्चित रूप से सीमित थीं। उसके लिए धर्म केवल एक उपयोगी राजनीतिक साधन, राष्ट्र की कल्पना को आकृष्ट करने वाला केन्द्र, सामाजिक सीमेंट और एक अभय दीप (safety valve) था। उसका मत था, "लोगों के पास धर्म होना चाहिए और धर्म सरकार के हाथों में रहना चाहिए।" इस समय फ्रांस का धर्म सरकार के शत्रुओं के हाथों में था। नेपोलियन ने कहा था, "इंग्लैंड की अधीनता में रहने वाले ५० प्रवासी बिशप फ्रांस के पादरी वर्ग के वर्तमान नेता हैं।" इसलिए, फ्रांस में भी धार्मिक विचारों की प्रधानता स्थापित की गई। नेपोलियन ने पोप के साथ एक समझौता किया। इस समझौते के द्वारा नेपोलियन ने पादरियों का अविवाहित रहना, बिशपों की पोप द्वारा दीक्षा और धार्मिक कानून (Canon law) को फिर से स्थापित करना स्वीकार किया। दूसरी ओर पोप ने यह स्वीकार किया कि राज्य पादरियों को वेतन दे सकता है। उसने क्रान्ति-काल में की गई भूमि-व्यवस्था पर भी अपनी मंजूरी दी।

नेपोलियन के कार्य का मूल कुछ तो पुरातन शासन-व्यवस्था में और कुछ क्रान्ति में पाया जा सकता है। उसने "पुरातन शासन-व्यवस्था को संगठित किया"; उसने "क्रान्ति को दृढ़ किया।"—ये दोनों ही कथन सही हैं। इसका कारण यह है कि इन दोनों ही कालों में कुछ वास्तविक अविच्छिन्नता थी। नेपोलियन ने दोनों की ही कुछ आधारभूत राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को अपनाया था। नेपोलियन ने सामंतवाद का विनाश किया, वित्तीय क्षेत्र में स्थिरता स्थापित की, लोगों को पद प्रतिभा के आधार पर दिए, किसानों ने कुलीनों और पादरियों की जिन जमीनों पर अधिकार कर लिया था, वे उनके पास ही बनी रहने दीं और मध्यमवर्ग को सामाजिक और नागरिक एकता प्रदान की। उसने क्रान्ति के कार्य को जीवित रखने के लिए यह किया। क्रान्ति के सह-उत्तराधिकारियों (Co-heirs)—किसानों और मध्यम वर्गों ने जो कुछ विरासत में प्राप्त किया था, वह उनके पास ही अक्षत रूप से बना रहा। लेकिन, उसने इससे भी कुछ अधिक किया। वह फ्रांस के पुराने राजाओं की भाँति राष्ट्र की एकता का प्रतीक था। उसने देश में वह व्यवस्था भी स्थापित की जिसका पुरातन शासन-व्यवस्था में अभाव रहा था और जिसके लिए क्रान्ति के नेता सदैव प्रयत्नशील रहे थे। नेपोलियन ने फ्रांसीसियों को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तो गौरव और राष्ट्रीय क्षेत्र में संगठन प्रदान किया। फ्रांसीसी इन दोनों ही वस्तुओं के प्रबल इच्छुक थे। नेपोलियन ने फ्रांसीसियों को राजनीतिक स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया। लेकिन, इसको वे कभी चाहते भी नहीं थे। अतः, उन्होंने नेपोलियन के इस कार्य को क्षमा कर दिया।

ब्रूमेयर के राज्य-परिवर्तन (Coup d'etat of Brumaire) के बाद बहुत से लोगों को यह आशा थी कि नेपोलियन बूरबन शासकों को फिर फ्रांस में ले आयेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावी लुई अठारहवें ने इस सम्बन्ध में उसे तीन बार लिखा था लेकिन उसे केवल यही उत्तर मिला, "मैं आपके निवृत्ति-काल की प्रसन्नता और भलाई के लिए अपनी शक्ति-भर जो कुछ कर सकता हूँ, सहर्ष करूँगा।" नेपोलियन को उन राजकुमारों से घृणा थी जो लुक-छिप कर रहते थे। उस व्यक्ति ने, जो १७९९ में अंग्रेजी जहाजी बेड़े में बैठकर फ्रांस आया था, घृणापूर्वक यह कहा था, "उन्हें पहला अवसर मिलते ही फ्रांस वापस आ जाना चाहिए था।"

राजतंत्रवादियों ने निराश होकर नेपोलियन की हत्या के षड्यन्त्र रचने प्रारम्भ कर दिए। नेपोलियन बड़े दिन नाट्यशाला में संगीत सुनने के लिए जा रहा था। रास्ते में एक बम फूटा जिसकी वजह से बीस आदमी मर गये। लेकिन नेपोलियन ने अपना क्रोध राजतन्त्रवादियों (Royalists) के ऊपर नहीं, प्रत्युत जैकोबिन्स के ऊपर उतारा। यह उसकी राजनीतिक चाल थी। वह जैकोबिन्स से तो डरता था, लेकिन राजतन्त्रवादियों को अपने पक्ष में करना चाहता था। उसने कहा था, "मैं ऐसे षड्यन्त्रकारी से नहीं डरता जो ९ बजे उठता है और एक स्वच्छ कमीज पहन लेता है।" उसने १३० जैकोबिन्स को देशनिकाला दे दिया और ६० समाचारपत्रों को बन्द कर दिया।

षड्यन्त्र

इसके कुछ समय बाद उसके गुप्तचरों ने उसके पास फिर यह समाचार पहुँचाया कि अब की बार उसको पदच्युत करने और राजतन्त्र को सत्तारूढ़ करने के लिए ज्यादा बड़े पैमाने पर षड्यन्त्र तैयार किया गया है। इस षड्यन्त्र का केन्द्र कॉम्टे डी आर्टोयस (Comte d'Artois) था। षड्यन्त्र में हालैंड का विजेता पिशेग्रू (Pichegru) जैकोबिन्स मोरे (Moreau), विक्टर ऑफ होहेनलिंडेन (Victor of Hohenlinden) और जार्ज कैडौडल (George Cadoudal) आदि व्यक्ति भी सम्मिलित थे। जब नेपोलियन को इस षड्यन्त्र का पता चला, उसने जार्ज कैडौडल तथा बारह अन्य षड्यन्त्रकारियों की हत्या करवा दी। पिशेग्रू (Pichegru) शायद अपने ही हाथों से जेल में मर गया। मोरे (Moreau) को अमेरिका में देशनिकाला दे दिया गया।

इसके बाद नेपोलियन ने षड्यन्त्रकारियों को कठोरता से अन्यायपूर्वक दण्ड दिया। मुकद्दमे की सुनवाई के समय बूरबन वंश के एक दूर के राजकुमार ड्यूक डी एंघीन (Duc d'Enghien) का प्रसंग आया था। यह व्यक्ति राइन के सीमांत के ज़रा पार ही रहता था। नेपोलियन ने उसका वहाँ से अपहरण कराकर उसे विंसेनीज (Vincennes) में मँगा लिया। वहाँ उसके मुकद्दमे का आडम्बर किया गया। सुबह २-३० बजे उसके आने के चार घण्टे के भीतर ही उसे गोली मार दी गई और पहले से ही तैयार की गई कब्र में डाल दिया गया। चाहे तो यह राज-परिवार को एक सबक सिखाने के लिए किया गया हो, चाहे आतंक पैदा करने का एक उपाय हो और चाहे नेपोलियन के पतन की आशा में टेलीरैंड (Talleyrand) की प्रेरणा पर किया गया हो, यह एक भयंकर अप-

ड्यूक डी एंघीन की हत्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राध और भूल थी। इस घटना से यूरोप को धक्का पहुँचा और उसके शत्रुओं को बहाना मिल गया। इसके परिणामस्वरूप सेंट पीटर्सबर्ग के राजदरबार ने शोक मनाया, प्रशा रूस की ओर मुड़ा, आस्ट्रिया को फ्रांस के विरुद्ध एक आरोप और मिल गया। इंग्लैंड ने तीसरे गुट (Third Coalition) का निर्माण प्रारम्भ कर दिया।

इसका एक परिणाम और हुआ। नेपोलियन ने राजोचित अभिमान से कहा था, "वे मेरा वध कर क्रान्ति का विनाश करना चाहते हैं। मैं फ्रेंच क्रान्ति हूँ और मुझे उसकी रक्षा करनी है।" क्रान्ति को बनाए रखने की चेष्टा में उसने गणराज्य का अन्त कर दिया। जो राजतन्त्री षड्यन्त्रकारी फ्रांस को एक राजा देना चाहते थे, उन्होंने फ्रांस को केवल एक सम्राट् दिया। १८०२ में नेपोलियन जीवन-भर के लिए कान्सल बन गया था और उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने की शक्ति प्राप्त हो गई थी। मार्च १८०४ में उसने फ्रांसीसियों के सम्राट् (Emperor of the French) की उपाधि धारण की। उसका कहना था, "राजा का नाम पुराना पड़ गया है। उसके साथ पुराने विचार जुड़े हुए हैं और वह मुझे केवल मृत व्यक्तियों के गौरव का ही उत्तराधिकारी बनायेगा। सम्राट् की उपाधि राजा की उपाधि से बड़ी है। उसके महत्त्व का पूर्णरूप से बखान नहीं किया जा सकता। अतः वह कल्पना को उत्तेजित करता है।" चर्च के साथ किये गए समझौते की भाँति ही सम्राट् की उपाधि भी एक राजनीतिक चाल थी जिसका नेपोलियन शासन-क्षेत्र में प्रयोग करना चाहता था। राज्याभिषेक के समय आशीर्वाद देने के लिये पोप को भी पेरिस बुलाया गया। लेकिन अन्तिम क्षण में सम्राट् ने राजमुकुट स्वयं अपने हाथों से ही अपने सर पर रख लिया। इस तरह, उसने राज्याभिषेक के संस्कार में ही पोप का अपमान किया।

नेपोलियन का सम्राट् बनना

जिस तरह फ्रांस ने ब्रूमेयर का राज्य-परिवर्तन स्वीकार कर लिया था, उसी तरह उसने प्रायः सर्वसम्मति से साम्राज्य भी स्वीकार कर लिया। नेपोलियन ने विदेशी की भाँति ही, जैसा कि वह था भी, कहा था, "तुम फ्रांसीसी राजतन्त्र को पसन्द करते हो।" नेपोलियन के सम्राट् बनने का केवल कुछ ही लोगों ने विरोध किया। क्रान्तिकारी सेनापतियों में से अब केवल कार्नट (Carnot) ही बचा था। वह नेपोलियन के सामने नहीं झुका और उसने स्वेच्छा से देश छोड़ दिया। राज्याभिषेक की पहली रात को पेरिस की दीवारों पर एक पोस्टर छपा दिखाई दिया जिसमें लिखा था, "फ्रेंच क्रान्ति का अन्तिम प्रतिनिधित्व—निर्धन कोर्सिकन परिवार के लाभ के लिए।" विएना में सबसे बड़े संगीतज्ञ ने Symphony Eroica के समर्पण को फाड़ डाला।

नेपोलियन ने सम्राट् बनने पर कुछ और भी किया। वास्तव में वह फ्रांस का अधिपति और शार्लमेन (Charlemagne) का अभिषिक्त उत्तराधिकारी था। लोकतन्त्र ने अपनी अनुभवहीनता और असमर्थता में अपने लिए राजतन्त्र से भी बृहत्तर जिस निरंकुशता की स्थापना की थी, नेपोलियन उसका प्रतीक था। लेकिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब स्वयं उसके जीवन इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हो गया था। इसके साथ ही कुछ नई समस्याएँ और पृष्ठभूमि उठ खड़ी हुई थीं। सेनापति युद्ध-क्षेत्र में अपने सैनिकों को प्रेरणा दे रहा हो, अपने युद्ध मानचित्रों का अनुशीलन कर रहा हो, कैम्पफायर के सामने अपने साथियों सहित विश्राम कर रहा हो, राज्य-परिषद् के अध्यक्ष को कुछ लिखा रहा हो, उसके साथ बहस कर रहा हो, विश्लेषण कर रहा हो, और योग्यता से एक साथ कई विषयों पर विचार कर रहा हो, इस तस्वीर के साथ ही संकोची राज-दरबार और कलहपूर्ण परिवार के बीच नीरस तबीयत के एक सम्राट् की तस्वीर भी जोड़ देनी चाहिए। किसको संदेह हो सकता है कि इनमें से कौनसी तस्वीर बढ़िया थी या नेपोलियन की शक्ति वास्तव में किसके आधार पर टिकी हुई थी ?

सम्राट् का दरबार भी होना चाहिए। मैडेम डी केम्पन (Mme de Campan) को अपनी अकादमी से इसलिए बुलाया गया कि वह फ्रांस की स्वर्गीय महारानी की भाँति सम्राज्ञी जोज़ेफाइन के फैशन का इन्तजाम करे। मैडेम डी रेमुसट (Mme de Remusat) प्रधान परिचारिका बनी। उसके संस्मरणों से नेपोलियन के जीवन पर काफी प्रकाश पड़ता है। गणराज्य के सेनापति साम्राज्य के मार्शल हो गये। नेपोलियन के भाई बड़े-बड़े शासक और बहनें रानियाँ बन गईं। पूर्वता (Precedence) और उत्तराधिकारी के प्रश्न पर कुछ विवाद हुए। शायद सम्राज्ञी को तलाक़ दिया जाये लेकिन इसी बीच नेपोलियन के भाई को जोज़ेफाइन की पहले पति से उत्पन्न लड़की से शादी करनी चाहिए यद्यपि दोनों के हृदय कहीं और थे। ल्यूसियन (Lucien) ने एक प्रतिष्ठाहीन महिला से विवाह कर लिया और उसे छोड़ना स्वीकार नहीं किया। इस पर उसे देशनिकाला दे दिया गया। जेरोम (Jerome) का बाल्टीमोर (Baltimore) की मिस पैटरसन (Miss Patterson) नामक एक महिला से सम्बन्ध हो गया था। अतः, परिवार में उसको तिरस्कृत कर दिया गया। जोज़ेफाइन अपने नये रोल में बहुत खुश थी। उसके २५० तो हैट और ७०० पोशाकें थीं। वह फ्रांस की स्वर्गीय महारानी से भी ज्यादा खर्च करती थी। शायद इनमें सबसे बुद्धिमान् नेपोलियन की मितव्ययी माँ थी। उसने केवल "Pourvou que cela doure" कहा और वह दुर्दिनों के लिए जो कुछ बचा सकती थी, उसने बचा लिया।

३. यूरोप की प्रभुता के लिए प्रयास (१८०४-९)
(The Bid for the Mastery of Europe, 1804-9)

युद्ध का फिर से आरम्भ (१८०३)

मई १८०३ में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच लड़ाई फिर से प्रारम्भ हो गई। इससे न केवल नेपोलियन यूरोप के साथ एक ऐसे संघर्ष में फँस गया जिसका अन्त उसकी पराजय के साथ ही हुआ, प्रत्युत इससे अमेरिका, अफ्रीका, भारत और आस्ट्रेलिया के इतिहास के प्रवाह के ऊपर भी प्रभाव पड़ा।

फ्रांस राइन तक पहले से ही फैला हुआ था। १८०२ में उसने पीडमोंट,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Piedmont), पार्मा (Parma) और एल्बा (Elba) को भी जीत लिया था। हालैण्ड और स्विट्जरलैण्ड की स्थिति अधीनस्थ राज्यों की सी ही थी, स्पेन कर देता ही था। पुर्तगाल और नैपिल्स इतने दुर्बल थे कि वे स्वतन्त्र नहीं रह सकते थे। लुइसिआना (Louisiana) तथा अन्य पश्चिमी द्वीपों (West Indian Islands) ने उसे मध्य अमेरिका पर नियन्त्रण स्थापित करने की आशा दिला रखी थी। यदि आस्ट्रेलिया सम्बन्धी योजना को शांति से पूरा किया जाता, तो संभवतः उसका भी बहुत-सा भाग फ्रांस की अधीनता में आ सकता था। आशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) और मौरीशस (Mauritius) उसे ऐसा आधार देते थे जहाँ से वह भारत को धमका सकता था। तुर्की साम्राज्य वैसे ही लड़खड़ा रहा था। यदि वहाँ सावधानी से हस्तक्षेप किया जाता, तो फ्रांस को मोरिया या सीरिया या मिस्र अवश्य ही मिल सकते थे। औपनिवेशिक साम्राज्य और विश्व बाजारों की बुनियादें पड़ चुकी थीं। उनका इंग्लैंड का गर्व भंग करने के लिए विकास किया जा सकता था। नेपोलियन जीवन भर के लिए कॉन्सल तथा इटली गणराज्य का प्रधान था। एक वर्ष से कुछ अधिक समय में ही वह सम्राट् बनने को था। इस समय उसे युद्ध से ऐसा क्या मिल सकता था जिसे वह शान्ति से नहीं पा सकता था? युद्ध से उसे केवल यही सन्तोष मिल सकता था कि वह एक ऐसे देश पर सैनिक और राजनीतिक विजय पा ले जिसने उसकी शक्ति प्राप्ति की इच्छा में सदैव रोड़े अटकाये थे। इसके लिए उसे अपने लाभों का मूलतत्त्व और समुद्रपार की योजनाओं को त्यागना पड़ा।

नेपोलियन की कुछ महत्तम योजनाओं का अवरोध

आमीन्स की सन्धि (Peace of Amiens) केवल युद्ध विराममात्र थी। इसमें फ्रांस की आक्रामक नीति पर कोई बंधन नहीं लगा था। दोनों की मूलबद्ध प्रतिद्वंद्विता में कोई कमी नहीं आई थी। इंग्लैंड के नेपोलियन के ऊपर जो संदेह थे, १८०३ में उसकी शक्ति-वृद्धि से वे और पुष्ट हो गए। नेपोलियन ने इटली पर अधिकार किया और स्विट्ज़रलैण्ड के मामले में बड़ी बुद्धिमत्ता से हस्तक्षेप किया। फ्रांस के बन्दरगाहों ने इंग्लैण्ड के सामान का बहिष्कार कर दिया। हालैण्ड पर फ्रांस का आधिपत्य बने रहना, सैन डोमिन्गो का अभियान, लुइसिआना की प्राप्ति, इंग्लैण्ड इन सबको बड़े अविश्वास की दृष्टि से देखता था। फ्रांस की भारत अभियान की तैयारी, तुर्की-विजय की योजनाएँ और भूमध्यसागर की महत्त्वाकांक्षाएँ—इंग्लैंड इन सबसे सशंकित था। नेपोलियन ने जार से भी कुछ राजनीतिक वार्ता की थी। कोलोनल सेबास्टिआनी (Colonel Sebastiani) ने अल्जीरिया, मिस्र, सीरिया और अयोनियन द्वीपों की यात्रा की रिपोर्ट जनवरी १८०३ में प्रकाशित कर दी थी। इस रिपोर्ट में युद्ध के स्पष्ट रूप से संकेत दिये गए थे। इसमें कहा गया था कि लेवन्त (Levant) में फ्रांसीसी बहुत लोकप्रिय हैं और मिस्र को बड़ी आसानी से जीता जा सकता है। इस अप्रत्याशित आक्रामक नीति को रोकने के लिए, मिस्र और भारत के रास्ते की रक्षा

फ्रांस की आक्रामक नीति पर कोई बंधन नहीं लगा था। कारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए और तुर्की की प्रार्थना पर इंग्लैण्ड ने यह निश्चय किया कि वह फ्रांस को उस समय तक माल्टा नहीं देगा जब तक कि उसे नेपोलियन के इरादों के सम्बन्ध में आश्वासन न मिल जाए। नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के ऊपर नुरन्त आरोप लगाया कि उसने आमीन्स की सन्धि का उल्लंघन किया है। इंग्लैण्ड ने माल्टा अपने पास ही रखा। इसे नेपोलियन ने युद्ध घोषित करने का पर्याप्त कारण (*Casus belli*) ठहराया। वह इस बात की पहले ही शिकायत कर चुका था कि इंग्लैंड के समाचार-पत्रों में उसके ऊपर भद्दे आक्रमण किये जा रहे हैं और इंग्लैंड बूरबनों एवं अन्य फ्रांसीसी प्रवासियों को आश्रय दे रहा है। सैन डोमिन्गो (San Domingo) अभियान की सफलता ने उसे युद्ध के लिए और भी उत्तेजित कर दिया था। इसके अतिरिक्त नेपोलियन ने आँग्ल-अमेरिकी सन्धि के भय से लुइसिआना चुपचाप अमेरिका को दे दिया था। वह अपने इस कायरतापूर्ण कृत्य को भी ढक देना चाहता था। ऐसे बहुत-से व्यक्तियों की भाँति, जो निम्नतम स्थिति से उच्चतम स्थिति तक पहुँचे हों, उसका भी यह विचार था कि शासन की स्थिरता के लिए लड़ाई जरूरी है। उसने कहा था, "मेरा साम्राज्य, अन्दर-बाहर भय के ऊपर ही टिका हुआ है।" इसके अतिरिक्त यह भी निर्विवाद है कि इस बीच में नेपोलियन का चारित्रिक पतन होने लगा था। अब यदि उसका जरा भी विरोध होता, तो वह अधीरता से झुँझला उठता था। इससे प्रकट होता है कि नेपोलियन का राजनीतिक सन्तुलन नष्ट होने लगा था और उसकी राजनीतिक अन्तर्दृष्टि क्षीण पड़ गई थी।

१६ मई, १८०३ को लड़ाई की घोषणा हुई। नेपोलियन अभी इसके लिए पूरी तरह तैयार नहीं था। नेपोलियन ने इसको स्थगित करने का प्रयास किया, लेकिन वह सफल न हो सका। तब उसने हैनावर को जीत लिया, नैपिल्स में अपनी सेनाएँ एकत्रित कीं और उसे लुइसिआना के विक्रय से एवं लिगूरिअन तथा इटालियन गणराज्यों से कर रूप में जो कुछ धन मिला था, उसकी सहायता से इंग-लैंड के ऊपर आक्रमण करने की तैयारी की। उसने लड़ाई के खर्चे के लिए स्पेन से भी बहुत सा धन वसूल कर लिया था। नेपोलियन की इंग्लैंड के ऊपर आक्रमण करने की योजना बहुत रोचक और रहस्यपूर्ण थी। उसने अपनी सेनाएँ बोलोन (Boulogne) और उत्तरी तट पर खड़ी कर दीं। उसने नये-नये सैनिकों को भरती किया और उन्हें ऐसा प्रशिक्षण दिया कि वे यूरोप के सर्वश्रेष्ठ योद्धा बन गए। उसने नाविक तैयारियाँ भी बड़े जोर-शोर से प्रारम्भ कीं। उसने अच्छे-से-अच्छे जहाज और नौकाएँ तैयार करवाईं जिनके द्वारा सेनाओं को समुद्र पार करके इंग्लैण्ड में ले जाया जा सके। उसने बोलोन (Boulogne) का पत्तन चौड़ा किया और हालैंड व स्पेन की नौ-सेनाओं को अपनी सेना में ले लिया। उसने इस बात के लिए एक विस्तृत नाविक योजना तैयार की जिसके द्वारा फ्रांस के जहाजी बेड़े को चैनेल में लाया जाये और मिस्र, आयरलैंड तथा पश्चिमी द्वीपसमूह पर आक्रमण करके इंग्लैंड के जहाजी बेड़े को वहाँ से हटा दिया जाये।

इंग्लैण्ड पर आक्रमण की चेष्टा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंग्लैंड में भी इस समय अभूतपूर्व देशभक्ति का पारावार हिलोरें ले रहा था। स्वयंसेवकों को भरती किया गया, तट के किनारे-किनारे तोपें और सेनाएँ रखी गईं, प्रतिरक्षा की व्यवस्था को मजबूत किया गया और मार्टेलो की मीनारों को बनाया गया जो अब भी ससेक्स और केन्ट के तटों की सौन्दर्य-वृद्धि करती हैं। दक्षिण की काउन्टियों में खाद्य सम्बन्धी आवश्यक प्रयत्न किये गए। राज-परिवार को वोरकेस्टर (Worcester) तथा शस्त्रास्त्रों को वूलविच (Woolwich) से मिडलैंड हटाने की व्यवस्था की गई। इधर ब्रिटिश नौ-सेना ने ब्रेस्ट तथा तूलों के जहाजी बेड़ों को घेर लिया, शत्रु के जहाजों, फ्रेंच द्वीपों और डच उपनिवेशों पर अधिकार किया।

अठारह महीनों तक दोनों सशस्त्र विरोधी सेनाएँ चैनल के आर-पार आमने-सामने खड़ी रहीं लेकिन किसी ने भी चैनल को पार कर दूसरे से टक्कर लेने की कोशिश नहीं की। अन्त में अगस्त १८०५ में फ्रांस की सेना में हलचल पैदा हुई, लेकिन वह इंग्लैण्ड के विरुद्ध नहीं थी। नेपोलियन ने अचानक ही इंग्लैंड के ऊपर आक्रमण करने का विचार छोड़कर आस्ट्रिया के ऊपर आक्रमण करने का विचार किया। जब तक नेपोलियन के इस नये अभियान का समाचार प्रकाशित होता, उसकी सेना राइन तक पहुँच चुकी थी। इस तरह नेपोलियन इंगलिश चैनल को उस समय पार नहीं कर सका। उसकी यह मनोकामना दस साल बाद ही पूरी हो सकी थी जब कि बैलरोफोन (Bellerophon) उसे एक ऐच्छिक कैदी के रूप में, जो अपने दण्ड को सुनने की प्रतीक्षा में था, प्लाइमाउथ (Plymouth) ले गया था। नेपोलियन के इंग्लैंड पर आक्रमण करने के इरादे में चाहे कितनी गम्भीरता रही हो, उसकी सफलता की सम्भावनाएँ चाहे कुछ रही हों, चाहे इस योजना में उसका सनकीपन भी कितना रहा हो, यह निश्चित है कि नेपोलियन को इस विचार का परित्याग इंग्लैंड की नाविक शक्ति के कारण करना पड़ा था। आक्रमण की सफलता के लिए यह आवश्यक था कि नेपोलियन का कुछ समय के लिए समुद्र पर अधिकार हो जाए। लेकिन यह न हो सका। नेपोलियन की नाविक दुर्बलता ने उसे सदैव पराजित किया। लेकिन यह दुर्बलता संख्या की नहीं थी। नेपोलियन के पास स्पेन और हालैण्ड की काफी नौ-सेना थी। वास्तव में यह दुर्बलता टेकनीक, प्रशिक्षण और कमान की थी। विलेनेव (Villeneuve) नेल्सन की तुलना में कुछ नहीं था। लेकिन उस तक को अपने क्षेत्र में पूरी स्वतन्त्रता नहीं दी गई थी। नाविक अभियान की सफलता केवल ज्वारभाटे और हवा के रुख पर ही निर्भर नहीं थी, वह टेकनिकल अनुभव पर भी बहुत कुछ निर्भर थी। नेपोलियन को इस विषय में कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन फिर भी उसने उसे अपने नियंत्रण में रखा था। फ्रेंच नौ-सेना पर एक नाविक का नहीं प्रत्युत एक सिपाही का, जो नेपोलियन स्वयं था, नियंत्रण था।

नाविक दुर्बलता के कारण असफलता

विलेनेव (Villeneuve) की अन्तिम योजना यह थी कि वह अंग्रेजी जहाजी बेड़े को पश्चिमी द्वीपसमूह में अटकाकर वापस लौटे, ब्रेस्ट के जहाजी बेड़े में सम्मिलित हो, यह जहाजी बेड़ा भी घेरने वाले जहाजी बेड़े से बचकर निकल जाये और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चैनल की ओर बढ़े। लेकिन फ्रेंच सेनापति की यह योजना असफल हो गई। नेल्सन की सतर्कता और केल्डर (Calder) के साथ संघर्ष के फलस्वरूप फ्रेंच सेनापति १५ मार्च को पराजित हो गया और उसे कैडिज (Cadiz) के पत्तन में रुका रहना पड़ा। इस समाचार के मिलने पर नेपोलियन ने एक नया संघर्ष प्रारम्भ किया और "आर्मी ऑफ इंग्लैंड" को "ग्रांड आर्मी" के रूप में बदल दिया।

तीसरा गुट (१८०५)

इसी बीच में अप्रैल १८०४ में, पिट (Pitt) पुनः सत्तारूढ़ हो गया था और उसने फ्रांस के विरुद्ध एक तीसरा गुट (Third Coalition) बना लिया था। इस गुट में इंग्लैंड, आस्ट्रिया और रूस तथा दूसरी पंक्ति में स्वीडन और नेपिल्स सम्मिलित थे। नेपोलियन ने पहले से ही काफी उत्तेजना दे दी थी। ड्यूक डी एंघीन (Duc d'Enghien) की मृत्यु ने नये आदर्शवादी ज़ार एलैक्ज़ैंडर प्रथम (Alexander I) को नाराज कर दिया था। सम्राट की उपाधि को धारण करने से पवित्र रोमन सम्राट की प्रतिष्ठा को चुनौती पहुँची थी। नेपोलियन की एक्सलाशपल (Aix-la-chapelle) की आडम्बरपूर्ण यात्रा से यह ज्ञात हो गया था कि नेपोलियन का दिमाग किस दिशा में कार्य कर रहा है। इसने उस व्यक्ति की याद ताजा कर दी थी जिसने कैलेइस (Calais) से रोम तक और विस्के की खाड़ी से डैन्यूब तक शासन किया था। जून १८०५ में नेपोलियन ने जिनोआ को भी फ्रांस में मिला लिया, सिसेल्पाइन गणराज्य का अन्त किया, लोम्बार्डी का लोह-मुकुट अपने सर पर रखा और इटली के राजा की उपाधि (King of Italy) धारण की। इस पर, इंग्लैंड से सहायता के वचन मिलने पर आस्ट्रिया और रूस ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रशा तटस्थ बना रहा।

दूसरा शार्लमैन

फ्रांस ने आस्ट्रिया को बहुत तेजी और जल्दी से पराजित कर दिया। आस्ट्रिया की दो सेनाएँ मैदान में रखी गई थीं। बड़ी सेना इटली में आर्चड्यूक चार्ल्स (Archduke Charles) की अधीनता में थी और छोटी सेना जर्मनी में जनरल मैक (General Mack) की अधीनता में थी। नेपोलियन ने इटली की लड़ाई मैसना (Massena) और अपने सौतेले पुत्र यूजेन (Eugene) के ऊपर छोड़ दी। जर्मनी की लड़ाई को उसने स्वयं सम्हाला। इस बार उसने दक्षिण जर्मनी से विएना (Vienna) जाने की वही योजना अपनायी जिसे उसने १८०० में बनाया था। उसने २० अक्टूबर को राइन पार करने के तीन सप्ताह बाद उल्म (Ulm) में मैक (Mack) की सेना को घेर लिया और उसे हथियार डाल देने के लिए विवश किया। इधर आर्चड्यूक चार्ल्स (Archduke Charles) भी पराजित हो गया था। उसे विएना की रक्षा के लिए जल्दी ही बुलाया गया। लेकिन वह देर से पहुंचा और नवम्बर के बीच तक आधुनिक इतिहास में पहली बार आस्ट्रिया की राज-

आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ाई

उल्म (अक्टूबर, १८०५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धानी पर विदेशी शत्रु का अधिकार हो गया। उल्म की पराजय के अगले दिन ही ट्राफल्गर में मित्रदेशों की विजय हुई। इससे उनका हौसला बहुत ज्यादा बढ़ गया। अब फ्रांसिस द्वितीय (Francis II) भी ज़ार से जाकर मिल गया। ट्राफल्गर की लड़ाई में फ्रांस और स्पेन के जहाजी बेड़ों को नष्ट कर दिया गया था। इस लड़ाई ने नेपोलियन की इस आशा को सदैव के लिए नष्ट कर दिया था कि वह समुद्र पर कभी प्रभुता पा सकेगा। नैल्सन लड़ाई में आहत हो गया लेकिन उसने अपना काम अधूरा नहीं छोड़ा।

ट्राफल्गर (२१ अक्टूबर १८०५)

इससे आस्ट्रिया की प्रतिरोध-शक्ति कुछ और बढ़ गई। अब रूस की फौज भी मैदान में थी और ज़ार एलैक्जैंडर नेपोलियन को पराजित करने को बहुत उत्सुक था। मोरेविया (Moravia) के मैदान में ऑस्टरलिट्ज के रण-क्षेत्र में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में तीन सम्राट उपस्थित थे। २ दिसम्बर का दिन सबसे नये सम्राट के राज्याभिषेक की सालगिरह का दिन था। इस लड़ाई में नेपोलियन को ऐसी विजय प्राप्त हुई जैसी कि यूरोप ने उस समय से नहीं देखी थी जब कि मार्लबोरो (Marlborough) ने ब्लेनहिएम (Blenheim) में फ्रांस और बवेरिया की सेना को दो भागों में विभाजित कर दिया था। ज़ार अपनी सेना सहित पूर्व की ओर पीछे हटा और सम्राट फ्रांसिस ने तीसरी बार विजेता के सामने घुटने टेके। वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही प्रेसबर्ग की सन्धि हुई। इस सन्धि ने नेपोलियन की यशगाथा को एक कदम और आगे बढ़ाया। आस्ट्रिया को और कमजोर कर दिया गया। इटली में उससे वेनेशिया और डाल्मेशिया ले लिये गये। जर्मनी में उसे इस बात के लिए बाध्य किया गया कि वह टिरोल (Tyrol) तथा स्वाबिया (Swabia) का कुछ भाग बवेरिया (Bavaria) को दे दे। नेपोलियन दक्षिण जर्मनी के राज्यों को जानबूझकर शक्तिशाली बनाना चाहता था जिससे कि उनके और उसके बीच स्वतन्त्र सम्बन्ध पैदा हो जायें और आस्ट्रिया के ऊपर निरन्तर अंकुश रखा जा सके। बवेरिया (Bavaria) और वर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) को राज्यों का रूप दे दिया गया और बैडन (Baden) एक ग्रांड डची बन गया। तीन राजवंशीय विवाहों ने इस व्यवस्था को और मजबूत किया। यूजेन ब्यूहारनाइस (Eugene Beauharnais) और विटेल्सवाश (Wittelsbach) के बवेरियन वंश की एक लड़की का विवाह हुआ। जेरोम बोनापार्ट (Jerome Bonapart) जिसने, अपनी स्त्री को बाल्टीमोर से हटा दिया था, और वर्टेम्बर्ग की एक राजकुमारी के बीच विवाह हुआ। इसके अतिरिक्त जोजेफाइन की एक भतीजी और एक बेडानोज राजकुमार भी पाणिग्रहण सूत्र में बँधे।

आस्टरलिट्ज (दिसम्बर, १८०५)

प्रेसबर्ग की सन्धि (दिसम्बर, १८०५)

प्रेसबर्ग की सन्धि (Peace of Presburg) का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम जर्मनी का पुनर्निर्माण था। फ्रांसिस द्वितीय (Francis II) ने निर्वाचकीय साम्रा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यिक पदवी, जिसे हैप्सवर्ग-वंशीय शासक गत चार वर्षों से धारण करते आ रहे थे, त्याग दी थी और उसके स्थान पर "आस्ट्रिया के आनुवंशिक सम्राट" (Hereditary Emperor of Austria) की उपाधि ग्रहण कर ली थी। नेपोलियन इससे भी एक कदम आगे बढ़ा और उसने क्षीण 'पवित्र रोमन साम्राज्य' (Holy Roman Empire) को, जो अब न पवित्र रहा था, न रोमन रहा था और न साम्राज्य रहा था—नष्ट कर दिया यद्यपि आयु और इतिहास की दृष्टि से वह पूज्य रहा था। कुछ छोटे-छोटे राज्यों की स्वतन्त्र सत्ता को नष्ट कर दिया गया। दक्षिण और पश्चिम जर्मन के सोलह राज्यों का एक संघ बना दिया गया, जिसका नाम राइन राज्य संघ (Confederation of the Rhine) पड़ा। इस संघ के समस्त राज्य फ्रेंच सम्राट को कर देते थे और इसकी अधीनता में थे।

पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त

ऑस्टरलिट्ज (Austerlitz) के बाद पिट ने कहा था, "यूरोप के मानचित्र को बन्द कर दो। इसकी दस वर्षों तक आवश्यकता न होगी।" पिट की यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई, यद्यपि उसकी सत्यता को देखने के लिए वह स्वयं जीवित नहीं रह सका। नेपोलियन सचमुच ही शार्लमैन (Charlemagne) बन गया था। अब वह एक पश्चिमी साम्राज्य के, अपने संरक्षण और शासन में एक संघात्मक यूरोप के सपने देखने लगा था। नेपोलियन ने रूस को सदैव एक पूर्वी राष्ट्र माना था। उसने ऐक्सलाशपल (Aix-La-Chapelle) में कहा था, "यूरोप में तब तक शान्ति नहीं होगी जब तक कि सारा महाद्वीप एक शासक की अधीनता में नहीं आता।"[1] नेपोलियन के इस प्रकार के प्रकीर्ण विचारों को किसी निश्चित नीति का कथन नहीं माना जा सकता लेकिन १८७६ में उसने यूरोपीय राज्यों का जिस ढंग से वितरण किया था, उससे उसका आदर्श, सिद्धि के काफी निकट पहुँच गया था। यूजेन ब्यूहारनाइस (Eugene Beauharnais) इटली के राज्य में नेपोलियन का पहले से ही वायसराय था। जनरल मार्मन्ट इलीरिया के नए प्रान्तों में उसका प्रतिनिधि था। राजनीतिक कठोरता के प्रदर्शन के फलस्वरूप बूरबन के फर्डिनैंड (Ferdinand of Bourbon) और उसकी स्त्री कैरोलाइन (Caroline) को, जो मेरी एंटोइनेट (Marie Antoinette) की बहन थी, अंग्रेजी जहाजों को आश्रय देने के अपराध में नेपिल्स से बाहर कर दिया गया था। नेपोलियन ने उनके स्थान पर जोजेफ बोनापार्ट (Joseph Bonaparte) को नैपिल्स का शासक नियुक्त किया। एक अन्य भाई लुईस (Louis) को हॉलैंड का शासक बना दिया गया। फ्रांस की तरह हालैंड में भी काफी उलट-फेर हो चुके थे और गणराज्य से राजतन्त्र बन गया था। नेपोलियन की बहन एलाइस (Elise) टस्कनी की ग्रांड डचेस (Grand Duchess of Tuscany) बन गई थी। मुरत (कैरोलाइन का पति) क्लीवेस का ड्यूक (Duke of Cleves) बन गया था। टेलीरैंड (Talleyrand) बर्थियर (Berthier)

राजाओं के परिवार की संघात्मक व्यवस्था

१. जर्मनी की प्रभुता के लिए हिटलर की योजनाओं के समर्थन में भी यही कहा जाता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बर्नडोट (Bernadotte) को, जो जोज़ेफ का साला था और जिसे बार-बार सन्तुष्ट करने की कोशिश की गई थी, साम्राज्य की ओर से जागीरें दी गई थीं। लूसियन (Lucien) अपनी स्त्री और स्वतन्त्रता को छोड़ने के लिये तैयार नहीं हुआ अतः उन्नीसवें ब्रूमेयर पर नेपोलियन की जो कुछ उसने सेवा की थी, उसे उसके बदले में कुछ नहीं मिला। नेपोलियन ने कहा था, "जो लोग मेरे साथ नहीं चलेंगे, वे मेरे परिवार के नहीं रहेंगे। मैं राजाओं के परिवार की एक संघात्मक व्यवस्था बना रहा हूँ।"

यूरोप के संघ का एक और उद्देश्य था। नेपोलियन इसे एक ऐसे शक्तिशाली आर्थिक शस्त्र के रूप में बदलना चाहता था जिससे कि इंग्लैंड के ऊपर प्रहार किया जा सके। ट्राफल्गर की लड़ाई ने नेपोलियन को इंग्लैंड का आर्थिक बहिष्कार करने के विचार की ओर प्रेरित कर दिया था। बाद में इसी विचार ने महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) का रूप धारण किया। नेपोलियन ने इस बात की कोशिश की कि इटली के नीचे से लेकर एल्ब (Elbe) के मुहाने तक सभी बन्दरगाहों को अंग्रेजी सामान के लिए बन्द कर दिया जाये। अधीनस्थ राज्य तो आज्ञाकारी थे ही। पोप को भी डरा-धमकाकर बाध्य किया जा सकता था। "उससे जाकर कहो, मैं चर्च की तलवार, उसका सम्राट् शार्लमैन हूँ और मैं ऐसे ही व्यवहार की आशा रखता हूँ।" अकेला पुर्तगाल भी विरोध करने का साहस नहीं कर सकता था।

इंग्लैंड का आर्थिक अवरोध

लेकिन, यदि इस अवरोध को बाल्टिक तक विस्तृत करना था, तो यह जरूरी था कि प्रशा भी नेपोलियन के प्रभाव-क्षेत्र में आ जाये। पिछले दस वर्षों से, जबसे १७९५ में बेसेल की सन्धि (Peace of Basel) हुई थी, प्रशा नेपोलियन विरोधी युद्धों में तटस्थ रहा था। वह दूसरे गुट में शामिल नहीं हुआ था और यद्यपि आस्ट्रिया तथा प्रशा ने उस पर तीसरे गुट का सदस्य बन जाने के लिए काफी दबाव डाला था, फिर भी प्रशा तीसरे गुट में शामिल नहीं हुआ। फ्रांस ने हैनोवर पर अधिकार कर लिया, नेपोलियन की सेवाओं ने प्रशा के राज्य-क्षेत्र का अतिक्रमण किया और आस्ट्रिया को पराजित किया लेकिन फिर भी फ्रेडेरिक विलियम तृतीय (Frederick William III) ने अपनी तटस्थता नहीं त्यागी। इससे उसका सम्मान बिलकुल नहीं बढ़ा। लेकिन, नेपोलियन इस बात पर अड़ा हुआ था कि वह इंग्लैंड के साथ होने वाले आर्थिक युद्ध में प्रशा को भी अपने साथ ले चले। वह अपने इस उद्देश्य को या तो प्रशा के साथ समझौता करके या प्रशा को इंग्लैंड के साथ लड़ाई में फँसाकर प्राप्त करना चाहता था। अतः नेपोलियन ने प्रशा को प्रलोभन के तौर पर जार्ज तृतीय का हैनोवर का एलेक्टोरेट (George III's electorate of Hanover) देने का वचन दिया। यह स्थान अंशतः फ्रांस के नियन्त्रण में पहले से ही था। कुछ संकोच के बाद प्रशा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अपनी सेनाएँ एलेक्टोरेट में भेज दीं। इस पर

प्रशा के साथ लड़ाई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंग्लैंड ने प्रशा के व्यापारिक जहाजों को पकड़ लिया। लेकिन, प्रशा की इंग्लैंड के साथ कोई लड़ाई नहीं थी और लड़ाई की सम्भावना ने अधिनायक के विरुद्ध एवं फ्रेंकोफाइल पार्टी (Francophile Party) के विरुद्ध, जिसने उसे इस स्थिति तक पहुँचा दिया था, रोष जाग्रत कर दिया। जब नेपोलियन फोक्स (Fox) के साथ समझौते की कुछ वार्ता कर रहा था, यह पता चल गया कि उसने इंग्लैंड से यह वायदा कर लिया था कि वह हैनोवर को ब्रिटिश राज-परिवार को फिर से सौंप देगा। इस पर प्रशा बहुत नाराज हो गया और उसने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। लेकिन यह अवसर ठीक नहीं था। यदि मैक (Mack) उल्म (Ulm) में रूस की सेना के लिए, और एलैक्जैंडर आस्टरलिट्ज में आस्ट्रिया की सेना के लिए इन्तजार करता, यदि प्रशा इस समय को छोड़कर जब कि वह न सहायता पा सकता था और न सहायता दे सकता था, तीसरे गुट में उस समय शामिल होता जबकि उसके शामिल होने का कुछ उपयोग भी होता, तो नेपोलियन के शत्रु उसका जरा ज्यादा प्रभावशाली ढंग से मुकाबला कर सकते थे।

फ्रेडेरिक महान् (Frederick the Great) द्वारा प्रशिक्षित सेना और नेपोलियन के बीच यह पहली लड़ाई थी। लेकिन, इस लड़ाई में प्रशा की पराजय आस्ट्रिया की अपेक्षा अधिक द्रुतगति से और अधिक विनाशकारी ढंग से हुई। फ्रांस की सेनाओं ने एक ही दिन में दो लड़ाइयाँ जीतीं। जेना की लड़ाई नेपोलियन ने स्वयं प्रिंस होहेनलोहे (Prince Hohenlohe) की सेना के विरुद्ध जीती। आवरस्टैट में डेवौट (Davout) ने ब्रुन्सविक (Brunswick) की अपनी से बड़ी सेना को हरा दिया। इस लड़ाई में ब्रुन्सविक के संघातमक चोट आई। वह क्रांतिकालीन गणतन्त्र के विरुद्ध पहले की कई लड़ाइयों में भी बदनाम हो चुका था। इन दोनों लड़ाइयों के फलस्वरूप प्रशा नेपोलियन के हाथों में आ गया।

जेना और आवरस्टैट (१४ अक्टूबर, १८०६)

"रोशबच की पराजय"[1] और कोब्लेंज़ की घोषणा (Manifesto of Coblenz) का बदला लिया जा चुका था। प्रशा के बहुत से दुर्गों ने फ्रांस की सेनाओं के आगे मस्तक झुका दिया। २५ अक्टूबर को विजेता ने बर्लिन में प्रवेश किया और अपने पारितोषिक के रूप में फ्रेडेरिक महान् की तलवार अपने हाथों में ली। कार्लोटेनबर्ग (Charlottenburg) के महल से उसने बर्लिन की अपनी सुप्रसिद्ध आज्ञप्तियाँ निकालीं। इन घोषणाओं में कहा गया था कि यदि इंग्लैंड का माल किसी और देश के बन्दरगाहों पर दिखाई दिया, तो वह जब्त कर लिया जायेगा। यही दशा अन्य देशों के उन जहाजों की होगी जो इंग्लैंड के या उसके उपनिवेशों के बन्दरगाहों पर दिखाई देंगे।

नेपोलियन ने प्रशा के ऊपर भारी हर्जाना लगाया लेकिन आस्ट्रिया की भाँति प्रशा ने भी जार के साथ मित्रता छोड़ना अस्वीकार कर दिया। इस पर नेपोलियन प्रशा के साथ सन्धि की शर्तें तय करने के पहले रूस के खिलाफ आगे बढ़ा। लेकिन

१. सप्तवर्षीय युद्ध, १७५७ में फ्रेडेरिक महान की फ्रांस के ऊपर विजय।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस का सेनापति बेनिंगसेन (Benningsen) नेपोलियन की पकड़ में नहीं आया और नेपोलियन को पोलैण्ड में जाड़े बिताने के लिए विवश होना पड़ा। रूस और फ्रांस की सेनाओं में फरवरी १८०७ में एल्यू की लड़ाई (Battle of Eylau) हुई। नेपोलियन रण-क्षेत्र में स्वयं उपस्थित रहा और विजय का सेहरा उसके सिर बंधा लेकिन इस लड़ाई में उसके ३५,००० अनुभवी सैनिक खेत रहे। उसे रूस से इस पहली लड़ाई में ही चेतना मिल गई थी। वहाँ सड़कें नहीं थीं। भोजन का अभाव था। सिपाही असम्बद्ध और भूखे थे। उन्होंने आलुओं की क्यारियों को उजाड़ डाला और घोड़ों ने छतों से भूसा उखाड़ लिया। बहुत से सिपाहियों ने आत्महत्या कर ली। नेपोलियन ने कहा, "मैं अपने फ्रांसीसियों को जानता हूँ। उन्हें दूर की लड़ाइयों में ले जाना कठिन है। फ्रांस बहुत सुन्दर है।"

रूस से लड़ाई

एल्यू (फरवरी, १८०७)

एल्यू की लड़ाई से मित्र देशों के मन में जो भी आशाएँ पैदा हुई थीं, जून १८०७ में फ्रीडलैण्ड (Friedland) की लड़ाई में रूस की पराजय से वे धूल में मिल गयीं। जिस तरह ऑस्टरलिट्ज (Austerlitz) और जेना (Jena) ने ऑस्ट्रिया और प्रशा को नष्ट कर दिया था, उस तरह एक लड़ाई रूसी साम्राज्य का पतन नहीं कर सकती थी। फिर भी यह लड़ाई निर्णायक थी। इसने एलेक्जैंडर को नेपोलियन के साथ समझौते की बातचीत के लिए विवश कर दिया। फ्रेंच सम्राट् सैनिक युद्ध के साथ ही एक राजनयिक युद्ध भी चला रहा था। उसने स्वीडन के साथ, जो उसे पीछे से धमका रहा था, युद्ध विराम समझौता किया था, आस्ट्रिया को तलवार की नोक पर शांत किया था, पोलैंड की राष्ट्रीय आकांक्षाओं को जाग्रत किया था और आस्ट्रिया के शाह के साथ सन्धि की थी। लेकिन इसके साथ-ही-साथ वह इतनी दूर से अपने प्रदेशों पर भी बड़ी सजगता के साथ शासन कर रहा था और एक-एक विवरण की ओर ध्यान दे रहा था। कभी वह हालैंड के राजा को पाँच सफों के आदेश भेजता था, कभी जोजेफ और जेरोम को आदेश देता था। सार्वजनिक रूप से धन्यवाद समारोह किस प्रकार सम्पन्न हो, इस सम्बन्ध में उसने फ्रांस के विशपों को विस्तृत हिदायतें भेज दी थीं। समाचारपत्र वैदेशिक मामलों की किस तरह रिपोर्ट करें, इस बारे में भी उसने हिदायतें दे रखी थीं। उसने फौशे (Fouche) को पुलिस आदेश दे रक्खे थे जिनमें अन्य बातों के साथ-ही-साथ मैडम डी स्टेल (Mme de Stael) के निर्वासन की बाबत भी कुछ आदेश थे। उसने पेरिस के दो थिएटरों के बारे में पूछताछ करवायी और स्टाक एक्सचेंज एवं मैडेलीन तथा एक नए विश्व-विद्यालय के निर्माण के बारे में योजनाएँ तैयार करवायीं।

फ्रीडलैंड (जून-१८०७)

टिल्सिट से जरा आगे चलकर मैमेल नदी पर एक नाव में सन्धि की प्रारंभिक बातों को तय करने के लिए दोनों सम्राटों के बीच एक सम्मेलन हुआ। बाद की बैठकें टिल्सिट शहर में हुईं जहाँ प्रशा का फ्रेडेरिक विलियम तृतीय एवं उत्साही रानी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुईसी (Queen Louise) भी अपने देश की वकालत करने के लिए आ गई थी। जार बड़ा भावुक, प्रेमी और हँसमुख स्वभाव का व्यक्ति था। उसके बारे में नेपोलियन ने कहा था कि "यदि वह (जार) स्त्री होता, तो मैं उसके साथ प्रेम करने लगता।" नेपोलियन ने जार के ऊपर बड़ी आसानी से अपना प्रभाव जमा लिया। नेपोलियन ने अपने विचारों को बड़े कलात्मक ढंग से जार के सामने रखा। जार ने उन्हें इतनी ही आसानी से स्वीकार किया जितनी आसानी से उन्हें बाद में छोड़ दिया। नेपोलियन की जार के साथ दुहरी सन्धि हुई, कुछ सार्वजनिक और कुछ गोपनीय।

टिल्सिट की सन्धि (जुलाई, १८०७)

सार्वजनिक सन्धि ने प्रशा को उसके कुछ भागों से वंचित कर दिया और नेपोलियन की कुछ नई राजनीतिक रचनाओं की पुष्टि की। प्रशा से प्राप्त पश्चिमी प्रान्तों, जर्मनी की कुछ छोटी रियासतों और हैनोवर को मिलाकर वेस्टफेलिया (Westphalia) का राज्य बनाया गया। यह जेरोम बेनापार्ट (Jerome Bonaparte) की अधीनता में रखा गया। इस जगह फ्रेंच लोकतन्त्र का परीक्षण किया गया। पूर्वी प्रान्तों को, जो मुख्य रूप से प्रशन पोलैण्ड के थे, आस्ट्रियन गैलीशिया के साथ जोड़ दिया गया और उनको मिलाकर वार्सा की ग्रांड डची (Grand Duchy of Warsaw) का निर्माण किया गया और उसे सैक्सनी के राजा की अधीनता में रखा गया। लेकिन नेपोलियन ने पोलैण्ड की स्वतंत्रता के अपने अनिश्चित विवादों को पूरा करने का कोई प्रयास नहीं किया।[1] उसने पोलैण्ड का बलिदान कर दिया। इसके बदले में रूस ने प्रशा की अखण्डता का, जिसकी रक्षा करने का उसने रानी लुइसी (Queen Louise) को वचन दिया था, बलिदान कर दिया।

सन्धि की गोपनीय धाराएँ तथ्य को नहीं, प्रत्युत इरादे को प्रकट करती थीं। रूस ने इंग्लैंड के विरुद्ध, आर्थिक युद्ध में नेपोलियन की सहायता करने का वचन दिया। इसके बदले में नेपोलियन ने एलैक्जैण्डर को यह वचन दिया था कि वह तुर्की और स्वीडन में उसकी सहायता करेगा। लेकिन फ्रेंच सम्राट् ने कुस्तुन्तुनिया पर फ्रांस के दावे को स्वीकार नहीं किया। "इसका अभिप्राय तो संसार की प्रभुता होगा।" नेपोलियन ने जार के साथ जो वार्ता की, इसमें उसकी कल्पना की सक्रियता पुनः प्रकट हुई। वह नए-नए सपने बराबर देखता रहा यद्यपि वे पूरे नहीं हो सके। टिल्सिट के बाद उसका ध्यान पूर्व की ओर फिर गया। "मैं उस समय तक अधिपति नहीं हो सकता जब तक कि कुस्तुन्तुनिया की सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं कर लेता।" बाद में उसने जार को लिखा था, "पचास हजार फ्रांसीसियों और रूसियों की फौज जिसमें कुछ आस्ट्रियन भी शामिल हों, कुस्तुन्तुनिया पर धावा कर सकती है और वहाँ से

१. नेपोलियन की घोषणाएँ कितनी स्पष्ट थीं, निम्नलिखित उदाहरण उसका एक उदाहरण है : "क्या पोलैण्ड का सिंहासन फिर से स्थापित होगा और क्या यह महान् राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करेगा ? केवल ईश्वर ही जिसके हाथों में समस्त घटनाओं का निर्णय रहता है, इस महान् राजनीतिक समस्या का निर्णायक है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया पर छा सकती है। जहाँ वह एक बार बोस्पोरस पहुँच गई, इंग्लैंड महाद्वीप के चरणों में लोटेगा।" नेपोलियन ने एक बार फिर साम्राज्य से होकर द्वीप पर आक्रमण करने की और पूर्व के रास्ते से इंग्लैंड तक पहुँचने की योजना बनाई। इंग्लैंड की सामुद्रिक शक्ति के प्रति नेपोलियन के ये शब्द सबसे बड़ी श्रद्धांजलि हैं, "बोलोन से फोकेस्टोन को सेनाएँ भेजने की अपेक्षा पेरिस से दिल्ली को सेनाएं भेजना ज्यादा आसान है।"

इंग्लैंड ने नेपोलियन के विश्व-विजय के स्वप्नों को एक से अधिक बार भग्न किया और उसे बताया कि अभी पश्चिम की ही विजय पूरी नहीं है। इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच अब संघर्ष बढ़ता जा रहा था। दोनों ही देश लड़ाई की ज्यादा-से-ज्यादा तैयारी कर रहे थे। फलतः दोनों की ही आर्थिक स्थिति खराब होती जा रही थी। इंग्लैंड ने बर्लिन आज्ञप्तियों (Berlin decrees) के जवाब में १८०७ के स-परिषद् आदेश (Orders-in-Council of 1807) निकाले। इन आदेशों द्वारा उसने फ्रांस एवं उसके मित्र देशों के बन्दरगाहों को बन्द कर दिया और तटस्थ राष्ट्रों को यह धमकी दी कि यदि उनके जहाज वहाँ दिखाई दिए तो उन्हें पकड़ लिया जाएगा। इस आर्थिक संघर्ष ने तटस्थ राष्ट्रों के लिए अनेक कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। बाल्टिक में फ्रांस का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। इसका प्रतिकार करने के लिए इंग्लैंड यहाँ तक आगे बढ़ा कि उसने उसी वर्ष के सितम्बर में कोपेनहेगेन (Copenhagen) में डेन्मार्क के एक जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। इसके जवाब में नेपोलियन ने दिसम्बर १८०७ में मिलान आज्ञप्तियाँ (Milan decrees) निकालीं जो बर्लिन आज्ञप्तियों (Berlin decrees) से भी ज्यादा कठोर थीं। महाद्वीप व्यापारिक अवरोध (Commercial blockade) के कारण काफी मुसीबत में पड़ गया था। जहाजों के विनाश की शिकायतें हुईं। बहुत से देशों ने इस अवरोध से छूट की अनुमति चाही। सामान चोरी से लाया और ले जाया जाने लगा। जब एल्यू की लड़ाई के समय नेपोलियन के हैम्बर्ग स्थित प्रतिनिधि बोरिएन (Bourienne) को फ्रेंच सेना के लिए ५० हजार ओवरकोट खरीदन का आदेश मिला, तो वह उन्हें इंग्लैंड के अतिरिक्त अन्य कहीं प्राप्त करने में असमर्थ रहा।

महाद्वीपीय व्यवस्था

फ्रांस में जहाँ ६ वर्ष पूर्व मैरन्गो के समाचार ने उत्तेजना का वातावरण पैदा कर दिया था, जेना के समाचार ने कोई हर्षध्वनि उत्पन्न नहीं की। नेपोलियन अपनी राजधानी से दस वर्षों से दूर था। अब वहाँ अफवाहें और शिकायतें सुनाई पड़ने लगी थीं। अब यह आवश्यक हो गया था कि अनुशासन को और दृढ़ किया जाए एवं समाचारपत्रों के ऊपर कठोर नियन्त्रण स्थापित किया जाए। एक निष्पक्ष विश्वविद्यालय को बुद्धिजीवियों के विचार ढालने चाहिएँ, पब्लिक ग्रामर स्कूलों को देवोपम सम्राट का प्रशस्ति-गान करना चाहिए तथा एक नए आनुवंशिक कुलीन समाज की स्थापना होनी चाहिए जो सेना में ऊँचे-ऊँचे पदों पर अभिषिक्त हो। राजवंशों का विचार विकसित हो रहा था, लेकिन नेपोलियन के पास अपना कोई उत्तरा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकारी नहीं था। जोज़ेफ़ाइन के विवाह-विच्छेद की चर्चा चारों ओर ज़ोरों से चल पड़ी थी।

यूरोप में दो तत्त्व और ऐसे पैदा हो गए थे जिन्होंने नेपोलियन की प्रभुता को चुनौती दी और उसके विनाश में योग दिया। नेपोलियन ने यूरोप की कैथोलिक भावना को चोट पहुँचाई, उसने अपने खिलाफ राष्ट्रीयता की भावना पैदा की।

पायस सप्तम (Pius VII) ब्रूमेयर के राज्य-परिवर्तन के एक वर्ष पश्चात् ही १८०० में अपने दुर्भाग्यपूर्ण पोप-पद के ऊपर आसीन हुआ था। उसके सबसे पहले कार्यों में से एक यह था कि उसने १८०१ में नेपोलियन के साथ कान्कोर्डेट (Concordat) पर हस्ताक्षर किए। १८०२ के अनुच्छेदों ने इनका अतिक्रमण किया। पोप ने १८०४ में सम्राट् के राज्याभिषेक में काँफी संकोच के बाद भाग लिया था। लेकिन उसे ज्ञात हुआ कि उसके साथ जो रियायतें की गई थीं, उनके तुरन्त बाद ही उससे कठोर माँगें भी की गयीं। १८०६ में यह माँग की गई कि पोप के बन्दरगाहों को ब्रिटिश जहाजों के लिए बन्द कर देना चाहिए। नेपोलियन नाराज हो गया और उसने कहा, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप रोम के प्रभु हैं, लेकिन मैं सम्राट् हूँ और मेरे शत्रु आपके शत्रु होंगे।" जब नेपोलियन ने यह धमकी दी कि वह पोप के विशेषाधिकारों को समाप्त कर देगा और चर्च की जमीनें साम्राज्य में मिला लेगा, पोप ने समझौते की वार्ता तोड़ दी। फलतः, अप्रैल १८०८ में फ्रांस की सेनाओं ने पोप की रियासतों को घेरा और रोम पर अधिकार कर लिया। मई, १८०९ में उन्हें औपचारिक रीति से फ्रेंच साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

पोप

पोप ने आध्यात्मिक हथियारों का आश्रय लिया। उसने धार्मिक बहिष्कार (Bull of Excommunication) की घोषणा निकाली। इस पर नेपोलियन ने कहा, "क्या उसका यह विचार है कि मेरे सिपाहियों के हाथों से हथियार गिर पड़ेंगे?" ६ जुलाई की प्रातः नेपोलियन के कुछ सिपाही क्विरीनाल में घुस गए और उन्होंने पोप को बन्दी बना लिया।

दस साल पहले नेपोलियन ने लिखा था, "रोम का प्रभाव असीम है। इस शक्ति से सम्बन्ध बिगाड़ना डायरेक्टरी की गलती थी।" उसने अपने पहले विचार की बुद्धिमत्ता और उससे अलग हटने की मूर्खता सिद्ध कर दी। नेपोलियन ने सेंट हेलेना (St. Helena) में जो विचार व्यक्त किए थे, यदि उन्हें सच माना जाए, तो ज्ञात होता है कि उसके दिमाग में पश्चिम की एक ऐसी खिलाफत का भाव था जिसमें कि आध्यात्मिक और लौकिक दोनों शक्तियों का समावेश हो। यदि पेरिस में कोई आज्ञापालक पोप रक्खा जा सकता (जैसा कि १८१२ से १८१४ तक रहा था), तो "पैरिस ईसाई धर्म की राजधानी हो जाता और मैं राजनीतिक संसार के साथ धार्मिक संसार का भी संचालन कर सकता था।"

पोप के साथ विवाद के उग्र रूप धारण करने के पूर्व नेपोलियन ने एक नई योजना और प्रारम्भ की। यह योजना पुरातन शासन-व्यवस्था की राजनीति से साम्य रखती थी। नेपोलियन ने इंग्लैंड का पूरी तरह आर्थिक बहिष्कार करना था। पुर्तगाल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बन्दरगाह खुले हुए थे। नेपोलियन को यह पसन्द नहीं था। उसने पुर्तगाल से कहा कि वह अपने बन्दरगाह इंग्लैंड के लिए बन्द कर दे।

जब पुर्तगाल के शासक के ऊपर ज्यादा दबाव पड़ा, उसने अपने जहाजों को इंग्लैंड के लिए बन्द करना स्वीकार कर लिया था, लेकिन आगे चलकर उसने इंगलैंड की व्यापार-वस्तुओं को जब्त करने से इनकार कर दिया। इस पर नेपोलियन ने पुर्तगाल को एक सबक सिखाने का निश्चय किया। फ्रांस जैसे बड़े देश के लिए पुर्तगाल जैसे छोटे देश को दबा देना आसान भी बहुत था। वास्तव में पुर्तगाल के मामले में नेपोलियन का हस्तक्षेप डेन्मार्क के मामले में ब्रिटेन के हस्तक्षेप का जवाब था।

पुर्तगाल

पुर्तगाल को सत्ताहीन करने के साथ ही स्पेन को भी दास बनाने की नेपोलियन की योजना थी। नेपोलियन ने घोषणा की कि चूंकि वह जर्मनी से युद्धरत है, अतः स्पेन की स्वतन्त्रता से उसकी सेना को खतरा पहुँचता है। नेपोलियन की वास्तविक मंशा स्पेन को हड़पने की थी। हाँ, उसने ढोंग कुछ ऐसा रचा मानो वह स्पेन की जनता को स्वतन्त्रता प्रदान कर रहा हो। स्पेन के साथ नेपोलियन का युद्ध राजनैतिक और सैनिक दोनों दृष्टियों से नेपोलियन के लिए घातक सिद्ध हुआ। नेपोलियन की नीति बूरबन शासकों की पुरानी नीति ही थी। वह स्पेन और फ्रांस के हितों को एक करना चाहता था[1] जिससे कि फ्रांस को घेरा न जा सके। स्पेन के उत्तराधिकार के प्रश्न पर फ्रांस के बूरबन शासकों और स्पेन के राजवंश में घनिष्ठता स्थापित हो गई थी। फ्रांस में राजवंश के पतन के साथ ही दोनों देशों की घनिष्ठता समाप्त हो गई। फ्रांस की क्रान्ति के बाद स्पेन वहाँ की राजनीति के साथ कदम मिलाकर नहीं चल सका। १७९५ की बेसिल की सन्धि (Peace of Basel) के बाद से स्पेन फ्रांस का अधीनस्थ देश रहा था। उसने नेपोलियन की लड़ाइयों में धन-जन दोनों से सहायता की थी और उसकी सेवा में अपने उपनिवेशों और जहाजों का बलिदान किया था। लेकिन जब १८०६ में नेपोलियन की प्रशा के साथ लड़ाई प्रारम्भ हुई, रानी के एक कृपापात्र गोडॉय (Godoy) ने, जो स्पेन का वास्तविक शासक था, स्पेन के सैनिकों को तैयारी का आदेश दे दिया।[2] लेकिन जब जेना (Jena) में प्रशा की पराजय हुई, गोडॉय ने अपने उक्त आदेश को रद्द कर दिया। नेपोलियन इस कार्य से बहुत नाराज़ हुआ। उसने स्पेन को अपनी सुरक्षा के लिए खतरा समझा। स्पेन में इस समय बूरबन वंश की एक शाखा का ही राज्य था। बूरबन वंश को फ्रांस, नैपिल्स और पार्मा से तो भगा ही दिया गया था, नेपोलियन ने उसे स्पेन से भी खदेड़ देने का निश्चय किया। नेपोलियन

स्पेन

---

१. कुछ ऐसे ही जैसे कि इंग्लैण्ड स्काटलैण्ड को अपने साथ रखना चाहता है।

२. उसकी प्रसिद्धि का शायद सबसे बड़ा कारण यह है कि वह सुविख्यात चित्रकार गोया (१७४६-१८२८) का संरक्षक था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विचार से बूरबन वंश बिलकुल भ्रष्ट और निकम्मा था। उसका नैतिक या राजनीतिक किसी भी दृष्टि से कोई औचित्य नहीं सिद्ध हो सकता था।

नेपोलियन ने अपनी योजना का श्रीगणेश करने के लिए स्पेन से १५,००० सैनिकों की माँग की और उन्हें डेन्मार्क के सीमान्त पर भेज दिया।[1] इसके बाद फ्रांस और स्पेन के बीच पुर्तगाल का विभाजन करने की योजना के बहाने, फ्रांस के सिपाहियों ने पिरेनीज़ (Pyrenees) को पार किया। यह योजना अक्टूबर १८०७ में फौन्टेनब्ल्यू (Fontainebleau) में तैयार हुई थी। जुनट (Junot) की अधीनता में २५,००० सैनिकों की एक टुकड़ी ने पुर्तगाल की नौ-सेना और राजकोष पर अधिकार करने के लिए लिस्बन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उसे पता चला कि पुर्तगाल का जहाजी बेड़ा राजकोष और राज-परिवार सहित ब्रिटिश युद्ध-पोतों की निगरानी में वहाँ से जा चुका है। इस पर फ्रांसीसियों ने पुर्तगाल पर अधिकार कर लिया।

लेकिन, फरवरी और मार्च १८०८ में फ्रांस की सेनाएँ अनवरत गति से स्पेन में आती रहीं। थोड़ा-थोड़ा करके स्पेन में फ्रांस के १,००,००० सिपाही पहुँच गए। उन्होंने स्पेन के चार सबसे महत्त्वपूर्ण दुर्गों पर अधिकार कर लिया और वे मैड्रिड (Madrid) में पहुँच गये। इससे स्पेन के राज-परिवार के हाथ-पैर बिल्कुल ढीले हो गये। उसकी दशा प्रायः वैसी ही हो गई जैसी कि किसी हिंस्र पशु के आक्रमण से भेड़ या मेमने की हो जाती है। घबराहट में चार्ल्स चतुर्थ (Charles IV), मेरी लुइसा (Marie-Louise) और गोडॉय (Godoy) ने भागने की तैयारी की लेकिन स्पेन की जनता ने विद्रोह कर उन्हें एरंज्वेज (Aranjucz) में पकड़ लिया और राजा को इस बात के लिए विवश किया कि वह अपने पुत्र फर्डिनैण्ड (Ferdinand) के पक्ष में सिंहासन का त्याग कर दे। फर्डिनैण्ड की लोकप्रियता का एकमात्र आधार यह था कि वह अपनी माता और गोडॉय का विरोधी था। फर्डिनैण्ड स्वभाव से दुर्बल तथा अस्थिर था और उसने नेपोलियन के सामने बड़ी आसानी से घुटने टेक दिये। मई १८०८ में स्पेन के दोनों प्रतिद्वन्द्वी सम्राटों और नेपोलियन के बीच एक इंटरव्यू हुआ। नेपोलियन ने डरा-धमकाकर दोनों को इस बात के लिए विवश किया कि वे सिंहासन पर से अपना अधिकार त्याग दें। जोज़ेफ बोनापार्ट को नैपिल्स से स्पेन का और इंडीज का राजा होने के लिए बुलाया गया और उसके स्थान पर मूरत (Murat) को इटली भेज दिया गया।

इस तरह, नेपोलियन का सारे प्रायद्वीप पर अधिकार हो गया, लेकिन उसके विरुद्ध एक अप्रत्याशित शत्रु पैदा हो गया। उसने कहा था, "साधुओं से परिपूर्ण आपके जैसे देश को हराना बहुत आसान है।" लेकिन नेपोलियन ने एक तथ्य—जनता—की बिलकुल उपेक्षा कर दी। यह फ्रांस के इतिहास की सबसे बड़ी शिक्षा थी। स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना अत्यन्त उग्र थी। स्पेन के लोगों को अपने पर अभिमान था। उनके ऊपर फ्रेंच क्रान्ति के सिद्धान्तों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा

बेलन (जून, १८०८)

१. यह स्मरणीय है कि इन सैनिकों में से बहुत से स्पेन में फ्रांसीसियों से लड़ने के लिए वापस लौट आये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उन्हें अपने देश में संवैधानिक सुधारों सम्बन्धी वचनों पर भी आस्था थी। उनकी दृष्टि में नेपोलियन राष्ट्रीय धर्म का शत्रु, राष्ट्रीयएकता का संहारक और राजमुकुट का विनाशक था। आस्ट्रियस (Asturias) के नेतृत्व में स्पेन के एक के बाद एक प्रान्त उठते गए और उन्होंने फ्रांसीसियों का कड़ा प्रतिरोध किया। स्पेन का विद्रोह "उत्प्रेरणा की दृष्टि से राष्ट्रीय और गहनता की दृष्टि से स्थानीय" था। जून १८०८ में बेलन (Baylen) में दुनिया ने एक अभूतपूर्व दृश्य देखा—स्पेन की असंगठित सेना ने फ्रांस की सुसंगठित सेना को हरा दिया। यूरोप के विरुद्ध फ्रेंच क्रान्ति की लड़ाई में जो स्थान वाल्मी का था, नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप की लड़ाई में वही स्थान बेलन (Baylen) का रहा। अब यह नये युग का पुनः उदय हुआ। जोज़ेफ मैड्रिड (Madrid) से हट गया। नेपोलियन बहुत नाराज हुआ। वह डुपाँट (Dupont) तथा उन अन्य अधिकारियों को, जो हार गये थे, गिरफ्तार करने की आज्ञा तक देने के लिए उतारू हो गया। लेकिन, नेपोलियन को अचानक ही ज्ञात हुआ कि भौगोलिक परिस्थितियाँ स्पेन वालों के लिए बड़े लाभ की हैं। स्पेन के लोग गुरिल्ला-युद्ध में बड़े निपुण थे और वहाँ की भौगोलिक स्थिति इस युद्ध के अनुकूल थी। इंग्लैंड के जहाजी बेड़े या संसाधन भी बड़ी आसानी से स्पेन पहुँच सकते थे। जब स्पेन ने इंग्लैंड से सहायता माँगी, इंग्लैंड ने स्पेन की इस प्रार्थना को तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। इंग्लैंड की सेनाएँ तरुण सेनाध्यक्ष सर आर्थर वेल्जली की अधीनता में अगस्त में पुर्तगाल पहुँच गईं। वेल्जली पहले से ही विख्यात सेनापति था। उसने १८०३ में भारत में भंयकर युद्ध के पश्चात् मराठों को पराजित किया था। उसने विमेरो (Vimeiro) नामक स्थान पर जुनॉट (Junot) तथा उसकी सेना को हरा दिया। इसके बाद सिंट्रा की संधि (Convention of Cintra) हुई। इस पर सर ह्यू डाल्रीम्पल (Sir Hew Dalrymple) ने हस्ताक्षर किये। इसके अनुसार यह तय हुआ कि फ्रांस की सेनाएँ पुर्तगाल से हट जाएँ। वे इंग्लैंड के जहाजों में ले जायी जायेंगी, और उन्हें अपने साथ अपनी लूटमार का सामान ले जाने की इजाजत होगी। यद्यपि इन दो धाराओं की इंग्लैंड में तीव्र आलोचना हुई लेकिन इनसे फ्रेंच सेना के हट जाने का या इस बात का कि तीन महीनों के अन्दर ही नेपोलियन की सेना को दो बार पराजित किया गया था, महत्त्व कम नहीं हुआ।

लेकिन नेपोलियन अब भी विजयी हो सकता था। १८०८ में अन्त में एरफर्ट के राजनीतिक आयोजन और आस्ट्रिया के विरुद्ध एक नये युद्ध के बीच नेपोलियन ने

स्पेन में नेपोलियन

१,५०,००० सैनिकों को लेकर स्पेन की सीमा को खदेड़ दिया, अपने भाई को मैड्रिड (Madrid) में प्रतिष्ठित किया, सामन्ती कानूनों और इन्क्वीज़िशन (Inquisition) को समाप्त किया। लेकिन इन सुधारों से स्पेन के लोग संतुष्ट नहीं हुए। स्पेन की प्रार्थना पर २६,००० ब्रिटिश सैनिक घुस आए थे, लेकिन नेपोलियन ने उन्हें भी तट की ओर भगा दिया। वहाँ जनरल सर जॉन मूर (General Sir John Moore) ने आशातीत सफलता प्राप्त की। उसने सम्राट को दक्षिणी स्पेन से हटा दिया था, वह बड़ी कुशलता से पीछे हटा और उसने कौरुना (Coruna) की लड़ाई द्वारा, जो उसने सौल्ट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Soult) के खिलाफ लड़ी थी, अपनी सेना को जहाज पर चढ़ाने में सफलता प्राप्त की। लेकिन जरनल सर जॉन मूर स्वयं रणक्षेत्र में खेत रहे। इधर पेरिस के षड्यंत्रों और यूरोप में युद्ध के घुमड़ते हुए बादलों के कारण नेपोलियन स्पेन से चला गया था और वह युद्ध का अन्त अपने मार्शल के ऊपर छोड़ गया था।

यद्यपि नेपोलियन पोप को एवं स्पेन और पुर्तगाल को अपने वश में करने में लगा हुआ था, फिर भी उसके दिमाग में पूर्वी और समुद्र-पार की योजनाएँ नाच रही थीं। उसने ज़ार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि तुर्की का विभाजन किया जाए और रूस एवं फ्रांस की संयुक्त सेनाएँ भारत पर आक्रमण करें। लेकिन हो सकता है कि यह ज़ार की अस्थिर निष्ठा को बनाए रखने के लिए नेपोलियन की राजनीतिक चाल मात्र रही हो। अब न केवल टिल्सिट का प्रेम ही शिथिल पड़ता जा रहा था प्रत्युत सारे यूरोप को यह पता चल गया था कि स्पेन के विद्रोह ने राजनीतिक स्थिति में व्यापक अन्तर कर दिया है। नेपोलियन ने यह समझ लिया था कि एलैक्जेंडर के साथ दृढ़ मित्रता होने पर ही वह मध्य यूरोप में अपना असर क़ायम रख सकता है। फलतः, नेपोलियन ने सितम्बर १८०८ में ज़ार को एरफर्ट में एक सम्मेलन के लिए बुलाया। उसको आशा थी कि वह वहाँ अपनी प्रभुता स्थापित कर लेगा। सचाई यह है कि इस सम्मेलन में कुछ सुन्दर दृश्य भी देखने को मिले। वहाँ नेपोलियन के स्वागत के लिए चार राजा और चौंतीस राजकुमार थे। थियेटर में "महान् व्यक्ति की मित्रता देवताओं का प्रसाद होती है" शब्दों पर दोनों सम्राट खड़े हो गये और उन्होंने हाथ हिलाया, ज़ार की राजकुमारी और बोनापार्ट के बीच विवाह-सम्बन्ध की भी बात चली। लेकिन, इस सम्मेलन से नेपोलियन को सामाजिक प्रतिष्ठा और वीलैंड (Wieland) तथा गेटे (Goethe) की श्रद्धांजलि के रूप में गौरव मिलने के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं हुआ। स्पेन की लड़ाई में जाने से पहले उसने एलैक्जैंडर से यह गुप्त वचन ले लिया कि यदि आस्ट्रिया पहले फ्रांस पर आक्रमण करे, तो रूस फ्रांस की सहायता करेगा। शायद, एलैक्जैंडर टेलीरैंड (Talleyrand) के इन विश्वासघातपूर्ण सुझावों पर विचार कर रहा था : "...श्रीमन्, आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? आपको यूरोप की रक्षा करनी चाहिए और आप यह नेपोलियन का विरोध करके ही कर सकते हैं। फ्रांस के लोग सभ्य हैं, उनका सम्राट् सभ्य नहीं है। रूस का सम्राट् सभ्य है, वहाँ के लोग सभ्य नहीं है। इसलिए, रूस के सम्राट् को फ्रांस के लोगों का साथ देना चाहिए।"

एरफर्ट (सितम्बर १८०८)

स्पेन के उदाहरण से मध्य यूरोप में राष्ट्रीयता की भावनाएँ तेजी से उभरने लगी थीं। आस्ट्रिया पर भी इसका असर पड़ा था। छः महीने बाद अप्रैल १८०९ में उसने फ्रांस के विरुद्ध पुनः युद्ध की घोषणा कर दी। यह चौथी युद्ध-घोषणा थी जो उसने दो दशकों के भीतर-ही-भीतर की थी और उसे फिर नेपोलियन के आगे मुँह की खानी पड़ी।

आस्ट्रिया द्वारा युद्ध का पुनः आरम्भ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन ने बड़ी तेजी से बवेरिया में प्रवेश किया, उसने अपनी सेना का अद्भुत कौशल के साथ संचालन किया और अपर डेन्यूब पर एकम्हुल (Eckmuhl) के पास पंचदिवसीय युद्ध जीत लिया तथा तीन सप्ताह बाद ही वियना में प्रवेश किया,

आस्ट्रिया की पराजय

यद्यपि डैन्यूब को पार करने की चेष्टा में उसे एस्पर्न एस्लिंग (Aspern Essling) की ओर पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा था, लेकिन उसने इस पराजय का बदला चुका लिया और जुलाई में वाग्राम (Wagram) के घनघोर युद्ध में आस्ट्रिया को बुरी तरह खदेड़ दिया। सम्राट् फ्रांसिस (The Emperor Francis) को सन्धि करने के लिये पुनः विवश होना पड़ा। इंग्लैंड ने

वाग्राम

जिस सहायता का वचन दिया था, उसका परिणाम वालचेरेन (Walcheren) का अव्यवस्थित अभियान ही हुआ। इसके कारण नेपोलियन को अपने जीवन का एक निकृष्टतम युद्ध अवश्य लड़ना पड़ा था, लेकिन वह एंटवर्प (Antwerp) को जीतने के अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। इधर यह समाचार भी आया कि टालावेरा (Talavera) की लड़ाई के बाद वेल्जली पुर्तगाल से हट गया है।[1] ज़ार को गेलीशिया (Galicia) देकर फ्रांस के साथ मित्रता बनाए रखने के लिए मना लिया गया था। पोप सम्राट् के हाथों में कैदी था, जर्मनी के दूसरे विद्रोहों को भी दबा दिया गया था।

सन्धि की शर्तों के अनुसार आस्ट्रिया को अपने ३५ लाख नागरिकों से और जर्मनी, पौलैण्ड तथा इटली की सीमाओं पर अपने कुछ प्रदेशों से हाथ धोना पड़ा। उसे इस बात के लिए भी विवश किया गया कि वह युद्ध का

शोनब्रन की सन्धि (अक्टूबर, १८०९)

भारी हर्जाना दे, महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) में शामिल हो और स्पेन के नए राज्य को मान्यता दे। कुछ महीनों बाद उसने एक राजकुमारी भी विजेता को दी। जोज़ेफाइन के तलाक की बातचीत बहुत समय से चल रही थी, अब वह भी हो गया। नेपोलियन ने हैप्सबर्ग वंश की राजकुमारी से विवाह

जोज़ेफाइन का तलाक और मेरी लुइसा से विवाह

की माँग की थी। उसे विवाह में हैप्सबर्ग वंश की राजकुमारी मिल गई। नेपोलियन अपने राजवंश को चलाना चाहता था और उसकी इच्छा थी कि उसके पुत्र का नाना यूरोप का सबसे अभिमानी सम्राट् होना चाहिए।

पतन १८१०-१५
(The Downfall, 1810-15)

नेपोलियन के दूसरे विवाह ने पुराने यूरोप के ऊपर उसकी विजय को पुष्ट कर दिया, उसके राजवंशीय विचार ने क्रांति के ऊपर विजय पा ली थी। व्यक्तिगत

---

१. टालवेरा की लड़ाई के बाद वेल्जली को विस्काउण्ट वेलिंगटन (Viscount Wellington) बना दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा के ऊपर राजकीय छापे की विजय प्रमाणित हो गई। जब १८११ में युवराज का जन्म हुआ, तब ऐसा ज्ञात होता था कि नेपोलियन की महानता पर अमिटता की छाप लग गई है। उसने अपने पुत्र को 'रोम-नरेश' (King of Rome) की उपाधि दी। इस उपाधि के साथ बड़ी-से-बड़ी साम्राज्यिक स्मृतियों की याद की गई। इस समय नेपोलियन का साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था। आस्ट्रिया पराजित हो गया था और विवाह-सम्बन्ध में बँधा हुआ था, स्पेन और पुर्तगाल धराशायी थे, पोप विनत था, स्वीडन दबा हुआ था, फ्रांस और प्रशा की संधि को टूटने से रोक लिया गया था; व्यापारिक कठिनाई के कारण इंग्लैंड बड़े कष्ट में था और वह धीरे-धीरे अमेरिका के साथ लड़ाई की ओर बढ़ रहा था। बाल्टिक से भूमध्यसागर तक और टेगस से नीमन तक नेपोलियन का शब्द ही कानून था।

नेपोलियन की शक्ति का चरमोत्कर्ष (१८१०-११)

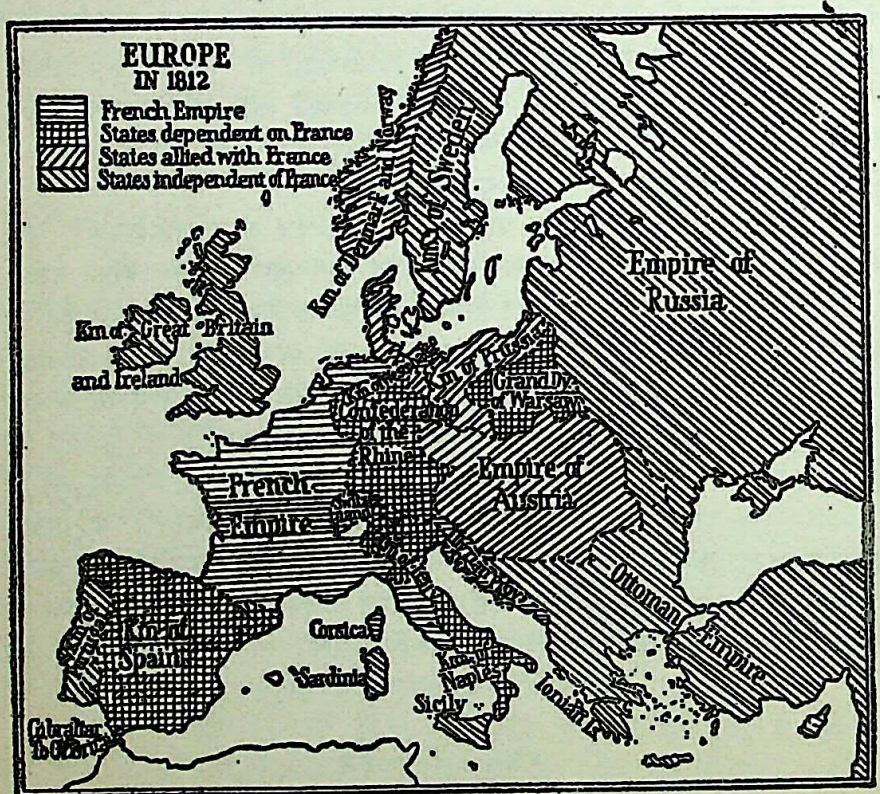

लेकिन, अब ऐसी शक्तियाँ एकत्रित होती जा रही थीं जिन्होंने आगे चलकर साम्राज्य-भवन का विनाश कर दिया। सचाई यह है कि वह भवन अभी पूरी तरह बन भी नहीं पाया था, अभी इसमें तूफान और झंझावात को सहने की ताकत भी नहीं आई थी कि उसमें दरारें पड़ गईं और वह लड़खड़ाने लगा। इंग्लैंड ने जहाँ इस भवन पर अपनी नाविक शक्ति के प्रहार किए, वहीं उसमें अनेक छेद दिखाई देने लगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली में सिसली और कैलाब्रिया (Calabria) ने नैपिल्स के राज्य की विजय का विरोध किया था। इबीरियन प्रायद्वीप में विरोधी तत्त्व पहाड़ियों में चले गये और एक अंग्रेजी सेनापति ने उनका दुबारा संगठन किया। स्टीन (Stein) और स्कार्नहोर्स्ट (Scharnhorst) के सैनिक और असैनिक सुधार प्रशा को नया जीवन दे रहे थे। जब फिश्टे (Fichte) ने जर्मन जनता को अपने अभिभाषण (Addresses to the German People) दिये, तो जर्मनी में एक नए युग का सूत्रपात हो गया। फ्रांस के सैनिक, आर्थिक और वित्तीय दबाव के कारण हर जगह की जनता नराज हो गई थी। स्कॉनब्रन (Schonbrunn) में एक तरुण टिरोलीज ने अत्याचारी को मार डालने की कोशिश की थी। फ्रांस में भी लोग गौरव से अपनी जनशक्ति की अनवरत क्षति से ऊब गये थे। पेरिस में विश्वासघात होने लगा था; फौशे (Fouche) तथा टेलीरैण्ड (Talleyrand) पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। २७ बिशपों के स्थान रिक्त थे। इससे चर्च के रुख का पता चलता था। सम्राट के भाई तक कृतघ्न थे। लुई बोनापार्ट (Louis Bonaparte) हालैण्ड राज्य में अपने दैवी अधिकारों की बात करने लगा था।

जहाँ तक नेपोलियन का सम्बन्ध है, वह एक लड़ाई हार चुका था और "वस्तुओं की प्रकृति" तथा एक अदृश्य भाग्य की बात करने लगा था जो उसके जीवन का पथ-प्रदर्शन कर रही थी। ये दोनों ही अशुभ संकेत थे।

फिर भी, नेपोलियन की प्रतिभा इतनी महान् और संगठन-शक्ति इतनी प्रभावशाली थी कि चाहे उसके साम्राज्य में कितनी भी दुर्बलताएं रही हों, यदि वह कुछ नई योजनाओं को अपने हाथ में नहीं लेता, तो वह अपनी समस्त वर्तमान कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता था। यदि वह रूस पर आक्रमण न करता तो, वह "एक यूरोपीय व्यवस्था, एक यूरोपीय विधान संहिता और एक यूरोपीय अपील-न्यायालय के आदर्श को", जिसका उसने बाद में सेंट हेलेना (St. Helena) में वर्णन किया था, प्राप्त कर सकता था। उस समय सारे यूरोप में एक ही लोग होते।

वैलिंगटन (Wellington) अकेले नेपोलियन को चालीस हजार आदमियों के बराबर समझता था। उसको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उसने स्वयं पिरेनीज को दुबारा पार नहीं किया। उसने पुर्तगाल से अंग्रेजों को निकालने के लिए मेसिना (Massena) को भेजा। यद्यपि वैलिंगटन ने फ्रांसीसियों को बुसाको (Busaco) में पराजित किया लेकिन उसे लिस्बन (Lisbon) से हट जाने के लिए विवश होना पड़ा। वहाँ वैलिंगटन (Wellington) ने टोरेस वेड्रास (Torres Vedras) की सुप्रसिद्ध त्रिरक्षा-पंक्तियों का निर्माण किया। इन रक्षा-पंक्तियो के बाहर की जगह को उसने बिलकुल निर्जन कर दिया जहाँ भोजन आदि कुछ नहीं मिल सकता था। रक्षा-पंक्तियों के अन्तर्गत उसने निवासियों, सेनाओं और रसद की व्यवस्था की। इस प्रतिरक्षा के सामने मेसेना

पुर्तगाल में असफलता

बुसाको (सितम्बर, १८१०)

टोरेस वेड्रास की रक्षा-पंक्तियाँ (अक्टूबर-नवम्बर, १८१०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Massena) के सारे प्रयास व्यर्थ गये। उसकी सेना भूख और रोग से परेशान हो गई। उसे अंडालुसिया (Andalusia) में साउल्ट (Soult) से सहायता आने की आशा थी, लेकिन वह पूरी नहीं हुई। विवश होकर फ्रांसीसी सेना मार्च १८११ में स्पेन चली गई।

फ्यूएण्टेस डी ऑनरो (१८११)

मई, १८११ में फ्यूएंटेस डी ऑनरी (Fuentes d' Onoro) में एक और पराजय मिली। नेपोलियन ने वहाँ से मेसिना (Massena) को हटाकर मारमंट (Marmont) को नियुक्त किया लेकिन पुर्तगाल की विजय धूल में मिल चुकी थी और ३५,००० व्यक्ति अपने प्राणों से हाथ धो चुके थे।

दूसरे वर्ष १८१२ में वैलिंगटन (Wellington) ने आक्रमण किया, लेकिन तब तक नेपोलियन रूस की लड़ाई में फँस चुका था। इस लड़ाई में न केवल यही आवश्यक था कि नेपोलियन स्वयं उपस्थित रहे, प्रत्युत यह भी आवश्यक था कि दूसरी लड़ाइयों से जो भी आदमी बच रहें, उन्हें रूस के मोर्चे पर भेज दिया जाए। इस तरह, स्पेन की लड़ाई सेनापतियो के ऊपर छोड़ दी गई, जो एक-दूसरे से ईर्ष्या रखते थे और राजा जोज़ेफ का लोहा नहीं मानते थे। जुलाई में सलामांका नामक स्थान पर वैलिंगटन ने मरामंट को पराजित कर मैड्रिड (Madrid) में प्रवेश किया, लेकिन जब वहाँ एक बार पुनः फ्रेंच सेना का कुछ काल के लिए संकेन्द्रण हुआ, तो उसे फिर पुर्तगाल की ओर हट जाने के लिए विवश हो जाना पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि वैलिंगटन अपनी विजय के फल से वंचित हो चुका था, लेकिन उसने एंडालुसिया को स्वतन्त्र कर दिया और अपनी सेना को १८१३ के विजयपूर्ण युद्ध के लिए तैयार रखा। इस लड़ाई में उसे स्पेन की सेनाओं का पूरा सहयोग मिला था। मई में वैलिंगटन वेलडोलिड (Valladolid) की ओर बढ़ा और वहाँ से विटोरिया (Vittoria) की ओर। यहाँ उसने जोज़ेफ तथा जोर्डन की, जो साउल्ट के स्थान पर भेजा गया था, सेनाओं को हरा दिया। जोज़ेफ ने लड़ाई छोड़ दी और वह सेंट-जीन-डे-लूज़ (Saint-Jean-de-Luz) की ओर भाग गया। नेपोलियन इससे बहुत नाराज हुआ। उसने साउल्ट को तुरन्त ही स्पेन वापस भेजा, लेकिन अब वह स्पेन पर पुनः विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहा। इस समय स्पेन में उसके १,५०,००० व्यक्ति फँस गए जिनकी उसे सैक्सनी में स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए ही बहुत आवश्यकता थी।

स्पेन की लड़ाई

सलामांका (जुलाई, १८१२)

विटोरिया (मई, १८१३)

लेकिन, वैलिंगटन के सामने अभी अत्यन्त कठिन कार्य था। मित्र देशों में फूट थी और उसकी सेना में अनुशासनहीनता दिखाई देती थी। इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों वह देश के अन्दर उत्तर की ओर बढ़ता जाता था, उसके सामने वहाँ की भौगोलिक कठिनाइयों की भी एक अलंघ्य दीवार खड़ी होती जाती थी। उसे केवल एक ही लाभ था, फ्रेंच सेनाओं में उसकी सेनाओं से भी ज्यादा भ्रष्टता फैल गई थी।

पिरेनीज की लड़ाइयाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे उसने अपने सामने की फ्रेंच सेनाओं को पीछे खदेड़ते हुए पिरेनीज़ को पार किया। उसे रास्ते में अनेक कठोर लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इन लड़ाइयों में

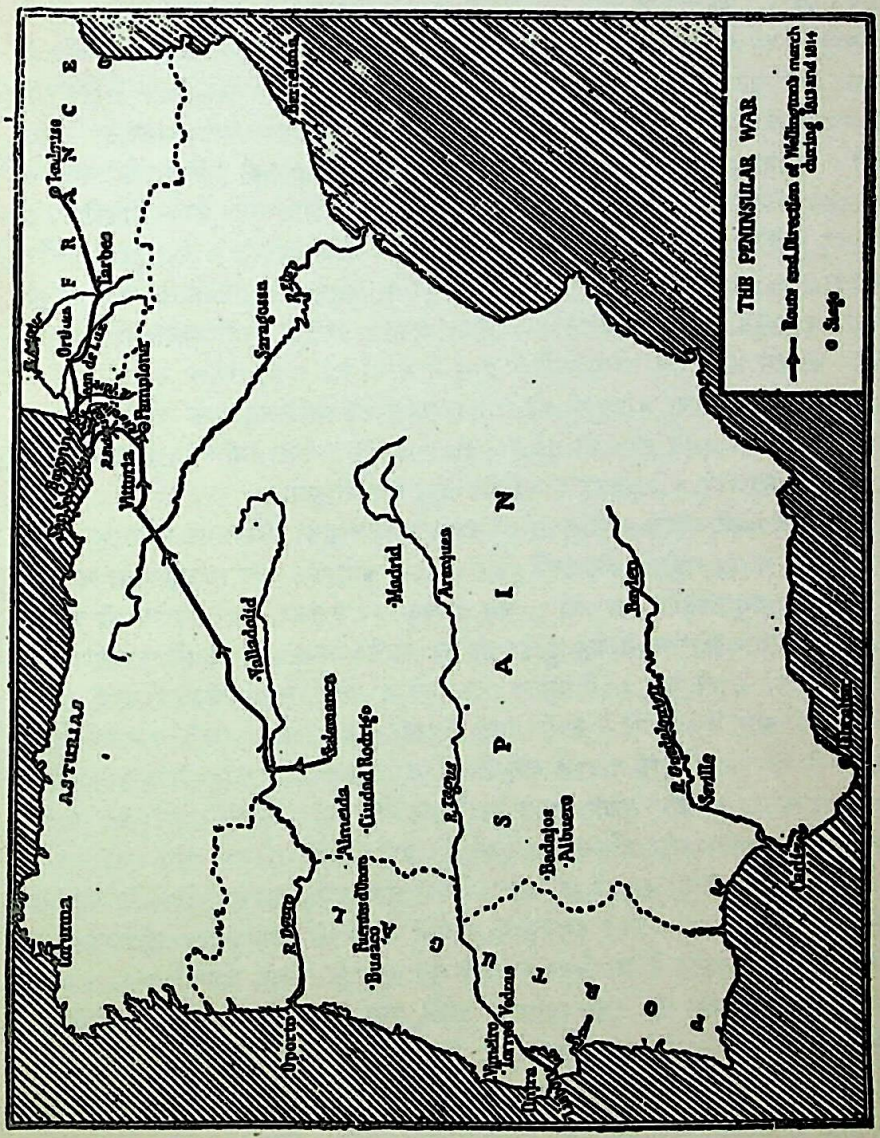

उसे स्थिति का केवल थोड़ा-सा लाभ था—इनमें से कुछ में तो उसकी पराजय ही समझनी चाहिए। अन्त में वैलिंगटन के कठोर अनुशासन, अदम्य इच्छा-शक्ति और अपार व्यावहारिक बुद्धि ने विजय प्राप्त की। यहाँ यह स्मरणीय है कि एक अन्य स्थल पर नेपोलियन स्वयं भी पराजित हो चुका था।

जून में वैलिंगटन ने तट पर सैन सेबास्टिअन (San Sebastian) और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन प्राचीरयुक्त शहर पैम्पलोना (Pamplona) को घेर लिया। सैन सेबास्टिअन को अगस्त में आकस्मिक आक्रमण द्वारा जीत लिया गया, लेकिन पैम्पलोना पर कहीं अक्टूबर में जाकर अधिकार हुआ। इसके बाद वैलिंगटन ने फ्रांस में प्रवेश किया। वहाँ उसने सौल्ट (Soult) को निवेली (Nivelle) की अपनी स्थिति छोड़ने के लिए विवश किया और बेयॉन (Bayonne) की घेराबन्दी के लिए आगे बढ़ा। उसने निवे (Nive) तथा सेंट पिअरे (Saint-Pierre) के विकट युद्धों और एडूर (Adour) के रास्ते से अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की। फरवरी, १८१४ में वैलिंगटन ने बेयॉन (Bayonne) की घेरेबन्दी को यथावत् छोड़कर सौल्ट (Soult) की सेना का पीछा किया। अब यह सेना पिरेनीज़ के निचले दर्रों से होकर पूर्व की ओर पीछे हट रही थी। ओर्थेज (Orthez) और टार्बेस (Tarbes) में छोटी-मोटी लड़ाइयाँ हुईं। तूलूस (Toulouse) के पास भी एक लड़ाई हुई जिसमें वैलिंगटन को किसी प्रकार विजयी नहीं माना जा सकता। फिर भी इस समय तक फ्रांसीसियों के हाथ से बाजी जा चुकी थी। उत्तर में मित्र-सेनाएँ पेरिस में प्रवेश कर चुकी थीं। ११ अप्रैल को नेपोलियन ने स्वयं सिंहासन त्याग कर दिया। १२ तारीख को तूलूस (Toulouse) और बेयॉन (Bayonne) ने हथियार डाल दिये। इस तरह प्रायद्वीपीय युद्ध समाप्त हुआ।

स्पेन की लड़ाई नेपोलियन की सबसे भयंकर भूलों और उनके पतन के प्रमुख कारणों में से एक रही। वह उसमें बिना सोचे-विचारे फँस गया। उसे मुख्य भरोसा विरोध की अनुपस्थिति का था। जब उसका विरोध हुआ, उसने विरोध की शक्ति को कम आँका। इंग्लैण्ड ने यह बुद्धिमत्ता का कार्य किया कि उसने प्रायद्वीप में लगातार युद्ध जारी रखा। वैलिंगटन का साहस और सेनापतित्व भी ऐसे तत्त्व थे जिनकी ओर नेपोलियन ने कोई ध्यान ही नहीं दिया था। जहाँ सम्राट् नेपोलियन ने एक बार लड़ाई प्रारम्भ कर दी थी वह पराजय स्वीकार किए बिना पीछे नहीं हट सकता था और यद्यपि उसने यह समझ लिया था, लेकिन फिर भी उसने अपनी सारी शक्ति और प्रतिभा इस कार्य में नहीं लगाई। वह स्पेन की विजय को पूर्ण किये बिना ही १८०९ में वहाँ से जल्दी चला गया, उसने १८१० में मेसिना को सहायता नहीं दी। उसने १८१२ में वहाँ से सौल्ट को हटा लिया और १८१३ में उसने जो कुछ हाथ से जा चुका था, उसे पुनः पाने के लिए जनशक्ति का अपव्यय किया। जोज़ेफ की मूर्खता और उसके सेनापतियों की ईर्ष्या ने उसकी भूलों के दुष्परिणामों को और भी भयंकर कर दिया था। स्पेन की लड़ाई में नेपोलियन के तीन लाख आदमी खेत रहे। उसे बदले में मिला क्या? केवल स्पेन राष्ट्र की घृणा।

नेपोलियन की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने स्पेन के सवाल का अन्तिम रूप से निबटारा किये बिना ही महाद्वीप की नई-नई योजनाओं में अपनी टाँग अड़ा दी। 'स्पेन का फोड़ा' नेपोलियन के संसाधनों पर दीर्घ काल तक बोझा बना रहा और स्पेन के प्रतिरोध ने यूरोप के देशों को निरन्तर प्रेरणा दी। इस संघर्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के फलस्वरूप स्पेन में भी अपूर्व जाग्रति उत्पन्न हो गई। यहाँ यह स्मरणीय है कि फ्रेंच क्रांति ने अन्य स्थानों पर तो जागरण की लहर पैदा की थी, लेकिन स्पेन में उसका कोई असर नहीं हुआ था। इस लड़ाई ने पुरातन शासन-व्यवस्था पर प्राणघातक प्रहार किया और जैसा कि फ्रांस के एक इतिहासकार ने लिखा है—"स्पेन छः वर्ष तक फ्रांस से लड़ने के बाद अपने पुनर्प्रतिष्ठित राजवंश के ऊपर फ्रेंच विचारों को लादने के लिए साठ वर्ष तक लड़ता रहा।"

१८१० और १८११ में नेपोलियन स्वयं अपने साम्राज्य के प्रशासन और इंग्लैण्ड के आर्थिक बहिष्कार की नीति को कार्यान्वित करने में लगा रहा। उसने नहरें और सड़कें बनवाईं, निर्माण-कार्यों को प्रोत्साहन दिया, विधियों को संहिताबद्ध किया, सार्वजनिक स्मारक और भवन बनवाए तथा अपने डोमीनियनों के भौतिक उत्थान का प्रयास किया। उसने नए-नए विजित प्रदेशों में कुछ उदारवादी आन्दोलनों को भी प्रोत्साहन दिया लेकिन उसने फ्रांस के अन्दर स्वतन्त्रता की गर्दन में और भी भारी जंजीरें डाल दीं।

महाद्वीपीय व्यवस्था का लागू करना

नेपोलियन के प्रजाजनों को उसके सामाजिक विधान से जो कुछ भौतिक लाभ हुआ था, उसका अधिकांश नेपोलियन की आर्थिक नीति के कारण निष्फल हो गया था, जिसे उसने इंग्लैण्ड के विरुद्ध लागू करने का प्रयास किया था। इस नीति का नेपोलियन के साम्राज्य के ऊपर बहुत बुरा असर पड़ा। नेपोलियन फ्रेंच क्रांति की विचार-धारा से घृणा करता था और उसने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भी उसी भौतिक भावना से विचार किया जिससे कि वह धर्म पर विचार करता था। वह लुई चौदहवें (Louis XIV) और कॉल्बर्ट (Colbert) के इस विचार से सहमत था कि देश की व्यापारिक समृद्धि उसके निर्यातों के ऊपर निर्भर होती है। नेपोलियन की आर्थिक नीति काफी हद तक लुई चौदहवें की नीति की भाँति थी। उसने इंग्लैण्ड और उसके उपनिवेशों के निर्यातों को यथासंभव यूरोप से बाहर रखने की चेष्टा की। उसने निषेधपरक शुल्क (Prohibitive duties) लगा दिये। उसने बहुत से सीमाशुल्क अधिकारी नियुक्त किए जिनसे वह अत्यधिक सतर्कता और टैक-नोकल ज्ञान की माँग करता था। उसने उपनिवेशों के सामान के गोदामों को नष्ट करने का आदेश दे दिया। इन उपायों से उसने इंग्लैण्ड के व्यापार को भारी नुकसान पहुँचाया। लेकिन, नेपोलियन ने महाद्वीप का और फ्रांस तक का गेहूँ इंग्लैण्ड जाने दिया। इस तरह, नेपोलियन ने उस एकमात्र खतरे को छोड़ दिया जिसके द्वारा इंग्लैण्ड झुक सकता था। इसका कारण यह था कि इंग्लैण्ड के अन्दर फसल तो कम होती थी, लेकिन उसकी जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही थी। इस तरह यदि उसके पास किसी भी तरह खाने को सामान नहीं पहुँचता, तो वह भूख से मर जाता। जब तक इंग्लैण्ड की नाविक शक्ति महान् थी, अन्य किसी देश में इतनी ताकत नहीं थी कि वह उसके निर्यात-माल को पकड़ सके। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड का माल बढ़िया होता था और वह चोरी-छिपे सारे महाद्वीप में पहुँचता रहा। माल को चोरी-छिपे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने-ले-जाने के लिए सब तरह की तरकीबें काम में लाई गईं। शव-यात्राओं की संख्या में अचानक ही बहुत ज्यादा वृद्धि हो गई। बाद में पता चला कि अर्थियों में तो शक्कर भरी रहती थी। शक्कर, तम्बाकू, कॉफी, कपास तथा अन्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि हो जाने से महाद्वीप की जनता को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इससे इंग्लैण्ड को सदैव हानि पहुँचती थी। हालैंड पूर्ण रूप से एक व्यापारिक राष्ट्र था। महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) का उसके ऊपर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि उसके राजा ने जो नेपोलियन का भाई था, साम्राज्यीय आज्ञप्तियों को लागू करना अस्वीकार कर दिया। इस पर नेपोलियन ने हालैण्ड, ओल्डेनवर्ग की डची और वलाइस को फ्रांस में मिला लिया। इस प्रकार, १८१२ में बृहत्तर फ्रांस बाल्टिक में लुबेक (Lubeck) से लेकर रोम के दक्षिण में कई मील तक फैला हुआ था।

व्यापारिक प्रश्न ने ही फ्रांस और रूस का सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। यह स्पष्ट था कि अब पूर्व और पश्चिम के सम्राटों की संधि क्षीण होती जा रही थी। आस्ट्रिया की लड़ाई में एलैक्जैंडर ने नेपोलियन को आधे मन से सहायता दी थी। इसके अतिरिक्त नेपोलियन ने ज़ार के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था कि वह अपनी बहन का उसके साथ विवाह कर दे। ज़ार ने नेपोलियन के उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। इन कारणों से नेपोलियन ज़ार से बहुत नाराज था और उसने ज़ार के साथ अपने सम्बन्ध-विच्छेद को केवल भाग्य का खेल माना तथा इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया।

ज़ार और नेपोलियन की कुछ काल के लिए जो मित्रता हो गई थी, उसके अनेक कारण थे—ज़ार इंग्लैण्ड से रुष्ट हो गया था; वह नेपोलियन के व्यक्तित्व के प्रति बहुत आकृष्ट हो गया था और वह रूस की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करना चाहता था। लेकिन रूस में एक पक्ष सदैव ऐसा रहा था जो इसका कट्टर विरोधी था। एलैक्जैंडर स्वयं भी धीरे-धीरे इस नीति की निष्फलता समझ रहा था। इस समय रूस अपनी महत्त्वाकांक्षाओं या नेपोलियन के स्वार्थों के कारण पाँच लड़ाइयों में फँसा हुआ था—ईरान, तुर्की, स्वीडन, इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया के साथ। नेपोलियन ने तुर्की में रूस की सहायता करने का वचन दिया था लेकिन वह अपने इस वचन को पूरा नहीं कर सका था। यह भी स्पष्ट था कि प्रायद्वीपीय युद्ध ने तुर्की के विभाजन को अनिश्चित काल के लिए टाल दिया था। रूस ने स्वीडन से फिनलैंड पाया था। लेकिन चूंकि यह उसे नेपोलियन के हाथों मिला था, अतः इसका बहुत कुछ आकर्षण नष्ट हो गया था। जहाँ तक इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया के साथ युद्ध का प्रश्न है, रूस को इंग्लैण्ड के साथ युद्ध के परिणामस्वरूप तो व्यापारिक कष्ट उठाना पड़ा था और आस्ट्रिया के साथ युद्ध के परिणामस्वरूप उसे येलीशिया मिला था जो महत्त्वहीन पारितोषिक था।

नेपोलियन ने ओल्डेनबर्ग (Oldenburg) को जीत लिया, एलैक्जैंडर इससे भी बहुत कुछ हुआ क्योंकि वहाँ के शासक का उसकी बहन के साथ विवाह हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८०९ में वार्सा की ग्रांड डची का जो विस्तार हुआ था और जिसके फलस्वरूप पोलैण्ड के राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन मिला था, एलैक्जैंडर इससे सशंकित हो गया था। उसने नेपोलियन से यह सार्वजनिक शपथ माँगी कि वह पोलैण्ड के राज्य का कभी पुनरुत्थान नहीं करेगा, लेकिन नेपोलियन ने यह शपथ देना अस्वीकार कर दिया।

इस तरह, ऐसी बहुत सी बातें हो गई थीं जिनसे दोनों सम्राट् एक-दूसरे को सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे थे। नेपोलियन ज़ार की बढ़ती हुई शक्ति और स्वतन्त्रता से रुष्ट था और फ्रेंच साम्राज्य के अनिश्चित विस्तार से सशंकित था।

लेकिन रूस और फ्रांस की लड़ाई छिड़ने का प्रधान कारण रूस की सीमा-शुल्क सम्बन्धी कठिनाइयाँ थीं। एलैक्जैण्डर स्थानीय कारणों से ब्रिटिश निर्याप्त के अवरोध को ज्यादा समय तक नहीं मान सकता था। अक्टूबर १८१० में उसने ज़ार से प्रार्थना की कि वह रूस के समुद्रों में पाए जाने वाले समस्त तटस्थ जहाजों को इस आधार पर पकड़ ले कि वे नकली प्रमाण-पत्रों के सहारे इंग्लैण्ड का सामान महाद्वीप में ले आए हैं। एलैक्जैण्डर ने यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी और दिसम्बर में एक विज्ञप्ति निकाल दी जिसके द्वारा तटस्थ जहाजों को सुविधा दी और शराब तथा सिल्क जैसी विलास वस्तुओं पर, जो फ्रांस की होती थीं, भारी कर लगा दिए। नेपोलियन ने इसको युद्ध की घोषणा माना यद्यपि उसने विवाद का आधार पोलैण्ड को ठहराने का प्रयास किया। अप्रैल, १८१२ में लड़ाई प्रारम्भ हो गई।

ऐसा मालूम पड़ता है कि नेपोलियन ने रूस की लड़ाई को बड़े चाव से प्रारम्भ किया था। उसने कहा था, "मास्को भारत पहुँचने के मार्ग का मध्य बिन्दु है।"

रूस की लड़ाई (जून-दिसम्बर १८१२)

नेपोलियन ने फिर से ६,००,००० सिपाहियों की एक विशाल सेना एकत्रित की। इसमें आधे सिपाही तो फ्रांस के थे और शेष जर्मनी, इटली, पोलैण्ड, इलीरिया, स्विट्जरलैण्ड, हालैण्ड और कुछ पुर्तगाल एवं स्पेन के थे। अन्य देशों के सिपाहियों को भरती करने का कारण यह था कि फ्रांस के आधे सिपाही स्पेन में फैले हुए थे। नेपोलियन की इस विशाल वाहिनी के पास हथियार और रसद अपार मात्रा में थी। आस्ट्रिया और प्रशा ने भी नेपोलियन को कुछ सैनिक सहायता दी थी। पोलैण्ड ने भी नेपोलियन को रूस के विरुद्ध ६०,००० सैनिकों की सहायता दी थी। लेकिन, उद्धत बर्नडौट (Bernadotte) ने, जो स्वीडन का युवराज चुन लिया गया था, एलैक्जैंडर (Alexander) से समझौता कर लिया था। तुर्की ने भी फ्रांस की सहायता नहीं की।[1]

मास्को पर आक्रमण नेपोलियन के पतन की महान् ट्रेजेडी में पहला ऐक्ट था।[2]

---

१. मई, १८१२ में रूस और तुर्की के बीच सन्धि हो गई थी।

२. टालस्टाय के '*War and Peace*' उपन्यास में इसका अत्यन्त सुन्दर और सजीव वर्णन हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस पर आक्रमण करने के पूर्व सम्राट् ने ड्रेस्डेन (Dresden) में एक बहुत बड़ा उत्सव किया था। उस उत्सव में जर्मनी के सभी प्रमुख राजा, आस्ट्रिया के सम्राट् और प्रशा के राजा नेपोलियन से मिलने के लिए आए। नेपोलियन ने अपने सैक्सन सामन्त की राजधानी में सबका उचित स्वागत सत्कार किया। उसने अपने "श्वसुर सम्राट को प्रतिदिन लेकिन प्रशा के राजा और कैसल के अधिपति को एक दिन छोड़कर, मानो वे हीन श्रेणी के व्यक्ति हों, भोजन के लिए आमन्त्रित किया।"

नेपोलियन ने रूसी अभियान का श्रीगणेश बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक किया। गर्मी के मौसम में एक दिन सुबह नेपोलियन की सेना ने कोवनो (Kovno) पर नीमल नदी का पुल पार किया और लिथुआनिया (Lithuania) के मरुस्थल में प्रवेश किया। रूस में नेपोलियन को कुछ ऐसे तत्त्वों का सामना करना पड़ा जिनके सामने उसकी कुछ भी नहीं चल सकती थी। वे तत्त्व थे जनता का धार्मिक राष्ट्रवाद, प्राकृतिक बाधाएँ, स्टेपीज़ के मैदान, उबड़-खाबड़ जमीन, सर्दी, भूख और रोग। वास्तव में रूस एक ऐसा देश है "जहाँ स्पेन की अपेक्षा इस बात की अधिक सम्भावना है कि छोटी सेनाएँ तो पराजित हो जाती हैं और बड़ी सेनाएँ भूखों मरती रहें।" नेपोलियन ने जिस ढंग से रूस में प्रवेश किया था, उसकी अक्सर काफी आलोचना की गई है। एक रूसी कैदी ने तो चार्ल्स बारहवें (Charles XII) की चेतावनी तक की ओर ध्यान दिला दिया था। लेकिन नेपोलियन को यह आशा नहीं थी कि स्पेन की भाँति रूस में भी उसका दृढ़ और अनवरत विरोध होगा। उसका विचार था कि जार एक लड़ाई से ही ठीक हो जाएगा। नेपोलियन का यह संकल्प पूरा भी हो जाता लेकिन

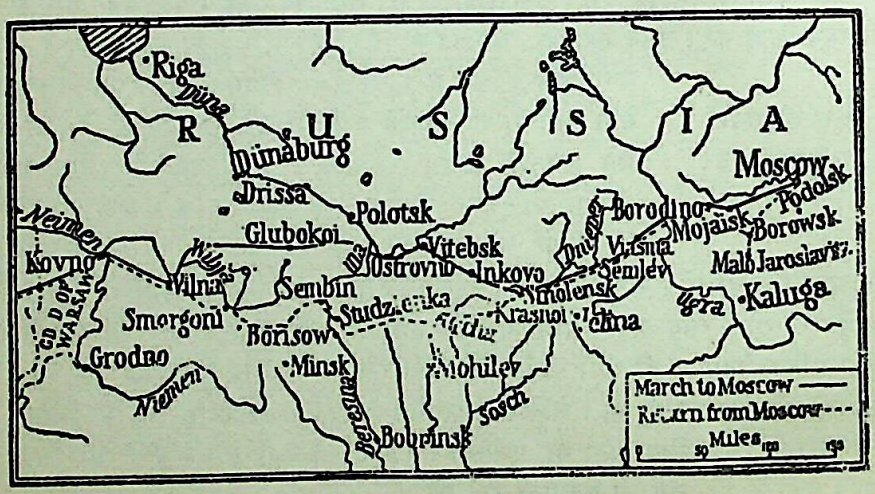

नेपोलियन का रूस से युद्ध

जेरोम बोनापार्ट (Jerome Bonaparte) की बाधक नीति के कारण ऐसा न हो सका। इस अपराध के फलस्वरूप बाद में जेरोम को अपदस्थ भी कर दिया गया। लेकिन पाँच लाख सैनिकों से भी ज्यादा के सामने रूसियों के लिये पीछे हटने के अलावा और चारा ही क्या था? रूसी शुरू-शुरू में तो डर के कारण पीछे हट रहे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Vilna) से स्मोलेंस्क (Smolensk) होकर देश के अन्दर बढ़ता गया, सिपाही और किसान उसके सामने से निरन्तर पीछे हटते गये। उन्होंने अपने अन्नागारों और शहरों को जला दिया। स्मोलेंस्क पहुँचने पर नेपोलियन को ज्ञात हुआ कि अब पीछे लौटना तो मुश्किल है। इस पर नेपोलियन ने मास्को (Moscow) तक बढ़ने का निश्चय किया यद्यपि परिवहन की कठिनाइयाँ थीं, भोजन की कमी थी, बहुत सा सामान, जिसमें से कुछ इंग्लैण्ड से आने को था, अभी तक नहीं आ पाया था, आदमी पेचिश से और घोड़े निकृष्ट चारे के कारण मर रहे थे, सेना में अव्यवस्था फैल रही थी और सेलामाँका (Salamanca) की पराजय का समाचार आ चुका था। बोरोडिनो (Borodino) में कुटुसोफ (Kutusoff) की सेना ने नेपोलियन का सामना किया।

बोरोडिनो

किन्तु उसकी सेना को भंयकर कत्ले-आम का सामना करना पड़ा। इस लड़ाई में १,००,००० आदमी खेत रहे। इस विजय के फलस्वरूप मास्को नेपोलियन के हाथों में आ गया। नेपोलियन को मास्को बहुत "सुन्दर और जादूभरा शहर" लगा। नेपोलियन ने उसके प्रति बड़े कोमल भाव का अनुभव किया, "वह शहर, जिस पर शत्रु ने अधिकार कर लिया है, उस स्त्री की तरह है जो अपनी इज्जत खो चुकी है।" नेपोलियन उदार होने और दासों को स्वतंत्र करने के लिए तैयार था। नेपोलियन इस

मास्को

बात के लिए तैयार था कि जिस तरह उसने काहिरा में इस्लाम को और फ्रांस में कैथोलिक धर्म को संरक्षण दिया था, उसी तरह रूस में रूस के धर्म को संरक्षण प्रदान करे। १४ सितम्बर को उसने मास्को में प्रवेश किया, लेकिन मास्को बिल्कुल खाली पड़ा था जिससे कि "भेड़िया जाल में फँस जाये"। रूस की प्राचीन और पवित्र राजधानी आग से नष्ट कर दी गयी थी। यह काण्ड वहाँ के लोगों ने जान-बूझकर किया था जिससे कि नेपोलियन और उसकी सेना को कठिनाई हो। मास्को में नेपोलियन ने इस बात की प्रतीक्षा की कि एलैक्जैंडर की ओर से शांति का प्रस्ताव आये। इस बीच में वह स्वयं पेरिस की कमेडी फ्रेंकइस (*Comedie Francaise*) के पुनर्गठन में व्यस्त रहा। लेकिन सेंट पीटर्सबर्ग से कोई प्रस्ताव नहीं आया क्योंकि वहाँ दो व्यक्ति जार के संकल्प को मजबूत कर रहे थे। इनमें से एक तो स्वीडन का निर्वाचित नरेश बर्नाडोट (Bernadotte) था जो ब्रूमेयर के दिनों से ही नेपोलियन से ईर्ष्या करता रहा था। दूसरा जर्मनी का कट्टर देशभक्त तथा प्रशा का संगठनकर्त्ता बेरन वॉन स्टीन (Baron Von Stein) था। नेपोलियन ने स्टीन को चार वर्ष पूर्व कानून बहिष्कृत करके ऐलैक्जैण्डर के दरबार में भेज दिया था।

अब अक्टूबर आ गया। नेपोलियन को फ्रांस में षड्यन्त्रों का और यूरोप में एक नये गुट के निर्माण का भय था। फिर वह जाड़े में रूस में नहीं रहना चाहता था। उसने अपनी सेना को पीछे लौटने का आदेश दिया।

प्रत्यावर्तन

इस तरह, इतिहास की सबसे दुःखपूर्ण यात्राओं में से एक शुरू हुई। तभी नवम्बर आ गया और बर्फ पड़ने लगी। सेना बड़ी कठिनाई से पश्चिम की ओर वापस लौटी। उसकी स्थिति बहुत दयनीय थी। कपड़े फटे हुए थे। उसके पास न खाना था और न ठहरने की जगह थी, उसके सामने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की ही इतनी कठिनाइयाँ थी कि उसकी दृष्टि में मानव-शत्रु बिलकुल उपेक्षणीय हो गये थे। उसने अपने शस्त्रास्त्रों को फेंक दिया। जिनके पास घोड़े थे, उन्होंने अपने भोजन के लिए उन्हें मार डाला और वे पैदल चले। सेना का अनुशासन टूट गया और सिपाहियों ने एक-दूसरे को लूट लिया। बीच-बीच में रूसी सिपाही फ्रेंच सेना पर छापा मारते रहते थे और काफी फ्रेंच सिपाहियों को तलवार के घाट उतार देते थे। बहुत से आदमी सर्दी से मर गये। यदि वे कहीं रात को विश्राम करते थे, तो सुबह सैकड़ों लाशें बर्फ़ से जमी दिखाई देती थीं।

उक्त आपदाओं के अतिरिक्त १२,००० आदमियों को बाढ़ खा गई। इससे अन्दाजा हो सकता है कि फ्रांसीसी सेना को वापस लौटते समय कितनी आपदाओं का सामना करना पड़ा। गिरते-पड़ते दिसम्बर के मध्य में २०,००० आदमियों ने कोव्नो (Kovno) नदी का पुल पार किया। ६ लाख व्यक्तियों में से, जो छः महीने पूर्व रूसी अभियान में शामिल हुए थे, कुल इतने ही आदमी बच रहे थे। कुछ सैनिक पीछे रह गये थे। एक-दो टुकड़ियाँ नदी के उस पार थीं और प्रायः १,००,००० आदमी रूसी जेलों में बन्द थे।

२९वें बुलेटिन में कहा गया था, "ग्रांड आर्मी नष्ट हो चुकी है। सम्राट का स्वास्थ्य इससे अच्छा कभी नहीं रहा।" अपनी सेना को पीछे छोड़कर नेपोलियन गुप्त वेष में जर्मनी के रास्ते पेरिस में पहुँचा। वहाँ उसने अपनी मृत्यु का समाचार असत्य प्रमाणित किया, षड्यन्त्र को दबा दिया और एक नई सेना एकत्रित की। कुछ बातों में तेरह साल पहले की घटनाओं की फिर से आवृत्ति होती मालूम पड़ती थी।

मास्को-प्रत्यावर्तन ने नेपोलियन के शत्रुओं में एक ऐसा भाव पैदा कर दिया जैसा यूरोप में क्रूसेड्स के बाद से कहीं दिखाई दिया था। सबसे पहले स्पेन ने, फिर रूस ने और अब जर्मनी ने अपना सिर उठाया। यार्क

[स्वातंत्र्य-युद्ध (१८१३)

(Yorck) ने, जो नेपोलियन की सेना में प्रशा की टुकड़ी का प्रधान था, अपने उत्तरदायित्व पर ज़ार के साथ, जिसने यूरोप को स्वतन्त्र करने की प्रतिज्ञा की थी, एक समझौता किया। पूर्वी प्रशा के प्रदेशों ने भी युद्ध की माँग की। प्रबल राष्ट्रीय भावना तथा स्टील के जोर देने पर फ्रेडेरिक विलयम तृतीय (Frederick William III) ने ज़ार के साथ मिलना स्वीकार किया। फरवरी में उसने अपनी जनता के नाम एक अपील निकाली। इस अपील का तुरन्त जवाब मिला।[1] हजारों स्वयंसेवक लड़ाई के लिए तैयार हो गए। प्रति सत्रह व्यक्तियों में एक व्यक्ति शस्त्रसज्जित था। सेना में हर तरह के आदमी थे, पुराने

---

१. जेना के बाद प्रशा में नवजीवन की लहर दौड़ गयी थी। स्टीन (Stein) और स्कार्नहर्स्ट (Scharnhorst) ने राज्य और सेना का पुनर्गठन किया था। सर्फों को स्वतन्त्रता दी गई थी। उद्योग और वाणिज्य पर से अनेक प्रतिबन्ध हटा दिए गए थे। नगरों को पहले से अधिक शक्ति दे दी गई थी। सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी। १८१२ में बर्लिन विश्वविद्यालय स्थापित किया गया और देश में बौद्धिक जागरण भी हुआ। स्टीन को नेपोलियन ने देश-निकाला दे दिया था। वह एलैक्जेंडर के पास रहकर उसे विरोध के लिए उकसाता रहता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही, छात्र, अध्यापक, स्कूल के लड़के, खनिक और राजकुमार। "किसान ने अपने खेत को और कारीगर ने अपने काम को छोड़ दिया।" अकिंचन स्त्रियों ने अपनी सोने की विवाह-मुद्रिकाएँ राष्ट्रीय दान के रूप में दीं। कवियों ने गीत बनाए। जिस प्रकार २९ फ्रांसीसियों ने मार्सेलीज (Marseillaise) को गाते हुए लड़ाई के लिए प्रस्थान किया था, उसी प्रकार अब जर्मनों ने आर्न (Arndt) युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

अब नेपोलियन उस भावना के विरुद्ध लड़ रहा था, जिसका उसने एक बार स्वयं अपने लाभ के लिए प्रयोग किया था। जिन शस्त्रों का उसने यूरोप के पुराने राजवंशों के विरुद्ध प्रयोग किया था, अब वे स्वयं उसी के विरुद्ध पड़ रहे थे। नेपोलियन ने अपने वीरतापूर्ण प्रयासों द्वारा २,००,००० व्यक्तियों को युद्धक्षेत्र के लिए तैयार कर दिया। इनमें से अधिकांश लोग तरुण थे और उन्हें समय से पूर्व ही लड़ाई के लिए बुला लिया गया था। सैक्सनी में लड़ाई हुई और वहीं नेपोलियन के पतन की ट्रेजेडी का दूसरा ऐक्ट पूरा हुआ। नेपोलियन ने मई, १८१३ में लुट्जन (Lutzen) और बौट्जन (Bautzen) में दो विजयें प्राप्त कीं। इससे यह आश्वासन मिलता था कि अब शायद अन्तिम रूप से नेपोलियन जीत जाए। लेकिन इसका कुछ विशेष फल नहीं निकला, सिवाय इसके कि सैक्सनी का अस्थिर-चित्त राजा नेपोलियन की ओर हो गया, लेकिन इससे आगे चलकर नेपोलियन के ऊपर ही विपत्ति आई। लुट्जन और बौट्जन की लड़ाइयों के बाद युद्ध-विराम हो गया।

सैक्सनी का युद्ध

लुट्जन और बौट्जन

आस्ट्रिया के रुख पर बहुत कुछ निर्भर था। रूस, प्रशा, स्वीडन और इंग्लैंड ने नेपोलियन के विरुद्ध जिस गुट का निर्माण किया था, आस्ट्रिया उसमें शामिल होने से हिचकता रहा था। आस्ट्रिया ने नेपोलियन से इलीरियन प्रान्तों की माँग की, लेकिन नेपोलियन ने उन्हें देना स्वीकार नहीं किया। इस पर अगस्त में आस्ट्रिया ने युद्ध की घोषणा कर दी। इसलिए जब लड़ाई फिर से प्रारम्भ हुई, साइलेशिया में ब्लूशर (Blucher) की अधीनता में रूस और प्रशा की एक सेना आ रही थी, दक्षिण से ड्रेस्डेन के ऊपर आस्ट्रिया की सेना ने आक्रमण कर दिया था। सेक्सनी की राजधानी से बाहर नेपोलियन ने आस्ट्रियनों के विरुद्ध अपनी अन्तिम महान् विजय अर्जित की। लेकिन उसके पास इतने आदमी नहीं थे कि वह अपने शत्रुओं को दूर तक खदेड़ देता। चारों ओर से उसके सहायकों की पराजय के समाचार आने लगे। ग्रोसबीरेन (Grossbeeren), कैटजबैच (Katzbach) और डैनेविट्ज (Dennewitz) में उसकी सेनाएँ पराजित हो गईं। नेपोलियन के सामने बाधाओं का पहाड़-सा खड़ा था और वह निरंतर ऊँचा होता जा रहा था। विनाश का जो दैत्य नेपोलियन के निगलने के लिए बढ़ा चला आ रहा था, अब किसी एक विजय से इसको रोका नहीं जा सकता था। धीरे-धीरे मित्र देशों की सेनाएँ उसके पास आ

चौथा गुट

ड्रेस्डेन (अगस्त, १८१६)

लिप्जिग, "राष्ट्रों का युद्ध" (अक्टूबर, १८१३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धमकीं, उसके सैनिकों ने हथियार डाल दिए और उसे लिप्जिग (Leipzig) की ओर हट जाने के लिए विवश होना पड़ा। वहाँ अक्टूबर के बीच में चार दिन तक जम कर लड़ाई हुई। इस लड़ाई को "राष्ट्रों की लड़ाई" कहा गया है। इसमें यूरोप का सबसे महान् सैनिक विजेता पराजित हो गया। फ्रांस की सेना थकी-माँदी और क्षीण थी। उधर शत्रु सेना में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। फ्रांस की सेना को घुटने टेकने पड़े। नेपोलियन की सेना में सैक्सनी का जो रेजीमेंट था, वह भी शत्रु से जा मिला। इन विषम परिस्थितियों में युद्ध का परिणाम नेपोलियन की पराजय के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता था। दिन के चार बजे नेपोलियन ने अपनी सेना को पीछे लौट जाने की आज्ञा दी। कहा जाता है कि रात के ९ बजे एक नाटा आदमी "विचित्र वेशभूषा में" विचारमग्न खड़ा था। वह अस्फुट स्वर में *Malbrouck s'en va-t-en guerre* कह रहा था और अपनी सेना का प्रत्यावर्तन देख रहा था।

लिप्जिग (Leipzig) की पराजय के साथ ही साथ नेपोलियन की सारी इमारत धड़ाम से गिर पड़ी। बवेरिया (Bavaria) और वुर्टेमबर्ग (Wurttemberg) पहले से ही शत्रु से जा मिले थे। राइन का परिसंघ (Confederation of the Rhine) और वेस्टफेलिया का राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया था। रेनिश प्रान्तों पर प्रशा ने अधिकार कर लिया, अन्तिम सेनाओं ने हथियार डाल दिए और बाल्टिक के शहरों के भी विजेता का जुआ उतार फेंका। राज्यों ने अपने बन्दरगाह इंग्लैंड के लिए खोल दिए और महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) नष्ट हो गई। डेन्मार्क ने मित्र-देशों के साथ सन्धि कर ली। जर्मनी के शासकों ने भी अपने लिए सन्धि की शर्तें तय करने में शीघ्रता की। हालैंड ने विद्रोह कर दिया और ओरेंज के राजा (Prince of Orange) की अधीनता में एक कार्यवाहक सरकार (Provisional Government) का निर्माण किया। जेरोम बोनापार्ट भाग गया, नैपिल्स का राजा मुरत (Murat) और उसकी स्त्री कैरोलाइन (Caroline), जो नेपोलियन की बहन थी, शत्रु से जा मिले। अकेला यूजेन (Eugene) ही, जिसकी माँ को नेपोलियन ने तलाक दे दिया था जिससे कि वह राजवंश स्थापित कर सके, इटली में स्वामिभक्त बना रहा।

लेकिन नेपोलियन की अदम्य इच्छा अभी झुकी नहीं थी। यद्यपि फ्रांस का विधान-मंडल और राज्य परिषद् (Council of State) शान्ति की माँग कर रहे थे, यद्यपि मित्रदेश फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) से सन्धि की शर्तें दे रहे थे, फिर भी नेपोलियन उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। ये शर्तें थीं : नेपोलियन का सिंहासन पर अधिकार बना रहे और बेल्जियम, सेवॉय तथा राइन की सीमा पर फ्रांस का प्रभुत्व रहे। बाद के इतिहास को देखते हुए ये शर्तें काफी अनुकूल थीं। नेपोलियन बड़ी सावधानी से पीछे हट गया था और उसका कहना था कि "अगले मई तक मैं राइन के किनारे ढाई लाख आदमी खड़े कर दूंगा।" नेपोलियन अपनी पराजय स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था क्योंकि उसका विचार था कि इसका अभिप्राय तो उसकी शक्ति का विनाश होगा। उसने अगस्त में मेटरनिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Metternich) से कहा था, "मैं हाथ भर ज़मीन देने के स्थान पर मर जाना ज्यादा पसन्द करूंगा। आपके जन्मजात राजा बीस ार पराजय स्वीकार कर सकते हैं और अपने स्थानों पर वापस जा सकते हैं। मैं तो भाग्य की औलाद हूं और ऐसा नहीं कर सकता। जिस दिन मैं शक्तिशाली नहीं रहूँगा, जिस दिन लोग मुझसे भयभीत नहीं रहेंगे, मेरी शक्ति उसी दिन समाप्त हो जायेगी।" साम्राज्य के पहले दिन से ही नेपोलियन के मन में यह विचार घर कर गया था। इस विचार ने उसे जन्मभर नई-नई लड़ाइयाँ दीं और अन्त में आग्रहपूर्ण प्रतिरोध की प्रेरणा दी।

फ्रांस में प्रतिरक्षात्मक लड़ाई

इस तरह, मित्र-देशों को पेरिस तक पहुँचने के लिए सीन (Seine) और मार्ने (Marne) की घाटियों में एक लड़ाई और लड़नी पड़ी। यह बहुत जोरदार लड़ाई थी। इसने नेपोलियन के कुशल सेनापतित्व और साधनपूर्ण युद्ध-नीति को फिर से एक बार प्रदर्शित किया। वैलिंगटन (Wellington) की सेना के अतिरिक्त, जिसने पिरेनीज़ (Pyrenees) को पार कर लिया था, उत्तर और पूर्व से तीन सेनाओं ने फ्रांस पर और आक्रमण किया। बुलो (Bulow) बेल्जियम से सेना लेकर, ब्लूशर (Blucher) राइन से रूस और प्रशा की सम्मिलित सेना लेकर, और श्वार्ज (Schwarz) स्विट्जरलैंड एवं बेसेल से आस्ट्रिया की सेना लेकर फ्रांस पर आ धमके। नेपोलियन कभी एक सेना पर झपटता और कभी दूसरी पर। फरवरी में ब्लूशर (Blucher) ने उसे ला रोथीर (La Rothiere) में पराजित कर दिया। कुछ समय के लिए नेपोलियन ऐसी शर्तों को मानने के लिए तैयार हो गया जिनसे उसका सिंहासन बचा रहता। लेकिन दूसरे ही दिन उसने फिर हिम्मत बाँधी और ब्लूशर से प्रतिशोध लेने का संकल्प किया। तदनुसार नेपोलियन ने कुछ ही दिनों में आस्ट्रिया और प्रशा की सेना को लगातार तीन बार हराया। इससे प्रतीत होने लगा कि शायद अन्त में नेपोलियन फिर जीत जाए। आस्ट्रियन कुछ घबरा से गए लेकिन ब्लूशर अडिग रहा। नेपोलियन की सेना छोटी ही थी और वह लड़ाई करते-करते थक-सी गई थी। उधर फ्रांस की शत्रु-सेना में निरन्तर वृद्धि ही होती जाती थी। ऐसी स्थिति में नेपोलियन के लिए विजय प्राप्त करना काफी मुश्किल हो गया था। अन्त में उसने एक आखिरी दाँव लगाने का निश्चय किया। उसने लोरेन (Lorraine) को पार करने की, शत्रु के संचार-साधनों को काट देने की और यदि हो सके तो उसकी सेना को भी दो भागों में विभक्त करने की सोची। लेकिन नेपोलियन की यह चेष्टा विफल हो गई। मित्र-देशों ने इससे भी अधिक भयंकरता के साथ पेरिस पर आक्रमण किया। ३० मार्च को उन्होंने मोंटमार्ट्रे (Montmartre) पर अधिकार कर लिया और फ्रांस की राजधानी ने ज़ार के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया।

नेपोलियन जल्दी में फौंटेनब्ल्यू (Fontainebleau) वापस लौटा, लेकिन सीनेट और विधानमण्डल उससे सिंहासन-त्याग की माँग कर रहे थे। भूतपूर्व सम्राज्ञी जोज़ेफाइन (Josephine) की वीरतापूर्ण मंत्रणा की उपेक्षा कर रोम के राजा (King of Rome) के साथ ब्लोइस (Blois) भाग गई थी। टैलीरैंड (Talleyrand) मित्र-देशों के परामर्श से बूरबनों को फिर से सिंहासन पर बैठाने की तैयारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा था। फौशे (Fouche), टेलीरैंड (Talleyrand) के सहयोग से स्वयं को नई व्यवस्था का प्रधान बनाना चाहता था। उसने अपने आप सुझाव दिया कि नेपोलियन अमेरिका चला जाये। मार्शल भी एक-एक करके नेपोलियन का साथ छोड़ते जा रहे थे। मार्मेण्ट (Marmont), जो तूलों (Toulon) के दिनों से ही नेपोलियन के साथ रहा था, ऑगरे (Augereau) जो इटली-युद्ध का विजेता था, नी (Ney) जो मास्को से वापस लौटती बार पिछले भाग की सेना को सम्हाले रहा था, और बर्थियर (Berthier) तक ने—अस्थायी सरकार (Provisional Government) के आगे घुटने टेक दिए। ११ अप्रैल को नेपोलियन ने अपने और अपने पुत्र की ओर से सिंहासन त्याग दिया। २० तारीख को उसने अपने रक्षक दल से विदा माँगी, साम्राज्य-प्रतीकों का चुम्बन किया और अपने सैनिकों को अश्रुसिक्त छोड़कर एल्बा के द्वीप की ओर चल दिया जो उसके राज्य करने के लिए निश्चित किया गया था। नेपोलियन की अनुपस्थिति में बर्किंघमशायर से एक स्थूलकाय व्यक्ति ने फ्रांस के सिंहासन पर बैठने के लिए प्रस्थान किया।

नेपोलियन का पहला सिंहासन-त्याग (११ अप्रैल, १८१४)

नेपोलियन ने दस महीने तक एल्बा पर शासन किया। इस बीच में उसने अपने छोटे से राज्य का निरीक्षण किया और वह फ्रांस तथा यूरोप के घटना-क्रम पर दृष्टि रखता रहा। उसने देखा कि मित्र-देशों में लूटमार के माल के ऊपर मतभेद है और प्रवासी कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग फ्रांस में प्रतिक्रिया का नेतृत्व कर रहे हैं। सेना भारी छँटनी और तिरस्कार के कारण क्षुब्ध थी। कृषक वर्ग भी असन्तुष्ट था क्योंकि उसकी जमीनें क्रान्ति-पूर्व स्वामियों को वापस लौटाई जा रही थीं। लोग अपने नये शासक से, जिसका उनके हृदय में कोई स्थान नहीं था, उकता गये थे।

एल्बा

१ मार्च को नेपोलियन एल्बा से भागा और वह अपने १,१०० व्यक्तियों सहित कैनीज (Cannes) के पास उतरा। १८१४ में वह राजन्त्रवादी प्रोवेन्स के रास्ते से गया था। वहाँ उसका गालियों से स्वागत हुआ था। उसे आस्ट्रियनों की-सी पोशाक पहननी पड़ी थी और अपने सर पर बूरबनों की सफेद टोपी रखनी पड़ी थी। इस बार वह उस रास्ते से नहीं आया। उसने आल्प्स को पार किया और वह पेरिस की ओर बढ़ा। उसकी प्रगति विजयपूर्ण जुलूस बन गई। किसान उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़े और जो सैनिक उसका विरोध करने के लिए भेजे गये थे, उन्हें उसने ग्रिनोबिल (Grenoble) के निकट एक विशेष भाव-भंगिमा से जीत लिया। उसने सैनिकों के सामने अपना सीना खोल दिया और उनसे कहा, "तुम में से कौन अपने सम्राट् को गोली मारेगा?" बिना एक गोली के चले ही उसने राजधानी में प्रवेश किया। लुई अठारहवाँ (Louis XVIII) और कॉम्टे डी आर्टोयस (Comte d' Artois) भाग गए। मन्त्री और सेनापति लज्जित होकर उसके पास वापस लौट आए। उसने देश को शान्ति और स्वतन्त्रता का वचन देकर सम्हाला। उसने कट्टर गणतन्त्रवादी कार्नट (Carnot) को गृह-विभाग सम्हालने के लिए राजी किया

सौ दिन (मार्च-जून, १८१५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रमुख उदारवादी नेता बेंजामिन कोंस्टेंट (Benjamin Constant) को संविधान बनाने का कार्य सौंपा। बूरबनों से अपना अन्तर प्रकट करने के लिए नेपोलियन ने जन-मत संग्रह भी किया। चैम्प डी मार्स (Champ de Mars) में शानदार जलसा हुआ। वहाँ राजकीय गौरव अन्तिम बार चमका। सम्राट ने सब लोगों के सामने संविधान का पालन करने की शपथ ली।

फिर भी राजधानी में कुछ कशमकश, कुछ घुटन का-सा वातावरण था। ब्रोगली (Broglie) ने लिखा है, "हर कोई सुस्त, उत्साहहीन, शिकायतहीन, आशाहीन था, लेकिन उत्सुकता सबको थी।" राष्ट्र शान्ति का सबसे ज्यादा उत्सुक था और वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि शान्ति की स्थापना करना नेपोलियन की प्रकृति या शक्ति में नहीं है। यद्यपि नेपोलियन अपने शत्रुओं से शान्ति की बातचीत कर रहा था, लेकिन वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि वे संधियों का अतिक्रमण कभी स्वीकार नहीं करेंगे और वह केवल युद्ध तथा विजय से ही स्वयं को फ्रांस के सिंहासन पर पुनर्प्रतिष्ठित कर सकता था। १८१३ में मैटरनिक (Metternich) ने नेपोलियन को जवाब दिया था, "श्रीमन्, आप में और यूरोप में कभी समझौता नहीं हो सकता। आपने जब कभी संधि की है, वह केवल युद्धविराम ही रहा है। आपके लिए सफलता और विफलता दोनों ही समान रूप से युद्ध के सशक्त प्रेरक तत्त्व हैं।" यह १८१३ की स्थिति के सम्बन्ध में बहुत अच्छी टीका थी। १८१५ की स्थिति के ऊपर यह और भी अच्छी तरह लागू होती थी।

मित्र-देशों ने नेपोलियन को "संसार की शान्ति का शत्रु और विनाशक" मान रखा था। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक "बोनापार्ट को पूरी तरह न दबा दिया जाये जिससे कि वह आगे कोई कठिनाई खड़ी न कर सके" तब तक उनकी सेनाएँ रण-क्षेत्र में बनी रहेंगी। उन्होंने पूर्ववर्ती वर्ष की चाउमौंट की सन्धि (Treaty of Chaumont) को फिर से ताजा किया। इस सन्धि के अनुसार उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे युद्ध को जारी रखेंगे और मिल-जुलकर शान्ति की स्थापना करेंगे। मेरी लुइसी (Marie-Louise) और उसके पुत्र तक ने स्वयं को मित्र-देशों के संरक्षण में रख दिया था। इसके विपरीत मरत (Murat) ने मित्र-देशों का साथ छोड़ दिया था। वह उनके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। उसने इटली से नेपोलियन को राजा स्वीकार करने के लिए कहा। वह नेपोलियन का एकमात्र मित्र था, लेकिन बिलकुल निकम्मा था।

इस तरह, नेपोलियन के भाग्य में एक युद्ध और बदा था। यह लड़ाई बेल्जियम में हुई, लेकिन नेपोलियन के पास शुरू से ही बहुत कम सेना थी। नेपोलियन ने फ्रांस से आदमियों की माँग की, लेकिन फ्रांस कुछ क्षुब्ध-सा था और उसमें कोई उत्साह नहीं था। नेपोलियन में इतना साहस नहीं था कि वह सैनिकों की अनिवार्य भरती करे।

युद्ध

नेपोलियन अपने सारे प्रयत्न करने के पश्चात् केवल १,२०,००० व्यक्ति ही रण-क्षेत्र में रख सका। इनमें राष्ट्रीय रक्षक दल, नाविक, सैनिक और सीमा शुल्क अधिकारी सब तरह के लोग शामिल थे। नेपोलियन को अपने कुछ सैनिक ला वेण्डी (La

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vendee) में राजतन्त्रवादियों के विद्रोह को दबाने के लिए भेजने पड़े। शुरू-शुरू में मित्रदेश केवल ८,००,००० आदमियों को ही रण-क्षेत्र में रख सके थे। इसलिए पहले-पहल शत्रुओं पर आघात करना नेपोलियन के लिए लाभकारी था। नेपोलियन १२ जून को पेरिस से चला लेकिन इसके नौ दिन बाद ही वह सदैव के लिए अपमानित और पराजित होकर वापस लौटा।

बेल्जियम में मित्र-देशों की सेनाओं के दो भाग थे। इग्लैण्ड, हालैण्ड, बेल्जियम और जर्मनी की संयुक्त सेना वैलिंगटन की अधीनता में थी। प्रशा की सेना ब्लूशर

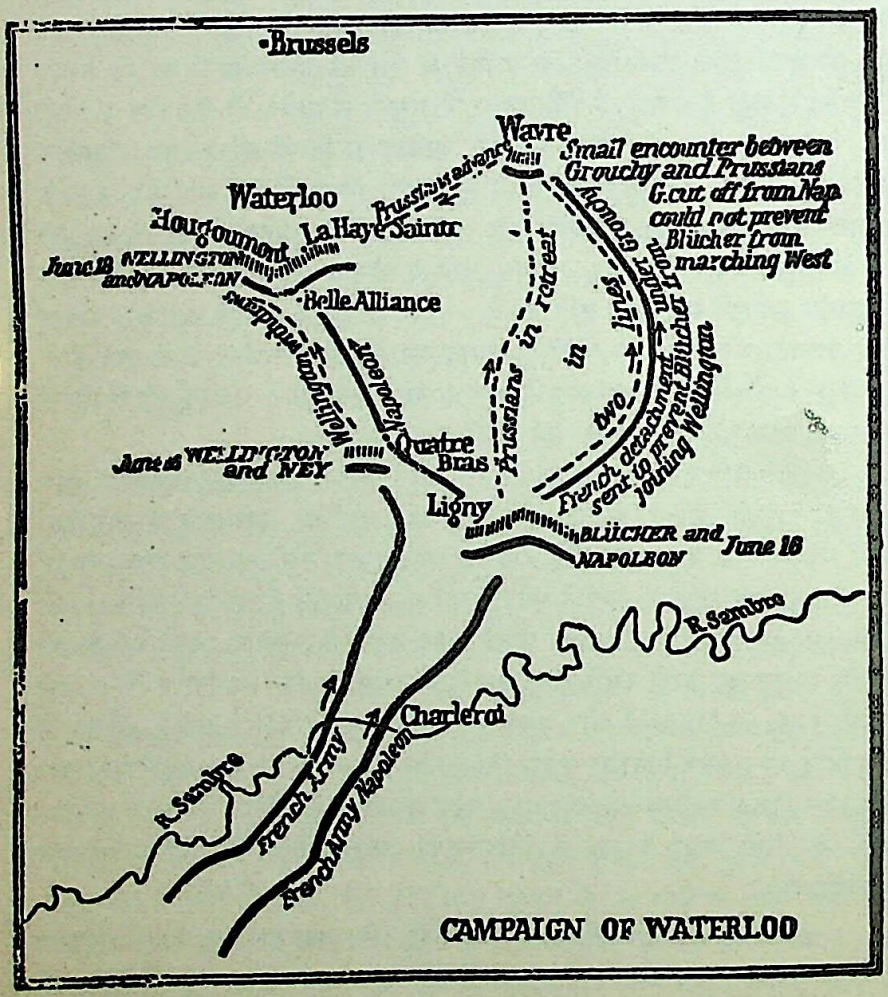

(Blucher) की अधीनता में थी। इस सेना की संख्या नेपोलियन की सेना से दुगुनी थी। वे घेंट (Ghent) से लीज (Liege) तक प्रायः सौ मील लम्बी लाइन पर डट गये थे। प्रशा की सेना बायीं ओर थी। उसका प्रधान कार्यालय लीज (Liege) में था। इंग्लैण्ड की सेना दाहिनी ओर थी। वह मुख्यतः ब्रुसेल्स (Brussels) में केन्द्रित थी। नेपोलियन की योजना यह थी और इसका वह पहले भी कई बार प्रयोग कर चुका था कि शत्रु-सेना को विभक्त कर दिया जाये और उसके अलग-अलग भागों से निबट

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया जाए। फ्रांस की सेना ने १५ जून को सैम्ब्रे (Sambre) को पार किया और चार्लेओरी (Charleroi) को ले लिया। इस तरह उसका प्रशा की सेना के बायें पक्ष से सम्पर्क हुआ। लेकिन, इस लड़ाई में फ्रांसीसी सेना की ओर से समय की कई बार बर्बादी हुई। इसका कारण शायद नेपोलियन की अस्वस्थता थी। इससे लाभ उठाकर ब्लूशर ने अपने सैनिकों को फ्रांसीसियों के विरुद्ध लिग्नी में संकेन्द्रित कर लिया। फिर भी नेपोलियन ने १६ ता० को उन्हें पीछे की ओर हटा दिया। यह नेपोलियन की अन्तिम विजय थी। उस दिन नेपोलियन भारी विजय प्राप्त कर सकता था, लेकिन आदेशों की कुछ अव्यवस्था के कारण उसके पास नई टुकड़ी नहीं आ सकी। उस दिन मार्शल नी (Ney) ने भी क्वाट्रे ब्रस (Quatre Bras) में वैलिंगटन (Wellington) की सेनाओं को रोके रखा।

लिग्नी

क्वाट्रे ब्रस

१७ ता० को नेपोलियन उत्तर-पश्चिम में वैलिंगटन का सामना करने के लिए बढ़ा। उसका विचार था कि ब्लूशर पूर्व में इतना पीछे हट गया है कि वह ब्रिटिश सेनापति की सहायता के लिए नहीं आ सकेगा। १८ ता० को रविवार के दिन वाटरलू (Waterloo) के दक्षिण में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। शुरू-शुरू में दोनों सेनाओं की शक्ति प्रायः एक सी थी, लेकिन नेपोलियन ने फिर बहुत सा समय खो दिया। लड़ाई दोपहर को शुरू हुई लेकिन तब तक प्रशा की सेना भी आ गई। नेपोलियन की पैदल और घुड़सवार सेना ने बार-बार आक्रमण किया लेकिन शत्रु सेना बराबर अडिग रही। कुछ समय बाद इम्पीरियल गार्ड भी मैदान में उतरा लेकिन शत्रु सेना के सामने उसकी भी एक न चली। मध्यान्ह पश्चात् ४ बजे ब्लूशर (Blucher) की सेना भी आ गई। उसके आ जाने से लड़ाई का रुख बदलने लगा। लड़ाई रात को काफी देर तक चलती रही। इस लड़ाई में फ्रेंच सम्राट की अन्तिम सेना भी नष्ट कर दी गई।

वाटरलू

यह नेपोलियन की सोलहवीं और आखिरी लड़ाई थी। उसने अपने भागते हुए सिपाहियों को एकत्रित करने की चेष्टा की, लेकिन वह सफल न हो सका। विवश होकर वह पेरिस वापस आ गया। अब उसके सिंहासन-त्याग की निरन्तर माँग की जा रही थी। उसमें इस माँग को अस्वीकार करने का साहस नहीं रहा था। २२ जून को उसने सिंहासन त्याग दिया। जब प्रशा की सेना राजधानी की ओर बढ़ रही थी, वह समुद्र-तट की ओर चला गया। उसका कुछ-कुछ इरादा अमेरिका जाने का और वहाँ साहित्य साधना करने का था। तभी उसने अचानक ही अपनी प्रेरणा से या इसलिए कि समुद्र में चारो ओर इंग्लैण्ड के जहाज़-ही-जहाज़ थे, स्वयं को स्वेच्छा से "युद्धबन्दी के रूप में नहीं", प्रत्युत "प्राइवेट व्यक्ति के रूप में" बेलर फोन के एडमिरल मैटलैण्ड के हाथों में सौंप दिया। रिजेंट के पास उसने एक प्रार्थना भेजी—„मैं स्वयं को थेमिस्टोक्लिस (Themistocles) की भाँति ब्रिटिश जनता की उदारता के

दूसरी बार सिंहासन-त्याग (जून १८१५)

सेंट हेलेना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर छोड़ता हूँ। मैं अपने को आपकी विधियों के संरक्षण में रखता हूँ। "लेकिन इंग्लैण्ड के ऊपर इस प्रार्थना का कोई असर नहीं हुआ। वह औदार्य या आतिथ्य के भुलावे में नहीं आ सकता था। प्लायथ बन्दरगाह में नेपोलियन ने अपना दंड सुना— तीन अधिकारियों, एक चिकित्सक और बारह सेवकों सहित सेंट हैलेना को निर्वासन। नेपोलियन का सितारा हमेशा के लिए डूब चुका था।

वहाँ दक्षिण एटलांटिक के उस तूफानी और पहाड़ी द्वीप में प्रायः ६ वर्ष के बाद ५ मई, १८२१ को नेपोलियन की मृत्यु हो गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ५

(CHAPTER V)

यूरोप—१८१५ से १८५० तक

(Europe from 1815 to 1850)

१. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (१८१५-२५)

(The Concert of Europe, 1815-25)

१८१५ से लेकर १८५० तक का काल राजनीतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से प्रायः महत्त्वहीन है; हाँ, इस काल में प्राविधिक ज्ञान, उद्योगों के विकास और साहित्यिक प्रगति में खूब उन्नति हुई। किन्तु १८१५ से पूर्व के दो दशक राजनीतिक दृष्टि से भारी महत्त्व के थे। बेल्जियम का हालैण्ड से सम्बन्ध टूट चुका था और यूनान (Greece) का सम्बन्ध तुर्की से विच्छिन्न हो चुका था। कुछ देशों के नरेश भी बदल चुके थे। फ्रांस अब स्वतन्त्र न रहकर गणराज्य बन गया था, निराश लोकतन्त्रवादियों के हृदयों में कटुता ने घर कर लिया था; किन्तु विजयी अनियन्त्रित शासकों की नीतियों में लोकतन्त्रवादियों के विरुद्ध स्पष्ट वैर-भाव दृष्टिगोचर होता था। १९वीं शताब्दी की ठोस राजनीतिक प्रगति भविष्य में होने को थी। अभी तक उसके कोई लक्षण प्रकट न हुए थे। हाँ! यत्र-तत्र कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन अवश्य दिखलाई पड़ जाते थे।

नगण्य राजनीतिक सफलता का काल

किन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह काल विफलता का काल था। यदि पूर्वी प्रश्न (Eastern Question) को अलग कर दें, तो दो निर्माणकारी और ठोस विचार इस काल में प्रस्तुत किये गए। इनमें से एक का विचार तो राजाओं की ओर से प्रस्तुत किया गया कि यूरोप में कुछ न कुछ संयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए तथा दूसरा विचार था उदार राष्ट्रवाद का, जो सर्वसाधारण की ओर से प्रस्तुत किया गया था। किन्तु व्यवहारतः इन दोनों विचारों से कोई लाभ नहीं उठाया गया। तथापि, १८१५ से १८५० तक का काल पूर्ण यथास्थिति का काल भी न था। इस काल में लगातार दो विरोधी सत्ताओं में संघर्ष होता रहा, किन्तु दोनों विरोधी सत्ताओं में से कोई भी सत्ता दूसरी को पूर्णतया पराजित न कर सकी। एक ओर फ्रेंच-क्रान्ति के सिद्धान्तों और प्रभावों के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी और दूसरी ओर भावी लोकतन्त्रात्मक और राष्ट्रीय सफलताओं के लिए वास्तविक तैयारी प्रारम्भ हो गई थी।

दो अचानक और निर्माणकारी विचारों से लाभ नहीं उठाया गया

प्रतिक्रिया और तैयारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण यह था कि फ्रेंच क्रांति ने ऐसी समस्या उत्पन्न कर दी थी जो नेपोलियन की पराजय से भी हल न हो सकी। फ्रेंच-क्रांति ने अन्य संघर्षों की भाँति ही एक प्रश्न का उत्तर चाहा था, और इस प्रश्न के उत्तरों के आधार पर १८१५ से लेकर १८५० तक और किसी सीमा तक शेष शताब्दी के अन्त तक इतिहास बना। यह प्रश्न समान रूप से कलाओं और धर्म के ऊपर भी लागू होता था; किन्तु राजनीति के क्षेत्र में उक्त प्रश्न संक्षेपतः यह था, "राज्यों के शासन-प्रबन्ध में उन लोगों का सहयोग कहाँ तक प्राप्त किया जाएगा जो सम्बन्धित राज्यों के निवासी हैं।" १९वीं शताब्दी में जितने भी महत्त्वपूर्ण संघर्ष हुए उन सबकी जड़ों में यही आधारभूत प्रश्न था। इटली के एकीकरण और जर्मनी के एकीकरण का आधार भी यही प्रश्न था, रूस के विकास के पीछे भी यही प्रश्न था, द्वितीय फ्रेंच साम्राज्य के उत्थान और पतन का कारण भी यही प्रश्न था कि आधुनिक काल के समाजवादी और फेमिनिस्ट (Feminist) आन्दोलनों का रहस्य भी यही प्रश्न था। १८१५ से लेकर १८५० तक के यूरोपीय इतिहास का मुख्य विषय यही प्रश्न रहा और इस काल में जितने संघर्ष या आन्दोलन हुए उन सबके मूल में यही प्रश्न था। इन संघर्षों में एक ओर वैधता (legitimacy), रूढ़िवाद (conservatism) और निरंकुश शासन थे तथा दूसरी ओर उदारवाद (liberalism), लोकतंत्र (democracy), राष्ट्रवाद (nationalism) और क्रांति (revolution) थे।

वियना की सभा (१८१४-१५)

१८वीं शताब्दी में यूरोपीय राज्य-व्यवस्था की आधारशिला वियना (Vienna) में रखी गई। नेपोलियन की पराजय के बाद बहुत से ऐसे प्रदेश और भू-भाग शेष थे जिनका बँटवारा करना था तथा अस्त-व्यस्त यूरोपीय महाद्वीप में व्यवस्था लानी थी। अतः निश्चित किया गया था कि वियना में यूरोप के सम्राट या उनके प्रतिनिधि एकत्रित हों और वे सम्बन्धित समस्याओं का हल ढूँढ निकालें। वियना की काँग्रेस एक मिश्रित सभा थी जिसमें कूटनीतिज्ञ थे और उनके मुसाहिब लोग थे, राजदूत थे और साहसी योद्धागण थे, राजकुमार और बहुत से नकली राजे भी थे, धर्माचार्य थे और प्राध्यापक थे, सैनिक थे और राजनीतिज्ञ थे, यहाँ तक कि यूरोप की प्रायः प्रत्येक राजधानी के अभिकर्त्ता थे—केवल टर्की अपवाद था—और सभी हितों के प्रतिनिधि थे जो षड्यन्त्रों और गुप्त बातचीत द्वारा अपनी-अपनी स्वार्थ-साधना में लगे हुए थे। कोई प्रतिनिधि अपनी तड़क-भड़क दिखा कर सबको चकाचौंध में डाल देना चाहता था तो कोई अन्य प्रतिनिधि तुच्छ वातावरण में फँसा हुआ था, किन्तु इतना निश्चित था कि वियना की सभा में जितने भी प्रतिनिधि एकत्र हुए थे उनमें कोई तो अपना कोई छिपा हुआ स्वार्थ सिद्ध करना चाहता था, कोई पुराना बदला लेने की इच्छा रखता था और कोई स्थिति से लाभ उठाना चाहता था। वियना की सभा में कट्टर कैथोलिक मतावलम्बी मौजूद थे और फ्रांस के बड़े सेनापति (Marshals) भी थे जिन्हें अपने वेतन की चिन्ता थी, दूसरी ओर जर्मनी के यहूदी (Hanseatic Jews) थे जिन्हें आशा थी कि दरिद्र आस्ट्रिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्राट की दरिद्रता से हमारा लाभ होगा, इनके अतिरिक्त जर्मन राष्ट्रवादी टर्नवेटर जान (Turnvater John) था और पोलैंड की स्वतन्त्रता का हामी जारटॉर्यस्की (Czartoryski) भी था। वीमर का चार्ल्स ऑगस्टस (Charles Augustus of Weimar) विज्ञान का प्रतिनिधित्व करता था यद्यपि उसे विज्ञान सीखने की केवल धुन थी, किन्तु कोट्टा (Cotta) एक प्रसिद्ध पत्रकार था जिसने अपनी राजनीतिक और साहित्यिक योग्यता के कारण अपार धन और यश कमाया था।

महान व्यक्तित्व

ऑस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस प्रथम (Francis I)[1] ने वियना सभा (Congress of Vienna) का आयोजन किया और वही मेज़बान बना। वह अपनी हैब्सबर्ग परम्पराओं के अनुसार कुरूप और जड़ बुद्धि वाला अहंकारी पुरुष था, किन्तु छली-कपटी न था। उसने भद्दा-सा नीला कोट पहन रखा था। वह वियना सभा में आये मेहमानों के ऊपर ८ लाख पौंड व्यय करना चाहता था, यद्यपि अनेक ऐसे लोग गलियों में मारे-मारे फिर रहे थे जिनके बिलों (Bills) का अभी तक भुगतान नहीं हुआ था। सम्राट फ्रांसिस ने अपने अभ्यागतों के ऊपर अनेक गुप्तचर लगा रखे थे। ये गुप्तचर उसे उनकी गतिविधियों की सूचना देते रहते थे। उनके पत्रों को चोरी-छिपे पढ़ लेते थे और उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं की जानकारी प्राप्त करते रहते थे।

ऑस्ट्रिया के विदेश मन्त्री मैटरनिक (Metternich) ने कॉंग्रेस का सभापतित्व किया। इस सभा की नीति निर्धारित करने में उसका भारी हाथ था। यह स्वाभाविक ही था कि चार बड़ी शक्तियाँ ऑस्ट्रिया, रूस, प्रशा और इंग्लैण्ड यूरोप के पुनर्गठन की दिशा में निर्णायक भाग लेते, यद्यपि वियना की कॉंग्रेस के अन्तिम दिनों में फ्रांस के प्रतिनिधि टेलीरेंड (Talleyrand) ने भी फ्रांस की ओर से प्रभावोत्पादक कार्य किया था। दुर्भाग्यवश ब्रिटेन के विचार अन्य तीन शक्तियों के विचारों से मेल नहीं खाते थे और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों—कैसरली (Castlereagh) और वैलिंगटन (Wellington) को ब्रिटिश संसद् में पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं था। इसलिए ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने इस सभा (Congress of Vienna) में महत्त्वपूर्ण भाग नहीं लिया। इसके अतिरिक्त प्रशा के राजा फ्रैडेरिक विलियम तृतीय (Frederick William III) ने प्रशा की नीति को रूस के ज़ार की नीति के अनुकूल बनाए रखा। इसलिए वियना के सभा-नाटक के मुख्य कलाकार दो ही व्यक्ति रहे—एक तो ऑस्ट्रिया का प्रतिनिधि मेटरनिक (Metternich) और दूसरा—रूसी ज़ार एलैक्जैंडर (Alexandar, the Tsar of Russia)।

मेटरनिक (Metternich) ने ऑस्ट्रिया के राज्य-पोत का १८०९ से लगभग चालीस वर्षों तक मार्ग-दर्शन किया। अगले दो दशकों में वह यूरोप का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बना रहा। उसमें वैयक्तिक गुण थे और सामाजिक गुण

---

१. वह १८०४ तक फ्रांसिस द्वितीय, पवित्र रोमन सम्राट था; किन्तु १८०५ के बाद वह फ्रांसिस प्रथम के नाम से आस्ट्रिया का आनुवंशिक सम्राट कहलाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी थे। उसमें राजनयिक क्षमताएँ थीं और कूटनीति का उसे भारी अनुभव था। उसमें मनुष्यों के समझने की भारी योग्यता थी। उसमें स्वाभाविक मृदुलता के साथ षड्यन्त्रकारी प्रवृत्ति का भी समावेश था। वह जटिलतम समस्याओं को स्वाभाविक आसानी से निबटा लेता था। इन गुणों के कारण वियना की सभा में मेटरनिक (Metternich) ने ही मुख्य और निर्णायक भाग अदा किया और बाद में भी वही, मध्य यूरोप का एक प्रकार से नैतिक अधिनायक बना रहा। "वियना के जटिल और भँवरों से भरे हुए तालाब में वह मछली के समान बिना भयभीत या विचलित हुए सरलता से तैरता रहा।" अन्य किसी व्यक्ति में इतनी योग्यता तथा क्षमता न थी जो भोजन और आराम के समय में भी राजनीतिक षड्यन्त्रों को सफलतापूर्वक निभाये चलता या जो कठिनतम परिस्थितियों को भी सुन्दर और मधुर शब्दावली से मृदु बना सकता।

मेटरनिक (१७९३-१८५९)

कुछ लोगों ने मेटरनिक की आलोचना करते हुए लिखा है कि वह षड्यंत्रकारी, कपटी और अवसरवादी था और बातचीत करने में दिखावटी शिष्टाचार का पारंगत था। एलैक्डजैंर प्रथम (Alexander I) उसको झूठा समझता था। उस समय और उसके बाद के उदारवादियों और लोकतन्त्रवादियों ने तो यह कहा है कि वह प्रतिक्रियावादी और सुधार-विरोधी था। उनका कहना है कि मेटरनिक ने समय की आवश्यकताओं को नहीं समझा तथा जनता की इच्छाओं का दृढ़ विरोध किया।

किन्तु मेटरनिक, ऑस्ट्रिया का मन्त्री था और उसने अपनी नीति ऑस्ट्रिया के हितों को ध्यान में रखकर ही निर्धारित की थी। वह समझता था कि ऑस्ट्रिया का साम्राज्य ऐसे बेमेल राज्यों का साम्राज्य है जिनमें कुछ तो आनुवंशिक आधारों पर, कुछ वैवाहिक दहेजों के रूप में, कुछ युद्ध या राजनय के परिणामस्वरूप, कुछ शक्ति-संतुलन की रक्षार्थ और कुछ तुर्की के विरुद्ध ईसाई धर्म की रक्षा के उद्देश्य से ऑस्ट्रियन साम्राज्य के अँग बने थे। ऑस्ट्रिया का विशाल और बेमेल साम्राज्य किन्हीं निश्चित सिद्धांतों पर टिका हुआ न था। उसका एकमात्र आधार यह था कि सारे साम्राज्य का एक स्वेच्छाचारी सम्राट था। मेटरनिक ने भली-भाँति समझ रखा था कि यदि साम्राज्य के किसी भी भाग में राष्ट्रवादी आन्दोलन हुआ तो साम्राज्य उतनी ही सरलता से नष्ट हो सकता है जितनी सरलता से कि फ्रांस या रूस द्वारा आक्रमण होने पर वह नष्ट हो सकता है। इसलिए जहाँ वह अवसरवादी और सुधार-विरोधी था, यह भी मानना होगा कि वह आस्ट्रिया के साम्राज्य की रक्षा के लिए स्वाभाविकतः चिंतित था। "जिस समय ऑस्ट्रिया की भाग्यरूपी नौका मँझधार में थी और जब ऑस्ट्रिया साम्राज्यवादी फ्रांस के विरुद्ध जीवन-मरण के युद्ध में ग्रस्त था और जिस समय हर एक निराश होकर पीछे हटने का प्रयत्न कर रहा था, उस समय मेटरनिक ने ही आस्ट्रिया की नीति को ऐसा प्रेरक बल दिया जिसके आधार पर वह नेपोलियन को पराजित कर सका। नेपोलियन के विजेता होने का मेटरनिक को गर्व था।"[1] इस प्रकार महान् खतरे को

1. Prof. Alison Phillips : *Modern Europe*, 1815-99.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोल लेकर उसने जर्मनी और इटली के विध्वंसक राष्ट्रवादी आन्दोलनों को दबा दिया। बल्कान प्रदेशों की स्वतन्त्रता सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षाओं को कुचल दिया और ज़ार की शैतानी चालों पर अंकुश लगा दिया, जो ऑस्ट्रिया के साम्राज्य में चुपके-चुपके राष्ट्रीय लोकतन्त्र के पक्ष में विद्रोह खड़ा कराने का प्रयत्न कर रहा था और बल्कान प्रदेश में अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसके साथ ही उसने पाँच शक्तियों के एक संतुलन (five-power equilibrium) को स्थापित करने का प्रयास किया। इस व्यवस्था का उद्देश्य रूस, फ्रांस और ब्रिटेन जैसी विविध यूरोपीय शक्तियों के बीच संतुलन बनाए रखना था।

तथापि, मेटरनिक का उद्देश्य जितना शांतिकाल में स्पष्ट था, युद्धकाल में उतना स्पष्ट नहीं था। बाद की पीढ़ी ने उसके सारे किए-कराए काम को चौपट होते देखा था। इस पीढ़ी को मेटरनिक का कार्य महान् राजनेतृत्व का कार्य नहीं मालूम पड़ा। यह कार्य नकारात्मक, अधूरा और सामयिक सिद्ध हुआ। यह कार्य इस युग की राजनीतिक गति के अनुकूल नहीं था। अन्त में, यह दमन-मूलक भी सिद्ध हुआ। अठारहवीं शताब्दी समाप्त होने से पहले ऑस्ट्रिया के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह यूरोप की अन्य शक्तियों के साथ समजंन स्थापित करे। जोज़ेफ द्वितीय (Joseph II) ने प्रबुद्ध निरंकुशता से शासन कर इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया था, लेकिन वह सफल नहीं हो सका। मेटरनिक को यह अच्छी तरह मालूम था कि जहाँ जोज़ेफ की नीति असफल हो गई, वहाँ लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद सफल नहीं हो सकेंगे। लोकतंत्र और राष्ट्रवाद की नीति को साम्राज्यिक अधिकारी अपनायेंगे भी नहीं। इसलिए, आस्ट्रिया की समस्या को सुलझाने का उसके सामने केवल एक ही रास्ता था कि वह विदेश नीति द्वारा इस समस्या को सुलझाए। इस क्षेत्र में वह पारंगत भी था। इसलिए, उसने कोशिश की कि वह ऑस्ट्रिया की दृढ़ता को संतुलित यूरोपीय समाज के ऊपर आधारित रखे, यूरोप में जहाँ तक हो सके यथास्थिति को कायम रखे, तथा समान विचारधारा वाले शासकों का एक अन्तर्राष्ट्रीय गठबंधन स्थापित करे।

मेटरनिक (Metternich) ने अपनी कठिनाई को इन शब्दों में व्यक्त किया था, "मैं इस संसार में या तो बहुत जल्दी आ गया हूँ या बहुत देर से आया हूँ। मैं जल्दी आने पर आयु का उपभोग करता, देर से आने पर संसार के पुनर्निर्माण में सहायता देता। आज मुझे ढहती हुई संस्थाओं को सम्भालने में ही अपना जीवन लगाना पड़ रहा है।" उसके आलोचकों ने उसे सनकी कहा है, उसके कार्य को व्यर्थ माना है और उसकी ढहती हुई संस्थाओं का मजाक बनाया है; अथवा ज्यादा-से-ज्यादा बड़ी कृपापूर्वक उसे अपना संरक्षण प्रदान किया है।[1]

लेकिन, सचाई यह है मेटरनिक अपने युग का शिकार अथवा कैदी था।

---

१. इस सम्बन्ध में एलिसन फिलिप्स ने लिखा है, "दबी और थकी हुई पीढ़ी के लिए वह आवश्यक व्यक्ति था। यह उसका दुर्भाग्य था कि जब उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी, इसके बाद भी वह जीवित रहा। वह यह नहीं समझ सका कि जब वह स्वयं बूढ़ा और कमजोर होता जा रहा था, संसार अपनी तरुणाई प्राप्त कर रहा था।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पूरी तरह से अन्तर्राष्ट्रवादी था। उसने आस्ट्रिया और यूरोप की समस्याओं पर परम्परागत ऐतिहासिक एककों के संतुलन के संदर्भ में विचार किया था। अन्तर्राष्ट्रीय संसार में यह दृष्टिकोण पूरी तरह से राजनेता का दृष्टिकोण था और वह यथार्थवादी था। इसका कारण यह है कि परम्परागत एकक आत्मनिर्भर राष्ट्र थे। इनके लोग अपने ढंग से अपना विकास कर सकते थे। आस्ट्रिया के साम्राज्य में, जर्मनी में और कुछ सीमा तक इटली में, जो ऑस्ट्रिया के विदेश मन्त्रालय की शाखाएँ समझे जाते थे, यह नीति असंगत और दमनमूलक हो गई। इस नीति ने उस एकमात्र मार्ग को बंद कर दिया जो लोगों को अपनी जीवनी शक्ति के विकास के लिए उपलब्ध हो सकता था। मेटरनिक (Metternich) के ऊपर सबसे बड़ा आरोप यही है।

लेकिन, जिस यूरोप ने उसकी निन्दा की थी, उसने चालीस वर्षों तक उसके द्वारा अर्जित शान्ति का उपभोग किया। आस्ट्रिया; जर्मनी और इटली के जिन क्रांतिकारियों ने उसकी भर्त्सना की थी, वे समय मिलने पर उससे ज्यादा अच्छा काम नहीं कर सके। हैप्सबर्ग वंश ने मेटरनिक की अन्तर्राष्ट्रीय नीति को त्याग कर वह फल भोगा जिससे मेटरनिक उसे बचाना चाहता था। आज के युग में जब कि मध्य जर्मनी की शक्ति समाप्त हो गई है, फ्रांस शक्तिहीन हो गया है, इंग्लैण्ड की ताकत घट गई है और यूरोप के क्षत-विक्षत राज्य रूस की बढ़ती हुई शक्ति के साथ समझौता कर रहे हैं; संतुलित यूरोपीय समाज की संकल्पना ने एक नया अर्थ ग्रहण कर लिया है।

एलैक्जैंडर प्रथम

त्रियना की सभा में सबसे प्रसिद्ध किन्तु साथ ही सबसे गूढ़ व्यक्ति रूस का जार, एलैक्जैंडर प्रथम था। नेपोलियन को उसी ने हराया था, इसलिए पश्चिमी यूरोप के मामलों में उसकी इतनी निर्णायक स्थिति हो गई थी जितनी कि आज तक किसी अन्य रूसी सम्राट् की नहीं हुई थी। इतिहास में प्रथम बार रूस यूरोप का नेतृत्व कर रहा था और ऑस्ट्रिया एवं इंग्लैण्ड दोनों रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। वास्तव में ये दोनों देश रूस को वास्तविकता से अधिक शक्तिशाली समझ बैठे थे और इसलिए उस ओर से सशंकित थे।

किन्तु एलैक्जैंडर प्रथम में न तो राजनयिक चातुर्य था और न मेटरनिक (Metternich) के समान उसमें कुटिलता और दुराग्रह था। उसके चरित्र में नेपोलियन के गुणों का तो पूर्ण अभाव था ही, उसकी आकृति भी भद्दी थी। उसका शरीर स्थूल था, चेहरा गोल, मुख अस्थिर और चंचल तथा आँखें स्वप्निल-सी थीं। एलैक्जैंडर के समकालीन और उसके बाद के लोग समझते थे कि वह एक पहेली के समान दुरूह है। नेपोलियन समझता था कि एलैक्जैंडर एक कपटी तुर्क (Shifty Byzantine) है या उत्तर का एक कपटी नाटककार[1] (Talma of the North) है। मेटरनिक का विचार था कि वह एक पागल-सा व्यक्ति है जिसे किसी भी प्रकार प्रसन्न रखना आवश्यक है। यहाँ तक कि मृत्यु तक में वह एक पहेली बना रहा है और आज भी यह विवाद बना हुआ है कि एक साधु थियोडोर कजमिक (Theodor Kuzmich),

१. फ्रांकोइस जोसेफ टाल्मा (Francois Joseph Talma) एक फ्रांसीसी ऐक्टर (actor) था जो एलैक्जैंडर का सम-सामयिक था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी मृत्यु १८६४ में साइबेरिया (Siberia) में हुई थी, संभवतः स्वयं सम्राट जार एलैक्जैंडर ही था।

एलैक्जैंडर स्वभाव से अस्थिर, दुर्बलचित्त और सदाशयी व्यक्ति था। लेकिन उसमें उद्देश्य की दृढ़ता नहीं थी, उसका मिजाज़ शक्की था, वह कल्पनाशील, अभिमानी और अव्यावहारिक तथा असंगत आदर्शवादी था। उसने एक निश्चित अवस्था में असंगति उत्पन्न कर दी थी क्योंकि वह ऐसे मूर्खतापूर्ण प्रभावों में शीघ्र बह जाता था जो परस्पर विरोधी प्रभावों के क्रमविहीन फल थे और जिनको उनका शीघ्र प्रभावित होने वाला मस्तिष्क शीघ्र बिना सोचे-समझे ग्रहण कर लिया करता था। जार एलैक्जैंडर प्रथम के सम-सामयिक व्यक्ति समझते थे कि उस पर कभी तो उदारवाद का और कभी निरंकुशता का रंग चढ़ जाता था। कभी वह रहस्यवादी बन जाता था और कभी साम्राज्यवादी। फलतः, वे उसको प्रायः झूठा और खतरनाक, और कभी-कभी तो दगाबाज तथा शेखीखोर तक समझते थे।

एलैक्जैंडर ने अपने स्विस अध्यापक ला हार्पे (La Harpe) से रूसो (Rousseau) की शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त करने के साथ फ्रेंच क्रांति का भी अध्ययन किया था। उसका एक रूसी अध्यापक भी था जिससे उसने सैनिक योग्यता प्राप्त की और तभी से उसको सैनिक प्रदर्शन का चस्का लग गया। एलैक्जैंडर प्रथम की निरंकुश आदतों, उसके अभिमानी स्वभाव और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के कारण उसकी सैनिक योग्यता और सैनिक प्रदर्शन की इच्छाओं को बल मिला। उसके पिता की एक षड्यन्त्र में हत्या कर दी गई थी। इस गूढ़ रहस्य के कारण, परिणाम की बिना चिंता किए हुए ही उसके अपरिपक्व मस्तिष्क में भय और वेदना ने ऐसा घर कर लिया था जो बाद में उसके जीवन में दुःखों की घटना बनकर आया। इस दुःख और पश्चात्ताप के कारण ही उसके कोमल और प्रभावशील हृदय पर धर्म और मूढ़ विश्वासों का आतंक छा गया था।

जिस समय एलैक्जैंडर के ऊपर उदारवाद का नशा चढ़ा, उसने फिनलैण्ड को संविधान दिया, पोलैण्ड के पुनर्गठन का प्रयत्न किया, उत्तरी रूसी प्रान्तों के कुछ दासों को मुक्त कर दिया और इंग्लैंड के द्वारा प्रस्तावित दास-प्रथा को समाप्त करने का समर्थन किया। उसने यह भी प्रस्ताव रखा कि सभी राष्ट्रों का एक संयुक्त राष्ट्र संघ (League of Nations) बनाया जाय, किन्तु वह संतुलित नहीं रह पाता था और शीघ्र ही विरोधी प्रभावों में बह जाता था। जिस समय उसके ऊपर साम्राज्यवाद का नशा चढ़ा, उसने विजयों और महत्त्वाकांक्षाओं की लम्बी-चौड़ी योजनाएँ बनानी प्रारंभ कीं। उसने सोचा कि फिनलैंड (Finland) को जीत कर रूस का विस्तार किया जाए, नेपोलियन की मैत्री प्राप्त करके तुर्की का बँटवारा किया जाय और इस प्रकार एशिया को अपने अधिकार में लेने का प्रयत्न किया जाय। किन्तु शीघ्र ही वह भ्रमों से छुटकारा भी पा जाता था और ऐसी अवस्था में वह स्वेच्छाचारी निरंकुश भावनाओं के प्रभाव में आ जाता था। इस अवस्था में क्रान्ति के भय और धार्मिक उत्साहों के कारण उसका उदारवाद जहाँ का तहाँ धरा रह जाता था।

एलैक्जैंडर के जीवन के मध्य भाग में और अन्तिम वर्षों में धार्मिक और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल्पनिक विचारों ने उसके ऊपर अत्यधिक प्रभाव डाला था। जिस समय उसकी सेनाएँ कहीं हारती थीं तो वह यह समझता था कि भगवान् का उसके ऊपर कोप है, और इसी प्रकार जब रूस से हार कर फ्रांस की सेनाएँ मास्को से लौटीं तो उसने यह अनुभव किया कि फ्रांस की पराजय ईश्वर की प्रेरणा का ही फल है। उसके कुछ चापलूस दरबारियों और धर्माधिकारियों ने उसको ऐसा विश्वास दिला दिया कि नेपोलियन की पराजय के लिए ही भगवान् ने उसे नियुक्त किया था। उसके मन में यह विश्वास घर कर गया था कि वह स्वयं वही उत्तर की ओर से आने वाला व्यक्ति (Man from the north) था अथवा वह स्वयं ही उगते हुए सूर्य में से पैदा होकर आया था और जैसा कि ईसा (Isaiah) ने कहा भी था उनका जन्म ईसामसीह के विरोधियों का सफाया करने के लिए ही हुआ था।

१८१५ में तो, मानो एलैक्जैंडर ने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। वह अब विजेताओं का विजेता था, वह यूरोप का मुक्तिदाता था, वह ईश्वर का भेजा हुआ ऐसा सिपाही था जिसकी तलवार को सर्वसाधारण पूजते थे और जिस पर स्वयं परमात्मा की कृपा थी।

वियना की सभा का कार्य—एक आलोचना

वियना की सभा होने से पूर्व ऊँचे आदर्शों की दुहाई दी गई थी क्योंकि उस समय एलैक्जैंडर के हृदय में उदारवाद हिलोरें ले रहा था और उस समय का वातावरण भी कुछ ऐसा ही बन गया था, किन्तु बाद में इस सभा के जो परिणाम और निर्णय प्रकाशित हुए उनकी भारी आलोचना इस आधार पर हुई है कि सभा की व्यवस्था की तो गई थी अत्यन्त उच्च संकल्पों के साथ, किन्तु उसके परिणाम निराशाजनक रहे। जेण्ट्ज (Gentz) इस सभा (Congress of Vienna) का मुख्य सचिव था। उसके शब्दों को पुनः दुहरा देना अनुचित न होगा, "सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण और यूरोप की राजनीतिक शासन-प्रणालियों का पुनर्जन्म, अथवा यूरोप में उचित शक्ति-संतुलन के आधार पर शान्ति स्थापना—ये पवित्र उद्देश्य अवश्य हैं किन्तु इन दिखावटी वाक्यावलियों का केवल यही उद्देश्य है कि सर्वसाधारण की उत्तेजनाओं को शान्त किया जाय और कुछ प्रदेशों के कुछ राज्यों में पुनर्गिलन को शान और बढ़ावे-चढ़ावे के साथ दिखाया जाय, किन्तु वियना की सभा का वास्तविक उद्देश्य यह था कि विजेता देशों में लूट-खसोट को बाँट लिया जाय।" लेकिन जेण्ट्ज (Gentz) की यह आलोचना भ्रामक है। यह आवश्यक ही था कि विजेता शक्तियाँ अपने हितों की रक्षा करें। उन्होंने पराजित शत्रु के साथ उचित यहाँ तक कि दयापूर्ण व्यवहार किया। यदि बाद के विजेता इसका अनुसरण करते, तो अच्छा होता। उन्होंने लाभ अवश्य उठाया, पर फ्रांस के मूल्य पर नहीं, प्रत्युत उन छोटे-छोटे राज्यों के मूल्य पर, जो नेपोलियन के खेल में शतरंज के मोहरे रहे थे। या जो पोलैण्ड की तरह पहले से ही आक्रमण के शिकार थे। विजेता यह नहीं समझते थे कि इसे कैसे निराकृत किया जाए।

वियना शक्तियों पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने फ्रेंच क्रान्ति से कुछ सबक नहीं लिया। उन्होंने यह भी नहीं समझा कि लोकतंत्र और राष्ट्रीयता के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये तत्त्व पनप रहे हैं और वे ही राजनीतिक प्रश्नों का निर्णायक हल करेंगे। उन्होंने केवल शक्ति-सन्तुलन (Balance of Power) के आधार पर ही राष्ट्रीय सीमाओं को निश्चित किया किन्तु इस ओर लोकप्रिय भावनाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। सभी राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और उनके आधारों की गारण्टी करने का केवल यही अर्थ किया जाता था कि पुनः यूरोप में क्रान्ति का विस्फोट न हो। वे निर्दय और शक्तिशाली सम्राटों की महत्त्वाकांक्षाओं को सीमित करना चाहते थे। किन्तु उन्होंने यह प्रयत्न कभी नहीं किया कि स्पष्ट राष्ट्रीयताओं को न्याय्य राष्ट्रीयता के आधार पर उनके प्रदेश मिल जायें। परम्परागत कूटनीति, पुराने राजवंश और पुराने राज्यों को यथास्थिति रखना उन्होंने अधिक उचित समझा, किन्तु राज्यों के पुनर्गठन में उन्होंने लोकप्रिय इच्छाओं अथवा राष्ट्रीय भावनाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया। इस प्रकार उन्होंने समय और काल की भावना के विरुद्ध कार्य किया और इसीलिये वियना सभा के पश्चात् एक शताब्दी ने वियना में एकत्रित होने वाले महामहिम नरेशों की भर्त्सना की है। सत्य यह है कि इस एक शताब्दी के काल ने उस सब काम का विनाश किया है जो वियना में किया गया था। यह नही भूलना चाहिए कि काँग्रेस की बैठक होने से पहले ही विजेता शक्तियों ने फ्रांस के साथ शान्ति स्थापित कर ली थी। उन्होंने फ्रांस के प्रतिनिधि को बराबरी के दर्जे पर सभा में आने की इजाजत दे दी थी।[1] कांग्रेस के अन्तिम अधिनियम में जो व्यवस्था तय हुई थी, उसे बड़ी शक्तियों ने पहले ही आपस में संधि के रूप में तय कर लिया था। इस व्यवस्था का मुख्य आधार १८१२ और १८१४ की सैनिक स्थिति थी। फिनलैंड (Finland), नार्वे (Norway), बेल्जियम (Belgium) और फ्रांस के सीमावर्ती अन्य राज्यों का भाग्य पहले ही तय हो गया था। काँग्रेस के सामने मुख्य प्रश्न यही रहा था कि जर्मनी, स्विट्जरलैंड और इटली के राज्यों में कैसी राजनीतिक व्यवस्था रखी जाये तथा पोलैंड की समस्या को किस प्रकार सुलझाया जाये। पोलैंड की समस्या बड़ी विकट हुई। पोलैण्ड को पहले जैसी आजादी देना असंभव था। यूरोप के शक्ति-सन्तुलन के लिए इसका विभाजन आवश्यक था। इस प्रश्न को लेकर काँग्रेस भंग होने तक की नौबत आ गई। इस विवाद का मूल ३ जनवरी, १८१५ की गुप्त संधि थी। इस गुप्त संधि में ब्रिटेन और आस्ट्रिया ने अपने पुराने शत्रु फ्रांस के साथ प्रशा और रूस के खिलाफ गठजोड़ किया था।

वियना सभा ने लाभार्जन और स्वरक्षा के साथ-ही-साथ कुछ निश्चित सिद्धांतों के अनुसार कार्य किया था। उसने कुछ परिवर्तनों और परित्राणों (Safeguards) के साथ जहाँ पुरानी व्यवस्था कायम हो सकती थी, वहाँ उसे कायम कर दिया। उसने इस बात की कोशिश की कि फ्रांस में सैनिक शक्ति का पुनः उत्थान न हो। उसने इस बात की गारण्टी देने की कोशिश की कि जो व्यवस्था कायम कर दी गई है,

---

१. यह सही है कि चार बड़ी शक्तियों का यह इरादा नहीं था। वे सारा नियंत्रण अपने हाथ में रखना चाहते थे। लेकिन टैलीरैंड उनसे बाजी मार ले गया। इस ऐतिहासिक शिक्षा के कारण ही राष्ट्रपति विल्सन और उनके मित्रों ने १९१८ में जर्मन प्रतिनिधियों को वर्साय शान्ति संधि में शामिल नहीं होने दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें किसी प्रकार की उलट-फेर न हो। उसने एक ऐसी नीति भी शुरू की जिसके अनुसार भावी विवादों को तय किया जा सके। उसने मेटरनिक के सिद्धान्त के अनुसार पाँच बड़ी शक्तियों के एक यूरोपीय समाज की स्थापना की। इस काँग्रेस की व्यवस्था कुछ ऐसी सम रही कि यूरोप में आगे के चालीस सालों तक कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई।

इस प्रकार रूस, प्रशा, आस्ट्रिया, ब्रिटेन और किसी सीमा तक स्वीडन को भी युद्ध में सहायता करने और नेपोलियन को हराने के उपलक्ष्य में कुछ इनाम या मुआवजा मिला। रूस को मध्य पोलैण्ड (Poland) का भू-भाग मिला जो रूस के सम्राट के अधिकार में आ गया। फिनलैण्ड (Finland) पर रूस के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया गया और इसके अतिरिक्त तुर्की के साम्राज्य के कुछ भागों पर भी रूस का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। पश्चिमी पोमीरेनिया (Pomerania) का भू-भाग

प्रादेशिक व्यवस्था

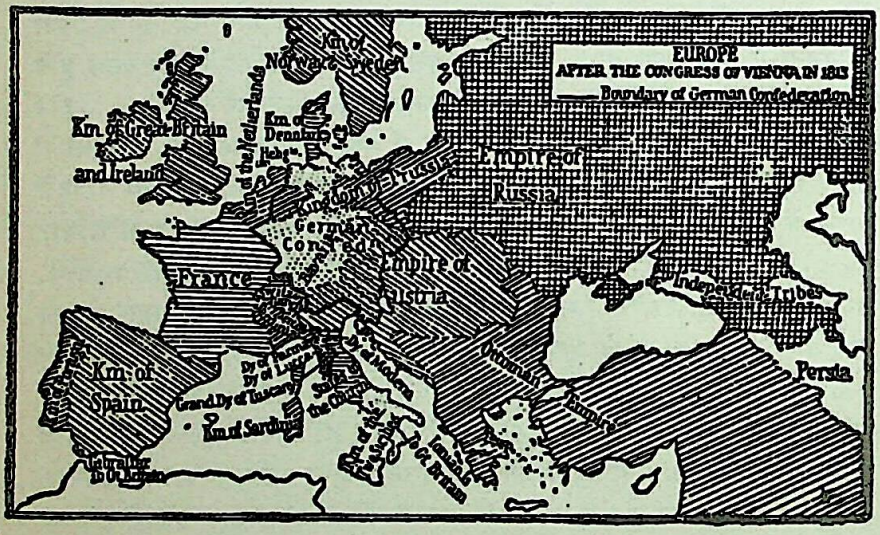

स्वीडन से निकालकर तथा सेक्सनी (Saxony) का थोड़ा-सा भू-भाग और कुछ राइन (Rhine) नदी के आस-पास के प्रदेश प्रशा (Prussia) को मिले। ऑस्ट्रिया जो कुछ भू-भाग पहले खो चुका था उसका प्रायः अधिकतर भाग उसे मिल गया, केवल बेल्जियम (Belgium) और दक्षिणी जर्मनी के कुछ इधर-उधर बिखरे हुए भू-भाग ऑस्ट्रिया को प्राप्त न हो सके, किन्तु इनके एवज में ऑस्ट्रिया को वेनिशिया (Venetia) का प्रान्त मिला। ग्रेट ब्रिटेन, हाल के युद्धों में विजयी होकर निकला था और उसकी व्यापारिक, नौसैनिक और औपनिवेशिक क्षेत्रों में भारी उन्नति हुई थी। उसको माल्टा (Malta), हेलीगोलैण्ड (Heligoland) मिले तथा आयोनियन द्वीपसमूह (Ionian Islands) का संरक्षण प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड को केप ऑफ गुडहोप (Cape of Good Hope) भी मिला और कुछ अन्य भाग भी प्राप्त हुए। ग्रेट ब्रिटेन के आग्रह पर ही वियना की शक्तियों ने दास-व्यापार (Slave-trade) के विरुद्ध घोषणा की। नार्वे (Norway) को डेन्मार्क (Denmark) के अधिकार से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालकर स्वीडन (Sweden) के हवाले कर दिया गया क्योंकि स्वीडन से फिनलैण्ड (Finland) और पश्चिमी पोमीरेनिया (Western Pomerania) छिन चुके थे जिन्हें स्वीडन क्रमशः रूस और प्रशा को पहले ही दे चुका था। सेक्सनी (Saxony) का राजमुकुट तो बना रहा किन्तु पोलैण्ड (Poland) के समान ही सेक्सनी को भी फ्रांस का समर्थन करने के कारण, अपना बड़ा भू-भाग प्रशा (Prussia) को देकर जुर्माना भरना पड़ा। वारसा की ग्राण्ड डची अथवा पालैण्ड (Grand Duchy of Warsaw) तथा वेस्टफेलिया (Westphalia) के राज्यों का अस्तित्व ही मिटा दिया गया। स्विट्ज़रलैण्ड (Switzerland) में कैण्टनों (Cantons) का पुनर्गठन इस प्रकार कर दिया गया कि पुनः उनमें आपसी भेद-भाव का बीज वपन हो गया। पोप को आज्ञा मिल गई कि वह इटली में आ जाय, नैपिल्स (Naples) में, स्पेन में, और फ्रांस में बूरबन (Bourbons) वंश का आधिपत्य पुनः स्थापित हो गया। किन्तु फ्रांस, जिसके कारण यूरोप में भारी अराजकता फैल गई थी, विघटित नहीं होने दिया गया। फ्रांस की अब भी पुरानी प्रादेशिक सीमाएँ वही रहीं, बल्कि उसको कुछ संवैधानिक लाभ भी हुए, जो महत्त्वपूर्ण थे। फ्रांस के चारों ओर शक्तिशाली राष्ट्रों का एक घेरा बनाना निश्चित किया गया ताकि फ्रांस भविष्य में पुनः युद्ध न छेड़ सके। राइन नदी के आस-पास के छोटे भू-भागों को प्रशा में मिला दिया गया। पूर्व की ओर प्रशा, एक सशक्त सन्तरी के रूप में फ्रांस के विरुद्ध डट कर खड़ा हो गया। बेल्जियम (Belgium) और हॉलैण्ड (Holland) को मिलाकर हाऊस ऑफ ऑरेन्ज (House of Orange) की अधीनता में एक शक्तिशाली राज्य बना दिया गया। इससे उत्तर की ओर फ्रांस के लिए एक रुकावट पैदा कर दी गई। सार्डीनिया-पीडमौंट (Sardinia-Piedmont) के राज्य को अधिक शक्तिशाली बनाकर दक्षिण-पूर्व में फ्रांस का मार्ग रोक दिया गया।

किसी सीमा तक वियना के समझौतों द्वारा यूरोप के मानचित्रों और राजनीतिक सम्बन्धों में भारी उलट-फेर हो गये। वास्तव में वियना सभा के पूर्व के बीस वर्षों की यूरोपीय व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। वियना के समझौतों के फल-स्वरूप रूस की उन्नति हुई और पश्चिमी यूरोपीय मामलों में रूस को हस्तक्षेप करने के अवसर हाथ लगे; इसके अतिरिक्त वियना सभा ने पवित्र रोमन साम्राज्य के नामो-निशान को ही प्रायः उड़ा दिया। अब स्वीडन केवल स्कैंडीनेवियन प्रान्त मात्र रह गया और उसका बाल्टिक सागर के पार सारा प्रभाव समाप्त हो गया। जर्मन राज्यों की संख्या में कमी हो गई जिसके कारण बाद में जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न हुआ। ऑस्ट्रिया का प्रभाव-क्षेत्र मध्य यूरोप में विस्तृत हुआ, यह ऐसा कारण बना जिसके आधार पर भविष्य में आस्ट्रिया का प्रभाव जर्मनी में समाप्त हो गया। वियना सभा के निर्णयों के फलस्वरूप ही प्रशा (Prussia) और पीडमौंट-सार्डीनिया (Piedmont-Sardinia) के सुसंगठित और दृढ़ राज्यों का निर्माण हुआ, जो वास्तव में १९ वीं शताब्दी की महान् सफलताएँ थीं।

यह माना कि वियना की सभा ने पोलैण्ड (Poland) को निराश कर दिया। यह भी सच है कि इसने बेल्जियम की विशाल जनसंख्या की परवाह न करके नार्वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Norway) को अनिच्छित साथी के साथ दे दिया यद्यपि यह साथ ९० वर्षों तक चला, यह भी माना कि वियना के समझौतों द्वारा इटली को विच्छिन्न कर दिया गया और जर्मनी की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं की; फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि वियना के समझौतों में राजनीतिक दूरदर्शिता और संयम से काम लिया गया था। तथ्य यह है कि वियना सभा ने ऐसा आधार प्रदान किया जिस पर भविष्य के यूरोप की नींव रखी गई और उस आधार-शिला पर जो यूरोप रूपी महल बना वह चालीस वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों रूपी तूफानों से बचा रहा और उसमें चालीस वर्षों तक कोई दरार नहीं पड़ी।

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

वियना की संधियों के पालन की गारंटी यूरोपीय शक्तियों ने मिलकर की थी किन्तु पिछले कुछ वर्षों के अनुभव ने सभी के हृदयों में ऐसी इच्छा जाग्रत कर दी थी कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कुछ और ठोस कदम उठाना चाहिए और कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे सबकी पारस्परिक रक्षा हो सके। इस इच्छा को पूर्ण करने की दिशा में ही यूरोप के स्वेच्छाचारी शासकों ने जो यूरोप के अधिपति थे—उस शताब्दी का सबसे अनोखा राजनीतिक प्रयोग किया। यूरोप में संयुक्त राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में यह एक व्यावहारिक पग था।

यदि यूरोप में शान्ति स्थापित करना अभीष्ट था तो यूरोप में संयुक्त राजनीतिक व्यवस्था या यूरोपीय संघ की स्थापना करने में कोई दोष न था। क्रान्तिकारी लोग इस दिशा में बराबर सोच रहे थे यद्यपि क्रान्ति के लिए इसे व्यावहारिक महत्त्व नहीं दिया जा रहा था। नेपोलियन के मन में भी ऐसा विचार घर कर गया था और उस समय में अनेक राजा और राजनीतिज्ञ भी इस विचार की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हो रहे थे।

यूरोप में संयुक्त व्यवस्था स्थापित करने के लिए दो परस्पर-विरोधी योजनाएँ प्रस्तुत की गईं। इन दोनों योजनाओं में प्रायः भ्रम उत्पन्न हो जाता है। एक तो रूस

पवित्र संधि या सम्बन्ध

के ज़ार एलैक्ज़ैंडर प्रथम ने पवित्र संधि या सम्बन्ध (Holy Alliance) की योजना रखी। वह अपनी उदार प्रकृति की झोंक में राजनीति को धर्म का स्वरूप प्रदान करना चाहता था। ज़ार एलैक्ज़ैंडर प्रथम की मित्रता वॉन क्रुडेनर (Von Krudener) नामक एक धर्म पुरोहितिन युवराज्ञी से थी और सम्भवतः उसी स्त्री धर्म पुरोहितिन के प्रभाव में आकर ज़ार ने यह धर्म-सापेक्ष राजनीति की योजना रखी। सबसे पहले पवित्र सन्धि (Holy Alliance) पर रूस, प्रशा और ऑस्ट्रिया के सम्राटों ने हस्ताक्षर किये और इस सन्धि की घोषणा प्रथम बार २६ सितम्बर १८१५ को पेरिस (Paris) के निकट चेम्प डेस वर्ट्स (Champ des Vertus) में मित्र-राष्ट्रीय सैनिकों की परेड के अवसर पर की गई।

किन्तु पवित्र सन्धि (Holy Alliance) को विशुद्ध सन्धि नहीं कह सकते। यह तो एलैक्ज़ैण्डर प्रथम के स्वप्निल आदर्शवाद से उपजी हुई एक धार्मिक इच्छा मात्र थी। इसको यूरोप के कुछ सम्राटों ने मन से और कुछ ने बे-मन से स्वीकार कर लिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र सन्धि (Holy Alliance) पर हस्ताक्षर करने वाले राजाओं ने वचन दिया कि पवित्र धर्म (Trinity) के आधार पर वे सब एक रहेंगे और वे ईसाइयत की धार्मिक शिक्षाओं के आधार पर ही अपने-अपने देशों का शासनसूत्र चलायेंगे। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि यूरोप के प्रायः सभी ईसाई राजा भ्रातृत्व के अटूट बन्धन में बँधे रहेंगे और वे इस प्रकार आचरण करेंगे मानो वे सब एक समान ईसाई राष्ट्र के सदस्य हैं और इसी उद्देश्य से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की सहायता करेगा। उन्होंने यह भी निर्णय किया कि "शक्ति का प्रयोग एक दूसरे की सेवा के उद्देश्य से ही किया जायगा।" उन्होंने यह भी वचन दिया कि वे अपनी-अपनी प्रजा का इस प्रकार मार्ग-दर्शन करेंगे मानो वे अपने-अपने परिवारों के पिता हैं और इस प्रकार वे धर्म, न्याय और शान्ति की रक्षा करेंगे। "इस प्रकार उन्होंने मान लिया कि संसार में परमात्मा के सिवा और कोई सम्राट होने योग्य नहीं है और सारी शक्ति पर उसी का स्वामित्व है। वही विज्ञान, ज्ञान और बुद्धि का अथाह भण्डार है, वही ईश्वर सबका रक्षक है और उसका आदेश अर्थात् इंजील, परमात्मा की आज्ञा है और वही जीवन का परम संदेश है।"

पवित्र संन्धि वाले लेख (Document) पर हस्ताक्षर करने के लिये यूरोप के सभी महाराजाओं को आमन्त्रित किया गया था, केवल पोप और तुर्की के सुल्तान को आमन्त्रित नहीं किया गया। अन्त में सभी आमन्त्रित व्यक्तियों ने हस्ताक्षर भी कर दिये। केवल इंग्लैण्ड के प्रिंस रीजेंट (Prince Regent of England) ने हस्ताक्षर नहीं किये। उसने पत्र द्वारा सूचित किया कि इंग्लैण्ड को पवित्र सन्धि की शर्तों से आमतौर पर सहानुभूति है किन्तु वह ऐसे अस्पष्ट और गूढ़ प्रयत्न पर स्वयं इंग्लैण्ड की ओर से हस्ताक्षर करने में असमर्थ है और उसने यह भी सूचित किया कि मेरे पवित्र संधि (Holy Alliance) पर हस्ताक्षर हो जाने पर भी मेरे हस्ताक्षरों का कोई मूल्य नहीं होगा जब तक कि कोई उत्तरदायी मन्त्री मेरे हस्ताक्षर के ऊपर प्रति हस्ताक्षर नहीं करेगा।

अपने उद्देश्यों में पवित्र सन्धि (Holy Alliance) न तो कपटपूर्ण थी और न अनुदार ही। वास्तव में एलेक्जैंडर ने बाद में तो यहाँ तक कहा कि उसके विचारों से पवित्र सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाला प्रत्येक सदस्य उसकी शर्तों से बाध्य है कि वह अपनी प्रजा को संविधान दे। किन्तु पवित्र संधि का न तो कोई राजनीतिक लाभ था और न कूटनीतिक दृष्टि से उसका कोई लाभ हुआ। सत्य यह है कि केवल एलैक्जैंडर को छोड़कर अन्य किसी ने भी पवित्र संधि (Holy Alliance) पर अच्छी तरह से विचार नहीं किया। कैसलरी (Castlereagh) ने कहा था, "पवित्र संधि उत्कृष्ट रहस्यवाद और मूर्खता का एक भाग है।" उसका विचार था कि यदि कोई अर्थ निकालने का प्रयत्न किया जायगा तो इसके कारण हस्ताक्षरकर्त्ता भारी आपत्ति में फँस जायेंगे। मेटरनिक (Metternich) ने कहा था—यह एक तिरस्कृत और व्यर्थ का शोर मचाने वाली चीज है। किन्तु उसका विचार था कि पवित्र संधि के द्वारा जैकोबिन मतावलम्बी जार को ऐसे अवसर उपलब्ध होंगे जिनसे वह यूरोप के अन्य महाराजाओं से निकटतम कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। यह भी संदेह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा रहा था कि इस पवित्र सन्धि द्वारा एलैक्जैंडर स्वयं यूरोप का सर्वाधिकारवादी सम्राट बनने के सपने देख रहा था। और तुर्की को इस सन्धि में आमंत्रित न करने को भी इस सन्धि के लिए भारी अपशकुन समझा गया था, यद्यपि यह निश्चित-सा था कि ऐसी ईसाई-धर्म प्रधान सन्धि में तुर्की हरगिज शामिल नहीं होता और न वह उसके प्रति दृढ़ रहता। कई बार जार ने प्रयत्न किया था कि वह पवित्र सन्धि को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करे। किन्तु उसके प्रयत्न विफल रहे। यद्यपि १८१५ और १८२५ के बीच के काल में यूरोपीय व्यवस्था के साथ पवित्र सन्धि (Holy Alliance) का नाम बराबर जुड़ा रहा, फिर भी ध्यान रहे कि इसके मूल सिद्धान्तों को तत्कालीन राजनीति पर कभी लागू नहीं किया गया। पवित्र सन्धि (Holy Alliance) ने देशों के सम्बन्धों में दुरूहता पैदा कि किन्तु वह दुरूहता बहुत दिनों तक नहीं रही और पुनः अपने-अपने हितों के आधार पर देशों में राजनयिक सम्बन्ध स्थापित होने लगे। पवित्र सन्धि तो एलैक्जैंडर की कल्पना द्वारा जात अल्पजीवी मनगढ़न्त कहानी मात्र थी, यह एक नैतिक संकेत, एक पवित्र आकांक्षा थी। इसका अर्थ कुछ नहीं था। यदि इसमें कुछ राजनीतिक कार्यक्रम होता, तो इसके परिणाम बड़े विवादास्पद हो सकते थे।

चतुःसूत्री या पंच सूत्री संधि

कहाँ तो एलैक्जैंडर यह स्वप्न देख रहा था कि ईसाइयत के आदर्शों पर यूरोप के सम्राटों में भ्रातृत्व भावना का संचार होगा, और कहाँ उसके स्वप्नों की यूरोपीय व्यवस्था के स्थान पर यूरोप की चार और बाद में पाँच शक्तियों के अधिनायकवाद की स्थापना हुई। इसके पीछे मेटरनिक (Metternich) की कुटिल नीति अपना कार्य कर रही। १८१५ में नवम्बर मास में रूस, प्रशा, ऑस्ट्रिया और ग्रेट ब्रिटेन ने एक चतुःसूत्री सन्धि (Quadruple Alliance) पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि का उद्देश्य यह था कि फ्रांस के साथ अन्य यूरोपीय देशों की जो सन्धियाँ हुई थीं, उनका यथावत् पालन होता रहे, यूरोप की राजनीतिक स्थिरता बनी रहे तथा संसार की भलाई के लिए सन्धि में सम्मिलित चारों सम्राटों में मैत्री-भाव बना रहे। उन्होंने यह भी तय किया कि संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों के प्रतिनिधि समय-समय पर सम्मेलनों में मिलते रहें और यदि कोई समस्या उठ खड़ी हो तो उसे सुलझायें और यह निश्चय करें कि यूरोपीय शान्ति तथा समृद्धि के लिये कौनसा मार्ग सबसे अधिक कल्याणकारी होगा।

चतुःसूत्री सन्धि के बाद सभा और सम्मेलन में इस बात का प्रयत्न किया गया कि किसी प्रकार व्यावहारिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त किया जाय और प्रायः एक दशक तक यूरोप की संयुक्त व्यवस्था लोगों के दिमागों में गूंजती रही और उस काल की स्वार्थपूर्ण कूटनीति का प्रिय विषय बनी रही।

(१) ए-ला-शेपेल की कांग्रेस (१८१८)

सबसे पहली काँग्रेस ए-ला-शेपल (Aix-la-Chapelle) नामक स्थान पर १८१८ में हुई। इसी स्थान पर नेपोलियन ने भी एक बार सारे यूरोप के कल्याण की एक योजना बनाई थी और उसी स्थान पर अब ऑस्ट्रिया के सम्राट को यूरोप के मामलों में सर्वोच्च स्थिति पर प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। इसके बाद तो ऑस्ट्रिया और उसके मंत्री लोग बहुत दिनों तक सर्वोच्च आदर-पूर्ण स्थिति का उपभोग करते रहे।

इस सभा के सम्मुख मुख्य प्रश्न फ्रांस की स्थिति के सम्बन्ध में था। इस प्रश्न पर समझौता हो गया। यह निश्चित हुआ कि मित्रराष्ट्रों को कब्ज़ा-कृत सेना को फ्रांस की भूमि से उठा लिया जाय और फ्रांस को यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की पाँचवीं बड़ी शक्ति मान लिया जाय। किन्तु फ्रांस को पाँचवीं शक्ति मान लिये जाने से अब यह प्रश्न उठा कि पाँचों राष्ट्रों के संघ का आधार क्या हो और पुनः एक बार एलैक्जैंडर प्रथम ने पवित्र सन्धि (Holy Alliance) को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया। किन्तु आस्ट्रेलिया और इंग्लैण्ड ने एलैक्जैंडर का विरोध किया और यही निश्चित हुआ कि फ्रांस को सन्धि मैत्री के आधार पर ही चारों शक्तियों में मिला लिया जाय। किन्तु चारों शक्तियों को फ्रांस के विरुद्ध इतना सन्देह था कि उन्होंने फिर चारों देशों की सन्धि को दुहराया ताकि फ्रांस की क्रान्ति की पुनरावृत्ति न हो सके। साथ ही एलैक्जैंडर की भावनाओं के प्रति आदर प्रदर्शित करने के उद्देश्य से नये पंचसूत्रीय सन्धिकर्त्ताओं ने अपने उद्देश्य और लक्ष्य के सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रकाशित किया। इस वक्तव्य में प्रतिज्ञा की गई कि चारों शक्तियाँ नागरिकों के आधारों को मान्यता देंगी और शासन में न्याय, मेलजोल और संयम से काम लिया जायगा। यह भी प्रतिज्ञा की गई कि हर कीमत पर शान्ति की रक्षा की जायगी और राज्यों की सुख-समृद्धि में वृद्धि की जाएगी। यह पवित्र इच्छा भी व्यक्त की गई कि चारों ओर धर्म और नैतिकता के भावों का प्रचार किया जाएगा, जो दुर्भाग्यवश संघर्ष काल में प्रायः लुप्त हो चुके हैं। यह भी घोषणा की गई कि चतुःसूत्री सन्धि की विचारक गोष्ठियों में उन छोटी शक्तियों को बुलाया जायगा जिनके सम्बन्ध में कोई विषय उस समय विचाराधीन होगा।

इन उच्च आदर्शों से अनुप्रेरित होकर पाँचों शक्तियों ने सहयोग के क्षेत्र में नवीन सफलताएँ प्राप्त कीं। उन्होंने स्वीडन (Sweden) के राजा बर्नाडोट (Bernadotte) से जवाब-तलब किया कि उसने नार्वे और डेन्मार्क (Naiway and Denmark) के सम्बन्ध में सन्धि में दिये गए अधिकारों की क्योंकर अवहेलना की। उन्होंने मोनेको (Monaco) के शासक को बताया कि वह अपनी रियासत का अच्छा प्रबन्ध करे। उन्होंने हेस (Hesse) के इलेक्टर के राजा बनने के प्रश्न को तय कर दिया तथा बवेरिया (Bavaria) की सीमा-विस्तार की अभिलाषाओं पर कठिन अंकुश लगा दिया। इस प्रकार बेडन (Baden) उत्तराधिकार से लाभ उठाकर बवेरिया की राइन (Rhine) क्षेत्रीय प्रदेश प्राप्त करने की इच्छाओं पर पानी पड़ गया। इन सब निर्णयों के कारण यूरोप में यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का अच्छा प्रभाव पड़ा, किन्तु बर्नाडोट (Bernadotte) ने छोटी रियासतों की ओर से विरोध-पत्र भेजा और कहा कि यूरोपीय बड़ी शक्तियाँ अन्याय कर रही हैं।

अभी ए-ला-शेपैल की सभा विघटित भी न होने पाई थी कि पारस्परिक ईर्ष्या और विरोधी हित अपना सिर उठाने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो संगठित रूप से कार्य करना कठिन होगा और यूरोप की संयुक्त व्यवस्था टूटने जा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। सबसे पहले फूट के लक्षण स्पेन (Spain) के दक्षिणी अमेरिकन उपनिवेशों के प्रश्न पर प्रकट हुए। इंग्लैंड इस बात के लिए तैयार नहीं था कि स्पेन के विप्लवकारी दक्षिणी अमेरिकन उपनिवेशों को पुनः स्पेन के विरुद्ध कर दिया जाय क्योंकि इससे इंग्लैण्ड को इस प्रदेश के व्यापार में धक्का पहुँचता। दक्षिणी अमेरिका के उक्त उपनिवेश पहले स्पेन के अधिकार में थे किन्तु हाल ही में उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। यद्यपि उनको अभी तक स्वतन्त्र देश माना नहीं गया था। इन उपनिवेशों में ब्रिटेन को व्यापार करने की अपार सुविधा थी और इसलिए कैसलरी (Castlereagh) ने न तो यह स्वीकार किया कि वे उपनिवेश पुनः स्पेन के अधिकार में आ जाएँ और न उसने यह स्वीकार किया कि यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की शक्तियाँ स्पेन और उसके उपनिवेशों के झगड़े में उस समय तक मध्यस्थता करें जब तक कि ब्रिटिश व्यापारिक हित सुरक्षित न कर दिए जाएँ। इंग्लैण्ड ने उत्तरी अफ्रीका के बारबेरी समुद्री डाकुओं (Barbary Pirates) को रोकने के सम्मिलित प्रयत्नों में भी बाधा पहुँचाई, जो यूरोप के दक्षिणी समुद्री तट पर एल्ब नदी के मुहाने तक डाका डालते थे और लूट के माल को ले जाते थे। इंग्लैण्ड को भय था कि इस प्रकार रूसी जहाजों को भूमध्य सागर में प्रवेश मिल जाएगा। बारबेरी समुद्री डाकुओं के आतंक के कारण ऑस्ट्रिया को मजबूरन अपना समुद्री व्यापार तुर्की के जहाजों द्वारा उसके झण्डे के संरक्षण में करना पड़ रहा था। किन्तु इंग्लैण्ड किसी प्रकार भी राजी न हुआ कि रूसी जहाज डाकुओं के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भूमध्य सागर में प्रवेश करें।

इससे चिढ़कर अन्य शक्तियों ने इंग्लैण्ड को दास व्यवसाय के दमन के लिए समुद्रों की तलाशी लेने की आज्ञा नहीं दी यद्यपि दास व्यवसायी अब भी लुके-छिपे दास व्यापार कर रहे थे। वे समझ रहे थे कि कपटी इंग्लैण्ड कपट व्यवहार द्वारा व्यापारिक लाभ उठाना चाहता है।

फिर भी सभा विसर्जित होते समय सभा के सदस्यों में पर्याप्त मतैक्य था। वास्तव में भविष्य में भी पंचसूत्री सन्धि के देशों में इतना मतैक्य कभी नहीं था जितना इस समय था। मेटरनिक (Metternich) ने लिखा था, "मैंने इससे अच्छी काँग्रेस नहीं देखी।" काँग्रेस की सफलता वास्तव में मेटरनिक की सफलता थी। वास्तव में मेटरनिक पहले ही सिद्ध कर चुका था कि वही यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का कर्णधार है और उसने पर्याप्त सीमा तक जैकोबिन जार को अपने दृष्टिकोण का बना लिया था। मेटरनिक जैकोबिन विरोधी सिद्धान्तों को मानने वाला था। कांग्रेस के अधिकार और प्रतिष्ठा से सज्जित होकर उसने जर्मन परिसंघ के उपद्रव को दबाना प्रारम्भ किया। जब मेटरनिक ने कार्ल्सबाड आज्ञाएँ (Carlsbad Decrees) निकालीं तो केवल कैसलरी (Castlereagh) ने विरोध प्रदर्शित किया क्योंकि इंग्लैण्ड के विचार से कार्ल्सबाड आज्ञाएँ सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राज्यों के घरेलू मामलों में अनुचित हस्तक्षेप था किन्तु और किसी ने विरोध में चूँ तक नहीं की और मेटरनिक ने जर्मन परिसंघ में विद्रोह को दबाने में जो कुछ दमन किया वह जर्मनी के इतिहास में तो लिखा हुआ मिलेगा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु जर्मनी से बाहर यूरोप में उसके विरुद्ध कुछ भी प्रतिक्रया नहीं हुई। किन्तु कैस-लरी (Castlereagh) के विरोध में यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) के विघटन के बीज वर्तमान थे।

यूरोपीय शक्तियों की द्वितीय काँग्रेस ऑस्ट्रिया की सीमाओं में हुई। पहले १८२० में ट्रौपो (Troppau) में सभा की गई, इसके बाद सभा स्थगित होकर १८२१ में लेबैक (Laibach) में हुई। इस काँग्रेस में यह स्पष्ट हो चुका था कि यूरोपीय क्षितिज परमुसीबत की घनघोर घटाएँ छा रही हैं और यूरोप की मित्र-शक्तियों के दृष्टिकोणों और हितों में भंयकर टक्कर अनिवार्य है।

(२) ट्रौपो और लेबैक की सभाएँ (१८२०-१८२१)

यूरोप की प्रधान शक्तियों में वास्तविक टक्कर उस समय हुई जब १८२० के शुरू के महीनों में स्पेन (Spain), पुर्तगाल (Portugal) और नैपिल्स (Naples) में विद्रोह प्रारम्भ हो गये। विद्रोह प्रारम्भ होने के छः मास के भीतर उक्त तीनों देशों के लोकतन्त्रवादियों और विद्रोहियों ने अपने-अपने विधिसम्मत शासकों (Legitimate Rulers) को मजबूर कर दिया कि वे १८१२ के प्रसिद्ध स्पेनिश संविधान (Spanish Constitution of 1812) को स्वीकार करें। १८१२ के प्रसिद्ध स्पेनिश संविधान को दक्षिणी यूरोप के लोग लोक-स्वतन्त्रताओं का एकमात्र संरक्षक (Palladium of Popular Liberty) मानते थे। उस समय स्पेन का शासक फर्डिनेण्ड सप्तम (Ferdinand VII); पुर्तगाल का जॉन छठा (John VI) और नैपिल्स का फर्डीनिण्ड प्रथम (Ferdinand I) था।

इन घटनाओं की यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की पाँचों बड़ी शक्तियों पर प्रति-क्रिया हुई। पाँचों शक्तियों ने विद्रोहों की भर्त्सना की, किन्तु पाँचों शक्तियाँ इस सम्बन्ध में एकमत न हो सकीं कि इन विद्रोहों के विरुद्ध क्या कार्यवाही की जाय। स्पेन के विद्रोह की खबर सुनकर ज़ार एलैक्जैंडर (Tsar Alexander) ने यूरोपीय शक्तियों की सभा बुलाई और कहा कि स्पेन में जैकोबिन तत्त्वों द्वारा किये गए विद्रोह को तुरन्त दबाना चाहिए। वह जैकोबिन तत्त्वों को ईसाई धर्म का शत्रु समझता था। इसलिए, उसने चाहा कि १५,००० रूसी सैनिकों को आस्ट्रेलिया के मार्गों से दक्षिणी फ्रांस होते हुए स्पेन के बूरबनवंशीय राजा फर्डिनेण्ड (Bourbon Ferdinand) की सहायता के लिए जाने दिया जाय। किन्तु फ्रांस और आस्ट्रेलिया दोनों ने अनिच्छा प्रकट की क्योंकि वे रूसी शक्ति का विस्तार नहीं चाहते थे। मेटरनिक (Metternich) ने कहा कि विद्रोह अधिक भंयकर नहीं है और उसमें यूरोपीय शक्तियों के हस्तक्षेप की आवश्यकता ही नहीं है। यह कहकर उसने काँग्रेस को आहूत करने की आज्ञा ही नहीं दी।

इसके पश्चात् नैपिल्स (Naples) में विद्रोह हुआ। नैपिल्स (Naples) के बूरबनवंशीय राज्य में विद्रोह होने से इटली में ऑस्ट्रिया के प्रभुत्व को धक्का पहुँचता था। ऑस्ट्रिया ने रूस को स्पेन के विद्रोह में हस्तक्षेप नहीं करने दिया था। लेकिन अब उसे अनुभव होने लगा कि इटली के विद्रोह को दबाने की तुरन्त आवश्यकता है। चूँकि काँग्रेस यह नहीं चाहती थी, विशेषकर रूस और फ्रांस नहीं चाहते थे कि नैपिल्स के विद्रोह में अकेला ऑस्ट्रिया हस्तक्षेप करे, अतः १८२० में नैपिल्स के झगड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुलझाने के लिए और विद्रोह के दमन के लिए स्वीकृति प्रदान करने के लिए ट्रौपो (Troppau) में काँग्रेस बुलाई गई। ट्रौपो काँग्रेस के प्रारम्भ होते ही मेटरनिक (Metternich) ने कुछ ऐसे सामान्य सिद्धान्त रखे जिन्हें न तो इंग्लैण्ड ने स्वीकार किया और न फ्रांस ने। इन सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त तो यह था कि संविधान वही संतोषजनक माना जायगा जिसे राजा ने स्वीकार किया हो; दूसरा सिद्धान्त यह था कि यदि किसी राज्य की सरकार किसी ऐसे विद्रोह के कारण बदल जाती है जो सम्भवतः दूसरे राज्य के लिए खतरनाक सिद्ध होती है, तो वह राज्य यूरोपीय एलायंस (Alliance) का सदस्य नहीं रहेगा; और यदि निकट भविष्य में ही खतरा होगा तो दोषी राज्य को ग्रेट एलायंस (Great Alliance) के सम्मुख लाया जायेगा और यदि आवश्यकता हुई तो सैनिक बल से भी। ट्रौपो नयाचार (Troppau Protocol) में निहित इन सिद्धान्तों को तीनों पूर्वी शक्तियों (रूस, प्रशा और ऑस्ट्रिया) ने स्वीकार कर लिया, किन्तु ब्रिटेन ने इन सिद्धान्तों का घोर विरोध किया। इन सिद्धान्तों के कारण सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्रों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप होता और इंग्लैण्ड इसके लिए तैयार नहीं था। हालाँकि ब्रिटेन को ऑस्ट्रिया द्वारा इटली के मामलों में हस्तक्षेप में कोई विशेष आपत्ति न थी क्योंकि इटली के हस्तक्षेप को इंग्लैण्ड ऑस्ट्रिया की राजनीति का भाग मानने को तैयार था; किन्तु इंग्लैण्ड यह कदापि न चाहता था कि यह सिद्धान्त सारे यूरोप में स्पेन से लेकर पोलैण्ड तक या बल्कान प्रदेश से लेकर आयरलैण्ड तक लागू हो जाता। इसलिए ब्रिटिश प्रतिनिधि कैसलरी (Castlereagh) ने घोर प्रतिवाद किया। यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था अभी टूटी न थी किन्तु उसमें चौड़ी दरार अवश्य पड़ गई थी।

अगले वर्ष लेबैक (Laibach) में कांग्रेस हुई। यह निश्चय हुआ कि ऑस्ट्रिया नैपिल्स के राजसिंहासन पर फर्डिनेण्ड (Ferdinand) को बिठा दे। कुछ ही सप्ताहों की सैनिक कार्यवाही के बाद ऑस्ट्रिया की सेनाएँ नैपिल्स में प्रविष्ट हुईं और इस प्रकार दक्षिणी इटली का विद्रोह समाप्त हो गया। नैपिल्स में फर्डीनेण्ड को पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। पीडमौंट (Piedmont) में उदारवादी आन्दोलन भी शान्त कर देने से इटली प्रायः पूरी तरह से ऑस्ट्रिया के अधिकार में आ गया।

अब काँग्रेस ने निश्चय किया कि १८२२ में वैरोना (Verona) में सभा हो। ट्रौपो और लेबैक (Troppau and Laibach) में यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था में दरारें दिखाई पड़ने लग गई थीं और वैरोना में यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था प्रायः टूट ही गई। इसी बीच में ग्रीक लोगों ने तुर्की (Turkey) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, अतः ग्रीक प्रश्न ने भी यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की बड़ी शक्तियों में खिंचाव पैदा किया। एलैक्जैंडर (Alexander) सदैव से यही सोचता चला आता था कि बल्कान प्रदेश से सम्बन्धित सारे प्रश्नों को केवल रूस ही तय कर सकता है क्योंकि बल्कान क्षेत्र (Balkans) रूसी राजनीति का क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त वह तुर्की में उसी प्रकार स्वतन्त्र कार्यवाही करना चाहता था जिस प्रकार कि इटली में मेटरनिक (Metternich) ने की थी किन्तु मेटरनिक दृढ़-प्रतिज्ञ था कि तुर्की में रूस को अकेले कोई सैनिक कार्यवाही नहीं करने दी जाएगी। ऑस्ट्रिया चाहता था कि यदि रूस तुर्की के ऊपर आक्रमण करे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वह तुर्की की रूस के विरुद्ध सहायता करे। इस दिशा में इंग्लैंड भी ऑस्ट्रिया के साथ था, अतः मेटरनिक रूसी कार्यवाही को रोकने में समर्थ हुआ और ग्रीक प्रश्न को टाल गया।

(३) वैरोना की कांग्रेस (१८२२)

यह नितान्त सम्भव है कि वैरोना की कांग्रेस में कोई ब्रिटिश प्रतिनिधि भाग ही न लेता यदि जार्ज चतुर्थ (George IV) ने तदर्थ हठ न की होती और यदि उक्त कांग्रेस में ग्रीक प्रश्न के ऊपर विचार किए जाने की सम्भावना न होती। जब वैरोना की कांग्रेस में ग्रीक प्रश्न पर विचार स्थगित हो गया तो स्पेन के विद्रोह (Spanish Revolution) पर ही प्रधानतः वाद-विवाद हुआ। स्पेन के बूरबनवंशीय राजा फर्डिनेण्ड सप्तम ने फ्रांस के बूरबनवंशीय राजा लुई अठारहवें (Louis XVIII) से प्रार्थना की थी कि स्पेन की प्रजा के विद्रोह का दमन करने के लिए उसकी सहायता की जाये। लुई अठारहवाँ उस समय राजतन्त्र का प्रबल समर्थक था। उसकी इच्छा थी कि फ्रांस स्पेन के मामले में उसी प्रकार हस्तक्षेप करे जिस प्रकार कि ऑस्ट्रिया ने इटली में किया था। अथवा जिस प्रकार रूस तुर्की की राजनीति में हस्तक्षेप करना चाहता था। इंग्लैंड सदैव से स्पेन में फ्रांस के हस्तक्षेप का विरोधी रहा है और इस समय वह विरोध और अधिक उग्र हो गया क्योंकि कैसलरी (Castlereagh) की दुःखद मृत्यु के बाद केनिंग (Canning) ब्रिटेन का विदेश-मन्त्री बना था। इंग्लैण्ड में यह भावना घर कर गई कि यदि स्पेन के बूरबन सम्राट का समर्थन किया जायेगा तो यह बहुत कुछ पहले के बूरबन परिवार के कम्पैक्ट (Bourbon Family Compact) के समान होगा। अन्य यूरोपीय शक्तियाँ इस सम्बन्ध में एकमत न थीं। कुछ शक्तियाँ केवल फ्रांस द्वारा स्पेन में हस्तक्षेप के विरुद्ध थीं; किन्तु कुछ अन्य शक्तियों को यह भी भय था कि कहीं रूसी फौजें पश्चिमी यूरोप में न आ धमकें। जब अन्य देशों ने फ्रांस को स्पेन के विद्रोह का दमन करने की आज्ञा दे दी, तो इंग्लैंड ने कांग्रेस छोड़ दी।

इंग्लैण्ड द्वारा कांग्रेस छोड़ देने पर कांग्रेस विभक्त हो गई और स्पेन के घोषणा-पत्र के साथ वह समाप्त हुई। फ्रेंच सरकार की कृपा कौर पर स्पेन का भाग्य छोड़ दिया गया और अप्रैल, १८२३ में ९५,००० फ्रांसीसी सैनिक स्पेन की ओर बढ़े। उन्होंने ६ मास के भीतर स्पेन में राजतन्त्रीय व्यवस्था को पुनः स्थापित कर दिया। उनकी सफलता के कारण स्पेनी-अमेरिकी बस्तियों के सम्बन्ध का सवाल फिर से पैदा हो गया। इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका नहीं चाहते थे कि अमेरिका की बस्तियों में स्पेन या फ्रांस की तानाशाही चले। दिसम्बर १८२३ में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति मनरो (Monroe) ने प्रसिद्ध मनरो सिद्धान्त की घोषणा की जिसके द्वारा यूरोपीय शक्तियों को सतर्क कर दिया गया कि वे नई दुनिया में हस्तक्षेप न करें। इसी समय स्पेन की अमेरिकी बस्तियों (Colonies) को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया और उनकी स्वतन्त्रता को इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्वीकार कर लिया। फ्रांस द्वारा स्पेन के आक्रमण का यह जवाब था जो इंग्लैण्ड की ओर से केनिंग (Canning) ने दिया। उसने कहा, "पुरानी दुनिया के संतुलन को दबाने के लिए मैंने एक नई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनिया का निर्माण किया है।"

यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के लिए एक और प्रयत्न १८२५ में किया गया जबकि ज़ार (Tsar) ने सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) में पूर्वी समस्या पर विचार करने के लिए दो सम्मेलन आमन्त्रित किए। सेंट पीटर्सबर्ग में सम्मेलनों का कोई फल नहीं निकला। दूसरे सम्मेलन में तो इंग्लैंड ने प्रतिनिधि ही नहीं भेजा और एलैक्जैंडर ने भी यहाँ तक कह डाला कि भविष्य में रूस अपने स्वाभिमान और हितों को देखते हुए पूर्वी प्रश्न का निर्णय स्वयं करेगा और इस सम्बन्ध में रूस को मित्र राष्ट्रों की सलाह लेना अनिवार्य न होगा। उक्त घोषणा एलैक्जैंडर ने अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व ही की थी।

अब यूरोप में सार्वजनिक और सन्धि विधि (Public and treaty law) का विकास हो रहा था अतः यूरोप की मुख्य शक्तियों की ऐसे प्रश्नों में स्वाभाविक रुचि रहने लगी, जैसे बेल्जियम और लक्सेम्बर्ग (Belgium and Luxemburg) की तटस्थता अथवा निकट पूर्वी समस्या आदि। किन्तु पवित्र सन्धि (Holy Alliance) में इस प्रकार के सम्मिलित उत्तरदायित्वों का पूर्ण अभाव था और राष्ट्र-संघ में भी सम्मिलित उत्तरदायित्वों को कोई स्थान नहीं दिया गया था क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय नीति का अपने राष्ट्र के हितों को सामने रखकर ही निर्माण करता है।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी से पूर्व केवल एक ही प्रयत्न किया गया था जिसके द्वारा विभिन्न देशों में सहयोग का मार्ग प्रशस्त होता, किन्तु वह प्रयत्न विफल हो गया। अब सभी राष्ट्र शक्ति-संतुलन के सिद्धान्तों के आधार पर अलग-अलग राजनयिक गठबन्धन करने लगे। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था टूटने के कई कारण थे किन्तु मुख्य कारण यह था कि ब्रिटेन इस व्यवस्था से हट गया और सभी राष्ट्रों में पारस्परिक ईर्ष्या और सन्देह था। ब्रिटेन चाहता था कि दूसरों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय। ब्रिटेन को मेटरनिक की तानाशाही और यूरोप के राजाओं की निरंकुशता से भी विरोध था। वास्तव में यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का आधार लोकतन्त्रात्मक स्वतन्त्र राष्ट्र तो थे नहीं, यह तो सम्राटों का गठबन्धन था जिनमें तीन सम्राट तो निस्संदेह निरंकुश सम्राट थे। यदि ऐसी संयुक्त व्यवस्था में हस्तक्षेप का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता तो इसका यह अर्थ होता कि सारे यूरोप में ही निरंकुशता का जाल-सा फैल जाता। वास्तव में इंग्लैण्ड ने कभी भी 'एक यूरोपीय नीति' के आदर्श को स्वीकार नहीं किया। इंग्लैण्ड ने चतुःसूत्री संधि को भी यही समझा था मानो वह चौमौण्ट की सन्धि (Treaty of Chaumont) का नया संस्करण है तथा वह पुराने शत्रु के विरुद्ध है किन्तु उसका प्रभाव-क्षेत्र सीमित है और विशेष रूप से रक्षात्मक है। कैसलरी (Castlereagh) ने भी कहा था कि वाद के इतिहास ने सिद्ध कर दिया कि "यूरोप इंग्लैंड से दूर होता जा रहा था।"

यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था (The Concert of Europe) के टूटने का एक कारण यह भी था कि यूरोपीय शक्तियों के हितों में टकराव था। कोई संघात्मक व्यवस्था तब तक नहीं चल सकती जब तक कि अवयवी संघटक एककों के कुछ सामान्य हित न हों। यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के देशों के न तो सामान्य राजनीतिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हित थे, न सामान्य व्यापारिक हित थे और न सभी देशों में एक प्रकार की शासन-प्रणालियाँ थीं। हम यह भी देख चुके हैं कि मेटरनिक के नेतृत्व में केवल विद्रोह और क्रान्ति को रोकने के अभिप्राय से यूरोपीय शक्तियों का जो गुट बना था वही पवित्र सन्धि (Holy Alliance) बाद में वेरोना के 'तीन भले आदमियों की मैत्री' (Three Gentlemen of Verona) में परिणत हो गई और उसका उद्देश्य केवल यह रह गया कि वह एकतन्त्रात्मक स्वेच्छाचारिता का पोषण करे। किन्तु इस छोटे से शक्ति समुदाय में सभी के अलग-अलग राजनीतिक और संवैधानिक हित थे। इसलिए वेरोना की सन्धि के तीनों देश भी कोई सम्मिलित कार्यवाही करने में असमर्थ थे।

वास्तव में यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय शांति की दिशा में एक सही पग था किन्तु नेपोलियन के युद्धों के कारण ही इस विचार ने मूर्त्त स्वरूप धारण किया था। अतः, असाधारण ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक अवस्था में उठी हुई यह एक अल्पकालीन मन-तरंग थी। सारा यूरोप ही नेपोलियन को अपना शत्रु समझता था। इसलिए यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था सभी की सम्मिलित इच्छाओं का फल थी, किन्तु यूरोप में एकमतता थोड़े समय ही रही। इसलिए, संयुक्त व्यवस्था भी धीरे-धीरे धूमिल पड़ गई।

यूरोप में लोकतन्त्र और राष्ट्रीय भावना की लहर (१८१५-१८५०)

(The Democratic and Nationalist Aspirations of Europe) (1815-1850)

यह बताया जा चुका है कि राजनीति के क्षेत्र में १८१५ से लेकर १८५० तक का काल केवल महती अभिलाषाओं का काल था, सफलताओं का नहीं। इस युग में राजनीतिज्ञों को इतनी इज्जत नहीं मिली जितनी कि कवियों, गायकों और विद्वानों को। इतिहास में उस काल के बीथोविन (Beethoven), गेटे (Goethe), हीन (Heine), वर्ड्सवर्थ (Wordsworth), शैली (Shelley), बाइरन (Byron) और अन्य अंग्रेज कल्पनाप्रधान कवि अभी तक मशहूर हैं। इस काल में चैटोब्रायण्ड (Chateaubriand), विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo), बालजक (Balzac), हीगल (Hegel), मिल (Mill), काम्टे (Comte), फैरेडे (Faraday), कौरोट (Corot) और चौपिन (Chopin) भी प्रख्यात हैं। किन्तु इस युग के आधे दर्जन राजनीतिज्ञ इतिहास के पन्नों में से छाँटना कठिन होगा। राजनीतिज्ञों और राजनयज्ञों की निपुणता के कारण सर्वसाधारण के जीवन पर इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा था जितना कि रेलों के निर्माण से। उस समय के समाज पर राजनीति का इतना गहरा प्रभाव न था जितना कि उद्योगों के विकास या वैज्ञानिक खोज, कला-प्रियता, व्यापक धार्मिक आन्दोलनों, विश्व-प्रेम या शिक्षा-सिद्धान्तों के प्रसार का।

१८१५-१८५० का काल, कला, विज्ञान और उद्योग के क्षेत्र में महान उन्नति का काल किन्तु राजनीति के क्षेत्र में केवल पवित्र अभिलाषाओं का काल—सफलताओं का अभाव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि इस काल में कुछ-न-कुछ राजनीतिक हलचलें भी चलती ही रहीं; किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में कोई सफलताएँ प्राप्त न हो सकीं। सत्य तो यह है कि यह युग राजनीतिक निराशाओं का काल था। परन्तु इस काल को राजनीतिक तैयारियों का काल भी कह सकते हैं। लोगों के मनों में स्वतन्त्र होने की इच्छा अवश्य थी। वे राष्ट्रीय एकता और राजनीतिक स्वतन्त्रता की भाषा में सोचने लगे थे। किन्तु उनके स्वप्नों को साकार होने में अपार बाधाएँ थीं—निरंकुश राजाओं का दमन और सर्व-साधारण में चेतना का अभाव। यदि कोई देश-प्रेम का दीवाना अपने स्वप्न को साकार करने के लिए कमर भी कसता तो उसके लिए जेलों की दीवारें तैयार थीं या देशनिकाले की सजा उसका स्वागत करती। यदि उस युग के क्रांतिकारी सम्मिलित प्रयास करते थे तो उनकी छोटी-मोटी सेनाएँ हरा दी जाती थीं और फिर प्रतिक्रिया का दौर शुरू हो जाता था। उस समय के किसी राजनीतिक सुधारक को प्रायः सफलता नहीं मिली किन्तु १८५० के बाद जाकर सर्वसाधारण में राजनीतिक चेतना आई और तब राज-नीतिक सुधार भी हुए।

उस काल के अधिकतर संघर्षों का मुख्य कारण यह था कि एक ओर फ्रेंच क्रांति ने राजनीति को राज-दरबारों और प्राइवेट राज-कक्षों से बाहर कर उसे अख-बारों, सड़कों और सर्वसाधारण की चीज बना दिया था। दूसरी ओर यूरोप के सम्राट्गण और उनके प्रधानमन्त्री (Chancellors) राजनीति के सम्बन्ध में इस विकास को स्वीकार करने में असमर्थ थे। वे अब भी यही चाहते थे कि राजनीति के खेल पर केवल सम्राटों और राजनयज्ञों का एकाधिकार बना रहे। तथापि, बहुत से सम्राट अपनी प्रजा की स्थिति को सुधारने के पक्ष में थे। उन दिनों सम्राट प्रायः निरं-कुश होते हुए भी उदार (Enlightened despots) के। किन्तु फ्रेंच-क्रान्ति ने सम्राटों की स्थिति को बहुत ही कमजोर कर दिया था। इसका फल यह हुआ कि यूरोप के सम्राटों ने सर्वसाधारण की माँगों की इस कारण ही उपेक्षा नहीं की कि वे अनुचित थीं, बल्कि उनकी आवाज की इस कारण भी उपेक्षा की जाती थी—बल्कि उनकी इच्छाओं का दमन किया जाता था—कि सम्राट इस विचार को स्वीकार करने में असमर्थ थे कि राज्यों की राजनीति या शासन के विषय में सर्वसाधारण को विचार करने का अधिकार है।

सर्वसाधारण की दो इच्छाएँ थीं। वे अपने देशों में लोकतन्त्र और राष्ट्रवादी भावनाओं का उदय चाहते थे। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, स्वीडन और रूस आदि कुछ देश ऐसे थे जिनमें राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्र की स्थापना हो चुकी थी। इन देशों में सर्वसाधारण चाहते थे कि प्रजातन्त्र की आवश्यकताओं के रूप में बहुमत शासन की स्थापना हो, प्रतिनिधिक संसदें हों, पूर्ण वयस्क—पुरुष—मताधिकार हो, धार्मिक सहिष्णुता हो और समाचारपत्रों पर किसी प्रकार के बन्धन न रहें। कहीं-कहीं के लोगों की यह भी इच्छा थी कि कृषि-सम्बन्धी अथवा उद्योग-सम्बन्धी छोटे-मोटे सुधार भी किये जायें।

लोकतन्त्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विपरीत जर्मनी और इटली में सभी लोग एक ही जाति के थे किन्तु राजनीतिक रूप से वे विभक्त थे। बेल्जियम, नार्वे, आयरलैण्ड, पोलैंड और ईसाई बल्कान प्रदेशों की प्रजा विदेशी एवं सहानुभूति-हीन राज्यों के अधीन थी अतः इन देशों में सर्वसाधारण चाहते थे कि उन्हें विदेशी अधीनता से छुटकारा मिले और लोकतन्त्र प्रतिष्ठित हो।

राष्ट्रवाद

इंग्लैण्ड का इतिहास वास्तव में इस पुस्तक का विषय नहीं है, फिर भी वह कुछ अपवादों के साथ यूरोपीय इतिहास के साथ-साथ चला। ब्रिटेन में भी लोकतन्त्र के पक्ष में आन्दोलन हुए और आयरलैंड (Ireland) में भी राष्ट्रीय आन्दोलन हुए। इंगलैण्ड और आयरलैंड में व्यापक उपद्रव हुए और उनकी प्रतिक्रिया भी हुई, १८४८ के यूरोपीय विद्रोह की स्पष्ट गूंज इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड में सुनी गई। किन्तु कुछ बातों में इंग्लैण्ड उन घटनाओं और विचारधाराओं से अछूता रहा जिनका अन्य यूरोपीय राज्यों में प्राधान्य रहा। इंग्लैण्ड के लोगों की शिकायतें इतनी तीव्र न थीं और इंग्लैण्ड में उपद्रव भी भयंकर प्रकार के उपद्रव न थे। इंग्लैण्ड के सर्वसाधारण को स्वशासन प्राप्त हो चुका था जब कि यूरोप के देशों की प्रजा तब निरंकुश राजाओं का खिलौना बनी हुई थी। यूरोप के निरंकुश सम्राट के पास तरह-तरह के विशेषाधिकार थे जिनसे इंग्लैण्ड के सम्राट भी सज्जित थे फिर भी इंग्लैण्ड के सर्वसाधारण को जो रियायतें और सुधार प्राप्त हो चुके थे उनको नष्ट करना या उन्हें वापस लेना सरल नहीं था। इंग्लैण्ड में सुधार बहुत ही धीरे-धीरे हुए हैं—वे किसी आकस्मिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप कभी नहीं हुए। इसको इंग्लैण्ड की चारित्रिक त्रुटि भी कहा जा सकता है और इंग्लैण्ड का रक्षा कवच भी। १८१९ में इंग्लैण्ड में छः अधिनियम (Acts)[1] पास किए गए थे, ये १८१८ की कार्ल्सबाद आज्ञाओं से सादृश्य रखते थे। किन्तु ये छः अधिनियम उस राजनीतिक दल ने पास किए थे, जिसने फौजदारी विधि में सुधार किया था, जेलखानों की स्थिति में भी सुधार किया था, कैथोलिकों (Catholics) की राजनीतिक विवशताओं को दूर कर दिया था तथ व्यापार के नियमों को उदार बना दिया था और उसी दल ने बाद में श्रमिकों की दशा सुधारने का बीड़ा उठाया था। जिस देश ने कभी ओ' कोनेल (O' Connell) को जेल में डाल दिया था, उसी ने फिर यूरोप के अनेक राष्ट्रीय निर्वासितों को अपनी गोदी में शरण दी।

यूनाइटेड किंगडम — किसी सीमा तक एक अपवाद

लगातार विकास और प्रगति की ओर

मशीनों से युक्त बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किए जाने के पश्चात् और बेकारी एवं चालीस भूखे वर्षों (Hungry Forties) के पश्चात् इंग्लैंड के ऊपर महान् आर्थिक अवसाद आया फिर भी इस काल में लगातार आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास होते रहे। फ्रांस के साथ सन्धि होने के बाद के छः वर्षों को

---

१. १८१९ में इंग्लैण्ड में जो छः अधिनियम पास किए गये थे, उनके द्वारा समाचारपत्र और सार्वजनिक सभाओं पर पाबन्दी लगा दी गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ते हुए शेष काल निरन्तर प्रगति का काल रहा और ग्रे (Gray) के व्हिग दल के मन्त्रिमण्डल काल में तो इंग्लैण्ड की विशेष उन्नति हुई।

१८३०-१८३५ का काल —इंग्लैण्ड के इतिहास का निर्माण-काल

१८३० के बाद लगातार विकासोन्मुख संविधियाँ पास हुईं। १८३२ का रिफार्म ऐक्ट; १८३३ का फैक्टरी ऐक्ट और शिक्षा अधिनियम; १८३४ का पूअर लॉ (Poor Law of 1834), १८३५ का म्युनिसिपल कार्पोरेशन्स ऐक्ट (Municipal Corporations Act of 1835) आदि। इन्हीं संविधियों की आधार-शिला पर नवीन इंग्लैण्ड की स्थापना हुई है। इंग्लैण्ड की सरकार ने भारतीय शासन में भी सुधार किए। इंग्लैण्ड में १८४० में कनाडा ऐक्ट (Canada Act) पास करके यह दिखा दिया कि वह अपने साम्राज्य के प्रति भी अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करेगा। इंग्लैण्ड ने २ करोड़ पौंड का स्वयं घाटा सहकर गुलाम प्रथा का अन्त किया। यह दुनिया के सामने श्रेष्ठ उदाहरण था।

फ्रांस

फ्रांस में पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में भारी उथल-पुथल हुई थी। राजतन्त्र से राजा की हत्या की ओर, भयावह स्थिति से साम्राज्य की ओर, विजयों से पराजयों की ओर, और बोनापार्ट से बूरबन वंशज राजाओं की ओर—ये ऐसी घटनाएँ थीं जिनसे फ्रांस में भारी हलचल हो जाना अनिवार्य था। फ्रांस में क्रांति के बाद राजतन्त्र की स्थापना हुई थी, लिली नामक फूलों के झण्डे का स्थान तिरंगे (नीला, सफेद और लाल) झण्डे ने ले लिया था और देश के निर्वासित देशभक्त लौट आए थे और वे समय की बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार नए विशेषाधिकारयुक्त लोगों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार थे।

लुई अठारहवाँ (१८१५-२४)

लुई अठारहवाँ (Louis XVIII) अधिक योग्य व्यक्ति तो न था किन्तु वह अपने बड़े भाई लुई १६वें के समान बदला लेने वाला भयंकर व्यक्ति भी न था। फ्रांस को लौटते समय वह अपने साथ एक संवैधानिक आज्ञापत्र लाया था। इसमें निर्वाचित संसद्, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, धर्म-निरपेक्षता, समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता और कुछ अन्य सुधारों की व्यवस्था थी। इनके कारण उस समय की उदारवाद की माँगें किसी सीमा तक पूर्ण होती थीं। इंग्लैण्ड के चार्ल्स द्वितीय की तरह वह फिर यात्राओं में मारा-मारा फिरना नहीं चाहता था। वह कृतसंकल्प था कि बीच का मार्ग ग्रहण करेगा और समझौतावादी नीति पर चलेगा। किन्तु वह अत्यधिक राजतन्त्रवादी तत्त्वों को काबू में न रख सका और वे देश पर और मन्त्रियों पर पूरी तरह छा गए।

१०० दिनों के नेपोलियन के शासनकाल के बाद दक्षिणी फ्रांस में विद्रोह हुआ। गणतन्त्रवादियों और बोनापार्टिस्टों के ऊपर भारी अत्याचार किए गए। सम्भवतः फ्रेंच क्रान्ति में इससे बड़े अत्याचार नहीं देखे गए थे। उस समय संसद् (Chamber of Deputies) में राजभक्तों (Royalits) का बहुमत था। उन्होंने माँग की कि दमनकारी तथा बदला लेने वाली कार्यवाही की जाए और उन लोगों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोर दण्ड दिया जाय जिन्होंने १०० दिनों तक नेपोलियन के शासन-काल में उसको सहायता दी थी। यहाँ तक कि मार्शल नी (Ney) की हत्या कर दी गई। १८२० में आर्टोइस के काउण्ट के पुत्र ड्यूक ऑफ बेरी (Duke of Berri) की हत्या कर दी गई, इससे राजभक्तों और प्रतिक्रियावादियों की शक्ति और अधिक बढ़ी, यद्यपि ड्यूक ऑफ बेरी की मृत्यु के पश्चात् उसका एक पुत्र[1] उत्पन्न हुआ जिसके कारण बूरबन वंश (Bourbons) का अस्तित्व-नाश न हुआ। ड्यूक ऑफ बेरी के हत्यारे लावेल (Louvel) ने, जो बोनापार्ट का एक सिपाही था, कहा कि उसका कथित हत्या में किसी अन्य व्यक्ति से कोई सम्पर्क न था। फिर भी इस हत्या का बदला उदारवादियों (Liberals) से लिया गया। राजा को मंजबूरन चर्च का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। सारे देश में उदारवाद विरोधी भावना फैलने लगी। इस प्रतिक्रिया का नेतृत्व उन राजभक्त प्रवासी नेताओं (Emigrees) के हाथों में था जो फ्रेंच क्रान्ति के समय देश छोड़कर भागे थे और अब स्वदेश लौट आये थे। इन लोगों ने गत बीस वर्षों में न तो कुछ सीखा और न ही कुछ भूले।

किन्तु विरोध प्रारम्भ हो चुका था। इटली, स्पेन और जर्मनी में कार्बोनारी (Carbonari) नामक गुप्त क्रान्तिकारी दल धीरे-धीरे पनप रहा था। यह दल कांग्रीगेशन (Congregation) नामक प्रतिक्रियावादी धार्मिक संगठन के विरुद्ध था। अब सेना में विप्लव हुआ और फ्रांस के विद्वत्समाज की ओर से भी विरोध प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार एक बार पुनः मृत सम्राट नेपोलियन का यश चारों ओर फैलने लगा। किन्तु लुई अठारहवाँ (Louis XVIII) शान्तिपूर्वक मर गया। फ्रांस में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई जब ड्यूक द' एंग्लीम (Duc d'Angouleme) ने स्पेन के ऊपर सफल आक्रमण किया। लुई अठारहवें (Louis XVIII) के बाद उसका भाई काम्टे डी आर्टोयस (Comte d'Artois) चार्ल्स दशम (Charles X) के नाम से १८२४ में फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठा। किन्तु उसने विरोधियों को विद्रोह करने पर विवश कर दिया। वैलिंगटन (Wellington) ने लिखा था, "राजा चार्ल्स दशम को राजनीतिक अनुभव नहीं है। इंग्लैण्ड के राजा जेम्स द्वितीय (James II) के समान उसने पुजारियों की पुजारियों के लिए और पुजारियों द्वारा सरकार स्थापित की है।" उसने भी इंग्लैण्ड के जेम्स द्वितीय के समान ही अपने शासन का आधार दैवी अधिकार बतलाया और वह सर्वसाधारण की स्वतन्त्रता के मूल्य पर पादरियों और सामन्तों के हित-साधन करने लगा। उसने आलोचना और स्वतन्त्र निर्वाचनों को मर्यादित किया—यहाँ तक कि चारों ओर प्रबल असन्तोष दृष्टिगोचर होने लगा। यद्यपि फ्रांस के जहाजी बेड़े ने नैवेरिनो (Navarino) के युद्ध में भाग लिया था और अल्जीरिया में विजय प्राप्त की थी फिर भी नये सम्राट के प्रति विरोध बना ही रहा। जुलाई १८३० में चार्ल्स दसवें द्वारा पोलिग्नेक (Polignac) के नेतृत्व में एक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी मन्त्रिमण्डल को

चार्ल्स दशम (१८२४-३०)

---

१. इस पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों पर बूरबन वंशावली देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्त करने पर तो भयंकर संकट-काल उपस्थित हो गया। जब उक्त प्रतिक्रियावादी मन्त्रिमण्डल ने चार दमनकारी आज्ञा-पत्र जारी किए, तो पेरिस के लोगों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। तीन दिनों तक पेरिस की सड़कों पर नाकेबन्दी[1] रही और भयंकर लड़ाई प्रारम्भ हो गई। राजा की सेनाएँ भागने लगीं तथा कुछ क्रांतिकारियों से मिल गईं। चार्ल्स दशम ने देखा कि उसकी समझौते की कोशिशें भी बेकार गईं और इस प्रकार बूरबन वंश की प्रथम या अग्रगण्य शाखा के वंशज को एक बार पुनः फ्रांस का राज्य त्यागना पड़ा।

१८३० की जुलाई क्रान्ति

कुछ दिनों के बाद लुई फ़िलिप (Louis Philippe) को फ्रेंच जाति का सम्राट घोषित किया गया। लुई फ़िलिप उस फ़िलिप ईगेलाइट (Philippe Egalite) का पुत्र था जिसने प्रथम क्रान्ति में कुछ भाग लिया था। अब चार्ल्स दशम (Charles X) रोता हुआ इंग्लैण्ड को पलायन कर रहा था। कारलायल (Carlyle) ने लुई फ़िलिप के बारे में लिखा है—"ईगेलाइट फ़िल्स, वाल्मी (Valmy) में एक छोटा-सा नौजवान था। वह बराबर वालों में छोटा था किन्तु युद्धवीर था। युद्धों में वह निडर होकर चलता था। यह वही युद्धवीर ईगेलाइट फ़िल्स ही था जो अपनी शूरवीरता के कारण लुई फ़िलिप बनकर फ्रांस के राज-सिंहासन पर आया। यद्यपि अभी वह सम्राट पद के योग्य न था फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों में उसे एक मौसम के लिए फ्रेंच जाति का सम्राट भी बनना पड़ा।" अनेक मुसीबतें सहन करने के बाद उसने साहस-पूर्वक अपने आपको नागरिक सम्राट (Citizen King) घोषित कर दिया। वह बोर्जुआ कोट के ऊपर तिरंगा दुपट्टा पहने रहता था, साम्राज्य के प्रतिनिधियों से वह अच्छी तरह मिलता था, वह अपने लड़कों को सार्वजनिक विद्यालयों में भेजता था और राष्ट्रीय रक्षक दलों में उसने अपने लड़कों को सामान्य नागरिकों की हैसियत से भर्ती करा दिया था। किन्तु सुदृढ़ स्थिति स्थापित करने के मार्ग में उसे चारों ओर से विरोध मिला। टेलीरेण्ड (Talleyrand) उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था; वयोवृद्ध ला फायत (La Fayette) अपने दाँवपेंच खेल रहा था, ऑर्लियन्स वंशज भी पूरी सहायता नहीं कर रहे थे—यहाँ तक कि यूरोप की बड़ी शक्तियों की ओर से भी इतना पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं हो रहा था जो अधिक काल तक स्थायी राजवंश चलता। जुलाई क्रान्ति की घटनाओं ने क्रान्ति की याद लोगों के मनों में ताजा कर दी थी। इस जुलाई क्रान्ति के फलस्वरूप सर्वसाधारण की राष्ट्रीय आकांक्षाएँ पूर्ण न हो सकी थीं। नए राजा से राज्य का प्रत्येक वर्ग असन्तुष्ट था, फिर भी राजवंश १८ वर्षों तक इसलिए चलता रहा कि राजवंश के शत्रु संगठित प्रयत्न न कर सके।

---

१. एम० बौड्री (M. Baudry) ने केवल दो वर्ष पूर्व पेरिस (Paris) में ऐसी ओम्नीबस (Omnibus) चलाना शुरू किया था जिसमें सभी नागरिक बिना किसी वर्ग-विभेद के यात्रा कर सकें। उक्त ओम्नी बसों (Omnibuses) द्वारा सड़कों पर रक्षा-पंक्तियाँ तैयार की गई थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुई फ़िलिप के राज्य की नींव बहुत कमजोर थी। लेजिटिमिस्ट (Legitimists) लोग ऐसी राजसत्ता से प्रसन्न न थे जो राजाओं के दैवी अधिकारों पर आश्रित न हो और जिसका आधार लोगों की इच्छा हो। कैथोलिक मतावलम्बी भी इस राजा से प्रसन्न न थे क्योंकि वह धर्माचार्यों के आदेशानुसार राज-कार्य नहीं चला रहा था। गणतन्त्रवादी (Republicans) भी प्रसन्न नहीं थे। यद्यपि १८३० की क्रांति प्रारम्भ करने में उनका प्रमुख हाथ था किन्तु वे देख रहे थे कि नया राजा भी चुपके-चुपके निरंकुश शासन स्थापित करना चाहता है। उन्होंने देखा कि १८३० की क्रांति ने राजा को अवश्य बदल दिया किन्तु राजा के हृदय का परिवर्तन न हो सका। इस समय देश में समाजवादी दल और साम्यवादी दल भी जोर पकड़ रहे थे। देश की आर्थिक स्थिति दयनीय थी और राज्य की ओर से उसको सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा था। इस समय साम्यवादी साहित्य भी प्रचुरता से बन रहा था। लुई ब्लांक (Louis Blanc) ने अपने लेखों में एक निश्चित आर्थिक कार्यक्रम पेश किया था। सर्वसाधारण व्यग्र थे कि धनिकों के शासन के स्थान पर सामाजिक क्रांति हो। वे समझते थे कि धनिक वर्ग की राजमुकुट से साँठ-गाँठ है। लुई फ़िलिप के शासन-काल में नेपोलियन की स्मृति पुनः ताजा होने लगी। बोनापार्टिस्ट (Bonapartists) नए राजा को घृणा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि उसकी विदेश-नीति न साहसपूर्ण थी और न उत्तेजनापूर्ण थी। नेपोलियन के भतीजे लुई नेपोलियन की साहसिक गाथाएँ कभी-कभी सुनाई पड़ जाती थीं, इस कारण फ्रांस की विदेश नीति के प्रति और भी अधिक अरुचि और निराशा होती जाती थी। लामर्टीन (Lamartine) ने तत्कालीन शासन की निष्क्रियता के सम्बन्ध में लिखा था कि "एक पत्थर का बुत भी इससे अच्छा शासन चला सकता था।"

इस प्रकार राज्य के सभी वर्ग निराश थे। यद्यपि देश का मध्यवर्ग इस समय खुशहाल था जिससे यह अन्दाजा लगाया जा सकता था कि लुई फ़िलिप का शासन सफल रहा फिर भी सत्य यह है कि उसके शासन-काल में बराबर उपद्रव होते ही रहे। १८३२ में लेजिटिमिस्ट लोगों (Legitimists) ने विद्रोह किया। उन्हें डचेस डी बेरी (Duchesse be Berri) ने भड़काया था क्योंकि वह प्रोविंस (Provence) और ला वैंडी (La Vendee) को हेनरी पंचम नामक अपने पुत्र के पक्ष में उत्तेजित करना चाहती थी। लुई नेपोलियन ने भी १८३६ में स्ट्रैसबर्ग (Strasburg) में और फिर १८४० में बुलोन (Boulogne) में उपद्रव करवाकर राजमुकुट छीनने के असामयिक प्रयत्न किए थे। कई बार सम्राट और उसके परिवार के लोगों की हत्या करने के प्रयत्न किए गए। पेरिस (Paris) में कई बार षड्यन्त्र और उपद्रव हुए। १८३१ और पुनः १८३४ में रिपब्लिकन लोगों ने लायन्स (Lyons) में विद्रोह कर दिया था। फ्रांस के कई अन्य नगरों में भी इस प्रकार के जन-विद्रोह हो चुके थे।

मताधिकार के प्रश्न को लेकर फरवरी १८४८ में फ्रांस के राजपरिवार पर ऐसा संकट-काल आया जिससे ऑर्लियन्सवंशीय राजपरिवार उखड़ गया और लुई फ़िलिप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Louis Philippe) को निर्वासन का मार्ग ग्रहण करना पड़ा। वास्तव में १८४८ का विद्रोह कई कारणों से हुआ था और कई प्रकार के विरोधी तत्त्व शासन के विरुद्ध कार्य कर रहे थे। चार विभिन्न मार्गों से लोगों का असंतोष क्रान्ति के द्वार पर पहुँचा था। क्रान्ति के प्रथम दो दिनों अर्थात् २२ और २३ फरवरी को लोगों ने लुई फ़िलिप के मन्त्रियों की अकर्मण्यता की भर्त्सना की। गिजोट (Guizot) की नीति से लोग विशेष क्रुद्ध थे। डी टौकविले (De Tocqueville) ने कहा था कि "फ्रांस की तत्कालीन सरकार एक औद्योगिक सीमित प्रमण्डल (Limited Company) के समान थी जिसके समस्त क्रिया-कलाप केवल इस उद्देश्य से संचालित होते थे कि अंशधारियों (Shareholders) से अधिकतम लाभ चूसा जाय। इस प्रकार १८४८ का विद्रोह घृणा का विद्रोह था। शासन के विरुद्ध जनतन्त्रवादी भावना भी काम कर रही थी। जनतन्त्रवादी भावनाएँ फ्रांस में १७९२ में घर कर गई थीं और १८३० में तो उनको बल मिल गया था। प्रबल जनतन्त्रवादी भावना ने लुई फिलिप (Louis Philippe) को राज्य त्यागने पर विवश किया और राजतंत्र समाप्त कर दिया गया। उपद्रवकारियों ने जनतन्त्रवाद के पक्ष में घोषणा कर दी और एक अस्थायी सरकार की स्थापना की। किन्तु शीघ्र ही जनतन्त्रवादियों की विजय को एक तीसरे नए दल ने चुनौती दी। यह नया दल नगरों, विशेषकर पेरिस के मजदूरों और समाजवादी सर्वहारावर्गों का दल था। औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) ने और संवैधानिक और राजनीतिक उपायों की असफलताओं ने इस नए एवं शक्तिशाली दल को जन्म दिया था। जून और जुलाई के लम्बे महीनों में लगातार जनतन्त्रवादियों के हाथों में तिरंगा झंडा रहा और समाजवादियों एवं साम्यवादियों के हाथों में लाल झंडा रहा और वे एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्षरत रहे, किन्तु अन्त में समाजवाद की पराजय हुई क्योंकि देहातों के किसानों ने मध्यवर्ग अर्थात् जनतन्त्रवादियों का साथ दिया। संभवतः कृषकवर्ग को भय था कि समाजवादी और साम्यवादी उनकी भूमि छीन लेंगे। १७८९ की क्रांति में भी किसानों ने मध्यवर्ग का पक्ष लिया था।

१८४८ का विद्रोह

परन्तु क्रांति का चतुर्थ चरण शेष था। अन्त में बोनापार्टवादी (Bonapartists), जो जनतन्त्रवादियों के पक्ष में कार्य कर रहे थे, विजयी रहे। अब महान् सम्राट नेपोलियन के भतीजे लुई नेपोलियन बोनापार्ट का नाम फ्रांस के अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तुत किया गया तो उसको भारी बहुमत से चुन लिया गया। नवम्बर में जनतन्त्रवादियों ने जो फ्रांस का नया संविधान बनाया था, उसमें फ्रांस के राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था थी। कारण यह था कि अनेक अशिक्षित किसान नेपोलियन के पूर्वपरिचित और प्रिय नाम के चकाचौंध पैदा करने वाले प्रवाह में बह गए। दस मास के कठिन संघर्ष के बाद फ्रांस में दूसरा

द्वितीय फ्रेंच गणराज्य और लुई नेपोलियन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणराज्य और दूसरा बोनापार्ट आ गया ।[1]

लुई नेपोलियन की तेज निगाहें फ्रांस की ओर लगी हुई थीं। उसका नाम भी बड़ा था और वह महत्त्वाकांक्षी भी था। १८३० की जुलाई क्रान्ति से वह बराबर फ्रेंच राजनीति के उतार-चढ़ाव को देखता आ रहा था। लुई नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म १८०८ में हुआ था। वह लुई बोनापार्ट और हॉर्टेन्स ब्यूहारनाइस (Hortense Beauharnais) के अशोभन विवाह का फल था। अपने पुत्र के जन्म के समय लुई बोनापार्ट हॉलैण्ड (Holland) का राजा था। लुई नेपोलियन (Louis Napoleon Bonaparte) में वे सब गुण विद्यमान थे जिनके आधार पर भविष्य में उसने कई रूपों का सफलतापूर्वक अभिनय किया। "लुई नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म शाही घराने में हुआ था, विरासत में उसने राजकुमार पद प्राप्त किया था। सम्राटों का सा उसका शानदार नाम था, उसका पिता भी तो एक राजा था। रानियों ने उसे स्तन-पान कराया था, बड़े कैथोलिक धर्माध्यक्ष द्वारा उसका नामकरण किया गया था। सम्राट और सम्राज्ञी उसके प्रतिभू (Sponsors) थे, प्रारम्भिक अवस्था में उसे देश-

---

१. निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

नवम्बर १८४७—१५०० निर्वासितों ने पोलिश क्रान्ति की सालगिरह मनायी। पेरिस क्रांतिकारी निर्वासितों का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बन गया था। १८४५ में गिजाट (Guizot) ने कार्ल मार्क्स (Karl Marx) को पेरिस से निर्वासित कर दिया था। कार्ल मार्क्स ने जनवरी, १८४८ में कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो (Communist Manifesto) प्रकाशित किया।

फरवरी १८४८—पेरिस की सड़कों में प्रदर्शन। गिजाट (Guizot) अपदस्थ। लुई फ़िलिप (Louis Philippe) ने अपने पौत्र कम्टे डी पेरिस (Comte de Paris) के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। सभा (Assembly) ने गणराज्य तथा अस्थायी सरकार (Provisional Government) की घोषणा की। सामाजिक क्रान्ति हुई तथा होटल डी विल्ले (Hotel de Ville) में लाल झण्डा फहराया गया। झण्डे के विवाद पर समझौता (तिरंगे के साथ गुलाब-चिन्हित झण्डा) करने का प्रयास। राष्ट्रीय कारखानों की स्थापना।

मार्च—लुक्जेम्बर्ग (Luxemburg) में औद्योगिक आयोग की स्थापना। सामाजिक और आर्थिक प्रयोग। फ्रांस के कारखानों में विदेशी मजदूरों का प्रवेश।

मई— नयी निर्वाचित सभा। गणतन्त्रवादियों की समाजवाद से कुछ विमुखता।

२१ जून—राष्ट्रीय कारखानों का विघटन। ११०,००० आदमियों में से अधिकांश बेरोजगार। "सर्वहारावर्ग की नई सेना" की स्थापना। गृह-युद्ध।

२५ जून—भंयकर रक्तपात (Bloody Corpus Christi)। सामाजिक क्रान्ति की विफलता।

नवम्बर—गणतन्त्रीय संविधान की घोषणा (सशक्त केन्द्रीकृत, कार्यपालिका, ७५० प्रतिनिधियों का एक सदन, सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन, सदन का कार्यकाल ३ वर्ष, ६ वर्ष के लिए निर्वाचित राष्ट्रपति, चर्च के समझौते को कायम रखना।)

१० दिसम्बर—लुई नेपोलियन राष्ट्रपति निर्वाचित।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाला मिला था, बचपन में अनेक क्लेश, जवानी में बेघरबार होकर इधर-उधर भटकना, हठपूर्ण चारित्रिक दृढ़ता, असावधानीपूर्ण आक्रमण, भयंकर खतरों में बाल-बाल बचना, बार-बार देश-निर्वासन, जेलों का आवास, भेष बदले इधर-उधर मारे-मारे फिरना—यह हमारे नायक की प्रारम्भिक कहानी हुई। जहाँ तक वह केन्द्रीय स्थिति का व्यक्ति था, वह स्वप्नों की दुनिया में विचरने वाला एक साहसिक षड्यन्त्रकारी था जो अपने बाल्यकाल में सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। जिस समय उसके मुँह पर दाढ़ी के बाल भी प्रकट न हुए थे, तभी से वह तलवार का धनी था। उसके छोटे-से जीवन में तीन ऐसे अवसर भी आ चुके थे जब वह एक हताश नेता के रूप में मौत के मुँह से बाल-बाल बचा था। हम समझते हैं कि लुई नेपोलियन से अधिक हमको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसने इतने रूपों में सफल अभिनय किया हो।"[1]

जिस समय वह केवल सात वर्ष का बालक था, उसने अपनी आँखों से देखा था कि इतिहास-प्रसिद्ध १०० दिनों की अराजकता में सेनाओं को नेपोलियन के वे झण्डे दिए गए थे जिन पर बाज (Eagle) का निशान था। वाटरलू (Waterloo) के युद्ध से पूर्व उसके चाचा प्रसिद्ध नेपोलियन ने अपने इस होनहार भतीजे का चुम्बन किया था और उस अवसर पर एक ऐतिहासिक भविष्यवाणी की थी जो अक्षरशः सत्य होकर निकली—"सम्भवतः यही बालक मेरे राजवंश को चलावेगा।" नेपोलियन ने जो राजमुकुट वाटरलू युद्ध में खोया था, उसी राजमुकुट को इसी बालक ने बड़े होकर प्राप्त किया। उसने अपनी आँखों से उन अनेक सम्राटों को देखा था जो उसकी माता से मिलने चेट्यू-डी-सेंट-ल्यू (Chateau de Saint-Leu) नामक महल में आया करते थे। वह ज़ार (Tsar) एलेक्जैंडर और प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय (Frederick William III) से मिल चुका था। इसके अतिरिक्त प्रशा के सम्राट् के साथ उसके दो पुत्र भी आये थे जिनमें से एक १८७० के युद्ध के बाद जर्मनी का प्रथम सम्राट् बना, किन्तु इसी १८७० के युद्ध में लुई नेपोलियन का यह राजमुकुट छिन गया जिसे उसने स्वयं बोनापार्ट परिवार के लिए बीस वर्ष पूर्व अर्जित किया था। वह अपनी माता के साथ निर्वासित अवस्था में इधर-उधर मारा-मारा फिर चुका था और अपनी माता से सुन चुका था कि सम्राट के पद का महान् गौरव होता है। वह रोम (Rome) में वृद्धा लेटीजिया (Old Letizia) से भी मिल चुका था।

१८३१ में कार्गोनेरी नामक विप्लवकारी संस्था ने पोप के विरुद्ध विद्रोह किया। लुई बोनापार्ट ने इस संस्था का सदस्य बनकर राजनीति में पदार्पण किया। इस प्रकार प्रारम्भिक जीवन में ही उसने इटली की घटनाओं में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था और बाद को तो इटली, फ्रांस की विदेश नीति का प्रिय और मुख्य विषय बना रहा। १८३२ में में एक इक्कीस वर्षीय युवक की मृत्यु हुई जिसे कोई तो रोम का राजा बताता था, कोई रीश्टाट का ड्यूक (Duke of Reichstadt) बताता था और

---

1. Dr. F. A. Simpson, *The Rise of Louis Napoleon, Preface.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई उसको नेपोलियन द्वितीय बताता था। अब तो लुई नेपोलियन के मन में यह धुन सवार हो गई कि वही बोनापार्ट परिवार का एक-मात्र हकदार रह गया है। जिस समय वह इंग्लैंड में निर्वासित जीवन बिता रहा था उसने देखा कि मृत सम्राट् की कहानी से फ्रांस के कोमल हृदय में उसके लिए (मृत सम्राट् के लिए) कुछ स्थान अवश्य बन गया था। उसने इतिहास और परम्परा के धुंधले आलोक में देखा कि अतलान्तक महासागर के पार से कुछ आशाभरा सन्देश आ रहा है। उसने उस साहित्य को भी पढ़ा जिसे सेंट हेलेना में नेपोलियन के साथियों ने लिखा था। उसने इतिहास को नये अर्थों में पढ़ा और स्वयं उन संस्मरणों को भी पढ़ा जिन्हें स्वयं नेपोलियन महान् ने लिखा था। उसने विचारों की दुनिया में विचरते-विचरते पाँच मई (May 5) के दृश्य देखे। उसी मनहूस दिन तो उसका चाचा नेपोलियन महान् शहीद हुआ था। उसने कल्पना की कि ५ मई का दिन फ्रांस में महान् राष्ट्रीय शोक का दिन है और घरों, दुकानों पर नेपालियन की तस्वीरों की भरमार है। उसने यह भी कल्पना की कि फ्रांस में नेपोलियन को देवता के तुल्य पूजा जाता है। विचारों की दुनिया में उसने यह भी देखा कि ग्रीक देवता (Prometheus) की मूर्ति अतलान्तक सागर की एक चट्टान से बँधी पड़ी है और वही मूर्ति बदलकर सूली पर चढ़े हुए ईसा मसीह की मूर्ति में परिणत हो गई। उसने यह भी सुना कि विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) तूफानी भाषण दे रहा है। और उसने यह देखा कि थीर्स (Thiers) ने अब अपने क्रांतिकारी विचार छोड़ दिये हैं और वह कांसुलेट एवं साम्राज्य का पोषक बन गया है। यह नई शक्ति ओलियंस वंश को समाप्त कर सकती थी। नेपोलियन तृतीय ने देखा कि वह वंश इस नवजाग्रत शक्ति का अपने हित में प्रयोग करने की कोशिश कर रहा है। उसने यह भी देखा था कि नेपोलियन प्रथम के शव के अवशेषों को सम्मान के साथ सेंट हेलेना से लाकर पेरिस में राजकीय समारोह के साथ दफनाया गया। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो फ्रांस के पेरिस में ही दो राजा हैं, एक टुइलिरीज में तथा दूसरा इनवैलिड्स[1] में।

एक बार १८३६ में भी लुई नेपोलियन (Louis Napoleon) स्ट्रासबर्ग की सेनाओं को विद्रोह के लिए उत्तेजित करके फ्रांस के राजसिंहासन को प्राप्त करने का प्रयत्न कर चुका था। इस असफल विद्रोह का फल केवल यह हुआ कि लुई नेपोलियन को अमेरिका में निर्वाचित करके भेज दिया गया किन्तु वह शीघ्र ही भागकर इंग्लैंड जा पहुँचा। उसने फ्रांस का राजसिंहासन प्राप्त करने का दूसरा प्रयत्न १८४० में किया था। वह चाहता था कि सम्राट् नेपोलियन के मृत शरीर का वह स्वयं पेरिस में स्वागत करे। किन्तु यह नितान्त असफल प्रयत्न रहा। बोलोन (Boulogne) में लुई गिरफ्तार कर लिया गया, किन्तु ज्योंही वह हैम (Ham) के किले में दाखिल हुआ, सम्राट् की शवयात्रा कब्र की ओर बढ़ी तथा पेरिस (Paris) के लोग हर्षोन्मत्त होकर चिल्ला उठे—"सम्राट् चिरंजीवी हो।" इस हर्षोन्मत्त गूंज को लुई बहुत दिनों तक न भुला सका।

---

१. नेपोलियन प्रथम का समाधि-स्थल।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हैम (Ham) के किले में छः वर्षों तक बन्द रहा और फिर यकायक भागकर वह इंग्लैंड जा पहुँचा। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि हैम (Ham) के विश्वविद्यालय में उसने मानो शिक्षा ग्रहण की हो। १८४८ के विद्रोह की खबर पाकर वह शीघ्र पेरिस की ओर चला, उतनी ही जल्दी वह पेरिस से पलायन भी कर गया। फ्रांस अभी उसको सम्राट् बनाने के लिए तैयार न था। जनतन्त्रवादियों और समाजवादियों में वसन्त के मौसम-भर संघर्ष रहा किन्तु इसी काल में वह लन्दन (London) में मौज उड़ाता रहा और स्वयं चार्टिस्ट आन्दोलन को दबाने के लिए सिपाहियों में भर्ती हो गया। जून मास में चार निर्वाचन-क्षेत्रों से चुना जाकर वह राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में पहुँच गया किन्तु उसने अपना निर्वाचन अस्वीकार करके बहुत बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की। सितम्बर में पुनः पाँच अन्य निर्वाचन क्षेत्रों ने उसको राष्ट्रीय सभा का सदस्य चुनना चाहा और २६ सितम्बर को वह गौरव के साथ राष्ट्रीय सभा में जा पहुँचा। केवल तीन मास पश्चात् वह फ्रांस का राष्ट्रपति चुना गया और चार वर्षों के बाद वह फ्रेंच जाति का सम्राट् घोषित हुआ।

इस प्रकार, फ्रांस ने बोनापार्ट परिवार के वंशज को पुनः अपना सम्राट् माना और स्वयं लुई नेपोलियन ने भी नेपोलियन की परम्परा को जीवित रखा। किन्तु महान् सम्राट नेपोलियन का राजमुकुट पहनना हँसी-खेल न था। लुई नेपोलियन ने एक नाटककार का सफल रोल अदा किया था और बाद में उसने सरलता और सफलता के साथ उसी राज-सिंहासन को पराजय की वेला में त्याग भी दिया जिसको उसने विजय की मस्ती में जीता था।

स्पेन और पुर्तगाल

स्पेन और पुर्तगाल (Spain and Portugal) नामक राज्यों के इतिहास और उनकी समृद्धि पर लगातार एक शताब्दी तक असफल संघर्षों और आन्तरिक विवादों का पर्दा पड़ा रहा, अतः पिरेनीज़ (Pyrenees) पर्वत के उस पार के उपर्युक्त दोनों देशों का इतिहास अत्यन्त संक्षेप ही में दिया जा सकता है। पिरेनीज़ पर्वत-माला ने इन दोनों छोटे देशों को समस्त यूरोप से इस सीमा तक अलग रखा कि वे यूरोप के मामलों से प्रायः दूर ही रहे और फलस्वरूप यूरोप की आश्चर्यजनक प्रगति से भी वे वंचित रहे। उपर्युक्त दोनों देशों की तीन प्रकार की समस्याएँ थीं—संवैधानिक समस्याएँ, राजवंश-सम्बन्धी समस्याएँ और उपनिवेश-सम्बन्धी समस्याएँ—और किसी सीमा तक ये तीनों समस्याएँ, अन्योन्याश्रित थीं।

स्पेन

स्पेन में जिस समय फ्रांस के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह हुआ था, तभी से संवैधानिक प्रश्न का इतिहास भी प्रारम्भ हुआ था। उक्त विद्रोह से सारे यूरोप को प्रेरणा मिली और स्वयं स्पेन को उत्साह मिला। १७९१ के फ्रेंच संविधान के आधार पर स्पेन के लिए भी एक संविधान बनाया गया था। उक्त संविधान की कुछ विशेषताएँ ये थीं कि व्यवस्थापिका को कार्यपालिका से अलग रखा गया था तथा संसद् के सदस्यों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Sarayu Trust. Chennai and eGangotri

पुनर्निर्वाचित होने की सुविधा नहीं थी। राज्य के मामलों में केवल रोमन कैथोलिक चर्च को सरकारी मान्यता प्राप्त थी किन्तु अन्य देशी और स्थानीय संस्थाओं को कोई मान्यता नहीं दी गई थी। यद्यपि संविधान दोषपूर्ण था फिर भी थोड़े-थोड़े समय के लिए कई बार इस संविधान के अनुसार शासन-कार्य चलता रहा। उक्त संविधान के दोषों पर ध्यान न देते हुए उसे दक्षिणी यूरोप का सर्वश्रेष्ठ संविधान समझा जाता था। प्रायः ५० वर्षों तक तो उसको लोक स्वतन्त्रताओं का अधिकार-पत्र समझा जाता रहा था और सारे यूरोप ने उपर्युक्त संविधान से संवैधानिक प्रेरणा प्राप्त की।

१८२० का विद्रोह

१८१३ में फर्डिनेण्ड सप्तम (Ferdinand VII) पुनः राज-सिंहासन पर लौट आया था और उसने बेमन से संविधान स्वीकार कर लिया था। किन्तु अपनी तथाकथित अथवा कल्पित लोक-प्रियता एवं चालाकी की धुन में उसने शीघ्र ही संविधान के विरुद्ध आचरण करना प्रारम्भ कर दिया। उसने पुनः धार्मिक न्यायालयों की स्थापना कर दी और रोमन कैथोलिक मठों को उनकी सम्पत्ति लौटा दी। इसके अतिरिक्त उसने उदार विचार वालों पर मुकद्दमे चलाए तथा एक ऐसी प्रतिक्रिया का सूत्रपात किया जिसके कारण १८२० में सशस्त्र क्रान्ति हो गई। यह क्रान्ति या विद्रोह भी स्पेन के अन्य १९वीं शताब्दी के आन्दोलनों के समान ही सेना द्वारा प्रारम्भ किया गया था। संविधानवादियों को प्रारम्भ में कुछ सफलताएँ प्राप्त हुईं। किन्तु १८२३ में फ्रांस ने हस्तक्षेप किया और विद्रोहियों के पैर उखड़ गए। यद्यपि फ्रांस की सरकार ने फर्डिनेण्ड को समझौतावादी नीति अपनाने की सलाह दी थी किन्तु फर्डिनेण्ड सप्तम पुनः कठोर व्यवहार करने लगा और निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक बन बैठा। फलस्वरूप सारे स्पेन में भयंकर दमन-चक्र चला और पर्याप्त समय तक आतंक छाया रहा।

स्पेन के हाथों से उपनिवेश निकल गये

इन्हीं दिनों स्पेन के हाथों से उसके बहुमूल्य उपनिवेश निकल गए। आधुनिक व्यापारिक विकास के युग उन उपनिवेशों—अथवा साम्राज्य जो महाद्वीप से कम न था—की सहायता से स्पेन, निश्चय ही एक अग्रगण्य शक्ति माना जाता था। यह माना कि स्पेन का १६वीं शताब्दी का गौरव समाप्त हो चुका था और उसके साम्राज्य की तड़क-भड़क फीकी पड़ चुकी थी, फिर भी स्पेन के कमजोर अधिकार में नई दुनिया के विस्तृत भू-भाग थे। स्पेन अब भी समस्त मध्य और दक्षिणी अमेरिका का स्वामी था, केवल ब्राज़ील (Brazil) और गायना का जिला (Guiana) उसके अधिकार से बाहर थे। स्पेन ने फ्रेंच साम्राज्य का विनाश अपनी आँखों से देखा था और उसकी आँखों के सामने ही ब्रिटिश साम्राज्य में दरार पड़ चुकी थी। किन्तु स्पेन ने लम्बे काल तक उपनिवेशों का कुप्रबन्ध किया था और उनमें आर्थिक अवसाद का बोलबाला था। पड़ोसी राज्य—संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपार आर्थिक उन्नति की थी, फ्रांस की क्रांति के विचारों ने स्पेनिश उपनिवेशों के लोगों में स्वतन्त्रता की भावना भर दी थी और लगभग ५० वर्षों तक ब्रिटेन ने स्पेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थिति को हानि पहुँचाई थी क्योंकि स्पेन और ब्रिटेन के औपनिवेशिक हितों में टकराव था। इन सब कारणों ने मिल कर स्पेन के दक्षिणी अमेरिकन उपनिवेशों में विद्रोह और अशान्ति की ज्वाला फूंक दी। अब स्पेन की आँखें खुलीं, किन्तु देर हो चुकी थी। स्पेन ने उपनिवेशों को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। १८१० में स्पेन की संसद् (Cortes) में उपनिवेशों के प्रतिनिधियों को भी स्थान दिया गया, किन्तु उपनिवेशों की प्रजा सन्तुष्ट न हुई। यूरोप की शक्तियों ने नेपोलियन को पराजित कर दिया था, इससे उपनिवेशों के विद्रोहियों को बल मिला। अब तो मेक्सीको (Mexico) से लेकर पेटेगोनिया (Patagonia) तक सारे भू-भागों में उपद्रवों का ज्वालामुखी फूट पड़ा। स्पेन स्वयं जर्जर था, इतनी दूर के व्यापक विद्रोहों का कैसे शमन करता। स्पेन के उपनिवेशों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया और संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन ने तुरन्त उनको स्वतन्त्र स्वीकार कर लिया। इस प्रकार स्पेन के हाथों से नई दुनिया का साम्राज्य निकल गया।

अब स्पेन अपने घरेलू झगड़ों में फँसा रहा। १८३३ में फर्डीनेण्ड सप्तम की मृत्यु हो गई। उत्तराधिकार के प्रश्न पर स्पेन में गृहयुद्ध ठन गया। एक ओर स्वर्गीय फर्डीनेण्ड का भ्राता डॉन कार्लोस (Don Carlos) उत्तराधिकार का इच्छुक था तथा दूसरी ओर फर्डीनेण्ड की तीन वर्ष की पुत्री के समर्थक थे। डान कार्लोस का कथन था कि बूरबन वंश (Bourbons) ने स्पेन में अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सालिक विधि (Salic Law) का सूत्रपात किया था; उक्त विधि के अनुसार वही वास्तविक उत्तराधिकारी था। उसको चर्च (Church) और निरंकुश शासनवादी तत्त्वों का समर्थन प्राप्त हो गया। बास्क (Basques) जाति के लोगों ने भी डान कार्लोस (Don Carlos) का समर्थन किया क्योंकि वे प्रान्तीयता की भावना में डूबे हुए थे। बास्क लोग अच्छे सिपाही भी थे। दूसरी ओर आइसाबेला (Isabella) थी। उसने कहा कि सम्राट् की आज्ञा (Pragmatic Sanction) से सालिक विधि (Salic Law) वापस ली जा चुकी थी। आइसाबेला की माता क्रिश्चियाना (Christina) भी दृढ़ विचारों की राजमाता थी। उसने अपनी पुत्री के लिए कठोर संघर्ष किया। आइसाबेला और राजमाता को संविधानवादियों (Constitutionalists) का समर्थन मिला। इस प्रकार १८३४ में माता और पुत्री को फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन की मित्रता प्राप्त हो गई। सात वर्षों तक कठिन छापामार युद्ध होता रहा किन्तु अन्त में डॉन कार्लोस की पराजय हुई और वह स्पेन से पलायन कर गया। तथापि इस विजय से उदारवाद को विशेष पोषण नहीं मिला। स्वयं संविधानवादी भी एक मत न थे। राजमाता कुछ समय के लिए तो बाहर चली गई थी किन्तु वह पुनः वापस लौट आईं। वह सत्ता की लोलुप थी और अपने यश का विस्तार चाहने वाली थी। रानी आइसाबेला जिद्दी स्वभाव की महिला थी और कमजोर प्रकृति की थी। १८४६ में उसकी शादी ड्यूक ऑफ कैडिज के साथ हुई थी। वह विवाह दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। आइसाबेला अपने पति से प्रेम नहीं करती थी। ड्यूक ऑफ कैडिज स्वयं तंगदिल षड्यंत्रकारी था। "वह निरा मूर्ख भी था और निरंकुशवादियों के हाथ की

डॉन कार्लोस के युद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठपुतली था"—ऐसा पामर्स्टन (Palmerston) का विचार था। आइसाबेला (Isabella II) का राज्यकाल अराजकता, अव्यवस्था और अपकीर्त्ति का युग था। शाही दरबार में अनियमित निरंकुशता का बोलबाला था। शासन-सूत्र कुछ गिने-चुने रानी के कृपापात्रों के हाथों में रहता था। देश में इस व्यवस्था के विरुद्ध व्यापक रोष था, किन्तु कुछ वस न चल पाता था। १८५४ में फौजी विद्रोह हुआ जिसको आंशिक एवं अस्थायी सफलता मिली, किन्तु १८६८ में एक विद्रोह या क्रान्ति हुई। अब की बार रानी आइसाबेला से राज्य त्यागने की माँग की गई, और ३० सितम्बर को रानी रेल में बैठकर सेन सिबेस्टियन (San Sebastian) में निर्वासित जीवन बिताने के लिए घर से चल पड़ी। उसने चलते वक्त कहा, "मैंने समझा था कि इस देश में मेरे पैर मजबूती से गड़े हुए हैं—मैं गलत निकली।"

कई बातों में स्पेन और पुर्तगाल के इतिहास समान थे। १८०७ में फ्रांस ने पुर्तगाल पर आक्रमण किया था; तभी शाही परिवार पुर्तगाल छोड़ कर ब्राजील (Brazil) को पलायन कर गया। इस प्रकार पुर्तगाल जो स्वामी देश था अब ब्राजील से शासित होता था जहाँ राजा एवं राज-परिवार रहता था यद्यपि ब्राजील स्वयं पुर्तगाल का उपनिवेश था। १८२० तक तो पुर्तगाल की शासन-व्यवस्था पर वैलिंगटन (Wellington) या ब्रेसफ़र्ड छाये रहे; किन्तु स्पेन की देखा-देखी पुर्तगाल में भी क्रांति हुई, जिसके फलस्वरूप १८१२ का स्पेनिश संविधान (Spanish Constitution of 1812) पुर्तगाल में भी लागू हो गया। अब पुर्तगाल का राजा जॉन छठा (John VI) पुर्तगाल को लौट आया और उसने शीघ्र ही निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों ब्राजील (Brazil) ने अपने आपको पुर्तगाल के अधिकार से मुक्त घोषित कर दिया। जब स्पेन के अमेरिकी उपनिवेश स्वतन्त्र हो चुके थे तो ब्राजील का पुर्तगाल से सम्बद्ध-विच्छेद अवश्यम्भावी था। १८२२ में पुर्तगाल के सम्राट् जॉन छठे (John VI) के पुत्र डाम पीड्रो (Dom Pedro) ने अपने आपको ब्राजील (Brazil) का सम्राट् घोषित कर दिया। १८२६ में जॉन छठे (John VI) की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर पुर्तगाल में भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई जैसी कि स्पेन में कुछ समय बाद हुई थी। यद्यपि डॉम पीड्रो स्वतन्त्र ब्राजील देश का सम्राट् था किन्तु उसने चाहा कि पुर्तगाल पर भी उसका अधिकार बना रहे। इसलिए उसने कहा कि उसकी सातवर्षीया पुत्री डान मेरिया डा ग्लोरिया (Donna Maria da Gloria) का पुर्तगाल के राजसिंहासन पर संवैधानिक हक है। किन्तु उसके भाई डॉम माइगेल (Dom Miguel) ने इस माँग का विरोध किया। फलस्वरूप स्पेन के इतिहास की पुनरावृत्ति हुई। एक ओर चचा डॉम माइगेल था जिसकी पीठ पर निरंकुशतावादी (Absolutists) थे, तथा दूसरी ओर भतीजी थी जिसकी पीठ पर संविधानवादियों (Constitutionalists) का हाथ था। डॉम माइगेल (Dom Miguel) पुर्तगाल का राजा बन बैठा किन्तु १८३४ में डॉम पिड्रो (Dom

पुर्तगाल

क्रांति

ब्राजील पर से अधिकार उठ गया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Pedro) ब्राजील (Brazil) से लौट आया। उसने इंग्लैंड और फ्रांस की छुटपुट सहायता से अपनी पुत्री ग्लोरिया (Gloria) को राजसिंहासन पर बिठा दिया। स्पेन में भी डॉन कार्लास के युद्ध अभी प्रारम्भ हुए थे। अब एक चतुःसूत्री सन्धि (Quadruple Alliance) हुई जिस पर स्पेन और पुर्तगाल की संविधानवादी पार्टियों ने तथा फ्रांस और इंग्लैंड के दो संवैधानिक राज्यों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए। इस चाल के फलस्वरूप रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के निरंकुश राजा भी आपस में मिल गए और यूरोप की राजनयिक पुनर्व्यवस्था अवश्यम्भावी दिखाई देने लगी।

डाना मेरिया डा ग्लोरिया (१८३४-१८५३)

किन्तु डाना मेरिया का राज्यकाल कठिनाइयों से घिरा रहा। स्पेन के उपद्रवों के कारण, पुर्तगाल को भी चैन न मिल सका। इनके अतिरिक्त जल्दी-जल्दी संवैधानिक उथल-पुथल के कारण और मध्ययुगीन सभ्यता से आधुनिक सभ्यता की ओर शीघ्र आ पहुँचने के कारण भी पुर्तगाल में अस्तव्यस्तता आ गई। इसके अतिरिक्त पुर्तगाल के ऊपर बहुत भारी राष्ट्रीय ऋण था तथा देश में सामाजिक और आर्थिक विषमता थी। इसलिए, देश कुछ भी उन्नति न कर सका।

इटली

१८१५ से लेकर १८५० तक का इटली का इतिहास वास्तव में घरेलू फूट, विदेशी आधिपत्य और असफल संघर्ष का इतिहास है। नेपोलियन की सारी व्यवस्था समाप्त की जा चुकी थी। सत्यनिष्ठ सौतेला पुत्र यूजीन ब्यूहारनाइस (Eugene Beauharnais) ल्यूटेनवर्ग के राजकुमार के रूप में जर्मनी चला गया था। मुरत (Murat), दो बार प्रयत्न कर चुकने पर भी अपने भाग्य को अनुकूल न बना सका था और वह अपने राज्य पर अधिकार न रख सका था। और अन्त में जब मुरत (Murat) ने विद्रोह करने का प्रयत्न किया तो नेपिल्स (Naples) के राजा फर्डीनेण्ड की आज्ञा से उसे गोली मार दी गई। इटली को पुराने राजवंशों के आधार पर पुनः विभाजित कर दिया गया था, और अब उसकी वही स्थिति हो गई थी जो रोम (Rome) के समय में थी। राजनीतिक दृष्टि से इटली का अस्तित्व ही न था। उत्तर-पश्चिम में पीडमौंट-सार्डीनिया (Piedmont-Sardinia) का राज्य था। उत्तर में वेनीशिया और लौम्बार्डी (Venetia and Lombardy) नाम के आस्ट्रिया के प्रान्त थे। इनके नीचे दक्षिण की ओर पारमा (Parma), मौडीना (Modena), टस्कनी (Tuscany), लुक्का (Lucca) आदि स्वतन्त्र डचियाँ थीं। इनके अतिरिक्त पोप की स्वतन्त्र रियासतें थीं और नैपिल्स (Naples) एवं सिसली (Sicily) की भी रियासतें थीं।

इटली में पृथक्ता और निरंकुशता का पुनः बोलबाला

१८१५ में इटली में जिन नए राजवंशों की पुनर्प्रतिष्ठा हुई थी उनके कारण सारी इटली में प्रतिक्रिया और भ्रष्ट शासन फैल गया। यह सत्य है कि 'दो सिसली के राज्य' (The Kingdom of Two Sicilies) में बूरबन वंशीय फर्डीनेण्ड प्रथम (Bourbon Ferdinand I) ने मुरत (Murat) के समय की विधियों, संस्थाओं, आचारों और अधिकारियों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर दिया था, किन्तु उसने भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृणित पुलिस व्यवस्था चालू कर दी थी, समाचारपत्रों पर पावन्दी लगा दी थी और चर्च को सार्वजनिक जीवन के ऊपर ला बिठाया था। यही नहीं, उसने उदार विचार वालों को सताया और राजतन्त्रवादियों को पोषण दिया। उसने सिसिली (Sicily) के स्वायत्तशासी संविधान को तोड़कर लोगों को मार्मिक वेदना पहुँचाई और सिसिली को नैपिल्स (Naples) का एक अधीन प्रान्त मात्र बना दिया।

पोप का राज्य, इटली को बीचोंबीच काटता था। पोप ऐहिक शासक भी था और पारलौकिक शासक भी। पोप के राज्य की शासन-व्यवस्था अजीब धर्म-व्यवस्था थी जिसमें राज्य का प्रधान तो महान् धर्मगुरु था ही, उस राज्य के सब अधिकारी भी धर्माचार्य थे। पोप के राज्य में जहाँ पहले फ्रांस की प्रचलित विधियों के अनुसार राज्य-कार्य चलाया जाता था, अब उन फ्रेंच विधियों का स्थान दकियानूसी धार्मिक आज्ञाओं ने ले लिया था। धार्मिक न्यायालय चालू हो गए थे और धार्मिक कर्त्तव्याकर्त्तव्य की सूची के अनुसार न्यायदान होता था, इस प्रकार मध्ययुगीन धर्म-शासन चल रहा था। सारे देश का प्रशासन भ्रष्ट और बेईमान था। यद्यपि कठोर पुलिस व्यवस्था भी थी, फिर भी सर्वत्र लुटेरों का आधिपत्य था और सामाजिक कुव्यवस्था थी। इस कारण सर्वत्र व्यापक असन्तोष पाया जाता था।

उत्तर मध्य की डचियों में मौडीना (Modena) नामक डची में बहुत काल तक निरंकुशता चली। टस्कनी (Tuscany) नामक राज्य प्रगतिवादी था किन्तु वह भी लोगों की शक्ति को क्षीण करने वाला था। पार्मा (Parma) राज्य की स्वामिनी मेरी लुई (Marie Louise) थी जो भूतपूर्व नेपोलियन की सम्राज्ञी रह चुकी थी। उसने अपने राज्य पार्मा में फ्रेंच शासन-प्रणाली स्थापित कर रखी थी।

इटली में कुछ प्रान्तों के ऊपर ऑस्ट्रिया (Austria) का भी आधिपत्य था। इन प्रान्तों का प्रशासन उत्तम था किन्तु अत्यधिक निरंकुश और केन्द्रीकृत था। इन प्रान्तों की इटली-भाषा भाषी प्रजा पर अत्याचार किए जाते थे और उनके जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक प्रश्न को भी वियना (Vienna) की सरकार ही तय करती थी। इनसे इटलीवासी चिढ़ते थे। वास्तव में इन प्रान्तों में इटली वालों के राजनीतिक जीवन को ऑस्ट्रिया के ढाँचे पर ढालने का निरन्तर प्रयास किया जाता था।

इटली के उत्तर-पश्चिम में सैवोय (Savoy), पीडमौंट (Piedmont) और सार्डीनिया द्वीप थे—इन सबको मिलाकर सार्डीनिया का राज्य बनता था। पीडमौंट और सार्डीनिया के राज्य में सैवोय परिवार (House of Savoy) का विक्टर इमेन्युएल प्रथम (Victor Emmanuel I) राजा राज्य करता था जो अपने राज्य में अत्यन्त लोकप्रिय भी था यद्यपि पीडमौंट-सार्डीनिया (Piedmont-Sardinia) के राज्य में अब भी करारोपण (Taxation) फ्रेंच-व्यवस्था के अनुसार था क्योंकि इस व्यवस्था के अनुसार अधिक धन खजाने में आता था, फिर भी सारे देश का प्रशासन उन सिद्धान्तों के आधार पर होता था, जो फ्रेंच आधिपत्य से पूर्व उस भू-भाग में प्रचलित थे। सामन्ती प्रथा और पुरानी असामयिक विधियों के अनुसार सारा राज्य-कार्य चलता था, धर्माधिकारियों के हाथों में भारी शक्ति केन्द्रित थी, कुलीनों को सब प्रकार के विशेषाधिकार थे और पुराने भ्रष्ट अधिकारियों को पुनः काम पर बुला लिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था यद्यपि उनमें से बहुत से मूढ़ और लालची थे। सारे राज्य में असन्तोष बढ़ रहा था। उसी समय जेनोआ (Genoa) को जबर्दस्ती पीडमौंट (Piedmont) में मिलाकर जेनोआवासियों को आन्तरिक वेदना पहुँचाई गई।

सारा इटली देश प्रान्तीयतावाद की बीमारी से ग्रस्त था। इटली की दूसरी बीमारी या समस्या थी 'ऑस्ट्रिया का प्रभुत्व।' वास्तव में किसी सीमा तक इटली की दूसरी बीमारी या समस्या का कारण पहली बीमारी या समस्या ही थी। वैसे तो आस्ट्रिया का प्रत्यक्ष प्रभुत्व लौम्बार्डी (Lombardy) और वेनीशिया (Venetia) नामक दो प्रान्तों पर था किन्तु हैब्सबर्ग परिवार के राजा लोग पार्मा (Parma), मौडीना (Modena) और टस्कनी (Tuscany) में भी राजसिंहासनों पर अड्डा जमाये बैठे थे। ऑस्ट्रिया के सैनिक प्यासेन्जा (Piacenza), फैरारा (Ferrara), और कोमेचियो (Comacchio) में लगे हुए थे; नैपिल्स (Naples) का राजा फर्डीनेण्ड (Ferdinand) कृतसंकल्प था कि वह नैपिल्स में ऐसी शासन-व्यवस्था न चलने देगा जो ऑस्ट्रिया को मंजूर न हो। मेटरनिक (Metternich) को तो पूरी-पूरी आशा थी कि किसी दिन वह किसी ऑस्ट्रियावासी धर्मगुरु को पोप के महान् धर्मासन के लिए निर्वाचित करा-वेगा। इटली की छोटी-छोटी रियासतें यह समझ गई थीं कि वे अपना अस्तित्व केवल ऑस्ट्रिया की मदद के सहारे ही कायम रख सकेंगी क्योंकि ऑस्ट्रिया ही वास्तव में इटली का स्वामी था। केवल पीडमौंट में स्थानीय नरेश था जो ऑस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त रहने का प्रयत्न कर रहा था।

इटली की दो मुख्य समस्याएँ—प्रान्तीयतावाद और ऑस्ट्रिया का प्रभुत्व

१८१५ में इटली के राज्यों में पुराने राज-परिवारों के पुनर्प्रतिष्ठापन से निस्सं देह आम लोगों को राहत मिली क्योंकि फ्रांस के साथ चल रहे लम्बे युद्ध में धन और जन-शक्ति का अपार संहार हो चुका था। नेपोलियन के आधिपत्य में रह चुकने के कारण कमजोर इटली में भी जान आ गई थी और चूँकि इटली के वीर कई युद्ध-भूमियों पर सफलतापूर्वक युद्ध कर चुके थे इसलिए उनके हृदयों में इटली के एकीकरण के भाव जाग्रत हुए। ज्यों-ज्यों नव-प्रतिष्ठापित राजा लोग ऐसी नीतियों का आश्रय लेने लगे, जिनके कारण अत्याचार और प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई, सर्वसाधारण के हृदयों में लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद के विचार घर कर गये और उबलने लगे। देशभक्त अपने देश इटली की दुर्दशा पर क्षुब्ध थे और प्रजातन्त्रवादी देशभक्त अत्याचार के विरुद्ध सम्मिलित होकर मुकाबले पर डट गये। अब अत्याचारियों के विरुद्ध इटलीवासियों ने प्रान्तीय भावनाओं को त्याग दिया और वे सब सम्पूर्ण इटली को ही अपनी मातृभूमि मानने लगे थे। इस प्रकार सिसिलीवासी, नैपिल्सवासी, वेनीशियावासी और पीडमौंट निवासी अलग-अलग न सोचकर सम्पूर्ण इटली को स्वतन्त्र कराने के लिए कृतसंकल्प थे। सारी इटली में गुप्त विद्रोही संस्थाओं का जाल-सा बिछ गया। मुरत (Murat) के शासनकाल में नैपिल्स (Naples) में कार्बोनेरी (Carbonari) नामक गुप्त संस्था की स्थापना विशेष रूप से उल्लेख्य है। कार्बोनेरी संस्था के सदस्य सांकेतिक भाषा में

असन्तोष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक उत्सवों के बहाने चुपके-चुपके राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे; उनके राजनीतिक उद्देश्य दो थे—विदेशियों को इटली से बाहर निकाला जाये कौर संवैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त की जाए। कार्बोनेरी गुप्त दल में सभी वर्ग सम्मिलित हुए—कुलीन वर्ग, सैनिक अफसर, किसान, धर्मगुरु, यहाँ तक कि बुर्जुआ वर्ग (Bourgeoisie) और बड़े शरीफ घरों के लोगों ने भी इस संस्था की सदस्यता अर्जित की। वास्तव में बुर्जुआ वर्ग और शरीफ एवं बड़े लोगों में तो यह संस्था अत्यन्त लोकप्रिय थी; और उदार एवं देश-प्रेम के विचार इस वर्ग में विशेष रूप से प्रिय थे। यह संस्था इटली की सीमाओं के बाहर भी फैली और सारे प्रायद्वीप में काले, लाल और नीले रंग का तिरंगा झण्डा पूजा जाने लगा। १८३१ तक यही झण्डा क्रांति का झण्डा बना रहा और उस वर्ष इटली के देशभक्तों ने अपने झण्डे के रंग बदलकर लाल, हरा और सफेद कर दिये, यद्यपि अब भी झण्डा तिरंगा ही बना रहा।

१८२० में गुप्त संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित क्रान्तिकारी आन्दोलनों का एक क्रम प्रारम्भ हुआ जो तीस वर्षों तक चला। एक के बाद एक विद्रोह चले। इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करना कठिन होगा। १८२० के स्पेन के विद्रोह से प्रेरणा लेते हुए सबसे पहला विद्रोह नैपिल्स में हुआ। इस विद्रोह को आंशिक सफलता मिली किन्तु बाद में ऑस्ट्रिया के हस्तक्षेप के कारण विद्रोह को असफल कर दिया गया। किन्तु नैपिल्स का विद्रोह दबाया भी न जा सका था कि पीडमौंट (Piedmont) और लौम्बार्डी (Lombardy) में हलचलें प्रारम्भ हो गईं। पुनः ऑस्ट्रिया की सेनाओं ने विद्रोह को शान्त कर दिया और इनके बाद कई वर्षों तक इटली के किसी भाग में उपद्रव नहीं हुए; केवल पोप की रियासतों में यत्र-तत्र छुट-पुट उपद्रव हुए थे जिन्हें शीघ्र दबा दिया गया। फिर भी असन्तोष की चिनगारी बुझी नहीं थी।

१८२०-१८२१ के विद्रोह

१८३० के पेरिस (Paris) के जुलाई विद्रोह की लपटें आल्प्स (Alps) पर्वत के पार भी जा पहुँचीं। रोमाग्ना (Romagna), मार्चेस (Marches), पार्मा (Parma) और मौडीना (Modena) में पोप के विरुद्ध और मेरी लुई (Marie Louise) के विरुद्ध और अन्यायी फ्रांसिस (Francis) के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ हो गए। इन विद्रोहों के विरुद्ध ऑस्ट्रिया ने तुरन्त कार्यवाही की और अपदस्थ शासकों को पुनः अपने-अपने सिंहासनों पर आरूढ़ कर दिया गया। कुछ समय के लिए उदारवाद की लहर की गति कुण्ठित हो गई। आस्ट्रिया की भारी शक्ति के सामने यह प्रयत्न विफल हो गया, क्योंकि लोकतन्त्री शक्तियाँ अभी पूर्णतः संयुक्त न थीं और सर्वसाधारण अभी क्रांति के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हुए थे। अभी तक सर्वसाधारण में एकता भी नहीं थी जो ऐसे भगीरथ प्रयत्नों के लिए नितान्त आवश्यक होती है। फिर भी इन असफल प्रयत्नों से भविष्य के लिए आशा बंधी। यदि लोकतन्त्री और राष्ट्रवादी आन्दोलन कमज़ोर थे, तो देश में प्रतिक्रियावादी विदेशी शासक भी तो लोकप्रिय नहीं थे। विदेशी शासक समझ चुके थे कि बिना बाहरी सहायता के उनके राज-सिंहासन सुरक्षित न थे। विदेशी हस्तक्षेप से हानि हो सकती थी किन्तु वह वरदान भी सिद्ध हो

१८३१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता था। कारण यह था कि ऑस्ट्रिया की चौमुखी सफलता से यूरोप की अन्य शक्तियाँ सशंक थीं। फ्रांस कह चुका था कि इटली में वह ऑस्ट्रिया के प्रभाव को बढ़ने से रोकेगा।[1] इस बात की सम्भावना थी कि दो विदेशों की सेनाएँ यदि इटली की भूमि पर लड़ेंगी तो सम्भवतः १६वीं शताब्दी की भयंकर लड़ाइयों की पुनरावृत्ति होगी; किन्तु इसके विपरीत यह भी सम्भावना थी कि इटली के दो ईर्ष्यालु स्वामियों की आपस की लड़ाई से स्वयं इटली को लाभ हो जाए क्योंकि इस समय स्वयं इटली भी जाग्रत था और अपनी आवश्यकताओं के प्रति सतर्क था। १९वीं शताब्दी का इटली कुछ और था और वह १६वीं शताब्दी के इटली से पूर्णतः भिन्न था। यद्यपि इटली के लोगों पर मेकियावेली (Machiavelli) की चालाक राजनीति का प्रभाव नहीं पड़ सका था, किन्तु मेज़िनी (Mazzini) की शिक्षाओं का प्रभाव अवश्य पड़ा और अन्त में मेाज़नी की शिक्षाओं की विजय हुई।

मेज़िनी और इटली का युवक संगठन

मेज़िनी (Mazzini) सैवोना (Savona) के जेल की दीवारों में बन्द था। वह वहाँ अकेला पड़ा-पड़ा कभी पृथ्वी की ओर देखता था और कभी अनन्त आकाश की ओर। वह काल्पनिक आदर्शवादी था। उस निराशा की वेला में उसे सान्त्वना देने के लिए उसके पास कुछ चुनी हुई पुस्तकें ही थीं जिनमें टेसीटस (Tacitus), बाइबिल (Bible) और बायरन (Byron) के संस्मरण उसकी प्रिय पुस्तकें थीं। वह देश के ऊपर प्राण देने वाला नवयुवक देशभक्त था। प्रारम्भ में वह कार्बोनेरी (Carbonari) संगठन का सदस्य था। उसका पूरा नाम गिसेपं मेज़िनी (Giuseppe Mazzini) था। वह यह स्वप्न देखा करता था कि कभी न कभी इटली का उद्धार होगा। शून्य क्षितिज से उसे मानो आह्वान मिला था कि तुम्हारे ही हाथों से इटली का कल्याण होगा और तुम्हीं स्वतन्त्र इटली का नेतृत्व करोगे। तभी से मेज़िनी (Mazzini) ने इटली के युवक संगठन (Young Italy) की स्थापना की। शीघ्र ही इटली का युवक संगठन इटली की क्रान्ति का मेरुदण्ड बन गया। इटली के युवक संगठन (Young Italy) ने कार्बोनेरी (Carbonari) का स्थान ग्रहण कर लिया क्योंकि युवक संगठन के उद्देश्य अपेक्षाकृत अधिक निश्चित थे और उसका नेतृत्व अधिक गतिशील था। मेज़िनी ने कहा था : "यदि समाज में क्रान्ति लानी है, तो क्रान्ति का नेतृत्व नवयुवकों के हाथों में दे दो; युवक-समाज के हृदयों में असीम शक्ति छिपी होती है।" पीडमौंट (Piedmont) से आरम्भ होकर सारे इटली में युवक संगठनों का जाल-सा बिछ गया। इटली के युवक संगठन (Young Italy) के सभी सदस्य प्रतिज्ञाबद्ध थे कि इटली में राष्ट्रीय गणराज्य की स्थापना करके रहेंगे। उनके ऊपर निर्वासित संस्थापक अर्थात् मेज़िनी का प्रभाव था। मेज़िनी का सारा जीवन निर्वासनों में ही बीता था। कभी उसे फ्रांस में जाकर शरण ग्रहण

---

१. १८३२ में लुई फिलिप (Louis Philippe) ने ऑस्ट्रिया द्वारा फेरारा (Ferrara) के आधिपत्य के जवाब में अनकोना (Ancona) में फ्रांस की सेनाएँ भेज दी थीं। ये सेनाएँ ६ साल बाद बुलाई गई थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनी पड़ी थी तो कभी इंग्लैंड में। प्रत्येक युवक अर्थात् 'यंग इटली' के सदस्य को याद दिलाया जाता था कि वह इटली के देशभक्तों और शहीदों को कभी न भूले। उनको शिक्षा दी जाती थी कि इटली का पुराना गौरव क्या था और मौजूदा शोचनीय अवस्था क्या है। उन्हें याद रहता था कि इटली की न अपनी नागरिकता है, न अपना देश है और न अपना कौमी निशान है। वे कभी नहीं भूल सकते थे कि इटलीवासी शर्म से पृथ्वी में गड़ जाता है जब वह किसी अन्य स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र नागरिक के समक्ष आँख मिलाने का साहस करता है। इटली के युवक संगठन या यंग इटली ने देशवासियों को तीन नारे दिये—परमात्मा में विश्वास रखो, सब भाइयों को अपने साथ मिलाओ और इटली को मुक्त करो। यंग इटली (Young Italy) ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा, साहित्यिक प्रचार और यदि आवश्यक हो जाय तो सशस्त्र क्रान्ति का सहारा ग्रहण किया। एक साधारण विचार को लोकविचार के रूप में बदल देना यही यंग इटली या इटली के युवक संगठन की भारी सफलता थी।

निस्संदेह इटली का युवक संगठन या यंग इटली क्रान्तिकारी विचारों का संगठन था। किन्तु, उस समय देश में अन्य देशभक्त भी थे जिन्होंने इटली के एकीकरण में सहयोग दिया। उनकी नीति नरम थी। वे चाहते थे कि आर्थिक कार्यक्रम और सार्वजनिक शिक्षा में सुधार करके इटली का एकीकरण प्राप्त किया जाय।

मध्यमार्गी विचार

किन्तु उक्त मध्यमार्गी विचारक सोचते थे कि पोप की अधीनता में इटली का संघ बने। अथवा दूसरे शब्दों में ये उदार राजतन्त्र के अधीन इटली का राजनीतिक संगठन करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उसी काल में कुछ निर्वासित देशभक्त इटली से बाहर भी रह रहे थे। वे विदेशों में इटली के एकीकरण के पक्ष में प्रचार कर रहे थे। उनके प्रचार के फलस्वरूप विदेशी जनमत इटली के देशभक्तों के अनुकूल हो गया था। इंग्लैण्ड में विशेष रूप से इन प्रचारकों की गतिविधियाँ तीव्र रहीं। सत्य यह है कि इटली के एकीकरण में इंग्लैंड का भारी योग रहा है।

१८४६ में पोप की गद्दी पर पोप पायस नवम (Pius IX) बैठा। यह इटली के लिए शुभ घटना थी। उसने पोप बनते ही सबको क्षमा कर दिया। इस कारण वह चर्च की दुनिया में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया यद्यपि यह लोकप्रियता थोड़े ही समय रही। उसने कुछ शासनिक सुधार भी किए। पोप के राज्यों के प्रशासनिक पदों पर उसने कुछ ऐसे सामान्य जन भी लिए जो धर्माचार्य न थे, उसने अपने राज्यों में राजनीतिक अखबारों के ऊपर से कुछ पाबन्दियाँ हटा लीं। यहाँ तक कि उसने रेलों के निर्माण की दिशा में भी सोचना प्रारम्भ किया।[1]

अब देशभक्तों को अपनी आशा पूरी होती हुई दिखाई दी। पोप पायस नवम (Pius IX) दयालु तथा उदार था अतः उदारवादी लोग खुशी के मारे फूले

---

१. पोप पायस नवम (*Pius IX*) का पूर्ववर्ती पोप किसी भी प्रकार के सुधारों का कट्टर विरोधी था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न समाये और वे सर्वत्र पोप के गुणगान करने लगे। प्रजातन्त्रवादियों को भी अपार आशाएँ बंधने लगीं। किन्तु ऑस्ट्रिया को सिरदर्द रहने लगा। मैटरनिक (Metternich) का विचार था कि पोप उदारवादी हो ही नहीं सकता, फिर भी उसने सोचा कि कुछ थोड़ा-सा युद्ध हो जाने से इटली की राजनीति में स्थिरता आ जायेगी और इटली-वासियों के होशहवास ठीक हो जायेंगे। ऑस्ट्रिया के सैनिकों ने फ़ेरारा (Ferrara) पर अधिकार कर लिया। इससे न केवल प्रजातन्त्रवादियों को मानसिक क्लेश हुआ बल्कि पोप पायस नवम को भी ठेस पहुँची और चार्ल्स एल्बर्ट (Charles Albert) जो १८३१ में सार्डीनिया का सम्राट् बना था और जिसने सुधारों का सूत्रपात किया था उसको भी ऑस्ट्रिया की हरकत पर दुःख हुआ। ऑस्ट्रिया द्वारा इटली के फेरारा (Ferrara) नामक भूभाग पर अनधिकृत अधिकार कर लेने के कारण इंग्लैण्ड ने भी ऑस्ट्रिया को विरोध-पत्र भेजा।

पोप द्वारा सुधार

पोप की देखा-देखी टस्कनी (Tuscany) और पीडमौंट (Piedmont) में भी सुधारों का श्रीगणेश हुआ। १८४७ में प्रजातन्त्रवादी उत्तेजित रहे और सारी इटली में ऑस्ट्रिया-विरोधी लहर-सी दौड़ गई। अगले वर्ष अर्थात् १८४८ में सारे यूरोप में उपद्रवों और क्रान्तियों का ताँता-सा बंध गया और इटली भी अछूता न बच सका।

१८४८ के आरम्भ में राजनीतिक स्थिति अत्यन्त जटिल थी और देशभक्तों के सम्मुख तीन गम्भीर समस्याएँ थीं। नैपिल्स और सिसिली (Naples and Sicily) के राज्य में अभी तक सुधारों की कोई योजना कार्यान्वित नहीं हुई थी और विद्रोह की ज्वाला भड़क रही थी। पोप की रियासतों में पीडमौंट और टस्कनी में प्रजा-तन्त्रवादी वर्ग उन समान्य सुधारों से सन्तुष्ट न थे जो उन्हें मिल चुके थे। वे संविधान की माँग कर रहे थे और चाहते थे कि वास्तविक सत्ता सर्वसाधारण के हाथों में आ जाय। लम्बार्डी (Lombardy) और वेनिशिया (Venetia) में समस्या मुख्य रूप से राष्ट्रीय थी यद्यपि किसी सीमा तक वे भी प्रजातन्त्रात्मक सुधारों के इच्छुक थे। उक्त दोनों प्रान्तों में ऑस्ट्रिया का अधिकार असह्य हो चला था किन्तु इन दोनों प्रान्तों में विद्रोह के सफल होने की बिलकुल आशा नहीं थी।

१८४८-१८४९

इस प्रकार १८४८-४९ के विद्रोह के दो आधार थे। किन्हीं स्थानों पर प्रजातन्त्र की भावना ने उन स्थानों को उभारा था और किन्हीं स्थानों पर राष्ट्रीयता की भावना ने। इटली के दोनों छोरों पर विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी।

१२ जनवरी को पालर्मो (Palermo) में एक विद्रोह हुआ। विद्रोही लोग चाहते थे कि सिसिली (Sicily) में सुधार किए जाएँ, उसे स्वायत्तता प्रदान की जाय और वहाँ १८१२ का संविधान प्रभावी कर दिया जाय। प्रारम्भ में तो फ़र्डि-नेण्ड द्वितीय (Ferdinand II) ने कुछ दमन किया और जब दमन का कोई लाभ न हुआ तो उसने विद्रोहियों की माँगों को स्वीकार कर लिया। नैपिल्स सरकार की कमजोरी से नैपिल्स के देशभक्तों का जोश और बढ़ा। फर्डिनेण्ड द्वितीय विद्रोह से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचना चाहता था अतः उसने नैपिल्स और सिसिली नाम के अपने राज्य के दोनों भागों में संविधान की आज्ञा दे दी। इसका प्रभाव सारे इटली पर विद्युत गति से पड़ा।[1] अब पीडमौंट (Piedmont), टस्कनी (Tuscany) और पोप के राज्यों में संविधानों की माँग जोर पकड़ने लगी। मार्च १८४८ में उपर्युक्त तीनों राज्यों में संविधान जारी कर दिए गए और संसदीय शासन प्रचलित हो गये। केवल पोप पायस नवम ने अपनी रियासतों के लिए इतना बँधन रखा कि संसद् में धार्मिक प्रश्नों के ऊपर बहस नहीं की जा सकेगी।

इस प्रकार १८४८ के प्रारम्भिक तीन महीनों के संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि लगभग सारी इटली में, केवल ऑस्ट्रिया के अधीन राज्यों को छोड़ते हुए संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित हो गए।

इसके बाद राष्ट्रवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुए। मार्च के महीने में सारी इटली में यह खबर बिजली की तरह दौड़ गई कि वियाना में क्रान्ति हो गई है और मेटरनिक भाग खड़ा हुआ है। तुरन्त ही मिलान (Milan) में विद्रोह हो गया और वहाँ का वायसराय भाग गया। पाँच दिन की कठिन लड़ाई के बाद ऑस्ट्रिया की फौजें जो रैडेट्ज़की (Radetzky) के नेतृत्व में लड़ रही थीं, पीछे की ओर हटने लगीं। वेनिस में भी भयंकर लड़ाई के बाद गणराज्य की घोषणा कर दी गई। मौडीना (Modena) और पार्मा (Parma) के शासक भाग गए और ऐसा प्रतीत होने लगा कि ऑस्ट्रिया का प्रभाव इटली से मिट जाने को है। इस समय देश के सभी विचारों के लोग ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध करके उसकी अधीनता से मुक्त होना चाहते थे। मध्यमार्गी (Moderates) और अतिवादी (Extremists) सभी इस सम्बन्ध में एकमत थे कि किसी भी प्रकार इटली के कन्धों के ऊपर से ऑस्ट्रिया का जुआ उतार फेंका जाय। किन्तु सभी लोग इस सम्बन्ध में भी एकमत थे कि ऐसा निर्णायक युद्ध केवल पीडमौंट (Piedmont) के नेतृत्व में ही लड़ा जा सकता है। राष्ट्र के नाम एक अपील निकाली गई जिस पर काउण्ट कैवूर (Count Cavour) ने भी हस्ताक्षर किये। काउण्ट कैवूर उस समय 'रिसार्जीमेण्टो' (Risorgimento) नामक पत्र का सम्पादक था। उस अपील में कहा गया था "सार्डीनिया के राजतन्त्र के लिए महान् निर्णय का अवसर आ गया है। सरकार और सम्पूर्ण राष्ट्र और शासक—सभी का केवल एक ही कर्त्तव्य है कि तुरन्त युद्ध छिड़ जाय।" सार्डीनिया के सम्राट् चार्ल्स एलबर्ट (Charles Albert) ने भी अपील को पढ़ा। उसको ऐसा लगा कि मानो उसके राजवंश के सामने एक महान् ऐतिहासिक दायित्व है जिसे पूरा करना ही होगा। २३ मार्च, १८४८ को चार्ल्स एलबर्ट ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अब इटली की स्वतन्त्रता का युद्ध नये दौर में जा पहुँचा। अब तक इटली की स्वतन्त्रता का युद्ध विद्रोहों और आन्दो-

स्वतन्त्रता की लड़ाई

१. फर्डिनेण्ड सप्तम ने भी यही सोचा था। उसका विचार था कि इटली के अन्य सुधरवादी नरेशों की सुधार-प्रियता के कारण ही नैपिल्स और सिसिली में विद्रोह हुए थे। इसलिए उनसे बदला लेने की भावना से ही उसने नैपिल्स और सिसिली में संविधान जारी कर दिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लनों तक सीमित था; अब वह राष्ट्रीय युद्ध का रूप धारण कर गया। इस राष्ट्रीय युद्ध का नेतृत्व इटली के एक राजा के हाथों में था; इसमें इटली के हर एक भाग के सैनिक दस्ते भाग ले रहे थे क्योंकि टस्कनी (Tuscany) के राजा लियोपोल्ड (Leopold) ने सहर्ष पीडमौंट के नेतृत्व में युद्ध करना स्वीकार कर लिया और पोप (Pope) तथा नैपिल्स के राजा फर्डिनेण्ड (Ferdinand) को उनकी प्रजाओं ने मजबूर कर दिया था कि वे इटली की मुक्ति के युद्ध में भाग लें। किन्तु दुर्भाग्यवश इटली की एकता की लहर शीघ्र ही टूट गई। ऑस्ट्रिया कैथोलिक प्रधान देश था अतः कैथोलिकों के विरोध से डरकर पोप पीछे हटा और उसने घोषणा कर दी कि उसकी सेनाएँ केवल अपने प्रदेश की रक्षार्थ प्रयुक्त की जायेंगी। उन दिनों नैपिल्स में उपद्रव हो गया। अतः फर्डिनेण्ड ने उक्त उपद्रव को दबाने के अभिप्राय से अपनी सेनाओं को वापस बुला लिया। पोप और नैपिल्स के फर्डिनेण्ड द्वारा इटली के स्वातन्त्र्य युद्ध से हाथ खींच लेने की यह प्रतिक्रिया हुई कि लौम्बार्डी (Lombardy), वेनीशिया (Venetia), पार्मा (Parma), मौडीना (Modena) और रीग्यो (Reggio) में जनमतसंग्रह हुए जहाँ की जनता ने स्पष्ट मतदान किया कि वे पीडमौंट (Piedmont) के साथ मिल जाने के पक्ष में हैं। किन्तु पोप और फर्डिनेण्ड दोनों की गद्दारी के कारण चार्ल्स एल्बर्ट अकेला ऑस्ट्रिया के विरुद्ध अधिक देर तक खड़ा न रहा सका। कस्टौजा (Custozza) नामक स्थान पर जुलाई के महीने में पीडमौंट की हार हुई, और पीडमौंट को ऑस्ट्रिया की शर्तों पर आत्मसमर्पण करना पड़ा। फलस्वरूप लौम्बार्डी (Lombardy) और वेनीशिया (Venetia) पर आस्ट्रिया का पुनः अधिकार हो गया।

इन्हीं दिनों मेज़िनी लौटकर इटली आ गया था। सार्डीनिया की पराजय से मध्यमार्गी राजतन्त्र-दल की बदनामी हो गई; और सारे इटली में मुख्यतः टस्कनी और रोम (Tuscany and Rome) में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अब उग्र गणतन्त्रवादी दल (Extreme Republican Party) के हाथों में चला गया। मेज़िनी ही उग्र गणतन्त्रवादी दल का नेता था। चार्ल्स एल्बर्ट (Charles Albert) कमज़ोर निकला था और पोप पायस नवम अरेयर सिद्ध हुआ था। "राजाओं द्वारा स्वातन्त्र्य-युद्ध समाप्त किया जा चुका था; अब सर्वसाधारण द्वारा स्वातन्त्र्य-युद्ध प्रारम्भ किया जाने को था।"

कुछ काल तक अशान्ति बनी रही जिसमें पोप की बची-खुची सहानुभूति भी नष्ट हो गई। इसके उपरान्त रोम (Rome) में गणराज्य घोषित कर दिया गया। इस समय मेजिनी गणतन्त्रवादियों का नेतृत्व कर रहा था।

रोमन गणराज्य

पोप का साम्राज्य समाप्त हो गया और स्वयं पोप ने गेटा (Gaeta) में जाकर शरण ली, जो नैपिल्स में एक स्थान है। अब गेटा में पहुँचकर पोप ने यूरोप की शक्तियों से अपील की। इन्हीं दिनों टस्कनी (Tuscany) नामक डची में से उसके राजा लियोपोल्ड (Leopold) को भी निकाल दिया गया था क्योंकि फ्लोरेंस (Florence) नामक स्थान पर भी उसी प्रकार के गणतन्त्री उपद्रव हुए थे। टस्कनी (Tuscany) का राजा लियोपोल्ड (Leopold

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पोप से जा मिला। इस प्रकार रोम (Rome) और टस्कनी (Tuscany) नाम के दोनों गणराज्यों ने मिलकर निश्चित किया कि संविधान सभा आहूत की जाय और वह निर्वाचित संविधान सभा (Constituent Assembly), समस्त इटली के लिए संविधान तैयार करे।

किन्तु सम्पूर्ण इटली का भाग्य पीडमौंट (Piedmont) के ऊपर आधारित था। पीडमौंट के राजा के ऊपर देशभक्तों ने दबाव डाला जिसके फलस्वरूप उसने इटली की स्वतन्त्रता के लिए एक और प्रयत्न करना निश्चित किया। १२ मार्च, १८४९ को उसने ऑस्ट्रिया के साथ की गई सन्धि को तोड़ दिया और २० मार्च को वह ऑस्ट्रिया पर आक्रमण करने चला। किन्तु २३ मार्च को उसकी सेनाएँ नोवारा (Novara) नामक स्थान पर हार गईं। अगले ही दिन पीडमौंट के राजा ने दीनतापूर्ण सन्धि पर हस्ताक्षर करने के बजाय राज्य त्यागना श्रेयस्कर समझा और दो दिन उपरान्त उसका पुत्र विक्टर इमेन्युएल द्वितीय पीडमौंट के राजसिंहासन पर बैठा। उसी दिन उसने ऑस्ट्रिया के सेनापति रेडेट्ज्की (Radetzky) के साथ सन्धि की।

नोवारा (Novara) के युद्ध के पश्चात् इटली में सर्वत्र प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। इटली की विरोधी शक्ति जवाब दे गई और एक के बाद एक निरंकुश राज-परिवार इटली की छाती पर पैर जमाने लगे। मई (May) मास में फ़र्डिनेण्ड[1] ने पुनः सिसिली (Sicily) पर अधिकार कर लिया। टस्कनी पर लियोपोल्ड का अधिकार हो गया। रोम में कड़ा विरोध हुआ। गैरीबाल्डी (Garibaldi) रोम की रक्षा कर रहा था। यद्यपि रोम (Rome) का भी पतन हुआ किन्तु ऑस्ट्रिया के सैनिक रोम पर अधिकार न कर सके थे। हाल ही में लुई नेपोलियन (Louis Napoleon) फ्रेंच गणराज्य का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ था। वह इटली में ऑस्ट्रिया के विरुद्ध शक्ति प्रदर्शित करने का इच्छुक था। उसके सैनिकों की सहायता से ही रोम पर पोप पायस नवम अधिकार कर सका था। रोम की रक्षा करने में गैरीबाल्डी (Garibaldi) ने अथक परिश्रम किया था। किन्तु पोप ने इस बार प्रतिक्रियावादी रोल अपनाया। अगस्त में वेनिस (Venice) पर भी ऑस्ट्रिया का अधिकार हो गया।

इस प्रकार सारे इटली में ऑस्ट्रिया की तूती बोलने लगी और निरंकुशता का साम्राज्य छा गया। किन्तु एक तो रोम (Rome) अपवाद था क्योंकि रोम में पोप की विजय फ्रांस की सेनाओं की सहायता से हुई थी और दूसरा पीडमौंट भी अपवाद था जहाँ का राजा विक्टर इमेन्युएल (Victor Emmanuel) अपने पिता द्वारा जारी किए गये संविधान के प्रति निष्ठावान रहा। कुछ अन्य निर्वासित देशभक्त इंग्लैण्ड होते हुए अमेरिका जा पहुँचे, और वियेना (Vienna) में स्ट्रॉस सीनियर (Strauss Senior) ने खुशी के गीत गाए जिनमें रेडेट्ज्की (Radetzky) की जय-यात्रा और इटली के असफल विद्रोह की गूंज थी।

असफलता

---

१. राजा फ़र्डिनेण्ड का बिगड़ा हुआ उपनाम किंग बॉम्बा (King Bomba) भी था। जब से फ़र्डिनेण्ड ने मेसिना (Messina) पर बमबारी की थी तभी उसका उपनाम 'किंग बॉम्बा' भी पड़ गया था।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन और गणतन्त्रीय प्रयत्न विफल हुए, फिर भी इस विफलता में भी सफलता के बीज थे। यद्यपि अब इस बात की बिलकुल सम्भावना न रह गई थी कि पोप की छत्र-छाया में संयुक्त इटली का निर्माण होगा फिर भी एक अन्य शक्ति अर्थात् सार्डीनिया—इस स्थिति में आ गई थी कि वही संयुक्त इटली का नेतृत्व करेगी। इटली के इतिहास में प्रथम बार सभी लोगों ने एक उद्देश्य के लिए आवाज उठाई थी और सभी लोग इटली राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए दीवाने हो चले थे। यह प्रथम अवसर था जब नैपिल्स के लोगों ने वेनिस (Venice) की रक्षार्थ अपना खून बहाया और जब लौम्बार्डी (Lombardy) के लोगों ने रोम के लिए कष्ट सहे। प्रथम बार पीडमौंटवासियों (Piedmontese) ने सम्पूर्ण इटली की स्वतन्त्रता का बीड़ा उठाया था। इटली के इतिहास में १८४९ का मनहूस वर्ष असफलता का वर्ष अवश्य था, फिर भी इस अशुभ वर्ष के कुछ शुभ परिणाम अवश्य निकले। इस वर्ष ने इटली को अपनी न्यूनताओं के प्रति जागरूक कर दिया। साथ ही इस वर्ष ने इटली के स्वातन्त्र्य-संघर्ष के नेतृत्व के लिए एक राज-परिवार दिया जिसमें सारी इटली की आशाएँ केन्द्रित थीं। इस वर्ष ने इटली की विभाजित जाति को एक ऐसी मजबूत और सुसंगठित जाति में परिणत कर दिया जिसने अपनी स्वतन्त्रता की हर कीमत पर रक्षा की।

इटली के समान जर्मनी में भी १८१५ से लेकर १८५० तक का इतिहास यही बताता है कि इस काल में सारे जर्मनी पर ऑस्ट्रिया का आधिपत्य रहा। कारण यह था कि जर्मन रियसतों में फूट थी और वे सब कमजोर थीं। द्वितीयतः जर्मनों की राष्ट्रीय और प्रजातन्त्रीय आशाएँ असफल रहीं।

१९वीं शताब्दी की जर्मन व्यवस्था १८१५ के समझौतों का प्रतिफल थी और प्रायः इटली के समान ही उसका केवल भौगोलिक अस्तित्व मात्र था। जर्मनी ३९ सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्यों से मिलकर बना हुआ एक परिसंघ था। यह एक अस्थिर-सा परिसंघ था। किसी समय तो जर्मन परिसंघ (Confederation) ३०० स्वतन्त्र रियासतों का संघ था। तब वह पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) कहा जाता था। इस प्रकार पवित्र रोमन साम्राज्य की स्थिति को देखते हुए १९वीं शताब्दी का जर्मनी अच्छी और सुदृढ़तर स्थिति में था। जर्मन परिसंघ में ऑस्ट्रिया (Austria) और प्रशा (Prussia) नाम के दो बड़े राज्य भी थे जो परिसंघ के क्रमशः प्रधान और उपप्रधान थे। शेष रियासतों में से कुछ मध्य दर्जे की रियासतें थीं जिनमें बवेरिया (Bavaria), हैनोवर (Hanover), सेक्सनी (Saxony) और वुर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) प्रमुख थीं, तथा कुछ छोटी रियासतें थीं और चार स्वतन्त्र नगर थे। होल्स्टीन (Holstein) पर डेन्मार्क का अधिकार था, लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) पर नीदरलैंड्स (Netherlands) के राजा का अधिकार था; हैनोवर (Hanover) ब्रिटिश सम्राट की मिलकियत थी। इस प्रकार जर्मन परिसंघ एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की चीज बन गई थी। जर्मन परिसंघ की एक केन्द्रीय प्रतिनिधिक संसद् (Diet) भी थी, जो फ्रेंकफर्ट (Frankfurt)

जर्मनी परिसंघ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समवेत होती थी, किन्तु जो शासन के एक उपकरण के रूप में व्यर्थ की सी चीज बन गई थी। यद्यपि देखने में तो जर्मन परिसंघ की संसद् (Diet) के पास व्यापक शक्तियाँ थीं जिनके आधार पर सब अवयवी राज्यों के सामान्य हितों के मामलों को सरलतापूर्वक सुलझाया जा सकता था; किन्तु वास्तविकता यह थी कि न तो कोई संयुक्त निर्णय किया जा सकता था और कोई सम्मिलित कार्यवाही करना प्रायः असम्भव था क्योंकि या तो परिसंघ का प्रधान (ऑस्ट्रिया) कुछ अड़चन डाल देता था या उक्त प्रधान देश के पास प्रभावी कार्यापालिका सत्ता का पूर्ण अभाव था या परस्पर ईर्ष्यालु और छोटी रियासतों के परस्पर-विरोधी हित कुछ निर्णायक कार्यवाही न करने देते थे। मुख्य कारण यह था कि ऑस्ट्रिया और प्रशा में परस्पर द्वेष था। इसके विपरीत मुख्य और अलंघ्य बाधा यह भी थी कि परिसंघ (Confederation) की शर्तों के अनुसार यदि किसी मौलिक विधि में या अवयवी एकक राज्यों की सीमाओं में या अवयवी राज्यों के व्यक्तिगत अधिकारों में या धर्म से सम्बन्धित किसी प्रश्न में कोई परिवर्तन अभीष्ट हो तो ऐसा प्रस्ताव केवल सर्वसम्मति से पास होने पर ही अभीष्ट परिवर्तन सम्भव हो सकता था। ये शर्तें इतनी व्यापक थीं कि इनके अन्तर्गत प्रायः परिसंघ से सम्बन्धित सभी प्रश्न आ जाते थे; और इसी कारण परिसंघ में किसी प्रकार का सुधार सम्भव न था। दूसरी बात यह थी कि जर्मनी परिसंघ[1] के पास न तो कोई सेना थी और न शासन-यन्त्र था, इसलिए अवयवी एकक राज्य केवल स्वेच्छा से मिले हुए थे। परिसंघ की संसद् (Diet) पर ऑस्ट्रिया का इतना प्रभाव था कि वह मानो ऑस्ट्रिया का एक न्यायालय था जिसमें पुराने साम्राज्य के विरुद्ध व्यक्तिगत दावों का निर्णय मात्र होता था।

ऑस्ट्रिया का नियन्त्रण

शीघ्र ही यह प्रकट होने लगा कि ऑस्ट्रिया, जर्मन परिसंघ की संसद् को केवल अपना अधीन विदेश विभागमात्र समझता था। केवल प्रशा में इतनी शक्ति थी कि वह ऑस्ट्रिया का मुकाबला करता किन्तु प्रशा अपने उद्योगों के विकास में लगा था और उसे आन्तरिक विद्रोहों का भय बना रहता था अतः उसने लगभग ५० वर्षों तक अपनी विदेश नीति को ऑस्ट्रिया के मनोनुकूल बनाए रखा। बिस्मार्क (Bismarck) ने लिखा था : "प्रशा की नीति वियना में निर्णय की जाती थी।" वास्तव में १८१५ से लेकर १८५० तक कभी भी ऐसा अवसर नहीं आया जब किसी प्रश्न पर प्रशा ने ऑस्ट्रिया का विरोध किया हो। प्रायः सदैव प्रशा की नीति इस काल में ऑस्ट्रिया के अनुकूल ही रहती थी।

इस प्रकार मेटरनिक (Metternich) अपनी प्रतिक्रियावादी नीति पर बिना किसी प्रकार की बाधा से चलता रहा। वह न तो सुदृढ़ जर्मनी चाहता था और न यह चाहता था कि जर्मन में उदार विचार फैलें। प्रशा को अपने अनुकूल रखकर और छोटी जर्मन रियासतों में फूट डलवाकर तथा संसद् (Diet) को प्रभावहीन संस्था

---

१. जर्मन परिसंघ के पास केवल संघीय जहाजी बेड़ा था, जिसे १८५२ में प्रशा को नीलाम कर दिया गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर उसने अपना प्रथम मनोरथ प्राप्त किया। द्वितीय उद्देश्य प्राप्त करने में भी वह सफल हुआ। परिसंघ के संविधान के अनुच्छेद XIII के अनुसार यह मान लिया गया था कि परिसंघ के सभी अवयवी राज्य राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र हैं क्योंकि 'प्रत्येक अवयवी राज्य में विधान सभाओं (Assemblies) का होना अनिवार्य रखा गया था।'

संविधान

वीमर (Weimar) का शासक चार्ल्स ऑगस्टस (Charles Augustus) था। वह गेटे (Goethe) का प्रशंसक और उदारवादी था। उसने वीमर (Weimar) में एक संविधान चालू किया जिससे मेटरनिक अप्रसन्न हुआ। जर्मनी के दक्षिण की कुछ रियासतों ने भी फ्रांस की देखादेखी कुछ ऐसे राजनीतिक अधिकार लोगों को दे दिये थे जो कि लुई अठारहवें (Louis XVIII) के आज्ञापत्र (Charter) से मिलते-जुलते थे। प्रशा (Prussia) के शासक फ्रेडेरिक विलियम तृतीय (Frederick William III) ने भी प्रशा में संविधान जारी करने का वचन दिया था। प्रशा के शासक ने अपना संविधान-विषयक वचन अवश्य पूरा किया होता, किन्तु उन्हीं दिनों अक्टूबर १८१७ में वार्टबर्ग (Wartburg) में एक विशाल विद्यार्थी सम्मेलन हुआ जिसमें उदारवाद का प्रचार किया गया। मेटरनिक के सिर में इस उदारवादी विद्यार्थी सम्मेलन से दर्द पैदा हो गया और उन्हीं दिनों मार्च १८१९ में रूस के ज़ार का विशेष अभिकर्त्ता, प्रतिक्रियावादी नाटककार कॉट्जेब्यू (Kotzebue) मार डाला गया। मेटरनिक (Metternich) ने इस अवसर से लाभ उठाया और ज़ार एलेक्जेंडर एवं फ्रेडेरिक विलियम दोनों को बतलाया कि उदारवाद में क्रान्ति का भय है। फलस्वरूप पहले तो प्रशा को संविधान देना स्थगित कर दिया गया और १८१९ के अन्त में कार्ल्सवाड आज्ञाएँ (Carlsbad Decrees) पास कर दी गईं। प्रारम्भ में तो इन आज्ञाओं को कतिपय बड़ी-बड़ी रियासतों ने जारी किया; किन्तु बाद में तो उन्हें जर्मन ससद् (Diet) ने पास कर दिया। फलस्वरूप सारे जर्मन परिसंघ में प्रतिक्रियावादी नीति अपना ली गई।

कार्ल्सबाड आज्ञाएँ, १८१९

इन दिनों विद्यार्थी सभाएँ (Burschenschaften) और व्यायामशालाएँ मुख्य रूप से उदारवादी क्रान्ति आन्दोलन का नेतृत्व कर रही थीं। इन सबको तोड़ दिया गया। समाचारपत्रों पर कठोर पाबन्दी लगा दी गई और विश्वविद्यालयों में क्यूरेटरों की नियुक्ति की गई। ये क्यूरेटर वास्तव में सरकारी भेदिये थे जो विद्यार्थियों और प्राध्यापकों की गतिविधियों पर नजर रखते थे।

इस प्रकार मेटरनिक (Metternich) ने छोटी उदार रियासतों के विरोध की पूर्ण उपेक्षा कर दी। प्रशा ने संविधान से मुँह मोड़ लिया। यत्र-तत्र छोटे-मोटे विद्रोह भी हुए, जैसे १८२० में डार्म्सटैट (Darmstadt) का विद्रोह हुआ जिसके कारण १८१२ का स्पेनिश संविधान (Spanish Constitution) जारी करना पड़ा जिसे डार्म्सटैट लोगों ने कहीं देख लिया होगा; ब्रुन्सविक (Brunswick), हेस (Hesse), हैनोवर (Hanover) और सेक्सनी (Saxony) में कुछ उपद्रव १८३० की घटनाओं के आधार पर हुए, कहीं-कहीं विद्यार्थियों ने भी उपद्रव किए और १८३७ में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैनोवर का इंग्लैंड से सम्बन्ध विच्छेद हुआ।[1] अन्यथा, १८४८ तक मेटरनिक की व्यवस्था के अनुसार सम्पूर्ण जर्मनी में प्रायः शान्ति बनी रही।

देखने में तो १८४८ तक राजनीतिक शान्ति बनी रही किन्तु अन्दर ही अन्दर शान्ति भंग होने के लक्षण दिखाई दे रहे थे। इसी काल में दो महत्त्वपूर्ण कठिनाइयाँ सर उठा रही थीं। इन कठिनाइयों के कारण मेटरनिक की सारी योजनाएँ धूल में मिल गईं और मध्य यूरोपीय शक्तियों का शक्ति-संतुलन बिगड़ गया।

प्रशा का आगम शुल्क संघ (१८१९)

इस सम्बन्ध में प्रथम कठिनाई १८१९ में उपस्थित हुई जब कि प्रशा (Prussia) और श्वार्जबर्ग-सौंदरशोसेन (Schwarzburg-Sondershausen) के बीच एक छोटा-सा आगम-शुल्क सम्बन्धी समझौता हुआ। यह समझौता वास्तव में इतना नगण्य समझा गया था कि प्रारम्भ में तो मेटरनिक (Metternich) ने इस पर अपनी स्वीकृति दे दी थी। प्रशा के राज्य की सीमाएँ कुछ अस्त-व्यस्त सी थीं। कहीं तो प्रशा की सीमाओं में विदेशी भूभाग समाये हुए थे और कहीं प्रशा का भूभाग दूसरे राज्यों की सीमाओं में चला गया था। कई प्रकार के सीमा-शुल्क लगते थे अतः अनेक कठिनाइयों का सामना होता था। इन कठिनाइयों को दूर करने के अभिप्राय से प्रशा (Prussia) ने अपनी प्रशुल्क व्यवस्था (Tariff System) को पुनर्गठित किया। मुक्त व्यापार के आधार पर शुल्क यूनियन की व्यवस्था की गई। प्रारम्भ में इस आगम शुल्क संघ (Zollverein) में उन १३ विदेशी भूभागों (Foreign Enclaves) को सम्मिलित किया गया जो प्रशा की सीमाओं में अन्दर तक आते थे; इसके उपरान्त पास-पड़ोस के राज्यों को भी आगम शुल्क संघ में मिला लिया गया—यहाँ तक कि समस्त विरोधी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई; और १८५० में लगभग सारा जर्मनी एक आर्थिक संघ के रूप में संगठित हो गया। इस आगम शुल्क संघ के आर्थिक संघ में से केवल ऑस्ट्रिया बाहर था। इस संघ का मुखिया प्रशा (Prussia) था। इस प्रकार प्रशा की अधीनता में समस्त जर्मनी के आर्थिक स्रोत और आर्थिक हित आ गए। इसका राजनीतिक महत्त्व भी साधारण न था। १८७० में जिस जर्मन साम्राज्य का निर्माण हुआ, उसी की यह प्रत्यक्ष तैयारी थी।

---

१. १८३७ में रानी विक्टोरिया (Queen Victoria) इंग्लैंड के राजसिंहासन पर बैठी। उस समय हैनोवर (Hanover) में सेलिक विधि (Salic law) प्रचलित थी, अतः हैनोवर का राजा ड्यूक ऑफ कम्बरलैंड (Duke of Cumberland) बना। ड्यूक मलका विक्टोरिया का चाचा था और इंग्लैण्ड में सभी लोग उससे घृणा करते थे। हैनोवर के ब्रिटिश साम्राज्य में से निकल जाने पर ब्रिटेन में आमतौर पर प्रसन्नता थी। प्रायः ब्रिटिश सम्राटों के दुहरे हित लोगों को अखरते थे। ड्यूक आफ कम्बरलैंड ने हैनोवर का राजा बनते ही सबसे पहला काम यह किया कि वहाँ के संविधान को रद्द कर दिया और गॉटिंगन विश्वविद्यालय (Gottingen University) के सात उच्च प्राध्यापकों को अपदस्थ करके निर्वासित कर दिया। इन निर्वासित प्राध्यापकों में जरविनस (Gervinus), ईवाल्ड (Ewald), ग्रिम (Grimm) और डालमैन (Dahlmann) भी थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयतः, इटली के समान ही जर्मनी में भी जहाँ मेटरनिक (Metternich) राजनीतिक प्रगति को अवरुद्ध कर सका था, विचारों की दुनिया में राष्ट्रीयता के भाव बल पकड़ते गए। मेटरनिक भी राष्ट्रीय भावों की बाढ़ को रोकने में समर्थ न हो सका था। प्रत्येक उदार जर्मन का यह कर्त्तव्य-सा हो गया कि वह हर बात में महान् जर्मनी की बात सोचे और जर्मनी की ही महत्ता के गीत गाये। फ्रेंच युद्धों के बाद जितना भी साहित्य तैयार हुआ वह इसी प्रेरणा से निर्मित हुआ था। जर्मनी के कवियों ने जर्मनी की महानता का गीत गाया, जर्मनी के दार्शनिकों ने जर्मनी को सर्वोच्च देश बताया और जर्मनी के इतिहासकारों ने जर्मनी के प्राचीन गौरव पर प्रकाश डाला। फिश्टे (Fichte) ने अपने मर्मभेदी संदेश जर्मन जाति को सुनाए। फिश्टे (Fichte) के उत्तराधिकारी हीगल (Hegel) ने बर्लिन विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के अध्यक्ष पद में 'राज्य और ट्यूटोनिक जाति के उत्कर्ष' (Conception of the State and the Historical Role of the Teutonic Race) के सम्बन्ध में नए विचार प्रस्तुत किए। स्टीन (Stein) एक महान् प्रशावासी राजनीतिज्ञ था। उसने जर्मन इतिहास की रूपरेखा के रूप में महान् जर्मन जाति का इतिहास (*Monumenta Germaniae Historica*) प्रस्तुत किया। डालमैन (Dahlmann), बोमर (Bohmer), हॉसर (Hausser), गिसेब्रेट (Giesebrecht) ने पुराने ऐतिहासिक तथ्यों की छान-बीन की और जर्मनी का महान् इतिहास नए रूप में प्रस्तुत किया। बर्लिन (Berlin), ब्रेसलॉ (Breslau), बॉन (Bonn), म्यूनिच (Munich), लीप्जिग (Leipzig) और अन्य स्थानों के विश्वविद्यालयों में नव-जाग्रति के दर्शन होने लगे। विद्यार्थी इधर-उधर आर्न्ड्ट् (Arndt) की कविता का पाठ करते फिर रहे थे :

सर्व जर्मनवाद का प्रसार

प्रश्न—Was ist der deutschen Vaterland ?
Ist's Preussenland, ist's Schwabenland ?

[क्या जर्मनों का पितृदेश केवल प्रशा (Prussia) है ? क्या जर्मनों का पितृदेश केवल स्वाबिया (Swabia) है ?]

उत्तर—So weit die deutsche Zunge klingt,
Und Gott im Himmel Lieder singt.

[जर्मनों का पितृदेश वह सारा भू-भाग है जहाँ तक जर्मन भाषा बोली और समझी जाती है और जहाँ तक जर्मन बोली में परम पिता परमात्मा की याद की जाती है।]

जर्मन सैनिकों की जबानों पर जर्मनी जिन्दाबाद (*Deutschland, Deutschland uber Alles*) की आवाज गूँजती रहती थी। गृहस्थों के चूल्हों, चौकों में सिपाहियों की बैरकों (Barracks) में और विद्यार्थियों की कक्षाओं में भी जर्मनी की गौरव-गाथाओं के गीत गए जाते थे (*Die Wacht am Rhein*)। साहित्यकारों, कवियों और प्राध्यापकों ने जर्मनी के अतीत गौरव को साकार कर दिया। उन्होंने क्षुद्र प्रान्तीयता से भी जर्मनी का उद्धार किया। १८४८ में राष्ट्रवादी और लोकतंत्रात्मक विचारों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो क्रान्ति-सी आ गई—वास्तव में १८४८ का वर्ष क्रान्तियों का वर्ष था। मैटरनिक का एक प्रसिद्ध चुटकुला था : "जब फ्रांस को जुकाम होता है तो सारे यूरोप को छींकें आती हैं।" प्रलय की जो घनघोर काली घटाएँ फ्रांस, इटली और हंगरी के ऊपर आई थीं, उनसे जर्मनी भी अछूता न बच सका। प्रशा और आस्ट्रिया में, बवेरिया में और सैक्सनी में, हैनोवर, बेडिन (Baden) और श्लैसविग-होल्स्टीन (Schleswig-Holstein) में सर्वत्र लोगों ने विद्रोह कर दिये। राइन नदी (Rhine) से डैन्यूब (Danube) नदी तक उत्तेजना फैली हुई थी। राजसिंहासन डोलने लगे और एक के बाद एक सम्राट सोचने लगे कि कहीं उनका भी वही हाल तो न होगा जो इंग्लैंड के चार्ल्स प्रथम (Charles I) और फ्रांस के लुई सोलहवें (Louis XVI) का हुआ था। कई नरेशों ने जल्दी से संविधान में सुधार कर दिये; बवेरिया के राजा ने, जो आधा तो मेटरनिक का गुलाम था और आधा नर्तकी लोला मोनेज़ (Lola Montez) का, राज्य ही त्याग दिया; प्रशा के राजा ने भी प्रायः बवेरिया के राजा के पदचिह्नों पर चलना ही श्रेयस्कर समझा; सेक्सनी और हैनोवर (Saxony and Hanover) के राजाओं ने प्रजा को कुछ रियायतें दे दीं।

जर्मनी में विद्रोह का वर्ष

इस समय प्रशा का राजा फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ था। वह कल्पनाशील और अद्भुत पुरुष था। उसने फ्रेडेरिक विलियम तृतीय (Frederick William III) के स्थान पर राजसिंहासन प्राप्त किया था। फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ एक झक्की व्यक्ति था। जिस समय वह व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में उतरता था, उस समय उसकी झक बहुत बढ़ जाती थी।[1] वह एक विचार पर स्थिर न रह सकता था। इसका कारण कभी तो यह रहता था कि वह क्रान्तिकारियों से घबराता था और कभी अधिक दृढ़ विचार वाले लोग उसके ऊपर शीघ्र छा जाते थे। वह वास्तव में सद्विवेक वाला व्यक्ति था, किन्तु वह कुछ डरपोक था। उसने निस्संदेह यह घोषणा की थी कि "वह किसी कलंकित चर्म पत्र (संविधान) को लेकर स्वर्ग और अपने पवित्र देश के बीच ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देगा जिससे उसके और उसकी प्रजा के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध समाप्त हो जायें", किन्तु फिर भी इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि वह उदारचेता था और उसका झुकाव राष्ट्रवादियों की ओर था। वह क्रान्ति से नफ़रत करता था किन्तु वह यह मानता था कि उसको उन संवैधानिक प्रतिज्ञाओं को पूरा करना चाहिए जो प्रशा से की गई थीं। विशेषकर जो प्रतिज्ञाएँ स्वातन्त्र्य युद्ध (War of Liberation) के पश्चात् आशा के दिनों में की गई थीं, उनका पूरा

प्रशा

---

१. बिस्मार्क ने एक बार कहा था, "आपकी सन्त प्रकृति माता ने आपके बारे में मुझसे जो एक बार कहा था, आप अभी वैसे ही हैं। आप क्षणिक आवेश में बह जाते हैं। आपकी यह एक भूल ही अन्य सब भूलों का मूल है।"—एनसिलन जो फ्रांस के सुधरे हुए चर्च का धर्माचार्य था तथा बाद में प्रशा का विदेश मन्त्री बना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाना वह आवश्यक समझता था।[1] उसको जर्मन इतिहास के सुनहरे काल पर गर्व था। प्राचीन पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) के अतीत गौरव पर उसको भी गर्व था। इस प्रकार फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ के हृदय में जर्मनी के राष्ट्रवाद के लिए टीस थी और वह १८४८ के आदर्शवाद के प्रति आकृष्ट हुए बिना न रह सका।

ज्योंही क्रांति प्रारम्भ हुई, फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ (Frederick William IV) झुक गया और उसने संविधान स्वीकार कर लिया। अब वह बर्लिन की सड़कों पर एक जुलूस का नेतृत्व करता हुआ घूमने लगा। उसने अपनी पोशाक पर लाल, सुनहरे और काले रंग का दुपट्टा या पटका (Sash) बाँध रखा था। यही तीनों रंग पवित्र रोमन साम्राज्य के कौमी-झण्डे के थे। उसने बाकायदा घोषणा की कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करेगा। उसने प्रशा को जर्मनी का नेता देश भी मान लिया। उसने कहा "आज मैंने प्राचीन जर्मन झण्डे को पुनः स्वीकार किया है और मैं अपनी सारी प्रशा को जर्मन साम्राज्य के पवित्र झण्डे की रक्षार्थ अर्पित करता हूँ। अब से, भविष्य में प्रशा के वही हित और स्वार्थ होंगे जो सम्पूर्ण जर्मनी के हित होंगे।" कुपित ज़ार (Tsar) को भी उसने एक पत्र लिखा जिसमें महान् जर्मन क्रान्ति का अतिरंजित वर्णन किया गया। किन्तु शीघ्र ही उसका जोश ठण्डा पड़ गया। वियना (Vienna) में जर्मन क्रान्ति के विरुद्ध भयंकर प्रतिक्रिया हुई और उसकी देखारेखी जर्मनी की अन्य रियासतों में भी प्रतिक्रिया बलवती होने लगी। अब फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ इस प्रतिक्रिया के प्रभाव में आने लगा। इस प्रतिक्रिया के अतिरिक्त फ्रेडेरिक विलियम के ऊपर एक और प्रतिक्रियावादी प्रभाव पड़ने लगा था। ऑटो वॉन विस्मार्क (Otto Von Bismarck) प्रशा के राजतन्त्र का कट्टर समर्थक था और क्रान्ति का कट्टर विरोधी। इस स्थिति में वह बर्लिन में उपस्थित हुआ। सम्राट् तुरन्त बिस्मार्क के प्रभाव में आ गया, और वह १८४८ के लोकतन्त्रात्मक और राष्ट्रीय आदर्शों से दूर हटने लगा। बर्लिन (Berlin) के विद्रोह को दबा दिया गया, संविधान में इस प्रकार सुधार कर दिया गया कि वह राजतन्त्र का समर्थक बन गया, और साथ ही एक प्रतिक्रियावादी मन्त्रि-परिषद् नियुक्त कर दी गई।

फ्रेडेरिक विलियम की बदली हुई मनःस्थिति का कुछ और भी फल हुआ।

१८४८ के राष्ट्रवादी एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन का रोचक, सबसे महत्त्वपूर्ण और एक प्रकार से निराशाजनक परिणाम हुआ। फ्रेंकफर्ट संसद् (Frankfurt Parliament), मध्य यूरोप के जर्मन भाषा-भाषी लोगों की पहली राष्ट्रीय संसद् थी।

---

१. उसने १८४७ में एक संयुक्त विधानमण्डल को आहूत किया था। इसमें प्रान्तीय विधान-मंडलों के प्रतिनिधि तथा राष्ट्रीय परिषद् के सदस्य थे। इसका लोकतन्त्रात्मक प्रतिनिधिक आधार नहीं था। लेकिन यह एक नयी चीज थी। शीघ्र ही इसका सम्राट् से मतभेद हो गया। उनके विवादों तथा बर्लिन की एक क्रान्ति के कारण उत्तेजना बहुत बढ़ गयी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संसद् पुराने जर्मन साम्राज्य के प्रधान नगर और आधुनिक संघीय राजधानी-नगर के सेंट पॉल चर्च (St. Paul Church) में समवेत हुई।

फ्रेंकफर्ट संसद् (१८४८-४९)

इस संसद् में वे प्रतिनिधि थे जिन्हें पूर्ण वयस्क पुरुष मताधिकार के आधार पर ऑस्ट्रिया समेत समस्त जर्मन परिसंघ से चुना गया था। इस संसद् को यह काम सौंपा गया था कि वह संयुक्त जर्मनी के लिए संविधान तैयार करे।

फ्रेंकफ़र्ट संसद् १८४८ के क्रांतिकारी प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रवाद से उत्पन्न एक सुन्दर पुष्प था। यह पुष्प अभूतपूर्व स्वेच्छा और स्वच्छन्दता का भी परिणाम था। इस पुष्प के भाग्य में महान् अवसर आने को थे। किन्तु इस संसद् के प्रतिनिधियों के सामने कठिनाइयों और समस्याओं का अम्बार लग गया। जर्मनी के लोगों की निगाहें इस पर टिकी थीं। लेकिन राजनैतिक उत्तरदायित्व का भाव न तो जर्मनी के लोगों में ही था और न असेम्बली के सदस्यों में ही। असेम्बली के ८३१ सदस्यों में से ६०० सदस्य वकील या अध्यापक थे। इस असेम्बली की राज्य की क्रांतिकारी संसदों से कुछ प्रतियोगिता भी रही। फ्रेंकफर्ट संसद् को अपनी कार्यविधि के सम्बन्ध में कायदे-कानून बनाने थे। शताब्दियों की ऐतिहासिक प्रक्रिया को बदलना था, उन्तालीस राज्यों के प्रदेशवाद पर विजय पानी थी, और शासकों को भी कुछ न कुछ देना था। प्रशा को अपना विशिष्ट व्यक्तित्व जर्मनी में विलीन करना था और आस्ट्रिया को, उसके गैर-जर्मन प्रान्तों के साथ या उनके बिना, जर्मनी में शामिल करना था। हंगरी ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए अभी माँग की थी, चेकों ने फ्रेंकफर्ट के सर्व-जर्मनवाद (Pan-Germanism) के खिलाफ एक सर्व-स्लाव कांग्रेस (Pan-Slav Congress) का आयोजन किया था और इटली के प्रान्त दक्षिण की ओर देख रहे थे। यदि फ्रेंकफर्ट असेम्बली जर्मन ऑस्ट्रिया को अपनी ओर कर लेती, तो भी उसे वियना को भी इस बात के लिए राजी करना पड़ता कि वह प्रान्तीय राजधानी की घटी हुई स्थिति स्वीकार करे। वियना शताब्दियों से एक प्राचीन साम्राज्य की राजधानी रही थी।

शासन-संगठन किस प्रकार का हो, यह भी एक विकट प्रश्न था। राज्य का प्रधान चुना जाना था, कार्यपालिका, न्यायपालिका, प्रशासनिक तथा राजनयिक सेवा की नियुक्ति करनी थी, सेना तथा नौ-सेना की भी बुनियाद डालनी थी। राष्ट्रीय चर्च के सम्बन्ध में भी विचार हुआ लेकिन इस प्रश्न पर व्यापक मतभेद थे। शेल्सविग-होलस्टील प्रश्न (The Schleswig-Holstein Question) भी बड़ा विकट था। दक्षिण पक्ष और वामपक्ष को मिलाना था तथा एक सामाजिक क्रांति को पराजित करना था। एक संविधान का निर्माण करना था और उसके बुनियादी सिद्धान्तों को तैयार करना था।[1] जब तक यह हुआ, प्रतिक्रिया का दौर शुरू हो गया। ऑस्ट्रिया ने वियना के विद्रोह को दबा दिया और इटली की राष्ट्रवादी भावना को

---

१. संविधान का पहला वाक्यांश 'प्रत्येक जर्मन' था। 'जर्मन' शब्द के अर्थ पर ही घंटों वाद-विवाद होता रहा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कुचल दिया। स्वयं फ्रेडेरिक विलियम भी कुछ हताश हो रहा था और वह भी प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के चंगुल में फँसता जा रहा था। इसलिए जब उसको फ्रेंकफर्ट संसद् ने नवीन जर्मन साम्राज्य का राजमुकुट अर्पित किया तो उसने अस्वीकृत कर दिया। कारण यह था कि राजमुकुट या तो संसदीय राजमुकुट था या क्रान्तिकारी राजमुकुट था और दोनों ही प्रकार के राजमुकुटों को लेने में उसको संकोच था। अब तो राष्ट्रवादियों की अन्तिम आशा भी धूमिल हो चली। वास्तव में नव जर्मन साम्राज्य का राजमुकुट देरी से अर्पित किया गया था। प्रशा के राजाओं की निगाहों में जर्मन राष्ट्रवाद का स्रोत गन्दा हो चला था। वह ऑस्ट्रिया से भी डरता था और अन्य जर्मन राजाओं से भी। प्रशा के सम्राट द्वारा फ्रेंकफर्ट राजमुकुट के अस्वीकृत किए जाने के पश्चात् प्रजातन्त्रात्मक राजतन्त्रीय आधार पर जर्मनी के एकीकरण का प्रश्न सदैव के लिए असम्भव हो गया। बाद में जब जर्मन साम्राज्य की स्थापना हुई भी तो वह प्रशा की सैनिक-शक्ति के आधार पर हुई न कि सर्वसाधारण की ऐच्छिक प्रजातन्त्रीय भावना के आधार पर।

फिर भी फ्रेडेरिक विलियम ने तुरन्त ही जर्मनी के एकीकरण के प्रयासों से हाथ नहीं खींचा। वह जर्मनी की एकता की नीति का अनुयायी बना ही रहा। फ्रेंकफर्ट संसद् की विफलता के बाद उसने डरते-डरते अपनी एक योजना प्रस्तुत की। उसने केवल जर्मन राज्यों का एक यूनियन बनाने का प्रस्ताव रखा, और तदर्थ हैनोवर (Hanover), सैक्सनी (Saxony), वुर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) और बवेरिया को राजी कर लिया। निश्चित हुआ कि उपर्युक्त चार बड़ी-बड़ी जर्मन रियासतें तथा कुछ अन्य छोटी जर्मन रियासतें मिलकर एक संघ बनावें। यह भी निश्चित हुआ कि स्वयं प्रशा प्रस्तावित संघ का प्रधान बने। अब एर्फ़र्ट (Erfurt)

एर्फ़र्ट संघ की योजना में एक जर्मन संसद बुलाई गई। इस योजना का सविस्तार वर्णन करना आवश्यक होगा क्योंकि यह योजना शीघ्र ही त्याग दी गई। वास्तव में यह योजना परास्त हो गई। ऑस्ट्रिया की पीठ पर रूस का हाथ था अतः ऑस्ट्रिया ने तुरन्त ही एर्फ़र्ट योजना के विरुद्ध घोषणा कर दी। जर्मनी की अन्य चार रियासतें एर्फ़र्ट संघ से विमुख हो गयीं। और जब प्रशा ने भी देखा कि वह अकेला पड़ गया है और चूँकि वह ऑस्ट्रिया से युद्ध मोल लेने के लिए तैयार न था अतः प्रशा (Prussia) भी झुक गया। पुराना संघीय संविधान ज्यों-का-त्यों पुनः चालू हो गया। १८५० में ऑल्मुट्ज (Olmutz) में जो कन्वेंशन हुआ उसमें प्रशा को ऑस्ट्रिया और रूस की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख घुटने टेकने पड़े। प्रशा की और राष्ट्रवाद की भारी पराजय हो चुकी थी।

यूरोप के किसी अन्य राज्य के सम्मुख इतनी कठिन और परस्पर-विरोधी समस्याएँ न थीं जितनी कि ऑस्ट्रिया-हंगरी के सम्मुख थीं। ऑस्ट्रिया-हंगरी पूर्व और पश्चिम का सेनामुख (Vanguard) था। डेन्यूब नदी पर

ऑस्ट्रिया-हंगरी यह राज्य मानो एक राजनैतिक रोक या राजनैतिक हृदय था जिस पर बलकान प्रदेश (Balkans), पोलैण्ड (Poland), इटली (Italy) और जर्मनी का भाग्य आलम्बित था। ऑस्ट्रिया-हंगरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो राज्यों से मिलकर बना था और इसमें कम-से-कम १२ जातियाँ निवास करती थीं—जर्मन, मैग्यार (Magyars), जेक (Czechs), स्लोवाक (Slovaks), पोल (Poles), रुथेनीस (Ruthenes), क्रोट (Croats), सर्ब (Serbs), स्लोवीन्स (Slovenes), इटालियन (Italians), रूमानियन (Rumanians) और यहूदी (Jews)। राष्ट्रीयता का भाव इटली और जर्मनी में केन्द्राभिग शक्ति थी और वह उक्त दोनों देशों में एकीकरण और संघ की प्रेरणा देती थी किन्तु वही राष्ट्रीयता हैब्सबर्ग राज्यों में पृथक्करण की भावना को जाग्रत करती थी और ज्यों-ज्यों १९वीं शताब्दी निकट आती गई, ऑस्ट्रिया-हंगरी (Austria-Hungary) के साम्राज्य में जातिगत प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने लगी। मेटरनिक (Metternich) समझता था कि ऑस्ट्रिया-हंगरी अनेक जातीयताओं का जमघट है। अतः उसको पूरी तरह ज्ञात था कि ऑस्ट्रिया-हंगरी का शासन राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर चलाना अत्यन्त कठिन होगा। उसका विश्वास था कि एक जाति को दूसरी जाति से भिड़ाकर अथवा विभिन्न जातियों में उचित सन्तुलन पैदा करके ही साम्राज्य की स्थापना की जा सकती थी। उसके विचार से यह असम्भव था कि सारी जातियों के परस्पर सौहार्द द्वारा साम्राज्य की रक्षा हो सके। तदनुसार क्रोट और हंगरी जाति की सैनिक टुकड़ियाँ (Croat and Hungarian Regiments) और अधिकारी इटली को भेजे जाते थे। इटली जाति के अधिकारी और सैनिक गैलीशिया (Galicia) को भेजे जाते थे, पोलों (Poles) को ऑस्ट्रिया में रखा जाता था और ऑस्ट्रिया के अधिकारी हंगरी में रखे जाते थे। इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि उदार विचारों वाले या राष्ट्रीय प्रभावों वाले अधिकारियों को यथासम्भव साम्राज्य से दूर रखा जाय। साथ ही हैब्सबर्ग राजतन्त्र (Habsburg Monarchy) की रक्षार्थ उदारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलनों को जर्मनी और इटली में दबाया जाता था; यूनानियों (Greeks) के विरुद्ध तुर्की (Turkey) के साम्राज्य की रक्षा की जाती थी, जार (Tsar) को जैकोबिनिज्म (Jacobinism) के विरुद्ध भड़काया जाता था और प्रशा के राजा फ्रेडेरिक विलियम को सलाह दी जाती थी कि वह प्रशा को संविधान न दे।

राष्ट्रीय समस्याएँ

ऑस्ट्रिया के राज्यों में कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के मतानुसार स्थिरता और स्थायित्व केवल निश्चलता और निष्क्रियता द्वारा प्राप्त किया जा सकता था अतः सारे साम्राज्य में रक्षात्मक प्रशुल्क पद्धति (Protective Wall of Tariffs) जारी कर दी गई और कठोर सेंसर लागू कर दिया गया। सारे साम्राज्य का दम निष्क्रियता के कारण मानो घुटने लगा। पुराने सामन्तों को कृषि-सम्बन्धी विशेषाधिकार दे दिये गये जिस प्रकार कि पुरानी फ्रेंच शासन-व्यवस्था में दिये जाते थे। फलस्वरूप कृषि का दम भी घुटने लगा। व्यापार ठप्प हो गया और खाद्य-सामग्री के दाम अत्यधिक ऊँचे हो गये, यद्यपि इन्हीं दिनों उद्योगों में मशीनीकरण का सूत्रपात भी किया गया था जिससे कुछ-कुछ गतिशीलता भी बनी रहे। बारम्बार कागजी मुद्रा जारी कर देने के फलस्वरूप राष्ट्रीय साख प्रायः समाप्त हो चुकी थी। साहित्य के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र में सारा मामला चौपट था। केवल वही पुस्तकें पढ़ी जाती थीं जिनके पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। केवल संगीत के क्षेत्र में अवश्य ही साम्राज्य ने उन्नति की थीं। उस समय वियना का संगीत सुनने के लिए सारे यूरोप के शौकीन लोग आया करते थे।

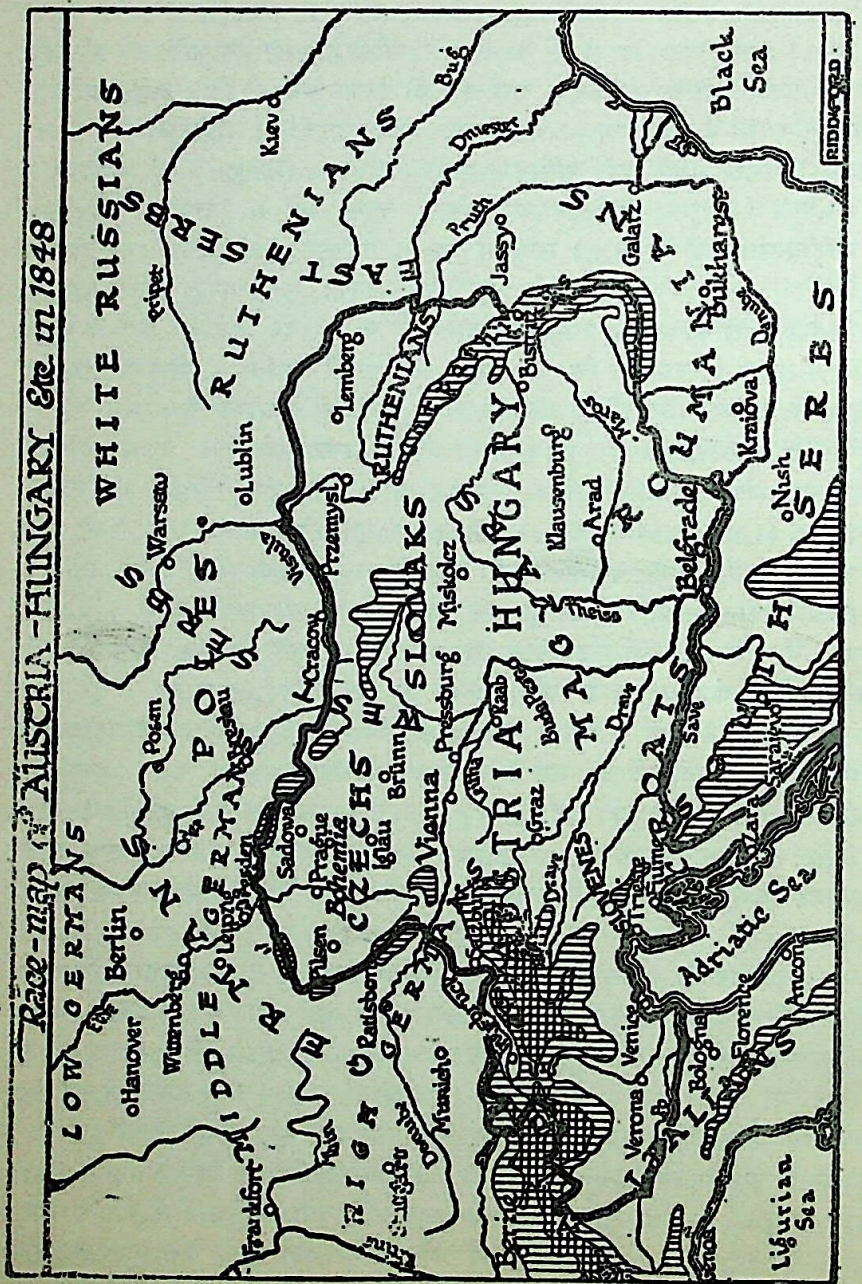

१८३५ में मृगी या अपस्मार का रोगी सम्राट फर्डिनेण्ड प्रथम (Ferdinand I) ऑस्ट्रिया हंगरी के राज-सिंहासन पर बैठा। वह विभिन्न मत वाले लोगों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्श लेता था और चूंकि वह बीमार था अतः उसकी ओर से रीजेण्ट भी काम करता था। अतः फर्डिनेण्ड के राज्य-काल में ऑस्ट्रिया-हंगरी की शासन-व्यवस्था कमजोर पड़ने लगी। किन्तु मेटरनिक (Metternich) की शासन-व्यवस्था इतनी सफल थी कि १८३० तक ऑस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के किसी भी भाग में उपद्रव नहीं हुए। ऑस्ट्रिया-हंगरी के बाहर इटली और जर्मनी में यत्र-तत्र छोटे-मोटे उपद्रव हुए। इटली के उपद्रवों को तो ऑस्ट्रिया की सेनाओं ने सरलता से दबा दिया किन्तु जर्मनी में ऑस्ट्रिया रूस और प्रशा के नरेशों ने सम्मिलित कार्यवाही द्वारा उदारवादी भावना का अन्त करने का निश्चय किया।

अगले बीस वर्षों में जर्मनी और इटली के समान ही ऑस्ट्रिया-हंगरी में भी राष्ट्रीय दल बल पकड़ गए। साम्राज्य के प्रान्तों में स्थानीय भाषाओं की शिक्षा पर जोर दिया जाने लगा ताकि सर्वसाधारण का ध्यान राजनीतिक प्रश्नों से दूर रहे। यद्यपि यह समझना तर्कपूर्ण न था और फल विपरीत हुआ। भाषा को उन्नति देने वाली सभाएँ ही दबी जबान में राष्ट्रवादी प्रचार-सभाएँ बन गईं। १८४६ में जो गेलीशिया (Galicia) में उपद्रव हुए, उनका कारण यह था कि उधर किसानों में बेचैनी थी और कृषकों का आन्दोलन ही बाद में बढ़कर राष्ट्रवादी और संवैधानिक आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर गया। इसलिए ऑस्ट्रिया और हंगरी में पर्याप्त असंतोष था; तभी १८४८ की फ्रेंच क्रान्ति ने सारे यूरोप में अशान्ति की आग लगा दी।[1]

१८४८

ऑस्ट्रिया के साम्राज्य में पाँच मुख्य विद्रोह हुए।

सर्वप्रथम विद्रोह वियना में मार्च के महीने में हुआ। यह विद्रोह कुछ तो सर्वसाधारण का और कुछ बौद्धिक वर्ग का विद्रोह था। किन्तु यह विद्रोह पूर्णतः जर्मनों का विद्रोह था। इस विद्रोह के उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक थे। विद्रोहियों की माँग थी कि उन्हें संविधान दिया जाय और समाचारपत्रों पर से पाबन्दी उठा ली जाए। किन्तु विद्रोहियों का एक वर्ग ऐसा भी था जो इस विद्रोह का सम्बन्ध जर्मनी के राष्ट्रीय आन्दोलन से करना चाहता था। यह वर्ग यह भी चाहता था कि ऑस्ट्रिया के जर्मन-भाषा-भाषी भागों को फ्रेंकफर्ट संसद् में अपने प्रतिनिधि भेजने चाहिएँ। मार्च की प्रथम अशान्ति से ही घबराकर मेटरनिक इंग्लैंड को पलायन कर गया। मई मास में दूसरा विद्रोह हुआ। अब की बार ऑस्ट्रिया-हंगरी का सम्राट् इन्सब्रुक (Innsbruck) को भाग खड़ा हुआ।

पाँच मुख्य आन्दोलन

मार्च के प्रथम विद्रोह की खबरों पर दूसरा विद्रोह प्रारम्भ हो गया था। यह इटली का विद्रोह था और इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। यह विद्रोह मार्च में मिलान (Milan) नगर में प्रारम्भ हुआ था। मिलान से यह वेनिस (Venice) तक फैला। इस विद्रोह के कारण पीडमौंट सार्डीनिया (Piedmont-

१. इस विद्रोह के फलस्वरूप नवम्बर १८४६ में क्रेको (Cracow) के स्वतन्त्र नगर पर ऑस्ट्रिया का अधिकार हो गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sardinia) के राज्य से युद्ध भी हुआ।

तृतीय विद्रोह बोहेमिया (Bohemia) में प्रेग (Prague) नगर में हुआ था। बोहेमिया में चेक जाति (Czech) यद्यपि अल्पसंख्यक थी, फिर भी पिछले कई वर्षों से चेकों में असन्तोष फैल रहा था क्योंकि वे लोग आयरलैण्ड (Ireland) में ब्रिटिश शासन की नीति के विरुद्ध थे। यह विद्रोह पूर्णतः राष्ट्रीय था। इस विद्रोह का उद्देश्य यह था कि बोहेमिया (Bohemia) को स्वायत्तता प्रदान की जाए और द्वितीयतः कुछ पश्चिमी स्लाव जातियों को मिलाकर एक संघ बन जाए। फ्रेंकफर्ट सभा के आदर्श पर स्लाव जाति की एक अखिल स्लाव महासभा (Pan-Slav Congress) १८४८ के जून मास में प्रेग (Prague) में आहूत की गई। इस सभा में उपस्थित होने वाले सभी प्रतिनिधि केवल जर्मन भाषा के माध्यम से विचार-विनिमय कर सकते थे, अतः सभा की सारी कार्यवाही जर्मन भाषा में हुई। फिर भी यह आन्दोलन निश्चित रूप से जर्मन विरोधी था। इस आन्दोलन का यह उद्देश्य कदापि न था कि बोहेमिया (Bohemia) को अखिल जर्मन राज्य (All German State) में मिला दिया जाय। यदि ऑस्ट्रिया जर्मन परिसंघ में मिल गया होता तो यह हो सकता था।

चौथा उपद्रव हंगरी में हुआ। यह मैगयार जाति का विद्रोह था। यह उपद्रव बुडापेस्ट (Budapest) से प्रारम्भ हुआ था। इटली के विद्रोह की तरह मैगयारों का विद्रोह भी राष्ट्रवादी और संवैधानिक दोनों प्रकार का था। इस उपद्रव या विद्रोह के कारण भी हंगरी (Hungary) का ऑस्ट्रिया से युद्ध हुआ। हंगरी के निवासी बहुत काल से स्वशासन के अभ्यस्त थे। वियना के विद्रोह से पूर्व हंगरी का राष्ट्रीय पार्टी का नेता कौसुथ (Kossuth) था। वह भी हंगरी के राष्ट्रवादियों के लिए उतना ही आदर का पात्र था जितना कि इटली में मेज़िनी (Mazzini) लोगों का स्नेहपात्र था। कौसुथ (Kossuth) के नेतृत्व में हंगरी के राष्ट्रवादियों ने ऑस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त संसदीय शासन की माँग की और अन्त में ऑस्ट्रिया के सम्राट् को यह माँग स्वीकार करनी पड़ी। इस पर हंगरी ने प्रसिद्ध मार्च के नियम (March Laws) पास किए। मार्च के नियमों द्वारा गुलाम प्रथा, जागीरदारी प्रथा और सामन्ती विशेषाधिकार सदा के लिए नष्ट कर दिए।

किन्तु हंगरी के विद्रोह का एक अन्य पहलू भी था। यह अत्यधिक राष्ट्रीय था। किन्तु हंगरी के राष्ट्रवादी हंगरी को ऑस्ट्रिया से अलग भी करना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि हंगरी की सीमाओं में निवास करने वाली सभी जातियों के ऊपर मैगयार जाति का ही प्रभुत्व छाया रहे। इस प्रकार जो स्वतन्त्रता और रियायत हंगरी ने ऑस्ट्रिया से प्राप्त की थी, उस स्वतन्त्रता के फल से हंगरी के मैगयार (Magyars), हंगरी में बसने वाले क्रोट लोगों (Croats), रूमानियनों (Rumanians), स्लोवीन्स (The Slovenes) और सर्बों (Serbs) को वंचित रखना चाहते थे। कौसुथ ने कहा था, "मानचित्र में क्रोशिया (Croatia) का अस्तित्व ही कहाँ है?"

इस प्रकार पाँचवाँ क्रान्तिकारी विद्रोह हुआ जो विशेष रूप से हंगरी के विरुद्ध था, ऑस्ट्रिया के नहीं। उन दिनों लुई गैज (Louis Gaj) नाम का एक महान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिज्ञ-पत्रकार था। उसने साहित्य और इलीरिया प्रेम (Illyrism) द्वारा लोगों में राष्ट्रीय भावना फूंक दी। इस विद्रोह का विस्फोट इलीरिया प्रान्त (Illyria) में एग्रम (Agram) नामक स्थान पर हुआ। इस विद्रोह का आशय यह था कि हंगरी में जो सभी जातियों को दबाकर केवल मैगयारों को बढ़ावा दिया जा रहा था, उसको रोका जाय और तदर्थ क्रोटों (The Croats), स्लोवीनों (The Slovenes) और सर्बों (The Serbs) को मैगयारों के विरुद्ध संगठित किया जाए। दाक्षिणी स्लाव जातियों को संगठित करने की दिशा में यह प्रथम प्रयत्न था जिसके फलस्वरूप आज हमको यूगोस्लाविया के राज्य (State of Yugoslavia) के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार पाँच विभिन्न स्थानों पर असन्तोष के ज्वालामुखी फूटे—वे पाँच स्थान थे—वियना, मिलान, प्रेग, बुडापेस्ट और एग्रम[1]। इन आन्दोलनों का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न था बल्कि इनमें से कुछ आन्दोलन तो एक-दूसरे के विरुद्ध थे। इन सब विद्रोहों का केवल एक सामान्य लक्ष्य था—कि किसी भी प्रकार ऑस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य का विघटन हो। किन्तु ऑस्ट्रिया-हंगरी का साम्राज्य अपनी मुख्य कमजोरी के कारण ही विघटित होने से बच गया। ऑस्ट्रिया-हंगरी में अनेक तथा विभिन्न जातियाँ निवास करती थीं। उन्हीं जातियों के परस्पर विद्वेष ने ऑस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य को विघटित होने से बचा लिया।

सबसे पहले बोहेमिया का विद्रोह समाप्त हुआ। लगभग १५ दिन के युद्ध के पश्चात् जून मास में विद्रोहियों ने ऑस्ट्रिया के जनरल विनडिशग्राट्ज (Windischgratz) के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। जुलाई में चार्ल्स एलबर्ट (Charles Albert) की कुस्टोजा (Custozza) नामक स्थान पर हार हुई और सितम्बर में क्रोशिया के राजनीतिक सेनानी जिलैचिक (Jellachich) ने क्रोट लोगों के विद्रोह का नेतृत्व किया। वास्तव में हंगरी द्वारा ऑस्ट्रिया के ऊपर आक्रमण के जवाब में ही ऑस्ट्रिया ने क्रोटों (Croats) को भडकाया था कि वे हंगरी के मैगयारों के विरुद्ध हथियार उठावें। इन्हीं दिनों अच्छे संगठन के अभाव में वियना का विद्रोह[2] समाप्त हो चुका था और अक्टूबर में विनडिशग्राट्ज (Windischgratz) ने वियना पर अधिकार कर लिया।

असफलता

हंगरी की समस्या अब भी ज्यों की त्यों बनी हुई थी। दिसम्बर में सम्राट् फर्डिनेण्ड (Ferdinand) ने अपने युवक भतीजे फ्रांसिस जोसेफ़ (Francis Joseph) के हित में राज्य त्याग दिया। फ्रांसिस जोसेफ़ राजसिंहासन पर १९१६ तक डटा रहा और अपनी मृत्यु तक वह ऑस्ट्रिया और हंगरी का सम्राट् बना रहा। हंगरी ने नये शासक को अपना राजा स्वीकार नहीं किया और अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। कौसुथ (Kossuth) ने कहा था, "हैब्सबर्ग लौरेन (Habsburg-Lorraine) राजवंश, परमात्मा और मनुष्यों की निगाहों में बेईमान सिद्ध हो चुका है, अतः

१. १८४६ का गैलीशियन विद्रोह पोलों के विरुद्ध था। पोलों ने ऑस्ट्रिया की सरकार को खास परेशान नहीं किया।

२. इसकी एकमात्र सफलता दासों की मुक्ति थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हंगरी के राज-सिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं है।" ऑस्ट्रिया और हंगरी में युद्ध ठन गया किन्तु चूंकि रूसी फौजें फ्रांसिस जोसेफ़ (Francis Joseph) की सहायता के लिए आ गई थीं अतः मैगयार फ़ौजों ने रूसी सैनिकों के समक्ष अगस्त १८४९ में आत्म-समर्पण कर दिया। हंगरी का संविधान तोड़ दिया गया और देश में क्रूरता का ताडण्व नृत्य होता रहा। कौसुथ (Kossuth) को न्यायरक्षण से वंचित कर दिया गया। वह देश छोड़कर चला गया। पहले तो कुछ दिनों वह तुर्की में रहा। इसके बाद वह इंग्लैंड जा पहुँचा। इंग्लैंड में भी वह चुप नहीं रहा। उसके प्रभावपूर्ण प्रयत्नों के फलस्वरूप ब्रिटेन के उदार वर्ग रूस (Russia) के विरुद्ध हो गए और क्रीमिया युद्ध में इंग्लैंड ने रूस-विरोधी पक्ष ग्रहण किया।

इस प्रकार एक के बाद एक सारे आन्दोलन समाप्त हो गए। ऑस्ट्रिया-हंगरी का सामाज्य किसी प्रकार विघटन से बच गया और अगले दस वर्षों तक उसमें शान्ति रही। व्यापार, वाणिज्य और कृषि की उन्नति हुई। किन्तु लोगों की राष्ट्रीयता और संवैधानिक महत्त्वाकांक्षाओं को निरंकुशता, केन्द्रीकरण और सर्वजर्मनवाद ने नष्ट कर दिया। इस प्रकार ऑस्ट्रिया ही वह आधार था जिस पर इटली, जर्मनी और हंगरी के विद्रोह चले।[1] किन्तु उपर्युक्त विद्रोहों का अन्त ऑस्ट्रिया के हित में हुआ और इन विद्रोहों के दमन के पश्चात् ऑस्ट्रिया की शक्ति बढ़ गई और प्रायः सारे यूरोप में प्रतिक्रिया का सूत्रपात हुआ। हाँ, केवल पीडमौंट (Piedmont), प्रशा (Prussia), बवेरिया और हैनोवर (Hanover) अपवाद थे जहाँ कुछ संवैधानिक सुधार हुए।

और प्रतिक्रिया

नेपोलियन (Napoleon) ने कहा था, "यूरोप का भाग्य पोलैण्ड के भाग्य पर निर्भर है।" इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पोलैण्ड का विघटन पूर्व में उस समय हुआ था जब पश्चिमी देशों का ध्यान फ्रेंच राज्य क्रान्ति की ओर लगा हुआ था, किन्तु पोलैण्ड के विभाजन से यूरोपीय शक्ति-संतुलन बिलकुल बदल गया। पोलैण्ड का विघटन और समूल नाश प्रायः तीन प्रयत्नों में किया गया था—१७७२ में, १७९३ में और अंतिम रूप से १७९५ में।[2]

पोलैण्ड

पोलैण्ड के विभाजन का विचार नया नहीं था किन्तु इस दिशा में सर्वप्रथम व्यावहारिक प्रस्ताव प्रशा के राजा फ्रेडरिक महान् की ओर से आया। राजनीतिक दाव-पेंचों से लाभ उठाकर वह एक ही तीर से अनेक चिड़ियों को मारना चाहता था। एक ओर १७६८ के रूसी-तुर्की युद्ध में वह अत्यन्त संकोचपूर्ण स्थिति में फँस गया था जिससे वह निकलना चाहता था। दूसरी ओर वह पोलैण्ड के विभाजन से कुछ ऐसे भूभागों के लाभ की आशा रखता था जिनसे ब्रैन्डेनबर्ग (Brandenburg)

---

१. इस अध्याय के अन्त में इटली, जर्मनी और ऑस्ट्रिया के क्रान्ति-आन्दोलनों की सूची दी गई है।

२, पृष्ठ २१० पर मानचित्र देखिए। आंशिक एकीकरण के पश्चात् १८१५ और १९३९ में पोलैण्ड का पुनः विभाजन हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पूर्वी प्रशा मिल जाते। तीसरे वह रूस की महत्त्वाकांक्षाओं को भी संतुष्ट करना चाहता था। चौथे, वह ऑस्ट्रिया को प्रसन्न करना चाहता था; और पाँचवें वह फ्रांस को नीचा दिखाना चाहता था। फ्रेडरिक महान् सफल हुआ और १७७२ में प्रशा, रूस और वेमन से ऑस्ट्रिया ने भी पोलैण्ड के सीमावर्ती प्रान्तों को अपने-अपने अधिकार में कर लिया। इस लूट-खसोट और बन्दर बाँट का बहाना यह बताया गया कि पोलैण्ड में निर्वाचित राजतन्त्र होने के कारण शासन-व्यवस्था ठीक नहीं रहती थी वहाँ आन्तरिक अस्थिरता बनी रहती है।

यद्यपि पोलैंड के विभाजन से सारे यूरोप को आघात लगा किन्तु किसी शक्ति में इतना साहस न हुआ कि वह पोलैंड की रक्षा करती। पुनः बीस वर्ष पश्चात् जब रूस की रानी कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) ने पश्चिम में चल रहे फ्रेंच युद्ध से लाभ उठाकर और अधिक पोलिश भूभाग (Polish Territory) पर मनमाना अधिकार कर लिया तब भी किसी यूरोपीय शक्ति ने पोलैण्ड का पक्ष नहीं लिया। यद्यपि १७९१ में पोलैण्ड में श्रेष्ठ संविधान प्रचलित किया गया फिर भी पोलैण्ड की आन्तरिक स्थिति में स्थायित्व नहीं आया। इसलिए १७९३ में प्रशा और रूस मिल गए और उन्होंने पोलैण्ड का द्वितीय विभाजन कर डाला। इसके दो वर्ष पश्चात् पोलैण्ड की रही-सही स्वतन्त्रता का भी अपहरण कर लिया गया और प्रशा, रूस और ऑस्ट्रिया ने तिबारा पोलैण्ड का विभाजन कर डाला।

यद्यपि पोलैण्ड (Poland) का समस्त भूभाग छिन चुका था और उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण हो चुका था फिर भी पोलैण्ड में राष्ट्रीय चेतना बनी रही और उस राष्ट्रीय चेतना का यूरोपीय राजनीति में अभी तक प्रभाव बना हुआ है। नेपोलियन और कुछ अन्य शक्तियों ने पोलैण्ड की राष्ट्रीय चेतना को उभारने का प्रयत्न किया था क्योंकि वे पोलैण्ड के भूभाग को हड़पने वाले राष्ट्रों से वैर-भाव रखते थे। १९वीं शताब्दी में पोलैण्ड के देशभक्तों ने कई बार अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयत्न किए किन्तु वे सफल न हुए। जार एलैक्जैंडर प्रथम (The Tsar Alexander I) ने अपने कांग्रेस राज्य (Congress Kingdom) को संविधान दिया और उसने स्वयं अपने कर-कमलों से मार्च १८१८ में प्रथम संसद् (Diet) का उद्घाटन किया। किन्तु वह मेटरनिक (Metternich) के अत्यधिक प्रभाव में आ जाने के कारण, क्रान्ति के प्रति भयभीत होने के कारण और पोल जाति के विरोध के कारण संविधान के प्रति निष्ठावान न रह सका। उसने संविधान के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को प्रभावहीन कर दिया, यद्यपि उसने संविधान को पूरी तरह तोड़ा नहीं जैसा कि एक बार उसने सोचा भी था। जब उन रूसी अधिकारियों ने, जो पोलैण्ड में प्रशासन करते थे, यह देखा कि स्वयं जार पोलैण्ड के नये संविधान के प्रति उदासीन है तो उन्होंने भी पोल लोगों (Poles) के ऊपर अन्याय करना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार उनकी स्वतन्त्रताओं का दिन दहाड़े अपहरण होने लगा। पोल लोग बृहत्तर पोलैण्ड के इच्छुक थे और वे किसी भी समय संविधान से पूर्ण सन्तुष्ट न हुए थे; किन्तु जब उन्होंने देखा कि असंतोषपूर्ण संविधान का उचित रीति से पालन नहीं किया जा रहा है तब तो उनमें तीव्र रोष की लहर दौड़ गई और उनका क्रोध ग्राण्ड

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ड्यूक कॉंस्टेण्टाइन (Grand Duke Constantine) के ऊपर उतरा जो ज़ार का भाई था और पोलैण्ड के ऊपर वायसराय की शक्तियों से शासन करता था, यद्यपि उसका अधिकारीय नाम वायसराय न था। १८२५ में एलैक्जैंडर (Alexander) की मृत्यु हो गई। ज़ार एलैक्जैण्डर पाखण्डी और दिखावटी उदारवादी था किन्तु अब तो उसके स्थान पर एक निर्दय स्वेच्छाचारी ज़ार आया। ज्योंही नया ज़ार निकोलस प्रथम राजसिंहासन पर आसीन हुआ सारे पोलैण्ड में गुप्त आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और षड्यन्त्र रचे जाने लगे। ग्राण्ड ड्यूक अपनी सेना में विशेष लोकप्रिय समझा जाता था किन्तु पोलैण्ड की सेना विद्रोही हो गई और जब जुलाई १८३० की फ्रेंच क्रान्ति के समाचार पोलैण्ड पहुँचे तो नवम्बर में वारसॉ (Warsaw) में भी सैनिक गदर हो गया। सोचा तो यह गया था कि ग्राण्ड ड्यूक (Grand Duke) का वध कर दिया जाय किन्तु वह योजना सफल न हो सकी। यद्यपि वह जीवित बच गया था किन्तु उसको पोल लोगों ने धिक्कारा और रूसी लोगों ने भी क्योंकि वही पोलैण्ड के उत्पातों का कारण था। वह इधर-उधर वीराने की तरह मारा-मारा फिरता रहा और अन्त में १८३१ में उसकी हैजे की बीमारी से मृत्यु हो गई। यह महासंक्रामक रोग उस वर्ष सारे यूरोप में फैला था।

इन्हीं दिनों २५ जनवरी को पोलैण्ड के क्रान्तिकारियों ने देश के राजसिंहासन को राजा-विहीन घोषित कर दिया। यह एक प्रकार से रूस के विरुद्ध युद्ध की चुनौती थी और ५ फरवरी को २,००,००० रूसी सैनिक पोलैण्ड में घुस पड़े।

पोल लोग बड़ी बहादुरी से लड़े किन्तु उनमें फूट थी और अनुशासनहीनता थी। प्रायः फूट और अनुशासनहीनता से पोल लोग कई बार पराजित हो चुके हैं। यदि उन्हें कोई विदेश सहायता देता तो उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा सम्भव होती किन्तु दुर्भाग्यवश किसी सत्ता ने उनको मदद नहीं दी। यद्यपि दिखावटी तौर पर मेटरनिक कह रहा था कि पोलैण्ड को स्वतन्त्र होना चाहिए; किन्तु अन्य शक्तियों का रुख अनिर्णीत रहा और स्वयं मेटरनिक को ऑस्ट्रिया के साम्राज्य में भी विद्रोह का भय था। अतः उसने किया कुछ नहीं।

२५ फरवरी को ग्रोचौ (Grochow) नामक स्थान पर भंयकर युद्ध के बाद पोल हरा दिए गए। सैनिक पराजय के अतिरिक्त पोलों की सेना में हैजे ने भी संकट काल उपस्थित कर दिया। अतः पोल लोगों ने आत्मसमर्पण[1] कर दिया। सितम्बर तक पोल लोगों की प्रतिरोध शक्ति जवाब दे गई और फरवरी १८३२ में सम्राट निकोलॉस (Nicholas) ने पोलैण्ड में नया संविधान (Organic Statute) जारी कर दिया। उक्त नए संविधान के जारी करते ही एलैक्जैण्डर प्रथम का पुराना संविधान वापस ले लिया गया। अब पोलैण्ड, रूसी साम्राज्य का भाग बन गया यद्यपि पोलैंड की सरकार अलग रही। नवीन संविधान (Organic Statute) के साथ-साथ पोलैंड

---

१. लार्ड पामर्स्टन (Lord Palmerston) ने लिखा था, "हमको दुख है कि पोलैण्ड समाप्त हो गया। हमको अपार दुःख है कि हम उसकी सहायता न कर सके, किन्तु काफी समय से पोल जाति की अवस्था निराशाजनक सी हो रही थी।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के देशभक्तों के विरुद्ध कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई। इसके बाद सभी अपराधियों को क्षमा कर दिया गया किन्तु वह क्षमा नाममात्र की क्षमा थी। जिन सैनिकों ने रूस के विरुद्ध विद्रोह किया था उनको दूरस्थ रूसी पलटनों के साथ रखा गया; विद्रोहियों के पुत्रों को रूस के सैनिक शिक्षालयों में दूर-दूर रख दिया गया। पोलैण्ड के स्कूलों और विश्वविद्यालयों को बन्द कर दिया गया। वारसॉ (Warsaw) के संग्रहालय से राष्ट्रीय महत्त्व के चित्रों को हटाकर मास्को (Moscow) और सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) में भेज दिया गया। नवीन संविधान (Organic Statute), जो बहुत अनुदार भी नहीं था प्रभावहीन ही रहा और यथार्थतः सारा शासनकार्य रूसी राजधानी से संचालित होने लगा। १८३३ में यत्रतत्र असंगठित विद्रोह भी हुए जिनके कारण रूस को एक और बहाना मिल गया कि नवीन संविधान पर अमल नहीं किया जा सकता। पुनः १८४६ में एक और विद्रोह हुआ। इस पर ज़ार ने एक शाही आज्ञा (Imperial ukase) निकालकर नवीन संविधान (Organic Statute) को सदा के लिए ही वापस ले लिया।

डेन्मार्क

जिन दिनों सारे यूरोप में राष्ट्रीय और लोकतन्त्रात्मक संघर्ष चल रहे थे, स्कैंडिनेविया (Scandinavia) पर्वत के पार और दूरस्थ आइसलैंड (Iceland) नाम के डेन्मार्क के उपनिवेश में भी उन संघर्षों की गूंज सुनाई दी। आइसलैण्ड (Iceland) ने डेनमार्क (Denmark) से स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) और स्वराज्य माँगा। स्वतन्त्र व्यापार का अधिकार १८५४ में दे दिया गया और स्वशासन १८७० के आस-पास दे दिया गया।

डेन्मार्क वालों को यह बहुत बुरा लगा कि नार्वे उनसे छीनकर स्वीडन को दे दिया जाये। नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् कृषि की हानि हुई किन्तु अनाजों की कीमतें बहुत गिर गईं। इस कारण डेन्मार्क में भारी आर्थिक अवसाद आ गया। किन्तु एक दशक के उपरान्त डेन्मार्क की आर्थिक उन्नति होने लगी। १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दो मुख्य आन्दोलन और हुए थे जो राष्ट्रीय और लोकतन्त्रात्मक थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के दो उद्देश्य थे; श्लैसविग (Schleswig) और होल्स्टीन (Holstein) नामक दक्षिणी प्रान्तों में जर्मन भाषा-भाषी बहुसंख्यक थे। वे आन्दोलन कर रहे थे कि इन दोनों प्रान्तों को डेन्मार्क से निकालकर जर्मनी में मिला दिया जाय। इसकी प्राकृतिक प्रतिक्रिया जटलैण्ड (Jutland) में देखने को मिली जहाँ डेन (Danes) लोगों ने विद्रोह किया और चाहा कि जर्मन आन्दोलन कुचल दिया जाये तथा श्लैसविग और होल्स्टीन प्रान्त डेन्मार्क से विलग न हों। बाद में श्लैसविग-होल्स्टीन (Schleswig-Holstein) का प्रश्न अखिल यूरोपीय महत्त्व का प्रश्न बन गया। अगले अध्याय[1] में हम इस पर विचार करेंगे।

डेन्मार्क (Denmark) का संवैधानिक प्रश्न ठीक उसी प्रकार उभरा जिस प्रकार कि अन्य देशों में संवैधानिक सुधार हुए। १८३० की फ्रेंच राज्य-क्रांति से डेन्मार्क की संवैधानिक समस्या को उभार मिला। डेन्मार्क के राजा फ्रेडेरिक छठे

१. छठे अध्याय के खण्ड ३ में पढ़िए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने १८३१ में प्रान्तीय परामर्शदात्री परिषदों (Provincial Consultative Assemblies) की स्थापना की, किन्तु इन परिषदों से डेन्मार्क के राष्ट्रीय तत्त्व संतुष्ट न हो सके। डेन्मार्क के लोग स्वतन्त्र संविधान चाहते थे। १८४८ में जिस वर्ष सारे यूरोप में विद्रोह का ताँता लगा रहा, भयंकर विद्रोह का विस्फोट होने ही वाला था कि सम्राट फ्रेडेरिक छठे (Frederick VI) ने संविधान की प्रतिज्ञा कर ली और इस प्रकार विद्रोह होने से बच गया। किन्तु फ्रेडेरिक छठा (Frederick VI) उसी वर्ष मर गया और स्वतन्त्र संविधान सम्बन्धी प्रतिज्ञा को वह अपने उत्तराधिकारी के सर पर छोड़ गया।

इसमें सन्देह नहीं है कि उसके उत्तराधिकारी ने संविधान मंजूर कर लिया किन्तु इस संविधान से लोकतन्त्रवादी दल सन्तुष्ट न हो सका और उसकी ओर से बार-बार संविधान में परिवर्तनों की माँग आने लगी। यही वह संविधान था जिसको श्लैसविग-होल्स्टीन के ऊपर प्रभावी किये जाने के फलस्वरूप भयंकर श्लैसविग-होल्स्टीन समस्या उठ खड़ी हुई थी।

डेन्मार्क से छीनकर नार्वे स्वीडन को दे दिया गया था, किन्तु स्वीडन से फ़िनलैंड (Finland) छीन कर रूस को दिया जाना था। किन्तु नार्वे के लोग स्वीडन (Sweden) के सहयोग से प्रसन्न न थे। नार्वे के राष्ट्रीय तत्त्व स्वीडन के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे थे। नार्वे वासियों ने कुछ दिनों तक तो स्वीडन के साथ मिल जाना स्वीकार ही नहीं किया। उन्होंने आयड्सवोल्ड (Eidsvold) में अपने लिए एक संविधान तैयार किया तथा डेन्मार्क के एक राजकुमार को अपना राजा चुन लिया। इसके बाद वे युद्ध के लिए अपनी स्वतन्त्रता की रक्षार्थ डट गये। कई वर्षों तक संघर्ष चलता रहा किन्तु कोई निर्णायक फल नहीं निकला। परन्तु ज्योंही डेन्मार्क के राजकुमार ने संघर्ष को जारी रखना अनुचित समझा और ज्योंही उसने नार्वे का राजमुकुट त्याग दिया, नार्वे को तुरन्त आत्मसमर्पण करना पड़ा। अब नार्वे ने स्वीडन के साथ मिलना स्वीकार कर लिया किन्तु इस शर्त पर कि नार्वे और स्वीडन (Norway and Sweden) का संयोग नार्वे के लोगों की स्वेच्छा से हुआ न कि बल प्रयोग द्वारा। यह भी शर्त ठहरी कि आयड्सवोल्ड (Eidsvold) का संविधान प्रभावी बना रहेगा। किन्तु फिर भी स्वीडन (Sweden) नार्वेवासियों को हीन प्रजा समझता आ रहा था। इस कारण स्वीडन और नार्वे में बराबर मतभेद और संघर्ष बने रहे और अन्त में १९०५ में स्वीडन और नार्वे सदा के लिए विलग हो गए।

स्वीडन और नार्वे

नार्वे में राष्ट्रीय असन्तोष तो था ही, इधर नार्वे में स्वीडन की कुलीनतन्त्रीय सरकार के विरुद्ध व्यापक संविधान सम्बन्धी असन्तोष भी था। इसके अतिरिक्त स्वयं स्वीडन में भी संविधान की माँग विरोध का स्वरूप धारण करती जा रही थी। फ्रेंच सेनापति बर्नाडोट (Bernadotte) को स्वीडन के बीमार और निःसन्तान सम्राट चार्ल्स तेरहवें ने और तत्कालीन प्रजा ने स्वीडन के भावी सम्राट के पद के लिए स्वीकार कर लिया था। जब वह चार्ल्स चौदहवें (Charles XIV) के उपनाम सहित स्वीडन का सम्राट बना तो उसके राज्यकाल में कोई संवैधानिक प्रगति न हो सकी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार्ल्स चौदहवें का ध्यान मुख्यतः स्वीडन की आर्थिक उन्नति की ओर था। किन्तु उसका पुत्र ऑस्कर प्रथम (Oscar I) उदार मस्तिष्क का सम्राट् था और उसने अनेक सुधार सुझाये किन्तु तत्कालीन कुलीनतन्त्रीय और विशेषाधिकारयुक्त राष्ट्रीय विधान सभा (Riksdag) ने उसके सुझाये गये सुधारों को अस्वीकृत कर दिया क्योंकि राष्ट्रीय विधान सभा (Riksdag) में कुलीन वर्गों का प्राधान्य था। इस पर सर्वसाधारण या सर्वहारा वर्ग में असन्तोष बढ़ा। फलस्वरूप मार्च १८४८ में स्टॉकहोम (Stockholm) की सड़कों पर उपद्रव होने लगे। बाद में १८६६ में चार्ल्स पन्द्रहवें (Charles XV) के शासन-काल में नया संविधान दिया गया।

यूरोप के वृहत्तर भू-भाग में, केवल इंग्लैण्ड को अपवाद समझते हुए प्रायः सभी स्थानों पर उदारवाद और राष्ट्रीयता की पराजय होती रही, किन्तु उन्हीं वर्षों में यूरोप के तीन सबसे छोटे देशों में उदारवाद और राष्ट्रीयता को विजय लाभ भी हुआ। वे तीनों भाग्यशाली देश थे—ग्रीस या यूनान (Greece), बेल्जियम (Belgium) और स्विट्ज़रलैण्ड (Switzerland)।

एक ओर पश्चिमी यूरोप में नेपोलियन को हराने के लिए भगीरथ प्रयत्न किये जा रहे थे, दूसरी ओर सर्बिया (Serbia) के कृषक वर्ग तुर्की (Turkey) के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता बचाने के लिए जीवन-मरण का संघर्ष कर रहे थे। बलकान प्रदेश (Balkans) में यह प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन था जिसका नेतृत्व कारा जार्ज (Kara George) नामक सूअरों का व्यवसायी कर रहा था। कारा जार्ज (Kara George) एक अत्यन्त साहसी, वीर और शक्तिशाली पुरुष था। वह भयानक आदमी था और तुर्कों से तो उसको इतनी घृणा थी कि उसने अपने पिता को अपने ही हाथों इसलिए मार डाला था कि कहीं वह तुर्कों के हाथों में न पड़ जाये। वह न्यायी भी इतना था कि उसने कुछ बलात्कार करने के अपराध में स्वयं अपने भाई को ही फाँसी दे दी थी। यूरोप की सभी बड़ी शक्तियाँ अपने हितों की रक्षार्थ संघर्षरत थीं अतः तुर्की और सर्बिया के बीच के संघर्ष को यूरोप की अन्य शक्तियों ने कोई महत्त्व नहीं दिया। सर्ब लोग तुर्कों के विरुद्ध अकेले लड़ते रहे। स्वयं सर्बों (Serbs) में भी आपस में फूट थी। १८१७ में कारा जार्ज (Kara George) को एक दूसरी पार्टी ने कत्ल कर दिया। फिर भी मिलोश ओब्रीनोविच (Milosh Obrenovic) के अधीन सर्बिया को तुर्की (Turkey) ने कुछ स्वायत्तता (Autonomy) प्रदान कर दी और फिर दस वर्षों के बाद सर्बिया को रूस (Russia) के संरक्षण में दे दिया गया।

सर्बिया

प्रायः इसी काल में यूनान या ग्रीस (Greece) में भी एक सशक्त राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। ऐसा माना जा सकता है कि तुर्की (Porte) ने अपने साम्राज्य की सब प्रजाओं की अपेक्षा ग्रीस या यूनान की प्रजा के साथ अच्छा और सहिष्णुता का बर्ताव किया था। ग्रीक लोगों को तुर्की के विदेश विभाग में उच्च पद दिये गये थे और अन्य अधीन राज्यों के प्रशासनिक पदों पर भी ग्रीक लोगों को लगाया गया था। तुर्की के जहाज़ी बेड़े की कमान प्रायः यूनानियों के हाथों में थी। ग्रीस की आर्थिक

ग्रीस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति के मार्ग में किसी प्रकार बाधा नहीं डाली जा रही थी। एजियन द्वीपसमूह (Aegean Island) में तो यूनानियो को पूरी स्वायत्तता प्राप्त थी, केवल उनको थोड़ा सा कर देना पड़ता था। ग्रीस या यूनान के ईसाइयों को इस सीमा तक धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी कि उतनी धार्मिक स्वतन्त्रता न तो आयरलैण्ड के कैथोलिकों (Catholics) को प्राप्त थी और न ऑस्ट्रिया के प्रोटेस्टेण्टों (Protestants) को ही। यूनानियों की धार्मिक चेतनायुक्त एकता के आश्रय में उनकी जातीय एकता अक्षुण्ण बनी रही। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में साहित्यिक जाग्रति (Literary Revival) ने यूनानियों में ग्रीक-प्रेम (Hellenic Consciousness) का बीज बोया। इस साहित्यिक जाग्रति ने यूनान की पुरानी शान-शौकत को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया। फ्रेंच विचारों का ग्रीस के राजनीतिक विचारों पर प्रभाव पड़ा। फ्रेंच विचारों ने ग्रीस में स्वतन्त्रता का मन्त्र फूंका। इस दिशा में इटली और फ्रांस के समान ही यूनान में भी एक गुप्त संस्था या सभा विशेष रूप से क्रियाशील थी जिसका नाम था, फिलिकै हिटैरिया (*Philike Hetairia*) अथवा मित्रों की सभा। फिलिकै हिटैरिया अथवा मित्रों की सभा का संगठन ही इसलिए किया गया कि वह यूनानियों में राष्ट्रीय विचारों की गूँज भर दे, ताकि यूनान से तुर्की का सफाया हो जाय और ग्रीक या यूनानी साम्राज्य की पुनः प्रतिष्ठा एक बार फिर से हो।

यूनानियों को आशा थी कि रूस उनकी सहायता करेगा। कारण यह था कि जार एलैक्जैंडर का मुख्य मन्त्री कैपो डी इस्ट्रिया (Capo d' Istria)[१] एक यूनानी था और वह स्वयं फिलिके हिटैरिया (*Philike Hetairia*) का सदस्य था। सर्विया के विद्रोह से लोगों में जोश और उत्तेजना फैली। उन्हीं दिनों तुर्की (Porte) और उसके एक महत्त्वाकांक्षी दास (Vassal) में लड़ाई ठन गई। अली पाशा (Ali Pasha) तुर्की साम्राज्य के अधीन एक ज़मींदार या दास (Vassal) था। उसको शेरे जैनिना (Loin of Janina) कहा जाता था। १८३१ में दोनों में युद्ध छिड़ गया। इससे यूनानियों के हाथ एक अच्छा अवसर लगा। किन्तु मॉल्डेविया (Moldavia) के देशभक्त समय से पहले ही इस भरोसे पर कि रूस सहायता करेगा ही, कार्यवाही कर गुजरे, जहाँ राजकुमार हिप्सिलाण्टी (Hypsilanti) ने यूनानी स्वतन्त्रता का झण्डा ऊँचा कर दिया। किन्तु दुर्भाग्यवश मॉल्डेविया (Moldavia) में अधिकतर रूमानिया वासी रहते थे जिन्हें यूनानी स्वतन्त्रता में विशेष रुचि नहीं थी। रूस ने हिप्सिलाण्टी (Hypsilanti) को कोई सहायता नहीं दी और तुर्की ने उसको सरलता से हरा दिया। बेचारा हिप्सिलाण्टी (Hypsilanti) निर्वासित कर दिया गया और इस प्रकार यूनानी स्वतन्त्रता के युद्ध में यूनानियों को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

यूनानी स्वतन्त्रता का युद्ध (१८२१-१८२९)

परन्तु यूनानियों ने स्वतन्त्रता का वास्तविक प्रयत्न मोरिया (Morea) और

---

१. रूसी नौकरी छोड़ने के पश्चात काण्उट कैपो डी इस्ट्रिया (Count Capo d'Istria) १८२७ में यूनानी गणराज्य का अध्यक्ष निर्वाचित हुआ। १८३१ में उसको कत्ल कर दिया गया। उस समय तक वह यूनानी गणराज्य का अध्यक्ष बना रहा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एजियन द्वीपसमूह (Islands of the AEgean) में किया जहाँ राज्य-विद्रोह प्रारम्भ हो गया। यूनानी ईसाई थे और वे विदेशी जुए को अपने कन्धों से उतार फेंकना चाहते थे। इसलिए इतिहासकारों ने प्रायः उनके कुकृत्यों को क्षमा कर दिया है, फिर भी यह स्वीकार करना ही होगा कि यूनानी स्वातन्त्र्य-समर में यूनानियों ने वीरता भी दिखाई और विश्वासघात भी किया, पराक्रम भी दिखाया और निर्दयता का प्रदर्शन भी किया, उन्होंने देशभक्ति और भ्रष्टाचार दोनों का सहारा लिया, वे लालची भी थे और अस्थिर भी थे, किन्तु उन्होंने वीरतापूर्वक विरोध किया और अन्त तक वे अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठावान रहे। प्रारम्भ से ही यूनानियों ने दूषित और वर्जित तरीकों का प्रयोग किया और तुर्कों ने उनको उन्हीं की भाषा में जवाब दिया। युद्ध में एक पक्ष ने दूसरे का समूल नाश करने का प्रयत्न किया। यूनानियों ने अनेक मुसलमानों का मोरिया (Morea) में सफाया कर दिया और जवाब में तुर्कों ने थेसाली (Thessaly) और मेसीडोनिया (Macedonia) में अनेक ईसाइयों को तलवार के घाट उतार दिया, अनेक ईसाई स्त्रियों को दास बनाकर बेच दिया और ईस्टर के पवित्र दिन तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) के ईसाई धर्मपिता को फाँसी पर लटका दिया और तीन ईसाई धर्माध्यक्षों या धर्माचार्यों (Archbishops) को सूली दे दी।

यूनानी देशभक्त १८२४ तक तो तुर्कों के विरुद्ध डटे रहे, किन्तु उस वर्ष तुर्की ने अपने दास जमींदार (Vassal) मेहमत अली (Mehemet Ali of Egypt) से और उसके पुत्र इब्राहीम पाशा (Ibrahim Pasha) से सहायता की याचना की। मेहमत अली, तुर्की के मिस्री साम्राज्य का वाइसराय था। उसका पुत्र इब्राहीम पाशा दृढ़व्रती था और उसने यूनानी ईसाइयों पर वे जुल्म ढाये जिनसे उसको इतिहासकारों ने 'नारकीय जीव' या (Black Hell)[1] कहा है। इसी इब्राहीम पाशा की सहायता से तुर्की यूनान में अपना आधिपत्य स्थापित कर सका। किन्तु इब्राहीम पाशा ने चारों ओर लोगों को अपार कष्ट दिये, सर्वनाश किया और कत्ले-आम करवाया। १८२६ में मिसलोंघी (Missolonghi) पर तुर्की का अधिकार हो गया, १८२७ में एथेन्स (Athens) ले लिया गया और इसके बाद ग्रीक लोगों के पैर उखड़ गए और उनका प्रतिरोध जवाब दे गया।

पराजय

इन्हीं दिनों ग्रीक विद्रोहों ने अत्यन्त कटु अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगी पैदा कर दी थी। यह समस्या इसलिए और भी अधिक उलझ गई कि एक ओर मेटरनिक (Metternich) तुर्की की सुस्थापित सत्ता के विरुद्ध किये गए विद्रोहों को सहायता देने से हिचकता था तथा दूसरी ओर ब्रिटेन और ऑस्ट्रिया रूस के बढ़ते हुए प्रभाव के प्रति शंकालु थे। १८२२ में ज़ार एलैक्जैण्डर (Tsar Alexander) ने चाहा था कि ग्रीक या यूनानी झगड़े में वह हस्तक्षेप करे किन्तु मेटरनिक और कैसलरे (Metternich and Castlereagh) के सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप रूस को यूनान में प्रभावी

१, इब्राहीम पाशा (Ibrahim Pasha) ने जाँ निसारों (Janissaries) के गदर को दबाने में भारी कत्लेआम किया था। उसी से उसको नारकीय जीव (Black-Hell) की उपाधि दी गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तक्षेप नहीं करने दिया गया। यूरोप की शक्तियों ने ग्रीक झगड़े में अन्त तक तटस्थ नीति बनाए रखी, केवल ब्रिटेन ने यूनानियों को युद्ध में एकपक्ष (Belligerents) मान लिया ताकि व्यापारिक हानि का सम्यक् मुआवज़ा प्राप्त हो सके।

१८२७ से पहले ही यह प्रकट हो चुका था कि ग्रीक संघर्ष में विदेशी हस्तक्षेप अनिवार्य है और शीघ्र होगा। अब तक रूस का ज़ार एलैक्ज़ैण्डर था जो दृढ़ नहीं था। अब उसका स्थान निकॉलस प्रथम (Tsar Nicholas 1) ने लिया था, जो स्वयं मजबूत इरादों का आदमी था। साथ ही कैलसरे (Castlereagh) के स्थान पर कैनिंग (Canning) ब्रिटिश विदेश-मन्त्री बना। वह अधिक उदार था। रूस नहीं चाहता था कि तुर्की विजयी हो, किन्तु इंग्लैण्ड को भी यह सह्य न था कि ग्रीक सभ्यता (Hellenism) नष्ट हो जाय जिसके लिए बायरन (Byron) अपने प्राण खो चुका था और जिसके लिए इंग्लैण्ड के अनेक स्वयंसेवकों ने धन से और अन्य प्रकार से सेवा की थी। फ्रांस में भी ग्रीक जाति के लिए सहानुभूति उमड़ रही थी क्योंकि पश्चिमी सभ्यता का आदि-स्रोत यूनान ही था। किन्तु मेटरनिक बराबर यही मानता रहा था कि यूनानी लोग विद्रोही हैं और बाहरी शक्तियों को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। वह चाहता था कि यूनानी लोग अपने मामले स्वयं तय करें। प्रशा की भी वही नीति थी जो ऑस्ट्रिया की थी।

विदेशी हस्तक्षेप

१८२७ में रूस, फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन ने सह-हस्ताक्षरों सहित एक पत्र तुर्की (Porte) को लिखा, जिसमें माँग की गई कि वह यूनान के साथ युद्ध-विराम करे। साथ ही यह भी प्रस्ताव किया गया कि वह अन्य शक्तियों की मध्यस्थता को स्वीकार करे। इसके साथ ही फ्रेंच और ब्रिटिश युद्धपोतों को आज्ञा दी गई कि वे भूमध्य-सागर में कार्यवाही के लिए सतर्क रहें। यद्यपि न तो इंग्लैण्ड ने और न फ्रांस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी, फिर भी भूमध्यसागर स्थित ब्रिटिश और फ्रेंच जहाज़ों की इब्राहीम पाशा के सम्मिलित तुर्की-मिस्री जहाजी बेड़े से भिड़न्त हो गई और ब्रिटिश-फ्रेंच बेड़े ने इब्राहीम पाशा के तुर्की-मिस्री बेड़े को नैवेरीनो की खाड़ी (Bay of Navarino) में समस्त धन और सम्पत्ति सहित २० अक्टूबर को नष्ट कर दिया। समस्त यूरोप हक्का-बक्का रह गया, इंग्लैण्ड बहुत संकोचपूर्ण स्थिति में पड़ गया, तुर्की में व्यापक रोष छा गया और इस कार्यवाही के कारण यूरोप की राजनयिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। कैनिंग (Canning) की मृत्यु हो चुकी थी, उसके स्थान पर वैलिंगटन (Wellington) इंग्लैण्ड का प्रधान-मन्त्री बना था, उसने इस कष्टकारक दुर्घटना के लिए क्षमा माँगी और अब इंग्लैण्ड ने वचन दिया कि वह ग्रीक प्रश्न पर कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। यद्यपि फ्रेंच सेनाएँ मोरिया (Morea) पर अधिकार किए पड़ी थीं फिर भी ऐसी स्थिति आ गई थी जिसे कैनिंग बचाना चाहता था। वास्तव में इस समय बलकान (Balkan) प्रदेश में रूस की स्थिति सुदृढ़ थी। रूस और तुर्की में हलके से युद्ध के बाद तुर्की ने रूस के

नैवेरीनो (अक्टूबर १८२७)

रूस और तुर्की का युद्ध (१८२८-२९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ सन्धि कर ली और १८२९ में जो एड्रियानोपिल (Adrianople) में संधि हुई, उसके अनुसार न केवल रूस को व्यापारिक और प्रादेशिक लाभ हुआ, बल्कि उसके अनुसार ग्रीस या यूनान को भी स्वतन्त्र मान लिया गया और अगले वर्ष ग्रीस को यूरोप की शक्तियों के संरक्षण में स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। १८३३ में बवेरिया (Bavaria) के राजकुमार ओटो (Prince Otto) ने नवीन ग्रीक राज्य का सम्राट बनना स्वीकार कर लिया।

एड्रियानोपिल की सन्धि

प्रारम्भ में सर्विया (Serbia) और ग्रीस (Greece) को तुर्क साम्राज्य से मुक्ति मिली, इसके बाद अन्य ईसाई राज्यों को भी बलकान प्रदेश में तुर्क साम्राज्य से मुक्ति मिली। इस घटना ने सारे यूरोप में राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को जन्म दिया और इसी घटना के कारण सारे यूरोप में ऐसी राजनीतिक पेचीदगियाँ उत्पन्न हुईं जिन्होंने अभी तक यूरोप का पीछा नहीं छोड़ा है।

बेल्जियम १६वीं शताब्दी से बराबर एक अधीन देश के रूप में चला आ रहा था। बेल्जियम प्रारम्भ में स्पेन (Spain) के अधीन रहा, उसके बाद वह ऑस्ट्रिया के अधीन रहा; उसके बाद फ्रांस का उसके ऊपर अधिकार हो गया और बाद में डच लोगों का बेल्जियम पर अधिकार हुआ किन्तु १८३० में बेल्जियम में विद्रोह हुआ, तभी से उसकी मुक्ति की कहानी प्रारम्भ होती है।

बेल्जियम

अठारहवीं शताब्दी में ऑस्ट्रिया के साम्राज्य का एक भाग नीदरलैंड्स (Netherlands) भी था। यही बेल्जियम का नाम था। १८१५ में बेल्जियम और हॉलैंड को मिलाकर नीदरलैंड्स के राज्य की स्थापना की गई। इसका कारण यह था कि फ्रांस के विरुद्ध उत्तर-पूर्व में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना अभीष्ट था। वियना की सन्धि के निर्माता प्रसन्न थे कि उन्होंने श्रेष्ठ राजनीतिक व्यवस्था कर दी है, किन्तु दुर्भाग्यवश वे यह न देख सके कि हालैंड (Holland) और बेल्जियम के निवासियों के बीच परम्पराओं और प्रकृति की गहरी खाई थी। इसी प्रकार नॉर्वे और स्वीडन का मिलन भी दुर्भाग्यपूर्ण रहा था। वियना की सन्धि के निर्माताओं ने यह भी नहीं सोचा कि हॉलैंड तो सदैव से स्वतन्त्र देश रहा है किन्तु बेल्जियम तीन सौ वर्षों से भी लम्बे काल से अधीन देश रहा है, अतः स्वभावतः दोनों देशों के नागरिकों की मनः स्थितियों में आकाश-पाताल का अन्तर था। बेल्जियम के लोग इस यूनियन से प्रसन्न नहीं थे। बेल्जियम के लोग समझते थे कि उसको हॉलैंड (Holland) के उपनिवेशों और व्यापारिक हानि की कीमत से बहुत अधिक क्षति-पूर्ति करनी पड़ रही है। जब दोनों देशों की सरकार बनी और राजा डच या हॉलैंड निवासी बना और जब बेल्जियम में भी डच अधिकारी भरे गये तो बेल्जियम के लोग सोचने लगे कि सारा लाभ प्रोटेस्टेण्ट और व्यापारी देश हॉलैंड को ही पहुँच रहा है। किन्तु बेल्जियम (Belgium) जो कैथोलिक, कृषि प्रधान और औद्योगिक देश था, सब प्रकार घाटे में है। बेल्जियम ने विरोध किया। इस विरोध का आधार राष्ट्रवाद की भावना भी थी और दोनों देशों में मधुर सम्बन्ध बनाये रखने की कामना भी थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विरोध द्वारा चाहा गया था कि डच भाषा के स्थान पर दोनों देशों की मान्य भाषा फ्रेंच कर दी जाय। बेल्जियम वासियों को यह अखरता था कि जहाँ बेल्जियम की जनसंख्या ३५ लाख थी वहाँ हॉलैंडवासियों की जनसंख्या केवल २० लाख थी। किन्तु दोनों देशों की सम्मिलित संसद् में दोनों देशों को बराबर प्रतिनिधित्व दिया गया था और बेल्जियम की अधिक जनसंख्या को कोई महत्त्व नहीं दिया गया था। बेल्जियम रोमन कैथोलिक धर्मप्रधान देश था अतः उसके पादरी लोग इस घोषणा से चिढ़ते थे कि सभी को पूजा सम्बन्धी स्वतन्त्रता है। वे लोग यह भी शिकायत करते थे कि संयुक्त सरकार प्रोटेस्टेण्टों (Protestants) के साथ रियायत करती है। इसके अतिरिक्त राज्य के उदार तत्त्व समझते थे कि राजा के हाथों में अत्यधिक शक्ति है। बेल्जियम के लोग यह नजरअन्दाज कर गए कि हॉलैंड के सम्मिलन से बेल्जियम के उद्योग-व्यापार खूब फले-फूले और विदेशी निर्यात काफी बढ़ गया, विशेषतः इस कारण भी कि हॉलैंड के उपनिवेश अब बेल्जियम का माल विशेष रूप से खरीदने लगे। उन लोगों ने इस तथ्य को भी सामने न रखा कि हालैंड के कुशल कारीगरों और शिल्पियों की सहायता से ही बेल्जियम की खानों की अपार उन्नति हुई है, लोहे और इस्पात के उत्पादन में वृद्धि हुई है, सूती और ऊनी वस्त्र व्यवसाय की भी उन्नति हुई है और इस प्रकार बेल्जियम के निर्यात व्यापार में पर्याप्त वृद्धि और उन्नति हुई है। इन्हीं दिनों सम्मिलित उदारवादी कैथोलिक तत्त्वों ने विद्रोही आन्दोलन छेड़ दिया जिसका ध्येय यह था कि बेल्जियम में स्वतन्त्र सरकार की स्थापना हो। यही नहीं, यह भी चाहा गया कि बेल्जियम का सदा के लिए हॉलैंड से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाय। १८३० की पैरिस की क्रांति ने इस दिशा में उत्तेजना दी।

२५ अगस्त को राजा के राज्याभिषेक की वर्षगाँठ थी। उसी दिन ब्रुसेल्स (Brussels) में लोगों की एक उत्तेजित भीड़ ला मेट (La Muette) नामक एक क्रांतिकारी नाटक देखकर जब बाहर निकली तो वह काबू से बाहर हो गई और उसने सरकारी इमारतों को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। इसकी देखादेखी बेल्जियम के अन्य नगरों में भी उपद्रव हुए। डच सरकार ने धीरे-धीरे और मामूली कार्यवाही की जिससे विद्रोह का नेतृत्व अतिवादी क्रांतिकारियों के हाथों में पड़ गया। अक्टूबर के प्रारम्भ में ब्रुसेल्स (Brussels) में एक अस्थायी संसद् आहूत की गई जिसने घोषणा कर दी कि बेल्जियम स्वतन्त्र है। किन्तु शीघ्र ही स्थिति पेचीदा होती चली गई और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उलझनें सामने आने लगीं। कारण यह था कि फ्रांस का नया राजा लुई फिलिप (Louis-Philippe) चाहता था कि बेल्जियम (Belgium) के विद्रोह से फ्रांस को लाभ हो। किन्तु पामर्स्टन दृढ़ संकल्प किए हुए था कि फ्रांस को बेल्जियम के विद्रोह से कोई लाभ न हो। उसने कहा था, "बेल्जियम से न तो फ्रांस को गोभी के खेत जायेंगे और न अंगूरों की बेलें।" पामर्स्टन (Palmerston) की कूटनीति इतनी सफल रही कि बेल्जियम की स्वतन्त्रता भी मान ली गई और युद्ध करने की आवश्यकता भी न पड़ी। सेक्स-कोबर्ग (Saxe-Coburg) का लियोपोल्ड (Leopold), जो रानी विक्टोरिया का चाचा था, बेल्जियम के राजसिंहासन पर बैठा और १८३९ में एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि पर यूरोप के नरेशों ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ताक्षर किये, जिसके द्वारा सभी देशों ने मान लिया कि बेल्जियम को तटस्थ राष्ट्र स्वीकार किया जाता है। यही वह 'मशहूर कागज का रद्दी टुकड़ा' था जिसकी अवहेलना करने पर १९१४ में इंग्लैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी।

स्विट्ज़रलैंड (Switzerland) में अन्य प्रकार का संघर्ष था। स्विस-परिसंघ (Swiss Confederation) भी ऑस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के समान ही एक जाति का समाज नहीं था। स्विस परिसंघ में कई छोटे-छोटे राज्य या कैण्टन (Cantons) थे जिनमें विभिन्न जाति, धर्म और भाषा के लोग रहते थे तथा प्रत्येक कैण्टन की भिन्न शासन-प्रणाली थी और इस प्रकार सब कैण्टन एक ढीले संघीय बंधन में बँधे हुए थे। फ्रेंच राज्य क्रांति के झोंके में १७९८ में अल्पजीवी हैलवेटिक गणराज्य (Helvetic Republic) की स्थापना हुई थी, और मुख्यतः फ्रेंच सरकार के निर्देशन में हैलवेटिक गणराज्य ने स्विट्ज़रलैंड को क्षणिक किन्तु उत्तेजनापूर्ण राजनीतिक एकता प्रदान की। नेपोलियन के ऐक्ट ऑफ मीडियेशन (Act of Mediation) द्वारा स्विट्ज़रलैंड में संघीय संविधान चालू किया गया जो स्विट्ज़रलैंड की परम्पराओं के विशेष अनुकूल था। १८१५ में पुनः उसी पुराने ढीले-ढाले परिसंघ की स्थापना कर दी गई जो क्रांति से पूर्व का था। इसको भी जर्मन परिसंघ के ही समान यूरोप की शक्तियों के संरक्षण में रख दिया गया। किन्तु पिछले बीस वर्षों की व्यवस्था से कुछ निश्चित लाभ हुए। अनेक राजनीतिक असंगतियाँ दूर कर दी गईं; कुछ अधीन भूभाग स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिए गए और उस काल का शासन-तन्त्र इतना सफल रहा और उस काल का संघ ऐसा आदर्श संघ रहा कि उसकी बहुत दिनों तक मधुर स्मृतियाँ बनी रहीं। वियना की सभा (Congress of Vienna) के बाद के तीस वर्षों तक के स्विट्ज़रलैंड और जर्मनी के इतिहासों में एक समानता है कि दोनों देशों में उस काल में दो प्रकार के आन्दोलन मुख्य रूप से चले—एक आन्दोलन तो अवयवी एकक राज्यों में प्रजातन्त्रात्मक और राजनीतिक सुधारों के लिए था और दूसरा आन्दोलन इसलिए था कि केन्द्रीय संविधान में इस प्रकार सुधार हो जाय जिससे अवयवी राज्यों के आपसी सम्बन्ध सुधर जाएँ और उनमें एकता आ जाय। स्विट्ज़रलैंड के कैथोलिक कैण्टनों में धार्मिक और जेस्विट (Jesuit) प्रतिक्रियाओं का प्राबल्य था। इस कारण इस देश की राजनीतिक अवस्था में सुधार नहीं हो पाता था। १८४७ में कैथोलिक तत्त्वों और उनके विरोधी उदारवादियों में, खुल्लमखुल्ला संघर्ष हो गया; इसी संघर्ष को सोंदरबन्द का युद्ध (Sonderbund war) कहते हैं। सोंदरबन्द एक ऐसा संघ था जिसे सात कैथोलिक मतावलम्बी कैण्टनों ने मिलकर बनाया था। सोंदरबन्द में सम्मिलित सातों प्रान्तों या कैण्टनों ने प्रतिज्ञा की थी कि वे ऐसे प्रत्येक सुधार का सम्मिलित विरोध करेंगे जो कैथोलिक धर्म विरोधी होगा अथवा जो कैंटनों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करेगा। कई स्थितियों में सोंदरबन्द का स्विस गृह-युद्ध उसी प्रकार का था जिस प्रकार का गृह-युद्ध केवल चौदह वर्षों बाद अमेरिका में हुआ।

स्विट्ज़रलैंड

सोंदरबन्द का युद्ध (१८४७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैथोलिक कैंटनों के लोगों का कहना था और यही अमेरिका की दक्षिणी रियासतों या राज्यों का भी कहना था कि उनको राज्यों के अधिकारों का पूरा हक है, और एक प्रकार से दोनों गृह-युद्ध केन्द्राभिग (Centripetal) शक्तियों और केन्द्रापग (Centrifugal) तत्त्वों के बीच हुए थे। संघवाद सदैव केन्द्राभिग और केन्द्रापग शक्तियों के बीच सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

एकता की शक्तियों की विजय

किन्तु सोंदरबन्द लीग पराजित हुई और विघटित हो गई। जेस्विट लोग देश से बहिष्कृत कर दिये गए और १८४८ में जिस समय यूरोप की शक्तियाँ अपने-अपने देशों में विद्रोह के दमन में तल्लीन थीं, उस समय स्विट्जरलैंड में संघीय शासन के स्वरूप का पुनर्गठन हुआ।

संयुक्त राज्य अमेरिका के समान ही स्विट्ज़रलण्ड भी विशेष रूप ले संघीय शासन-व्यवस्था के अनुकूल है। स्विस कैण्टनों में कोई कैण्टन इतना प्रमुख न था जितने कि जर्मन परिसंघ में ऑस्ट्रिया और प्रशा थे अथवा जितना प्रमुख इटली के राज्यों में पीडमौंट (Piedmont) था। केवल कोई प्रमुख कैण्टन ही अन्य अन्यमनस्क कैण्टनों को काबू में कर सकता था। स्विट्ज़रलैण्ड में ऐसी समस्या कभी नहीं आई कि कुछ स्वतन्त्र राज्यों या कैण्टनों के विरुद्ध कोई एक शक्तिशाली राज्य मुकाबले पर डट गया हो। स्विट्जरलैण्ड की समस्या यह थी कि एक ओर कुछ स्वतन्त्र कैण्टन थे और उनके विरुद्ध संघीय राज्य था। इसलिए जब १८४८ में पृथक्तावादी तत्त्वों की पराजय हो गयी तो संघवादी तत्त्वों की विजय हुई। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि कुछ विशेष स्थितियों में संघवाद का परीक्षण न्यायोचित और लाभकारी है।

जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली में क्रांति-आंदोलनों की मुख्य घटनाएँ

(Chief Events of the Revolutionary Movements in Germany, Austria and Italy)

१८४६—फरवरी मार्च	क्रेकाउ का विद्रोह और उसकी पराजय।
जून	पायस नवम का निर्वाचन।
१८४७—अप्रैल	प्रशा की लैंडटैग की बैठक।
जुलाई	ऑस्ट्रिया की सेना का फेरारा पर अधिकार।
सितम्बर	आस्ट्रिया का आर्थिक संकट।
नवम्बर	प्रेसबर्ग में हंगरी की संसद् की बैठक। कौसुथ द्वारा उसे क्रांतिकारी संघ बना देना।
नवम्बर-दिसम्बर	लंदन में कम्युनिस्ट कॉंग्रेस।
दिसम्बर	ऑस्ट्रिया की सेना द्वारा पार्मा पर अधिकार।
१८४८—जनवरी	पलेर्मो में सिसली का विद्रोह। नियापोलिटन संविधान की स्वीकृति। मार्क्स का कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो।
फरवरी	टस्कनी का संविधान। इटली के प्रदर्शन।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८४८—मार्च	हंगरी में क्रान्ति की उत्तेजना। पीडमौंट का संविधान।
५ से १०	बर्लिन के उपद्रव। हीडेलबर्ग में उदारवादी कांग्रेस की बैठक। अखिल जर्मन संसद को आहूत करने का निश्चय।
१३	वियाना में क्रांति। मेटरनिक की पदच्युति। उसका निर्वासन।
१५	बुडापेस्ट की क्रांति। बर्लिन में लड़ाई।
१८	श्लेस्विग-होल्स्टीन द्वारा डेन्मार्क के आधिपत्य से स्वतन्त्रता की घोषणा। मिलान में क्रांति।
२०	बवेरिया नरेश का सिंहासन-त्याग।
२२	वेनेशिया का गणराज्य
२३	सार्डीनिया के चार्ल्स एलबर्ट द्वारा ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा।
३१	फ्रैंकफर्ट में वोर संसद् की बैठक।
अप्रैल—११	आस्ट्रियन साम्राज्य द्वारा हंगरी के संविधान पर स्वीकृति।
२५	गैलिशिया में सामंती अधिकारों का दमन। वियना में क्रांति। सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए प्रस्तावित संविधान का प्रकाशन।
२५—२६	क्रेकाउ में विद्रोह।
मई—२	वियना में प्रदर्शन। पोजेन में पोलैंड का विद्रोह।
६	पोजेन में पोलैण्ड के विद्रोह का दमन।
१५	वियना में नए उपद्रव। सार्वभौम मताधिकार की स्वीकृति।
१८	सम्राट् फर्डिनेंड का इन्सब्रुक को पलायन। फ्रैंकफर्ट संसद् का पहला अधिवेशन।
२६	वियना में बैरकबंदी। सार्वजनिक सुरक्षा समिति।
जून—२	प्राग में सर्व-स्लाव कांग्रेस।
११-१२	इटली में रैडेट्ज्की का प्रत्याक्रमण।
१६	प्राग विद्रोहियों का विंडिस्ग्राट्ज के सामने आत्म-समर्पण।
जुलाई—४	हंगरी की नई सभा की बैठक।
५	वियना में रीश्टाग की बैठक।
२३	रैडेट्ज्की द्वारा कास्टोज़ा में पीडमांटियों की पराजय।
अगस्त—५	ऑस्ट्रिया का मिलान पर अधिकार।
६	चार्ल्स एल्बर्ट का ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध-विराम।
१२	राजदरबार का वियना वापस आना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८४८—अगस्त २१	वियना में सर्वहारा वर्ग का प्रदर्शन।
२६	डेन्मार्क और प्रशा द्वारा माल्मो में युद्ध-विराम।
सितम्बर—४	सम्राट् द्वारा जेलाकिक को क्रोएशिया का गवर्नर नियुक्त करना। सम्राट द्वारा सामंती अधिकारों के उन्मूलन की स्वीकृति।
११	जेलाकिक का आस्ट्रिया-क्रोट की सेना के प्रधान के रूप में हंगरी में प्रवेश।
१२	फ्रेंकफर्ट में उग्रवादियों का विद्रोह।
अक्टूबर—३	सम्राट द्वारा हंगरी की असेम्बली का विघटन।
६	वियना में और क्रांति। राजदरबार का ओल्मुट्ज को पलायन। जेलाकिक का हंगेरियनों के सामने से भाग जाना।
२१	डिस्प्राटज़ का वियना घेर लेना।
३०	श्वेचाट में हंगेरियनों की पराजय।
३१	विंडिस्प्राट्ज के आगे वियना का पतन।
नवम्बर—१	प्रशा में ब्रैंडेनबर्ग-मैंट्यूफेल अल्पमत। प्रशा की सेना का बर्लिन में प्रवेश। प्रतिक्रान्ति।
२१	ऑस्ट्रिया में श्वार्जेनबर्ग का मन्त्रिमंडल।
२२	क्रीमसिएर (मोरेविया) में ऑस्ट्रिया की रीश्टैग की बैठक।
२४	पोप का रोम को पलायन।
दिसम्बर—२	सम्राट् फर्डिनेण्ड का अपने भतीजे फ्रांज जोजेफ के पक्ष में राजत्याग।
५	प्रशा के सम्राट द्वारा लैण्टाग का विघटन। चार्टर की स्वीकृति।
१८४९—जनवरी ५	साम्राज्य की सेनाओं का बुडापेस्ट में प्रवेश।
फरवरी	हंगरी का सैनिक प्रतिरोध।
मार्च २३	रैडेट्ज्की द्वारा नोवारा में पीडमांटियों की पराजय। चार्ल्स एलबर्ट का सिंहासन-त्याग।
अप्रैल—१४	हंगरी की सैनिक विजयें। स्वतन्त्रता की घोषणा।
२८	प्रशा के फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ द्वारा राजमुकुट की स्वीकृति।
मई—१	रूस की सेनाओं का क्रेकाउ में प्रवेश।
२१	वार्सा का सम्मेलन।
२६	प्रशा, सेक्सनी और हनोवर में संधि।
जुलाई—१	रोमन गणराज्य का पतन।
२८	ऑस्ट्रिया द्वारा टस्कनी पर अधिकार।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८४९—अगस्त १३	विलागोज में रूसियों के आगे हंगेरियनों की पराजय।
१३	वेनेशिया गणराज्य का पतन।
अक्टूबर—६-१३	हंगरी क्रांति का अन्त।
१८५०—जनवरी २१	प्रशा में संविधान की स्वीकृति।
मार्च २१	एरफर्ट संसद् की बैठक।
नवम्बर २९	ओल्मुट्ज में ऑस्ट्रिया-प्रशा की संधि।
१८५१—दिसम्बर ३१	ऑस्ट्रिया के संविधान का दमन।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ६

(CHAPTER VI)

यूरोप—१८५० से १८७१ तक

(Europe—From 1850 To 1871)

क्रीमिया का युद्ध (१८५३—५६)

(The Crimean War—1853—56)

लगभग एक पीढ़ी तक यूरोप में शान्ति रही। इन दिनों नेपोलियन (Napoleon) का नाम धूमिल पड़ गया था, किन्तु फ्रांस में नेपोलियन के नाम पर अब भी व्यापक राजनीतिक असंतोष था। पुष्ट नेतृत्व के अभाव में लोग आक्रान्त थे और सारे देश में क्रान्ति की-सी अवस्था थी यद्यपि युद्ध के लिए कोई तैयार न था। १८५१ में लन्दन (London) में इंग्लैण्ड के राजकुमार एलबर्ट (Albert) के निर्देशन में प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। यह प्रदर्शनी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं व्यापारिक समृद्धि का चिन्ह अवश्य थी, और ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो संसार में शान्ति स्थापित होने जा रही है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अभिवृद्धि होने वाली है। किन्तु इसके विपरीत इस प्रदर्शनी के साथ-साथ उन बीस संकटकालीन वर्षों का समय प्रारम्भ हुआ जिनके आरम्भ में वाटरलू (Waterloo) का युद्ध हुआ और अन्त में सीराजीवो (Serajevo) में कुमार आर्चड्यूक फ्रांज फर्डिनेण्ड (Archduke Franz Ferdinand) की हत्या हुई।

सफलता और निर्माण का कार्य

१८५० से लेकर १८७० तक के दो दशक उस शताब्दी के प्रमुख दशक थे जो १८१५ से प्रारम्भ हुई और १९१४ में समाप्त हुई। इस शताब्दी में जर्मन साम्राज्य का निर्माण हुआ, इटालवी राज्य (The Italian Kingdom) की नींव पुष्ट हुई और ऑस्ट्रिया हंगरी (Austria-Hungary) राज्यों के दूसरे राजतन्त्र का श्रीगणेश हुआ। इसी काल में एक अन्य नेपोलियन (Napoleon) का उदय और अस्त हुआ। इसी काल में रूस (Russia) एशिया (Asia) की ओर अपने पैर फैलाने लगा। इसी काल में जापान ने आशातीत उन्नति की तथा इसी काल में अमेरिका (America) का गृह-युद्ध हुआ और कनाडा (Canada) के संघ की स्थापना हुई। जिन दशकों में ये विकास हुए, उन्हीं दिनों में सारे संसार में भी नयी-नयी घटनाएँ घटित हुईं। शक्ति-संतुलन बदल गया; मैटरनिक (Metternich) के काल के स्थान पर अब बिस्मार्क (Bismarck) का काल आ गया। १८१५ के यूरोप और १८५० के यूरोप में कोई विशेष अन्तर न था, किन्तु १९१४ का यूरोप बिल्कुल भिन्न था और बल्कान (Balkans) प्रदेशों को छोड़ते हुए, १९१४ का यूरोप प्रायः १८७१ के यूरोप के समान था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रीमिया युद्ध (Crimean War) के कारण उन राज्यों में गड़बड़ी पड़ने लगी जिनकी स्थापना वियना (Vienna) में हुई थी। देखने में ऐसा प्रतीत होता था, मानो यह एक महत्त्वहीन संघर्ष था जिसमें एक ओर रूस (Russia) था तथा दूसरी ओर इंग्लैंड, फ्रांस और तुर्की थे। अनेक इतिहासकारों ने लिखा है कि यह "पूर्ण रूप से व्यर्थ की आधुनिक लड़ाई थी[1] जिसका सम्बन्ध कुछ धार्मिक संन्यासियों को कतिपय धार्मिक कन्दराओं की तालियाँ सौंप देने से था।"[2] किन्तु इसके विपरीत लार्ड क्रोमर (Lord Cromer) ने लिखा है कि "यह क्रीमिया युद्ध (Crimean War) का ही फल था और लार्ड बीकन्सफील्ड (Lord Beaconsfield) की सरकार की नीति का परिणाम था जो बल्कान राज्यों (Balkan States) की स्वतन्त्रता बनी रही; अन्यथा कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर रूस (Russia) का आधिपत्य हो गया होता।"

क्रीमिया युद्ध का राजनीतिक महत्त्व कुछ भी रहा हो, यह पूर्वी प्रश्न (Eastern Question) का भाग अवश्य था और १९वीं शताब्दी की आने वाली घटनाओं पर क्रीमिया युद्ध का निश्चित प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा।

यद्यपि पूर्वी प्रश्न के कई पहलू थे, किन्तु किसी-न-किसी पहलू को लेकर पूर्वी प्रश्न ने पश्चिमी यूरोप के इतिहास पर प्रभाव डाला है। लार्ड मार्ले (Lord Morley) के मतानुसार १९वीं शताब्दी के अन्त तक पूर्वी प्रश्न ने कई प्रकार के परस्पर-विरोधी हितों, प्रतिद्वन्द्वी जातियों और विरोधी धर्मों से सम्बन्धित प्रश्नों को उभार दिया। शताब्दी के प्रारम्भ में यह प्रश्न उतना उलझा हुआ नहीं था। निम्न तथ्यों के आलोक में यह भली भाँति समझ में आ जायगा।

पूर्वी प्रश्न

यूरोप के दक्षिण-पूर्व में एक ऐसी जाति निवास करती थी जो यूरोप की जातियों में हिल-मिल नहीं सकी। यह एक एशियाई राष्ट्र था, जिसका साम्राज्य अफ्रीका के उत्तरी तट तक फैला हुआ था तथा एक ओर बॉस्पोरस (Bosporus) के पार तक विस्तृत था। इस राष्ट्र ने चार शताब्दियों तक ईसाई राज्यों के शान्त एवं स्थिर किन्तु अभी जीवित अवशेषों को पददलित कर रखा था; और इस विदेशी सत्ता ने सारे दक्षिण-पूर्वी यूरोप में तुर्की सैनिक साम्राज्य स्थापित कर रखा था। यद्यपि समय-समय पर यूरोपीय राष्ट्रों ने अपनी-अपनी सुरक्षा और शान्ति के लिए ईसाई राज्यों के शत्रु अर्थात् तुर्की के साथ शान्ति सन्धियाँ की थीं; किन्तु यूरोपीय राज्यों के तुर्की के साथ जातीयता, धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज और राजनीतिक आकांक्षाओं के सम्बन्ध में इतने गहरे मतभेद थे कि तुर्की और ईसाई राज्यों में स्थायी मेल-जोल नहीं हो सका। किन्तु जहाँ यूरोप के समक्ष १५वीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक मुख्य समस्या यह थी कि तुर्की लगातार अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था, अब

तुर्की

पतनोन्मुखी सत्ता

1. Sir Robert Morier.
2. Thiers.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ईसाई देश इस कारण चिन्तित थे कि तुर्की पतनोन्मुख हो रहा था; अतः आधुनिक काल के पूर्वी प्रश्न का महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि तुर्की शीघ्रता के साथ पतनोन्मुख हो रहा था। अठारहवीं शताब्दी में यह स्पष्ट था; किन्तु १९वीं शताब्दी में यह अवश्यम्भावी हो गया था। १८६३ में पोलैंड (Poland) के राजा जॉन सोबिस्की (John Sobieski) ने तुर्की को दोबारा हराया था और तब से तुर्की को कोई स्थायी सैनिक विजय नहीं मिली। किन्तु तुर्क साम्राज्य अपनी लड़ाकू शक्ति के कारण बना रहा। तुर्की अपने जीते हुए दूरस्थ प्रदेशों में राजनीतिक स्थिरता नहीं ला सका। सारे तुर्क साम्राज्य में भ्रष्टाचार, बुरे प्रशासन और अयोग्यता का ताण्डव नृत्य हो रहा था। इस कारण उसकी सैनिक शक्ति जवाब दे गई और धीरे-धीरे साम्राज्य का पतन होने लगा।

किन्तु यूरोप में मृतप्राय राज्यों की कमी नहीं थी। तुर्की से पहले पोलैण्ड भी मृतप्राय राज्य था। उससे पहले स्पेन की भी यही दशा थी। हम देख चुके हैं कि पोलैंड और स्पेन (Spain) के मृत शरीरों पर किस प्रकार शक्तिशाली राष्ट्र गिद्धों के समान टूट पड़े थे; और धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों ने उक्त दोनों देशों के हाड़-मांस को आपस में बाँट लिया। अठारहवीं शताब्दी में स्पेन और पोलैण्ड का बँटवारा हुआ; यह प्रायः निश्चित था कि तुर्की के यूरोपीय प्रदेशों का शक्तिशाली राष्ट्रों में विभाजन हो जायगा। स्पेन और पोलैण्ड के विभाजन के पश्चात् अब तीसरा विभाजन तुर्की का होने को था। तुर्की का विभाजन इसलिए नहीं हो रहा था कि यूनानी राष्ट्रीयता के प्रति सहानुभूति थी अथवा सर्विया (Serbia) की कटु यादगारों पर मरहम लगाया जा रहा था, क्योंकि अठारहवीं शताब्दी में गुलाम राष्ट्रीयताओं के राष्ट्रीय अधिकारों या राजनीतिक आकांक्षाओं के प्रति यूरोपीय देशों में कोई सहानुभूति नहीं थी और विभाजन सम्बन्धी योजनाएँ बनाना अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय राजनीतिज्ञों का आम व्यसन था। फिर भी १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक काले सागर (Black Sea) के किनारे को छोड़ कर और कहीं भी किसी तुर्की भूभाग पर कोई प्रभावकारी आक्रमण एक शताब्दी तक नहीं हुआ था; और अब भी तुर्की के आधिपत्य में डैन्यूब (Danube) नदी तक का सारा प्रदेश था और नीस्टर (Dniester) के पार तक के प्रदेश तुर्की की छत्रछाया में चल रहे थे।

तुर्की के विभाजन में विलम्ब

सैनिक और भौगोलिक कारणों से यूरोपीय तुर्की साम्राज्य के विघटन में विलम्ब हुआ। प्रथमतः, तुर्की साम्राज्य की सैनिक शक्ति का अठारहवीं शताब्दी में उस सीमा तक कमी ह्रास नहीं हुआ जिस सीमा तक कि पोलैण्ड (Poland) और स्पेन (Spain) की सैनिक शक्ति का ह्रास हो गया था। तुर्की में अब भी इतने दम-खम थे कि वह रूस (Russia) और ऑस्ट्रिया के विरुद्ध खड़ा रह सका, यहाँ तक कि १७८८ में तुर्की की सेनाओं ने हैब्सबर्ग (Habsburg) की सेनाओं को करारी हार दी।

सैनिक और भौगोलिक कारणों से तुर्की के विभाजन में विलम्ब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयतः, तुर्की (Turkey) भी पोलैण्ड (Poland) के समान, यद्यपि कुछ कम सीमा तक अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण उस राजनीतिक गुरुत्वाकर्षण केन्द्र से दूर था जो पर्याप्त पश्चिम की ओर था। यदि तुर्की भी समृद्ध इटालियन प्रदेशों के स्वामी स्पेन (Spain) की तरह ही पश्चिमी देशों के निकट होता, तो सम्भवतः तुर्की की राजनीतिक मृत्यु बहुत पहले ही हो गई होती। तथ्य यह है कि यूरोप की बड़ी शक्तियों की रुचि तुर्की की ओर नहीं थी। पश्चिमी राष्ट्रों में केवल फ्रांस ने ही तुर्की साम्राज्य के साथ व्यापारिक विकास की सम्भावनाओं को महत्त्व दिया था। यहाँ तक कि ऑस्ट्रिया-हंगरी (Austria-Hungary) जो एक ऐसा यूरोपीय राष्ट्र था जिसकी सुरक्षा के लिए तुर्की एक वास्तविक खतरा बना हुआ था, अपना रुख बराबर पश्चिम की ओर किए रहा; और केवल जब तुर्की की ओर से उसे आक्रमण का भय न रहा, उसने दक्षिण-पूर्वी देशों की ओर ध्यान दिया। वास्तव में ऑस्ट्रिया-हंगरी की रुचि पश्चिमी यूरोप की समस्याओं की ओर अधिक थी और वह देश फ्रांस और प्रशा (Prussia) की प्रतिद्वन्द्विता में उलझा रहा ताकि निचले प्रदेशों (Netherlands) की रक्षा हो सके और जर्मनी (Germany) में उसका प्रभाव लगातार बढ़ता रहे। ऑस्ट्रिया-हंगरी चाहता था कि बवेरिया (Bavaria) पर अधिकार कर ले, किन्तु उसने बल्कान प्रदेशों (Balkans) की ओर ध्यान ही नहीं दिया; और १८वीं शताब्दी के अन्त में ऑस्ट्रिया के जोसेफ़ द्वितीय (Joseph II) ने ज़ारीना कैथेराइन द्वितीय (Tsarina Catherine II) की तुर्की प्रश्नों पर इस कारण हिमायत की कि हैब्सबर्ग परिवार (Habsburgs) के पश्चिमी हित सुरक्षित रहें, यद्यपि वह जानता था कि रूस (Russia) उसका प्रतिद्वन्द्वी है।

तुर्की और रूस

किन्तु अठारहवीं शताब्दी में रूस (Russia) एक बड़ी शक्ति के रूप में उदित हुआ। इस कारण तुर्की की अवनति का मार्ग प्रशस्त हुआ। कारण यह था कि रूस भी शक्ति बढ़ाना चाहता था और उसकी प्रतिद्वन्द्विता भी पश्चिमी राष्ट्रों से थी; इसलिए अपने इतिहास में प्रथम बार तुर्की, पोलैंड और स्वीडन (Sweden) के समान एक शक्तिशाली यूरोपीय राज्य की महत्त्वाकांक्षा के मार्ग में रोड़ा स्वरूप दिखाई पड़ने लगा। रूस के शासकों के हृदय में पश्चिमी यूरोप में प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने की भारी महत्त्वाकांक्षाएँ थीं; किन्तु स्वभावतः स्वीडन (Sweden), पोलैण्ड (Poland) और तुर्की (Turkey) तीनों ही देश रूस (Russia) की पश्चिमी महत्त्वाकांक्षाओं के स्वाभाविक शत्रु थे; अतः १८वीं शताब्दी में रूस की बराबर इन तीनों देशों से अनबन रही। स्वीडन (Sweden) की इच्छा के विरुद्ध रूस का बाल्टिक सागर (Baltic) में प्रवेश हो गया और १८१५ में रूस ने फ़िनलैंड (Finland) पर अधिकार कर लिया, ताकि वह बाल्टिक सागर की रक्षा कर सके। १७७२, १७९३ और १७९५ में अशक्त पोलैंड (Poland) का विभाजन किया गया। इन विभाजनों के फलस्वरूप पोलैंड का कुछ भाग प्रशा (Prussia) को मिला, कुछ भाग ऑस्ट्रिया को मिला और कुछ भाग रूस (Russia) को मिला। किन्तु तुर्की के ऊपर विशेष रूप से रूस (Russia)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आँखें लगी हुई थीं। रूस चाहता था कि काला सागर (Black Sea) और जल ग्रीवा (Straits) पर अधिकार हो जाय ताकि भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) का मार्ग इसके अधिकार में रहे। इसके साथ ही रूस का यह भी दावा था कि वही

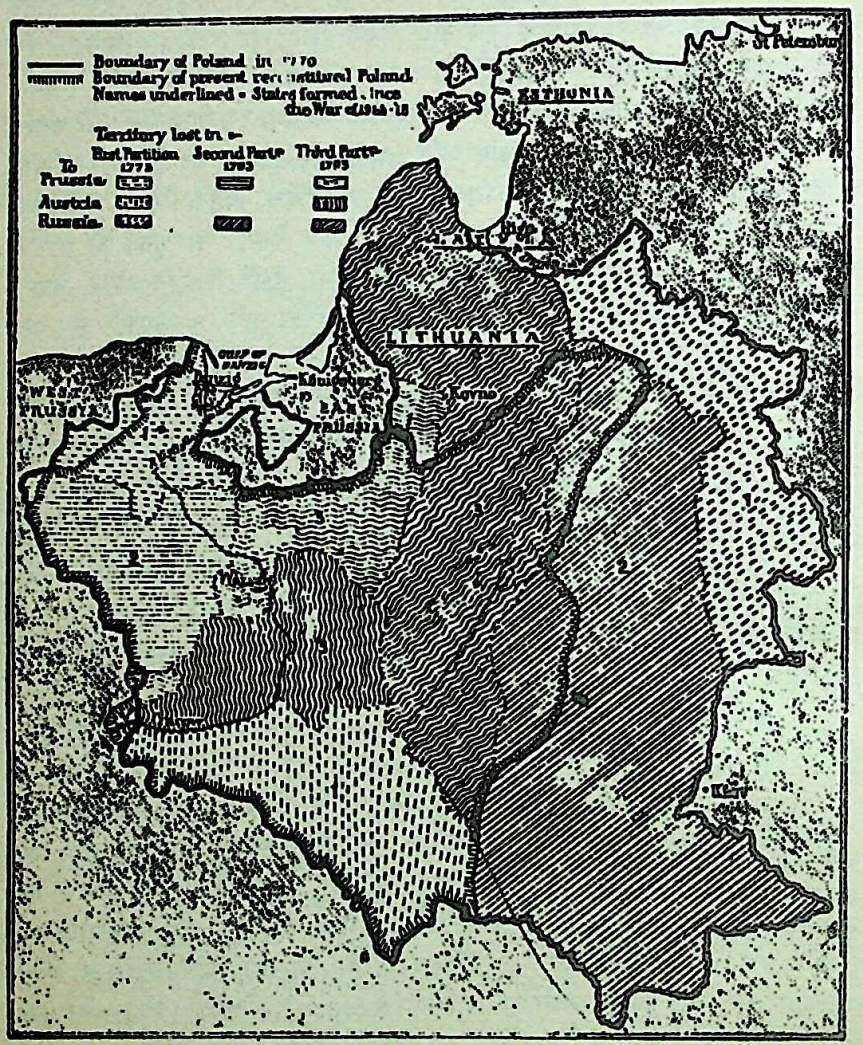

The Partitioning and Reconstitution of Poland.

उस तुर्की साम्राज्य (Byzantine Empire) का ऐसिहासिक उत्तराधिकारी है जो किसी समय रोम (Rome) के साथ-साथ सारे सभ्य संसार पर आधिपत्य रखता था। रूस का ज़ार (Tsar) ग्रीक चर्च का संरक्षक था और तुर्की के लगभग सारे ईसाई प्रजाजन ग्रीक चर्च के भक्त थे। ज़ार चाहता था कि सेंट सोफ़िया (St. Sophia) भी ग्रीक चर्च के अधिकार में आ जाय और गौरवहत राजधानी को पुनः गौरवान्वित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाय। वह यह भी चाहता था कि कुस्तुन्तुनिया की प्रतिष्ठा बढ़े किन्तु उसका रूसीकरण हो जाए और तुर्की शहंशाह, चर्च के संरक्षक तथा पूर्वी यूरोपीय देशों के नरेशगण ज़ार की अधीनता स्वीकार करें क्योंकि ज़ार ही उनका वास्तविक हितैषी है।

रूस की बल्कान प्रदेश में महत्त्वाकांक्षाएँ

पीटर महान् (Peter the Great) से लेकर १९१४ के विश्व-युद्ध तक रूस (Russia) लगातार यही चाहता था कि तुर्की के प्रदेशों को हड़प लिया जाय और इस प्रकार वह अपना प्रभावक्षेत्र विस्तृत करे और पूर्वी समस्या (Eastern Question) का मुख्य कारण यही था। किन्तु जिन उपायों द्वारा रूस तुर्की के प्रदेशों को छीनना चाहता था, वे अक्सर बदलते रहे। रूस कभी तो चाहता था कि तुर्की को निकाल दिया जाय, कभी चाहता था कि तुर्की के साम्राज्य का विघटन कर दिया जाय, और कभी यह भी चाहता था कि तुर्की को एक अशक्त और निर्बल शक्ति के रूप में बने रहने दिया जाय ताकि तुर्की पूर्णतया उसके आधिपत्य में रहे।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, विशेषकर कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) के राज्यकाल में रूस की महत्त्वाकांक्षाएँ पूर्ण होने लगीं। रूस की इन सफलताओं का आधार १७७४ की कुजुक-कैनार्डजी (Kujuk-Kainardji) की सन्धि में निहित था, जिसके द्वारा रूस-तुर्की की छः वर्ष पुरानी लड़ाई का अन्त हुआ था। ऐसा माना गया है कि १७७४ के बाद की सभी सन्धियाँ कुजुक-कैनार्डजी (Kujuk Kainardji) की सन्धि पर ही आधारित थीं। रूस को काले सागर के उत्तरी तट का अधिकार मिल गया और डॉन (Don) तथा नीपर (Dnieper) नदियों के मुहानों पर भी उसका नियन्त्रण स्थापित हो गया। यहाँ तक कि रूस ने तुर्की को बग (Bug) के उस पार धकेल दिया। जहाँ तक व्यापारिक अधिकारों का सम्बन्ध है, रूस को तुर्की की नदियों में, काले सागर में और डैन्यूब (Danube) नदी में व्यापारिक अधिकार प्राप्त हो गए। रूस के स्थायी राजनयिक सम्बन्ध तुर्की के साथ हो गए और कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) में रूस का स्थायी दूतावास स्थापित हो गया। यही नहीं, रूस को यह भी अधिकार प्राप्त हो गया कि वह जहाँ चाहे अपने वाणिज्य दूतावास स्थापित करे। धार्मिक क्षेत्र में भी रूस को यह अधिकार मिला कि वह तुर्की साम्राज्य में निवास करने वाले ग्रीक ईसाइयों का संरक्षक रहेगा; और तदनुसार ग्रीक चर्च (Public Church of Greek Ritual) की स्थापना तुर्की में की गई। वैलेशिया (Wallachia) और मॉल्डेविया (Moldavia) नामक छोटी रियासतें (Principalities), डैन्यूब (Danube) के उत्तर में स्थित थीं। इन रियासतों के प्रशासन में भी रूस को कुछ ऐसे अस्पष्ट से अधिकार प्राप्त हो गए, जिनके आधार पर वह तुर्की साम्राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था।

कुजुक-कैनार्डजी की सन्धि (१७७४)

इस प्रकार १७७४ की कुजुक-कैनार्डजी (Kujuk-Kainardji) की सन्धि द्वारा रूस को प्रादेशिक लाभ ही हुआ, धार्मिक और राजनीतिक नियन्त्रण का भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ हुआ और भूमध्यसागर की ओर उसका विस्तार भी हुआ। कुछ वर्षों के बाद कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) ने एक और चाल चली। १७८८ में उसने ऑस्ट्रिया से सन्धि कर ली और तब रूस और ऑस्ट्रिया ने मिलकर तुर्की के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। यह पहले ही बताया जा चुका है कि कैथेराइन ने पश्चिमी शक्तियों को क्रांति-ग्रस्त फ्रांस में फँसा दिया; और इस प्रकार तुर्की में उसे अपने मन की करने का अवसर मिल गया। वह चाहती थी कि तुर्की का विभाजन किया जाय जिसमें ऑस्ट्रिया को भी कुछ भाग मिले, किन्तु बाद की घटनाओं ने उसकी आशाओं पर तुषारपात कर दिया। १७९१ में ऑस्ट्रिया को तुर्की युद्ध से हटना पड़ा क्योंकि उसकी सैनिक पराजय हुई, उसके अपने राज्य-क्षेत्र में व्यापक असन्तोष व्याप्त हो गया तथा फ्रांस में नई घटनाएँ हुईं। प्रशा (Prussia), हालैण्ड (Holland) और ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain) में तिहरी सन्धि हो गई। अगले वर्ष ही रूस को मजबूरन जैसी (Jassy) में सन्धि करनी पड़ी क्योंकि उसकी स्वीडन (Sweden) के साथ लड़ाई छिड़ गई और पोलैण्ड (Poland) में षड्यन्त्र रचे जाने लगे; फिर भी कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) ने रूस के लिए क्रीमिया विजय किया तथा रूस की सीमाएँ नीस्टर (Dniester) तक विस्तृत हो गईं। कैथेराइन द्वितीय (Catherine II) ने कहा था; "जब मैं रूस में आई थी तो एक गरीब लड़की थी, किन्तु रूस ने मुझे अमीर बना दिया, किन्तु मैंने भी रूस का उपकार किया है और मेरे द्वारा रूस को एज़ोव (Azov), क्रीमिया और युक्रेन (Ukraine) प्राप्त हुए हैं।"

जैसी की सन्धि (१७९२)

अगले कुछ वर्षों में रूस मुख्य रूप से पोलैण्ड (Poland) के विघटन और फ्रांस के विरुद्ध द्वितीय और तृतीय गुटों (Coalitions) में व्यस्त रहा। १८०७ में रूस की नेपोलियन के साथ मैत्री हो गई। इस मैत्री ने रूस की महत्त्वाकांक्षाओं को जाग्रत कर दिया। अब एलैक्जैंडर (Alexander) तुर्कों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने पर कटिबद्ध हुआ क्योंकि उसे फ्रांस से इस दशा में सहायता की आशा थी। अतः तुर्की का विभाजन पुनः व्यावहारिक राजनीति का स्वरूप ग्रहण करने लगा। वास्तव में नेपोलियन नहीं चाहता था कि बल्कान (Balkans) प्रदेश में रूस का प्रभाव बढ़े, इसलिए एक बार पुनः मित्र राष्ट्र की खाई और कुछ अन्य यूरोपीय घटनाओं के कारण रूस की महत्त्वाकांक्षाएँ ठण्डी पड़ी रहीं। १८१२ में मॉस्को युद्ध (Moscow Campaign) के ठीक पहले एलैक्जैंडर (Alexander) ने तुर्की के साथ बुखारेस्ट (Bukarest) की सन्धि कर ली। इस सन्धि द्वारा रूस को बेसेरेबिया (Bessarabia) प्राप्त हुआ और इस प्रकार रूस का राज्य प्रथ (Pruth) नदी तक बढ़ गया।

बुखारेस्ट की संधि (१८१२)

धीरे-धीरे १८१५ तक रूस का राज्य तुर्की की अधीन रियासतों तक पहुँच गया था। १९वीं शताब्दी में कुछ नई घटनाएँ हुईं जिनके कारण रूस और तुर्की के सम्बन्ध जटिल हो गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन की प्रेरणा पर सर्वसाधारण का ध्यान पूर्व की ओर गया और अब यूरोप के लोग सोचने लगे कि उनका हित-साधन तभी होगा जब वे तुर्की साम्राज्य को ले लेंगे। १६वीं शताब्दी से निरन्तर फ्रांस की तुर्की के साथ मित्रता थी और दोनों देशों में पारस्परिक व्यापार भी चलता था। १७४० की सन्धि शर्तों में भी मित्रता पक्की हो गई थी। फ्रेंच विदेश मन्त्री विलेनेव (Villeneuve) ने तुर्की की महान् सेवा की थी क्योंकि उसी की सहायता से रूस और ऑस्ट्रिया को तुर्की के प्रति अपना रुख नरम करने पर मजबूर होना पड़ा था। इसके उपलक्ष्य में तुर्की ने फ्रांस को अपने अधिराज्यों (Ottoman Dominions) में व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान कीं; लैटिन संन्यासियों को पवित्र भूमि में विशेष अधिकार प्रदान कर दिए और सारे तुर्की साम्राज्य में रोमन कैथोलिक ईसाइयों को स्वतन्त्र घूमने की आज्ञा दी। १७४० की आत्मसमर्पण की सन्धि शर्तों के प्रसंग में १७७४ की कुजुक-कैनार्डजी (Kujuk-Kainardji) की सन्धि की शर्तों से तुलना की जाय और फिर क्रीमिया युद्ध (Crimean War) से पूर्व की शान्ति-सन्धि-वार्ता की परीक्षा की जाय तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि फ्रांस ने १७४० की आत्मसमर्पण की सन्धि शर्तों पर विशेष बल दिया था जबकि रूस ने १७७४ की कुजुक-कैनार्डजी की सन्धि पर।

१९वीं शताब्दी की कुछ नई घटनाएँ

अब नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रांस की पूर्वी नीति ने नया मोड़ लिया। नेपोलियन चाहता था कि तुर्की का विभाजन अवश्य हो। किन्तु उससे रूस (Russia) की बजाय फ्रांस को लाभ हो। इसी दिशा में लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से नेपोलियन ने आयोनियन द्वीप (Ionian Islands) पर अधिकार किया था। वह निश्चिततः साम्राज्यवादी विचार था और उन्नीसवीं शताब्दी का फ्रांस पुनः इस विचार की ओर आकृष्ट हो गया था।

नेपोलियन के साथ चलने वाले लम्बे युद्धों के बाद इंग्लैण्ड और ऑस्ट्रिया ने अनुभव किया कि रूस वास्तविक खतरा है और १८१५ में तो रूस यूरोपीय शक्ति संतुलन के लिए एक चुनौती थी। नेपोलियन ने कहा था, "५० वर्षों में सारा यूरोप या तो रूस के अधीन (Cossack) हो जाएगा या यूरोप के सारे देश गणराज्य घोषित हो जाएँगे।" यूरोप सम्भवतः इसके लिए तैयार था और वियना (Vienna) की प्रसभा के बाद ऐसा प्रतीत होता था मानो सारा यूरोप रूस के अधीन होने जा रहा है। मेटरनिक (Metternich) चाहता था कि चाहे हैब्सबर्ग परिवार के अधिराज्यों को और अधिक भूप्रदेश न मिलें, किन्तु उसके वर्तमान भूभाग अक्षुण्ण बने रहें, इसलिए उसने रूस के बल्कान प्रदेश में बढ़ते हुए प्रभाव-क्षेत्र को सीमित करने का प्रयत्न किया, और उसने यह नारा बुलन्द किया कि औरस और वैध-राज परिवार (Legitimate Dynasties) ही शासन करें तथा तुर्क साम्राज्य अक्षुण्ण बना रहे।

(१) यूरोपीय शक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन

१८१५ में ग्रेट ब्रिटेन ने आयोनियन द्वीपों का रक्षा-भार अपने ऊपर ले लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे यह निष्कर्ष निकलता था कि अब ब्रिटेन की अभिरुचि निकट पूर्व के मामलों में बढ़ रही थी; यद्यपि छोटे पिट (Younger Pitt) के जमाने में इंग्लैण्ड को यह भान हो चला था कि रूस के बढ़ते हुए प्रभाव-क्षेत्र के कारण उसके पूर्वी हित संकट में हैं। कैसलरी (Castlereagh), कैनिंग (Canning), पामर्स्टन (Palmerston) और बाद में डिजराइली (Disraeli) की नीति को सबसे पहले तिहरी सन्धि (Triple Alliance) द्वारा मूर्त्त स्वरूप प्रदान किया गया। इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य यह था कि रूसी भालू के बढ़ाव को रोका जाय और दूसरा उद्देश्य यह था कि तुर्की साम्राज्य की रक्षा की जाय, यद्यपि दूसरा उद्देश्य मुख्य उद्देश्य के अधीन था।

(२) ईसाई राष्ट्रों का विद्रोह

अब सारा यूरोप, रूसी भय से आतंकित था इसलिए पूर्वी प्रश्न (Eastern Question) ने नया मोड़ लिया। अब वे दिन गुजर चुके थे जब पश्चिम देश देखते रहे और रूस ने तुर्की के साम्राज्य को रौंद डाला और प्रायः विघटित कर दिया; और जब पश्चिमी देश विघटित तुर्की राज्यों के हिस्से लेकर अपनी स्वार्थपूर्ति करते रहे। अब ऐसा अवसर था जब कि तुर्की पश्चिमी राष्ट्रों की छत्रछाया में और अपने श्रेष्ठ सम्राटों सलीम तृतीय (१७८९-१८०७) और महमूद द्वितीय (१८०८-१८३९) के श्रेष्ठ शासन-काल में पुनर्जीवन प्राप्त करता, किन्तु दुर्भाग्यवश स्वयं तुर्की साम्राज्य में ईसाई बल्कान राष्ट्रों और सशक्त क्रान्तिकारी प्रजा की ओर से विरोध प्रारम्भ हो गया।[1] अब यूरोपीय देशों के सम्मुख तुर्की की समस्या नये रूप में आई। क्या पुराने शत्रु के दमन से नए शत्रु को बल तो नहीं मिलेगा? यदि पश्चिमी राष्ट्र रूस के विरुद्ध कोई कार्यवाही करते, तो क्या उस कार्यवाही से तुर्की साम्राज्य का हित होता अथवा ईसाई रियासतों का हित होता अथवा महत्त्वाकांक्षी पाशाओं का हित होता? अब सभी पश्चिमी राष्ट्र यही सोच रहे थे कि उन्हें किस नीति का अनुसरण करना लाभकारी होगा। सारी १९वीं शताब्दी पूर्वी प्रश्न इसी त्रिभुजाकार स्थिति के आसरे लटका रहा।

क्रीमिया युद्ध की समाप्ति के बाद तक शताब्दी के सम्पूर्ण पूर्व भाग में ईसाई राज्यों ने पूर्वी प्रश्न में पर्याप्त भाग लिया। इस दिशा में मुख्य प्रयत्न सर्बिया (Serbia) एवं ग्रीस (Greece) में हुए और कुछ अप्रत्यक्ष प्रयत्न मॉण्टीनीग्रो (Montenegro) में भी किए गए। पहले ही बताया जा चुका है कि यद्यपि ब्रिटेन की घोषित नीति यही थी कि किसी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय और मैटरनिक (Metternich) भी राज्य-विप्लवों से भय खाता था किन्तु दोनों ही रूस से ईर्ष्या रखते थे और दोनों ही तुर्की की सत्ता को अक्षुण्ण देखना चाहते थे; अतः इन दोनों देशों

१. शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्की के विशेष सैनिकों की ओर से दंगा प्रारम्भ हुआ। इन सैनिकों का नाम 'जां निसारी' (Janissaries) था। ये बलवाई थे और सुधारों के विरोधी थे। १८२६ में ग्रीक युद्ध के जमाने में जां निसारी सैनिक कत्ल कर डाले गए। यह घटना एक गदर में हुई जो सम्भवतः सुल्तान के इशारे पर हुई थी। इसके बाद जां निसारी सैनिक दस्ता सदा के लिए समाप्त कर दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऑस्ट्रिया और ब्रिटेन) ने ६ वर्ष तक ग्रीस के विप्लवी ईसाइयों को तुर्की के विरुद्ध कोई सक्रिय सहायता नहीं दी;[1] और कैनिंग (Canning) ने तो तुर्की के शासकों को बहुत समझाया-बुझाया कि वे विप्लवकारियों से समझौता कर लें। यह भी याद रखना आवश्यक है कि ब्रिटेन और फ्रांस में जनमत तुर्की द्वारा ईसाइयों के क्रूर दमन से विक्षुब्ध था। रूस अकेला तुर्की में हस्तक्षेप न कर बैठे इसलिए भी दोनों देशों ने १८२७ में रूस के ज़ार (Tsar) के साथ मिलकर तुर्की में हस्तक्षेप किया। यह भी याद रखना आवश्यक होगा कि नैवेरिनो (Navarino) की लड़ाई के बाद वैलिंगटन (Wellington) ने कैनिंग (Canning) की नीति को त्याग दिया और रूस को खुली छूट दे दी। इसके उपरान्त एड्रियानोपिल (Adrianople) की संधि हुई जिसके अनुसार ग्रीस (Greece) रूस की छत्रछाया में स्वतन्त्र राष्ट्र होकर उदित हुआ; तथा सर्बिया (Serbia) एवं अन्य रियासतें भी रूस के नियन्त्रण में तुर्की के आधिपत्य से मुक्त हुईं।

एड्रियानोपिल की सन्धि (१८२९)

इस सन्धि द्वारा ज़ार (Tsar) को कुछ भूभाग मिले, साथ ही कुछ पहले से अधिक व्यापारिक सुविधाएँ और राजनीतिक अधिकार भी प्राप्त हुए। कुछ ऐसे प्रयत्न भी किए गए जिनके द्वारा ग्रीक राज्य को ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के सम्मिलित नियन्त्रण में रखने का प्रयास किया गया और यह भी प्रयत्न किया गया कि ग्रीस को तीनों देश मिलकर पुनर्निर्माण के लिए ऋण दें। इस प्रकार निकॉलस (Nicholas) को कुछ नीचा दिखाने के प्रयत्न किए गए थे। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि एड्रियानोपिल (Adrianople) की सन्धि रूसी नीति की भारी विजय थी। अगले चार वर्षों के अन्दर ही १८३३ में रूस को पुनः और अधिक विजय लाभ हुआ।

ग्रीक समस्या ज्यों-की-त्यों अनिर्णीत थी। इस समस्या ने भली-भाँति प्रकट कर दिया था कि निकट पूर्व के प्रश्नों में सभी राष्ट्रों की रुचि है। इस समस्या के आधार पर यह आशा थी कि निकट पूर्व के ईसाई राज्यों का पुनर्जीवन सम्भव है। जिस थोड़े समय में ब्रिटेन ने निकट पूर्व में और ग्रीक समस्या में रुचि नहीं ली, उन्हीं दिनों में रूस ने अपने पंजे बुरी तरह बल्कान प्रदेश (Balkans) में गाड़ दिए। इस समस्या ने यह भी भली-भाँति प्रकट कर दिया था कि तुर्की बहुत ही अशक्त है जिसने एक ओर मेहमत अली (Mehemet Ali) को अपनी सहायता के लिए बुलाया तथा दूसरी ओर एक विदेशी सत्ता के आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

मेहमत अली (Mehemet Ali) तुर्की के सुल्तान के अधीन एक जागीरदार प्रजाजन था। वह तुर्की की कमजोरी को भली-भाँति समझता था। वह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। उसकी महत्त्वाकांक्षाओं ने १८३१ से लेकर १८४१ तक के दशक में कई बार पूर्वी प्रश्न को प्रभावित किया।

मेहमत अली भी अली पाशा की तरह अल्बानिया (Albania) देश का निवासी था। वह एक सामान्य सा तम्बाकू का सौदागर था। नेपोलियन के मिस्री

1. See Chapter V, Section II.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभियान (Egyptian Expedition) में उसे महान् अवसर प्राप्त हुआ। व्यापक अव्यवस्था में उसने अपने आपको मिस्र का पाशा घोषित कर दिया और तुर्की के सुल्तान ने उसको मिस्र का पाशा स्वीकार कर लिया। मेहमत अली ने १८०७ में अंग्रेजों को हराया था और उसने ममेल्यूकों (Mamelukes) और वहाबियों (Wahabis) का दमन किया था। किन्तु वह केवल विजेता ही नहीं था। नेपोलियन के मिस्री आक्रमण के कारण मिस्र में पश्चिमी विचारों का द्वार खुला था और मेहमत अली ने उन विचारों को प्रश्रय दिया। यद्यपि स्वयं मेहमत अली पढ़ा-लिखा न था किन्तु फ्रांसीसी विशेषज्ञों की सहायता से उसने मिस्र की सेना का पुनः संगठन किया तथा अपने राज्य के व्यापार, विज्ञान और शिक्षा-व्यवस्था का इस प्रकार प्रबन्ध किया कि उसका राज्य किसी भी आधुनिक यूरोपीय राज्य से घटिया नहीं था।

मेहमत अली १८३१-४१

मेहमत अली ने ग्रीस (Greece) की स्वतन्त्रता के युद्ध में ग्रीक लोगों के विरुद्ध तुर्की के सुल्तान की बड़ी सहायता की थी। किन्तु इन भारी सेवाओं के उपलक्ष्य में उसे केवल क्रीट (Crete) की गवर्नरी मिली। वह इससे प्रसन्न नहीं था और उसने सीरिया (Syria) पर अधिकार करना निश्चित किया। १८३१ में एक सामान्य से बहाने पर इब्राहीन (Ibrahim) ने फ़िलिस्तीन (Palestine) पर आक्रमण किया। उसने एक्रे (Acre) और दमिश्क (Damascus) पर अधिकार कर लिया, तुर्की फौजों को हरा दिया और एशिया माइनर (Asia Minor) में पैठने लगा। इससे कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) को वास्तविक खतरा उत्पन्न हो गया। १८३२ में तुर्की के सुल्तान ने यूरोप की शक्तियों से सहायता की याचना की, किन्तु रूस के अतिरिक्त किसी ने उत्तर तक नहीं दिया। सम्भवतः फ्रांस और इंग्लैण्ड ने इस कारण उत्तर न दिया हो क्योंकि वे दोनों बेल्जियम (Belgium) के स्वतन्त्रता-संग्राम में फँसे हुए थे। केवल रूस ही तुर्की को सहायता देने के लिए तैयार था। रूस की सहायता चाहे कितनी भी अनिष्टकारी हो, परन्तु जैसे डूबता हुआ मनुष्य सहारा समझ कर साँप को भी पकड़ लेता है, उसी प्रकार सुल्तान को भी रूस की सहायता स्वीकार करनी पड़ी। जब पश्चिमी शक्तियों ने देखा कि रूसी जहाजी बेड़ा बॉस्पोरस (Bosporus) में लंगर डाले पड़ा है और रूसी सैनिक दल तुर्की के प्रदेश में घुसते चले आ रहे थे तो उन्हें अशान्ति होने लगी। स्थिति ऐसी पेचीदा बन गई थी कि एक ओर तो रूस उस समय तक हटने को तैयार न था जब तक इब्राहीम (Ibrahim) टॉरस (Taurus) पहाड़ों से पीछे न हटे, और इब्राहीम उस समय तक वापस जाने को तैयार न था जब तक कि उसके पिता मेहमत अली को सन्तुष्ट न किया जाए, इसलिए इंग्लैण्ड, फ्रांस और ऑस्ट्रिया ने तुर्की को लिखा कि वह मेहमत अली को सीरिया (Syria) देकर छुट्टी करे, जिससे उसे रूसी सहायता की आवश्यकता ही न रहे। इस अनुरोध के आगे तुर्की को झुकना पड़ा और अप्रैल १९३३ में मेहमत अली की माँग स्वीकार कर ली गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु रूस इस तरह धोखे में आने वाला नहीं था। उसने भी अपनी माँग रखी और जुलाई में अन्कियर स्कैलेसी (Unkiar Skelessi) की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इस सन्धि के अनुसार तुर्की की राजधानी में रूस का अत्यधिक प्रभाव हो गया। तुर्की एक प्रकार से रूसी फ़ौजी संरक्षण में आ गया। इस सन्धि द्वारा तुर्की ने अन्तरीपों से बिना कुछ खर्चा दिए रूसी युद्ध जहाज़ों को जाने की आज्ञा दे दी तथा यह भी वायदा कर लिया कि युद्ध-काल में वह रूसी युद्ध जहाज़ों के अतिरिक्त अन्य सब देशों के युद्ध जहाज़ों के लिए दर्रे दानियाल (Dardanelles) को बन्द कर देगा। इस सन्धि से कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर रूस का अमिट प्रभाव हो गया। इंग्लैंड और फ्रांस में अन्कियर स्कैलेसी (Unkiar Skelessi) की सन्धि की शर्तों ने सभी को भयभीत कर दिया। यद्यपि इस सन्धि के तुरन्त बाद ही युद्ध नहीं छिड़ा, परन्तु पामर्स्टन (Palmerston) ने, जो कि पूर्व में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव का सदा से विरोधी था और जो रूस की योजनाओं से सदैव डरता रहता था, इस सन्धि को नष्ट करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसने रूस की दक्षिण-पूर्वी हलचलों पर कठोर निगाह रखना प्रारम्भ किया।

अन्कियर स्कैलेसी की सन्धि (१८३३)

तुर्की के सुल्तान महमूद द्वितीय (Mahmud II) ने इंग्लैण्ड के साथ व्यापारिक समझौता किया और उसने वॉन मॉल्ट्के (Von Moltke) नामक एक प्रशावासी युवक सैनिक अफ़सर से अपनी सेना को प्रशिक्षित कराया। इस सैनिक अफ़सर का यश बाद में यूरोप में बहुत चमका। १८३९ में सुल्तान महमूद द्वितीय ने मेहमत अली के विरुद्ध चढ़ाई कि क्योंकि वह मेहमत अली से सीरिया (Syria) छीनना चाहता था। किन्तु तुर्की के सुल्तान की सेना क्या थी, मानो भानमती का पिटारा थी। यह सेना रूस, फ्रांस, बेल्जियम, तुर्की, हंगरी और इंग्लैंड की सहायता से खड़ी की गई थी। अतः इब्राहीम ने इसे आसानी से हरा दिया। इसके साथ ही तुर्की का जहाज़ी बेड़ा शत्रु से जा मिला। तुर्की का सुल्तान इस आघात को सहन न कर सका और उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका १६-वर्षीय पुत्र अब्दुल मजीद (Abdul Mejid) तुर्की के राजसिंहासन पर बैठा। अब पामर्स्टन (Palmerston) को अवसर मिला और यूरोपीय शक्तियों ने हस्तक्षेप किया। रूस और इंग्लैण्ड दोनों ही मेहमत अली के बढ़ते हुए प्रभाव से सशंक थे क्योंकि ज्यों-ज्यों उसे सफलताएँ प्राप्त हो रही थीं त्यों-त्यों उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ भी बढ़ रही थीं। इसके विपरीत फ्रांस मेहमत अली की सहायता करना चाहता था। लुई फ़िलिप (Louis Philippe) की इच्छा थी कि नेपोलियन की सफलताओं के प्रसंग में वह कुछ करतब दिखावे। वह चाहता था कि भूमध्यसागर में इंग्लैंड की शक्ति को कम करे तथा वह स्वयं भूमध्य सागर पर अधिकार कर ले। फ्रांस ने हाल ही में अल्जीरिया (Algeria) को जीता था; स्पेन के बूरबन वंशजों से फ्रांस की प्रगाढ़ मैत्री थी; इसलिए फ्रांस ने सोचा कि यदि मिस्र के नेपोलियन अर्थात् मेहमत अली से मैत्री हो जाए तो उस मैत्री के फलस्वरूप फ्रांस को लीवैण्ट (Levant) में पैर रखने का अवसर प्राप्त होगा और यदि स्वेज जलडमरूमध्य में नहर बना ली गई तो इससे फ्रांस का प्रभाव-क्षेत्र भारत और पूर्वी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में बढ़ेगा। इस प्रकार इंग्लैंड को अन्तरीप (Cape) में जो लाभदायक स्थिति प्राप्त हो चुकी थी, उसका प्रभाव कम हो जाएगा। चूँकि मेहमत अली ने फ्रेंच विचारों और फ्रेंच वेशभूषा का मिस्र मे आदर करना प्रारम्भ कर दिया था, अतः लुई फिलिप (Louis Philippe) को मेहमत अली की सहायता करने में भारी लाभ दिखाई देने लगे। फ्रांस ने चुपके-चुपके मेहमत अली को सहायता दी। ऐसी दशा में ब्रिटिश मन्त्री पामर्स्टन (Palmerston) ने सोचा कि मिस्र में फ्रांस के प्रभुत्व सम्पन्न होने की संभावना है। किन्तु यह भी उतना ही भयानक था जितना अन्कियर स्कैलेसी (Unkiar Skelessi) की सन्धि द्वारा रूस का कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर प्रभुत्व। इंग्लैंड की दृष्टि में फ्रांस का मिस्र में प्रभुत्व और रूस का कुस्तुन्तुनिया में अत्यधिक प्रभाव अहितकर थे; इंग्लैंड ने यह निश्चय किया कि तुर्की के साम्राज्य को बनाए रखना चाहिए तथा किसी भी एक शक्ति को किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करने देना चाहिए। पामर्स्टन (Palmerston) ने कहा, "हम जो आए दिन सुनते रहते हैं कि तुर्की साम्राज्य समाप्त हो गया अथवा तुर्की साम्राज्य जीवहीन वृक्ष है, यह सब वेहूदा बकवास है।.....यदि तुर्की को पाँच बड़ी शक्तियों के सैनिक संरक्षण में दस वर्ष की शान्ति मिल जाए और यदि उन दस वर्षों में साम्राज्य की आन्तरिक अवस्था को सुधार दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि तुर्की पुनः एक बार आदर योग्य सत्ता न बन सके।"

फ्रांस और मेहमत अली की योजनाओं से भयभीत होकर रूस इंग्लैंड के निकट आ गया और उसने अन्कियर स्कैलेसी की सन्धि से प्राप्त अपनी विशिष्ट स्थिति को त्याग देने के लिए तथा पूर्वी प्रश्न पर संगठित सहयोगपूर्ण हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना की। रूस ने देखा कि यदि शक्तिशाली मेहमत अली की विजय हो जाती है तो एक दुर्बल शासक के स्थान पर शक्तिशाली शासक आ जाएगा, और यदि पश्चिमी शक्तियों की एकता टूट जाती है तो फलस्वरूप उसकी ही (रूस की ही) कूटनीतिक विजय होगी। फलस्वरूप लन्दन का कन्वेंशन (The Convention of London) बुलाया गया। १८४० में ग्रेट ब्रिटेन, रूस, ऑस्ट्रिया और प्रशा ने एक सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिसमें दृढ़ निश्चय किया गया कि पूर्वी भूमध्यसागर के देशों और द्वीपों में पूर्ण शान्ति स्थापित की जाय। इस कन्वेंशन की शर्तों के अनुसार मेहमत अली को तुर्की के सुल्तान के आधिपत्य में मिस्र का पाशा स्वीकार किया गया; और यह भी निश्चय हुआ कि युद्ध काल में दर्रे दानियाल (Dardenelles) को प्रत्येक देश के युद्धीय जहाजों के लिए बन्द कर दिया जाएगा। लन्दन की संधि द्वारा फ्रांस को प्रतिघात और रूस को रुकावट मिली। यह संधि पामर्स्टन (Palmerston) की भारी राजनयिक विजय थी। इस अपमान से क्रुद्ध होकर फ्रांस ने इंग्लैंड को युद्ध की धमकी दी किन्तु वह बाद में पीछे हट गया। पूर्व में स्थित मित्र राष्ट्रों के जहाजी बेड़े ने तुर्की के सुल्तान और मेहमत अली को बाध्य किया कि वे लन्दन की सन्धि को स्वीकार करें। इस संधि के अनुसार तुर्की को सीरिया (Syria), क्रीट (Crete) और अरब (Arabia) मिले और मेहमत अली को तुर्की के सुल्तान

लन्दन का कन्वेंशन (१८४०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आधिपत्य में मिस्र का आनुवंशिक पाशा मान लिया गया। अगले वर्ष, फ्रांस अपनी हीनता का अनुभव करते हुए स्वयं शक्तियों के गुट में सम्मिलित हो गया।

मिस्र (Egypt) की समस्या हल हो गई और यूरोप की शक्तियों ने स्वीकार कर लिया कि तुर्की साम्राज्य बने रहने दिया जाएगा। मेहमत अली ने यूरोपीय राजनीति से संन्यास ले लिया। तुर्की की एक ओर शक्तिशाली मेहनत अली से रक्षा हो गई तथा दूसरी ओर फ्रांस की जाग्रत महत्त्वाकांक्षाओं से रक्षा हो गई तथा तीसरी ओर उसकी रक्षा शक्तिशाली रूसी शत्रु से भी हो गई। अब तुर्की ने अपना ध्यान आन्तरिक सुधारों की ओर दिया। अन्कियर स्कैलेसी की सन्धि समाप्त हो चुकी थी। अब रूस और फ्रांस दोनों को भली-भाँति विदित हो गया था कि इंग्लैण्ड न तो रूस का आधिपत्य तुर्की पर और न फ्रांस का आधिपत्य मिस्र के ऊपर सहन करेगा। वास्तव में इंग्लैंड की ही विजय हुई। न तो मेहमत अली को और न अब्दुलमजीद को विजय लाभ हुआ, न लुई फिलिप को और न निकॉलस प्रथम (Nicholas I) को विजयश्री मिली। केवल विजय मिली पामर्स्टन (Palmerston) को। पामर्स्टन महान् ब्रिटिश राजनीतिज्ञ था जो विदेशी राजाओं और महान् राजनीतिज्ञों की चालों को समझता था और जो ब्रिटिश हितों से भी पूर्ण परिचित था। वह महान् साहसी था और महान् भाग्यशाली भी था। १८४१ में मेलबोर्न (Melbourne) प्रधान मंत्री बना और पामर्स्टन मन्त्रिमण्डल से बाहर निकल गया।

दस वर्षों तक पूर्वी प्रश्न शान्त रहा। इंग्लैण्ड और रूस के बीच १८४० में जिस सौहार्द का सूत्रपात हुआ, पामर्स्टन के हटते ही उसका कम्पन क्षीण होने लगा। १८४४ में ज़ार निकोलस (Tsar Nicholas) इंग्लैण्ड आया। उसने सम्राज्ञी के प्रति आदर प्रदर्शित किया, उसके बच्चों को सराहा और अत्यन्त नम्र व्यवहार किया। ज़ार ने ब्रिटेन के मन्त्रियों से कहा कि पूर्वी समस्या को रूस और इंग्लैण्ड मिलकर तय करें। जब ज़ार इंग्लैण्ड से लौटा तो अपने साथ यह विश्वास लेकर स्वदेश आया कि जब तक एबर्डीन (Aberdeen) इंग्लैण्ड के मंत्रिमण्डल में है, वह देश रूस के विरुद्ध युद्ध न छेड़ेगा। १८४६ में अनाज अधिनियम (Corn Laws) को हटा दिया गया और सर रॉबर्ट पील का मन्त्रिमण्डल पदच्युत हो गया। एक बार पुनः पामर्स्टन पाँच वर्षों के लिए विदेश मन्त्री बनकर आया। कुछ ही दिनों के बाद सारे यूरोप में राजनीतिक चिनगारियाँ फैलने लगीं। ऐसी एक चिनगारी से द्वितीय फ्रेंच गणराज्य का सर्वेसर्वा एक ऐसा व्यक्ति बना जो नाटे कद का और स्थूलकाय था तथा जिसका मुँह लम्बा और भारी था। उसकी आँखें विचारवान थीं, और उसकी नाक नेपोलियन की सी थी।

क्रीमिया का युद्ध

"लन्दन के कन्वेंशन के दस वर्ष बाद तक तुर्की के साम्राज्य में शान्ति रही। यहाँ तक कि यरुशलम (Jerusalem) के प्रतिद्वन्द्वी चर्चों में भी वैमनस्य शान्त रहा। किन्तु इसी समय फ्रेंच राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय ने बिना आवश्यकता के लैटिन संन्यासियों का पक्ष लेते हुए उनके अधिकार को वापस करने की माँग की। लैटिन चर्च के संन्यासियों का पक्ष लेकर वास्तव में नेपोलियन तृतीय विश्व-व्यापी युद्ध की होली खेलना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता था।" क्रीमिया के युद्ध-काल का ब्रिटिश इतिहासकार किंगलेक (Kinglake) स्वयं भी नेपोलियन से द्वेष रखता था और उपयुक्त उद्धरण उसी के लेख से प्रस्तुत है।[1] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि फ्रेंच राष्ट्रपति की ओर से ही युद्ध का सूत्रपात हुआ। किन्तु किंगलेक (Kinglake) ने नेपोलियन तृतीय को 'अन्तर्राष्ट्रीय गुण्डा' कहा है। यह कथन उचित नहीं है क्योंकि लुई नेपोलियन एक तो स्थिर-चित्त नहीं था, वह सभी को कष्ट देता था और उसकी नीतियाँ सदैव असंगत रहती थीं। वह किसी सामान्य से प्रश्न पर ठीक तरह से विचार नहीं कर सकता था। वह जल्दबाज भी था और दीर्घसूत्री भी। वह अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी भी था किन्तु अत्यधिक संकोची भी था और इस प्रकार राजनीति को अन्तःकरण के साथ सम्मिलित करके गुड़गोबर एक कर देता था। सन् १८३६ और १८४० में दो बार अपमानित होने पर भी वह अभी तक फ्रांस का सम्राट् घोषित नहीं हुआ था यद्यपि फ्रेंच गणराज्य का वह सर्वोच्च अधिकारी था। वह नेपोलियन प्रथम के विचारों को ही लेकर फ्रांस लौटा था। स्वयं नेपोलियन ने १८४० में फ्रांस के लोगों से कहा था, "मैं आपके सम्मुख एक सिद्धान्त, आदर्श अथवा उद्देश्य तथा पराजय का प्रतिनिधित्व करता हूँ। सिद्धान्त है सर्वसाधारण की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता; आदर्श अथवा उद्देश्य है साम्राज्य की स्थापना; तथा पराजय है वाटरलू (Waterloo) की पराजय।" १८४० में भी उपर्युक्त शब्द सत्य थे किन्तु १८५० में इन शब्दों का आशय यथार्थ था। उस समय लुई नेपोलियन, सर्वसाधारण को सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न मानते हुए नेपोलियन प्रथम के चरण-चिह्नों पर चलकर फ्रांस को गौरवपूर्ण महान् साम्राज्य बनाने जा रहा था।

लुई नेपलियन, नेपोलियन महान् के चरण-चिन्हों पर चलना चाहता था। मार्ग भी साफ था। नेपोलियन महान् भी तो गणराज्य का प्रधान बनकर आया था; किन्तु बाद में सम्राट् बन बैठा था। राज्य-परिवर्तन (Coup d'etat) की पुनरावृत्ति हो सकती थी और सर्वसाधारण की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता (Sovereignty) को बोनापार्ट के अर्थों में लिया जा सकता था। किन्तु लुई नेपोलियन सतर्कता के साथ आगे बढ़ा। १८४८ से चार वर्षों के लिए वह फ्रेंच राष्ट्र का प्रधान बना। इन चार वर्षों में उसने सम्राट् बनने के लिए आवश्यक योजनाएँ तैयार कर लीं। उसने कई बार अपने मन्त्रियों को बदला और अपने विश्वासपात्र लोगों को ही मन्त्रि-पद दिए। इनमें से कुछ के नाम ये थे, मॉर्नी (Morny), सेंट अर्नोड (Saint Arnaud), फ्लुरी (Fleury) और पर्सिग्नी (Persigny)। इन मन्त्रियों के भाग्य स्वयं लुई नेपोलियन के भाग्य के साथ जुड़े हुए थे। नेपोलियन ने राष्ट्र के ऊपर नेपोलियन महान् का जादू फूंका, सारे राष्ट्र का दौरा किया; और संविधान में परिवर्तन कराने की माँग की। और कभी-कभी तो सैनिकों से अपने आपको सम्राट् कहलाने में उसे अपार हर्ष का अनुभव होता था। इस प्रकार उसका हाथ राष्ट्र की नब्ज

---

१. कहा जाता है कि इतिहासकार किंगलेक (Kinglake) और नेपोलियन तृतीय दोनों ही कुमारी हॉवर्ड (Miss Howard) से विवाह करना चाहते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर था और वह सुनहले अवसर की ताक में था। ३१ मई, १८५० को एसेम्बली ने एक ऐसा कानून पास किया जिससे लगभग ३० लाख मतदाता मनदान के अधिकार से वंचित हो गए। इसका कारण यह था कि समाजवादी यदि निर्वाचित हो जाते तो विप्लव की सम्भावना थी। लुई नेपोलियन ने अवसर देखा और अपने को व्यापक मतदान के समर्थक होने का दिखावा करके ३१ मई के विधान को परिवर्तित करने का प्रस्ताव रखा। उसकी हर तरह जीत थी। संसद् या एसेम्बली ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया; अतः उसने २ दिसम्बर १८५१ को एक राज्य-परिवर्तन (Coup d' etat) की तैयारी कर ली। सेना को वश में कर लिया गया तथा राज्य-मुद्रणालय के संचालक को ठग लिया गया। १ दिसम्बर, १८५१ को सामान्य एसेम्बली की बैठक एलिसी (Elysee) में हुई और ज्यों ही मेहमान विदा हुए, षड्यन्त्र प्रारम्भ हो गया। आधी रात के समय ७८ पार्षदों (Deputies) को घरों से उठाकर जेलखानों में बन्द कर दिया गया और पुलिस के सिपाहियों के दबाव में कम्पोज़ीटरों (Compositors) ने ऐसी बेमानी बातें छापीं कि उनके इश्तिहारों को जब सड़कों पर चिपकाया गया तो घोषणा पढ़ी गई मानो संसद् या एसेम्बली भंग कर दी गई है क्योंकि वह षड्यन्त्रकारी थी। इस घोषणा से यह भी ध्वनि निकलती थी कि नया संविधान निर्मित होगा, पेरिस (Paris) में सैनिक विधि लागू कर दी गई है तथा फ्रेंच राष्ट्रपति के नेतृत्व में गणराज्य दे दिया गया है। इसी समय में गृह-मन्त्री मॉर्नी (Morny) ने प्रान्तों के नेताओं को तार द्वारा सूचना दी कि पेरिस ने शासन-परिवर्तन बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया है।

लुई नेपोलियन, सम्राट् नेपोलियन तृतीय बन बैठा

२ दिसम्बर से लेकर ४ दिसम्बर १८५१ का राज्य-परिवर्तन

अगले दिन कुछ विरोध हुआ, कुछ अन्य संसद्-सदस्यों (Deputies) को जेल में डाल दिया गया, और दो दिन बाद तो सैनिकों ने सामान्य जनता को चौड़ी सड़कों पर गोली मार दी। किन्तु लुई नेपोलियन की ही विजय हुई। जनमत (Plebiscite) ने राज्य-परिवर्तन (Coup d'etat) को स्वीकार कर लिया। जनमत द्वारा नेपोलियन की राष्ट्रपति-पद की अवधि बढ़ा दी गई और उसे विधान बदलने का अधिकार दे दिया गया। अब फ्रेंच राष्ट्रपति ने १४ जनवरी, १८५२ को नया संविधान जारी कर दिया। नए संविधान के अनुसार गणराज्य के स्वरूप के पतले पर्दे के पीछे नेपोलियन का व्यक्तिगत निरंकुश शासन स्थापित हो गया। २ दिसम्बर, १८५२ को राज्य-परिवर्तन (Coup d'etat) के एक वर्ष बाद और प्रथम साम्राज्य की स्थापना के ४८ वर्ष बाद जनता का द्वितीय जनमत (Plebiscite) लिया गया, जिसमें नेपोलियन को सम्राट् घोषित कर दिया गया। इस प्रकार लुई नेपोलियन नेपोलियन तृतीय के नाम से फ्रांसीसियों का सम्राट् बन बैठा।

इस प्रकार लुई नेपोलियन अपनी गृह-नीति में सफल हुआ। अब उसे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी थी। अपनी मूल प्रकृति के अनुसार सम्राट्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन तृतीय ने अपना रुख पूर्व की ओर किया। तुर्की के राज्य में फ़िलिस्तीन के पवित्र तीर्थ स्थान पड़ते थे, जिसमें रोमन और ग्रीक संन्यासी रहते थे। १७४० की सन्धि के अनुसार यह प्रायः मान लिया गया था कि रोमन संन्यासी लोगों की रक्षा का भार फ्रांस के ऊपर रहेगा। इन रोमन सन्यासियों को पवित्र स्थानों (Holy Places) के संरक्षण के तथा कुछ अन्य विशेषाधिकार दे दिए गए थे किन्तु फ्रेंच क्रान्ति के जमाने में फ्रांस ने ग्रीक और रोमन संन्यासियों के सदैव चलने वाले झगड़े में रुचि लेना बन्द कर दिया था; इसलिए ग्रीक संन्यासियों ने अपने प्रतिद्वन्द्वी लैटिन संन्यासियों के अधिकारों का भी अतिक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। नेपोलियन ने सोचा कि कैथोलिक संन्यासियों का पक्ष लेने से फ्रांस के कैथोलिक लोग प्रसन्न होंगे जिस प्रकार कि १८४९ में पोप का पक्ष लेने से फ्रांस में उसे लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। नेपोलियन अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए पादरी वर्ग की प्रसन्नता को बहुत आवश्यक समझता था। नेपोलियन ने यह भी सोचा कि यदि ग्रीक संन्यासियों को अप्रसन्न कर देने के फलस्वरूप जार से लड़ाई ठन गई तो इससे उसका प्रयोजन ही सिद्ध होगा। रूस के साथ इस प्रश्न पर लड़कर सम्भवतः नेपोलियन फ्रांस की मॉस्को (Moscow) वाली हार तथा १८४० की कूटनीतिक पराजय का बदला ले सकेगा। अब नेपोलियन स्वप्न देखने लगा कि नेपोलियन का नाम एक बार पुनः सारे यूरोप में गर्व के साथ लिया जाएगा और रूसी ज़ार निकॉलस रोमनोव (Nicholas Romanov) पर फ्रांस का रोब कायम हो जाएगा तथा वह फ्रेंच सम्राट् के प्रति अपनी पुरानी अशिष्टता त्याग देगा। वास्तव में नेपोलियन को ज़ार निकॉलस से व्यक्तिगत शिकायत थी क्योंकि उसने फ्रेंच सम्राट् के प्रति शिष्टाचार के साथ व्यवहार नहीं किया था।[1]

१८५२ में नेपोलियन तृतीय ने पुनः लैटिन संन्यासियों का पक्ष लिया। १८५० में भी वह उनका पक्ष ले चुका था। इतिहासकार किंगलेक (Kinglake) ने लिखा है कि संन्यासियों का झगड़ा मुख्यतः इस बात पर था कि धार्मिक मन्दिर में जाने के लिए मुख्य द्वार की कुंजियाँ तथा वेदी (Manger) के दो दरवाजों में से एक कुंजी लैटिन संन्यासियों के पास रहे या नहीं और पूजा-स्थल में फ्रांस का राजचिन्ह रखा जाये या नहीं। नेपोलियन ने लैटिन सन्यासियों के अधिकारों को वापस करने की माँग की। प्रारम्भ में तुर्की ने नेपोलियन की माँग को स्वीकार कर लिया। ज़ार निकॉलस प्रथम ने ग्रीक संन्यासियों का पक्ष लिया और लैटिन संन्यासियों को दी गई रियायत को वापस लेने के लिए ज़ोर डाला। इन दो शक्तियों के बीच में फँसकर तुर्की ने दोनों में समझौता कराने की कोशिश की किन्तु असफल रहा। वास्तव में रूस ने समझौता स्वीकार नहीं किया, क्योंकि समझौते की शर्तें स्पष्ट नहीं थीं। किन्तु सत्य यह है कि न तो

---

१. ज़ार निकॉलस (Tsar Nicholas) ने नेपोलियन तृतीय को उस आदर और शिष्टाचार के साथ सम्बोधित नहीं किया जिसकी आवश्यकता थी। उसने सम्राट् को 'मॉन आमी' (mon ami) मात्र कहा जब कि उसे मॉन फ्रेरी (mon frere) कहना चाहिए था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस समझौता करना चाहता था और न रूस। मार्च, १८५३ में रूस ने अपना एक दूत कुस्तुन्तुनिया भेजा और उससे कहा कि वह पवित्र स्थानों के विषय में न केवल संतोष प्राप्त करे वरन् यह माँग भी रखे कि तुर्की का सुलतान रूस को अपने राज्य के ग्रीक चर्चों के सब ईसाइयों का संरक्षक मान ले। कुजुक-कैनार्डजी (Kujuk-Kainardji) की सन्धि की शर्तों के आधार पर यह माँग प्रस्तुत की गई थी, किन्तु इससे समस्या उलझ गई। पूर्वी समस्या (The Eastern Question) फिर उभर आई। फ्रांस के साथ प्रतिद्वन्द्विता के कारण रूस की महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ गईं। जान निकॉलस प्रथम की सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) में ब्रिटिश राजदूत सर हैमिल्टन सीमर (Sir Hamilton Seymour) से कई बार बातचीत हुई। इस विचार-विनिमय में ज़ार ने बतलाया कि अब वह तुर्की के साम्राज्यवाद को अक्षुण्ण रखने के पक्ष में नहीं है यद्यपि १८३० से अन्य राष्ट्रों के कहने पर वह तुर्की के साम्राज्य का समर्थन करता चला आ रहा था। उसने यह भी कहा कि अब वह तुर्की के साम्राज्य का विघटन चाहता है। उसने कहा, "तुर्की की स्थिति चिन्ताजनक है। साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने जा रहा है। हमारे सामने तुर्की एक मरणासन्न रोगी के समान है; वह शीघ्र समाप्त होने जा रहा है। यह हमारे सबके लिए दुर्भाग्य की बात होगी यदि बीमार आदमी की सन्निकट मृत्यु के पूर्व ही उसके साम्राज्य का बँटवारा न हुआ।" ज़ार निकॉलस ने फिर कहा : "इंग्लैण्ड और फ्रांस के हित समान हैं, इसलिए हम तुर्की के साम्राज्य का इस प्रकार बँटवारा कर लें कि रूस को कुस्तुन्तुनिया तथा दर्रे दानियाल (Dardenelles) का नियन्त्रण मिल जाय और बदले में इंग्लैण्ड को मिस्र (Egypt) और क्रीट (Crete) मिल जाएँ। यदि तुर्की साम्राज्य समाप्त होता है, तो उसके पुनर्जीवित होने की कोई आशा नहीं है। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि दुर्घटना होने से पहले ही क्यों न उसका उपाय कर लिया जाय ताकि उपद्रव, अस्तव्यस्तता और भयंकर यूरोपीय युद्ध न हो।" जब ज़ार के प्रस्ताव इंग्लैण्ड की सरकार के समक्ष पहुँचे तो इंग्लैण्ड ने दृढ़ता के साथ विनम्र भाषा में ज़ार के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। "इंग्लैण्ड ने न तो तुर्की के रोग का निदान (Prognosis) स्वीकार किया और न रोग के उपचार की तजवीज़ को उचित ठहराया।"[1] सीधी भाषा में इंग्लैण्ड ने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि ऑटोमन साम्राज्य का शीघ्र ही अन्त होने वाला है। उसने साम्राज्य के बँटवारे की योजना में भी कोई रुचि प्रदर्शित नहीं की।

रूस ने अपने आप को तुर्की की ईसाई प्रजा का संरक्षक मान लिया

रूस द्वारा तुर्की के विभाजन की माँग

यूरोप का बीमार आदमी

इन्हीं दिनों तुर्की स्थित ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्ट्रैटफ़ोर्ड डी रैडक्लिफ़ (Lord Stratford de Redcliffe) ने तुर्की की राजधानी में घटनाओं पर अपना प्रभाव

---

1. J.A.R., Marriott : *The Eastern Question*, Chapter X.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालना प्रारम्भ किया। वह योग्य राजदूत था किन्तु समझौतावादी नहीं था। वह भली-भाँति जानता था कि रूस की महत्त्वाकांक्षाएँ भयानक हैं। वह यह भी समझता था कि जब तक रूस की महत्त्वाकांक्षाएँ समाप्त न होंगी तब तक निकट पूर्व में शान्ति स्थापित न होगी। ब्रिटिश राजदूत ने रूस की पवित्र स्थानों सम्बन्धी माँग को अलग रखा तथा रूसी संरक्षण (Russian Protectorate) की माँग को अलग रखा। इस प्रकार इन दोनों प्रश्नों को अलग-अलग रखकर ब्रिटिश राजदूत लार्ड रैडक्लिफ़ ने तुर्की पर दबाव डाला कि वह रूस की पहली माँग को स्वीकार कर ले, क्योंकि उधर रूस तगड़ा पड़ता था। उसने यह भी राय दी कि तुर्की रूस की दूसरी माँग को ठुकरा दे क्योंकि इधर रूस की स्थिति कमज़ोर थी। फलस्वरूप नैराश्य के वातावरण में रूसी राजदूत मेन्शिकोफ़ (Menschikoff) और उसके अधीन कर्मचारी वर्ग ने कुस्तुन्तुनिया से पलायन किया। अब तुर्की ने यूरोपीय शक्तियों को स्थिति के विषय में लिखा और धीरे-धीरे, आने वाले सम्भावित रूसी आक्रमण के विरुद्ध स्वरक्षा के लिए तैयारी आरम्भ कर दी। इस पर २१ जुलाई को एक रूसी सैनिक दल ने प्रथ (Pruth) को पार किया तथा तुर्की के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। रूस का कथन था कि वह युद्ध नहीं चाहता बल्कि अपनी न्याय्य माँगों को तुर्की द्वारा स्वीकार कराना चाहता है।

अक्टूबर के अन्त तक ऐसी स्थिति बनी रही, किन्तु यूरोप के राज-दरबारों में व्यग्रता पैदा हो गई और पूरा प्रश्न एक सामान्य यूरोपीय महत्त्व का प्रश्न बन गया। वियना (Vienna) में विभिन्न राज्यों के राजनीतिज्ञों ने विचार-विमर्श किया। काउण्ट बोल (Count Buol) मैटरनिक (Metternich) की नीति का पक्षपाती था किन्तु उसमें मैटरनिक की सी योग्यता का पूर्ण अभाव था। उसका विश्वास था कि कूट-नीतिक विचार-विनिमय द्वारा संकट को टाला जा सकता है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, ऑस्ट्रिया और प्रशा ने वियना नोट (Vienna Note) नामक प्रस्ताव तैयार किया जिसके द्वारा आशा की गई कि बातचीत द्वारा संकट टल सकता है। वियना नोट में चाहा गया था कि रूस और तुर्की दोनों ही कुजुक-कैनार्डजी और एड्रियानोपिल की सन्धियों की शर्तों का पालन करें और इन दोनों सन्धियों की शर्तों के अनुसार दोनों देश अर्थात् रूस और तुर्की ईसाई प्रजा की रक्षा करें। ऐसा विश्वास किया जाता था कि वियना नोट (Vienna Note) द्वारा स्थिति सम्भल जायेगी किन्तु फल आशा के विपरीत हुआ। रूस ने वियना नोट को स्वीकार करा लिया क्योंकि उसने उसके अर्थ 'ज़ार द्वारा संरक्षण' लगाये; किन्तु तुर्की ने वियना नोट के अर्थ 'तुर्की द्वारा संरक्षण' लगाये। इसमें सन्देह नहीं है कि वियना नोट द्व्यर्थक (Ambiguous) था किन्तु इस द्व्यर्थकता से शांति रखने में सहायता मिलती। 'परन्तु लार्ड स्ट्रैटफ़ोर्ड डी रैडक्लिफ़ का व्यवहार हठी था। उसने तुर्की पर दबाव डाला कि वह संरक्षण शब्द की व्याख्या करावे और इस प्रकार ईसाई प्रजा को अपने संरक्षण में ले'। वास्तव में लार्ड स्ट्रैटफोर्ड डी रैडक्लिफ़ ने चारों राष्ट्रों के परिश्रम को व्यर्थ कर दिया, यद्यपि इन चारों राष्ट्रों में उसकी सरकार भी थी। वास्तव में जब वियना नोट को रूस ने स्वीकार कर लिया था तो तुर्की द्वारा उसको अस्वीकृत कराने की सारी जिम्मेदारी ब्रिटिश राजदूत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार्ड रैडक्लिफ़ के ऊपर ही है।[1] लार्ड स्ट्रैटफ़ोर्ड चाहता था कि रूस स्पष्ट रूप से अपने अधिकारों को त्याग दे किन्तु रूस ने यह स्वीकार नहीं किया।

कूटनीति के असफल होने पर अब यह प्रश्न केवल तलवार की धार पर ही तय किया जा सकता था। लार्ड एबर्डीन (Lord Aberdeen) ने लिखा है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस की सैनिक सहायता के आश्वासन से तुर्की के लिए सुनहरा अवसर मिल गया था कि वह सदैव के लिए रूस के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त कर ले; और सम्भव है कि ऐसा अवसर फिर कभी हाथ न लगे। अब तुर्की ने रूस से कहा कि उसके प्रदेश खाली कर दिए जाएँ। जब रूस ने तुर्की के प्रदेश खाली करने से इनकार कर दिया तो तुर्की ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अब तुर्की की सेनाएँ डेन्यूब की ओर आक्रमण करने बढ़ीं, तो रूस के काले सागर में स्थित जहाज़ी बेड़े ने प्रत्याक्रमण किया और पहली ही चोट में ३० नवम्बर को सिनोप की खाड़ी (Bay of Sinope) में स्थित सारे तुर्की जहाज़ी बेड़े को नष्ट कर डाला।

तुर्की ने रूस के साथ युद्ध की घोषणा कर दी (अक्तूबर, १८५३)

ऐसी आशा तो किसी को भी नहीं थी कि युद्ध अधिक समय तक केवल तुर्की और रूस के बीच ही सीमित रहेगा। लार्ड एबर्डीन (Lord Aberdeen) ने लिखा था, "तुर्क लोग क्रूर और निर्दय होने के साथ-साथ चतुर भी हैं और वे अपनी स्थिति से लाभ उठाना जानते हैं। धीरे-धीरे तुर्कों ने हम लोगों को ऐसी स्थिति में खींच लिया है जहाँ हमको उनकी सहायता करनी ही पड़ेगी।" फ्रांस और ब्रिटेन, दोनों को भय था कि तुर्की साम्राज्य का अस्तित्व खतरे में है। इसलिए, इंग्लैण्ड और फ्रांस के जंगी जहाज़ दर्रे दानियाल में तुर्की की सहायता के लिए पहुँच चुके थे। नेपोलियन तृतीय के राजसिंहासन की स्थिति दृढ़ न थी इसलिए फ्रांस में यदि इस युद्ध का स्वागत किया गया तो कोई विशेष आश्चर्य की बात न थी। किन्तु आश्चर्य तो यह था कि इंग्लैण्ड में भी सम्पूर्ण जनमत रूस के विरुद्ध था। विदेश-मन्त्री पामर्स्टन (Palmerston) एवं 'दी टाइम्स' (The Times) ने भी रूस के विरुद्ध कठोर पग उठाने का समर्थन किया। उदार दल (Liberal Opinion) भी सताये गये पोलों (Poles) और हंगरीवासियों (Hungarians) के कष्टों से दयार्द्र होकर रूस के विरुद्ध था और इंग्लैण्ड के साम्राज्यवादी टोरी लोगों को अफगानिस्तान में रूसी षड्यन्त्रों की याद अभी ताज़ा थी और उन्हें ज्ञात था कि रूस ब्रिटिश भारत के लिए एक स्थायी खतरा है। ग्रेट ब्रिटेन के सभी वर्ग रूसी हौवे से आतंकित थे। सिनोप के हत्याकाण्ड (Massacre of Sinope) ने इंग्लैण्ड के जनमत को बहुत उत्तेजित किया यद्यपि ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री लार्ड एबर्डीन (Lord Aberdeen) अभी शान्त था। रूसी निर्दयता और विश्वासघात की सारे इंग्लैण्ड में निन्दा की जा रही थी। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लार्ड एबर्डीन के अनिश्चय के बावजूद, इंग्लैण्ड धीरे-धीरे युद्ध की ओर अग्रसर हो रहा था

फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी (मार्च १८५४) में रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी

---

1. *The Edinburgh Review*, quoted by J. A. R. Marriott, *The Eastern Question*, p. 263.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फ्रांस बिना इंग्लैण्ड को साथ लिये अकेला युद्ध मोल लेने को तैयार नहीं था। इसलिए फ्रांस में बेचैनी थी। ४ जनवरी, १८५४ को इंग्लैण्ड और फ्रांस का सम्मिलित जहाज़ी बेड़ा काला सागर (Black Sea) में उतर गया। २७ फरवरी को इंग्लैण्ड और फ्रांस ने रूस को संयुक्त इत्थिमेत्थम (Joint Ultimatum) दे दिया और माँग की गई कि रूस तुर्की के प्रदेश खाली कर दे। मार्च के अन्त में दोनों देशों ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

जनवरी के अन्त तक ज़ार निकॉलस (Tsar Nicholas) यही समझे बैठा था कि इंग्लैण्ड युद्ध में शरीक नहीं होगा। इससे भी अधिक गलतफ़हमी उसे ऑस्ट्रिया के बारे में थी। उसे विश्वास था कि ऑस्ट्रिया उसकी सहायतार्थ आयेगा। वह समझता था कि १८४९ में उसी ने ऑस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य (Austro-Hungarian Empire) को विघटित होने से बचा लिया था और १८५० में उसी ने फ्रांसिस जोसेफ़ (Francis Joseph) का ऑलमुट्ज़ (Olmutz) के कूटनीतिक संघर्ष में समर्थन किया था। किन्तु निकॉलस को निराश होना पड़ा क्योंकि राजनीति में अहसानों का कोई मूल्य नहीं होता। ऑस्ट्रिया के राजनीतिज्ञ समझ रहे थे कि रूस द्वारा डैन्यूब (Danube) के किनारे के प्रदेशों पर अधिकार हो जाने से हैब्सबर्ग-हितों को खतरा है।[1] ज़ार निकॉलस ने एक मूर्खतापूर्ण व्यंग बाण मारा कि ऑस्ट्रिया की कृतघ्नता से सारे यूरोप को आश्चर्य होगा। इस पर ऑस्ट्रिया का रूस के प्रति और अधिक सन्देह बढ़ गया, और ऑस्ट्रिया के कठोर रुख के आगे रूस को मुँह की खानी पड़ी। ऑस्ट्रिया ने रूस को दो मर्तबा इत्थिमेत्थम दिया और दोनों बार रूस दब गया क्योंकि रूस एक नये शत्रु को अपने विरुद्ध खड़ा नहीं करना चाहता था। यद्यपि ऑस्ट्रिया ने रूस के विरुद्ध युद्ध नहीं किया, फिर भी ऑस्ट्रिया की सशस्त्र तटस्थता (Hostile Neutrality) के कारण रूस की हार हुई। ऑस्ट्रिया की कटु कृतघ्नता रूसियों के दिलों में काँटों के समान चुभती रही, और १८६६ में इस कटु स्मृति के भयंकर परिणाम देखने को मिले।

ऑस्ट्रिया

ऑस्ट्रिया की सशस्त्र निष्पक्षता से ऑस्ट्रिया (Austria) को तो हानि हुई किन्तु इससे प्रशा (Prussia) ने लाभ उठाया। बर्लिन के राज-दरबार में प्रायः राजनीतिज्ञ चाहते थे कि प्रशा रूस के विरुद्ध युद्ध छेड़ दे, किन्तु बिस्मार्क (Bismarck), जिसकी कूटनीतिज्ञता को सराहा जाता था, यद्यपि वह अभी मन्त्री होने योग्य नहीं था, सदैव यही कहता था कि रूस के विरुद्ध युद्ध छेड़ना आत्मघाती होगा। वह कहता था, "रूस के साथ हमारी कोई शत्रुता नहीं है और पूर्वी समस्या (Eastern Question) में हमारा कोई हित नहीं है। तो फिर क्यों अकारण ही अपने मित्र और शक्तिशाली पड़ोसी राष्ट्र रूस के साथ हम युद्ध करने जाएँ। हम न तो फ्रांस से डरकर

प्रशा

---

१. उनके ऊपर आन्तरिक नीति का भी कुछ प्रभाव पड़ा था। १८४८ के बाद से उन्हें बराबर यह डर बना रहा था कि साम्राज्य में क्रान्ति हो सकती है। फ्रांस इटली में क्रांति की सहायता कर सकता था। रूस क्रांति की कहीं सहायता न करता। इसलिए, ऑस्ट्रिया के राजनीतिज्ञों ने यही सोचा कि रूस की अपेक्षा फ्रांस को खुश रखना ज्यादा जरूरी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न इंग्लैण्ड और ऑस्ट्रिया को प्रसन्न करने के लिए रूस से युद्ध करना आवश्यक समझते हैं।" बिस्मार्क के उपर्युक्त तर्कों ने ही प्रशा को क्रीमिया के युद्ध में फँसने से रोका। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ (Frederick William IV) ने ऑस्ट्रिया को यह आश्वासन अवश्य दिया था कि यथा आवश्यकता हम तुम्हारी सहायता करेंगे। किन्तु ऐसी आवश्यकता ही नहीं आई। प्रशा की वास्तविक तटस्थता को रूस ने अधिक सराहा। प्रशा और रूस में मित्रता बढ़ने लगी और इस मित्रता के फलस्वरूप जब दस वर्ष बाद प्रशा का ऑस्ट्रिया के साथ संघर्ष हुआ, उस समय ज़ार निकॉलस (Tsar) ने प्रशा की जी खोलकर सहायता की।

एक अन्य राज्य और भी था जिसने १८५५ में क्रीमिया युद्ध में भाग लिया, यद्यपि उस राष्ट्र की पूर्वी प्रश्न में कोई रुचि नहीं थी। सार्डीनिया पीडमौंट (Sardinia-Piedmont) का राजा इसलिए युद्ध में शरीक हुआ था कि उसे फ्रांस की मित्रता का लाभ होगा तथा उसने रूस के विरुद्ध १५,००० सैनिक इसलिए भेजे थे कि विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) का कभी-न-कभी रोम (Rome) पर अधिकार होगा।

सार्डीनिया

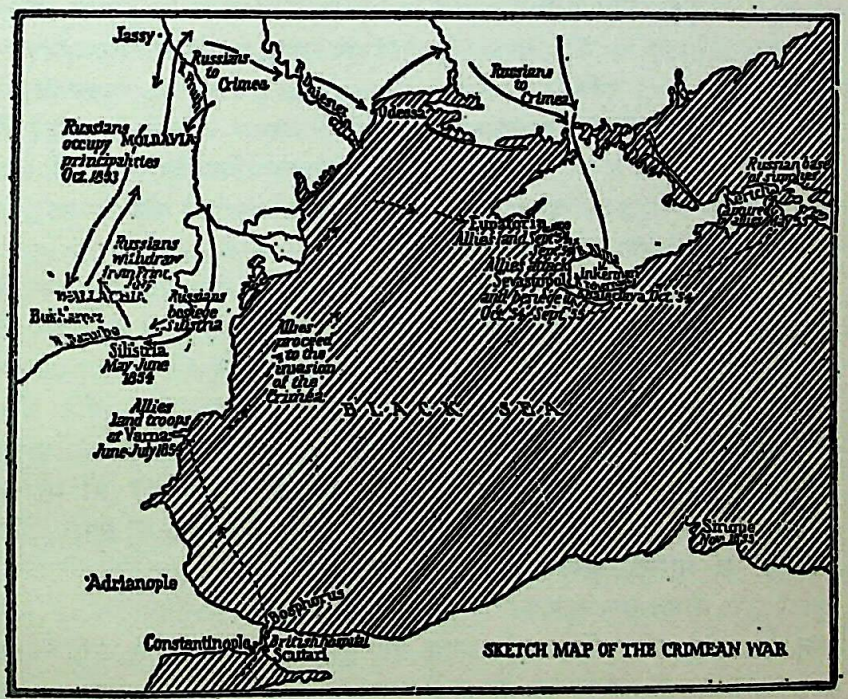

युद्ध के दो असम भाग थे। युद्ध का प्रथम भाग छोटा था जो केवल १८५४ में मार्च से लेकर जुलाई तक चला। जिन रूसी सेनाओं का तुर्की प्रदेशों पर अधिकार था, वे मार्च २३ को डैन्यूब नदी पार करके सिलिस्ट्रिया (Silistria) पर जा धमकीं और उन्होंने वहाँ घेरा डाल दिया। २९ मई को फ्रांस और इंग्लैण्ड के जंगी जहाजों ने

युद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुर्की के किनारे से प्रस्थान किया और वार्ना (Varna) में सेनाएँ उतार दीं। पाँच दिन बाद ऑस्ट्रिया ने रूस को प्रथम इत्थिमेत्थम (Ultimatum) दिया और माँग की कि उसके प्रदेशों को रूस खाली कर दे। सिलिस्ट्रिया में तुर्की सेनाओं ने बड़ी वीरता से रूस का मुकाबला किया था। अब ब्रिटिश और फ्रेंच सेनाएँ तुर्की की सहायता के लिए शीघ्र पहुँच रही थीं; इस-लिए रूस घबरा गया और उसने सिलिस्ट्रिया पर से घेरा उठा लिया; तथा वह डैन्यूब नदी पार करके वापस आ गया। अब रूस ने धीरे-धीरे अपनी सेनाओं को ऑस्ट्रिया और तुर्की के प्रदेशों से हटाना प्रारम्भ कर दिया। ज्यों-ज्यों रूस पीछे हटता जाता था, आस्ट्रिया की फौजों का बढ़ाव आगे को हो रहा था और वे रिक्त प्रदेशों पर अधिकार करती जाती थी। सारे युद्ध-काल में आस्ट्रिया की सेनाएँ इन प्रदेशों में ही पड़ी रहीं। इस प्रकार जुलाई के अन्त तक यह स्पष्ट हो गया था कि रूस का प्रथम आक्रमण विफल हो चुका है। रूस की कमजोरी से प्रोत्साहित होकर मित्र राष्ट्रों ने रूस के समक्ष चार माँगें रखीं जिन्हें चार शर्तें (Four Points) कहा जाता है। इन चार शर्तों पर रूस का स्पष्टीकरण माँगा गया। ये चार माँगें निम्नलिखित चार तथ्यों से सम्बन्ध रखती थीं—(१) ग्रीक धार्मिक स्थानों पर रूस का संरक्षण; (२) काले सागर (Black Sea) में रूस के अधिकार; (३) डैन्यूब नदी में रूस के व्यापारिक विशेषा-धिकार; और (४) प्रदेशों या राज्यों (principalities) में रूस की मध्यस्थता के अधिकार। प्रारम्भ में तो रूस हिचका किन्तु फिर नवम्बर में उसने मित्रराष्ट्रों की बात मान ली। रूस ने इन माँगों का उत्तर देने में बहुत अधिक देर कर दी थी और सितम्बर में ही युद्ध का दूसरा दौर प्रारम्भ किया जा चुका था और मित्रराष्ट्रों ने क्रीमिया पर आक्रमण कर दिया था।

युद्ध का प्रथम भाग (मार्च-जुलाई, १८५४)

क्रीमिया पर अत्यन्त कौशल के साथ आक्रमण किया गया। इस बार रूस के मध्य भाग पर आक्रमण नहीं किया गया क्योंकि इसी कारण नेपोलियन की हार हुई थी। अब की बार मित्रराष्ट्र रूस के निचले भाग पर खून चूसने वाले चमगादड़ की तरह चिपक गए और उन्होंने धीरे-धीरे खून चूसकर रूस को थका देने की नीति का आश्रय लिया। रूस जैसे विशाल देश में जहाँ न रेले थीं और न अच्छी सड़कें, रूस को रसद और यातायात की अपार कठि-नाइयों का सामना करना पड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि मित्रराष्ट्रों को भी समुद्री मार्गों द्वारा भोजन और अन्य सामान प्राप्त करने में भारी असुविधा थी। किन्तु रूस के सामने भी भोजन और अन्य रसद युद्ध-क्षेत्र में पहुँचाने की भारी समस्या थी, विशेष रूप से जब कि रूस कीचड़ से भरा था। मित्रराष्ट्रों में मिस फ्लोरेंस नाइटिंगेल (Miss Florence Nightingale) ने घायलों की परिचर्या में भारी नाम कमाया। नाइटिंगेल के प्रचार से ब्रिटेन के लोगों को पता चला कि ब्रिटिश सिपाहियों को अपरिचित जलवायु, अपर्याप्त भोजन एवं चिकित्सा साधन, अयोग्य प्रबन्ध, दीर्घसूत्रता (Red Tapism) और अधिकारियों के संकुचित दृष्टिकोण के

युद्ध का द्वितीय भाग सितम्बर १८५४ से सितम्बर १८५५ तक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण अपार कष्ट सहन करने पड़े थे। किन्तु रूस की कष्ट गाथाएँ और भी अधिक थीं; अन्तर केवल यह था कि रूसी सिपाहियों की कष्ट गाथाएँ कम सुनने को मिली थीं।

सितम्बर १८५४ में मित्रराष्ट्रों ने एल्मा (Alma)[1] नदी पर रूसियों को हराकर क्रीमिया (Crimea) में प्रवेश किया। इसके बाद मित्रराष्ट्रों ने सिबेस्टोपोल (Sebastopol) को चारों ओर से घेर लिया। बाद में युद्ध का केन्द्र यही रहा। केवल कभी-कभी बाल्टिक सागर और आर्मीनिया (Armenia) में छोटी-छोटी लड़ाइयाँ हुईं किन्तु सारा क्रीमिया युद्ध वास्तव में मित्रराष्ट्रों द्वारा सिबेस्टोपोल का घेरा और रूसियों द्वारा उस घेरे को तोड़ने का प्रयत्न रहा। साल भर तक यह युद्ध इसी प्रकार चलता रहा। इस युद्ध के सेनापति एक के बाद एक दुर्भाग्य का शिकार हुए। लार्ड रैगलन (Lord Raglan) ब्रिटिश कमाण्डर-इन चीफ एक बहादुर सिपाही था। वह विनीत और सभ्य तथा भला आदमी था, वह चतुर और नीति-कुशल मनुष्य था किन्तु उसमें एक दोष यह था कि वह जल्दी ही दूसरों की बातों में आ जाता था। वह प्रायद्वीप के युद्ध (Peninsular War) में भारी यश कमा चुका था और ड्यूक ऑफ वेलिंगटन की कमान में भी उसने भारी अनुभव अर्जित किया था किन्तु उसके बाद चालीस वर्षों तक वह सेना-कार्यालय के कामों में फँसा रहा था। ब्रिटिश समाचार-पत्रों में उसकी काफी आलोचना हुई और १८५५ के ग्रीष्म काल में निराशा और पेचिश (dysentery) के कारण उसकी मृत्यु हो गई। सेंट अर्नाड (Saint Arnaud) प्रथम फ्रेंच सेनापति था। इतिहासकार किंगलेक (Kinglake) ने उसे फ्रेंच नाट्य-शाला के लिए उपयुक्त पात्र समझा था, वह एक भंयकर बीमारी से पीड़ित था और सिबेस्टोपोल (Sebastopole) पर अधिकार होने से पहले उसकी मृत्यु सितम्बर में हो गई। सेंट अर्नाड के स्थान पर कैनरॉबर्ट (Canrobert) नामक फ्रेंच जनरल आया। वह आवश्यकता से अधिक चौकन्ना था और डरपोक भी था। उसने मई १८५५ में त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर पेलिसीर (Pelissier) आया। फ्रांस का वही प्रथम सेनापति था जिसे हम योग्य सेनापति कह सकते है।

रूस की ओर से टाडलीबेन (Todleben) ने स्थल-युद्ध में और एडमिरल कॉर्निलॉव (Admiral Kornilov) ने जल-युद्ध में भारी दक्षता प्रदर्शित की।[2] किन्तु मेंशिकोफ (Menschikoff) उतना दक्ष सेनापति नहीं था। मित्रराष्ट्रों द्वारा गोलाबारी करने के प्रथम तीन सप्ताहों में रूस की ओर से मित्रराष्ट्रीय घेरे को तोड़ने के तीन प्रयत्न किए गए। रूसियों ने बेलाक्लावा (Balaclava और इन्करमैन (Inkerman) पर आक्रमण करके मित्रराष्ट्रीय घेरे को तोड़ने का

बेलाक्लावा का युद्ध (अक्टूबर २५)

---

१. एल्मा (Alma) एक तातारी शब्द है जिसका अर्थ है सेब (Apple)। इससे ज्ञात होता है कि क्रीमिया का रूसीकरण कितना कम हुआ था।

2. Prof. C. R. Beazley, *Nineteenth-century Europe and Britain.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्करमैन का युद्ध (नवम्बर ५)

प्रयत्न किया किन्तु रूस की पराजय हुई। बेलाक्लावा और इन्करमैन के युद्ध ब्रिटिश इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन युद्धों के बाद मित्रराष्ट्रों ने सारे जाड़ों के मौसम क्रीमिया पर घेरा डाले रखा। क्रीमिया युद्ध में ब्रिटिश घायलों की देखभाल का कार्य मिस फ्लोरेंस नाइटिंगेल (Miss Florence Nightingale) के सुपुर्द था। अकथ परिश्रम के बाद इस साहसी महिला ने स्कूटरी (Scutari) में घायलो की आदर्श सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध और संगठन किया। दूसरी ओर लियो टॉल्सटॉय (Leo Tolstory) एक रूसी स्वयं-सेवक था। उसने युद्ध की यातनाओं की कहानियाँ अपने रूसी साथियों को सैनिक गोष्ठी-भवनों या शिविरों में सुनाना प्रारम्भ किया। वसन्त और प्रारम्भिक ग्रीष्म काल में मित्रराष्ट्रों की ओर से भी और रूस की ओर से भी प्रयत्न और प्रति-प्रयत्न प्रारम्भ हुए। जून में मित्रराष्ट्रों ने मालाकॉफ (Malakoff) और रीडन (Redan) को लेने का प्रयत्न किया किन्तु टॉडलीबेन (Todleben) ने मित्रराष्ट्रीय प्रयत्नों को विफल कर दिया। रूस की ओर से घेरे को तोड़ने का अन्तिम प्रयत्न टेचरनाया (Tchernaya) नदी पर किया गया। किन्तु प्रधान रूप से सार्डीनिया की सेना की वीरता के कारण यह प्रयत्न भी असफल रहा। सितम्बर के प्रारम्भ में मित्रराष्ट्रों ने पुनः मालाकॉफ (Malakoff) पर आक्रमण किया जिसमें रूस की पराजय हुई और अगले दिन ९ सितम्बर को रूसियों ने सेवेस्टोपोल (Sebastopol) के अपने गोला बारूद के भण्डार में आग लगा दी और इस प्रकार सेवेस्टोपोल का पतन हो गया।

किन्तु १८५५ की रूस की पराजय के पीछे कुछ असैनिक कारण भी थे जिन्होंने युद्ध की गति पर निश्चित रूप से प्रभाव डाला था। एबर्डीन के स्थान पर अब पामर्स्टन (Palmerston) ब्रिटिश प्रधानमन्त्री बना। पेलिसियर (Pelissier) फ्रेंच सेनापति बनकर आया और सार्डीनिया (Sardinia) ने बहुसंख्यक सेना मित्रराष्ट्रों की सहायतार्थ भेज दी। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया दुहरी चाल चल रहा था तथा नेपोलियन तृतीय (Napoleon III) ब्रिटेन की मैत्री से पीछा छुड़ाना चाहता था। रूस की पराजय का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि फरवरी १८५५ में ज़ार निकॉलस (Tsar Nicholas) की मृत्यु हो गई। वास्तव में रूस की युद्ध-व्यवस्था का आधार ही यह था कि जनवरी और फरवरी की कठोर सर्दी में मित्र-राष्ट्रों को हरा दिया जाय किन्तु फरवरी में जार की मृत्यु से सारी आशाएँ समाप्त हो गईं। जनवरी और फरवरी ने स्वयं ज़ार को ही समाप्त कर दिया और रूस की हार हो गई।

ज़ार निकॉलस (Tsar Nicholas) ने अपने पुत्र से कहा था, "तुम दासों को मुक्त कर दो और शत्रुओं से सन्धि कर लो। मैं तो जैसा हूँ, वैसा ही रहूँगा, अब बदल नहीं सकता।" ज़ार निकॉलस के उपर्युक्त शब्दों से उसके जीवन की निराशा टपकती है। वह उस युग का आदमी था जो बीत चुका था। वह एक सच्चा ईसाई था, बहादुर राजा था तथा रूस और रूसी कलाओं का प्रेमी था। उसे रूसी भाषा और रूसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य से प्रगाढ़ प्रेम था। उसकी नसों में डेकाब्रिस्टों अथवा विद्रोहियों (Dekabrists)[1] का खून था जिन्होंने १८२५ में उसके राज्यारोहण के समय बगावत की थी। उसे लोकतन्त्र और क्रांति से घृणा थी, अतः अपने जीवन भर वह लोकतन्त्र और क्रांति का अपने संकुचित दिमाग और गूढ़ उपायों द्वारा विरोध करता रहा। वह भी अपने भाई एलैक्जैंडर प्रथम (Alexander I) की तरह स्वभावतः संकुचित दिमाग का व्यक्ति था। अपने भाई के समान ही वह गूढ़ और गुप्त कार्यवाहियों का प्रायः आश्रय लिया करता था, वह स्वैरतन्त्र (Autocracy) में विश्वास करता था और सम्राट की निरंकुश शक्ति का प्रतिपादक था, इसलिए उसका कहना था कि उसे भगवान् की ओर से संसार में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए भेजा गया है। यद्यपि उसको अपने पांडित्य पर और स्वैरतन्त्र पर अभिमान था और यद्यपि वह सैनिक शान और तड़क-भड़क में रुचि लेता था किन्तु न तो उसके शासन-प्रबन्ध में ईमानदारी थी और न उसकी सेना में श्रेष्ठ अनुशासन था। अपने जीवन के संध्या-काल में उसे सूझा कि वह अपने समय के लिए अनुपयुक्त है; किन्तु अब न तो वह अपने आपको बदल सकता था और न काल को ही बदल सकता था। वह न तो रेलें बना सकता था और न किसी को क्षमा कर सकता था। वह न तो हार स्वीकार कर सकता था और न लोकतन्त्र से समझौता ही कर सकता था। वह धीरे-धीरे शक्तिहीन हो रहा था। उसने अपने स्वास्थ्य के लिए किंचित् चिन्ता नहीं की और इस प्रकार मृत्यु का आलिंगन किया।

ज़ार निकॉलस की मृत्यु के तुरन्त बाद शान्ति स्थापित नहीं हुई, किन्तु उसके उत्तराधिकारी ज़ार एलैक्जैंडर द्वितीय (Tsar Alexander II) के ऊपर जो राजनीतिक और सैनिक दबाव पड़ रहे थे, उन्हें वह बहुत दिनों तक टाल नहीं सकता था। नवम्बर में रूसियों ने आर्मीनिया के कार्स (Kars) नामक किले पर अधिकार कर लिया था अतः रूस का आत्मसमर्पण उतना अपमानजनक नहीं रहा जितना अन्यथा होता; ऑस्ट्रिया ने दूसरा इत्थिमेत्थम (Ultimatum) दिया जिसमें रूस को सन्धि की शर्तें भी दी गईं। रूस ने स्वीकार कर लिया और मार्च, १८५६ में पेरिस की सन्धि के अनुसार क्रीमिया का युद्ध बन्द हो गया।

पेरिस की सन्धि की मुख्यतः तीन धाराएँ थीं। प्रथम धारा के अनुसार काला सागर सभी राष्ट्रों के लिए उन्मुक्त हो गया। उसको तटस्थ घोषित कर दिया गया। रूस या अन्य किसी शक्ति को यह अधिकार नहीं रह गया कि वह काले सागर में युद्ध के पोत ला सके या उसके तट पर शस्त्रगृह बना सके।

पेरिस की सन्धि (मार्च १८५६)

किन्तु प्रत्येक राष्ट्र के सौदागरी जहाज़ काले सागर में आ-जा सकते थे। इसी प्रकार डैन्यूब को भी अन्तर्राष्ट्रीय नदी घोषित कर दिया गया और उसमें सभी देशों की नौकाएँ आ-जा सकती थीं। द्वितीय धारा के अनुसार रूस ने तुर्की की कट्टर ईसाई प्रजा के संरक्षण

१. डेकाब्रिस्ट लोग (Dekabrists) राज-विद्रोही थे, जिनकी संख्या रूसी सेना में बहुत थी। इन्होने १८२५ के दिसम्बर में विद्रोह किया था। दिसम्बर को रूसी भाषा में डेकाबार (Dekabre) कहते हैं इसलिए इनका नाम डेकाब्रिस्ट लोग पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अपना अधिकार त्याग दिया। तृतीय धारा के अनुसार रूस द्वारा दक्षिणी बैसारेबिया (Bessarabia) छोड़ देने से डेन्यूब (Danube) पर से रूसी सीमान्त हट गया। अन्ततः, तुर्की (Turkey) को यूरोप के राष्ट्र समूह (Concert) में सम्मिलित कर लिया गया और यूरोप की बड़ी शक्तियों ने मिलकर तुर्की साम्राज्य की रक्षा की गारंटी कर ली; और इसके बदले में सुलतान ने अपनी ईसाई प्रजा की स्थिति को सुधारने का वचन दिया। उसने यह भी वचन दिया कि तुर्की का शासन श्रेष्ठ और निष्पक्ष होगा। किन्तु बाद की घटनाओं ने सिद्ध किया कि उसने अपने वचनों का पालन नहीं किया। सर्विया (Serbia) की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया।

प्रत्येक घटना का कुछ-न-कुछ परिणाम अवश्य होता है। क्रीमिया युद्ध के परिणामस्वरूप रूस की तुर्की सम्बन्धी योजनाओं को रोक दिया गया। रूस की महान् मान-हानि हुई। तुर्की को यूरोप की शक्तियों के संयुक्त संरक्षण में जीवन का नया पट्टा मिल गया। क्रीमिया युद्ध के कारण नेपोलियन तृतीय की धाक जम गई, इंगलैण्ड के ऊपर भारी राष्ट्रीय ऋण हो गया और ऑस्ट्रिया ने एक महान् देश (रूस) की शत्रुता मोल ले ली।

क्रीमिया युद्ध के अप्रत्यक्ष परिणाम और भी दूरगामी थे। क्रीमिया की कीचड़ में से एक नए इटली (Italy) का जन्म हुआ और कुछ कम स्पष्ट रूप से एक नये जर्मनी (Germany) का भी जन्म इसी से हुआ। इस युद्ध का रूस पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। ज़ार एलैक्जैंडर द्वितीय ने रूस के अन्दर बहुत से सुधार कर डाले। रूस का बढ़ाव यूरोप की ओर रुक गया किन्तु अब रूस एशिया की ओर बढ़ने लगा। बल्कान प्रदेशों (Balkans) में सुधार और पुनर्निर्माण की लहर दौड़ गई। अब यूरोप के ऊपर भारी उत्तरदायित्व आ पड़े थे और अब यूरोप को नए मार्गों की तलाश होने लगी। यूरोपीय शक्तियों ने वियना से जिस महल का निर्माण किया था, उसकी मानो आधारशिला ही डोल उठी।

२. इटली का एकीकरण (१८५०-७०)
(The Unification of Italy, 1850-70)

क्रीमिया युद्ध का प्रथम फल था इटली का एकीकरण। हम देख ही चुके हैं कि इटली के देशभक्तों की लड़ाई १८४९ में किस प्रकार विफल हो गई थी। सार्डीनिया की ऑस्ट्रिया के साथ लड़ाई नोवारा (Novara) में अन्त हुई किन्तु परिणाम था हार। चार्ल्स एलबर्ट (Charles Albert) ने राजसिंहासन त्याग दिया और कुछ ही महीनों में उसकी मृत्यु पुर्तगाल के एक धार्मिक मठ में हो गई। गैरीबाल्डी महान् साहसी और वीर था। उसने अपने आप को देश की स्वतन्त्रता के लिए अर्पित कर दिया। वह अपने चार हजार स्वयं सेवकों के साथ रोम से हट गया। मेजिनी (Mazzini) केवल चार महीनों की हुकूमत करने के पश्चात् लन्दन (London) आया और कार्लायल परिवार में चैल्सि (Chelsea) में रहने लगा। श्रीमती कार्लायल ने लिखा है, "उसकी सफेद दाढ़ी थी, किन्तु उस

१८४९ में इटली के देशभक्तों की दुःखमय असफलता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दाढ़ी से गणतन्त्रवादियों के शुष्क और अव्यावहारिक आदर्शवाद की झलक नहीं मिलती थी। उसने मुझसे विनम्र प्रार्थना की कि मैं उस पर विश्वास करूँ। प्रारम्भ में उस पर विश्वास करना मेरे लिए कठिन हो गया। अन्यथा उसकी आकृति ऐसी ही है जैसी सदैव थी। वह उतना ही प्यारा, कपटहीन और उच्चतम व्यक्ति था। वह अपनी ओर बरबस सभी को आकर्षित करता है। उसके बात करने का ऐसा ढंग है मानो वह सब पर छा जाता है। वह चाहता है कि सभी उसकी बातों को सुनते ही रहें।" पोप पायस नवम (Pius IX) ईश्वर की अनुकम्पा से और लुई नेपोलियन की सशस्त्र सहायता से रोम का अधिकार प्राप्त कर चुका था। वह लोकतन्त्र और उदारवाद का कट्टर शत्रु था और फ्रेंच सैनिक उसकी राजधानी की रक्षार्थ डटे हुए थे। वेनीशियन गणराज्य (Venetian Republic) कठोर संघर्ष के बाद आत्मसमर्पण करने को बाध्य हुआ और डेनियल मैनिन (Daniele Manin) को पेरिस (Paris) में शरण लेनी पड़ी जहाँ बच्चों को इटालियन भाषा पढ़ाकर वह अपना पेट पालने लगा।

किन्तु उत्तर में पीडमौंट-सार्डीनिया (Piedmont-Sardinia) के राज-सिंहासन पर विक्टर इमैन्युएल द्वितीय (Victor Emmanuel II) बैठा। वह राज-नीति के दाँव-पेचों से पूर्णतया अपरिचित था। वह तो आल्प्स (Alps) पर्वत में शिकारी का जीवन बिताने का शौकीन था। तथापि; वह एक वीर सिपाही था, सच्चा देशभक्त था और ईमानदार राजा था। वह समझदार राजनीतिज्ञ था। ट्यूरिन की संसद् से यह प्रतिज्ञा निकलकर चारों ओर गूँजने लगी कि इटली के भूतकालीन देश-भक्तों के प्रयत्न विफल नहीं हुए। १८५० के बसन्त में यह आशा और भविष्यवाणी गूँजने लगी कि पीडमौंट द्वारा ही इटली का उद्धार होगा। अब इटली के देशभक्तों को आशाएँ बँधने लगीं और वे पीडमौंट (Piedmont) की ओर चले। अब निर्वा-सित देशभक्तों को पीडमौंट की राजधानी अपनी ओर आकर्षित करने लगी। कैमिलो बेन्सो, काउण्ट कैवूर (Camillo Benso Count Cavour) शान्त प्रकृति का सुगठित कमजोर आँखों वाला एक ठिगने कद का आदमी था। वह अच्छी प्रकृति का सीधा-सादा भद्दे से कपड़े पहनने वाला आदमी था। उसको देखकर कोई यह अन्दाजा नहीं लगा सकता था कि वह अपने समय का महान् राजनीतिज्ञ था। उसने कहा था, "यह रियासत (पीडमौंट) इटली की सम्पूर्ण शक्ति को और इटली के सारे देशभक्तों को अपने चारों ओर एकत्र कर लेगी और फिर वह इस स्थिति में हो जाएगी कि इटली की उन्नति करेगी।" बिस्मार्क से केवल एक दशक पूर्व कैवूर (Cavour), सार्डीनिया का प्रधान मन्त्री बना। बिस्मार्क (Bismarck) के समान ही कैवूर भी महान् था। उसके निर्देशन में सार्डीनिया की नीति का संचालन ऐसे ओज और आत्मविश्वास के साथ हुआ कि थीयर्स (Thiers) को यह कहना पड़ा, "क्या पीडमौंट निवासी समझते हैं कि नोवारा (Novara) के युद्ध में विजय उनके कारण प्राप्त हुई थी?"

देशभक्तों की आशाएँ पीडमौंट की ओर

कैवूर व्यवस्थित और संवैधानिक शासन-प्रणाली का अंग्रेजों के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुयायी था इसलिए उसके मित्र मज़ाक में उसको 'माई लार्ड कैवूर' (Milord Cavour) कहा करते थे। उसने अपने सामने यह लक्ष्य रक्खा कि पीडमौंट में संसदीय शासन-प्रणाली का विकास होना चाहिए। उसने पीडमौंट में रेलें बनाईं और व्यापार उन्नत किया। उसने देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया, सेना का सुदृढ़ आधार पर संगठन किया। समाज में सबको समान स्तर पर लाने का उसने प्रयत्न किया तथा चर्च की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया। यद्यपि उसके आन्तरिक सुधारों का भी इतना महत्त्व है कि जिनके आधार पर उसको अत्यन्त योग्य मन्त्री समझा जाता है, परन्तु उसकी इटली सम्बन्धी और विदेश-नीति ने तो उसके नाम को सदा के लिए अमर कर दिया है।

इटली के देशभक्तों के हृदय में इटली के पुनर्निर्माण की भारी लगन थी। मेज़िनी (Mazzini) एक अव्यावहारिक आदर्शवादी था, तथा गैरीबाल्डी (Garibaldi) महान् लड़ाका था। किन्तु कैवूर (Cavour) के बिना मेज़िनी (Mazzini) का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निष्फल लड़ाई और निराशा के इतिहास में एक अध्याय और बढ़ा देते। वास्तव में कैवूर द्वारा ही इटली का एकीकरण सम्भव हुआ। यद्यपि कैवूर, इटली को मेज़िनी और गैरीबाल्डी के समान ही प्यार करता था किन्तु इटली का एकीकरण किस प्रकार प्राप्त किया जाय, अथवा संयुक्त इटली का स्वरूप क्या हो, इस सम्बन्ध में कैवूर के विचार गैरीबाल्डी और मेज़िनी के विचारों से मेल नहीं खाते थे। कैवूर उदार राजतन्त्र का पोषक था और विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) का सेवक था। उसकी मेज़िनी के गणतन्त्रीय विचारों और क्रांतिकारी साधनों के प्रति बिलकुल सहानुभूति नहीं रह गई थी, यद्यपि बाद में उसने भी ऐसे साधन प्रयुक्त किए थे। किन्तु साथ ही वह यह भी नहीं चाहता था कि पोप (Pope) की अध्यक्षता में इटली की रियासतों का संघ बने। उसकी गैरीबाल्डी (Garibaldi) के प्रति भी सहानुभूति न थी क्योंकि गैरीबाल्डी अनुभवहीन था। कैवूर राजनीतिक आवश्यकताओं को समझता था और वह यह भी समझता था कि आत्म-त्याग का भारी राजनीतिक महत्त्व होता है। यह कैवूर के महान् मस्तिष्क का कार्य था जिसने मेज़िनी (Mazzini) की प्रेरणा को कूटनीतिक शक्ति में गतिमान कर दिया तथा गैरीबाल्डी (Garibaldi) की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र के रूप में परिणत कर दिया। इस प्रकार कैवूर के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही मेज़िनी और गैरीबाल्डी जैसे गलत दिशा में कार्य करने वाले देशभक्तों को भी राष्ट्र के लिए सही दिशा में लगाया जा सका।

कैवूर की इटली संबंधी नीति

इटली को ऑस्ट्रिया की अधीनता से मुक्त करना और हाऊस ऑफ सैवॉय (House of Savoy) की अधीनता में उसे संगठित करना, यही कैवूर (Cavour) की नीति थी। वह समझता था कि ऑस्ट्रिया को बाहर निकाल देने पर ही इटली का एकीकरण सम्भव होगा। उसकी नीति इस विश्वास पर आधारित थी कि ऑस्ट्रिया का प्रभाव इटली से तभी हटाया जा सकता है जब यूरोप की अन्य शक्तियों की सहायता प्राप्त कर ली जाय। इसके अतिरिक्त इटली के प्रश्न के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान के मार्ग में और भी अनेक बाधाएँ थीं, जैसे ऑस्ट्रिया का शासन, अनेक स्वतन्त्र राजाओं की अपनी-अपनी रुचियाँ अथा इच्छाएँ एवं पोप की शक्ति एवं प्रभाव; इसलिए अकेली सार्डीनिया (Sardinia) की छोटी सी रियासत बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के, बिना यूरोपीय राज्यों की सम्मिलित मन्त्रणा के और बिना युद्ध के कैसे इटली का एकीकरण कर सकती थी ? सामान्य विद्रोहों (Popular Revolts) से इतनी बड़ी सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं था। अतः कैवूर ने इटली के प्रश्न को ऑस्ट्रिया की गृहनीति की गूढ़ता में से निकालकर यूरोपीय अभिरुचि का प्रश्न बना दिया। १८१५ से बराबर इटली को ऑस्ट्रिया का घरेलू मामला समझा जाता रहा था। अब कैवूर के प्रयत्नों से इटली का प्रश्न यूरोप का प्रश्न बन गया था जिसके लिए यूरोप की बड़ी शक्तियों में आगे चलकर उसी प्रकार युद्ध हुआ जिस प्रकार कि तुर्की साम्राज्य की अक्षुण्णता के लिए अथवा यूरोपीय शक्ति-संतुलन के लिए उनमें युद्ध हुआ था।

इस प्रकार कैवूर ने अपने सामने दो लक्ष्य रखे—प्रथमतः इटली का प्रश्न यूरोप का राजनीतिक प्रश्न बन जाय; और द्वितीयतः किसी विदेशी सत्ता से मित्रता हो जाय। वह सोचता था कि विदेशी मित्र का होना आवश्यक है और इटली के प्रश्न पर यूरोपीय राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करना भी आवश्यक है।

बौद्धिक एवं साहित्यिक प्रचार

सबसे पहले उसने बौद्धिक और साहित्यिक प्रचार द्वारा पश्चिमी देशों के लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यह प्रचार इतना शक्तिशाली रहा कि ऑस्ट्रिया को स्वरक्षात्मक मौन धारण करने पर विवश होना पड़ा। ट्यूरिन (Turin) में इस समय जितने निर्वासित देशभक्त थे, उनको लगातार लिखने के लिए उत्साहित किया गया और इन देशभक्तों के लेख विदेशी पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। मॉर्निंग पोस्ट (Morning Post), दी टाइम्स (The Times), ली मैटिन (Le Matin) और ला इण्डिपेण्डेन्स बेल्जे (L' Independence Belge) आदि प्रमुख यूरोपीय पत्रिकाओं में जब ये लेख छपने लगे तो मानो पत्रकारिता के माध्यम से तो इटली की स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली गई। ब्रिटिश सरकार की पीडमौंट के प्रति सहानुभूति थी। सर जेम्स हडसन (Sir James Hudson) को परम मित्र के रूप में ब्रिटिश राजदूत बनाकर भेजा गया और ट्यूरिन (Turin) ने उसका स्वागत किया। फ्रांस में यद्यपि पोप का जोर था और फ्रांस द्वारा रोम पर अधिकार होने के कारण भी स्थिति में पर्याप्त जटिलता थी; फिर भी ऐसा विश्वास किया जाता था कि फ्रांस का तत्कालीन सम्राट पीडमौंट (Piedmont) के प्रति सहानुभूति रखता था क्योंकि इस देश में १८३१ में वह गुप्त रूप से कार्बोनिरी संस्था का सदस्य रह चुका था और युद्ध कर चुका था तथा उस युद्ध में उसका भाई भी मारा गया था। इसलिए उसने अपनी घोषित नीति के विरुद्ध कैवूर को कूटनीतिक सहायता देने का वचन दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब क्रीमिया का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो मानो वह कैवूर के लिए ईश्वर का भेजा हुआ सुअवसर था। क्रीमिया युद्ध के कारण कैवूर को भारी कूटनीतिक सफलता अनायास ही प्राप्त हो गई। वह आँग्ल-फ्रांसीसी गुट में सम्मिलित हो गया तथा उसको इंग्लैंड और फ्रांस ने बराबरी का दर्जा प्रदान किया। इग्लैंड ने पीडमौंट को आर्थिक सहायता देनी चाही तो उसने गर्व के साथ अस्वीकृत कर दी। क्रीमिया युद्ध में कैवूर ने १५,००० चुने हुए श्रेष्ठ सैनिक कप्तान लॉ मारमोरा (La Marmora) की कमान में भेजे जिन्होंने टैचरनाया (Tchernaya) के युद्ध में रूस को करारी चोट दी। इस सेवा के उपलक्ष्य में कैवूर को पेरिस के शान्ति सम्मेलन में एक स्थान मिला। यद्यपि इसका ऑस्ट्रिया द्वारा विरोध हुआ, किन्तु कैवूर ने उस विरोध को शान्त कर दिया। इस प्रकार पेरिस के शान्ति सम्मेलन में कैवूर को इंग्लैंड, फ्रांस, रूस और ऑस्ट्रिया के प्रतिनिधियों के साथ बराबर की स्थिति में बैठने का सुअवसर हाथ लगा। इस अवसर पर फ्रेंच विदेश मन्त्री वैलेवस्की (Walewsky)[1] ने कैवूर से कहा, "तुम इतने चतुर हो कि तुमने ऐसे मामले में भी प्रवेश पा लिया जि तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है।" फिर भी कैवूर ने पेरिस के शान्ति-सन्धि-सम्मेलन में इस प्रकार अपना रोल अदा किया कि सारे यूरोप के ऊपर यह बात रोशन हो गई कि जिन बातों का प्रभाव इटली पर पड़ता है उन बातों का पीडमौंट सार्डीनिया पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता अर्थात् इटली और सार्डीनिया दो नहीं हैं। सार्डीनिया को पूर्वी समस्या में कोई रुचि नहीं थी और न रूस से उसकी लड़ाई ही थी। परन्तु कैवूर अवसर से लाभ उठाकर साहसपूर्वक इंग्लैंड और फ्रांस से जा मिला था। यह जोखिम का कार्य था किन्तु कैवूर चाहता था कि सार्डीनिया की यूरोपीय राज्यों में गणना होने लगे और इटली के एकीकरण का प्रश्न यूरोपीय शक्तियों के बीच कूटनीति का प्रश्न बन जाय और यह भी चाहता था कि कम-से-कम एक बड़ी यूरोपीय शक्ति उसके पक्ष में हो जाय। कैवूर ने यह राजनीतिक जुआ इसलिए खेला था कि उसे नेपोलियन तृतीय की सहानुभूति का विश्वास था और उसे यह भी भान था कि वह इंग्लैंड और फ्रांस के ऊपर अहसान कर चुका है। कैवूर ने इंग्लैंड और फ्रांस की रूस के विरुद्ध सहायता करके जो जुआ खेला था उसमें न कोई शर्त थी, न उसमें कोई गुप्त रहस्य था और न किसी ओर से कोई गारण्टी थी। इस शान्ति सम्मेलन से लौटने पर कैवूर को केवल यह सान्त्वना मिली कि लार्ड क्लैरेंडन (Clarendon) ने सम्मेलन में कैवूर की प्रशंसा की थी। दूसरे जब सम्मेलन समाप्त हो रहा था तो फ्रेंच सम्राट् नेपोलियन तृतीय ने यह शुभ भविष्यवाणी कर डाली कि "सम्भवतः शान्ति चिरस्थायी न रहे।"

क्रीमिया का युद्ध

फ्रांस के साथ मैत्री

वास्तव में कैवूर अपने उद्देश्यों में सफल हुआ। इटली की स्वतन्त्रता का प्रश्न अब यूरोपीय महत्त्व का बन चुका था और नेपोलियन तृतीय समझता था कि वह

१. वैलेवस्की (Walewski) का पिता नेपोलियन था और उसकी माता पोलैंड निवासिनी काउण्टेस वैलेवस्का (Polish Countess Walewska) थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए वचनबद्ध है।

दो वर्षों तक कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई। किन्तु यकायक जब १४ जनवरी, १८५८ को मेजिनी, (Mazzini) के गणतंत्री शिष्य ऑर्सिनी (Orsini) नामक एक इटालियन ने नेपोलियन तृतीय की हत्या का प्रयत्न किया तो कैवूर की सारी योजनाओं पर मानो तुषारपात हो गया। यह १८०० की दुर्घटना की पुनरावृत्ति थी और नेपोलियन की भाँति ही तृतीय नेपोलियन भी बाल-बाल बच गया, यद्यपि उसके कई अंगरक्षक मारे गये। कुछ दिनों तक पेरिस और ट्यूरिन के राज-दरबारों के बीच के सम्बन्ध अधिक अच्छे न रहे और तब फ्रेंच सम्राट् इंग्लैंड से नाराज हो गया, क्योंकि बाद में पता लगा कि इंग्लैंड में ही नेपोलियन को मार डालने का षड्यन्त्र रचा गया था और वह बम्ब (Bomb) भी इंग्लैंड में ही तैयार किया गया था। अब इटली की ओर फ्रेंच सम्राट् की करुणा जागी। ऑर्सिनी (Orsini) ने जेल से फ्रेंच सम्राट् को एक पत्र लिखा, "जब तक इटली स्वतन्त्र नहीं हो जाता तब तक न तो यूरोप में शान्ति होगी और न तब तक श्रीमन! आपको शान्ति मिल सकती है। सम्राट् महोदय! आप मेरे अभागे देश को स्वतन्त्र कराइये, तो २५० लाख इटालियन नागरिक आपको दुआ देंगे।" इस पत्र को फ्रेंच राज-दरबार में ऑर्सिनी के वकील जूल्स फेवर (Jules Favre) ने पढ़कर सुनाया। इस पत्र से सम्राट् और प्रजा सभी द्रवित हो गये। जिस समय ऑर्सिनी की मृत्यु हुई, उसके होठों पर "इटली जिन्दाबाद" (*Vive L' Italie*) के शब्द मुस्करा रहे थे। उसकी कब्र से वह मौन प्रेरणा निकली जिसने इटली को मुक्त कर दिया।

मई १८५८ में डॉ० कौन्यो (Dr. Conneau) कैवूर से मिले। उन्होंने कैवूर को बताया कि सम्राट् नेपोलियन तृतीय लगभग एक मास प्लौम्बियर्स (Plombieres) में बितायेंगे। यह स्थान सार्डीनिया की सीमा के अति निकट था। द्वितीय गणराज्य की कूटनीति का यही तरीका था। अतः बिना औपचारिक निमन्त्रण के ही कैवूर ने स्विट्ज़रलैण्ड में छुट्टी मनाने का निश्चय किया और वहाँ से वह चुपके से प्लौम्बियर्स में पहुँच गया। वहाँ फ्रेंच सम्राट् और कैवूर की भेंट हुई। इस भेंट में निश्चय किया गया कि इटली को संगठित किया जायगा और ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध होगा। इस प्रकार नेपोलियन और कैवूर ने गुप्त रूप से इटली के भाग्य का फैसला कर लिया।

प्लौम्बियर्स की सन्धि (जून-जुलाई १८५८)

किन्तु नेपोलियन इटली को स्वतन्त्र कराना चाहता था। इटली के एकीकरण में उसकी रुचि नहीं थी। वह ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध करने के लिए तैयार था किन्तु संयुक्त इटली राज्य के निर्माण में वह कोई भाग लेने के लिए तैयार नहीं था। अब यह स्पष्ट था कि ऑस्ट्रिया को लुम्बार्डी (Lombardy) और वैनीशिया के प्रान्त छोड़ने पड़ेंगे और सार्डीनिया (Sardinia) के राज्य का विस्तार आल्प्स (Alps) से लेकर एड्रियाटिक सागर (Adriatic Sea) तक विस्तृत होगा। शेष इटली का एक अलग राज्य बनाने की योजना बनाई गई। नेपिल्स और रोम नाम की पोप की रियासतों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छेड़ने की आवश्यकता नहीं थी। सम्राट के चचेरे भाई प्रिंस जैरोम बोनापार्ट[1] (Prince Jerome Bonaparte) को शेष इटली का नवनिर्मित राज्य दे देना निश्चित किया गया। दोनों सिसली (The Two Sicilies) की रियासतों को भी उसी दशा में रखना निश्चित किया गया।

नेपोलियन द्वारा सहायता के मूल्य में फ्रांस को नाइस (Nice) और सैवॉय नाम के प्रान्त दिए जाने निश्चित हुए। फ्रांस और पीडमौंट सार्डीनिया की मित्रता को मजबूत करने के लिए विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) की पुत्री क्लौथिल्डे (Clothilde) का विवाह फ्रेंच सम्राट के भाई प्रिंस जैरोम बोनापार्ट (Prince Jerome Bonaparte) के साथ होना निश्चित हुआ और अन्त में नेपोलियन को पक्का विश्वास था कि कृतज्ञ और विभाजित इटली के ऊपर वह सदैव प्रभाव रख सकेगा।

कैवूर की यह इच्छा तो कभी नहीं थी कि इटली के चार टुकड़े हो जाएँ किन्तु उसने अपनी योजनाओं में डाली गई बाधा को इसलिए स्वीकार कर लिया ताकि ऑस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस से सहायता मिलती रहे। विक्टर इमैन्युएल अपनी कन्या के विवाह से प्रसन्न नहीं था किन्तु उसको भी समझा-बुझाकर राजी कर लिया गया कि इटली की खातिर ही वह अपनी कन्या को एक अज्ञात-कुल-शील युवक के लिए बलिदान कर दे।

प्लौम्बियर्स की सन्धि में यह भी निश्चित हो गया था कि ऑस्ट्रिया के साथ जल्दी-से-जल्दी युद्ध आरम्भ किया जाय। २ लाख सैनिक नेपोलियन ने देने का वायदा किया और कैवूर १ लाख सैनिक देने को तैयार था। यह भी निश्चित हुआ था "न केवल हम लोग शीघ्र युद्ध करेंगे, बल्कि एक बहाना भी तलाश करेंगे।" पहली जनवरी १८५९ को अल्पभाषी फ्रेंच सम्राट् ने साल के नए दिन की सार्वजनिक सभा में ऑस्ट्रिया के राजदूत से कहा, "मुझे खेद है कि मेरी सरकार के ऑस्ट्रिया की सरकार के साथ अब उतने अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं जितने पहले थे।" इस वाक्य का अभिप्राय स्पष्ट था। कुछ ही दिनों के पश्चात् पीडमौंट के सम्राट् विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) ने इन शब्दों के साथ सार्डीनिया पीडमौंट की पार्लियामेंट का उद्घाटन किया। "इटली के विभिन्न स्थानों से जो करुण पुकारें हमारे पास आती हैं, उनसे हम बेखबर नहीं हैं।" इसके बाद फ्रांस ने पीडमौंट को एक बड़ा ऋण दिया और पेरिस में एक अर्द्ध सरकारी लेख छपा जिसमें फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन तृतीय को इटली का मित्र स्वीकार किया गया। इसके बाद १३ जनवरी को राजकुमार जैरोम बोनापार्ट (Prince Jerome)

---

१. प्रिंस जैरोम बोनापार्ट पेरिस में "प्लोन-प्लोन" (Plon-Plon) के नाम से विख्यात था। उसे यह नाम क्रीमिया के युद्ध में मिला था। प्रिंस जैरोम या नेपोलियन (उसने १८४७ में अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् जैरोम नाम धारण किया था) महान् नेपोलियन के भाई जैरोम का लड़का था और अपने चाचा से बहुत मिलता-जुलता था। वह स्वयं को नेपोलियन की लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियों का व्याख्याता समझता था और उसने द्वितीय साम्राज्य के काल में उदारवादी दल का समर्थन किया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी क्लौथिल्डे (Clothilde) से विवाह करने के लिए ट्यूरिन को चल दिया। फ्रांस और पीडमौंट दोनों ही राज्यों की नीयतें स्पष्ट थीं फिर भी युद्ध के लिए किसी बहाने की दरकार थी।

प्लौम्बियर्स के पैक्ट और युद्ध के आरम्भ होने के बीच के कुछ महीनों का समय कैवूर के लिए कठोर परीक्षा का समय था। नेपोलियन तृतीय और कैवूर दोनों ही युद्ध का बहाना (*casus belli*) ढूंढ़ रहे थे; किन्तु इस समय नेपोलियन कुछ हिचक रहा था। वह प्रशा की ओर से शंकित था किन्तु कैवूर (Cavour) युद्ध के लिए बहुत उत्सुक था। उसने ऑस्ट्रिया को बहुत चिढ़ाया। इधर विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) ने धमकी दी कि यदि नेपोलियन तृतीय अपने वचन को भंग करेगा तो वह राज्य त्याग देगा। ऑस्ट्रिया का रुख कठोर अवश्य था किन्तु वह बहुत ही शान्त था। इंग्लैंड की बहुत इच्छा थी कि शान्ति बनी रहे। वह चाहता था कि चाहे मध्यस्थता द्वारा और चाहे सम्मेलन द्वारा विवादग्रस्त सत्ताओं में समझौता हो जाय। ९ मार्च को कैवूर ने आज्ञा दी कि सार्डीनिया के सारे सैनिक ड्यूटी पर सैन्य-सज्जित होकर आ जायें किन्तु मार्च के अन्त में ऐसा लगने लगा मानो युद्ध के बादल हट जायेंगे और सारी समस्या को यूरोपीय शक्तियों की महासभा (European Congress) में हल किया जाएगा। कैवूर को बड़ी निराशा हुई और वह सार्डीनिया के सैन्य-वियोजन (Demobilization) के लिए किसी प्रकार राज़ी हो गया। परन्तु ऑस्ट्रिया इस समय मूर्खता के साथ आगे बढ़ा और उसने उत्तेजित होकर पीडमौंट (Piedmont) के पास चुनौती या इत्थिमेत्थम (Ultimatum) भेजा कि या तो वह तुरन्त सैन्य-वियोजन (Demobilization) करे या युद्ध के लिए तैयार हो जाय। कैवूर की सोयी हुई आशाएँ पुनः जाग गईं और इस प्रकार ऑस्ट्रिया यूरोप की नज़रों में अभ्याक्रामक (Aggressor) बन गया। अब कैवूर प्रसन्नता से चिल्ला उठा, "पासा पलट गया है और हम इतिहास बनाने जा रहे हैं।" नेपोलियन का संकोच भी समाप्त हो गया और २९ अप्रैल को फ्रांस ने भी आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध को घोषणा कर दी।

ऑस्ट्रिया की सेनाएँ युद्ध के लिए आगे बढ़ीं किन्तु ७ मई तक मुठभेड़ न हो सकी। इधर फ्रांस की सेनाएँ धड़ाधड़ इटली के अन्दर दाखिल हो रही थी। २० मई को फ्रांस और सार्डीनिया के सम्मिलित दल ने ऑस्ट्रिया को मौंटबेलो (Montebello) नामक स्थान पर हराया और ३० मई को पालेस्ट्रो (Palestro) नामक स्थान पर फिर हराया; इसके बाद ४ जून को मेजेंटा (Magenta) में फिर ऑस्ट्रिया की हार हुई और ७ जून को अर्थात् युद्ध प्रारम्भ होने के एक मास के भीतर विजयी दल मिलान (Milan) में पहुँच गया। इसके बाद २४ जून को फ्रांस और सार्डीनिया के सम्मिलित विजयी दल ने सौल्फ़रीनो (Solferino) की शानदार विजय प्राप्त की। इस पराजय के फलस्वरूप लौम्बार्डी में से ऑस्ट्रिया वालों को भगा दिया गया और उन्हें वेनीशिया के चार मज़बूत किलों में जाकर शरण लेनी पड़ी। इन प्रसिद्ध किलों के नाम निम्नलिखित थे—मैन्चुया (Mantua), पेस्चीरा (Peschiera), वेरौना (Verona) और लेग्नानो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Legnano)। इसके बाद जब वेनिस हाथ में आना ही चाहता था और लौम्बार्डी (Lombardy) ऑस्ट्रिया से निकाला ही जा चुका था,

नेपोलियन ने युद्ध से मुँह मोड़ा

उस समय अकस्मात् नेपोलियन तृतीय ने युद्ध रोक दिया और ११ जुलाई को अपने मित्र सार्डीनिया की सलाह लिए बिना ही विलाफ्रैन्का (Villafranca) में ऑस्ट्रिया से सन्धि कर ली। यह सन्धि सम्राट् नेपोलियन तृतीय और ऑस्ट्रियन सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ (Francis Joseph) दोनों की

विलाफ्रैंका की सन्धि, ११ जुलाई

व्यक्तिगत भेंट के फलस्वरूप विलाफ्रैंका के एक सामान्य से मकान के अन्दर हुई। इसके पश्चात् सन्धि की शर्तें निश्चित हुई जिनको ज्यूरिक की सन्धि द्वारा पक्का किया गया।

नेपोलियन तृतीय द्वारा युद्ध को अचानक ही क्यों रोका गया इसके कई कारण थे। फ्रांस की सेनाओं को पर्याप्त हानि उठानी पड़ी थी और नेपोलियन स्वभाव से ही ढुलमुल विश्वासों का आदमी था। वह किसी निर्णय पर अटल रहने वाला नहीं था। फ्रांस को प्रशा (Prussia) का भी भय था क्योंकि प्रशा युद्ध के लिए सज्जित था और उसने धमकी दी कि वह तुरन्त ऑस्ट्रिया की सहायता के लिए मैदान में उतरने वाला है। किन्तु नेपोलियन के युद्ध से हटने का मुख्य कारण यह था कि उसको भय सवार हो गया कि सार्डीनिया की शक्ति बहुत बढ़ जाएगी और इटली में देशभक्तों की संख्या बहुत अधिक है। "ज्यों-ज्यों मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ आगे बढ़ रही थीं, त्यों-त्यों फ्रांस का यह विश्वास पक्का होता जा रहा था कि अब फ्रांस के नेतृत्व में इटली का संघ नहीं बन सकेगा। अब नेपोलियन को ऐसा निश्चय जान पड़ा कि संयुक्त इटली (United Italy) बनकर रहेगा। नेपोलियन इटली की स्वतन्त्रता चाहता था किन्तु वह इटली की एकता बिल्कुल नहीं चाहता था। नेपोलियन नहीं चाहता था कि उसकी बगल में ऐसी शक्तिशाली सैनिक सत्ता स्थापित हो जाय, जिससे बाद में फ्रांस को कष्ट मिले।"[1]

पीडमौंट (Piedmont) में और सारी इटली के देशभक्तों के ऊपर नेपोलियन द्वारा युद्ध से पलायन के कारण यह प्रतिक्रिया हुई कि नेपोलियन ने धोखा दिया है। वास्तव में जिस प्रकार युद्ध रोका गया, और युद्ध रोकने का जो परिणाम हुआ इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है। जीत के द्वार पर युद्ध रोक देना वास्तव में विश्वासघात था, जिससे इटलीवासियों की आशाएँ समाप्त हो गईं। अकेले अकेले सन्धि कर लेना भी मित्रराष्ट्रों के पक्ष को त्याग देने के समान था। वेनीशिया (Venetia) में ऑस्ट्रिया को लगातार राज्य करते रहने देने की अनुमति दे देना भी फ्रांस और सार्डीनिया के बीच की उस सन्धि (Franco-Sardinian) के विरुद्ध कार्य था जिसके अनुसार पीडमौंट (Piedmont) के राज्य की सीमाएँ एड्रियाटिक सागर तक मान ली गई थीं। ज्यूरिक की सन्धि (The Treaty of Zurich) ने विलाफ्रैंका

1. Professor Alison Phillips, *'Modern Europe'* 1815-1899.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अस्थायी सन्धि (Armistice of Villafranca) को पक्का किया। इस सन्धि के अनुसार लौम्बार्डी (Lombardy) पर पीडमौंट का अधिकार हो गया किन्तु मेन्शुआ (Mantua) और पेस्चीरा (Peschiera) के किले पीडमौंट के अधिकार में नहीं दिए गए। वेनीशिया (Venetia) ऑस्ट्रिया के अधिकार में ही बना रहा। निश्चित यह हुआ कि पोप के अधिकार में इटली का संघ बनाया जाएगा और वेनीशिया उक्त इटालियन संघ का भाग होगा। मध्य इटली के राज्यो के शासक वर्ग जो मेजेंटा (Magenta) के युद्ध के बाद भाग गए थे, उनके लिए यह निश्चित हुआ कि सम्बन्धित राज्यों की प्रजा उन नरेशों को पुनः अपना-अपना नरेश स्वीकार करे।

ज्यूरिक की सन्धि (नवम्बर १८५९)

कैवूर (Cavour) ने सम्राट् विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) पर दबाव डाला कि वह अकेले ही युद्ध चलावे और ज्यूरिक की शर्मनाक सन्धि को न माने। किन्तु विक्टर इमैन्युएल ने बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की और कैवूर का आग्रह ठुकरा दिया। अपनी महान् आशाओं पर इस प्रकार तुषारपात देखकर कैवूर को बहुत भारी निराशा हुई और उसने प्रधान मन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। उसने विक्टर इमैन्युएल को बहुत बुरा-भला भी कहा किन्तु विक्टर इमैन्युएल ने उसकी एक न मानी। अब कैवूर ने राजनीति से संन्यास ले लिया और प्रतिज्ञा की कि अब कभी भी विदेशी सहायता के बल पर इटली के त्राण का कोई उपाय नहीं किया जायगा। फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि यह युद्ध व्यर्थ ही नहीं किया गया। वियना (Vienna) की संधि के अनुसार इटली, ऑस्ट्रिया के संरक्षण में था। यह स्थिति समाप्त हो गई। यही नहीं, इटली की ऑस्ट्रिया के अधिकार से मुक्ति को यूरोपीय शक्तियों ने भी मान लिया। जब यूरोपीय शक्तियों ने लौम्बार्डी पर इटली का अधिकार स्वीकार कर लिया, तो वेनीशिया पर भी इटली का नैतिक अधिकार एक प्रकार से स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त पीडमौंट-सार्डीनिया (Piedmont-Sardinia) के राज्य को स्वीकार कर लिया गया कि वही ऐसा राज्य है जिसकी आधारशिला पर सम्मिलित इटली के राज्य का निर्माण होगा।

ज्यूरिक (Zurich) की सन्धि का एक और परिणाम हुआ। ऑस्ट्रिया के साथ पीडमौंट का जो युद्ध हुआ उसमें पीडमौंट को लौम्बार्डी (Lombardy) ही नहीं मिला। इस युद्ध के कारण इटली के एकीकरण को अधिक बल मिला; और वेनीशिया से यद्यपि अनुचित रूप से पीडमौंट को वंचित रखा गया किन्तु वेनीशिया के बदले में पीडमौंट को और अधिक भूभाग मिलने वाले थे।

मध्य डचियाँ

ज्योंही युद्ध प्रारम्भ हुआ था और ऑस्ट्रिया द्वारा लौम्बार्डी (Lombardy) को खाली कर देने का समाचार मध्य डचियों (Central Italy) के देशभक्तों में पहुँचा, इस समाचार ने मध्य इटली की जनता को आन्दोलित कर दिया और पार्मा (Parma), टस्कनी (Tuscany) और मौडीना (Modena) की जनता ने विद्रोह कर दिया और अपने शासकों को निकाल बाहर किया। इन विद्रोहों के लिए राष्ट्रीय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Unification of Italy, 1848-70

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसाइटी (National Society)[1] भूमि पहले ही से तैयार कर रही थी और कैवूर को पहले ही से इनकी आशा थी। बौलोग्ना (Bologna) और रोमैग्ना (Romagna) नामक पोप की रियासतों में से पोप के एलचियों (Papal Legates) को निकाल दिया गया और अस्थायी सरकारों का निर्माण कर लिया गया। अब इन सब रियासतों ने स्वीकृत प्रस्तावों द्वारा निर्णय किया कि उन्हें पीडमौंट (Piedmont) के साथ मिला दिया जाय। यद्यपि पीडमौंट-नरेश विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) ने प्रारम्भ में मध्य डचियों (Central States) को पीडमौंट में मिलाना स्वीकार नहीं किया, किन्तु दबे शब्दों में उसने मध्य डचियों को अपनी स्वीकृति तभी दे दी थी जबकि विलाफ्रैंका (Villafranca) की अस्थायी सन्धि हुई थी और जिसके अनुसार मध्य इटली की डचियों में पोप और नवाबों का आधिपत्य पुनः स्थापित किया गया था, और जिसने मध्य इटली की स्थिति को पूर्ण रूप से खराब कर दिया था। विक्टर इमैन्युएल ने उक्त सन्धि पर हस्ताक्षर करते समय कुछ शब्दों को जोड़ दिया था जिससे मध्य डचियों के निर्णय के सम्बन्ध में वह किसी सीमा तक स्वतन्त्र था; फिर भी मध्य डचियों को पीडमौंट में मिलाने के आन्दोलन को खुल्लमखुल्ला समर्थन करने का यह अर्थ लगाया जाना स्वाभाविक था कि वह सन्धि की शर्तों को तोड़ रहा था।

इन्हीं दिनों मध्य डचियों (Central States) में भारी संख्या में सैनिक स्वयंसेवक भर्ती किये जा रहे थे। इन स्वयंसेवकों का नेतृत्व पीडमौंट के वयोवृद्ध देशभक्त कर रहे थे। इन स्वयंसेवक सैनिकों ने एक सैनिक संघ का निर्माण किया और इस प्रकार निश्चित किया गया कि एक राज्य के सैनिक स्वयंसेवक आवश्यकता पड़ने पर दूसरे राज्य की सेवा करेंगे। अब यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि मध्य इटली की रियासतों की प्रजा अपने पुराने शासकों को लेने के लिए कदापि तैयार न होगी। सार्डीनिया की मध्य डचियों के इस आन्दोलन के प्रति पूरी सहानुभूति थी, इसलिए अब विदेशी शक्तियों के रुख के ऊपर मध्य डचियों का भाग्य अवलम्बित

---

१. राष्ट्रीय सोसाइटी (National Society) का जन्म १८५७ में हुआ था। इसके द्वारा पीडमौंट (Piedmont) के राजा के नेतृत्व में इटली के एकीकरण का लक्ष्य स्वीकार किया गया था किन्तु मेज़िनी (Mazzini) के गणतन्त्रवादी सिद्धान्तों से नेशनल सोसाइटी के उद्देश्य मेल नहीं खाते थे। नेशनल सोसाइटी का नारा था "एकता, स्वतन्त्रता और विक्टर इमैन्युएल"! इसी सोसाइटी में एक नई संघवादी पार्टी (Unionist Party) का जन्म हुआ और अनेक डेमोक्रेटों (Democrats) की सहानुभूति भी सार्डीनिया के राजतन्त्र के प्रति हो गई। मेज़िनी के अनेक साथी, जिनमें गैरीबाल्डी भी एक था, इस सोसाइटी में शरीक हो गये, यद्यपि स्वयं मेज़िनी इस सोसाइटी से अलग रहा। कैवूर ने इस सोसाइटी को चुपके-चुपके भारी सहायता दी थी और बाद में तो स्वयं कैवूर ही इस सोसाइटी की नीति को इसके सेक्रेटरी ला फ़रीना (La Farina) के माध्यम द्वारा संचालित करने लगा था। कैवूर ने ला फरीना से कहा था, "तुम अपनी राष्ट्रीय सोसाइटी का संगठन सुदृढ़ बनाओ और हम अपना काम बना लेंगे।.....किन्तु खबरदार! यदि संसद में मुझसे कोई प्रश्न करेगा या कोई विदेशी राजदूत मुझसे पूछेगा तो निस्सन्देह मैं यही कहूँगा—मैं कुछ नहीं जानता।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इंग्लैंड में इस समय उदारदलीय (Whig) सरकार थी। इंग्लैण्ड के मन्त्री पामर्स्टन (Palmerston) और रसैल (Russell) की निर्दिष्ट नीति खुल्लमखुला इटली की आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति रखती थी। इन मन्त्रियों ने हस्तक्षेप न करने की नीति (Doctrine of Non-intervention) को अपनाया और घोषित कर दिया कि इटलीवासियों को अपने मामले स्वयं ही तय करने चाहिएँ। स्वभावतः ऑस्ट्रिया नहीं चाहता था कि सार्डीनिया (Sardinia) की सीमाएँ विस्तृत हों या पोप की शक्ति सीमित हो। कैथोलिक मतावलम्बी, पोप के अधिकारों को बनाये रखना चाहते थे और रूस (Russia) और प्रशा (Prussia) चाहते थे कि ज्यूरिक की सन्धि (Treaty of Zurich) का अक्षरशः पालन हो। अतः अब सारी स्थिति फ्रांस के दृष्टिकोण पर निर्भर थी। इस समय नेपोलियन तृतीय दुविधा में फँस गया। एक ओर ज्यूरिक की सन्धि (Treaty of Zurich) थी तथा दूसरी ओर मध्य डचियों की प्रजा की इच्छा थी, उसकी अपनी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति घोषित सहानुभूति थी और उसके द्वारा विक्टर इमैन्युएल को दिया गया वचन था जिसमें उसने मान लिया था कि निर्वासित नरेशों (Exiled Rulers) के पक्ष में वह विदेशी हस्तक्षेप नहीं होने देगा। अब नेपोलियन को एक मार्ग दिखाई दिया। चूंकि प्लौम्बयर्स के समझौते को उसने पूरा नहीं किया था इसलिए उसने विलाफ्रैंका (Villafranca) की अस्थायी सन्धि के बाद नाइस (Nice) और सैवॉय के प्रान्तों की माँग पर बल नहीं दिया था किन्तु अब उसने सोचा कि मान लीजिए यदि विवादग्रस्त प्रदेशों अर्थात् नाइस और सैवॉय के प्रान्तों में अथवा मध्य डचियों में और पोप की रियासतों में जनमत संग्रह किया गया तो निर्णय स्पष्ट थे। जनमत संग्रह का अयोजन इतनी चालाकी से किया गया कि नाइस और सैवॉय के प्रान्तों ने निर्णय किया कि उन्हें फ्रांस में मिला दिया जाय। मध्य डचियों और रोमाग्ना (The Central Duchies and the Romagna) ने निर्णय किया कि पीडमौंट (Piedmont) से मिलेंगे। कैवूर जनवरी १८६० में पुनः पीडमौंट का प्रधान मन्त्री बन चुका था। वास्तव में अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी वही देश की नीति निर्धारित करता रहा था। नाइस और सैवॉय तथा मध्य डचियों और पोप की रियासतों के सम्बन्ध में जो नया निर्णय हुआ वह भी कैवूर और नेपोलियन के बीच समझौते का ही परिणाम था। इस समझौते के अनुसार नेपोलियन को नाइस और सैवॉय के प्रान्त मिलने थे और बदले में मध्य इटली के राज्य पीडमौंट सार्डीनिया को मिलने थे।

अप्रैल १८६० में विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) उत्तरी और मध्य इटली का राजा बन चुका था। उसका राज्य उत्तर में आल्प्स (Alps) पर्वत से दक्षिण में पोप की रियासतों तक फैला हुआ था, केवल बीच में वैनीशिया छूटा हुआ था। आल्प्स पर्वत के दूसरी ओर का सैवॉय प्रान्त फ्रांस के अधिकार में जा चुका था। सैवॉय के साथ-साथ नाइस प्रान्त भी फ्रांस के अधिकार में जा चुका था। नाइस ही गैरीबाल्डी (Garibaldi) की जन्मभूमि थी। इंग्लैंड में सभी लोगों को फ्रांस द्वारा सैवॉय और नाइस का अपहरण अच्छा नहीं लगा। इंग्लैण्ड नहीं चाहता था कि फ्रांस का प्रभाव और अधिक बढ़े। सर जेम्स हडसन (Sir James Hudson) ने लेडी जॉन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसेल (Lady John Russell) को लिखा था—"लुई नेपोलियन एक बदमाश राजा है। उसके लिए क्या कहा जाय। वह रंगा हुआ सियार और डाकू है। वह फ्रांस का उद्धार करने आया था। किन्तु फ्रांस का सम्राट् बन बैठा और गर्व करता है। जहाँ कहीं नेपोलियन जाये या जहाँ कहीं उसका कोई एलची जाय, सभी आस-पास के लोगों को होशियार कर देना चाहिए कि डाकू निकट है, जेबों से खबरदार।"[1] सर जेम्स हडसन ने सम्भवतः नेपोलियन को गालियाँ इसलिए दी हैं कि वे उससे नाराज़ थे किन्तु उन्होंने इटली द्वारा सैवॉय और नाइस प्रान्तों को दिये जाने के बारे में कुछ भी नहीं लिखा। सम्भवतः सर हडसन भी नाइस और सैवॉय को फ्रांस को दिये जाने की राजनीतिक आवश्यकता के कायल थे। नाइस प्रान्त के शेर, वीर गैरीबाल्डी (The Great Nizzard Garibaldi) को भारी आघात पहुँचा, उसने कैवूर को कभी क्षमा नहीं किया। उसने कहा "निजा (Nizza)[2] या नाइस में मैं पैदा हुआ किन्तु अब मैं विदेशी हो गया। इस पाजी कैवूर ने मेरी मातृभूमि को बेच दिया है। अफसोस, किन्तु खैर उसने जो कुछ भी किया, मैं उसके साथ अमित्रता का बर्ताव नहीं करूँगा। मैं चाहता हूँ कि कैवूर मुझे एक हज़ार राइफिलें (Fire Arms) दे दे ताकि हम लोग सिसिली (Sicily) में जाकर कट मरें। मैंने कोई बहुत बड़ी चीज़ नहीं माँगी है?"[3]

कैवूर उच्चतर राजनीतिक विचारों से प्रेरित हो रहा था। उसे विश्वास था कि सैवॉय और नाइस के प्रान्त फ्रांस को दे दिये जाने चाहिएँ। उसे इसमें राजनीतिक लाभ दिखाई दे रहे थे। फ्रेंच एलची (French Agent) के सामने हाथ मलते हुए कैवूर ने कहा, "हम दोनों अब अपराध में शरीक हैं।" कैवूर के दिमाग में कुछ अन्य योजनाएँ भी थीं, जिनका गैरीबाल्डी के पत्र में निर्देश किया जा चुका है। इसलिए इटली का थोड़े से प्रदेश की रिश्वत नेपोलियन को देकर उसे अपने पक्ष में कर लेना उचित ही था।

कैवूर की नीति में परिवर्तन

उत्तरी इटली के एकीकरण से इटली के संगठन में कुछ प्रगति हुई थी। कैवूर को अभी भारी काम करने थे। एक ही वर्ष के अन्दर सारे यूरोप ने महान् आश्चर्य के साथ देखा कि कैवूर ने इटली (Italy) के राज्य में समस्त नैपिल्स (Naples), सिसिली (Sicily) और पोप की सारी रियासतों को मिला लिया, केवल पैट्रीमनी ऑफ सेंट पीटर (Patrimony of St. Peter) अलग रहा। अब कैवूर ने अपना ध्यान विदेशी राजाओं की मित्रता और विदेशी सहायता से हटाकर मेज़िनी (Mazzini) और गैरीबाल्डी की विद्रोहात्मक नीति का सहारा पकड़ा और उसने कहा, "यूरोप की शक्तियों के साथ कूटनीति द्वारा मुझे उत्तर की ओर से इटली का एकीकरण नहीं करने दिया गया है। अब मुझे क्रान्ति का सहारा लेकर दक्षिण की ओर से इटली का एकीकरण करना होगा।" अत्यन्त सावधानी और कूटनीतिक होशियारी के साथ उसने इस प्रकार स्थिति को नियोजित किया कि

1. Quoted by G. M. Trevelyan, *Garibaldi and the Thousand.*
2. Nice.
3. Quoted by G. M. Trevelyan, *op. cited,*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली के एकीकरण के इतिहास में उसने लासानी पार्ट अदा किया। "यूरोप की सार्वजनिक विधि में जबानी वायदों का कोई मूल्य नहीं था। यूरोप की कूटनीति इतने हीन स्तर पर उतर आई थी कि खुली हुई डकैती पर पर्दा डालना भी उचित नहीं समझा जा रहा था।"[1]

नेपिल्स और सिसिली के राज्य

नैपिल्स (Naples) और सिसिली के राज्यों के सम्बन्ध में ग्लैडस्टन (Gladstone) ने एक बार कहा था कि "इन राज्यों में ऐसी शासन-व्यवस्था है जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करती है।" ये दोनों राज्य (नेपिल्स और सिसिली) अत्याचारों के कारण असन्तोष से उबल रहे थे। १८२१ से १८६० तक का नेपिल्स और सिसिली का इतिहास केवल पुलिस के रजिस्टरों में देखा जा सकता है। १८५९ में जिस समय ऑस्ट्रिया के साथ भंयकर युद्ध प्रारम्भ हो रहा था, सम्राट् फ़र्डिनेण्ड द्वितीय, १८४८ का बॉम्बा राजा (Ferdinand II, King Bomba of 1848) मर गया और उसके स्थान पर उसका मूर्ख पुत्र फ्रांसिस द्वितीय राजसिंहासन पर बैठा। किन्तु वह इतना मूर्ख था कि कोई निर्णय ही न कर पाता था, इसलिए उसके राज्यकाल में न तो विदेशी युद्धों के सम्बन्ध में और न आन्तरिक सुधारों के सम्बन्ध में ही कोई निर्णय किए जा सके। नैपिल्स ने ऑस्ट्रिया के युद्ध में भाग नहीं लिया किन्तु उत्तरी इटली में जो घटनाएँ घटित हुईं उनके कारण नैपिल्स में भारी क्षोभ था; तथा मध्य इटली की डचियों में भी जो आन्दोलन हुए इन सब के कारण नैपिल्स में क्रान्ति की-सी स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। विलाफ्रैंका (Villafranca) की स्थायी सन्धि ने तो सभी को फ्रांस-विरोधी बना दिया था; अतः अब नेपिल्स निवासी इटली में अर्थात् पीडमौंट (Piedmont) में मिल जाने के इच्छुक थे; किन्तु इस प्रकार पीडमौंट में विलीन हो जाने का अर्थ यह था कि नेपिल्स के स्वाभिमान और अस्तित्व का भी विलीनीकरण हो रहा था।

सिसिली में भी भारी असन्तोष था क्योंकि सिसिली का राजा विदेशी था। वह नेपोलियन का वंशज था। कई असफल विद्रोह हो चुके थे। नेशनल सोसाइटी (National Society) का सेक्रेटरी ला फरीना (La Farina) था। वह स्वयं सिसिली का निवासी था। विलाफ्रैंका की अस्थायी सन्धि (Armistice of Villafranca) के बाद उसने निश्चित किया था कि सिसिली में विद्रोह किया जाय क्योंकि उक्त सन्धि से सभी देशभक्त फ्रांस के विरुद्ध हो गए थे। मेज़िनी (Mazzini) ने इस विद्रोह को प्रोत्साहित किया और फ्रांसिस्को क्रिस्पी (Francesco Crispy) ने इस विद्रोह के लिए तैयारियाँ की थीं। फ्रांसिस्को क्रिस्पी बाद में इटली का ख्याति-प्राप्त मन्त्री हुआ। किन्तु यह विद्रोह तभी सफल हो सकता था जबकि इसको गैरीबाल्डी (Garibaldi) और कैवूर (Cavour) का समर्थन मिल जाता।

नोर्स (Norse) जाति के देवता के समान गैरीबाल्डी में अपार शक्ति थी। उसके बाल सुनहरे और चमकदार थे। वह सीधी किन्तु अद्भुत प्रकृति का पुरुष था।

---

1. R. B. Mowat, *A History of European Diplomacy*, 1815-1914,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह महान् साहसी और तलवार का धनी था। इटली की मुक्ति के इतिहास में गैरीबाल्डी का नाम बारम्बार आता है। वह १९वीं शताब्दी का सबसे अनोखा व्यक्ति था। उसका पिता छोटे व्यापारी जहाज का एक अधिकारी था। उसका जन्म १८०७ में नाइस (Nice) नाम के नगर में हुआ था। उस समय गिसेप मेजिनी (Giuseppe Mazzini), जो कि जेनोआ (Genoa) में एक डाक्टर के घर पैदा हो चुका था केवल दो वर्ष का बालक था। गैरीबाल्डी का पिता चाहता था कि अपने पुत्र को उच्च शिक्षा दे यद्यपि उसकी हैसियत अधिक उच्च शिक्षा देने योग्य नहीं थी किन्तु गैरीबाल्डी का मन पढ़ने में नहीं लगा। "वह केवल इतनी शिक्षा प्राप्त कर सका कि पुस्तकें पढ़ सके और अपनी स्वतन्त्र, साहसिक और कवियों की-सी अद्भुत प्रकृति को सन्तुष्ट कर सके। किन्तु उसने इतनी विद्या नहीं पाई कि वह अपनी प्रकृति को निखार सकता अथवा उसका मस्तिष्क इतना परिपक्व हो जाता जो वह किसी समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकता।"[1] दस वर्ष तक गैरीबाल्डी समुद्र के किनारे व्यापारी जहाजों में पर्यटन करता रहा। इस कारण उसे भूमध्य सागर का पर्याप्त अनुभव हो गया था। उसे कई बार महान् साहसिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। तीन बार उसे समुद्री डाकू पकड़ कर ले गये थे। किन्तु समुद्री जीवन के कारण उसका इटालियन देशभक्तों और निर्वासित वीरों से निकट सम्पर्क स्थापित हो गया। इन देशभक्तों और वीरों ने गैरीबाल्डी के हृदय में इटली की स्वतन्त्रता के लिए वह प्रगाढ़ लगन फूंक दी जो उसके हृदय में सारे जीवन भर भरी रही। "वह इटली से इतना ही प्रेम करता था जितना कोई धार्मिक संन्यासी भगवान से प्रेम कर सकता है।" समय आने पर उसकी भेंट मेज़िनी (Mazzini) से हुई और उसको 'युवक इटालियन संगठन' (Young Italy Society) का सदस्य बना लिया गया। "जब मैं छोटा था, और जब मैं कुछ नेकी के कार्य करना चाहता था, उस समय मैं एक ऐसे मित्र की तलाश में था जो मेरे अवयस्क जीवन-काल में मुझे मार्ग-दर्शन कराता। मैं ऐसा मार्ग-दर्शक चाहता था जो मेरे समान ही प्यासा हो और पानी के सोते का खोजी हो। मुझे मार्ग-दर्शक के रूप में मेजिनी (Mazzini) मिला। जब मेरे चारों ओर सभी लोग सोते होते थे उस समय केवल मेज़िनी ही मेरी रक्षा करता था। देशप्रेम की ज्वाला को उसी ने प्रज्वलित रखा।" १८३३ में गैरीबाल्डी ने भी मेज़िनी (Mazzini) के एक षड्यन्त्र में भाग लिया, जिसमें उसको यह कार्य सौपा गया था कि वह सार्डीनिया की जल-सेना में प्रवेश कर जाये और फिर नाविकों को अपनी ओर मिलाकर गुप्त षड्यन्त्र को सफल बनावे। किन्तु यह षड्यन्त्र असफल रहा। गैरीबाल्डी के ऊपर अभियोग लगाया गया, और उसे देश छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। सबसे पहले जिस समय उसने अपना नाम छपा हुआ पढ़ा उस समय सार्डीनिया के एक सरकारी नोटिस में यह सूचना निकली थी कि षड्यन्त्र में भाग लेने के कारण

गैरीबाल्डी (१८०७-८२)

1. G. M. Trevelyan: *Garibaldi's Defence of the Roman Republic.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गैरीबाल्डी को मृत्युदण्ड दिया जाता है।

१८३६ से लेकर १८४८ तक गैरीबाल्डी पुरानी दुनिया से पलायन करके दक्षिणी अमेरिका पहुँचा। इन बारह वर्षों में उसने दक्षिण अमेरिका में साहसिक जीवन बिताया और जंगलों में इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। वह स्थानीय युद्धों में भाग लेता रहा और प्रेम सम्बन्धी साहसिक कठिनाइयों में भी कई बार फँसा। एक बार वह एक स्त्री को लेकर भागा जिसकी कहानी यदि लिखी जाय तो बड़ी मनोरंजक होगी। गैरीबाल्डी को युद्धों से प्रेम था और कठिनाइयों के जंगली जीवन से उसे मोह था। किन्तु इस प्रकार के जीवन से उसे गोरिल्ला युद्ध (Guerilla Warfare) का पर्याप्त अनुभव हो गया और १८६० में वह अनुभव इटली के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ।

१८४७ में एक अद्भुत और अनहोनी घटना हुई। एक सुधारक पोप इटली के राजनीतिक क्षितिज पर अवतरित हुआ और गैरीबाल्डी ने अपनी सेवाएँ उस पोप को अर्पित कर दीं; किन्तु शीघ्र ही १८४८ में उसने अपनी सेवाएँ सार्डीनिया के चार्ल्स एलबर्ट (Charles Albert) को अभ्यर्पित कर दीं। चार्ल्स एलबर्ट ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर रखी थी। कस्टोज़ा (Custozza) की पराजय के बाद मेज़िनी (Mazzini) ने गैरीबाल्डी को बुलाया कि वह फ्रांस की सेनाओं के विरुद्ध रोम की रक्षा करे। रोम (Rome) के पतन के पश्चात् पहले तो गैरीबाल्डी पीछे हटा किन्तु फिर उसने प्राणपण से नगर की रक्षा की। इस महान् साहसिक कार्य में उसकी स्त्री और उसके वफ़ादार साथियों ने उसकी भारी सहायता की थी। रोम की रक्षा करने वाले अधिकतर सिपाही ऑस्ट्रिया द्वारा कत्ल कर दिये गए। कमेच्छियो (Comacchio) के पास गैरीबाल्डी की स्त्री का भी देहान्त हो गया। स्वयं गैरीबाल्डी को भी भागकर टस्कनी (Tuscany) में शरण लेनी पड़ी; वहाँ से भागकर वह पीडमौंट (Piedmont) पहुँचा और पीडमौंट से भी भागकर वह अमेरिका पहुँच गया।

१८५४ में गैरीबाल्डी पुनः इटली लौटा। इस बार वह कुछ धन भी अपने साथ लाया था जिससे उसने कैप्रीरा (Caprera) नाम का छोटा सा द्वीप खरीद लिया जो सार्डीनिया के निकट था और उस द्वीप में उसने एक मकान बनवाया। उस मकान में वह छोटे से किसान के समान सादा जीवन बिताने लगा किन्तु उसकी शान किसी राजा से कम न थी। "कैप्रीरा द्वीप पर स्थित उसके मकान में उसको शान्ति नहीं मिल सकी क्योंकि थोड़ी दूर पर समुद्र में पूर्व की ओर उसे ऐसा द्वीप दिखाई दे रहा था जिसके किनारे अभी तक स्वतन्त्र न थे। जब इटली के कुछ भाग परतन्त्र थे, तो गैरीबाल्डी किस प्रकार चैन से अपने मकान में सुख की नींद सो सकता था।"[1]

१८५६ में पहली बार गैरीबाल्डी कैवूर से मिला और अगले ही वर्ष उसने अपने आपको सार्डीनिया के राजा की सेवा के लिए अर्पित कर दिया। गैरीबाल्डी के

---

1. G. M. Trevelyan, *Garibaldi and the Thousand.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की यह सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। गैरीबाल्डी के निश्चय के कारण ही गणतन्त्रवादियों (Republicans) और नृपतन्त्रवादियों (Monarchists) में मेल हो सका और इन दोनों शक्तियों ने मिलकर एक दिशा में कार्य किया, अन्यथा यह सम्भव था कि उक्त दोनों शक्तियाँ एक-दूसरे को नष्ट करने का प्रयास करतीं और इस प्रकार इटली के एकीकरण की बात केवल स्वप्न की-सी बात होकर रह जाती। हृदय से गैरीबाल्डी गणतन्त्रवादी ही था यद्यपि उसने न केवल सार्डीनिया के राजा की अधीनता में अन्त तक निष्ठा के साथ सेवा की ; वरन् उसने अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध उसी राजमुकुट की अधीनता में इटली को स्वतन्त्र कराया। यह सौभाग्य की बात थी कि राजा विक्टर इमेन्युएल (Victor Emmanuel) और गैरीबाल्डी में पारस्परिक सहानुभूति थी और दोनों एक-दूसरे को भली भाँति समझते थे ; तभी इटली का कल्याण हो सका ; अन्यथा जब कैवूर और गैरीबाल्डी के सम्बन्धों में अत्यधिक खिंचाव पैदा हो गया था, उस समय सम्भव था कि इटली की नैया मँझधार में डूब गयी होती।

इस प्रकार मुख्यतः गैरीबाल्डी के प्रभाव से ही १८५९ में बहुत से देशभक्तों ने फ्रांसीसी लुई नेपोलियन की मैत्री को स्वीकार किया था ; यद्यपि १८४९ में इटली के देशभक्त नेपोलियन को अपना शत्रु समझ बैठे थे। गैरीबाल्डी के नाम के कारण ही बहुत-से स्वयंसेवक पीडमौंट की सेना में भर्ती हो गये थे। इसलिए गैरीबाल्डी को एक सेना की कमान सौंपी गई। इस सार्डीनिया की सेना का संचालन गैरीबाल्डी ने अत्यन्त सफलता के साथ किया था। उसी समय विलाफ्रैंका (Villafranca) की अस्थायी संधि ने गैरीबाल्डी को अन्तिम विजय से वंचित कर दिया।

सिसिली का विद्रोह

१८५९ के पतझड़ में सिसिली (Sicily) में विद्रोह का श्रीगणेश हुआ। सिसिली के विद्रोही देशभक्तों ने गैरीबाल्डी (Garibaldi) से प्रार्थना की कि वह आने वाले विद्रोह में नेतृत्व करे। उन्होंने कहा कि गैरीबाल्डी की केवल उपस्थिति से ही वे अपने मनोरथ में सफल होंगे। गैरीबाल्डी उनकी सहायता के लिए राजी हो गया परन्तु एक शर्त पर कि वे लोग इटली और विक्टर इमेन्युएल (Victor Emmanuel) के नाम पर विद्रोह करें और स्वयं ही विद्रोह का आरम्भ भी करें।

कैवूर (Cavour) से भी सहायता माँगी गई। कैवूर कठिनाई में पड़ गया। यह सार्वजनिक विधि के विरुद्ध था कि अपने देश की भूमि से पड़ोस के देश की भूमि पर आक्रमण किया जाये। यह भी भय था कि प्रस्तावित आक्रमण के फलस्वरूप सार्डीनिया और नेपिल्स में युद्ध छिड़ जाय ; यही नहीं यह भी सम्भव था कि यूरोपीय देश पीडमौंट की निन्दा करते और प्रस्तावित युद्ध में हस्तक्षेप करते। इसके विपरीत कैवूर को वह सुनहरा अवसर प्रतीत हो रहा था। चूँकि यह विद्रोह विक्टर इमेन्युएल के नाम पर हो रहा था इसलिए कैवूर के दिमाग में अपनी सफलताओं की नयी सम्भावनाएँ नाचने लगीं। विलाफ्रैंका (Villafranca) की अस्थायी संधि के बाद कैवूर के विचार भी बदल गये थे। अब वह सोचता था कि यदि नियन्त्रित विद्रोह हों, तो उनसे लाभ भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त गैरी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्डी के वीर और साहसी साथियों को वश में रखना भी तो एक समस्या थी, १८५९ में वे अपने नायक की छत्र-छाया में लड़ चुके थे। वे युद्ध के लिए उतने ही आतुर थे जितना आतुर कि स्वयं गैरीबाल्डी था।

संक्षेप में सार यह है कि बाहरी तौर पर तो कैवूर निष्पक्ष रहा किन्तु चुपके-चुपके वह सिसिली के विद्रोह में सहायता दे रहा था। जिस समय मध्य इटली की रियासतों की स्वतन्त्रता की बात-चीत चल रही थी, उस समय कैवूर कोई ऐसा काम नहीं करना चाहता था जिससे या तो सार्डीनिया (Sardinia) की या इटली के एकीकरण की हानि हो।

४ अप्रैल, १८६० को मसीना (Messina) के निकट क्रान्ति हो गई। यद्यपि प्रारम्भ में उपद्रवकारियों को कुछ सफलता मिली। किन्तु शीघ्र ही नैपिल्स (Naples) के राजा की सेवा में काम करने वाले स्विस और जर्मन भाड़े के टट्टुओं (Mercenaries) ने देशभक्तों को हरा दिया। किन्तु गैरीबाल्डी को उपद्रवकारियों की प्रारम्भिक सफलता का ही पता चला था। वह इस समय नाइस (Nice) जाने की तैयारी कर रहा था, जहाँ वह उन मतदान पेटिकाओं (Ballot Boxes) को जलाता जो नाइस में जनमत जानने के लिए काम में आने वाली थीं। इस जनमत के आधार पर नाइस प्रांत फ्रांस के अधिकार में जाने वाला था। उक्त मतदान पेटिकाओं को जलाकर गैरीबाल्डी चाहता था कि नाइस प्रान्त किसी प्रकार फ्रांस के अधिकार में जाने से बच जाय। सिसिली (Sicily) के देशभक्तों की प्रारम्भिक सफलता का हाल सुनकर गैरीबाल्डी ने नाइस (Nice) जाना तो स्थगित कर दिया और सिसिली की मदद करना निश्चित किया। उसने कैवूर और राजा विक्टर इमेन्युएल से प्रार्थना की कि उसे सिसिली में कार्य करने की छूट दी जाय और सहायता भी दी जाय।

अप्रैल १८६०

सिसिली के विद्रोह से कैवूर के सामने कठिनाइयाँ उपस्थित हो गईं। यह असम्भव था कि कैवूर उस विद्रोह को सरकारी तौर पर प्रोत्साहित करता किन्तु उक्त विद्रोह निश्चित रूप से एक राजनैतिक विप्लव था और विशाल जनमत इस विद्रोह के पक्ष में था। गैरीबाल्डी अत्यन्त लोकप्रिय हो चला था अतः यदि उसको इस विद्रोह में भाग लेने से रोका जाता तो लोगों को सार्डीनिया के राजसिंहासन से विरक्ति हो सकती थी। इसलिए संकोच और होशियारी के साथ कैवूर ने दुहरी चाल चलना प्रारम्भ किया। एक ओर तो विदेशी राजदूतों के सम्मुख उसने यह कहा कि उसकी सरकार को सिसिली के उपद्रव का कोई पता नहीं है; किन्तु दूसरी ओर गैरीबाल्डी को चुपके-चुपके सहायता दी जाती रही। गैरीबाल्डी ने अपने स्वयंसेवक देशभक्त एकत्रित किये; केवल विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) ने यह बन्धेज रखा कि सार्डीनिया की सेना के अफसर अभियान में भाग न लें। नेशनल सोसाइटी (National Society) ने अपना गोला-बारुद विद्रोहियों को दे दिया किन्तु सार्डीनिया की सरकार यही कहती रही कि उसे कुछ नहीं मालूम। जेनेवा

कैवूर की स्थिति की कठिनाई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Genoa) के बन्दरगाह के अधिकारियों ने भी सहायता दी और विद्रोहियों को सिसिली पहुँचने में सुविधा हुई। सार्डीनिया की जल-सेना का उच्च अधिकारी पर्सानो (Persano) था। उसको चुपके से आज्ञा दी गई थी कि वह अपने बेड़े को इस प्रकार तैनात रखे जो नैपिल्स का जहाज़ी बेड़ा गैरीबाल्डी के जहाजों की क्षति न कर सके।

११ मई को गैरीबाल्डी सिसिली द्वीप के पश्चिमी किनारे पर मसाला (Massala) पहुँच गया। एक ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े की सहायता से गैरीबाल्डी के सैनिक सिसिली में उतरने लगे। इंग्लैण्ड के इस उदार अर्द्ध-कूटनीतिक हस्तक्षेप ने गैरीबाल्डी की विद्रोही मण्डली को बचा लिया। इटली के एकीकरण की दिशा में ब्रिटेन की यह भारी सहायता थी।

गैरीबाल्डी की शानदार विजय

मसाला (Massala) से गैरीबाल्डी पैलरमो (Palermo) की ओर बढ़ा। उसके पास प्रायः १,००० स्वयंसेवक थे जिनमें से कुछ लाल कमीजें पहने थे। सभी के पहनने लायक लाल कमीज़ों का अभाव था। किन्तु पैलरमो (Palermo) पर अधिकार हो जाने के बाद लाल कमीज़ इस दल की लोकप्रिय पोशाक बन गई। इन १,००० वीर देशभक्तों के विरुद्ध २०,००० नैपिल्स के सैनिक थे। १५ मई को कैलैटैफीमी (Calatafimi) नामक पहाड़ी स्थान पर देशभक्तों के दल की नैपिल्स की सेना से पहली टक्कर हुई। घमासान युद्ध हुआ और गैरीबाल्डी हारता हुआ सा प्रतीत होने लगा। किन्तु संध्या समय यकायक युद्ध का पाँसा पलट गया और नैपिल्स के किराये के सैनिक तितर-बितर होने लगे। १५ दिन के अन्दर ही कई कठिन लड़ाइयों के पश्चात् गैरीबाल्डी सिसिली की राजधानी पैलरमो (Palermo) के अन्दर पहुँच गया और उसने अपने आपको सिसिली का अधिनायक घोषित कर दिया। इसके बाद कई और युद्ध हुए, जिनमें मिलैज़ो (Milazzo) का युद्ध प्रमुख था। जुलाई के अन्त तक सिसिली (Sicily) का सारा टापू गैरीबाल्डी के अधिकार में आ गया [केवल मेसीना (Messina) का किला और एक-दो छोटे बन्दरगाह अपवाद थे]। गैरीबाल्डी के प्रसिद्ध १,००० देशभक्तों और साथियों के दल में चुने हुए सैनिक थे; किन्तु वास्तव में उन पर गैरीबाल्डी के नेतृत्व का जादू था। ज्यों-ज्यों नैपिल्स के सैनिक हताश हुए, त्यों-त्यों विद्रोहियों की हिम्मत बढ़ती गई और अधिकाधिक देशभक्त गैरीबाल्डी की ओर आकृष्ट होने लगे। नैपिल्स के सेनापति ने इतना कायरता और अयोग्यता प्रदर्शित की कि गैरीबाल्डी के चरणों पर विजयश्री आ टिकी।

गैरीबाल्डी की शानदार सफलताओं से जो परिस्थिति बनी उसके कारण कैवूर के सम्मुख एक अत्यन्त विषम समस्या आ खड़ी हुई। यह प्रायः निश्चित प्रतीत हो रहा था कि विजय के उत्साह से साहसी गैरीबाल्डी इटली की प्रमुख भूमि पर अवश्य उतर जायगा, और यह भी सम्भव था कि वह और भी आगे बढ़ने का प्रयास करता तथा पोप की रियासतों पर आक्रमण करके स्वयं रोम (Rome) को लेने का प्रयत्न करता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विजय और सफलता के साथ गैरी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्डी अधिकाधिक स्वतन्त्र और कैवूर के प्रति शंकालु होता जा रहा था। कैवूर के अत्यधिक सावधानीपूर्ण कूटनीतिक उपाय और उसकी राज-नीतिक मान्यताएँ गैरीबाल्डी को आन्दोलित कर रही थीं। अब गैरीबाल्डी अपने साथी क्रिस्पी (Crispy) और अन्य उग्र गणतन्त्रवादियों (Extreme Republicans) के अधिक निकट आ गया। स्वयं मेजिनी (Mazzini) भी इटली में था और वह धड़ाधड़ स्वयं-सेवक देशभक्तों को भर्ती कर रहा था जिनकी सहायता से पोप के राज्यों पर आक्र-मण करने की योजना बनाई जा रही थी। कैवूर यही चाहता था कि गैराबाल्डी को जो कुछ सफलताएँ मिली हैं वे इटली के राज्य के हित में हों और वह यह नहीं चाहता था कि असमय में रोम पर आक्रमण करके यूरोपीय शक्तियों, विशेषकर फ्रांस और ऑस्ट्रिया द्वारा इटली के मामलों में हस्तक्षेप हो। अभी तक स्थिति पूर्णतया काबू में थी और कैवूर की कूटनीतिक चालें सफल हो रही थीं। इंग्लैण्ड ने अत्यन्त मित्रता-पूर्ण रुख ले रखा था। फ्रांस की सरकार इटली की स्थिति से व्यग्र थी किन्तु नेपोलियन तृतीय प्रायः सहानुभूतिपूर्ण था; और वह किसी भी स्थिति में बिना इंग्लैण्ड को अपने साथ लिए हुए इटली में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। ऑस्ट्रिया भी अकेला हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं था; इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया को भय था कि कहीं हंगरी (Hungary) में विद्रोह की आग न फैल जाय; क्योंकि इटली के देशभक्तों के प्रति हंगरी के देशभक्तों की पूरी सहानुभूति थी। कैवूर को रूस की बौखलाहट की बिल्कुल चिन्ता नहीं थी। नैपिल्स के राजा ने घबराहट में यूरोपीय शक्तियों से सहायता की याचना की किन्तु कोई शक्ति न तो सहायता कर सकती थी और न सहायता करना ही चाहती थी।[1]

गैरीबाल्डी और कैवूर

अब कैवूर ने गैरीबाल्डी से कहा कि सिसिली को उत्तरी इटली में मिला दिया जाय किन्तु गैरीबाल्डी तैयार नहीं हुआ। अतः कैवूर ने गैरीबाल्डी के विरुद्ध अपनी चाल चली। उसने निश्चय किया कि नैपिल्स (Naples) और सिसिली में सुदृढ़ जनमत तैयार किया जाय जो गैरीबाल्डी की महत्त्वाकांक्षाओं को नियन्त्रित कर सके। अतः अभी गैरीबाल्डी तंग जल-मार्ग पार करके मुख्य भूमि पर पहुँचने भी न पाया था कि कैवूर के एजेन्ट नैपिल्स में पहुँच गये। उन्होंने गणतन्त्रीय भावना के विरुद्ध जनमत तैयार करना प्रारम्भ कर दिया और देश को नृपतन्त्र के पक्ष में कर लिया।

---

१. ट्रेवीलियन (Trevelyan) ने अपनी पुस्तक गैरीबाल्डी एण्ड दी मेकिंग आफ इटैली (*Garibaldi and the Making of Italy*) में लिखा है कि ७ जून को ओडो रसैल (Odo Russel) ने रोम से अपने चाचा लार्ड जान रसैल (Lord John Russell) को एक पत्र लिखा। ओडो रसैल रोम में इंलैण्ड का प्रतिनिधि था। उस पत्र में लिखा था, "कई दिन पहले की बात है कि नैपिल्स का नवयुवक राजा इतना घबरा गया था कि उसने २४ घण्टों के अन्दर पाँच बार पोप को टेलीफोन पर बुलाया और उससे आशीर्वाद प्राप्त किया। पोप से बातचीत कार्डीनल एण्टोनेली (Cardinal Antonelli) द्वारा ही हो सकती थी अतः पिछले तीन बार के आशीर्वाद स्वयं कार्डीनल ने दिये और यह कह दिया कि पोप ने उसे आशीर्वाद देने का अधिकार प्रदान कर दिया है। इस प्रकार धार्मिक मठ भ्रष्ट है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब नैपिल्स का विशाल जनमत इटली के राज्य में मिलने को तैयार था, यहाँ तक कि एडमिरल पर्सानो (Admiral Persano) को भेजा गया कि वह नैपिल्स के जहाजी बेड़े को अपनी ओर कर ले।[1] कैवूर का यह व्यवहार नैतिक नहीं था किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि परिस्थितिवश उसे ऐसा मार्ग ग्रहण करना पड़ा था और उसने जो कुछ भी किया उसमें उसका कोई स्वार्थ न था। कैवूर ने स्वयं स्वीकार किया था, "यदि इन कार्यों को जो हम इटली के लिए कर रहे हैं, अपने स्वार्थ के लिए करते तो अवश्य ही ठग और चोर कहे जाते।" इन्हीं दिनों पीडमौंट की सन्धि वार्त्ता नैपिल्स की सरकार से चलती रही किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। आखिरकार नैपिल्स सरकार ने हार मानकर उत्तरी इटली की सरकार से सहायता माँगी। पीडमौंट चाहता तो नैपिल्स को सहायता देना अस्वीकार कर सकता था क्योंकि कई वर्ष पूर्व ही नैपिल्स ने पीडमौंट को ऑस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता देना अस्वीकृत कर दिया था।

अगस्त के दूसरे सप्ताह में, गैरीबाल्डी अपने साथ पर्याप्त सेना लेकर तंग जल-मार्ग पार करता हुआ कैलेब्रिया (Calabria) में जा उतरा। नेपोलियन तृतीय ने इंग्लैण्ड से प्रस्ताव किया था कि आँग्ल-फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा मिलकर मेसीना (Messina) के तंग जल-मार्ग पर गैरीबाल्डी को रोके और सिसिली के उत्तर की ओर जाने न दे। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने अस्वीकृत कर दिया क्योंकि वह देश किसी अन्य देश के मामले में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार न था। इस प्रकार एक बार पुनः गैरीबाल्डी के आगे बढ़ने में ब्रिटेन सहायक हुआ।

गैरीबाल्डी इटली की मुख्य भूमि में जा पहुँचता है

बूरबन वंश की ओर से कोई प्रतिरोध नहीं हुआ। नैपिल्स राज्य का तुरन्त पतन हो गया। ३१ अगस्त को गैरीबाल्डी ने रीग्यो (Reggio) पर अधिकार कर लिया और अब वह नैपिल्स की ओर बढ़ा। नैपिल्स की सेनाएँ वॉल्टरनो (Volturno) की ओर बढ़ने लगीं और गैरीबाल्डी बिना किसी प्रतिरोध के बढ़ता ही चला गया। लोगों ने उसका शानदार स्वागत किया, और उसे दूसरा मसीहा माना। ६ सितम्बर को राजा गेटा (Gaeta) की ओर चला और अगले ही दिन गैरीबाल्डी विजयी होकर राजधानी में प्रविष्ट हुआ। उसने सेना को पीछे ही छोड़ दिया और स्वयं अकेला रेल द्वारा आया। ज्योंही वह रेलवे स्टेशन पर पहुँचा नैपिल्स की उत्तेजित भीड़ ने उसका जय-जयकार किया और उसकी ट्रेन को चारों ओर से घेर लिया। जब वह स्टेशन से नगर की ओर चला तो उसने देखा कि

नैपिल्स के राज्य का पतन

---

१. एक अवसर पर एडमिरल पर्सानो (Admiral Persano) भेष बदल कर बन्दरगाह के कर्मचारियों में जा मिला और वहाँ कुछ शाही जहाजों की मशीन को इतना खराब कर दिया कि जब सम्राट फ्रांसीस द्वितीय ने भागना चाहा, तो उसे एक स्पेन के जहाज में शरण लेनी पड़ी क्योंकि उसके अपने बेड़े के सभी जहाज व्यर्थ हो चुके थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी गाड़ी की ओर भयंकर तोपों के मुँह लगे हुए हैं।

गैरीबाल्डी ने यह भी देखा कि सिपाही उसकी गाड़ी की ओर तथा गाड़ी में की सवारियों की ओर घूर-घूर कर देख रहे थे। सम्भवतः वे सोच रहे थे कि यदि जरा इशारा मिल जाए तो गैरीबाल्डी को भून दिया जाय। गैरीबाल्डी खड़ा हो गया, अपने हाथों को उसने इस प्रकार उठाया मानो वह उनका अभिवादन कर रहा है और फिर उसने घूरकर सिपाहियों की आँखों की ओर अपनी आँखें फेर दीं। पाँसा पलट गया। कुछ सिपाहियों ने तुरन्त अभिवादन किया; गोली तो किसी ने भी नहीं मारी। इसमें संदेह नहीं है कि सिपाहियों को शान्ति का आदेश दे दिया गया था; किन्तु यह अत्यन्त सौभाग्य का विषय है कि सेना में से, जो अनुशासनहीन और क्रीत सिपाहियों का झुण्ड था, किसी सिपाही ने गैरीबाल्डी को गोली नहीं मार दी।'

गैरीबाल्डी ने स्वयं को नैपिल्स का अधिनायक घोषित किया और मेज़िनी (Mazzini) के एक शिष्य बर्टानी (Bertani) को राज्य का मन्त्री नियुक्त किया। किन्तु वह लालची नहीं था और उसने नैपिल्स के जहाजी बेड़े को सार्डीनिया के नौसैनिक कमाण्डर पर्सानो (Persano) की कमान में ही दे दिया। फ्रांस और नैपिल्स की सरकारें बौखला रही थीं। गैरीबाल्डी अपनी विजयों के नशे में चूर था और उग्र गणतन्त्रवादियों की ओर से उसे पूरा समर्थन प्राप्त था। इसलिए उसने स्पष्ट ऐलान कर दिया कि नैपिल्स के बाद वैनिस (Venice) और वैनिस के बाद रोम (Rome) पर अधिकार किया जाएगा। उसने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया कि वैनिस और रोम के ऊपर आक्रमण करने से ऑस्ट्रिया और फ्रांस के साथ युद्ध हो सकता है। वह किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं था। कैवूर और विक्टर इमैन्युएल की इन प्रार्थनाओं को तो उसने सुना ही नहीं कि जल्दबाजी में भारी पिछली सफलताओं का सत्यानाश न हो जाए। "गैरीबाल्डी ने यह स्वीकार नहीं किया कि कैवूर और विक्टर इमैन्युएल को कायर बनने की वास्तविक आवश्यकता थी। वह उनकी दुरंगी चाल को नापसन्द करता था। वह नहीं चाहता था कि इटली के देशभक्त शक्ति हथियाने के लालच में दीनता का भाव ग्रहण करें जबकि शक्ति नाशवान और चलायमान है। वह जानता था कि ऐसे स्वतन्त्र लोगों की इच्छाओं को सदा के लिए कुचला नहीं जा सकता जो अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सब कुछ बलिदान करने को उतावले रहते हैं। वह यह भी जानता था कि अन्त में सभी को उसी धूल में मर कर मिल जाना है जहाँ से सभी लोग पैदा होते हैं।"

क्रान्ति की लहर पोप की रियासतों में भी फैली और पोप की सेनाएँ सम्भावित विद्रोह को दबाने के लिए तैयारियाँ करने लगीं। यदि विद्रोह सफल होते गए तो कोई शक्ति गैरीबाल्डी को रोम पर अधिकार कर लेने से रोक नहीं सकेंगी; और यदि विद्रोहियों को कुचल दिया गया तो पोप की सेनाएँ निश्चित रूप से रोमाग्ना (Romagna) के प्रदेश को पुनः अधिकार में लेने का प्रयत्न करेंगी।

अब कैवूर ने दृढ़ नीति अपनाकर कुछ ठोस कदम उठाने चाहे। उसने पुकार

---

1. G. M. Trevelyan : *Garibaldi and the Making of Italy.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर घोषणा की, "इटली को विदेशी हस्तक्षेप से, बुरे और विदेशी सिद्धान्तों से और अदूरदर्शी तथा दीवाने नेताओं से बचाना आवश्यक है।" कैवूर ने निश्चय किया कि गैरीबाल्डी से पहले ही कुछ निश्चयात्मक कार्यवाही की जाय और पीडमौंट की शाही सेना द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण करा दिया जाय; और इस प्रकार गैरीबाल्डी से रोम की रक्षा की जाय। समस्या बहुत ही जटिल थी। कैवूर ने नेपोलियन तृतीय की प्रतिक्रिया जानने के लिए फ्रांस के दरबार में अपने दूत भेजे। उन दूतों द्वारा यह मालूम कराया गया कि यदि पीडमौंट अम्ब्रिया (Umbria) और मार्चेस (Marches) पर अधिकार कर ले तो नेपोलियन की प्रतिक्रिया क्या होगी। फ्रेंच सम्राट ने उत्तर दिया—"शुभस्य शीघ्रम्।" अब कैवूर का मार्ग साफ था। पोप की एक साधारण सी विरोधी चाल पर अप्रसन्न होकर और उसी को युद्ध का बहाना मानकर कैवूर ने पोप की रियासतों पर ११ सितम्बर को आक्रमण की आज्ञा दे दी। १८ सितम्बर को कैसिलफ़िडार्डो (Castelfidardo) नामक स्थान पर पोप की सेनाओं की करारी हार हुई। २९ सितम्बर को ऐकौना (Ancona) का पतन हो गया और शीघ्र ही अम्ब्रिया (Umbria) और मार्चेस (Marches) भी पीडमौंट के अधिकार में आ गए।

गैरीबाल्डी को रोकने के लिए कैवूर ने दृढ़ और निश्चयात्मक कदम उठाए

कैवूर द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण

अब गैरीबाल्डी के लाल कमीज वाले दल और पीडमौंट के शाही दल में बहस आ पड़ी कि पहले कौन पोप की रियासतों के ऊपर अधिकार करे। कैवूर ने कहा, 'हमको वॉल्टरनो (Volturno) शीघ्र ही पहुँच जाना चाहिए; क्योंकि यदि गैरीवाल्डी कैटौलिका (Cattolica) में हमसे पहले पहुँच गया तो इटली का साम्राज्य नष्ट हो जाएगा और इटली में सदैव क्रान्तियाँ ही होती रहेंगी।" किन्तु नैपिल्स के कैपुआ (Capua) नगर में गैरीबाल्डी को नैपिल्स की सेना ने आशा के विपरीत रोक दिया था, अतः वह आगे नहीं बढ़ सका था। अब जीत कैवूर की ही हुई।

पोप की रियासतों पर कैवूर का अधिकार हो जाने के पश्चात् सिसिली और नैपिल्स में जनमत-संग्रह (Plebiscites) लिये गए। हर स्थान पर बहुमत में यही मत व्यक्त किया गया कि रियासत को पीडमौंट-सार्डीनिया के राज्य में मिला दिया जाय। इस प्रकार कैवूर की स्थिति मजबूत हो गई और अब गैरीबाल्डी ने भी देखा कि बिना शाही फ़ौजों की सहायता के वह अकेला गेटा (Gaeta) और कैपुआ (Capua) के किलों पर अधिकार नहीं कर सकेगा जिन पर अभी तक अधिकार नहीं हो सका था।

१८ अक्टूबर को राजा विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) अपनी सेना सहित नैपिल्स में प्रविष्ट हुआ अतः गैरीबाल्डी सदैव सम्राट विक्टर इमैन्युएल के सैनिक व्यक्तित्व से प्रभावित रहता था। अतः १७ तारीख को गैरीबाल्डी ने अपनी सारी सेना और सारी शक्ति सम्राट को अर्पित कर दी। वास्तव में गैरीबाल्डी सम्राट के प्रति पूर्ण भक्ति रखता था। अब सम्राट और गैरीबाल्डी की सम्मिलित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना ने नैपिल्स को पूर्णतः परास्त कर दिया। कैपुआ (Capua) का नवम्बर में पतन हो गया; इसके बाद लम्बे संघर्ष के उपरान्त फरवरी में गेटा (Gaeta) का भी पतन हो गया।

इसके उपरान्त ९ नवम्बर को एक शानदार उत्सव नैपिल्स के राजसिंहासन वाले कमरे में हुआ, जिसमें विक्टर इमेन्युएल को सिसिली और नैपिल्स का राजा घोषित किया गया। औपचारिक तौर पर गैरीबाल्डी ने इन राज्यों का अधिनायक पद त्याग दिया और सभी लोगों से कहा कि वे अपने-अपने मतभेदों को त्याग कर इटली के सम्राट को स्वीकार करें। उसने कहा, इटली का सम्राट "इटली के पुनर्जीवन और इटली की समृद्धि का प्रतीक है।"

गैरीबाल्डी ने दुर्लभ निःस्वार्थ के साथ कोई भी आदर का चिन्ह या कोई भी इनाम स्वीकार नहीं किया। वह अपने घर कैप्रीरा (Caprera) को चला गया और अपने साथ लड़ाई की लूट-खसोट के रूप में केवल अपने खेतों के लिए बीजों की एक थैली लेता गया। अब गैरीबाल्डी का प्रकृति से निकट सम्पर्क स्थापित हो गया; अतः वह धीरे-धीरे उन कटु स्मृतियों को भुलाने लगा जिन्होंने इटली की मुख्य भूमि में उसके सैनिक जीवन के अन्तिम महीनों में उसको आन्दोलित किया था। अपने इस निर्जन साम्राज्य में गैरीबाल्डी को इतना संतोष था जितना कि उसे राजनीतिक जीवन में वायसराय (Viceroy) बनकर भी सम्भवतः कभी प्राप्त न होता, यदि कहीं दुर्भाग्यवश विक्टर इमैन्युएल ने उसे दक्षिण इटली का वायसराय बना दिया होता। अपने अन्तिम बीस वर्षों के असैनिक जीवन काल में भी कई बार उसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अभिनय करना पड़ा; उदाहरणार्थ १८६६ में ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में उसने भाग लिया, १८६७ में मेंटाना (Mentana) की पराजय वाले युद्ध में भी उसने भाग लिया था, १८७० में उसने स्वयंसेवक के रूप में फ्रांस की सेवा की थी, और रोम का एलची बनकर भी उसने कार्य किया था; किन्तु इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि वह इटली की मुक्ति कराने वाला परम वीर था जिसने इतिहास को वीर काव्य बना डाला, जिसने राजनीति को साहसिक खेल-मात्र समझा। क्या जिस समय गैरीबाल्डी अंगूर की बेलों में या पतली रेते की तह वाली जमीन के ऊपर अपने हाथों से काम करता था और जिस समय वह अपने बाड़े में गायों को प्यार से नाम ले-लेकर पुकारता था अथवा जिस समय पहाड़ी चट्टानों में इधर-उधर फिरती हुई भेड़ों को पकड़कर लाता था, कोई कह सकता था कि यह वही परम वीर है जिसने इटली के इतिहास को भी अमर कर दिया है?

नैपिल्स और सिसिली (Naples and Sicily) के ले लिए जाने के उपरान्त पोप के अधिकार के सारे राज्य इटली के राज्य में मिला दिये गए। अब केवल रोम और रोम के निकट का प्रदेश शेष था। कैवूर समझता था कि यदि "पैट्रीमनी ऑफ सेंट पीटर' (Patrimony of St. Peter) भी पोप के अधिकार में बना रहेगा तो फ्रांस हस्तक्षेप नहीं करेगा। १८ फरवरी, १८६१ को ट्यूरिन (Turin) में प्रथम इटैलियन संसद् बुलाई गई जिसमें रोम और वैनिस को छोड़कर सारी इटली के प्रति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निधि थे और विलाफ्रैंका (Villafranca) की सन्धि के केवल दो वर्ष के भीतर ही विक्टर इमैन्युएल को इटली का सम्राट घोषित कर दिया गया। अब इटली संयुक्त इटली था। सम्भवतः रोमन साम्राज्य के पतन के बाद प्रथम बार संयुक्त इटली के दर्शन हो रहे थे। प्रकृति ने भी इटली को संयुक्त इटली के योग्य ही निर्मित किया था।

नैपिल्स, सिसिली, अम्ब्रिया और मार्चेस का इटली में मिलाया जाना

कैवूर को पूर्ण विश्वास था कि समय आने पर नवीन इटली के राज्य में वैनिस और रोम अवश्य सम्मिलित होंगे किन्तु दुर्भाग्यवश अपने सपनों का संयुक्त इटली देखने के लिए वह बचा नहीं। ६ जून, १८६१ की मृत्यु ने उसे उठा लिया क्योंकि पिछले तीन वर्षों के अथक परिश्रम और मानसिक तनाव के कारण उसका स्वास्थ्य जवाब दे गया था।

कैवूर की मृत्यु

संयुक्त राष्ट्र के रूप में इटली का निर्माण कैवूर के प्रयत्नों से ही सम्भव हो सका। अन्य नेताओं ने भी इटली की मुक्ति में भारी प्रयत्न किया है किन्तु सम्भवतः बिना कैवूर की कूटनीति के इटली का निर्माण सम्भव न होता। उसने इटली के एकीकरण के प्रश्न को दलगत राजनीति की दलदल में फँसने नहीं दिया; उसने मेजिनी के कोरे आदर्शवाद से इस प्रश्न को दूर रखा; उसने इस प्रश्न को असावधान षड्यन्त्रों का अखाड़ा भी नहीं बनने दिया; वह क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच के मार्ग से इस समस्या को सफलतापूर्वक निभा ले गया और यही नहीं, उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप, संयुक्त इटली की सरकार एक राष्ट्रीय झण्डे के नीचे, एक सम्मिलित और सुदृढ़ सैनिक शक्ति से सम्पन्न हुई जिसको विदेशी सत्ताओं का समर्थन और उनकी मैत्री प्राप्त थी।[1]

इटली के संगठन को पूर्ण करने के लिए अभी वैनीशिया (Venetia) और रोम (Rome) की दो रियासतें शेष थीं। वैनीशिया, ऑस्ट्रिया की अधीनता में थी तथा रोम की रियासत पोप की अधीनता में थी, जिस पर फ्रांस की सेना चौकसी रखती थी। यह पूर्व-निश्चित था कि इटली के देशभक्त इन दोनों रियासतों को भी लिए बगैर चैन से न बैठेंगे, और यह भी स्पष्ट था कि विदेशी सत्ताओं की बन्दूकों की आड़ में इन रियासतों को अधिक काल तक समस्त संयुक्त इटली की प्रबल इच्छा के विरुद्ध गुलाम बनाए रखना कठिन था।

वैनीशिया और रोम का भाग्य भी अब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ जुड़ा हुआ था। इटली का शेष एकीकरण प्रशा के कारण हुआ। इटली की तरह प्रशा की भी ऑस्ट्रिया से अनबन थी, और जब १८६६ में प्रशा ने ऑस्ट्रिया के ऊपर आक्रमण किया, तो इटली प्रशा के साथ मिल गया। इसी सेवा के उपलक्ष्य में इटली को वैनीशिया पर अधिकार मिल गया। १८६६ की छोटी-सी लड़ाई में यद्यपि इटली की

इटली और प्रशा

1. Quoted by W. Alison Phillips, *Modern Europe*, p. 389.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनाएँ हार गई थीं, किन्तु उत्तर में प्रशा को भारी सफलताएँ मिलीं जिस कारण इटली की हार का कोई दुष्प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में वैनीशिया इटली के राज्य में मिला दिया गया। ऑस्ट्रिया की प्रादेशिक सीमाओं में एक अन्य ऐसा प्रदेश था जिसमें इटालियन भाषा-भाषी नागरिक रहते थे। उसका नाम था टाइरौल (Tyrol)। यह प्रदेश इटली को नहीं मिला। टाइरौल प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् इटली को मिला जबकि ऑस्ट्रिया हंगरी के साम्राज्य (Austro-Hungarian Empire) का प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् विघटन किया गया। उस समय इटली को टाइरौल (Tyrol) के साथ-साथ दो लाख से अधिक जर्मन भाषा-भाषी नागरिक भी मिले।[1]

वैनीशिया, १८६६

इटली के समान ही प्रशा की फ्रांस से भी अनबन थी। एक बार पुनः १८७० में प्रशा की जीत के कारण भी यह सम्भव हुआ जो इटली को उसका प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी नगर प्राप्त हुआ। १८६७ में गैरीबाल्डी ने रोम को लेने का असफल प्रयत्न किया था किन्तु मेंटाना (Mentana) नामक स्थान पर फ्रांस और पोप की सम्मिलित शक्ति ने उसको हरा दिया था। गैरीबाल्डी के अनुयायी अन्तिम समय तक लड़ते रहे थे। जब उनका सारा गोला-बारूद चुक गया तो उन निहत्थों के ऊपर फ्रांस के सैनिकों ने नई चैस्पाट राइफलों (Chassepot Rifles) से आक्रमण किया। फ्रांसीसी कमाण्डर ने लिखा था, "चैस्पाट राइफलों ने तो कमाल ही कर दिया है।" वास्तव में इन राइफलों के राक्षसी व्यवहार ने इटली को सदा के लिए फ्रांस का शत्रु बना दिया था। २ सितम्बर, १८७० को खबर उड़ गई कि प्रशा ने सीडान (Sedan) नामक स्थान पर फ्रांस को ऐसी करारी चोट दी है जिससे फ्रेंच साम्राज्य का पतन हो गया। इस युद्ध के प्रारम्भ में ही रोम की रक्षा करने वाले फ्रांसीसी सैनिकों को बुला लिया गया था। ११ सितम्बर को इटली की सेनाएँ पोप के राज्य में घुस पड़ीं और रोम (Rome) पर अधिकार कर लिया। अब रोम में जनमत (Plebiscite) लिया गया और विशाल बहुमत ने रोम को इटली से मिलाने के पक्ष में मत दिया और जुलाई १८७२ में इटली के राला विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) ने शान-शौकत के साथ नई राजधानी में प्रवेश किया। रोम प्राप्त करके इटली के देशभक्तों के मनोरथ पूर्ण हुए। पोप के जिस धार्मिक साम्राज्य की नींव को आठवीं शताब्दी के एक फ्रेंच वंशज (Frankish King) राजा ने स्थापित किया, वही साम्राज्य उन्नीसवीं शताब्दी के एक सम्राट की मूर्खता के कारण ढह गया और इस धार्मिक साम्राज्य के साथ इतने ही दिनों तक जो संघर्ष चला उसका अन्त भी एक ऐसे सम्राट् के हाथों ही हुआ जिसके पूर्व पुरुष उस समय अज्ञात आल्प्स पर्वत निवासी राजा ही थे, जब ग्रेगरी सप्तम (Gregory VII) ने रोम से यूरोप के सर्वाधिक शक्तिशाली शासक के विरुद्ध धर्म-बहिष्कार का आदेश जारी किया था।

रोम, १८७०

---

१. १९३९ में जर्मनी (Germany) और इटली (Italy) ने पारस्परिक समझौते द्वारा इन दो लाख जर्मन भाषा-भाषी नागरिकों की समस्या को तय कर लिया और उनमें से अधिकतर जर्मनी को सौंप दिए गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब पोप केवल एक धार्मिक राजा था किन्तु फिर भी वह नए इटली राज्य के लिए एक समस्या बना हुआ था। मई १८७१ में एटली की संसद् से 'गारन्टीज की विधि' (Law of Guarantees) पास की जो कैवूर के 'स्वतन्त्र चर्च और स्वतन्त्र राज्य' (Free Church in a Free State) के सिद्धांत पर आधारित थी। पोप को वे सब निर्बाध्यताएँ (Inviolabilities) दे दी गईं जो किसी राजा को प्राप्त रहती हैं और उसको वे सब औपचारिक आदर प्रदान कर दिए गए जो राजाओं को मिलते हैं, जैसे सशस्त्र अंग-रक्षक रखने की आज्ञा और लगभग ३० लाख लीरा (Lire) पोप के जेब-खर्च के लिए। पोप को अपने सभी धार्मिक कृत्यों के करने की पूरी छूट थी। वह कैथोलिक ईसाइयों से सम्पर्क स्थापित कर सकता था और उसके दरबार में उपस्थित रहने वाले धार्मिक प्रतिनिधियों को भी कूटनीतिक निर्बाध्यताएँ प्रदान कर दी गईं। इटली की सरकार ने पोप को वे अधिकार भी सौंप दिए जिनका वह इटली के पादरियों के ऊपर प्रयोग करती थी। अब पोप को यह अधिकार भी प्रदान कर दिया गया कि वही सारे देश के लिए बिशप नियुक्त करेगा।

लॉ ऑफ गारंटीज

किन्तु पोप, पायस नवम (Pius IX) ने न तो यह स्वीकार किया कि उसके चर्च का साम्राज्य अब उसके अधिकार में नहीं रहा और न उसने 'गारंटीज की विधि' (Law of Guarantees) को ही स्वीकार किया। पोप ने निष्क्रिय और असहाय असहयोग का मार्ग अपनाया; और १८७० के बाद से तो वह अपने भवन से निकला ही नहीं, एक प्रकार से स्वयं बन्दी बन गया। अपने सन्तोष के लिए उसने मान लिया कि पोप कोई ग़लती नहीं कर सकता; और जैसा कि सभी हारने वाले व्यक्ति किया करते हैं, उसने भी आक्रमणकारियों को शाप देकर सन्तोष प्राप्त किया। उसने कहा, "मैं तुमको फिर बताना चाहता हूँ कि तुमने मेरे और धर्म के विरुद्ध जो भीषण हिंसा की है, उसका फल भोगने के लिए तुम अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहोगे।"[1]

पोप, पायस नवम का पोप-काल (Pontificate of Pius IX) बहुत दिनों तक चला और प्रसिद्ध भी रहा। पायस नवम को भी पोप सेंट पीटर के समान दीर्घ आयु प्राप्त हुई। पायस नवम के पोप-काल में, जो ३२ वर्ष का लम्बा काल था, पोप का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। यही पायस नवम के नाम को प्रसिद्ध कर देने के लिए काफ़ी था; किन्तु इसी पोप के काल में पुनः पोप के अधिकारों में वृद्धि होनी प्रारम्भ हुई। संसार भर में रोमन कैथोलिक मत वालों की उन्नति हुई। यह उन्नति समान रूप से अमेरिका और तुर्क साम्राज्य में, अफ्रीका (Africa) और मैडागास्कर (Madagascar) में, भारत और सुदूर पूर्व में हुई। कैथोलिक मत की सबसे अधिक उन्नति प्रोटेस्टेंट देशों में हुई जिनमें हॉलैंड (Holland) और इंग्लैंड (England) प्रमुख थे। इन दोनों देशों में जहाँ १९वीं शताब्दी के आरम्भ में रोमन कैथोलिक मत का कुछ ह्रास हुआ था, पायस नवम के पोप काल में रोमन कैथोलिकों

पायस नवम का पोप काल, १८४६-७८

---

१. इटली में १९४६ में राजतन्त्र का पतन हुआ और उसके स्थान पर गण-राज्य की स्थापना हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रोत्साहन मिला।[1] कई शताब्दियों के बाद रोमन कैथोलिक पादरियों को कई यूरोपीय राज्यों में उच्च स्थान मिले और युट्रेक्ट (Utrecht) एवं वैस्टमिन्स्टर (Westminster) में रोमन कैथोलिक लाट पादरियों को गौरव प्राप्त हुआ।

चर्च के विस्तार और प्रभाव में तो निस्सन्देह वृद्धि हुई। साथ ही चर्च के आन्तरिक इतिहास में भी परिवर्तन हुए। नए विचारों के अनुसार विक्टोरिया (Victoria) के काल को संक्रान्ति का काल कह सकते हैं। फ्रेंच क्रांति की मान्यताओं के कारण संसार की राजनीति बदल रही थी; विज्ञान की खोजों के कारण धर्म की नींव खोखली पड़ती जा रही थी। सारे संसार में एक नया जाग्रति का काल छाया हुआ था। यह जाग्रति का काल (Renaissance) विद्याओं और ललित कलाओं के क्षेत्र में उतना स्पष्ट नहीं था जितना कि विज्ञान और नए विचारों के क्षेत्र में दृष्टि-गोचर हो रहा था; यद्यपि विद्याओं और ललित कलाओं के क्षेत्र में भी जाग्रति काल का आ जाना शुभ है। अब विज्ञान के युग का दौर चल रहा था; और १५वीं तथा १६ शताब्दियों की तरह से ही धार्मिक कट्टरता के स्थान पर लोगों में धर्म निरपेक्षता (Secularism) के भाव घर करने लगे; और धर्म के स्थान पर अब लोग राज्य और देश को अधिक महत्त्व देने लगे। किन्तु जिस प्रकार १५वीं शताब्दी की नव जाग्रति (Renaissance) के बाद १६वीं शताब्दी में सुधार-आन्दोलन (Reformation) आया, उसी प्रकार विक्टोरिया काल की बौद्धिक नव जाग्रति के बाद धार्मिक झगड़ों का सूत्रपात हुआ। इसको इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि सुधार-आन्दोलन की प्रतिक्रिया के रूप में सुधार-विरोधी आन्दोलन (Counter-Reformation) आया।

१९वीं शताब्दी में भी पोप के अधिकारियों के मार्ग में उसी प्रकार कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं जिस प्रकार कि १६वीं शताब्दी में पोप के पद को चुनौती दी गई थी। किन्तु इन कठिनाइयों से विचलित होकर पोप ने आत्मसमर्पण नहीं किया अपितु स्थिरता के साथ परिस्थितियों का मुकाबला किया। पोप ने अपने मत के सिद्धान्तों को और अधिक कठोर बना लिया तथा और अधिक पादरी-वर्ग नियुक्त किया और इस प्रकार पोप ने अधिकारों को और अधिक कठोर बना लिया। सनातन और अनित्य चर्च के विश्वास और महिमा के आगे एक पीढ़ी के सामान्य हेतुवाद की हस्ती ही क्या थी।

१८६४ में १८४६ के सुधारवादी पोप ने 'क्वैंटा क्यूरा' नामक प्रपत्र (Encyclical Quanta Cura) इधर-उधर प्रकाशित कराया और उपर्युक्त प्रपत्र में सिलेबस इरोरम (Syllabus Errorum) भी संलग्न किया। सिलेबस इरोरम एक सूची थी जिसमें ९० पापों और ग़लत धार्मिक सिद्धान्तों का निर्देश था। उक्त सूची में हेतुवाद (Rationalism), विज्ञान (Science), लोकतन्त्र (Democracy),

---

१. इंग्लैंड के दो प्रसिद्ध व्यक्तियों ने अपना धर्म-परिवर्तन करके रोमन कैथोलिक मत में दीक्षा ली। इनमें एक तो सन्त न्यूमान (Newman) था और दूसरा व्यक्ति धार्मिक राजनीतिज्ञ मानिंग (Manning) था। इन दोनों को कार्डीनल (Cardinals) के पद मिले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता (The Liberty of the Press), धर्म-निरपेक्ष शिक्षा (Secular Education) और राज्य की सर्वग्राही शक्ति इत्यादि की समान रूप से निन्दा की गयी थी। "उक्त प्रपत्र से यह ध्वनि निकलती थी कि महान् पोप का उन्नति, उदारवाद और आधुनिक सभ्यता से न तो कोई नाता है और न कभी होगा।" वास्तव में उक्त प्रपत्र समय की प्रचलित गति को चुनौती थी जिसने प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बियों की दुनिया को आश्चर्यचकित और विचलित कर दिया।

अब पोप के दरबार की निरंकुश परम्पराओं के नाम पर एक और अपील प्रकाशित की गई। १६ वीं शताब्दी के धर्म और धार्मिक परिषदों की परम्पराओं (Conciliar Precedents) को पुनर्जीवित किया गया। चर्च के बिशपों की तीन सभाएँ हुईं; एक सभा १८५४ में हुई जिसमें इमैकुलेट कन्सेप्शन के सिद्धान्त (Doctrine of the Immaculate Conception) की व्याख्या की गई, १८६२ में जापानी शहीदों को धार्मिक मान्यता दी गई और १८६७ में सैंट पीटर की मृत्यु-शताब्दी मनाई गई। दो वर्ष बाद पिअस नोनो (Pio Nono) पोप बने। १८६९ में रोम की ४०० घण्टियों और सेंट एंजिलो (St. Angelo) की तोप ने चर्च की विश्व परिषद् या एक्युमिनेकिल कौंसिल (Occumenical Council of the Church) के उद्घाटन की घोषणा की। यह अपने इतिहास में बीसवीं और ट्रेंट की कौसिल (Council of Trent) के बाद पहली परिषद् थी। उसके सामने यह विवादास्पद प्रश्न था कि क्या पोप कभी गलती ही नहीं कर सकता? ७५० धर्माचार्यों में से बहुतों ने इसकी परिभाषा को अनुपयुक्त समझा। ग्लैडस्टोन सशंकित हो गया। लेकिन पोप निर्द्वन्द्व था। क्या कुछ वर्ष लौर्ड्स के चमत्कारों ने इमैकुलेट कंसेप्शन (Immaculate Conception) के सिद्धान्त को दैवी मान्यता प्रदान नहीं की थी? इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मैनिंग (Manning), जो हाल में ही कैथोलिक धर्म में दीक्षित हुआ था, पोप का परम मित्र था। लम्बे वाद-विवाद और काफी खींच-तान के बाद धर्माचार्यों ने अपना निर्णय दे दिया।

जब मतदान प्रारम्भ हुआ, रोम में भयंकर तूफान छाया हुआ था और बिजली कड़क रही थी। लेकिन फिर भी लोग अपने काम में जुटे रहे और उन्होंने प्राकृतिक प्रकोप की कोई चिन्ता नहीं की। ऐसा समझा गया कि सेंट पीटर के दृश्य की स्वर्ग में भी आवृत्ति हो रही है। दोनों पक्षों ने इसे चमत्कार (Portent) माना। यूरोप में पोप की निर्भ्रान्तता के सिद्धान्त की विजय का कुछ विरोध हुआ। जर्मनी के पुराने कैथोलिकों ने इसका विशेष रूप से विरोध किया। लेकिन पोप को अपने विशाल दावे की वैधता के बारे में तनिक भी सन्देह नहीं था। उसका कहना था, "पोप बनने के पूर्व मैं पोप की निर्भ्रान्तता में विश्वास करता था। अब मैं उसका अनुभव करता हूँ।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. जर्मनी का एकीकरण (१८५०-७१)
(The Unification of Germany, 1850-71)

(क)

उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी के एकीकरण का इतिहास प्रथम दृष्टि में तो इटली के एकीकरण के इतिहास के समान प्रतीत होता है। दोनों में एक रियासत अन्य रियासतों से शक्तिशाली थी और एक समय शक्तिशाली रियासत ने राष्ट्रीय आन्दोलन का निर्देशन किया—इटली में पीडमौंट ने और जर्मनी में प्रशा (Prussia) ने। दोनों को प्रधान रूप से अपने-अपने मन्त्रियों—कैवूर और बिस्मार्क—की योग्यता के कारण सफलता मिली और दोनों को उस एक शक्तिशाली रियासत की सैनिक शक्ति द्वारा ही सफलता मिली। १८५२ में कैवूर (Cavour) सार्डीनिया का प्रधान-मन्त्री बना और १८६१ में इटली का हरे, सफेद और लाल रंग का झण्डा, जिस पर पीडमौंट का सफ़ेद क्रास भी अंकित था, सारे इटली पर लहराने लगा था, केवल वैनिस और रोम उस झंडे के नीचे अभी नहीं आये थे। १८६२ में बिस्मार्क (Bismarck) सम्राट विलियम (William) का मुख्य सलाहकार नियुक्त हुआ और १८७१ तक सारे एकीकृत एवं संगठित जर्मन साम्राज्य के ऊपर प्रशा का झंडा लहराने लगा। किन्तु ये समानताएँ केवल ऊपरी थीं। इन दोनों देशों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा थी वे भिन्न थीं; उसी प्रकार जिन सिद्धान्तों और रीतियों के अनुसार उन समस्याओं को दोनों देशों ने हल किया, वे भिन्न थीं।

जर्मनी के एकीकरण का इतिहास इटली के एकीकरण के इतिहास के समान है

१८५० तक जर्मनी भी इटली के समान लगातार असफलताओं का मुँह ही देखता रहा था। जर्मनी की एक या दो रियासतों में नाममात्र के संविधान थे जो उस रियासत के नरेश की कृपाकोर पर अवलम्बित थे। उनकी शक्ति का आधार उनकी लोकप्रियता नहीं थी। जनता को अब तक के संघर्ष के फलस्वरूप केवल ये नकली संविधान ही मिल सके थे। फ्रेंकफर्ट पार्लियामेंट के सारे राष्ट्रीय प्रगति के प्रयत्न विफल हो चुके थे। १८५३ में प्रशा ने एक योजना द्वारा कुछ कम पूर्ण संगठन या एकीकरण का प्रयत्न किया, परन्तु ऑस्ट्रिया के दृढ़ संकल्प के आगे झुकना पड़ा। लोकतन्त्रवादी और राष्ट्रवादी उपेक्षित कर दिये गये। प्रशा में समय की गति के अनुसार जो कुछ परिवर्तन हो रहे थे, उनके कारण प्रशा को मान-हानि और झिड़कियाँ सहन करनी पड़ीं। ऑस्ट्रिया के हैब्सबर्ग परिवार के प्रभाव में फैडरल डायट (Federal Diet) को पुनः संस्थापित करके जर्मनी के एकीकरण की सारी योजनाओं को स्थगित कर दिया गया। ऑस्ट्रिया के राजनीतिज्ञों की नीति यही थी कि यूरोप में यथास्थिति (status quo) बनी रहे; और इस नीति पर चलने के लिए ऑस्ट्रिया में सामर्थ्य थी। इस प्रकार ऑस्ट्रिया की नीति प्रबल थी; और उसकी पीठ पर प्रतिक्रियावादी रूस की शक्ति भी थी।

१८५० का जर्मनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि १८४८ से १८५० तक के राष्ट्रीय प्रयत्न असफल रहे थे फिर भी कुछ ऐसे तथ्य प्रकाश में आये जिनसे कुछ शिक्षा मिली, और जर्मन समस्या स्पष्टतर हुई। अब अनेक भ्रम दूर हो चुके थे और अधिक व्यावहारिक प्रयत्नों के लिए मार्ग साफ हो गया। इस समय तक यह भी अच्छी तरह से स्पष्ट हो गया था कि फैडरल डायट (Federal Diet) द्वारा, जिसमें ऑस्ट्रिया का प्रभुत्व अत्यधिक था, जर्मनी का सुधार होना मानो व्यर्थ का स्वप्न था। एक विरोधाभास ही सत्य सिद्ध हो रहा था कि जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना प्रान्तीयतावाद द्वारा ही आ सकती है और केवल एक रियासत के मजबूत बन जाने पर ही जर्मनी की सब रियासतें संगठित हो सकती थीं। दूसरे शब्दों में समाधान का मार्ग यह था कि सारा जर्मनी प्रशा में विलीन हो जाय।

१८४८ में भी जर्मनी के देशभक्त प्रशा की ओर देख रहे थे। इतने कठिन कार्य के लिए जर्मनी की सब रियासतों में प्रशा ही योग्यतम प्रतीत हो रह था; और प्रशा की हाल की सफलताओं के बावजूद उसी को जर्मनी की एकता का स्वाभाविक नेता समझा जाता था। ऑस्ट्रिया की भारी धाक थी किन्तु मैटरनिक (Metternich) के लम्बे शासन-काल के बावजूद वह कमजोर था और अ-जर्मन राज्य समझा जाता था। इसके अतिरिक्त वह समय राष्ट्रीयता का था। आस्ट्रिया अन्तर्राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ा रहा था जो लोगों को अप्रिय था। समय की माँग थी कि देश गतिशील हों किन्तु ऑस्ट्रिया यथास्थिति (status quo) रखना चाहता था। वास्तव में ऑस्ट्रिया नव जर्मनी का विरोधी था और उसने प्रतिक्रियावादी संसद् (Federal Diet) को पुनः स्थापित कर दिया।

दूसरी ओर प्रशा इस समय शक्तिशाली था यद्यपि उसे अपनी शक्ति पर आत्मविश्वास वास्तविकता से कम था। स्टीन (Stein) और स्कार्नहर्स्ट (Scharnhorst) ने देश की आन्तरिक दशा को सुधारने की दिशा में जो प्रयत्न किये थे उनके कारण देश की अर्थ-व्यवस्था अच्छी हो गई थी। देश का शासन सुव्यवस्थित ढंग से चलने लगा था और देश में श्रेष्ठ सेना थी। प्रशा ने लिबरेशन के युद्ध (War of Liberation) में जो भाग लिया था उसके कारण उसे बहुत यश प्राप्त हुआ था और उसे राष्ट्रीय विजय समझा जाता था। १८१५ में प्रशा को जो प्रदेश प्राप्त हुए थे, उनके कारण प्रशा दक्षिणी जर्मनी की रियासतों का संरक्षक बन गया था। इस प्रकार वास्तव में ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रशा के ऊपर ही सारी जर्मनी के संरक्षण का भार आ पड़ा है और धीरे-धीरे ऑस्ट्रिया का प्रभाव जर्मनी में क्षीण हो रहा था। प्रशा के पोज़ेन (Posen) प्रान्त की सीमाएँ सीधी रूस की सीमाओं से मिलती थीं; वेस्टफेलिया (Westphalia) पर अधिकार हो जाने के कारण प्रशा के ऊपर उत्तरदायित्व आ पड़ा था कि वह राइन (Rhine) प्रदेश की स्वयं चौकसी करे। इस प्रकार, प्रशा सम्पूर्ण जर्मनी का फ्रेंच शत्रुओं के विरुद्ध राष्ट्रीय संरक्षक बन गया था। स्वयं अर्डन्ट (Arndt) ने भी लिखा था कि प्रत्येक फ़्रांसीसी हमारा शत्रु है। उसने यह भी लिखा था, "फ्रांस की ओर से सावधान रहना प्रत्येक ज़र्मन देशभक्त का परम कर्त्तव्य है।" इसके अतिरिक्त प्रशा, जौलवेरीन (Zollverein) द्वारा जर्मनी का आर्थिक नेता या अगुआ देश बन गया था। अब जर्मनी की छोटी रियासतें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी-अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए प्रशा के नेतृत्व की ओर ताकती थीं।

संक्षेप में कहना चाहिए कि प्रशा की उन्नति के साथ जर्मनी की शक्ति थी किन्तु ऑस्ट्रिया चाहता था कि जर्मनी कमजोर रहे। १८४८ से १८५० तक के समय में प्रशा को असफलताओं का मुख देखना पड़ा था। प्रशा की नीति भीरु और अस्थिर रही तथा उसने अन्त में राष्ट्रीय एकता को भारी आघात पहुँचाया। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलयम चतुर्थ (Frederick William IV) की कायरतापूर्ण एवं विचलित नीति के कारण ही प्रशा की स्थिति इतनी अपमानजनक हो गई थी क्योंकि राजा की कोई स्थिर नीति ही नहीं थी और प्रशा के मन्त्रियों में न तो आत्मविश्वास था और न सूक्ष्म बुद्धि। इन सबका एक कारण यह भी था कि यदि प्रशा विरोध करता तो उसको न केवल ऑस्ट्रिया से बल्कि ऑस्ट्रिया और रूस की सम्मिलित शक्ति से मोर्चा लेना पड़ता।

उत्तरकालीन इतिहास के आलोक में देखने पर स्पष्ट हो जायगा कि प्रशा के कन्धों पर ही जर्मनी के एकीकरण का भार था और अन्त में प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मनी का एकीकरण हुआ। तत्कालीन राजनीतिज्ञ समझते थे कि जर्मनी का एकीकरण एक ऐसा सुहावना प्रातःकालीन दृश्य है जिसके चारों ओर गहरा कोहरा और धुन्ध है; कोहरा था प्रशा का ऑस्ट्रिया के प्रति आदर भाव और ऑस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध; तथा धुन्ध था असंख्य स्वार्थ एवं अनेक छोटे-छोटे राजाओं के परस्पर विरोधी हित अर्थात् जब तक ऑस्ट्रिया के प्रति कड़ा रुख न अपनाया जाता और जब तक सम्पूर्ण जर्मनी के हितों के आगे छोटी रियासतों के व्यक्तिगत हितों को तिलाँजलि न दी जाती तब तक जर्मनी का एकीकरण असम्भव था।

विलियम प्रथम के सिंहासन पर बैठने के साथ जब विलियम प्रथम (William I) राजा और बिस्मार्क उसका मंत्री बना तभी जर्मनी के एकीकरण का प्रातःकालीन सुहावना दृश्य स्पष्ट दीखने लगा और प्रशा की नीति में दृढ़ता और आत्मविश्वास का पुट प्रविष्ट हुआ।

१८५८ में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के स्थान पर उसका भाई प्रिंस विलियम (Prince William) प्रशा का रीजेण्ट (Regent) बना क्योंकि सम्राट विक्षिप्त हो गया था। प्रिंस विलियम ने १८४८ के विद्रोहियों के विरुद्ध कठोर व्यवहार किया था इस कारण उसको 'राजकुमार कारतूस' (Prince Cartridge) के उपनाम से विभूषित किया गया था। १८६१ में जब सम्राट फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो गई तो वही प्रशा का सम्राट बना। यद्यपि नये शासक का मस्तिष्क उतना विचारवान और तीक्ष्ण नहीं था फिर भी वह ठोस और अच्छा था।

प्रिंस विलियम रीजेंट बना (१८५८)

वह निर्णय कर सकता था और स्थिर बुद्धि वाला पुरुष था किन्तु उसके मृत भाई में इस बात की कमी थी। वह काम करना जानता था।[1] वह मुख्यतः प्रशा का सिपाही था। वह वीर था, ईमानदार था, पवित्र था और व्यावहारिक था। उसका

1. *See* Von Sybel's description in '*The Founding of the German Empire.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास था कि प्रशा के सुदृढ़ राजतन्त्र द्वारा ही केन्द्राभिग (Centripetal) शक्ति स्थापित होगी जिसकी गलत और कमजोर प्राकृतिक सीमाओं वाले जर्मनी देश को नितान्त आवश्यकता थी। प्रशा के राजतन्त्र के पश्चात् जिस दूसरी चीज में वह विश्वास रखता था, वह थी जर्मनी की एकता। जर्मनी के एकीकरण के विषय में उसका दृढ़ अभिमत यही था कि वह केवल प्रशा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उसके बड़े भ्राता के समान, उसकी राष्ट्रीय भावनाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ "मध्ययुगीन आवरण में मन्दाग्र नहीं हो रही थीं। अपने बड़े भाई के विपरीत वह स्पष्ट और दृढ़ निर्णय करने वाला था।"[1] उसका कहना था, "जो कोई सारे जर्मनी पर अधिकार कर लेगा उसी को जर्मनी पर शासन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।" उसकी नस-नस में प्रशा का खून बहता था। उसे प्रशा के गौरव का गर्व था और प्रशा के असम्मान से उसे हार्दिक क्लेश होता था। आवश्यकता आ पड़ने पर वह प्रशा का अपमान करने वाले को दण्ड देने से नहीं चूका और उसने प्रशा के महान् गौरव को सिद्ध करके दिखला दिया।

प्रशा का सम्राट बना (१८६१)

अपने सारे जीवन भर वह उदारवाद का शत्रु रहा, यद्यपि आवश्यकतानुसार वह उचित मन्त्रणा स्वीकार कर लिया करता था और वह इस तथ्य का कायल था कि अच्छे शासन में यह योग्यता होनी चाहिए कि बदलती हुई परिस्थितियों के आगे स्वयं बदलने को तैयार हो। वह किसी प्रकार भी आदर्शवादी नहीं था। वह निर्णय करते समय अच्छे और बुरे विचारों को तोल लेता था और संकट के आगे निर्भय रहता था, अतः उसकी नीति में दृढ़ता और लोच का वह अनोखा और दुर्लभ सम्मिश्रण था जिस कारण हम उसको वास्तविक अर्थों में राजनीतिज्ञ कह सकते हैं। "उसमें ईश्वर-प्रदत्त कुछ ऐसी अनोखी प्रतिभा थी जिसके कारण वह यह जान लेता था कि क्या प्राप्त किया जा सकता है। उसके विचारों में पूर्ण स्पष्टता थी; इसी कारण वह श्रेष्ठ आदमियों का अनोखा पारखी था।"[2] या तो उसके सौभाग्य के कारण या उसकी असीम योग्यता के कारण ही यह सम्भव हो सका कि उसने राज्य की सेवा के लिए अत्यन्त उचित और योग्य व्यक्तियों को छाँटा। उसमें इतना साहस और इतनी बुद्धिमत्ता भी थी कि जो व्यक्ति उसके विश्वासपात्र बन जाते थे उन्हें वह आखिर तक समर्थन देता रहता था। जिस समय से उसने बिस्मार्क को प्रशा का मन्त्री नियुक्त किया, सदैव उसका समर्थन किया और उससे मित्रवत् व्यवहार किया, यद्यपि बिस्मार्क के कई बार उसके साथ गहरे मतभेद हो गए थे और कई बार सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न हो गई थी। किन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि बिस्मार्क ने भी अपने सम्राट् की पूर्ण और सच्ची निष्ठा के साथ सेवा की थी।

ऑटो वॉन बिस्मार्क-स्कानहौसिन (Otto Von Bismarck-Schonhausen)

---

1. Bismarck.
2. Von Sybel, op. citd.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्मार्क (१८१५-९८)

१८१५ में पैदा हुआ और वह १८९८ तक जीवित रहा। इस प्रकार वह पूरी १९वीं शताब्दी भर जीवित रहा। अपने युग का वह महत्तम व्यक्ति था। उसने महान् राजनीतिक योग्यता का परिचय दिया और उसकी राजनीतिक सफलताओं का संसार के इतिहास पर भारी प्रभाव पड़ा। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रशा राज्य को, जिसके अधिकार में १८५० तक ऐसा कोई बन्दरगाह नहीं था जो स्वीडन (Sweden) या डेन्मार्क (Denmark) के प्रभाव से पूर्ण मुक्त होता, एक सम्पूर्ण साम्राज्य और उपनिवेश हस्तगत हुए। उसने जर्मनवासियों को, जो ट्रीट्शे (Treitschke) के शब्दों में, समुद्रों में चोरों की भाँति लुक-छिपकर व्यापार करते थे और जिनका अपना कोई झण्डा भी नहीं था, एक राष्ट्रीय झण्डा दिया, जिसका उतना ही राजनीतिक आदर था जितना कि इंग्लैंड या फ्रांस के झण्डे का था। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप अब यूरोप का राजनीतिक केन्द्र वियना (Vienna) या पेरिस से हट कर बर्लिन (Berlin) बन गया था। उसी ने जर्मन साम्राज्य का निर्माण किया जो आधुनिक अमेरिका के अस्तित्व में आने तक आधुनिक काल की एक आश्चर्यजनक घटना बनी रही।

बिस्मार्क का जन्म प्रशा के एक पुराने ज़मींदार रईस परिवार में हुआ था। बिस्मार्क को इस बात का गर्व था कि वह एक ऐसे प्राचीन परिवार से सम्बन्धित था जो होहेन्ज़ोलर्न (Hohenzollern) परिवार से भी पहले प्रशा में विख्यात था। सामन्ती परिवार के रूप में बिस्मार्क का परिवार बहुत काल तक प्रसिद्ध रहा। किन्तु उस परिवार की प्रसिद्धि स्थानीय ही रही; और बिस्मार्क परिवार में ऑटो वॉन बिस्मार्क, जर्मन संघ के प्रधान-मंत्री के रूप में राजनीतिक क्षेत्र में चमकने वाला प्रथम नक्षत्र था जिसका सार्वजनिक जीवन में भारी नाम हुआ। ऑटो वॉन बिस्मार्क अपने माता-पिता की तृतीय संतान थी। उसके जन्म के शीघ्र बाद परिवार प्रशा के पोमेरेनिया (Pomerania) प्रान्त में स्थित अपनी नीफ़ौफ़ (Kniephof) रियासत में उठ गया। वहाँ पर हमारे नायक बिस्मार्क को, जो भविष्य में चांसलर या प्रधान-मन्त्री बना, देहाती प्राकृतिक जीवन से इतना प्रेम हो गया कि अब उसे शिकार, निशानेबाजी, घोड़े की सवारी और तैरने से लगाव हो गया। देहाती जीवन से उसका लगाव कभी नहीं छूटा, यहाँ तक कि उसके लम्बे राजनीतिक जीवन में भी देहात के आनन्द उसको अपनी ओर आकृष्ट करते थे। बिस्मार्क के आरम्भिक-जीवन में उसकी भविष्य की महत्ता का कोई चिन्ह नहीं मिलता था। गाटिंजन (Gottingen) और बर्लिन (Berlin) के विश्वविद्यालयों में उसने तीन वर्ष शिक्षा प्राप्त की किन्तु किसी विशेष प्रतिभा का परिचय नहीं दिया। वह प्रबलता, शरारत, शराबखोरी और अशिष्टाचार के कारण अपने विश्वविद्यालय जीवन में बदनाम रहा। विश्वविद्यालय की शिक्षा के उपरान्त उसने प्रशा की सिविल सर्विस के न्याय विभाग में नौकरी कर ली, किन्तु उसे शीघ्र ही वह कार्य अरुचिकर जान पड़ा। उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और १८३९ में वह अपनी रियासत नीफ़ौफ़ (Kinephof) में जाकर ज़मींदारी का प्रबन्ध करने लगा। फिर नीफौफ़ की ज़मींदारी का प्रबन्ध छोड़कर स्कानहौसिन की अपनी ज़मींदारी का प्रबन्ध देखने लगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैवूर (Cavour) के समान ही बिस्मार्क की रुचि भी खेती-बाड़ी के काम में विशेष रूप से थी। बिस्मार्क ने कहा था, "मेरा इरादा है कि कृषि-कर्म में सफलता प्राप्त करने के बाद मैं सारे जीवन भर देहात में ही रहूँ और देहात में ही मरूँ; और यदि युद्ध छिड़ जाए तो युद्ध करते-करते मरूँ।" उसके जीवन की महत्त्वाकांक्षाएँ ये थीं कि उसके खेतों से खूब लाभ हो और उसे जर्मन सेना में युद्ध-काल में उच्च पद (Lieutenancy) प्राप्त हो जाएँ।

आठ वर्षों तक बिस्मार्क भूस्वामी के रूप में अपनी जागीरों का प्रबन्ध करता रहा, विदेशों की यात्रा करता रहा, स्थानीय राजनीति में भाग लेता रहा और खूब पढ़ता रहा। कहा जाता है कि इन आठ वर्षों में उसने खूब शिकार खेला; खूब शराब पी और नास्तिक हो गया। एक बार उसने कहा कि वह स्वभावतः गणतन्त्रवादी (Republican) है; उसका तात्पर्य यह था वह स्वभावतः अपने ऊपर किसी प्रकार का अंकुश सहन नहीं कर सकता। अपने विद्यार्थी काल में वह राजनीति में भी गणतन्त्र का समर्थक बन गया था; किन्तु जब गणतन्त्रवादियों के बारे में उसे पता चला कि वे अनाचारी हैं और उनका सम्बन्ध काल्पनिक मान्यताओं और दूषित शिक्षाओं से है, तो उसका मन गणतन्त्रियों की ओर से फिर गया और वह नरम उदारवादी विचारों का समर्थक बन गया। उसको नरम उदारवाद की प्रेरणा अपनी माता से प्राप्त हुई थी। किन्तु इन्हीं दिनों में बिस्मार्क का सम्पर्क ट्रीलफ़ (Trieglaff) नामक सोसाइटी के कुछ पड़ोसी मित्रों से हो गया। इस सोसाइटी के सदस्यों का सम्बन्ध बर्लिन की रूढ़िवादी पार्टी (Conservative Party) से था। इस सोसाइटी के सदस्यों के प्रभाव ने बिस्मार्क के ऊपर भारी प्रभाव डाला। अब धीरे-धीरे उसने नास्तिकवाद और उदारवाद दोनों से छुट्टी पा ली; अब वह कट्टर ल्यूथरवादी सुधारक बन गया और सदैव बना रहा। राजनीति में उसने कट्टर रूढ़िवाद या अनुदार दृष्टिकोण अपनाया और जब वह प्रशा का मन्त्री बना, तब भी उसकी नीति का आधार रूढ़िवाद (Conservatism) ही रहा।

१८४७ में उसने विवाह किया और विवाह के साथ-ही-साथ उसने प्रशा की राजनीति में भी पदार्पण किया। इस प्रकार एक ओर उसने गृहस्थ जीवन का आनन्द उठाया तथा दूसरी ओर उसने सार्वजनिक जीवन की यश सीढ़ी पर चढ़ना प्रारम्भ किया। संयुक्त प्रशा की उस संसद् (United Prussian Diet) का सदस्य बनकर उसने इतिहास-निर्माण करना प्रारम्भ किया जिसे राजा ने १८४७ में लोकतन्त्र के प्रति एक रियायत के रूप में आहूत किया था। किन्तु इस डायट या संसद् (Diet) ने एक ओर तो मैटरनिक (Metternich) और ज़ार (Tsar) को भड़काया था; किन्तु दूसरी ओर इस डाइट की कमियों से उदारवादियों को भारी निराशा हुई। १८४७ से लेकर १८५१ तक का समय वास्तव में प्रशा के इतिहास के निर्माण का समय है। इसी काल में वैधानिक गतिरोध उत्पन्न हुआ; इसी काल में क्रान्ति हुई और इसी काल में उसने राजा के फ्रैंकफ़र्ट राजमुकुट को अस्वीकार करने

बिस्मार्क (१८४७ से १८५१ तक)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समर्थन किया। इसी काल में अर्फ़र्ट (Erfurt) संघ बना और उसकी हार हुई। पोमेरेनिया के युवक जमींदार बिस्मार्क ने चारों ओर ऐसी क्रियाशीलता प्रदर्शित की कि वह सभी की निगाहों में चढ़ गया; वह स्वतन्त्र वक्ता था, तीक्ष्ण आलोचक था, निर्भीक था, यहाँ तक कि दुस्साहसी भी था, प्रजातन्त्र का विरोधी था और अनुदार रूढ़िवादियों का मुख्य समर्थक था। उसने स्वयं एक बार स्वीकार किया था कि वह शाही खानदान का अत्यन्त अविवेकी गुस्सेबाज राजकुमार (Royalist Hotspur) है। इसमें सन्देह नहीं कि इस काल में बिस्मार्क ने राजनीति का गन्दा खेल खेला, यद्यपि बाद में जब वह प्रशा का मन्त्री और फिर फेडरल चांसलर बना तो उसने परिष्कृत राजनीति का खेल खेला। तथापि, इन वर्षों की घटनाओं से बिस्मार्क की मनःस्थिति समझने में आसानी होगी।

इन चार वर्षों के इतिहास में बिस्मार्क निरन्तर प्रजातन्त्र के विरुद्ध संघर्ष करता रहा। उसका विरोध क्रान्तिवादियों से भी था और उदारवादियों से भी। इन दिनों में उसके भाषणों का प्रायः यही सार होता था कि प्रशा का राजतन्त्र प्रजातन्त्र से कोई समझौता नहीं करेगा। "उसने कहा था कि मैं इस शताब्दी की इस भावना को समझने में असमर्थ हूँ जिसमें प्रत्येक दीवाने विद्रोही को देशभक्त की संज्ञा दी जाती है। क्रान्तिकारियों की चापलूसी करना या उन्हें रियायतें देना घोर पाप है और मैं उसे शर्मनाक कायरता कहूँगा।" इसी पैमाने के अनुसार उसने इन वर्षों की प्रशा की राष्ट्रीय और जर्मन नीति की भी आलोचना की। वह प्रशा के राजा द्वारा फ्रेंकफ़र्ट राजमुकुट स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था; और अर्फ़र्ट (Erfurt) संघ की असफलताओं पर उसने प्रसन्नता प्रकट की। बिस्मार्क प्रशा के राजतन्त्र को लोकतन्त्र या वैधानिकवाद के साथ आबद्ध नहीं रखना चाहता था। वह यह भी नहीं चाहता था कि प्रशा दक्षिण जर्मनी की अराजकता में फँस जाये। उसको यह भी भय था कि यदि प्रशा की उपेक्षा करके जर्मनी की एकता प्राप्त की गई, तो प्रशा की पृथक सत्ता नष्ट हो जायेगी। उसकी बातों में भी इतनी ही शक्ति थी जितनी कि उसके विचारों में। उसका कहना था, "हो सकता है कि फ्रेंकफर्ट राजमुकुट बड़ा चमकदार हो लेकिन इस चमक को वास्तविकता प्रदान करने के लिए प्रशा के राजमुकुट के सोने को गलाना आवश्यक होगा। मुझे इस बात का यकीन नहीं है कि यह नया साँचा हमारे वांछित संविधान के अनुकूल होगा।" बिस्मार्क प्रशा की राष्ट्रीय पताका का प्रभाव चतुर्दिक् विस्तृत करना चाहता था किन्तु वह यह नहीं चाहता था कि प्रशा की नीति फ्रेंकफ़र्ट संसद् द्वारा संचालित हो। बिस्मार्क ने यह भी कहा था, "प्रशा का सम्मान इस बात में नहीं है कि वह सारे जर्मनी में उन रुग्ण लोक-सेनाओं के लाभ के लिए, जिनके संविधान खतरे में हैं, डॉन क्विक्ज़ोट (Don Quixote) की भाँति आचरण करता फिरे।"

अर्फ़र्ट संघ (Erfurt Union) द्वारा प्रशा और उदारवाद के बीच असंगत मेल बैठाया गया था, और यह गलत दिशा की ओर कदम था। यदि यह संघ प्रभावी हो जाता तो होहेंजोलर्न (Hohenzollern) राज्य के वास्तविक हितों को क्षति पहुँचती और फ्रेडरिक महान् (Frederick the Great) के ऐतिहासिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शों का महत्त्व घट जाता। प्रस्तावित अर्फर्ट संघ के बन जाने पर प्रशा एक ऐसे अनावश्यक युद्ध में फँस जाता, जिसमें किसी लाभ की आशा नहीं थी; और जिस युद्ध में प्रशा को न केवल ऑस्ट्रिया अपितु रूस के विरुद्ध भी युद्ध करना पड़ता जबकि फ्रांस ऐसी स्थिति से लाभ उठाने की ताक में बैठा ही था। और वह युद्ध में फँसे हुए प्रशा के ऊपर अवश्य आक्रमण करता। बिस्मार्क ने एक ऐतिहासिक सत्य ही कहा था, "किसी बड़ी शक्ति और छोटी शक्ति के आधारों में मुख्य अन्तर यह है कि बड़ी शक्ति प्रत्येक कार्य कुछ-न-कुछ राजनीतिक स्वार्थ के लिए करती है जब कि छोटी शक्तिय कभी-कभी केवल भावुकता में बहकर कुछ कार्य कर डालती हैं। किसी बड़े देश के लिये यह उचित नहीं है कि वह किसी ऐसे कारण पर युद्ध करे जिसमें उसके हित ग्रस्त नहीं हैं।" .....आगे चलकर वह पुनः कहता है कि "किसी देश का राजनीतिज्ञ चाहे तो युद्ध के विवाद पर लोकप्रिय बन सकता है और कुछ समय के लिए कुछ लाभ भी उठा सकता है किन्तु ऐसा राजनीतिज्ञ धिक्कार के योग्य है जो युद्ध करने से पहले उसके कारण को नहीं खोजता; क्योंकि युद्ध से जो उसके देश में अग्नि प्रज्वलित होगी उसको बुझाने के लिए युद्ध का कारण ही तो पानी बनेगा।"

बिस्मार्क प्रायः हरेक चीज से घृणा करता था; किन्तु लोकतन्त्र के प्रति उसकी घृणा एक पवित्र आदर्श के प्रति घृणा थी। प्रशा और प्रशावादिता में उसका असीम विश्वास था। प्रशा और प्रशावादिता में राजतन्त्र, सेना, जमींदारों और भूस्वामियों के रूढ़िवादी और अनुदार हित सभी सम्मिलित थे। यही नहीं प्रशा और प्रशावादिता में, जिन पर उसको अभिमान था, पुरखों का अभिमान, इतिहास का अभिमान और जर्मन जाति की श्रेष्ठता का अभिमान भी सम्मिलित था। वह कहता था, "हम प्रशावासी हैं और सदैव इस तथ्य पर गर्व करते रहेंगे। मैं जानता हूँ कि इस उक्ति द्वारा मैं अपने देश के अधिकांश लोगों के विचारों को व्यक्त कर रहा हूँ। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि हम सदैव प्रशावासी रहेंगे चाहे यह संविधान रहे या नष्ट हो जाए।" बिस्मार्क ने इस आदर्श को कभी नहीं भुलाया और जब सारी जर्मनी का राजनीतिक एकीकरण उसकी इच्छाओं के अनुसार हो गया, उस समय जर्मनी को प्रशा में मिला दिया गया किन्तु प्रशा का जर्मनी में विलीनीकरण नहीं हुआ। इटली का एकीकरण इन अर्थों में जर्मनी के एकीकरण से भिन्न था। सार्डीनिया रोम की ओर हो गया किन्तु जर्मनी बर्लिन में समा गया।

१८५१ तक यह प्रकट हो चुका था कि बिस्मार्क शक्तिशाली पुरुष है और उसमें नेतृत्व के गुण हैं। प्रशा के राजा को उसने अपनी ओर आकर्षित किया और उसके मित्रों को आशा होने लगी कि उसे कोई मन्त्री पद मिलेगा। किन्तु फ्रेडेरिक विलियम (Frederick William) यद्यपि इस बात से तो प्रसन्न था कि बिस्मार्क राजसिंहासन के प्रति सच्ची निष्ठा रखता है किन्तु वह बिस्मार्क के दृढ़ विचारों (Uncompromising Attitude) से प्रसन्न नहीं था क्योंकि बिस्मार्क कभी समझौता करना नहीं जानता था। कहा जाता है कि फ्रेडेरिक विलियम की बिस्मार्क के सम्बन्ध में यह धारणा थी कि "वह खूनी प्रतिक्रियावादी है और उसे खून की चसक है इसलिए जब अनियन्त्रित युद्ध हो रहा हो उस समय बिस्मार्क को प्रयुक्त किया जा सकता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।" सम्राट फ्रेडेरिक विलियम का यह भी विश्वास था कि बिस्मार्क की शिक्षा अधूरी है इसलिए उन्होंने उसको बर्लिन (Berlin) में अपना मन्त्री नियुक्त करने के बजाय फ्रैंकफर्ट की फेडरल संसद् में प्रशा का पूर्ण शक्तियुक्त महादूत (Plenipotentiary) नियुक्त कर दिया। बिस्मार्क जैसे कूटनीतिज्ञ अनुभवहीन व्यक्ति के लिए यह पद भी पर्याप्त गौरव का था।

फ्रैंकफर्ट में

चाहे तो सम्राट ने बिस्मार्क को फ्रैंकफर्ट फेडरल डायट का प्रतिनिधि भय के कारण नियुक्त किया हो और चाहे अपनी दूरदर्शिता के कारण, इसमें सन्देह नहीं है कि सम्राट का निर्णय सही था। फ्रैंकफर्ट में बिस्मार्क को जो कूटनीतिक शिक्षा और अनुभव प्राप्त हुआ उसके कारण यह ग्रामीण राजनीतिज्ञ, राज्य-कार्य में धुरन्धर पटु हो गया। वह सदैव कुछ-न-कुछ सीखने की ताक में रहता था। फ्रैंकफर्ट में उसको वास्तविक लाभ यह हुआ कि उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ, उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ बनीं; उसका राज्य-प्रबन्ध के सिद्धान्तों से परिचय हुआ; और उसे जर्मन और यूरोपियन राजनीति का ज्ञान हुआ। इस प्रकार फ्रैंकफर्ट का प्रवास, बिस्मार्क के राजनीतिक जीवन का वास्तविक रूपान्तर काल प्रमाणित हुआ। वह आठ वर्षों तक फ्रैंकफर्ट में रहा, तीन वर्षों तक सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) में रहा, कुछ महीनों के लिए पेरिस में रहा, और कुछ समय के लिए वियना (Vienna) में भी उसको प्रतिनिधित्व करना पड़ा। उसने इंग्लैण्ड की भी भी सैर की। इस प्रकार उसे अपने समय के प्रायः सभी प्रमुख राजनीतिज्ञों का परिचय प्राप्त हो गया—वह केवल कैवूर से नहीं मिल सका। एक ऐसे राजनीतिक व्यक्ति के लिए, जिसे ऑस्ट्रिया को हराकर, रूस को प्रसन्न रखकर और फ्रांस को धमकाकर जर्मनी का एकीकरण करना था, इससे अच्छी राजनीतिक और कूटनीतिक शिक्षा नहीं मिल सकती थी जैसी कि बिस्मार्क को फ्रैंकफर्ट में प्राप्त हुई।

फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) में रहकर बिस्मार्क को जर्मन राजनीति का विस्तृत ज्ञान हो गया और वह अब प्रशा के सम्मुख आई हुई समस्याओं को व्यापक रूप में देखने लगा। उसे इस बात पर भी विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ कि उन विभिन्न समस्याओं को वह स्वयं किस प्रकार हल कर सकेगा। उसे प्रतीत हुआ कि इलेक्टर महान् (Elector) के काल से उसके समय तक जर्मनी का इतिहास यही बताता था कि जर्मनी में सत्ता स्थापित करने की वास्तविक होड़ प्रशा और ऑस्ट्रिया में रही है और प्रशा को अन्य जर्मन रियासतों के समान ही तुच्छ रियासत समझा जाता है। उसे यह भी ज्ञान हुआ कि ऑस्ट्रिया प्रशा को बराबरी का दर्जा भी देने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए अब वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण तभी सम्भव होगा जब प्रशा ऑस्ट्रिया को युद्ध में हरावे। किन्तु जिस समय बिस्मार्क फ्रैंकफर्ट गया था उस समय उसके विचार बर्लिन (Berlin) के कट्टर रूढ़िवादियों (Orthodox Conservatives) से मिलते-जुलते थे कि प्रशा और ऑस्ट्रिया वास्तविक मित्र-राष्ट्र हैं और दोनों देशों की सम्मिलित सैनिक शक्ति द्वारा क्रान्ति के विरुद्ध जर्मनी की रक्षा करनी चाहिए। उसका बर्लिन के कट्टर रूढ़िवादियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान ही यह भी विचार था कि प्रशा और ऑस्ट्रिया के बीच कौन नेतृत्व करे और दोनों की प्रतिस्पर्द्धा किस प्रकार शान्त हो, यह समस्या आपसी सौमनस्य द्वारा स्वयं हल हो जाएगी। किन्तु फैडरल डायट (Federal Diet) में धीरे-धीरे बिस्मार्क का यह विश्वास दृढ़तर होने लगा कि ऑस्ट्रिया और प्रशा के बीच शत्रुता दो सौ वर्ष पुरानी है और वह वास्तविक है तथा यह शत्रुता रूढ़िवादियों के पवित्र विश्वासों और मैत्री संघों से हल न होगी। उसे यह विश्वास हो गया कि इतिहास का तर्क लोकतन्त्र के तर्क से अधिक विश्वसनीय है। उसने अत्यन्त निर्भीकता और आत्मिक विश्वास के साथ अपने मन की बात को बाद में प्रशा के सम्राट और प्रशा के सामने रखा।

बिस्मार्क को फ्रैंकफर्ट में ज्ञान हुआ कि जर्मन समस्या के मूल में वास्तविक समस्या यह थी कि किस प्रकार प्रशा और ऑस्ट्रिया के सम्बन्धों में समन्वय स्थापित हो तथा दूसरी गौण समस्या थी जर्मनी की छोटी रियासतों का व्यवहार। उसने यह भी अनुभव किया—और यह उसकी पश्चात्वर्त्ती नीति का आधार-स्तम्भ था—कि जर्मनी की छोटी रियासतें प्रशा की ओर सन्देह से देखती थीं, यद्यपि तथ्य यह था कि क्रान्ति-काल में अनेक छोटी जर्मन रियासतें केवल प्रशा की सहायता के बल पर ही अपना अस्तित्व बनाए रख सकीं। जर्मनी की छोटी रियासतें अपनी-अपनी स्थिति को अक्षुण्ण बनाए रखने को उत्सुक थीं अतः स्वभावतः उनका झुकाव ऑस्ट्रिया की ओर अधिक था, क्योंकि ऑस्ट्रिया की नीति यथास्थिति (Status quo) बनाए रखने की थी। अपनी स्थिति ज्यों की त्यों बनाए रखने की इच्छा के कारण छोटी रियासतें प्रशा को सन्देह और भय की दृष्टि से देखती थीं क्योंकि उनकी धारणा थी कि प्रशा द्वारा जर्मनी के एकीकरण की नीति अपना लेने के कारण वे भी स्वभावतः प्रशा में ही विलीन हो जायेंगी।

बिस्मार्क का फ्रैंकफर्ट में आठ वर्षों का प्रयास मायाजाल से मुक्ति (Disillusionment) और स्पष्टीकरण का समय था। इन दिनों बिस्मार्क के हृदय में अनेक राजनीतिक दुराचार घर कर गये; किन्तु उसने राजनीतिक बुद्धि भी अर्जित की। उसने देखा कि राजनीति में षड्यन्त्र और छद्मवेश से लाभ होता है और उसने यह भी अनुभव किया कि बिना आन्तरिक प्रेरणा के भी कूटनीति सफल हो सकती है तथा धन के लालच द्वारा मनुष्यों के विश्वासों को खरीदा जा सकता है। "कुछ वर्षों बाद वह जनमत को महत्त्वहीन मानने लगा, अखबारों और पत्रकारों से उसको विरक्ति हो गई, क्योंकि इनको उसके विचार से धन द्वारा प्रभावित किया जा सकता था। वह कहता था कि धन देकर सरकारी समाचार एजेंसियों द्वारा कुछ भी झूठ-मूंठ समाचार प्रसारित कराये जा सकते हैं और कूटनीतिक सम्पर्कों द्वारा कुछ भी अनर्गल और असत्य अफवाहें फैलाई जा सकती हैं और तथाकथित स्वतन्त्र पत्रों और पत्रिकाओं को धन का लालच देकर मनमाने समाचार प्रकाशित कराये जा सकते हैं। वे सब धारणाएँ बिस्मार्क ने अपने फ्रैंकफर्ट के प्रवास-काल में ही बनाईं।"[1] १८५० तक

---

1. C. Grant Robertson, *Bismarck* ("*Makers of the Nineteenth Century*" *Series*)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्मार्क के चरित्र में प्रसन्नता के भाव प्रधान थे; किन्तु १८६० के आस-पास वह कुछ चिड़चिड़े स्वभाव का व्यक्ति हो गया था। उसके स्वेच्छाचारी व्यक्तित्व में असभ्यता और अशिष्टता का समावेश हो चुका था। उसका स्वास्थ्य अस्थायी रूप से खराब हो गया और बीमारी के कारण उसका स्वभाव सदैव के लिए चिड़चिड़ा हो चुका था। उसके पास अच्छे स्वास्थ्य की प्रसन्नता का अभाव होने लगा था।

अपने फ्रैंकफर्ट के जीवन के आरम्भ से ही बिस्मार्क ने प्रशा को ऑस्ट्रिया के बराबर मानना शुरू कर दिया था और उसने ऐसा आचरण रखा जिससे ऑस्ट्रिया चिढ़े। वह हर सम्भव उपाय द्वारा ऑस्ट्रिया के उन सभी कुचक्रों को असफल बनाता रहता था जिनके द्वारा ऑस्ट्रिया प्रशा को घटिया श्रेणी का राज्य बनाना चाहता था। इस सम्बन्ध में वह बारीक-से-बारीक तथ्यों को भी नजर-अन्दाज नहीं करता था। यदि आस्ट्रिया किसी प्रकार प्रशा को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता था तो प्रशा भी तुरन्त ऑस्ट्रिया को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता था। उदाहरण-स्वरूप ऑस्ट्रिया का प्रतिनिधि जो फेडरल डायट का सभापति था, समिति सभाओं में सिगार पिया करता था। एक अन्य अवसर पर थन (Thun) ने, जो ऑस्ट्रिया का प्रतिनिधि था, आश्चर्य के साथ देखा कि बिस्मार्क बिना कोट पहने केवल कमीज पहने हुए डायट (Diet) में चला आया। उसने कहा—"बड़ी गर्मी है—कोट असह्य है।"

राज्य की नीति के सम्बन्ध में भी वह ऐसी नीति की सिफारिश करता था जो स्वतन्त्र और साहसिक होती थी किन्तु प्रायः प्रशा के राजा को ऐसी नीति स्वीकार करना कठिन हो जाता था। बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया को जॉलवेरीन (Zolliverein) में प्रविष्ट होने से रोक दिया यद्यपि ऑस्ट्रिया उत्सुक था और क्रीमिया युद्ध में भी प्रशा को ऑस्ट्रिया विरोधी नीति अपनाने पर बाध्य किया था। १८५९ के आपात काल में बिस्मार्क चाहता था कि प्रशा की सार्डीनिया के साथ ऑस्ट्रिया के विरुद्ध स्थायी मैत्री हो जाय क्योंकि हैब्सबर्ग वंश प्रशा और सार्डीनिया का सनातन शत्रु था; किन्तु उस समय प्रिंस विलियम प्रशा का रीजेंट था। वह न तो उदारवादी फ्रांस के साथ मिलना चाहता था और न इटली के साथ मिलना चाहता था, अतः उसने ऑस्ट्रिया का ही समर्थन किया।

उसी वर्ष बिस्मार्क को रूस में प्रशा का राजदूत बनाकर सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) भेज दिया गया। वहाँ भी उसने लाभदायक कार्य किया। वह यह नहीं भूला था कि १८४९ और १८५० में ऑस्ट्रिया को जो सफलताएँ प्राप्त हुई थीं वे ज़ार निकॉलस की सहायता के कारण ही हुई थीं। बिस्मार्क चाहता था कि भविष्य के किसी युद्ध में प्रशा और रूस मित्रराष्ट्र हों। क्रीमिया युद्ध के कारण ऑस्ट्रिया और रूस की पुरानी मैत्री टूट चुकी थी और इसलिए रूस और प्रशा की मैत्री का मार्ग साफ था। सेंट पीटर्सबर्ग में बिस्मार्क और ज़ार एलेक्जैण्डर द्वितीय (Tsar Alexander II) से गाढ़ी मैत्री हो गई। इससे प्रशा का पक्ष प्रबल हो गया; और जब बाद में बिस्मार्क प्रशा का प्रधान मन्त्री बना, उसने सदैव रूस-समर्थक नीति अपनायी।

सेंट पीटर्सबर्ग में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद कुछ महीनों के लिए वह पेरिस में राजदूत बनकर रहा। वहाँ उसे नेपोलियन तृतीय और उसके मन्त्रियों को समझने में सहायता मिली। यह अनुभव भी अत्यन्त सहायक प्रमाणित हुआ। किन्तु पेरिस में उसका प्रवास अत्यन्त अल्पकालीन रहा और सितम्बर १८६२ में वह बर्लिन में प्रशा के सम्राट के अधीन मन्त्रि-मण्डल का अध्यक्ष बनाकर बुला लिया गया।

पेरिस में

१८५१ से लेकर १८६२ तक के ११ वर्ष बिस्मार्क के जीवन में और यूरोप के इतिहास में महत्त्वपूर्ण रहे किन्तु १८५८ तक के वर्ष प्रशा के इतिहास में सामान्य से रहे। १८५८ में विलियम के प्रशा का रीजेण्ट बनने के पश्चात् प्रशा की नीति में भी फ्रेडरिक महान् (Frederick the Great) की आत्मा बोलने लगी थी और अब होहेन्ज़ोलर्न राज्य परिवार (Hohenzollern Dynasty) का प्रताप-सूर्य चमकने लगा था। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का राज्य-काल निरंकुशता के भद्दे प्रदर्शन के बाद करुण और दयनीय स्थिति में समाप्त हुआ था। १८४९ के भ्रमनिवृत्त क्रान्तिकारी (Disillusioned Radicals) अब असन्तोष की अवस्था में उग्र क्रान्तिकारियों से त्राण और आर्थिक समाजवाद के लिये मार्ग-दर्शन की याचना करने लगे। अब रूसो (Rousseau) का युग समाप्त हो चुका था और कार्ल मॉर्क्स का युग आ गया था। नये रीजेण्ट के प्रशा के राजनीतिक क्षितिज पर प्रकट हो जाने के पश्चात् प्रशा की विदेशी और गृह नीति नया मोड़ लेने लगी। १८५९ में प्रशा सैन्य-सज्जित था और अब वह यूरोप के मामलों में लगभग पंच बन गया था। फ्रांस ने जीतते-जीतते इस भय से अपना अभियान रोक दिया कि कहीं प्रशा की सेनाएँ राइन (Rhine) पार करके मुकाबले पर न आ जाएँ। ऑस्ट्रिया ने इस कारण हार स्वीकार कर ली कि कहीं प्रशा के हाथों उसकी दुर्गति न हो। विलाफ्रैंका (Villafranca) की अस्थायी संधि के कारण फ्रांस, इटली और ऑस्ट्रिया, सभी को शर्म और निराशा हुई थी किन्तु उक्त संधि प्रशा की विजय थी। बिस्मार्क ने कहा था कि "भीरु नीति अपनाना उचित नहीं होगा।"

प्रशा की नीति में नया तेज

प्रशा में मैण्ट्यूफ़ैल का मन्त्रिमण्डल (Manteuffel Ministry), जो ओलमुट्ज़ की पराजय (Olmutz Surrender) के लिए उत्तरदायी था, अपदस्थ कर दिया गया और क़िसी सीमा तक राजकुमारी रीजेण्ट ऑगस्टा के प्रभाव के कारण मैण्ट्यूफ़ैल के मन्त्रिमण्डल के स्थान पर नरम उदारवादियों (Moderate Liberals) ने मन्त्रिमण्डल बनाया। अब प्रजातन्त्रवादियों की हिम्मत बढ़ी कि प्रशा में उदारवाद का साम्राज्य स्थापित हो जायेगा जिसके नेतृत्व में वैधानिक उपायों द्वारा जर्मनी का एकीकरण सम्भव होगा। उन्होंने ऐसेनक (Eisenach) में सम्पूर्ण जर्मनी की एक सभा की और कार्यक्रम तैयार किया।

किन्तु शीघ्र ही दिन के प्रकाश के समान यह स्पष्ट हो गया कि रीजेन्ट (Regent) को उदारवाद के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी और वह ऐसेनक (Eisenach) की सभा में स्वीकृत सिद्धान्तों पर चलने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीजेण्ट कुमार विलियम एक सैनिक था, और बिस्मार्क के समान वह भी युद्धों द्वारा सफलता का प्रेमी था। उसका भी यही विश्वास था कि प्रशा की आत्मा प्रशा की सेना है और प्रशा की शक्ति प्रशा की सेना की शक्ति में निहित है। उसका विश्वास था कि सेना की शक्ति के आधार पर ही आल्मुट्ज (Olmutz) की सी पराजय की पुनरावृत्ति न होगी और केवल सैनिक शक्ति के आधार पर ही प्रशा सारे जर्मनी का साम्राज्य प्राप्त कर सकेगा। वह समझता था कि प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण अवश्य होगा। इसलिए रीजेण्ट (Regent) ने निश्चय किया कि सेना को शक्तिशाली बनाया जाय। सेना का पुनर्गठन मुक्ति के युद्ध (War of Liberation) के बाद से नहीं हुआ था; और यद्यपि प्रशा की जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि हो चुकी थी, प्रशा की सेना में तदनुसार वृद्धि नहीं की गई थी। उसने वॉन माल्टके (Von Moltke) को प्रधान सेनापति नियुक्त किया और वॉन रून (Von Roon) को युद्ध-मन्त्री नियुक्त किया। युद्धमन्त्री वॉन रून (Von Roon) कट्टर रूढ़िवादी था। वह कृतसंकल्प था कि संसद् के बकवादी सदस्यों को सैनिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करने देगा।

१८५९ के पतझड़ में प्रशा की संसद् के समक्ष सेना के सुधार के सम्बन्ध में कुछ विधेयक प्रस्तुत किये गये जिनमें प्रस्ताव रखा गया था कि ३९ नये पैदल सैनिक दस्ते और दस घुड़सवारों के सैनिक दस्ते और बढ़ाये जाएँ। संसद् ने इन विधेयकों को अस्वीकृत कर दिया और अब सम्राट और संसद् में गतिरोध प्रारम्भ हो गया। बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् रीजेंट स्वयं २ जनवरी, १८६१ को प्रशा का सम्राट् बना। अब सम्राट् भी अपनी जिद पर डट गया। उसने संविधान की परवाह नहीं की तथा सेना के लिए रंगरूटों की भर्ती प्रारम्भ कर दी। इन नये सेना के दस्तों के झण्डों का दीक्षा-संस्कार हुआ। किन्तु जब विरोधी संसद् ने यह देखा कि सम्राट् उनकी इच्छाओं के विरुद्ध जिद कर रहा है तो उसने कठोर रुख ग्रहण किया। संसद् भंग कर दी गई किन्तु उसके स्थान पर जो संसद् आई वह पहली से भी अधिक शासन-विरोधी थी। अब उदार मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। उसके बाद अब अनुदारदलीय मन्त्रिमण्डल बना किन्तु उसने भी शीघ्र ही त्यागपत्र दे दिया। शासन की सारी सैनिक नीति की कठोर आलोचना की गई। संसद् ने कहा कि हम सैनिक-शक्ति बढ़ाने के बजाय कम करना चाहते हैं। बजट के सेना सम्बन्धी प्राक्कलनों (Estimates) को अस्वीकृत कर दिया गया। संसद्-भवन के बाहर उतनी ही उत्तेजना थी जितनी कि संसद्-भवन के अन्दर विरोध-भावना थी। स्थिति ऐसी भयंकर होती जा रही थी कि केवल एक ही मार्ग रह गया था कि प्रशा का सम्राट् अपने पुत्र कुमार फ्रेडेरिक (Prince Frederick) के पक्ष में राजसिंहासन त्याग दे, क्योंकि यह विश्वास किया जाता था कि राजकुमार (Crown Prince) का उदारवादियों की ओर झुकाव है।

सेना के प्रश्न पर वैधानिक गतिरोध

वॉन रून (Von Roon) ने राजा विलियम (King William) को सलाह दी कि बिस्मार्क को शासन-कार्य में ले लिया जाय। यह एक प्रकार से लाचारी का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाय था, क्योंकि विलियम को बिस्मार्क की बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ, स्वतन्त्र विचार शक्तिशाली व्यक्तित्व और निर्भीक निर्णय पसन्द नहीं थे। इसके अतिरिक्त सम्राज्ञी भी बिस्मार्क से अप्रसन्न थी। किन्तु समय की नितान्त आवश्यकता के कारण बिस्मार्क को बुलाना ही पड़ा। उस समय बिस्मार्क फ्रांस में था। वॉन रून (Von Roon) ने बिस्मार्क को तार देकर तुरन्त आने को कहा। और बिस्मार्क, जो बुलाये जाने की प्रतीक्षा ही कर रहा था, तुरन्त बर्लिन पहुँच गया। इस समय सारे देश में वही एक ऐसा आदमी था जिसमें संसद् के विरुद्ध सम्राट् का साथ देने की योग्यता भी थी और इच्छा भी थी। वह सम्राट के लिए अपनी जान तक देने को तैयार था। उसने लिखा था—"बहुत ही सम्भव था कि राजा विलियम के साथ-साथ मेरे जीवन का भी अन्त हो जाता।" २३ सितम्बर १८६२ को राजा विलियम ने अपने आपको और प्रशा के भाग्य को उस समय के सबसे साहसी और वीर, सबसे दृढ़ और स्थिर-बुद्धि और सबसे योग्य और चतुर राजनीतिज्ञ के हाथों में सौंप दिया। अब यूरोप के इतिहास का नया दौर प्रारम्भ हुआ।

प्रशा के मन्त्रि-अध्यक्ष के रूप में बिस्मार्क (सितम्बर १८६२)

बिस्मार्क निर्दयी और निरंकुश शासक था। उसके मन्त्रि-अध्यक्ष पद पर नियुक्त हो जाने से विरोधी संसद् में और अधिक उबाल आया किन्तु बिस्मार्क पूर्णतः अविचलित रहा। उसने शीघ्र ही अपने राजनीतिक सिद्धान्त को इन शब्दों में व्यक्त किया जिन्हें पश्चिमी संसार के साहित्य में अब बड़ी उच्च कोटि की चीज समझा जाने लगा—"जर्मनी प्रशा के उदारवाद की ओर नहीं देख रहा है बल्कि जर्मनी को प्रशा की शक्ति की आवश्यकता है। आज की समस्याएँ भाषणों और प्रस्तावों से नहीं सुलझाई जाएँगी बल्कि उनको सुलझाने के लिए रक्त और लोहे की आवश्यकता है। १८४८ और १८४९ में जो गलतियाँ हम कर चुके हैं उनकी पुनरावृत्ति हम नहीं करेंगे।" १८४८ के समान ही 'नैतिक विजयों' के प्रति इस समय भी घृणा थी और युद्ध के लिए इस समय भी अपील की गई थी और यह समझा जा रहा था कि 'युद्ध रूपी देवता द्वारा ही इतिहास का निर्माण होगा।' वाक्य-खंड और चुटकुले भयानक राजनीतिक अस्त्र होते हैं। विरोधी संसद् के सदस्य उनको नहीं समझ सके और उन्होंने उन्हीं वाक्य-खण्डों और चुटकुलों से बिस्मार्क के ऊपर प्रहार करना प्रारम्भ किया। संसद् की सम्राट और उसके मन्त्री बिस्मार्क के साथ पूरी तरह ठन गई। अब सम्राट और बिस्मार्क ने संसद् में उपस्थित होना त्याग दिया। बिस्मार्क के प्रति विरोध इतना उग्र हो गया कि उसके कुछ मित्रों ने उसे यहाँ तक सलाह दे डाली कि तुम अपनी सम्पत्ति अपने भाई के नाम हस्तांतरित कर दो। बिस्मार्क ने कहा था—"सड़कों पर जहाँ मेरे पैर पड़ते थे, वहाँ लोग घृणा के साथ थूकते थे। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते थे कि मुझे राज्य और सम्राट के लाभ के लिए जेल जाना पड़ेगा और वहाँ रस्सी बटनी पड़ेगी।" अपने एक तगड़े विरोधी को बिस्मार्क ने कुश्ती के लिए ललकारा, किन्तु उक्त विरोधी को चुनौती स्वीकार करने की हिम्मत नहीं हुई। चार वर्ष तक वह विरोधी संसद् से अकेला लड़ता रहा। उसको केवल सम्राट के समर्थन की आशा थी। सम्राट की सहानुभूति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तो उसे पूर्ण विश्वास था किन्तु सम्राट के पूर्ण समर्थन का उसे पूर्ण विश्वास नहीं था। हाँ, वॉन रून (Von Roon) जो प्रतिरक्षा-मन्त्री था, अवश्य उसका एकमात्र मित्र था और वह उसके साथ सहानुभूति रखता था। वह इन चार वर्षों तक बिना बजट के ही शासन चलाता रहा। उसने यह निर्णय भविष्य पर और अपनी जर्मन नीति की सफलता पर छोड़ दिया कि उसका आचरण निर्दोष था अथवा सदोष।

अन्त में विरोधी संसद् ने कहा—"हम विस्मार्क को एक वर्ष की अवधि देते हैं।" वास्तव में वह २८ वर्षों तक प्रधान मंत्री रहा। सत्ता प्राप्त करने के नौ वर्षों के अन्दर उसने तीन युद्ध किये, ऑस्ट्रिया को जर्मन परिसंघ (Confederation) से निकाल बाहर किया, उदारवादियों से समझौता कर लिया और प्रशा के राजतन्त्र के अधीन जर्मनी का एकीकरण किया। प्रशा के प्रश्न को जर्मनी के प्रश्न में परिणत कर दिया गया और उसकी गृहनीति के कारण जो उन्हें कष्ट हुए थे, उनको राष्ट्रीय सफलताओं के मरहम से ठीक कर दिया गया। जिस समय विस्मार्क ने अपना मन्त्रि-अध्यक्ष पद स्वीकार किया था, उसके पास कोई स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था और इसलिए प्रायः उसकी नीति और उसका चरित्र पहेली के समान जटिल हैं। अभिमान, स्वतन्त्रता, साहस, दृढ़ता, कलहप्रियता आदि उसके स्वाभाविक गुण थे। वह दूरदर्शी भी था और अधिक भोजन भी करता था, किन्तु उसी प्रकार उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ महान् थीं और उसकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी। उसका शारीरिक डील-डौल भीमकाय था। किन्तु राजनीति के खेल में वह एक कुशल कलाकार था। वह प्रत्येक स्थिति अपने अनुकूल बना लेता था। वह एक अवसरवादी था—वह साधनों की चिन्ता करता था, परिणाम की नहीं। यदि उसे कोई अवसर प्राप्त होता था तो अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ वह उस अवसर को ग्रहण करने का प्रयत्न करता था और फिर उस अवसर से मनमाना और निःसंकोच लाभ उठाता था।

उसे अपने आगे आने वाली कठिनाइयों का पूरा ज्ञान था और वह यह भी जानता था कि उसे यथाअवसर स्थिति के अनुसार आचरण करना होगा। फिर भी उसे क्या प्राप्त करना था, इसका उसे पूरा-पूरा ज्ञान था और वह कृतसंकल्प अपने पद पर आया था कि प्रशा को जर्मनी का नेता बनना है और ऑस्ट्रिया के साथ भली प्रकार निबटना है। मन्त्रि-अध्यक्ष (Minister-President) पद स्वीकार करने से कुछ ही दिन पूर्व वह इंग्लैंड गया था, जहाँ उसने कहा था, "ज्योंही हमारी सेना सुदृढ़ हो जाती है, हमको ऑस्ट्रिया के साथ अच्छी तरह निबटना ही पड़ेगा और जर्मन परिसंघ (Germanic Confederation) को विघटित करना ही पड़ेगा।" सर्व-साधारण ने समझा कि बिस्मार्क झांसा दे रहा था किन्तु डिज़रैली (Disraeli) ने लोगों को सावधान करते हुए कहा, "इस आदमी (बिस्मार्क) को गलत मत समझो, वह जो कुछ कहता है, उसे अवश्य करेगा।"

बिस्मार्क के मन्त्रि-अध्यक्ष काल में सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न १८६३ का पोलैंड (Poland) का द्वितीय विद्रोह था पोलैंड-वासियों को प्रायः आधे यूरोप की सहानुभूति प्राप्त थी। फ्रांस और नेपोलियन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय पोलैण्ड के प्रति मैत्री-भाव रखते थे। प्रशा के उदारवर्ग की भी उनके साथ सहानुभूति थी। किन्तु बिस्मार्क उसका विरोधी था।

पोलैण्ड का विद्रोह (१८६३)

प्रशा की जनसंख्या में अनेक पोल (Poles) थे और बिस्मार्क को भय था कि कहीं पोलैण्ड के विद्रोह की सफलता से प्रशा में भी विद्रोह न हो जाये। बिस्मार्क को यह भी भय था कि स्वतन्त्र होने पर पोलैण्ड डैन्जिग (Danzig) और थार्न (Thorn) को प्रशा के अधिकार में सहन नहीं करेगा। वह कहता था, "जर्मनी की यह विशेष राजनीतिक बीमारी है कि जर्मन लोग अपने पितृदेश के हितों को तिलाञ्जलि देकर विदेशी हितों को प्रसन्न करते हैं।"

किन्तु वास्तव में बिस्मार्क के सम्मुख एक और भी विचार था। उसे दिखाई दे रहा था कि उसका ऑस्ट्रिया के साथ संघर्ष अवश्य होगा, जिसमें रूस की सहायता बहुत ही आवश्यक होगी। पोलैण्ड के विद्रोह से ऐसा अवसर आ गया था कि वह या तो रूस की मित्रता प्राप्त कर ले या उसे खो दे। उसने एलैक्जेंडर द्वितीय (Alexander II) के साथ प्रतिज्ञा की कि वह किसी विद्रोही पोल (Pole) को प्रशा में शरण ग्रहण न करने देगा, न वह विद्रोह के लिए प्रशा में रंगरूट भरती होने देगा, और उसने यह भी प्रतिज्ञा की कि वह विद्रोहियों को रूस के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए प्रशा को आधार-भूमि (Base) न बनाने देगा। इस समझौते के कारण प्रशा के उदार-वर्ग बहुत अप्रसन्न हुए। वारसा (Warsaw) और बारसीलोना (Barcelona) की क्रान्तिकारी समितियों ने बिस्मार्क को मृत्यु-दण्ड के योग्य अपराधी समझा। प्रशा के उदारवादियों ने बिस्मार्क को राष्ट्रीय घृणा का पात्र बताया। किन्तु उसने रूस की मित्रता को प्राप्त कर लिया था।

रूस की मित्रता प्राप्त करने के पश्चात् वह आगे बढ़ा। १८५९ के युद्ध के कारण ऑस्ट्रिया की नीति में सुधार हुआ था। ऑस्ट्रिया के सम्राट् ने जर्मन परिसंघ (Confederation) को सुधारने के उद्देश्य से एक योजना

जर्मन राजाओं की सभा (१८६३)

प्रस्तुत की और फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) में जर्मनी के राजाओं की एक सभा आहूत की। ऑस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जौसेफ (Francis Joseph) ने व्यक्तिगत रूप से प्रशा के सम्राट विलियम को आमन्त्रित किया, और जब प्रशा के सम्राट ने निमन्त्रण स्वीकार करने में हिचकिचाहट दिखाई तो सक्सनी (Saxony) के राजा ने पुनः प्रशा के सम्राट् को प्रस्तावित सभा में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया। विलियम प्रथम को ऐसा सम्मानसूचक निमन्त्रण अस्वीकार करना कठिन प्रतीत हो रहा था जिसमें "३० सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राजा एक राजा को बुलाने के लिए लालायित हों।" बिस्मार्क ने प्रशा के राजा विलियम पर इस बात का दबाव डाला कि वह जर्मनी के संगठन में सुधार करने के लिए ऑस्ट्रिया द्वारा बुलाई गई जर्मन राजाओं की सभा में सम्मिलित न हो। उसको भय था कि ऑस्ट्रिया द्वारा बनाई गई फेडरल सुधारों की कोई भी योजना जर्मनी में आस्ट्रिया को और भी अधिक शक्तिशाली बना देगी। वास्तव में बिस्मार्क को भय था कि प्रशा का सम्राट जर्मन परिसंघ में अधिक रियायतें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे डालेगा और ऑस्ट्रिया का हैब्सबर्ग राजा सारी जर्मनी पर छा जाएगा। बिस्मार्क और विलियम प्रथम में १८६३ की जर्मन राजाओं की सभा के निमन्त्रण को स्वीकार करने के सम्बन्ध में जो संघर्ष हुआ, वैसे संघर्ष प्रायः होते ही रहते थे और इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि बिस्मार्क की आन्तरिक कठिनाइयाँ भी विदेशी कठिनाइयों से कम न थीं। फिर सम्राज्ञी तो बिस्मार्क के विरुद्ध थी ही। जब बिस्मार्क ने त्यागपत्र देने की धमकी दी तब सम्राट को बिस्मार्क की इच्छा के सामने झुकना पड़ा। और अब आगे भी बिस्मार्क के मन की बात ही चली। बिस्मार्क ने लिखा है—"तथ्यतः मुझे अपार परिश्रम करना पड़ा, तब कहीं मैं सम्राट को जर्मन राजाओं की सभा में उपस्थित होने के प्रस्ताव को अस्वीकृत करने के लिए राजी कर सका। जिस समय सम्राट् ने निश्चित आश्वासन दे दिया कि वे प्रस्तावित सभा में भाग लेने न जाएँगे, उस समय मैं इतना थका हुआ था कि मुझे खड़ा होने में भी कष्ट हो रहा था। और जिस समय मैं सम्राट से भेंट करके बाहर चला, तो मेरे पैर काँप रहे थे और मैं इतना उत्तेजित और धैर्यहीन था कि बाहर से दरवाजा बन्द करने पर मेरे उत्तेजित और काँपते हुए हाथों से सम्राट के कक्ष के दरवाजे का हैण्डिल ही टूट गया।" सम्राट ने बिस्मार्क के आग्रह पर सभा का निमन्त्रण अस्वीकार तो कर दिया, किन्तु वे आवेगवश रोने लगे। उस समय बिस्मार्क ने सम्राट के मुँह में जबर्दस्ती शराब का गिलास ठूंस दिया ताकि सम्राट की उत्तेजना शान्त हो जाय। किन्तु अन्त में जीत बिस्मार्क की ही हुई।

जर्मनी के शासकों की सभा में प्रशा के अतिरिक्त दो अन्य छोटे राज्य भी सम्मिलित नहीं हुए थे, किन्तु इस सभा में भाग न लेकर प्रशा ने परिसंघ में सुधार करने के सारे प्रयत्नों को नष्ट कर दिया। प्रशा के एक शब्द पर ऑस्ट्रियन योजना धूल में मिल गई, और छलपूर्ण राजनीति की नटकला शोभाहीन होकर रह गई।[1] यह ऑस्ट्रिया का अन्तिम विफल प्रयत्न था जिसमें उसने जर्मनी का नेता बनने का प्रयत्न किया था। वह वर्ष भी न बीतने पाया था कि ऑस्ट्रिया ने अपने आपको श्लैसविग हॉल्स्टीन प्रश्न (Schleswig Holstein) के दलदल में फँसा हुआ पाया और यहीं से ऑस्ट्रिया के पतन की कहानी प्रारम्भ हुई।

श्लैसविग हॉल्स्टीन का प्रश्न

श्लैसविग-हॉल्स्टीन के प्रश्न के उभर आने पर ही बिस्मार्क की वास्तविक योग्यता प्रकट हुई। प्रथम बार इस प्रश्न द्वारा बिस्मार्क की प्रगाढ़ राजनीतिज्ञता की अनोखी योग्यता प्रकट हुई। उसकी राजनीतिक योग्यता में शक्ति और असंदिग्धता थी; वह स्पष्ट अवसरवादी भी था फिर भी उसकी अवसरवादिता के पीछे निश्चित लक्ष्य होता था। उसकी नीति का निर्माण दूरदर्शिता के आधार पर होता था। वह अत्यन्त साहस के साथ सौभाग्य का भी सहारा लेने में नहीं चूकता था। श्लैसविग-हॉल्स्टीन (Schleswig-Holstein) का प्रश्न ऐतिहासिक और वैधिक उलझनों का है। वास्तव में यह प्रश्न आधुनिक इतिहास में अत्यधिक जटिल प्रश्न है।

---

1. C. Grant, Robertson, *Bismarck*, p. 147.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पामर्स्टन (Palmerston) ने एक बार कहा था कि केवल तीन व्यक्ति इस उलझे हुए प्रश्न के तथ्यों से अवगत थे जिनमें एक तो रानी विक्टोरिया के पति (Prince Consort of England) थे, जो मर चुके थे। दूसरे एक जर्मन प्रोफेसर थे जो उस समय एक पागलखाने में इलाज करा रहे थे और तीसरा वह स्वयं था; किन्तु वह उक्त प्रश्न के सम्बन्धित तथ्यों को भूल चुका था। फिर भी यह प्रश्न संक्षेप में इस प्रकार है।

श्लैसविग (Schleswig) और हॉल्स्टीन (Holstein) नामक दो प्रान्त थे जो डेनमार्क (Denmark) के भाग में नहीं थे किन्तु डेनमार्क के राजा के—ज़मींदार होने की हैसियत से—वे अधीन थे। इस प्रकार डेनमार्क का इन दोनों डचियों से जो संबंध था, वह पुराना था, नियम-विरुद्ध भी था और अपूर्ण भी था। यह सम्बन्ध १०वीं शताब्दी से चला आ रहा था और प्रत्येक डची का अलग-अलग डेनमार्क के साथ सम्बन्ध था, यद्यपि इन दोनों डचियों के आपसी सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ थे। इसका कारण यह था कि १५वीं शताब्दी की एक राजाज्ञा ने ऐसा बन्धन लगा दिया था कि इन दोनों डचियों को एक समझा जाय।

श्लैसविग और हॉल्स्टीन का डेनमार्क के साथ प्राचीन किन्तु नियम-विरुद्ध सम्बन्ध

इन डचियों (Duchies) का डेनमार्क के राज्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था अपितु इनका सम्बन्ध था केवल डेनमार्क के राजा से। ये दोनों डचियाँ डेनमार्क के शाही परिवार की जागीरें थीं और इनका डेनमार्क के साथ इसी प्रकार का सम्बन्ध था जैसा कि हैब्सबर्ग साम्राज्य का ऑस्ट्रिया के साथ सम्बन्ध था अथवा जैसा कि १८१५ के बाद कुछ वर्षों के लिए पोलैंड (Poland) का सम्बन्ध रूस (Russia) के साथ रहा; अथवा जिस प्रकार कि किसी सीमा तक १६०३ से १७०७ तक स्कॉटलैंड (Scotland) का इंग्लैंड के साथ सम्बन्ध रहा। यद्यपि तुल्यता (Parallelism) पूर्णतया सही नहीं है फिर भी इससे स्थिति समझने में आसानी होगी। इस प्रकार डेनमार्क का राजा इन दोनों डचियों का ड्यूक (Duke) भी था परन्तु उन्होंने अपना कानून और अपनी संस्थाएँ अलग रखीं और डेनमार्क के राजा को उन कानूनों और संस्थाओं को मानना पड़ता था। डेनमार्क का राजा श्लेसविग और हॉल्स्टीन का ड्यूक तभी बना था जब कि उसको दोनों डचियों की संस्थाओं ने स्वीकार कर लिया था। डेनमार्क की विधियाँ दोनों डचियों में तभी प्रभावित होती थीं जबकि उनको डचियों का कानून और डचियों की संस्थाएँ स्वीकार कर लेती थीं। इसके अतिरिक्त श्लैसविग (Schleswig) तो डेनमार्क की एक जागीर (Fief) थी किन्तु हाल्स्टीन (Holstein) जो दक्षिण की ओर थी, १८१५ तक पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) की जागीर थी और १८१५ के बाद से वह जर्मनी के परिसंघ का एक सदस्य राज्य था। परन्तु इस प्राचीन किन्तु नियम-विरुद्ध स्थिति को वियना (Vienna) की सन्धि में यूरोप के सभी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया था। यह सन्धि नेपोलियन के युद्ध के बाद वियना में हुई थी। इस प्रकार फ्रेडेरिक सप्तम (Frederick VII) जो १८४८ से १८६३ तक डेनमार्क (Denmark) का राजा था, श्लैसविग (Schleswig) और हाल्स्टीन का भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग ड्यूक रहा। हॉल्स्टीन का ड्यूक होने के नाते ही वह जर्मन परिसंघ की डायट या संसद् (German Diet) का सदस्य था। चूँकि डेनमार्क का राजा जर्मन परिसंघ का सदस्य था इसलिए स्वभावतः जर्मन परिसंघ की संसद् (Federal Diet) ने श्लैसविग और हॉल्स्टीन नाम की डचियों के प्रश्न में रुचि प्रदर्शित की जो उचित ही था।

यह स्थिति कई प्रकार से असंतोषजनक होते हुए भी काफी दिनों तक चली। कई बार प्रयत्न किए गए कि दोनों डचियाँ डेनमार्क के राज्य में मिला दी जाएँ किन्तु ऐसे प्रत्येक प्रयत्न का विरोध हुआ। किन्तु १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ ऐसे कारण पैदा हो गए जिनसे इन डचियों के प्राचीन सम्बन्धों में दरार पड़ने लगी। इन डचियों के डेनमार्क से पृथक् कराने वाले कारणों में मुख्य कारण यह था कि उस समय लोगों में राष्ट्रीयता के उग्र भाव जाग्रत हो रहे थे। किन्तु सहायक कारण यह भी था कि डेनमार्क के राजा का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। आपत्तिजनक उत्तराधिकारी के कारण यह प्रश्न और भी जटिल बन गया, और इस क्षेत्र में गड़बड़ी और अशान्ति चाहने वालों के हाथों में एक अवसर आ गया। हॉल्स्टीन नामक डची के निवासी मुख्यतः जर्मन जाति के थे किन्तु श्लैसविग नामक डची के निवासी मुख्यतः डेन (Danes) थे; केवल श्लैसविग के दक्षिण में थोड़ा-सा प्रदेश ऐसा था जिसकी प्रजा डेन जाति की नहीं थी। इसलिए राष्ट्रीय चेतना के कारण जर्मन लोगों ने हाल्स्टीन नामक डची को सहायता देना प्रारम्भ किया, और उसी प्रकार डेनमार्क ने श्लैसविग को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। फिर भी जर्मनी और डेनमार्क दोनों की यही इच्छा थी कि अपने पड़ोस की डचियों को यथाशक्य अपने अधिकार में रखें। उपद्रवी जर्मनों ने कहा था कि यह जर्मनी की रक्षा का प्रश्न है और उसी प्रकार उपद्रवी डेनमार्क वासियों ने यह कहा कि डेनमार्क की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। यह बताना आवश्यक नहीं है कि जर्मनों और डेनों (Danes) की इन दोनों डचियों के सम्बन्ध में क्या-क्या योजनाएँ थीं। संक्षेप में यह समझ लेना पर्याप्त होगा कि डेनमार्कवासी चाहते थे कि दोनों डचियों को डेनमार्क के राज्य में मिला लिया जाय; किन्तु जर्मन लोग चाहते थे कि वे दोनों डचियाँ जर्मन का अंग बनें और उनको जर्मन परिसंघ में एक अलग राज्य के रूप में संगठित कर दिया जाय और जब कभी भविष्य में जर्मनी का नया संघ बने उस समय ये दोनों डचियाँ नए जर्मन संघ के अवयवी एकक के रूप में संगठित कर दी जायें। इस समय आपत्तिजनक उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर डचियों और डेनमार्क के राज्य के बीच दरार चौड़ी होती जा रही थी। इसलिए डेनमार्क राज्य के उत्तराधिकारी के लिए यदि कोई वैकल्पिक नाम पेश किया जाता था तो तुरन्त ही उसका खण्डन किया जाता था। यह स्थिति प्रायः ऐसी ही थी जैसी कि इंग्लैंड और स्कॉटलैंड के सम्मिलन से पूर्व की स्थिति थी।

पृथक होने के कारण (१) राष्ट्रीयता के भाव

(२) आपत्तिजनक उत्तराधिकारी का प्रश्न

जनवरी १८४८ में, ओल्डनबर्ग परिवार का अन्तिम वंशज फ्रेडरिक सप्तम (Frederick VII) डेनमार्क के राजसिंहासन पर बैठा और उसके डेनिश दल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Danish Party) की विनम्र प्रार्थना पर नया संविधान जारी किया जिसको दोनों डचियों पर भी प्रभावी कर दिया गया। परन्तु इससे विद्रोह होने लगा जिसे जर्मनी भर में राष्ट्रीय भावना ने प्रोत्साहित किया। १८४८ और १८५१ के बीच डचियों में जो विद्रोह हुए उनके कई कारण थे। प्रथमतः, उस समय सर्वत्र विप्लवों के प्रति आकर्षण था; द्वितीयतः, जर्मनी की इन विप्लवों के प्रति विशेष सहानुभूति थी और जर्मन हथियारों के सहारे ही उपद्रव किए जा रहे थे। निकट सम्भावना थी कि डेनमार्क को डचियों से खदेड़ दिया जाता और विशेषकर जब प्रशा खुले रूप से डचियों के पक्ष में विद्रोह का समर्थन कर रहा था—यह पूरी संभावना थी; किन्तु ग्रेट ब्रिटेन, रूस, स्वीडन और ऑस्ट्रियन आदि बड़ी यूरोपीय शक्तियों की नैतिक सहानुभूति डेनमार्क (Denmark) के साथ थी। अतः प्रशा को बाध्य होकर पीछे हटना पड़ा। यह भी प्रशा की उस समय की पराजय थी। १८५२ में यूरोप की शक्तियों ने हस्तक्षेप किया और डचियों का प्रश्न लन्दन की सन्धि द्वारा निर्णीत कर दिया गया।

१८४८ से लेकर १८५१ तक डचियों में उपद्रव

सन्धि की शर्तें तैयार हुईं जिनमें यथास्थिति (Status Quo) को स्वीकार कर लिया गया—अर्थात् इस सन्धि ने डेनमार्क के डचियों के अधिकार को पक्का कर दिया परन्तु डचियों को डेनमार्क के राज्य में मिलाए जाने की आज्ञा नहीं दी गई। डेनमार्क से भी वचन लिया गया कि वह डचियों के जर्मन नागरिकों के हितों और उनकी भावनाओं के प्रति सहानुभूति रखेगा। इस सन्धि द्वारा डेनमार्क के राज्य की एकता और पूर्णता को मान लिया गया, और डेनमार्क एवं डचियों के उत्तराधिकार की गारंटी ग्लक्सबर्ग के राजा क्रिश्चियन (Christian of Glucksburg) को दे दी गई। ऑगस्टनबर्ग का ड्यूक (Duke of Augustenburg) जो इन डचियों का दूसरा दावेदार था, उससे कहा गया कि वह अधिकार त्याग दे, और डेनमार्क के राजा के हाथों बेच दे। प्रशा और ऑस्ट्रिया दोनों ने ही इस समझौते पर स्वीकृति दी थी। जर्मनी की परिसंघ संसद् (Federal Diet) को इस सन्धि में नहीं बुलाया गया था अतः उसने इस सन्धि को स्वीकार नहीं किया। फिर भी जर्मनी की फेडरल संसद् (Federal Diet) को भारी निराशा हुई और उसे विश्वास हो गया कि अब डचियों पर डेनमार्क का अधिकार पक्का हो गया है। चूँकि यूरोप की प्रायः सभी बड़ी शक्तियों ने उसे मान लिया था इसलिए फ़ेडरल संसद या डायट (Federal Diet) ने अपना जहाज़ी बेड़ा नीलाम कर दिया। यह बेड़ा इसलिए खरीदा गया था कि डचियों के प्रश्न पर डेनमार्क के विरुद्ध प्रयुक्त किया जाएगा। नीलाम में अधिकतर जहाज़ प्रशा ने खरीद लिए।

लन्दन की सन्धि (१८५२)

अब डेनमार्क के लोग अपनी विजय से अनुचित लाभ उठाने लगे। उन्होंने जर्मन नागरिकों के हितों और उनकी भावनाओं का तिरस्कार करना प्रारम्भ कर दिया। अब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे डचियों (Duchies) पर अनधिकृत प्रभाव डालने लगे। डेनमार्क में एक शक्तिशाली दल था जिसका नाम था ईडर डेन दल (Eider Dane Party)। इस दल ने माँग की कि डेनिश राज्य (Danish Kingdom) का विस्तार ईडर नदी (Eider River) तक हो। इस माँग का अर्थ यह था कि सारा श्लैसविग (Schleswig) प्रान्त डेनमार्क में मिला दिया जाय।

अब डेनमार्क ने डचियों पर अनधिकृत प्रभाव डालना प्रारम्भ किया

१८५५ में डेनमार्क के राज्य में नया संविधान जारी हुआ और उसे डचियों के ऊपर भी प्रभावी कर दिया गया। इस संविधान के अनुसार दोनों डचियों की सरकारी मालगुजारी को डेनमार्क के वित्तमन्त्री के नियन्त्रण में दे दिया गया और दोनों डचियों की सम्पदा को कॉपेनहेगन (Copenhagen) की डेनमार्क-प्रधान सरकार के अधीन दे दिया गया। हॉल्स्टीन (Holstein) ने विरोध किया और प्रशा की संसद् से हस्तक्षेप की अपील की। प्रशा की संसद् (Prussian Diet) के प्रतिनिधियों के आग्रह पर फ्रेडरिक सप्तम (Frederick VII) ने मान लिया कि हॉल्स्टीन को नई संवैधानिक व्यवस्था से अलग रखा जाएगा किन्तु डेनमार्क का राजा, अपने राज्य के सैनिकों के आगे परवश था और मार्च १८६३ में वह अपने वायदे से हट गया और उसने आज्ञा दी कि श्लैसविग (Schleswig) को पूरी तरह डेनमार्क में मिला लिया जाय। उसने यह भी आज्ञा दी कि हॉल्स्टीन प्रान्त (Holstein) भी डेनमार्क से निकट सम्बन्ध रखे। इस प्रकार डेनमार्क के राजा ने हॉल्स्टीन के निवासियों और उनके जर्मन मित्रों की निगाहों में तथा श्लेसविगवासियों की निगाहों में दुहरा अपराध किया था। उसने डचियों को डेनमार्क में मिला लिया था और साथ ही उसने श्लैसविग (Schleswig) और हॉल्स्टीन (Holstein) के बीच के परम्परागत और वैधिक सम्बन्धों को समाप्त कर दिया था। किन्तु डेनमार्क में राजा को उस देश का रैडिकल पार्टी का पूरा समर्थन प्राप्त था। इसलिए जब जर्मन परिसंघ की संसद् (German Diet) ने विरोध किया तो डेनमार्क ने उस विरोध की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। उसी समय नवम्बर, १८६३ में डेनमार्क के राजा फ्रेडरिक सप्तम की मृत्यु हो गई, और लन्दन की संधि का प्रत्याशी क्रिश्चियन नवम डेनमार्क के राजसिंहासन पर बैठा। क्रिश्चियन नवम के सम्मुख बड़ी विकट समस्या थी। एक ओर तो उसे जर्मनी और डचियों के विरोध का भय था तथा दूसरी ओर उसे डेनमार्क में क्रान्ति का भय था, इस लिए उसने स्वदेश में क्रान्ति की अपेक्षा जर्मनी और डचियों की अप्रसन्नता में कम खतरा देखा और अपने पूर्ववर्त्ती राजा द्वारा जारी किए संविधान को ही स्वीकार किया।

१८५५ और १८६३ के संविधान

क्रिश्चियन नवम ने उसी संविधान को जारी किया

इस निर्णय की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जर्मनी और डचियों ने कठोर विरोध प्रदर्शित किया। जिस ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक (Duke of Augustenburg) ने १८५२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में डचियों पर से अपना अधिकार त्याग दिया, उसका पुत्र फ्रेडरिक (Frederick) मैदान में आ गया और उसने कहा कि मैं डचियों का वास्तविक शासक हूँ। डेनमार्क के विरोध में वह सबसे आगे आ गया। उसके दावे का समर्थन डचियों ने भी किया और जर्मनी ने भी किया। जर्मन परिसंघ की संसद् ने आदेश जारी कर दिए और दिसम्बर, १८६३ में जर्मन सेनाएँ (Federal Troops) हॉल्स्टीन (Holstein) पर अधिकार करने के लिए चल पड़ीं। जर्मन सैनिकों में अधिकतर सैक्सनी या हैनोवर के निवासी थे। हॉल्स्टीन पर अधिकार हो गया और डेनमार्क के सैनिक पीछे हट गए। डची से डेनमार्क की सत्ता उठ गई और ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक ने अपने आपको श्लैसविग-हॉल्स्टीन (Schleswig Holstein) का राजा और अपना नाम ड्यूक फ्रेडरिक अष्टम (Duke Frederick VIII of Schleswig-Holstein) घोषित किया।

जर्मन परिसंघ की संसद् ने आगस्टनबर्ग के पक्ष में हस्तक्षेप किया (दिसम्बर, १८६३)

इस प्रकार श्लैसविग-हॉल्स्टीन का प्रश्न एक बार पुनः जर्मनी के सामने उठ खड़ा हुआ और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो जर्मनी की मुक्ति का प्रश्न जर्मन परिसंघ (German States System) के प्रश्न के साथ जुड़ जाएगा। किन्तु अब एक नयी घटना घटित हो चुकी थी। १८५० का प्रशा अब कहीं भी नहीं था। उसके स्थान पर प्रशा अब एक नयी शक्ति के रूप में नए प्रशासकों के हाथ में उदित हुआ था। प्रशा का महान् राजनीतिज्ञ बिस्मार्क-रूपी सूर्य यूरोप के राजनीतिक आकाश पर चमक रहा था।

प्रशा और ऑस्ट्रिया का संयुक्त हस्तक्षेप

अब बिस्मार्क की कूटनीतिक योग्यता की परीक्षा का समय था। बड़ी ही सावधानी के साथ उसने एक ओर अपने सम्राट् को अपनी नीति के अनुकूल बनाया तथा दूसरी ओर यूरोप की अन्य शक्तियों को कूटनीतिक पराजय दी और इस प्रकार उसने हॉल्स्टीन-श्लैसविग प्रश्न-रूपी भूलभुलैया में प्रवेश किया। बिस्मार्क ने कहा था—"विदेश नीति में आज भी मैं उसी प्रकार चलता हूँ जिस प्रकार कि अपनी जवानी में मैं पेड़ों और झाड़ियों में छिपकर चिड़ियों का शिकार खेलता था। उस समय पेड़ों में शिकार खेलते समय भी मैं नये घास-फूंस के टीले पर उस समय तक अपना पूरा वजन नहीं रखता था जब तक कि मैं एक पैर से पहले परीक्षा नहीं कर लेता था कि वह टीला मेरा वज़न बर्दाश्त कर सकेगा।"

श्लैसविग-हॉल्स्टीन प्रश्न को अनुकूल बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि प्रशा के राजा विलियम प्रथम को अपनी नीति के अनुकूल बनाया जाय तथा अन्य शक्तियों को पराजित किया जाय। कारण यह था कि प्रशा ने भी लन्दन की सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे, जिसके अनुसार डचियों पर डेनमार्क का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया गया था और राजा क्रिश्चियन (King Christian) का उत्तराधिकार भी स्वीकार कर लिया गया था। किन्तु एक ओर तो

बिस्मार्क की महत्त्वाकांक्षाएँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशा यह नहीं चाहता था कि डचियाँ डेनमार्क के अधिकार में रहें; दूसरी ओर वह यह भी नहीं चाहता था कि जर्मनी में ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक (Duke of Augustenburg) के अधिकार में एक नए जर्मन राज्य की स्थापना हो; क्योंकि इससे यह भय था कि वह नया राज्य जर्मन संसद् (German Diet) में प्रशा के विरुद्ध मत देगा। बिस्मार्क की महत्त्वाकांक्षाएँ और भी दूरगामी थीं। उसने कहा था—"मैंने प्रारम्भ से ही इस ओर ध्यान रखा है कि डचियों पर प्रशा को अधिकार करना ही पड़ेगा और साथ ही मैंने इस सम्बन्ध में अन्य समस्याओं पर भी ध्यान रखा है।" जैसा कि राजा विलियम (King William) का मत था, इसमें पर्याप्त सार था कि डचियों के ऊपर प्रशा का अधिकार जायज न था। किन्तु बिस्मार्क ने कहा—"क्या आप समझते हैं कि इलैक्टर महान् (Great Elector) या राजा फ्रेडरिक (King Frederick) का प्रशा या साइलीशिया (Silesia) पर जायज हक था?" इस दलील पर राजा विलियम तो चुप हो गया और राजकुमार (Crown Prince) ने भगवान् से बिस्मार्क को सद्बुद्धि देने की मूक प्रार्थना की। विरोध के बावजूद बिस्मार्क दूरदर्शिता और असंदिग्धता के साथ अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ता ही गया। कई बार ऐसा लगा मानो वह हार जाएगा किन्तु अन्त में विजय उसी की हुई।

एक अनहोनी घटना यह घटी कि उन्हीं दिनों ऑस्ट्रिया और प्रशा में प्रगाढ़ मैत्री-सी होने लगी—जैसी कि बहुत दिनों से देखने में न आई थी। किसी सीमा तक इस मैत्री का कारण यह भी था कि बिस्मार्क और ऑस्ट्रिया के नए मन्त्री काउण्ट रेक्बर्ग (Count Rechburg) में व्यक्तिगत मैत्री थी; किन्तु इस मैत्री का मुख्य कारण यह था कि ऑस्ट्रिया को भय था कि नेपोलियन तृतीय इटली में कठिनाइयाँ पैदा कर देगा क्योंकि हाल ही में उसने एक भाषण में कहा था कि १८१५ की सन्धियों का महत्त्व समाप्त हो चुका है। उसने यह इच्छा भी व्यक्त की थी कि यूरोपीय शक्तियों की एक नयी सभा आमन्त्रित की जाए जो न्यायाधिकरण के रूप में यूरोप के सारे प्रश्नों का निर्णय करे। नेपोलियन की इस घोषणा से यूरोप के सभी देशों के विदेश मन्त्रालयों में खलबल मच गई और इस कारण ऑस्ट्रिया (Austria) प्रशा के निकट आ गया।

बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के इस प्रकार मिल जाने से लाभ उठाया। यदि प्रशा ने अकेले-अकेले डेनमार्क के ऊपर आक्रमण किया होता तो उसे भय रहता कि ऑस्ट्रिया पीछे से अथवा यूरोप की अन्य शक्तियाँ कहीं आगे से उसका मार्ग अवरुद्ध न कर दें। इसके बजाय उसने काउण्ट रेक्बर्ग (Count Rechberg) को राजी करके एक गुप्त समझौता कर लिया। उसने काउण्ट रेक्बर्ग को बताया कि वह अकेला भी डेनमार्क पर आक्रमण कर सकता है क्योंकि श्लैसविग-होल्स्टीन की मुक्ति का प्रश्न उस समय जर्मनी में लोकप्रिय प्रश्न था। इस गुप्त सन्धि के अनुसार यह निश्चित किया गया कि जर्मन संसद् या डायट (German Diet) और अन्य जर्मन राज्यों के हस्तक्षेप के बिना ही ऑस्ट्रिया और प्रशा डचियों के प्रश्न को तय कर लें। प्रशा की ऑस्ट्रिया के साथ यह मैत्री बिस्मार्क की पहली विजय थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑस्ट्रिया को अपनी ओर करके बिस्मार्क ने जर्मन परिसंघ (Germanic Confederation) की बिलकुल परवाह नहीं की। जर्मन डायट (Diet) से नाम मात्र को अपील की गई कि वह श्लैसविग (Schleswig) पर अधिकार कर ले क्योंकि डेनमार्क ने १८५२ के समझौते को तोड़ा था। किन्तु इसके यह अर्थ होते कि क्रिश्चियन नवम (Christian IX) के अधिकारों को माना जाता और ऑगस्टनबर्ग की मान्यता समाप्त हो जाती। इसलिए जर्मन संसद् (Diet) ने हस्तक्षेप करना अस्वीकृत कर दिया; इस पर ऑस्ट्रिया और प्रशा ने घोषणा की कि वे स्वतन्त्र रूप से कार्यवाही करेंगे। दोनों शक्तियों ने मिलकर कापेनहेगन (Copenhagen) को इत्थिमेत्थम (Ultimatum) दे दिया और डैनमार्क से माँग की गई कि १८६३ के नवम्बर संविधान (November Constitution) को ४८ घंटों के अन्दर भंग कर दिया जाये।

ऑस्ट्रिया और प्रशा द्वारा स्वतन्त्र कार्यवाही

डेनमार्क के अन्दर ऑस्ट्रिया की सहायता से १८५२ की सन्धियों की आड़ लेकर बिस्मार्क ने हस्तक्षेप किया; यह उसकी दूसरी चाल थी। इस बात की पूरी सम्भावना थी कि डेनमार्क युद्ध मोल न ले; और उस स्थिति में बिस्मार्क की बाजी हार जाती। किन्तु दो कारणों से डेनमार्क ने इत्थिमेत्थम (Ultimatum) की परवाह नहीं की। प्रथमतः, इत्थिमेत्थम के लिए केवल ४८ घंटों का समय अत्यन्त अपर्याप्त था। इतने थोड़े समय में डेनिश संसद् (Rigstaad) का आहूत करना कठिन था और वही संविधान को भंग कर सकती थी; द्वितीयतः, डेनमार्क को आशा थी कि उसे अंग्रेजों से सहायता मिल जाएगी। वास्तव में बिस्मार्क ने चुपके-चुपके कुछ ऐसा प्रबन्ध किया था जिसमें डेनमार्क को झूठमूठ ही ऐसा विश्वास हो चला था कि इंगलैण्ड हमारी सहायता करेगा, और ऐसा विश्वास करने के वास्तविक कारण भी थे। इंगलैण्ड के प्रिंस ऑफ वेल्स (Prince of Wales) ने हाल ही में डेनमार्क की राजकुमारी से विवाह किया था और इंगलैंड के प्रधान मन्त्री पामर्स्टन (Palmerston) ने कहा था—"यदि किसी देश ने दुस्साहस करके डेनमार्क के ऊपर आक्रमण किया और उसके अधिकारों या उसकी स्वतन्त्रता को हिंसक उपायों द्वारा चुनौती दी तो हम ऐसे देश को खबरदार करना चाहते हैं कि उसे अकेले डेनमार्क से ही नहीं निबटना पड़ेगा।"

१८५२ की सन्धियों की आड़ लेकर डेनमार्क के विरुद्ध कार्यवाही

किन्तु जब प्रशा और ऑस्ट्रिया ने सम्मिलित होकर डेनमार्क के ऊपर आक्रमण कर ही दिया तो डिजरैली (Disraeli) के शब्दों में पामर्स्टन (Palmerston) ने जो कुछ कहा था वह निरर्थक और साहसहीन धौंस मात्र थी। ऑस्ट्रिया और प्रशा ने डेनमार्क के विरुद्ध जो युद्ध छेड़ा था उसमें डेनमार्क के पक्ष में हस्तक्षेप करने के लिए पामर्स्टन (Palmerston) की नीति का समर्थन न तो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने किया, न ब्रिटिश शाही दरबार ने किया और न कोई अन्य यूरोपीय शक्ति इस युद्ध में, हस्तक्षेप करने के लिए राजी हुई। इस प्रकार झूठे विश्वास के

डेनमार्क के साथ युद्ध, फरवरी-अप्रैल, १८६४

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण डेनमार्क को शक्तिशाली जर्मन शक्तियों के विरुद्ध अकेले युद्ध करना पड़ा।

जनवरी के अन्त में प्रशा और ऑस्ट्रिया की संयुक्त सेनाएँ हॉल्स्टीन के मार्ग से डेनमार्क की ओर बढ़ने लगीं। किन्तु सैक्सनी और हैनोवर के सैनिक मन मारकर रह गए। पहली फरवरी को ये सेनाएँ ईडर नदी को पार करके श्लैसविग पहुँचीं। केवल १५ दिन के युद्ध के पश्चात् डेनमार्क को श्लैसविग नामक डची से खदेड़ दिया गया और फिर दोनों देशों की संयुक्त सेनाएँ डेनमार्क में दाखिल हो गईं, यद्यपि ऑस्ट्रिया की इच्छा यह थी कि अभियान वहीं समाप्त कर दिया जाय और आगे न बढ़ा जाय। ड्यूपेल (Duppel) के पूर्व में डेनमार्क की सेनाओं ने कड़ा प्रतिरोध किया किन्तु एक महीने के पश्चात् १८ अप्रेल को डेनमार्क के ऊपर भारी आक्रमण कर दिया गया। अब डेनमार्क को सैनिक सफलता की आशा नहीं रह गई थी। इसलिए सन्धि की बातचीत होने लगी। इंग्लैण्ड और स्वीडन ने डेनमार्क के पक्ष में आवाज उठाई; नेपोलियन तृतीय कुछ निर्णय ही नहीं कर सका और रूस सावधानी के साथ इस युद्ध की प्रतिक्रिया को देख रहा था। जर्मन परिसंघ अप्रसन्न था। ऑस्ट्रिया को हंगरी के असन्तोष (Magyar Disaffection) और इटली के षड्यन्त्रों के कारण बेचैनी थी इसलिए वह सन्धि का इच्छुक था। लन्दन में लार्ड जॉन रसेल (Lord John Russell) ने शक्तियों का एक सम्मेलन आहूत किया। १८५० से लेकर १८५२ तक की व्यवस्था भी लन्दन की सन्धि के अनुसार ही हुई थी। इस सम्मेलन में निर्णय किया गया और डेनमार्क और उसके दोनों जर्मन शत्रुओं के बीच अस्थायी सन्धि हो गई। इसी समय डचियों का प्रश्न सम्मेलन में विचाराधीन था।

लन्दन का सम्मेलन (अप्रैल से जून तक, १८६४)

लन्दन का सम्मेलन जून तक चला किन्तु इस जटिल प्रश्न की भूलभुलैयाँ में से निकलने का कोई मार्ग ही न सूझ पड़ा अतः यह सम्मेलन बिना किसी निर्णय के ही उठ गया। किन्तु, इस सम्मेलन में बिस्मार्क को कुछ लाभ ही हुआ। अत्यन्त चतुराई और सौभाग्य के कारण कभी एक योजना रखी गई और कभी उसके विरुद्ध दूसरी योजना बनाई गई। उसने ऑस्ट्रिया को १८५२ की व्यवस्था का समर्थन नहीं करने दिया और इस प्रकार उसने डचियों पर डेनमार्क के अधिकार को किसी भी हालत में स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसके मतानुसार ऐसी अवस्था से सारी जर्मनी में भारी असन्तोष होता। उसने स्वयं प्रस्ताव रखा कि डचियाँ ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक को दे दी जाएँ। किन्तु इस दिशा में भी उसने कोई स्पष्ट प्रस्ताव नहीं रखा और माँग की कि वह हॉल्स्टीन-श्लैसविग (Holstein Schleswig) को डेनमार्क के अधिकार से निकालकर इस शर्त पर ऑगस्टनबर्ग को सौंपने का समर्थन कर सकता है कि प्रशा का पूरा-पूरा सैनिक, नौसैनिक और आर्थिक नियन्त्रण इन दोनों विवादग्रस्त डचियों पर स्वीकार कर लिया जाय। इस असम्भव शर्त पर ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक ने बिस्मार्क की सहायता को अस्वीकृत कर दिया। इस प्रकार बिस्मार्क को अर्द्ध-नैतिक बहाना मिल गया कि वह ऑगस्टनबर्ग की सहायता से मुंह फेर ले। जब सम्मेलन ने ऑगस्टनबर्ग के इस दावे को अस्वीकार कर दिया कि डचियों को डेनमार्क से अलग कर दिया जाय, तो एक प्रकार से बिस्मार्क

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अर्द्ध-वैधिक बहाना मिल गया और अब वह ऑस्टनबर्ग के दावे से प्रायः विमुख हो गया। स्पष्टतः बिस्मार्क की हार्दिक इच्छा थी कि कम-से-कम हॉल्स्टीन (Holstein) पर प्रशा का अधिकार हो जाना चाहिए। स्वयं नेपोलियन तृतीय (Napoleon III) ने भी तो कहा था कि प्रशा की सामुद्रिक शक्ति के लिए दोनों डचियों का भारी महत्त्व है। बिस्मार्क की इस दिशा में भारी रुचि थी। लार्ड क्लैरेंडन (Lord Clarendon) ने प्रशा के राजदूतों से कहा था—"आप लोग इस सम्मेलन में जिस समय आये थे, उस समय भी स्थिति आपके अधिकार में थी और इस समय जबकि आप इस सम्मेलन से जा रहे हैं तब भी स्थिति पर आप लोगों का पूरा अधिकार है।"

सम्मेलन के समाप्त होने के बाद जून के अन्त में प्रशा और ऑस्ट्रिया ने डेनमार्क के विरुद्ध पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया। अब इस निर्णय के साथ युद्ध छेड़ा गया था कि दोनों डचियों को डेनमार्क से छीन लिया जाय और बाद में दोनों विजेता देश आपस में दोनों डचियों का बँटवारा कर लें। किन्तु एक ओर ऑस्ट्रिया की तो यह इच्छा थी कि डचियों पर ऑगस्टनबर्ग का अधिकार रहे किन्तु बिस्मार्क ने डचियों पर ऑगस्टनबर्ग के अधिकार के बारे में सोचना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार श्लैसविग-हॉल्स्टीन प्रश्न का अन्तिम दौर प्रारम्भ हुआ।

डेनमार्क के अधिकार में से डचियों को निकालने के अभिप्राय से प्रशा और आस्ट्रिया द्वारा युद्ध पुनः आरम्भ (जून से लेकर अगस्त १८६४ तक)

नया युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया। शत्रुओं की सेनाओं ने डेनमार्क को आक्रान्त कर डाला। एल्सेन (Alsen) के टापू पर आक्रमण कर दिया गया और कापनहेगेन (Copenhagen) पर आक्रमण की तैयारी होने लगी। डेनमार्क की सहायता के लिए कोई विदेशी सैनिक नहीं पहुँचा। निराशा के वातावरण में डेनमार्क ने आत्मसमर्पण कर दिया और १ अगस्त को शान्ति-सन्धि की शर्तें तय हो गईं और अक्टूबर में वियना की सन्धि (Treaty of Vienna) द्वारा वे शर्तें पक्की कर दी गईं। डेनमार्क ने प्रशा और ऑस्ट्रिया के संयुक्त हित में दोनों डचियों पर से अपना अधिकार छोड़ दिया। डेनमार्क इस बात के लिए भी सहमत हो गया कि ऑस्ट्रिया और प्रशा उन दोनों डचियों (श्लैसविग और हॉल्स्टीन) का जो भी प्रबन्ध करेंगे, वह उसे मान्य होगा। डेनमार्क के अधिकार में से पचास वर्ष पूर्व नार्वे (Norway) निकल चुका था; और अब इन दोनों डचियों के भी उसके अधिकार में से निकल जाने के कारण डेनमार्क की यूरोपीय राजनीति में प्रतिष्ठा कम हो गई थी, और वह आज तक भी उस प्रतिष्ठा की हानि को पूरा नहीं कर सका है। डेनमार्क की अप्रतिष्ठा की ओर से मुँह फेर लेने के कारण ग्रेट ब्रिटेन की यूरोप और स्वदेश में कटु आलोचना हुई। लार्ड रॉबर्ट सेसिल, मार्क्विस ऑफ सेलिसबरी (Lord Robert Cecil, afterwards Marquis of Salisbury) ने कहा था—"यदि श्री काब्डेन (Mr. Cobden)[1] विदेश-मन्त्री होते तो मेरा विश्वास है कि हमारे देश की स्थिति संसार की निगाहों में इस समय की अपेक्षा अधिक आदरपूर्ण होती। कम-से-कम हम

१. काब्डेन (Cobden) एक विख्यात शान्तिवादी था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो कह सकते कि हमने कोई ऐसी आशा नहीं दिलाई थी जिसको पूरा करने का हमारा विचार भी न था; और हमने कोई ऐसा वायदा नहीं किया था जिसे हम पूरा करने का विचार ही न रखते थे।"[1]

बिस्मार्क के कहने पर हॉल्स्टीन में से जर्मन परिसंघ की सेनाओं को हटा लिया गया; और उनका स्थान प्रशा और ऑस्ट्रिया की सेनाओं ने ले लिया। डचियों के भाग्य का निर्णय अभी होने को था। कठिनाई यह थी कि प्रशा जर्मनी के विशाल भूभाग पर अपना स्वामित्व चाहता था किन्तु ऑस्ट्रिया की किसी भूभाग पर गृद्ध-दृष्टि नहीं थी। फिर भी ऑस्ट्रिया यह सहन करने के लिए तैयार नहीं था कि प्रशा का प्रभाव-क्षेत्र जर्मनी में बढ़े; किन्तु साथ ही बदले में ऑस्ट्रिया घाटे की स्थिति में रहे। बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के राजदूत से कहा था—"हम दोनों देश दोनो डचियों (Duchies) के सामने इस प्रकार खड़े है मानो दो मेहमान एक शानदार दावत के सामने खड़े हों; किन्तु हम दोनों में से एक मेहमान भूखा नहीं है जो दूसरे मेहमान अर्थात् प्रशा को भोजन खाने से बरबस रोक रहा है जबकि प्रशा अर्थात् दूसरा मेहमान खाने के लिए उतावला हो रहा है।" दोनों डचियों की उचित व्यवस्था करने के सम्बन्ध में प्रशा और ऑस्ट्रिया के बीच एक लम्बी बातचीत चलती रही किन्तु कोई सार नहीं निकला, और इस बीच दोनों देशों के बीच की दरार चौड़ी होती जा रही थी। आखिरकार यह निर्णय हुआ कि दोनों डचियों को दोनों विजेता देश आपस में बांट लें। निश्चित हुआ कि दोनों डचियों पर दोनों देशों का संयुक्त अधिकार रहे किन्तु फिलहाल ऑस्ट्रिया के अधिकार में दक्षिणी डची अर्थात् हॉल्स्टीन रहे जो प्रशा के निकटतर थी और प्रशा के अधिकार में श्लैसविग (Schleswig) रहे और तीसरी छोटी डची लौयनवर्ग (Lauenburg) को प्रशा के हाथों २५ लाख टेलरों (Talers) पर बेच दिया गया। गैस्टीन का कन्वेन्शन (Convention of Gastein) बिस्मार्क की भारी कूटनीतिक विजय थी। प्रशा को न केवल श्लैसविग (Schleswig) का पूरा अधिकार मिल गया बल्कि उसे हॉल्स्टीन (Holstein) में भी पर्याप्त लाभकारी अधिकार प्राप्त हो गये। प्रशा के अधिकार में कील (Kiel) बन्दरगाह का नियन्त्रण आ गयी। प्रशा को यह अधिकार भी मिल गया कि वह समुद्र तक एक सीधी नहर खोद सके। इसके अतिरिक्त दक्षिणी डची प्रशा के जालवरीन (Prussian Zollverein) में आ गयी। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट हो गया कि ऑस्ट्रिया के लिए अधिक दिनों तक यह सम्भव नहीं होगा कि वह इतने दूर-दूर बिखरे हुए हॉल्स्टीन (Holstein) जैसे प्रदेशों को अपने नियन्त्रण में रख सके। इस प्रकार डेनमार्क की डचियों का प्रशा के अधिकार में आने का चौथा स्तर आ चुका था और इस कहानी का अन्त निकट ही था। बिस्मार्क ने कहा—"मैंने अन्तिम बार क्विन्ज़े[2] (Quinze) का खेल खेला था। मैंने यह खेल इतनी सावधानी के साथ खेला था कि हर एक आश्चर्य-चकित हो गया था। ऑस्ट्रिया के एजेंट काउन्ट ब्लोम (Count Blome) ने कहा था

1. Quoted by Professor C. R. Beazley, *Nineteenth-Century Europe and Britain.*

२. ताश का खेल।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि "लोगों के चरित्र को जानने के लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि उनके साथ क्विन्ज़े (Quinze) खेला जाय और मैंने यही उचित समझा कि मैं ऑस्ट्रियावासी को अपने चरित्र से अवगत कराऊँ। मैंने पर्याप्त हानि सही, परन्तु मैं उसे मूर्ख बनाने में सफल हुआ क्योंकि उसे ऐसा विश्वास हो गया कि मैं वास्तविकता से अधिक साहसिक हूँ और वह हार गया।"

जर्मन साम्राज्य के बनाने में बिस्मार्क ने कुल तीन युद्ध किए थे, उनमें से प्रथम युद्ध के फलस्वरूप प्रशा राज्य का भूभाग बढ़ा था और अधिक भूभाग बढ़ जाने की सम्भावना हो गई थी। जर्मनी के महान् राजनीतिक नाटक का प्रथम अंक बिस्मार्क द्वारा सफलतापूर्वक खेला जा चुका था। इस प्रथम अंक ने दिखा दिया था कि जर्मन राजनीति बड़ी उग्र है, नव जर्मन राष्ट्रीयता आक्रामक है और इससे यह भी स्पष्ट हो चुका था कि नव जर्मनी में महान् शक्ति है। संसार ने प्रथम बार बिस्मार्क की विदेश नीति का व्यावहारिक स्वरूप देखा था और वास्तव में सारा संसार बिस्मार्क की साहसिक, असंदिग्ध और कूटनीतिक योग्यता का लोहा मान गया। एक पीढ़ी पूर्व के यूरोप के नेता राष्ट्र ऑस्ट्रिया को उसने प्रभावहीन कर दिया; और उसने सारे यूरोप को और अपने सम्राट् को भी यह दिखा दिया कि वह दृढ़ इच्छा शक्ति वाला राजनीतिज्ञ है। यद्यपि विलियम प्रथम बिस्मार्क के बताए हुए मार्ग पर चलने के लिए पूर्णतः तैयार न था फिर भी मानो वह मोहनिद्रा की-सी अवस्था में बिस्मार्क के बताये मार्ग पर चल ही रहा था। सम्राट् बिस्मार्क के मार्ग से पीछे नहीं हटा, केवल ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करने में उसने आनाकानी की थी; और इसके बाद तो चाहे उसकी इच्छा बिस्मार्क के बताये मार्ग पर चलने की न भी हो तो भी वह पूर्ण अशक्य रहा। सम्राट् के ऊपर बिस्मार्क का इतना प्रभाव छा गया था कि बाद में तो सम्राट् अपने सेवक की नीति को अपनी नीति मानने लग गया था। और जब सम्राट् ने बिस्मार्क को गले लगाकर उसका सार्वजनिक स्वागत किया और उसको काउण्ट का पदक देकर काउण्ट बिस्मार्क बना दिया उस समय प्रधान मन्त्री बिस्मार्क को न केवल महान् प्रसन्नता हुई होगी बल्कि महान् आश्चर्य भी हुआ होगा क्योंकि इससे पहले सम्राट् ने उसके प्रति इतना मोह कभी प्रदर्शित नहीं किया था।

(ख)

जर्मनी के एकीकरण की दिशा में श्लैसविग-हॉल्स्टीन का युद्ध केवल प्रारम्भिक पग था। बिस्मार्क का वास्तविक उद्देश्य तो यही था कि येन केन प्रकारेण वह जर्मनी में से ऑस्ट्रिया को निकाले ताकि प्रशा जर्मनी का नेतृत्व ग्रहण कर सके। वियना और गैस्टीन (Gastein) की सन्धियों के बीच के काल में एक बार तो ऐसा प्रतीत होने लगा था मानो ऑस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध सन्निकट है। और जब बिस्मार्क ने देखा कि जिस अवसर की वह स्वयं ताक में था वह हस्तगत है तो वह प्रसन्न था। किन्तु सम्राट् विलियम नहीं चाहता था कि बन्धु राष्ट्रों में युद्ध हो। इसलिए, उसने बिस्मार्क को आज्ञा दी कि बातचीत द्वारा मामला तय कर लो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु गैस्टीन के समझौते द्वारा आने वाला युद्ध टल नहीं सका, वह तो केवल दस महीने के लिए हट गया। बिस्मार्क ने कहा कि "हमने गैस्टीन के समझौते द्वारा दरार को कागज़ से ढक दिया है।" अब वह पूरी तरह से आने वाले युद्ध के लिए तैयारी करने लगा।

"हमने दरार को कागज से ढक दिया है"

गैस्टीन के समझौते में झगड़े के बहुत से बीज विद्यमान थे। बिस्मार्क ने युद्ध को उत्तेजित करने के लिए उन्हीं में से कुछ बीजों को छाँटा, जिनसे युद्ध हो और इस प्रकार जर्मनी की समस्याओं का अन्तिम हल निकल आये। बिस्मार्क को विश्वास था कि युद्ध द्वारा ही वह जर्मनी से ऑस्ट्रिया को बाहर खदेड़ सकेगा और तभी जर्मनी में प्रशा का प्रभुत्व स्वीकार किया जाएगा। वह यह भी समझता था कि युद्ध द्वारा ही जर्मनी में प्रशा का विस्तार स्वीकार किया जाएगा; और तब तक नवीन जर्मन संगठन में प्रशा की सर्वोच्च स्थिति को स्वीकार नहीं किया जाएगा। वह यह भी समझता था कि युद्ध के बाद ही प्रशा के राजतन्त्र की जर्मनी के अन्य राजतन्त्रों में शक्तिशाली स्थिति होगी।

ऑस्ट्रिया जिस प्रकार हॉल्स्टीन नामक डची का प्रबन्ध कर रहा था उसी से बिस्मार्क को युद्ध का बहाना मिल गया। गैस्टीन का समझौता (Convention of Gastein) अन्तिम नहीं था। जब ऑस्ट्रिया ने अनुभव किया कि दक्षिणी डची में उसकी उपस्थिति अस्थायी मात्र है तो वह जर्मन परिसंघ और ऑगस्टनबर्ग की नीति को स्वीकार करने लगा। ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक (Duke of Augustenburg) के पक्ष में ऑस्ट्रिया ने सार्वजनिक भाषणों और समाचारपत्रों द्वारा प्रचार की अनुमति दे दी; यहाँ तक कि एल्टौना (Altona) में एक भारी सभा जनवरी में आयोजित हुई, जिसमें प्रशा की सरकार की कठोर आलोचना की गई। बिस्मार्क ने इसका विरोध किया और विलियम को भी आघात पहुंचा। कहाँ तो केवल १८ मास पूर्व विलियम प्रथम ने कहा था कि दोनों डचियों पर प्रशा का नैतिक अधिकार नहीं था और कहां अब उसने कहा कि दोनों डचियों के लिए हम युद्ध करेंगे। सम्राट् विलियम प्रथम ने कहा था—"मैं शान्ति का इच्छुक हूँ किन्तु यदि आवश्यकता आ पड़ी तो इन दोनों डचियों के प्रश्न पर युद्ध करने के लिए भी मैं तैयार हूँ; ऐसे युद्ध को मैं नैतिक रूप से सही समझता हूँ क्योंकि मुझे भगवान् ने भी ऐसी ही प्रेरणा दी है।" बिस्मार्क ने कहा कि हमारे सम्राट् को भी विजयों का चस्का लग गया है। वास्तव में स्वयं बिस्मार्क के प्रभाव के फलस्वरूप ही सम्राट् के हृदय में यह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुआ था।

१६ मार्च को ऑस्ट्रिया ने घोषित किया कि वह डचियों के प्रश्न को जर्मन फेडरल संसद् (Federal Diet) में ले जाना चाहता है। निश्चय ही यह जर्मनी में लोकप्रिय होने की चाल थी। परन्तु ऑस्ट्रिया का यह व्यवहार गैस्टीन के कन्वेन्शन की अवहेलना का अर्थ रखता था, अतः इससे बिस्मार्क को ऑस्ट्रिया के ऊपर विश्वास-घात का दोषारोपण करने का अवसर मिल गया। इससे प्रशा और ऑस्ट्रिया के बीच मैत्री की आशा धूमिल हो गई और युद्ध में प्रायः

ऑस्ट्रिया गैस्टीन के कन्वेन्शन की उपेक्षा करता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई देर नहीं थी। जब तक युद्ध आरम्भ हो, बिस्मार्क ने सोचा कि इस समय में युद्ध की तैयारी पूरी कर ली जाय, विदेशी शक्तियों को अपनी ओर मिला लिया जाय और अपने सम्राट् विलियम प्रथम की अपनी नीति के प्रति पूर्ण सहानुभूति अर्जित कर ली जाये।

बिस्मार्क अपने सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) के प्रवास-काल में ही ऐसी राजनीतिक शतरंजी चालें खेल चुका था जिनसे रूस की मित्रता का उसे विश्वास था; और फिर क्रीमिया युद्ध में तथा पोलैंड के विद्रोह में भी उसने रूस के प्रति मैत्री भाव रखा था। इसलिए रूसी ज़ार की मैत्री का उसे पूरा भरोसा था। अब उसने अपना कूटनीतिक ध्यान फ्रांस और इटली की ओर लगाया। वह चाहता था कि उसे फ्रांस की पूर्ण तटस्थता प्राप्त हो जाय। इटली से उसने सन्धि करके उसकी सशस्त्र सहायता प्राप्त कर ली।

पिछले जमाने में जब बिस्मार्क फ्रैंकफ़र्ट (Frankfurt) और पेरिस (Paris) में रहता था, वह किसी सीमा तक फ्रेंच सम्राट् की ओर आकृष्ट सा रहता था। यद्यपि यह बात न तो प्रशा के दोनों राजा चाहते थे और न बर्लिन (Berlin) के रूढ़िवादी लोग इसे पसन्द करते थे। बिस्मार्क न तो फ्रेंच सम्राट् को न्याय और औचित्य का शत्रु समझता था और न उसको उदारवादी समझकर उसकी निन्दा करता था और न उसकी क्रान्ति को उभारने वाला समझता था और न यही समझता था कि वह नीच जाति से उत्पन्न कोई छली है जिसने धन अर्जित कर लिया है। बिस्मार्क के ध्यान में ऐसी संकटकालीन स्थिति सदैव रहती थी जैसी कि इस समय जर्मनी में थी और वह यह समझता था कि आड़े वक्त में फ्रेंच सम्राट् अवश्य काम आएगा। इसके अतिरिक्त फ्रेंच सम्राट् के चरित्र के विषय में बिस्मार्क ने अपने विचार अलग बना रखे थे और इस सम्बन्ध में उसके विचार और लोगों के विचारों से मेल नहीं खाते थे क्योंकि आम तौर पर यूरोप में फ्रेंच सम्राट् को शक्तिशाली, कुबुद्धि, महत्त्वाकांक्षी और योग्य काल्पनिक व्यक्ति समझा जाता था। दस वर्ष पूर्व फ्रेंच सम्राट् ने प्रशा सम्राट् को उसकी भोजन की मेज पर चुड़ैल का काल्पनिक वर्णन करके अप्रसन्न कर दिया था। सम्राट् नेपोलियन के सम्बन्ध में बिस्मार्क ने कहा था—"मैं समझता हूँ कि फ्रेंच सम्राट् विचारशील और प्रियदर्शन व्यक्ति है किन्तु इतना चालाक और मक्कार नहीं है जितना कि उसे समझा जाता है। सारी दुनिया में जो कुछ भी होता है वह फ्रेंच सम्राट् के सिर थोप दिया जाता है। यहाँ तक कि यदि पूर्वी एशिया में कुसमय पर वर्षा हो जाती है तो भी यही समझा जाता है कि इसमें फ्रेंच सम्राट् की किसी जादूगरी का ही प्रभाव है।..... मेरा विश्वास है कि यदि वह किसी बात से प्रसन्न हो जाता है तो उसका चित्त (mood) भी अच्छा हो जाता है। उसका हृदय अवश्य अच्छा है और उसकी समझ उतनी नहीं है। उसका हृदय साफ़ है। यदि उसके प्रति कोई उपकार कर देता है तो वह उसका हृदय से आभार मानता है।' जिन लोगों से बिस्मार्क ने फ्रेंच सम्राट् का उक्त वर्णन किया था, वे समझते थे कि बिस्मार्क एक गँवार आदमी है और कोई भी

बिस्मार्क फ्रांस की निष्पक्षता प्राप्त करता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्मार्क के उक्त वर्णन से प्रभावित नहीं हुआ। किन्तु नेपोलियन भी बिस्मार्क के प्रति मैत्री-भाव रखता था। कुछ दिनों के बाद नेपोलियन तृतीय ने बिस्मार्क के विषय में कहा था—"वह वास्तव में एक महान् पुरुष है। उस में बनावट नहीं है और वह तुरतबुद्धि का व्यक्ति है।"

गैस्टीन कन्वेन्शन (Gastein Convention) से पहले भी बिस्मार्क ने फ्रेंच सम्राट् से भेंट की थी; और यद्यपि गैस्टीन कन्वेंशन द्वारा फ्रांस और प्रशा के सम्बन्ध कुछ खराब हो गए; फिर भी बिअरिट्ज़ (Biarritz) में अक्तूबर, १८६५ में बिस्मार्क नेपोलियन तृतीय से मिलने गया और दोनों पुनः मैत्री-भाव से मिले।

बिअरिट्ज़ में नेपोलियन और बिस्मार्क की भेंट (अक्टूबर, १८६५)

प्रशा के लिए बिअरिट्ज़ (Biarritz) की भेंट का उतना ही महत्त्व है जितना कि सात वर्ष पूर्व प्लौम्बियर्स की भेंट का सार्डीनिया के लिए महत्त्व था। किन्तु बिअरिट्ज़ में क्या बातचीत हुई, इस सम्बन्ध में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। सारी बातचीत अनौपचारिक रूप से और गुप्त रूप से यूजीनी नामक स्थान (Villa Eugenie) पर हुई जहाँ और कोई नहीं था। इस बातचीत का रिकार्ड भी नहीं रखा गया और जो कुछ है वह अपूर्ण और पक्षपातयुक्त है।

किन्तु ऐसा माना जा सकता है कि नेपोलियन ने यह स्वीकार कर लिया कि यदि प्रशा और ऑस्ट्रिया में युद्ध होगा तो फ्रांस तटस्थ रहेगा। सम्भवतः नेपोलियन ने मान लिया कि यदि प्रशा जीत जाता है तो वह दोनों डचियों (Elbe Duchies) पर अधिकार कर ले। सम्भवतः उसने यह भी मान लिया था कि यदि प्रशा और इटली की मित्रता हो, तो वैनीशिया (Venetia) का प्रान्त ऑस्ट्रिया से निकलकर इटली में मिला दिया जाय। संभवतः नेपोलियन ने जर्मन परिसंघ (German Confederation) में सुधारों का विरोध नही किया और उत्तरी जर्मनी में प्रशा के नेतृत्व में नये जर्मन राज्य की स्थापना का विरोध नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं है कि फ्रेंच सम्राट् ने भी तटस्थता के मूल्य में कुछ लाभ चाहा होगा किन्तु बिस्मार्क ने मान लिया कि वह बदले में फ्रांस को वह सब कुछ देगा जिससे प्रशा और जर्मनी का अहित न होता हो। बिस्मार्क ने बदले में वह सब कुछ देने को कहा होगा जो प्रशा या जर्मनी का न हो। सम्भवतः उसने कह दिया हो कि फ्रांस ऐसे फ्रेंच भाषाभाषी प्रदेश प्राप्त कर ले जैसे बेल्जियम का दक्षिणी-पूर्वी भूभाग।

बिस्मार्क की मंशा साफ़ थी। वह चाहता था कि किसी प्रकार प्रशा और ऑस्ट्रिया के युद्ध में फ्रांस तटस्थ हो जाये और साथ ही इस तटस्थता के लिए प्रशा को कोई कीमत न चुकानी पड़े। किन्तु नेपोलियन की नीति का औचित्य सिद्ध करना कठिन है। जिस समय बिअरिट्ज़ (Biarritz) में बिस्मार्क और नेपोलियन तृतीय साथ-साथ चल रहे थे, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि एक ओर बिस्मार्क महान् था, शक्तिशाली था, महत्त्वाकांक्षी था, सावधान था और उसे अभी महान् कार्य करने को थे किन्तु दूसरी ओर नेपोलियन झुका हुआ, कमज़ोर और जवानी में ही बुड्ढा सा प्रतीत हो रहा था; उसकी आँखें धँसी हुई थीं, वह थका हुआ सा था और मानो मायाजाल में ग्रस्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था; वह शरीर का रोगी था और इन सब अस्वस्थताओं का उसके साम्राज्य के ऊपर भी प्रभाव दिखाई दे रहा था। अतः सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि दोनों में से कौन किसके ऊपर छाया हुआ रहा होगा। जब बिस्मार्क विलियम प्रथम, प्रशा के सम्राट् को पूर्णतः प्रभावित कर सकता था तो निस्सन्देह उसने नेपोलियन तृतीय को भी अपने वश में कर लिया होगा। बिअरिट्ज (Biarritz) की भेंट में जो ऐसी बातचीत हुई जो अभी तक प्रकाश में नहीं आई उसका भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, यदि हम बिस्मार्क के महान् और अलौकिक चरित्र को समझने का प्रयत्न करें। डिजरायली (Disraeli) कहा करता था कि बिस्मार्क सम्राट्टों को मोह-निद्रा में फँसाने वाली महान् दैवी जादूगरनी (Great Imperial Sphinx) है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बिस्मार्क के राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति नेपोलियन की सहानुभूति थी। इससे भी अधिक उसकी रुचि इस बात में थी कि वैनेशिया (Venetia) प्रान्त इटली को मिल जाय।

इसके अतिरिक्त नेपोलियन के मन्त्रियों ने भी कुछ गूढ़ पूर्व-विचार बना रखे थे। वे सोचते थे कि यदि प्रशा जीत गया और प्रशा के तत्वावधान में उत्तरी जर्मनी का राज्य संगठित हो गया तो निश्चय ही दक्षिणी जर्मनी के राज्य और ऑस्ट्रिया फ्रांस की सहायता के लिए लालायित होंगे। किन्तु तथ्य यह था कि नेपोलियन और फ्रांस ने एक भारी गलती की। वे यह कदापि नहीं समझते थे कि प्रशा विजयी होगा। वे समझते थे कि ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध करके प्रशा की हार होगी चाहे युद्ध थोड़े दिन चले या अधिक दिन चले। वे यह भी समझते थे कि इस युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी कमजोर हो जायेगा, जिससे फ्रांस को हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त होगा। उन्हें यह भी विश्वास था कि ऐसी स्थिति में फ्रांस का प्रभुत्व कम-से-कम छोटी-छोटी जर्मन रियासतों के ऊपर छा जायगा और तब फ्रांस १८१५ की संधियों की अवहेलना करने में सफल होगा। और फिर इस प्रकार फ्रांस की सीमाएँ राइन (Rhine) नदी तक पहुँच जाएँगी। तत्कालीन फ्रेंच विदेश मन्त्री ड्राउन डी लुइस (Drouyn de Lhuys) ऐसी ही समझता था।

इसके अतिरिक्त यह भी भय था कि प्रशा द्वारा युद्ध आरम्भ करने से पहले ही नेपोलियन की मनःस्थिति (mood) बदल न जाय। फ्रांस से तटस्थता का वचन लेकर बिस्मार्क इटली की सक्रिय मित्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से उस ओर चला। प्रशा और इटली के बीच तुरन्त व्यापारिक सन्धि हो गई किन्तु यह इतना सरल नहीं था कि दोनों देशों में आक्रमण करने के उद्देश्य से सन्धि हो जाय। यदि ऐसा हो जाता तो उसके स्पष्ट लाभ होते। इस प्रकार ऑस्ट्रिया के ऊपर उत्तर में प्रशा आक्रमण करता तथा दक्षिण में इटली आक्रमण करता और इस तरह ऑस्ट्रिया की पराजय निश्चित हो जाती, और यदि प्रशा और ऑस्ट्रिया में युद्ध छिड़ जाता तो इटली और वैनीशिया (Venetia) प्रान्त के मिल जाने की पूरी-पूरी आशा थी। किन्तु इटली और प्रशा एक-दूसरे के प्रति अविश्वास रखते थे और हर एक देश को भय था कि दूसरा इस मैत्री से लाभ उठाकर ऑस्ट्रिया से सुविधाएँ प्राप्त करना

इटली की मित्रता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता है। आखिरकार ८ अप्रैल सन् १८६६ को दोनों देशों में गुप्त सन्धि हुई जिसके अनुसार निश्चित हुआ कि यदि तीन महीने के अन्दर प्रशा जर्मनी के संगठन को सुधारने के उद्देश्य से युद्ध के लिए विवश हो जाय को इटली तुरन्त ऑस्ट्रिया के ऊपर आक्रमण कर देगा। यह पारस्परिक सुरक्षा और पारस्परिक सन्देह की व्यवस्था थी जिसमें तीन महीने की निश्चित अवधि यह इंगित करती थी कि इटली को प्रशा के प्रति अविश्वास है।

८ अप्रैल, १८६६

इसलिए अब बिस्मार्क के पास केवल बारह सप्ताह का समय था और इसी अवधि में उसे ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करनी थी; किन्तु प्रशा के साम्राट् का विरोध भी तो जीतना था। हॉल्स्टीन में ऑस्ट्रिया खुल्लमखुल्ला ड्यूक आफ ऑगस्टनबर्ग (Duke of Augustenburg) का पक्ष ले रहा था, इसलिए २८ फरवरी को प्रशा की संसद में सदस्यों ने खुले तौर पर ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करने की मांग की थी और प्रशा का राजा इस उत्तेजना से प्रभावित हुआ था। ३ मार्च को विलियम प्रथम (प्रशा के राजा) ने बिस्मार्क के कहने पर एक व्यक्तिगत पत्र नेपोलियन तृतीय को लिखा यद्यपि कुछ समय पूर्व तक वह नेपोलियन से घृणा करता था। इस पत्र में विलियम प्रथम ने लिखा कि फ्रांस और प्रशा में स्थायी मैत्री होनी चाहिए किन्तु इस पत्र के पहले ही बिस्मार्क ने रॉथ्सचाइल्ड (Rothschild) नामक यहूदी व्यवसायी द्वारा गुप्त बात-चीत तय कर ली थी। फ्रेंच सम्राट् ने उत्तर में लिखा कि फ्रांस को कोई आपत्ति नहीं है यदि प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन राज्यों का एक संघ बन जाता है। किन्तु अदृश्य रूप से फ्रांस यह अवश्य चाहता था कि यदि प्रशा का विस्तार हुआ तो बाद में फ्रांस भी एवज में कुछ विस्तार की योजना रखेगा।

किन्तु अन्त में जब ऑस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशा का युद्ध अत्यन्त सन्निकट था, प्रशा का सम्राट् विलियम (William of Prussia) भाई-भाई की संहारक लड़ाई (Fratricidal war) से बचने लगा। सम्राट् का सारा परिवार—उसकी स्त्री रानी ऑगस्टा (Queen Augusta), उसका पुत्र राजकुमार और उसकी अंग्रेज पुत्रवधू—इस युद्ध के विरुद्ध थे। उसकी पुत्रवधू ने तो इस सम्बन्ध में अपनी माता रानी विक्टोरिया (Queen Victoria) तक को लिख मारा। राजतन्त्र के परम्परागत मित्र रूढ़िवादियों (Conservatives) को भारी भय था कि उदारवादी इटली और नेपोलियनवादी फ्रांस की सहायता लेकर एक जर्मन राष्ट्र—ऑस्ट्रिया—के ऊपर आक्रमण किया जा रहा है। सम्राट् की विमुखता से बिस्मार्क को गहरा धक्का लगा और अब बिस्मार्क और वॉन रून (Von Roon) दोनों त्यागपत्र देने की सोचने लगे। बिस्मार्क ने चिल्ला कर कहा—"मुझे युद्ध में विश्वास है यद्यपि मैं नहीं जानता कि युद्ध होगा या नहीं। और मैं थकावट और कमजोरी महसूस करने लगा हूँ।"

प्रशा का सम्राट् युद्ध से हटना चाहता है

यद्यपि चारों ओर से विरोध ही विरोध था—प्रशा के सम्राट् ने निराशावादी दृष्टिकोण अपनाया था, उसके पूर्व मित्र उसको शाप दे रहे थे—फिर भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्मार्क डटा ही रहा। वह युद्ध के लिए ज़िद करता ही रहा यद्यपि इस युद्ध को सिवाय उसके और कोई न चाहता था। आखिर उसकी दलीलें सम्राट् को माननी पड़ीं। ऑस्ट्रिया की गलती से बिस्मार्क ने लाभ उठाया और उसने ऑस्ट्रिया के विश्वासघात और ऑल्मुट्ज (Olmutz) की घटना की याद दिलाई और सम्राट् को उसके धार्मिक विश्वास की दुहाई देकर उसके सैनिक वीरत्व और उसके प्रशावासी होने के आत्म-गौरव की कसम दिला कर बिस्मार्क ने अपना काम बना ही लिया। बिस्मार्क ने कहा, "मैं यह सर्वशक्तिमान भगवान के ऊपर छोड़ता हूँ कि वह आपके हृदय में पितृ देश के लिए कल्याण भावना का संचार करे। इस समय तो मैं केवल भगवान से प्रार्थना करूँगा और इस सम्बन्ध में आपको कोई मन्त्रणा नहीं दूंगा।" इसके उपरान्त उसने सम्राट् को परामर्श भी दिया और कहा, "मैं आपके समक्ष अपने इस आत्म-विश्वास को कैसे छिपाऊँ कि यदि इस समय हम शान्ति की दुहाई देते रहे, तो भी सम्भवतः कुछ ही महीनों में युद्ध का भय अटल है और उस समय हमको घाटे की परिस्थितियों में युद्ध करना पड़ेगा। श्रीमन्! मैंने आपकी छत्रछाया में १३ वर्षों का राजनीतिक अनुभव अर्जित किया है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मैं ऑस्ट्रिया की नीति से भली-भाँति परिचित हूँ। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि वियना (Vienna) में राज्य की नीति का केवल एक लक्ष्य है—और वह लक्ष्य है प्रशा का विरोध।"

किन्तु बिस्मार्क ने सम्राट को युद्ध के लिए राजी कर ही लिया

बिस्मार्क अपने राजा को काबू में करना चाहता था और आखिरकार विलियम प्रथम युद्ध के लिए सहमत हो गया। किन्तु वह पराजय के लिए तैयार नहीं था। "यदि मेरे कानों में ऑल्मुट्ज (Olmutz) की पराजय की सी खबरें आईं तो मैं राज्य त्याग दूंगा।" किन्तु बिस्मार्क, मॉल्टके और वान रून को प्रशा की अजेय सैनिक शक्ति का विश्वास था। मई के प्रारम्भ में सम्राट् विलियम ने सैन्य सज्जा (Mobilization) का आदेश दिया। सम्राज्ञी ऑगस्टा ने विरोधस्वरूप बर्लिन से प्रवास किया। सम्राट् ने कहा, "मैं भली-भाँति जानता हूँ कि मुझ से सारा परिवार अप्रसन्न है। किन्तु मैं स्वयं अपनी सेना का संचालन करूँगा। चाहे मेरी जान चली जाय किन्तु इस बार प्रशा की पराजय नहीं होगी।"

इन्हीं दिनों बिस्मार्क ने जर्मन परिसंघ के सुधारों के प्रश्न को संघर्ष का कारण बना दिया क्योंकि केवल डचियों के प्रश्न को लेकर वह ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध नहीं करना चाहता था। ऑस्ट्रिया की इस माँग के उत्तर में कि डचियों के निबटारे का प्रश्न फेडरल डाइट के समक्ष रखा जाय, बिस्मार्क ने मार्च के अन्त में फेडरल सुधारों का प्रश्न उठाया, और ९ अप्रैल को अर्थात् प्रशा और इटली की मैत्री-घोषणा के अगले दिन बिस्मार्क ने फ्रैंकफर्ट में फेडरल डायट (Federal Diet at Frankfurt) में सुधार करने की अपनी योजना प्रस्तुत की। बिस्मार्क जो अब तक प्रशा के बारे

बिस्मार्क फेडरल सुधारों के प्रश्न पर ऑस्ट्रिया को उत्तेजित करता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही सोचता था अब सारी जर्मनी का प्रवक्ता बन बैठा। यह नहीं कहा जा सकता कि रूढ़िवादी गँवार बिस्मार्क (Conservative Junker) उदार बन गया था या उसने केवल राजनीतिक केंचुल बदला था। सुधार के प्रस्तावों में एक यह भी अजीबो-गरीब प्रस्ताव था कि पुनर्गठित जर्मनी की जो नई संसद् गठित की जाय उसके प्रतिनिधि सार्वजनिक पूर्ण वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित हों। बिस्मार्क की नीति में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन देखकर जर्मनी और प्रशा को भारी हैरानी हुई और रूढ़िवादी भी और उदारवादी भी यह नहीं समझ सके कि किस को कम बेवकूफ बनाया गया और किस को अधिक। सबका यही विचार था कि यह बिस्मार्क की राजनीतिक धोखेबाजी मात्र थी।

ज्यों-ज्यों घटनाएँ घटती गईं, युद्ध निकट आता गया और फेडरल सुधारों की योजना ने इन घटनाओं पर गहरा प्रभाव डाला। फ्रांस, इटली और प्रशा के सम्राटों को बिस्मार्क ने यही विश्वास दिलाया था कि वह फेडरल सुधार करना चाहता है और प्रशा एवं इटली की मैत्री सन्धि की शर्तों में यही सुधार मुख्य थे। उसने जर्मनी की छोटी रियासतों को यह स्पष्ट आश्वासन दिया था कि प्रशा के विजयी होने के शीघ्र बाद जर्मनी का पुनर्गठन होगा। अप्रैल के अन्त में ऑस्ट्रिया ने देखा कि इटली में चुपके-चुपके सैन्य-सज्जा हो रही है और गैरीबाल्डी के सैनिक क्रियाशील हो रहे हैं; तो ऑस्ट्रिया ने भी दक्षिण में युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। इसके जवाब में ला मारमोरा (La Marmora) ने इटली में सैन्य-सज्जा की आज्ञा दे दी। फिर भी अभी युद्ध छिड़ने में देर थी। ऑस्ट्रिया ने भारी प्रयत्न किया कि इटली को प्रशा की मैत्री से तोड़ लिया जाय। ऑस्ट्रिया वैनेशिया (Venetia) को देने को तैयार था और सम्भवतः फ्रांस और इटली इस बात के लिए तैयार हो जाते कि ऑस्ट्रिया अपना घाटा प्रशा के साइलीशिया (Silesia) प्रांत को लेकर पूरा कर ले। इस समय सारा दारोमदार ला मारमोरा (La Marmora) की प्रशा के प्रति नीति पर निर्भर था। अब बिस्मार्क के कान खड़े हुए। किन्तु इटली के प्रधानमन्त्री और प्रधान सेनापति ने यही निश्चय किया कि प्रशा अपने वचन का ईमानदारी के साथ पालन करेगा। इसलिए इटली ने ऑस्ट्रिया का सुझाव रद्द कर दिया और अपने समझौते पर अटल रहा यद्यपि इस निर्णय का अर्थ यह था कि इटली को ऐसा युद्ध करना पड़ रहा था जिसके परिणामस्वरूप शायद वैनीशिया (Venetia) न भी मिलता, किन्तु वह निश्चित रूप से शान्ति के मार्ग से मिल रहा था।

ऑस्ट्रिया कुछ समय के लिए युद्ध को रोकता है

इसके उपरान्त नेपोलियन की चलायमान नीति के कारण भी युद्ध कुछ दिनों तक रुका रहा। फ्रांस का कुछ जनमत इस बात के विरुद्ध था कि प्रस्तावित प्रशा और ऑस्ट्रिया के युद्ध में फ्रांस का अहित हो रहा है। किन्तु प्रशा का विस्तार हो रहा है और इटली का लाभ हो रहा है। थायर्स (Thiers) ने फ्रेंच संसद् में गरजकर कहा था, "जर्मनी का राजनीतिक एकीकरण कभी नहीं होना चाहिए। प्रशा चाहता है कि ऑस्ट्रिया

फ्रांस का रुख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हराकर जर्मनी का एकीकरण किया जाए। प्रत्येक फ्रेंच देशभक्त का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस युद्ध को न होने दिया जाय।" नेपोलियन ने यह सुना और उस पर इसका कुछ प्रभाव भी पड़ा। इसलिए उसने ऑस्ट्रिया का समर्थन किया था कि वह वैनीशिया (Venetia) को इटली को दे दे। किन्तु जब वह चाल सफल न हुई तो उसने प्रशा से कहा कि फ्रांस को निष्पक्षता के बदले में कुछ मिलना चाहिए और जब यह चाल भी असफल हुई तो उसने वह पुरानी रामबाण युक्ति दुहराई कि यूरोप के किसी भी झगड़े के लिए काँग्रेस (Congress) का आह्वान हो। रूस और ब्रिटेन ने स्वीकार कर लिया और बिस्मार्क ने भी स्वीकार कर लिया, जिस प्रकार कि आठ वर्ष पूर्व कैवूर ने स्वीकार कर लिया था। बिस्मार्क को भारी दुःख था कि उसकी सारी योजनाएँ समाप्त होने जा रही हैं। एक बार पुनः ऑस्ट्रिया ने सिद्ध कर दिया कि उसके पास योग्य और समझदार राजनीतिज्ञों का अभाव है। उसने अब भी वैसी ही गलती की जैसी कि वह कैवूर के साथ कर चुका था। इस कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए उसने ऐसी शर्तें लगा दीं कि उनका यही अर्थ लगाया गया कि ऑस्ट्रिया कांग्रेस में शरीक नहीं होना चाहता इसलिए कांग्रेस का विचार ही त्याग दिया गया। जब कांग्रेस के विचार के परित्याग की तार द्वारा सूचना बिस्मार्क के पास पहुंची तो वह खुशी के मारे उछल पड़ा। उसने मस्ती से चिल्लाकर कहा, "अब तो युद्ध होगा। राजा चिरंजीवी हो।" अब युद्ध का पासा बिस्मार्क के पक्ष में था। कुछ ही दिनों पूर्व एक अर्द्ध-इंग्लिश वंश के विद्यार्थी ने बिस्मार्क के ऊपर गोली चलाई क्योंकि कुछ लोग उसे सार्वजनिक शान्ति का शत्रु समझने लगे थे। एक गोली बिस्मार्क के कपड़ों को पार कर गई और उसकी सिल्क की वास्कट में छेद कर गई। अगले दिन अपने जीवन में प्रथम बार जब बिस्मार्क भीड़ में से निकला तो लोगों ने उसका जयजयकर किया। लौह-पुरुष के साहस की अब प्रशंसा हो रही थी। युद्ध के नगाड़े बज रहे थे और प्रशा के लोग युद्ध के लिए हर्षोन्मत्त थे। और स्वयं बिस्मार्क ने यह अनुभव किया कि उस गोली से उसकी रक्षा स्वयं भगवान् ने की है। बिस्मार्क के एक अभिन्न साथी ने कहा कि "अब बिस्मार्क ऐसा सोचने लग गया था कि मानो भगवान ने ही उसे जर्मनी की सेवा के लिए चुनकर भेजा है, यद्यपि स्वयं बिस्मार्क ने ऐसा दावा कभी नहीं किया।"

अखिल यूरोपीय कांग्रेस का प्रस्ताव

यदि वह गोली बिस्मार्क के सीने को छेदकर पार कर गई होती तो ऑस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध कभी न होता।

अन्तिम कूटनीतिक औपचारिकताएँ जून के प्रारम्भ में हुईं। पहली जून को ऑस्ट्रिया ने हॉल्स्टीन की छोटी रियासतों को बुलाया और १६ मार्च के खतरे को समझते हुए उसने औपचारिक रूप में फैडरल संसद (Federal Diet) को आहूत किया कि डचियों (Elbe Duchies) के सम्बन्ध में वह अपना निर्णय दे दे। इसके उत्तर में प्रशा ने घोषणा की कि अब गैस्टीन का कन्वेंशन (Convention of Gastein) समाप्त हो चुका है और फिर ७ जून को प्रशा ने हॉल्स्टीन पर आक्रमण कर दिया। इसलिए ऑस्ट्रिया ने फेडरल संसद् (Feberal Diet) के समक्ष विरोध किया और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँग की कि शान्ति के शत्रु प्रशा (Prussia) के विरुद्ध जर्मन परिसंघ के सभी सदस्य देश सैन्य-सज्जा करें और उचित कार्यवाही करें। उसी दिन अर्थात् १४ जून को प्रशा ने भी फेडरल संसद् (Diet) के समक्ष जर्मन परिसंघ के सुधार की एक योजना प्रस्तुत की और साथ ही यह भी माँग की कि डचियों के सम्बन्ध में कोई निर्णय करने से पूर्व जर्मन परिसंघ का पुनर्गठन होना चाहिए। ऑस्ट्रिया और प्रशा दोनों के प्रस्तावों पर डायट या संसद् में मतदान हुआ और ६ के विरुद्ध ९ मतों से ऑस्ट्रिया का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। अतः प्रशा ने घोषित किया कि जर्मन परिसंघ का अन्त किया जाता है। उसने डायट (Diet) से अपना प्रतिनिधि वापस बुला लिया और छोटी रियासतों को इत्थिमेत्थम (Ultimatum) भेज दिये। प्रायः सभी छोटी रियासतों ने ऑस्ट्रिया का पक्ष लिया केवल वीमर (Weimar) और कुछ छोटी उत्तरी जागीरों ने प्रशा का पक्ष ग्रहण किया। १६ जून को प्रशा की सेनाओं ने सैक्सनी (Saxony) में प्रवेश किया और २० जून को इटली ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी यद्यपि प्रशा और इटली की सन्धि में जो युद्ध की घोषणा के लिए समय निर्धारित किया गया था, उसमें अभी १५ दिन का समय शेष था।

छोटी रियासतों ने ऑस्ट्रिया का पक्ष लिया

अब जर्मनी के भाग्य का निर्णय हथियारों की सफलता के आधार पर होना था। दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दोनों पक्ष असमान हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सारे यूरोप और जर्मनी का यही विचार था कि विजय ऑस्ट्रिया की होगी। यद्यपि प्रशा के सेनापतियों को विश्वास था कि वे विजयी होंगे, किन्तु बिस्मार्क को सन्देह था। उसने कहा, "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि परमात्मा बहुत ही अस्थिर और चपल है। हो सकता है कि प्रशा हार जाय। यदि हम हारे तो मैं जीवित नहीं लौटूंगा। अन्तिम मार-काट में मैं भी कट जाऊँगा। आदमी को एक बार ही तो मरना है तो फिर हार जाने से बेहतर यह है कि आदमी प्राण दे दे।" उसने बेचैनी के साथ बाइबिल को उठाया और उसे नवम स्तोत्र (Psalm) के तीसरे और पाँचवें गीतों से बड़ी सान्त्वना मिली।

दोनों पक्ष

एक ओर तो प्रशा था। प्रशा एक छोटा सा राज्य था जिसकी आबादी एक करोड़ थी। उसकी सीमाओं पर शत्रु प्रदेश थे और उसका कोई मित्र देश न था। केवल ड्यूक ऑफ मैकलेनबर्ग (Duke of Mecklenburg) और मेजिनी (Mazzini) उसके मित्र और शुभचिन्तक थे। दूसरी ओर ऑस्ट्रिया था। ऑस्ट्रिया की जनसंख्या, प्रायः प्रशा से दुगुनी से अधिक थी। जर्मनी की प्रायः सभी छोटी रियासतें ऑस्ट्रिया की ओर थीं। प्रशा के अकथनीय परिश्रम के फलस्वरूप ३,५०,००० सैनिक युद्ध के लिए मैदान में उतरे हुए थे—ऐसे छोटे देश के लिए यह संख्या कम न थी—किन्तु प्रशा के विरुद्ध ऑस्ट्रिया के ८,००,००० सैनिक मैदान में उतर चुके थे।

किन्तु ऑस्ट्रिया देखने में शक्तिशाली लग रहा था। वास्तव में वह कमजोर था। दक्षिणी जर्मनी की रियासतें ऑस्ट्रिया के साथ थीं अवश्य किन्तु वे उत्साहहीन थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri.

इन रियासतों में अव्यवस्था थी और उनकी सैनिक व्यवस्था कुशल नहीं थी; इसलिए वे प्रशा के विरुद्ध डट न सकीं और शीघ्र ही वे युद्ध से पलायन कर गईं। केवल सैक्सनी (Saxony) ने प्रशा का डटकर विरोध किया। इधर प्रशा और इटली की मैत्री के फलस्वरूप प्रशा को कोई वास्तविक सैनिक लाभ नहीं हुआ, यद्यपि इटली के भय से ऑस्ट्रिया की बड़ी सेना युद्ध के प्रारम्भ में इटली की ओर उलझी रही जिससे प्रशा को भारी सुविधा हो गई।

किन्तु जहाँ तक सैन्य-संचालन, शस्त्रास्त्र की श्रेष्ठता और युद्ध-कौशल का सम्बन्ध था, प्रशा की स्थिति अच्छी थी। वॉन मॉल्टके (Von Moltke) कह चका था कि प्रशा की सेना युद्ध के लिए तैयार है और उसकी बात सच थी। युद्ध की सारी योजना पूर्व-निश्चित थी और प्रशा के पास आधुनिकतम शस्त्रास्त्र थे। नये प्रकार की ब्रीच-लोडिंग राइफिलें (Breech-Loading Guns) डेनमार्क (Denmark) के युद्ध में सफलतापूर्वक प्रयुक्त हो चुकी थीं और उनका इस युद्ध में भी प्रयोग किया गया था। इन राइफिलों से शीघ्र और सही निशाने पर गोली मारी जाती थी। अभी तक इतनी अच्छी राइफिलें किसी देश में प्रयुक्त नहीं हुई थीं। छोटी और महत्त्वपूर्ण सभी बातों में और युद्धविद्या के सभी विभागों में वॉन रून (Von Roon) और वॉन मॉल्टके ने प्रशा की सेना को ऐसा श्रेष्ठ प्रशिक्षण दिया था कि वह अत्यन्त कुशल और लड़ाकू सेना थी। प्रशा की सेना गतिशील थी किन्तु ऑस्ट्रिया की सेना उतनी गतिशील नहीं थी। आस्ट्रिया के पास केवल एक योग्य कमांडर था जिसे वे वॉन मॉल्टके के मुकाबले में भेज सकते थे। वह काउण्ट बेनेडिक (Count Benedek) था। वह श्रेष्ठ चरित्र वाला अवश्य था किन्तु उसमें सैनिक उच्च योग्यता का अभाव था। जिस युद्ध-क्षेत्र में और जिस सेना के ऊपर उसको कमांड था, उसका उसे बिल-कुल ज्ञान न था। वह आर्चड्यूक (Archduke) था, जनरल नहीं था। इसलिए उसने सेनापति बनना बेमन से स्वीकार किया और उसे इस बात का दुःख था कि ऑस्ट्रिया के पास कोई अच्छा और योग्य जनरल नहीं था।

ऑस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध केवल सात सप्ताह चला। उसमें भी कठिन युद्ध केवल दस दिन चला। इटली ने तो प्रायः युद्ध किया ही नहीं। २४ जून को इटली की कास्टोज़ा (Custozza) नामक ऐतिहासिक स्थान पर भारी हार हुई। इसके बाद इटली की ऑस्ट्रिया के साथ कोई प्रमुख मुठभेड़ ही नहीं हुई। इस प्रकार ऑस्ट्रिया ने इटली के युद्ध-क्षेत्र से अपने सैनिक प्रशा के विरुद्ध लगाने के लिए बुलाये, किन्तु इधर प्रशा इतनी शीघ्र गति से विजयी हो रहा था कि उन सैनिकों के उधर पहुँचते-पहुँचते विजय प्रायः प्रशा के हाथों में थी।

युद्ध

प्रशा ने युद्ध में अपनी चार सेनाएँ उतारी थीं। प्रथम और सबसे बड़ी सेना ने प्रशा के साइलीशिया प्रान्त से पूर्व की ओर बोहेमिया (Bohemia) पर आक्रमण किया। यह सेना राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार फ्रेडेरिक (Frederick) के नेतृत्व में लड़ रही थी, यद्यपि प्रारम्भ में राजकुमार प्रशा के सम्राट अपने पिता तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्मार्क की नीति के विरुद्ध था। परन्तु वही अब युद्ध में निर्णायक भाग ले रहा था। दूसरी और तीसरी सेनाओं ने भी बोहेमिया (Bohemia) के ऊपर ही चढ़ाई की क्योंकि बोहेमिया ही प्रशा की सेनाओं का मुख्य लक्ष्य था। परन्तु इन सेनाओं ने ऑस्ट्रिया के मित्रराष्ट्र सैक्सनी (Saxony) के मार्ग से बोहेमिया के ऊपर आक्रमण किया। एक चौथी सेना ने उत्तरी और मध्य जर्मनी की छोटी रियासतों को अपना लक्ष्य बनाया। अत्यन्त शीघ्रता के साथ प्रशा की सेनाओं ने धावा किया और युद्ध प्रारम्भ होने के तीसरे ही दिन प्रशा के अधिकार में हैनोवर (Hanover), कैसेल (Cassel) और ड्रेस्डेन (Dresden) नाम के तीन प्रमुख नगर आ गये। सप्ताह के अन्त में प्रशा की दो सेनाएँ सैक्सनी के मार्ग से बोहेमिया (Bohemia) में प्रविष्ट हो गईं। तीन दिन बाद २८ जून को हैनोवर (Hanover) की सेनाओं ने आत्म-समर्पण कर दिया और ऑस्ट्रिया के मित्रराष्ट्र लड़खड़ाने लगे। प्रथम जुलाई को काउण्ट बेनेडिक ने ऑस्ट्रिया के सम्राट को तार दिया, श्रीमन् आप किसी भी कीमत पर शान्ति संधि कर लीजिए। हमारी सेना आपातकालीन संकट में है।" किन्तु काउण्ड बेनेडिक (Count Benedek) की मन्त्रणा को स्वीकार नहीं किया गया और ऑस्ट्रिया की दोनों सेनाएँ अन्तिम और निर्णायक युद्ध के लिए चल पड़ीं।

सैडोवा अथवा कोनीग्रेज का युद्ध (३ जुलाई)

ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध की मुख्य और निर्णायक लड़ाई पूर्वी बोहेमिया में साडोवा (Sadowa) और कोनिग्रेज (Koniggratz) के बीच में ३ जुलाई को हुई। प्रशा के सम्राट विलियम अपनी सफलताओं की मस्ती में कुछ असावधान हो गये और उन्होंने ऑस्ट्रिया की सेना के ऊपर आक्रमण करने का आदेश दे दिया यद्यपि उत्तराधिकारी राजकुमार की सेना अभी दस मील दूर थी। उस समय बिस्मार्क अखरोट के पेड़ में छिपकर बैठा हुआ युद्ध की गति को निकट से देख रहा था। उसे भय था कि कहीं इन अयोग्य सेनापतियों की आतुरता के कारण अब तक के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय लाभ व्यर्थ न हो जाएँ जिनके लिए उसने इतना प्रयत्न किया था। किन्तु सौभाग्यवश युवराज यथासमय आ गया। उसने क्लम (Chlum) पर आक्रमण कर दिया। न केवल इस लड़ाई में विजय मिली अपितु यह निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ। आस्ट्रिया की सेना का प्रतिरोध जवाब दे गया। ऑस्ट्रिया की सेना में भगदड़ मच गई और वे कोनिग्रेज (Koniggratz) की ओर भागने लगीं। उन्होंने एल्ब नदी की दूसरी ओर की रक्षा पंक्ति में शरण ली। उस समय बिस्मार्क के एक सेवक ने बिस्मार्क से कहा, "श्रीमन्, अब आप महान् आत्मा वाले महापुरुष हैं। किन्तु यदि राजकुमार अपनी सेना के साथ समय पर न आ पहुँचता तो आपको सबसे बुरा और पापी आदमी कहा जाता।" इस पर बिस्मार्क खूब जोर से हँसा।

अब प्रशा के हाथों में २४ हजार सैनिक बन्दी थे। ऑस्ट्रिया के सैनिकों की न केवल भौतिक पराजय हुई थी, वे नैतिक रूप से भी पराजित हो गये। आठ दिन के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर होहेन्जोलर्न सेनाएँ प्रेग में प्रविष्ट हो गईं, पुनः दो दिन पश्चात् वे ब्रुन (Brunn) पहुँच गईं जो बेनेडिक (Benedek) और वियना के बीच में स्थित है। इसी समय में बवेरियावासियों को मेन (Main) की वादी में हरा दिया गया। इसके बाद फ्रैंकफ़र्ट (Frankfurt), डार्म्सटैट (Darmstadt), फिर वर्ट्जबर्ग (Wurtzburg) और अन्त में न्यूरेमबर्ग (Nuremberg) का पतन हो गया। इस प्रकार प्रशा की जीत हुई।

अन्य रण-क्षेत्रों में भी प्रशा की विजय

ऑस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध प्रारम्भ भी बिस्मार्क की प्रेरणा पर हुआ था किन्तु उसका अन्त भी बिस्मार्क की प्रेरणा पर हुआ था। इस समय प्रशा के सम्राट् युद्ध बन्द करने के पक्ष में न थे; प्रशा की सैनिक पार्टी भी युद्ध को जारी रखना चाहती थी; वियना (Vienna) पर प्रशा की सेना पहुँचने ही वाली थी और ऑस्ट्रिया का मान-मर्दन पूरा हो ही चुका था; ऐसे समय में युद्ध बन्द करना उचित न होते हुए भी बिस्मार्क ने निर्णय किया कि तुरन्त शान्ति सन्धि कर लेनी चाहिए। अगले १५ दिन समूचे संघर्ष काल में अत्यन्त निर्णायक दिन थे। यद्यपि सैनिक स्थिति अनुकूल थी परन्तु कूटनीतिक क्षेत्र में इन अगले १५ दिनों का भारी महत्त्व था क्योंकि कूटनीति द्वारा ही तो सैनिक विजयों से राजनीतिक लाभ हुआ करते हैं। इस समय बिस्मार्क ने कूटनीति और चतुर राजनीति के क्षेत्रों में सबसे अधिक कमाल कर दिखाया।

बिस्मार्क की शान्ति सन्धि के लिए उत्सुकता

कई कारण थे जो बिस्मार्क ने अनायास ही युद्ध बन्द करा दिया। प्रशा को एक बहुत बड़ी शक्ति (ऑस्ट्रिया) के ऊपर शानदार विजय इस कारण मिली थी कि प्रशा ने आरम्भ में तेजी से युद्ध किया और शान के साथ शत्रु को शीघ्र हराया। प्रशा की आकस्मिक विजयों ने प्रशा की सेनाओं के हौसले को अधिकाधिक बढ़ाया। किन्तु प्रशा के शत्रु यद्यपि हार गये थे, परन्तु पूर्णतः नष्ट न हुए थे। प्रशा के शत्रुओं ने फ्रांस से सहायता की अपील की थी; और फ्रांस कुछ राजी सा था; रूस में भी बेचैनी महसूस की जा रही थी। यद्यपि इग्लैण्ड इस समय मताधिकार सम्बन्धी आन्दोलन के कारण व्यस्त था फिर भी यदि अन्य यूरोपीय शक्तियाँ कोई निश्चित पग उठातीं तो इंग्लैण्ड भी अलग-थलग न बैठा रहता। यूरोपीय शक्तियों की कांग्रेस होने की गरम अफवाहें थीं। सैनिक दृष्टि से इटली की मित्रता का कोई विशेष मूल्य नहीं था। स्वयं प्रशा की फौजें और आगे बढ़ने में असमर्थ थीं क्योंकि उसका तोपखाना बिना बारूद के था और फिर सैनिकों में हैजे की बीमारी फैल गई थी। यह सम्भव था कि यदि युद्ध जारी रखा जाता या यदि यूरोप की शक्तियों का सम्मिलित गठजोड़ हो जाता तो प्रशा की जीत व्यर्थ हो जाती।

बिस्मार्क ने सोचा कि यदि ऑस्ट्रिया को नरम शर्तें दी जाएँगी तो यह श्रेष्ठ राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिता होगी। बिस्मार्क ने अपनी स्त्री को लिखा—"यदि हम ऑस्ट्रिया से अत्यधिक कठोर व्यवहार न करें और यदि हम इस शेखी में न फूलने लगें कि हमने सारे संसार में विजय कर ली है, तभी हम ऐसी शान्ति स्थापित कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेंगे जिसकी हम कामना करते थे और जिसके लिए हमने इतने कष्ट सहन किये। इस समय हम उतने ही विजय के कारण उत्तेजित हैं जितने कि वास्तव में अन्दर से खोखले और कमजोर हैं। मेरे लिए यह बड़ा कठिन हो रहा है कि एक ओर तो लोगों के दिलों में उठते हुए ज्वार को शान्त करना है तथा दूसरी ओर लोगों को यह भी याद दिलाते रहना है कि यूरोप में अकेले हम ही नहीं रहते; बल्कि तीन अन्य शक्तिशाली शक्तियाँ और भी हैं जो प्रशा से द्वेष रखती हैं और प्रशा से घृणा भी करती हैं।"

कोनिग्रेज (Koniggratz) की विजय के अगले दिन ही बिस्मार्क कह चुका था, "हमको अब पुनः ऑस्ट्रिया की मित्रता प्राप्त कर लेनी चाहिए।" अपनी जीत के मध्य में बिस्मार्क ने सोच लिया था कि भविष्य में अपने शत्रु (ऑस्ट्रिया) से मित्रता कर लेना लाभदायक होगा। इसलिए बिस्मार्क ने निश्चिय कर लिया कि ऑस्ट्रिया को न तो अधिक नीचा दिखाना है और न उसको अधिक दबाना है। उसने कहा था, "मेरी इच्छा यह थी कि ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिए जिससे भविष्य में हमारे सम्बन्ध ऑस्ट्रिया के साथ सुधर ही न सकें।" यदि प्रशा की सेनाएँ सीधी वियना तक मार्च करती चली जातीं तो इससे ऑस्ट्रिया की अत्यधिक मान-हानि होती। यदि प्रशा ऑस्ट्रिया के उन भूभागों को हड़प लेता जो प्रशा के साथ मिलाये जाने को कदापि स्वीकार न करते तो इसके कारण भविष्य के युद्धों का बीज बो दिया जाता जिस प्रकार कि साइलीशिया के युद्धों (Silesian Wars) के बाद सप्तवर्षीय युद्ध (Seven Years War) हुआ। इसके अतिरिक्त प्रशा को आवश्यकता भी न थी कि वह ऑस्ट्रिया के भूभागों को छीनता। यदि प्रशा अपने प्रदेश में विस्तार चाहता तो उसे मेन (Main) नदी के उत्तर में विस्तार की सम्भावना थी। बिस्मार्क ने प्रशा के राजा से कहा, "हम एसाइज (Assize) न्यायालय नहीं हैं जो प्रतिकार सम्बन्धी न्यायदान करने बैठे हों। हमने तो केवल आक्रामक ऑस्ट्रिया के विरुद्ध न्याययुक्त कार्यवाही की है और भगवान् ने प्रशा के होहेन्जोलर्न (Hohenzollern) परिवार के हाथों ऑस्ट्रिया को अन्याय के मार्ग से अलग करा दिया है। यदि ऑस्ट्रिया प्रशा के साथ द्वेष रखता है तो भी वह उतना ही बुरा है जितना कि प्रशा का ऑस्ट्रिया के प्रति द्वेष। हमारा तो काम यह है कि किसी प्रकार प्रशा के अधीन जर्मन राष्ट्रीय एकता स्थापित करें।" संक्षेप में बिस्मार्क समझता था कि युद्ध का मुख्य उद्देश्य प्राप्त हो चुका था—अर्थात् प्रशा के अधीन ऑस्ट्रिया को जर्मनी के मामलों से बहिष्कृत करके जर्मनी का पुनर्गठन सम्पन्न हो चुका था।

बिस्मार्क की दलीलें सही थीं क्योंकि बिस्मार्क की मति के अनुसार आचरण करके पूर्ण सफलता मिली किन्तु फ्रांस और जर्मनी के युद्ध के बाद जब दलीलों के विरुद्ध आचरण किया गया तो परिणाम विनाशकारी हुए।

इसके अतिरिक्त फ्रांस का रुख अनिश्चित था, इस कारण भी तुरन्त शान्ति स्थापित करना अत्यावश्यक था। कोनिग्रेज (Koniggratz) के युद्ध ने नेपोलियन के विश्वासों को झूठा सिद्ध कर दिया था और अंग्रेजी अखबारों की भविष्यवाणी को भी असत्य प्रमाणित कर दिया था। युद्ध के अगले दिन फ्रांसिस जॉसेफ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Francis Joseph) ने फ्रेंच सम्राट् को तार द्वारा सूचित किया कि वह इटली की ओर से वेनीशिया (Venetia) को फ्रांस को देने के लिए तैयार है यदि इटली इस युद्ध में विमुख हो जाय। इस पर नेपोलियन ने चाहा कि वह इस मामले में मध्यस्थता करे। बिस्मार्क को बहुत ही बुरा लगा। जब फ्रेंच राजदूत बनेडेटी (Benedetti) अकस्मात् अस्थायी संधि का सन्देश लेकर प्रशा के सैनिक मार्ग से निकलकर बिस्मार्क से मिलने उसकी शय्या के पास पहुंचा तो बिस्मार्क ने कहा, "लुई नेपोलियन को इसके लिए दण्ड सहन करना पड़ेगा।" कोनिग्रेज (Koniggratz) के युद्ध और प्रेग की सन्धि (Peace of Prague) के मध्य काल में जो जटिल कूटनीतिक सौदेबाजी हुई उसको समझना सरल नहीं है। निकॉल्सबर्ग (Nickolsburg) में बिस्मार्क और बेनेडेटी (Benedetti) में जो बातचीत हुई और पेरिस में नेपोलियन और प्रशा के राजदूत वॉन गॉल्ट्ज़ (Von Goltz) में बातचीत हुई, उन बातचीतों का तारतम्य बैठाना भी सरल काम नहीं है। एक ओर बिस्मार्क की दुरंगी और द्व्यर्थक बातें तथा दूसरी ओर थके हुए और अनिश्चित सम्राट् का युद्धप्रिय प्रजा को समझाना-बुझाना—यह भी कठिन समस्या थी। इसके अतिरिक्त इटली ने भी एक समस्या उत्पन्न कर दी जब कि उसने वेनीशिया (Venetia) को लेने से ही इनकार कर दिया यद्यपि वह इसी के लिए युद्ध में शरीक हुआ था। वास्तव में इटली हार जाने के कारण क्षुब्ध था और किसी प्रकार अपनी झेंप मिटाना चाहता था।

नेपोलियन तृतीय के साथ कूटनीतिक वार्त्ता

स्वयं नेपोलियन न तो प्रशा के विस्तार से क्षुब्ध था और न जर्मनों की महान् राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं की प्राप्ति के प्रति द्वेष रखता था। जिन चीजों को उसने इटली और रूमानिया में स्वीकार कर लिया था, उन्हीं चीजों को वह जर्मनी के लिए कैसे न मानता। यदि प्रशा के भूभाग में थोड़ा सा विस्तार भी हो गया था तो इससे नेपोलियन को कोई विरोध न था। यदि जर्मनी का पुनर्गठन होने को था तो भी नेपोलियन को कोई विरोध न था, क्योंकि इस पुनर्गठन का प्रभाव जिन रियासतों पर पड़ता था वे मेन (Main) नदी के उत्तर में थीं।

किन्तु नेपोलियन के दिमाग़ में फ्रांस था—थायर्स संसद् में गरज रहा था और विदेश-मन्त्री ड्राइन डी लुइस (Drouyn de Lhuys) रोमन कैथोलिक विरोध का प्रतीक था। थायर्स और ड्राइन डी लुइस कहते थे, "प्रशा को अनधिकार विस्तार की सज़ा मिलनी चाहिये, जर्मनी का एकीकरण रोक दिया जाना चाहिए और फ्रांस को गारंटी और हर्जाना (Compensation) मिलना चाहिए।" इस प्रकार कहाँ तो नेपोलियन हस्तक्षेपकर्त्ता और मध्यस्थ था और कहाँ अब वह बिस्मार्क के साथ सौदेबाज़ी करने जा रहा था, जबकि बिस्मार्क कूटनीतिक योग्यता और अपने विश्वासों का पक्का था। हाँ, नेपोलियन हर्जाना माँग सकता था और बिस्मार्क मना भी कैसे करता; किन्तु प्रश्न यह था कि नेपोलियन को हर्जाने के रूप में दिया क्या जाय। एक बार फ्रेंच सम्राट् बड़बड़ाया, "काश! जर्मनी में सेवॉय होता।" तथ्य यह है कि स्वयं फ्रेंच सम्राट् बीमार था। वह स्वयं नहीं जानता था कि उसे क्या चाहिए। वह अपने मंत्रियों से सहमत नहीं था। वह उनका विरोध भी करने में असमर्थ था। उसे दर्द की शिकायत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। उसके विचार परस्पर-विरोधी थे। उसे केवल यह धुन थी कि उसे कुछ-न-कुछ करना चाहिए। यह ऐसा सिद्धान्त था जिसके कारण अधिकतर गलतियाँ हुआ करती हैं। इसीलिए उसके मन में विभिन्न योजनाएँ उठा करती थीं। कभी वह एक प्रस्ताव करता था कभी दूसरा। कभी उसके मन में आता था कि बेल्जियम (Belgium) लूँ, फिर सोचता था कि लुक्सेम्बर्ग लूँ, फिर सोचने लगता था कि मेन्ज (Mainz) लेना उचित होगा।

फ्रांस के सामने अनेक अवसर आए और जर्मनी अनेक कार्यों में उलझा हुआ था। किन्तु फ्रांस इनसे कोई लाभ न उठा सका। नेपोलियन को केवल एक सफलता मिली—उसने प्रशा को अप्रसन्न कर दिया और फ्रांस को कोई लाभ न होने दिया। कूटनीति में वह बिस्मार्क के सामने बच्चा था। उसने बड़ी भारी गलती यह की कि बिस्मार्क के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया किन्तु अपनी शर्तों की स्वीकृति के लिए कोई गारंटी नहीं माँगी। बिस्मार्क ने यह कहकर टाल दिया कि हर्जाने या एवज़ (Compensation) आदि की बारीक बातें सन्धि पर हस्ताक्षर हो चुकने के बाद भी तय हो सकती हैं। किन्तु समय निकल चुका था। बिस्मार्क ऐसा सरल व्यक्ति न था जो किसी ऐसी चीज के लिए बाद में दाम चुकाता जिसे वह पहले ही बिना कीमत चुकाये प्राप्त कर चुका था।

इसलिए जब निकॉल्सबर्ग (Nickolsburg) की अस्थायी सन्धि के बाद और प्रेग (Prague) की सन्धि के पहले, अगस्त मास में फ्रेंच सम्राट् ने राइन (Rhine) नदी के बाएँ किनारे की भूमि का अर्थात् मेंज (Mainz) और कुछ प्रशा का भूभाग और कुछ थोड़ा-सा हेस-डार्म्सटैट (Hesse-Darmstadt) का भूभाग बिस्मार्क से माँगा, तो बिस्मार्क हठपूर्वक अत्यन्त अप्रसन्न हो गया। पहले तो उसने प्रस्तावित माँगों के सम्बन्ध में लिखित बयान माँगा और उक्त वक्तव्य को अपनी मेज़ की दरार में भविष्य में प्रयोग में लाने के उद्देश्य से रख दिया। इसके बाद उसने साफ इनकार कर दिया। बिस्मार्क ने फ्रेंच राजदूत से पूछा, "क्या आप मेंज (Mainz) चाहते है या युद्ध चाहते हैं।" फ्रेंच राजदूत केवल सिर हिलाकर रह गया। इस पर बिस्मार्क ने उत्तर दिया, "अच्छी बात है, आप युद्ध के लिए तैयार हो जायँ।" प्रारम्भ में बिस्मार्क युद्ध से डरता था किन्तु अब तो उसने सोचा कि फ्रांस को यूँ ही दुत्कार बताई जा सकती है। उसने ठीक ही सोचा था। नेपोलियन युद्ध के लिए तैयार नहीं था। फ्रांस की सेना तैयार नहीं थी। नई शास्पो (Chassepot) की ब्रीच लोडिंग राइफ़लें सेना के प्रयोग के लिए दी जा रही थीं। मैक्सिको के अभियान (Mexican Expedition) के कारण सेना अस्तव्यस्त थी। बिस्मार्क पहले से ही जानता था कि द्वितीय फ्रेंच साम्राज्य जर्जर है।

इस प्रकार एक ओर तो बिस्मार्क को अवसर मिल गया और वह फ्रेंच प्रस्तावों की आड़ लेकर प्रयत्न करने लगा कि दक्षिणी जर्मनी की रियासतों को प्रशा में मिलावे। दूसरी ओर नेपोलियन की ज़िल्लत हुई और उसे क्षमा मांगते हुए यही कहना पड़ा कि उसने अपने राजदूत को ऐसी आज्ञा कभी नहीं दी थी। इसके अतिरिक्त फ्रांस के लोगों को भी इस व्यवहार से निराशा हुई और अपमान प्राप्त हुआ और उसे कई प्रकार की बातें समझा-बुझाकर उन्हें शान्त करना पड़ा। उसने फ्रांस के लोगों से कहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक मामलों में संकुचित पक्षपातों को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए—जब तक यूरोप की राष्ट्रीयताओं की इच्छाओं को सन्तुष्ट न किया जायगा तब तक यूरोप में वास्तविक शक्ति-संतुलन न होगा; संयुक्त जर्मनी से फ्रांस की स्थिति को किसी प्रकार का भय नहीं है, फ्रेंच कूटनीति के कारण वास्तव में जर्मनी के तीन टुकड़े हो गये हैं और इस प्रकार जर्मनी कमजोर हो गया है, और दक्षिण जर्मन संघ सदैव सहायता के लिए फ्रांस का मुख जोहता रहेगा।" किन्तु फ्रांस के सर्वसाधारण सम्राट् की इन दलीलों से प्रभावित नहीं हुए। वे कहते थे : "वेस्टफेलिया (Wastphalia) की सन्धि ने जर्मनी को बहुत दिनों के लिए अशक्त कर दिया था।.....इसलिए हम देख रहे हैं कि जर्मनी अपनी दयनीय स्थिति से ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहा है। किन्तु अफ़सोस की बात यह है कि स्वयं फ्रेंच सम्राट् देखता रहे और जर्मनी को फ्रांस के सिर पर बैठने का अवसर दे।"

सन्धि की शर्तें निश्चित होने के दौरान बिस्मार्क के मार्ग में जितनी बाधा फ्रेंच सम्राट् के कारण हुई, उतनी ही बाधा स्वयं अपने सम्राट् से भी हुई। जब बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के साथ शान्ति सन्धि की ऐसी शर्तें तैयार कर लीं जो ऑस्ट्रिया और फ्रांस दोनों को मान्य थीं तो प्रशा के राजा विलियम ने क्रोध और जिद के साथ उन शर्तों को नामंजूर कर दिया। उसके मुंह में विजयों का खून लग गया था जिसकी चाट उसे सर्वप्रथम श्लेसविग-हॉल्स्टीन (Schleswig-Holstein) के युद्ध में पड़ी थी। अब उसने और भी मांगें रखीं। वह चाहता था कि शत्रु रियासतों के राजा लोग राजगद्दियों से च्युत किए जाएँ। प्रशा की विजयी सेना वियना पर अधिकार कर ले। प्रशा के सेनापतियों में आपसी द्वेष था, इस कारण विलियम के इन विचारों को और भी बढ़ावा मिला। बिस्मार्क ने अपने शब्दों में ही स्वयं लिखा है कि उसने किस प्रकार राजा विलियम को शान्ति-सन्धि की शर्तें स्वीकार करने के लिए राजी किया।

प्रशा के सम्राट् द्वारा विरोध

"मैंने शान्ति-सन्धि की शर्तों के सम्बन्ध में राजा का विरोध किया था अतः राजा इतना उत्तेजित हो गया था कि उससे आगे बातें करना असम्भव था। मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि मेरी मन्त्रणा अस्वीकृत की जा चुकी है अतः मैं वहाँ से अपने आवास-स्थान को चला आया। मैंने सम्राट् से यह भी प्रार्थना की थी कि मुझे सेना में कार्य करने की छूट दी जाय क्योंकि मैं पदेन सैनिक अफ़सर तो था ही। अपने कमरे में वापस पहुँचने पर मेरे दिमाग़ में ऐसा विचार आया कि मैं क्यों न चार-मंज़िले मकान के कमरे की खिड़की से कूद कर आत्महत्या कर लूं। मैं शान्त और एकचित्त खड़ा था कि मुझे दरवाज़ा खुलने की आहट सुनाई दी।"

युवराज बिस्मार्क के कमरे में दाखिल हुआ। उसने बिस्मार्क के कन्धे पर मैत्रीपूर्ण हाथ रखा और बिस्मार्क से कहा, "तुम जानते हो कि मैं युद्ध के विरुद्ध था। तुमने युद्ध करना आवश्यक समझा था इसीलिए इस युद्ध की सारी जिम्मेदारी तुम्हारी है। यदि इस समय तुम ऐसा समझते हो कि युद्ध का अन्त करना हितकर है और शान्ति सन्धि कर लेना श्रेयकर है तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं अपने पिता से तुम्हारे पक्ष का समर्थन कर सकता हूँ।" इसके बाद राजकुमार अपने पिता के पास लौट गया और लगभग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध घण्टे में पुनः शान्त और मैत्रीपूर्ण मुखमुद्रा लिए हुए वह कमरे में प्रविष्ट हुआ। उसने कहा, "मुझे कठिनाई तो बहुत हुई किन्तु पिता ने मान लिया है।"

अगले दिन बिस्मार्क ने देखा कि उसके प्रस्तावों की प्रतिलिपि के हाशिये पर सम्राट् पेंसिल से लिख रहा था—"मेरे प्रधान-मन्त्री ने शत्रु के समक्ष मुझे अत्यन्त कठिन परिस्थिति में डाल दिया है और चूंकि मेरा पुत्र भी प्रधान-मन्त्री से सहमत है इसलिए मजबूरन मुझे खट्टा सेब खाना पड़ रहा है और ऐसी बेइज्ज़त सन्धि के लिए सहमत होना पड़ रहा है यद्यपि मेरी सेनाओं ने इतनी शानदार विजयें प्राप्त की हैं।"

इस समय बिस्मार्क की परिस्थिति अत्यन्त कठिन थी। एक ओर उसे नेपोलियन तृतीय और विलियम प्रथम की ओर से शंका थी; दूसरी ओर उसे ऑस्ट्रिया, इटली, अन्य विदेशी शक्तियों और छोटी जर्मन रियासतों से भी सतर्क रहना था; एक ओर फ्रांस में जर्मन-विरोधी भावना थी, दूसरी ओर प्रशा में फ्रांस-विरोधी भावना थी। इसके अतिक्ति हंगरी (Hungary) और बोहेमिया (Bohemia) में राष्ट्रीयता के भाव तेज़ी से बढ़ रहे थे। ऐसी कठिन परिस्थितियों में बिस्मार्क ने युद्ध बन्द करना और सन्धि की शर्तें निर्णीत करना निश्चित किया। २६ जुलाई को निकॉल्सबर्ग की जो सन्धि हुई उसमें कई बड़ी बातें थीं। २३ अगस्त, १८६६ की प्रेग की सन्धि (Treaty of Prague) द्वारा वे शर्तें पक्की हो गईं।

प्रेग की सन्धि के अनुसार ऑस्ट्रिया ने इटली को वेनीशिया (Venetia) दे दिया। युद्ध के हर्जाने की रकम के रूप में ऑस्ट्रिया ने प्रशा के लिए लगभग ३० लाख पौंड दिए और यह मान लिया गया कि जर्मन परिसंघ का विघटन हो जाय। जर्मन परिसंघ के स्थान पर उत्तरी जर्मन संघ की स्थापना हुई जिसमें ऑस्ट्रिया को कोई स्थान न रहा।

प्रेग की सन्धि (२३ अगस्त, १८६६)

प्रशा को श्लैसविग-हॉल्स्टीन (Schleswig Holstein) नामक डचियाँ, हैनोवर (Hanover), हेस-नासौ (Hesse-Nassau) तथा फ्रैंकफ़र्ट का शाही नगर आदि कुछ भूभाग मिल गये जिनकी जनसंख्या लगभग ३५ लाख थी और क्षेत्रफल लगभग २८,००० वर्गमील था। यह भी निश्चित हुआ कि प्रशा, सैक्सनी (Saxony) की रियासत और मेन (Main) नदी के उत्तर की रियासतों के संयोग से एक नया राज्य स्थापित करे जिसका नाम उत्तरी जर्मन परिसंघ (North German Confederation) होगा। यह भी नेपोलियन तृतीय[1] के आग्रह पर स्वीकार कर लिया गया कि सैक्सनी स्वतन्त्र रहेगा।

फ्रांस की आपत्तियों के कारण बवेरिया (Baveria), वुर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) और बेडेन (Baden) की रियासतों को उत्तरी जर्मन परिसंघ से मुक्त रखा गया और उन्हें स्वेच्छानुसार कार्य करने की आज्ञा दे दी गई। इन रियासतों को यह भी अधिकार दे दिया गया कि वे चाहें तो अपना अलग संघ बनावें या यदि वे चाहें तो उत्तरी जर्मन परिसंघ में मिल जायें।

१८६६ के युद्ध के कारण इटली को प्रायः सारा भूभाग, जो अब तक उसके

१. प्रशा के सम्राट् विलियम प्रथम को यह आघात पहुँचा कि प्रशा ने दो बार सैक्सनी (Saxony) को खो दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार से बाहर था, मिल गया। 'प्राय:' इसलिए कहा गया क्योंकि अभी भी दो ज़िलों (Districts) की भूमि इटली के अधिकार में नहीं आ पाई थी यद्यपि जातीयता के आधार पर इटली उन ज़िलों को अपना भूभाग समझता था। इनमें से एक तो रोम (Rome) था। रोम और उसके आसपास का भूभाग इटली की राजधानी के सर्वथा योग्य था। रोम वास्तव में संसार का केन्द्र था और कैथोलिक चर्च का भी केन्द्र-स्थल था; किन्तु इनसे भी अधिक रोम इटली का केन्द्र था। जब वैनिस (Venice) ही इटली को मिल गया तो फिर रोम को कौन रोक सकता था। कार्डीनल एण्टोनली (Cardinal Antonelli) ने कहा था—"हमारे आस-पास ही दुनिया लड़खड़ा रही है।" ऑस्ट्रिया की पराजय से रोमन कैथोलिक संसार को गहरा धक्का लगा। सैडोवा (Sadowa) की पराजय के फलस्वरूप अनेक रोमन कैथोलिक साम्राज्य और यहाँ तक कि फ्रांस का शाही तख्त लुढ़क गये। जब फ्रेंच साम्राज्य का पतन हुआ तभी रोम (Rome) का भी पतन हुआ।

ऑस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के परिणाम

दूसरा ट्रेण्टिनो (Trentino) का ज़िला था जो वैनीशिया की सीमा के दूसरी ओर था। इटली और प्रशा के इकरारनामे में वैनीशिया को इटली दिए जाने की शर्त थी और वास्तव में वैनीशिया के ऊपर इटली का अधिकार जायज़ था। किन्तु युद्ध में इटली ने बहुत ही कम भाग लिया था और बिस्मार्क ने यही निर्णय किया कि वैनीशिया ही इटली को मिलना चाहिए। वैनीशिया का भूभाग कंजूसी के साथ तय किया गया। वैनीशिया में वह इटालियन भाषा-भाषी पट्टी शामिल नहीं की गई जो इटली की थी। यद्यपि यह सच है कि वह वैनीशिया का भाग नहीं थी और न वह इस्ट्रिया (Istria) या डालमेशिया (Dalmatia) के पूर्वी भागों का भाग थी। इस भूप्रदेश को छोड़ देने से भविष्य में इटली की अनेकों समस्याएँ उठ खड़ी हुईं।

प्रशा राज्य का भूभाग बढ़ गया और अब प्रशा की स्थिति सुदृढ़ हो गई क्योंकि कई, एक प्रकार से, ऐसी विदेशी और शत्रु रियासतें प्रशा में मिला ली गईं जिन्होंने पहले प्रशा के भूभाग को दो भागों में विभाजित कर रखा था। अब प्रशा के वे भूभाग संगठित और एकत्रित हो गए जो अब तक यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे। हैनोवर (Hanover) के प्रशा में मिला लिये जाने से अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगी पैदा हो सकती थी, किन्तु १८३७ में रानी विक्टोरिया (Queen Victoria) इंग्लैण्ड की मलका बनी, जिसके कारण ग्रेट ब्रिटेन और हैनोवर का सम्बन्ध प्राय: विच्छेद हो गया और कोई समस्या नहीं आई।

इसके अतिरिक्त इस युद्ध और इसकी विजय ने यह सिद्ध कर दिया था कि बिस्मार्क की गृह नीति भी सफल रही, कम-से-कम सफल प्रतीत हुई। जिस सेना के लिए सम्राट् और इसके मन्त्रियों ने इतना भारी प्रयत्न किया था, वह सफल और विजेता होकर निकली। इस सेना ने देश को गौरव प्रदान किया और देशी तथा विदेशी शत्रुओं को पराजय दी। प्रशा का प्रधान मन्त्री बिस्मार्क जो अब तक सभी की घृणा का पात्र था, अब एक सार्वजनिक आदर्श पुरुष समझा जा रहा था और अब जिधर वह निकल जाता था, उसके ऊपर फूलों की वर्षा होती थी, जबकि कुछ ही महीनों पूर्व उस व्यक्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आदर किया गया था जिसने बिस्मार्क के जीवन पर असफल आक्रमण किया था। सफलता ने बिस्मार्क के चरणों को चूमा था और उदार वर्ग भी बिस्मार्क के आगे हतप्रभ हो गये क्योंकि उसने उनके विरोध के बावजूद उनकी सेवा की थी। बिस्मार्क के मित्र आश्चर्यचकित थे और उसके शत्रु अब मित्र थे। अपनी लोकप्रियता का लाभ उठाने के बजाय और अपने शत्रुओं से बदला लेने के बजाय उसने अत्यन्त गौरवपूर्ण साहस के साथ सम्राट् और रूढ़िवादी हठी वर्ग की किंचित् परवाह न करते हुए सर्व-साधारण से अपनी पिछली ऐसी गलतियों के लिए क्षमा माँगी जिनका सम्बन्ध संविधान की अवहेलना करने से था। उसका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया, किन्तु क्या यह अनावश्यक नहीं था और क्या बिस्मार्क ने स्वयं को दण्ड योग्य स्वीकार नहीं कर लिया? किन्तु जब बिस्मार्क ने सभी दलों को विसर्जित कर दिया तो वास्तव में बिस्मार्क ने सारे सिद्धान्तों को भी तिलाञ्जलि दे डाली थी। कुछ थोड़े से हठी आमूल परिवर्तनवादी तो बने रहे किन्तु शेष सब दल समाप्त हो गए और उनके स्थान पर एक नये दल के रूप में बिस्मार्कवाद आया। इस नूतन बिस्मार्कवादी दल का नाम 'नेशनल लिबरल दल' (National Liberals) था। अगले बारह वर्षों में इस दल की नीति का संचालन बिस्मार्क के हाथों में रहा। प्रशा के लिबरल वर्गों और जर्मनी के राष्ट्रवादियों की इस बिस्मार्कवादी नीति पर कोई छाप नहीं थी।

जहाँ तक बिस्मार्क की जर्मन नीति का सम्बन्ध था, उसमें बिस्मार्क पूर्ण सफल हुआ। उत्तरी जर्मन परिसंघ (North German Confederation) की स्थापना करके प्रशा ने आधे से अधिक जर्मनी का एकीकरण अपने नेतृत्व में प्राप्त कर लिया था। नये भूभाग जो प्रशा ने अर्जित किये उनके कारण प्रशा की स्थिति उत्तरी जर्मन परिसंघ में उच्चतम हो गई और नये संविधान[1] में प्रशा को सर्वोच्च सत्ता स्वीकार कर लिया गया। वास्तव में १८७१ में जर्मन साम्राज्य की जो रूपरेखा बननी थी, उसका ही यह आभास था। नवीन जर्मन परिसंघ का अध्यक्ष प्रशा के राजा को मान लिया गया; प्रशा का प्रधान मन्त्री ही उत्तरी जर्मन परिसंघ का प्रधान मन्त्री बना और प्रशा की सेना, प्रशा की अर्थ-व्यवस्था और प्रशा की डाक-व्यवस्था के आधार पर ही जर्मन संघ की सेना, अर्थ-व्यवस्था और डाक-व्यवस्था का निर्माण हुआ।

प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पूर्ण वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित संघीय संसद् (Federal Parliament) से प्रशा का अहित होगा; और १८४८ के क्रान्तिकारी वास्तव में ऐसा ही सोचते थे; किन्तु वास्तव में यथार्थतः इस संसद् से प्रशा की शक्ति बढ़ी। उदार वर्गों को बड़ी ही प्रसन्नता हुई जब बिस्मार्क ने अपने वचन को पूरा करते हुए संघीय संसद (Federal Parliament) की स्थापना की। यह लोकतन्त्र के पक्ष में न केवल रियायत थी अथवा उस महान् जर्मन यहूदी समाज-

---

१. यह संविधान वास्तव में बिस्मार्क का महान् कार्य था। वह दो महीने तक सख्त बीमार रह चुका था। अपनी भंयकर बीमारी के कारण बाल्टिक सागर के रुगेन टापू (Island of Rugen in the Baltic) में बिस्मार्क केवल निश्चल पड़ा रहता था। वह या तो आसमान की ओर देखता या हरे खेत देखता रहता या तस्वीरों की किताब पर आँखें गड़ाये रहता था। किन्तु बीमारी के पश्चात् वह बर्लिन लौटा और उसने एक बैठक में ही उत्तरी जर्मन परिसंघ का समस्त संविधान लिखवा दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी फ़र्डीनिण्ड लासाल[1] (Ferdinand Lasalle) की पवित्र यादगार के प्रति आदर था जिसने बिस्मार्क को प्रभावित किया था, बल्कि इस संसद् द्वारा एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई जिसने प्रशा के भीषण शत्रु राजतन्त्रीय पृथकत्व और पृथकतावाद को नाश करने में सहायता दी।

इस प्रकार ऑस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध समाप्त हुआ। यह एक लम्बे संघर्ष-यज्ञ की अन्तिम आहुति थी। जिस समय हैब्सबर्ग सम्राट् सीसमण्ड (Sigismund) ने एगिनकोर्ट (Agincourt) वाले वर्ष में अपने विश्वस्त मित्र फ्रेडेरिक ऑफ होहेन्जोलर्न, बर्ग्रेव ऑफ न्यूरेम्बर्ग (Frederick of Hohenzollern, Burgrave of Nuremberg) को नियुक्त किया था और उसको आदेश दिया था कि वह ब्रेण्डेन्बर्ग की विजय (Brandenburg March) को पूर्ण करे, वही अभियान अब आकर विजय की दुंदुभियों के बीच पोमेरेनिया के गँवार बालक बिस्मार्क (Pomeranian Junker) के हाथों पूर्ण हुआ। बिस्मार्क ने सैडोवा (Sadowa) नामक स्थान पर प्रशा और ऑस्ट्रिया के लम्बे संघर्ष को समाप्त किया। बिस्मार्क को इस सफलता में भूतपूर्व होहेन्जोलर्न राजाओं (Hohenzollerns of the past) और फ्रेडेरिक विलियम प्रथम (Frederick William I) से महान् सहायता और प्रेरणा मिली थी। इस दिशा में बिस्मार्क को रॉसबैक के विजेता फ्रेडेरिक महान् (Frederick the Great, Victor of Rossback) और इलेक्टर महान् (Elector the Great) से भी प्रेरणा मिली थी। बिस्मार्क को विश्वास हो गया था कि ऑस्ट्रिया की अव्यवस्था में ही प्रशा का हित है। प्रोफेसर ट्रीट्शके (Prof. Treitschke) की थीसिस का भी यही सार था कि जर्मन जाति में सर्वश्रेष्ठ प्रशा जाति ही है और ट्यूटोनिक सभ्यता (Teutonic Civilization) का सार भी प्रशा जाति है। उक्त थीसिस युद्ध के मैदान में सत्य प्रमाणित हो चुकी थी। किन्तु प्रशा के विजयी होने के साथ-साथ प्रशा-भावना (Prussianism) भी बलवती हुई और बिस्मार्क को विजयों के उपलक्ष्य में जर्मनी और यूरोप को भारी और महँगी कीमत चुकानी पड़ी है। प्रशा के सैनिकवाद के परिणामस्वरूप अब यह भावना बलवती हो गई कि प्रशा और जर्मनी ही सारे संसार की सर्वोच्च शक्ति है। प्रशा और जर्मनी के बच्चे-बच्चे के दिल में सैनिक राष्ट्रवाद की भावना घर कर गई।

ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध के परिणामों की अमरीकी गृह-युद्ध के परिणामों से तुलना

ट्यूटॉनिक जातियों के इस संघर्ष की तुलना प्रायः उसी काल के एक अन्य संघर्ष से की जाती है जो अतलान्तक महासागर के दूसरे छोर के अमेरिका देश में अभी समाप्त होकर चुका था। यह संघर्ष भी एक ही जाति के लोगों में हुआ था। इस संघर्ष द्वारा भी स्वामित्व अधिकार का निर्णय होना था। इस संघर्ष में भी विचारों का संघर्ष सन्निहित था। और इस संघर्ष का परिणाम भी संसार के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। एक ओर बिस्मार्क की 'रक्त और लोहे' (Blood and Iron) की वक्तृता है और दूसरी ओर लिंकन (A. Lincoln) की

१. फर्डीनिण्ड लासाल (Ferdinand Lasalle) १८६४ में एक द्वन्द्व-युद्ध में मारा गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकप्रिय शासन के पक्ष में संसार प्रसिद्ध वक्तृता थी। फिर भी जर्मनी के सेना-आश्रित संघीय साम्राज्य का और अमेरिका के प्रजातन्त्रात्मक संघीय साम्राज्य का प्रायः समान महत्त्व है क्योंकि उक्त दोनों व्यवस्थाएँ दो महान् राजनीतिक विचारों की इच्छाओं और उद्देश्यों की प्रतीक थीं। और केवल पचास वर्ष बाद इन दोनों महान् शक्तियों (Germany and America) में भारी टक्कर हो गई, यद्यपि १८६६ में किसी ने इसकी कल्पना भी न की थी। उस समय चाँसलर बिस्मार्क का विजयवाद लिंकन की विजयवादी भावना के आगे बिलकुल फीका पड़ गया जब बिस्मार्क की जर्मनी के पुत्रों ने मुंह में तिनका दबाकर लिंकन के अमरीका के पुत्रों के आगे हारकर आत्मसमर्पण किया और जीवन-दान की याचना की और अपने विजेताओं से लिंकन के सिद्धान्तों की शपथ दिलाकर विशेषाधिकारों की याचना की।

ऑस्ट्रिया और हंगरी के बीच समझौता

अब चूंकि ऑस्ट्रिया का इटली और जर्मनी से निष्कासन हो चुका था, उसका ध्यान इस ओर गया कि वह हंगरी (Hungary) से मेलजोल बढ़ावे। १८५९ में फ्रांस और सार्डीनिया में जो युद्ध हुआ था उसके कारण उन मनहूस दस वर्षों (Black Ten years) का अन्त हो चुका था जो १८४९ के असफल विद्रोह के बाद प्रारम्भ हुए थे। अब ऐसे राजनीतिक प्रयोग हो रहे थे जिनके आधार पर ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध के बाद ऑग्सलीक (Ausgleich) समझौता दोनों देशों में हो गया। इसी को १८६७ का महान् समझौता (Ausgleich) कहते हैं। यही समझौता ऑस्ट्रिया-हंगरी की युग्म-राजसत्ता (Dual Monarchy) का आधार बना। यह समझौता १९१८ तक चलता रहा किन्तु महायुद्ध के बाद ऑस्ट्रिया का साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया। मैग्यारों (Magyars) की ओर महान् राजनीतिज्ञ फ्रांसिस डीक (Francis Deak) था जिसको हंगरी का कैवूर (Cavour of Hungary) भी कहा जाता है। १८६७ में ऑग्सलीक (Ausgleich) नामक समझौते द्वारा हंगरी को जो कुछ सफलता प्राप्त हुई थी, उसका श्रेय फ्रांसिस डीक (Francis Deak) को ही मुख्य रूप से है। फ्रांसिस डीक ने भी इटली के कैवूर के समान अपने देश में पूर्ण पृथक्तावादी और विप्लववादी भावनाओं को काबू में रक्खा और उसी के अकथ प्रयत्नों के फलस्वरूप कौसुथ (Kossuth) के राष्ट्रवादियों की एक न चली और ऑस्ट्रिया एवं हंगरी के सम्बन्ध अच्छे और मैत्रीपूर्ण बने रहे। फ्रांसिस डीक ने भी हंगरी (Hungary) को बिस्मार्क के षड्यन्त्रों से अलग रक्खा और इसलिए १८६६ के युद्ध में हंगरी ने ऑस्ट्रिया के विरोध में भाग नहीं लिया। डीक (Deak) की इस दूरदर्शिता के उपलक्ष्य में १८६७ का समझौता सम्पन्न हुआ जो डीक (Deak) की वैयक्तिक विजय थी।

चूंकि ऑस्ट्रिया का जर्मनी से सम्बन्ध विच्छेद हो गया, अतः यह आवश्यक जान पड़ा कि ऑस्ट्रिया और हंगरी के सम्बन्ध अच्छे हों। वास्तव में इसी कारण ऑस्ट्रिया और हंगरी की मैत्री सरलता से हुई। अ-जर्मन नस्लों के लोगों को अक्सर यह शिकायत रही है कि वियना या ऑस्ट्रिया का ध्यान उतना अपने साम्राज्य पर नहीं था जितना कि जर्मनी के ऊपर था। उनका यह विचार था कि हैब्सबर्ग राजाओं को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने देश की सुख-समृद्धि की अधिक चिन्ता करनी चाहिए। हंगरी (Hungary) वासी विशेष रूप से उत्सुक थे कि उनके देश में विदेशी लोग हस्तक्षेप न करें। मैग्यार नेताओं (Magyar Leaders) का विचार था कि हंगरी की जर्मन प्रदेशों में कोई रुचि नहीं इसलिए हंगरी को ऑस्ट्रिया की जर्मन विजयों में साथ देने की आवश्यकता नहीं है। उनका यह भी विचार था कि ऑस्ट्रिया की पराजय हंगरी की विजय होगी और यदि ऑस्ट्रिया की प्रतिष्ठा कम होगी तो हंगरी की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। इस प्रकार प्रशा के हाथों ऑस्ट्रिया की पराजय के फलस्वरूप ऑस्ट्रिया और हंगरी का दर्जा प्रायः समान हो गया और दोनों देशों में मैत्री-भाव होना सम्भव हुआ।

१८६७ का समझौता केवल ऑस्ट्रिया और हंगरी के बीच समझौता था और यह समझौता पूर्ण समानता के आधार पर हुआ था। यद्यपि पोल जाति (Poles) और क्रोट जाति (Croats) के लोगों को किसी सीमा तक स्वायत्तता दे दी गई थी फिर भी शेष आठ जातियों को कोई लाभ नहीं हुआ और उन्हें देश के शासन में कोई भाग भी नहीं मिला। वे अब भी अधीन रहे और उनके ऊपर जर्मनों और मैग्यारों (Magyars) का पूर्ण अधिकार था और जब कभी ऐसे संघ की स्थापना की कोशिश की जाती थी जिसके द्वारा छोटी और अल्पसंख्यक जातियों को भी देश की शासन-व्यवस्था में राजनीतिक अधिकार मिल जायँ तो ऐसे सब प्रयत्नों को जर्मन और मैग्यार लोग मिलकर विफल कर देते थे।

ऑस्ट्रिया का साम्राज्य दो भागों में विभाजित था। बीच में छोटी सी नदी लीथा (Leitha) पड़ती थी। इस नदी के दक्षिण में ऑस्ट्रिया के सम्राट् का प्रदेश था तथा पूर्व में हंगरी का राज्य था। हैब्सबर्ग सम्राट् ऑस्ट्रिया का सम्राट् तो था किन्तु हंगरी का संवैधानिक शासक था। वह सेंट स्टीफेन के पोप के ताज (Apostolic Crown of St. Stephen) को पहिनता था। साम्राज्य के दोनों भागों में अलग-अलग संसदें थीं। कतिपय सामान्य उद्देश्यों के लिए जैसे विदेश-सम्बन्ध, वित्त और रक्षा आदि के लिए दोनों भागों के सम्मिलित मन्त्रालय (Ministries) स्थापित हुए। यह भी निर्णय हुआ कि यदि साम्राज्य के दोनों भागों में कोई विवाद उठ खड़ा होगा, तो उसके निर्णय के लिए एवं दोनों भागों के सम्मिलित मन्त्रालयों के लिए व्यय राशि (Budget) के निर्धारण के लिए प्रतिनिधिमण्डल प्रणाली का सूत्रपात किया जायेगा। उक्त प्रतिनिधिमण्डल (Delegation) में साठ सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें हंगरी संसद् (Hungarian Diet) निर्वाचित करेगी और साठ सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें ऑस्ट्रिया की संसद् (Austrian Reichsrat) निर्वाचित करेगी। उक्त प्रतिनिधिमण्डल संयुक्त मन्त्रिमण्डल के कार्यों का निरीक्षण करेंगे तथा वह प्रति वर्ष बारी-बारी से वियना (Vienna) और बुडापेस्ट (Budapest) में समवेत होंगे। उक्त दोनों प्रतिनिधि-मण्डल अलग-अलग विचार-विनिमय करेंगे और अपने निर्णय लिखित रूप में देंगे; और यदि दोनों प्रतिनिधिमण्डलों में विरोध होगा तो उस स्थिति में दोनों प्रतिनिधिमण्डल एक साथ समवेत होंगे और खामोशी के साथ मतदान करेंगे क्योंकि दोनों प्रतिनिधि-मण्डलों की भाषा बिलकुल अलग-अलग ही थी। इस समझौते ने ऑस्ट्रिया के साम्राज्य की दो प्रधान जातियों—ऑस्ट्रिया के जर्मनों और हंगरी के मैग्यारों (Magyars)—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सन्तुष्ट कर दिया। यह व्यवस्था १९१८ तक चली। किन्तु अधीन और असन्तुष्ट जातियों का असन्तोष बना ही रहा और अगले वर्षों में उन लोगों के विरोध ने मूर्त्त रूप धारण किया।

(ग)

यह बताया जा चुका है कि प्रशा को जो तीन युद्ध करने पड़े उनमें १८६६ का ऑस्ट्रिया-प्रशा का युद्ध अत्यन्त निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ और इसी युद्ध के फलस्वरूप प्रशा भविष्य में बड़ी शक्ति के रूप में चमक सका। तृतीय युद्ध का भविष्य पर भारी प्रभाव पड़ा; और इसके फलस्वरूप जर्मनी का एकीकरण सम्भव हुआ। प्रशा और जर्मनी ने १८६६ में यज्ञ प्रारम्भ किया था; और १८७० में जाकर उसी यज्ञ के फल-स्वरूप यज्ञकर्त्ताओं के साम्राज्य का विस्तार हुआ।

ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध के तुरन्त बाद दो तथ्य अत्यन्त स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। प्रथमतः, प्रशा और फ्रांस के सम्बन्ध उत्तरोत्तर बिगड़ते गए और द्वितीयतः यह परम आवश्यक जान पड़ने लगा कि जर्मनी का एकीकरण तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि दक्षिणी जर्मनी की चार रियासतें भी उत्तरी जर्मनी संघ में न मिल जायें। वे चार रियासतें थीं बवेरिया (Bavaria), बेडन (Baden), वुर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) और हैस-डार्म्सटैड (Hesse-Darmstadt)।

फ्रांस और जर्मनी का युद्ध

बिस्मार्क ने अगले कुछ वर्षों में ऐसी सफल कूटनीति से काम किया कि उपर्युक्त दोनों समस्याएँ स्वतः हल हो गईं। उसने प्रशा और फ्रांस के मनमुटाव से ऐसा लाभ उठाया कि शेष चारों रियासतें भी जर्मन परिसंघ में सम्मिलित हो गईं और जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया। बिस्मार्क ने लिखा था—"फ्रांस से युद्ध होना अनिवार्य था" और इस युद्ध के द्वारा ही जर्मनी का एकीकरण भी पूर्ण होना था।

फ्रांस और प्रशा के बीच मनमुटाव का वास्तविक कारण यह था कि दोनों देशों में भारी प्रतिद्वन्द्विता थी और यह १८६६ में ही प्रकट हो चुकी थी। फ्रांसीसियों ने मध्य यूरोप में एक बहुत बड़ी शक्ति के आकस्मिक उदय को भय के साथ देखा। प्रशा की शक्ति के सफल प्रदर्शन से सारे यूरोप में खलबली मच गई और फ्रांस ने तो प्रशा की बढ़ती हुई शक्ति को चुनौती समझा। प्रशा की विजय से फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को बट्टा लग गया और फ्रांस के लोग डरने लगे कि शायद प्रशा के उत्थान से फ्रांस को राष्ट्रीय संकट का सामना करना पड़ेगा।

वास्तविक कारण

प्रसिद्ध इतिहासकार एम० डी० ला गोर्स (M. de la Gorce) ने लिखा है कि "उस समय फ्रांस में ऐसा अनुभव किया जाने लगा था मानो प्राचीन यूरोप की जड़ ही खोद डाली गई है। जिस समय मेसीडन के फिलिप (Philip of Macedon) ने इलैटीया (Elatea) को जीत लिया था, उस समय यद्यपि एथीनियावासियों (Athenians) को कोई विशेष पार्थिव हानि नहीं हुई थी किन्तु फिर भी उन्होंने भारी हानि का अनुभव किया था; उसी प्रकार इस समय भी यद्यपि फ्रांस का न तो कोई सैनिक मरा था और न फ्रांस की भूमि छिनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी फिर भी फ्रांस में ऐसा मातम-सा छा गया था मानो फ्रांस की पराजय हुई हो। और फ्रांस की संसद में थायर्स (Thiers) ने तो गरजकर कहा था "सैडोवा (Sadowa) के युद्ध-क्षेत्र में वास्तव में फ्रांस की पराजय हुई है।"

फ्रांस में जर्मनी के विरुद्ध शिकायतें और शिकवें थे उनसे जर्मनी के लोगों को चिढ़ थी। जर्मन लोग कहते थे कि फ्रांस का व्यवहार अनुचित है और वे कहते थे कि वास्तविक शिकायत तो जर्मनी को होनी चाहिए। नेपोलियन प्रथम ने जर्मनी को अपार क्षति पहुँचाई थी और जर्मनी अभी उन क्षतियों को भूला न था; फ्रांस ने सदैव जर्मनी को कमजोर और विभाजित रखा था ताकि वह स्वयं जर्मनी की छाती पर अपना प्रभुत्व-विस्तार करे—इससे जर्मनी को फ्रांस के विरुद्ध अपनी पुरानी शिकायत थी। फ्रांस ने सदैव जर्मनी के राष्ट्रीय विकास के मार्ग को अवरुद्ध किया था और सदैव जर्मनी के आन्तरिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप किया था। तो फिर फ्रांस को अधिकार ही क्या था कि उसे जर्मनी से शिकायत हो।

ऐसे तर्कों और प्रतितर्कों द्वारा दोनों जातियों का जोश और क्रोध भड़क रहा था और धीरे-धीरे दोनों देश युद्ध के लिए तैयार हो रहे थे। कोनिग्रेज (Konig-gratz) के एक वर्ष से भी कम समय में दोनों देशों में विवाद का वास्तविक कारण भी उपस्थित हो गया। नेपोलियन तृतीय के मन्त्री लगातार नेपोलियन को उत्तेजित कर रहे थे कि वह बिस्मार्क के शब्दों में लालची नीति (Policy of Pourboires) अपनावे। जब मेन्ज (Mainz) का प्रस्ताव अगस्त १८६६ में अस्वीकृत कर दिया गया, तो नेपोलियन ने बेल्जियम (Belgium) माँगा[1], इस प्रकार बिस्मार्क के हाथों में फ्रांसीसी राजदूत के हाथ का लिखा एक अन्य खतरनाक पुर्जा आ गया। इस पुर्जे में फ्रांस की ओर से ऐसे समझौते की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी जिसमें फ्रांस और प्रशा तय कर लें कि यदि आवश्यकता आ पड़ने पर फ्रेंच सेनाएँ बेल्जियम में दाखिल हो जाएँ या उसे विजित कर लें तो प्रशा का सम्राट फ्रांस के इस कृत्य का समर्थन करे। बिस्मार्क ने कुछ समय तक नेपोलियन को झाँसे में रखा किन्तु बातचीत और आगे प्रगति न कर सकी।

फ्रांस द्वारा प्रतिकर की माँग

इसके बाद फ्रेंच सम्राट ने अपने प्रतिकर की एक और माँग की। इस बार उसने बिस्मार्क से प्रतिकर के रूप में लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) की माँग की। १८१५ में लक्सेम्बर्ग, हॉलैण्ड के राजा को दे दिया गया था और बेल्जियम (Belgium) के हॉलैण्ड (Holland) से पृथक हो जाने पर भी लक्सेम्बर्ग पर हॉलैण्ड का ही अधिकार बना रहा था। यह देश १८६६ तक जर्मन परिसंघ का सदस्य था और प्रशा की जॉलवारीन (Zollverein) का भी सदस्य रहा था। वियना की कॉंग्रेस (Congress of Vienna) ने लक्सेम्बर्ग के नगर को संघीय रक्षा-नगर या किला

---

1. Quoted from M. de la Gorce's *Histoire du Second Empire.* Vol. XII; by Professor R. B. Mowat, in *A History of European Diplomacy*, p. 205.

२. फ्रेंच राजदूत एम० बनेडेटी (M. Benedetti) का कथन था कि स्वयं बिस्मार्क ने निकाल्सबर्ग (Nickolsburg) का विचार प्रस्तुत किया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोषित कर दिया था और तदनुसार उक्त नगर में दृढ़ रक्षा व्यवस्था कर दी गई थी और प्रशा की फौजें उस नगर में तैनात रहती थीं क्योंकि संघ की कोई स्थायी सेना थी ही नहीं। चूंकि उक्त नगर पर ऑरेन्ज परिवार (House of Orange) का अधिकार था, अतः उसको जर्मन व्यवस्था (German Bund) में सम्मिलित नहीं किया जा सका और अब यह सवाल सामने था कि प्रशा की सेना नगर से हट। जाये। लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) की जनसंख्या मुख्यतः फ्रेंच भाषा-भाषी थी और नेपोलियन ने सोचा कि लक्सेम्बर्ग पर अधिकार कर लेना लाभ की चीज रहेगी। हॉलैण्ड का सम्राट जो कर्जदार था, इस बात के लिए राजी हो गया कि ग्राण्ड डची (Grand Duchy) को बेच दे बशर्ते कि फ्रांस प्रशा के सम्राट की सम्पत्ति प्राप्त कर ले। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में बिस्मार्क (Bismarck) को कोई आपत्ति न थी। उसने कहा था—"जहाँ तक लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) का प्रश्न है, मुझे इससे कोई मतलब न होगा कि बहुमत प्रजा फ्रांस के पक्ष में है अथवा नहीं, मैं तो कह दूंगा कि फ्रांस, लक्सेम्बर्ग को ले ले।" फ्रांस को प्रसन्न करने का यह सरल उपाय था। किन्तु ज्योंही यह योजना जर्मनी में प्रकट हुई, सारी जर्मन जाति में तीव्र रोष व्याप्त हो गया और जर्मन राष्ट्रीयता को भारी आघात पहुंचा। अतः बिस्मार्क को मजबूर होकर फ्रेंच राजदूत और हॉलैण्ड के सम्राट को सूचित करना पड़ा कि उसकी सरकार यह स्वीकार नहीं करती कि लक्सेम्बर्ग फ्रांस को हस्तान्तरित कर दिया जाय। तुरन्त फ्रांस और जर्मनी में मनमुटाव हो गया। जर्मन राष्ट्रवादियों ने चिल्लाकर कहा, "जो प्रदेश पूरी तरह जर्मनों का है, उसे हम जर्मनी के शत्रुओं के हाथों में न जाने देंगे।" उधर फ्रेंच संसद् में थायर्स (Thiers) ने गरजकर कहा, "जर्मनी का एकीकरण बन्द करो!" बिस्मार्क (Bismarck) ने उन गुप्त सन्धि-पत्रों को प्रकाशित करा दिया जिन पर प्रशा और दक्षिणी जर्मनी की रियासतों ने पिछले वर्ष ही हस्ताक्षर किये थे। स्वभावतः अब हॉलैण्ड (Holland) के नरेश ने भी कह दिया कि यूरोप की अन्य शक्तियों से बिना परामर्श लिए लक्सेम्बर्ग हस्तान्तरित न किया जाएगा। नेपोलियन ने कहा, "बिस्मार्क ने मेरे साथ छल किया है।" फ्रेंच मन्त्री ने कहा, "बिस्मार्क ने झूठा आश्वासन देकर हमें अपने घर में आमन्त्रित किया और बाद में सारे यूरोप के सामने हमें बदनाम किया।" स्थिति ऐसी हो गई थी कि युद्ध निकट दिखाई पड़ता था। जर्मनी के सेनानायक चाहते थे कि युद्ध तुरन्त छिड़ जाय क्योंकि उन्हें विश्वास था कि फ्रांस युद्ध के लिए तैयार नहीं। किन्तु नेपोलियन युद्ध को पुनः टाल गया। बिस्मार्क भी सम्भवतः युद्ध के लिए तैयार न था अन्यथा वह ऐसे सुनहरे अवसर को हाथ से न जाने देता। वास्तव में अनेक लोगों ने यहाँ तक कहा कि बिस्मार्क की कूटनीतिक पराजय हुई है।

तत्कालीन फ्रेंच मन्त्री एम० मोस्टियर (M. Moustier) चाहता था कि लक्सेम्बर्ग के प्रश्न पर फ्रांस की जो मानहानि हुई है उसके बदले में वह प्रशा को बेइज्जत करे, अतः उसने प्रशा से माँग की कि वह तुरन्त लक्सेम्बर्ग के रक्षा-दुर्ग से अपनी सेनाएँ हटा ले। यदि प्रशा इस माँग को ठुकरा देता तो युद्ध की सम्भावना थी। किन्तु यूरोप की शक्तियाँ शान्ति के लिए प्रयत्न कर रही थीं और जब प्रशा ने देखा कि वह अकेला

लन्दन की सन्धि (मई १८६७)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह गया है तो उसने फ्रांस के इस प्रस्ताव को मान लिया कि यूरोपीय शक्तियों की सभा की जाय जिसमें विवादग्रस्त प्रश्न निश्चित किए जाएँ। अब लक्सेम्बर्ग का प्रश्न यूरोपीय शक्तियों की सभा में रखा गया। चार दिन के विचार-विनिमय के पश्चात् सभा ने निश्चय किया कि लक्सेम्बर्ग की ग्राण्ड डची को तटस्थ राज्य स्वीकार किया जाय और उसको अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण प्रदान किया जाय। यह भी तय किया गया कि प्रशा की सेनाएं तुरन्त लक्सेम्बर्ग से हटा ली जाएँ। पेरिस में, सभा के इस निर्णय को फ्रांस की विजय समझा गया और बर्लिन में इसको जर्मनी की जीत स्वीकार किया गया।

लक्सेम्बर्ग की तटस्थता स्वीकार कर ली गई

यद्यपि संकट टल गया था और युद्ध की नौबत नहीं आई फिर भी अगले तीन वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और युद्ध का भय बना रहा। दोनों ओर चेतावनियाँ दी जाती रहीं और अफवाहों का बाजार गर्म रहा। बेनेडेटी (Benedetti) तरह-तरह की सूचना फ्रांस को भेजता रहा—उसने यहाँ तक लिखा कि मेजिनी (Mazzini) ने बर्लिन को सहायता देने का आश्वासन दिया है, विदेशों के साथ गठबन्धनों और सैनिक तैयारियों के विषय में तरह-तरह की अफवाहें चलती रहीं। नेपोलियन ने इटली को अपनी ओर करना चाहा, किन्तु इटली की फ्रांस के साथ कैसे मित्रता हो सकती थी जबकि फ्रेंच सेनाएँ रोम (Rome) में डटी हुई थीं। फ्रेंच सम्राट वियना गया और ऑस्ट्रिया का सम्राट पेरिस (Paris) गया किन्तु ऑस्ट्रिया का योग्य राजनीतिज्ञ काउण्ट बेस्ट (Beust) सतर्क था।[1] हंगरी की ऑस्ट्रिया से पटती न थी और रूस के साथ ऑस्ट्रिया के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण न थे तो ऐसी स्थिति में जब तक फ्रांस को विजय लाभ न होने लगे तब तक फ्रांस का पक्ष लेना ऑस्ट्रिया के लिए खतरे से खाली न था। रूस के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह बिस्मार्क की मित्रता प्राप्त करे क्योंकि रूस को ऑस्ट्रिया से वास्तविक शिकायत थी। रूस और प्रशा की मित्रता से बिस्मार्क प्रशा की ऑस्ट्रिया के विरुद्ध रक्षा कर सकता था। युद्ध के संकट-काल में रूस की मित्रता प्रशा के लिए वरदान सिद्ध हुई किन्तु ऐलेक्जेण्डर द्वितीय (Alexander II) इस ओर भी रूस के लिए प्रशा से कुछ चाहता था ताकि रूस की क्रीमिया युद्ध की हानि पूरी हो सके।

चूंकि फ्रांस की न तो अच्छी सैनिक तैयारियाँ थीं और न फ्रांस की विदेशों से गाढ़ी मैत्री थी इसलिए फ्रांस ने युद्ध की दिशा में कोई निर्णायक कदम नहीं बढ़ाया, यद्यपि मार्शल नील (Marshal Niel) युद्ध के लिए हठ कर रहा था और जनरल डिरॉट (General Duirot), जो स्ट्रैसबर्ग (Strasburg) में फ्रेंच कमाण्डर था, युद्ध के लिए बेचैन था।

१८७० के वसन्त में राजनीतिक वायुमण्डल साफ था। खबरें थीं कि सारे देश निःशस्त्रीकरण करेंगे। नेपोलियन ने उस वर्ष के लिए नए रंगरूटों की भर्ती में १०,००० रंगरूट कम लिए। इस तथ्य को वॉन मॉल्टके (Von Moltke) ने भाँप

---

१. ऑस्ट्रिया दो मोर्चों पर नहीं लड़ना चाहता था। जब तक उसे इटली की मैत्री प्राप्त न हो जाती, वह फ्रांस से मैत्रीबद्ध होना नहीं चाहता था। सैनिक और आर्थिक दृष्टि से वह १८६६ के आघात से अभी पूरी तरह नही उठ सका था। बेस्ट ने कहा था, "हम युद्ध चाहते थे, लेकिन अभी नहीं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। जिस प्रकार १७९२ में पिट (Pitt) ने स्वीकार किया था, उसी प्रकार इस समय भी एम० ओलीवियर (M. Ollivier) और लार्ड ग्रेनविल (Lord Granville) ने बल देकर कहा कि यूरोपीय शान्ति के लिए शुभ समय है। किन्तु यकायक जुलाई की गर्मियों में यूरोप के आकाशमण्डल पर युद्ध की घनघोर घटाएँ घिर आईं। इस दुर्घटना की किसी को आशा न थी क्योंकि तेज़ी से दक्षिण-पश्चिम की ओर से यह भयंकर आँधी आई थी। १८६८ में स्पेन में विद्रोह हुआ जिसके कारण स्पेन की रानी आइसाबेला (Isabella) को निर्वासित होना पड़ा। लगभग दो वर्षों तक स्पेन की सरकार एक योग्य सम्राट् की तलाश में रही। अन्त में स्पेन का राजमुकुट होहेन्जोलर्न सिगमैरिंजेन के राजकुमार लियोपोल्ड (Prince Leopold of Hohenzollern-Sigmaringen) को पेश किया गया। राजकुमार लियोपोल्ड का संबंध प्रशा के राजवंश के दक्षिणी जर्मनी के रोमन कैथोलिक परिवार से था। उसके

होहेन्जोलर्न परिवार का उम्मीदवार

बड़े भाई राजकुमार चार्ल्स को १८६६ में रूमानिया (Rumania) के रिक्त सिंहासन पर बिठा दिया गया था और उसने अत्यन्त योग्यता और कुशलता के साथ राज्य-कार्य किया था। राजकुमार लियोपोल्ड (Prince Leopold) मुरत परिवार (Murats) से भी सम्बन्धित था इसलिए वह बोनापार्ट परिवार से भी सम्बन्धित था। सम्भावना थी कि राजकुमार लियोपोल्ड फ्रांस को स्वीकार्य होगा।

मार्च १८७० में बर्लिन (Berlin) में एक आवश्यक सभा हुई जिसमें इस प्रश्न पर विचार हुआ। किसी हद तक यह एक पारिवारिक विचार-विनिमय था और किसी सीमा तक यह एक अनौपचारिक राजकीय परिषद् थी। इस परिषद् में बिस्मार्क उपस्थित था और उसने बलपूर्वक कहा कि स्पेन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाय। किन्तु राजकुमार लियोपोल्ड ने भारी हिचकिचाहट के बाद प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। लियोपोल्ड की अस्वीकृति की सूचना स्पेन को भेज दी गई। बिस्मार्क को निराशा हुई और बात यहीं समाप्त समझी गई। जून १८७० के प्रारम्भ में प्रशा के मन्त्री (बिस्मार्क) ने पुनः मार्शल प्रिम (Marshal Prim) से, जो स्पेन का युद्ध मंत्री था, कहा कि आप पुनः राजकुमार लियोपोल्ड को राजसिंहासन देने का प्रस्ताव भिजवाएँ। स्पेन से एक विशेष राजदूत सिगमैरिंजेन (Sigmaringen) को भेजा गया और ३ जुलाई को सारे यूरोप में यह खबर सुनकर आश्चर्य हुआ कि राजकुमार लियोपोल्ड ने स्पेन के राजसिंहासन को[1] स्वीकार कर लिया है। फ्राँस की सरकार पहले ही राजकुमार लियोपोल्ड को स्पेन के राजा के रूप में अस्वीकार कर चुकी थी। जब राजकुमार लियोपोल्ड द्वारा स्पेन के राजमुकुट को स्वीकार करने की खबर पेरिस के समाचारपत्रों में छपी तो सभी लोगों को रोष ने उत्तेजित किया और फ्रांस में यह धारणा घर कर गई कि जर्मनी के कारण ही यूरोपीय शक्ति-संतुलन बिगड़ा हुआ है और उन्होंने जर्मनी को फ्रांस के अस्तित्व के लिए खतरा माना। फ्रेंच विदेश मंत्री ड्यूक

१. इस बात का अभी तक कोई संकेत नहीं मिला है कि प्रशा ने राजकुमार लियोपोल्ड को सहायता देने का आश्वासन दिया हो, जिसके आधार पर लियोपोल्ड राजमुकुट स्वीकार करने को उद्यत हुआ हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आफ ग्रेमाँ (Duc de Gramont) ने भी वही दृष्टिकोण अपनाया जो पेरिस के समाचारपत्रों का रुख था। ६ जुलाई को मन्त्रि-परिषद् की बैठक हुई जिसका समापतित्व स्वयं सम्राट् ने किया। बैठक के पश्चात् फ्रेंच विदेश मन्त्री ड्यूक ऑफ ग्रेमाँ ने संसद् भवन (Chamber) में घोषणा की कि यदि राजकुमार लियोपोल्ड (Prince Leopold) का नाम स्पेनिश राजसिंहासन के प्रत्याशी के रूप में वापस नहीं लिया जाएगा तो "हम उचित कार्यवाही करेंगे। ऐसा करने में न हम डरेंगे और न कोई कमजोरी दिखाएँगे।"

यह प्रशा को दी गई सीधी चुनौती थी।

अब फ्रांस ने लियोपोल्ड को स्पेन का राजा बनने से रोकने के लिए कुछ ऐसी कार्यवाहियाँ कीं जो आक्रामक और नाराजगी बढ़ाने वाली थीं। शीघ्र ही सब लोगों ने फ्रांस को उस युद्ध में आक्रमणकारी मान लिया जो शीघ्र ही प्रारंभ हो गया। बर्लिन के विदेश मन्त्रालय से काउण्ट बेनेडेटी (Count Benedetti) को कोई सन्तोषप्रद उत्तर न मिल सका क्योंकि बिस्मार्क छुट्टी बिताने बाहर चला गया था और विदेश विभाग के छोटे कर्मचारियों ने केवल यह कह दिया कि "लियोपोल्ड (Leopold) के स्पेनिश राजसिंहासन से प्रशा का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है; यह तो होहेन्जोलर्न परिवार का घरेलू मामला है, इससे अधिक कुछ नहीं।" किन्तु बेनेडेटी (Benedetti) को सन्तोष नहीं हुआ। वह प्रशा के सम्राट् के पास पहुँचा जो एम्स (Ems) नामक नदी के किनारे स्वास्थ्य लाभ कर रहा था। यह नदी कॉब्लेंज (Coblenz) के पूर्व में ११ मील दूर स्वास्थ्यप्रद जल के लिए विख्यात थी। मार्ग में उसको फ्रेंच उप-राजदूत (French Attache) मिला जो फ्रेंच सम्राट् से विशेष सन्देश लाया था, "जिनके द्वारा प्रशा के सम्राट् से स्पष्ट भाषा में यह चाहा गया था कि होहेन्जोलर्न परिवार के राजकुमार को स्पेन का राजा नहीं बनने दिया जाए और अन्यथा फ्रांस के साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाने की चेतावनी भी थी।"

प्रशा का सम्राट् विलियम चाहता था कि मामला आसानी से बिना युद्ध किए सुलझ जाय इसलिए उसने मैत्रीपूर्ण रुख अपनाया, साथ ही उसने फ्रेंच-विरोधी पत्र की भाषा पर आपत्ति की और फ्रेंच विदेश मन्त्री की ६ जुलाई की वक्तृता की भर्त्सना की। उसने वार्त्ता में यह भी बता दिया कि वह अपने कुटुम्बी राजकुमार लियोपोल्ड को स्पेनिश राजमुकुट अस्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। सम्राट् ने यह भी कहा कि मैं सिगमैरिंजेन (Sigmaringen) से समाचार की प्रतीक्षा में हूँ और यथा आवश्यक फ्रेंच राजदूत को पुनः बुला लिया जाएगा और स्थिति स्पष्ट कर दी जाएगी। इसी बीच फ्रांस (Quai d' Orsay) से आवश्यक और द्रुतगामी समाचार आया जिसमें काउण्ट बेनेडेटी (Count Benedetti) को आदेश था कि वह प्रशा की सरकार से शीघ्रातिशीघ्र वचन ले कि राजकुमार लियोपोल्ड स्पेन का राजमुकुट स्वीकार न करेगा। १० जुलाई को प्रशा के सम्राट ने सिगमैरिंजेन (Sigmaringen) को तार देकर यह सलाह दी कि लियोपोल्ड स्पेन का राजमुकुट अस्वीकृत कर दे। और दो दिन बाद तार द्वारा यह सूचना मैड्रिड (Madrid) और पेरिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Paris) को भेज दी गई कि प्रस्तावित राजमुकुट अस्वीकृत कर दिया गया है। फ्रांस की माँग का जवाब दिया जा चुका था। तत्कालीन उदारदलीय फ्रेंच प्रधानमन्त्री ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "अब शांति रहेगी और हम शान्ति के अवसर को हाथ से न जाने देंगे।" फ्रेंच सम्राट्, जो इस समय बीमार था, उसको भी विश्वास हो गया कि युद्ध का भय टल गया है। किंतु वे दोनों भ्रम में थे। फ्रेंच विदेश मंत्री ग्रेमाँ और फ्रेंच सैनिक दल यही चाहता था कि युद्ध हो, उधर बिस्मार्क और प्रशा के सैनिक प्रधानगण भी यही चाहते थे कि युद्ध हो। अतः बेनेडेटी (Benedetti) को पुनः आदेश दिया गया कि वह प्रशा के सम्राट् से गारण्टी माँगे कि भविष्य में भी कभी होहेन्जोलर्न परिवार का राजकुमार स्पेन के राजसिंहासन का प्रत्याशी न रहेगा। उधर उत्तरी जर्मन संघ के पेरिस स्थित राजदूत बैरन वर्थर (Baron Werther) को राजी कर लिया गया कि वह प्रशा की सरकार से कहे कि प्रशा फ्रेंच सरकार से क्षमा-याचना करे। इससे अधिक प्रशन जाति की और प्रशा के सम्राट् की और क्या मान-हानि होती। १३ जुलाई को सैर करते-करते प्रशा के सम्राट् और फ्रेंच राजदूत बेने-डेटी (Benedetti) की वह दुर्भाग्यपूर्ण भेंट हुई जिसमें फ्रेंच राजदूत ने सम्राट् से वचन देने के लिए आग्रह किया। सम्राट् विलियम प्रथम को आश्चर्य हुआ। उसने अभी तक लियोपोल्ड (Leopold) का नाम वापस ले लेने के सम्बन्ध में नहीं सुना था। किन्तु फ्रेंच राजदूत बेनेडेटी (Benedetti) का व्यवहार हठपूर्ण रहा। इस पर सम्राट् ने दृढ़ता किन्तु सौम्यता के साथ भेंट (Interview) को समाप्त कर दिया। अगले दिन सम्राट् ने अपने सचिव को फ्रेंच राजदूत के पास भेजा और बता दिया कि सिगमैरिंजेन (Sigmaringen) से खबर आ गई है और लियोपोल्ड ने स्पेन के राज-पद से अपना नाम वापस ले लिया है। उसने यह भी लिखा कि अब उक्त काण्ड को समाप्त समझना चाहिए।

यह सम्भव है कि प्रशा द्वारा प्रस्तावित आश्वासन न देने पर युद्ध अनिवार्य था; क्योंकि बाद में सेंट क्लाउड (Saint Cloud) में जो बैठक हुई उसमें निर्णय किया गया था कि आश्वासन माँगने सम्बन्धी प्रार्थना पर आरूढ़ रहा जाय। किन्तु अगली उत्तेजना बिस्मार्क की ओर से दी गई। बिस्मार्क को विश्वास हो गया था कि युद्ध आवश्यक है और अपने सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध को टालना प्रायः कठिन है। १२ तारीख को वह सुन चुका था कि लियोपोल्ड अपना नाम वापस ले चुका है। इससे बिस्मार्क को इतनी मार्मिक वेदना पहुँची कि वह अपने पद से त्यागपत्र देने की सोचने लगा।

१३ तारीख को बिस्मार्क ने वॉन रून (Von Roon) और वॉन मॉल्टके (Von Moltke) को भोजन पर बुलाया और अपने भविष्य पर उनसे विचार-विनिमय किया। तीनों उदास थे। बिस्मार्क ने बताया कि वह त्यागपत्र देगा। दोनों सैनिक मेहमानों ने कहा कि सिपाही होने के नाते वे अपने दायित्वों से त्यागपत्र नहीं दे सकते। शाम को एम्स (Ems) से बिस्मार्क को एक तार मिला जिसमें प्रातःकाल के सम्राट् और बेनेडेटी के साक्षात्कार का वर्णन किया गया था। बिस्मार्क ने उक्त तार जोर से पढ़कर सुनाया और "दोनों मेहमानों को इतनी निराशा हुई कि उनसे भोजन भी नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया।" अब बिस्मार्क को एक युक्ति सूझी। उसने मॉल्टके (Moltke) से सेना की स्थिति के बारे में कुछ पूछताछ की और उसने तुरन्त निर्णय कर लिया कि तार का संक्षिप्त भाग ही प्रकाशित किया जाय। उसने बताया, "ऐसा करने से फ्रांसीसी सांड (Gallic Bull) डरकर पीछे हट जाएगा।" इससे रून (Roon) और मॉल्टके (Moltke) को प्रसन्नता हुई और वे फिर खाने पर डट गए। खूब शराब भी उड़ी। इसके बाद रून ने चिल्ला कर कहा : "हमारा पुराना खुदा अभी मरा नहीं है। वह हमको बेइज्जती के साथ न मरने देगा।" माल्टके ने अपने सीने पर हाथ मारा और कहा : "यदि सम्भाव्य युद्ध की कमान का भार मुझे दिया गया और यदि मैं जीवित बचा तो मैं करतब दिखाऊँगा, चाहे बाद में शैतान मेरी बुड्ढी हड्डियाँ ही खेंचकर ले जाय।" तार का एक शब्द भी बदला नहीं गया, उसे केवल संक्षिप्त कर दिया गया। किन्तु उक्त तार की पूरी इबारत और संक्षिप्त इबारत में ज़मीन-आसमान का फर्क था। "पूरी इबारत मानो युद्ध की चुनौती के जवाब में बातचीत का निमन्त्रण था, किन्तु संक्षिप्त इबारत मानो चुनौती के जवाब में तलवार का वार था।"[१]

एम्स का तार (१३ जुलाई)

---

१. एम्स का तार (Ems Telegram) और उसके संक्षिप्त रूप का ऐतिहासिक महत्त्व है; अतः उस तार की इबारत उद्धृत करना उचित होगा। सम्राट् के सेक्रेटरी एबेकिन (Abeken) ने जो तार भेजा था उसकी इबारत यह थी—"सम्राट् ने मुझको सूचित किया है : 'काउण्ट बेनेडेटी ने सैर करते समय मुझसे अत्यन्त दुर्विनीत भाषा में आश्वासन माँगा कि मैं उसको आश्वासन दूँ कि भविष्य में भी मैं कभी किसी होहेन्ज़ोलर्न राजकुमार को स्पेन के राजसिंहासन के लिए स्वीकृति न दूँगा। अन्त में मैंने कुछ दृढ़ता और कुछ रुक्षता के साथ उसे फटकार दिया क्योंकि न तो ऐसा आश्वासन माँगना उचित था और न ऐसा आश्वासन देना सम्भव था। मैंने बेनेडेटी को यह भी बताया कि मुझे अभी तक कोई सूचना नहीं मिली है और चूँकि पेरिस (Paris) और मैड्रिड (Madrid) की सूचनाएँ उसको पहले प्राप्त हो जाती हैं, मुझे बाद में अतः मेरी सरकार का इस मामले पर कोई बस नहीं है'। (उसके बाद सम्राट् को राजकुमार लियोपोल्ड का पत्र भी प्राप्त हो गया है। उस समय सम्राट् ने काउण्ट बेनेडेटी को बताया था कि उसे राजकुमार लियोपोल्ड के समाचारों की प्रतीक्षा है। सम्बन्धित आश्वासन सम्बन्धी माँग के प्रसंग में सम्राट् का मत है और काउण्ट यूलेनबर्ग (Count Eulenburg) तथा मैंने भी यही राय दी कि काउण्ट बेनेडेटी को अधिक मुंह न लगाया जाय; बल्कि उसको केवल एक उपमन्त्री द्वारा सूचना दी जाय कि सम्राट् को राजकुमार लियोपोल्ड के उस निश्चय की सूचना प्राप्त हो चुकी है, जिसके बारे में फ्रेंच राजदूत पेरिस से भी समाचार प्राप्त कर चुका है। इससे अधिक आश्वासन सम्राट् नहीं दे सकते। अब सम्राट् चाहते हैं कि आप (स्वयं बिस्मार्क) निर्णय करें कि बेनेडेटी की ताजा माँग और उस पर हमारी अस्वीकृति को तुरन्त हमारे राजदूतों और समाचारपत्रों को भेजा जाय या नहीं।")

नोट—उपर्युक्त तार के काले शब्दों को बिस्मार्क ने प्रकाशित ही नहीं किया। १८९२ में जर्मन सरकार ने पूरा तार सूचनार्थ प्रकाशित कराया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम्स के तार (Ems Telegram) के संक्षिप्त रूप के प्रकाशित करते ही वही प्रभाव हुआ जिसकी विस्मार्क को आशा थी। उस दिन १४ जुलाई थी और राष्ट्रीय पर्व था। फ्रेंच जाति पहले ही से उत्तेजित थी। फ्रेंच चेम्बर या संसद् भी कम उत्तेजित न थी। कोई सरकार राष्ट्रीय माँग की अवहेलना नहीं कर सकती। तीन बार मन्त्रि-परिषद् की बैठकें हुईं। फ्रेंच सम्राट ने अपनी कमज़ोरी और अस्वस्थता के बावजूद प्रयत्न किया कि युद्ध टल जाये, किन्तु फ्रेंच विदेश मंत्री ग्रेमाँ (Gramont) ने सम्राट से निवेदन किया : "यदि आप फिर यूरोपीय सभा (Congress) की बात करेंगे तो मैं त्यागपत्र दे दूँगा।" अन्त में युद्ध करना निश्चित हुआ और अगले दिन खुशी के वातावरण में युद्ध की घोषणा कर दी गयी। ग्रेमाँ (Gramont) ने फ्रेंच संसद् (Chamber) में गर्जन करके देशवासियों से कहा—"हम प्रशा की सरकार से सम्मानपूर्ण आश्वासन तो प्राप्त न कर सके किन्तु युद्ध का मार्ग तो आपके लिये खुला है।" "हम शुद्ध अन्तःकरण और प्रसन्न हृदय से एक भारी उत्तरदायित्व का निर्वहन करने जा रहे हैं" ये शब्द ऑलिवियर (Ollivier) ने कहे। वास्तव में युद्ध के बाद चालीस वर्षों तक ऑलिवियर इन शब्दों का अर्थ न समझ सका था।

फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में युद्ध के निर्णय का स्वागत किया गया। सम्भव है कि फ्रांस को प्रारम्भ में ऐसी आशा रही हो कि जर्मनी में युद्ध के प्रश्न पर फूट पड़ जायेगी, किन्तु ये सब धारणाएँ गलत सिद्ध हुईं। प्रशा में भी और प्रशा के अतिरिक्त अन्य जर्मन राज्यों में भी यही माना गया कि आक्रामक फ्रांस के विरुद्ध युद्ध ही एक मात्र उचित और न्याय्य मार्ग है और फ्रांस का रवैया जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में बाधक है। बवेरिया (Bavaria) बहुत दिनों से दक्षिणी जर्मनी की रियासतों का नेता बनने के सपने देख रहा था और वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए फ्रांस की मैत्री का इच्छुक भी था ; किन्तु अब बवेरिया (Bavaria) को विश्वास हो चुका था कि फ्रांस (France) की गृद्ध-दृष्टि राइन (Rhine) नदी के पूर्वी भूभाग एवं पैलेटीनेट (Palatinate) के कुछ भाग पर लगी हुई है अतः बवेरिया ने भी यही निर्णय किया कि उसको प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मन हितों को बढ़ाना चाहिए। सर्वत्र स्वाधीनता के युद्ध के गीत गाये जा रहे थे और चूँकि सारे जर्मन राष्ट्र में फ्रांस की नीति के प्रति क्रोध था अतः सारे जर्मन राष्ट्र में अभूतपूर्व एकता के भाव जाग गए और सारा राष्ट्र प्रसन्नता के साथ युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ा। सभी के होठों पर ये शब्द मुस्करा रहें थे—*Die Wacht am Rhein*।

एक ओर प्रशावासी चिल्ला रहे थे—"पेरिस हमारा लक्ष्य है।" दूसरी ओर पेरिस के लोग प्रसन्नता से कह रहे थे—"बर्लिन लेकर रहेंगे।" चालीस वर्षों के बाद फ्रेंच थियेटरों में पुनः मार्सेलेज (Marseillaise) की गत बजाने की आज्ञा दे दी गई, और मार्शल ली बोफ़ (Marshal le Boeuf) ने घोषणा की कि "जीना (Jena) के सिपाही युद्धक्षेत्र में जाने के लिए तैयार हैं।" किन्तु जब सैनिक अपने क्वार्टरों से बाहर निकले तो देखा गया कि उनके पास युद्ध-सामग्री और अन्य आवश्यक चीजों का अभाव था। अनेक सिपाहियों के पास न गोला-बारूद था न कपड़े

फ्रांस युद्ध के लिए पूरी तरह तैयार नहीं था·

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, न तोपखाना था और न फौजी अस्पताली गाड़ियाँ थीं। नये रंगरूट अपनी टुकड़ियों के पीछे चक्कर काट रहे थे। बेल्फर्ट (Belfort) में एक ब्रिगेडियर (Brigadier) को अपना अधीन दस्ता ही नहीं मिला। सैनिक अफसरों की कमी थी। रेलों में जगह कम थी और गुप्तचर विभाग में पर्याप्त सेवक न थे। फ्रेंच अधिकारियों को आशा थी कि ऑस्ट्रिया भी जर्मन पक्ष में है अतः फ्रेंच सेना के उच्च अधिकारियों के पास जर्मनी के नक्शे तो थे जिस पर आक्रमण करने की योजना थी। उस भूभाग के भी पर्याप्त नक्शे दिये गये थे जिस मार्ग में जर्मनी द्वारा ऑस्ट्रिया पर आक्रमण करने की योजना थी; किन्तु फ्रेंच सैनिक अधिकारियों को फ्रांस की सीमाओं के निकट के नक्शे दिये ही नहीं गए। उन्होंने यह नहीं सोचा था कि शायद उनको फ्रेंच सीमाओं की रक्षा की भी आवश्यकता पड़ सकती है। वास्तव में आवश्यकता पड़ने पर फ्रेंच सेना अपनी सीमाओं की रक्षा करने में असमर्थ रही।

कूटनीति के क्षेत्र में भी फ्रांस की ही हार हुई। दी टाइम्स (The Times) नामक अखबार में बिस्मार्क ने उस सन्धि की योजना छपवा दी जिसे बेनेडेटी (Count Benedetti) ने बेल्जियम को हस्तगत करने के अभिप्राय से बिस्मार्क के सामने रखा था। ग्लैडस्टन (Gladstone) की सरकार यद्यपि आक्रामक विदेश नीति का आश्रय नहीं लेती थी किन्तु जब उसे फ्रेंच सरकार की सन्देहयुक्त नीति का पता चला तो स्वयं ग्लैडस्टन को भी भारी आघात पहुँचा। एक-एक करके प्रायः सभी यूरोपीय देशों ने फ्रेंच-प्रशन युद्ध में तटस्थता की नीति अपनायी। ऑस्टिया कुछ हिचक रहा था, किन्तु पूर्व की ओर से रूस ने ऑस्ट्रिया के ऊपर दबाव डाला और इस प्रकार फ्रांस और ऑस्ट्रिया की मैत्री की संभावना समाप्त हो गई। इटली को भी १८६६ से प्रशा की ओर से शिकायत थी, अतः इटली भी हिचक रहा था और अभी उसने तटस्थता घोषित नहीं की थी। वास्तव में इटली, फ्रांस से रोम (Rome) के सम्बन्ध में आश्वासन चाहता था। किन्तु नेपोलियन अन्त समय तक अपनी रोम के प्रति अपनायी गई नीति पर अचल रहा, अतः वह इटली को रोम के सम्बन्ध में कोई आश्वासन न दे सका। विक्टर इमैनुएल (Victor Emmanuel) ने भी उक्त विवाद में तटस्थ होने की घोषणा कर दी। सीडान (Sedan) पर फ्रांस की पराजय के बाद तो प्रशा के सम्राट ने अपनी तटस्थता की नीति के लिए भगवान् को धन्यवाद देते हुए कहा था—"भगवान् की कृपा से खूब बचे!"

फ्रांस अकेला पड़ गया

१५ दिन की तैयारी में जर्मन सैन्यसज्जा पूर्ण हो गई और २ अगस्त को प्रशा का सम्राट विलियम युद्धक्षेत्र में आ गया। उसने सारी फौज की कमान अपने हाथों में ली।

जर्मन सेना में चार लाख पचास हजार सैनिक थे। इस सेना को तीन भागों में विभक्त किया गया था। एक सेना स्टीनमेट्ज (Steinmetz) की कमान में उत्तर की ओर चली। स्टीनमेट्ज कठोर प्रकृति का निर्दय कमाण्डर था यद्यपि वह ७४ वर्ष का वृद्ध था। द्वितीय सेना सम्राट विलियम के भतीजे फ्रेडरिक चार्ल्स (Frederick Charles) के नेतृत्व में दी गई। इसी फ्रेडरिक चार्ल्स का नाम लाल राजकुमार (Red Prince)

जर्मन आक्रमण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी था। उसने डेनमार्क (Denmark) और ऑस्ट्रिया (Austria) के युद्धों में सफलताएँ प्राप्त की थीं। तीसरी सेना में अधिकतर दक्षिणी जर्मनी के सिपाही थे। इस सेना की कमान युवराज को दी गई। यह निश्चित किया गया था कि तीनों सेनाएँ फ्रांस में तीन विभिन्न स्थानों पर आक्रमण करेंगी। आक्रमण के तीनों स्थान एक ऐसी कल्पित रेखा पर थे जो मानो लॉरेन (Lorraine) और उत्तरी अल्सेस (Alsace) को छूती हुई एक ओर तटस्थ लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) तथा दूसरी ओर राइन नदी को मिलाती हो।

दूसरी ओर फ्रांस की सेनाएँ अजीब तरह से एक ही सीमा पर फैला दी गई थीं। फ्रेंच सम्राट, बोनापार्ट परम्परा के अनुसार मेट्ज (Metz) नामक स्थान पर स्थित फ्रेंच सेना की कमान कर रहा था। मेट्ज उत्तर-पश्चिम की ओर को था। उसकी सहायता के लिए जनरल मैक्माहौन (MacMahon) दक्षिण में दूसरी सेना का कमाण्डर था। योजनानुसार वह राइन (Rhine) नदी के पार आक्रमण करने को था।

वीसेनबर्ग का युद्ध (४ अगस्त)

किन्तु युद्ध का प्रारम्भ जर्मनों ने किया। उनकी नीति शीघ्र युद्ध समाप्त कर देने की थी। चार अगस्त को युवराज ने वीसेनबर्ग (Weissenburg) को घेर लिया और इस मार्ग से उसकी सेनाएँ अल्सेस (Alsace) प्रान्त में प्रवेश कर गईं। फ्रेंच क्रान्ति के युद्धों में भी वीसेनबर्ग काफ़ी सामरिक हलचलों का केन्द्र रह चुका था। अगले दिन फ्रांस की सेनाओं की प्रथम और द्वितीय जर्मन सेनाओं से सारब्रुकेन (Saarbrucken) के आस-पास करारी मुठभेड़ हुई। फ्रांस के उत्तराधिकारी शाही राजकुमार (Prince Imperial) की मृत्यु हो गई। अब जर्मन सेनाएँ सार (Saar) को पार कर गईं। ६ तारीख को स्पिक्रेन (Spicheren) पर युद्ध हुआ। यहाँ पर फ्रेंच सेनाएँ मेट्ज की ओर हटने पर बाध्य हुईं। अब तो जर्मन सेनाओं के लिए लॉरेन (Lorraine) का मार्ग साफ हो गया था।

स्पिक्रेन (६ अगस्त)

उसी दिन दक्षिण से समाचार आये। प्रशा के उत्तराधिकारी राजकुमार ने वर्थ (Worth) की लड़ाई में फ्रेंच जनरल मैक्माहौन (MacMahon) को हराया। जर्मनों की एक टुकड़ी दक्षिण की ओर स्ट्रैसबर्ग को घेरने के लिए चली; किन्तु ज्योंही जनरल मैक्माहौन (MacMahon) की तितर-बितर सेनाएँ चैम्पेन (Champagne) की ओर हटने को मजबूर हुईं, जर्मनी का उत्तराधिकारी राजकुमार भी अपनी सेनाओं सहित जनरल मैक्माहौन के ऊपर पीछे से चढ़ दौड़ा। अब तो फ्रांस को अल्सेस (Alsace) बचाने के लाले पड़ गए। एक के बाद एक फ्रांस को इतनी करारी हार खानी पड़ी कि पेरिस में संकट-काल उपस्थित हो गया। ऑलिवियर (Ollivier) के

वर्थ का युद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया और सम्राज्ञी यूजीनी (Empress Eugenie)[1] ने तो कह दिया था कि "अब तो फ्रांस से शाही परिवार का दाना-पानी सदैव के लिए उठ गया। जो बचे हैं वे देश का उद्धार करें।" फ्रेंच सम्राट ने सेना की कमान से छुट्टी ले ली और अपने स्थान पर मार्शल बैज़ेन (Marshal Bazaine) को नियुक्त कर दिया। इस मार्शल को भी चैलोंस (Chalons) की ओर हटना पड़ा। स्वयं फ्रेंच सम्राट भी चैलोंस पहुंचे जहां वे मैक्मॉहौन (MacMahon) की तितर-बितर सेनाओं की भगदड़ में व्यवस्था लाने लगे।

फ्रेंच सेनाओं को एक के बाद एक आघात सहन करने पड़े। मार्शल बैज़ेन (Bazaine) की सेना के ऊपर इतनी करारी मार पड़ी कि उसे मजबूरन मेट्ज़ (Metz) के किले में शरण लेनी पड़ी। अब फ्रेंच सम्राट ने चाहा कि मार्शल बैज़ेन की सहायता की जाय। १८ अगस्त का ग्रेवलॉट (Gravelotte) का युद्ध अत्यन्त निर्णायक रहा था और लगभग सारी फ्रेंच सेना लॉरेन (Lorraine) के किले में घिर गई। उस किले में पर्याप्त भोजन भी न था। पेरिस में यह इच्छा व्यक्त की गई कि मैक्माहौन (MacMahon), बैज़ेन की रक्षार्थ जाये। अतः मैक्-माहौन उत्तर की ओर चला। वह मेट्ज (Metz) को टेढ़े-मेढ़े रास्ते से पहुंचना चाहता था। फ्रेंच सम्राट् उसके साथ था। जिस समय रेलवे स्टेशन पर सम्राट अपनी मलका यूजीनी (Eugenie) से बिछुड़कर चलने लगा तो मलका विलाप करने लगी। अब तो सम्राट की रक्षा के लाले पड़ गये किन्तु बीमार सम्राट को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान था। उसने अपने मुंह को सफेद रंग लिया और अपने भूरे बालों को रोगन से चिकना कर वह सेना के साथ आगे बढ़ता ही गया।

ग्रेवलॉट का युद्ध (१८ अगस्त)

वॉन मॉल्टके (Von Moltke) अत्यन्त चतुर रण-विज्ञानवेत्ता था। उसने मैक्माहौन की योजना को विफल कर दिया। ब्यूमौंट (Beaumont) नामक स्थान पर मुठभेड़ हुई और मैक्माहौन मेट्ज न पहुंच सका; मजबूरन वह बेल्जियम की सीमा की ओर हट गया। शीघ्र ही मैक्माहौन की सेनाओं की स्थिति अधिक खराब हो गई। पहली सितम्बर को मैकमाहौन की सारी सेना म्यूज़ (Meuse) की वादी में सीडान में घिर गई। चारों ओर से जर्मनों ने गोलाबारी की और कोई सैनिक निकल कर न जा सका।

सीडान का युद्ध (१ सितम्बर)

शाम को एक फ्रेंच संदेशवाहक (Courier) जर्मन फौजी कैम्प में पहुंचा। उसके पास प्रशा के सम्राट के लिए एक पत्र था। उस पत्र में केवल एक शाही स्टेशनरी

---

१. मलका यूजीनी (Empress Eugenie) फ्रेंच सम्राट् की स्पेन-निवासिनी सम्राज्ञी थी। सम्राट के पतन के समय इस शान्त महिला के साहस और प्रेम ने सम्राट को बल दिया। उसी प्रकार जब सम्राट का उत्कर्ष काल था, उस समय इस महिला की सुन्दरता और वैयक्तिक गरिमा ने सम्राट के दरबार में चार चाँद लगा दिये थे। इसका पुत्र बहुत ही कम अवस्था में युद्धक्षेत्र में मारा जा चुका था और वह अपने पति की मृत्यु के बाद भी लम्बे समय तक जीवित रही। उसका वृद्धावस्था का सारा काल इंग्लैण्ड में बीता, जहां वह १९२० में ९४ वर्ष की वृद्धा होकर मरी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कागज़ था जिसमें शांति का संक्षिप्त संदेश था।[1]

इसके बाद युद्ध-विराम सन्धि हुई और २ सितम्बर को फ्रांस के सम्राट् और फ्रांस की समस्त सेना ने आत्म-समर्पण कर दिया। इस सेना में ८३,००० सिपाही थे, उनके पास विशाल तोपखाना था, गोला-बारूद था और रसद का सामान था। यह सब कुछ जर्मनों के अधिकार में आ गया। तभी से २ सितम्बर जर्मनी में राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाता है। नेपोलियन ने सवेरे के पाँच और छः बजे के बीच बिस्मार्क को मिलने के लिए बुलाया। जर्मन मिलिटरी स्टॉफ (German Military Staff) के लोगों को यह अच्छा नहीं लगा कि बिस्मार्क सेना के साथ जाये। बिस्मार्क अकेला कमर में पिस्तौल डालकर नेपोलियन से मिलने गया। सम्राट् नेपोलियन बिस्मार्क की डौन्चरी (Donchery) के निकट एक कुटी (Cottage) में एक घंटे तक खुशामद करता रहा कि फ्रांस की सेना के साथ उदार व्यवहार किया जाय। उस समय नेपोलियन सफ़ेद दस्ताने पहने हुए था और सिगरेट उसके मुँह में दबी हुई थी। उसने बताया कि उसकी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी किन्तु विशाल जनमत के समक्ष उसकी एक न चली। बिस्मार्क ने अपनी मुद्रा कठोर बनाये रखी। उसने नेपोलियन को बताया कि सन्धि की शर्तें तो केवल सैनिक अधिकारी ही तय करेंगे। उसने स्पष्ट कह दिया कि नेपोलियन प्रशा के सम्राट् से उस समय तक न मिल सकेगा जब तक कि आत्म-समर्पण की शर्तों पर दोनों ओर से हस्ताक्षर नहीं हो जाते।

अगले दिन नेपोलियन को कैसिल (Cassel) के निकट विल्हैम्सशोहे (Wilhelmshohe) में नजरबन्द रखा गया जहाँ उसका चाचा, वेस्टफेलिया का राजा जैरोम (King Jerome of Westphalia) भी बन्दी के रूप में कुछ समय के लिए रह चुका था। मार्ग में बेल्जियम के रेल स्टेशन पर नेपोलियन ने एक अखबार बेचने वाले को चिल्लाते हुए सुना—साम्राज्य का पतन (Chute de l'Empire); सम्राट् को बन्दी बनाया गया (fuite de l'Imperatrice)। इस प्रकार बोनापार्ट राजवंश का अन्त हुआ। पेरिस (Paris) में फ्रेंच सम्राज्ञी एक अमेरिकन डेन्टिस्ट की दुकान के मार्ग से हेर्स्टिग्ज स्थित मैरीन होटल को जा रही थीं। मार्ग में उसने पेरिस के लोगों को यह चिल्लाते हुए सुना—"गणराज्य चिरजीवी हो"। सम्राज्ञी ने अपनी क्षुब्ध आँखों से यह भी देखा कि सार्वजनिक इमारतों के ऊपर से बोनापार्ट वंश का झण्डा (Eagles) उतारा और फाड़ा जा रहा है। केवल ९० वर्ष पूर्व पेरिसवासियों ने बूरबन वंश का फ्रांसीसी झण्डा भी इसी प्रकार फाड़ा था जिसका निशान लिली फूल (fleur-de-lis) था।

वाटरलू (Waterloo) के युद्ध में फ्रांस की अपार हानि हुई थी। उसी प्रकार सीडान (Sedan) के युद्ध में भी महान् विध्वंस हुआ था किन्तु सम्राट् की तलवार

---

१. मूल पत्र इस प्रकार है :

Monsieur Mon Frere,

N'ayant pas pu mourir au milieu de mes troupes, il ne me reste qu'a remettre mon epee entre les mains de votre Majeste.

Je suis de votre Majeste le bon Frere, Napoleon

Sedan, le l Sept. 1870

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Franco-German War

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस की तलवार न थी। नई फ्रेंच सरकार, जिसकी स्थापना की गई, यद्यपि पूर्ण सुरक्षित तो न थी, फिर भी उसने महान साहस बटोरकर युद्ध को जारी रखना निश्चित किया। फ्रांस की सरकार ने एलान किया—"हम न तो शत्रु को फ्रांस की एक इंच भूमि देंगे और न फ्रेंच किलों की दीवारों का एक पत्थर।" मेट्ज़ (Metz) का अभी पतन न हुआ था और बैज़ेन (Bazaine) की फ़ौजें अभी मैदान में थीं और उनको आशा थी कि पेरिस की रक्षा सम्भव है। फ्रांस सम्भवतः इस धोखे में था कि १७९२ में भी प्रशा द्वारा आक्रमण किए जाने पर फ्रांस ने प्रशा के ऊपर महान विजयें प्राप्त की थीं। किन्तु फ्रांस के लोग यह भूल गए कि १८७० का प्रशा और था। १७९२ का प्रशा कमजोर था। फिर १८७० में पोलैंड (Poland) की व्यग्रकारी समस्या भी न थी। सितम्बर के पूर्वार्द्ध में जर्मन लोग राजधानी को घेरे रहे। थायर्स (Thiers) यूरोपीय देशों की राजधानियों को चल दिया और उसने विदेशी सरकारों से याचना की कि फ्रांस की अस्थाई नई सरकार को वे सहायता दें जो बोनापार्ट वंश की सरकार के उखड़ जाने के पश्चात् फ्रांस में स्थापित की गई थी। शीघ्र ही फ्रेंच सरकार टूर्स (Tours) को हट गई और १९ सितम्बर को पेरिस पर अधिकार हो गया। किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् प्रसिद्ध गणतन्त्रवादी लियोन गैम्बैटा (Leon Gambetta) एक बैलून में बैठकर जर्मन फौजों के ऊपर से पैरिस से बचकर निकल भागा। उसने एक स्वतन्त्र गणतन्त्रीय सरकार की स्थापना की और स्वयं को उस सरकार का प्रधान अधिकारी घोषित कर दिया। अब वह फ्रांस के प्रान्तों में सेनाएँ एकत्र करने लगा और विरोध संगठित करने में लग गया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप टूर्स (Tours) से, ली मांस (Le mans) से, बोर्जेस (Bourges) से, लिले (Lille) और बिसैंकन (Besancon) से सहायक सैनिक दस्ते पेरिस की ओर चल पड़े। सारे फ्रेंच राष्ट्र में जान आ गई और सभी ने हथियार उठा लिए और विदेशों से भी सशस्त्र स्वयंसेवक फ्रांस की सहायता के लिए आये। गैरीबाल्डी (Garibaldi) और उसके वीर सिपाही इटली से आये। एक अन्य नवयुवक सिपाही लेफ्टीनेण्ट किचनर (Lieutenant Kitchener) भी फ्रांस की सहायतार्थ आया। इस युवक सिपाही का भविष्य में इतिहास में बहुत नाम चमका। किन्तु न तो गैम्बैटा (Gambetta) के प्रयत्न सफल हुए और न थायर्स (Thiers) ही अपने मिशन में सफल हो सका। ऑलियन्स (Orleans) के क्षेत्र में हलकी सी सफलता मिली थी किन्तु वह अस्थायी सफलता पुनः निराशा में बदल गई। २७ सितम्बर को स्ट्रेसबर्ग (Strasburg) का पतन हो गया। २७ अक्तूबर को मेट्ज का पतन हो गया और १८०,००० सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया। देशद्रोह सम्बन्धी कुछ अभियोग लगाये गये। बैजेन (Bazaine) को मुकद्दमा चलाये जाने के लिए बुलाया गया किन्तु वह बच कर स्पेन (Spain) भाग गया। अगले वर्ष के आरम्भ में १८ जनवरी को बूरबाकी (Burbaki) की बहादुर सेना; जो बेलफ़र्ट (Belfort) की सहायतार्थ गई थी, स्विट्जरलैंड की ओर भगा दी गई और इस प्रकार उक्त सेना प्रभावशून्य हो गई। उसी प्रशा के राजा को जर्मनी का सम्राट् अभिषिक्त किया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्साई (Versailles) के लुई-क्वाटोर्ज (Louis-Quatorze) नामक महल के शीशों वाले कमरे में राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं। सम्राट् विलियम खड़ा था। उसके चारों ओर जर्मनी के अन्य राजा लोग खड़े हुए थे। बिस्मार्क (Bismarck) शाही घोषणा पढ़ रहा था। बिस्मार्क का चेहरा कुछ उतर रहा था किन्तु शान्त था क्योंकि उसे आन्तरिक सन्तोष था। उस आन्तरिक सन्तोष के कारण उसके चेहरे पर ऐसा प्रकाशपुञ्ज झलक रहा था जिसके कारण सभी उपस्थित जन-समुदाय की आँखें बरबस बिस्मार्क के दुर्जेय चेहरे की ओर लगी हुई थीं। अब भी बिस्मार्क की मुद्रा से यही झलक रहा था कि "उसकी इच्छा ही सर्वोपरि इच्छा है और वही सबकी इच्छाओं का स्वामी है।" अब बेडिन के ग्राण्ड ड्यूक (Grand Duke of Baden) ने उच्च स्वर में कहा, "सम्राट् विलियम चिरंजीवी हों।" फौजी बैण्ड ने राष्ट्रीय गीत की धुन बजाई और हुर्रा-हुर्रा (Huzzas) का आनन्ददायक गगन-भेदी स्वर आठ मील दूर पेरिस की प्राचीरों को लांघता हुआ उन घिरे हुए पेरिस वासियों के कानों में भी पहुँचा जो पेरिस में त्रस्त थे और उन जर्मन विजयी सैनिकों के कानों में भी पहुँचा जो पेरिस को घेरे पड़े थे। इसके पश्चात् नये जर्मन राजाधिराज ने अपने पुत्र का चुम्बन किया किन्तु बिस्मार्क की उसने उपेक्षा कर दी क्योंकि कुछ समय से वह सम्राट् का कृपापात्र न रह गया था।[1] इसके पश्चात् राजाधिराज ने अपने सेनापतियों से हाथ मिलाया और बड़े कमरे से चलने लगा। जिस समय वह चला, बैण्ड पर फ्रेडरिक महान की होहेन फ्रीडबर्ग अभियान की गत (Great Frederick's *Hohenfriedeberg March*) बज रही थी। इस दिन से ठीक १७० वर्ष पूर्व प्रशा का प्रथम राजा कॉनिसबर्ग (Konigsberg) में राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ था।

प्रशा के राजा को जर्मनी का राजाधिराज अभिषिक्त किया गया

घिरे हुए पेरिस नगर में अकाल[2] कीसी स्थिति थी और चार मास तक पेरिस ने भयंकर बम-वर्षा सहन की थी; अतः पेरिसवासियों का विरोध जवाब दे गया और प्रशा के नरेश के जर्मनी के सम्राट् के बनने के दस दिन पश्चात् २८ जनवरी को पेरिस का पतन हो गया। इसके पश्चात् फ्रांस की अस्थाई सरकार के मुख्य अभिकर्त्ता थायर्स

---

१. इन दिनों बिस्मार्क अकेला पड़ गया था। वॉन माल्टके और सैनिक दल से उसका झगड़ा था। उसका उत्तराधिकारी राजकुमार (Crown Prince) से भी मतभेद था। अन्य जर्मन राज्यों के नरेशों से भी उसके सम्बन्ध अच्छे न थे। सम्राट् के नाम, लेख या पदवी (Title) के प्रश्न पर उसका प्रशा के सम्राट् से भी मतभेद हो गया था अतः उसने अपने राजा को भी अप्रसन्न कर दिया था। विलियम जर्मनी के सम्राट् बन जाने के कारण यह नहीं चाहता था कि अब वह प्रशा का सम्राट् न रहे। किन्तु यदि आवश्यकतावश उसे प्रशा का सम्राट् का पद छोड़ना भी पड़े तो भी वह जर्मनी का राजाधिराज (Emperor of Germany) बनने को तैयार था किन्तु वह जर्मन राजाधिराज (German Emperor) की पदवी धारण करने का अनिच्छुक था।

२. इस समय फ्रांस में भयंकर अकाल की सी स्थिति थी। लोगों ने हाथियों, बिल्लियों और चूहों तक को भून-भून कर खाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Thiers) ने काफी प्रयत्न किया कि सन्धि की शर्तें कुछ नरम कर दी जाएँ। किन्तु उसके प्रयत्नों को कुछ सफलता न मिली। बिस्मार्क और थायर्स के बीच एक भेंट का वर्णन करते हुए ज्यूल्स फैवर (Jules Favre) ने लिखा है—

थायर्स और बिस्मार्क के बीच भेंट और बातचीत के दौरान

"मुझे अब भी याद है कि बिस्मार्क से भेंट करते समय थायर्स (Thiers) उत्तेजित था और उसका चेहरा पीला पड़ रहा था। कभी तो वह बैठ जाता था और कभी वह यकायक खड़ा हो जाता था। दुःख के कारण उसका गला रुँधा हुआ था; वह शब्दों को चबा जाता था। उसकी आवाज में गिड़गिड़ाहट भी थी और अभिमान भी था। उसके पवित्र किन्तु उत्तेजित हृदय से कभी बिस्मार्क के प्रति प्रार्थनाएँ निकलतीं, कभी वह धमकियाँ देता, कभी वह उसकी खुशामद करता, कभी वह बिस्मार्क का आलिंगन करता और कभी वह भयंकर मुद्रा धारण कर लेता था; और कभी-कभी बिस्मार्क द्वारा बार-बार दुत्कारे जाने पर धीरे-धीरे अधिकाधिक क्रोध प्रदर्शित करता था। वास्तव में मैंने इससे अधिक उत्कृष्ट आवेश की भंगिमा के दर्शन ही नहीं किए।"

किन्तु बिस्मार्क अपनी घोड़ी की सवारी की चमड़े की वर्दी (Cuirassier's Uniform) में देव जैसा महान् डील-डौल वाला व्यक्ति दिखलाई पड़ता था। वह अंत तक कठोर-हृदय बना रहा। १८६६ में बिस्मार्क ने जिन सिद्धान्तों पर आचरण किया था, १८७१ में उन सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं रह गया था। फ्रांस और जर्मनी के बीच किसी ऐसी सन्धि की सम्भावना नहीं थी जिसकी रक्षा करना अभीष्ट हो। बिस्मार्क ने १८७० का युद्ध केवल जर्मनी के एकीकरण के हित में किया था और जर्मनी के एकीकरण का हित इसी में था कि फ्रांस के कुछ भूभागों को जीतकर जर्मनी का एकीकरण पूर्ण किया जाय। वह चाहता था कि जर्मन राष्ट्रमण्डल के स्थान पर एकीकृत जर्मनी का जन्म हो। वह प्राचीन जर्मन गौरव की याद ताज़ा करना चाहता था। नेपोलियन तृतीय और उसकी अस्थायी सरकार के ऊपर विजय मानो लुई चौदहवें (Louis XIV) और हेनरी द्वितीय (Henry II) के ऊपर भी विजय थी। बिस्मार्क की इच्छा थी कि उपर्युक्त सत्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के फ्रेंच राजाओं ने जर्मनी से अल्सेस (Alsace) और लॉरेन (Lorraine) छीन लिए थे, अतः इन दोनों प्रान्तों को फ्रांस से हस्तगत करके जर्मनी के आहत मान की पूर्ति हो सकेगी। सारा जर्मन राष्ट्र एक स्वर से माँग कर रहा था कि एल्सेस और लॉरेन (Alsace and Lorraine) पर जर्मनी का अधिकार हो ही जाना चाहिए, जिससे बिस्मार्क के हाथ मजबूत हो गए थे। सभी चाहते थे कि जर्मनी सुदृढ़ हो और विशेषकर सैनिक दल यह चाहता था कि जर्मनी के सीमान्त पर्याप्त सुरक्षित हों। इसके अतिरिक्त कोई नहीं जानता था कि फ्रांस में अगली सरकार कैसी होगी। जर्मनों ने थायर्स से प्रश्न किया—"हम कैसे विश्वास करें कि आपकी गणतन्त्रीय सरकार स्थायी है या जो सरकार आपकी सरकार के बाद बनेगी, वह स्थायी होगी।"

अंत थायर्स ने चिल्लाकर कहा—"अच्छा, जैसा मन चाहे करो। यह सन्धि-वार्त्ता तो बहाना मात्र है। हमें विश्वास है कि हमें आपका दास होकर रहना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ेगा। हम एक ऐसे नगर की आपसे प्रार्थना कर रहे है जिस पर फ्रांस का पूरा अधिकार हो। किन्तु आप यह भी देने को तैयार नहीं हैं। इसका हम यह अर्थ लगाते हैं कि आप हमें अन्तिम रूप से नष्ट कर देना चाहते हैं। अच्छी बात है! जैसी इच्छा हो करो; हमारे प्रान्तों को उजाड़ो, हमारे घरों को जलाओ और हमारे निरीह नागरिकों के सिरों को काटो—अपने दिल की हसरतें पूरी कर लो। फ्रांस का एक-एक व्यक्ति कट जाना पसंद करेगा किन्तु हम वेइज्जती बर्दाश्त न करेंगे।"

यह निराशा की धमकी थी। वास्तव में थायर्स को शान्ति सन्धि की शर्तों में कुछ रियायत मिल गई थी। हर्जाने की रकम में से जो फ्रांस को अदा करना था, चार करोड़ रकम कम कर दी गई थी। यह रियायत भी कर दी गई थी कि बेल्फ़र्ट (Belfort) का किला, जिसकी रक्षा फ्रांस ने प्राणपण से की थी, फ्रांस के अधिकार में बना रहेगा; शर्त केवल यह थी कि जर्मनों को सैनिक शक्ति के साथ पेरिस में घुस आने की आज्ञा दे दी जाएगी।

२६ फरवरी को शान्ति-सन्धि की प्रारम्भिक शर्तों पर हस्ताक्षर हुए और १० मई को फ्रैंकफ़र्ट की सन्धि के रूप में उसको दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने स्वीकार कर लिया। फ्रांस ने स्वीकार कर लिया कि वह मेट्ज़ (Metz) और स्ट्रैसबर्ग सहित अल्सेस-लॉरेन (Alsace-Lorraine) के प्रान्त जर्मनी को लौटा देगा किन्तु बेल्फ़र्ट और उसके प्रदेश को फ्रांस अपने अधिकार में रखेगा। जो भूभाग फ्रांस के अधिकार में से निकले उनका क्षेत्रफल लगभग ५,००० वर्गमील था और उसमें लगभग १६ लाख जनसंख्या थी और कई प्रकार के लाभदायक लौह-धातु पदार्थों की उस भूभाग में खानें थीं। फ्रांस ने यह भी मान लिया कि वह हर्जाने के रूप में लगभग २० करोड़ पौंड[1] तीन वर्षों के अन्दर जर्मनी को देगा और उक्त तीन वर्षों के काल में फ्रांस की भूमि पर जर्मन सैनिक बने रहेंगे।

फ्रैंकफर्ट की सन्धि (मई १८७१)

फ्रांको-जर्मन (Franco-German) युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी सारे यूरोप का एक प्रतिष्ठित और सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया और बिस्मार्क सारे जर्मनी का अधिपति बन गया। प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का राजनीतिक एकीकरण पूर्ण हुआ। इसी एकीकरण के लिए बिस्मार्क को तीन युद्ध करने पड़े थे। इसी एकीकरण के लिए १८४८ के क्रान्तिकारियों, विचारकों, लेखकों, कवियों, दार्शनिकों और इतिहासकारों ने भगवान् से प्रार्थना की थी और अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य किया था। वह चिर-इच्छित जर्मनी के एकीकरण का स्वप्न पूर्ण हुआ। जर्मनी को अन्य राष्ट्रों में सम्मानपूर्ण स्थान मिला।

युद्ध के फल

अल्सेस और लॉरेन (Alsace and Lorraine) प्राप्त करने के बाद नवीन जर्मन संघ की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी। अब समस्त जर्मन संघ शाही साम्राज्य था। उसका कोई भूभाग न तो प्रशा का ही था और न बवेरिया का था। फ्रांस के शरीर में

---

१. १८०७ में नेपोलियन ने प्रशा से प्रति व्यक्ति के हिसाब से कुछ हर्जाने की रकम तलब की थी। अब की बार उसी हिसाब से जर्मनी ने फ्रांस से रकम हर्जाने के रूप में वसूल की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ख्म हो गए थे जिसमें से काटकर अल्सेस और लॉरेन को निकाला गया था। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में लुई चौदहवें (Louis XIV) ने अल्सेस प्रान्त को जर्मनी से छीन लिया था। अल्सेस वास्तव में जर्मन नागरिकों का प्रान्त था। इसके विपरीत लॉरेन (Lorraine) का अधिकतर भूभाग और मेट्ज (Metz) का नगर मुख्यतः फ्रेंच भूभाग थे। इन भागों को हैनरी द्वितीय के शासन-काल में उस समय फ्रांस में मिला लिया गया था जिस समय जर्मनी में प्रोटेस्टैण्ट युद्ध चल रहे थे। यदि बिस्मार्क की चलती और यदि सैनिक दल ने हठ न की होती तो बिस्मार्क मेट्ज के पूर्व में विभाजन रेखा खींचता। बिस्मार्क ने कहा था—"मैं तो इतने फ्रांसीसियों का अपने घर में प्रवेश अच्छा नहीं समझता।" नीतिशास्त्र के नियमों के अनुसार अल्सेस-लॉरेन का प्रश्न यह सिद्ध करता है कि युद्ध में विजेताओं का विशेष हक़ है। यह प्रश्न यह भी सिद्ध करता है कि राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को मान्यता देनी ही होगी; यह प्रश्न यह भी सिद्ध करता है कि समय ऐतिहासिक स्थितियों को भी बदल देता है और लोग ऐतिहासिक उलटफेरों को भूल जाते हैं। अल्सेस और लॉरेन प्रान्तों के फ्रांस से छीने जाने के कारण राजनीतिक परिणाम यह हुआ कि फ्रांस के ज़ख्म हरे बने रहे और फ्रांस में बदला लेने की भावना बनी रही जो कभी शान्त न हुई; और फ्रांस के दिल पर ऐसी चोट रही जो कभी भरी नहीं। अन्ततोगत्वा केवल ४०-४५ वर्षों के बाद महायुद्ध ने छिने हुए प्रान्तों पर पुनः फ्रांस का झण्डा लहर जाने दिया।

काउण्ट ब्यूस्ट (Count Beust) ने कहा था—"इस युद्ध से मानो यूरोप में एक राजनीतिक सरिता बह निकली है जिसने सारे यूरोप को आन्दोलित कर दिया है।" सीडान (Sedan) के युद्ध का समाचार पाते ही विक्टर इमैन्युएल (Victor Emmanuel) की सेनाएँ रोम में घुस पड़ीं और पोप वैटीकन (Vatican) में अकेला पड़ गया। जब मेट्ज (Metz) का भी पतन हो गया तब सेंट पीटर्सबर्ग की ओर से यह सुझाव आया और गौर्टज़चेक़ाफ़ (Gortschakoff) ने पेरिस की सन्धि की काला सागर सम्बन्धी धाराओं को काट दिया और क्रीमिया युद्ध के आधे लाभों को त्याग दिया। जर्मनी में ऐसे साम्राज्य की स्थापना हो गई जो ऑस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त था और फ्रांस में गणराज्य की स्थापना हो गई। उस समय प्रशा का सम्राट् विलियम (William of Prussia) सबसे बड़ा राजाधिराज था और नेपोलियन तृतीय केण्ट (Kent) के एक गाँव में निर्वासित जीवन बिता रहा था।

पोप की सांसारिक शक्ति का नाश हो गया और रोम संगठित इटली की राजधानी बन गया

फ्रांस में बोनापार्ट राजपरिवार का अन्त हो गया। किन्तु यह कोई आकस्मिक घटना न थी। वास्तव में फ्रांस के द्वितीय साम्राज्य का पतन इसलिए भी अवश्यम्भावी हो गया था कि १६८० से ही साम्राज्य की जड़ें खोखली पड़ रही थीं। नेपोलियन तृतीय के साथ विशेष दुःखद घटना यह हुई कि वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के बाद भी जीवित बना रहा। १८६० तक उसके जीवन का चरम उत्कर्ष हो चुका था। १८६० तक वह सफलतापूर्वक बोनापार्ट राजवंश के पैर फ्रांस

बोनापार्टवाद का अन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भूमि में अच्छी तरह से जमा चुका था। वह यूरोप को विश्वास दिलाने में सफल हो चुका था कि द्वितीय फ्रेंच साम्राज्य में नेपोलियन का ओज वर्तमान है। बहुत-से समझदार व्यक्ति नेपोलियन तृतीय को बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ समझने लगे थे जो १८५१ तक उसको केवल एक मूर्ख और गधा[1] समझते थे। उसकी स्थिति की असंगतियाँ और उसकी नीति की असम्बद्धताएँ उस समय तक कभी प्रकट नहीं हुईं और उनका उसके शासन के ऊपर कुप्रभाव स्पष्टतः दिखाई नहीं पड़ा। वास्तव में नेपोलियन तृतीय की स्थिति विषम थी। जो रोल वह अदा करने का दावा करता था उसके लिए वह योग्य न था। उसने निरंकुश उपायों द्वारा निरंकुश राज्य की स्थापना की थी किन्तु यथार्थतः वह निरंकुश शासक नहीं था। उसने स्वेच्छा से बोनापार्टवादी भावना का संचार किया था किन्तु जब बोनापार्टवाद ने उसके शासन को दबा दिया तब वह उसके दुष्प्रभावों से अपने आपको बचा न सका। वास्तव में उसकी इच्छा यह थी कि नेपोलियन की नाम पूजा (Hero Worship) के आधार पर और विविध हितों के आधार पर नेपोलियन के साम्राज्य की स्थापना हो।

वास्तव में नेपोलियन तृतीय न तो अनुदार था और न अज्ञानी, किन्तु "उसके दिमाग में इतनी असम्बद्ध योजनाएँ भरी रहती थीं जितनी कि जंगल की किसी रक्ष-भूमि में खरगोश भरे रहते हैं।" फ्रांस में उसने लोगों के सुख और समृद्धि में वृद्धि की, अच्छे मकानों की व्यवस्था की, गरीब वर्ग को दवा-दारू, वैधिक और व्यावसायिक सुविधाएँ और आर्थिक सहायता प्रदान की। उसके शासन-काल में कृषि, उद्योग, शिक्षा और ललितकलाओं के क्षेत्र में फ्रांस ने अपार उन्नति की। उसने अनेक बन्दरगाहों का निर्माण कराया, नई नहरों, सड़कों और रेलों का निर्माण किया। पेरिस में नेपोलियन तृतीय के व्यक्तिगत निर्देशन में एम० होसमैन (M. Haussmann) ने नगर पुनर्निर्माण किया। उसने पेरिस में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आयोजन किया जिससे दुनिया के लोग पेरिस की ओर आकृष्ट हुए। इतनी सर्वांगमुखी प्रतिभा का आदमी होते हुए भी वह देश की किसी राजनीतिक पार्टी को अपने साथ न रख सका। समाजवादी (Socialists) भी उसके विरुद्ध थे, गणतन्त्रवादी भी उससे चिढ़ते थे और राजतन्त्र समर्थक लोग भी उससे प्रसन्न नहीं थे। उसकी व्युत्पन्न निरंकुशता (Enlightened Despotism) किसी के गले नहीं उतरी क्योंकि उसकी कठोर निरंकुशता के प्रभाव में उसकी व्युत्पन्नता का प्रभाव क्षीण हो गया। उसने १८६० के निरंकुश साम्राज्य को संसदीय शासन-प्रणाली के इंजेक्शन द्वारा १८७० के उदारवादी साम्राज्य में बदल दिया था। तथापि, वह उदार वर्ग (Liberals) को भी प्रसन्न न रख सका। जो कुछ रियायतें वह देता था उनसे सदैव ऐसा आभास मिलता था कि मानो वह प्रबल जनमत के प्रभाव से दबकर रियायतें दे रहा है। उसने ऐसा आभास कभी नहीं दिया कि वह जनमत का नेतृत्व करता है। उसकी नीतियों से उसकी कमजोरियों का ही आभास मिलता था। वह कभी निर्माणकारी प्रतीत

१. नेपोलियन तृतीय के एक रिश्तेदार ने कहा था कि नेपोलियन तृतीय ने दो बार यूरोप को सफलतापूर्वक धोखा दिया था। एक बार तो वह मूर्ख समझा जाकर साफ बच गया और दोबारा उस समय जब वह सफल राजनीतिज्ञ माना गया और इस प्रकार बच गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता था। यद्यपि उसके काल में उद्योगों की वृद्धि हुई फिर भी व्यापारिक वर्ग उससे असन्तुष्ट था क्योंकि उसने इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देशों के साथ मुक्त व्यापार की नीति अपनायी थी। यहाँ तक कि स्वयं चर्च ने उसकी इटालवी सफलताओं को धिक्कारा और उसको देशद्रोही तक कहा यद्यपि तथ्य यह था कि चर्च को प्रसन्न करने के लिए तो उसने राजमुकुट के लिए संकट मोल ले लिया था।

वास्तव में नेपोलियन तृतीय फ्रांस के ऊपर शासन करने नहीं आया था, वह तो महान् व्यक्तियों के दरबार से, अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों से, सुदूर उपनिवेश प्राप्त करके स्वेज (Suez) नहर[1] तैयार कराके, चीन और सीरिया पर आक्रमण करके, मैक्सिको (Mexico) में अपना साम्राज्य स्थापित करके और जोरदार विदेश नीति द्वारा फ्रांस को चमत्कृत कर देना चाहता था। वह सैनिक विजयों द्वारा एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था जिसका ध्येय संसार में शान्ति स्थापित करना बताया गया था।

उसकी विदेश नीति प्रारम्भ में तो सफल दिखाई देती थी किन्तु अन्त में वह भी असफल रही। १८६० के बाद फ्रांस के ऊपर नियन्त्रण तभी रह सकता था जब उसकी विदेश नीति को सफलता मिलती चली जाती। किन्तु दुर्भाग्यवश सफलताओं ने उसका साथ छोड़ दिया। वह किसी शत्रु को कूटनीति में परास्त नहीं कर सका और किसी राष्ट्र की मित्रता को अपने पक्ष में न रख सका। उसने डेनमार्क (Denmark), पोलैण्ड (Poland) और ऑस्ट्रिया (Austria) के मामलों में हस्तक्षेप किया किन्तु तीनों प्रश्नों में उसको अपयश ही पल्ले पड़ा। १८६० के लगभग उसने कई वर्षों तक प्रयत्न किया था कि मैक्सिको (Mexico) में लैटिन कैथोलिक साम्राज्य की स्थापना करे जबकि प्रशा की शक्ति में निरन्तर विस्तार हो रहा था; वास्तव में इसका फल फ्रांस के लिए बुरा हुआ क्योंकि फ्रेंच सेनाओं की पराजय हुई, ऑस्ट्रिया का आर्च ड्यूक मैक्सीमिलियन, जिसे सम्राट् नेपोलियन ने मैक्सिको का सम्राट् बनाने का आश्वासन दे दिया था, मार दिया गया और अन्त में संयुक्त राज्य अमेरिका के इशारे पर यह साहसिक अभियान रोक दिया गया। शाही खजाना खाली हो गया और फ्रांस की प्रतिष्ठा को इतनी हानि पहुँची जो शायद कभी पूरी न हो सकी।[2]

---

१. स्वेज नहर (Suez Canal) का वास्तुकार (Architect) एम० डी० लैसेप्स (M. de Lesseps) था। वह नेपोलियन की स्त्री सम्राज्ञी यूजीनी (Empress Eugenie) का भाई (Cousin) था।

२. नेपोलियन तृतीय ने मैक्सिको (Mexico) में जो साहसिक अभियान किया था उसकी तुलना नेपोलियन प्रथम द्वारा ल्यूसियाना (Louisiana) के संयुक्त राज्य अमेरिका को हस्तान्तरित कर देने अथवा सैन डोमिंगो (San Domingo) के द्वीप पर नेपोलियन प्रथम द्वारा आक्रमण से की जा सकती है। दक्षिणी अमेरिका में किए गए तीनों प्रयत्न विफल हुए। जब मैक्सिको (Mexico) अपने विदेशी ऋणों को न चुका सका तो फ्रांस (France), इंग्लैण्ड (England) और स्पेन (Spain) ने सम्मिलित हस्तक्षेप करने का इरादा किया। "किन्तु एक ओर इंग्लैण्ड चाहता था कि मैक्सिको में उसकी पूंजी व्यर्थ गई, उसके बदले में उसे चुंगी में ही छूट मिले; स्पेन सोच रहा था कि मैक्सिकों में उसी का राजकुमार राजा बने किन्तु नेपोलियन तृतीय सोच रहा था कि मैक्सिको में महान् कैथोलिक और लैटिन साम्राज्य की स्थापना करे और इस प्रकार एक साथ कैथोलिक और उदार वर्गों को प्रसन्न करे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि क्रीमिया युद्ध में इंग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता दृढ़ दिखाई देती थी किन्तु श्लैसविग-हॉल्स्टीन के प्रश्न तक वह मित्रता काफूर हो गई थी। पेरिस की सभा (Congress of Paris) के बाद नेपोलियन ने रूस से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न किया था किन्तु १८६३ के पोलैण्ड के विद्रोह में उसकी सहानुभूति विद्रोहियों के साथ थी अतः उसने रूस को अप्रसन्न कर दिया। पोलैण्ड के विद्रोह में बिस्मार्क ने रूस की सेवा की थी अतः उसको रूस की मित्रता प्राप्त हो गई। नेपोलियन ने इटली के साथ भारी उपकार किये थे किन्तु इटली को भी वह ऋणी न कर सका था। सैवॉय छीन लेने से मेजेंटा (Magenta) ही हाथ से निकल गया था और पोप का समर्थन करते रहने से नेपोलियन ने इटली के राज्य की सहानुभूति को खो दिया। इसी प्रकार उसने १८६६ में प्रशा को अप्रसन्न कर दिया यद्यपि वह ऑस्ट्रिया को अपने पक्ष में न कर सका।

फिर भी यह स्वीकार करना ही होगा कि उसकी नीति खुदगर्जी की नीति नहीं थी जैसी कि तत्कालीन अन्य यूरोपीय राज्यों की थी। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने के लिए वह यूरोपीय सभा (European Congress) का समर्थक था; वास्तव में यह यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) के आदर्श की ओर वापस जाने का संकेत था। सचाई यह है कि वह वर्तमान काल के सहयोगपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के आदर्श की ओर संसार को ले आना चाहता था। वह यूरोपीय देशों की राष्ट्रीय भावनाओं का समर्थक था यद्यपि यह भी माना जा सकता है कि उसके तथाकथित समर्थन के पीछे भी फ्रांस का हित-साधन कार्य करता था। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि उसने बजाय यूरोप का सही मार्ग-दर्शन करने के यूरोप को भ्रान्ति में डुबोये रखा और अन्त में यूरोप के लोगों में न तो नेपोलियन को कोई ठीक ठीक समझ सका और न कोई उसके ऊपर विश्वास करता था।

उसकी गृह नीति और विदेश नीति दोनों अविश्वसनीय थीं और दोनों में असम्बद्धताएँ थीं। वह सदैव तात्कालिक समस्या को अप्रभावी उपाय द्वारा टालने का प्रयत्न किया करता था। वह कहा करता था, "मैं कभी दूर की योजनाएँ नहीं बनाता। मैं तो तात्कालिक समस्या का हल ढूंढ़ता हूँ।" नेपोलियन तृतीय की महत्त्वाकांक्षाएँ, उसके हित और उसके सिद्धान्त सदैव परस्पर विरोधी थे। वास्तव में 'तुच्छ नेपोलियन' तृतीय में नेपोलियन महान् की क्षमताओं का अभाव था। भाग्य के ऊपर उसका अटूट विश्वास था। उसको अपने ऊपर विश्वास नहीं था, अतः उसके प्रत्येक कार्य से मूर्खता टपकती थी। उसके विचारों में असम्बद्धता रहती थी और वह कोई प्रभावी निर्णय नहीं कर पाता था। जिस प्रकार कि बिना प्रयत्न किए हुए उसे अनायास ही फ्रांस का साम्राज्य हस्तगत हुआ था उसी प्रकार उसे आशा थी कि सभी बातों में भाग्य ही उसको सफल बनावेगा। उसके राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में उसकी बीमारी के कारण भी उसका नियन्त्रण ढीला पड़ गया था। ऐसे आदमियों के सेवक अपने मालिकों की सेवा सच्चे मन से नहीं करते। फ्रेंच साम्राज्य में उस समय सत्यनिष्ठ सेवकों की भारी कमी थी। बोनापार्ट राजवंश की फ्रांस में इस कारण प्रतिष्ठा थी कि वह कुशल प्रशासन और शक्ति का प्रतीक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता था किन्तु दुर्भाग्यवश नेपोलियन तृतीय के समय का बोनापार्ट शासन-प्रबन्ध भ्रष्टाचार, अयोग्यता और पराजय का प्रतीक बना रहा और १८७० में अकेला फ्रांस ही विनाश को प्राप्त हुआ क्योंकि तत्कालीन फ्रांस का सर्वेसर्वा ऐसे सितारे के प्रकाश के सहारे अपने राज्य पोत को किनारे ले जाना चाहता था जो मन्द पड़ चुका था।

४. रूस, १८५५—८१

कहा जाता है कि क्रीमिया युद्ध एक प्रकार से यूरोपीय इतिहास का विभाजक मोड़ था। क्रीमिया युद्ध ने विशेष रूप से रूस के इतिहास पर प्रभाव डाला। रूस की पराजय के कारण निकॉलस प्रथम की शासन-व्यवस्था को दोषी ठहराया गया और अब प्रजातन्त्र की ओर लोगों का ध्यान गया। वास्तव में रूस के आन्तरिक इतिहास पर क्रीमिया युद्ध के पश्चात् उस युद्ध का स्पष्ट प्रभाव पड़ता रहा है।

निकॉलस प्रथम का शासन (१८२५-१८५५)

निकॉलस प्रथम अपने शासन-काल के तीस वर्षों में लगातार स्वेच्छाचारी बना रहा। उसने स्वेच्छाचारी शासन के अभिरक्षण के लिए अपनी सेनाओं को दूर-दूर भेजा। रूस में उसने हर सम्भव उपाय द्वारा उदार विचारधारा का दमन किया। पश्चिमी सीमाओं पर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था ताकि पश्चिमी विचारधारा रूस में प्रवेश न कर सके। विदेशी राजनीतिक अथवा दार्शनिक साहित्य को रूस से दूर रखने का प्रयास किया जाता था। रूसी प्रजाजनों को विदेशों में जाने की मनाही थी। देशी समाचार-पत्रों पर कठोर नियन्त्रण था और जो लेखक सरकार के विरुद्ध लिखने का साहस करते थे, उनकी आवाज बन्द कर दी जाती थी। सम्राट की सेवा में कार्य करने वाले बड़े-से-बड़े अधिकारियों और छोटे-से-छोटे सेवकों तक की आलोचना करना निषिद्ध था; यहाँ तक कि सरकारी थिएटरों में नाटक का पात्र भी किसी सरकारी अफसर या छोटे सेवक की आलोचना नहीं कर सकता था। विश्वविद्यालयों में केवल सरकार द्वारा स्वीकृत प्राध्यापक ही नियुक्त किए जा सकते थे और सरकार द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम ही अपनाया जा सकता था। सैनिक स्कूलों की संख्या बढ़ा दी गई थी और पुलिस को अनियन्त्रित शक्तियाँ दे दी गई थीं जिनके आधार पर वे किसी भी व्यक्ति को वे चाहें तो गिरफ्तार करें, चाहें तो जेल में डाल दें, चाहें तो निर्वासित कर दें और यदि पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी चाहे तो उसके इशारे पर किसी आदमी को जान से भी मारा जा सकता था। वास्तव में पुलिस को जार की प्राइवेट सरकार का तीसरा विभाग माना जाता था।

रूसी साहित्य को इस दिशा में प्रोत्साहन दिया जाता था कि लोग साहित्य में रुचि लें ताकि राजनीति में उनकी रुचि न हो; राष्ट्रवाद की भावना पर बल दिया जाता था ताकि लोगों पर अन्तर्राष्ट्रीय उदारवाद का रंग न चढ़ने पावे। सारे राष्ट्र को सैनिक अनुशासन में रखा जाता था ताकि सभी नागरिक एक विशेष प्रकार से सोचें और सभी लोगों की विशेष प्रकार की आदतें बनें।

जिस समय रूस में ऐसी आन्तरिक स्थिति थी तभी, रूस की क्रीमिया युद्ध में पराजय हुई। अतएव रूसी स्वेच्छाचारी सम्राट की सेनाओं की उदारवादी पश्चिमी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशों की सेनाओं द्वारा पराजय हुई। रूस का शाही खजाना खाली था। वास्तव में सम्राट के कृपापात्र और विश्वासपात्र सेवकों की अयोग्यता और बेईमानी के कारण ही सारा खजाना खाली हो गया था। अब तक प्रजा इन बेईमान अफसरों और साम्राज्य के सेवकों की आलोचना भी न कर सकती थी। राष्ट्र के सैनिक आदर्श के पीछे सभी आदर्शों और स्वार्थों को तिलांजलि दे दी गई थी, किन्तु उन सैनिक आदर्शों द्वारा पराजय का मुख देखना पड़ा था। निकॉलस प्रथम की शासन-व्यवस्था की उन्हीं आधारों पर आलोचना की जा रही थी जिन आधारों पर कि दस वर्ष बाद प्रशा में बिस्मार्क की शासन-व्यवस्था की प्रशंसा की गई। रूसी असफलता के कारण रूसी निरंकुशता की बुराई की गई और क्रीमिया युद्ध के पूर्व रूस में जो व्यापक असन्तोष पाया जाता था यही असन्तोष विद्रोह का रूप धारण कर बैठा। हस्तलिखित पर्चों द्वारा उदारवादी साहित्य का प्रचार किया जा रहा था। इस प्रकार के हस्तलिखित साहित्य में तत्कालीन सरकारों के विरुद्ध भी व्यंग और उपहास (Satire) रहता था, सरकारी अफसरों की निन्दा रहती थी और तरह-तरह के आक्षेप भी रहते थे।[1] यह साहित्यिक आन्दोलन इतना प्रचण्ड था और इस आन्दोलन ने सर्वसाधारण को नैराश्य के वातावरण में इतनी आशा बँधाई कि समस्त रूसी समाज पर इसका उतना ही व्यापक प्रभाव पड़ा जितना कि फ्रेंच राज्य-क्रान्ति के पूर्व फ्रेंच समाज आन्दोलित था।

१८५५ के आरम्भ में निकॉलस प्रथम की मृत्यु के साथ और जार मुक्तिदाता

---

१. सर डोनाल्ड मैकेन्जी वैलेस (Sir Donald Mackenzie Wallace) ने अपनी पुस्तक 'रूस का इतिहास' में उस साहित्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो उस काल में प्रसारित होता था यद्यपि वह छपा हुआ साहित्य न था :

"जार ने हमसे कहा—'परमात्मा ने मुझे रूस के ऊपर शासन करने के लिए नियुक्त किया है इसलिए प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह मेरा सम्मान करे क्योंकि मेरा राजसिंहासन परमात्मा की ही वेदी है। प्रजागण ! तुम लोग सार्वजनिक मामलों और शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में परेशान न हो क्योंकि मैं तुम्हारा ध्यान रखता हूँ और हर समय तुम लोग मेरे मन में निवास करते हो। मेरे अन्तश्चक्षु आन्तरिक गड़बड़ियों का भी पता रखते हैं और विदेशी षड्यन्त्र भी मुझसे छिपे नहीं रह सकते। प्रजाजन ! मुझे सार्वजनिक प्रशासन में किसी से मन्त्रणा लेने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि स्वयं परमपिता मेरा मार्ग-दर्शन करता है। इसलिए रूस के प्रजाजन ! तुमको मेरी अधीनता में गर्व का अनुभव करना चाहिए और मेरी इच्छा को ही सर्वोच्च विधि समझना चाहिए।'

"हमने सम्राट् के उपर्युक्त शब्दों को ध्यान से सुना और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। इसका फल क्या हुआ ? सरकारी फाइलों के पहाड़ में वास्तविक हितों की कौन चिन्ता करता था ? विधि को शाब्दिक अर्थों में लिखा जाता था किन्तु पापी और दुराचारी सजा नहीं पाते थे। अधिकारी वर्ग मन्त्रियों की आँखों में धूल झोंककर और विभागीय अध्यक्षों को धोखा देकर खूब चोरी करते थे। चोरी खुले आम होती थी और जो जितनी चोरी करता था उसका उतना ही आदर बढ़ता था। कार्यालयों में सेवकों की भर्ती योग्यता के आधार पर नहीं की जाती। अस्तबल का रक्षक समाचारपत्रों का दोषवेक्षक (Censor) बन सकता था और एक शाही परिवार से सम्बन्धित मूर्ख नौसेनापति (Admiral) बन सकता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एलेक्जैंडर द्वितीय के राज्यारोहण के साथ रूस में सुधार प्रारम्भ हुए। एलेक्जैंडर द्वितीय दयालु प्रकृति का आदमी था और उसमें सैनिक की सी कर्कशता न थी। उसको इतनी शिक्षा न मिली थी कि उसके कुछ अपने राजनीतिक विचार होते। वह केवल दरबारी रीति-रिवाजों से परिचित था। अपने राज्याभिषेक के समय तक उसने कभी ऐसा आभास नहीं किया था कि उसके हृदय में कुछ पक्षपात हो या वह स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ सोच सके। किन्तु वह निस्सन्देह रूस को प्यार करता

एलेक्जैंडर द्वितीय (१८५५-८१)

"और इस काल में हम रूसी लोग क्या करते रहे?

"हम रूसी लोग सोते रहे। आहें और सिसकियाँ भरते हुए किसान वार्षिक लगान देते रहे। अफ़सोस के साथ जमीनों के मालिक अपनी जमीनों को कर्जदार के हाथों गिरवी रखते रहे। आँसुओं के साथ हम सरकारी अफ़सरों की इच्छा-पूर्ति करते रहे। कभी साहस बटोरकर हम चुपके-चुपके यह भी कहते कि यह शर्मनाक बेइज्जती की स्थिति है। हम जानते थे कि न्यायालयों में न्याय नहीं था; हम यह भी जानते थे कि सम्राट् के सैर-सपाटों में और डेरे-खेमों में करोड़ों का धन व्यय होता था; हम यह भी जानते थे कि सारी व्यवस्था गलत थी फिर भी हम बिना विचारे अपने कार्यों में व्यस्त रहते थे। हम नाच-गान और थियेटर में अपने चित्त की उद्विग्नताओं को शान्त कर लेते थे और फिर अपने मालिकों के आगे माथा झुकाने में गौरव का अनुभव करते थे और फिर उसी प्रकार एक-दूसरे के साथ झगड़ते रहते और उसी दूषित सरकार की सेवा करने में अपना गौरव अनुभव करते थे जिसको हम बुरा कहते थे। यदि हमें इच्छित पद न मिलते थे तो हम अपने देहातों को चला जाना पसन्द करते थे जहाँ हम फसलों के बारे में बात-चीत करते थे, आलस्य और पेटूपन में रत रहते थे और बिलकुल जंगली जीवन बिताते थे, जहाँ हम सभी निकम्मे और सुस्त थे, यदि हम में कोई हमको कहता था कि उठो और सत्य की रक्षा के लिए और रूस के लिए हथियार उठा लो तो ऐसा व्यक्ति हमको भारी अखरता था। और दुष्ट अधिकारी-वर्ग भी ऐसी वीर आत्मा को कष्ट देते थे और उसके कल के मित्र उसका साथ छोड़ देते थे। सारा जनमत ऐसी वीर आत्मा के विरुद्ध हो जाता था और प्रायः ऐसे आदमी को साइबेरिया की दूरस्थ कन्दराओं में डाल दिया जाता था; जहाँ वह रह-रह कर इसी निर्णय पर पहुँचता था कि उसने निश्चय ही कोई महान् पाप किया जो गुलामों को मोहनिद्रा से जगाने का दुस्साहस किया।

"किन्तु इस दयनीय स्थिति के बावजूद हमें एक सन्तोष था और हमें इस बात का अभिमान था कि सारे देशों में रूस सर्वाधिक शक्तिशाली था। हम सोचते थे, 'विदेशी शक्तियों की आलोचना की हमें क्या चिन्ता! हम उनसे अधिक शक्तिशाली हैं जो हमारी आलोचना करते हैं।' ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ, फ्रांस का षड्यन्त्रकारी सम्राट् और विश्वासघाती ऑस्ट्रिया—इन तीनों ने मिलकर सारे पश्चिमी यूरोप को हमारे विरुद्ध कर दिया है किन्तु आने वाले भयंकर तूफान की ओर से हम बिलकुल निश्चिन्त थे। हमने सोचा : देखें यूरोपीय राष्ट्र हमारा क्या बिगाड़ते हैं! हमें डरने की आवश्यकता ही नहीं है। ज़ार अपनी अन्तर्दृष्टि से देख रहा है और उसने सब कुछ प्रबन्ध पहले से ही कर रखा है। हम इसलिए निर्भीकता से लड़ने गये और युद्ध की घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे।

"किन्तु अफ़सोस! हमारी सारी शेखी के बावजूद हम बेसुध रहे और शत्रु ने हमें ऐसे घेर लिया मानो अँधेरे में हमें किसी डाकू ने घेर लिया हो। एक अधि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और रूस की गिरावट से उसको तकलीफ़ थी और इस दिशा में वह अपना कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व समझता था। वह कोरा सिद्धान्तवादी ही न था और अपने चाचा एलेक्जैंडर प्रथम की भावुकता और रसिकता से वह चिढ़ता था। अपने राज्याभिषेक के तुरन्त बाद जिन आश्चर्यजनक सुधारों का उसने श्रीगणेश किया था, वे वास्तव में उसके लोकतन्त्रीय विश्वासों के प्रतीक न थे, बल्कि उन सुधारों की व्यावहारिक आवश्यकता अनुभव करता था। रूस की गिनती अब संसार की बड़ी शक्तियों में न रह गई थी, इसलिए अब इस बात की व्यावहारिक आवश्यकता थी कि रूस संसार की बड़ी शक्ति तभी बन सकता था जब उसकी अर्थव्यवस्था ठीक हो। उसने कोई कठोर नीति नहीं बनाई। सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में भी उसने कोई लम्बा-चौड़ा प्रोग्राम नहीं बनाया। उसने समय की आवश्यकताओं और साधारण मनुष्यत्व की आवश्यकताओं को समझा। तथापि, उसने क्रान्तिकारी सुधारों का मार्ग नहीं लिया। उसने सम्राट् के विशेषाधिकारों की प्राणपण से रक्षा की। उसने केवल वही सुधार किये जिनके लिये वह तैयार था।

सबसे पूर्व उसने उन निष्कासित डिकेब्रिस्टों (Dekabrist Exiles) को मुक्त कर दिया जो अभी तक जीवित थे। ३० वर्ष पूर्व निकॉलस प्रथम के राज्यारोहण के समय इन डिसेम्ब्रिस्ट या डिकेब्रिस्ट विद्रोहियों ने सैनिक गदर किया था जिसके कारण

कार्से ने हमें आदेश दिया कि आक्रमण करो किन्तु तुरन्त ही दूसरा आदेश आया कि पीछे हटो। अब तो सारी सेना बिना किसी लक्ष्य और उद्देश्य के इधर-उधर बिखरी पड़ी थी। हमने अपार हानि और लज्जा के साथ सिलिस्ट्रिया (Silistria) के किलों को त्याग दिया और हैब्सबर्ग परिवार ने रूस का मानमर्दन जी भर कर किया।

"रूसवासियो! जागो। विदेशी शत्रुओं ने तुम्हें डस लिया है। गुलामी से तुम पिस चुके हो! शर्म, अज्ञान और उदासीनता के कारण तुम्हारा सर्वनाश हो चुका है। भेदियों और स्वदेशी अधिकारियों ने तुम्हारा खूब खून चूसा है, इसलिए तुम सावधान हो जाओ। तुम मंगोल और खान लोगों की वंशजों की अधीनता में बहुत दिन रह चुके हो। स्वेच्छाचारी शासक के सामने धैर्य से डटे रहो और उससे इस राष्ट्रीय संकट का जवाब तलब करो। उसको स्पष्ट बता दो कि राजसिंहासन परमात्मा की वेदी नहीं है और परमात्मा ने हमें सदैव दास रहने के लिए नहीं कहा है।

"ओ पापी ज़ार! रूस ने तुम्हें सारी सत्ता दे डाली और तुम्हें इस पृथ्वी का मानो देवता बना दिया। किन्तु तुमने क्या किया है? तुमने सत्य का दमन किया और भगवान के मन्दिरों के दरवाजों को बन्द कर दिया है। तुमने कब्रगाहों पर पहरेदार बिठा दिये हैं और अभिमान से तुमने कहा है—'इन मुर्दों (रूसवासियों) के लिए मृत्यु से छुटकारा नहीं है। किन्तु अब तृतीय दिन आ पहुंचा है और मृतात्माओं से सत्य का उदय हुआ है।'

"ऐ ज़ार! तुम्हें इतिहास और परमात्मा के न्याय के सामने खड़ा होना ही होगा।

"तुम अपने देशवासियों से क्षमा माँगो और उनके पैरों की धूल चाटो। अब तुम सभी लोगों के समान स्तर पर आ जाओ। तुम्हारे उद्धार का केवल एक यही उपाय है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें साइबेरिया को निर्वासित कर दिया गया था। इन्हीं विद्रोहियों ने वास्तव में निकॉलस प्रथम को कठोर राजनीति बरतने की ओर विवश कर दिया था। इसके बाद एलेक्जैंडर द्वितीय ने देश के प्राकृतिक संसाधनों के विकास की ओर ध्यान दिया। उद्योगों, वाणिज्य और नियोजन का विकास किया। इन सुधारों और विकासों के फलस्वरूप देश की सैनिक स्थिति सुधरी और आर्थिक स्थायित्व का अनुभव होने लगा। इसके बाद सारे देश में रेलों का निर्माण किया गया। वास्तव में रेल-व्यवस्था के अभाव में ही तो क्रीमिया युद्ध में रूस को पराजय का मुख देखना पड़ा था। किन्तु रूस में सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की थी कि दास-प्रथा का अन्त हो। यह एक ऐसी सामाजिक कुरीति थी जिसके कारण रूस सभ्य देशों में हीन समझा जाता था। इस सामाजिक दोष के कारण रूस की सुरक्षा को भी खतरा था और रूस का आर्थिक विकास अवरुद्ध था।

सुधारों के प्रथम दस वर्ष

रूस में लगभग ४½ करोड़ दास थे। यह संख्या सारे रूस की जनसंख्या की प्रायः आधी थी। २·३ करोड़ दास तो सम्राट् के दास थे और शेष दासों पर कुलीनों (Lords), चर्च और अन्य सामन्ती संस्थाओं का अधिकार था। सम्राट् की अधीनता वाले दासों की अवस्था फिर भी अच्छी थी किन्तु प्राइवेट दासों को नारकीय यातनाएँ सहन करनी पड़ती थीं। सम्राट् के अधीन दासों पर भारी कर लगे हुए थे। उनसे बेगार (Forced Labour) ली जाती थी और उनको तरह-तरह की भेंटें और आर्थिक दण्ड (Extortion and Oppressive Fiscal Dues) देने पड़ते थे। उनकी गतिविधियों पर उतना ही कठोर नियन्त्रण रखा जाता था जितना कि उनको सम्पत्ति अर्जित करने का या बेचने का अधिकार प्राप्त था। किन्तु सरकारी कृषक दासों को मीरों या ग्राम जाति (Village Communities or Mirs) के रूप में संगठित किया गया और इन मीरों या ग्राम जातियों को किसी सीमा तक स्वायत्तता दे दी गई। यह स्वायत्तता स्थानीय निर्वाचित काउन्सिलों (Elected Councils) और ग्राम पंचायतों (Village Elders) द्वारा दी गई थी। इसके विपरीत उन दासों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी जो प्राइवेट कुलीनों या चर्च या संस्थाओं के दास थे। जैसा स्वामी होता था, उसी प्रकार का व्यवहार कृषक दास को मिलता था, अर्थात् विभिन्न स्वामियों से विभिन्न प्रकार का व्यवहार प्राप्त होता था। इन प्राइवेट दासों को हर प्रकार की यातनाएँ सहन करनी पड़ती थीं, किन्तु उनकी इन यातनाओं के विरुद्ध रक्षा करना प्रायः असंभव था। दासों को कष्ट देने के अनेक उपाय थे। रूस में दासों के सम्बन्ध में ऐसी विधियों का प्रचलन था जिनके आधार पर "दासों का स्वामी (Proprietor) अपने अधीन दासों से मनमानी बेगार (Forced Labour) ले सकता था, मनमाना धन उनसे ऐंठा जा सकता था और उनसे हर प्रकार की सेवा ली जा सकती थी।" यदि दासों का स्वामी (Proprietor) चाहता तो दासों को मनमाने ढंग से बेच सकता था, यदि चाहता तो उन्हें साइबेरिया (Siberia) को निर्वासित कर सकता था या उनको जबर्दस्ती

कृषक दासों की मुक्ति (१८६१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर मुंडवाने के लिए बाध्य किया जा सकता था अर्थात् उनको सेना में रंगरूटों के रूप में दिया जा सकता था।

बड़े-बड़े जमींदारों ने अपनी आय बढ़ाने की धुन में फैक्टरियाँ स्थापित की थीं। इन फैक्टरियों में सैकड़ों दासों की जानें जाती थीं। उनको अमानवीय यातनाएँ दी जाती थीं, उनको तंग सुरंगों (Underground Cellars) में बन्द कर दिया जाता था, उनको लोहे की जंजीरों से बाँधा जाता था और उनको लोहे के कोड़ों (Knout) से यहाँ तक मारा जाता था कि उनके प्राण भी ले लिये जाते थे। ऐसी सब कष्ट-गाथाएँ और इस प्रकार की अन्धेरगर्दियाँ प्रकाश में आईं। इन दासों को कष्ट देने वाले स्वामियों में अधिकतर वे लोग थे जिन्हें राज्य में उच्च पद प्राप्त थे या जिनके पास बहुत सम्पत्ति थी या जिन लोगों को सेंट पीटर्सबर्ग में महान् राजनीतिज्ञ समझा जाता था या जिन्हें सेंट पीटर्सबर्ग में महान् मनुष्य-प्रेमी (Philanthropist)[1] समझा जाता था।

१७८९ से पूर्व रूस के कृषक दासों की स्थिति फ्रांस के कृषक दासों की अपेक्षा कहीं अधिक दयनीय थी। वास्तव में वे गुलाम थे। किन्तु १८६१ से पूर्वकालिक रूस में और १८६५ से पूर्व संयुक्तराज्य अमेरिका में कृषक-दासों और गुलामों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी और वे अपने भाग्य से संतुष्ट थे और अनेक देशों के स्वतन्त्र नागरिकों की अपेक्षा भी उनकी स्थिति अच्छी थी—किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हम इस कथन से गुलाम प्रथा का समर्थन कर रहे हैं।

इस दास-प्रथा का आवश्यक परिणाम यह था कि कृषक-दासों के स्वामी लोग (Proprietors) नैतिक रूप से पतित थे, उनका आर्थिक विकास अवरुद्ध था और उन्हें सदैव विद्रोहों और गदर का भय घेरे रहता था। पीटर तृतीय (Peter III) के ज़माने से ही अर्थात् १७६२ के लगभग कुलीनों को सैनिक सेवा से मुक्ति प्राप्त हो गई थी। तभी से कृषक-दास अपनी मुक्ति के लिए लालायित थे। जिस प्रकार कुलीन वर्ग आवश्यक सैनिक सेवा से बचना चाहते थे उसी प्रकार कृषक-दास भी दासता से मुक्ति पाना चाहते थे; और चूँकि कुलीन वर्ग को सैनिक भर्ती से स्वतन्त्र कर दिया गया था तो फिर कोई कारण न था जो कृषक-दासों को भी दासता से मुक्ति न मिलती। निकॉलस प्रथम (Nicholas I) के राज्य-काल में अनेक विद्रोह हुए। इससे स्पष्ट हो गया था कि दास-प्रथा सामाजिक सुरक्षा के लिए चुनौती है। निकॉलस प्रथम ने इस दिशा में सोचा था। वह दासों की मुक्ति के प्रश्न से प्रभावित अवश्य था किन्तु उसने कुछ कमीशन या आयोग इस सम्बन्ध में छानबीन करने के लिए नियुक्त करने के सिवाय और कुछ नहीं किया। किन्तु पेरिस की सन्धि (Peace of Paris) के बाद तो एलेक्जैंडर ने इस प्रश्न को पुनः उठाया और अपने कुलीन वर्ग के समक्ष कुछ निश्चित प्रस्ताव रखे। उसने कहा—"सभ्य कुलीन वर्ग! आप जानते हैं कि प्रचलित दास-प्रथा अधिक दिनों तक नहीं चलेगी। अच्छा हो कि सरकार की ओर से ही इसको समाप्त कर दिया जाय अन्यथा यह स्वयं समाप्त हो जायगी। श्रीमन्!

---

1. *The Cambridge Modern History*, Vol. X, Chapter XIII.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं चाहता हूँ कि आप मेरी सहायता करें और बतावें कि दास-प्रथा में किस प्रकार सुधार करना सम्भव होगा।"

यद्यपि रूस का कुलीन वर्ग यह सिद्धांत स्वीकार करने के लिए तैयार था कि सभी मनुष्य बराबर हैं किन्तु अपने अधीन दासों सम्बन्धी विशेषाधिकार को त्यागने के सम्बन्ध में कुलीन वर्ग ने कोई व्यावहारिक कदम नहीं उठाया इसलिए स्वयं सम्राट् की सरकार को ही इस दिशा में पहल करनी पड़ी। १८५७ के अन्त में रूसी साम्राज्य के लिथुआनिया (Lithuania) प्रान्तों के कुलीनवर्ग ने सम्राट् के दरबार में प्रार्थना की कि उनके और कृषक दासों के बीच के सम्बन्धों के प्रश्न पर पुनर्विचार किया जाय और उनको दासों के ऊपर कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। एलेक्जैंडर प्रथम ने इस प्रार्थना का यह अर्थ लिया कि लिथुआनिया (Lithuania) के कुलीनवर्ग अपने अधीन दासों को मुक्त करना चाहते हैं इसलिए उसने अन्य प्रान्तों के कुलीनों को भी आमन्त्रित किया और उनसे कहा कि वे भी लिथुआनिया (Lithuania) के कुलीनों के उदार और देशभक्तिपूर्ण व्यवहार का अनुकरण करते हुए अपने दासों को मुक्त कर दें। एलेक्जैंडर की चाल कारगर रही और ज़ार द्वारा स्वीकृत अनेक समितियों का निर्माण हुआ। इन समितियों से कहा गया कि वे कृषक दासों की स्थिति को सुधारने के सम्बन्ध में अपने सुझाव दें। इस प्रश्न की परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि इसमें परस्पर-विरोधी हित सन्निहित हैं और इसके द्वारा अनेक समस्याओं का जन्म हो सकता है अतः यह प्रश्न कई वर्षों तक यूँ ही पड़ा रहा किन्तु १८६१ में शाही आज्ञा निकली जिसके द्वारा लगभग ३,५०,००,००० दास मुक्त हो गये। केवल चार वर्ष बाद नई दुनिया में रूसी सम्राट की इस आज्ञा के समान ही संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की आज्ञा निकली। मनुष्यों के प्रति प्रेम और राजनीतिक सद्भावना से युक्त राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन (A. Lincoln) अमेरिका के महान् राष्ट्रपति का नाम एलेक्जैंडर रोमेनोव (Alexander the Romanov), रूस के स्वेच्छाचारी और पवित्र ज़ार के नाम के साथ संस्कृति और सभ्यता के इतिहास में दास-प्रथा का अन्त करने के कारण सदैव लिया जाएगा।

एलेक्जैण्डर द्वितीय (Alexander II) की दासों की मुक्ति की आज्ञा (Edict of Emancipation) का न केवल भारी नैतिक महत्त्व था बल्कि यह महत्त्वपूर्ण आर्थिक महत्त्व का प्रश्न था। इस आज्ञा (Edict) के मूल में चार सिद्धान्त थे।

प्रथमतः इस आज्ञा में नागरिक अधिकारों की मान्यता निहित थी। अब दास स्वतन्त्र किसान हो गए और अपने स्वामियों के आधिपत्य से उन्हें मुक्ति प्राप्त हो गई। सामन्तों का उन पर कानूनी तौर से कोई अधिकार न रहा।

अन्य तीन सिद्धान्तों के साथ आर्थिक प्रश्न जुड़े हुए हैं। कृषक-दास को न केवल स्वतन्त्रता प्राप्त हुई बल्कि वह स्वयं भूमि का भी मालिक हो गया। इसके साथ ही सामन्त या मालिक को न केवल एक मजदूर और सेवक की सेवाओं से वंचित होना पड़ा बल्कि उसकी सम्पत्ति भी उससे छिन गई। उस समय ऐसा महसूस किया गया कि दासों की मुक्ति का एक दुष्परिणाम यह होगा कि बहुसंख्यक प्रजा—लगभग आधी रूसी जनसंख्या—भूमि-विहीन मजदूरों की जनसंख्या में परिणत हो जाएगी। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिविहीन सर्वहारा वर्ग के पास आजीविका के कोई साधन न होंगे। वे मजदूरी सस्ती कर देंगे और पूंजीपति उनको शीघ्र ही अपने प्रभाव में ला सकेंगे। फलस्वरूप, आशंका थी कि अनेक नई सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ उठ खड़ी होंगी। १८३३ में ब्रिटिश उपनिवेशों में जब दासों को मुक्त किया गया था और जब १८६५ में संयुक्त राज्य अमेरिका में दासों को स्वतन्त्र किया गया था, तब भी दोनों बार इन्हीं समस्याओं ने सर उठाया था। रूस में इस समस्या का हल इस प्रकार किया गया कि सामन्तों की जागीरों का कुछ भाग किसानों को हस्तान्तरित कर दिया गया। कितनी भूमि सामन्त या कुलीन से छीनकर कृषक या दास को दे दी जाय इसका निर्णय अलग-अलग दण्ड न्यायाधीशों (Magistrates) के ऊपर छोड़ दिया गया जिनको शांति संस्थापक पंच (Arbiters of Peace) भी कहा जाता था। ये दण्ड न्यायाधीश या शान्ति संस्थापक पंच (Magistrates or Arbiters of Peace) ही सामन्तों और कृषक-दासों के बीच समझौता कराते थे या निर्णय देते थे कि कितनी भूमि सामन्तों या स्वामियों के पास रहेगी और कितनी भूमि कृषक-दासों में बँट जाएगी।

ये शान्ति संस्थापक पंच लोग (Arbiters) प्रायः स्थानीय भू-स्वामी (Proprietors) ही थे, किन्तु उन लोगों ने आश्चर्यकारी निष्पक्षता के साथ भूमि को भू-स्वामियों और कृषक दासों के बीच बाँट दिया। तृतीय सिद्धान्त के अनुसार जो जमीनें किसानों को दी गईं, वे उनकी व्यक्तिगत मिलकियत[1] नहीं मानी गईं बल्कि जमीनें मीर (Mir) या ग्राम जाति (Village Community) को दी गईं और व्यवस्था यह की गई कि मीर या ग्राम जाति की ही भूमि को किसानों में उनके प्रयोग के लिए बाँटना था। इस प्रकार मीर या ग्राम जाति ही जमीन की मालिक थी और भूमि के मूल्य चुकाने का उत्तरदायित्व भी मीर या ग्राम जाति पर था और इसके लिए मीर को किसानों पर कर लगाने का अधिकार दे दिया गया।

इस सम्बन्ध में अन्तिम बात यह थी कि सरकार ने निश्चय किया कि वह ग्राम जाति या मीर को कुछ आर्थिक सहायता दे ताकि ग्राम जाति प्रारम्भिक भू-स्वामियों या सामन्तों को वार्षिक लगान देती रहे। इसके लिए सरकार ने जमीनों की कीमत आँकी और उतना धन ग्राम जाति या मीर को उधार दे दिया। यह भी निश्चित हुआ कि ग्राम जाति या मीर उक्त ऋण पर ४९ वर्षों तक ६ प्रतिशत ब्याज देती रहे।

इस व्यवस्था द्वारा कृषकों के पास आजीविका के साधन आ गए और रूस में अनेक बेरोजगार कृषकों की संख्या में कमी हो गई। जहाँ अब तक सामन्त ही सारी भूमि का मालिक था अब उसके स्थान पर मीर या ग्राम जाति का सम्मिलित स्वामित्व स्थापित हो गया और निष्क्रमण प्रभारों (Redemption Charges) के एकत्रित करने का उत्तरदायित्व समस्त कृषकवर्ग के कन्धों पर आ पड़ा।

ये सुधार इतने व्यापक और दूरगामी थे कि इनकी आलोचना भी हुई। जार ने स्वीकार किया कि सामन्तों और कुलीन वर्ग ने उदारता का परिचय दिया है—और यह कथन उचित भी था—किन्तु कुलीनों ने इस बात का विरोध किया कि उनकी सम्पत्ति उनसे छीनी जा रही है। उन्हें भय था कि इसके कारण कृषकों का लालच

१. पश्चिमी रूस के भागों में अन्य व्यवस्था अपनाई गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक बढ़ेगा। उन्हें यह भी भय था कि ग्रामों की समृद्धि अवरुद्ध हो जाएगी और अब शिक्षित वर्ग असहाय अवस्था में पहुँच जाएगा तथा अज्ञानी और अशिक्षित लोगों और अनुत्तरदायित्वपूर्ण रूसी कृषक वर्ग (*Moujik*) के हाथों में समाज की सारी सत्ता पहुँच जाएगी।

कृषक दासों की मुक्ति का भू-स्वामियों की स्थिति पर जो प्रभाव पड़ा वह देश के विभिन्न भागों में भिन्न था; किन्तु सामान्यतः सारे देश में इसका यह प्रभाव पड़ा कि सभी भूस्वामी अपनी-अपनी जागीर और सम्पत्ति का अच्छा प्रबन्ध करने लगे और फिजूलखर्च में कमी कर दी। एक सामन्त ने कहा—"पहले हम कोई हिसाब-किताब नहीं रखते थे और खूब कीमती शराब पीते थे। अब हम खर्च का बाकायदा हिसाब रखते हैं और सस्ती शराब (Beer) से ही अपना काम चला लेते हैं।"[1]

किन्तु कृषकों को इन सुधारों से भारी निराशा हुई। देखने में तो मुक्ति की आज्ञा (Edict) क्रान्तिकारी सुधार मालूम देती थी किन्तु वास्तव में इससे उनकी आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। उनके ऊपर कई प्रकार के नये कर लग गये जो वास्तव में जमीन के सामान्य लगान से कहीं अधिक थे। इन करों के कारण कृषकवर्ग पिसे जाते थे और वे इनको अन्याय कहते थे। जिस जमीन पर उनका अधिकार था, उसको वे अपनी जमीन समझते थे और उस जमीन के लिए किसी प्रकार का मुआवजा जमींदार को देना उन्हें भारी अखरता था। वे मीर या ग्राम जाति से भी उतना ही चिढ़ते थे जितना कि सामन्तों से। सामन्तों की जागीर पर जबर्दस्ती बेगार (Forced Labour) के सम्बन्ध में उनका कहना यह था कि जब सामन्तों या कुलीनों को आवश्यक सैनिक सेवा से मुक्ति मिल चुकी है तो उनसे भी जबर्दस्ती बेगार नहीं ली जा सकती। कृषक लोग पूछते थे कि क्या इसी स्थिति का नाम स्वतन्त्रता है। वे समझ रहे थे कि यह केवल स्वतन्त्रता का भ्रम है।

क्या यही स्वतन्त्रता थी ?

एलेक्जैंडर द्वितीय के सुधारों में कृषक-दासों की मुक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार था। इस सुधार के बाद अन्य सुधार भी हुए। अब रूस के इतिहास में प्रथम बार सार्वजनिक मामलों में जनमत का भी प्रभाव माना जाने लगा। विश्वविद्यालयों के ऊपर से सरकारी नियन्त्रण ढीला कर दिया गया और विदेश यात्रा पर से अब पाबन्दी हटा ली गई। समाचार-पत्रों पर से सेंसर किसी सीमा तक नरम कर दिया गया। सेना और नौसेना का पुनर्गठन किया गया। रूस के आयव्ययक सम्बन्धी आँकड़ों को वार्षिक वित्त विवरण के रूप में छापा जाने लगा। विशेष रूप से वैधिक प्रशासन (Judicial Administration) और स्थानीय शासन के सम्बन्ध में व्यापक सुधार हुए।

रूस का न्याय-प्रशासन अत्यन्त दूषित था। उसमें व्यापक भ्रष्टाचार और विद्वेष की भावना का बोलबाला था। न्याय के प्रशासन में बेईमानी, असमानता तथा गुप्त कार्यवाही भरी पड़ी रहती थी। नालिशें करने में अनेक औपचारिकताओं को पार करना पड़ता था और कई प्रकार की गुप्त कार्यवाहियों का आश्रय लेना पड़ता था। अब एलेक्जैंडर द्वितीय ने एक बिलकुल नयी और उन्नत न्याय-प्रणाली का सूत्रपात

1. Quoted by Sir Donald Mackenzie Wallace, *Russia*.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जो अंग्रेजी और फ्रेंच न्याय-प्रणाली पर आधारित थी। कार्यपालिका को न्याय-पालिका से अलग कर दिया गया, दण्ड न्यायाधीश की स्व-तन्त्रता को मान लिया गया और अदालत की कार्यवाही सबके लिए मुक्त तथा खुली हुई रखी गई और कानून की दृष्टि में सबको बराबर मान लिया गया और जूरी (Jury) द्वारा न्याय करने की प्रथा को प्रारम्भ कर दिया गया। नई दण्ड संहिता (Penal Code) का निर्माण हुआ और दीवानी एवं फौजदारी के मुकद्दमों की प्रक्रिया को आसान कर दिया गया। छोटे-मोटे मामलों को तय करने के लिए 'जस्टिसेज ऑफ दी पीस' (Justices of the Peace) बना दिए गए जो सार्वजनिक निर्वाचन द्वारा चुने जाते थे। बड़े और संगीन अभियोगों के लिए नियमित न्यायाधिकरणों की व्यवस्था की गई जिनमें सम्राट द्वारा नियुक्त प्रशिक्षित न्यायाधीश न्याय दान करते थे। किन्तु इस न्याय-व्यवस्था के लिए नए और योग्य न्यायाधीशों की आवश्यकता थी किन्तु रूस में ऐसे व्यक्तियों का पूर्ण अभाव था। कुछ समय तक तो नए और प्रशिक्षित न्यायाधीशों के अभाव के कारण एलेक्जैंडर द्वितीय के सुधार ठप्प पड़े रहे। भ्रष्टाचार का यकायक समूल नाश कर देना प्रायः कठिन था। दण्ड न्यायाधीश प्रायः अयोग्य होते थे; जूरीगण (Juries) प्रायः अशिक्षित थे और उन पर व्यर्थ ही राज्य को बहुत खर्च करना पड़ता था। किन्तु भ्रष्टाचार धीरे-धीरे घटता गया और सारे देश में, राष्ट्र में और न्यायिक सेवकों और न्यायाधीशों में धीरे-धीरे न्याय-भावना का संचार होने लगा।

कानून सम्बन्धी सुधार

क्रीमिया युद्ध ने स्पष्ट प्रकट कर दिया था कि रूस की शासन-व्यवस्था बिल-कुल दूषित है अतः मास्को के प्रान्तों में शासन-सम्बन्धी व्यापक सुधार किए गए जिनके द्वारा स्थानीय शासन को स्वायत्तता प्राप्त हुई और शासन का विकेन्द्रीयकरण प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक जिले में स्थानीय कौंसिलें या जेम्सट्रॉस (Zemstvo or Zemstros)[1] बनाई गईं। ये जनता द्वारा निर्वाचित होती थीं और इनमें जाति या समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व रहता था अर्थात् इनमें कुलीन वर्ग (Nobles), कृषक वर्ग (Peasants), बोर्जुआ वर्ग (Bourgeois) और व्यापारी वर्ग सभी को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता था। ये परिषदें या कौंसिलें दो प्रकार की थीं—(१) जिला परिषदें (District Councils) जो लोकप्रिय मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होती थीं, और (२) प्रान्तीय परिषदें (Provincial Councils) जो जिला परिषदों द्वारा निर्वाचित होती थीं। नई स्थानीय परिषदों (Local Bodies) को यह कार्य सौंपा गया कि वे जस्टिसेज ऑफ दी पीस (Justices of the Peace) या छोटे न्यायाधीशों को निर्वाचित करें, सड़कों और पुलों की मरम्मत करावें; सफाई-व्यवस्था की देख-भाल करें और प्रारंभिक शिक्षा का प्रबन्ध करें तथा अकाल-निवारण की दिशा में आवश्यक कार्यवाही करें। किन्तु प्रान्त के गवर्नर को अधिकार था कि वह स्थानीय परिषदों (Local Bodies) के निर्णयों पर निषेध या वीटो (Veto) लगा सकता था और स्थानीय परिषद के पास

शासन-सम्बन्धी सुधार

---

१. जेम्सट्वो या जेम्सट्रॉस के शाब्दिक अर्थ हैं : स्थानीय कौंसिलें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थाभाव था; इस कारण भी वे मनमाने ढंग के कार्य नहीं कर सकती थीं।

दास-प्रथा का अन्त करके और न्याय-प्रशासन एवं स्थानीय प्रशासन में व्यापक सुधार करके एलेक्जैंडर द्वितीय (Alexander II) ने रूस की महान् सेवा की। वास्तव में एलैक्जैंडर द्वितीय की सेवाओं का मूल्य पीटर महान् (Peter the Great) की सेवाओं के मूल्य से कम न था जिसने रूस को पश्चिमी राष्ट्रों की पंक्ति में ला खड़ा किया था। रूस में नई भावना का संचार होने लगा; नई अर्थ-व्यवस्था के प्रति लोगों में मोह दिखाई देने लगा और लोगों में अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र और राजनीति के संबन्ध में नया साहित्य प्रसारित होने लगा। शिक्षा की अपार उन्नति हुई और कल्पना-शील साहित्य का प्रचार बहुत बढ़ गया। प्रारम्भ में तो केवल स्थानीय स्वशासन दिया गया था किन्तु बाद में स्थानीय स्वायत्तता ने ही पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार रूस ने स्वतन्त्रता के क्षेत्र में पश्चिमी देशों का अनुसरण किया।

निराशा

किन्तु इसके बाद लोगों को भारी निराशाएँ हुईं। १८६६ के बाद से एलेक्जैंडर द्वितीय के शासन ने नया मोड़ लिया। बाद में कतिपय और आज्ञाएँ जारी की गईं जिनका स्थानीय शासन और सेना पर कुछ प्रभाव पड़ा किन्तु अब एलेक्जैंडर द्वितीय के मन में से सुधारों की इच्छा विदा हो चुकी थी। प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो चुका था और क्रान्तिकारी सुधारों के प्रथम दस वर्षों के समाप्त होने पर पहले तो स्थिरता आई और बाद में प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। इस परिवर्तन के कई कारण थे; प्रथमतः इन दिखावटी क्रान्तिकारी सुधारों के बावजूद लोगों में निराशा बनी रही; द्वितीयतः, कृषक वर्ग अब भी यही समझता था कि उसको सताया जा रहा है; तृतीयतः, नये न्यायालयों में ठीक से न्यायदान नहीं हो रहा था; चतुर्थतः प्रशासन भ्रष्ट था और सर्व-साधारण में व्यापक असंतोष था। किन्तु मुख्यतः, १८६३ के पोलैण्ड के द्वितीय विद्रोह (Second Polish Insurrection of 1863) के कारण भी एलेक्जैंडर द्वितीय का मन सुधारों से हट कर प्रतिक्रिया की ओर मुड़ा।

१८६३ का पोलैण्ड का विद्रोह

एलेक्जैंडर द्वितीय की रियायतों और उसके क्रान्तिकारी सुधारों के कारण जार की रूसी प्रजा के समान ही उसकी पोल प्रजा (Polish Subjects) ने भी नए प्रभात के दर्शन किए। निकॉलस प्रथम का कठोर शासन समाप्त हो चुका था और उसका स्थान उदारवादी और सुधारवादी शासन ने ले लिया था और राजनीतिक निर्वासितों को देश में वापस आने की आज्ञा मिल चुकी थी। पोलैण्ड (Poland) को बहुत सीमा तक स्वायत्त शासन प्राप्त हो चुका था। १८३९ में जहाँ धार्मिक स्वतन्त्रता छीन ली गई थी और शिक्षा पर अंकुश लगा दिया गया था, अब राज्य की ओर से धार्मिक स्वतन्त्रता और निःशुल्क शिक्षा के लिए आयोग की स्थापना हो चुकी थी। पोलैंड में राज्य परिषद् (Council of State) की स्थापना द्वारा पर्याप्त स्वशासन दिया जा चुका था। पोलैण्ड और रूस के शासनों को बिल्कुल अलग-अलग कर दिया गया था। सिविल प्रशासन और सैनिक प्रशासन अलग-अलग कर दिए गए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सिविल प्रशासन को पूरी तरह से पोल लोगों (Poles) के हाथों में दे दिया गया। पोलैण्ड (Poland) में भी रूस के समान ही निर्वाचित परिषदों द्वारा स्थानीय शासन की नींव रखी गई; पोलैण्ड में शिक्षा को उन्नत किया गया और वार्सा विश्वविद्यालय फिर चालू कर दिया गया। पोलैण्ड के स्कूलों में पुनः पोल भाषा में पठन-पाठन की आज्ञा दे दी गई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पोल लोगों की राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को प्रसन्न करने का वास्तविक प्रयत्न किया गया। रूस की यह वास्तविक इच्छा थी कि पोलैण्ड (Poland) को रूसी साम्राज्य के एक स्वतन्त्र और स्वायत्त-शासी प्रान्त के रूप में गठित कर लिया जाए।

किन्तु पोलैण्ड के साथ रियायतें की गईं और पोलैण्ड को प्रसन्न करने के जितने प्रयत्न किए गए उनका अर्थ पोलैण्ड के लोगों ने यह लगाया कि रूस दुर्बल है। इस प्रकार पोलैण्ड को प्रसन्न करने के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। धार्मिक समानता की घोषणा से यहूदी लोग तो प्रसन्न हुए थे किन्तु रोमन कैथोलिक लोगों ने इस घोषणा का यह अर्थ लिया कि ऑर्थोडॉक्स चर्च या कट्टर धार्मिक सम्प्रदाय को बढ़ावा दिया जा रहा है। रूस ने पोलैण्ड को जितनी राजनीतिक रियायतें दीं, उनको रूस की कमजोरी समझा गया। पोलैण्ड के अतिवादी लोगों (Extremists) ने कृषक दासों की मुक्ति से प्रेरणा प्राप्त करके अपनी माँगों को बहुत अधिक बढ़ा दिया और वे आंदोलन करने लगे। अब उन्होंने न केवल नए पोल गणराज्य (New Polish Republic) की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की, बल्कि उन्होंने माँग की कि वही पुराना अविभाजित पोलैण्ड (Old Great Poland) उनको मिलना चाहिए जैसा कि १७७२ के प्रथम बँटवारे के पूर्व अविभाजित पोलैण्ड था। इसका यह अर्थ होता कि प्रशा का पश्चिमी भाग, प्रशा का पोजेन (Prussian Posen) और ऑस्ट्रिया का गैलीशिया प्रान्त (Austrian Galicia) पुनः पोलैण्ड में मिला दिया जाता। इसके अतिरिक्त कीव (Kiev) और स्मोलैंस्क (Smolensk) तक सारा पश्चिमी रूसी भूभाग, जो रूस के अधिकार में था; वह पोलैण्ड को दे दिया जाता। वास्तव में यह सारा भूभाग जातीय तौर पर रूसी भाग था किन्तु पोलैण्ड इस भाग पर अपना अधिकार इसलिए बताता था कि पहले एक बार इस भूभाग को पोलैण्ड ने रूस से विजय करके छीन लिया था। बेल्जियम (Belgium) के राजा लियोपोल्ड ने अपनी भतीजी मलका विक्टोरिया (Queen Victoria) को लिखा था—"यह एलेक्जैंडर या रूसवासियों के लिए प्रायः असम्भव है कि वे पोलैंड के इन विवादग्रस्त प्रान्तों को लौटा दें।" रूस के स्लावों में पोलैण्ड के विरुद्ध भारी नाराजगी थी और एलेक्जैण्डर को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि वह पोलैण्ड के प्रमादपूर्ण प्रचार को रोके। इसके उत्तर में पोल लोगों (Poles) ने षड्यन्त्र रचने शुरू कर दिए और गुप्त विध्वंसक कार्यवाहियाँ प्रारम्भ कर दीं जिनके कारण सारे पोलैण्ड देश में क्रांति का-सा उबाल आ गया। पोलैण्ड के अतिवादी तत्त्व क्रांति उत्पन्न करने के लिए कृत-संकल्प थे और एलेक्जैण्डर ने जो कुछ भी दमनकारी कार्यवाही की, या जो कुछ भी रियायत पोल लोगों के साथ की, हर दशा में उसके फलस्वरूप पोलैण्ड में विद्रोह की ज्वाला में और अधिक लपटें फूटीं।

१८६३ के वसन्त में पोलैण्ड रूपी बारूद में मानो दियासलाई लगा दी गई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। सारे पोलैण्ड में विद्रोह की-सी स्थिति पैदा हो गई। ज़ार ने इस क्रान्तिकारी विद्रोह को दबाने के उद्देश्य से रूसी फ़ौजी पलटनों में से कुछ संदेहयुक्त राजनीतिक विद्रोहियों को पकड़ना चाहा क्योंकि इनमें से कुछ लोगों ने एक रूसी वायसराय की जान लेने का प्रयत्न किया था। जिन संदेहयुक्त विद्रोहियों को पकड़ने की योजना बनाई गई थी वे जंगलों में छिपकर बैठ गए और वहीं से उन्होंने विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर दिया।

इस विद्रोह में पोलैण्ड के अतिवादी तत्त्व (Extremists) तो तुरन्त सम्मिलित हो गए। इन अतिवादियों को लाल दल (Reds) भी कहा जाता था। किन्तु सफ़ेद दल या नरम दल (Whites or Moderates) कुछ हिचक रहे थे। किन्तु, बाद में ऐसी खबरें उड़ाई गईं कि नेपोलियन तृतीय पोलैण्ड के मामलों में हस्तक्षेप करेगा किन्तु तभी जब पोलैण्ड का विद्रोह सारे राष्ट्र का विद्रोह होगा। इस पर सफ़ेद दल (Whites) भी लाल दल या अतिवादियों से मिल गया और विद्रोह में सम्मिलित हो गया।

असफलता

१८६३ का पोलैण्ड का द्वितीय विद्रोह १८३० के विद्रोह के समान बाकायदा सैनिक युद्ध न था। यह तो मानो छितराया हुआ दावानल था। कभी कहीं विद्रोह फूट पड़ता था कभी कहीं; कभी एक जगह विद्रोह भयंकर हो जाता था कभी किसी दूसरे स्थान पर उसका दमन कर दिया जाता था। इसमें जमकर कहीं युद्ध नहीं हुए किन्तु कहीं गदर की-सी स्थिति हो जाती थी, कहीं लूटपाट और डाकाजनी की-सी स्थिति बन जाती थी, कहीं लुक-छिप कर आक्रमण किये जाते थे, कहीं छुटपुट झड़पें हो जाया करती थीं। इसमें संदेह नहीं है कि दोनों ओर से अत्यन्त निर्दयता के साथा नर-संहार हुआ। इस विद्रोह में तेजी और शक्ति तो थी किन्तु इसका संगठन अत्यन्त शिथिल था, इसलिए, रूस की सेनाओं के विरुद्ध इस विद्रोह के सफल होने की कोई आशा ही नहीं थी। स्वयं पोल लोगों में भी एकमत नहीं था। कुलीन वर्ग, बोर्जुआ वर्ग, नगरों के निवासी और धर्माधिकारी (Priests) तो विद्रोह में सक्रिय भाग ले रहे थे। किन्तु कृषक वर्ग की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ नहीं थी। उन्हें अपने सामन्तों और भूस्वामियों से भारी शिकायतें थीं इसलिए उन्होंने इस विद्रोह में सक्रिय सहयोग नहीं दिया।

यदि पोलैण्ड के विद्रोहियों को विदेशी सहायता मिल जाती तभी इस विद्रोह के सफल होने की कुछ आशा हो सकती थी। वास्तव में विद्रोहियों ने विदेशी हस्तक्षेप के आसरे पर तो विद्रोह को प्रारम्भ ही किया था। किन्तु पोलैण्ड के सबसे निकट विदेश और सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ोसी देश प्रशा ने इस विद्रोह में कोई सहायता नहीं दी। वास्तव में प्रशा का प्रधानमन्त्री बिस्मार्क (Bismarck) अपने कतिपय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रूस की मित्रता अर्जित करना चाहता था अतः वह पोलैण्ड के विद्रोहियों के विरुद्ध रहा। बिस्मार्क ने कहा था—"यह हमारे लिए भी जीवन और मरण का प्रश्न है।" उसने पोलैण्ड और प्रशा के सारे सीमान्तों पर प्रशा की सेनाएँ लगा दीं ताकि न तो प्रशा के लोग पोलैण्ड जा सकें और न पोलैण्ड के विद्रोही प्रशा में आकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिप सकें। वास्तव में पोलैण्ड के विद्रोहियों को फ्रांस से आशाएँ थीं। वे सोचते थे कि फ्रांस ने रूमानिया और इटली के देशभक्तों की भी सहायता की थी। काउण्ट वैलेस्की (Count Walewski) स्वयं एक पोलैण्डवासी राजनीतिज्ञ था जो नेपोलियन का मंत्री था और जो उसे पोलैण्ड के सम्बन्ध में मन्त्रणाएँ देता था। यह भी कहा जाता था कि काउण्ट वैलेस्की की माता ने पोलैण्ड के हित में भारी कार्य किया था।

नेपोलियन ने पोलैण्ड के प्रश्न में रुचि अवश्य ली और यूरोप के विभिन्न देशों के विदेश मन्त्रालयों में काफी लिखा-पढ़ी होती रही। नेपोलियन चाहता था कि पोलैंड का प्रश्न यूरोपीय देशों की सभा में सुलझाया जाय किन्तु इंग्लैण्ड को नाइस (Nice) और सेवॉय प्रान्तों पर फ्रांस द्वारा अधिकार किए जाने के कारण शिकायत थी; द्वितीयतः, इंग्लैण्ड समझता था कि फ्रांस पोलैण्ड की गड़बड़ी से स्वयं लाभ उठाना चाहता है अतः उसने फ्रांस के यूरोपीय देशों की कांग्रेस सम्बन्धी प्रस्ताव में कोई रुचि नहीं ली। इधर नेपोलियन ने पोलैण्ड के प्रश्न के साथ-साथ वैनीशिया का प्रश्न भी उठाया था अतः ऑस्ट्रिया भी इंग्लैण्ड के समान ही इस प्रश्न की ओर से तटस्थ हो गया। "इस प्रकार सप्ताहों तक इस सम्बन्ध में व्यर्थ की बातचीत और लिखा-पढ़ी के पश्चात् फल केवल इतना निकला कि फ्रांस की ओर से पहले तो प्रशा को और अन्त में रूस को विरोध-पत्र भेजे गए। किन्तु ये विरोध-पत्र सारहीन थे और प्रशा एवं रूस दोनों ने ही उक्त विरोध-पत्रों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया।" १८३० के समान ही इस बार भी पोल लोग अकेले अपने भाग्य पर छोड़ दिए गए।

पोलैण्ड के विद्रोह की कमान अब स्वनिर्मित निकाय के हाथों में आ गई जिसने अपने आप को वारसॉ (Warsaw) की गुप्त राष्ट्रीय सरकार घोषित किया। किन्तु इस निकाय या गुप्त राष्ट्रीय सरकार ने अपने ही लोगों को कत्ल और आक्रान्त किया और इस प्रकार विद्रोह को कुछ समय तक जीवित रखा। यद्यपि ज़ार ने विद्रोहियों को क्षमा करने का आश्वासन दिया और यह भी वायदा किया कि सुधार जारी रखे जाएँगे, किन्तु विद्रोही पोल लोगों (Poles) ने विद्रोह से मुंह न मोड़ा।

विद्रोहियों की इन हरकतों के कारण यद्यपि विद्रोह का अन्त कुछ समय के लिए रुक गया किन्तु इसकी असफलता असंदिग्ध थी। मार्च १८६४ तक विद्रोह को कुचल दिया गया।

एक वर्ष तक सारे पोलैण्ड में भय और आतंक का साम्राज्य रहा। एक ओर युद्ध का आतंक था, दूसरी ओर गुप्त राष्ट्रीय सरकार (Government) का आतंक रहा और तीसरी ओर रूस की दमनकारी हलचलों का भी आतंक रहा। अंत में विद्रोह के असफल हो जाने पर विद्रोहियों को केवल यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि विद्रोहियों ने विद्रोह करके भारी मूर्खता की थी। स्टैनिस्लाज कॉजमियन (Stanislaus Kozmian) ने लिखा था—"१८६३ के विद्रोह ने केवल पोलैण्ड के महान् शत्रु को लाभान्वित किया और पोलैण्ड के हितों का अहित किया। पोलैण्ड के विद्रोह के खंडहर पर बिस्मार्क की सफलता का महल निर्मित हुआ और ज़ारों के साम्राज्य का रूसीकरण भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी विद्रोह का परिणाम था।"[1]

इस विद्रोह के पश्चात् पोलैण्ड में जो शान्ति व्यवस्था स्थापित हुई उसकी शर्तों के अनुसार ही पोलैण्ड की सरकार १९१४ में विश्वयुद्ध तक चलती रही। कभी-कभी पोलैण्ड-स्थित रूसी वायसराय या गवर्नर की इच्छा के अनुसार भी रूस की पोलैण्ड सम्बन्धी नीति में हेर-फेर हो जाता था और कभी-कभी रूस की आन्तरिक स्थिति के अनुसार भी रूस की पोलिश नीति (Russian Polish Policy) बन जाती थी किन्तु सामान्यतः रूस की नीति उस शान्ति सन्धि के अनुसार प्रेरित होती रही जिसके द्वारा पोलैण्ड के विद्रोह का अन्त हुआ और पोलैण्ड में शान्ति स्थापित हुई।

प्रथमतः पोलैण्ड की स्वायत्तता छीन ली गई। पोलैण्ड का राज्य रूसी साम्राज्य में मिला लिया गया और इस प्रान्त का नाम 'विस्टुला की दस सरकारों वाला प्रान्त' (Ten Governments of the Vistula) रखा गया।

द्वितीयतः, इस विद्रोह के कारण पोलैण्ड के सामन्तों और उस देश की सामन्त प्रथा की भारी बदनामी हुई। अतः पोलैण्ड के कृषक वर्ग से अपील की गई और उसकी स्थिति में सुधार किया गया। वास्तव में पोलैण्ड का कृषक वर्ग सामन्तों का शत्रु था और कृषकों ने सामन्ती विद्रोह का विरोध किया था। कृषकों को सहायता देने के उद्देश्य से खेती सम्बन्धी बृहत सुधार योजना तैयार की गई। सारे कृषक वर्ग को—चाहे उनका भूमि पर अधिकार बहुत दिनों से हो या थोड़े दिनो से—निर्धन भू-स्वामी बना दिया गया। इसके अतिरिक्त उनको यह भी अधिकार दे दिया गया कि वे अपने जमींदारों के जंगलों और चरागाहों पर भी अधिकार कर लें। इसमें सन्देह नहीं है कि जमींदारों को मुआवजा (Compensation) दिया गया किन्तु उन्हें मजबूर किया गया कि वे चार प्रतिशत ब्याज वाले कोषागार-बन्ध (Treasury Bonds) खरीदें। ऐसा इसलिए किया गया ताकि जमींदारों पर सरकार की साख बनी रहेगी। इन आज्ञाओं और सुधारों (Decrees) का फल यह हुआ कि पोलैण्ड में लगभग १३,४०,००० निर्धन भू-स्वामी (Peasant Proprietors) बन गये। एक रूसी राजनीतिज्ञ ने शेखी मारते हुए कहा, "पोलैण्ड पर हमारा जो अधिकार है, उसका आधार सामान्याधिकार (Rights of Common) ही है।"

अन्य विधियों द्वारा नूतन स्थानीय शासन की स्थापना हुई। इस प्रकार कृषकों को अन्य ग्राम जाति से अलग कर दिया गया। कृषकों को जिलों में एकत्रित कर दिया गया। प्रत्येक जिले (Commune) को एक निर्वाचित परिषद् दी गयी और प्रत्येक जिले या कम्यून के लिए एक मेयर (Mayor) नियुक्त किया गया। कम्यूनों के निर्वाचित सदस्य और मेयर केवल कृषक वर्ग में से लिए जाते थे। बड़े जमींदार (Landowners) और धर्माचार्य (The Clergy) को कम्यूनों की निर्वाचित परिषदों से बहिष्कृत रखा गया और वे मेयर भी नहीं बन सकते थे। कम्यूनों की निर्वाचित परिषदों को ग्राम जाति से सम्बन्धित सभी प्रबन्ध सौप दिये गये और

1. Professor W. Alison Phillips, *Poland*, Chapter X. ("Home University Library")

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्यूनों की परिषदें ही रूसी सरकार के साथ आन्तरिक सम्बन्धों का निर्वहन करती थीं। "इसका उद्देश्य यह था कि पोलैण्ड के कृषक प्रसन्न रहें और उन पर उन तत्त्वों का प्रभाव न पड़ने पाये जो रूस-विरोधी थे। इसका फल यह हुआ कि पोलैण्ड का कृषक वर्ग शरीर और आत्मा द्वारा रूसी साम्राज्य के प्रतिनिधियों के पूर्ण प्रभाव में आ गया और रूसी अभिकर्त्ता पोलैण्ड के ऊपर मनमाने ढंग से अत्याचार करने लगे।"[1]

तृतीयतः, पोलैंड का समझौता जिस सिद्धान्त पर आधारित था, वह था रूसीकरण (Russification) का सिद्धान्त। किन्तु पोलैण्ड के विद्रोह के बाद के वर्षों में कभी तो रूसीकरण की गति मन्द रही और कभी तीव्र गति से रूसीकरण किया गया। रूसीकरण की नीति (Russification) का जान-बूझकर इसलिए आश्रय लिया गया कि पोलैण्ड में राष्ट्रीयता की धारा को सुखा दिया जाय और फिर पोलैण्ड को रूस के साथ पूर्णतः मिला लिया जाय। पोलैण्ड में रोमन कैथोलिक चर्च ही राष्ट्रीयता का प्रेरक बल था। उसके सारे अधिकार और विशेषाधिकार छीन लिये गये। धार्मिक मठों की जमीनों को छीन लिया गया और मठों (Monasteries) को समाप्त कर दिया गया। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम रूसी भाषा को बना दिया गया और सरकारी काम-काज के लिए भी रूसी भाषा को ही राष्ट्रीय भाषा का रूप दिया गया। न्यायालयों से पोल न्यायाधीशों को हटाकर उनके स्थान पर रूसी न्यायाधीशों को नियुक्त कर दिया गया और इसी प्रकार अन्य शासकीय और राजकीय पदों पर भी पोल अधिकारियों के स्थानों पर रूसी अधिकारी रख दिए गए। जिन लोगों ने राजनीतिक विद्रोह किया था उन सभी को निर्वासित कर दिया गया और हर प्रकार की राजनीतिक हलचलों पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया। इसके विपरीत कुछ समय तक उन लोगों को प्रसन्न करने का हर सम्भव प्रयत्न किया गया जो विद्रोह काल में राजनीतिक हलचलों से दूर रहे थे। पोलैण्ड की राजधानी वारसॉ (Warsaw) का सामाजिक जीवन उन्नत किया गया। सरकार की ओर से भारी धन-राशि व्यय करके आमोद-प्रमोद के केन्द्रों और थियेटर आदि की स्थापना की गई। इस प्रकार शीघ्रता के साथ पोलैण्ड की राजधानी आमोद-प्रमोद का अन्तर्राष्ट्रीय नगर बन गया और लोग वारसॉ (Warsaw) को पूर्वी यूरोप का पेरिस (Paris of Eastern Europe) कहने लगे।

जिस प्रकार एलेक्जैंडर द्वितीय के शासन-काल के प्रारम्भ में उदारवादी आन्दोलन ने पोलैण्ड की राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को बढ़ा दिया था, उसी प्रकार पोलैण्ड के १८६३ के विद्रोह ने रूस में प्रतिक्रिया का संचार किया। रूसी समाज में जहाँ प्रसन्नता और आशा की लहर दौड़ रही थी, वहीं अब निराशा और गिरावट ने घर कर लिया और शिक्षित वर्ग में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गये। एक ओर अनुदार और प्रतिक्रियावादी वर्ग था जो समझता था कि आवश्यकता से अधिक सुधार

1. Professor W. Alison Phillips, *Russia*, Chapter X. ('Home University Library')

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिये जा चुके हैं। उनके मुख्य रूप से तीन धर्म-तत्त्व थे : पवित्र रूस, कट्टर चर्च और सम्राट् की निरंकुशता (Holy Russia, the Orthodax Church, and the Imperial Autocracy)। दूसरा वर्ग था नाशवादियों या शून्यवादियों (Nihilists) का।

१८६२ में तुर्गनेव (Turgeniev) ने अपने संसार-प्रसिद्ध उपन्यास 'फादर्स एण्ड सन्स' (Fathers and Sons) को प्रकाशित करके नाशवाद या शून्यवाद (Nihilism) नामक आन्दोलन का श्रीगणेश किया था। यह आन्दोलन शून्यवादियों अथवा प्रबुद्ध सुधारकों का आन्दोलन था। यह रूस के विश्वविद्यालयों की सृष्टि थी। 'फादर्स एण्ड सन्स' (Fathers and Sons) नामक उपन्यास में बेजारोव नाम का एक पात्र आया है। उसके माध्यम से शून्यवादी (Nihilist) का चरित्र-चित्रण किया गया है। "शून्यवादियों अथवा नाशवादियों के चरित्र के विषय में यह बताया गया था कि वे किसी सत्ता के सामने झुकते नहीं ; वे किसी सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते। वे किन्हीं धार्मिक बन्धनों और विश्वासों में निष्ठा नहीं रखते।" इस विचारधारा के प्रतिपादकों का मत था कि "वर्तमान काल की समस्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक संस्थाओं को नष्ट कर डालना चाहिए और एक नूतन समाज की रचना की जानी चाहिए।" शून्यवादी चाहते थे कि पुरानी प्रणाली की प्रत्येक वस्तु—ज़ार का एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी राज्य, राज्य की सत्ता, चर्च की पवित्रता एवं सत्यता, समाज के उपकारों की मान्यता का समूल नाश कर दिया जाना चाहिए। शून्यवादी पारिवारिक जीवन की आवश्यकता, व्यक्तिगत सम्पत्ति की मान्यता या वैधिक संविदाओं के महत्त्व को बिल्कुल अस्वीकार करते थे। उन्होंने धार्मिक देवताओं को बोर्जुआ सभ्यता का प्रतीक मानते हुए मन्दिरों से उखाड़कर फेंक दिया, नैतिकता और समादर की व्यक्तिगत और सामाजिक आचार संहिताओं को फाड़ डाला; स्त्रियों को पुरुष वर्ग की सनातन अधीनता से मुक्त कर दिया, उद्योगों पर से पूँजीपतियों के एकछत्र अधिकार को हटा दिया। इस प्रकार अब श्रमिक वर्ग को आवश्यकता नहीं रह गई थी कि वे पूँजीपतियों की चापलूसी में ही लगे रहें। शून्यवादियों या नाशवादियों (Nihilists) की मान्यता थी कि समाज में मोची का शेक्सपियर (Shakespeare) या गेटे (Goethe) की अपेक्षा अधिक महत्त्व है क्योंकि हमें कविता की अपेक्षा जूतों की अधिक आवश्यकता है। शून्यवादी सच्चे अर्थों में यथार्थवादी थे और वे कठोर स्वार्थवादी (Utilitarian) भी थे। वे (Nihilists) चाहते थे कि संसार में कहीं अभाव न रहे, वे कल्पना के सहारे भावशून्य जगत् में विचरना पसंद नहीं करते थे। वे पक्षपातों (Prejudices), सत्ता, परम्परा और आचार-विधियों के कायल न थे, वे तो यहाँ तक चाहते थे कि यदि उपर्युक्त दोष समझाने-बुझाने से दूर न हो सकें तो इसके लिए सत्ता का प्रयोग किया जाना चाहिए। तुर्गनेव (Turgeniev) ने कहा है कि "शून्यवाद या नाशवाद (Nihilism) निषेध (Negation) की उत्पत्ति है और एक विनाशकारी या आलोचनात्मक मत है।" वास्तव में उपर्युक्त वर्णन अतिशयोक्ति है क्योंकि यद्यपि शून्यवाद (Nihilism) मौलिक रूप से निषेधात्मक था,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी इस आन्दोलन के निर्माणकारी स्वरूप से इनकार नहीं किया जा सकता।[1] जमीन को इस हद तक साफ करना था कि उस पर और कुछ शेष न रहे जिस प्रकार कि पैदायश के समय नवजात बालक का मस्तिष्क बिलकुल कोरी स्लेट के समान साफ होता है। इसके बाद उस नींव पर नवसमाज की स्थापना करना अभीष्ट था। इसमें सन्देह नहीं है कि शून्यवादियों या नाशवादियों (Nihilists) के विचार इस सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं थे कि नये समाज की रूपरेखा क्या होगी। कुछ शून्यवादी या नाशवादी समझते थे कि प्राकृतिक विकास के सहारे समाज स्वयं विकसित हो जायेगा; दूसरे लोग यह समझते थे कि नवीनतम वैज्ञानिक, या जीव वैज्ञानिक या दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार समाज के विकास का प्रश्न हल किया जा सकता है। वे चाहते थे कि धर्म का स्थान विविध विज्ञान ले लें, पारिवारिक जीवन का स्थान स्वतन्त्र और मुक्त प्रेम (Free Love) ले ले, व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्थान पर सारी सम्पत्ति को सारे समाज या सारी जाति की सम्पत्ति मान लिया जाये और केन्द्रीकृत शासन के स्थान पर वे चाहते थे कि स्वतन्त्र नगरों या स्वतन्त्र कम्यूनों (Independent Communes) का एक संघ शासन स्थापित हो। वे वास्तव में यह चाहते थे कि समाज का पूर्ण पुनर्गठन हो। किन्तु वह पुनर्गठन नीचे से या इकाई से प्रारम्भ हो, न कि ऊपर से अथवा केन्द्रीय सरकार से।

शून्यवादियों के इन विचारों पर स्पष्टतः समाजवादी विचारधारा (Socialist Bias) का प्रभाव था। वास्तव में अनेक शून्यवादी या नाशवादी (Nihilists) पश्चिमी देशों के, विशेषकर फ्रांस के बैकुनिन (Bakunin) आदि क्रांतिकारी और विप्लवकारी समाजवादियों और उनके समाजवाद के समर्थकों के निकट सम्पर्क में थे। किन्तु उन सभी को समाजवादी[2] कहना उचित नहीं होगा। उसी प्रकार उन सबको उन प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बद्ध करना भी उचित नहीं होगा जिनसे उन विचारधाराओं का घना सम्बन्ध है। इन दिनों विश्वविद्यालयों में विज्ञान पढ़ने और पढ़ाने की ओर विशेष रुचि थी किन्तु सामाजिक विज्ञानों (Humanities) की ओर किसी की रुचि नहीं थी। स्वयं सरकार की ओर से भी विश्वविद्यालयों को इस दिशा में उस समय तक प्रोत्साहन मिलता रहा जब तक कि शून्यवादियों या नाशवादियों (Nihilists) के मत की राजनीतिक प्रवृत्तियों का भण्डाफोड़ नहीं हो गया।

शून्यवाद या नाशवाद (Nihilism) प्रबुद्ध विचारकों का मत था। शून्यवादियों के कुछ नारे (Catchwords) बाद में सर्वहारावर्ग ने अपने नारे बना लिये किन्तु इन नारों के निर्माण-स्थल विश्वविद्यालय ही थे। शून्यवाद (Nihilism) का प्रारम्भ कुछ मनचले, जोशीले, आतुर नवयुवक सुधारकों द्वारा हुआ था किन्तु शीघ्र ही यह आतंकवादी और क्रांतिकारी विप्लववाद का रूप धारण कर गया।

---

१. प्रसिद्ध लेखक टेचरनिशेवस्की (Tchernishevski) ने अपनी पुस्तक "*What is to be done*" में इस मत का प्रतिपादन किया है। उक्त प्रसिद्ध पुस्तक जेल-प्रवास में लिखी गई थी।

२. समाजवाद इतना अनिश्चित और बहु अर्थों में प्रयोग होने वाला शब्द है कि समाजवाद की विभिन्न शाखाएँ भी समाजवाद (Socialism) के अंदर ही आ जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारपत्रों पर कठोर सेंसर (Censor) होने के कारण शून्यवादियों (Nihilists) को अपना प्रचार स्वयं घूम-घूमकर और मनुष्यों से मिल-मिलकर करना पड़ा। वे शहरों और देहातों के श्रमिकों में स्वयं जाते थे और उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करते थे। इन प्रचारकों में स्त्री-पुरुष सभी थे, वे डाक्टरों या नर्सों के रूप में अध्यापकों-अध्यापिकाओं, श्रमिकों और कलाकारों के रूप में सभी से मिलते थे और शून्यवाद (Nihilism) का प्रचार करते थे। इनमें से बहुत से प्रबुद्ध सुधारक शांति और अनुरोध के साथ गरीब वर्ग से कहते थे कि तुम दुर्दशा की मोहनिद्रा से जागो और अपने न्यायोचित अधिकार माँगो। किन्तु बहुत से शून्यवादी असन्तुष्ट वर्ग को उभारते थे और उनसे क्रान्ति के लिए तैयार हो जाने को कहते थे। वे चाहते थे कि स्वार्थी जमींदारों और जिले के अधिकारियों का सफाया करा दिया जाय क्योंकि उन्हीं की बाधा के कारण कृषक-वर्ग ज़ार द्वारा दी गई भूमि से वंचित रखा जा रहा था।

१८६३ और १८७४ के बीच सरकार ने शून्यवादी सुधारकों के ऊपर कठोर दमन किया। लगभग १,५०,००० शून्यवादी (Nihilists) साइबेरिया[1] (Siberia) को निर्वासित कर दिए गए। दमन के फलस्वरूप शून्यवादियों के आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण कर लिया। अब इस आन्दोलन ने राजनीतिक आतंकवाद का रूप धारण किया; यहाँ तक कि कत्ल और लूटपाट का भी सहारा लिया गया। प्रारम्भ में जब यह आन्दोलन केवल प्रचारवादी आन्दोलन था, उस समय शब्दों की शक्ति और शब्दों के प्रभाव की परीक्षा करना अभीष्ट था। अब उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में उस शान्तिमार्गी आन्दोलन के विपरीत मार्ग की परीक्षा करना भी तो अभीष्ट ही था—अब साहसिक कार्यों और युद्ध के मार्ग की परीक्षा करनी थी। कुछ वर्ष पूर्व, जहाँ शून्यवादियों (Nihilists) का नारा था—"मनुष्यों में जाओ" (Among the People), अब उनका नरा था—"अब हम युद्ध और हिंसा करेंगे" (Let us act)।[2] प्रारम्भ में क्रोधपूर्ण प्रदर्शन हुए, फिर सड़कों पर छुटपुट घटनाएँ हुईं जिस प्रकार कि पेरिस में विद्रोह हुआ था। किन्तु जब इन उपायों से काम न चला तो शून्यवादियों ने प्रधान रूप से सरकार के बड़े अधिकारियों के विरुद्ध षड्यन्त्र तथा उन पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। अब पुलिस के अधिकारियों विशेषकर भेदियों और अन्य सरकारी अफसरों की हत्या की जाने लगी। अन्त में स्वयं ज़ार की हत्या का प्रयत्न किया जाने लगा। सेंट पीटर्सबर्ग के प्रीफेक्ट (Prefect of St. Petersburg) को एक स्त्री ने प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने के बहाने गोली मार दी। इसके बाद पुलिस के मुख्य अधिकारी को और राजकुमार क्रोपॉटकिन (Prince Kropotkin) को जो कारकॉफ (Kharkof) प्रांत का राज्यपाल था, गोली का निशाना बनाया गया। इन्हीं दिनों कई बार ज़ार की हत्या करने का भी प्रयत्न किया गया।

फलस्वरूप सरकार की ओर से भी दमन-चक्र तेजी से चला। छोटे-छोटे अपराधों पर कठोर दण्ड दिये जाने लगे; विश्वविद्यालयों पर फिर वही पुराने कठोर नियं-

---

1. E. Lipson : *Europe in Nineteenth Century*.
2. Stepniak : *Underground Russia* (Quoted by Lipson, *op. cit*).

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्त्रण लगा दिए गए; समाचारपत्रों की स्वाधीनता को और अधिक कस दिया गया और पुलिस को और अधिक व्यापक शक्तियाँ दे दी गईं। न्यायालयों में से प्रायः ज्यूरी व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया और न्यायालयों तथा स्थानीय परिषदों (Local Councils) पर नियन्त्रण लगा दिए गए। इस प्रकार पुराने रूसी शासन के सब दोष पुनः पैदा हो गए। किन्तु जहाँ सरकार की ओर से दमन बढ़ा, वहाँ शून्यवादियों की ओर से सरकारी दमन के प्रत्युत्तर में हिंसा भी बढ़ गई।

अन्त में एलेक्जैण्डर द्वितीय (ज़ार) को विवश होकर शून्यवादियों अथवा नाश-वादियों से समझौता करने की नीति को ग्रहण करना पड़ा। उसने १८८१ में नए सुधारों की योजना बनाने के लिए एक विशेष समिति नियुक्त करने का आज्ञा-पत्र निकाला। परन्तु जिस दिन उसने इस आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किए, उसी दिन शून्य-वादियों (Nihilists) द्वारा फेंके गए बमों (Bombs) के विस्फोट से ज़ार एलेक्जैंडर द्वितीय को १३ मार्च, १८८१ को प्राणांतक चोट लगी। उस समय वह सेंट पीटर्सबर्ग की एक सड़क पर होकर अपने विंटर पैलेस (Winter Palace) को लौट रहा था। एलेक्जैंडर द्वितीय की हत्या के फलस्वरूप रूस में सुधारों की प्रगति को बड़ा भारी आघात पहुँचा और स्वर्गवासी ज़ार द्वारा अपनाई गई समझौते की नीति का अन्त हो गया।

जहाँ तक एलेक्जैंडर द्वितीय की विदेश नीति का सम्बन्ध है उसके शासनकाल में रूस का मध्य एशिया में विस्तार हुआ। किन्तु यूरोप में रूस का प्रभाव क्षीण होने लगा।

एशिया में रूस का विस्तार

रूस को क्रीमिया युद्ध में जो हानि हुई, उसके बदले में रूस को पूर्व में चीन, फारस और अफगानिस्तान में व्यापक लाभ हुए और उस दिशा में रूस का प्रभाव खूब बढ़ा चीन के साथ ऐगुन (Aigun) की सन्धि करके रूस ने अपने उपनिवेशों को बढ़ा लिया। उक्त ऐगुन की सन्धि द्वारा रूस को अमूर (Amur) नदी के आस-पास का अपार भू-भाग प्राप्त हुआ और व्लाडीवोस्टक (Vladivostok) का बन्दरगाह मिला। यह बन्दरगाह ट्रांस साइबेरिया की महान् रेलवे लाइन का अन्तिम स्टेशन है और प्रशांत महासागर में रूसी जहाजी बेड़े का केन्द्रीय स्थान है।[1] मध्य एशिया में रूसी शक्ति का इतनी तेजी से विस्तार हुआ कि रूस की सीमाएँ फारस (Persia) तथा अफगानिस्तान को छूने लगीं। इससे इंग्लैण्ड को भय लगा और वह भारत की रक्षा के लिए बेचैनी महसूस करने लगा। रूस ने अधिकतर नव-अर्जित भू-प्रदेशों को रूस के साम्राज्य में मिला लिया; किन्तु कुछ छोटे-मोटे स्थानीय राजाओं को नाममात्र की स्वायत्तता दे दी गई। शर्त यह रही कि वे ज़ार की अधीनता स्वीकार कर लें। इस प्रकार वे राजा ज़ार की अधीनता में अपने देशों के नरेश किन्तु ज़ार के आज्ञाकारी नरेश (Obsequious Vassals) बने रहे।

---

१. अध्याय ११ देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण में कोहकाफ या काकेशस (Caucasus) पर्वत के चारों ओर की भूमि पर भी रूस का अधिकार हो गया था।

यूरोप में रूस की विदेश नीति को प्रिंस गोर्टचेकफ (Gortschakoff) के शब्दों में भली-भाँति समझा जा सकता है: "वह उद्विग्न या उदासीन नहीं है, वह रोग-निवृत्त हो रहा है।" ज़ार निकॉलस प्रथम (Nicholas I) प्रायः यूरोप के मामलों में हस्तक्षेप किया करता था, किन्तु अब हस्तक्षेप की नीति को त्याग दिया गया था। अब रूस विदेशी झंझटों से बचना चाहता था और अपने देश की आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ बनाना चाहता था। १८६३ के पोलैंड के विद्रोह के अवसर पर नेपोलियन ने जो रुख लिया उसके कारण रूस और फ्रांस की सम्भाव्य मैत्री सदैव के लिए नष्ट हो गई और रूस ने प्रशा (Prussia) की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाया क्योंकि बिस्मार्क (Bismarck) रूसी मित्रता का इच्छुक था।

रूस और प्रशा की गाढ़ी मैत्री हो गई जो १८७८ तक १५ वर्ष चली। प्रशा को इस मैत्री के अपार लाभ हुए। १८६४ में इस मैत्री के कारण प्रशा का दाहिना पार्श्व सुरक्षित रहा; १८६६ में इस मैत्री के कारण प्रशा का वाम पार्श्व सुरक्षित रहा और १८७० में इस मैत्री के कारण प्रशा का पीछे का पार्श्व सुरक्षित रहा। वास्तव में जर्मन साम्राज्य की आधारशिला ही प्रशा और रूस की मैत्री पर रखी गई थी। रूस को भी प्रशा की मैत्री से लाभ हुए। प्रशा ने ऑस्ट्रिया का मान-मर्दन किया, इस प्रकार रूस ने १८५४-५६ की ऑस्ट्रिया की गद्दारी का बदला ले लिया। प्रशा की मैत्री के कारण रूस की शक्ति में वृद्धि दिखाई दी और रूस ने एक और प्रयत्न किया कि वह बल्कान प्रदेश में अपने खोए हुए प्रभाव को पुनः प्राप्त करे।

१८७० में प्रशा ने फ्रांस को करारी हार दी थी। इससे उत्साहित होकर ही रूस ने पेरिस की सन्धि (Treaty of Paris) की उन धाराओं की अवहेलना कर दी जो काले सागर में उसके प्रभाव को क्षीण करती थीं। अब रूस ने सिवेस्टोपोल (Sebastopol) की रक्षा पंक्तियों को सुदृढ़ किया और अपनी नौसैनिक शक्ति को पुनर्गठित किया। सात वर्ष बाद १८७७ में पुनः रूस को तुर्की से युद्ध करना पड़ा, किन्तु ऐसे आड़े समय में जर्मनी ने रूस का साथ नहीं दिया। वास्तव में जिस प्रकार १८५४ में ऑस्ट्रिया ने रूस के साथ विश्वासघात किया था, प्रायः उसी प्रकार १८७७ में जर्मनी ने रूस का साथ नहीं दिया। किन्तु १८७७-७८ की रूसी-तुर्की लड़ाई में रूस को पर्याप्त सफलता मिली। रूस को बेसेरेबिया (Bessarabia) का प्रांत मिला और कार्स (Kars) नामक कॉकेशस का दुर्ग भी रूस को हस्तगत हुआ जिसे वह पहले भी दो बार हस्तगत कर चुका था। पेरिस की सन्धि (Treaty of Paris) में उसने मनमाने परिवर्तन करा लिए किन्तु सम्मिलित यूरोप की विरोधपूर्ण आवाज के सामने रूस अपना प्रभावक्षेत्र यूरोप में अधिक न बढ़ा सका; वास्तव में रूस का अनेक ऐसे लाभ यूरोप में त्याग देने पड़े जिनकी उसको पूर्ण आशा थी।[1]

---

१. अध्याय ७ देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ७

(CHAPTER VII)

निकट पूर्वी समस्या—१८५६ से १९१४ तक

(The Near Eastern Question—1856-1914)

पूर्वी समस्या की जटिलता और उसका महत्त्व

एक रूसी राजनीतिज्ञ ने एक बार कहा था—"यह घृणित पूर्वी समस्या एक प्रकार की गठिया की बीमारी है जो कभी तो टाँग को लग जाती है और कभी हाथ को प्रभावित करती है। यही गनीमत है कि यह किसी के पेट में न लगे।" यदि हम बल्कान प्रदेश के १८५६ के मानचित्र की १९१४ के मानचित्र से तुलना करें तो हम देखेंगे कि इस क्षेत्र में अनेक जटिलताएँ हैं और अनेक हितों का पारस्परिक टकराव है जो विशेष रूप से इस काल के ५० वर्षों के परिणाम हैं। १९१४ के सिरेजीवो के वध (Serajevo Murder) ने तो मानो बल्कान प्रदेश को आन्दोलित कर दिया। उक्त वध के फलस्वरूप बल्कान प्रदेश का यूरोपीय मामलों में भारी महत्त्व हो गया है।

यह पहले भी बताया जा चुका है कि पूर्वी समस्या के मूल में वास्तविक समस्या यह थी कि यूरोप के रंगमच से तुर्की गायब हो चुका था। तुर्की के गायब होने के साथ एक समस्या यह उठ खड़ी हुई थी कि अब तुर्की का स्थान कौन ग्रहण करे। न तो पामर्स्टन (Palmerston) का आशावाद, न यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का प्रत्यक्ष संरक्षण और न फ्रांस एवं ब्रिटेन के सशस्त्र हस्तक्षेप ही में इतनी शक्ति और क्षमता थी कि वे तुर्की को इतना मजबूत बना सकते जो वह अपने चारों ओर के शत्रुओं के मुकाबले में खड़ा रह सकता; या वे उसको इतना उदार बना सकते जो वह ईसाई राष्ट्रों के आदर और विश्वास का पात्र बन सकता। इसमें सन्देह नहीं कि क्रीमिया के युद्ध (Crimean War) ने तुर्की को ऐसा मौका दिया था जैसा कि उसे पिछले १०० वर्षों से न मिला था किन्तु अभागा तुर्की उससे लाभ न उठा सका। यदि कहीं लड़खड़ाते हुए पोलैण्ड को ऐसा सुनहरा अवसर मिल जाता तो कहना ही क्या था। बर्लिन की सभा (The Congress of Berlin) ने भी बीस वर्ष बाद तुर्की को विनाश से बचाने का एक सुनहरी मौका दिया था किन्तु फिर भी तुर्की ने इससे कुछ लाभ नहीं उठाया। यूरोप में तुर्की साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी था और यद्यपि यूरोप ने और विशेष रूप से ब्रिटेन ने बहुत दिनों तक इस अवश्यम्भावी सम्भावना को स्वीकार नहीं किया फिर भी अन्त में उनको भी सत्य स्थिति को स्वीकार करना ही पड़ा। यूरोपीय देशों की सरकारी पूर्वी नीति सदैव आने वाले खतरे को टालते रहने भर की रही; इसलिए प्रायः सभी यूरोपीय देश लगातार व्यर्थ के झंझटों में फँसे रहे—वास्तव में वे किए कामों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लिये बैठे रहे। सत्य यह है कि युद्ध के पूर्व यूरोपीय देशों ने न तो राजनीतिक योग्यता प्रदर्शित की, न दूरदर्शित प्रदर्शिता की; वे तो व्यर्थ के नकारात्मक झंझटों में ही फँस कर रह गए।

१८५६ में तुर्की साम्राज्य डैन्यूब (Danube) नदी तक फैला हुआ था। तुर्की साम्राज्य पर कई आक्रमण हो चुके थे। मौंटीनीग्रो (Montenegro) नामक पर्वतों में एक जाति निवास करती थी जिसने सदैव अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखा। १८३३ से यूनान देश भी यूरोपीय शक्तियों के संरक्षण में अपनी स्वतन्त्रता पर डटा हुआ था। सर्विया (Serbia) भी प्रायः पूर्ण स्वतन्त्र ही था यद्यपि यह नाममात्र को तुर्की की अधीनता में था और तुर्की की सेनाएँ भी सर्विया में पड़ी रहती थीं। केवल इन अपवादों को छोड़ कर डैन्यूब नदी के दक्षिण में समस्त प्रायद्वीप पर तुर्की झंडा ही लहराता था और उस नदी के आगे मॉल्डेविया (Moldavia) और वैलेशिया (Wallachia) नाम की दो रियासतें थीं जिन पर से अभी हाल में रूसी संरक्षण हट गया था और वे भी तुर्की की अधीनता में आ चुकी थीं।

१८५६ में तुर्क साम्राज्य

किन्तु १९१४ में तुर्की के अधिकार में उसकी राजधानी थी और थ्रेस (Thrace) में उसका कुछ भू-भाग पर अधिकार था। इस बीच के ५० वर्षों का इतिहास मुख्यतः चार समस्याओं का इतिहास रहा है। प्रथमतः, बल्कान प्रदेश के लोगों ने लगातार प्रयत्न किये कि वे तुर्की की अधीनता से मुक्त हो जायें। वे निरन्तर यह प्रयास करते रहे कि चाहे विदेशी सहायता मिले, चाहे न मिले, चाहे बातचीत द्वारा चाहे युद्ध द्वारा उनको तुर्की की अधीनता से मुक्त स्वीकार कर लिया जाय। वास्तव में तो वे यूरोप के संरक्षण से भी मुक्त हो जाना चाहते थे यद्यपि यह कुछ कठिन था।

और १९१४ में तुर्क साम्राज्य

चार मुख्य समस्याएँ

द्वितीयतः, प्रत्येक नये राज्य में आन्तरिक संघर्ष थे। सभी राज्य अपनी-अपनी आन्तरिक व्यवस्था को दुरुस्त करना चाहते थे। वे अपनी-अपनी शासन-प्रणालियों को, आर्थिक व्यवस्था को और वित्त-व्यवस्था को संतुलित करना चाहते थे।

तृतीयतः, नव-स्थापित ईसाई राज्यों में अपने-अपने भू-भाग बढ़ाने की उत्कट अभिलाषा थी। वे चाहते थे कि या तो तुर्की के भू-भागों पर अपना विस्तार करें या फिर एक ईसाई राज्य दूसरे ईसाई राज्य की भूमि को भी हड़पने की आकांक्षा रखता था। भूतकालिक इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही थी और भविष्य के इतिहास के लिए आदर्श निर्मित हो रहे थे। उस समय सभी राज्य विस्तार चाहते थे, सभी शक्ति-संतुलन की भाषा में सोच रहे थे और सभी साम्राज्यवाद के नशे में चूर थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो पश्चिमी यूरोप के राजदरबार बल्कान प्रदेश का मार्ग-दर्शन कर रहे थे।

अन्ततः, यूरोप की बड़ी शक्तियों की तुर्की साम्राज्य के विषय में विभिन्न महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। वास्तव में कोई भी बड़ी यूरोपीय शक्ति अपवाद नहीं थी। तुर्क

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य की कमजोरी से अथवा प्रत्येक अविकसित और नवनिर्मित राज्य की कमजोरी से प्रत्येक यूरोपीय बड़ी शक्ति अपना लाभ चाहती थी। इस ओर विशेष रूप से रूस, ऑस्ट्रिया-हंगरी और जर्मन साम्राज्य की लोलुप आँखें लगी हुई थीं।

पूर्वी समस्या में क्रीमिया युद्ध के पश्चात् प्रथम अशान्ति के लक्षण डैन्यूब नदी के उत्तर के दो प्रान्तों मॉल्डेविया और वैलेशिया (Moldavia and Wallachia) में प्रकट हुए। पेरिस की सभा (Congress of Paris) में इन दिनों राज्यों या उप-राज्यों (Principalities) को आश्वासन दिया गया था कि उन्हें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त होगी और उनका शासन राष्ट्रीय शासन होगा; उन्हें धार्मिक पूजा के सम्बन्ध में, व्यवस्थापन के सम्बन्ध में और व्यापार के सम्बन्ध में पूरी स्वतन्त्रता होगी; उनकी अपनी सेना होगी और वे स्वयं अपनी राष्ट्रीय सभा में अपना भावी संविधान निर्मित करेंगे।

इन प्रतिज्ञाओं के आधार पर उक्त दोनों उप-राज्यों (Principalities) को पूर्ण आशा थी कि वे अपना भविष्य स्वयं निर्माण करेंगे। उक्त दोनों उप-राज्यों की यही सामान्य इच्छा थी कि उन्हें तुर्की (Porte) के आधिपत्य से औपचारिक एवं वास्तविक मुक्ति प्राप्त हो। विशेष रूप से उक्त दोनों उपराज्य एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध चाहते थे।

यूरोप की शक्तियाँ मॉल्डेविया और वैलेशिया (Moldavia and Wallachia) की इस इच्छा का विरोध करती थीं। किन्तु फ्रांस को इस ओर सहानुभूति थी और वास्तव में एक ओर फ्रांस, पश्चिम में लैटिन सभ्यता का सर्वोच्च समर्थक था और दूसरी ओर रूमानिया (Rumania) भी, जिसके अधिकार में उक्त दोनों उपराज्य थे, लैटिन जाति और लैटिन सभ्यता का मेरुदण्ड था; और इन दोनों लैटिन समर्थक जातियों अर्थात् फ्रांसीसियों और रूमानियनों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति थी, इसके अतिरिक्त नेपोलियन तृतीय लगातार फ्रांसवासियों के अतिरिक्त अन्य जातियों की राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति रखता था और वह चाहता था कि प्रत्येक विदेशी राष्ट्र अपनी इच्छानुकूल शासन-प्रणाली अपनावे। नेपोलियन तृतीय ने रूस के जार एलेक्जैंडर द्वितीय का समर्थन भी इस ओर प्राप्त कर लिया था।

किन्तु तुर्की (Porte) नहीं चाहता था कि दोनों उपराज्यों का संगठन हो जाय क्योंकि इससे उसे भय था कि दोनों उपराज्यों की संगठित शक्ति इतनी हो जाएगी कि फिर उनको अधीनता में रखना कठिन हो जायेगा। ऑस्ट्रिया को तो सदैव से इस भय ने घेर रखा था कि उसके साम्राज्य में जहाँ कोई जातीय ऐक्य स्थापित हुआ वहीं विद्रोह की आशंका बनी रहती थी। अतः वह जातीय सिद्धान्तों को मान्यता देने के लिए तैयार न था अन्यथा उसे भय था कि उसके साम्राज्य के रूमानियन सर उठाने लगेंगे। इंग्लैंड भी मॉल्डेविया और वैलेशिया (Moldavia and Wallachia) की माँग का विरोधी था क्योंकि अभी तो उसने तुर्की के पक्ष में युद्ध किया था ताकि तुर्की के साम्राज्य की एकता अक्षुण्ण बनी रहे, और पुनः इतना शीघ्र उसके लिए उचित न होता कि वह किसी ऐसी योजना का समर्थन करता जिससे तुर्क साम्राज्य का विघटन होने को होता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी स्थिति में मॉल्डेविया और वैलेशिया (Moldavia and Wallachia) में निर्वाचन हुए, किन्तु निर्वाचनों का फल तुर्की के अनुकूल हुआ। इस पर फ्रांस ने माँग की कि निर्वाचन नये सिरे से होना चाहिए क्योंकि निर्वाचनों में भारी गड़बड़ी की गई थी। इसके उत्तर में इंग्लैंड ने कहा कि फ्रांस की माँग अन्याययुक्त है और दूसरे स्वतन्त्र राज्य के आन्तरिक मामलों में व्यर्थ का हस्तक्षेप है। दोनों ओर उत्तेजना दिखाई देती थी और कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत हुआ कि पूर्वी समस्या पर शायद यूरोपीय महायुद्ध भड़क उठेगा। यह भी दिखाई दे रहा था कि दोनों विरोधी पक्षों में राष्ट्रों का पुनर्विन्यास (Re-arrangement) हो सकता है। किन्तु, इंग्लैंड और रूस दोनों ही इतनी जल्दी युद्ध मोल लेने को तैयार न थे और नेपोलियन ने भी कुछ नरम रुख कर लिया। उसने इंग्लैंड और ऑस्ट्रिया को बतलाया कि यदि दोनों उपराज्य (Principalities) मिल जाते हैं तो उनकी संगठित शक्ति रूस के विरुद्ध एक कठोर रोक या अवरोध होगी। उसने बताया कि रूस पूर्व का हौवा है और उसके विरुद्ध मॉल्डेविया और वैलेशिया का संगठन कारगर अवरोध हो सकता है। किन्तु, यदि वे दोनों उपराज्य अलग-अलग रहेंगे तो उनकी कमजोरी वास्तव में तुर्की के लिए भी खतरा है। अतः तुर्की को चाहिए कि वह उक्त दोनों उपराज्यों (Principalities) का संगठन बन जाने दे।

इन्हीं दिनों दोनों उपराज्यों (Principalities) में दुबारा चुनाव हो चुके थे और चुनावों के परिणामों ने घोषित किया कि "दोनों उपराज्य एक तटस्थ और स्वायत्तशासी राज्य के रूप में संगठित हो जाएँ और उस राज्य पर तुर्की के सुलतान का आधिपत्य रहे और इस प्रकार उस राज्य में विदेशी राजा के अधीन आनुवंशिक और संवैधानिक शासन की स्थापना हो।"

इतने पर भी यूरोप की शक्तियों ने दोनों उपराज्यों का संघ स्वीकार नहीं किया। १८५८ के मई मास से अगस्त तक विभिन्न राज्य सम्मेलन करते रहे और अन्त में यह निर्णय किया गया कि दोनों उपराज्यों का शासन अलग-अलग चले, प्रत्येक उपराज्य की अपनी अलग संसद् होगी और अपना अलग राजा होगा; किन्तु दोनों उपराज्यों के सामान्य हितों के मामले एक संयुक्त आयोग (Joint Commission) के सुपुर्द किये जा सकते हैं।

इसी योजना के अनुसार नौ वर्ष बाद ऑस्ट्रिया और हंगरी की समस्या को भी सुलझाया गया। किन्तु मॉल्डेविया और वैलेशिया नामक उपराज्यों ने इस योजना को बिलकुल पसन्द नहीं किया। उन्होंने इस योजना को कार्यान्वित करने से साफ इनकार कर दिया। १८५९ के प्रारम्भ में मॉल्डेविया की राजधानी जैस्सी (Jassy) में और वैलेशिया की राजधानी बुकारेस्ट (Bukarest) में राष्ट्रीय संसदें अपने-अपने उपराज्य के लिए राजा चुनने के उद्देश्य से आहूत हुईं। उन दोनों संसदों (National Assemblies) ने सर्व-सम्मति से एक ही व्यक्ति कर्नल एलेक्जैंडर कौज़ा (Colonel Alexander Couza) को दोनों उपराज्यों के लिए राजा चुना। कर्नल एलेक्जैंडर कौज़ा इन्हीं उपराज्यों का एक लोकप्रिय सामन्त था।

यूरोपीय शक्तियों की इच्छा का इस प्रकार तिरस्कार करने के फलस्वरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपीय राजधानियों में भारी उत्तेजना फैली किन्तु अन्त में २३ दिसम्बर, १८६१ को दोनों उपराज्यों का संघ स्वीकार कर लिया गया और तदर्थ घोषणा कर दी गई। वास्तव में यह अपरिहार्य था। इस नये राज्य का नाम रूमानिया (Rumania) रखा गया और बुकारेस्ट (Bukarest) इस नये राज्य की राजधानी बनी यद्यपि इस राजधानी सम्बन्धी निर्णय से जैस्सी में कुछ निराशा और विद्वेष भावना का होना स्वाभाविक ही था।

राजकुमार कर्नल कौज़ा (१८५९-६६)

१८५९ से लेकर १८६६ तक राजकुमार कौज़ा रूमानिया नामक नये राज्य का शासक रहा। उसको अनेक और विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा। रूमानिया के अन्य सामन्ती परिवार राजकुमार कौज़ा (Couza) से द्वेष रखते थे। उसने रूमानिया में शिक्षा की उन्नति की। जैस्सी (Jassy) और बुकारेस्ट (Bukarest) में विश्वविद्यालयों की स्थापना की, प्रारम्भिक और उच्चतर-माध्यमिक पाठशालाएँ खोलीं और प्राविधिक स्कूल (Technical Schools) भी खोले। उसने धार्मिक मठों की सम्पत्ति का धर्म से इतर कार्यों में उपयोग किया, मठाधीशों (Monks) को निकाल बाहर किया और उनके निवास-स्थानों को अस्पतालों या जेलों में परिणत कर दिया। उसने जागीरदारी के प्रश्न को भी तय करना निश्चित किया; जबर्दस्ती बेट-बेगार को समाप्त कर दिया; जमींदारों या सामन्तों की एक-तिहाई जमीनें छीनकर किसानों में बाँट दीं और इस प्रकार छीनी गई जमीनों का मुआवजा (Compensation) जमींदारों या सामन्तों को राज्य के कोष से दे दिया गया। किन्तु रूमानिया के कृषक वर्ग भी उसी प्रकार असन्तुष्ट थे जिस प्रकार कि कृषक दासों की मुक्ति के पश्चात् रूस के दास अप्रसन्न थे। राजकुमार कौज़ा (Prince Couza) के सुधारों ने चारों ओर शत्रु पैदा कर दिए थे और फरवरी १८६६ में बुकारेस्ट (Bukarest) में एक विप्लव हुआ जिसमें कौज़ा (Couza) को राजसिंहासन से च्युत कर दिया गया।

राजकुमार कौज़ा के पदच्युत किए जाने के पश्चात् रूमानिया (Rumania) का राजमुकुट पहले तो बेल्जियम के राजा के पुत्र राजकुमार फ़िलिप आफ़ फ्लेंडर्स (Prince Philip of Flanders, son of the King of the Belgians) को दिया गया किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् वही राजमुकुट राजकुमार कैरॉल या राजकुमार चार्ल्स (Prince Carol or Charles) को अर्पित किया गया। राजकुमार कैरॉल या राजकुमार चार्ल्स होहेन्जोलर्न-सिगमैरिंजन (Hohenzollern-Sigmaringen) राज-परिवार का कुमार था और राजकुमार लियोपोल्ड (Prince Leopold) का भाई था जिसके कारण फ्रांस और जर्मनी में युद्ध हुआ। उसकी स्त्री प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका कारमैन सिलवा (Carmen Sylva)[1] थी। उसने लिखा है

---

१. राजकुमार कैरोल (Prince Carol) की स्त्री का असली नाम राजकुमारी एलिजाबेथ (Princess Elizabeth) था। वह नेवीड के राजकुमार हरमैन (Prince Herman of Nauwied) की पुत्री थी। वह प्रसिद्ध लेखिका थी। उसका उपनाम कारमैन सिलवा (Carmen Sylva) था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि राजकुमार कैरोल (Prince Carol) ने इससे पूर्व कभी रूमानिया के बारे में कुछ भी नहीं सुना था। जिस समय रूमानिया का राजमुकुट उसको भेंट किया गया उस समय उसने एक नक्शे में देखा कि यदि लन्दन (London) से बम्बई (Bombay) तक नक्शे में एक सीधी रेखा खींची जाये तो वह रेखा रूमानिया (Rumania) को छूती हुई खींची जायगी। उसने कहा—"इस देश के साथ मेरा भविष्य जुड़ा हुआ है।" यह कहकर उसने रूमानिया का राजमुकुट स्वीकार कर लिया। बिस्मार्क राजकुमार कैरोल (Prince Carol) के पक्ष में था, चाहे इसमें उसे अपना कुछ स्वार्थ ही दीखता हो। कम-से-कम ऑस्ट्रिया की बगल में होहेन्जोलर्न राजकुमार की सैनिक चौकी तो स्थापित हो रही थी।

तथापि, यूरोप की शक्तियों ने राजकुमार कैरोल का विरोध किया, किन्तु अन्त में उनको स्वीकार करना ही पड़ा। राजकुमार कैरोल, फिर वही राजा चार्ल्स के नाम से रूमानिया के राजसिंहासन पर बहुत दिनों तक रहा यद्यपि कई बार बीच में ऐसे अवसर भी आये मानो वह राज्य त्यागने जा रहा है। इस प्रकार वह प्रथम विश्वयुद्ध के छिड़ने के कुछ महीनों बाद तक अर्थात् अक्तूबर १९१४ तक रूमानिया के राजसिंहासन पर डटा रहा। उसके राज्यकाल में रूमानिया जो प्रारम्भ में एक मध्ययुगीन अधीन राज्य या उपराज्य (Principality) था, वही एक आधुनिक राज्य बन गया। उसने रूमानिया में ऐसा संविधान भी प्रचलित किया जो बेल्जियम के संविधान के आधार पर बनाया गया था। "वास्तव में सारे बल्कान राज्यों में केवल रूमानिया में ही इंग्लैण्ड जैसा संवैधानिक राजतन्त्र था।"[1] कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) में ग्रीक चर्च था। उसके आधिपत्य से उसने अपने देश के रोमन कैथोलिक चर्च को मुक्त कर लिया। १८८१ में उसने रूमानिया नाम के उपराज्य या अधीन राज्य (Principality) को राज्य (Kingdom) में बदल दिया। उसके परिश्रम के फलस्वरूप देश में रेलों का जाल-सा बिछ गया और उद्योगों एवं कृषि की भारी उन्नति हुई। इसके अतिरिक्त रूमानिया का आयात-व्यापार और निर्यात-व्यापार भी बहुत बढ़ गया।

राजकुमार कैरोल
१८८६-१९१४

विदेश नीति के सम्बन्ध में यह स्वाभाविक ही था कि राजकुमार चार्ल्स (Prince Charles) जर्मनी का मुखापेक्षी रहता और प्रशा और ऑस्ट्रिया की मैत्री के पश्चात् वह केन्द्रीय यूरोपीय शासन (Central European System) से मार्ग-दर्शन लेता था। वास्तव में यह बारम्बार कहा जाता था कि रूमानिया की नीति या तो बर्लिन या वियना द्वारा नियन्त्रित होती थी। किन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं था, क्योंकि उदाहरणस्वरूप १९१३ के द्वितीय बल्कान युद्ध (Balkan War) में जनता को कुछ रियायतें देनी ही पड़ी थीं यद्यपि सरकार की नीति रियायतें देने के विरुद्ध थी। १८७० में रूमानिया के सर्वसाधारण की सहानुभूति फ्रांस के साथ थी किन्तु राजकुमार चार्ल्स की सहानुभूति जर्मनी (Germany) के साथ थी। बाद में

1. Sir J. A. R. Marriott, *The Eastern Question*, p. 304.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूमानिया में राष्ट्रवादी सहानुभूति उमड़ पड़ी थी और रूमानियावासी चाहते थे कि ऑस्ट्रिया-हंगरी के रूमानियन नागरिकों का डैन्यूब के आस-पास के क्षेत्र में राज्य स्थापित हो और इसी कारण रूमानिया और ऑस्ट्रिया-हंगरी में स्थायी मैत्री न हो सकी। यद्यपि दोनों देशों (रूमानिया और ऑस्ट्रिया-हंगरी) के नरेशों में मित्रता थी फिर भी दोनों देशों में हार्दिक मैत्री न हो सकी। जब तक राजा चार्ल्स (King Charles) रूमानिया के राजसिंहासन पर रहा, तब तक रूमानिया के आस्ट्रिया-हंगरी से अच्छे सम्बन्ध बने रहे। किन्तु १९१४ में चार्ल्स की मृत्यु हो गयी और तभी से रूमानिया ने भी अपनी तटस्थता त्याग दी और १९१६ में रूमानिया ऑस्ट्रिया के शत्रुओं के गुट में मिल गया।

तुर्की द्वारा दमन और अत्याचार

जब से मॉल्डेविया और वैलेशिया नामक उपराज्यों को मिलाकर रूमानिया नामक राज्य में संगठित कर दिया गया तब से तुर्की के यूरोपीय राज्यों में दस वर्षों से अधिक काल तक कोई विद्रोह नहीं हुआ क्योंकि रूस ने १८७० में संकुचित जलमार्ग का जो प्रश्न उठाया था वह शीघ्र ही तय हो गया। इन्हीं दिनों यूरोपीय शक्तियों को भारी निराशा इस कारण हुई कि तुर्की ने १८५६ में अपनी ईसाई प्रजा के साथ जिस अच्छे व्यवहार का वचन दिया था यह असत्य सिद्ध हुआ। यूरोपीय शक्तियों को ऐसा लगा कि स्वयं तुर्की अपने विनाश का मार्ग बना रहा है। बाहरी तौर पर तुर्क साम्राज्य के नियम ऐसे थे मानो समस्त तुर्की प्रजा के साथ बिना जाति-धर्म या वर्ग-विभेद के एक-सा व्यवहार किया जाता है और समस्त प्रजाजनों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है; विधि के समक्ष सभी समान माने जाते हैं; सभी को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता है; सभी सैनिक और असैनिक पदों पर समान रूप से लिये जा सकते हैं; सभी पर समान रूप से कर लगाये जाते हैं; सभी की सम्पत्ति समान रूप से सुरक्षित है और सभी को नगर परिषदों और प्रान्तीय परिषदों में समान आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त है और सभी प्रजाजन सर्वोच्च न्यायालय तक में न्यायाधीश निर्वाचित होने की क्षमता रखते हैं। किन्तु व्यवहार में १८५६ की तथाकथित रियायतें केवल नाममात्र को थीं। १८६१ में तुर्की का सुल्तान अब्दुल अजीज राजसिंहासन पर बैठा। यद्यपि वह नेक इरादों का सुलतान था, किन्तु वह इतना निर्बल शासक था कि स्वयं अपने अधिकारियों तक पर वह रौबदाब रखने में असमर्थ था। इसमें सन्देह नहीं है कि उसने अपने साम्राज्य को धर्म-निरपेक्ष और आधुनिककालीन बनाने का प्रयत्न किया और उसने यूरोपीय शक्तियों की आलोचना पर भी ध्यान दिया। उसने साम्राज्य में संचार-साधनों का विकास किया और सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में भारी सुविधाएँ दीं, किन्तु इन सुधारों का इच्छित परिणाम नहीं निकला। उस समय भी तुर्की साम्राज्य धार्मिक मुल्लाओं द्वारा शासित होता था और अब तक सदैव वह धर्म-प्रधान राज्य रहा यद्यपि तुर्की ने अन्तिम तौर पर यह सिद्ध कर दिया है कि धर्म-प्रधान राज्य (Theocracy) को भी धर्म-निरपेक्ष बनाया जा सकता है किन्तु तुर्की ने अपनी बारम्बार की असफलताओं के द्वारा यह भी दिखा दिया है कि किसी धर्म-प्राण राज्य को बदलना अतीव कष्टसाध्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और ऐसी विधि को भी बदलना अतीव कठिन है जिसका आधार धार्मिक आज्ञाएँ हों।

स्थानीय अधिकारियों को इतनी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त थीं कि वे जिसकी चाहते इज्जत ले लेते, जिसके साथ चाहते उसके साथ न्याय करते या जिसको न चाहते उसके साथ अन्याय करते। सभी नागरिकों की सम्पत्ति भी उन्हीं स्थानीय अधिकारियों की कृपा-कोर पर अवलम्बित थी। ज्यों-ज्यों सुलतान की फिजूलखर्ची बढ़ती गई त्यों-त्यों उसकी धन-सम्बन्धी माँगें भी बढ़ती गईं। राज्य के छोटे अधिकारी प्रजा से बेरहमी के साथ धन ऐंठने लगे। सारे तुर्क साम्राज्य में कुशासन, दमन एवं अत्याचार का बोलबाला था।

ईसाइयों का विरोध

किन्तु बल्कान प्रदेश की तिरस्कृत और विजित जातियाँ और अधिक जुल्मो-सितम सहने के लिए तैयार न थीं। मौंटीनीग्रो जाति (Montenegrin), सर्बियन जाति (Serbian) और यूनानी जाति (Greek) के संघर्षों के फलस्वरूप ईसाई प्रजाजनों में बेचैनी और असन्तोष चरम सीमा तक पहुँच गया था और अब ईसाइयों की महत्त्वाकांक्षाएँ भी जाग चली थीं। रूस के सर्व स्लाववादी या स्लाव जाति समर्थक भी चुपके-चुपके जातीय भावना जगा रहे थे और राष्ट्रीय विरोध उभार रहे थे। "क्रीमिया युद्ध के बाद से सर्व स्लाववादी या स्लाव जाति के समर्थक और प्रचारक लगातार अपने धर्मावलम्बियों और अपने जाति-भाइयों में प्रचार कर रहे थे। ऐसे सर्व स्लाववादी प्रचारक अधिकतर रूसी नागरिक थे।"[1] १८६७ में मास्को में एक विराट् सर्व स्लाव समर्थक महासम्मेलन हुआ जिसको वैज्ञानिक परिषद् की संज्ञा दी गई। एक केन्द्रीय सर्व स्लाववादी समिति की स्थापना हुई जिसका सदर मुकाम मास्को (Moscow) में रखा गया और जिसकी उपसमिति बुखारेस्ट (Bukarest) में स्थापित की गई। पुस्तकें, हैण्डबिल और पैम्फलेट सारे बल्कान प्रदेश में प्रसारित किये गए। नव-युवक स्लाव विद्यार्थी उसी प्रकार रूसी विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने को दौड़े जिस प्रकार कि रूमानिया के नवयुवक पेरिस को जाते थे। प्रायद्वीप में स्थित प्रत्येक रूसी वाणिज्य दूत या कुस्तुन्तुनिया में स्थित रूसी राजदूत सर्व स्लाववाद (Pan Slavism) के प्रति सहानुभूति रखता था और सर्बिया (Serbia), बौस्निआ (Bosnia), मौंटीनीग्रो (Montenegro) और बल्गेरिया (Bulgaria) में गुप्त सभाओं का जाल-सा बिछ गया।

सर्व स्लाव वाद

इन प्रदेशों से पूर्वी प्रश्न सम्बन्धी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यकायक १८७० के आसपास के दशक में ऐसा प्रतीत होने लगा मानो यूरोप-स्थित तुर्की साम्राज्य आन्तरिक विद्रोहाग्नि की गरमी से टूट जायेगा और यह दशक समाप्त भी न होने पाया था कि तुर्क साम्राज्य की स्थिति अत्यन्त जर्जर और क्षीण हो गई।

दक्षिणी सर्व स्लाववादी आन्दोलन का नेतृत्व सर्बिया ने ग्रहण किया। इस प्रकार सर्बिया ने ५० वर्ष पूर्व ही अपना भाग्य-निर्माण करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर

1. Sir J. A. R. Marriott, *The Eastern Question*, p. 319-320.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। राजकुमार मिलोश ओब्रेनोविश तृतीय (Prince Milosh Obrenovic III) ने भारी प्रयत्न करके सर्विया (Serbia,) बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगों-विना (Herzegovina) को एक सूत्र में पिरोया। उसने क्रोशिया (Croatia) के राष्ट्रीय नेताओं से भी सम्पर्क स्थापित किया, वल्गेरिया (Bulgaria) के देशभक्तों की एक सभा से भी गुप्त समझौता किया, और यूनान (Greece) को भी अपने पक्ष में किया। किन्तु १८६८ में राजकुमार मिलोश ओब्रेनोविश तृतीय (Prince Milosh Obrenovic III) की हत्या कर दी गई, इस कारण सर्बिया की उन्नति ५० वर्षों के लिए रुक गई। राजकुमार की मृत्यु ने सर्विया की उन्नति को रोक दिया। वह तब तक के लिए रुकी रही जब तक चारों ओर विरोध का तूफान न उमड़ा, आखिरकार बल्गेरिया (Bulgaria) की प्रतिद्वन्द्विता और ऑस्ट्रिया-हंगरी के हित और सामर्थ्य-वान जर्मन साम्राज्य की शक्ति सर्विया और यूगोस्लाव (Yugoslav) संघ के बीच में खड़ी हो गई जिसके कारण सर्विया और यूरोप युद्ध में कूद पड़े और तभी सर्विया का उद्धार हुआ।

बौस्निआ और हर्ज़ेगोविना

१८७५ और १८७६ के विद्रोहों का प्रारम्भ सर्विया ने नहीं किया बल्कि वह बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) की ओर से प्रारम्भ किया गया। इन जिलों को सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय सभी प्रकार की शिकायतें थीं। कठोर और दमनकारी जागीर-दारी प्रथाएँ इन जिलों में प्रचलित थीं। कृषकों को तुर्क साम्राज्य के अधिकारी भी चूसते थे और स्थानीय जमींदार भी उनको सताते थे। अपनी सम्पत्ति की रक्षा के उद्देश्य से अनेक ईसाई मुसलमान बन गये थे जो वास्तव में तुर्की से भी अधिक पक्के तुर्क बन गए थे।

हर्ज़ेगोविना का विद्रोह (१८७५)

१८७५ में हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) के कृषकों ने कर अदा करने से या बेट वेगार करने से मना कर दिया और जब उन विद्रोहियों को दबाने के लिये तुर्की सैनिक दल भेजा गया तो विद्रोहियों ने उस दल को मारकर भगा दिया। अब विद्रोह का समाचार पाते ही सर्विया (Serbia), मौंटीनीग्रो (Montenegro) और डालमैशिया (Dalmatia) के मित्र वर्ग हर्ज़ेगोविना के कृषकों की सहा-यतार्थ आ गये। इस समय तुर्की (Turkey) के खजाने खाली थे। यूरोप की शक्तियों में इन घटनाओं के कारण बेचैनी हुई। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो पूर्वी समस्या फिर उभर आई है और यूरोपीय देशों में कूटनीतिक वार्ता चल पड़ी। हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) और तुर्की को प्रस्ताव भेजे गये ताकि उपद्रव शान्त हो जाये किन्तु एक ओर हर्ज़ेगोविना हठ पर था तो दूसरी ओर तुर्की (Porte) विनम्र होते हुए भी कपट व्यवहार कर रहा था। इसमें सन्देह नहीं है कि तुर्की इतनी रियायतें देने की प्रतिज्ञा कर रहा था जितनी कि यूरोप के लोग चाहते थे अर्थात् ईसाई प्रजा को निष्पक्ष शासन देने की प्रतिज्ञा की जा रही थी और इधर-उधर छोटे-मोटे इच्छित सुधार भी दिये जा रहे थे किन्तु असली कठिनाई यह थी कि यूरोप की शक्तियों को विश्वास कैसे होता कि तुर्की (Turkey) अपने वायदों को पूरा करेगा। सैलोनिका (Salonika)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में फ्रांस और जर्मनी के वाणिज्य-दूतों की हत्या के फलस्वरूप समझौता और भी कठिन हो गया; किन्तु चूंकि ग्रेट ब्रिटेन ने अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ मिलकर तुर्की (Porte) के ऊपर दबाव डालना उचित नहीं समझा अतः तुर्की के सुलतान ने समझा कि वह मनमाने ढंग से यूरोपीय देशों के विरोध को टाल सकता है।

इन्हीं दिनों बल्कान देशों का विद्रोह फैलने लगा। मई में बोस्निआ (Bosnia) भी विद्रोह में सम्मिलित हो गया और जून मास में सर्बिया (Serbia) और मौंटीनीग्रो (Montenegro) ने भी तुर्की (Porte) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। विद्रोह पूर्व की ओर बढ़ता दिखाई दे रहा था। अब विद्रोह बल्गेरिया (Bulgaria) तक पहुँच गया। यह डैन्यूब (Danube) नदी के दक्षिण में एक जिला था, जो किसी समय एक बड़ा राज्य था किन्तु अब उसकी स्थिति तुर्की (Porte) के आधीन एक जिले से अच्छी न थी। अभी तक यह किसी ने नहीं सुना था कि बल्गेरियावासी क्या चाहते हैं। केवल उन्होंने १८७० में सर्बों (Serbs) और रूमानियावासियों (Rumanians) की तरह अपने चर्च (Church) को कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) के ग्रीक चर्च के प्रभाव से मुक्त कर लिया था। तुर्की के लिए यह खतरे की घंटी थी। अब बल्गेरिया के विद्रोही अपने पड़ोसी राष्ट्रों की ओर सहायता के लिए ताकने लगे और एका-एक मई १८७६ में बल्गेरिया के विद्रोहियों का नाम सदैव के लिए अमर हो गया। हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) के कृषकों के समान ही बल्गेरिया के कृषकों ने भी तुर्की अधिकारियों के आदेशों की अवहेलना कर दी। यही नहीं; उन्होंने इस अवहेलना के अतिरिक्त सौ से अधिक तुर्की अधिकारियों को मौत के घाट उतार दिया।

तुर्की (Porte) को बल्गेरिया के इस अशिष्ट व्यवहार पर क्रोध आना स्वाभाविक ही था, किन्तु उसने बल्गेरिया पर आक्रमण इसलिए नहीं किया कि उसे भय था कि कहीं उसके दाहिने पार्श्व पर उस अवस्था में आक्रमण न हो जाये जब वह बल्गेरिया में युद्ध कर रहा हो। अतः उसने यह निर्णय किया कि बल्गेरिया से कठोर बदला लिया जाय। १८,००० तुर्की सैनिक बल्गेरिया (Bulgaria) में घुस पड़े।

बल्गेरिया में तुर्की के अत्याचार (१८७६)

इन सैनिकों के साथ अनेक असैनिक लुटेरे भी थे जिन्होंने बल्गेरिया के गाँवों में लूट-मार और हत्याएँ कीं। इन असैनिक लुटेरों में बाशी-बजुक (Bashi-Bazouks) थे और करकैशन (Circassians) थे। इसके बाद बल्गेरिया-वासियों पर जो जुल्म ढाये गये उनके बारे में सही आँकड़े प्रस्तुत करना असम्भव है। ब्रिटिश सरकार ने एक आदमी को बल्गेरिया इसलिए भेजा था कि वह जुल्मों की सही रिपोर्ट दे। उसने लिखा था कि १२,००० ईसाइयों की हत्या हुई थी। अन्य लोगों ने अनुमान लगाया था कि ३०,००० ईसाई कत्ल कर डाले गये थे।

इस कत्लेआम की सूचना पर ईसाई देशों में गमो-गुस्सा की लहर दौड़ गई। श्री ग्लैडस्टन (Mr. Gladstone), जो राजनीति से अवकाश ग्रहण कर चुके थे, मैदान में आ गए और उन्होंने ब्रिटिश जाति को ईसाइयों की हत्या का बदला लेने के लिए उभारा। उन्होंने कहा : "अब तुर्क लोगों को अपने जुल्मों के कारण स्वयं बल्गारिया (Bulgaria) से भाग जाना होगा। तुर्की के जालिम अधिकारियों को, जिनमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ेप्टे (Zaptieh), मुडीर (Mudir), बिम्बाशी (Bimbashi), यज़्बाशी (Yaz-bashi), कैमकम (Kaimakam) और पाशा (Pasha)[1] प्रमुख हैं, अन्य अधिकारियों सहित बल्गेरिया से सदैव के लिए हट जाना ही होगा जिसको उन्होंने वीराना बना दिया है और जिसको अपनी नृशंसता से अपवित्र कर दिया है।" तुर्क साम्राज्य की अखण्डता का ब्रिटिश विश्वास एक भावुकता की लहर में घुल गया। किन्तु कट्टर ईसाई समर्थक श्री ग्लैडस्टन उस समय इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री नहीं थे और श्री डिज़रैली (Mr. Disraeli) नामक एक यहूदी सज्जन उस समय ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री थे जिनके विचार श्री ग्लैडस्टन के विचारों से मेल नहीं खाते थे।[2] डिज़रैली का विश्वास था कि इंग्लैण्ड को पूर्व में बहुत कुछ करना है और भारत साम्राज्य के मूल्य को वह भली-भाँति समझता था। केवल दो वर्ष पूर्व उसने स्वेज़ नहर के खेदीव के अंशों को खरीदा था। १८७६ में उसने प्रिंस ऑफ वेल्स (Prince of Wales) को भारत के इतिहास में प्रथम बार भारत का दौरा करने के लिए राजी कर लिया था, और १ जनवरी, १८७७ को भारत में ब्रिटिश देख-रेख में सर्वप्रथम अत्यन्त शानदार उत्सव हुआ जिसमें रानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया गया। वास्तव में डिज़रैली (Disraeli) के दिमाग में भारत का अधिक महत्त्व था, बल्गेरिया का उतना नहीं और तुर्की भारत का शत्रु नहीं था। इधर, रूस की लोलुप आँखें भारत पर लगी हुई थीं। रूस के अभिकर्त्ता अफगानिस्तान (Afghanistan) पर छाये हुए थे और रूस का साम्राज्य उस दिशा में बराबर बढ़ रहा था।

रूस और तुर्की में युद्ध (१८७७-७८)

२४ अप्रैल, १८७७ को रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह तो सभी समझते थे कि पूर्वी समस्या से रूस अलग नहीं रह सकता। सर्बिया (Serbia) की फ़ौजें भी मैदान में आ गईं जिनमें अधिकतर रूसी स्वयंसेवक थे और रूसी ही जनरल थे। १८५६ में ज़ार के हाथ से बेसारेबिया (Bessarabia) निकल चुका था। अब तुर्की के साथ चलने वाले युद्ध से ऐसा प्रतीत होने लगा कि बेसारेबिया पर रूस का अधिकार हो जायेगा। १८७६ के पतझड़ और जाड़े के मौसमों भर रूस धैर्य और शान्ति के साथ देखता रहा कि यूरोपीय शक्तियाँ आपसी विचार-विनिमय द्वारा और तुर्की के साथ बातचीत करके क्या

१. ये सब नाम उन तुर्की अधिकारियों के हैं जिन्होंने बल्गेरिया में आतंक मचाया था।

२. डिज़रैली (Disraeli) समझता था कि ग्लैडस्टन (Gladstone) के ईसाई समर्थक विचार तत्कालीन ब्रिटिश नीति को बदनामी और क्लेश पहुँचाने वाले थे। डिज़रैली ने लार्ड डर्बी (Lord Derby) को लिखा था : "आने वाली सन्तति ही निर्णय करेगी कि बिना सिद्धान्तों वाला दीवाना ग्लैडस्टन सही मार्ग पर था या मैं। वह एक ओर द्वेष-भावना, बदला लेने की भावना, आडम्बर और गलत विश्वासों से ओत-प्रोत है और दूसरी ओर वह कभी भी शरीफ आदमी के समान बर्ताव नहीं करता, चाहे वह प्रधान मन्त्री हो या विरोधी दल का नेता हो, चाहे वह धर्मोपदेश करता हो, चाहे वह प्रार्थना कर रहा हो, चाहे वह भाषण कर रहा हो, चाहे वह लेख लिख रहा हो—यह उसकी चारित्रिक विशेषता है कि वह कभी शराफत का बर्ताव नहीं करता।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय करती हैं। न तो यूरोपीय शक्तियों में कोई सर्वसम्मत निर्णय हो सका, न तुर्की ने सुशासन सम्बन्धी कोई गारंटी दी; इसलिए जनवरी १८७७ में रूस ने ऑस्ट्रिया के साथ रीश्टाट (Reichstadt) की सन्धि कर ली और इसके बाद ही रूस ने युद्ध करने का फैसला कर लिया। रीश्टाट की सन्धि की शर्तों के अनुसार ऑस्ट्रिया-हंगरी ने स्वीकार किया कि यदि रूस और तुर्की के बीच युद्ध होता है तो ऑस्ट्रिया-हंगरी तटस्थ रहेगा किन्तु शर्त यह थी कि उस तटस्थता के बदले में ऑस्ट्रिया-हंगरी को बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) में प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने दिया जायगा।

ऑस्ट्रिया की तटस्थता प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब रूस को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि रूमानिया (Rumania) को अपनी ओर मिलाया जाय क्योंकि कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) को केवल स्थल मार्ग द्वारा ही पहुँचा जा सकता था। रूमानिया के साथ भी सन्धि हो गई जिसके द्वारा रूस को रूमानिया के मार्गों से जाने की इजाज़त मिल गई; अतः जून के अन्त में रूस की सेनाएँ डैन्यूब नदी पार कर गईं और वे तुर्की की राजधानी की ओर बढ़ने लगीं। इसी समय मौंटीनीग्रो ने भी तुर्की (Porte) के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और वर्ष के अन्त में सर्विया ने भी तुर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध की प्रमुख घटना प्लेवना (Plevna) का घेरा था। इस स्थान पर रूसी सेनाओं की प्रगति रुक गयी और पाँच महीने तक रूसी सेनाएँ तथा रूमानिया की सेनाएँ, जो अब रूसियों के साथ युद्ध कर रही थीं, इस नगर को घेरे पड़ी रहीं। तुर्क लोगों ने उस्मान पाशा की अधीनता में प्लेवना की प्रचण्ड वीरता से रक्षा की किन्तु अन्त में सेवास्तोपल (Sebastopol) के वीर योद्धा टोडलेबेन (Todleben) ने दिसम्बर १८७७ में प्लेवना (Plevna) पर अधिकार कर ही लिया और अब रूसी सैनिकों का मार्ग कस्तुन्तुनिया की ओर साफ था। ५ जनवरी को रूसी सेनाएँ सोफ़िया (Sophia) पहुँच गईं और २० जनवरी को वे एड्रियानोपिल (Adrianople) तक जा पहुँचीं जहाँ से तुर्की राजधानी केवल १६० मील रह गई थी।

कॉकेशस (Caucasus) में भी रूस को सफलता मिली। नवम्बर में कार्स (Kars) नामक प्रसिद्ध किला रूस के अधिकार में आ गया। अब तुर्की (Porte) विजयी रूसी सैनिकों के विरोध में खड़ा न रह सका। अतः उसने मार्च, १८७८ में मजबूर होकर सेन स्टेफ़नो की सन्धि (Treaty of San Stefano) में रूस द्वारा प्रस्तुत की गई शर्तों को स्वीकार कर लिया।

सेन स्टेफ़नो की सन्धि (मार्च १८७८)

इस सन्धि के अनुसार मौंटीनीग्रो (Montenegro) और सर्विया (Serbia) को स्वतन्त्र राज्य स्वीकार कर लिया गया और इन दोनों राज्यों को कुछ अधिक भूभाग भी प्राप्त हुआ। यह भी निश्चित हुआ कि तुर्की को बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) में सुधार करने पड़ेंगे, किन्तु उक्त सुधारों की क्रियान्विति रूस और ऑस्ट्रिया की देख-रेख में सम्पन्न होगी। डैन्यूब नदी के पास के दुर्गों को गिराया जाना निश्चित हुआ; और आर्मीनियनों (Armenians)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सुधारों का वायदा कर लिया गया। रूस को एशिया (Asia) में बेटम (Batum), कार्स (Kars) तथा कुछ अन्य भाग मिलना स्वीकृत किया गया और यूरोप में बेसारेबिया (Bessarabia) और डोब्रुजा (Dobrudja) का कुछ भाग भी रूस को मिला। सन्धि के अनुसार रूमानिया (Rumania) से बेसारेबिया[1] निकालकर रूस को दिया जाना निश्चित हुआ था, अतः उसके बदले में रूमानिया को कुछ अन्य तुर्क साम्राज्य के भूभाग दिये गये। रूमानिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया गया। परन्तु इस सन्धि की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इस सन्धि के फलस्वरूप ही बल्गेरिया राज्य का जन्म हुआ। निश्चित हुआ कि तुर्की की अधीनता में बल्गेरिया (Bulgaria) का स्वतन्त्र राज्य स्थापित होगा, किन्तु उसमें ईसाइयों की स्वतन्त्र सरकार होगी और उसके पास अपनी राष्ट्रीय सेना होगी। नवनिर्मित बल्गेरिया राज्य का विस्तार डैन्यूब से ईजियन सागर (From Danubet o the Ægean) तक तथा दक्षिण में काले सागर पर स्थित मिडिया (Midia) तक मान लिया गया और पश्चिम में मैसीडोनिया (Macedonia) के मोनेस्टिर के भूभाग तक उस राज्य का विस्तार रखा गया। इस सन्धि ने यूरोप-स्थित तुर्की साम्राज्य को समाप्त कर दिया।

सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की सन्धि रूस के लिए महान् विजय थी। इस सन्धि ने पेरिस की सन्धि (Treaty of Paris) को धो डाला और एक बार पुनः रूस को बल्कान क्षेत्र में प्रभुत्व प्राप्त हो गया। बल्कान क्षेत्र के प्रभुत्व के फलस्वरूप रूस अब यूरोप की महान् शक्ति बन गया। किन्तु बल्कान रियासतों में रूसी प्रभाव-क्षेत्र का बढ़ जाना इंग्लैण्ड को असह्य था।

वास्तव में बल्गेरिया और रूस के अतिरिक्त और कोई भी सेन स्टेफनो (San Stefano) की सन्धि से प्रसन्न न था। उधर चूँकि सन्धि की शर्तों को निश्चित करते समय रूमानिया (Rumania) को पूछा ही नहीं गया था अतः वह रूस से अप्रसन्न हो गया। सर्विया (Serbia), मौंटीनीग्रो (Montenegro) और ग्रीस (Greece) को यह अच्छा नहीं लगा कि शक्तिशाली बल्गेरिया के नये राज्य को उनके पार्श्व में खड़ा कर दिया गया है। यूनान (Greece) तो इस सन्धि से इतना अप्रसन्न था कि उसने थिसैली (Thessaly) पर भी आक्रमण कर दिया। ऑस्ट्रिया इस कारण अप्रसन्न था कि रीश्टाट (Reichstadt) की सन्धि की शर्तों की पूर्ण अवहेलना कर दी गई है और सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की सन्धि से उसके हितों को आघात पहुँचा है। यद्यपि जर्मनी की बल्कान रियासतों में कोई विशेष रुचि नहीं थी, फिर भी बिस्मार्क की सहानुभूति इस प्रश्न पर ऑस्ट्रिया के साथ थी। किन्तु बल्कान प्रदेश में रूसी प्रभुत्व हो जाने से इंग्लैण्ड में भी भारी बेचैनी महसूस की जाने लगी। जून, १८७७ में ही पूर्व इसके कि रूस ने डैन्यूब को पार किया था, इंग्लैण्ड ने रूस से प्रतिज्ञा ले ली थी कि वह न तो कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर और न संकरे जल-मार्ग पर ही अधिकार करेगा। उसने रूस से यह वायदा भी ले लिया था कि वह मिस्र (Egypt) में और स्वेज नहर (Suez Canal) में ब्रिटिश हितों का ध्यान रखेगा। जनवरी

१. १८५६ की पेरिस की सन्धि के अनुसार बैसारेबिया (Bessarabia) रूस के हाथों से निकल गया।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८७८ में ब्रिटिश विदेश मन्त्री लॉर्ड डर्बी (Lord Derby) ने ज़ार को उसकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और यह भी कहा कि यदि वह रूस और तुर्की के बीच कोई ऐसी सन्धि करेगा जिसके द्वारा १८५६ या १८७१ की व्यवस्थाओं में गड़बड़ी पड़ेगी तो ऐसी कोई सन्धि उस समय तक मान्य न होगी जब तक कि उक्त सन्धि पर १८५६ और १८७१ की सन्धियों के अभिकर्त्ताओं की अनुमति न होगी। वास्तव में रूस के प्रभाव को रोकने के लिए इंग्लैंड कृतसंकल्प था कि यह मान ही लिया जाना चाहिए कि पूर्वी समस्या का सम्बन्ध सारे यूरोप की शक्तियों से है। सेन् स्टेफ़नो (San Stefano) की संधि की शर्तों के प्रकाशित होने के पश्चात् डिज़रैली (Disraeli) के भय सत्य प्रमाणित होने लगे। "सेन स्टेफ़नो की सन्धि ने यूरोप के मानचित्र से तुर्की साम्राज्य को धो डाला·····तुर्की साम्राज्य के सारे यूरोपीय भागों पर रूस का नियंत्रण स्थापित हो गया·····उक्त संधि की शर्तों का प्रभाव यह होगा कि काले सागर (Black Sea) पर भी रूस का उतना ही प्रभुत्व होगा जितना कि कैस्पियन सागर (Caspian Sea) पर रूस का प्रभुत्व है।" ऑस्ट्रिया के राजनेता भी कृतसंकल्प थे कि सेन स्टेफ़नो की संधि पर पुनर्विचार होना ही चाहिए अतः उन्होंने प्रस्ताव रखा कि यूरोपीय राष्ट्रों की सभा (European Congress) होनी चाहिएं। डिज़रैली (Disraeli) ने इस शर्त पर ऑस्ट्रिया के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि "रूस और तुर्की के बीच की संधि (सेन स्टेफ़नो की संधि) में जितने प्रश्नों का निबटारा हुआ है उन सभी विषयों पर यूरोपीय राष्ट्रों की सभा में विचार होगा।" रूस शंकित और डाँवाँडोल था किन्तु इंग्लैण्ड इस माँग पर डटा रहा और लगभग छः सप्ताह तक यूरोप के भाग्याकाश पर युद्ध के बादल मंडराते रहे। जब रूस किसी तरह न माना तो १७ अप्रैल को डिज़रैली (Disraeli) ने घोषणा कर दी कि उसने १७,००० हिन्दुस्तानी सैनिक माल्टा (Malta) में उतार दिये हैं। सम्भवतः यह एक चाल थी, जो काम कर गई।[1] रूसी सेनाओं की स्थिति अस्त-व्यस्त थी; रूसी खजाना खाली था किन्तु इतने पर भी रूस युद्ध का खतरा मोल ले लेता, यदि उसकी जर्मनी से पुरानी मित्रता अब भी दृढ़ होती। किन्तु एक बार फिर उसके मित्रों ने अपनी खुदगर्जी के कारण रूस का साथ छोड़ दिया। इसमें सन्देह नहीं कि बिस्मार्क अब भी रूस और जर्मनी के मधुर सम्बन्धों को अच्छा समझता था किन्तु वह ऑस्ट्रिया के साथ मधुरतर सम्बन्ध बनाना चाहता था। वह चाहता था कि ऑस्ट्रिया के साथ मिल कर मध्य यूरोप में एक विशाल जर्मन-शक्ति का निर्माण हो जो किसी समय सारे यूरोप का मुकाबला कर सके। यदि रूस और ऑस्ट्रिया का युद्ध होता है तो बिस्मार्क की सहानुभूति निश्चिततः ऑस्ट्रिया के साथ होती। इसके अतिरिक्त बिस्मार्क को रूस से शिकायत भी थी कि जब पिछली बार फ्रांस और जर्मनी में युद्ध की आशंका

---

१. इंग्लैण्ड में युद्ध के प्रश्न पर न तो मन्त्रिमण्डल में पूर्ण सहमति थी और न देश इस सम्बन्ध में एकमत था। युद्ध चाहने वालों को जिंगो लोग (Jingoes) कहा जा रहा था। जिंगो शब्द एक प्रसिद्ध गीत में से लिया गया था जिसे प्रसिद्ध गायक मैकडर्माट् (MacDermott) ने गाया था। उस गीत की पंक्ति थी—"हम युद्ध नहीं चाहते किन्तु जिंगोवश (by Jingo) यदि हमको युद्ध करना ही पड़ा तो—"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी उस समय रूस ने जर्मनी का उतना मुक्त समर्थन नहीं किया था जितना कि बिस्मार्क चाहता था।

जब रूस ने देखा कि इंग्लैण्ड की पीठ पर ऑस्ट्रिया और नवीन जर्मन साम्राज्य का हाथ है तो उसकी हिम्मत इंग्लैण्ड के साथ युद्ध करने की नहीं हुई। अतः रूस ने मान लिया कि यूरोपीय राष्ट्रों की एक सभा हो और सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की सन्धि की शर्तों पर पुनर्विचार कर लिया जाय। यूरोप में नवीन जर्मन सत्ता के उदय के प्रति समादर प्रकट करने के उद्देश्य से यूरोपीय देशों की काँग्रेस बर्लिन (Berlin) में रखी गई और उक्त काँग्रेस का सभापति बिस्मार्क (Bismarck) को बनाया गया; क्योंकि वह राजनीतिक दलाली में निपुण था। किन्तु बर्लिन की काँग्रेस में मुख्य रूप से डिज़रैली (Disraeli) छाया रहा। बिस्मार्क ने भी स्वीकार किया कि बुड्ढा यहूदी डिज़रैली वाकई जोरदार आदमी है। १३ जुलाई को संशोधित सन्धि पर हस्ताक्षर हो गए।

रूस को सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की संधि से जो व्यापक लाभ हुए थे, उनके स्थान पर अब यूरोप में उसको बेसारेबिया (Bessarabia) तथा कॉकेशस (Caucasus) में बेटम (Batum) और कार्स तथा आर्मीनिया का कुछ भाग ही मिल सका। तुर्की (Porte) ने रूमानिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया और उसको बैसारेबिया के स्थान पर डोब्रूजा (Dobrudja) मिला। बौस्निया (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) को ऑस्ट्रिया के नियन्त्रण में दे दिया गया और उसे यह भी अधिकार मिल गया कि वह सर्विया (Serbia) और मौंटीनीग्रो (Montenegro) के बीच में नोविबाजार (Novibazar) तथा सञ्जक (Sanjak) नामक दुर्ग में सैनिक रख सकेगा। बर्लिन की संधि के अनुसार यह भी निश्चित हुआ कि जब तक कार्स (Kars) और बेटम (Batum) पर रूस का अधिकार रहेगा तब तक इंग्लैण्ड का अधिकार साइप्रस (Cyprus) पर बना रहेगा। फ्रांस ने चाहा कि उसें भविष्य में ट्यूनिस (Tunis) पर अधिकार करने दिया जाय। नव इटली में भी अब यूरोपीय राष्ट्रों की-सी शक्ति थी और उसने भी अल्बानिया (Albania) और ट्रिपोली (Tripoli) के ऊपर अपना अधिकार बताया। नव जर्मनी ने अपने लिए कुछ नहीं चाहा और इसके बदले में तुर्की का सुलतान सदैव के लिए जर्मनी का ऋणी हो गया। इससे भविष्य में जर्मनी को अपार लाभ हुए। बल्कान रियासतों ने भी अपनी-अपनी माँगें रखीं। सर्विया (Serbia) और मौंटीनीग्रो (Montenegro) से जो प्रदेश सेन स्टेफ़नो की सन्धि द्वारा छीन लिए गये थे, वे उन्हें वापस मिल गये और उनकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर ली गई। यूनान (Greece) ने क्रीट (Crete), थिसैली (Thessaly), एपिरस (Epirus) और मैसीडोनिया का कुछ भूभाग माँगा; किन्तु फिलहाल उसको कुछ नहीं मिला। संशोधित सन्धि ने बल्गेरिया (Bulgaria) की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर कर दिया। बर्लिन की सन्धि का बल्गेरिया जनसंख्या और आकार में बहुत छोटा हो गया। अब केवल उसकी आबादी २० लाख रह गई जो डैन्यूब नदी और बल्कान पर्वतों में फैली हुई थी और उसका क्षेत्रफल सेन स्टेफ़नो की सन्धि की अपेक्षा लगभग एक-तिहाई से कुछ अधिक रह गया। अब बल्गेरिया का नया राज्य नाममात्र को तुर्की के अधीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। बल्गेरिया के दक्षिण में एक छोटा-सा प्रान्त या जिला निर्मित किया गया, जिसका नाम पूर्वी रुमेलिया (Eastern Rumelia)[1] रखा गया। यह तुर्की के आधिपत्य में दे दिया गया; किन्तु इसका शासन-प्रबन्ध ईसाई सरकार के हाथों में रहा और यह भी निश्चित हुआ कि उक्त ईसाई सरकार यूरोपीय शक्तियों को मान्य होनी चाहिए। मैसीडोनिया का काफी बड़ा भाग जो पहले बृहत्तर बल्गेरिया में सम्मिलित कर लिया गया था, पुनः तुर्की को दे दिया गया। इस प्रकार बल्गेरिया (Bulgaria) का एजियन (Ægean) सागर से पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

बर्लिन की सभा में डिज़रैली (Disraeli) की नीति साहसपूर्ण रही और किसी सीमा तक प्रभावी भी रही किन्तु उक्त सन्धि में ऐसे बीज वर्तमान थे जिनके फल-स्वरूप १९१२ और १९१३ के बल्कान युद्ध हुए और १९१४ का महायुद्ध भी किसी सीमा तक बर्लिन की सन्धि का ही फल था। डिज़रैली ने कहा था—"मुझे प्रसन्नता है कि यूरोप में तुर्की पुनः विद्यमान है।" वह इसे अपनी महान् सफलता समझता था कि उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप तुर्की साम्राज्य विघटित होने से बच गया। इसमें सन्देह नहीं है कि तुर्की को बर्लिन की सन्धि द्वारा लगभग २५ लाख जनसंख्या वाला और लगभग ३०,००० वर्गमील का प्रदेश प्राप्त हो गया जिसे वह सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की सन्धि द्वारा खो चुका था। किन्तु तुर्की का साम्राज्य अब भी अपने प्राचीन साम्राज्य का आधा भाग भी न था और उसकी जनसंख्या आधी से भी कम रह गई थी और इसलिए ऐसा प्रतीत होता था कि तुर्की की विघटन से रक्षा करना प्रायः कठिन है। डिज़रैली (Disraeli) ने केवल यह किया कि तुर्की के विघटन का समय बढ़ा दिया और उसके समूल नाश को और अधिक कष्टदायक बना दिया। तुर्की को मैसीडोनिया पुनः हस्तान्तरित कर देने के कारण १९१२ का बल्कान युद्ध हुआ और बल्गेरिया को संकुचित कर देने के फलस्वरूप १९१३ का युद्ध हुआ।

यद्यपि रूस पर नियन्त्रण स्थापित हो गया था और रूस की विजय के लाभ रूस के हाथों से छीने जा चुके थे फिर भी रूस ने क्रीमिया युद्ध की हानि को किसी सीमा तक पूरा कर लिया था। कुछ समय तक रूस ने अपनी रुचि बल्कान प्रदेश से हटाकर एशिया में साम्राज्य निर्माण करने की ओर लगा दी। वास्तव में अकृतज्ञ बल्गेरिया के कारण ही बर्लिन की सन्धि में रूस की मानहानि हुई थी। अतः कुछ समय के लिए वह बल्कान प्रदेश से विमुख हो गया। किन्तु तीस वर्ष बाद रूस (Russia) पुनः महान् महत्त्वाकांक्षाओं के साथ बल्कान प्रदेश की ओर मुड़ा और १९१४ में रूस ने उन सब हानियों को पूरा करने का संकल्प किया जो उसने १८७८ में सहन की थीं। हम इसे इतिहास की व्याजोक्ति ही कहेंगे जो १९१४ के विश्वयुद्ध

---

१. बर्लिन की सन्धि द्वारा निर्मित बल्गेरिया के दोनों भाग मिलाकर भी क्षेत्र-फल में उतने नहीं थे जितना सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की सन्धि द्वारा निर्मित स्वतन्त्र बल्गेरिया (Bulgaria) था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इंग्लैंड की रूस से मित्रता थी; और इंग्लैंड की सहायता से ही रूस ने वे सब हानियाँ पूरी कर लीं जो १८७८ में इंग्लैंड की प्रेरणा पर रूस को सहन करनी पड़ी थीं।

इसके अतिरिक्त जहाँ डिज़रैली (Disraeli) ने एक विदेशी सत्ता (रूस) को बल्कान प्रदेश से दूर हटा दिया वहीं उसने एक दूसरी सत्ता को उसी क्षेत्र में प्रविष्ट करा दिया। अब बल्कान प्रदेश में ऑस्ट्रिया-हंगरी प्रवेश प्राप्त कर चुका था और ऑस्ट्रिया की पीठ पर जर्मनी की विशाल शक्ति थी। ऑस्ट्रिया या हंगरी एजियन सागर (Ægean) की ओर विस्तार चाहता था। इस कारण सर्बिया के हितों को भारी खतरा पैदा हो गया था और जब यूगोस्लाविया (Yugoslavia) का निर्माण हो गया तो इससे बल्कान क्षेत्र में एक नयी समस्या पैदा हो गई। १८७८ का ऑस्ट्रिया कुछ और था, तथा १९१४ का ऑस्ट्रिया कुछ और ही था और इसी क्रमिक विकास का फल विश्वयुद्ध था।

इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि तुर्की को उन कपटी मित्रों से भारी निराशा हुई जिन्होंने जबर्दस्ती अपनी मित्रता को तुर्की के ऊपर लादा और बाद में वे ही तुर्की को लूटने-खसोटने से नहीं हिचके। सर्विया (Serbia), मौण्टीनीग्रो (Montenegro) और बल्गेरिया (Bulgaria) की स्वतन्त्रता का औचित्य स्वीकार करने योग्य है, किन्तु ब्रिटेन द्वारा साइप्रस पर अधिकार और ऑस्ट्रिया के अधिकार में बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) दे देना न्याययुक्त न था, विशेष रूप से जबकि इंग्लैंड और ऑस्ट्रिया बार-बार कहते थे कि वे तुर्की साम्राज्य की एकता के समर्थक हैं। डिज़रैली (Disraeli) ने घमंड के साथ कहा था कि वह बर्लिन से आदरपूर्ण शान्ति-सन्धि (Peace with Honour) लाया है। किन्तु इसमें सन्देह है कि बर्लिन की सन्धि इंग्लैंड के लिए आदरपूर्ण थी। वास्तव में "आदरपूर्ण शान्ति-सन्धि (Peace with Honour) का यह अर्थ करना पड़ेगा कि इंग्लैंड ने ऐसी शान्ति अर्जित की जिसके साथ साइप्रस (Cyprus) पर अधिकार मिला और बल्कान क्षेत्र में रूस का मार्ग अवरुद्ध हो गया किन्तु ब्रिटिश हितों को बर्लिन सन्धि द्वारा प्रश्रय मिला।"

फिर भी बर्लिन समझौता एक पीढ़ी तक चला और उसमें कोई दरार नहीं पड़ी। इसका एक कारण तो यह था कि यूरोपीय शक्तियाँ अशक्त थीं और उनमें आपसी वैमनस्य था; द्वितीयतः, यूरोप की संयुक्त व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी और इस संधि की शर्तें स्थायी थीं। तृतीयतः, पूर्वी प्रश्न इतना उलझा हुआ था कि बल्कान क्षेत्र के लिए सर्वसम्मत हल निकालना किसी भी मनुष्य के लिए प्रायः असम्भव था। सत्य यह है कि पूर्वी प्रश्न में अन्तर्ग्रस्त विविध हितों रूपी आधारशिला पर ऐसा महल निर्मित करना प्रायः कठिन था जो बल्कान रियासतों की पारस्परिक विद्वेष रूपी आँधी से सुरक्षित खड़ा रह सकता।

भूतपूर्व तुर्की साम्राज्य में से काट कर निम्नलिखित पाँच स्वतन्त्र उपराज्य या राज्यक (Principalities) बनाये गए : डैन्यूब के उत्तर में रूमानिया (Rumania), डैन्यूब के दक्षिण में बल्गेरिया और सर्बिया (Bulgaria and Serbia), पश्चिम की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर के पहाड़ों में मॉण्टीनीग्रो जो दक्षिण की ओर समुद्री किनारे को छूता था और कौरिन्थ की खाड़ी (Gulf of Corinth) के दोनों ओर स्थित यूनान (Greece)। पूर्वी रूमेलिया की स्थिति संदिग्ध-सी और अर्ध-स्वतन्त्र थी और बौस्निआ (Bosnia) एवं हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) ऑस्ट्रिया के शासन के अधीन थे।

बल्गेरिया

अगले बीस वर्षों में पूर्वी प्रश्न मुख्य रूप से बल्गेरिया ने जाग्रत रखा यद्यपि मिस्र और आर्मीनिया (Egpyt and Armenia) ने भी और किसी सीमा तक यूनान, क्रीट और सर्विया (Greece, Crete and Scrbia) ने भी पूर्वी समस्या को जीवित रखा।

बल्गेरिया की राजनीति इन वर्षों में मुख्यतः चार प्रश्नों पर केन्द्रित रही—संविधान, राजा, रूमेलिया के साथ संघ और रूस। सबसे पहले संविधान के प्रश्न को हल किया गया। बल्गेरिया में बिल्कुल ही नए प्रकार के संसदीय संविधान की स्थापना की गई जिसके विभिन्न अवयवों की रचना पश्चिम के देशों के संविधानों के आधार पर की गई थी। इस खिचड़ी संविधान के साथ-साथ असंगत स्वेच्छाचारी कार्यपालिका का निर्माण किया गया। इस संविधान का ऐसे लोगों पर प्रयोग किया गया जिन्हें न तो अनुभव था, न जिन्होंने संवैधानिक परम्पराएँ बनाई थीं। वास्तव में यह संविधान पूर्णतः असाध्य था।

प्रिंस एलेक्जैंडर ऑफ बैटेनबर्ग (१८७९-१८८६)

संविधान की अपेक्षा बल्गेरिया (Bulgaria) के राजा प्रिंस एलेक्जैंडर ऑफ बैटेनबर्ग (Prince Alexander of Battenberg) का अच्छा स्वागत हुआ। यद्यपि अनेक ऐसी कठिनाइयाँ राजा के सम्मुख आ गईं जिनके कारण राज्य-संचालन अतीव कठिन हो गया। वह ज़ार एलेक्जैंडर द्वितीय का भतीजा था और उसी द्वारा नियुक्त भी किया जा चुका था। वह डार्म स्टैट परिवार (House of Darmstadt) का वंशज था और प्रशा की सेना का एक अफ़सर था। बाद में ब्रिटिश शाही परिवार में विवाह-बन्धन द्वारा उसका संबंध ब्रिटिश शाही परिवार से भी हो गया। १८७९ से १८८६ तक सात वर्ष उसने शासन किया। इन दिनों के शासन-प्रबंध के आधार पर कहा जा सकता है कि वह योग्य और अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति था। आम लोग उसको योग्य राजनीतिज्ञ, साहसी सैनिक और हर प्रकार से श्रेष्ठ व्यक्ति समझते थे किन्तु बल्गेरिया की सोब्रेन्जे (Sobranje) या संसद् उससे द्वेष रखती थी और रूस का व्यवहार उसके प्रति असहानुभूतिपूर्ण था क्योंकि उसने रूस का अनुचर बनना स्वीकार न किया था, विशेषकर जब १८८१ में एलेक्जैंडर तृतीय रूस के राजसिंहासन पर बैठा तब से उसकी रूस से नहीं पटती थी। इन दोनों कठिनाइयों ने उसका मार्ग अवरुद्ध कर रखा था। अंत में उसे राज्य त्यागना पड़ा। राज्य त्यागने के उपरान्त वह प्राइवेट जीवन बिताने लगा। वह ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया की पोती कुमारी विक्टोरिया से विवाह करना चाहता था किंतु जब यह विवाह न हो सका तो उसने एक गायिका से विवाह कर लिया और १८९३ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद बल्गेरिया के राजसिंहासन पर प्रिंस फ़र्डीनेण्ड आफ़ सेक्स-कोबर्ग-गोथा (Prince Ferdinand of Saxe-Coburg-Gotha)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठा। १९१४ के विश्वयुद्ध में उसकी नीति के फलस्वरूप बल्गेरिया मध्य यूरोप की शक्तियों की ओर रहा।

कुछ दिनों तक बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया के संगठन के सम्बन्ध में काफी उत्तेजना रही। बर्लिन की काँग्रेस ने बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया का जो विभाजन कर दिया था, वह स्वेच्छापूर्ण और कृत्रिम था, क्योंकि उसमें जाति के आधार पर कोई विभाजन नहीं हुआ था। बल्गेरिया सजातीयता के राजनीतिक पाठ को सीख चुका था और इस सम्बन्ध में वह अन्य बल्कान राज्यों से आगे था। बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया के विलग हो जाने के पश्चात् बल्गेरिया में आंदोलन हुए। प्रत्येक प्रांत में मल्ल-युद्धी अखाड़ों और अन्य संस्थाओं द्वारा आन्दोलन तीव्र गति पकड़ने लगा। बल्गेरिया के दोनों भागों को संगठित करने के आन्दोलन का नेतृत्व स्टीफेन स्टाम्बोलोव (Stefan Stambolov) के हाथों में था। स्टीफेन स्टाम्बोलोव का नाम बल्गेरिया के देशभक्तों में अत्यन्त आदर से लिया जाता है। वह एक सराय के रखवाले का पुत्र था। पहले वह शून्यवादी या विनाशवादी (Nihilist) भी रह चुका था और वह बल्गेरिया की संसद् या सोब्रेन्जे (Sobranje) का स्पीकर था। १८८६ से १८९४ तक वह प्रायः बल्गेरिया का सर्वेसर्वा था।

अन्त में बल्गेरिया के दोनों प्रान्तों या भागों ने स्वयं कार्यवाही करने की ठानी। सितम्बर १८८५ में फिलिप्पोपोलिस (Philippopolis) स्थित पूर्वी रूमेलिया के तुर्की गवर्नर को प्रान्त से बाहर निकाल दिया गया। अब राजकुमार एलेक्जैंडर ने चाहा कि या तो उसे दोनों राज्यों का राजा बनाया जाय या वह बल्गेरिया का राजमुकुट त्याग दे और उस स्थिति में वह संयुक्त बल्गेरिया राज्य का नरेश घोषित किया जाय। जैसा कि २७ वर्ष पूर्व रूमानिया के सम्बन्ध में हुआ था, अब भी यूरोपीय शक्तियों ने निर्णय किया कि जब अखिल यूरोपीय संधि की इस सीमा तक अवहेलना की जा रही है तो कुछ न कुछ करना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त जब सर्विया (Serbia) ने यह कहा कि बल्गेरिया के विस्तार से बल्कान क्षेत्र में शक्ति संतुलन बिगड़ जाएगा और इस आधार पर उसने बल्गेरिया (Bulgaria) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तो बल्गेरिया के संघ का प्रश्न आवश्यक महत्त्व का प्रश्न हो गया।

बल्गेरिया के दोनों भागों का संघ (१८८५-८६)

छोटा-सा युद्ध चल पड़ा। सर्बियनों की हार हुई और सर्विया पर नव बल्गेरिया की फौजों ने आक्रमण कर दिया और उन्होंने पिरॉट (Pirot) को अपना लक्ष्य बनाया। अब तुर्की को चिन्ता हुई कि बल्गेरिया के हाथों सर्विया की बेइज्जती होने जा रही है जिसमें सर्विया का समूल नाश हो जाने की भी संभावना थी। ऐसे अवसर पर ऑस्ट्रिया ने बल्गेरिया को ललकारा और युद्ध बन्द कर देने के लिए कहा, अन्यथा उसने स्वयं बल्गेरिया के ऊपर आक्रमण करने की धमकी दी। बुखारेस्ट (Bukarest) की संधि हो गई और इस प्रकार दोनों देशों में युद्ध-पूर्व की स्थिति स्थापित हो गई और सर्बिया को बचा लिया गया।

सर्बिया और बल्गेरिया का युद्ध (१८८५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी समय बल्गेरिया के दोनों भागों को मिलाने का प्रश्न यूरोपीय शक्तियों के एक सम्मेलन के समक्ष रख दिया गया। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो बर्लिन की कांग्रेस के बाद से यूरोप की शक्तियों के विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर हो चुका था। जो शक्तियाँ बर्लिन की काँग्रेस में बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया के विभाजन पर जोर दे रही थीं; वे ही शक्तियाँ अब बल्गेरिया के संगठन की इच्छुक थीं; किन्तु इसके विपरीत जहाँ रूस ने सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की संधि द्वारा स्वयं बल्गेरिया के संघ का निर्माण किया था, अब वही, बल्गेरिया के दोनों भागों को अलग-अलग रखने पर जोर दे रहा था। इस प्रकार यूरोप की शक्तियों ने क्रमानुसार परस्पर विरुद्ध दृष्टिकोण अपनाया।

यूरोपीय शक्तियों की नीति में परिवर्तन

कुछ विशेष कारण भी थे, जिनके आधार पर यूरोपीय देशों की बल्गेरिया के प्रति नीति में परिवर्तन हुआ। वास्तव में बल्गेरिया ने बजाय रूस का दास बने रहने के, जिसकी बर्लिन की काँग्रेस के अवसर पर आशा थी, स्वतन्त्र नीति ही नहीं अपनायी, वह तो कभी-कभी रूस के विरुद्ध भी आचरण करने लगा था। इसीलिए इंग्लैण्ड और ऑस्ट्रिया ने, जिनका उद्देश्य अब भी रूस का विस्तार रोकना था, यह निर्णय किया कि रूस को रोकने के लिए दुर्बल तुर्की से उतनी सहायता नहीं मिलेगी जितनी कि स्वतन्त्र बल्गेरिया को सशक्त बनाने से मिलेगी।

लार्ड सैलिसबरी (Lord Salisbury) ने कहा था—"यदि संयुक्त बल्गेरिया तुर्की (Porte) का मित्र बना रहे, किन्तु विदेशी प्रभावों से दूर रहे तो वह विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध यूरोप का रक्षा-कवच होगा; किन्तु यदि बल्गेरिया के दोनों भाग अलग-अलग होते हुए भी तुर्की को अपने राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधा समझते रहे तो यह यूरोप के लिए अपेक्षाकृत अशुभ होगा।"[1]

इन्हीं दिनों इंग्लैंड के शाही परिवार की राजकुमारी बीट्रिस (Beatrice) का विवाह राजकुमार एलेक्जैंडर (Prince Alexander) के भाई राजकुमार हैनरी ऑफ बैटनबर्ग (Henry of Battenberg) से हुआ। इस राजवंशीय सम्बन्ध की सहानुभूति के आधार पर इंग्लैण्ड ने तुर्की के ऊपर दबाव डाला कि वह बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया का संघ स्वीकार कर ले। १८८६ में तुर्की के सुलतान अब्दुल हमीद ने संयुक्त बल्गेरिया को औपचारिक मान्यता प्रदान कर दी। इसके जवाब में रूस में बौखलाहट पैदा हो गई।

१८७८ की बर्लिन की काँग्रेस ने बल्गेरिया (Bulgaria) का आकार बहुत छोटा कर दिया था और उसका अस्तित्व रूस की राजनीतिक रक्षा में स्थापित हुआ था। रूसी सेना का बल्गेरिया में अधिकार था और रूस द्वारा नियुक्त मनुष्य ही बल्गेरिया के राज-सिंहासन पर विराजमान था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो रूसी कूटनीति ही नवजात बल्गेरिया का मार्ग-दर्शन करेगी। प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक तो

---

1. Lord Salisbury (December 1885), quoted by Sir J. A. R. Marriott, *op. cit.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वल्गेरिया का शासन इस प्रकार चलता रहा मानो वह रूस का ही एक प्रान्त या मंडल हो। वल्गेरिया के मन्त्रालयों में उच्च प्रशासनिक पदों पर रूसी अफसर ही नियुक्त किए जाते थे। वल्गेरिया के मन्त्री लोग ज़ार के आदेशों पर वल्गेरिया का शासन-प्रबंध करते थे। निस्सन्देह प्रिंस एलेक्जैंडर (Prince Alexander) की स्थिति दयनीय थी।

वल्गेरिया के लोग रूसी हस्तक्षेप को नापसंद करते थे और शीघ्र ही नवजात वल्गेरिया राज्यवासियों के हृदय में से रूस के प्रति कृतज्ञता के भाव समाप्त हो गए। वल्गेरिया की राष्ट्रीय पार्टी (National Party) का नेता स्टाम्बोलोव (Stambolov) था जो निःसंदेह देशभक्त था। इस पार्टी का नारा था—"वल्गेरिया केवल वल्गेरिया-वासियों का होगा।" अब प्रिंस एलेक्जैंडर (Prince Alexander) ने निश्चित किया कि वह स्वयं रूस-निरोधी आंदोलन का नेतृत्व करेगा। इससे ज़ार बहुत नाराज हुआ और उसने ठीक सर्विया और वल्गेरिया के युद्ध से पूर्व वल्गेरिया की सेना में से सारे रूसी अफसर वापस बुला लिए। शीघ्र ही रूस और वल्गेरिया के बीच तनाव की-सी स्थिति पैदा हो गई। प्रिंस एलेक्जैंडर ने लिखा था, "रूस मुझ से डरता है इसलिए वह मुझसे घृणा करता है, किंतु मैं रूस की घृणा का स्वागत करता हूँ।" इस पर ज़ार एलेक्जैंडर तृतीय ने निर्णय किया कि वह किसी भी हालत में वल्गेरिया के दोनों भागों को संघ में संगठित न होने देगा, जब तक कि वल्गेरिया से प्रिंस एलेक्जैंडर हटाया न जाए और उसके स्थान पर रूस द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति वल्गेरिया का राजा न बनाया जाए।

इसलिए जब १८८६ में यूरोप की शक्तियों और तुर्की ने न केवल वल्गेरिया के दोनों भागों का संघ बना दिया, बल्कि प्रिंस एलेक्जैंडर (Prince Alexander) को संयुक्त वल्गेरिया का शासक भी नियुक्त कर दिया तो रूस बहुत ही अप्रसन्न हुआ। २१ अगस्त की रात को कुछ बल्गर अफसर (Bulgarian Officers) रूस के आदेशों पर सोफिया (Sofia) के राजमहल में पहुँचे और उन्होंने राजकुमार एलेक्जैंडर को पिस्तौल दिखाकर उससे राज्य-त्याग-पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए और उसको देश से बाहर निकल जाने पर विवश किया। सम्राज्ञी विक्टोरिया (Queen Victoria) ने उसको लिखा—"मुझे तुम्हारी वेदना से हार्दिक सहानुभूति है, मैं अपने भावों को शब्दों में व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। वास्तव में तुम्हारे माता-पिता को भी तुम्हारी ओर से इतनी चिन्ता न होती जितनी कि मुझे है। तुम्हारे जंगली, एशियाटिक, निर्दयी भाई (Alexander III) के प्रति मुझे इतनी घृणा है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती।" किन्तु शीघ्र ही स्टाम्बोलोव (Stambolov) के नेतृत्व में सोफिया में अस्थाई सरकार का निर्माण हुआ जिसने प्रिंस एलेक्जैंडर को पुनः वल्गेरिया में बुलाया। अब वह अपनी राजधानी को चल दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि रश्चुक (Rustchuk) में रूसी दूत ने या तो प्रिंस को डराया-धमकाया या उसने किसी प्रकार उसको राजी कर लिया कि वह रूस का विरोध त्याग दे। प्रिंस एलेक्जैंडर ने वहीं से ज़ार को तार दिया और उसने क्षमा माँगी। उसने लिखा था—"रूस से मैंने ही राज-मुकुट प्राप्त किया था और मैं सहर्ष उस राजमुकुट को उसके स्वामी ज़ार को वापस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हूँ।" इस तार पर सारे बल्गेरिया में व्याकुलता फैल गई और उसी प्रकार सारी प्रजा में रोष फैला, जिस प्रकार कि इंग्लैंड में भय और रोष का संचार हुआ था जब कि राजा जॉन (King John) द्वारा राजा इन्नोसेंट तृतीय (King Innocent III) के पक्ष में राज्य-त्याग किया गया था। ज़ार ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा और उसने प्रिंस एलेक्जैंडर के दुबारा राज्याभिषेक की आज्ञा नहीं दी। किन्तु प्रिंस एलेक्जैंडर तो हर स्थिति में अपना विनाश निश्चित कर चुका था। ज्योंही वह सोफिया (Sofia) पहुँचा उसने राजमुकुट त्याग दिया और कहा कि एक व्यक्ति सारे यूरोप का विरोध कैसे कर सकता है। उसने अपने उत्तराधिकारी के लिए सौभाग्य की कामना की। अब वह बल्गेरिया छोड़कर चला। निस्सन्देह, अनेक कठिनाइयों के बावजूद उसने बल्गेरिया की सच्चे हृदय से सेवा की थी।

फ़र्डीनेण्ड आफ सेक्स-कोबर्ग-गोथा, प्रिंस ऑफ बल्गेरिया (१८८७-१९१८) किंग ऑफ बल्गेरिया (१९०८-१९१८)

प्रिंस फ़र्डीनेण्ड ऑफ सेक्स-कोबर्ग-गोथा (Prince Ferdinand of Saxe-Coburg-Gotha) को प्रिंस एलेक्जैंडर ऑफ बैटनबर्ग के राज्य-त्याग के बाद बल्गेरिया का शासक नियुक्त किया गया। वह १९१८ तक शासन करता रहा। वह नवयुवक और महत्वाकांक्षी था किन्तु अपने शासन काल के प्रथम सात वर्षों में उसने बल्गेरिया के शासन में विशेष हस्तक्षेप नहीं किया और राज्य की वास्तविक सत्ता स्टाम्बोलोव (Stambolov) के हाथों में बनी रही। १८९४ में स्टाम्बोलोव ने त्यागपत्र दे दिया या सम्भवतः उसे पदच्युत कर दिया गया और अगले वर्ष उसकी हत्या कर दी गई।

अब प्रिंस फर्डीनेण्ड बल्गेरिया का वास्तविक शासक बना। सबसे पहले उसने यह काम किया कि बल्गेरिया और रूस के सम्बन्धों में सुधार किया। १८९४ में ज़ार एलेक्जैंडर तृतीय (Tsar Alexander III) की मृत्यु हो चुकी थी और उसके स्थान पर निकॉलस द्वितीय (Nicholas II) रूस का ज़ार बना। इस कारण रूस की नीति बल्गेरिया के प्रति कुछ नरम हो गई थी। १८९६ में नवयुवक उत्तराधिकारी बोरिस (Boris) की दीक्षा ग्रीक चर्च अथवा ऑर्थोडाक्स चर्च में हो गई और उसके दो वर्ष बाद बल्गेरिया के राजकुमार और राजकुमारी ने रूस में सरकारी मेहमानों के रूप में सैर की। इससे बल्गेरिया और रूस के सम्बन्धों के सुधरने में पूरी सहायता मिली।

प्रिंस फ़र्डीनिण्ड के शासन-काल में बल्गेरिया की अपार भौतिक उन्नति हुई, किन्तु १९१३-१९१४ का युद्ध बल्गेरिया के लिए घातक सिद्ध हुआ।

आर्मीनिया के कत्लेआम (१८९४-९६)

१८९६ से लेकर १८९८ तक पूर्वी समस्या में मुख्य रूप से आर्मीनिया के प्रश्न (Armenian Question) ने सिर उठाया। वास्तव में इस प्रश्न पर यह प्रकट हो गया कि यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (European Concert) निस्सार थी। १८७८ में यूरोप की शक्तियों ने, विशेषकर ग्रेट ब्रिटेन ने तुर्की साम्राज्य की ईसाई प्रजा के हित में कुछ दिलचस्पी ली थी, जो उस समय काला सागर और कैस्पियन सागर के मध्य के भू-भाग में बसती थी। बर्लिन की सन्धि (Treaty

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of Berlin) में और विशेषकर साइप्रस की सन्धि (Convention of Cyprus) में भी, जो ग्रेट ब्रिटेन और तुर्की के बीच हुई थी, तुर्की के सुल्तान ने वायदा किया था कि वह अपने शासन में सुधार करेगा। किन्तु ईसाई प्रजा की ओर यूरोपीय शक्तियों की दिलचस्पी से वास्तव में ईसाइयों का अहित ही हुआ।

यूरोपीय शक्तियों की हमदर्दी से उत्साहित होकर आर्मीनियनों (Armenians) को उत्तेजना मिली और इस कारण सुलतान ने कठोर दण्ड देना निश्चित किया। तुर्की के पुराने वायदों का कोई मूल्य ही न था। यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन ने कई बार तुर्की को विरोध-पत्र भेजे किन्तु तुर्की के सुलतान अब्दुल हमीद ने भाँप लिया कि यूरोपीय शक्तियों में स्वयं ही इतनी फूट है कि वे उसका कुछ बिगाड़ न सकेंगी। इसलिए, उसने अपनी ईसाई प्रजा से निबट लेना निश्चित किया। उसने देखा कि उसकी आर्मीनियन प्रजा विद्रोह पर तुली हुई है और उसे डर हुआ कि शायद तुर्की साम्राज्य में से एक और स्वतन्त्र ईसाई राज्य का उदय होगा। उसे भय था कि सम्भवतः आर्मीनिया भी बल्गेरिया बनने जा रहा है, इसलिए उसने आर्मीनिया के स्वतन्त्रता आन्दोलन को नियन्त्रित करना निश्चित किया। एक तुर्की राजनीतिज्ञ ने कठोरतापूर्वक कहा था—"आर्मीनिया की सभ्यता से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है और वह यह है कि आर्मीनियावादियों का सफाया कर दिया जाय।" १८९३ में कुछ आर्मीनियावासियों ने तुर्की के अधिकारियों का विरोध किया था। इस पर १८९४ में तुर्की ने आर्मीनिया के ऊपर जुल्म ढाने शुरू कर दिये। तुर्की ने अपनी सेना के नियमित सिपाहियों को और प्राइवेट सैनिकों को आर्मीनिया के गाँवों में छोड़ दिया कि वे लूट-पाट और कत्ल करें। इसके बाद आर्मीनिया में जो दृश्य देखने में आये उनका वर्णन करना कठिन है। १८९४ और १८९५ में आर्मीनियनों का वध होता रहा और १८९५ के अन्त तक ५०,००० से अधिक आर्मीनियन ईसाई प्रजाजन कत्लों और लूटमार के शिकार हुए।

१८९६ में कत्लेआम कुस्तुन्तुनिया में हुए। जो आर्मीनियावासी तुर्की की राजधानी में रहते थे वे अपने भाइयों की करुणाजनक स्थिति से क्षुब्ध थे। जब उन्होंने देखा कि यूरोप की शक्तियों में से कोई भी आर्मीनिया की सहायता नहीं कर रही है तो वे बेचैन हो उठे और उन्होंने कुस्तुन्तुनिया में विद्रोह कर दिया और गलाटा (Galata) स्थित तुर्की बैंक पर आक्रमण कर दिया। बदले में अगले २४ घण्टों के अन्दर ६०० आर्मीनियनों को कुस्तुन्तुनिया की सड़कों पर मार दिया गया।

अब यूरोप की वे शक्तियाँ कानों पर हाथ रखे बैठी रहीं जिन्होंने प्रायः यह कहा था कि पूर्वी समस्या सारे यूरोप की सम्मिलित जिम्मेदारी है।

रूस आर्मीनिया के विरुद्ध था। आर्मीनियनों ने शून्यवादी या नाशवादी (Nihilist) आन्दोलन के प्रति सहानुभूति दिखाई थी। और चूंकि वे ग्रेगोरियन ईसाई थे और रूस के ऑर्थोडॉक्स ईसाई मत के मानने वाले न थे, इसलिए रूस में धर्म के नाम पर आर्मीनियनों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। रूस को पहले ही बल्गेरिया में असफलता मिल चुकी थी इसलिए वह नहीं चाहता था कि कृतघ्न बल्गेरिया के समान आर्मीनिया में भी वह असफलता का मुँह देखे। रूस की

यूरोपीय शक्तियों में क्लीवता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वाकांक्षाएँ इस समय प्रशान्त महासागर की ओर जाग रही थीं। इसके अतिरिक्त आर्मीनिया में ब्रिटेन का विशेष प्रभाव था; और चूंकि १८७८ में डिज़रैली, बल्गेरिया में रूस को नीचा दिखा चुका था अतः रूस चाहता था कि १८९६ में वह सैलिसबरी (Lord Salisbury) को आर्मीनिया में नीचा दिखावे। ज़ार ने यहाँ तक कह दिया कि इंग्लैंड ही आर्मीनिया के उपद्रवों की जड़ है और यद्यपि वह इंग्लैंड का मित्र है, उसे इंग्लैंड की नीति पर विश्वास नहीं है।

नवीन जर्मनी का नेतृत्व अब बिस्मार्क के हाथों में न था और वह तुर्की की मित्रता का इच्छुक था। अतः बजाय इसके कि जर्मनी तुर्की के ऊपर दबाव डालता, कैसर विलियम द्वितीय (Kaiser William II) ने तुर्की के सम्राट् अब्दुल हमीद के जन्मदिन के अवसर पर प्रेम प्रदर्शित करने के अभिप्राय से अपने हस्ताक्षरों सहित अपना और अपने परिवार का एक फोटो भेजा। ऑस्ट्रिया और हंगरी ने भी जर्मन नीति का अनुसरण किया। फ्रांस चूंकि मिस्र के प्रश्न (Egyptian Question)[1] पर इंग्लैंड से नाराज था, अतः उसने भी तुर्की के विरुद्ध कोई सम्मिलित कार्यवाही करना अस्वीकार कर दिया।

इस स्थिति में इंग्लैंड की विरोध-पूर्ण पुकारें व्यर्थ गईं। सुलतान ने इंग्लैंड के विरोधपत्रों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। यद्यपि इंग्लैंड की प्रजा क्षुब्ध थी और इंग्लैंड के मन्त्री सुलतान अब्दुल हमीद को हत्यारा (Assassin)[2] और "सब प्राणियों से अधिक पापी"[3] कह रहे थे, फिर भी लार्ड सैलिसबरी का साहस नहीं हुआ कि वह यूरोपीय युद्ध प्रारम्भ करके और अधिक व्यापक विनाश को आमन्त्रण दे।

इस प्रकार आर्मीनियनों को इस कारण कष्ट उठाने पड़े कि यूरोपीय हित टकराते थे और यूरोपीय शक्तियों में आपसी विद्वेष था, किन्तु लॉर्ड सैलिसबरी (Lord Salisbury) और अन्य इंग्लैंडवासियों का यह निश्चित मत था कि अब तक इंग्लैंड ने तुर्की का समर्थन करके अच्छा नहीं किया।

ग्रीस और तुर्की

इधर आर्मीनियावासी अपने अनेक मुर्दों को दफन भी न कर पाये थे और यूरोपीय देशों का आर्मीनिया सम्बंधी विवाद शांत भी न हो पाया था कि पूर्वी समस्या यूरोप के सामने दूसरे रूप में पुनः उभर आई। इस बार ग्रीस और क्रीट में उपद्रव हुए।

किंग ऑटो ऑफ ग्रीस (१८३३-६२)

१८३३ में यूरोपीय शक्तियों ने नव-निर्मित यूनानी राज्य को ऑटो ऑफ बवेरिया (Otto of Bavaria) नामक एक जर्मन राजकुमार के अधिकार में दे दिया था। वह केवल १७ वर्ष का युवक था, उसकी योग्यता साधारण-सी थी और उसको अपने राज्य अर्थात् ग्रीस का बिलकुल अनुभव नहीं था। उसके साथ दूसरी कठिनाई यह थी कि वह स्वयं तो रोमन कैथोलिक था किंतु उसकी प्रजा का धर्म ग्रीक कैथोलिक था। ग्रीस के सामने इतनी विभिन्न और कठिन समस्याएँ थीं कि उससे अधिक वयस्क और योग्य शासक भी असफल हो जाता; इस-

---

१. अध्याय १० देखिए।
२. ग्लैडस्टन। ३. सर विलियम वाट्सन।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए उसके २९ वर्षीय राज्य-काल में बराबर प्रशासनिक दोष रहे, राजनीतिक संघर्ष रहे, आर्थिक अभाव रहे और व्यर्थ का दमन रहा। यही नहीं, ग्रीस का शासन-प्रबन्ध भी ठीक नहीं चला, सामाजिक गतिरोध रहा, और लूट-पाट और विद्रोहों का बोल-बाला रहा। देश के लिए संसदीय संविधान बना, फिर वह वापस ले लिया गया और पुनः उसी को चालू कर दिया गया। इस सब के फलस्वरूप शासन का बहुत ही परि-हास हुआ। लोगों ने स्थानीय स्वशासन की माँग की, किन्तु वह माँग पूरी न की गई। अन्त में १८६२ से सैनिक विद्रोह हो गया जिसके फलस्वरूप ऑटो (King Otto) को राजधानी से बाहर निकाल दिया गया और उसको राज्य त्यागने पर विवश कर दिया गया। इसके पश्चात् ग्रीस का राजमुकुट यूरोप के कई राजकुमारों को भेंट किया गया, किन्तु जब उसे क्वीन विक्टोरिया (Queen Victoria) के पुत्र एल्फ्रेड (Alfred) ने भी अस्वीकार कर दिया और स्वयं लार्ड स्टेनले (Lord Stanley)[1] ने भी अस्वीकृत कर दिया तो अन्त में डेनमार्क का प्रिंस जार्ज (Prince George of Denmark) ग्रीस का राजा बना, जिसने ग्रीस पर १८६३ से १९१३ तक शासन किया।

राज जार्ज प्रथम (१८६३-१९१३)

जार्ज प्रथम (George I) के शासन-काल में ग्रीस की बाह्य महत्वाकांक्षाएँ बहुत बढ़ गई थीं, इसलिए इस काल के ग्रीस के आन्तरिक विकास का अध्ययन उतना आवश्यक नहीं है जितना कि उसकी बाह्य नीति का महत्त्व है।

१८३२ में यूरोपीय शक्तियों ने ग्रीस की सीमाओं का कुछ ऐसा गलत निर्धारण किया कि ग्रीक लोगों को आम शिकायत थी कि बहुत से वास्तविक ग्रीक नागरिक नवीन ग्रीस राज्य के बाहर छोड़ दिये गये थे। आयोनियन द्वीपसमूह (Ionian Islands) में भी ग्रीक लोग थे, क्रीट (Crete) में भी ग्रीक लोग रहते थे, विशेष रूप से थिसैली (Thessaly) में, ऐपीरस (Epirus) में और मैसीडोनिया (Macedonia) में भी ग्रीक लोग रहते थे। ये सब प्रदेश ग्रीस से बाहर थे। इसलिए जार्ज प्रथम के राज्य-काल में ग्रीस की विदेश नीति का मुख्य रूप से यही लक्ष्य रहा कि ग्रीक लोगों द्वारा आबाद सारे प्रदेशों को ग्रीस में मिलाया जाना चाहिए।

ग्रीस की पूर्वी महत्त्वाकांक्षाएँ

सबसे पहले ग्रीस का ध्यान थिसैली (Thessaly) और एपीरस (Epirus) की ओर गया। इन जिलों पर तुर्की (Porte) का अधिकार था। अतः इनको तुर्की से छीनना था। इसलिए ग्रीस की नीति यह रही कि तुर्की की कठिनाइयों से हर सम्भव लाभ उठाया जाय; थिसैली (Thessaly) और ऐपीरस (Epirus) पर सीधा आक्रमण किया जाय और उनको नष्टप्राय तुर्की के कमजोर हाथों से छीन लिया जाय।

ग्रीस को उन यूरोपीय शक्तियों का बिलकुल भरोसा नहीं था जो अपने स्वार्थों के आगे ग्रीस की महत्त्वाकांक्षाओं को कोई स्थान न देती थीं। जब क्रीमिया युद्ध के दौरान ग्रीक सैनिकों ने थिसैली (Thessaly) पर आक्रमण किया था, उस समय यूरोप की

---

१. मि० ग्लैडस्टन (Mr. Gladstone) का नाम ग्रीस के राजमुकुट के लिए लिया गया था जो केवल एक मजाक है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तियों ने ग्रीक लोगों को रोका था और राजा ऑटो (Otto) को अत्यन्त अप्रिय तटस्थता का मार्ग ग्रहण करने पर मजबूर किया था। ग्रीस ने पैरिस की कॉंग्रेस (Congress of Paris) के आदेशों का पालन किया था, फिर भी उसको कुछ लाभ नहीं हुआ।

१८७७-७८ तुर्की-रूसी युद्ध में भी यही खेल खेला गया। ग्रीस ने थिसैली (Thessaly) पर आक्रमण किया किन्तु यूरोपीय शक्तियों ने पुनः उसको रोक दिया, किन्तु कॉंग्रेस में फिर उसको कुछ नहीं मिला। उस समय लार्ड बीकन्सफील्ड (Lord Beaconsfield) ने कहा था : "ग्रीस महान् देश है, उसका भविष्य उज्ज्वल है और वह कुछ समय के लिए इन्तजार कर सकता है।"

दो वर्ष बाद १८८० में इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन (Gladstone) बना, यह तुर्की का शत्रु और ग्रीस की स्वतन्त्रता का हामी था। उसने तुर्की (Porte) के ऊपर दबाव डालना प्रारम्भ किया कि वह ग्रीस की न्याय्य माँगों को माने और जो प्रदेश वास्तव में ग्रीस के हैं, उन्हे ग्रीस को लौटा दे। इसलिए १८८१ में सुलतान ने बेमन से ऐपीरस (Epirus) का एक-तिहाई भाग, और थिसैली (Thessaly) का अधिकतर भू-भाग दे दिया। किन्तु इतने से ग्रीक लोगों की आशाऐं पूरी न हुईं।

१८१५ से सात आयोनियन द्वीपों का समूह (Ionian Islands) ब्रिटेन के संरक्षण में चला आता था जो बीस वर्ष पूर्व मि० ग्लैडस्टन (Gladstone) के प्रयत्नों से ग्रीक अधिकार में आ चुका था। स्वयं आयोनियन द्वीपों के निवासी भी सन्तुष्ट थे और ग्रीस के साथ मिलना चाहते थे। पहले तो पामर्स्टन (Palmerston) की सरकार ने आयोनियन द्वीपवासियों को संवैधानिक सुधारों का लालच दिया किंतु जब इतने से काम न चला तो लार्ड पामर्स्टन ने उन द्वीपों को ग्रीस को सौंप दिया। ग्रीक लोगों ने इसको धन्यवादपूर्वक स्वीकार कर लिया और इस प्रकार सातों आयोनियन द्वीप (Ionian Islands) डेनमार्क के प्रिंस जार्ज (Prince George of Denmark) की अधीनता में आ गए।

क्रीट

अब क्रीट का प्रश्न बचा। यह ग्रीस का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण टापू है। क्रीट (Crete) के प्रशासन में तुर्कों ने उन सब दोषों का खुलकर प्रदर्शन किया था जिनके लिए तुर्क साम्राज्य (Ottoman Empire) बलकान क्षेत्र में बदनाम था; इसलिए क्रीट-निवासी तुर्की लोगों से उतने ही अप्रसन्न और असन्तुष्ट थे जितने कि तुर्की साम्राज्य के अन्य ईसाई प्रजाजन नाराज थे। १८३० से लेकर १९१० तक क्रीट (Crete) में १४ विद्रोह हुए किन्तु उन सबका सविस्तार वर्णन करना आवश्यक नहीं है। क्रीट के लोग न केवल यह चाहते थे कि तुर्की का जुआ अपने कन्धों से उतार फेंकें, बल्कि वे सब यह भी चाहते थे कि उनका द्वीप ग्रीस के संरक्षण में आ जाए; और ग्रीस के लोगों को क्रीटवासियों की इस इच्छा से सहानुभूति थी। १८९६ और १८९७ के बीच क्रीट (Crete) में जो विद्रोह हुए उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ; केवल तुर्की (Porte) ने खाली वायदा भर किया कि सुधार दिये जायेंगे और उन वायदों को कभी पूरा नहीं किया गया। १८९६-९७ में क्रीट (Crete) और ग्रीस (Greece) दोनों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय भावना जोर पकड़ रही थी। यह राष्ट्रीय भावना जो १८८६ के बल्गेरियां (Bulgaria) के संघ में संगठित होने के समय से जोर पकड़ रहीं थी, क्रीटवासियों के एक अन्य विद्रोह के रूप में प्रकट हुई। क्रीट के विद्रोहियों ने, जिनका एक नेता एल्यूथीरियस [वेनीजेलस (Eleutherios Venizelos) था, घोषणा कर दी कि वे ग्रीस के साथ संगठित होना चाहते हैं। इस पर ग्रीस ने, जो स्वयं क्रीटवासियों की माँग का समर्थन कर रहा था, क्रीट में अपनी सेनाएँ भेज दीं और थिसैली (Thessaly) पर भी आक्रमण कर दिया। इस पर तुर्की ने ग्रीस के विरुद्ध १८९७ में युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध तीस दिन तक चला। यद्यपि स्वयं ग्रीस ने इस युद्ध को छेड़ा था किंतु ग्रीस इस युद्ध के लिए तैयार न था। तुर्की फौजों को जर्मन शस्त्रास्त्र से सुसज्जित किया गया था। अतः शीघ्र ही तुर्की फौजों को सफलता मिली और चूंकि यूरोप की शक्तियाँ यह नहीं चाहती थीं कि सारे बल्कान क्षेत्र में युद्ध फैल जाए इसलिए शीघ्र ही सन्धि के प्रयत्न किए जाने लगे। इस प्रकार यह असफल ग्रीक दुस्साहस सिद्ध हुआ। ग्रीस को मजबूरन थिसैली के सीमान्त पर तुर्की को कुछ महत्त्वपूर्ण रियायतें देनी पड़ीं और साथ में बहुत बड़ी हर्जाने की रकम भी भरनी पड़ी। इस कारण ग्रीस का खजाना भी खाली हो गया और उसको क्रीट भी न मिला।

ग्रीस और तुर्की का युद्ध

इस द्वीप पर भी यूरोपीय शक्तियों का संरक्षण था किन्तु आर्मीनिया की समस्या के समान ही क्रीट में भी अन्तर्राष्ट्रीय विद्वेष काम करने लगे और उन्होंने इस समस्या को भी पेचीदा बना दिया और इस कारण इस समस्या के समाधान में भी देरी होने लगी। जर्मनी और ऑस्ट्रिया ऐसे किसी समझौते को मानने के लिए तैयार नहीं थे जो तुर्की (Porte) को मान्य न हो अतः वे सम्बन्धित विचार-विनिमय से अलग हट गए। अन्य शक्तियों ने अन्तिम निर्णय यह दिया कि क्रीट तुर्की के आधिपत्य में स्वायत्त-शासी प्रान्त रहे। इस व्यवस्था से न तो तुर्की प्रसन्न था, न क्रीट प्रसन्न था और न ग्रीस ही प्रसन्न था। क्रीट को ग्रेट ब्रिटेन, रूस, इटली और फ्रांस—इन चार शक्तियों के सम्मिलित आयोग के संरक्षण में रख दिया गया और प्रिंस जार्ज (Prince George) नामक ग्रीस के राजा को क्रीट का शासक भी नियुक्त कर दिया गया था। तुर्की फौजों को द्वीप से हटा लिया गया था किंतु द्वीप के ऊपर तुर्की का झण्डा[1] भी क्रीट (Crete) के झण्डे के साथ-साथ लहराता था। क्रीट और ग्रीस में यह स्थिति असह्य थी और वे सम्मिलित संघ बनाने की तैयारी में व्यस्त थे और १९०८ के तुर्की के विद्रोह और बल्गेरिया की स्वतंत्रता की घोषणा के पश्चात् क्रीट और ग्रीस ने एक और प्रयत्न किया कि क्रीट को ग्रीस में मिला लिया जाए, किन्तु पुनः यूरोपीय शक्तियों ने तुर्की (Porte) के पक्ष में हस्तक्षेप किया। उन्होंने क्रीट से अपनी सेनाओं को हटा लिया किन्तु १९१२ के बल्कान युद्ध के पश्चात् और १८९६-९७ की क्रान्ति के

१. वेनीजेलस (Venizelos) ने प्रस्ताव रखा था कि तुर्की की क्रमिक अधोगति के प्रतीक रूप में टीन का झण्डा होना चाहिए, जिसकी जंग (rusting) से तुर्की का पतन प्रकट हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५ वर्ष बाद यूरोपीय शक्तियों ने मजबूरन क्रीट और ग्रीस का संगठन स्वीकार कर लिया।

१८८० और १८९० के आस-पास तुर्की और बल्कान क्षेत्र की राजनीति में एक ऐसा नूतन तत्त्व उदय हुआ जो संसार के लिए भाग्यनिर्णायक सिद्ध हुआ। यह नवीन तत्त्व था, नवीन जर्मन साम्राज्य का तुर्की और बल्कान प्रदेश में बढ़ता हुआ प्रभाव। लगभग १०० वर्षों तक इंग्लैंड ने तुर्की की मित्र और संरक्षक के समान सहायता की थी। किन्तु बर्लिन की काँग्रेस (Congress of Berlin) के समय से ही तुर्की और ब्रिटेन के सम्बन्धों में कुछ खिंचाव सा पैदा होने लगा था, जिसके मुख्य कारण ये थे—(१) ब्रिटेन ने साइप्रस (Cyprus) पर अधिकार कर लिया था; (२) १८८१ के ग्रीक समझौते और १८८२ में मिस्र पर ब्रिटेन का अधिकार हो जाने से तुर्की को ठेस पहुँची थी; (३) आर्मीनिया (Armenia) में ईसाइयों के सामूहिक वध के कारण इंग्लैंड तुर्की से अप्रसन्न था। ग्रेट ब्रिटेन और तुर्की के बीच की बढ़ती हुई दरार ने तुर्क साम्राज्य में ऐसी रिक्तता पैदा कर दी थी जिसे जर्मनी ने भरना प्रारम्भ कर दिया था। बिस्मार्क (Bismarck) ने तो सदैव यही सोचा था कि पूर्वी समस्या का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, फिर भी यह देखा गया था कि उसके शासन-काल में भी जर्मन साम्राज्य का ध्यान कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) की ओर जाने लगा था। किंतु बिस्मार्क के पतन के बाद तो जर्मनी के नवयुवक सम्राट विलियम द्वितीय (William II) ने स्पष्टतः तुर्की समर्थक दृष्टिकोण अपनाया था। जर्मन सम्राट ने १८८९ में प्रथम बार कुस्तुन्तुनिया में आकर सुलतान अब्दुल हमीद का शाही आतिथ्य स्वीकार किया। १८९८ में पुनः जर्मन सम्राट तुर्की आए और उन्होंने पवित्र भूमि का तीर्थाटन किया; जिसकी सारी यात्रा का प्रबन्ध मेसर्स टॉमस कुक एण्ड सन्स (M/s. Thomas Cook and Sons) ने किया था। दमिश्क (Damascus) में तो जर्मन सम्राट ने ऐसी घोषणा की जिसकी गूँज सारे यूरोप में सुनाई दी। उन्होंने कहा था—"मैं महामहिम सुलतान अब्दुल हमीद और उनके ३० करोड़ उन मुसलमान अनुयायियों को विश्वास दिलाता हूँ जो सुलतान को अपने खलीफा के रूप में पूजते हैं कि जर्मन सम्राट सदैव उनका मित्र बना रहेगा।"

तुर्क साम्राज्य में जर्मन प्रभाव की वृद्धि

१८८१ में तुर्की की सेना का पुनर्गठन हुआ था। इस नवीन पुनर्गठित तुर्की सेना को बैरन वॉन डर गॉल्ट्ज (Baron von der Goltz) और अन्य जर्मन सैनिक अफसरों ने प्रशिक्षित किया।[1] इस प्रशिक्षित तुर्की सेना ने ग्रीस के विरुद्ध युद्ध में कमाल कर दिखाया था। जर्मन सैनिकों के पीछे-पीछे जर्मन व्यापारी और जर्मन पूंजीपति भी तुर्की में पैठने लगे। जर्मनी के व्यापारी लोग अपने व्यापारिक हितों को बढ़ाने के उद्देश्य से तुर्क साम्राज्य के हर भाग में पैठने लगे। जर्मन के व्यापार-दूत और

---

१. १८४१ में वान मॉल्टके (Von Moltke) को भी कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) सैनिक दायित्व पर भेजा गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूटनीतिक राजदूत भी इस दिशा में जर्मन व्यापार की उन्नति करने लगे। बर्लिन के ड्यूश बैंक (Deutsche Bank of Berlin) की शाखा कुस्तुन्तुनिया में भी खोल दी गई। जर्मनी की उस क्षेत्र में कितनी अभिरुचि थी, और उस क्षेत्र में जर्मनी की नीति क्या थी, इसका रहस्योद्घाटन बर्लिन से बगदाद तक की रेलवे लाइन के विकास से हुआ। यह यूरोपीय शक्तियों को एक विस्मयकारी और संकोच में डालने वाली कूटनीतिक चाल थी। यह जर्मनी की साहसिक और जोखिमपूर्ण पूर्वी योजना थी और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बनी रही है। यह योजना नवीन महत्त्वाकांक्षी जर्मन साम्राज्य की बड़प्पन प्रदर्शित करने की योजना थी और स्वयं जर्मन सम्राट भी अपने आपको बड़ा दिखलाने के इच्छुक रहते थे। तुर्की ने जर्मनी की एनेटोलियन रेलवेज (Anatolian Railways) को १८९९ में कुछ विशेष रियायतें दी थीं। उन्हीं रियायतों के आधार पर तुर्की साम्राज्य के बीचोंबीच से होकर एक रेल योजना तैयार की गई। इस योजना के अनुसार एशिया में बॉस्पोरस (Bosporus) से लेकर बगदाद (Baghdad) तक और पुनः बगदाद से लेकर बसरा (Basra) तक एक रेल योजना का निर्माण किया गया जो फारस की खाड़ी (Persian Gulf) से ७० मील दूर रह जाता था। यूरोपीय शक्तियाँ खूब समझती थीं कि इस रेलवे योजना का राजनीतिक और सैनिक महत्त्व है। जब इस रेलवे योजना का विस्तार करके बर्लिन को भी इस रेलवे द्वारा मिला दिया गया तो जर्मनी का मार्ग पूर्व में प्रशस्त हुआ और इस प्रकार जर्मनी का राजनीतिक और व्यापारिक प्रवेश पूर्व की ओर को हुआ। इस समय से जर्मनों को यह सम्भव दिखाई देने लगा कि यदि तुर्की साम्राज्य का विघटन होता है तो एशिया माइनर (Asia Minor) पर जर्मनी का अधिकार हो जाना सम्भव है।[1] यद्यपि जर्मन साम्राज्य का राजनीतिक अस्तित्व अन्य साम्राज्यों की अपेक्षा देर में हुआ था, फिर भी जर्मनी की आन्तरिक इच्छा थी कि वह भी उतनी ही बड़ी विश्व-शक्ति मानी जाय जितनी की ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस या रूस थीं। जर्मनी को आशा थी कि पूर्व में पतनशील तुर्की साम्राज्य के सहारे वह विश्व की प्रथम श्रेणी की शक्ति बन सकेगा। जर्मन लोग समझते थे कि जिस प्रकार १६वीं शताब्दी में जिस राष्ट्र के हाथों में समुद्री मार्ग रहे उसी का व्यापार चमका और उसी का साम्राज्य बढ़ा; उसी प्रकार अब जिस देश के हाथों में पूर्व का स्थल मार्ग होगा उसी के हाथों में पूर्व का व्यापार और पूर्व का साम्राज्य होगा। उन्हें विश्वास था कि बर्लिन-बगदाद-बसरा रेलवे लाइन जर्मनी को सुदूर पूर्व और निकट पूर्व का साम्राज्य उसी प्रकार देगी, जिस प्रकार कि कोलम्बस (Columbus) और कैबट (Cabot) के समुद्री जहाजों ने पश्चिमी देशों को बहुत बड़ा साम्राज्य दिया था।

बर्लिन से बगदाद तक की रेल-सड़क

यद्यपि यूरोपीय शक्तियों ने यह तो नहीं सोचा था कि बर्लिन-बगदाद-बसरा रेलवे लाइन से जर्मनी को बड़ा साम्राज्य प्राप्त हो जाएगा किंतु यह तथ्य यूरोपीय शक्तियों से छिपा नहीं था कि इस नई रेलवे द्वारा जर्मनी का प्रभाव तुर्की में विकसित होगा और वह भारतवर्ष के दरवाजे पर आ धमकेगा; शक्तियाँ यह भी समझती

1. See Professor C. Pendlory, *Pan-Germanism.*

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं कि इस रेलवे द्वारा जर्मनी को तुर्की साम्राज्य में सामरिक महत्त्व का लाभ प्राप्त होगा। वे यह भी समझती थीं कि अब सारा बल्कान प्रदेश युद्ध की स्थिति में कैसर (Kaiser) के अधीन हो जायगा। उन्हें यह भी ज्ञात हो चला था कि प्रस्तावित रेलवे द्वारा सीरिया (Syria) में फ्रेंच शक्ति को और पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य को भयंकर असुरक्षा और चुनौती होगी। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि फ्रांस और ब्रिटेन में प्रस्तावित रेलवे लाइन का निर्माण भय और सन्देह का कारण बना और वे चाहने लगे कि उक्त रेलवे लाइन के नियन्त्रण और निर्माण में उनको भी साझी बनाया जाय। १९१४ के महायुद्ध में ये भय सत्य प्रमाणित हुए। तुर्की ने जर्मनी का पक्ष लिया और यद्यपि रेलवे उस समय तक पूर्ण नहीं हुई थी फिर भी दर्रे दानियाल (Dardanelles) और पूर्व के अभियानों में उक्त रेलवे का महत्त्व प्रत्यक्षतः देखा गया था। युद्ध के उपरान्त बर्लिन बगदाद रेलवे जर्मनी के हाथों से छिन गई क्योंकि जर्मनी को पराजय का मुख देखना पड़ा था और अब वह रेलवे लाइन तुर्की, फ्रांस और ब्रिटेन के नियन्त्रण में जा पहुँची। इस रेल पर से जर्मन नियन्त्रण समाप्त हो जाने के पश्चात् जर्मनी के पूर्वी साम्राज्य के सपने कुछ समय के लिए धूमिल पड़ गए।[1]

तुर्की में जर्मनी का जो नया प्रभाव बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिखाई देता था, वह एक भारी राजनीतिक चाल थी जिसे जर्मन साम्राज्य बहुत दिनों से विकसित कर रहा था। तुर्की में जर्मनी के प्रभाव बढ़ाने वाले प्रयत्न तभी से प्रारम्भ हो गए थे जब से १८७० के आस-पास जर्मनी और ऑस्ट्रिया में मैत्री प्रारम्भ हुई थी। जब १८८२ में उस मैत्री में इटली को भी सम्मिलित कर लिया गया तो उन प्रयत्नों को और अधिक बल मिला। दस वर्षों के बाद तुर्की को भी मित्र बना लिया गया और उसी समय होहेन्जोलर्न (Hohenzollern) परिवार का प्रतिनिधित्व रूमानिया में भी था और एथेन्स[2] में भी था। यही नहीं बल्गेरिया का सम्राट भी सेक्सकोबर्ग (Saxe-Coburg) परिवार का था जो जर्मन प्रभाव-क्षेत्र के बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ था।

जर्मनी, ऑस्ट्रिया, इटली और तुर्की के गठबन्धन के फलस्वरूप यूरोप का शक्ति-संतुलन डाँवाँडोल हो गया। यूरोप ने देखा कि उसके वक्षःस्थल पर ऐसी मजबूत शक्तियों का संघ बनने जा रहा है जिसका प्रभाव-क्षेत्र बाल्टिक सागर से फारस की खाड़ी (Baltic to the Gulf of Persia) तक विस्तृत होगा और अजेय जर्मनी उस संघ का केन्द्र होगा। इसके जवाब में फ्रांस, रूस और ग्रेट ब्रिटेन ने त्रिदलीय मैत्री संघ स्थापित किया।

बल्कान प्रदेश में केन्द्रीय या धुरी शक्तियों का संघ विशेष अर्थ रखता था। बल्कान राष्ट्रों में यह भय प्रकट किया जा रहा था कि यदि जर्मनी का प्रभाव बढ़ता है तो उसके साथ ऑस्ट्रिया-हंगरी का प्रभाव भी बढ़ता है। दुर्भाग्यवश, ऑस्ट्रिया-

---

१. जर्मनी में कहा जाता था कि बर्लिन-बगदाद-बसरा रेलवे लाइन के निर्माण के पश्चात् कोई व्यक्ति यूरोप से सीधा बसरा (Basra) पहुँच जायेगा।

२. कैसर (Kaiser) की बहन राजकुमारी सोफिया (Princess Sophia) का विवाह ग्रीस के उत्तराधिकारी कन्सटेण्टाइन (Constantine) से हुआ जो १९१३ में ग्रीस का राजा बना। उसे १९१७ में राज्य त्यागना पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँगरी की विजय से न केवल रूस को चिढ़ थी बल्कि सर्बिया (Serbia) भी इससे प्रसन्न न था। इस प्रकार १९१४ के विश्व-युद्ध की काली छाया प्रकट होने लगी थी।

१९०८ में पूर्वी प्रश्न का एक नया और लम्बा अध्याय प्रारम्भ हुआ। वह अध्याय तब तक समाप्त नहीं हुआ जब तक कि सारे यूरोप में युद्ध का दावानल व्याप्त नहीं हो गया था।

युवक तुर्कों का आन्दोलन (१९०८-९)

१९०८ की जुलाई में तुर्की साम्राज्य में युवक आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। तुर्की के इतिहास के अभिलेख दरबारी षड्यन्त्रों और सामंती विद्रोहियों की कहानियों से भरे पड़े हैं किन्तु युवक तुर्कों का आन्दोलन पश्चिमी देशों की सभ्यता से प्रेरणा पाकर हुआ था। इस आन्दोलन के कर्णधार कुछ ऐसे युवक 'तुर्क' (Young Turks) थे, जिनको 'संगठन और सुधारकों का दल' (The Committee of Union and Progress) भी कहा जाता था। तुर्क साम्राज्य में सुधारकों का एक ऐसा दल बन गया था जिसमें अधिकतर ऐसे तुर्क लोग थे जिन्होंने पश्चिम में शिक्षा पाई थी। वे तुर्की को विनाश और पतन से बचाकर समृद्ध देखना चाहते थे और उसको आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के अनुसार उन्नतिशील बनाना चाहते थे। उनके मुख्यतः दो उद्देश्य थे—प्रथमतः वे तुर्की को लोकतन्त्रात्मक ढंग पर विकसित करना चाहते थे—इस दिशा में उन्होंने माँग रखी कि देश में संविधान हो, संसद् हो, धर्म और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता हो, आदि-आदि। द्वितीयतः वे चाहते थे कि तुर्की विदेशी प्रभुत्व से मुक्त हो तथा तुर्की की पूर्ण राष्ट्रीय नीति हो। वे कृतसंकल्प थे कि तुर्की की गिनती संसार के महत्तम स्वतन्त्र राष्ट्रों में हो और वे यह भी चाहते थे कि तुर्की विदेशी शक्तियों के संरक्षण से मुक्त हो।[1]

युवक तुर्कों का प्रचार गुप्त सभाओं द्वारा चलता था। तुर्की सेना में युवक तुर्कों का आन्दोलन विशेष रूप से लोकप्रिय था। २३ जुलाई को युवक तुर्कों के 'संगठन और सुधारकों के दल' (Committee of Union and Progress) ने सैलोनिका (Salonika) में घोषणा कर दी कि तुर्की में १८७६ का वह संविधान जारी किया जाता है, जिसे सुलतान अब्दुल हमीद ने अपने राज्याभिषेक के शीघ्र बाद जारी किया था किन्तु केवल दो वर्ष बाद उसे समाप्त भी कर दिया था। तुर्की सेना की दूसरी और तीसरी पल्टनों ने कहा कि यदि विद्रोहियों की घोषणा के अनुसार १८७६ का संविधान प्रारम्भ न किया गया तो वे कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर आक्रमण कर देंगे। किन्तु अब्दुल हमीद शीघ्र झुक गया और उसने घोषणा कर दी कि 'संगठन और सुधारकों के दल' (Committee of Union and Progress) ने जो घोषणा की है उससे उसको हार्दिक सहानुभूति है। उसने १८७६ का संविधान पुनः जारी कर दिया, संसद् को आहूत किया, सारी प्रजा की वैयक्तिक स्वतन्त्रता स्वीकार

---

१. १९०७ में जो इंग्लैंड और रूस के बीच संधि हुई थी उसमें भी यही ध्वनि निकलती थी कि तुर्की को विनाश से बचाना कठिन है यद्यपि वह एक शताब्दी से इस कारण पूर्ण विनाश से बचा रहा था कि इंग्लैंड और रूस में प्रतिद्वन्द्विता थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर ली गई और सबको धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी गई। इसके बाद समाचारपत्रों पर से सारी पाबन्दियाँ हटा दी गईं और सुलतान ने अपने ४०,००० भेदियों को नौकरी

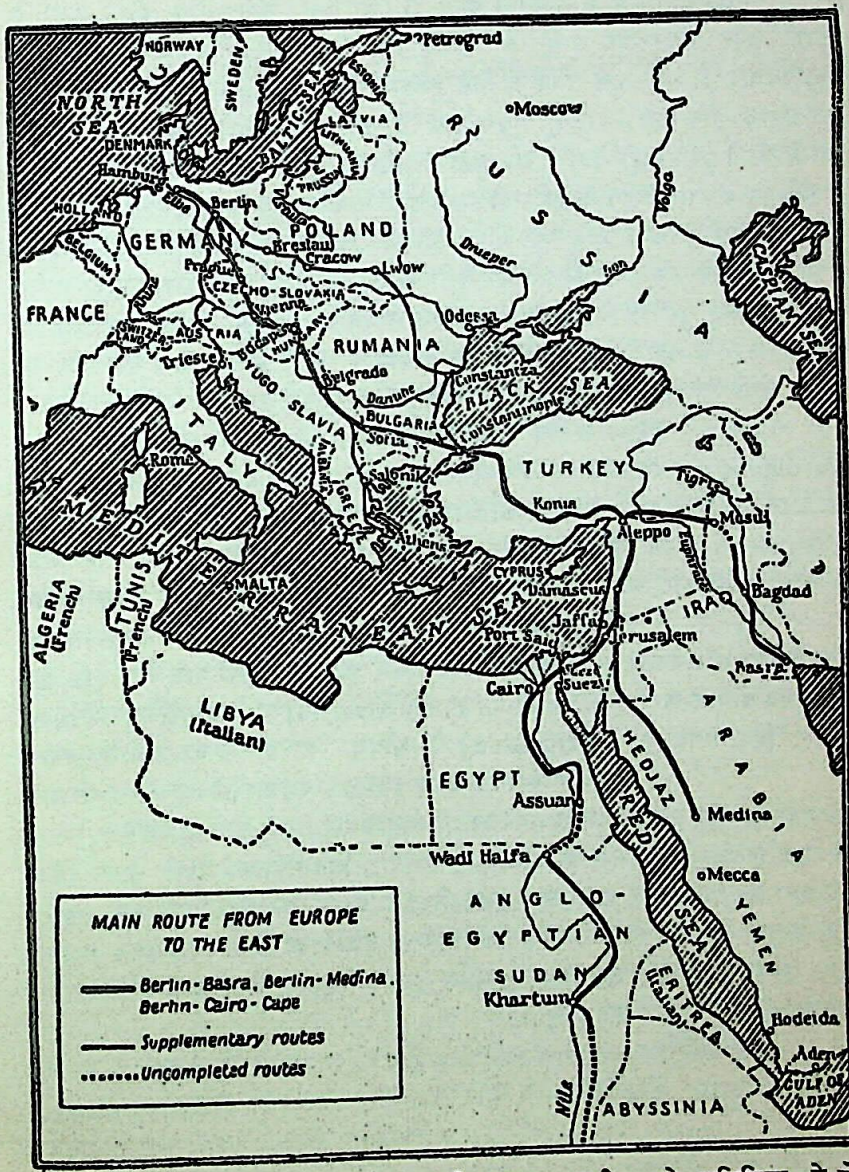

से हटा दिया। किन्तु कुछ महीनों के बाद ही अब्दुल हमीद को प्रतिक्रिया ने घेर लिया और उसने उन सब सुधारों और रियायतों को वापस लेना चाहा जिन्हें वह दे चुका था। यही नहीं, उसने प्रत्युत्तर में प्रतिक्रान्ति करने का निश्चय किया और संविधान को वापस ले लिया। इसलिए मई १९०९ में 'युवक तुर्की की सेना' कुस्तुन्तुनिया में प्रवेश कर गई। उसने सुलतान अब्दुल हमीद को सिंहासन से उतार दिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसको नजरबन्द कर दिया गया। इसके बाद उसके भाई मोहम्मद पंचम (Mohammad V) को तुर्की का सुलतान घोषित कर दिया गया।

मोहम्मद पंचम के सुलतान बनते ही ऐसा प्रतीत होने लगा मानो तुर्की में उदार और सुधारप्रिय शासन आ गया है। तुर्की की नई सरकार को ग्रेट ब्रिटेन ने मुबारकबाद दी और कुछ समय के लिए कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) में जर्मनी का प्रभाव क्षीण रहा। किन्तु 'युवक तुर्कों' के विद्रोह से तुर्की में जो भारी आशाएँ जागी थीं वे पूरी न हो सकीं। अब तुर्की में प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। युवक तुर्क दल ने तुर्कीकरण की राष्ट्रीय नीति अपनायी। अब तुर्की में कठोर तुर्कीकरण (Turkification) नीति का पालन किया जाने लगा और लोगों को राष्ट्रीयता और धर्म के नाम पर अपार कष्ट दिए जाने लगे। यह स्थिति गैर-तुर्की जातियों के लिए अत्यन्त कष्टकारी थी।

किन्तु तुर्की के विद्रोह ने उन अनेक समस्याओं को पुनः जीवित कर दिया जो पूर्वी समस्या के सहारे पैदा हुई थीं। इस विद्रोह के कारण ऐसी क्रमिक घटनाओं का ताँता बँधा कि छः वर्षों के अन्दर ही विश्वयुद्ध का बिगुल बज उठा।

अक्टूबर १९०८ में जब बल्गेरिया (Bulgaria) के प्रिंस फर्डीनेण्ड (Prince Ferdinand) ने देखा कि तुर्की मुसीबत में है और इस डर से कि सशक्त तुर्की बल्गेरिया के ऊपर अपने नियंत्रण को और अधिक कस देगा, उसने निर्णय किया कि बर्लिन की संधि को भंग किया जाए और तुर्की की अधीनता के जुए को अपने कन्धों से उतार फेंका जाए और पराधीन बल्गेरिया नामक राज्य को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया जाय। बल्गेरिया की प्राचीन राजधानी तिर्नोवा (Tirnova) के प्रसिद्ध चालीस शहीदों वाले गिर्जे (In the Church of Forty Martyrs) में प्रिंस फर्डीनेण्ड (Prince Ferdinand) ने घोषणा कर दी कि वह अब से स्वतन्त्र बल्गेरिया का ज़ार (Tsar) कहलाएंगा। सुलतान को बड़ा क्रोध आया और उसने यूरोपीय शक्तियों से अपील की किन्तु अन्त में उसने बल्गेरिया से प्राप्त हर्जाने की रकम से ही संतोष कर लिया। बाद में बल्गेरिया ने रकम देने से भी मना कर दिया और इस प्रकार युद्ध सन्निकट दिखाई देने लगा, किन्तु रूस के हस्तक्षेप से युद्ध टल गया क्योंकि उसने बल्गेरिया को हर्जाने की रकम अदा करने के लिए धन उधार दे दिया। इस प्रकार अप्रैल १९०९ में तुर्की की संसद् ने बल्गेरिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया।

बल्गेरिया को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया

प्रिंस फर्डीनेण्ड (Prince Ferdinand) की स्वतन्त्रता की घोषणा के दो दिन पश्चात् ७ अक्टूबर को ऑस्ट्रिया ने बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) पर अधिकार कर लिया, जिन पर अभी तक बर्लिन की काँग्रेस (Congress of Berlin) की आज्ञा के अनुसार उसका केवल नियंत्रण मात्र था। मेजिनी (Mazzini) ने एक बार भविष्यवाणी की थी कि जब पूर्वी समस्या अन्तिम रूप से हल हो जाएगी तब यूरोप को ऑस्ट्रिया की समस्या से उलझना पड़ेगा। १८६६ से ऑस्ट्रिया का प्रभाव जर्मनी में

ऑस्ट्रिया द्वारा बौस्निआ और हर्ज़ेगोविना पर अधिकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त हो चुका था। तब से ऑस्ट्रिया का रुख दक्षिण-पूर्व की ओर था। वह समझता था कि दक्षिण-पूर्व यूरोप में ऑस्ट्रिया के हित वास्तविक हैं और संभवतः रूस के लिए सँकरे जल-मार्ग (Straits) का या ग्रेट ब्रिटेन के लिए स्वेज नहर (Swez Canal) का इतना महत्त्व नहीं है। ऑस्ट्रिया यह भी समझता था कि उसके हित आर्थिक भी हैं और जातीय या राष्ट्रीय भी हैं। अतः दक्षिण-पूर्वी यूरोप की स्थिति का ऑस्ट्रिया के साम्राज्य पर वास्तविक प्रभाव पड़ता है।

ऑस्ट्रिया के आर्थिक हितों का तकाज़ा था कि उसे खुले समुद्र में व्यापार की सुविधा हो। एड्रियाटिक सागर के किनारे का उसका सीमांत (Adriatic Coastline) संकुचित था और उधर उसकी स्थिति अच्छी न थी। एड्रियाटिक सागर पर इटली की वक्र दृष्टि पड़ती थी, जो अपने प्राचीन वैनीशियन साम्राज्य के प्रदेशों को हस्तगत करना चाहता था। इसके अतिरिक्त एड्रियाटिक सागर में ऑस्ट्रिया के हितों का

ऑस्ट्रिया और सर्विया की प्रतिद्वन्द्विता

सर्विया (Serbia) के हितों से भी टकराव होता था क्योंकि सर्विया जातीय और आर्थिक कारणों से एड्रियाटिक सागर के ऊपर का डालमेशिया का सीमांत हड़पना चाहता था। इसमें संदेह नहीं है कि बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) पर ऑस्ट्रिया का अधिकार हो जाने से ऑस्ट्रिया-हंगरी की स्थिति सुदृढ़ हो गई थी। डालमेशिया के समुद्री किनारे के पीछे के जिलों पर अधिकार हो जाने से और उस भू-भाग के हंगरी की सीमा से मिल जाने से निस्संदेह ऑस्ट्रिया-हंगरी को लाभ था; इस प्रकार एड्रियाटिक सागर में ऑस्ट्रिया के हित सुरक्षित हो चले थे। इसके अतिरिक्त बौस्निआ और हर्ज़ेगोविना (Bosnia and Herzegovina) पर अधिकार हो जाने से ऑस्ट्रिया एजियन सागर (Ægean) के निकट भी आ गया था। इससे यह लाभ था कि यदि कभी ऑस्ट्रिया का सम्बन्ध एड्रियाटिक सागर से टूट जाता तो वह एजियन सागर से अपना काम चला सकता था।

बौस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) पर ऑस्ट्रिया का अधिकार हो जाने से जहाँ ऑस्ट्रिया का शक्तिवर्द्धन होता था, वहाँ सर्बिया के हितों को आघात होता था। इस छोटे राज्यक (Principality)[1] को प्रायः सर्वप्रथम तुर्की के अधिकार से मुक्ति मिली थी; और यद्यपि १९वीं शताब्दी के अधिकतर भाग में ऑब्रीनोविच राज्य परिवार (House of Obrenovic) और कारा जार्ज के राज्य परिवार (House of Kara Georgevic) में राजवंशीय संघर्ष चला फिर भी सर्बिया नाम के छोटे राज्य का ध्यान सदा उस ऐतिहासिक गौरव-गरिमा की ओर रहा जो उसकी पैतृक सम्पत्ति था और उसकी आन्तरिक व्यवस्था सदैव इतनी श्रेष्ठ रही जिससे उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता को प्रश्रय मिलता रहा। सर्बिया के लोगों की यह सदैव से महत्त्वाकांक्षा रही कि सर्बिया का मध्ययुगीन गौरव अक्षुण्ण बना रहे और जब १९वीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ ने सर्बिया के लोगों के हृदयों

---

१. १८८२ में सर्बिया राज्य था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आर्थिक और जातिगत हितों की लगन फूंक दी, तब तो सर्बिया के लोगों की महत्त्वाकांक्षाएँ और अधिक बलवती हो गईं। ऑस्ट्रिया के समान ही सर्बिया के लिए भी यह नितान्त आवश्यक था कि एड्रियाटिक सागर पर उसका नियन्त्रण हो। इसके अतिरिक्त सर्बिया आत्मविश्वास के साथ अपने आपको दक्षिणी स्लाव जातियों[1] का संरक्षक और मुक्तिदाता मानता था। सर्बिया का स्लाव जाति का संरक्षक होने का दावा उन सभी स्लाव लोगों पर लागू होता था जो या तो मैसीडोनिया (Macedonia) या बौस्निआ (Bosnia) या हर्जेगोविना (Herzegovina) में रहते हों या डालमेशिया (Dalmatia) में रहने वाले क्रोट या स्लोवीन (Croats and Slovenes) हों। मैग्यारों की अधीनता में रहने वाले स्लाव (Slavs) लोग असंतुष्ट थे, इसलिए भी सर्बिया की महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ चली थीं। इस प्रकार एक असंतोष से दूसरे असंतोष को बल मिलता था और हैब्सबर्ग साम्राज्य (Habsburg empire) ने देखा कि सर्बिया के राष्ट्रीय हितों के कारण वह स्वयं लड़खड़ा रहा है। जब १९०३ में सर्बिया का राजा एलेक्जैंडर (King Alexander) और उसकी स्त्री रानी ड्रागा (Queen Draga)[2] का वध कर दिया गया और इस प्रकार सर्बिया में ऑब्रीनोविच राज-परिवार का पतन हो गया तो सर्बिया (Serbia) और ऑस्ट्रिया-हंगरी के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बिगड़ गए। ऑस्ट्रिया ने सर्बिया के ऊपर अधिक चुंगी लगाकर उसको दण्डित करना चाहा जिसके फलस्वरूप १९०५-६ का सूअर युद्ध या पिग युद्ध (Pig War) हुआ। वैर-भाव से और अधिक वैर-भाव बढ़ा और इस प्रकार सर्बिया और ऑस्ट्रिया-हंगरी के सम्बन्ध उत्तरोत्तर बिगड़ते ही गए।

इसलिए जब 'युवक तुर्कों' के १९०८ के विद्रोह (The Young Turk Revolution of 1908) ने पूर्वी समस्या को और अधिक पेचीदा बना दिया तो ऑस्ट्रिया ने शीघ्र कार्यवाही करने का निर्णय किया ताकि कहीं ऐसा न हो कि तुर्की की नई सरकार उसे बाद में आँखें दिखाने लगे। इसलिए उसने बौस्निआ (Bosnia) और हर्जेगोविना (Herzegovina) पर अपना अधिकार कर लिया जिन पर अभी तक केवल उसका प्रबन्ध सम्बन्धी नियन्त्रण था। सर्बिया की इससे भीषण मान-हानि हुई और यूरोप की शक्तियों ने अनुभव किया कि शक्ति-संतुलन में गड़बड़ी आ गई है; इसलिए इस अनधिकृत अधिकार के कारण अन्तर्राष्ट्रीय संकट संन्निकट दिखाई देने लगा। किन्तु ऑस्ट्रिया-हंगरी (Dual Monarchy) की पीठ पर सशस्त्र जर्मनी का हाथ था और सशक्त जर्मनी सारे यूरोप को चुनौती देने की स्थिति में था। दूसरी ओर सर्बिया की आशाएँ केवल रूस की सहायता पर अवलम्बित थीं। किंतु, रूस जापान के युद्ध में कमजोर और जर्जर हो चुका था अतः वह नए युद्ध के लिए तैयार न था।

---

१. स्लाव जातियाँ तीन भागों में विभक्त हैं—पूर्वी स्लाव जातियाँ रूस में हैं, उत्तरी-पश्चिमी स्लाव जातियों में पोल (Poles) और चेक (Czechs) हैं; और दक्षिणी स्लाव जातियों में या यूगोस्लाव जातियों में (*Yug* शब्द का अर्थ है दक्षिण) सर्ब लोग, क्रोट लोग और स्लोवीन (Slovenes) लोग आते हैं।

२. यह भी कहा गया है कि एलेक्जैंडर की रानी ड्रागा का वध ऑस्ट्रिया के इशारे पर हुआ था। यदि यह सच था तो भी यह ऑस्ट्रिया के हित में नहीं था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांति की रक्षा के लिए फ्रांस, रूस और ग्रेट ब्रिटेन ने भारी अपमान सहन करते हुए बोस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) का ऑस्ट्रिया द्वारा अपहरण स्वीकार कर लिया और इस प्रकार बर्लिन की सन्धि का २५वाँ अनुच्छेद फाड़ डाला गया। दूसरी ओर यद्यपि सर्विया निराश और उदास था और लड़ने को तैयार भी था, किन्तु उसे पीछे हटने को बाध्य किया गया। तुर्की को प्रसन्न करने के लिए ऑस्ट्रिया ने नोवीबाजार के संजक (Sanjak of Novibazar) नामक स्थान से अपनी सेना हटा ली और तुर्की (Porte) को हर्जाने के रूप में कुछ धनराशि दे दी।

यद्यपि युद्ध का संकट बिना युद्ध किए ही टल गया तथापि एक ओर ऑस्ट्रिया-हंगरी में जीत की खुशियाँ मनाई जा रही थीं; जर्मनी में सफलता पर गर्व किया जा रहा था, रूस में परेशानी महसूस की जा रही थी, सर्विया में उफान आ रहा था और यह सब ऐसा ईंधन था जिसमें केवल एक चिनगारी लगने की देर थी और विश्व-युद्ध सन्निकट था।

शांति भंग करने का अगला प्रयत्न इटली की ओर से हुआ। इटली का नया राज्य भी साम्राज्य-निर्माण की ओर अग्रसर हुआ और उसने भी जर्मनी के समान ही तुर्क साम्राज्य के भग्नावशेषों पर अपना अधिकार जताया।

इटली और तुर्की के बीच ट्रिपोली का युद्ध (१९११-१२)

इटली की आँखें अफ्रीका के उत्तरी तट पर लगी हुई थीं और चूंकि फ्रांस ने अल्जीरिया और ट्यूनीशिया (Algeria and Tunisia) पर अधिकार कर रखा था, और इंग्लैंड ने मिस्र पर अड्डा जमा रखा था, अब केवल ट्रिपोली (Tripoli), जिसे तुर्की की विलायत भी कहा जाता था, बचा था जिस पर इटली की गृध्र-आँखें जमी हुई थीं। १८७८ में ही इटली ने यूरोपीय शक्तियों को बता दिया था कि वह ट्रिपोली पर अधिकार करने का इच्छुक है और यूरोप की शक्तियों ने भी प्रायः मान लिया था कि यदि कभी तुर्क साम्राज्य का विघटन होता है तो ट्रिपोली पर इटली का अधिकार हो जाना चाहिए। कुछ वर्षों तक इटली ट्रिपोली के ऊपर डोरे डालता रहा और व्यापार एवं आर्थिक सहायता के कार्यक्रमों के द्वारा वह धीरे-धीरे ट्रिपोली में प्रवेश करता रहा। इसके बाद 'युवक तुर्कों का विद्रोह' हुआ, जिसने इस दिशा में निश्चित प्रयत्न किया कि तुर्की के अधिराज्यों (Turkish Dominions) में से यूरोपीय शक्तियों के प्रभाव को क्षीण किया जाय। इन्हीं दिनों जर्मनी ने भी ट्रिपोली में वैज्ञानिक अन्वेषण करने प्रारम्भ कर दिए जिससे तुर्की के युवक तुर्कों को सन्देह हुआ। हो सकता था कि नव जर्मनी की ट्रिपोली में महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत हो गई हों और यह भी संभव था कि जर्मनी तुर्क साम्राज्य की सहायता करके उसकी कृतज्ञता अर्जित करना चाहता हो। इसमें संदेह नहीं है कि जर्मनी इटली का मित्र-देश था, किन्तु जर्मनी-इटली की मैत्री में दरार पड़ चुकी थी। अब इटली को यह अनुभव होने लगा कि शायद उसे ट्रिपोली से हटा दिया जाएगा, इसलिए उसने तुरन्त कार्यवाही करने का निश्चय किया। इसलिए २५ सितम्बर, १९११ को इटली ने यकायक तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और ट्रिपोली (Tripoli), बेन्गाजी (Bengazi) और डिसना (Disna) नाम के समुद्री किनारे के नगरों पर अधिकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया। अगले वसन्त में इटली की जल-सेना ने तुर्की (Porte) के कई स्थानों पर आक्रमण कर दिया तथा दर्रे दार्दानियाल (Dardanelles) के मार्ग पर बम-वर्षा की और रोड्स (Rhodes) तथा डॉडेकेनीज़ द्वीपसमूह (Dodecanese Archipelago) पर अधिकार कर लिया। तुर्की को पूरी आशा थी कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का हस्तक्षेप अवश्य होगा, इसलिए उसने इटली की माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया। युद्ध १९१२ तक चलता रहा किन्तु उसी समय एक नया खतरा पैदा हो जाने के कारण तुर्की को इटली से सुलह करनी पड़ी और अक्टूबर १९१२ में लॉसेन की संधि हुई, जिसकी शर्तों के अनुसार ट्रिपोली इटली के अधिकार में आ गया।

बल्कान राज्यों का संगठन

वह नया खतरा बल्कान क्षेत्र में पैदा हुआ। एक अपूर्व और अनहोनी घटना घटित हुई। जिन ईसाई राज्यों के संघ की इतने दिनों से चर्चा थी और जो पारस्परिक द्वेष के कारण अभी तक रुका हुआ था, वही संघ यकायक निर्मित हो गया। इन दिनों ग्रीस (Greece) का मंत्री वेनीजेलस (Venizelos) था जो महान् राजनीतिज्ञ था। विशेष रूप से उसकी मन्त्रणा पर ग्रीस, सर्बिया, मोंटीनीग्रो और बल्गेरिया (Greece, Serbia, Montenegro and Bulgaria) के बीच संधि हो गई और इन चारों राज्यों ने संगठन बना लिया। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही मेसीडोनिया (Macedonia) के ईसाई प्रजाजनों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी और यूरोप की शक्तियों और बल्कान राज्यों की उन ईसाइयों के साथ पूरी-पूरी सहानुभूति थी। यूरोपीय शक्तियों ने कई बार इस विषय पर तुर्की को विरोध-पत्र भेजे थे और तुर्की ने भी उत्तर में सुधार के बारम्बार वायदे किए थे। किन्तु मैसीडोनिया के ईसाइयों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ अतः १९०३ में यूरोपीय शक्तियों ने उक्त प्रश्न ऑस्ट्रिया और रूस के हाथों में दे दिया तथा इन दोनों महान् शक्तियों ने मर्सटेग (Murzsteg) नामक स्थान पर उसी वर्ष यह निर्णय किया कि मैसीडोनिया पर शक्तियों का संयुक्त नियन्त्रण रहे ताकि तुर्की के प्रस्तावित सुधार क्रियान्वित हो सकें। इसके उपरान्त एक अंतर्राष्ट्रीय अर्थ-समिति की स्थापना हुई, जिसको कर वसूल करने का दायित्व सौंपा गया। किन्तु यह सारी व्यवस्था पूर्णरूपेण असंतोषजनक थी और जब इस संयुक्त नियंत्रण की आड़ में ऑस्ट्रिया ने बल्कान क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहा, तब तो ऑस्ट्रिया और रूस का नियंत्रण चूर-चूर हो गया; और जब तुर्की ने ऑस्ट्रिया की हैब्सबर्ग सरकार को कुछ रेलों के संबंध में रियायतों के रूप में कुछ रिश्वत दे दी तब तो ऑस्ट्रिया ने मैसीडोनिया (Macedonia) के सुधारों की नैया को मँझधार में ही छोड़ दिया। अब तुर्की ने भय के साथ देखा कि मैसीडोनिया उसके हाथों से निकलता जा रहा है और यूरोपीय शक्तियाँ उस पर अधिकार कर रही हैं। तुर्क साम्राज्य के इसी अवशिष्ट भाग को बचाने के लिए तुर्की में 'युवक तुर्कों का विद्रोह' (Young Turkish Revolution) हुआ था। युवक तुर्कों के विद्रोह की सफलता पर ही यह प्रयत्न किया गया कि मैसीडोनिया पर तुर्की अधिकार कस दिया जाए और इसके फलस्वरूप ईसाइयों की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई। तत्कालीन बल्कान राज्यों ने जब यह देखा कि यूरोपीय शक्तियाँ मैसीडोनिया (Macedonia) में प्रभावी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं तो उन्होंने स्वयं कुछ कर डालना निश्चित किया और अब उन्होंने माँग की कि मैसीडोनिया में प्रस्तावित सुधारों को क्रियान्वित किया जाय। बल्कान राज्यों का संगठन इसी उद्देश्य[1] से संगठित किया गया था और जब तुर्की ने उक्त संगठन या लीग की बात को नहीं माना तो बल्कान लीग की चारों ईसाई शक्तियों—ग्रीस, सर्विया, मौण्टीनीग्रो और बल्गेरिया—ने अक्तूबर १९१२ के प्रारम्भ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यद्यपि यूरोप की शक्तियों ने घोषणा की कि बल्कान प्रायद्वीप में कोई प्रादेशिक उलट-फेर नहीं किए जाएँगे किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। बल्कान राष्ट्रों ने संकल्प कर रखा था कि वे यूरोपीय शक्तियों का हस्तक्षेप स्वीकार न करेंगे। इस समय बल्कान राष्ट्रों के हाथ में अपूर्व अवसर आया था और वे अपने प्राचीन शत्रु के दाँत खट्टे करने की स्थिति में थे। वे इस समय ऐसा धार्मिक युद्ध लड़ रहे थे जिसमें उन्हें प्रादेशिक लाभ की भी पूरी-पूरी आशा थी।

प्रथम बल्कान युद्ध का पहला दौर तीन महीने चला। तुर्की साम्राज्य पर चार ओर से आक्रमण किया गया। बल्गेरिया की सेनाएँ थ्रेस (Thrace) में प्रविष्ट हो गईं और उन्हें किर्क-किलिसे (Kirk-Kilisseh) के युद्ध में विजय प्राप्त हुई। इसके बाद बल्गेरिया की फौजें और आगे बढ़ गईं और एक सप्ताह तक लुले-बर्गास (Lule Burgas) के कठिन युद्ध के पश्चात् उन्होंने एड्रियानोपिल (Adrianople) को सर कर लिया। अब तुर्की को भाग कर अपनी राजधानी में शरण लेनी पड़ी।

प्रथम बल्कान युद्ध (१) अक्तूबर-दिसम्बर १९१२

सर्बिया की सेनाएँ नोवीबाजार (Novibazar) में प्रविष्ट हो गईं। उन्होंने तुर्कों को कमोनोव (Kumonov) की लड़ाई में हराया और इस प्रकार १३९८ की प्रसिद्ध कौसोवो (Kossovo) की पराजय का बदला ले लिया।[2] उन्होंने अस्कब (Uskub) नामक प्राचीन सर्बिया की राजधानी पर अधिकार कर लिया और वहाँ से उन्होंने अल्बानिया (Albania) के मौनस्तीर (Monastir) नामक नगर पर चढ़ाई कर दी। नवम्बर में सर्बिया की सेनाओं ने एड्रियाटिक सागर के डुरैजो (Durazzo) नामक बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया। उधर मौंटीनीग्रो की सेनाओं ने भी अल्बानिया (Albania) के ऊपर आक्रमण किया। यूनानियों (Greeks) ने थिसैली (Thessaly) पर आक्रमण कर दिया और वे सैलोनिका (Salonika) में प्रविष्ट हो गए जिस पर ८ नवम्बर को अधिकार हो गया। ग्रीस (Greece) ने तुर्की बन्दरगाहों के मार्गों को अवरुद्ध कर दिया और एजियन सागर के अनेक द्वीपों पर भी अधिकार कर लिया। सामुद्रिक शक्ति केवल ग्रीस के पास थी। दिसम्बर के प्रारम्भ

---

१. जर्मनी (Germany) का कहना था कि बल्कान राष्ट्रों के संगठन (Balkan League) के पीछे रूस की महत्वाकांक्षाएँ काम कर रही थीं।

२. १३८९ का कौसोवो (Kossovo) का युद्ध बल्कान राज्यों के इतिहास में प्रसिद्ध है। बल्कान राष्ट्रों की प्राचीन गाथाओं में भी इस युद्ध का वर्णन है। कहते हैं कि इस युद्ध में तुर्की ने सर्बिया की शक्ति को नष्ट कर दिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यूरोपीय शक्तियों ने युद्धग्रस्त राष्ट्रों का सम्मेलन लन्दन (London) में बुलाया और सबको एक अस्थायी सन्धि स्वीकार करने पर बाध्य किया गया। तुर्की को चार बल्कान राज्यों ने बुरी तरह पराजित कर दिया था यद्यपि उन चारों राष्ट्रों की सम्मिलित जनसंख्या केवल १ करोड़ थी। अब तुर्की के पास यूरोप में केवल निम्न चार नगर रह गए थे—कुस्तुन्तुनिया (Constantinople), एड्रियानोपिल (Adrianople), जैनिना (Janina), और स्कूटरी (Albanian Scutari)। इन चार नगरों को छोड़ते हुए तुर्की के अधिकार में यूरोप में एक फुट भूमि भी न रह गई थी। अतः तुर्की के साम्राज्य के विघटन की समस्या पुनः एक बार यूरोपीय शक्तियों के सम्मुख थी।

यह तो स्पष्ट था कि तुर्की को अपने यूरोपीय साम्राज्य का अधिकतर भाग त्यागना होगा। किन्तु इस बात की कल्पना न तो तुर्की ने की थी, न यूरोपीय शक्तियों ने की थी कि तुर्की का सारा यूरोपीय साम्राज्य विघटित हो जाएगा। जहाँ तक तुर्की और बल्कान राज्यों के बीच सन्धि की चर्चा हुई, दो मुख्य विषयों पर दोनों पक्षों में भारी मतभेद था। क्या रूमानिया (Rumania) को अपनी तटस्थता के बदले डोब्रुजा (Dobrudja) क्षेत्र में कुछ लाभपूर्ण रियायतें मिलनी चाहिएँ? और क्या तुर्की के अधिकार में वे चारों नगर बने रहें जिन पर अभी तक तुर्की का झण्डा लहराता था? जनवरी १९१३ तक इस प्रश्न का रूमानिया के पक्ष में निर्णय हो गया; दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में यह निर्णय हुआ कि तुर्की से एड्रियानोपिल ले लिया जाय, किन्तु अन्य तीन नगरों पर तुर्की का अधिकार बना रहे।

तुर्की के अधिकार से एड्रियानोपिल के निकल जाने से युवक तुर्कों में भारी रोष छा गया। लन्दन की सन्धि की शर्तों को चुनौती दी गई और अस्थायी सन्धि को तोड़ दिया गया और फरवरी के प्रारम्भ में तुर्की (Porte) और बल्कान संगठन के चारों राज्यों में पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। किन्तु इस युद्ध के दूसरे दौर में भी तुर्की को ही अपार हानियाँ सहन करनी पड़ीं। मार्च के महीने में बल्गेरिया और सर्बिया (Bulgaria and Serbia) ने एड्रियानोपिल (Adrianople) ले लिया। ग्रीक सेनाओं ने जैनिना (Janina) पर अधिकार कर लिया और मौंटीनीग्रो (Montenegro) तथा सर्बिया (Serbia) की सेना ने अल्बानिया (Albania) स्थित स्कूटरी (Scutari) नामक नगर पर अधिकार कर लिया। किन्तु स्कूटरी (Scutari) पर ऑस्ट्रिया की भी आँखें लगी हुई थीं अतः मौंटीनीग्रो और सर्बिया (Montenegro and Serbia) को स्कूटरी (Scutari) के विजय-लाभ से वंचित होना पड़ा और यूरोपीय शक्तियों ने स्कूटरी (Scutari) को अन्तर्राष्ट्रीय आयोग (International Commission) के नियन्त्रण में दे दिया।

प्रथम बल्कान युद्ध (२) फरवरी से मई तक १९१३

बल्कान राज्यों की विजय ने पुनः तुर्की को मजबूर कर दिया कि वह उनकी शर्तों को स्वीकार करे और मई १९१३ में लन्दन में सन्धि की शर्तें निश्चित हुईं। तुर्की का सब कुछ समाप्त हो गया, केवल थ्रेस (Thrace) का कुछ भू-भाग उसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार में रह गया जो कुस्तुन्तुनिया के निकट था। काले सागर पर स्थित मीडिया (Midia) से लेकर एजियन सागर (Ægean Sea) स्थित एनौस (Enos) तक और दक्षिण में एड्रियानोपिल (Adrianople) तक का सारा भू-भाग तुर्की से छीनकर चार बल्कान राज्यों के संगठन (Balkan Allies) को दे दिया गया जिसे उन्होंने स्वयं आपस में बाँट लिया। वीड के राजकुमार (Prince of Wied) की अधीनता में अल्बानिया (Albania) को स्वाधीन राज्य स्वीकार कर लिया गया। क्रीट (Crete) को ग्रीस (Greece) के साथ मिला दिया गया। इन शर्तों के तय होने में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं और कई बार तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो यूरोप की शान्ति भंग होने जा रही है। बल्गेरिया (Bulgaria) की इच्छा थी कि कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) पर वह अधिकार कर ले। इससे रूस को भारी अप्रसन्नता हुई। अतः कुस्तुन्तुनिया के भाग्य का अन्तिम निर्णय आगे आने वाले युद्ध पर छोड़ दिया गया। इस समय तुर्की की राजधानी (Constantinople) को तुर्की (Porte) के अधिकार में ही छोड़ दिया गया। अल्बानिया के प्रश्न पर भारी मतभेद था क्योंकि इस प्रश्न के सहारे १९०८ की ऑस्ट्रिया की समस्या जुड़ी हुई थी। सर्विया की इच्छा यह थी कि अल्बानिया (Albania) को वह और मौंटीनीग्रो मिल-कर आपस में बाँट लें जिससे उसको एड्रियाटिक सागर (Adriatic Sea) का मार्ग प्राप्त हो जाये, किन्तु डालमेशिया (Dalmatia) की प्राप्ति से सर्बिया की समुद्री मार्ग सम्बन्धी इच्छा की पूर्ति होना कठिन था। ऑस्ट्रिया को इस व्यवस्था से विरोध था।

किन्तु ऑस्ट्रिया के विरुद्ध ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस, सर्बिया (Serbia) के पक्ष का समर्थन कर रहे थे और दिसम्बर और मार्च के बीच के समय में ऑस्ट्रिया और रूस के बीच युद्ध छिड़ जाने की पर्याप्त सम्भावना थी क्योंकि दोनों देशों ने अपनी-अपनी सेनाओं को तैयार होने का आदेश दे दिया था। रूस को सहायता देने का वचन फ्रांस[1] से प्राप्त हो गया था और दूसरी ओर ऑस्ट्रिया-हँगरी को जर्मनी की शक्ति का बल था। बल्कान राज्यों में संगठन की विजय से जर्मनी को प्रसन्नता नहीं थी। १९०८ के युवक तुर्कों (Young Turks) के आन्दोलन से जर्मनी और तुर्की के सम्बन्ध में जो दरार पड़ गई थी उसे अभी तक पूरी तरह से जर्मनी नहीं भर पाया था। अब बर्लिन और कुस्तुन्तुनिया (Berlin and Constantinople) के बीच बल्कान राज्यों के संगठन (Balkan League) ने भी दरार डालना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए जर्मनी के हित में यही था कि ईसाई राज्यों की एकता को नष्ट किया जाय। अतः जर्मनी ने यह युक्ति निकाली कि यदि सर्बिया को अल्बानिया (Albania) से निकाल दिया जाय और यदि सर्बिया (Serbia) की एड्रियाटिक सागर की महत्त्वाकांक्षाएँ समाप्त हो जाएँ तो फिर उसका ध्यान एजियन (Ægean) सागर की ओर जाएगा और इस प्रकार सर्बिया का ग्रीस (Greece) और बल्गेरिया (Bulgaria) से संघर्ष अनिवार्य होगा। इस प्रकार बल्कान मित्र राष्ट्रों में फूट पड़

१. रूस को यह भी विश्वास था कि ग्रेट ब्रिटेन इस संघर्ष में अवश्य तटस्थ रहेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएगी और विभाजित बल्कान प्रदेश में जर्मनी को प्रभाव बढ़ाने की अधिक सुविधा होगी।

जर्मनी को ऑस्ट्रिया-हँगरी (Austria-Hungary) से पूरी सहानुभूति थी और ऑस्ट्रिया-हँगरी युद्ध के लिए लालायित था। किन्तु जर्मनी ने ऑस्ट्रिया-हंगरी को यह सलाह दी कि युद्ध छेड़ने में जल्दबाजी न की जाय और संयम से काम लिया जाय। इसका कारण यह हो सकता है कि जर्मनी अभी युद्ध के लिए पूर्णतः तैयार नहीं था। इसके अतिरिक्त शान्ति-सन्धि सम्मेलन के सभापति सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) ने भरसक प्रयत्न किया कि यूरोप में शान्ति बनी रहे। इसलिए दुबारा यूरोपीय शान्ति के हितों में ऑस्ट्रिया की विजय हुई और यूरोपीय युद्ध के बादल जो पूर्वी प्रश्न पर मँडरा रहे थे, हट गए। किन्तु युद्ध मुश्किल से १५ महीनों के लिए केवल टल गया था।

द्वितीय बल्कान युद्ध (जून से अगस्त १९१३ तक)

बल्कान प्रदेश में यूरोपीय शक्तियों के संघर्ष रंग ला रहे थे और विजित प्रदेशों की बाँट या बँटवारे के प्रश्न पर बल्कान राज्यों के संगठन (Balkan League) में फूट पड़ने लगी। बल्कान राज्यों की मुख्य समस्या मैसीडोनिया (Macedonia) थी। मैसीडोनिया पर किसी एक राज्य का अधिकार कैसे होता क्योंकि वहाँ सभी जातियाँ निवास करती थीं और सभी के हित इस क्षेत्र में थे। चूँकि मैसीडोनिया (Macedonia) में बहुत बड़ी संख्या में यूनानी (Greeks) रहते थे और यूनानियों (Hellenes) और मैसीडोनिया के निवासियों में पुराने सांस्कृतिक सम्बन्ध थे अतः ग्रीस का दावा था कि मैसीडोनिया पर उसका अधिकार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में भी मैसीडोनिया पर ग्रीस का अधिकार था और यदि भविष्य में कभी ग्रीक साम्राज्य (Hellenic Empire) का उदय होना था तो मैसीडोनिया (Macedonia) को ग्रीस के अधिकार में आना ही चाहिए था।

सर्बिया इस आधार पर मैसीडोनिया पर अपना अधिकार चाहता था कि भारी संख्या में स्लाव (Slav) जाति के लोग मैसीडोनिया में निवास करते थे और मुख्यतः इस आधार पर कि अल्बानिया (Albania) में सर्बिया को भारी निराशा हुई थी, उसका मैसीडोनिया पर अधिकार मान लिया जाना चाहिए।

बल्गेरिया (Bulgaria) को यह शिकायत थी कि चूँकि मैसीडोनिया की बहु जनसंख्या बल्गर (Bulgars) जाति की है और जब तक तंग जल-मार्ग (Straits) पर विदेशी सत्ता का प्रभुत्व है तब तक बल्गेरिया (Bulgaria) को एजियन सागर (Ægean) में मुक्त मार्ग मिलना ही चाहिए। बल्गेरिया यह भी भूला न था कि सेन स्टेफ़नो (San Stefano) की सन्धि द्वारा उसको मैसीडोनिया का बृहत्तर भाग प्राप्त हुआ था और तभी से उसकी यह कामना रही थी कि किसी न किसी प्रकार उस बृहत्तर बल्गेरिया का पुनः निर्माण होना चाहिए जिसके लिए मैसीडोनिया अत्यन्त आवश्यक था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कान राष्ट्रों के परस्पर-विरोधी दावे सन्तुष्ट नहीं किए जा सकते थे, विशेषकर जबकि मध्य यूरोप की बड़ी शक्तियाँ आपसी षड्यन्त्रों से उन दावों को और अधिक बढ़ावा दे रही थीं। सन् १९१३ के जून के अन्त में बल्कान राष्ट्रों में युद्ध छिड़ गया जिसमें एक ओर बल्गेरिया (Bulgaria) था तथा दूसरी ओर सर्बिया (Serbia), मौंटीनीग्रो (Montenegro), ग्रीस (Greece) और रूमानिया (Rumania) सम्मिलित थे। युद्ध केवल एक महीने तक चला। अकेला बल्गेरिया (Bulgaria) चारों ओर से शत्रुओं से घिर गया और उसकी करारी हार हुई। तुर्की को भी यह स्वर्ण अवसर मिला कि वह अपने खोये हुए प्रदेशों को पुनः हस्तगत करे अतः उसने भी बल्गेरिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और एड्रियानोपिल (Adrianople) पर पुनः अधिकार कर लिया। किन्तु ऑस्ट्रिया नहीं चाहता था कि बल्गेरिया की सर्बिया और ग्रीस के हाथों और अधिक दुर्गति हो अतः उसने जोर दिया और फलस्वरूप अगस्त १९१३ में बुखारेस्ट (Bukarest) की सन्धि हो गई। बल्गेरिया को बाध्य किया गया कि वह सभी ओर रियायतें दे और हानि उठावे। उत्तर में बल्गेरिया को सिलिस्ट्रिया (Silistria) और डोब्रूजा (Dobrudja) का भारी भू-भाग रूमानिया को देना पड़ा। दूसरी ओर ग्रीस, सर्बिया और मौंटीनीग्रो के हित में बल्गेरिया को मैसीडोनिया का बहुत बड़ा भू-भाग त्यागना पड़ा जिस पर वह अपना अधिकार बताता था। तीसरी ओर बल्गेरिया को तुर्की को भी प्रसन्न करना पड़ा और तुर्की को एड्रियानोपिल (Adrianople) और थ्रेस (Thrace) का कुछ भाग मिला। इस प्रकार तुर्की (Porte) को लगभग उतना ही प्रदेश और मिल गया जितना कि उसके पास लन्दन की सन्धि (Treaty of London) द्वारा बच रहा था। प्रथम और द्वितीय बल्कान युद्धों के प्रादेशिक निर्णयों के अनुसार यूरोप से प्रायः तुर्की के साम्राज्य का नामोनिशाँ मिट गया और तुर्की साम्राज्य के अवशेषों पर ईसाई राज्यों के आकारों में वृद्धि हो गई। तुर्कों के पास कस्तुन्तुनिया (Constantinople) और एड्रियानोपिल (Adrianople) बचे और दर्रे दानियाल तथा बॉस्पोरस के तंग जल-मार्ग (Straits of the Dardanelles and Bosporus) तथा उनके बीच का भू-भाग बचा। रूमानिया (Rumania) को प्रादेशिक लाभ हुआ जिसके फलस्वरूप उसकी जनसंख्या में २,८६,००० नागरिकों की वृद्धि हो गई। इस प्रकार उस समय भी रूमानिया बल्कान प्रदेश में सबसे बड़ा राज्य था और अब भी सबसे बड़ा राज्य है।[1] रूमानिया का प्रादेशिक आकार भी २,६८७ वर्ग मील पहले से अधिक हो गया। यह प्रदेश भी बल्गेरिया से छिनकर रूमानिया को प्राप्त हुआ। बल्गेरिया को मैसीडोनिया में ९,००० वर्ग मील भू-प्रदेश प्राप्त हुआ और उसके साथ ही उसकी जनसंख्या में १,२५,००० व्यक्तियों की वृद्धि हो गई। इसमें संदेह नहीं है कि बल्गेरिया का सीधा सम्बन्ध एजियन (Ægean) सागर से हो गया किन्तु जितनी माँग थी उसको

---

१. यूगोस्लाविया की जनसंख्या उससे कुछ ही कम है लेकिन यूगोस्लाविया का क्षेत्रफल रूमानिया से ज्यादा है। १९५५ में रूमानिया की जनसंख्या १७,०००,००० और क्षेत्रफल ९१,६०० वर्ग मील था। यूगोस्लाविया की जनसंख्या १६,९२७,००० और क्षेत्रफल ९६,००० वर्गमील था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हुए उसे आधा भू-भाग भी नहीं मिला। मौंटीनीग्रो (Montenegro) को नोवी बाजार (Novibazar) का पश्चिमी आधा भू-भाग मिल गया जिससे उक्त राज्यक (Principality) का आकार लगभग दूना हो गया। किन्तु सर्बिया और ग्रीस (Serbia and Greece) सबसे अधिक लाभ में रहे। सर्बिया की जनसंख्या ३० लाख से बढ़कर ४५ लाख हो गई और उसका आकार १८,००० वर्ग मील से बढ़कर ३३,००० वर्ग मील हो गया। ग्रीस को क्रीट (Crete) मिला और कुछ एजियन सागर के द्वीप (Ægean Islands) मिले तथा मैसीडोनिया (Macedonia) में भी उसको व्यापक लाभ हुए जिनमें सैलोनिका (Salonika) तथा एजियन सागर का उत्तरी तट विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार थैसॉस (Thasos) द्वीप तक का सारा एजियन सागर का तट ग्रीस के अधिकार में आ गया। ग्रीस (Greece) की जनसंख्या लगभग २० लाख बढ़ गई और उसके आकार में लगभग १५,००० वर्ग मील के भू-भाग की वृद्धि हो गई।

बल्कान युद्धों के कुछ और भी फल हुए। बल्गेरिया को भारी शिकायत रही कि उसके पड़ोसी बल्कान राज्यों ने उसको ठग लिया और उसकी तुर्की साम्राज्य पर विजयों का उसे सम्यक् लाभ नहीं मिला। इस शिकायत के कारण बल्गेरिया, विश्व-युद्ध में बल्कान राज्यों के विरुद्ध रहा और फलस्वरूप उसको भारी हानि उठानी पड़ी। रूस पुनः बल्कान राज्यों के अभिरक्षक के रूप में उदित हुआ। किन्तु इस बार रूस तुर्की के विरुद्ध न होकर ऑस्ट्रिया के विरुद्ध था। जर्मनी ने तुर्की सेना को सुसज्जित करने का काम अपने हाथों में ले लिया। बल्कान युद्धों का सबसे [illegible] फल यह हुआ कि ऑस्ट्रिया और सर्बिया का वैर-भाव पुनः जाग गया जिसमें ऑस्ट्रिया विजयी हुआ और सर्बिया की भारी हानि हुई। सर्बिया ऑस्ट्रिया से बदला लेने की ताक में था ही अतः उसने ऑस्ट्रिया-हंगरी की स्लाव प्रजा में फूट डालने की कोशिश की ताकि बौस्निआवासी (Bosnians), हर्ज़ेगोविनावासी (Herzegovinians), क्रोट (Croats) और स्लोवीनवासी (Slovenes) ऑस्ट्रिया-हंगरी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें। उधर ऑस्ट्रिया-हंगरी को भी सर्बिया (Serbia) से शिकायत थी और वह भी सर्बिया के मनसूबों को नष्ट करने के लिए कृत-संकल्प था और उसका विश्वास था कि सर्बिया के युद्ध में दाँत खट्टे किये बिना काम न चलेगा। अतः वह सर्बिया के विरुद्ध युद्ध करने का बहाना ढूँढ़ने लगा। यह इतनी आधुनिक घटना है कि इस पर सम्यक् प्रकाश पड़ना चाहिए। जहाँ तक मालूम हो सका है, ऑस्ट्रिया-हंगरी ने १९१३ में इटली के विदेश विभाग को लिखा कि उसका इरादा सर्बिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का है। उक्त पत्र में यह आशा भी व्यक्त की गई थी कि तिहरी सन्धि (Triple Alliance) की शर्तों के अनुसार इटली को ऑस्ट्रिया-हंगरी की सहायता करनी चाहिए।

२३ जून, १९१४ को बौस्निआ के सिराजीवो नामक नगर (Bosnian town of Serajevo) में ऑस्ट्रिया के आर्चड्यूक फ्रांज फ़र्डीनिण्ड (Franz Ferdinand) की हत्या सर्बिया के एक विप्लवी द्वारा कर दी गई। ऑस्ट्रिया के हाथों सर्बिया से बदला लेने का अवसर आ गया। जिस बम्ब (bomb) द्वारा आर्चड्यूक फ्रांज फर्डीनिण्ड (Archduke Franz Ferdinand) की हत्या की गई थी उसी बम्ब के फ्यूज (fuse) ने विश्व-युद्ध की आग लगा दी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ८

(CHAPTER VIII)

सशस्त्र शान्ति का युग (१८७१-१९१४)

(The Age of Armed Peace—1871-1914)

१. यूरोप के मुख्य देशों का आन्तरिक इतिहास

(Internal Affairs in the Chief Countries of Europe)

लगभग चार दशकों तक यूरोप में शान्ति रही। पश्चिमी यूरोप में १८७१ की फ्रैंकफर्ट की सन्धि (Treaty of Frankfurt) से लेकर १९१४ के विश्व-युद्ध तक शान्ति रही और पूर्वी यूरोप में १८७८ की बर्लिन की कांग्रेस (Congress of Berlin) से १९१२ के बल्कान युद्ध तक शान्ति रही।[1] जिस प्रकार कि फ्रेंच राज्य क्रान्ति सम्बन्धी युद्धों और नेपोलियन के युद्धों के बाद यूरोप में स्थायित्व और शान्ति का काल आया उसी प्रकार १८७१ से लेकर १९१२ तक का काल भी भारी अशान्ति और क्रियाशीलता के बाद शान्ति का काल था। दोनों ही स्थितियों में यूरोप नई स्थिति और नये वातावरण के अनुकूल अपने आपको बनाने का प्रयत्न कर रहा था। फ्रेंच राज्य-क्रान्ति के बाद यूरोप अपने आपको फ्रेंच गण-राज्य के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करने लगा था और बर्लिन की सभा के बाद अर्थात् १८७१ से लेकर १९१२ तक के काल में यूरोप अपने आपको जर्मन सैनिक साम्राज्य-वाद के अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रहा था। किन्तु इतना निश्चित सत्य है कि दोनों स्थितियाँ अपनी-अपनी पूर्वगामी क्रियाशीलता का परिणाम थीं और दोनों ही काल महान् राजनीतिक तैयारियों के काल थे। फिर भी इस काल को राजनीतिक निर्माण का काल नहीं कहा जा सकता। इन दोनों कालों में पर्याप्त सांस्कृतिक उन्नति के साथ-साथ आर्थिक उन्नति भी अवश्य हुई थी।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का काल

१९१४ के महायुद्ध से पूर्व के काल में तीन प्रवृत्तियाँ देखने में आई थीं जो प्रायः सारे यूरोप की विशेषताएँ या प्रवृत्तियाँ थीं।

तीन मुख्य विशेषताएँ

उक्त काल की प्रथम विशेषता यह थी कि प्रायः सारे यूरोप का तेजी से उद्योगीकरण हुआ जिससे पश्चिमी यूरोप की शक्तियों का कायाकल्प हो गया और वह उद्योगीकरण पोलैण्ड और रूस के समुद्री किनारों के आस-पास के जिलों तक पहुँच गया था। पूर्ण आत्मविश्वास और प्रशिक्षित योग्यता के साथ मनुष्य जाति ने अपने-अपने देश के प्राकृतिक संसाधनों का पूरा-पूरा लाभ उठाया और उस शताब्दी में जो

(१) उद्योगीकरण

---

१. यद्यपि १९०५ में, जो रूस और जापान के बीच युद्ध हुआ था उसमें भी, एक यूरोपीय देश ग्रस्त था फिर भी वह युद्ध यूरोपीय युद्ध नहीं माना जाता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक क्रान्ति हुई थी उसके परिणामों से भी पूरा-पूरा लाभ उठाया। तीव्र विद्युत् गति से सारे यूरोप में औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति हुई। प्रत्येक नई वैज्ञानिक खोज ने उद्योगों के क्षेत्र में नई प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। जहाँ पहले सारा काम हाथों से होता था, अब मशीनों से सारा काम होने लगा। मशीनों में भी जल्दी-जल्दी सुधार हुए। जहाँ भाप की मशीनें थीं अब उनका स्थान बिजली की शक्ति से चालित होने वाली मशीनों ने ले लिया था, जहाँ कोयले से चलने वाली मशीनों का प्रयोग होता था अब तेल से चलने वाली मशीनों ने उनका स्थान ले लिया था। जहाँ पहले घोड़े द्वारा यात्रा हुआ करती थी अब उसी घोड़े का स्थान १८४० के आस-पास रेलों ने लिया, १८८० के लगभग साइकिलों ने लिया और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उन्हीं घोड़ों का स्थान मोटरकारों ने ले लिया। मिट्टी के तेल और पैट्रोल की सहायता से हवाई जहाजों द्वारा यात्रा की सम्भावना पर भी प्रयोग किये जा रहे थे। जहाँ अब तक तारों द्वारा दूर-दूर तक समाचार भेजे जा रहे थे अब बेतार के तार (Wireless Telegraphy) द्वारा नये-नये चमत्कार देखने में आ रहे थे। उसी प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में, रसायनशास्त्र और विज्ञानों के क्षेत्रों में भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई।

जहाँ पहले छोटे पैमाने के कुटीर उद्योग थे अब उनके स्थान पर बड़े-बड़े उद्योग-केन्द्र खुलने लगे। यातायात के साधनों में सुधार और शीघ्र यात्रा की सम्भावना ने दूरी को कम कर दिया और समय को बढ़ा दिया। श्रेष्ठ यात्रा-साधनों द्वारा संसार के सभी भाग एक-दूसरे के निकटतर आ गये; संसार के अनेक ऐसे भू-प्रदेशों का पता चला जिनके बारे में कोई कुछ भी नहीं जानता था, विदेशी बाजारों का विकास हुआ और संसारव्यापी व्यापार में वृद्धि हुई। इन सबके परिणाम-स्वरूप राष्ट्रों के शासन केन्द्रीकृत होने लगे और राष्ट्रों में समेकन (Consolidation) की भावना की वृद्धि हुई और इस प्रकार संसार के राष्ट्र एक-दूसरे के निकट आ गये। पहले तो उद्योगों और व्यापारों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हुआ, उसके बाद वित्त और राष्ट्रीय पूंजी (Finance) का भी अन्तर्राष्ट्रीयकरण हुआ। सारे संसार में उधार प्रसार (Credit System) हुआ। संसार के देशों के लोग एक दूसरे के ऊपर आर्थिक और वित्तीय रूप से आश्रित से रहने लगे और प्रत्येक देश के निवासियों का धन दूसरे विदेशों में पूंजी के रूप में प्रयुक्त होने लगा; उसी प्रकार प्रत्येक देश अपने भोजन के लिए दूसरे देश पर आश्रित रहने लगा।

प्रत्येक देश में उद्योगीकरण के फलस्वरूप नये वर्गों का जन्म हुआ। अब प्रत्येक देश के समाज में नये-नये वर्ग सर उठाने लगे जो नये-नये अधिकार और नयी-नयी शक्तियाँ माँगने लगे। विशेष रूप से स्त्री समाज और श्रमिक वर्ग की ओर से नयी माँगें आने लगीं और इन दोनों वर्गों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी पूर्ण-रूपण बदल गया।

१८वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक के सुधारकों और विचारकों ने लगातार सिफारिश की है कि स्त्रियों को अधिक राजनीतिक सुविधाएँ दी जाएँ और उनको अधिक व्यावसायिक सुविधाएँ भी दी जाएँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि वे स्वतन्त्र जीवन का अनुभव कर सकें। इन सुधारकों और विचारकों में सत्रहवीं शताब्दी के लैबेडिस्ट (Labadists) थे, अन्ना वॉन शरमन (Anna von Schurman) थीं, गॉड्विन की स्त्री मेरी वुल्सटोनक्रेफ्ट (Mary Wollstonecraft) थीं, अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के क्रान्तिकारी सुधारक थे और १९वीं शताब्दी के मध्य के जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) आदि अन्य विचारक और सुधारक थे। १९वीं शताब्दी के अन्त में और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो स्त्रियों के आन्दोलन चले उनके कारण भी यही थे और उनके उद्देश्य भी यही थे कि जहाँ एक ओर उद्योगीकरण के विस्तार से स्त्रियों को अधिक सामाजिक सुरक्षा प्राप्त हुई, वहीं वे और अधिक सामाजिक सुरक्षा की माँग करने लगीं; जहाँ उनको शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं और कुछ आर्थिक स्वतन्त्रता मिली वहीं वे और अधिक शिक्षा-सुविधाएँ तथा और अधिक आर्थिक स्वतन्त्रता चाहने लगीं। युद्ध से पहले ही स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हो चुका था। अनेक नये स्कूल और कालिज खुले जिनमें स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध हुआ। धीरे-धीरे सभी व्यापार और व्यवसाय स्त्रियों के लिए भी मुक्त हो गए। सार्वजनिक और प्रतियोगी परीक्षाएँ स्त्रियों के लिए भी सुलभ हो गईं। अब स्त्रियों के लिए वाणिज्य भी खुल गये। विवाहिता स्त्रियों को आज्ञा मिल गई कि वे अपने स्वतन्त्र अधिकार से सम्पत्ति अर्जित कर सकती हैं। और भी अनेक ऐसी निर्योग्यताएँ समाप्त कर दी गईं जिनसे अब तक स्त्री-समाज पीड़ित था। और युद्ध के बाद तो अब संसार के प्रायः प्रत्येक सभ्य और आधुनिक देश में स्त्रियों को पुरुषों के समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो गए हैं।[1] जहाँ तक स्त्रियों को व्यावसायिक और आर्थिक स्वतन्त्रता देने का सम्बन्ध है या जहाँ तक स्त्रियों को राजनीतिक और वैधिक स्वतन्त्रता और समानता देने का सम्बन्ध है या जहाँ तक स्त्रियों के सामाजिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्त करने का सम्बन्ध है, निस्सन्देह एक सामान्य स्त्री के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है।

स्त्रियों की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर

उसी प्रकार श्रमिकों और कारीगरों की स्थिति में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। १८७१ से लेकर १९१४ तक के युग का श्रमिक आन्दोलन दूसरी विशेषता थी।

औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) से न तो विशेषाधिकार-युक्त वर्ग उत्पन्न हुआ, न इससे गरीबी आई और न इससे वर्ग-विभेदों को ही प्रश्रय मिला। किन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने निश्चित रूप से ऐसे साधन उत्पन्न कर दिये जिनसे कुछ विशेषाधिकार और शक्तियाँ एक वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो गईं और इस क्रान्ति द्वारा गरीबी बढ़ने के कारण भी उत्पन्न हो गए; और चूंकि औद्योगिक क्रान्ति के कारण जनसंख्या में अपार वृद्धि

(२) श्रमिकों का या श्रमिकों के पक्ष में आन्दोलन

---

१. किन्तु फ्रांस में स्त्रियों को मताधिकार नहीं है और निकट भूतकाल में नाजी जर्मनी में और फ़ासिस्ट इटली में स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति कुछ घटिया कर दी गई है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई इसलिए ग़रीबी भी वास्तविकता से अधिक दिखाई देने लगी। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप ही एक ओर पूंजीपति मालिक का उदय हुआ तथा दूसरी ओर फ़ैक्टरी का मज़दूर पैदा हुआ। एक ओर ऐसे मनुष्यों का वर्ग था जिसके हाथों में अपार सम्पत्ति थी, विशेषाधिकार थे, और व्यापक शक्तियाँ थीं जिनके आधार पर वह अन्य लोगों का श्रम खरीदता था; तथा दूसरी ओर मज़दूरों का ऐसा वर्ग था जो पैसे पर अपना श्रम बेचता था, जो अपनी जीविका और अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु अथवा पूंजी, लालसाओं, साहस और औद्योगिक प्रशिक्षण के अभाव के कारण दूसरों की आर्थिक अधीनता में रहने पर मजबूर था। इसके अतिरिक्त उद्योगों में मशीनों के प्रयोग के बाद औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक काल में फैक्टरी व्यवस्था में कुछ ऐसे असह्य दोष प्रवेश कर गये और श्रमिक वर्ग के जीवन पर उसकी जल्दबाज़ी, अनुभव-हीनता, अज्ञान, लापरवाही, खुदगर्ज़ी और अपार कष्टों का ऐसा दुष्प्रभाव पड़ा जो किसी भी व्यवस्था के संक्रांति काल में अपरिहार्य है। हज़ारों की संख्या में पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे केवल वेतन पर नौकर रखे जाते थे और उन्हें अस्वास्थ्यकर हालतों में कई-कई घण्टों तक प्रतिदिन काम करना पड़ता था जिसका नतीजा यह होता था कि श्रमिकों का स्वास्थ्य टूट जाता था, और वे भूखे और त्रस्त जीवन बिताते-बिताते मानो मिल-मालिक के क्रीत दास हो जाते थे। इसी दयनीय स्थिति से द्रवित होकर मजदूरों के कुछ हिमायती भी पैदा हो गए जिन्होंने वस्त्र मिल मज़दूरों की दयनीय स्थिति को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा। श्रमिकों को कुछ अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता था, जैसे नौकरी से अलग हो जाने का भय रहता था और कभी-कभी तो मिल-मालिक पुराने नौकरों और श्रमिकों को इस आधार पर निकाल देते थे कि उन्हें अधिक वेतन देना पड़ता था जबकि उनके स्थान पर नये श्रमिक सस्ती मजदूरी पर मिल सकते थे। सारी फ़ैक्टरी प्रणाली अत्यन्त दूषित थी, श्रमिक अपने-अपने व्यवसाय में अत्यन्त और अत्यधिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे और श्रमिकों को एक ही प्रकार के काम को बारम्बार करना पड़ता था जिससे उनका काम अरुचिपूर्ण हो जाता था।[1] तैयार किये हुए माल में श्रमिक को किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं थी और माल की बिक्री से जो लाभ होता था उसमें भी श्रमिक का हिस्सा नहीं था। निस्संदेह बहुत से ऐसे श्रमिक भी थे जो अपने अन्य साथियों से अधिक योग्य थे और वे अपनी श्रेष्ठ योग्यता के आधार पर स्वयं पूंजीपति या मिल-मालिक बन गये। किन्तु अधिकतर श्रमिक तो ऐसे ही थे जो असन्तुष्ट सर्वहारावर्ग या श्रमिक ही बने रहे।

जिस समय प्रायः सारे संसार के श्रमिकों ने पुकार कर माँग की कि उनकी स्थिति में सुधार होना चाहिए, उस समय श्रमिकों की यही स्थिति थी। श्रमिकों की यह अभिलाषा तीन प्रकार से व्यक्त हुई।

---

१. एडम स्मिथ (Adam Smith) की प्रसिद्ध पुस्तक "The Wealth of Nations" भाग चतुर्थ में पिन फैक्टरी का वर्णन देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) ट्रेड यूनियन-वाद का जन्म और उसकी वृद्धि

श्रमिक लोग अपनी स्थिति में सुधार चाहते थे अतः उन्होंने ट्रेड यूनियन या एक ही व्यवसाय में लगे हुए मजदूरों के समूह बनाये। मजदूरों के ऊपर जो अत्याचार हो रहे थे, उन अत्याचारों से त्राण प्राप्त करने का यह एक सुगम उपाय था। मजदूरों ने समझ लिया था कि एकता में शक्ति है और व्यक्तिगत प्रयत्न की अपेक्षा सामूहिक रूप से कार्य करना अधिक प्रभावशाली होगा। एक ही व्यवसाय में लगे हुए मजदूरों का संगठन बनाना आसान था। इस प्रकार एक ही व्यवसाय में लगे श्रमिकों के संगठन पहले से ही मौजूद थे और साथ ही एक ही व्यवसाय के ऐसे मिल-मालिकों के भी संगठन मौजूद थे जो यह समझते थे कि यूनियन या संगठन से उनका भी लाभ हो सकता है। १८वीं शताब्दी समाप्त होने से पूर्व तक ऐसे संगठनों को आदर की दृष्टि से देखा जाता था किन्तु जब उक्त संगठन मार-धाड़ और विध्वंस पर उतर आये तभी ट्रेड यूनियनों को इंग्लैण्ड में हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और १८२४ में तो इंग्लैण्ड में इनको कानूनन अवैध और अपराधी संस्थाएँ घोषित कर दिया गया। १८२५ के बाद से फिर ट्रेड यूनियनों को सहन किया जाने लगा। १८७१ में ग्लैडस्टन (Gladstone) ने इन्हें पुनः पूर्ण वैध मान्यता प्रदान कर दी। फ्रांस (France) में १७९१ के क्रान्तिकारी अधिनियम द्वारा ऐसे सारे गिल्ड (Guild) और निगम (Corporations) समाप्त कर दिये गये जो व्यवसायों और उद्योगों को नियमित करते थे। द्वितीय साम्राज्य के अन्तिम चरण में फ्रांस में भी ट्रेड यूनियनों के प्रति उदारता दिखाई जाने लगी थी। किन्तु, १८८४ से पूर्व जब तक वाल्डेक-रूसो (Waldeck-Rousseau) की सुधार योजना कार्यान्वित नहीं हुई, फ्रांस में भी ट्रेड यूनियनों को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं हुई। जर्मनी (Germany) में भी यद्यपि बिस्मार्क ने १८७८ में ट्रेड यूनियनों को अवैध घोषित कर दिया था, फिर भी उक्त विधि पर कठोरता से आचरण नहीं किया गया और अन्य देशों के समान ही जर्मनी में भी ट्रेड यूनियन चलते रहे। पूरे यूरोप में ट्रेड यूनियन बन गए, बढ़ते गए और सफल होते गये। कृषकों ने अपनी यूनियनों को औद्योगिक निगमों (Industrial Bodies) के आधार पर बनाया क्योंकि कृषकों के व्यवसाय दूर-दूर और विभिन्न प्रकार के होते हैं और उनका संगठन करना कठिन होता है। आज शायद ही कोई ऐसा उद्योग या व्यवसाय होगा जिसमें उसकी यूनियन न हो। श्रमिकों के लिए यह नितान्त आवश्यक नहीं है और न वे वैधिक रूप से बाध्य हैं कि किसी न किसी ट्रेड यूनियन की सदस्यता अर्जित करें; किन्तु तथ्य यह है कि प्रत्येक श्रमिक की यह हार्दिक इच्छा होती है कि वह किसी-न-किसी यूनियन का सदस्य बने और वास्तव में किसी भी श्रमिक के लिए यूनियन से बाहर रहना अत्यन्त कठिन है। किसी उद्योग या व्यवसाय में लगे हुए प्रत्येक श्रमिक के ऊपर सब प्रकार का दबाव डाला जाता है कि वह अपनी व्यावसायिक यूनियन का सदस्य बने और वेतन तथा काम के घण्टों के सम्बन्ध में यूनियन के नियमों का पालन करे। स्पष्ट है कि यदि किसी व्यवसाय में लगे अधिकतर श्रमिक ट्रेड यूनियन के साथ सहयोग नहीं करेंगे तो उक्त यूनियन का कोई प्रयोजन ही न रह जायेगा। ट्रेड यूनियन के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपार धनराशि है जो सदस्यों से चन्दे के रूप में वसूल की जाती है और जो सरकारों के पास जमा रहती है। इस धनराशि से ट्रेड यूनियनें श्रमिकों का और देश का उपकार कर सकती हैं, वे संसद् द्वारा उपयोगी राजनीतिक कार्यवाही कर सकती हैं और स्थानीय शासनिक निकायों द्वारा हितकारी कार्य कर सकती हैं। वे इसी संचित धनराशि द्वारा हड़तालों का भी आयोजन कर सकती हैं। अपने मालिकों के ऊपर दबाव डालने के लिए ट्रेड यूनियन के पास सर्वाधिक शक्तिशाली हथियार है 'हड़ताल कर देना।' एक यूनियन भी हड़ताल करा सकती है और बहुत-सी यूनियनें भी मिलकर उस एक यूनियन की सहानुभूति में हड़ताल कर सकती हैं। कई यूनियनों की सम्मिलित हड़ताल बहुत प्रभावशाली हो जाती है।[1] हड़ताल के जवाब में मिल-मालिक के पास मिल को बन्द कर देने का हथियार रहता है।

प्रारम्भ में ट्रेड यूनियनें इसीलिए बनी थीं कि मालिकों और पूँजीपतियों के विरुद्ध श्रमिक लड़ सकें; किन्तु अब ट्रेड यूनियनों का श्रमिकों के ऊपर भी इतना ही एकाधिकार हो गया है—क्योंकि सभी श्रमिकों को एक विशेष प्रकार के नियमों के अनुसार चलना पड़ता है और सबको एक सी कार्यवाही करनी पड़ती है—और ट्रेड यूनियनों के हाथों में श्रमिकों के ऊपर इतनी शक्ति आ गई है कि कभी-कभी तो वे श्रमिकों के ऊपर अत्याचार सा करती हुई प्रतीत होती हैं। श्रमिकों की काम करने की गति और उनके वेतन पर ट्रेड यूनियनों की कठोर निगाह रहती है, और उनको न तो अधिक समय काम करने दिया जाता है और न तेजी से काम करने दिया जाता है; और यद्यपि कहा तो यह जाता है कि ट्रेड यूनियन लोकतन्त्रात्मक निकाय हैं किन्तु तथ्य यह है कि ट्रेड यूनियनों में बहुमत की इच्छा का कठोर दमन किया जाता है। इसके विपरीत इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि ट्रेड यूनियनों द्वारा श्रमिकों को भारी लाभ हुए हैं; श्रमिकों के काम करने के घण्टों में बारंबार कमी हुई है और उनके वेतनों में वृद्धि हुई है; फलस्वरूप अनेक उद्योगों में तो श्रमिकों का जीवन-स्तर इतना उच्च हो गया है कि शायद उन श्रमिकों के पिताओं ने कभी स्वप्न में भी न सोचा होगा।

जहाँ श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार हुआ है, इस सुधार में कुछ अन्य तत्त्वों

---

१. आम हड़ताल या सार्वजनिक हड़ताल (General Strike) उस हड़ताल को कहते हैं जिसमें सभी श्रमिक एक साथ काम छोड़ देते हैं। इस प्रकार की आम हड़तालें स्वीडन (Sweden) में १९०९ में, इटली (Italy) में १९१४ में, और ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain) में १९२६ में और अन्य देशों में अन्य समयों पर होती रही हैं। आम हड़ताल (General Strike) का उद्देश्य सफल नहीं हुआ क्योंकि लोगों में ट्रेड-यूनियनों (Trade Unions) के विरुद्ध आम प्रतिक्रिया हुई। कारण यह था कि हड़तालियों ने सारे देश में अव्यवस्था उत्पन्न कर दी थी और राष्ट्र की सुख-सुविधा के विरुद्ध आम जिहाद बोल दिया था। साम्यवादी लोगों की इच्छा रहती है कि श्रमिकों का मिलों पर अधिकार बना रहे इसलिए वे श्रमिकों को सलाह देते हैं कि काम मत करो किन्तु मिलों या काम करने के स्थानों को छोड़कर मत जाओ (Stay in Strike)। 'काम छोड़ो हड़ताल' द्वारा श्रमिक लोग अपने काम करने के स्थानों पर सुस्त बने बैठे रहते हैं किन्तु काम नहीं करते और मिलों के अन्दर ही बने रहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी योग दिया है, विशेष रूप से विभिन्न राष्ट्रीय, म्युनिसिपल और प्राइवेट मिल-मालिकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप भी श्रमिकों की स्थिति

(ख) ऊपर से सुधार

में सुधार हुआ है। इस प्रकार के सुधारों का प्रयत्न राज्यों की ओर से भी हुआ, म्यूनिसिपैलिटियों की ओर से भी हुआ है और स्वयं मिल-मालिकों की ओर से भी हुआ है। इन सुधारों की प्रेरणा कुछ तो श्रमिकों के तदर्थ आन्दोलन के कारण हुई और कुछ सामान्य कल्याणकारी भावना और विश्व-मानव-प्रेम के कारण हुई। अब तक जितने भी फैक्टरी अधिनियम बने हैं उनका मुख्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उद्देश्य यह रहा है कि गरीब लोगों और गरीब श्रमिकों का कल्याण किया जाय। १९ वीं शताब्दी में केवल इंग्लैण्ड में चालीस से अधिक फैक्टरी अधिनियम बने जिनके द्वारा काम करने के घण्टे या न्यूनतम श्रमिक आयु निश्चित हुई; अथवा सुरक्षित अवस्थाओं में काम या श्रमिकों के कार्यालयों की सफाई आदि की व्यवस्था की गई। फैक्टरी अधिनियमों द्वारा फैक्टरियों के सरकारी मुआइनों की व्यवस्था हुई, न्यूनतम वेतन दरें निश्चित हुईं, श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य-पूर्ण निवास स्थानों की व्यवस्था की गई, उनके आस-पास की सफाई की व्यवस्था की गई और सार्वजनिक स्वास्थ्य नियम बने ; इसके अतिरिक्त श्रमिकों के बालक-बालिकाओं की मुफ्त शिक्षा तथा सभी के लिए मुफ्त डाक्टरी और दवा आदि की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त धीरे-धीरे स्थानीय शासन और केन्द्रीय शासन का लोकतन्त्रीकरण हुआ; श्रमिकों के लिए हानिपूर्ति अधिनियम बने; बीमारी और बेरोजगारी के विरुद्ध राष्ट्रीय बीमा योजना का विकास हुआ, वृद्धावस्था के लिए पेंशन की व्यवस्था हुई और म्युनिसिपैलिटियों ने भी इस दिशा में स्तुत्य कार्य किये। अनेक ऐसे भी पूंजीपति और मिल-मालिक मैदान में आ गये जो मानव-जाति से प्रेम करने वाले और दयालु लोग थे, जिन्होंने आदर्श फैक्टरियाँ खोलीं, जिनमें वेतन के साथ श्रमिकों को मिल के लाभ का भी हिस्सा दिया और जिनमें श्रमिकों के लिए स्वास्थ्यकर निवास-स्थान बनवाये, श्रमिकों के मनोविज्ञान को समझने का प्रयत्न किया और सारतः श्रमिकों को हर सम्भव उपाय द्वारा सन्तुष्ट और सुखी बनाने का प्रयत्न किया गया।

मजदूर वर्ग के आन्दोलन का तीसरा रूप है—समाजवाद। कुछ लोगों का तो कथन है कि श्रमिक वर्ग की दशा सुधारने की दशा में जिन उपर्युक्त सुधारों का

(ग) समाजवाद

सूत्रपात किया गया है, वे केवल दिखावटी और आँखों में धूल झोंकने वाले सुधार हैं और इन सुधारों से औद्योगिक दोषों का सुधार नहीं होगा। उपर्युक्त सुधार मानो नकली उपहार हैं जो वास्तव में श्रमिकों के साथ धोखा करते हैं। इस प्रकार के विचारों के स्त्री-पुरुष समाजवाद से प्रेरणा लेते हैं। समाजवाद (Socialism) अनेकार्थक शब्द है जिसमें परोपकारी दृष्टिकोण भी आता है और विप्लववादी भावना भी आती है; इसमें संसार के अभावग्रस्त (Have Nots) लोगों की विद्रोह-भावना का भी पुट है और काल्पनिक एवं अव्यवहार्य आर्थिक योजना का भी समावेश है और वह स्वस्थ आर्थिक नियोजन का भी परिचायक है। कहा गया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि समाजवाद भी उतने ही प्रकार का है जितने प्रकार के कि समाजवादी हैं।[१] किन्तु विशेष रूप से तीन मुख्य सिद्धान्त हैं जिन पर सभी समाजवादी सहमत हैं। प्रथमतः, समाजवाद आधुनिक उद्योगप्रधान सभ्यता अर्थात् प्राइवेट पूँजीवाद की आलोचना है। यह आर्थिक व्यक्तिवाद के विरुद्ध सामाजिक जिहाद है। द्वितीयतः, समाजवाद श्रमिक वर्ग और रंकस मजदूरों की आवाज है। कहीं तो समाजवाद व्यवसायिक वर्ग का पक्ष लेता है, कहीं यह उन पूँजीपतियों या मिल-मालिकों या धनिकों का विरोध करता है जो केवल रुपये के ब्याज से अपना पेट पालते हैं। तृतीयतः समाजवाद धन के वितरण के सम्बन्ध में न्याय चाहता है। समाजवादियों का कथन है कि सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक पूँजीपति अपने प्राप्त धन को उगल दे और उत्पादन के सब साधनों पर समस्त जाति या समाज का स्वामित्व मान लिया जाय—संक्षेप में भूमि, पूँजी, सम्पत्ति और व्यवसाय तथा कारखानों पर समस्त समाज का अधिकार स्थापित हो जाय।

समाजवाद के मुख्य भेद इन दो प्रश्नों पर आधारित हैं:—उत्पादन के साधनों पर किस प्रकार समाज का स्वामित्व हो, और सम्पत्ति तथा व्यवसायों पर मिश्रित व्यक्तिगत अधिकार मान लिया जाय। द्वितीयतः, व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर सामूहिक स्वामित्व कब और किस प्रकार स्थापित किया जाय। सब समाजवादी इस विषय में तो एकमत हैं कि पूँजीवाद निन्द्य है तथा मजदूरों के हितों की रक्षा होनी चाहिए और उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व होना चाहिए, किन्तु इन उद्देश्यों की प्राप्ति की रीतियों में उनका मतभेद है। वे इस सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं कि राष्ट्रीय सम्पत्ति पर किस प्रकार का सामूहिक स्वामित्व स्थापित होना चाहिए। मध्यमार्गी समाजवादी, ब्रिटिश श्रमिक दल तथा फ्रांस और जर्मनी के उदार समाजवादी चाहते हैं कि सामूहिक समाजवाद या समूहवाद (Collectivism) का मार्ग लिया जाय जिसका यह अर्थ लिया जाता है कि उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का स्वामित्व हो। इसके विपरीत दूसरा वर्ग श्रमिक संघवादियों (Syndicalists) का है। इनकी संख्या इटली और फ्रांस में अत्यधिक है और अमरीका में इन्हीं श्रमिक संघवादियों को I. W. W. (Industrial Workers of the World) या संसार के औद्योगिक श्रमिक वर्ग कहते हैं। श्रमिक संघवादियों (Syndicalists) का कहना है कि समस्त उत्पादन के साधनों पर ट्रेड यूनियनों या संगठित श्रमिकों का स्वामित्व होना चाहिए और श्रमिकों का संगठन उद्योगों अथवा व्यवसायों के आधार पर किया जा सकता है।[२] इस प्रकार जहाँ समूहवाद (Collectivism) के अन्तर्गत रेलों का प्रबन्ध और स्वामित्व राज्य के हाथों में होगा, श्रमिक संघवादियों (Syndicalists)

---

१. कहा जाता है कि इस समय समाजवाद की २६० से भी अधिक परिभाषाएँ प्रचलित हैं।

२. आजकल समाजवादियों के दो वर्ग समझे जाते हैं—एक ओर साम्यवादी (Communists) है तथा दूसरी ओर अन्य गैर-साम्यवादी (Non-Communists) हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार रेलों का स्वामित्व और प्रबन्ध रेलों के मजदूरों के हाथ में होगा। तीसरी मान्यता अराजकतावादियों अथवा अराजकतावादी साम्यवादियों (Anarchist Communists) की है—यद्यपि इनकी संख्या और इनका प्रभाव नगण्य है—जो चाहते हैं कि उत्पादन के समस्त साधनों पर सभी का स्वामित्व होना चाहिए; किन्तु उक्त अराजकतावादी साम्यवादी यह नहीं बताते कि उत्पादन के साधनों पर सभी का अधिकार किस प्रकार सम्भव हो सकता है। उक्त विचारकों में बाकुनिन (Bakunin) और क्रोपौट्किन (Kropotkin) मुख्य हैं जो चाहते थे कि न तो मजदूरी प्रथा या वेतन प्रथा (Wage System) रहे और न किसी को काम करने के लिए बाध्य किया जा सके। "ऐसे समाज में न तो किसी को काम करने के लिए बाध्य किया जाएगा, न किसी प्रकार के नियम होंगे, न दमनकारी सरकार होगी। फिर भी समाज काम करता रहेगा, किन्तु काम करने की प्रेरणा सभी की सम्मिलित सहमति के आधार पर होगी और किसी के ऊपर किसी का दबाव नहीं होगा, यहाँ तक कि अल्पमत वर्ग को भी किसी प्रकार किसी काम के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा"[1] उत्पादन के समस्त फलों पर समस्त जनसंख्या का बराबर-बराबर अधिकार होगा।

इसी प्रकार पूर्ण समाजवाद प्राप्त करने के उपायों में भी मतभेद है। मध्यमार्गी समाजवादी (Moderates) चाहते हैं कि संसदीय शासन के संवैधानिक उपायों द्वारा और कभी-कभी हड़तालों का सहारा लेकर समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। श्रमिक संघवादी (Syndicalists) चाहते हैं कि वर्ग युद्ध (Class War) हो जिसका संचालन उद्योग करें और उस युद्ध के हथियार हड़ताल, बायकाट और ट्रेड यूनियन का लेबल (Label)[२] और विध्वंस (Sabotage) आदि हों। इस सम्बन्ध में तीसरे मार्ग-दर्शक रूसी साम्यवादी और उनके मित्र हैं जो चाहते हैं कि पूंजीवादी राज्य को क्रान्ति द्वारा उलट दिया जाय।

दो अन्य अन्तर भी ध्यान में रखने चाहिए। जहाँ मध्यमार्गी समाजवादी (Moderates) अपने-अपने राष्ट्रों के प्रति सच्ची निष्ठा रखते हैं और अपने कार्यक्रम में प्रायः आर्थिक प्रश्नों को ही लेते हैं, उग्र समाजवादी या साम्यवादी (Extremists) संसारव्यापी क्रान्ति चाहते हैं और वे ऐसी बोर्जुआवादी संस्थाओं के समूल नाश की भी सिफारिश करते हैं जैसे चर्च, विवाह आदि-आदि।

आधुनिक समाजवादी विचारकों में कार्ल मार्क्स (Karl Marx) का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। कार्ल मार्क्स से पहले भी समाजवादी विचारक हो चुके थे, जैसे इंग्लैण्ड में टामस हॉजस्किन (Thomas Hodgskin) (१७८७-१८६९), विलियम थाम्पसन (William Thompson) (१७८५-१८३३), और सबसे प्रसिद्ध समाजवादी रॉबर्ट ओवेन (Robert Owen) (१७७१-१८५८), और फ्रांस में फोरियर (Fourier) (१७७२-१८३७), सेंट साइमन (Saint Simon) (१७६०-

---

1. See Bertrand Russell, *Roads to Freedom*, pp. 65 and 39.

२. यह दिखाने के लिए कि सारा कार्य ट्रेड यूनियनों के नियन्त्रण में चल रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८२५) और प्रूधों (Proudhon) (१८०९-१८६५)। १७९३ और १८४८ में श्रमजीवी वर्ग ने अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने का फैसला किया और इन वर्षों में फ्रांस में प्रत्यक्ष समाजवादी प्रयोग हुए। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) से पूर्व के समाजवादियों की पीठ पर स्थायी राजनीतिक दल का समर्थन नहीं था किन्तु कार्ल मार्क्स और एञ्जिल्स (Karl Marx and Engels) के सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप समाजवादी सिद्धान्त-संहिता का निर्माण हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ।

कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३)

कार्ल मार्क्स का जन्म १८१८ में रीनिश प्रशा (Rhenish Prussia) में ट्रायर (Trier) नामक स्थान में हुआ था। उसका पिता यहूदी था किन्तु ईसाई धर्म में दीक्षित था और वह प्रशा की राजकीय सेवा में वैधिक कार्यालय में काम करता था। उसका परिवार समृद्ध और प्रबुद्ध था। मार्क्स ने बौन (Bonn) और बर्लिन के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। इतिहास, दर्शन, विधिशास्त्र और अर्थशास्त्र आदि विषयों में उसकी विशेष रुचि थी। उस समय के अन्य युवकों के समान मार्क्स भी अपने समय के प्रसिद्ध दार्शनिक हीगेल (Hegel) से बहुत प्रभावित था। हीगेल से ही उसने ग्रहण किया था कि सम्पूर्ण इतिहास वर्ग-संघर्ष का ही एक क्रमिक लेखा है, और वह धन उत्पादन की परिवर्तित रीतियों के कारण आर्थिक परिवर्तनों का आवश्यक परिणाम है; अथवा भविष्य का निर्णय भूतकाल करता है तथा भविष्य कुछ ऐसी शक्तियों और प्रवृत्तियों का आवश्यक परिणाम है जिसके कार्य में किसी प्रकार का विरोध नहीं हो सकता। शीघ्र ही कार्ल मार्क्स की नव-जर्मनी की लोकतन्त्रात्मक महत्त्वाकांक्षाओं और क्रान्तिकारी एवं प्रजातन्त्रात्मक आन्दोलनों के प्रति गहरी सहानुभूति हो गई और १८४२ में उसने एक क्रान्तिकारी पत्रिका का संपादन प्रारम्भ किया जिसे १८४३ में ही प्रशा की सरकार ने बन्द कर दिया। इसके बाद वह पेरिस चला गया जहाँ उसका सम्पर्क फ्रेंच समाजवादियों से हुआ। पेरिस में ही उसकी भेंट फ्रेडेरिक एंजिल्स (Friedrich Engels) (१८२०-१८९५) से हुई जो मार्क्स का जीवन-पर्यन्त मित्र और सहयोगी बना रहा। एञ्जिल्स (Engels) एक धनी जर्मन सूत व्यापारी का पुत्र था। वह कुछ समय के लिए अपने व्यवसाय के सिलसिले में मैनचेस्टर (Manchester) में भी रह चुका था जहाँ उसका सम्पर्क अंग्रेजी समाजवादियों के सिद्धान्तों से हुआ। १८४५ में मार्क्स को पेरिस से निर्वासित कर दिया गया और तब वह अपनी सहधर्मिणी के साथ ब्रुसेल्स (Brussels) में रहने लगा जहाँ एञ्जिल्स भी उसी के साथ रहने लगा और इस प्रकार ब्रूसेल्स से ही मार्क्स समाजवाद का प्रचार करता रहा। अब समाजवादियों में उसकी प्रतिष्ठा स्थापित हो चुकी थी और १८४७ में उससे प्रार्थना की गई कि वह पेरिस में होने वाली साम्यवादियों की महासभा के लिए घोषणा पत्र (Communist Manifasto) तैयार करे। इस प्रकार १८४८ में प्रसिद्ध साम्यवादी घोषणा-पत्र (Communist Manifasto) प्रकाशित हुआ और वास्तव में १८४८ में जिस दिन साम्यवादी घोषणा-पत्र प्रकाशित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ उसी दिन आधुनिक समाजवाद के जन्म की घोषणा हुई। उसी वर्ष जब जर्मनी में विद्रोह हो रहे थे, कार्ल मार्क्स जर्मनी आया और कोलोन (Cologne) नामक स्थान पर गया जहाँ उसने एक समाजवादी अखबार का सम्पादन प्रारम्भ किया किन्तु जर्मनी के विद्रोहों के असफल हो जाने पर अखबार बन्द कर दिया गया। इसके बाद उसे लन्दन (London) में शरण लेनी पड़ी, विशेषकर वह अधिकतर ब्रिटिश म्यूज़ियम (British Museum) में रहा जहाँ रहकर उसने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष प्रसिद्ध पुस्तक डास कैपीटल (*Das Kapital*)[1] लिखने में बिताये। डास कैपीटल अर्थशास्त्र की पुस्तक है और यह भी रूसो (Rousseau) की प्रसिद्ध पुस्तक ली कान्ट्रैट सोशल (*Le Contrat Social*) के समान ही नये विश्वास की प्रतीक और नये धर्म की शिक्षा बन गई। इस प्रसिद्ध पुस्तक ने विचारों के संसार में और राजनीति में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। एक अजीब-सी समानता है कि एक ओर डास कैपीटल (*Das Kapital*) के प्रकाशित होने के २३ वर्ष बाद रूस में क्रान्ति हुई और निस्सन्देह रूसी क्रान्ति पर डास कैपीटल के विचारों का प्रभाव पड़ा; दूसरी ओर ली कान्ट्रैट सोशल (*Le Contrat Social*) के प्रकाशित होने के २७ वर्ष बाद फ्रेंच राज्य में क्रान्ति हुई थी।

मार्क्स का साम्यवाद मुख्यत: जर्मनी के हीगेलिनिज्म (Hegelianism) और फ्रांस के समाजवाद से उत्पन्न हुआ। उसका मौलिक सिद्धान्त ऐतिहासिक भौतिकवाद या इतिहास की आर्थिक व्याख्या (Historical process) है। इतिहास की आर्थिक व्याख्या के सम्बन्ध में उसने हीगेल (Hegel) का अनुकरण किया और बताया कि मानव-जीवन का मौलिक उद्वेग आर्थिक है और उसे विश्वास है कि इतिहास का मार्ग सदैव अबाध गति से और अपरिवर्त्तनीय रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) के अनुसार चलता है। किन्तु यहाँ मार्क्स और हीगेल के विचारों में कुछ अन्तर भी है। जहाँ हीगेल (Hegel) कहता है कि इतिहास के आर्थिक विकास में विश्व-भावना (Universal Spirit) की ज्योति का संचार हो रहा है, मार्क्स केवल आर्थिक शक्तियों को ही महत्त्व देता है और वह यह मानता है कि इतिहास का मार्ग केवल आर्थिक रूप से ही शासित होता है। मार्क्स के अनुयायी समाजवादी कहते हैं कि आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ही मनुष्य क्रियाशील बनता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही वह चेतन या अचेतन रूप से कार्य करता है, निर्णय करता है, संस्थाएँ और समाज बनाता है, आदि-आदि। उनका कथन है कि धर्म, कलाएँ, विविध दर्शनशास्त्र केवल सैद्धान्तिक आवरण मात्र (Ideological Veils) हैं, जिन का जन्म आर्थिक तत्त्वों (Economic Factors) से होता है। और वे यह भी मानते हैं कि इतिहास में जब-जब संकट उपस्थित हुए, वे वास्तविक रूप से आर्थिक संकटों के ही परिणाम थे।

१. डास कैपिटल (*Das Kapital*) का प्रथम भाग १८६७ में प्रकाशित हुआ। प्रथम भाग ही इस प्रसिद्ध ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण अंश है। इस ग्रन्थ के शेष दो भाग कार्ल मार्क्स (Karl Marx) की मृत्यु के पश्चात् १८९४ में प्रकाशित हुए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः, मार्क्स ने इस सम्बन्ध में भी हीगेल (Hegel) का ही अनुकरण किया और माना कि ऐतिहासिक क्रम द्वन्द्वात्मक है अर्थात् इतिहास वर्ग-संघर्ष का लेखा-मात्र है। मार्क्स (Marx) ने स्वीकार किया कि इतिहास का निर्माण परस्पर-विरोधी आर्थिक वर्गों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं और उनके संघर्षों की कहानी के आधार पर होता है। मार्क्स कहता था कि इतिहास में और रखा ही क्या है ? वह तो एक सतत वर्ग-संघर्ष की कहानी मात्र है। प्राचीन काल से मध्य युग तक और मध्य युग से आधुनिक काल तक सदैव शक्तिशाली अन्यायियों और अत्याचारियों का विनाश होता आया है और त्रस्त एवं अभावग्रस्त गरीबों की मुक्ति होती आई है। पिछले इतिहास से ही उसने भविष्य के इतिहास की भविष्यवाणी कर दी और कह दिया कि भविष्य में भी विभिन्न आर्थिक वर्गों में संघर्ष होगा। मार्क्स ने अपने जीवन-काल को पूँजी-पतियों और श्रमिक वर्ग के बीच अन्तिम और निर्णायक संघर्ष[1] के लिए उपयुक्त समय समझा था।

अतः, मार्क्स (Marx) ने बताया कि साम्यवादियों का प्रथम कार्य यह होना चाहिए कि वे वर्ग-संघर्ष को प्रोत्साहित करें तथा श्रमजीवी वर्ग (Proletariat) में वर्ग-चेतना भरें; तथा श्रम-जीवी वर्ग समझे कि पूँजीपति उसका शत्रु है और इस प्रकार श्रमजीवियों को वर्ग-संघर्ष और अन्तिम विजय के लिए उत्साहित करें। इस प्रकार मार्क्स ने खुलकर बताया कि मार्क्सवाद के अनुयायी विद्रोह और क्रान्ति करें। साम्यवादी अपने विचारों को स्पष्टतया प्रकट करते हैं और उनको छिपाना या चिकनी-चुपड़ी भाषा में व्यक्त करना नापसन्द करते हैं। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि साम्यवाद की सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्रचलित शासनों को उलट दिया जाय और प्रचलित समाज-व्यवस्था को आमूल नष्ट कर दिया जाय। वे चाहते हैं कि साम्यवादी क्रान्ति की आँधी के झोंके में शासक-वर्ग लड़खड़ाकर गिर जाए।

१८४८ के साम्यवादी घोषणा-पत्र में की गई यह घोषणा तभी से मार्क्सीय साम्यवाद की अविच्छिन्न चुनौती रही है।

अब हम मार्क्सवाद के आर्थिक पक्ष पर विचार कर लें। मार्क्स के आर्थिक विचार रिकार्डो (Ricardo) और परम्परागत अंग्रेज अर्थशास्त्रियों के 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' (Labour Theory of Value) के ऊपर आधारित हैं। इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि किसी भी पदार्थ का आर्थिक मूल्य उस श्रम के ऊपर निर्भर रहता है जो उसके निर्माण में लगता है।

मार्क्स के मूल्य के श्रम सिद्धान्त (Labour Theory of Value) और इतिहास की भौतिक व्याख्या के सिद्धान्त (Materialistic Conception of History) के ऊपर कई आक्षेप किये गये हैं। आजकल मार्क्सवाद की मुख्य आलोचना उसके थोथे आदर्शवाद के कारण की जाती है। यह बात समझ में नहीं आती कि सर्वहारा

---

१. मार्क्स की यह तर्क-पद्धति कुछ विलक्षण-सी थी कि अन्तिम विजय के साथ ही ऐतिहासिक प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग की विजय होने पर इतिहास का प्रवाह कैसे रुक जायेगा। मार्क्सवाद का 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' का सिद्धान्त भी त्रुटिपूर्ण है। मार्क्सवाद का मूल सिद्धान्त ही यह है कि पूंजीवाद और श्रमिकवाद एक-दूसरे के विरोधी हैं जिनके संघर्ष से ही इतिहास-चक्र आगे घूमता है। लेकिन, इतिहास प्रकट करता है कि आधुनिक औद्योगिक विकास में पूंजीवाद और श्रमिकवाद एक-दूसरे के जानी दुश्मन नहीं हैं, बल्कि काफी हद तक एक-दूसरे के पूरक हैं। उनका विरोध शमन करने में राज्य के नियन्त्रण, ट्रेड यूनियनों की कार्यवाही, मानवीय दया-भावना, समान जीवन-स्तर की वृद्धि और पूंजीगत विनियोगों के सहित वेतनभोगी वर्ग के विकास ने काफी योग दिया है। इस तरह एक अन्योन्याश्रित श्रम-पूंजीवादी समाज का अवतरण हो रहा है। इस समाज में वेतन-भोगियों, अंशधारियों, मैनेजरों और नियोजकों का एक जटिल-सा आर्थिक और वित्तीय संगठन पैदा हो गया है। यही कारण है कि मार्क्स तक इंग्लैण्ड में सर्वहारा क्रान्ति की सफलता में सन्देह करता था। इसका कारण यह है कि इंग्लैण्ड की उद्योग-प्रधान सभ्यता का विकास नरम, आर्थिक और राजनीतिक विनियमन के फलस्वरूप हुआ है। यद्यपि समय-समय पर आर्थिक आन्दोलन होते रहे हैं, फिर भी आज का मजदूर मार्क्स की धारणाओं के अनुसार क्रान्तिकारी नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि क्रान्तिकारी मार्क्सवाद ने केवल रूस में ही कुछ सफलता प्राप्त की है और रूस औद्योगिक दृष्टि से अविकसित ग्राम-प्रधान देश है।

मार्क्स के समाजवाद का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय था। "साम्यवादियों की इस कारण भी निन्दा की जाती है कि वे देशों को और राष्ट्रीयताओं को मिटाना चाहते हैं। उनका कथन है कि श्रमिकों का कोई देश नहीं है। जब साम्यवादियों का न तो कोई देश है, न कोई उनकी राष्ट्रीयता है तो फिर उनसे क्या आशा की जा सकती है?" सारे संसार के श्रमिक वर्ग स्व-हितों के अनुसार एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। सारे संसार के श्रमिकों में वर्ग-चेतना के प्रसार के उद्देश्य से मार्क्स (Marx) ने १८६४ में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग संघ (International Working Men's Association) की स्थापना की। इस मजदूर-वर्ग संघ में यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। स्वयं मार्क्स ने इस संघ के नियम बनाए और इसके कार्यक्रम को भी उसने निश्चित किया। इस मजदूर वर्ग संघ की कई कांग्रेसें या सम्मेलन यूरोप के विभिन्न नगरों में हुए। सम्भव है कि १८७० के पेरिस कम्यून (Paris Commune) के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग संघ का हाथ रहा हो।[1] १८६८ से मार्क्सवादी समाजवादियों में लैटिन देशों के अराजकतावादी साथी (Anarchists) भी आकर मिल गए। इन अराजकतावादियों का नेता बाकुनिन (Bakunin) था किन्तु शीघ्र ही मार्क्स और बाकुनिन में झगड़ा हो गया और एक ने दूसरे पर दोषारोपण करना प्रारम्भ किया। इस संघर्ष का मुख्य कारण यह था कि लैटिन देशों में और जर्मनी में अनबन थी और यह विद्वेष फ्रांस और जर्मनी के

कई अंतर्राष्ट्रीय या इन्टरनेशनल्स

१. किन्तु इसमें सन्देह है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध के समय चरम सीमा तक पहुँच गया था क्योंकि बाकुनिन की सहानुभूति फ्रांस के साथ थी किन्तु मार्क्स स्वभावतः जर्मनी की ओर था।[1] १८७२ में मार्क्स ने अराजकतावादियों को निकाल दिया। किन्तु बाहर के आघातों के फलस्वरूप और आन्तरिक विरोधों के कारण प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय (First International) की शक्ति क्षीण हो गई और इसका अन्त हो गया। १८७४ में इसकी अन्तिम काँग्रेस जेनेवा (Geneva) में हुई थी।

१८८९ में मार्क्स (Marx) की मृत्यु के पश्चात् द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय (Second International) स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इस अन्तर्राष्ट्रीय के प्रारम्भिक सम्मेलनों में सम्बद्ध दलों की नीति और उपायों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय हुआ किन्तु बाद के सम्मेलनों में युद्ध और शान्ति के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ क्योंकि यूरोपीय संघर्ष सन्निकट था। यह निश्चित हुआ कि विभिन्न देशों और राष्ट्रों में इस बात का प्रचार किया जाय कि शान्ति रखना आवश्यक है; किन्तु यह भी स्पष्टतया मान लिया गया कि यदि युद्ध छिड़ ही गया तो प्रत्येक देश का समाजवादी दल अपने देश की सरकार का पक्ष लेगा। कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ते हुए यही हुआ और विश्व-युद्ध के छिड़ जाने पर द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय भी पानी के बुलबुले की तरह तिरोहित हो गया।

१९१९ में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय की स्थापना हुई। इस अन्तर्राष्ट्रीय का संगठन रूसी साम्यवादियों ने किया था और इसका सदर मुकाम मास्को (Moscow) में रखा गया। यह निश्चित रूप से क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीय है और इस प्रकार यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय के अधिक समान है किन्तु द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय के समान बिलकुल नहीं है। "इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शीघ्रातिशीघ्र संसारव्यापी क्रान्ति होनी चाहिए।"

चूँकि मार्क्सवाद कठोर और क्रान्तिकारी है इसलिए मार्क्सवाद को इंग्लैण्ड में विशेष सफलता नहीं मिली, क्योंकि इंग्लैण्ड का समाजवाद उसकी अन्य संस्थाओं की तरह धीरे-धीरे व्यावहारिक रीति के अनुसार विकसित हुआ है। फ्रांस में मार्क्सवाद का विरोध श्रमिक संघवादी (Syndicalists) करते हैं यद्यपि मार्क्सवादी और श्रमिक संघवादी दोनों ही वर्ग-संघर्ष में विश्वास करते हैं। इनके विरोध का कारण यह है कि मार्क्सवादी चाहते हैं कि कठोर केन्द्रीकरण द्वारा सर्वहारा वर्ग अपना अधिनायकत्व स्थापित करेगा किन्तु श्रमिक संघवादी (Syndicalists) कहते हैं कि इससे तो एक निर्दयी सत्ता का स्थान दूसरी निर्दयी सत्ता ले लेगी। जर्मनी में मार्क्सवादी समाजवाद कुछ समय तक समाजवादी जनतन्त्रवादी दल (Social Democratic Party) का मुख्य प्रोग्राम रहा। इस दल की स्थापना फर्डीनेण्ड लैसेल (Ferdinand Lasalle) ने १८६२ में की थी। लैसेल (Lasalle) के व्यक्तित्व और उसकी स्वतन्त्रता-प्रिय प्रकृति ने लौहपुरुष बिस्मार्क को भी प्रभावित किया था। किन्तु २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से एक नया आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसे

---

१. वास्तव में मार्क्स दूसरों की भूमि पर कब्जा करने का समर्थक नहीं था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरीक्षणवाद (Revisionalism) कहते हैं। वह वास्तव में मार्क्सवादी समाजवाद के प्रति विद्रोह था। पुनरीक्षणवादियों (Revisionists) का नेता बर्नस्टीन (Bernstein) था जिसका ब्रॉड चर्च लेखकों (Broad Church Writers) के समान यह कथन था कि "मार्क्सवादी समाजवाद के संस्थापकों के प्रारम्भिक सिद्धान्त इतने कठोर नहीं थे जितना कठोर कि उनके आधुनिक शिष्यों ने उन सिद्धान्तों को बना दिया है।"[1] उसने यह इंगित किया कि मार्क्स की भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध नहीं हुईं इसलिए मार्क्स के सिद्धान्तों का पुनरीक्षण आवश्यक है। उसने धीरे-धीरे और एक-एक करके सुधार करने पर जोर दिया, और उसने क्रान्ति के बजाय विकास (Evolution rather than Revolution) पर बल दिया। उसने कहा कि राज्य के अन्य प्रगतिशील दलों के निकट सहयोग में कार्य होना चाहिए; वह अन्तर्राष्ट्रीय के बजाय राष्ट्रीयता पर बल देता था; यहाँ तक कि वह तो उपनिवेशवाद (Colonization) और साम्राज्यवाद का भी समर्थक था क्योंकि उसके विचारों में यूरोपीय निवासियों की सभ्यता सर्वोत्कृष्ट है इसलिए उन्हें उष्ण कटिबन्ध के अर्द्ध-सभ्य लोगों पर शासन करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह यह भूल गया कि मार्क्स (Marx) ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को बोर्जुआ वर्ग और पूँजीवाद की अत्यन्त निकृष्ट कमजोरी बतलाया था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पुनरीक्षणवादी (Revisionists) लोगों के ऊपर पूँजीवादी राष्ट्रीयता का रंग चढ़ गया है।

किन्तु रूस (Russia) में राजनीतिक और आर्थिक स्थितियाँ ऐसी थीं जो लोगों को शासन का सशस्त्र विरोध करने की प्रेरणा देती थीं। अतः उस देश में क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की जड़ें मजबूती से गड़ गईं। १९१७ में रूस में एक क्रान्ति हुई जो किसी सीमा तक राजनीतिक उद्देश्य को लेकर हुई थी किन्तु वास्तव में उसका आधार आर्थिक उद्देश्य थे। इस क्रान्ति के फलस्वरूप वर्ग-युद्ध (Class War) प्रारम्भ हो गया और सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकवाद (Dictatorship of the Proletariat) की स्थापना करने का निश्चित प्रयत्न किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व के चालीस वर्षों में प्रायः प्रत्येक यूरोपीय देश में उद्योगीकरण का प्रसार हुआ और श्रमिकों के आन्दोलन हुए। १८७१ से लेकर १९१४ तक के काल की उक्त दो विशेषताएँ रहीं और इसी काल की तीसरी विशेषता थी सैनिक राष्ट्रवाद (Militant Nationalism)।

(३) सैनिक राष्ट्रवाद

किसी सीमा तक कहा जा सकता है कि १८७१ से लेकर १९१४ तक का काल राष्ट्रों के उदय से लेकर अब तक के कालों में सबसे अधिक अन्तर्राष्ट्रीयता का काल रहा है। वाणिज्य और व्यापार देशों की राजनीतिक सीमाओं को पार करके अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं में जा पहुँचे; पश्चिमी संसार में स्त्रियों के सुधार-आन्दोलन और समाजवाद प्रायः प्रत्येक देश में उभरने लगे। प्रत्येक देश ने विदेशियों की यात्रा-सुविधा

1. Bertrand Russell : *Roads to Freedom*, p. 45.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रबन्ध किया और दूसरे देशों के बारे में अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करने का उद्योग किया गया। अब एक देश के विचार सरलतापूर्वक दूसरे देशों में प्रसार पाने लगे। अब यह आम धारणा हो गई कि जब तक इंग्लैण्ड का गवैया (Musician) जर्मनी जाकर प्रशिक्षण न ले तब तक वह श्रेष्ठ गायक बन ही नहीं सकता और उसी प्रकार प्रत्येक अंग्रेज चित्रकार फ्रांस की यात्रा करना अपना परम सौभाग्य समझता था। प्रायः मानवीय क्रिया-कलापों के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म से लेकर भूकम्प-विज्ञान (Seismography) तक तथा औषधियों से लेकर नौका-विहार या प्रमोद-तरणी विहार (Yacht-Racing) तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन होने लगा। एकस्वों (Patents) और प्रतिलिप्यधिकार (Copyright) के सम्बन्धों में विभिन्न सरकारों के बीच सहयोग होने लगा। राजनीतिक क्षेत्र में तो अभूतपूर्व अन्योन्याश्रयता देखी गई। यदि बल्कान क्षेत्र में या चीन में अथवा अफ्रीका में कोई राजनीतिक महत्त्व की घटना घटती तो उसकी प्रतिक्रिया यूरोप के सारे देशों में होती थी। पूर्वी समस्या (Eastern Question) पर, अथवा मोरक्को के संकट (Moroccan Crisis) पर अथवा कांगो के स्वतन्त्र राज्य के निर्माण पर बृहत यूरोपीय सम्मेलन हुए थे। लक्सेम्बर्ग और बेल्जियम (Luxemburg and Belgium) पहले से ही यूरोपीय शक्तियों के सम्मिलित संरक्षण में थे और एक अन्तर्राष्ट्रीय अभियान चीन को भी भेजा गया था। यह भी प्रयत्न किया गया था कि युद्ध के नियमों पर भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हो जाए; १८५६ की पेरिस की घोषणा ने सामुद्रिक युद्ध के सम्बन्ध में कुछ नियमों का सूत्रपात किया था और १८६४ के जेनेवा समझौते (Geneva Convention) ने युद्ध-काल में डाक्टरों और नर्सों की तटस्थता को स्वीकार कर लिया; बाद में युद्धकालीन चिकित्सकों और उनके स्टाफ को रेड क्रास (Red Cross) की संज्ञा प्रदान की गई। अन्तर्राष्ट्रीय निर्णयों (International Arbitration) के लिए भी ज़ार निकॉलस द्वितीय (Tsar Nicholas II) ने १८९८[१] में प्रयत्न किया था किन्तु

१. रूस के ज़ार, निकॉलस द्वितीय ने प्रथम हेग सम्मेलन को आयोजित करने के लिए एक आज्ञापत्र (rescript) जारी किया था, उसी का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है : "सभी देशों की यह राष्ट्रीय नीति बताई जाती है कि हर सम्भव उपाय द्वारा शान्ति की रक्षा की जाय। शान्ति के नाम पर कई बड़े-बड़े राज्यों ने आपस में शान्ति-सन्धियाँ की हैं, जिन्हें सशक्त गठजोड़ (Powerful alliances) भी कहा जा सकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश शान्ति के नाम में उन देशों ने भारी सैनिक शक्ति इकट्ठी कर ली है और वे बराबर अभूतपूर्व सैनिक शक्ति के संचय में लगे हैं। वे इस दिशा में कोई त्याग करने को तैयार नहीं हैं। किन्तु शान्ति के अर्थ में किए गए इन सब प्रयत्नों का कोई इच्छित एवं शुभ परिणाम दिखाई नहीं दिया है। निस्सन्देह जितना-जितना प्रत्येक राष्ट्र सैन्य सज्जा और शस्त्रास्त्र संचय करता जाता है उसी अनुपात में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की सम्भावना कम होती जा रही है। शस्त्रास्त्रों के संचय की होड़ के कारण प्रत्येक देश में आर्थिक संकट है और इस सशस्त्र शान्ति (armed peace) के युग में आर्थिक संकट भारी समस्या के रूप में प्रत्येक देश को भयभीत कर रहा है। सर्वसाधारण, शस्त्रास्त्रों के ऊपर किए जाने वाले अपार व्यय के कारण पिसे जा रहे हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि यही स्थिति बनी रही तो वही विनाशकारी प्रलय हमको दबा लेगी जिससे हम बचना चाहते हैं और जिसके स्मरण मात्र से हम सभी को भय और कँपकँपी लगती है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप १८९९ और १९०७ के दोनों हेग सम्मेलन (Hague Conferences) आयोजित किये गये थे। प्रथम हेग सम्मेलन में २९ स्वतन्त्र राष्ट्रों में से २६ स्वतन्त्र राष्ट्रों ने अपने प्रतिनिधि भेजे थे और द्वितीय हेग सम्मेलन में ४४ सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्रों ने भाग लिया था। किन्तु सम्मेलनों में भाग लेने वाले राष्ट्रों में इस कदर वैमनस्य[1] था कि इन दोनों सम्मेलनों को कोई सफलता नहीं मिली, विशेषकर निःशस्त्रीकरण की दिशा में किए गये सारे प्रयत्न निष्फल गये।

१९१४ के विश्व-युद्ध से पहले अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सुधारने के सम्बन्ध में जो कुछ प्रयत्न किये गए वे स्तुत्य होते हुए भी निरर्थक रहे क्योंकि विश्व-युद्ध टला नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्नों की आड़ में हिंसक राष्ट्रीयता की चेतना सक्रिय थी और वह इतनी सशक्त थी कि लड़ाई के प्रथम बिगुल की आवाज पर वह यूरोप को भंग करने के लिए आतुर थी। बल्कान प्रदेश में राष्ट्रीय भावना अत्यन्त असन्तुष्ट थी और पोलैण्ड (Poland) एवं आस्ट्रिया-हंगरी (Austria-Hungary) की विभिन्न जातियाँ या राष्ट्रीयताएँ मर्माहत थीं; उधर रूस की राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाएँ कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) की ओर आँखें लगाए बैठी थीं और नवीन जर्मनी की राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाएँ तो कभी सन्तुष्ट होना ही न जानती थीं। जर्मनी चारों ओर अपना विस्तार चाहता था और इसीलिए उसे अपने चारों ओर हलचल और अशान्ति अत्यन्त प्रिय थी। उधर इटली (Italy) भी असन्तुष्ट था और अपने प्रभाव का विस्तार चाहता था। फ्रांस (France) की राष्ट्रीय भावना आहत सर्प के समान क्रुद्ध थी और वह बदला लेने के लिए और अपने खोए हुए प्रान्तों को पुनः प्राप्त करने के लिए बेचैन थी। ये सब तूफान-ग्रस्त यूरोप के मर्मस्थल थे। यूरोप के ऊपर घिरा हुआ तूफान इस कारण और भी भयंकर था कि सारा यूरोप अपनी जाग्रति में तल्लीन था और यह जाग्रति या स्वचेतना (Self-consciousness) उस काल की दृढ़ राष्ट्रीय चेतना या दृढ़ स्पष्टवादिता (Emphatic Articulateness of the Age) के अनुकूल नहीं थी। उस समय सभी के हृदयों में राष्ट्रीय जोश उमड़ रहा था और १९१४ से लेकर १९१८ तक युद्ध के उद्देश्यों के सम्बन्ध में, सन्धि की शर्तों के सम्बन्ध में जो निर्णय हुए, वे राष्ट्रीय जोश के पुष्ट साक्षी हैं। युद्ध से पूर्व प्रायः प्रत्येक देश की व्यापार नीति और सैनिक नीति राष्ट्रीय भावना से ही प्रेरित होती थी। यद्यपि, जैसा कि पहले भी बताया गया था स्वयं वाणिज्य और व्यवसाय राष्ट्रीय सीमाओं और राष्ट्रीय बन्धनों की उपेक्षा करते हैं,[2] फिर भी वाणिज्य और व्यवसाय का संगठन इस प्रकार होता था कि इनके कारण भी राष्ट्रीय विद्वेष को प्रश्रय मिलता था। संसार के प्रत्येक भाग में एक देश दूसरे के साथ बाजारों पर एकाधिकार और

---

१. द्वितीय हेग सम्मेलन में भी युद्ध के नियमों (Laws of War) के संबंध में विचार-विनिमय हुआ।

२. इसका एक दिलचस्प उदाहरण यह है कि शेफील्ड (इंग्लैण्ड) की बनी मशीनों का प्रयोग जर्मनी के एसेन (Essen) नगर के हथियार बनाने के कारखाने में हुआ और ब्रिटिश मशीनों से जो राइफिलें जर्मनी ने तैयार कीं उन्हीं का प्रयोग जर्मनी ने युद्ध में इंग्लैण्ड के विरुद्ध किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन के अर्जन में प्रतिस्पर्द्धा कर रहा था। प्रत्येक देश की गृह-नीति भी इस प्रकार संचालित होती थी कि वह अपने उद्योगों को उन्नत करने के लिए रक्षण प्रशुल्क (Protective Tariffs) लगाता था ताकि विदेशी तैयार माल को अपने देश में न आने दिया जाय।

यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र सैनिक शस्त्रास्त्रों के संचय की होड़ में लगा हुआ था। इस कारण युद्ध से पूर्व का यूरोप मानो सशस्त्र सैनिक छावनियों का एक झुण्ड था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप का प्रायः प्रत्येक देश चरम सीमा तक शस्त्र-सज्जित होकर एक-दूसरे के सम्मुख युद्ध करने की मुद्रा में खड़ा था। सैन्य-सज्जा और शस्त्र-संचय में प्रत्येक देश ने वैज्ञानिक युग और लोकतन्त्रात्मक कोष से खुलकर लाभ उठाया था क्योंकि केवल लोकतन्त्र में ही इतने विशाल पैमाने पर सैनिक तैयारियाँ सम्भव हो सकती हैं।

आधुनिक सैनिकवाद पर पिछली शताब्दी में दो दिशाओं से मुख्य प्रभाव पड़े हैं। प्रथम प्रभाव निश्चित रूप से फ्रेंच क्रान्ति की सैनिक आवश्यकताओं का पड़ा, क्योंकि १७९५-९९ के काल की फ्रेंच क्रान्तिकारी कार्यपालिका (Directory) की निश्चित नीति सैनिकवाद की थी और नेपोलियन (Napoleon) की महत्त्वाकांक्षाएँ भी सारे संसार पर सैनिक रूप से छा जाने की थीं। उस सीमा तक यूरोप का सैनिकवाद फ्रेंच लोकतन्त्र का परिणाम है क्योंकि फौज में जबर्दस्ती भर्ती सबसे पहले फ्रांस (France) में शुरू हुई थी और जर्मनी (Germany) के राज्यो में केवल स्व-रक्षा के लिए फ्रांस की देखा-देखी फौज में जबर्दस्ती भर्ती (Conscription) शुरू की गई थी।

आधुनिक सैनिकवाद पर दूसरा प्रभाव प्रशा (Prussia) का पड़ा है। प्रशा की सैनिक शक्ति और जर्मनी की ऐतिहासिक एकता का आधार प्रशा की सेना थी जो वैज्ञानिक युद्ध-विद्या और जबर्दस्ती सैनिक भर्ती के आधारों पर संगठित की गई थी। प्रशा एक सैनिक शक्ति के रूप में यकायक उदित हुआ था और जब प्रशा ने जल्दी-जल्दी निर्णायक तौर पर ऑस्ट्रिया और फ्रांस को हराया तब तो सारे यूरोप की मानो आँखें खुल गईं। प्रशा (Prussia) का वैज्ञानिक सैनिकवाद एक नूतन शक्ति के रूप में उदित हुआ जो विस्तृत तैयारियों और विशेष पूर्णता के आधार पर तैयार किया गया था क्योंकि सेना की प्रत्येक टुकड़ी को सैनिक सिद्धान्तों की पूर्ण शिक्षा दी गई थी और प्रत्येक सैनिक टुकड़ी को आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से लैस कर दिया गया था। इस कहावत में कुछ तथ्य अवश्य है कि "सेडान (Sedan) का प्रसिद्ध युद्ध स्कूल के मास्टरों ने जीता था।"

१८७० में फ्रांस की जो करारी हार हुई थी उसी के परिणामस्वरूप फ्रांस की सेना का आवश्यक सैनिक सेवा के आधार पर पूर्ण पुनर्गठन हुआ। इसके पश्चात् फ्रांस और जर्मनी में कठिन प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी। दोनों राष्ट्र एक-दूसरे के प्रति चौकन्ने थे और दोनों एक-दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते थे और दोनों ही एक-दूसरे से डरते थे; यहाँ तक कि दोनों देश एक-दूसरे के समान होने का प्रयत्न कर रहे थे; दोनों ही एक-दूसरे से अधिक शक्ति अर्जित करने का प्रयत्न कर रहे थे और दोनों ही प्रयत्नशील थे कि अपनी-अपनी सेना की वृद्धि करें और अपनी-अपनी सेना

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अच्छी से अच्छी सैनिक शिक्षा दें। १८८५ में फ्रांस की सेना में ५,००,००० सैनिक थे। यह संख्या प्रायः फ्रांस में शान्तिकालीन सेना की थी। उसी वर्ष जर्मनी की सेना में ४,२७,००० सैनिक थे जबकि जर्मनी की जनसंख्या फ्रांस की जनसंख्या से कुछ अधिक थी। बीस वर्ष बाद फ्रांस की सेना में ५,४५,००० सैनिक हो गए और जर्मनी की सेना में ५,०५,००० सैनिक हो गए। किन्तु यह भी ध्यान रखना है कि जर्मनी को तो दो सीमाओं की रक्षा करनी थी। फ्रांस और रूस की गाढ़ी मैत्री थी और रूस में चुपके-चुपके सैनिक विकास हो रहा था। अतः जर्मनी ने भी अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने में वृहत् प्रयत्न किया और १९१३ के वसन्त में जर्मनी में एक सैनिक अधिनियम पास किया गया जिसके द्वारा जर्मनी की सेना में ८,००,००० सैनिक हो गए।[1]

फ्रांस क्योंकर पीछे रहता? उसने भी एक सैनिक अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार उसकी शान्तिकालीन सेना में सैनिकों की संख्या जर्मनी के बराबर हो गई और आवश्यक सैनिक सेवा की अवधि बढ़ा कर तीन वर्ष कर दी गई। इस प्रकार ऐसी व्यवस्था हो गई कि १५ दिनों के अन्दर फ्रांस ४०,००,००० अतिरिक्त सैनिक तैयार कर सकता था। यह अत्यन्त विशाल किन्तु विनाशकारी प्रयत्न था। वास्तव में ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो फ्रांस और जर्मनी युद्ध-रत थे।

यूरोप में शायद ही कोई ऐसा देश था जिसने अपनी सेना में वृद्धि न की हो और ग्रेट ब्रिटेन के अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक बड़ी यूरोपीय शक्ति ने आवश्यक सैनिक सेवा (Compulsory Military Service)[2] का नियम जारी कर दिया। ब्रिटेन अपनी द्वीपीय स्थिति के कारण इस सैनिक प्रतियोगिता से किसी सीमा तक अलग रहा और १९१४ में ब्रिटिश सेना के तीनों भागों के सैनिकों की कुल संख्या लगभग २,५०,००० थी।[3] किन्तु १९०९ से ग्रेट ब्रिटेन अपनी नौ-सैनिक शक्ति को बढ़ाने की दिशा में प्रयत्नशील था। उधर भी उसकी नौ-सैनिक जहाज आदि बढ़ाने की ओर अधिक रुचि थी, हालाँकि नौसेना में अधिक सैनिक बढ़ाने की रुचि उतनी नहीं थी। ग्रेट ब्रिटेन का समुद्री बेड़ा यूरोप के प्रत्येक देश के समुद्री बेड़े से तो अधिक था ही, वह यूरोप के अन्य किन्हीं दो देशों के सम्मिलित समुद्री बेड़ों से भी अधिक था और ब्रिटेन की यह हार्दिक इच्छा थी कि उसका समुद्री जहाजी बेड़ा इस प्रकार किन्हीं भी दो यूरोपीय शक्तियों के सम्मिलित बेड़ों से बड़ा बना रहे। जर्मनी की रुचि नौसैनिक शक्ति को बढ़ाने की ओर नहीं थी किन्तु विलियम द्वितीय (William II) के सम्राट् बनते ही बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से जर्मनी में अनेक समुद्री जहाज़ बने और बनने

---

१. इस सम्बन्ध में यह जानना रुचिकर होगा कि वर्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) के अनुसार युद्धोत्तर जर्मनी की सेना में केवल १००,००० सैनिकों को आज्ञा दी गई। इनमें भी केवल वे सैनिक हो सकते थे जो स्वेच्छा से सेना में रहना चाहते थे।

२. विश्व-युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका दोनों ने भी आवश्यक सैनिक सेवा (Compulsory Military Service) चालू की थी।

३. ब्रिटेन के २,५०,००० सैनिकों में भारत और उपनिवेशों के सैनिक सम्मिलित थे किन्तु आरक्षित (reserves) सैनिक और प्रादेशिक सैनिक एकक इस संख्या के अतिरिक्त थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे, नौसैनिक शक्ति के बढ़ने पर अधिक व्यय किया जाने लगा और नए-नए युद्ध-पोत और नए-नए प्रकार के शतघ्नीपोत (Dreadnought)[1] बनने लगे; यहाँ तक कि अब ग्रेट ब्रिटेन की आँखें खुलीं और उसको ऐसा प्रतीत होने लगा कि न केवल उसकी नौसैनिक शक्ति की सर्वोच्चता (Two-Power Standard Superiority) को चुनौती मिली है वरन् उसको यह भी भय हुआ कि यदि जर्मनी की नौसैनिक शक्ति इस गति से बढ़ती रही तो पाँच वर्षों में जर्मनी के अधिकार में इंग्लैंड से अधिक बड़े-बड़े युद्धपोत हो जायेंगे। अतः ब्रिटेन ने भी अपना नौ-सैनिक कार्यक्रम बढ़ा दिया और शीघ्र ही नए प्रकार के शतघ्नी युद्धपोत (Dreadnoughts) बनने लगे और इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन भी शस्त्रास्त्रों के संचय की होड़ में फँस गया। श्री विंस्टन चर्चिल (Mr. Winston Churchill) ने, जो ब्रिटेन के १९११ से १९१४ तक प्रथम नौसेना सैनिक मंत्री (First Lord of the Admiralty) थे, १९११ में बताया था कि ब्रिटिश नेवी या ब्रिटिश युद्धी जहाजी बेड़ा न केवल प्रत्येक विदेशी सत्ता से श्रेष्ठ होना चाहिए, बल्कि ऐसी किन्हीं भी विदेशी सत्ताओं के सम्मिलित युद्धी जहाजी बेड़ों से अधिक शक्तिशाली होना चाहिए जो ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध में रत हों। व्यवहार में इस नीति का यह अर्थ था कि ब्रिटेन के शतघ्नी पोतों (Dreadnoughts) की संख्या जर्मनी की अपेक्षा ६० प्रतिशत अधिक हो। कई बार ब्रिटेन ने यह भी चाहा कि युद्धी जहाज निर्माण को रोक दिया जाय किन्तु जर्मनी अपनी ६० प्रतिशत की हीनता को सदैव के लिए स्वीकार करने पर तैयार न था।[2] इस प्रकार जहाँ

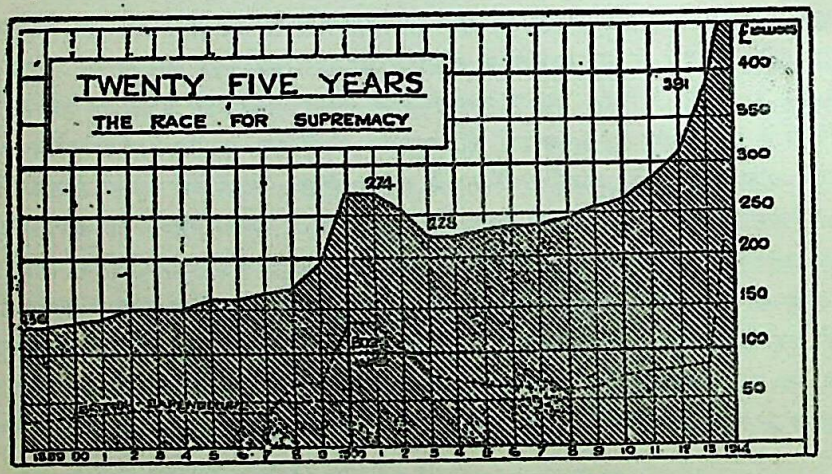

दिखावे के लिए प्रत्येक राष्ट्र शान्ति की बात करता था, वहाँ युद्ध के लिए लगातार तैयारी में रत था। चूँकि उसका पड़ोसी राष्ट्र शत्रुतापूर्ण सैनिक तैयारियाँ कर रहा है, इसलिए उसे भी रक्षात्मक तैयारियाँ करनी ही चाहिए।

---

१. शतघ्नीपोत (Dreadnought) सर्वप्रथम १९०६ में ग्रेट ब्रिटेन में तैयार हुआ था।

२. १९३५ में जो आंग्ल-जर्मन नौसैनिक सन्धि हुई थी उसके अनुसार जर्मनी ने युद्धपोतों के सम्बन्ध में ब्रिटेन की अपेक्षा ३५ प्रतिशत की हीनता स्वीकार कर ली थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वयुद्ध से पूर्व के आधुनिक इतिहास की तीन प्रवृत्तियाँ स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रही थीं जो संक्षेप में निम्न थीं : औद्योगिकवाद, श्रमिकों का आन्दोलन और राष्ट्रीय सैनिकवाद। अलग-अलग मुख्य यूरोपीय देशों के इतिहासों का वर्णन करने से पूर्व उपर्युक्त तीनों प्रवृत्तियों का वर्णन प्रस्तावना रूप में आवश्यक था।

जर्मनी (१८७१-१९१४)

१८७१ से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध तक कई प्रकार से जर्मनी ही यूरोप की मुख्य शक्ति रहा। पराजित फ्रांस के प्रांगण में विलियम प्रथम (William I) जर्मनी का सम्राट् घोषित हुआ। जर्मनी के राजा को सम्राट् (Emperor) घोषित करना ऐतिहासिक प्रत्यावर्त्तन था क्योंकि यह जर्मनी की मध्ययुगीन शानोशौकत की यादगार थी किन्तु संवैधानिक दृष्टि से जहाँ जर्मनी एक संघ था, उसके राजा को सम्राट् (Emperor) कहना न्याययुक्त न था।[1] सत्य यह है कि साम्राज्य और चीज है किन्तु संघ (Federation) और चीज है और यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि जर्मनी का साम्राज्यवादी संघ (Imperial Federation) पचास वर्ष भी न चल सका।[2] १९३३ तक जर्मनी का संविधान संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.), कनाडा (Canada) और स्विट्जरलैंड के संविधान से मिलता था और १९०० के आसपास जर्मनी का संविधान किसी सीमा तक ऑस्ट्रेलिया नामक संघीय राज्य के समान था।[3] वास्तव में जर्मनी २६ राज्यों का एक अपूर्ण संघ था और प्रत्येक अवयवी राज्य स्थानीय शासन के सम्बन्ध में पूर्ण स्वाधीन था किन्तु अन्य बातों में वह केन्द्र या संघ के अधीन था। प्रत्येक अवयवी राज्य का अपना शासन था, अपना विधानमंडल था, अपनी स्वतन्त्र कार्यपालिका थी और अपने न्यायालय थे। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय संघ सरकार थी, जिसका निर्माण द्विसदनात्मक विधान-मंडल कार्यपालिका और सर्वोच्च न्यायालय से मिलकर होता था। अन्य संघात्मक राज्यों की तरह साम्राज्यवादी द्विसदनात्मक विधान-मंडल यह स्पष्टतया इंगित करता था कि राज्य के दो स्वरूप हैं। रीश्टाग (Reichstag) या राष्ट्रीय सदन प्रत्येक अवयवी राज्यक (Principality) की जनसंख्या के अनुसार समस्त साम्राज्य का प्रतिनिधि सदन था। इसका निर्माण पूर्ण वयस्क पुरुष मताधिकार के आधार पर निर्वाचन द्वारा होता था। दूसरा सदन बुन्देसरत (Bundesrat) या संघीय सदन (Federal House) था जिसमें राज्यकों (Principalities) को स्वतन्त्र अवयवी एककों के रूप में प्रतिनिधित्व प्राप्त था; किन्तु इन अवयवी एककों को संयुक्त राज्य अमेरिका

साम्राज्यवादी संविधान

---

१. संघवाद के सामान्य सिद्धान्तों के लिए अध्याय १२, खण्ड १ देखिए।

२. साम्राज्य शब्द का प्रयोग इतना सामान्य, इतना अस्पष्ट और इतना व्यापक है कि इसका किन्हीं भी अर्थों में प्रयोग किया जा सकता है।

३. १९१८ में जर्मनी में एक क्रान्ति हुई; उसके फलस्वरूप जर्मन संघ का राजतन्त्रात्मक स्वरूप नष्ट हो गया। १५ वर्षों तक जर्मनी संघीय गणराज्य बना रहा और गणराज्यों का समूह (Federation of Republics) बना रहा। इसके पश्चात् हिटलर ने संघीय गणराज्य के स्थान पर एकात्मक राज्य की स्थापना कर ली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अवयवी एकक राज्यों के समान बराबरी के आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था वरन् एक ऐसे निश्चित अंश (Quota)[1] के अनुसार उनको प्रतिनिधित्व प्राप्त था जो विभिन्न एककों की सरकारों ने आपस में तय कर रखा था। इस प्रकार जहाँ प्रशा १७ सदस्य भेजता था, बवेरिया (Bavaria) केवल ६ सदस्य ही भेजता था, सैक्सनी (Saxony) और वर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) चार-चार सदस्य भेजते थे और अन्य छोटे राज्यकों को केवल एक स्थान प्रति राज्यक प्राप्त था। संघीय कार्यपालिका सत्ता प्रशा (Prussia) के सम्राट् कैसर (Kaiser) में निहित थी किन्तु वास्तविक सत्ता संघीय प्रधान मंत्री (Federal Chancellor) में निहित थी। संघीय प्रधान मन्त्री के पद के विषय में कैसर विलियम द्वितीय (Kaiser William II) कहा करता था कि वह कुर्सी या पद बिस्मार्क के योग्य ही था। सम्राट् की आज्ञाओं पर भी संघीय प्रधान मन्त्री (Federal Chancellor) के प्रति-हस्ताक्षरों (Counter Signature) की आवश्यकता रहती थी और "इसी प्रकार वह प्रत्येक शाही आज्ञा के लिए उत्तरदायी था।"[2] किन्तु इस वाक्यांश का कोई विशेष अर्थ न था क्योंकि स्वयं बिस्मार्क ने ही संविधान को रचा था और "उसने इस प्रकार संविधान को बनाया था कि वह स्वयं साम्राज्य के सारे निर्णयों पर छाया रहे।" जर्मनी के साम्राज्यवादी संविधान में उत्तरदायी शासन का कोई चिन्ह नहीं था किन्तु जब १९१८ में उक्त संविधान का पुनरीक्षण हुआ तब से किसी सीमा तक उसमें उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई। संघीय प्रधान मन्त्री (Federal Chancellor) की नियुक्ति स्वयं जर्मन संघ का सम्राट् करता था और केवल वही उसको अपदस्थ भी कर सकता था। रीश्टाग (Reichstag) या राष्ट्रीय सदन द्वारा संघीय प्रधान मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास किए जाने पर भी उसको अपदस्थ नहीं किया जा सकता था।

यह स्वाभाविक ही था कि संघवाद के सिद्धान्तों के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मन साम्राज्य में भारी अन्तर थे। जर्मन संघ ऐसे पूर्ण स्वतन्त्र राज्यकों का संघ था जिनके स्वतन्त्र इतिहास थे और जिनको अपनी स्वतन्त्र स्थिति पर गर्व था। इसलिए ऐसे राज्यों के सम्बन्ध तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर बहुत कुछ निर्भर थे और स्वयं राजनीतिक स्थिति भी शताब्दियों की ऐतिहासिक परम्पराओं, विविध अनियमितताओं और असमानताओं तथा विभिन्न एककों की छोटाई और बड़ाई पर निर्भर थी।

जर्मन संघ की दो मुख्य विशेषताएँ ये थीं—यह मुख्यतः राजतन्त्रीय संघ था और इस संघ में प्रशा (Prussia) नामक एकक को प्रमुखता प्राप्त थी। प्रथम विशेषता प्रत्यक्षतः और अप्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर थी। संसार के सारे संघात्मक राज्यों में केवल जर्मनी का संघ ही एक ऐसा राज्य था जो राजतन्त्रात्मक संघ था और जिसके अवयवी एककों में भी राजतन्त्र थे। सारे जर्मन संघ में केवल हैम्बर्ग (Hamburg) ब्रेमेन (Bremen) और ल्युबेक (Lubeck) नाम के तीन स्वतन्त्र नगर थे। जर्मन

१. इस आधार पर जर्मन संघ, कनाडा अधिराज्य संघ के अधिक निकट था।

२. देखिए भूतपूर्व कैसर विलियम द्वितीय द्वारा लिखित "मेरे संस्मरण, १८७९—१९१८।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघ के संविधान की प्रस्तावना में कहा गया था—"महामहिम प्रशा के सम्राट, महामहिम बवेरिया के सम्राट् और महामहिम ग्रांड ड्यूक ऑफ बेडेन (Grand Duke of Baden) एक शाश्वत सन्धि में आबद्ध होते हैं।" संघीय संविधान भी एकक राज्यों के संविधान के समान ही ऊपर से स्वीकृत किया जाता था, न कि नीचे से। इसमें सन्देह नहीं है कि संघीय संविधान को राज्यों के विधानमण्डल स्वीकार करते थे किन्तु वास्तव में वह संविधान पहले ही एककों की सरकारों द्वारा स्वीकृत हो चुकता था।

संघ की प्रकृति से भी यही परिलक्षित होता था कि जर्मन संघ का संविधान राजतन्त्रात्मक है क्योंकि इसने संघीय शाही सरकार को व्यापक व्यवस्थापक अधिकार दे रखे थे किन्तु अपेक्षाकृत कार्यपालिका शक्ति कम दी थी।[1] इस प्रकार विभिन्न

१. जर्मन संघ की कार्यपालिका सत्ता को स्विट्ज़रलैण्ड के समान ही इस सीमा तक मर्यादित कर दिया गया था कि वह केवल पर्यवेक्षण (supervision) और विनियमन (regulation) तक सीमित था, किन्तु विदेशी मामले (foreign affairs), नौसेना (Navy), और किसी सीमा तक स्थल सेना और डाक व्यवस्था (postal service) इस नियन्त्रण से मुक्त थे। सीमा शुल्क (customs duties) राज्यों के अधिकारियों द्वारा एकत्रित किये जाते थे किन्तु सीमा शुल्क अधिकारियों के कार्य का निरीक्षण संघ के अधिकारी करते थे, जिनका यह काम था कि वे संघीय विधियों की क्रियान्विति करावें। सिक्कों के टंकन (coining of money) का कार्य राज्यों की टंकशालाओं (mints) के सुपुर्द था और उन्हीं को आवश्यक मात्रा में धातु दे दी जाती थी। राज्यों के अपने न्यायालय भी थे। केवल एक संघीय न्यायालय था जिसे रीशग्रेट (Reichsgericht) कहा जाता था। इसमें १०० न्यायाधीश थे और वह बर्लिन (Berlin) में न होकर लीप्जिग (Leipzig) में स्थित था। साम्राज्य का सैनिक संगठन अनोखा था। यह न तो पूर्णतः संघीय था और न पूरी तरह राज्यों या एककों के अधीन था। किन्तु यह जर्मन संघ के सामान्य सिद्धान्त के अनुरूप था —अर्थात् व्यवस्थापक केन्द्रीकरण (legislative centralization) और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण (administrative decentralization)। सेना के सम्बन्ध में संविधान में व्यापक और विस्तृत प्रबन्ध का विधान था क्योंकि बिस्मार्क की यही प्रकृति थी और वह व्यावहारिक विस्तार अवश्य देता था और उसे सैद्धन्तिक सामान्यानुमान (theoretical generalization) पसन्द नहीं था। सारे साम्राज्य में सभी सैनिक सेवा के लिए बाध्य थे और प्रत्येक रंगरूट को भर्ती होते समय अपने राज्य के सम्राट् (territorial sovereign) के प्रति और सारे संघ के सम्राट् के प्रति निष्ठावान होने की शपथ लेनी पड़ती थी। किन्तु शान्ति काल में साम्राज्य की सेना नहीं रहती थी। चार सेनाएँ थीं जो क्रमपूर्वक प्रशा (Prussia), सैक्सनी (Saxony), बवेरिया (Bavaria) और वर्टेम्बर्ग (Wurttemberg) की थीं। प्रशा की सेना के आदर्श पर प्रत्येक सेना की व्यवस्था की जाती थी और सेनाओं का निरीक्षण स्वयं जर्मन सम्राट् करता था। स्वयं जर्मन सम्राट् ही सर्वोच्च सेनापति था। सेनाओं का गठन, निवर्तन (disposal) और विनियमन (regulation) संघीय विधियों द्वारा नियन्त्रित होता था और सेना के संधारण (maintenance) का सारा व्यय संघीय कोष से होता था। सेना की एक टुकड़ी से अधिक के कमांडरों को स्वयं सम्राट् नियुक्त करता था किन्तु सेनानायकों (generals) की नियुक्ति सम्राट् (Federal Emperor) की स्वीकृति का विषय थी; और सेना के छोटे अफ़सरों की नियुक्ति राज्यों की सरकारें करती थीं। अन्यथा सेना का सारा प्रबन्ध प्रत्येक राज्य को सौंप दिया गया था। युद्ध काल में समस्त सेना जर्मन सम्राट् के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में आ जाती थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एककों के विधानमण्डलों की व्यवस्थापक शक्तियों पर केन्द्र या संघीय सरकार ने नियन्त्रण लगा दिये थे किन्तु विभिन्न एककों की कार्यपालिका शक्ति को उस सीमा तक नियंत्रित नहीं किया गया था। प्रायः प्रत्येक एकक राज्य की कार्यपालिका सत्ता सम्बन्धित एकक राज्य के राजा और उस राजा द्वारा नामांकित मन्त्रियों के हाथों में रहती थी। राज्यों के विधानमण्डलों के अधिकार में संघीय या राष्ट्रीय सदन (Federal Reichstag) के समान केवल आलोचना करने का या नियन्त्रित करने का अधिकार तो था, किन्तु शासन करने का पूर्णाधिकार नहीं था। इस प्रकार प्रतिनिधिक शासन तो था, परन्तु उत्तरदायी शासन नहीं था। इसलिए संघ में एककों की कार्यपालिकाओं अर्थात् एककों के राजाओं की ही तूती बोलती थी। संघ ने एककों के राजाओं को अधिकार दिया था कि वे संघीय विधियों का पालन करावें और संघीय राज्य सभा या बुन्देसरत (Bundesrat) के लिए प्रतिनिधि नामांकित करें। इसके अतिरिक्त संघीय राज्य सभा या बुन्देसरत व्यवहारतः एकक राज्यों के नरेशों की सभा थी जिनको व्यापक अधिकार प्राप्त थे, अतः वह राष्ट्रीय सभा या रीश्टाग (Reichstag) से अधिक शक्तिशालिनी हो गई थी। इस प्रकार समस्त संघीय संविधान राजतन्त्र का पोषक बन गया था।

चूंकि प्रशा (Prussia) सारी जर्मनी में सबसे बड़ा और सबसे बड़ी जनसंख्या वाला राज्य था और चूंकि प्रशा ने ऐतिहासिक कार्य किया था और उसकी सैनिक शक्ति भी सभी अवयवी एककों से बहुत अधिक थी, अतः यह स्वभाविक ही था कि वह जर्मन संघ के ऊपर पूरी तरह से छाया हुआ था। प्रशा के भू-भाग का क्षेत्रफल सारे जर्मन संघ के क्षेत्रफल का दो-तिहाई था और प्रशा की जनसंख्या सारे जर्मन संघ की जनसंख्या की ३/५ थी। राष्ट्रीय सभा या रीश्टाग में प्रशा को २३५ स्थान प्राप्त थे और राज्य सभा या बुन्देसरत (Bundesrat) में उसको बीस मत

सामुद्रिक सेना (Navy) का गठन और प्रकार का था। १८७१ में केवल प्रशा के पास कुछ जहाजी बेड़ा था जिसे उसने १८५२ में जर्मन परिसंघ (German Confederation) से नीलामी में खरीदा था। इसी बेड़े (Navy) को प्रशा ने जर्मन साम्राज्य को हस्तान्तरित कर दिया था। इसी प्रकार प्रत्येक अवयवी राज्य के सौदागरी जहाज (Merchant Vessels) भी संघ के अधिकार में आ गये थे। इसलिए जर्मनी का सारा समुद्री बेड़ा जर्मन सम्राट् की सर्वोच्च कमान में था और स्वयं सम्राट् ही उसका प्रबन्ध करता था और वही उसके लिए अफसर नियुक्त करता था। सभी नौसैनिकों को भर्ती के समय जर्मन सम्राट् के प्रति निष्ठावान बने रहने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। कील (Kiel) और जेड (Jade) के बन्दरगाह सम्राट् के बन्दरगाह थे। उसी प्रकार सौदागरी जहाजों की व्यवस्था भी साम्राज्य और संघ के अधिकार में थी। इसीलिए जर्मनी का सारा समुद्री बेड़ा जर्मन संघ का था, उस पर किसी अवयवी एकक राज्य का अधिकार न था। किन्तु उसके विपरीत स्थल सेना प्रत्यक्ष रुप से साम्राज्य के नियंत्रण में नहीं थी किन्तु वह मुख्य रूप से चार राज्यों (प्रशा, सैक्सनी, बवेरिया और वर्टेम्बर्ग) के नियन्त्रण में थी, यद्यपि यथार्थतः स्थल सेना पर भी संघीय विधियाँ लागू होती थीं और युद्ध काल में वे जर्मन संघ के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में आ जाती थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त थे,[1] अतः संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में प्रशा को पूर्ण निषेधाधिकार प्राप्त था।[2] प्रशा का सम्राट ही जर्मन संघ का आनुवंशिक सम्राट था, वही जर्मन संघ की सेना और नौसेना का सर्वोच्च सेनापति था और वह सारे साम्राज्य के वैदेशिक संबंधों का संचालन करता था। प्रशा का सम्राट ही संघ का या साम्राज्य का चांसलर (Chancellor) नियुक्त करता था जो व्यवहारतः यद्यपि आवश्यकतः नहीं, प्रशा की मंत्रि-परिषद का प्रधान रहा है।[3] प्रशा का सैनिक संगठन, और उसकी संकेत संहिता, यहाँ तक कि प्रशा के सैनिकों की वर्दी का आकार-प्रकार भी जर्मनी के सभी एककों में प्रचलित था। इसके अतिरिक्त प्रशा ने कुछ अन्य छोटी जर्मन रियासतों के साथ अलग से सन्धियाँ की थीं जिनके आधार पर उन राज्यों में उसको डाक-व्यवस्था और सैनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में विशेष प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हो गये थे और जर्मन संघ की राज्य सभा या बुन्देसरत (Bundesrat) में तो प्रशा सारी स्थायी समितियों का चेयरमैन था, केवल विदेशी मामलों सम्बन्धी स्थायी समिति अपवाद थी; और प्रशा की राजधानी ही साम्राज्य की या जर्मन संघ की भी राजधानी थी। संक्षेप में जर्मन साम्राज्य पूर्णतः प्रशा के प्रभाव में था।

बिस्मार्क, जर्मन साम्राज्य का चांसलर (१८७१-९०)

१८७१ में बिस्मार्क को साम्राज्य का राजकुमार (Prince) बना दिया गया और वही साम्राज्य का प्रथम चांसलर नियुक्त किया गया। इसके बाद १८९० तक वह समस्त जर्मनी का वास्तविक शासक बना रहा। साम्राज्य का चांसलर बनने के पश्चात् अपने अधिकारी जीवन के प्रथम दस वर्षों में उसने जर्मनी के निर्माण की दिशा में महान् सफलताएँ प्राप्त कीं और किन्हीं अर्थों में १८८० तक वह सम्पूर्ण सफलताएँ प्राप्त कर चुका था और उसके जीवन का मिशन भी पूरा हो चुका था। जर्मनी का निर्माण हो चुका था और स्वयं बिस्मार्क के शब्दों में जर्मनी एक पूर्ण सन्तुष्ट सत्ता थी। किन्तु यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यद्यपि आश्चर्यजनक नहीं कि बिस्मार्क १८७० के बाद भी बीस वर्षों तक जर्मनी का सर्वेसर्वा बना रहा। अब बिस्मार्क की नीति न तो युद्ध करने की थी और न साहसपूर्ण निर्माण की थी। वह तो शान्ति और साम्राज्य के परिरक्षण और वर्द्धन का

---

१. राज्य सभा या बुन्देसरत में प्रशा को जो बीस स्थान प्राप्त थे उनमें १७ पर तो उसका प्राकृतिक अधिकार था; दो स्थान ब्रुन्सविक (Brunswick) के भी उसके पक्ष में थे क्योंकि ब्रुन्सविक का राजा भी प्रशा का एक राजकुमार ही था और एक स्थान इस कारण प्राप्त हो गया था कि प्रशा ने वाल्डेक (Waldeck) के राजा से कुछ भू-भाग खरीद लिया था।

२. किसी भी संवैधानिक संशोधन के अस्वीकृत करने के लिए चौदह विरुद्ध मत पर्याप्त थे।

३. प्रधान-मन्त्री या चांसलर (Chancellor) के सम्बन्ध में दो अपवाद भी रहे। १८७३ में वॉन रून (Von Roon) नौ महीने तक प्रधानमन्त्री (Minister-President) रहा जबकि बिस्मार्क (Bismarck) जर्मन साम्राज्य का चांसलर (Imperial Chancellor) था। पुनः १८९२ में काउण्ट वॉन केप्रिवि (Count Von Caprivi) ने प्रधानमन्त्री पद (Minister Presidency) त्याग दिया किन्तु वह अगले दो वर्षों तक साम्राज्य का चांसलर बना रहा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छुक था, यद्यपि जिस दौर से वह गुजार रहा था वह प्रतिक्रिया का दौर था, जो महान् सफलताओं के बाद आता ही है। यद्यपि बिस्मार्क के मार्ग में अपार बाधाएँ आईं, उसको पग-पग पर विरोध सहन करना पड़ा, यहाँ तक कि समाजवादियों, उदार वर्गों, रूढ़िवादियों, राजदरबारों के क्षेत्रों, समाचारपत्रों और सर्वसाधारण—सभी ओर से बिस्मार्क को लांछन सहन करने पड़े फिर भी बिस्मार्क अपने पद पर अचल और अडिग बना रहा। १८७१ से १८९० तक के काल में बिस्मार्क वास्तव में महान् साहस, महान् शक्ति, महान् उत्साह, महान् धैर्य और असीम स्वेच्छाचारिता का सजीव प्रतीक बना रहा। किन्तु उसके पक्ष में एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिस्थिति थी। उसे सम्राट का बेरोकटोक समर्थन प्राप्त था। बिस्मार्क सम्राट को जिस प्रकार चलाना चाहता था, चलाता था, एक प्रकार से सम्राट की शक्तियाँ उसी को प्राप्त हो गई थीं और उन शक्तियों का वह बेरहमी और चालाकी से इच्छानुसार प्रयोग करता था।

विदेश-सम्बन्धों के निर्वहन में वह सदैव की भाँति महान् योग्यता, महान् राजनीतिज्ञता और महान् कूटनीतिज्ञता का परिचय देता था। एक बार वृद्ध जर्मन सम्राट ने कहा था—"केवल बिस्मार्क ही एक ऐसा व्यक्ति था जो एक साथ पाँच गेंदों के साथ करतब दिखा सकता था, जिनमें से कम से कम दो गेंदें सदैव हवा में रहती थीं।" वे पाँच गेंदें थीं—ऑस्ट्रिया, फ्रांस, रूस, इंग्लैंड और इटली। वह इन पाँचों देशों रूपी गेंदों के साथ मनमाने ढंग से खिलवाड़ करता था। फ्रांस को प्रायः सदैव उसने यूरोपीय राजनीति से बहिष्कृत रखा और ऑस्ट्रिया के साथ उसने स्थायी सन्धि करके जर्मनी की अपनी सारी योजनाओं को पूर्ण कर लिया। ऑस्ट्रिया के पुराने शत्रु इटली को भी ऑस्ट्रिया-जर्मनी की मैत्री में ले लिया। उधर बिस्मार्क ने रूस के साथ भी मृदु सम्बन्ध बनाने प्रारम्भ कर दिए ताकि पूर्व की ओर के भय का निराकरण हो जाए। उसकी विदेश नीति का लक्ष्य यह भी रहा कि ग्रेट ब्रिटेन, जहाँ तक हो सके, यूरोपीय मामलों से अलग रहे।

घरेलू मामलों में बिस्मार्क ने अधिनायक की भाँति आचरण किया। वास्तव में उसकी गृह-नीति उतनी योग्यतापूर्ण नहीं थी, जितनी कि उसकी विदेश नीति थी। घरेलू मामलों में वह अपने शत्रुओं और विरोधियों से घृणा करता था, इसलिए उससे कई भयंकर भूलें हो गईं। बिस्मार्क की गृह-नीति का उद्देश्य साम्राज्य को पुष्ट करना और उसके शत्रुओं का विनाश करना था। उसने संघ की शक्तियों में विस्तार करके संघीय सरकार के व्यापारों और अधिकारों में वृद्धि की। उसने इम्पीरियल बैंक की स्थापना की। इस प्रकार सारे साम्राज्य में आर्थिक एकरूपता का मार्ग प्रशस्त हुआ। पुनः उसने स्थानीय कानूनी व्यवस्थाओं की जटिल विभिन्नताओं के स्थान पर सारे साम्राज्य में समान कानूनी कोड (Imperial Codes) बना दिए और कालान्तर में कानूनी प्रक्रियाएँ भी समस्त जर्मनी में समरूप कर दी गईं। रेल-व्यवस्थाओं पर यद्यपि अब तक अधिकतर जर्मनी की विभिन्न रियासतों का अधिकार था किन्तु बिस्मार्क ने इम्पीरियल रेलवे बोर्ड (Imperial Railway Board) स्थापित किया और समस्त रेल-यातायात-व्यवस्था रेलवे बोर्ड के नियन्त्रण में आ गई। उसने नये इम्पीरियल सिक्कों का भी प्रचलन किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मन साम्राज्य की सीमा पर बहुत से विजित लोग थे जो जर्मनी के शासन से घृणा करते थे। बिस्मार्क ने ऐसे अ-जर्मन लोगों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण एवं जर्मनीकरण या जबर्दस्ती उनको अपने में मिलाने की नीति अपनायी। ऐसे अ-जर्मन लोगों में जर्मनी की पूर्वी सीमा पर ३५ लाख पोल (Poles) थे; १½ लाख श्लैसविग (Schleswig) के डेन थे और एल्सेस-लॉरेन (Alsace-Lorraine) के प्रायः २० लाख फ्रांसीसी थे। बिस्मार्क तथा उसके उत्तराधिकारियों ने हर सम्भव प्रयत्न किया कि इन अ-जर्मन जातियों को जर्मन व्यवस्था का समर्थक बना लिया जाय। उन्होंने अ-जर्मन तत्वों को हर प्रकार की आर्थिक, शैक्षणिक और वैज्ञानिक सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करा दीं जिनसे उनको पर्याप्त लाभ हुए, फिर भी जातीयता की भावना उस काल की एक प्रधान शक्ति थी और इस कारण भी अ-जर्मन लोग हृदय से जर्मनी के विरोधी ही बने रहे। तथ्य यह है कि ज्यों-ज्यों बिस्मार्क और उसके उत्तराधिकारियों ने अ-जर्मन जातियों के प्रति जर्मनीकरण की नीति अपनायी त्यों-त्यों उनमें और अधिक राष्ट्रीय और जातीय चेतना का संचार हुआ।

कुल्टुर्कैम्फ़ (१८७१-७८)

जर्मन साम्राज्य के अनेक शत्रु थे किन्तु बिस्मार्क की दृष्टि में रोमन कैथोलिक चर्च के अनुयायी और समाजवादी (The Black and the Red Internationals) ही सबसे भंयकर शत्रु थे। कैथोलिकों और समाजवादियों ने सशक्त राजनीतिक दल संगठित कर रखे थे और ये दोनों ही जर्मन साम्राज्य की महत्त्वाकाक्षाओं के विरुद्ध थे। बिस्मार्क स्वयं इन दोनों दलों के विरुद्ध कठिन संघर्ष में जुट पड़ा। वह चाहता था कि जर्मनी से कैथोलिकों और समाजवादियों का सदैव के लिये सफाया कर दिया जाय किन्तु उसे दोनों के विरुद्ध मुँह की खानी पड़ी।

वास्तव में १८६६ से ही बिस्मार्क रोमन कैथोलिकों से जलता था। कारण यह था कि जर्मनी के रोमन कैथोलिक ऑस्ट्रिया के समर्थक थे और प्रशा के प्रोटेस्टेण्ट राज्य परिवार के प्रति शत्रु-भाव रखते थे। पोप ने खुले रूप से प्रार्थना की थी कि ऑस्ट्रिया के हैप्सबर्ग परिवार की विजय हो। रोमन कैथोलिक चर्च उसी प्रकार नवीन जर्मन साम्राज्य से वैर-भाव रखता था जिस प्रकार कि अनेक पोप सदैव जर्मन सम्राटों के विरुद्ध रहा करते थे। बिस्मार्क सोचता था कि यदि १८७० के निर्णायक युद्ध में फ्रांस की विजय हो गई होती तो राईन (Rhine) के कैथोलिक प्रधान प्रान्तों की क्या दशा होती। पोप का जर्मनी में भारी प्रभाव था और सर्वसाधारण पर भी पोप का प्रभाव था। कैथोलिक दल एक राष्ट्र-विरोधी संस्था थी जो राज्य के बाहर की सत्ता से आदेश ग्रहण करती थी। गृह-नीति में बिस्मार्क जिस मार्ग का अनुसरण करता था उस मार्ग को कैथोलिक लोग अवरुद्ध करते थे और बिस्मार्क की विदेश नीति के निर्वहन में रोमन कैथोलिक रोड़ा बने हुए थे और वे पोप की ऐहिक सर्वोच्चता के समर्थक थे। इस प्रकार रोमन कैथोलिकों ने जर्मनी और इटली के बीच मैत्री स्थापित होने में कठिनाइयाँ उपस्थित कीं। वास्तव में रोमन कैथोलिक चर्च सर्वोच्च सत्ता के अन्दर सर्वोच्च सत्ता (*Imperium inimperio*) बना हुआ था। जब यह सिद्धान्त स्थापित हुआ कि पोप निर्भ्रान्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति है तब तो ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कोई राजा अपने ऐसे राज्य में राजा ही नहीं है जिसमें कैथोलिक प्रजा निवास करती हो। बिस्मार्क ने कहा था—"पोप की निर्भ्रान्तता का सिद्धान्त (Infallibility of the Pope) ही राज्य के लिए भारी खतरा है। पोप ने अपने लिए मनमाने अधिकार सुरक्षित कर रखे हैं। वह हमारी विधियों को निष्फल और त्याज्य घोषित कर देता है और वही हमारे देश में करारोपण करता है। संक्षेप में प्रशा में और कोई व्यक्ति इतना शक्तिशाली नहीं है जितना कि यह विदेशी।" बिस्मार्क इस तथ्य पर बल देता था कि रोमन कैथोलिकों का विरोध राजनैतिक महत्त्व रखता है। वह कहता था : "यह संघर्ष प्रोटेस्टेण्ट राज्य परिवार और कैथोलिक चर्च के बीच नहीं है। यह संघर्ष धर्म और अधर्म (belief and unbelief) के बीच भी नहीं है। यह तो उसी पुराने संघर्ष की पुनरावृत्ति है जिसमें ईसा को प्राण त्यागने पड़े ; वास्तव में यह उतना ही प्राचीन है जितनी कि मनुष्य जाति। यह संघर्ष वास्तव में सत्ता हथियाने का संघर्ष है। ऑलिस (Aulis) के सन्तों के विरुद्ध एगामेम्नन (Agamemnon) ने भी सत्ता के लिए ही युद्ध किया था जिसके फलस्वरूप उसे अपनी पुत्री से वंचित होना पड़ा था जबकि वह ट्रॉय (Troy) पर आक्रमण करने वाले ग्रीक लोगों को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। यह उसी संघर्ष की चलती हुई कहानी है जो मध्य काल में सदैव पोप और कैसरों (Kaisers) में होता रहा।"

किन्तु इस संघर्ष में सब तत्त्व जुट गए जो कैथोलिक चर्च के विरोधी थे। जब १८७० में वैटिकन काउन्सिल (Vatican Council) ने यह आज्ञा-पत्र निकाल दिया कि पोप के सब कार्य और सब निश्चय निर्दोष और निर्भ्रान्त होते हैं तब तो संघर्ष अनिवार्य हो गया। कुछ जर्मन कैथोलिक ऐसे थे जिन्होंने पोप की निर्भ्रान्तता के सिद्धान्त को मानने से इनकार कर दिया। ये जर्मन कैथोलिक प्रसिद्ध धार्मिक नेता डॉ० डॉलिन्जर (Dr. Dollinger) के अनुयायी थे। इस जर्मन कैथोलिकों के अतिरिक्त उदारवादी भी ऐसे लोग थे जिनके विचारों की निन्दा १८६४ में पोप ने की थी। इस प्रकार उदारवादी लोग भी रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध मैदान में आ गए। इनके अतिरिक्त वर्चाऊ (Virchow) भी एक प्रसिद्ध नास्तिक वैज्ञानिक था। वह भी रोमन कैथोलिकों के विरुद्ध था।

१८७१ में जर्मन साम्राज्य की राष्ट्रीय सभा या रीश्टाग (Reichstag) में ६३ सदस्य सेण्टर या कैथोलिक पार्टी (Centre or Catholic Party) के थे। रीश्टाग (Reichstag) में यह अनुशासनयुक्त एवं सुसंगठित विरोधी दल था जिसका नेता छोटे कद का किन्तु सशक्त विंडथॉर्स्ट (Windthorst) नामक एक योग्य व्यक्ति था। वह एक योग्य वक्ता था और धार्मिक भावों से ओत-प्रोत था तथा उसे महान् संसदीय अनुभव भी था। बिस्मार्क ने विश्वास किया कि वह कैथोलिक पार्टी का विघटन अवश्य करेगा। दक्षिणी जर्मनी में पोप की निर्भ्रान्तता (Infallibility) के सिद्धान्त के विरोधियों और समर्थकों में बराबर संघर्ष चल रहा था। उधर प्राचीन कैथोलिक लोग (Old Catholics), जो पोप की निर्भ्रान्तता के सिद्धान्त को अस्वीकार करते थे, सताये जा रहे थे। उन्हें धर्म-बहिष्कृत किया जा रहा था और विश्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालयों से भी उनको निकाला जा रहा था। बिस्मार्क ने कैथोलिक दल की इन हरकतों को चुनौती समझा और वह स्वयं भी कैथोलिकों के विरुद्ध मैदान में उतर आया।

१८७१ में एक संघीय विधि (Imperial Law) पास की गई जिसके द्वारा जैस्विट लोगों को और उनके सम्बन्धियों को जर्मनी से निर्वासित कर दिया गया। इसके साथ ही उक्त विधि द्वारा यह भी घोषित किया गया कि कोई पादरी धर्मवेदी से राज्य के मामलों के सम्बन्ध में भाषण न दे और ऐसे भाषण को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। प्रशा की संसद् (Prussian Landtag) ने १८७३ में मई के नियम (May Laws) बनाये। ये नियम कैथोलिकों के ऊपर भारी वज्रपात थे। इनके अनुसार सिविल विवाह को अनिवार्य कर दिया गया; जो व्यक्ति पुजारी (Priests) बनने के इच्छुक थे, उनकी शिक्षा पर राजकीय नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया और उनके लिए कुछ राजकीय परीक्षाएँ पास करना अनिवार्य कर दिया गया। पुनः, मई नियमों के अनुसार किसी को धर्मबहिष्कृत करने का अधिकार छीन लिया गया और यदि कैथोलिक चर्च ने किसी व्यक्ति को कुछ दण्ड दिया हो, तो ऐसे दण्डित व्यक्ति को अपील का अधिकार दे दिया गया। इसके अतिरिक्त मई नियमों के अनुसार समस्त कैथोलिक संस्थाएँ राज्य के नियन्त्रण में आ गईं और राज्य के अधिकारी उनका निरीक्षण करने लगे। यही नहीं, धार्मिक पुजारियों की नियुक्ति या वियुक्ति भी राज्याधिकार की परिधि में आ गए। दो वर्ष बाद तो सारी धार्मिक श्रेणियाँ ही समाप्त कर दी गईं।

पोप पायस नवम ने घोषणा कर दी कि मई नियमों (May Laws) का कोई मूल्य ही नहीं है और उसने रोमन कैथोलिकों को आज्ञा दी कि वे इन नियमों को मानने से इन्कार कर दें। बिस्मार्क भी पोप के विरुद्ध मैदान में डटा रहा और उसने कहा—"हम कैनोसा (Canossa)[1] नहीं जायेंगे और पोप के आगे नहीं झुकेंगे।" वर्चाऊ (Virchow) ने कैथोलिकों के विरुद्ध चलने वाले इस संघर्ष का नाम कुल्टुर्कैम्फ़ (Kulturkamph) रखा और यह संघर्ष पाँच वर्षों तक चला। किन्तु १८७८ में पोप पायस नवम की मृत्यु होने पर लियो त्रयोदश (Leo XIII) नया पोप बना, तो बिस्मार्क ने भी कैथोलिकों के प्रति समझौतावादी और नरम रुख अपनाया। इस संघर्ष से बिस्मार्क को कोई लाभ नहीं हुआ। वास्तव में तो उसकी कठिनाइयाँ ही बढ़ीं। नया पोप लियो त्रयोदश (Leo XIII) अधिक कूटनीतिज्ञ, निपुण और मध्यमार्गी था और वह बिस्मार्क से आधे मार्ग पर समझौता करने के लिए तैयार हो गया। यद्यपि पोप ने सिद्धान्तों पर समझौता नहीं किया बिस्मार्क ने

---

१. कैनोसा (Canossa) का नाम इतिहास में आता है। सम्राट् हैनरी चतुर्थ (Henry IV) और पोप ग्रेगरी सप्तम (Pope Gregory VII) में किसी बात पर झगड़ा था। किन्तु १०७७ में सम्राट् हैनरी चतुर्थ स्वयं पोप से मिलने और क्षमा-याचना करने के लिये कैनोसा (Canossa) पहुँचा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैथोलिक-विरोधी नियमों को वापस ले लिया, पोप के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध फिर से स्थापित कर लिए और धार्मिक संस्थाओं को फिर से स्थापित होने की अनुमति दे दी। १८८७ में बिस्मार्क और पोप के बीच समझौता हो गया जिसके आधार पर पोप ने पार्टी सेन्टर और कैथोलिक (Centre and Catholic Party) को आज्ञा दी कि वे नये जर्मन सेना विधेयक (New Imperial Army Bill) पर जर्मन सरकार के विरुद्ध मत न दें। इस आज्ञा पर सभी को आश्चर्य हुआ।

जब बिस्मार्क ने इस प्रकार कैथोलिको के आगे आत्म-समर्पण कर दिया, तो प्राचीन कैथोलिकों (Old Catholics) की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। बिस्मार्क ने उनको राष्ट्रीय जर्मन चर्च का जो सब्ज़ बाग दिखा रखा था उस सम्बन्ध में उनकी सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। सत्य यह है कि प्राचीन कैथोलिकों ने पूर्ण नकारात्मक स्थिति को अपनाया था और उनकी स्थिति का आधार इतना तंग था कि उस पर राष्ट्रीय चर्च जैसा विशाल महल खड़ा करना सरल नहीं था।

कैथोलिकों के साथ बिस्मार्क ने समझौता क्यों किया; इसके कई कारण थे। प्रथमतः, आर्थिक नीति में परिवर्तन होने के कारण बिस्मार्क ने उदार वर्गों का समर्थन खो दिया था। फ्रेंच-जर्मन युद्ध के पूर्व ऐसा दिखाई दे रहा था मानो सारा यूरोप एक समान व्यापार-व्यवस्था में संगठित होने जा रहा है। इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी प्रायः मुक्त व्यापार वाले देश थे। किन्तु १८७९ के आस-पास बिस्मार्क ने मुक्त व्यापार की नीति को त्याग दिया और १८७९ में उसने विदेशी अनाज और अन्य विदेशी सामान के आयात पर भारी आगम शुल्क लगा दिये। इससे जर्मनी के कृषक वर्ग को तो भारी लाभ हुआ किन्तु औद्योगिकों को हानि हुई। इस कारण समाजवादी प्रजातन्त्रवादियों (Social Democrats) के संगठन को शक्ति मिली।

बिस्मार्क ने कैथोलिकों के साथ इसलिए समझौता किया था कि वह समाजवादियों के साथ डटकर संघर्ष कर सके। समाजवादी प्रजातन्त्रवादी या सोशल डेमोक्रेटिक दल (Soeial Democrats) जर्मनी के राजनीतिक दलों में सबसे अच्छा संगठित दल था। सोशल डेमोक्रेट लोग राजतन्त्र के विरोधी थे और सैनिकता-विरोधी (anti-militarists) भी थे; और कैथोलिकों के समान उनका भी कोई स्वदेश नहीं था। इसलिए वे जर्मन साम्राज्य के शत्रु थे।

१८७८ में जर्मन साम्राज्य के सम्राट् का वध करने के दो निष्फल प्रयत्न किये गए। उनसे लाभ उठाकर बिस्मार्क ने हर प्रकार के समाजवादी संगठन का दमन करने के लिए राष्ट्रीय सभा या रीश्टाग (Reichstag) से अत्यन्त कठोर नियम बनवाए। समाजवादियों की सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिये गए, उनके प्रकाशन और प्रचार-कार्य को भी बन्द कर दिया गया और उनके ऐसे समस्त क्रिया-कलापों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया जिनका लक्ष्य तत्कालीन समाज और शासन को उलट देने से था। समाजवादियों के विरुद्ध मनमानी कार्यवाही करने के लिए पुलिस को व्यापक अधिकार दे दिये गए। समाजवादी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, समाजवादी साहित्य पर पाबन्दी लगा दी गई, समाजवादी समाचार-

समाजवादियों के साथ संघर्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों के सम्पादकों को जेलों में डाल दिया गया और समाजवादियों के धन को सरकार ने जब्त कर लिया।[1] यही नहीं, जिन भवनों में समाजवादी लोग सभाएँ करते थे उनके मालिकों को आज्ञा दी गई कि वे अपने मकानों या भवनों में समाजवादियों की सभाएँ न होने दें और तदर्थ उन लोगों को किराए पर न दें। किन्तु अत्यन्त कठोर होने के बावजूद इन नियमों से इच्छित लाभ नहीं हुआ। अब समाजवादी लोग अपना काम लुक-छिपकर करने लगे और उनका असन्तोष बढ़ता ही रहा। यद्यपि श्रमिक संघों (Trade Unions) को अवैध घोषित कर दिया गया था, फिर भी श्रमिकों के संघ (Workingmen's Associations) छिपे-छिपे उसी प्रकार बनते रहे जिस प्रकार कि इंग्लैण्ड में १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विभिन्न देशों और विभिन्न नामों से श्रमिक संघ क्रियाशील रहे थे। अब समाजवादी लुक-छिपकर चुपके-चुपके अपना काम करने लगे। यदि उनको जर्मनी में सभाएँ करने की आज्ञा नहीं थी तो वे पड़ोसी देशों में जा-जाकर सभाएँ करने लगे। समाजवादियों के मुकाबले में भी बिस्मार्क को उसी प्रकार मुँह की खानी पड़ी जिस प्रकार कि उसे कैथोलिकों के सामने परास्त होना पड़ा था। नवीन निर्वाचनों के फलस्वरूप रीश्टाग या राष्ट्रीय सभा में समाजवादियों की शक्ति बढ़ गई, अतः १८९० में उनके विरुद्ध दमनकारी नियमों को पुनः लागू नहीं किया गया।

समाजवाद का सामना करने में बिस्मार्क केवल क्रूर एवं दमनकारी नियम बनाकर ही सन्तुष्ट नहीं हो गया। उसने प्रयत्न किया कि श्रमिकों को समाजवादी संगठन से विमुख कर दिया जाय। उसने राज्य-समाजवाद (State Socialism) का प्रयोग किया और इस प्रकार उसने मजदूर वर्ग को यह विश्वास दिलाना चाहा कि सरकार को उनके कष्टों के प्रति पूरी सहानुभूति है, और सरकार उनके कल्याण के लिए सब कुछ करना चाहती है। १८८३ में बिस्मार्क ने बीमारी के विरुद्ध जीवन बीमा, १८८४ में उसने दुर्घटनाओं के विरुद्ध जीवन बीमा और १८८९ में उसने वृद्धावस्था में सहायता पहुँचाने वाली बीमा योजना चालू की। १९११ में इन तीनों कल्याणकारी योजनाओं को एकीकृत कर दिया गया और एक अत्यन्त व्यापक सुरक्षा-बीमा योजना (Social Insurance) निर्मित की गई जिसमें लगभग दो हजार अनुच्छेद थे। सम्भवतः, श्रमिकों की दशा को सुधारने के सम्बन्ध में अन्य किसी देश की सरकार ने ऐसी हितकारी और व्यापक योजना तैयार नहीं की थी। इस सम्बन्ध में बिस्मार्क सर्वप्रथम था। उसका राज्य-समाजवाद का प्रयोग इंग्लैण्ड और फ्रांस के सामाजिक कानूनों के निर्माण के लिए आदर्श बन गया। किन्तु, चूंकि जर्मनी में यह समस्त योजना सोशल डेमोक्रेटिक दल (Social Democratic Party) को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से तैयार की गई थी इसलिए जर्मनी में यह पूर्ण असफल सिद्ध हुई।

---

१. इन २७ वर्षों में उक्त दमनकारी नियम प्रभावी रहे, १४०० पुस्तकें जब्त की गईं, ९०० व्यक्तियों को निर्वासित किया गया और १५०० व्यक्तियों को जेलों में डाल दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च १८८८ में वृद्ध जर्मन सम्राट् की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु के फलस्वरूप जर्मन सम्राट् और जर्मन के प्रधान मन्त्री के बीच की वह महान् मित्रता समाप्त हो गई जिसके द्वारा महान् कार्य सम्पन्न हो सके थे। सत्य यह है कि जिन २५ वर्षों तक यह मित्रता अनेक विरोधों और अनेक अप्रसन्नताओं के बावजूद बनी रही, वह काल आधुनिक जर्मन इतिहास का महान् निर्णायक काल था और जर्मन इतिहास में इस काल का भारी महत्त्व है। थोड़े समय की साधारण बीमारी के पश्चात् ९१ वर्ष की आयु में वृद्ध सम्राट् की मृत्यु हो गई। बिस्मार्क ने लिखा था—"सम्राट् की हैसियत से यदि देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि वह (मृत जर्मन सम्राट्) शरीफ आदमी था। वास्तविक अर्थों में वह अत्यन्त शरीफ आदमी था। सत्ता के मद ने कभी उसको शराफत से नीचे नहीं गिरने दिया।"

विलियम प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका बीमार पुत्र केवल ९९ दिनों के लिये फ्रेडेरिक तृतीय (Frederick III) के उपनाम सहित राजसिंहासन पर बैठा। वह बीमार तो था ही अतः जून १८८८ में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसको इंग्लैण्ड का संविधान बहुत पसन्द था इस-लिये सम्भव है कि वह जर्मनी की एकतन्त्रीय शासन-प्रणाली की कठोरताओं को कुछ कम कर देता और सम्भवतः अपने उदार विचारों के कारण जर्मनी को कुछ का कुछ और ही बना देता। "वास्तव में वह ऐसा आदर्शवादी था जिसके आदर्शवाद की परीक्षा ही नहीं की जा सकी।" उसके पश्चात् उसका पुत्र कैसर विलियम द्वितीय (Kaiser William II) राजसिंहासन पर बैठा। अब जर्मनी को नया अधिपति मिला और उसके राज्यारोहण के साथ जर्मनी के इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

सम्राट् फ्रेडेरिक तृतीय (९ मार्च-१५ जून १८८८)

कैसर विलियम द्वितीय (Kaiser William II) २९ वर्षीय युवक सम्राट् था। वह महत्त्वाकांक्षी, साहसी और स्वेच्छाचारी था। वह कल्पनाशील और शीघ्र प्रभावित हो जाने वाला व्यक्ति था। अन्य होहेन्ज़ोलर्न राजाओं के समान वह भी दैवी अधिकार में विश्वास रखने वाला और सेनावाद से प्रभावित हो जाने वाला व्यक्ति था। अपने पूर्व पुरुष फ्रेडेरिक विलियम चतुर्थ (Frederick William IV) के समान ही उसमें भी मानसिक संतुलन का पूर्ण अभाव था। वह कृतसंकल्प था कि जर्मनी में वह राज्य भी करेगा और शासन भी करेगा। उसको न तो धैर्य था और न अनुभव था, इसलिए वह सहन नहीं कर सकता था कि बिस्मार्क के हाथों में सारी शक्ति केन्द्रित रहे। उस समय आम-तौर पर यह स्वीकार किया जाता था कि बिस्मार्क और उसका पुत्र ही वास्तव में होहेन्ज़ोलर्न सम्राटों के आका या स्वामी हैं। विलियम द्वितीय का अहंकारी स्वभाव इस बेइज़्ज़ती को कैसे बरदाश्त कर सकता था। बिस्मार्क का पुत्र काउण्ट हर्बर्ट (Count Herbert) भी, जो विदेश विभाग का मन्त्री था, बिस्मार्क के इशारों पर चलता था। कैसर विलियम द्वितीय ने अनुभव किया कि अपने मन्त्रिमण्डल की सभाओं में भी वह प्रभावहीन था। शीघ्र ही नवीन सम्राट् और वृद्ध चांसलर में व्यापक मतभेद उभरने

सम्राट् विलियम द्वितीय (१८८८-१९१८)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। अब तो बिस्मार्क के विरोधियों को भी मौका मिला और वे सम्राट् के कान बिस्मार्क के विरुद्ध भरने लगे। स्थिति यहां तक बिगड़ी कि सम्राट् और मन्त्री के बीच के सम्बन्ध अत्यन्त कटु और विरोधी बन गए। अब तक बिस्मार्क केवल सम्राट् के समर्थन के सहारे पर ही अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता चला आ रहा था। किन्तु फिर भी बिस्मार्क के हाथों में इतनी शक्ति थी कि वह सम्राट् के सारे राजनीतिक क्रिया-कलापों को उसी सीमा तक नियन्त्रित करता था मानो विलियम एक संवैधानिक शासक था और वह स्वयं (बिस्मार्क) सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न संसद् के प्रति उत्तरदायी मन्त्री था। तथ्य यह है कि सेवक ने मालिक की जगह दबा रखी थी। १८९० में संकट-काल उपस्थित हुआ। अब सम्राट् आज्ञाएँ देने लगा। बिस्मार्क इस प्रकार के व्यवहार का आदी नहीं था। सम्राट् ने जिद की कि स्वयं उसी की आज्ञाएँ चलेंगी। उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि बिस्मार्क उसकी आज्ञाएँ क्रियान्वित नहीं कर सकता तो अपने स्थान से हट जाए। बिस्मार्क ने सम्राट् से पूछा—"क्या मैं यह समझूँ कि मैं ही आप के मार्ग का काँटा हूँ।" सम्राट् ने उत्तर दिया, "हाँ"। घर आकर बिस्मार्क ने त्याग-पत्र तैयार किया। कितनी ही बार पहले भी वह त्यागपत्र देने की धमकियाँ दे चुका था किन्तु तब वह अपनी शक्ति दिखलाने के लिए ही त्याग-पत्र प्रस्तुत किया करता था। सम्राट् ने बिस्मार्क का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया और विरोधों के ऊपर पर्दा डालने के उद्देश्य से उसने बिस्मार्क को अनेक उपाधियाँ और सम्मान दिए। अनेक राजे और दरबारी एक-दूसरे का मुँह देखते रह गए। बहुत से तो बिस्मार्क से द्वेष करने लगे तथा बिस्मार्क के प्रति बहुत से लोगों की श्रद्धा बढ़ गई। किन्तु बिस्मार्क का ऐसा मान भंग हुआ था जिसे वह कभी नहीं भूला। उसने शीघ्र ही सम्राट् से, राजपरिवार के शाही राजकुमारों से, अपने मित्रों और सहयोगियों से विदा ली और तब वह चारलौटेनबर्ग (Charlottenburg) पहुँचा, जहाँ उसने अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा के साथ अपने मृत सम्राट् की कब्र पर गुलाब का फूल चढ़ाया और इसके बाद जीवन के शेष दिन बिताने के लिए वह देहात में चला गया। वह अपने हृदय में एक टीस और शिकायत लेकर गया था इसलिए उसने बारम्बार तत्कालीन शासन के ऊपर प्रहार किए जिनसे विलियम द्वितीय का सिंहासन भी डोल उठा। सम्राट् और उसके अवकाशप्राप्त मंत्री में सुलह नहीं हो सकी यद्यपि बिस्मार्क की अस्सीवीं वर्षगाँठ के अवसर पर ऊपरी तौर पर दोनों में मेल भी हो गया था। १८९८ तक बिस्मार्क सुनसान और अकेला जीवन बिताता रहा।

बिस्मार्क का पतन (मार्च, १८९०)

बिस्मार्क जर्मनी-रूपी जहाज़ का मुख्य चालक था। उसने बहुत समय तक उक्त जहाज़ को चलाया था। वह जानता था कि उक्त जहाज़ कई प्रकार की समुद्री चट्टानों से टकराकर चूर-चूर हो सकता था अतः उसने बड़ी ही सावधानी से जहाज़ को किनारे तक ला खड़ा किया था। किन्तु ऐसे निःस्पृह और योग्य चालक (Pilot) को बीच मँझधार में ही पदच्युत कर दिया गया था। वृद्ध सम्राट् वॉन रून (Roon) और वॉन मॉल्टके (Moltke) मर चुके थे। अब नया जमाना था और नए आदमी थे। बिस्मार्क के पद पर एक के बाद एक करके चार आदमी आए किन्तु कोई जम न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका। सबसे पहले बिस्मार्क के पद पर वॉन केप्रिवि (Von Cuprivi) आया। वह अनुभवहीन और मूर्ख था। वह चाँसलर के पद के सर्वथा अयोग्य था। वह एक सैनिक के रूप में कार्य कर चुका था। एक बार वह जहाज़ी बेड़े का कप्तान भी रह चुका था किन्तु स्वयं कैसर (Kaiser) के कथनानुसार उसने इस कारण त्यागपत्र दे दिया था क्योंकि वह जहाजी बेड़े के सम्बन्ध में इतनी जानकारी भी न रखता था जितनी जानकारी स्वयं सम्राट को थी। पुनः चार वर्ष पश्चात् वयोवृद्ध राजकुमार होहेंलो (Hohenlohe) ने चांसलर के पद पर पदार्पण किया। उसको तो वास्तव में बिस्मार्क को प्रसन्न करने के लिए ही चांसलर बनाया गया था। होहेंलो (Hohenlohe) की मृत्यु पर १९०० में राजकुमार वॉन बुलो (Von Bulow) चांसलर बना। वह साहसिक नीति का शासक था और इस प्रकार कैसर (Kaiser) के समान विचारों वाला ही व्यक्ति था। १९०९ में बिस्मार्क का चौथा उत्तराधिकारी बैथमैन हॉलवेग (Bethmann-Hollweg) बना। किन्तु इन सभी चाँसलरों के ऊपर सम्राट् कैसर सदैव पूरी तरह से छाया हुआ रहता था।

इस काल में जर्मनी के पास नया और मजबूत जहाजी बेड़ा था और इसी काल में जर्मनी ने महान् और आश्चर्जनक औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति की थी। जर्मनी का निकट पूर्व में विस्तार हुआ था और जर्मनी की विदेश नीति का सर्वत्र आदर था। इसी काल में आने वाले विश्वयुद्ध की घटा गहनतर होती जा रही थी और देश के अन्दर यह माँग जोर पकड़ती जा रही थी कि मताधिकार सम्बन्धी सुधार किए जाएँ एवं उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना हो। ज्यों-ज्यों प्रति पाँचवें वर्ष मताधिकार सम्बन्धी सुधार किए जाते रहे त्यों-त्यों देश में सोशल-डेमोक्रैटों (Social Democrats) का ज़ोर बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि १९१२ में राष्ट्रीय सभा या रीश्टाग में समाजवादियों के दल के ११० सदस्य पहुँच गए; और इस प्रकार राष्ट्रीय सभा में समाजवादी दल सबसे शक्तिशाली राजनीतिक दल बन गया।

× × ×

फ्रांस (१८७०-१९१४)

१८७० से लेकर १८७१ तक फ्रांस के ऊपर महत्तम संकट के बादल घिरे रहे। एक ओर विनाशकारी युद्ध चल रहा था जिसमें जर्मनी के हाथों फ्रांस को पराजय का मुख देखना पड़ रहा था; दूसरी ओर देश के अन्दर राजवंशीय संघर्ष और राजनीतिक संकट की काली घटा घिर रही थी; तीसरी ओर एक सामाजिक क्रान्ति शनैः-शनैः ज़ोर पकड़ रही थी जिसके कारण कठोर गृह-युद्ध अवश्यम्भावी हो गया था।

ज्योंही ४ सितम्बर को सीडान (Sedan) के पतन का समाचार पेरिस (Paris) में पहुँचा, और ज्योंही सम्राट् नेपोलियन द्वारा आत्म-समर्पण की कहानी सर्वत्र फैली, त्योंही एक अस्थायी रिपब्लिक या गणराज्य की घोषणा कर दी गई और युद्ध को जारी रखने के लिए तथा फ्रांस में राज्य-व्यवस्था बनाए रखने के लिए 'राष्ट्रीय सुरक्षा की सरकार' (Government of National Defence) बना दी गई। परंतु पेरिस के पतन के अगले दिन, १२ फरवरी को राष्ट्रीय सभा (National Assembly)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आयोजन किया गया। जर्मनी के साथ जो फ्रांस की सन्धि हुई थी उसी को पक्का करने के उद्देश्य से यह राष्ट्रीय सभा (National Assembly) बोर्डियो (Bordeaux) में समवेत हुई। साथ ही इस सभा का यह भी उद्देश्य था कि शासन का स्वरूप निश्चित कर लिया जाय। बिस्मार्क ने आत्म-समर्पण की जो शर्तें रखी थीं उनसे बचने का युद्ध के अतिरिक्त और कोई मार्ग न था। किन्तु फ्रांस हर कीमत पर शान्ति चाहता था। अतः यह निश्चित हुआ कि शासन का स्वरूप बाद में निर्णय किया जायगा और नवीन संविधान बनने तक थीयर्स (Thiers) को कार्यकारिणी का प्रधान चुन लिया जाय।

प्रशा की विजयी सेनाएँ पहली मार्च को पेरिस (Paris) में प्रविष्ट हुईं और ३ मार्च को वे पेरिस छोड़कर चली गईं किन्तु निश्चित यह हुआ कि जर्मन सेनाओं का अधिकार फ्रांस पर उस समय तक बना रहेगा जब तक कि फ्रांस युद्ध के भारी हर्जानों की धनराशि जर्मनी को न चुका दे। १८ तारीख को कम्यून (Commune) नामक विद्रोह प्रारम्भ हुआ। कम्यून एक प्रकार का ऐसा अजीबो-गरीब घोल था जिसमें विरोधी गुण और स्वभाव वाले उत्तेजक पदार्थ मिश्रित थे। एक ओर आहत मान था, दूसरी ओर राजनीति में भाग लेने की अदम्य इच्छा थी, तीसरी ओर सारे फ्रांस में अकाल की-सी स्थिति थी। पुनः, एक ओर लोगों में गण-तन्त्रवादी भावनाएँ थीं, दूसरी ओर समाजवादी विचार भी जड़ पकड़ चुके थे तथा तीसरी ओर विप्लववादी भी अवसर की ताक में बैठे थे। इन सबकी जड़ में पेरिस का मर्दित मान था। कहाँ तो पेरिस ने एक शताब्दी में दस बार अपने मन की बात सारे फ्रांस पर लादने का प्रयत्न किया था और कहाँ उस मानिनी पेरिसरूपी कामिनी को सैनिक घेरे में घिरे रहना पड़ा था। पेरिस का जर्मनी द्वारा घेरा वास्तव में अनोखा घेरा (Siege) था। पेरिसवासियों को घेरे में अपार कष्ट सहन करने पड़े थे। पेरिस रूपी मानिनी कामिनी का दर्प चूर्ण-चूर्ण हो चुका था और वह घायल सर्पिणी की भाँति दर्द के मारे बेचैन और अंधी हो रही थी, और बिना देखे या बिना सोचे-समझे वह चारों ओर फन पटक रही थी।

कम्यून (मार्च-मई १८७२)

धीरे-धीरे कम्यून (Commune) नामक विद्रोह ने क्रोध का रूप धारण कर लिया। पेरिसवासियों ने सैनिक घेरे के जमाने में अत्यन्त उत्तेजना के साथ यह आशा की थी कि सरकार उनकी सहायता को आयेगी किन्तु सरकार के कानों पर जूँ तक न रेंगी। पेरिस ने भय और क्षोभ के साथ देखा था कि उसकी प्राचीरों पर बम-वर्षा हो रही थी किन्तु जब तक बम-वर्षा से भारी हानि न हो चुकी, सरकार ने विश्वास भी न किया था कि ऐसा हो सकता है। पेरिस ने देखा था कि विजयी जर्मन सेनाएँ उसके आहत वक्षःस्थल पर चढ़ी बैठी हैं जबकि उसी समय राजतन्त्र-समर्थक राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने पेरिस के जले पर नमक छिड़कते हुए यह निश्चय कर डाला कि फ्रांस की राजधानी वार्साई (Versailles) होगी जो कि स्वयं राजतन्त्र का गढ़ थी, न कि पेरिस। पेरिस को इस कारण भी क्रोध था कि जहाँ उसे अपार हानि सहन करनी पड़ी थी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय सरकार ने पेरिसवासियों के कष्टों के निवारणार्थ कोई सहायक अनुदान नहीं दिया जिससे लोगों के कष्ट दूर हो सकते। पेरिस को यह भी शिकायत थी कि फ्रांस की राष्ट्रीय सरकार ने उस राष्ट्रीय रक्षक दल (National Guard) को भंग कर दिया जिसने पेरिस (Paris) की रक्षा में अपनी जान की बाज़ी लगा दी थी और जो केवल ३० सेंट प्रतिदिन लेकर अपना आधा पेट भर गुज़ारा करता रहा था। पेरिसवासी चार महीनों तक सैनिक घेरे में घिरे और पिसते रहे। उसके पश्चात् ही उनको महान् पराजय और मानहानि का आभास हुआ। उन्हें ऐसी निकम्मी सरकार के विरुद्ध क्रोध होना स्वाभाविक ही था, जिसने भयंकर घेरे के जमाने में पेरिस की कोई सहायता नहीं की। इसलिए पेरिसवासी ऐसी बेदिल सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए सन्नद्ध हो गये।

कुछ अन्य कारण भी थे। पेरिस का सारा व्यापार ठप्प पड़ा था और सारी आर्थिक और वित्तीय व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। नेशलन एसेम्बली (National Assembly) में राजतन्त्रवादियों का बहुमत था। इसलिए भय था कि फ्रांस में राजतन्त्र तो स्थापित होने नहीं जा रहा है। नेपोलियन ने अत्यधिक केन्द्रीकरण (Centralization) की नीति अपना रखी थी किन्तु सर्वसाधारण उससे छुटकारा पाना चाहते थे। समाजवादी तत्त्व भी राजतन्त्र-विरोधी थे और क्रान्तिकारी विनाशवादी (Revolutionary Nihilists) भी गणराज्य की स्थापना चाहते थे।

विद्रोह का आसन्न कारण यह था कि फ्रांस की तत्कालीन सरकार ने पेरिस में लगी हुई तोपों को हटाने का प्रयत्न किया। जो सैनिक उन तोपों को हटाने के लिये आये थे उनको उत्तेजित भीड़ ने घेर लिया और उनके हथियार छीन लिये गये। अब तो विद्रोहियों ने पेरिस पर अधिकार कर लिया और वार्साई (Versailles) स्थित फ्रेंच संसद[1] द्वारा पारित अधिनियमों को रद्द घोषित कर दिया। पुनः विद्रोहियों ने कम्यून स्थापित कर दिया और लाल झण्डा पेरिस पर लहराने लगा। उन्होंने फिर से क्रान्तिकारी पञ्चांग प्रारम्भ किया और राष्ट्रीय कर्मशालाएँ (National Workshops) स्थापित कर दी गईं। इसके उपरान्त विद्रोहियों ने घोषणा की कि प्रान्तों में भी पेरिस के समान ही पूर्ण स्वायत्त शासन की स्थापना होनी चाहिए। घोषणा कर दी गई कि सम्पूर्ण फ्रांस को कम्यूनों का संघ (Federated Communes) बनाया जाय। इस प्रकार सारे फ्रांस में स्थानीय शासनिक निकायों का जाल सा बिछा देने की योजना बनाई गई और प्रत्येक स्थानीय शासनिक निकाय (Local Unit) को पूर्ण स्वशासन देने का निश्चय किया गया। यह भी निश्चित किया गया था कि इन स्थानीय शासनिक निकायों में सर्वहारा वर्ग (Proletariat) का बोर्जुआ

---

१. यह निश्चित किया गया था कि नेशनल एसेम्बली (National Assembly) पेरिस के बजाय वार्साई (Versailles) में आहूत की जाय।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग (Bourgeoisie)[1] के ऊपर नियन्त्रण रहेगा। चूंकि कृषक वर्ग बोर्जुआ वर्ग का समर्थक था इसलिए कृषकों को भी स्थानीय शासनिक निकायों (Local Units) से अलग रखा गया था। इस प्रकार यह योजना बनाई गई थी कि अन्ततोगत्वा, फ्रांस समाजवादी कम्यूनों का स्वतन्त्र राष्ट्रमण्डल बन जाएगा। विद्रोहियों ने घोषणा कर दी कि फ्रांस में नया युग आ गया। नए युग के आगमन के साथ पुरानी राजनीतिक संस्थाओं और धर्म-प्रधान फ्रांस के विनाश की भी घोषणा कर दी गई। उसके साथ ही सैनिकवाद, नौकरशाही भावना, शोषण, केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए व्यापार और तरह-तरह के विशेषाधिकारों का भी अन्त घोषित कर दिया गया। वास्तव में सर्वहारा वर्ग को गुलाम बनाने वाले और पितृ देश को इस अधोगति में पहुंचाने वाले यही तत्त्व और यही कारण थे। पेरिस में निर्वाचन हुए। चूंकि निर्वाचन में केवल विप्लववादियों (Radicals) ने ही भाग लिया था अतः उन्होंने अपने ही निश्चयों पर स्वीकृति की मुहर लगा दी।

अब थीयर्स (Thiers) के सामने एक ही मार्ग था कि वह विद्रोहियों का दमन करे। विजयी जर्मन, जो निकट के पहाड़ों पर डेरा डाले पड़े थे, तमाशा देख रहे थे कि स्वयं फ्रेंच लोग फ्रेंच लोगों को घेरे पड़े थे और इस प्रकार अप्रैल मास में पुनः पेरिस को घेर लिया गया। चूंकि विद्रोहियों (Communards) को युद्ध सैनिक (Belligerents) नहीं माना जाता था, इसलिए जिन विद्रोहियों को पकड़ लिया जाता था उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता था, और फिर बदले में विद्रोहियों ने भी पेरिस के मुख्य अधिकारी को भी पकड़ लिया। पेरिस के चारों ओर सुरक्षात्मक दीवारें थीं, रक्षक दुर्ग थे और इस प्रकार नगर छः सप्ताहों तक घिरा रहा। किन्तु धीरे-धीरे एक के बाद एक दुर्ग सरकार के हाथ में आते रहे और जब पेरिस के अन्तिम रूप से पतन की नौबत आई तो दोनों ओर से भीषण रक्तपात हुआ और इस युद्ध का अन्तिम सप्ताह बहुत ही भयानक सिद्ध हुआ। विद्रोहियों ने जिन अधिकारियों को पकड़ रखा था, उनमें पेरिस के महाधर्माधिकारी (Archbishop of Paris) भी थे। उन सभी बन्दियों को मौत के घाट उतार दिया गया। तोपों के गोलों से पेरिस की अनेक इमारतें धूल चाटने लगीं। अब सरकारी सैनिकों ने विद्रोहियों (Communards) का पीछा किया और गली-गली में ढूंढ़-ढूंढ़कर उनको भून डाला गया। यहाँ तक कि सीन (Seine) नदी खून से लाल हो गई और हजारों विद्रोहियों को बन्दी बनाया गया। अन्तिम युद्ध पेयर-ला-चेज़ (Pere Lachaise) के मकबरों में लड़ा गया था। इस युद्ध में वेण्डोम नामक स्मारक (Vendome Monument) भी नष्ट हो गया था।

तत्कालीन सरकार ने विद्रोहियों (Communards) से भयानक बदला लिया। प्रायः १७,००० विद्रोही तो मारे गए, ४५,००० विद्रोही बन्दी किए गए जिनमें

---

१. १८४८ के विद्रोह के समान ही १८७० का कम्यून का विद्रोह भी किसी सीमा तक नगरों के श्रमिक वर्ग का विद्रोह था। १७८९, १८३० और १८४८ के विद्रोहों के फलस्वरूप कृषकवर्ग एवं नगरों के मध्यम वर्ग को पर्याप्त विशेषाधिकार प्राप्त हो गए थे। अतः १८७० का कम्यून एक प्रकार से कृषक वर्ग और मध्यम वर्ग के इन्हीं विशेषाधिकारों के विरुद्ध विद्रोह था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अनेक को सज़ाएँ हुईं, अनेक को देशनिकाला हुआ और अनेक को मौत के घाट उतार दिया गया; और बहुत से भाग भी गए। पेरिस की भयानक तानाशाही समाप्त हो गई और एक पीढ़ी के लिए लोकतन्त्र का खून हो गया। पेरिस की पराजय के साथ-साथ उस शताब्दी के अन्त तक के लिए समाजवाद की भी पराजय हो गई। पूंजीपतियों और श्रमिकों के सम्बन्ध सदैव के लिए कम्यून की यादगार और कम्यून में बहाए गए रक्त के कारण कटु हो गए।

जब कम्यून या विद्रोह को शान्त कर दिया गया तो सरकार का ध्यान राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की ओर गया। सबसे मुख्य प्रश्न तो यह था कि युद्ध की भारी हानि-पूर्ति की रकम को चुका दिया जाय। अत्यन्त शीघ्रता के साथ धन एकत्रित किया गया। तीन अरब फ्रांक की अपील की गई और जवाब में तुरन्त ४,२०० करोड़ फ्रांक प्राप्त हो गए।

हानि-पूर्ति

सम्भवतः बिस्मार्क ने सोचा होगा कि फ्रांस एक पीढ़ी तक अशक्य बना रहेगा किन्तु दो वर्षों के अन्दर ही सारी हानि-पूर्ति की रकम चुका दी गई और जर्मन सैनिकों को फ्रांस से हटा लिया गया। इसके अतिरिक्त रेल-मार्गों को दुरुस्त करना था, पुलों की मरम्मत करनी थी, सार्वजनिक और प्राइवेट इमारतों की भी मरम्मत करनी थी और दुर्गों को भी पुनः तैयार करना था। किन्तु फ्रांस की सरकार ने यह सारा कार्य शीघ्रता और अत्यन्त सुविधा के साथ कर डाला। द्वितीय साम्राज्य ने व्यापार और वाणिज्य की दिशा में भारी प्रगति की थी। किन्तु इस रक्तपात के कारण वाणिज्य और व्यापार को भी भारी हानि नहीं हुई थी। युद्ध-पूर्व के अनुसार उद्योग और वाणिज्य चमकने लगे। १८७८ में जो महान् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी फ्रांस में हुई वह १८६७ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के समान ही थी यद्यपि उसकी बाहरी रूप-सज्जा और चमक-दमक चाहे उतनी न थी।

फ्रांस के पुनर्निर्माण के संबन्ध में थीयर्स (Thiers) की सरकार के सामने दूसरा कार्य था सेना को पुनर्गठित करना। १८७० के युद्ध से प्रतीत हो गया था कि फ्रांस की सेना में न तो युद्ध-कौशल है और न युद्ध की तैयारी। प्रशा की सेना वैज्ञानिक आधार पर प्रशिक्षित की गई थी और उसके सामने फ्रांस अपनी रक्षा नहीं कर सका। १८७२ में आवश्यक सैनिक सेवा अधिनियम पास किया गया। इसके अनुसार फ्रेंच सेना को प्रशा के आदर्श पर पुनर्गठित किया गया। पाँच वर्ष के लिए सभी पुरुषों के लिए सेना की सेवा आवश्यक कर दी गई। इसके पश्चात् सभी प्रशिक्षण-प्राप्त सैनिकों को आरक्षित बलों (Reserve Forces) के रूप में तैयार रखा जाता था। इस अधिनियम को सभी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार फ्रांस की सेना का कायाकल्प हो गया, जिससे बिस्मार्क को कुछ बेचैनी महसूस होने लगी।

सेना का पुनर्गठन

इसके पश्चात् उसने इस बात पर ध्यान दिया कि विधान का रूप क्या होना चाहिए। किन्तु इस सम्बन्ध में सर्वसम्मत निर्णय करना अत्यन्त कठिन था। स्वयं राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में राजतन्त्रवादियों का बहुमत था, क्योंकि वह 'युद्ध या शान्ति' के प्रश्न को लेकर निर्वाचित की गई थी और चूंकि उस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजतन्त्रवादी गणतन्त्रवादियों की अपेक्षा शान्ति के अधिक इच्छुक थे। फिर भी जहाँ तक फ्रांस के विधान के स्वरूप का सम्बन्ध था, लोग फ्रांस में गणराज्य की स्थापना करना चाहते थे। और चूंकि स्वयं राजतन्त्रवादियों में सम्राट् के चुनाव के सम्बन्ध में भारी मतभेद थे अतः गणतन्त्रवादियों के मन की बात होकर रही। यद्यपि राष्ट्रीय सभा में राजतन्त्रवादियों का स्पष्ट बहुमत था फिर भी फ्रांस में गणराज्य की स्थापना हुई। यद्यपि गणराज्य के ऊपर चारों ओर से आक्षेप हुए फिर भी गणराज्य मजबूती से जमा रहा। १८७० के युद्ध के पश्चात् के फ्रांस का आन्तरिक इतिहास इसी प्रश्न पर आधारित है।

फ्रेंच राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में राजतन्त्रवादी दल में भी तीन सदस्य थे जो चाहते थे कि नेपोलियन तृतीय के पुत्र को फ्रांस का राजसिंहासन दिया जाय। अन्य सौ न्याय्य राजतन्त्रवादी (Legitimists) थे जो कॉम्टे डी चेम्बर्ड (Comte de Chambord) को फ्रांस का सम्राट बनाना चाहते थे। यह बोरबन वंशीय चार्ल्स दशम (Charles X) का पौत्र था। तीसरे वर्ग में तीन सौ सदस्य थे जो ऑर्लियन्स वंशीय लुई फिलिप (Louis Philippe) के पोते कॉम्टे डी पेरिस (Comte de Paris) को फ्रांस का राजमुकुट अर्पित करना चाहते थे।

स्वयं थीयर्स (Thiers) भी राजतन्त्रवादी था और ऑर्लियन्स राजवंश का समर्थक था। १८७१ में उसको फ्रेंच सरकार का प्रधान या अध्यक्ष (Chief of the Executive Government) नियुक्त किया गया था। जब उसने देखा कि स्वयं राजतन्त्रवादी दल में फूट है तो उसने घोषणा कर दी कि फ्रांस में गणराज्य की स्थापना की जाती है। उसने यह इस आधार पर किया कि 'गणराज्य हमें सबसे कम विभाजित करता है।' संवैधानिक समस्या को हल करने का यही सर्वाधिक सरल उपाय था कि रूढ़िवादी गणतन्त्र (Conservative Republic) की स्थापना की जाय। इस पर सब राजतन्त्रवादी (Monarchists) भड़क उठे और वे सब एक हो गये। अब उन्होंने थीयर्स (Thiers) को पद-त्याग करने के लिए विवश किया। विवश होकर थीयर्स ने १८७३ में त्यागपत्र दे दिया। जिस समय थीयर्स (Thiers) को फ्रांस की सरकार का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था, उस समय उसकी आयु ७३ वर्ष थी। अपने यौवन-काल से ही उसका नाम फ्रांस की राजनीति में आदर के साथ लिया जाने लगा था। उसका छोटा शरीर, उलझे हुए पैशाचिक बाल और बहुत बड़ा चश्मा व्यंग्य चित्रकारों के लिये बहुत काम की चीजें थीं। वह योग्य पत्रकार था, इतिहास-वेत्ता था और राजनीतिज्ञ था। उसकी योग्यता उस समय अधिक प्रखर लगती थी, जब वह शक्ति के किसी उच्च पद पर होता था किन्तु विरोधी नेता के रूप में उसकी योग्यताएँ प्रकाश में नहीं आने पाती थीं। १८३० में चार्ल्स दशम (Charles X) को राजसिंहासन से उतारने में उसका हाथ था; वह लुई फिलिप (Louis Philippe) का मन्त्री रह चुका था। वह स्वयं नेपोलियन का प्रशंसक था और उसने लुई नेपोलियन (Louis Napoleon) को द्वितीय गणराज्य का प्रधान बनवाने का समर्थन किया था। इसके पश्चात् कुछ समय तक वह राजनीति से अलग रहा किन्तु १८६३ में उसने पुनः राजनीति में प्रवेश किया और वह प्रायः हर प्रश्न पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार की आलोचना करने लगा। मैक्सिको के विनाशकारी अभियान (Mexican Expedition) को उसने मूर्खतापूर्ण बताया और सैडोवा (Sadowa) के पतन के पश्चात् की सम्राट की विदेश-नीति की भी उसने कई बार आलोचना की। द्वितीय साम्राज्य के पतन में भी उसका हाथ था और उसी ने फ्रांस में युद्धोन्माद प्रवाहित किया था, जिसका दुःखद परिणाम १८७० की पराजय हुआ। किन्तु युद्ध के वह विरुद्ध था और इसी कारण कुछ समय के लिए वह देश में बदनाम हो गया था। सीडान (Sedan) की विनाशकारी पराजय के पश्चात्—जिसने उसके सत्य-विवेक को सिद्ध कर दिया था—फ्रांस की पराजित आँखें उसी की ओर लग गईं और उसका सारा सार्वजनिक जीवन देशभक्ति और देशसेवा में लग गया। उसने यूरोप की विभिन्न राजधानियों का दौरा किया और उसी को बिस्मार्क के साथ १८७० की पराजय के पश्चात् शान्ति-सन्धि की शर्तों के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए भेजा गया। यद्यपि वह बिस्मार्क को प्रभावित करके संतोषजनक शर्तें प्राप्त नहीं कर सका फिर भी उसकी लोकप्रियता कम नहीं हुई। उसी ने कम्यून (Commune) नामक विद्रोह का दमन किया और उसी के प्रयत्नों के फलस्वरूप फ्रांस अपने पैरों पर खड़ा हो सका।

थीयर्स (Thiers) के पतन के पश्चात् इस बात का प्रयत्न किया गया कि राजतन्त्रवादियों के आपसी विरोध कम हो जाएँ और उनके उद्देश्यों में एकरूपता आ जाये। राजतन्त्रवादियों के दो वर्ग मिल गये और उन्होंने निर्णय किया कि कॉम्टे डी चम्बर्ड (Comte de Chambord) को ही हैनरी पञ्चम (Henry V) के नाम से फ्रांस के राजसिंहासन पर बिठाया जाय। उन्होंने यह भी निश्चित किया कि चूँकि कॉम्टे डी चैम्बर्ड निःसन्तान है अतः उसके निधन पर कॉम्टे डी पैरिस (Comte de Paris) को फ्रांस का भावी सम्राट् अभी से घोषित कर दिया जाय। ऐसा प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगा कि फ्रांस में शीघ्र ही राजतन्त्र पुनः स्थापित होने जा रहा है किन्तु राजतन्त्रवादियों का प्रभाव क्षीण हो गया। इसका कारण यह नहीं था कि गणतन्त्रवादियों में प्रबलता आ गई हो बल्कि कॉम्टे डी चैम्बर्ड (Comte de Chambord) की अत्यधिक बोरबनवंशीय प्रकृति के कारण ही राजतन्त्र की पराजय हुई। इसमें सन्देह नहीं है कि कॉम्टे डी चैम्बर्ड अपने परिवार का सच्चा पुत्र था। उसने न कुछ शिक्षा ग्रहण की और न वह कुछ भूल सका। वह चाहता था कि अपने पितामह चार्ल्स दशम (Charles X) के समान स्वेच्छाचारी शासक बने। वह इस बात पर हठ कर गया कि उसके राज्य-काल में फ्रांस का वही पुराना झण्डा होगा जिस पर लिली के फूल होंगे और जो सफेद रंग का होगा और जो निरंकुश राजतन्त्र का प्रतीक होगा। राष्ट्रीय झण्डे के स्वरूप के प्रश्न पर बातचीत समाप्त हो गई। हैनरी पञ्चम (Henry V) किसी भी हालत में हैनरी चतुर्थ के सफेद झण्डे के स्थान पर फ्रांस के उस तिरंगे झण्डे को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ जिसे दोनों क्रान्तियों ने स्वीकार कर लिया था।

राजतन्त्रवादियों की हलचलें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉम्टे डी चैम्बर्ड (Comte de Chambord) के हठ और अदूरदर्शिता ने राजतन्त्र की महान् हानि की। फ्रांस किसी भी हालत में उस तिरंगे झण्डे को त्यागने के लिए तैयार नहीं था जिसके साथ उसकी सुखद अभिलाषाएँ, अमर स्मृतियाँ और अमिट लाभ जुड़े हुए थे। इस प्रकार जिस समय राजतन्त्रवादी (Monarchists) सफलता के दरवाजे को सर करने ही वाले थे, उसकी सारी आशाएँ धूल में मिल गईं। अब गणतन्त्रवादियों के हाथों में ऐसा स्वर्ण अवसर आ गया जिसका उन्होंने पूरा-पूरा उपयोग किया। मार्शल मैक्माहोन (Marshal Macmahon) एक राजतन्त्रवादी (Royalist) था जो फ्रेंच सरकार का अध्यक्ष था। चूंकि राजतन्त्रवादियों का अभी तक राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में बहुमत था, अतः उन्होंने पास करा लिया कि मैक्माहोन (MacMahon) सात वर्ष फ्रेंच सरकार का अध्यक्ष बना रहेगा। इधर थीयर्स (Thiers) के पतन से गणतन्त्रवादियों में तीव्र प्रतिक्रिया जाग उठी और गैम्बैटा (Gambetta) देश के कोने-कोने में जनता को प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्तों में शिक्षित करने के लिए प्रचार करने लगा। सारे देश में गणतन्त्र के पक्ष में ऐसी लहर दौड़ गई कि राष्ट्रीय सभा के लिए उपचुनाव करने आवश्यक दिखाई देने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि देश में सुसंगठित और विधान-संगत शासन होना ही चाहिए,

गणतन्त्र की विजय (१८७५)

अतः १८७५ में फ्रांस में नया संविधान (Omnibus Constitution) बना। यह संसदीय संविधान था जिसमें उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल था, एक सीनेट थी, एक लोक सदन (Chamber of Deputies) था जो सार्वभौम मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होने को था। किन्तु यह तो कम-से-कम शर्तें थीं जो जनतन्त्र और गणतन्त्र दोनों में ही हो सकती थीं। वास्तविक निर्णय राष्ट्र के प्रधान के सम्बन्ध में होना था। केवल एक मत की अधिकता से यह निर्णय हुआ कि राज्य या राष्ट्र के प्रधान को 'गणराज्य का प्रधान' (President of the Republic) कहा जाएगा। इस प्रकार १८७५ में भी १७९२ और १८४८ की भाँति फ्रांस को गणराज्य घोषित किया गया था किन्तु जहाँ १७९२ और १८४८ में निर्भीकता और शान के साथ गणराज्य की घोषणा की गई थी, १८७५ में मानो भीरुता से और क्षमा माँगते हुए गणराज्य की घोषणा की गई थी जबकि मानो देश की एक आँख राजतन्त्र की ओर भी लगी थी। नवीन संविधान छोटा था, अल्पकालीन था और तटस्थ था। यह गणराज्य और राजतन्त्र में समझौता-मात्र था। यह किसी वाद या सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया था। मौलिक अधिकारों के सिद्धान्तों पर इसका निर्माण नहीं हुआ था। किन्तु १७८९ से अब तक फ्रांस में नौ संविधान बन चुके थे और उन नौ में से यह १८७५ का संविधान सबसे दीर्घ काल तक प्रभावी रहा। सत्य यह है कि एक-दो साधारण परिवर्तनों के साथ जो १८८४ में हुए, वही संविधान १९४६ तक चला।

संविधान

नवीन निर्वाचनों के फलस्वरूप निम्न सदन में गणतन्त्रवादियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त हो गया किन्तु उनको तब तक संतोष नहीं हुआ जब तक कि उनका बहुमत सीनेट अथवा उच्च सदन (Senate) में नहीं हो गया। १८७९ में जूल्स ग्रेवी (Jules

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Grevy) फ्रांस गणराज्य का प्रधान बना। ग्रेवी (Grevy) पक्का गणतन्त्रवादी था।

गणतन्त्रवाद की पूर्ण विजय

गणतन्त्रवादियों की विजय पूर्ण थी। वास्तव में यह विजय पूर्ण अर्थ रखती थी क्योंकि कुछ ही दिन पूर्व राजतन्त्रवादियों (Royalists) ने मैकमाहोन (MacMahon) की अधीनता में गणतन्त्रवादियों (Republicans) के विरुद्ध १८७७ में राज्य का तख्ता उलट देने का प्रयत्न किया था। राज्य-परिवर्तन (Coup d' etat) का प्रयत्न तो सफल नहीं हुआ और १८७९ में मैक्माहोन (MacMahon) को त्यागपत्र देना पड़ा। किन्तु यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि गणतन्त्रवादी सदैव राष्ट्र के प्रधान के प्रति सशंकित रहते थे और यह मानना पड़ेगा कि १९१३ तक जितने राष्ट्र के प्रधान (Presidents) चुने गये, वे अपने नकारात्मक गुणों के कारण प्रधान-पद पर निर्वाचित हुए थे न कि अपने स्पष्ट और निश्चित गुणों के कारण।

१८८२ में गैम्बैटा (Gambetta) की मृत्यु हो गई, किन्तु जिस गणराज्य की स्थापना के लिए उसने प्राणपण से प्रयत्न किया था, वह इतने दृढ़ आधार पर स्थापित हो चुका था कि शत्रुओं के आघातों और प्रत्याघातों के बावजूद वह मजबूती से जमा रहा।

१८८०-१८९० के दशक के उत्तरार्द्ध में बुलेंजिस्ट लोगों (Boulangists) की ओर से गणतन्त्रवादियों को चुनौती मिली। इस दशक में गणतन्त्रवादियों की शक्ति कुछ क्षीण हो चली थी। १८८३-१८८४ में तो

बुलेंजिस्ट आन्दोलन

वे इतने सशक्त थे कि उन्होंने विधानमण्डल में यह पास करा लिया कि गणतन्त्रीय शासन का स्वरूप कभी बदला नहीं जा सकेगा और जिन राज-परिवारों ने कभी फ्रांस के ऊपर शासन किया है, उनके किसी उत्तराधिकारी को कभी भी फ्रांस गणराज्य के प्रधान-पद के लिए निर्वाचित नहीं किया जा सकेगा। किन्तु १८८५ में पाँसा पलटा और राजतन्त्रवादी (Monarchists) चुनावों में लगभग आधे मत प्राप्त कर गये। इसके विपरीत गणतन्त्रवादियों में आपस में ही फूट पड़ गई जिससे वे और भी कमजोर हो गए। गणतन्त्रवादियों में एक वर्ग अवसरवादियों (Opportunists) का था जो गैम्बैटा (Gambetta) के अनुयायी थे और दूसरा वर्ग उग्रवादियों या उन्मूलनवादियों (Radicals) का था जिनका नेता क्लीमैन्शो (Clemenceau) था जो तलवार और जबान दोनों का धनी था। यद्यपि गणतन्त्रवादी ग्रेवी (Grevy) पुनः फ्रांस गणराज्य का प्रधान निर्वाचित हो गया, और यद्यपि उसने घबराहट के साथ फ्रांस के राज-परिवारों के प्रमुख व्यक्तियों को फ्रांस से निष्कासन की आज्ञा भी दे दी परन्तु गणतन्त्रवादी अपनी कमजोर स्थिति से अवगत थे। कारण यह था कि फ्रांस में विधानमण्डल में कभी द्विदल पद्धति के आधार पर स्पष्ट बहुमत किसी भी एक दल को नहीं मिला है और इसीलिए मन्त्रिमण्डलों का शीघ्र पतन फ्रांस की एक विशेषता रही है। विभिन्न और कभी-कभी विरोधी हितों वाले वर्ग फ्रांस में गठबन्धन कर लिया करते थे और जहाँ किसी प्रकार के स्वार्थों में टक्कर हुई कि मन्त्रिमण्डल का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पतन हो जाता था। जर्मनी के समान ही फ्रांस में भी संसदीय बहुमत का स्थायी मूल्य न था। गणतन्त्रवादियों की स्थिति एक बदनामी के कारण खतरे में पड़ गई। राष्ट्रपति ग्रेवी (President Grevy) के दामाद ने अपनी पदवियों को बेच दिया। इससे रिपब्लिक के सम्मान को ठेस पहुँची। ऐसे ही नाजुक समय में बुलेंजर (Boulanger) और उसके साथी गणतन्त्रवादियों के विरुद्ध मैदान में आ गए।

गैम्बेटा (Gambetta) का विचार था कि बुलेंजर (Boulanger) फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ चार अफ़सरों में से एक अफ़सर था। १८८६ में उसे युद्ध-मन्त्री बना दिया गया। वह निःसंकोची और आकर्षण-युक्त व्यक्ति था तथा उसकी भारी महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। उसने सेना के सिपाहियों के आराम बढ़ा दिये और इस प्रकार वह सेना में लोकप्रिय हो गया। अब उसने प्रयत्न किया कि देश में भी लोकप्रिय बने। उसने अत्यधिक देशप्रेम की शेखी मारना शुरू किया और जर्मनी से बदला लेने की अहंभाव भरी बातों से जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना आरम्भ किया। उसकी बातों में आकर लोगों ने शोर मचाना शुरू कर दिया कि हम तो एल्सेस-लॉरेन (Alsace Lorraine) लेकर रहेंगे। सारे देश में बुलेंजर (Boulanger) के अनेक अनुयायी पैदा हो गए जो केवल दो आधारों पर एकमत थे। वे सभी बुलेंजर के भक्त थे और सरकार के विरोधी थे। बुलेंजर के अनुयायियों में राजतन्त्रवादी थे, पादरीगण थे, बोनापार्टवादी थे, समाजवादी थे और देशभक्त थे। बुलेंजर का ध्येय सम्भवतः यह था कि संसदीय शासन का अन्त हो और देश में बुलेंजिस्ट तानाशाही (Boulangist Dictatorship) स्थापित हो जाय। १८८८ में सरकार का पतन हुआ और तुरन्त ही उसको प्रान्तों में सेना की टुकडी का कमाण्डर बनाकर भेज दिया गया। परन्तु १८८८ के अन्त में वह बिना छुट्टी लिए ही पेरिस (Paris) वापस आ गया। जब सेना के अधिकारियों ने उसको कमीशन से वंचित कर दिया तब कई निर्वाचन क्षेत्रों से वह निर्वाचित होकर राष्ट्रीय सभा के निम्न सदन (Chamber) में पहुंच गया। जनवरी, १८८९ में सीन (Seine) और पेरिस (Paris) के निर्वाचन-क्षेत्रों ने भी उसी को निर्वाचित किया। यदि उसने उसी समय सरकार पर प्रहार कर दिया होता तो सम्भवतः वह सरकार को उलट देता। किन्तु वह चूक गया और उसने अवसर हाथ से निकल जाने दिया। अब गणतन्त्रवादियों की आँखें सम्भावित खतरे के प्रति खुलीं। बुलेंजर को गिरफ्तार करने के आदेश दे दिये गए। इस पर वह देश छोड़कर भाग गया। उसकी अनुपस्थिति में ही उसके ऊपर मुकद्दमा चलाया गया और देशद्रोह के कारण उसको दोषी ठहराया गया। किन्तु कुछ ही महीनों के बाद नेपोलियन के समान इस दुस्साहसी सैनिक ने ब्रुसेल्स (Brussels) में आत्महत्या कर ली।

इस प्रकार रिपब्लिक की ही विजय हुई। किन्तु पनामा नहर के डायरेक्टरों के एक धोखे के आचरण से रिपब्लिक की बदनामी बढ़ गई।[1] राजतन्त्रवादियों ने

१. १८८८ में पनामा कम्पनी का दिवाला निकल गया, जिसके कारण अनेक लोगों को भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। जाँच-पड़ताल करने पर पता चला कि कुछ सरकारी अधिकारियों और संसद के कुछ सदस्यों ने बेईमानी की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिपब्लिक की इस बदनामी से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहा किन्तु निर्वाचनों में गण-तन्त्रवादियों की ही विजय हुई और राजतन्त्रवादी पराजित हुए। कारण यह था कि रिपब्लिक काल में व्यापार और वाणिज्य की अपार उन्नति हुई थी, सार्वजनिक शिक्षा का विस्तार हुआ था तथा फ्रांस ने अनेक समुद्र पार के उपनिवेश; विशेषकर अफ्रीका (Africa) और मैडागास्कर (Madagascar) में प्राप्त किए थे। इस प्रकार उपनिवेशों की दृष्टि से फ्रांस केवल ब्रिटेन से पीछे था। इन सब महान सफलताओं के कारण रिपब्लिक को सर्वसाधारण का भारी समर्थन प्राप्त हुआ। यहाँ तक कि १८९३ में स्वयं पोप लियो त्रयोदश (Leo XIII) ने अपने कैथोलिक अनुयायियों को आदेश दिया कि वे गणतन्त्रवादी सरकार का समर्थन करें।

एम० क्लीमेन्शो (M. Clemenceau) और अन्य उन्मूलनवादी लोग बराबर सरकारों पर छाये हुए थे, किन्तु अगले वर्षों में सबसे अधिक उत्तेजना प्रसिद्ध ड्रेफ़स केस (Dreyfus case) के कारण रही। यह कहानी १८९४ से प्रारम्भ हुई जबकि एल्फ्रेड ड्रेफ़स (Alfred Dreyfus) नामक एक एल्सेस—निवासी यहूदी को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। ड्रेफ़स (Dreyfus) जनरल स्टाफ का एक सैनिक अफसर था और उसके ऊपर यह अपराध लगाया गया था कि वह अपने देश के सैनिक भेद शत्रु देशों को देता है। उसके ऊपर बन्द कमरे की अदालत में मुकद्दमा चलाया गया और उसको दोषी ठहराया गया। पेरिस के सैनिक स्कूल के खुले आँगन में उसकी सार्वजनिक रूप से बेइज्जती की गई, जिसमें उसकी तलवार को तोड़ डाला गया और उसकी वर्दी को भी फाड़ डाला गया। इसके पश्चात् उसको आजीवन कारावास का दण्ड भुगतने के लिए डैविल्स आइलैण्ड (Devil's Island) को निर्वासित कर दिया गया जो गाइना (Guiana) से भी दूर एक फ्रेंच उपनिवेश था। एल्फ्रेड ड्रेफस (A. Dreyfus) ने अपने आप को निर्दोष बताया किन्तु फ्रांस में आम तौर पर उसके अपराध को स्वीकार कर लिया गया क्योंकि यहूदियों के विरुद्ध सर्वसाधारण में एक आम धारणा बन गई थी, और पनामा नहर के झगड़े में भी यहूदी लोग ही विशेष रूप से सरकार की बदनामी का कारण थे। तथापि, बहुत से लोगों को ड्रेफ़स के दोषी प्रमाणित किए जाने पर सन्देह था। १८९६ में पुनः ड्रेफस के मामले की गूँज सुनाई दी। कर्नल पिकार्ट (Colonel Picquart) ने, जो इंटेलिजेंस विभाग (Intelligence Bureau) का प्रधान नियुक्त किया गया था, यह खोज निकाला कि जिस लेख के आधार पर ड्रेफ़स के ऊपर मुकद्दमा चला था, वह जाली लेख था और वह सेना के एक दुराचारी अफसर मेजर ऐस्टरहेजी (Major Esterhazy) की करतूत थी। इस आधार पर कर्नल पिकार्ट ने माँग की कि ड्रेफ़स के मामले पर पुनर्विचार किया जाय। इस पर तत्कालीन सरकार और सैनिक अफसरों ने इस मामले को दबाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब पिकार्ट ने पुनः आन्दोलन किया तो उसको भी अपने पद से हटा दिया गया तथा उसको ट्यूनिस (Tunis) के एक सैनिक स्थान को स्थानान्तरित कर दिया गया और उसके स्थान पर कर्नल हैनरी (Colonel Henry) को भेज दिया गया।

ड्रेफ़स का झगड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो ड्रेफ़स का मामला बहुत तूल पकड़ गया। इस प्रश्न पर सामाजिक, राजनीतिक और वैधानिक संकट की आशंका होने लगी। समस्त राष्ट्र दो पक्षों में विभक्त हो गया। यह सनातनी लोगों और सुधारकों के बीच का झगड़ा बन गया। यह शक्ति और स्वतन्त्रता के बीच, तथा राज्य के सिविल और सैनिक नियन्त्रण के बीच झगड़ा था। इस झगड़े में गरीब ड्रेफ़स की तो किसी को याद न रही जो डैविल्स आईलैंड में दुःख के दिन बिता रहा था; किन्तु अन्य कई प्रकार के विवाद उठ खड़े हुए। जो लोग ड्रेफ़स (Dreyfus) को निर्दोष समझते थे, उन्हें विधिसंगत शासन, सम्पत्ति, देश-प्रेम और धर्म का शत्रु कहा जाने लगा। इसके विपरीत सेना, चर्च और राजतन्त्रवादी (Monarchists) लोग कहा करते थे कि ड्रेफ़स वास्तव में दोषी है। उनका कहना था कि "ड्रेफ़स के देशद्रोह के पीछे यहूदियों की सम्मिलित शक्ति हैं, सारे संसार के फ्रीमेसन (Freemasons) हैं, प्रोटेस्टेण्ट हैं, इंग्लैंड है, और तिहरी सन्धि वाले देश हैं तथा समाजवादी एवं अराजकतावादी हैं जो धर्म के शत्रु हैं, देश की स्वतन्त्रता के शत्रु हैं और समाज के शत्रु हैं।"[1] इस झगड़े में एक ओर रूढ़िवादी सनातनी लोग थे तथा दूसरी ओर प्रगतिशील विचारों के लोग थे; एक ओर स्वेच्छाचारी लोग थे तथा दूसरी ओर क्रान्ति के समर्थक थे; एक ओर कट्टर लकीर के फकीर थे, तो दूसरी ओर धर्म को आलोचना का विषय मानने वाले लोग थे, एक ओर चर्च के भक्त थे तो दूसरी ओर वैज्ञानिक धर्म के पुजारी थे, एक ओर शक्ति और अधिकारवादी थे, तो दूसरी ओर स्वतन्त्रता के समर्थक थे।

प्रारम्भ में ड्रेफ़स के विरोधियों को ही सफलता मिली। मेजर एस्टरहेज़ी (Major Esterhazy) पर उन आरोपों के आधार पर मुकद्दमा चलाया गया जो पिकार्ट ने उसके विरुद्ध लगाए थे किन्तु उसको पूर्ण निर्दोष पाया गया। एस्टरहेज़ी को अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई किन्तु पिकार्ट को जेलखाने में बन्द कर दिया गया। इसके पश्चात् एमिलि ज़ोला (Emile Zola) को गिरफ्तार कर लिया गया क्योंकि उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक जैक्यूज़ (J'accuse) में ड्रेफ़स के विरोधियों की कड़ी आलोचना की थी। उसके ऊपर मान-हानि का अभियोग लगाकर उसको एक वर्ष के लिए जेल में डाल दिया गया। वह जेल से निकलकर विदेश भाग गया, किन्तु ज़ोला (Zola) काण्ड से ड्रेफ़स काण्ड को ही उत्तेजना मिली। इसके पश्चात् सरकार ने ड्रेफ़स के मुकद्दमे पर पुनर्विचार करना अस्वीकार कर दिया और उस मामले को सदैव के लिए समाप्त घोषित कर दिया।

किन्तु १८९९ से ड्रेफ़स के हित में पाँसा पलटा। कर्नल हैनरी (Colonel Henry) ने, जो पिकार्ट (Picquart) के स्थान पर इण्टेलीजैन्स विभाग (Intelligence Bureau) का अध्यक्ष बन कर आया था, स्वीकार कर लिया कि उसी ने एक लेख को जाली तौर पर तैयार किया था जिसके आधार पर ड्रेफ़स को दोषी सिद्ध किया गया था। इसके पश्चात् उसने आत्महत्या कर ली। इसके पश्चात् मेजर एस्टरहेज़ी (Major Esterhazy) ने स्वीकार कर लिया कि उसने भी जाल बनाया था

1. J. Salwyn Schapiro : *Modern and Contemporary European History.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह देश छोड़कर भाग निकला। अब ड्रेफ़स के विरोधी यह कहने लगे कि हैनरी (Henry) और एस्टरहेज़ी (Esterhazy) के दोषी प्रमाणित हो जाने पर भी ड्रैफ़स निर्दोष सिद्ध नहीं होता। परन्तु सरकार को स्पष्ट दिखाई देने लगा कि सारे मामले पर पुनर्विचार करना ही पड़ेगा। वाल्डक रूसो (Waldeck-Rousseau) के नए मन्त्रिमण्डल ने ड्रेफ़स के मामले पर पुनर्विचार करने की आज्ञा दी। कैदी ड्रेफ़स को डेविल्स द्वीप (Devil's Island) से वापस बुलाया गया और रेन्स (Rennes) के सैनिक न्यायालय में उसके ऊपर पुनः मुकद्मा चलाया गया। किन्तु आम तौर पर विश्वास किया जाता था कि उक्त सैनिक न्यायालय भी ड्रेफ़स के साथ न्याय नहीं करेगा। इस बार भी ड्रेफ़स को दोषी ठहराया गया किन्तु 'दण्ड कम करने की स्थिति के अन्तर्गत' आजन्म कारावास का दण्ड घटाकर दस वर्ष के कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। फ्रेंच रिपब्लिक के प्रधान को राजद्रोही क्षमा का परम अधिकार था, उसके अनुसार उसने ड्रेफ़स को क्षमा कर दिया किन्तु इस निर्णय से भी किसी को सन्तोष नहीं हुआ और ड्रेफ़स (Dreyfus) के समर्थक आग्रह करते रहे कि ड्रेफ़स को निर्दोष घोषित किया जाय। किन्तु ड्रेफ़स के विरोधी भी अत्यधिक उत्तेजित थे और उन्होंने रिपब्लिक के प्रधान को बीच सड़क पर बेइज्जत किया। आखिरकार १९०६ में सारे मामले पर पुनर्विचार किया गया, और ड्रेफ़स को पूर्ण निर्दोष घोषित किया गया। यही नहीं, उसको हानि-पूर्त्ति के रूप में सेना में उच्चतर पद दिया गया और 'पेरिस के जिस सैनिक स्कूल के आँगन' में ड्रेफ़स की वर्दी फाड़ी गई और उसकी तलवार तोड़ दी गई थी उसी आँगन में उसको सैनिक सम्मान से आभूषित किया गया। कर्नल पिकार्ट (Colonel Picquart) को जनरल बना दिया गया और बाद में वही युद्ध-मन्त्री बना। जोला (Zola) इन्हीं दिनों मर चुका था किन्तु उसको पुनः बड़ी शान के साथ दुबारा पैन्थियन (Pantheon) में दफ़नाया गया। सेना के जो अधिकारी इस षड्यन्त्र में दोषी पाए गए, उन्हें सेना की नौकरियों से पृथक् कर दिया गया। आम तौर पर प्रायः सभी निर्दोष व्यक्तियों को कुछ-न-कुछ इनाम मिला और अपराधियों को कुछ-न-कुछ दण्ड।

ड्रेफ़स (Dreyfus) के निर्दोष सिद्ध होने से वे शक्तियाँ पराजित हो गईं जो गणराज्य या रिपब्लिक के प्रति शत्रु-भाव रखती थीं। इस काँड से सिविल सत्ता की सैनिक सत्ता के ऊपर विजय निश्चित हो गई और अब तक सेना, जो राजतन्त्रवादियों के प्रभाव में थी, रिपब्लिक के अधिकार में आ गई।

ड्रेफ़स काण्ड के फलस्वरूप ही रिपब्लिक और चर्च के बीच संघर्ष उभर आया। वास्तव में चर्च और रिपब्लिक के बीच बहुत पुरानी शत्रुता थी किन्तु पोप लियो त्रयोदश द्वारा फ्रेंच सरकार को मान्यता प्रदान कर देने से वह शत्रुता कुछ धीमी पड़ चुकी थी। फिर भी पोप द्वारा रिपब्लिक को मान्यता प्रदान कर देने से भी गणतन्त्रवादियों और पादरी वर्ग के बीच की पारस्परिक घृणा कम नहीं हुई और ड्रेफ़स काण्ड के बाद तो वामपक्षी गणतन्त्रवादी बारम्बार सरकार के ऊपर दबाव डालने लगे कि पादरी वर्ग से बदला लिया

चर्च को राज्य से अलग कर दिया गया (१९०५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय और राज्य का चर्च से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया जाय। १९०१ में वाल्डेक-रूसो (Waldeck-Rousseau) के मन्त्रिमण्डल ने 'ला ऑफ एसोसियेशन्स' (Law of Associations) पास कर दिया और घोषणा कर दी कि कोई भी संस्था—चाहे धार्मिक हो चाहे राजनीतिक—उसे सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक होगा। इस आज्ञा से अनेक धार्मिक और धर्म-प्रधान शिक्षा संस्थाएं बन्द हो गईं। ऐसी सभी संस्थाओं की सम्पत्ति और उनके मठ जब्त कर लिए गए। पुनः १९०४ में एक और नियम पास किया गया जिसके द्वारा धार्मिक संस्थाओं से शिक्षा देने का अधिकार छीन लिया गया। इसके द्वारा यह आज्ञा भी जारी कर दी गई कि धार्मिक संस्थाएँ या तो अपनी शिक्षा संस्थाओं को उदार और धर्म-निरपेक्ष बनाएँ अन्यथा वे अपनी शिक्षा संस्थाओं को तुरन्त बन्द कर दें।। पोप लियो त्रयोदश के बाद पायस दशम (Pius X) पोप बना। उसने ऐसी गलती की कि यह संघर्ष और अधिक तीव्र हो उठा। बात यह थी कि १९०४ में फ्रेंच गणराज्य के प्रधान ने इटली के सम्राट के आमन्त्रण पर इटली जाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पोप पायस दशम ने विरोध किया कि जब पोप सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राजा है तो बिना उसकी स्वीकृति के किसी राज्य के प्रधान का इटली जाना पोप का मान भंग करना है। निसर्गतः इससे पोप और पादरी वर्ग—विरोधी दल—को मौका मिला और अगले ही वर्ष अर्थात् १९०५ में निश्चयात्मक सम्बन्ध विच्छेद अधिनियम (Act of Separation) पास कर दिया गया जिसके द्वारा नेपोलियन के कॉन्कोर्डेट (Concordat) का अन्त करके चर्च को राज्य से अलग कर दिया गया।

जब फ्रेंच रिपब्लिक का राजतन्त्रवादियों से संघर्ष समाप्त हो गया और पादरी वर्ग को भी रिपब्लिक ने परास्त कर दिया तब इस बात की ओर सब ही लोगों का ध्यान गया कि देश की आन्तरिक स्थिति को ठीक किया जाय और अन्य सामाजिक एवं समाजवादी प्रश्नों को निबटाया जाय। इंग्लैण्ड और जर्मनी में फ्रांस से पहले ही श्रमिकों के सम्बन्ध में कानून पास होने लगे थे। १८८४ में फ्रांस में श्रमिक संघों (Trade Unions) को कानूनी मान्यता प्रदान कर दी गई और १८९८ में श्रमिक-प्रतिकर अधिनियम (Workmen's Compensation Act) पास किया गया। १९०६ में ऐसा अधिनियम पास किया गया जिसके द्वारा फैक्टरियों में दस घण्टों से अधिक किसी श्रमिक से काम न लिया जाय और १९१० में ऐसा अधिनियम पास किया गया जिसके द्वारा बुढ़ापे में श्रमिकों को पेंशन देने की व्यवस्था कर दी गई। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कई औद्योगिक नियम एम० मिलरेण्ड (M. Millerand) की प्रेरणा से पास किए गये। एम० मिलरेण्ड वॉल्डेक-रूसो (Waldeck-Rousseau) के मन्त्रिमण्डल का समाजवादी सदस्य था। १९०० में जब एम० मिलरेण्ड ने मन्त्री-पद स्वीकार किया तो स्वयं समाजवादियों के आपसी मतभेद तीव्रता के साथ उभर आए। समाजवादियों में एक वर्ग ऐसा था जो चाहता था कि रैडीकलों (Radicals) और अन्य प्रगतिशील राजनीतिक दलों के साथ समझौता कर लिया जाय। इन्हीं समझौतावादियों में से मिलरेण्ड (Millerand), विवियानी

सामाजिक और समाजवादी समस्याएँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Viviani) और ब्रायण्ड (Briand) थे जो इससे पूर्व भी कई बोर्जुआवादी मन्त्रि-मण्डलों में काम कर चुके थे। किन्तु समाजवादियों में एक अन्य वर्ग भी था जो राजनीतिक कारणों से सिद्धान्तों के परित्याग का विरोधी था। इस कट्टर और क्रान्तिकारी दल में श्रमिक संघवादी दल (Syndicalist Party) था जो किसी भी प्रकार के वैधानिक आन्दोलन का विरोधी था और प्रत्यक्ष कार्यवाही का समर्थक था। उसका विश्वास था कि केवल हड़तालों और विध्वंसक कार्यवाहियों द्वारा ही सर्वहारा-वर्ग की विजय हो सकती है। १९०६ से १९१० तक फ्रांस के उद्योगों को हड़तालों और अन्य तोड़क-फोड़क कार्यवाहियों के कारण अपार हानि सहन करनी पड़ी। १९१० में एक महान रेलवे हड़ताल हुई, जिससे भय लगने लगा कि शायद सामाजिक क्रांति होने वाली है किन्तु इसको स्वयं समाजवादी प्रधान मन्त्री एम० ब्रायण्ड (M. Briand) ने ही कूटनीति द्वारा विफल कर दिया। उसने यह चाल चली कि आरक्षी सेना (Reserves) की भर्ती शुरू कर दी और इस प्रकार अनेक हड़तालियों को सिपाहियों के रूप में भर्ती कर लिया। उन्हीं सिपाहियों को, जो कुछ ही दिन पहले हड़ताली थे, यह सैनिक काम सौंपा गया कि वे ट्रेनों और रेल मार्गों की रक्षा करें। इस प्रकार एम० ब्रायण्ड (M. Briand) ने उन्हीं लोगों से हड़ताल समाप्त कराने का काम लिया जिन्होंने हड़ताल कराई थी।

रूस १८८१-१९१४

यदि १९वीं और २०वीं शताब्दियों के रूसी इतिहास का भली-भाँति अध्ययन किया जाय तो हम देखेंगे कि उक्त इतिहास में कहीं तो ऊँची पहाड़ी चोटियाँ हैं और कहीं नीची घाटियाँ हैं जो यह दिखाती हैं कि कभी तो रूस का भारी उत्कर्ष था और कभी रूसी लोगों को अधोगति के गह्वर में रहना पड़ा; कभी रूस उन्नति के शिखर पर था और कभी रूस प्रतिक्रिया के गड्ढे में जा पड़ा था। वास्तव में रूस उस समय उन्नति के चरम शिखरों पर था जब उसने चार महान् युद्ध लड़े थे। कारण यह है कि रूस का इतिहास वास्तव में नेपोलियन के युद्धों से क्रीमिया के युद्ध तक का इतिहास था, फिर क्रीमिया के युद्ध से रूसी-जापानी युद्ध तक का इतिहास रहा और फिर रूसी-जापानी युद्ध से विश्व-युद्ध तक का इतिहास रहा। प्रथम युद्ध से रूस की यूरोप में धाक बैठ गई और एलेक्जैंडर प्रथम (Alexander I) के राज्य-काल में रूस में सुधारों की एक हल्की-सी लहर आई। द्वितीय युद्ध के फलस्वरूप रूस ने दासों को स्वतन्त्र कर दिया और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण नियम चालू किए। तृतीय युद्ध के बाद रूस में प्रथम संसद् के दर्शन हुए और अन्तिम युद्ध अथवा विश्वयुद्ध के बाद ज़ारशाही समाप्त हुई और सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ (Union of Soviet Socialist Republics) की स्थापना हुई। किन्तु इनमें से प्रत्येक दो युद्धों के बीच का काल प्रतिक्रिया और गिरावट का काल रहा।

अन्यत्र यह बताया जा चुका है कि क्रीमिया युद्ध ने सुधारों को जो प्रेरणा दी थी वह एलेक्जैंडर द्वितीय के राज्य-काल में ठण्डी पड़ गई और फिर देश में प्रतिक्रिया और निराशा का वातावरण जाग उठा। यहाँ तक कि सुधारकों ने चरम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराशा के नशे में १८८१ में अपने ज़ार की हत्या करके स्वयं अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली। इसके फलस्वरूप रूस को २५ वर्षों तक प्रतिक्रिया की गहरी खाई में हो कर गुजरना पड़ा।

एलेक्जैंडर तृतीय (१८८१-१८९१) और निकॉलस द्वितीय (१८९४-१९१७) के कालों में प्रतिक्रिया जिसके कारण क्रान्ति हुई

एलेक्जैंडर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र एलेक्जैंडर तृतीय रूस के राजसिंहासन पर आया। वह बैल जैसा मनुष्य था। उसका सुगठित शरीर था, उसका स्वभाव जिद्दी था, उसका तंग दिमाग था और उसके विचार सर्वथा पुराने थे, तथा उसका दृष्टिकोण एक किसान के समान था। कहा जाता है कि अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उसको ऐसी भी क्षणिक धुन सवार हुई थी कि वह अपने पिता की मृत्यु के दिन की आज्ञा को पूरी करते हुए रूस में प्रतिनिधिक शासन का प्रारम्भ कर दे किन्तु शीघ्र ही उसके विचार बदल गए और उसने अपने आपको तथा अपने देश को प्रतिक्रियावादी पोबीडोनोस्टेफ़ (Pobyedonostteff) की कृपा-कोर पर छोड़ दिया जो ऑर्थोडॉक्स चर्च (Orthodox Church) का मुखिया था और जिसको होली सीनोड का प्रोक्यूरेटर (Procurator of the Holy Synod) भी कहा जाता था। उसने यह शिक्षा दी कि पश्चिमी यूरोप की संस्थाएँ खराब थीं और वे रूस की परम्पराओं के विरुद्ध थीं। उसने ज़ार को सलाह दी कि उन सभी तत्त्वों का दमन करना चाहिए जो एक ज़ार, एक चर्च और एक रूस (One Tsar, One Church and One Russia) में विश्वास नहीं रखते। किन्तु ये सिद्धान्त ऐसे राष्ट्रीय राज्य के लिए नितान्त नूतन थे जो कट्टर धार्मिक एवं स्वेच्छाचारी था। प्रतिक्रिया की नीति को एक दर्शन का रूप दिया गया और यह कहा गया कि रूस पश्चिमी देशों के अराजकतावादी, संसदीय और लोकतंत्रात्मक उदारवाद से नष्ट हो जाएगा किन्तु अपनी विशिष्ट परम्पराओं पर चलकर रूस सारे संसार का कल्याण करेगा। फल यह हुआ कि सुधारक, धर्म-गुरु, समाजवादी, विनाशवादी या शून्यवादी, यहूदी, बाल्टिक सागर पर रहने वाले जर्मन, फ़िन लोग और पोल जाति के लोग सभी रूस की और रूस के ज़ार की निगाहों में कलंकी और पातकी थे।

१८८० के षड्यन्त्र में जिन लोगों ने भाग लिया था या जिनके ऊपर ऐसा सन्देह था उन सभी को या तो मृत्यु-दण्ड दिया गया या उन्हें साइबेरिया की सुनसान जेलों में डाल दिया गया। अन्य शून्यवादियों या नाशवादियों (Nihilists) को भी इसी प्रकार या तो निर्वासित कर दिया गया या उन्हें जेलों में डाल दिया गया। समाचारपत्रों और विश्वविद्यालयों पर पाबन्दी लगा दी गई और स्थानीय शासन संस्थाओं (Zemstvos) की शक्तियों को मर्यादित कर दिया गया। जगह-जगह सेना विधि (Martial Law) लागू कर दी गई जिसके फलस्वरूप अब आन्दोलन चुपके-चुपके छिप-छिपकर चलने लगा।

अधीन अ-रूसी जातियों के प्रति रूसीकरण की नीति अपनाई गई। रूसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा को सब जातियों पर लाद दिया गया, फिनलैण्ड (Finland) की डाक-व्यवस्था मुद्रा-व्यवस्था और राजकर-व्यवस्था को रूस के आदर्श पर चलाया जाने लगा और डॉरपैट (Dorpat) के जर्मन विश्व-विद्यालय को रूसी संस्था के रूप में परिणत कर लिया गया।

अधीन अ-रूसी जातियों के प्रति रूसीकरण की नीति

दक्षिण रूस में रहने वाले प्रोटेस्टेण्ट किसानों को, जिन्हें स्टण्डिस्ट (Stundists)[1] भी कहा जाता था, पवित्र कट्टर चर्च (Holy Orthodox Church) के इशारों पर रूस से बहिष्कृत कर दिया गया। यह स्टण्डिस्टों का समुदाय ईश्वर को मानता था और ईसाई धर्म में विश्वास करता था किन्तु हाल ही में इसे धर्म त्यागने पर मजबूर किया गया था। ये वास्तव में जर्मनी के प्राचीन निवासी थे। इनको तरह-तरह से सताया जाता था।

परन्तु यहूदियों (Jews) को जितना अपार कष्ट सहन करना पड़ा था उतना किसी जाति को नहीं। इन्हें पश्चिम के कुछ जिलों में ही सीमित रखा गया और स्थानीय शासन में उनको कोई स्थान नहीं दिया गया और आंशिक रूप से शिक्षा से भी उन्हें वंचित कर दिया गया। जिस क्षेत्र में यहूदी लोग रहते थे तथा जिन नगरों तक उन्हें सीमित रखा गया था उनसे बाहर उनको कृषि करने या सम्पत्ति अर्जित करने का अधिकार नहीं दिया गया। उनके ऊपर सुव्यवस्थित आक्रमण किए जाने लगे और उनकी सम्पत्ति लूटी जाने लगी और उनके घर जलाए जाने लगे। प्रायः अनेक यहूदियों के नगरों में बदमाश लोग घुस जाते थे, उनके बाल-बच्चों को सताते थे, और कभी-कभी उन्हें जान से भी मार डालते थे। बात यह थी कि तत्कालीन रूसी सरकार यहूदियों को क्रांतिकारी कहती थी और धर्म और राज्य का शत्रु समझती थी, इसलिए सभी लोग यहूदियों को नाना प्रकार से सताते थे। सरकार की इस यहूदी-विरोधी नीति के तीन परिणाम हुए—प्रथमतः, अनेक यहूदी नगरों में बहुत से यहूदियों के मुहल्ले खाली और वीरान हो गए; द्वितीयतः, बहुत से यहूदी रूस छोड़-कर भागने लगे। १८८० और १९०० के दो दशकों में प्रायः १५ लाख यहूदी रूस छोड़कर भाग खड़े हुए और अमेरिका में जाकर बस गए। तृतीयतः, यहूदी लोग मांग करने लगे कि फ़िलिस्तीन का इलाका उनको राष्ट्रीय पितृ देश के रूप में दिया जाय क्योंकि वे प्रायः सारे संसार में बहिष्कृत समझे जाते थे।[2]

१८९४ में एलेक्जैंडर तृतीय की मृत्यु हो गई, किन्तु उसकी मृत्यु का शोक किसी ने नहीं किया, केवल कृषकों को और शराब से परहेज करने वालों को शायद कुछ

---

१. इन किसानों (स्टण्डिस्टों) ने जर्मन नाम इसलिए स्वीकार किया था कि उनके आदि संस्थापक ने स्टण्डेन (Stunden) नामक नगर में धर्म-परिवर्तन किया था; अथवा जर्मनी के ल्यूथर के भक्त (Lutherans) भी पहले से ही दक्षिणी रूस में बसते थे। इसलिए ये स्टडिण्स्ट किसान जर्मनों के प्रभाव में आ गए।

२. यहूदियों के राष्ट्रीय या प्रादेशिक आन्दोलन को विभिन्न देशों के विभिन्न राजनीतिज्ञों ने विभिन्न रूप से देखा है। किन्तु प्रायः राजनीतिज्ञों ने उन उपेक्षित, सताए गए, और लूटे-खसोटे गए यहूदियों की मनोवृत्ति की ओर ध्यान ही नहीं दिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख हुआ हो क्योंकि उसने केवल इन्हीं दो प्रकार के लोगों का कुछ हित किया था।

अब एलेक्जैण्डर तृतीय का पुत्र निकॉलस द्वितीय (Nicholas II) राज-सिंहासन पर बैठा। सुधारकों को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं किन्तु जब उसने यह घोषणा कर दी कि वह अपने प्रातःस्मरणीय पूज्य पिता के चरण-चिन्हों पर ही चलेगा और उसी के समान स्वेच्छाचारी रहेगा तब तो सभी को भारी निराशा हुई। पोबीडोनोस्टेफ़ (Pobyedonosteff) के हाथों में अब भी अपार शक्ति बनी रही। फ़िन लोगों (Finns) की स्वतन्त्रताओं को और अधिक सीमित कर दिया गया तथा बौद्धिक वर्ग को अधिकाधिक अप्रसन्न किया जाने लगा। वास्तव में बौद्धिक वर्ग में ही अनेक विद्रोही और क्रान्तिकारी पैदा हो गए। इस समय लाखों भेदिए (Spies) नियुक्त किए गए जो सरकार को सब प्रकार की झूठी और सच्ची खबरें देते थे। यहूदियों को और अधिक सताया जाने लगा। किन्तु उद्योगों में विशेष प्रगति हुई। उद्योगमन्त्री काउण्ट विटे (Count Witte) था। उसने विदेशी पूँजी का स्वागत किया, यातायात के साधनों का विस्तार किया, राष्ट्रीय साख (National Credit) को मजबूत बनाया और उसने रूस की आर्थिक समृद्धि का सर्वांगीण विकास किया।

निकॉलस द्वितीय

परन्तु इस दमनकारी शासन-प्रणाली के बावजूद उस भूकम्प की, जो अन्त में ज़ारशाही का अन्त करने वाला था, प्रथम गड़गड़ाहट सुनाई देनी लगी। सारे देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन छिपे-छिपे जोर पकड़ रहा था। अनेक नई-नई सभाएँ सांस्कृतिक और आर्थिक कार्यक्रम के बहाने राजनीतिक प्रचार करने लगीं और उन्होंने सरकार के ऊपर इतना दबाव डाला कि विटे को आवश्यक सुधारों का सुझाव देने के लिए कई कृषि-समितियाँ बनानी पड़ीं। इन कृषि-समितियों ने प्रतिनिधिक सरकार की एवं समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता की माँग की। इसलिए १९०३ में काउण्ट विटे (Count Witte) को पदच्युत कर दिया गया। विटे ने सात वर्ष में कृषि की अपार उन्नति की थी। उसके पतन के पश्चात् प्लैव (Plehve) रूस का गृह-मन्त्री बना। वह प्रतिक्रियावादी था। किन्तु १९०४ में प्लैव की हत्या कर दी गई। उसी वर्ष रूस और जापान में युद्ध ठन गया। युद्ध का संचालन अत्यन्त अयोग्यता के साथ किया गया था। इसलिए सारा देश गबन और कुशासन की कहानियों से स्तब्ध रह गया। जिस प्रकार क्रीमिया के युद्ध में रूस की पराजयों से सारा देश दुःखी और उत्तेजित था उसी प्रकार जापान के मुकाबले में रूस बराबर हारता चला जाता था और इन पराजयों के कारण देश में भारी उत्तेजना फैल रही थी। एक ओर जहाँ स्थानीय शासन निकाय और सर्वसाधारण माँग कर रहे थे कि सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता, समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता, सभाएँ और समाज स्थापित करने की स्वतन्त्रता, शिक्षा की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और प्रतिनिधिक शासन स्थापित करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए; ज़ार लगातार दमन और नियन्त्रण के मार्ग पर चलता जा रहा था। ज़ार ने यत्र-तत्र कुछ सुधार करने भी चाहे किन्तु सारा मकान इतना टूट-फूट चुका था कि मामूली लीपा-

रूस-जापान का युद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोती व्यर्थ थी। अब सारे देश में उत्तेजना फैल चुकी थी। सुधारकों में जो लड़ाकू वर्ग था वह जोर पकड़ने लगा और क्रान्तिकारियों की हिंसात्मक कार्यवाहियों में अधिक रुचि दिखाई पड़ने लगी। रूसी भावुकता का ज्वार-भाटा मानो तीव्र गति से प्रवाहित हो रहा था।

१९०५ का विद्रोह

१९०५ के जनवरी मास में किसी अज्ञात व्यक्ति ने ज़ार को अपनी गोली का निशाना बनाया किन्तु गोली ज़ार से बचती हुई निकल गई। इस घटना के तीन दिन पश्चात् खूनी रविवार की घटनाएँ घटित हुईं। जिस समय हड़तालियों का एक विशाल जुलूस फादर गेपन (Father Gapon) नामक पादरी के नेतृत्व में ज़ार को एक आवेदन-पत्र देने जा रहा था, उस समय राज्य के सैनिकों ने मार्ग में जुलूस पर गोलियाँ दागना शुरू कर दीं। तुरन्त ही सारे देश में उपद्रव होने लगे। किसानों ने ज़मींदारों के घरों को लूटना शुरू कर दिया, पुलिस के अफ़सरों को मार डाला और अन्त में उन्होंने ज़ार के चाचा ग्राण्ड ड्यूक सर्ज़े (Grand Duke Serge) की भी हत्या कर दी।

ज़ार के उदार मन्त्रियों ने सिफारिश की कि लोगों को कुछ रियायतें दे दी जाएँ, अतः समाचारपत्रों का नियन्त्रण कुछ ढीला कर दिया गया और यहूदी तथा अन्य अधीन अ-रूसी प्रजाओं के साथ कुछ अच्छा बर्ताव किया जाने लगा। बढ़ती हुई अशांति से भयभीत होकर ज़ार ने ड्यूमा (Duma) का संसद् आहूत करने की घोषणा की और अक्तूबर में उसने पोबीडोनोस्टेफ़ (Pobyedonosteff) तथा अन्य प्रतिक्रियावादी मन्त्रियों को अपदस्थ कर दिया और काउण्ट विटे (Count Witte) को पुनः बुला लिया। अब उसने प्रसिद्ध अक्तूबर घोषणा-पत्र (October Manifesto 1905) जारी किया जिसमें विस्तृत सुधारों का वचन दिया गया। इस समय रूसी लोग बड़े ही प्रसन्न थे किन्तु एक वर्ष भी न बीतने पाया था कि पुनः रूस में व्यग्रता और निराशा का संचार होने लगा।

मॉस्को (Moscow) में दिसम्बर १९०५ में एक और भयंकर उपद्रव हुआ। इस विद्रोह में लगभग पाँच हजार व्यक्ति राज्य के सैनिकों द्वारा भून डाले गए, तब कहीं जाकर यह विद्रोह शान्त हुआ। किन्तु इससे दुर्भाग्यवश सरकार में क्रान्ति-विरोधी प्रतिक्रिया हुई। सुधारवादी विटे (Witte) को मन्त्री पद से हटा दिया गया और ज़ार के मन्त्रिमंडल में भी दो दल हो गए। एक दल और अधिक सुधारों का पक्षपाती था किन्तु दूसरा दल दमन का समर्थन कर रहा था। इस प्रकार सरकार दो रुखों से बात कर रही थी।

किन्तु केवल सरकार में ही दो दल न थे। स्वयं विद्रोहियों में भी पूर्ण मतैक्य का अभाव था। देश में कोई एक संगठित राजनीतिक दल नहीं था, बल्कि बिखरे हुए कई समुदाय थे। कुछ मध्यवर्गी उदारवादी थे जो आक्टोबरिस्ट (Octobrists) कहलाते थे। वे ज़ार के अक्तूबर घोषणा-पत्र (October Manifesto) से सन्तुष्ट थे। इसके अतिरिक्त एक और अधिक प्रगतिशील समुदाय था जो वैधानिक लोकतन्त्रात्मक दल (Constitutional Democratic Party) कहलाता था और जन-साधारण में उसे कैडेट (Cadet) दल कहा जाता था। कैडेट दल (The Cadets)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता था कि देश में प्रतिनिधिक और उत्तरदायी शासन की स्थापना हो। उसने यह भी चाहा कि किसानों को ज़मीन का मालिक बना दिया जाय और इसके लिए इस दल ने यह भी सिफारिश की कि बड़ी-बड़ी जागीरों को बेच दिया जाय और बड़ी जागीरों के छोटे-छोटे टुकड़े करके किसानों में बाँट दिये जायें। किन्तु समाजवादियों में भी कई वर्ग थे। ये विभिन्न वर्ग कलहपूर्ण आपसी झगड़ों में ही अपनी सारी शक्ति नष्ट करने लगे, और सरकार ने इन मतभेदों से लाभ उठाया। इस प्रकार सुधारों के कार्य को धक्का लगा। ६ मई, १९०६ को बड़े जोश के साथ ड्यूमा या संसद् की प्रथम बैठक हुई किन्तु शीघ्र ही ड्यूमा में सरकार और विरोधी दल में कलह प्रारम्भ हो गया। ड्यूमा के पास वास्तविक शक्ति का अभाव था और जब ड्यूमा ने कार्यपालिका के ऊपर नियन्त्रण स्थापित करना चाहा तो उसके ऊपर यह दोष आरोपित किया गया कि यह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर रही है, फलतः २१ जुलाई १९०६ को प्रथम ड्यूमा भंग कर दी गई। गम्भीर निराशा के वातावरण में ड्यूमा के लगभग आधे सदस्य फ़िनलैण्ड के विबॉर्ग (Viborg in Finland) नामक स्थान पर एकत्र हुए और वहीं से उन्होंने देशवासियों के नाम एक अपील निकाली जिसमें कहा गया कि सर्वसाधारण न तो ऐसी सरकार को कर दें और न उसके अधीन सैनिक सेवा करें जिसने कभी अपने वायदों को पूरा ही नहीं किया, किन्तु दुर्भाग्यवश सर्वसाधारण ने ड्यूमा के सदस्यों के आदेशों का पालन नहीं किया, फलतः सरकार और अधिक दमन पर उतर आयी और उक्त घोषणा-पत्र या अपील पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों की आफ़त आ गई।

मार्च १९०७ में द्वितीय ड्यूमा (Second Duma) आहूत की गई। परन्तु इसमें और मन्त्रिमण्डल में फिर वही तनातनी की स्थिति पैदा हो गई इसलिए यह चार महीने के अन्दर ही विसर्जित कर दी गई और इस चार महीने के काल में इस ड्यूमा की एक भी बैठक न होने पाई।

इसके पश्चात् निम्न निर्वाचन-नियमों और संकुचित मताधिकार के आधार पर नवम्बर १९०७ में तीसरी ड्यूमा की बैठक हुई। चूँकि इस ड्यूमा में अधिकतर सरकार समर्थक सदस्य थे, इसलिए इसकी सरकार के साथ पटती रही और यह अपने पूरे पाँच वर्ष के कार्य-काल तक बनी रही और जब १९१२ में यह विघटित हुई तो इसके स्थान पर चौथी ड्यूमा आई। चौथी ड्यूमा तो अपनी पूर्वगामी ड्यूमा से भी अधिक विनीत और अधीन प्रमाणित हुई।

१९०७ के बाद से रूस में प्रतिक्रिया का बोलबाला रहा, ज़ार की स्वेच्छाचारिता चलती रही और सुधारकों का जोश ठण्डा पड़ गया तथा सारे देश में मानो मातम-सा छाया रहा। समाजवादियों पर बन्द कमरों की अदालतों में मुकद्दमे चलाये जाते और उन्हें साइबेरिया को निर्वासित किया जाता था। षड्यन्त्रकारियों को फाँसियाँ दी जा रही थीं। कत्ल और लूटपाट करने वालों को क्षमा कर दिया जाता था। इसके जवाब में सिविल और पुलिस के अधिकारियों की हत्या की जाती थी; किन्तु सामान्यतः देश इन सब जुल्मों को सहन कर रहा था और ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो क्रान्ति शान्त हो गई है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली के एकीकरण के पश्चात् से लेकर १९वीं शताब्दी के अन्त तक का इटली का इतिहास उसके पतन का इतिहास है। कहाँ तो १८४० से लेकर १८६० तक इटली में शान और वीरगाथा का काल रहा और कहाँ उसके पश्चात्, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इटली में प्रतिक्रिया, निराशा, गरीबी, असन्तोष, षड्यन्त्र और अव्यवस्था का दौर रहा। इटली की भूमि से उच्च उद्देश्य पलायन कर गये थे। देखने भर की बाहरी एकता स्थापित भी हो गई थी किन्तु यह एक छोटे से वर्ग ने प्राप्त की थी। सत्य यह है कि सर्वसाधारण में वास्तविक एकता का पूर्ण अभाव था।

इटली (१८७१-१९१४)

वास्तव में इटली का एकीकरण यकायक एक झोंक में स्थापित हो गया था जबकि इटली के लोग शताब्दियों से विभक्त और अलग-अलग रहने और सोचने के आदी थे। पीडमौंट (Piedmont) के छोटे से देश ने स्वतन्त्रता की मशाल जलाई थी। किन्तु इटली की यह स्वतन्त्रता और एकता लोगों के परिश्रम और साहस के फलस्वरूप प्राप्त नहीं हुई थीं। यह तो ईश्वरीय वरदान स्वरूप इटली को प्राप्त हो गई थी। यद्यपि कुछ उच्चतर सामाजिक क्षेत्रों (Elite) में राष्ट्रीयता, आत्मनिर्णय और स्व-शासन के भाव जाग्रत हो चुके थे किन्तु सर्वसाधारण में उक्त उच्च भावों का सर्वथा अभाव था।[1]

यद्यपि इटली की राष्ट्रीय समस्याएँ भी वही थीं जो उस काल में प्रायः सभी देशों की समस्याएँ थीं, फिर भी तत्कालीन इटली की मुख्य राष्ट्रीय समस्या यह थी कि इटली में जो बाह्य एकता प्राप्त हुई थी उसके साथ सामाजिक और राजनीतिक रुचियों पर आधारित भावना की वास्तविक एकता भी स्थापित की जाय।

नवीन इटली के राज्य की मुख्य समस्या यह थी कि चर्च और राज्य के सम्बन्ध कैसे रहें। वास्तव में इटली के एकीकरण से पोप और राज्य के सम्बन्धों ने एक विचित्र समस्या का रूप धारण कर लिया था। किन्तु पोप पायस नवम अपने आपको वैटिकन (Vatican) में बन्द रखता था और उसने लॉ ऑफ पेपल गारंटीज़ (Law of Papal Guarantees)[2] को मानने से इनकार कर दिया।

पोप तथा राज्य में सम्बन्ध

पोप ने लॉ ऑफ गारंटीज़ के उत्तर में एक आज्ञा-पत्र (*The encyclical non expedit*) निकाला जिसके द्वारा कैथोलिकों को पार्लियामेंट के चुनावों में मत देने के लिये और इटली की सरकार की अधीनता में कोई नौकरी स्वीकार करने के लिये मना कर दिया गया। १८७८ में पोप पायस नवम की मृत्यु हो गई और उसके अन्तिम संस्कार के समय जो दृश्य देखे गये उनसे प्रकट था कि अधिकतर लोग उससे अप्रसन्न थे। उसका उत्तराधिकारी पोप लियो त्रयोदश यद्यपि अधिक योग्य और कूटनीतिज्ञ था फिर भी उसने अपने पूर्वगामी पोप की नीति पर चलना ही उचित समझा, अर्थात् वह

---

1. Luigi Sturzo : *Italy and Fascismo*, p. 13.
२. इसी पुस्तक का अध्याय ६ देखिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली के राजा को शत्रु मानता रहा और अपने को डाकू राजा का बन्दी मानता रहा। १९वीं शताब्दी के अन्त में ऐसा प्रतीत होने लगा कि पोप और इटली के राजा के बीच की कटुता कुछ कम हो रही है। अब पोप के अनुयायियों और राज्य के प्रतिनिधियों में विचार-विनिमय हुआ और चूंकि समाजवाद के खतरे से सभी बचना चाहते थे, अतः रूढ़िवादियों (Conservatives) और पोप के अनुयायियों में मैत्री हो गई। अब कैथोलिक लोग राजनीति में भाग लेने लगे। १९०५ में पायस दशम नामक पोप ने अपने आज्ञापत्र (*The encyclical non expedit*) को कुछ नरम कर दिया और १९१९ में पोप बेनेडिक्ट पन्द्रहवें (Pope Benedict XV) ने उक्त आज्ञापत्र को समाप्त कर दिया। पोप बेनेडिक्ट के जीवनकाल में रोम (Rome) के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सका किन्तु १९२२ में जब पायस एकादश (Pius XI) पोप गद्दी पर बैठा और जब उसने इटली की शाही सेनाओं को इतने समय के पश्चात् प्रथम बार अपना आशीर्वाद (Orb and Urb) दिया, तो ऐसी आशा हो चली कि आखिरकार आधी शताब्दी के पश्चात् समय ही पोप और इटली के राजा के बीच मैत्री स्थापित करा रहा है यद्यपि बातचीत और कूटनीति द्वारा ऐसा सम्बन्ध नहीं हो सका था।

सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयाँ

नवीन इटली राज्य के सम्मुख अनेक आन्तरिक कठिनाइयाँ थीं। सारी कठिनाइयों के मूल में सद्यः एकीकृत इटली साम्राज्य में अत्यन्त प्रचलित क्षेत्रीय भावना थी जो इस समय भी इटलीवासियों में पाई जाती है और जो इटली के राष्ट्रीय साहित्य पर भी छायी हुई है। इसके अतिरिक्त इटली के प्रान्तों में स्वायत्तता और प्रशासन की दिशा में आकाश-पाताल का अन्तर था। एक ओर उत्तर में पीडमौंट (Piedmont) का प्रान्त था जिसमें सुव्यवस्थित प्रशासन था और प्रायः पूर्ण वैधानिक सरकार थी; इसके विपरीत दक्षिण में सिसिली (Sicily) और नैपिल्स (Naples) के प्रान्त थे जिनमें अनेक गुप्त और क्रान्तिकारी संस्थाएँ जाग्रत थीं, जिनमें स्वशासन नाम की चीज़ का पूर्ण अभाव था और जहाँ के नागरिकों में नागरिकता की भावना का सर्वथा अभाव था। इसलिए इटली की सरकार का ध्यान इस ओर गया कि सारे देश में समान शासन स्थापित किया जाय अथवा सारी इटली के प्रशासन को पीडमौंट (Piedmont) के आदर्श पर स्थापित किया जाय। अतः सारी इटली की प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था को पुनर्गठित किया गया और देश में स्थानीय शासन के एकक प्रादेशिक विस्तार के आधार पर स्थापित किये गये। यह व्यवस्था फ्रांस की नौकरशाही व्यवस्था के अनुरूप थी, किन्तु इटली के ऐतिहासिक प्रान्तीय विभाजन के सर्वथा अनुपयुक्त थी। इटली में रेलों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और सैनिक सेवा सभी के लिए आवश्यक कर दी गई। सारे देश से लुटेरों और डाकुओं का सफाया कर दिया गया और सिसिली की मैफिया (Mafia of Sicily) तथा नैपिल्स की कैमोरा (Camorra of Naples) नामक गुप्त और षड्यन्त्रकारी संस्थाओं को समाप्त कर दिया गया। १८९७ में डेप्रेटिस (Depretis) की सरकार ने आवश्यक शिक्षा अधिनियम पास करके व्यापक अशिक्षा को दूर करने का प्रयत्न किया, किन्तु उक्त प्रान्त के वित्तीय साधन इतने संकुचित थे कि इच्छित उद्देश्य प्राप्त न हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका। सारे देश में दरिद्रता का ताण्डव नृत्य हो रहा था। सारे देश के प्रशासन में कुप्रबन्ध और भ्रष्टाचार सार्वभौम था, भयानक राष्ट्रीय ऋण से देश की कमर टूटी जा रही थी, सेना का भारी व्यय भी देश की अर्थ-व्यवस्था को जर्जरित कर रहा था और सार्वजनिक पुनर्निर्माण के लिए भारी वित्त की आवश्यकता थी; तथा दक्षिण इटली के प्रान्त इस सीमा तक साधन-हीन थे कि कई वर्षों तक सारे देश में समान वित्तीय व्यवस्था स्थापित करना कठिन बना रहा। गरीब वर्ग भारी करों के बोझ से दबा जा रहा था और राष्ट्रीय सरकार प्रायः दिवालिया थी।

राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में सारे देश में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। गैरीबाल्डी (Garibaldi) का अभिन्न साथी वयोवृद्ध क्रिस्पी (Crispi) एक योग्य संसदीय अनुभवी प्रधान-मंत्री था, किन्तु उसके निदशन में भी इटली राजनीतिक षड्यन्त्रों, भ्रष्टाचार और बदनामी का आगार बनी रही। नौकरशाही का इस सीमा तक केन्द्रीकरण किया गया था कि स्थानीय उपक्रम समाप्त ही हो गया और सारा प्रशासन ऐसे अधिकारियों के हाथों में केन्द्रित हो गया जो भ्रष्ट थे। कैथोलिक और कट्टर धार्मिक तत्त्व सरकार के विरुद्ध थे; सर्वसाधारण अशिक्षित थे, और उनको मताधिकार भी प्राप्त नहीं था, इसलिए वे भी सरकार के विरुद्ध थे। दक्षिणी इटली के प्रान्त कृषि-प्रधान थे किन्तु आर्थिक रूप से वे पूर्णतया अविकसित थे, उत्तरी इटली के प्रान्त उद्योग-प्रधान थे किन्तु इन प्रान्तों में श्रमिक वर्ग निरन्तर आन्दोलित रहता था। देश की जनसंख्या में इतनी तीव्र गति से वृद्धि हो रही थी कि लोगों की गरीबी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। इस कारण अनेक आर्थिक समस्याएँ उठ खड़ी हुईं। जब इटली के लोग उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में जाकर बसने लगे तब इस दिशा में कुछ राहत मिली। सिसिली में १८९३-९४ में भयंकर श्रमिक विद्रोह हुआ और १८९८ में मिलान (Milan) में श्रमिकों का गदर हो गया जिसके कारण पेरिस के विद्रोहों के समान मिलान की सड़कों पर खूब मारकाट हुई। सरकार ने सिसिली के विद्रोहों के समान ही मिलान के विद्रोह को भी अत्यन्त निर्दयता के साथ दबाया, किन्तु समाजवाद विरोधी विधियों के पारित किये जाने के फलस्वरूप सारे देश में भारी उत्तेजना फैली। इटली का असन्तोष १९०० में चरम सीमा तक पहुँच गया जबकि विक्टर इमैन्युएल द्वितीय का उत्तराधिकारी राजा हम्बर्ट (King Humbert) कत्ल कर दिया गया।

राजा हम्बर्ट की हत्या के पश्चात् विक्टर इमैन्युएल तृतीय (Victor Emmanuel III) इटली का राजा बना। यह नवयुवक था, सहानुभूतिपूर्ण था और लोकतन्त्र का समर्थक था और उसके राज्य-काल में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही इटली की दशा सुधरने लगी। जो लोग इटली छोड़कर अमेरिका आदि विदेशों में जा बसे थे, वे प्रायः उन विदेशों से कमा-कमाकर धन अपने-अपने घरवालों को भेजते थे; इस प्रकार देश की गरीबी धीरे-धीरे कम होने लगी। दक्षिणी इटली का अंगूर व्यापार और उत्तरी इटली के उद्योग-धन्धे अधिक लाभ देने लगे; सौदागर जहाजी बेड़े का विस्तार हुआ और देश में विदेशी पूंजी आने लगी, जिससे इटली का आर्थिक विकास होने लगा। अब कैथोलिक लोग भी अपने आपको इटली का अंग समझने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। १९०३ के पश्चात् इटली की राजनीति में गिओलिटी (Giolitte) का नाम अमर है। उसने श्रमिकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया। श्रमिक वर्ग के लिए उपयोगी सामाजिक बीमा अधिनियम (Social Insurance Act) पास किया गया और १९०४ में नया शिक्षा अधिनियम पास किया गया। इटली के इतिहास में प्रथम बार १९०५ में लाभ का आय-व्ययक (Surplus Budget) पास किया गया और १९१२ में मताधिकार अधिनियम (Franchise Act) पास किया गया जिसके द्वारा सार्वभौम पुरुष मताधिकार प्रदान कर दिया गया। ऐसे प्रगतिशील सुधारों के बावजूद इटली में भी अन्य पश्चिमी देशों के समान समाजवादी दल उन्नति करता रहा। फ्रांस के प्रभाव के कारण इटली का समाजवाद मार्क्सवादी न होकर श्रमिक संघवादी अधिक था। इसीलिए इटली में हड़तालें और तोड़-फोड़ की घटनाएँ दैनिक घटनाएँ बन चुकी थीं। १९१४ में इतने विशाल पैमाने पर हड़ताल हुई कि सारे देश का औद्योगिक जीवन ४८ घण्टों तक अस्तव्यस्त रहा। किन्तु ४८ घण्टों के पश्चात् लोग चुपचाप काम पर वापस आ गए क्योंकि आम हड़ताल असफल रही थी। इस भारी हड़ताल की असफलता का कारण यह था कि यह बहुत ही बड़े पैमाने पर आयोजित की गई थी और इसने सार्वजनिक जीवन को ठप्प कर दिया था।

विदेशों से सम्बन्ध

इटली की विदेश नीति तीन प्रश्नों पर आधारित थी। प्रथमतः क्या पोप, जो वस्तुतः वैटिकन में नज़रबन्द था, फ्रांस और ऑस्ट्रिया की सहानुभूति प्राप्त करके उक्त दोनों कैथोलिक देशों द्वारा इटली के अन्दर हस्तक्षेप कर सकेगा? द्वितीयतः, ऑस्ट्रिया के अधिकार में जो इटली के प्रदेश अब भी थे उन्हें किस प्रकार स्वतन्त्र कराया जाय। इन अविजित प्रदेशों में ट्रेण्टिनो (Trentino), ट्रीस्ट (Trieste) और सीमा के जिले थे जिनको हस्तगत करने के लिये इटली की इर्रेडैण्टिस्ट पार्टी (Italian Irredentists) अथक परिश्रम और प्रचार कर रही थी। इस दल की तो महत्त्वाकांक्षाएँ यहाँ तक थीं कि डालमेशिया (Dalmatia) और अल्बानिया (Albania) को भी प्राप्त किया जाय। तृतीयतः, इटली के नव साम्राज्य का विस्तार करना था और नये उपनिवेश जीतना था; प्राचीन रोम के प्रसुप्त गौरव को पुनः जगाना था और भूमध्य सागर को इटली की झील में परिणत करना था।

इटली की विदेश नीति जिन तीन धाराओं में बह रही थी, वे तीनों धाराएँ प्रायः विभिन्न दिशाओं में जा रही थीं, अतः कुछ समय तक इटली की राजनीति में अनिश्चितता बनी रही। इस प्रकार जहाँ इटली का एक वर्ग फ्रांस से डरता था और अपने 'अमुक्त इटली प्रदेशों' को पुनः पाने की सम्भावना को मज़ाक समझता था, और वह ऑस्ट्रिया एवं जर्मनी की ओर विशेष रूप से आकृष्ट था, दूसरा वर्ग ऐसा भी था जो फ्रांस की लोकतन्त्रात्मक और पादरी-विरोधी भावनाओं से प्रभावित था और इसलिये उसका विचार था कि रोम का प्रश्न फ्रांस की सहायता से ही हल किया जा सकता है। उधर ग्रेट ब्रिटेन ने १८७६ और १८७८ में इटली को अवसर दिये थे कि वह क्रमशः ट्यूनिस (Tunis) और ट्रिपोली (Tripoli) पर अधिकार कर ले किन्तु इटली ने डर के मारे साहस ही नहीं किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु जब १८८१ में फ्रांस ने ट्यूनिस (Tunis) पर अधिकार कर लिया, तब तो इटली को बहुत बुरा लगा क्योंकि अब ट्यूनिस सदैव के लिये फ्रांस के अधिकार में चला गया था। इसका तात्कालिक फल यह हुआ कि इटली

इटली की औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षाएँ

के ऑस्ट्रिया और जर्मनी से घनिष्ठतर सम्बन्ध हो गए और १८८२ में प्रसिद्ध ट्रिपल एलायन्स (Triple Alliance) बनी। इस एलायन्स से पूर्व बिस्मार्क ने इटली से वायदा कर लिया कि रोम का प्रश्न नहीं उठने दिया जाएगा। किन्तु ज्यों-ज्यों रोम की समस्या का भय कम होता रहा त्यों-त्यों इटली को ऐसा महसूस होने लगा कि ट्रिपिल एलायन्स से इटली को जो लाभ होने को थे, वे सन्दिग्ध थे और उसने व्यर्थ ही रोम के डर से ट्यूनिस (Tunis) और ट्रिपोली (Tripoli) को छोड़ दिया। जब इटली को ट्रिपिल एलायन्स (Triple Alliance) से कोई विशेष लाभ न हुआ तो वह कभी इंग्लैण्ड के साथ और कभी फ्रांस के साथ सन्धियां करने लगा। "इस प्रकार यूरोप के राजनीतिक खेल के भाग्य के उतार-चढ़ाव में इटली मानो एक मुहरा बन गया जो कभी किसी शक्ति के हाथों में पहुँच जाता था और कभी किसी दूसरी शक्ति के हाथों में पहुँच जाता था। कभी-कभी तो इन राजनीतिक दाँव-पेचों से इटली को लाभ भी दिखाई देते थे। किन्तु अन्त में इस सब राजनीतिक सौदेबाजी का परिणाम इटली के लिए निराशाजनक रहा और उसे तो केवल काँटे ही हाथ लगे। इसका एक कारण तो यह था कि इटली की स्थिति अत्यधिक कठिन थी और एक अन्य कारण यह भी था कि उसकी विदेश नीति अत्यन्त चलायमान थी। इस कारण इटली के मन्त्री किसी भी स्थिति से कोई लाभ नहीं उठा सके। इस प्रकार न तो इटली के मित्रों से इटली को कोई लाभ हुआ और न इटली द्वारा किसी मित्र को कोई लाभ पहुँचा।"[1] क्रिस्पी (Crispi) के, जिसने एक शक्तिशाली औपनिवेशिक नीति ग्रहण की थी, मन्त्रित्व काल में उपनिवेशों का प्रश्न भारी महत्त्व का बन गया था। जब १८८१ में फ्रांस ने ट्यूनिस (Tunis) पर अधिकार कर लिया और जब ब्रिटेन का मिस्र (Egypt) पर १८८२ में अधिकार हो गया, तब इटली ने भी सोचा कि उसे लाल सागर और सोमालीलैण्ड (Somaliland) में कुछ लाभ उठाना चाहिए। सोमालीलैण्ड (Somaliland) का प्रदेश बहुत लाभप्रद उपनिवेश न था और उस पर पुराने जमाने के स्थानीय सुलतानों का आधिपत्य चला आ रहा था। क्रिस्पी (Crispi) ने लाल सागर के किनारे की आबादी को एरिट्रीया (Eritrea) का नाम दिया और अबीसीनिया में इटली की शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न किया। इसका परिणाम विनाशकारी हुआ। लाल सागर स्थित मैसोवा (Massowah) नामक बन्दरगाह से अबीसीनिया की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया गया किन्तु उस प्रयत्न के फलस्वरूप इटली का अबीसीनिया के शासकों तथा अन्य स्थानीय शासकों से संघर्ष हो गया। प्रारम्भ में तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इटली की विजय होगी, किन्तु १८९६ में एडोवा (Adowa) में इटली को करारी हार का मुँह देखना पड़ा। इस घातक पराजय से क्रिस्पी (Crispi) का पतन हो गया। वास्तव में

---

1. Luigi Sturzo : *Italy and Fascismo*, p.28.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिस्पी ही तो उपनिवेशों की प्रेरणा देने वाला व्यक्ति था। इस पराजय से एरिट्रिया नामक प्रदेश की सीमाएँ भी किसी सीमा तक संकुचित हो गईं और लाल सागर के आस-पास के प्रदेशों का कुछ भाग भी इटली के हाथों से निकल गया। इसके अतिरिक्त एडोवा (Adowa) की पराजय को इटली में राष्ट्रीय दुर्भाग्य माना गया और इटली को कुछ समय के लिए अग्रिम साम्राज्यवाद के इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रयोग को छोड़ना पड़ा।

किन्तु २०वीं शताब्दी के आगमन के साथ जब इटली ने देखा कि फ्रांस मोरक्को (Morocco) में अपना प्रभाव बढ़ा ही रहा है और जर्मनी भूमध्यसागर में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता है तब इटली की औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षाएँ भी जगीं। उधर जब इटली ने देखा कि तुर्की में 'युवक तुर्क' विद्रोह कर रहे हैं तो उसने १९११ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और तुर्की के कमजोर हाथों से ट्रिपोली और साइरिनैका (Cyrenaica) छीन लिया और इन दोनों प्रान्तों को मिलाकर लीबिया (Libya) नामक उपनिवेश में परिणत कर लिया।

ऑस्ट्रिया के अधिकार में कुछ ऐसे प्रदेश थे जिनमें इटली भाषा-भाषी लोग रहते थे; किन्तु यह प्रश्न बहुत दिनों तक ठप्प पड़ा रहा क्योंकि इटली ट्रिपिल एलायंस (Triple Alliance) में शरीक हो गया था। किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इटली और फ्रांस के सम्बन्ध सुधरने लगे, और उधर ऑस्ट्रिया और जर्मनी ने बल्कान प्रदेश में घुसपैठ की अग्रिम नीति अपनाई तब धुरी शक्तियों (Central Powers) के इटली के साथ संबन्ध अच्छे नहीं रहे। अब इटली के देशभक्त इर्रेडैण्टिस्ट लोगों की उपनिवेशों सम्बन्ध माँग और ज़ोर पकड़ने लगी। १९१४ में जब विश्वयुद्ध छिड़ा, इटली ने इस डर से तटस्थता का मार्ग ग्रहण किया कि उसे अनेक आन्तरिक समस्याओं का सामना करना था। किन्तु उसी समय इटली को ऐसा आभास हुआ कि वही उचित अवसर था जबकि वह युद्ध के किसी भी पक्ष से बातचीत करके ऑस्ट्रिया के इटली भाषा-भाषी प्रदेश को प्राप्त कर सकता था। कुछ समय तो इटली इस द्विविधा में झूलता रहा कि वह तटस्थ रहे या युद्ध में हस्तक्षेप करे और दोनों पक्षों से सौदेबाज़ी करता रहा, किन्तु अन्त में उसने निश्चय किया कि इंग्लैंड और फ्रांस का पक्ष लेना चाहिए। इस प्रकार मई १९१५ में लन्दन की सन्धि (Treaty of London) की गारण्टी के विश्वास पर इटली युद्ध में कूद पड़ा। उक्त सन्धि में गारंटी की गई थी कि यदि मित्रराष्ट्रों की विजय होगी तो इटली को ब्रेनर (Brenner) तक का ट्रेण्टीनो (Trentino) मिल जाएगा; उधर डालमेशिया (Dalmatia) के भू-भाग में से वेनेज़िया-गिलिया (Venezia-Giulia) और ज़ार (Zara) प्राप्त हो जाएँगे, सेबोर्न के और द्वीपसमूह भी इटली को मिल जाएँगे। केवल यही इटली के प्रदेश थे जो लन्दन की सन्धि द्वारा इटली को मिलने निश्चित हुए। किन्तु उक्त सन्धि में फ़्यूम (Fiume) और दक्षिणी डालमेशिया (Dalmatia) के प्रदेशों का जिक्र नहीं किया गया था यद्यपि ये भी इटली के अमुक्त प्रदेश ही थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व की घटनाएं और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

हमने संसार के दो भयंकरतम युद्ध देखे हैं। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) से पूर्व लगभग चालीस वर्षों तक शान्ति रही थी। युद्ध अनेक ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक कारणों का परिणाम होता है। अभी तक युद्ध टालने का कोई संतोषजनक हल प्राप्त नहीं हो सका है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः सभी लोग विश्वास करते थे—चाहे वे स्वेच्छाचारी एकतन्त्र में विश्वास करते हों, चाहे प्रजातन्त्र में—कि युद्ध एक प्रभावकारी राजनीतिक अस्त्र है। युद्ध द्वारा ही फ्रांस ने राजनीतिक स्वतन्त्रता का प्रचार किया था। युद्ध ने ही नेपोलियन के अत्याचारों का अन्त किया था। युद्धों द्वारा ही इटली और जर्मनी ने अपने-अपने देशों की बिखरी हुई रियासतों को संघ रूप में संगठित किया था, युद्ध द्वारा ही संयुक्त राज्य अमेरिका का संघ बना था और युद्ध के मार्ग द्वारा ही पश्चिमी देशों ने पूर्व दिशा में भारी उपनिवेश प्राप्त किए थे। निस्सन्देह उस युग के पास ऐसा विश्वास करने के कारण थे कि युद्ध से अनेक प्रकार की राजनीतिक समस्याएँ सुलझ जाती हैं। किन्तु कुछ देश ऐसे थे जो अन्य देशों की अपेक्षा युद्ध में अधिक विश्वास रखते थे। जब प्रशावासी अपने प्राचीन इतिहास के पन्नों को उलट कर देखते थे तो उन्हें यही प्रेरणा मिलती थी कि कभी तो उनकी सीमाएँ अत्यन्त अरक्षित थीं। युद्ध और वैज्ञानिक प्रगति द्वारा अब वे अत्यन्त सुरक्षित थे, उनका सर्वत्र आदर था और उन्होंने साम्राज्य का विस्तार किया था, अतः वे धार्मिक विश्वास के साथ घोषित कर रहे थे कि युद्ध सभी कठिनाइयों का एक मात्र कारगर इलाज है। यही जर्मनी का राष्ट्रीय विश्वास था और यही उनके जीवन का सिद्धान्त था। फ्रांस के लोग भी अपने महान सम्राट् अथवा नेपोलियन के समय के विस्तार और यश को भूले नहीं थे जो वास्तव में युद्धों के ही परिणाम थे। इसके अतिरिक्त फ्रांस १८७० की पराजय को कैसे भुलाता अतः सारे फ्रांस में लोग युद्ध के लिए अत्यन्त लालायित थे। अन्य देशों के उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिन से इसी परिणाम पर पहुँचना होगा कि बावजूद यत्र-तत्र शान्ति-प्रयत्नों के प्रायः सभी लोगों का विश्वास था कि युद्धों से राष्ट्रीय सन्तोष प्राप्त होता है। कहीं-कहीं तो लोगों ने युद्ध की तैयारी में अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया था किन्तु इसके विपरीत कहीं-कहीं लोगों ने युद्ध का बहिष्कार भी कर दिया था और वे युद्ध को अशान्ति का एकमात्र इलाज नहीं मानते थे। इस प्रकार मानव-समाज की शान्ति की दिशा में एक उचित कदम उठाया जा चुका था। किन्तु जब तक थोड़े लोगों के विचारों में भी युद्ध एक प्रभावकारी राजनीतिक उपाय बना रहेगा तब तक युद्ध अवश्य ही समय-समय पर होते रहेंगे, अतः इतिहासकारों से यह पूछना उचित न होगा कि १९१४ के युद्ध के क्या कारण थे; बल्कि इतिहासकारों से यह पूछिए कि प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व के ४० वर्षों में शान्ति बनी रहने के क्या-क्या कारण थे। उक्त चालीस वर्षों में भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव थे, राष्ट्रों में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता थी और वैमनस्य था। उदाहरणस्वरूप अफ्रीका के बँटवारे के सम्बन्ध में कई राष्ट्रों में भारी तनाव था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८७१ से लेकर १८९० तक बिस्मार्क (Bismarck) यूरोपीय राजनीति पर छाया रहा किन्तु नवीन जर्मन साम्राज्य के चांसलर के रूप में वह शान्ति का इच्छुक था। उसने कहा था—"जर्मनी पूर्णरूपेण एक सन्तुष्ट राष्ट्र है। यद्यपि युद्ध द्वारा जर्मनी को राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रधानता मिली थी, परंतु यदि जर्मनी पुनः युद्ध का मार्ग ग्रहण करेगा तो उसकी सारी सफलताएँ नष्ट हो जाएँगी। युद्ध होने से यूरोप की सारी शक्तियाँ सम्मिलित होकर जर्मनी के विरुद्ध खड़ी हो जाएँगी और फलस्वरूप जर्मनी की आन्तरिक सुरक्षा भी, जो उसके राजनीतिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक थी, काफूर हो जायगी।" बिस्मार्क इन कटु सम्भावनाओं के प्रति जागरूक था और इसलिए उसने जर्मनी में युद्धप्रिय लोगों को विशेष बढ़ावा नहीं दिया, यद्यपि १८७५ में जर्मनी में अनेक ऐसे लोग थे जो फ्रांस की सैनिक शक्ति की उन्नति को भय के साथ देखते थे और जो फ्रांस की बदला लेने की भावना से आतंकित थे और जो चाहते थे कि फ्रांस के सशक्त बनने से पूर्व ही उसको समाप्त कर दिया जाय।

बिस्मार्क (१८७०-९०)

इसलिए, जिस प्रकार कि ऑस्ट्रिया में १८१५ के बाद मैटरनिक (Metternich) की यही नीति थी कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनी रहे, उसी प्रकार १८७० से १८९० तक बिस्मार्क की भी यही नीति रही कि जर्मनी के हित में अन्तर्राष्ट्रीय यथास्थिति (*Status quo*) बनी रहे। एक ओर स्वयं बिस्मार्क ने वियना (Vienna) में संस्थापित शक्ति-सन्तुलन कई बार गड़बड़ किया था, किन्तु वही बिस्मार्क अब उस शक्ति-सन्तुलन का संरक्षक था जो कॉनिग्रेज (Koniggratz) और सीडान में स्थापित किया गया था। बिस्मार्क को फ्रांस से डर था और वह उसे भयंकर शत्रु समझे बैठा था। उसे विश्वास था कि फ्रांस फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) की शक्ति सन्धि को आसानी से मानने वाला नहीं है। अतः फ्रांस को कूटनीतिक दृष्टि से अकेला करने के लिए और जर्मनी की सुरक्षा के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि बिस्मार्क कुछ देशों के साथ विस्तृत कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करे और जर्मनी के विरुद्ध किन्हीं देशों का गुट न बनने दे। जर्मनी की शत्रुता तो फ्रांस से थी और बिस्मार्क की कूटनीतिक सफलता इसी में थी कि वह फ्रांस को कूटनीतिक रूप से अकेला कर दे। इस दिशा में उसने ऑस्ट्रिया से प्रगाढ़ मैत्री स्थापित की और इटली को भी अपनी ओर मिला लिया तथा रूस से भी मैत्री कर ली। उधर उसने ब्रिटेन से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए।[1] फलस्वरूप, बिस्मार्क के पतन काल तक इंग्लैंड और जर्मनी के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण बने रहे, केवल १८८० के बाद के दो-एक वर्षों में उपनिवेशों के प्रश्न पर जर्मनी और इंग्लैंड में कुछ मन-मुटाव अवश्य हो गया था। यदि इंग्लैंड ने जर्मनी की औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षाओं को स्वीकार भी कर लिया होता तो भी इंग्लैंड और जर्मनी में मुकाबला ही क्या था क्योंकि इंग्लैण्ड एकद्वीपीय साम्राज्य था जो कूटनीतिक दृष्टि से यूरोपीय झगड़ों से अलग था और जर्मनी एक स्थलीय शक्ति थी जिसके पास अच्छे

१. यद्यपि बिस्मार्क अंग्रेजों की उदारवादी नीति और उनके रवैये से प्रसन्न नहीं था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाज़ी बेड़े का सर्वथा अभाव था। बिस्मार्क ने तो यहाँ तक कहा था—"स्थल के चूहे और जल के चूहे में कभी लड़ाई नहीं होती।"

जब से बिस्मार्क प्रशा का प्रधान-मन्त्री बना था, तभी से बिस्मार्क ने यह नीति अपनाई थी कि प्रशा और रूस के बीच मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध बने रहें। वास्तव में जर्मन साम्राज्य ही प्रशा और रूस की मैत्री के कारण बना था और यद्यपि प्रशा की १८७० की महान् सफलताओं से रूस जलता था फिर भी रूस ने भी प्रशा की मैत्री से पर्याप्त लाभ उठाया था और इसलिए इन दोनों देशों की मैत्री पक्की थी। किन्तु बिस्मार्क के लिए ऑस्ट्रिया की मैत्री प्राप्त करना कुछ कठिन था क्योंकि वह जर्मनी द्वारा हाल ही में बुरी तरह पराजित हो चुका था। कॉनीग्रेज़ (Koniggratz) पर विजय प्राप्त करते ही बिस्मार्क यह सोचने लगा था कि प्रशा और ऑस्ट्रिया के बीच यथाशीघ्र मैत्री स्थापित होनी चाहिए; इसलिए उसने हैब्सबर्गों के जख्मों पर मरहम लगाना ही उचित समझा और सीडान के मैदान पर फ्रांस को पराजित करने के पश्चात् तो बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया को प्रसन्न करने के निश्चित प्रयत्न किए और इस दिशा में उसको इस सीमा तक सफलता मिली कि १८७२ में जर्मनी, रूस और ऑस्ट्रिया-हंगरी के तीनों सम्राटों में मैत्री-सन्धि (The Dreikaiserbund) हुई। यह लोग तीनों सम्राटो की व्यक्तिगत मैत्री थी जो किसी सीमा तक रेड इंटरनेशनल (Red International) और समाजवाद के प्रसार के विरुद्ध थी; किन्तु वास्तव में इस लीग का भारी राजनीतिक महत्त्व था। इस लीग का अर्थ था कि ऑस्ट्रिया, सैडोवा (Sadowa) की पराजय को भूल चुका था और उसने जर्मनी से अपने बहिष्कार को भी स्वीकृत कर लिया था तथा जर्मनी में प्रशा ही सर्वोच्च था, यह भी ऑस्ट्रिया को स्वीकार्य था।

तीन सम्राटों की लीग (Dreikaiserbund) (१८७२)

१८७२ की तीन सम्राटों की लीग बहुत काल तक न चली। १८७५ में जर्मनी और फ्रांस के बीच युद्ध का भय था किन्तु रूस का रुख अनिश्चित रहा; और संभवतः तभी से बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के साथ और अधिक घनिष्ठ संबन्ध बनाने चाहे। इसलिए जब १८७८ में रूस-तुर्की युद्ध के अवसर पर एक ओर रूस और दूसरी ओर ब्रिटेन एवं ऑस्ट्रिया के हितों में संघर्ष हुआ तो बिस्मार्क ने निश्चित रूप से रूस-विरोधी रुख लिया यद्यपि बर्लिन की सभा (Congress of Berlin) में वह कहा करता था कि "मैं तो ईमानदार दलाल हूँ।" मजबूर होकर ज़ार को विजय के द्वार पर रुक जाना पड़ा। यही नहीं, यूरोपीय काँग्रेस में सारी सन्धि की शर्तों पर पुनर्विचार किया गया और अब ज़ार के कुस्तुन्तुनिया प्राप्त करने के सारे स्वप्न हवा हो गए। सम्भव है कि बिस्मार्क की इस कार्यवाही से यूरोपीय युद्ध रुक गया हो किन्तु इसके कारण जर्मनी को रूस की मित्रता से वंचित होना पड़ा।[1]

रूस और जर्मनी की मैत्री कमजोर पड़ जाती है (१८७५-७८)

---

१. अध्याय ७ भी देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जार एलेक्ज़ैण्डर द्वितीय को बिस्मार्क के व्यवहार से भारी निराशा हुई और वह तीन सम्राटों की लीग (Dreikaiserbund) से हट गया।[1] इसके जवाब में बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के साथ अपने सम्बन्ध पक्के कर लिये और १८७९ में जर्मनी और ऑस्ट्रिया के बीच दो देशों की सन्धि हुई जिसके द्वारा निश्चित किया गया कि यदि रूस जर्मनी या ऑस्ट्रिया में से किसी देश के ऊपर आक्रमण करेगा तो दूसरा देश उसकी सहायता करेगा।[2]

दो देशों की सन्धि (१८७९)

इसके तीन वर्ष पश्चत् फ्रांस और इटली की ट्यूनिस (Tunis) के सम्बन्ध में प्रतिद्वन्द्विता की आड़ में बिस्मार्क ने इटली को समझाया कि वह ऑस्ट्रिया के प्रति अपनी पुरानी शत्रुता को भुला दे। इस आधार पर एक तीन देशों की गुप्त सन्धि (Triple Alliance) हुई जिसमें इटली-ऑस्ट्रिया, हंगरी और जर्मनी ने रक्षात्मक लीग बनाई। यह किसी सीमा तक फ्रांस के विरुद्ध रक्षात्मक सन्धि या लीग थी और किसी सीमा तक यह रूस के सम्भावित आक्रमण के विरुद्ध भी थी।[3]

तीन देशों की (लीग १८८२)

किन्तु बिस्मार्क करता कुछ था, और सोचता कुछ और था। वह अत्यन्त दूर-दर्शी था। यद्यपि उसने तीन देशों की लीग को पक्का किया था, परन्तु वह यह भी नहीं चाहता था कि रूस से शत्रुता मोल ले ले, क्योंकि उसे भय था कि कहीं रूस फ्रांस से न मिल जाय। यद्यपि सार्वजनिक रूप से बर्लिन और सेंट पीटर्सबर्ग के सम्बन्ध टूट से गये थे किन्तु बिस्मार्क रूस के साथ प्राइवेट सम्बन्ध स्थापित कर सकता था। इसलिये १८७९ की दो देशों की सन्धि की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी जिसमें जर्मनी और ऑस्ट्रिया ने पारस्परिक सुरक्षा सन्धि की थी, कि बिस्मार्क पुनः रूस की ओर झुका और यद्यपि बारम्बार एलेक्ज़ैण्डर द्वितीय ने बिस्मार्क के व्यवहार की शिकायत की फिर भी बिस्मार्क ने फ्रांस और रूस में मैत्री नहीं होने दी और इस प्रकार रूस और जर्मनी का सम्बन्ध टूटने नहीं पाया।

१८८१ में तीन सम्राटों की लीग पुनर्जीवित हो गई थी, किन्तु १८८५-८६ के बल्गेरिया (Bulgaria) के प्रश्न पर उक्त लीग टूट गई। इसके फलस्वरूप रूस और ऑस्ट्रिया के बीच युद्ध सन्निकट दिखाई देने लगा। अब जर्मनी को भय हुआ कि १८७९ की दो देशों की सन्धि (Dual Alliance) खतरे में है। अतः बिस्मार्क ने रूस के साथ एक गुप्त सुरक्षा सन्धि (Reinsurance Treaty) की जिसके द्वारा निश्चय किया गया कि यदि दोनों में से किसी देश पर किसी अन्य शक्ति द्वारा

---

१. भूतपूर्व कैसर विलियम द्वितीय द्वारा लिखित "मेरे संस्मरण" (*My Memoirs* 1878-1918) नामक पुस्तक के पृष्ठ १७ पर लेखक के बयान को देखिये।

२. इस सन्धि की शर्तों को १८८७ तक गुप्त रखा गया था।

३. इटली का समुद्र-तट कमजोर था अतः इटली तत्कालीन सशक्त समुद्री शक्ति ग्रेट ब्रिटेन को अत्यन्त अप्रसन्न करना नहीं चाहता था। इसलिए इटली ने स्पष्टतः चाहा था कि उक्त सन्धि द्वारा इंग्लैंड को अप्रसन्न न किया जाय। प्रारम्भ में यह सन्धि केवल पाँच वर्षों के लिए हुई थी किन्तु बार-बार इसकी अवधि बढ़ाई जाती रही और इस प्रकार यह विश्वयुद्ध तक प्रभावी रही।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण किया जाय तो दूसरा देश तटस्थ रहेगा।[1]

इस प्रकार बिस्मार्क ने अपने पतन से पूर्व जर्मनी के हित में कई सुरक्षात्मक और प्रति-सुरक्षात्मक सन्धियाँ कर ली थीं। ऑस्ट्रिया की ओर से सम्भाव्य आक्रमण के विरुद्ध उसने रूस की तटस्थता का विश्वास प्राप्त कर लिया था। रूस द्वारा जर्मनी के विरुद्ध सम्भावित आक्रमण के विरुद्ध उसने ऑस्ट्रिया से भी तटस्थता का आश्वासन प्राप्त कर लिया था। उधर यदि फ्रांस की ओर से जर्मनी को भय हो तो उसने इटली की सहायता का आश्वासन प्राप्त कर लिया। यदि जर्मनी के विरुद्ध रूस और फ्रांस मिलकर आक्रमण करते तो ऑस्ट्रिया और इटली भी मिलकर जर्मनी की सहायता करते। यह अत्यन्त पेचीदा जादूभरी कूटनीति थी जिसे बिस्मार्क की योग्यता का व्यक्ति ही सफलतापूर्वक निभा सका। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि एक ओर बिस्मार्क ने कुछ समय के लिए फ्रांस को यूरोपीय कूटनीति में अकेला कर दिया और साथ ही वह अपने कार्यकाल तक यूरोप में यथास्थिति बनाये रखने में पूर्ण सफल रहा। सत्य यह है कि जब तक वह जर्मन साम्राज्य का भाग्य-विधाता बना रहा तब तक उसने यूरोप की शान्ति को भंग नहीं होने दिया। सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह रहा कि वह किसी भी हालत में युद्ध नहीं चाहता था। ऐसा मानने के लिये पर्याप्त सामग्री है कि बिस्मार्क की नीति में समनुगति का पूर्ण अभाव था क्योंकि एक ओर तो जर्मनी-ऑस्ट्रिया और रूस के त्रिभुजीय गठबन्धन में अप्रत्यक्ष विरोधाभास थे जैसा कि स्वयं रूस ने भी बल्गेरिया के संकट के अन्तिम दौर में अनुभव किया था और स्वयं बिस्मार्क के पतन के पूर्व भी ऐसा ही अनुभव होने लगा था और वह इसी कारण जर्मनी से विरक्त होकर फ्रांस की ओर आकृष्ट होने लगा था। वास्तव में बात यह थी कि बिस्मार्क की कूटनीति में बहुत से स्पष्ट दोष थे। उसकी कूटनीति का आधार था ऑस्ट्रिया-हंगरी से और इटली से जर्मनी की मैत्री। परन्तु यह आधार कमजोर था। बिस्मार्क की कूटनीतिक व्यवस्था में ग्रेट ब्रिटेन के लिए कोई स्थान नहीं था। उसने कई बार रूस को प्रसन्न करने के उद्देश्य[2] से अथवा फ्रांस के

---

१. इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य यह था कि रूस और ऑस्ट्रिया-हंगरी में युद्ध न छिड़ने पाये; किन्तु इसको ऑस्ट्रिया-हंगरी से छिपा कर रखा गया यद्यपि दो देशों (जर्मनी और आस्ट्रिया) की संन्धि की शर्तें रूस को बता दी गई थीं। यही नहीं जर्मनी और रूस की गुप्त संधि की शर्तें इंग्लैंड से भी छिपाई गई थीं क्योंकि इन शर्तों से इंग्लैंड को क्षोभ होना स्वाभाविक था। चूँकि यह संधि रूस को निकट पूर्व के प्रश्नों में छूट देती थी जबकि बिस्मार्क के मित्र देश इटली और ऑस्ट्रिया हंगरी इंग्लैंड के साथ रूस विरोधी नीति पर समझौता करने जा रहे थे।

२. १८८७ में भूमध्य सागर के सम्बन्ध में जो लाभकारी व्यवस्था ग्रेट ब्रिटेन, इटली और ऑस्ट्रिया-हंगरी के बीच तय हुई वह कई अवसरों पर जर्मनी को भी प्राप्त हो गई होती किन्तु हर बार रूस को प्रसन्न रखने की धुन में बिस्मार्क रूस के निकटपूर्व के हितों का समर्थन करने लगता था जिससे ब्रिटेन को चिढ़ होती थी। इसमें सन्देह नहीं है कि अन्य अवसरों पर बिस्मार्क इस नाराजी को दूर करने के अभिप्राय से अन्य रियायतें देने को, राजी हो जाता था परन्तु साथ ही उसने मिस्र में और अन्य उपनिवेशों में फ्रांस और ब्रिटेन को एक-दूसरे से लड़वाने का पूरा प्रयत्न किया था ताकि उक्त दोनों महान् देशों (ब्रिटेन और फ्रांस) का ध्यान यूरोपीय समस्याओं से दूर ही रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितों के संरक्षण के लिए ब्रिटेन की मैत्री की परवाह नहीं की। यह सत्य है कि जिस समय बिस्मार्क ने राजनीति से संन्यास लिया, उस समय जर्मनी और ब्रिटेन के सम्बन्ध अच्छे थे। उस समय ग्रेट ब्रिटेन किसी जर्मन-विरोधी गुट का सदस्य नहीं था। वास्तव में उस समय ग्रेट ब्रिटेन एक तटस्थ राष्ट्र था, किन्तु विस्मार्क की कूटनीतिक चालों ने तटस्थता को प्रायः असम्भव कर दिया था। इस प्रकार यद्यपि बिस्मार्क ने अस्थायी तौर पर फ्रांस को कूटनीतिक क्षेत्र में अकेला कर दिया था फिर भी फ्रांस न तो जर्मनी से प्रसन्न था और न फ्रांस पूरी तरह अशक्त था। बिस्मार्क ने केवल फ्रांस के विरुद्ध एक शत्रु समूह पैदा कर दिया था जिसने फ्रांस को मजबूर कर दिया कि वह भी मित्रों की तलाश करे।

इस प्रकार बिस्मार्क ने अपने पद से हटते समय अपने उत्तराधिकारी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनेक कठिन समस्याएँ उत्तराधिकार के रूप में छोड़ीं। कैसर विलियम द्वितीय (Kaiser William II) में इतनी योग्यता नहीं थी जो इन समस्याओं पर विजय पा सकता। किन्तु सत्य यह है कि इन समस्याओं को पैदा करने की अथवा इनको पेचीदा बनाने की सारी जिम्मेदारी बिस्मार्क के ऊपर है।

१८९० में बिस्मार्क का पतन हुआ। तब से प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने तक जर्मन संघ के प्रधान मन्त्री पद पर एक के बाद एक करके चार आदमी बदले और प्रायः नवीन जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय विदेश नीति सम्बन्धी निर्णयों के लिए उन्हीं को उत्तरदायी बनाता था। कैसर विलियम द्वितीय स्वयं कहता था कि किसी भी शासक के लिए एक साथ सोचना और संवैधानिकतः कार्य करना कठिन होता है। बॉन बुलो (Von Bulow) १९०० से लेकर १९०९ तक साम्राज्य का चांसलर रहा। उस काल में विदेश नीति के सम्बन्ध में चांसलर और जर्मन सम्राट में पूर्ण मतैक्य रहा; किन्तु सामान्यतः १८९० से १९१४ तक जर्मन विदेश नीति का संचालक जर्मन सम्राट ही रहा। यूरोपीय राजनीति में जर्मन साम्राज्य को जो प्राधान्य मिला। उसका सारा श्रेय उक्त काल में जर्मन सम्राट को ही मिलना चाहिए। विलियम द्वितीय में अनेक ऐसे गुण थे जो श्रेष्ठ शासक में होने चाहिएँ। उसके पास क्रियाशील मस्तिष्क था, उपजाऊ कल्पना थी। उसकी रुचियाँ अत्यन्त व्यापक थी। यहाँ तक कि वह जहाजों के सम्बन्ध में उतनी ही प्राविधिक योग्यता रखता था जितनी कि प्राचीन वास्तु शास्त्र के सम्बन्ध में। वह कल्पनाशील और विस्तृत विचारों का आदमी था। अपने कर्त्तव्यों के प्रति वह सदैव सजग रहता था और कठिन परिश्रम करने की उसकी आदत थी। परन्तु उसमें कुछ ऐसी कमियाँ भी थीं जो श्रेष्ठ राजनीतिज्ञों में नहीं होनी चाहिएँ। वह अहंकारी और स्वेच्छाचारी था, इस कारण उसे अच्छे और बुरे का विवेक नहीं था। उसमें वास्तविकता का पूर्ण अभाव रहता था इस कारण वह अच्छा कूटनीतिज्ञ नहीं था। वह कभी-कभी व्यर्थ ही लोगों के दिलों को दुखा देता था और कभी व्यर्थ ही लोगों की खुशामद भी किया करता था। वह काल्पनिक सिद्धान्तवादी था और उसमें ठण्डे दिल और दिमाग से सोचने या निर्णय करने की वह शक्ति नहीं थी जिस पर बिस्मार्क का असाधारण अधिकार था। उसकी प्रायः लोगों से शत्रुता हो जाया करती थी और वह लोगों के हृदयों में से अपने प्रति अनिच्छा या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृणा को दूर करने में सदा असफल रहा। वह स्थायी मैत्री बनाए रखने में सदैव पूर्ण असफल रहा।

युवक सम्राट के विचार वृद्ध चांमलर के विचारों के सर्वथा प्रतिकूल थे। नवीन सम्राट के विचारों से जर्मनी एक अतृप्त देश था और जर्मन राष्ट्र के सामने विकास की असीम सम्भावनाएँ थीं। नवीन सम्राट यह भी समझता था कि जर्मनीवासी वीर ट्यूटानिक जाति के वंशज हैं जिन्होंने सदैव अपने जौहर दिखाए हैं और जो सदैव अपने जौहर दिखायेंगे। वह भी समझता था कि जर्मन ही सारे संसार पर शासन करेगा।[1] जर्मन जाति न केवल, विलियम द्वितीय के अनुसार यूरोप के ऊपर शासन करेगी, बल्कि वह तो सारे संसार पर छा जाएगी।

इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकला कि जर्मनी को न केवल यूरोपीय मामलों में बल्कि सारे संसार की राजनीति में निर्णायक भाग लेना चाहिए। अब जर्मन लोग सोचने लगे कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर, चाहे वह समुद्र-पार के देशों से भी सम्बद्ध क्यों न हो, जर्मनी की राय का प्रभाव अवश्य पड़ना चाहिए। "हम विश्व-नीति और विश्व-व्यापार का संचालन करेंगे।" इसका यह भी निष्कर्ष निकला कि जर्मन साम्राज्य को उपनिवेशों का विस्तार और विकास करना चाहिए क्योंकि ऐसा जर्मनी के संसारव्यापी महत्त्व के अनुरूप था और जर्मनी की बढ़ती हुई जनसंख्या और व्यापक आर्थिक हितों के लिए भी यह नितान्त आवश्यक था। कैसर विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क की आलोचना करते हुए कहा था कि "वह (बिस्मार्क) तो अपने प्रधान मन्त्री काल में अर्जित उपनिवेशों का केवल यही महत्त्व समझता था कि उनके द्वारा राजनीतिक सौदेबाजी हो सकेगी।" कैसर का विचार था कि "उपनिवेशों से जर्मनी को वास्तविक लाभ होंगे और वे पितृदेश (जर्मनी) को कच्चा माल देंगे।" आगे चलकर कैसर कहता है—"मैंने प्रिंस बिस्मार्क को बताया था कि व्यापारी वर्ग और पूंजीपति वर्ग उपनिवेशों के विकास में पूरा योग देना चाहते हैं।"

जब कैसर उपनिवेशों को इतना महत्त्व देता था तो फलस्वरूप वह एक विशाल जहाजी बेड़ा भी आवश्यक समझता था। नये जर्मन उपनिवेश चाहते थे कि उनके व्यापारिक हितों की रक्षा का भार स्वयं जर्मन सरकार को वहन करना चाहिए।

---

१. कैसर विलियम द्वितीय का विचार था कि अंग्रेज जाति भी अर्द्धट्यूटानिक थी और उसमें भी उक्त गुण विद्यमान थे। किन्तु दुर्भाग्यवश अंग्रेज जाति में अन्य लैटिन जातियों का मिश्रण होता रहा, अतः वह जाति कुछ गिर गई। लार्ड ऑक्सफोर्ड (Lord Oxford) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "*Genesis of The War*" में पृष्ठ ४९-५० पर लिखा है कि कैसर को हाउस्टन चेम्बरलेन (Houston Chamberlain) की पुस्तक "*The Foundations of the Nineteenth Century*" बहुत पसन्द आई थी। इसके अतिरिक्त कैसर की पुस्तक मेरे संस्मरण, (*My Memoirs*, 1878-1918) के भी पृष्ठ १८१ पर देखिए। वहाँ कैसर ने स्वयं लिखा था—"जर्मनी और जर्मन जाति की विशालता का प्रथम दिग्दर्शन चेम्बरलेन ने अपनी पुस्तक "*The Foundations of the Nineteenth Century*' में कराया था जिससे सारा जर्मनी अवाक् रह गया।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिस्मार्क का विचार था कि यूरोप में जर्मनी के पास इतनी नौसैनिक शक्ति नहीं है कि वह उपनिवेशों की रक्षा कर सके। अतः उपनिवेशों के व्यापार की रक्षा के लिए विशाल समुद्री बेड़े की नितान्त आवश्यकता थी अन्यथा जर्मनी सदैव ग्रेट ब्रिटेन से दूसरे दर्जे की शक्ति रहता और जर्मन व्यापार पर ब्रिटेन के आक्रमणों का सदा भय बना रहता।[1] उधर यह विचार भी सर्वथा उपेक्षणीय नहीं था कि यदि जर्मन साम्राज्य के पास समृद्ध जहाजी बेड़ा न होगा तो "ब्रिटेन के आश्रित रहेगा और ब्रिटेन सदैव संसार का नेता बनने की ताक में रहता है यद्यपि उस नेतृत्व के प्रसार के लिए वह तरह-तरह के बाने बदलता रहता है।"[2]

कैसर की विदेशनीति के तीन प्रधान लक्षण बन गए—वे थे विश्व-राजनीति, विस्तार और नौसेना, और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इन तीनों तत्त्वों पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा। कैसर ने जिस नीति का अनुसरण किया वह बिस्मार्क की नीति के सर्वथा विरुद्ध थी और इसलिए बिस्मार्क द्वारा निर्मित सारी कूटनीतिक इमारत भूमिसात् हो गई। अब जर्मन साम्राज्य की नीति तृप्ति और सन्तोष अथवा यथास्थिति की नहीं थी और नव जर्मनी की रुचि शक्ति-संतुलन के बनाए रखने में नहीं रह गई थी। कैसर ने कहा था—"यूरोप में एक ही शक्ति-संतुलन है—वह शक्ति-संतुलन मेरे और मेरी पच्चीस विशाल सैनिक पल्टनों या टुकड़ियों के बीच है।"[3] कैसर की विदेशनीति अग्रिम, गतिशील और विस्तार की थी। यह नीति अत्यन्त बुद्धिमान लोगों के हाथों में भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अव्यवस्थित कर देने के लिए सक्षम थी। कैसर तो अविवेकी और बुद्धिहीन सम्राट था। वह भयंकर जर्मन प्रचार में लगा हुआ था। उसे भयंकर सैनिक नारों और सैनिक रूपकों के गढ़ने में आनन्द मिलता था। वह प्रायः अपने प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों को कभी तो घूंसा (Mailed fist) दिखाया करता था, कभी उन्हें चमकदार कवच (Shining Armour) के दर्शन कराता था और कभी उन्हें जर्मनी की तेज धार वाली पैनी तलवार (The well sharpened sword) से डराया करता था। वह अपने उत्तेजनापूर्ण और अग्रिम विचारों के समर्थन में सदैव अपनी अजेय सेना और विशाल नौसेना की दुहाई देता रहता था। कैसर की इस प्रकार की अविवेकपूर्ण हरकतों से कभी तो ऐसा प्रतीत होता था मानो वह सारे यूरोप पर सैनिक तानाशाही लादने का प्रयत्न कर रहा हो।

जब कैसर की मदान्ध विदेश नीति के फलस्वरूप जर्मनी की सारी राजनीति का दिवाला हो गया[1] तो बिस्मार्क के सुदूरगामी मैत्री सम्बन्धों की व्यवस्था का विनाश भी अनिवार्य था। तीन वर्षों के अन्दर ही जर्मनी ने रूस को अप्रसन्न कर दिया और

---

१. स्वयं बिस्मार्क ने इसी दलील द्वारा यह चाहा था कि जर्मनी को उपनिवेशों के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।

2. The Earl of Oxford : *The Genesis of the War.*

3. Prof. C. R. Beazley : *Nineteenth Century Europe and Britain*, p. 253.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब रूस और फ्रांस की मैत्री हो गई। छः वर्षों के अन्दर ही ब्रिटेन भी अप्रसन्न हो गया। उसके दो वर्ष पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना के अध्यक्ष एडमिरल ड्यूई (Admiral Dewey) ने भी स्पष्ट रूप से कह दिया कि उनका अलग युद्ध जर्मनी के साथ होगा। यहाँ तक कि १९०७ में जर्मन-ऑस्ट्रिया-इटली के ट्रिपिल एलायन्स के मुकाबले में तिहरी मैत्री सन्धि (Triple Entente) स्थापित हो गई। जापान और रूस में समझौता हो चुका था। उधर इटली ट्रिपिल एलायंस से बच जाना चाहता था। इन सब मित्रों को खोकर कैसर ने एक देश को मित्र बनाया। यह नया मित्र तुर्की था। कैसर ने निकट पूर्व में ऑस्ट्रिया के हितों को बढ़ाने की नीति को ग्रहण किया और वह स्वयं तुर्की में जर्मनी का प्रभाव बढ़ाने का यत्न करने लगा। इस प्रकार निकट पूर्व में ऑस्ट्रिया-हंगरी के हितों को बढ़ाने की जिम्मेदारी स्वयं जर्मनी ने अपने ऊपर ले ली।

बिस्मार्क के मैत्री-सम्बन्धों की व्यवस्था का विनाश

बिस्मार्क के पतन के तुरन्त पश्चात् कैसर ने बिस्मार्क की रूस के साथ 'री-इंश्योरेंस सन्धियों' (Reinsurance) को इस कल्पित आधार पर समाप्त हो जाने दिया कि उनमें ऑस्ट्रिया के विरुद्ध धमकी थी। कैसर समझता था कि री-इन्श्योरेंस सन्धियाँ अत्यन्त जटिल थीं और उनके परिणाम अरुचिकर होंगे। कैसर ने कहा था—"मैं समझता हूँ कि री-इन्श्योरेंस का प्रभाव समाप्त हो चुका है क्योंकि रूसी लोग पूरे हृदय से इसके समर्थक नहीं रहे हैं।" जब रूस के साथ की गई री-इन्श्योरेंस सन्धि इस प्रकार त्याग दी गई और यह घोषणा कर दी गई कि जर्मनी पूरी शक्ति के साथ ऑस्ट्रिया का साथ देगा, तो इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि फ्रांस और रूस में मैत्री हो गई। फ्रांस के साथ मैत्री हो जाने से रूस को एक लाभ यह हुआ कि वह अकेला नहीं रह गया था। उधर ट्रिपिल एलायन्स (Triple Alliance) पुनः नयी हो चुकी थी। और चूँकि इंग्लैंड अफ्रीका में फ्रांस से और अफगानिस्तान में रूस से अप्रसन्न था, अतः उसकी सहानुभूति ट्रिपिल एलायंस वाले देशों के साथ अधिक थी। किन्तु किसी अन्य विरोधी गुट के प्रति उसकी सहानुभूति बिल्कुल नहीं थी। इसलिए मजबूर होकर जार एलेक्जैण्डर तृतीय को गणतन्त्रवादी और अस्थिर राजनीति वाले फ्रांस से मैत्री करनी पड़ी जो वास्तव में रूस के लिए कड़वी दवा के समान अप्रिय था।

फ्रांस और रूस के मध्य ड्यूअल एलायंस (१८९१ व पुनः १८९५)

१८९१ में फ्रेंच जहाजी बेड़ा क्रॉनस्टैट (Kronstadt) पहुँचा जहाँ उसने रूस को औपचारिक शुभ-कामनाएँ अर्पित कीं। क्रीमिया युद्ध के पश्चात् प्रथम बार फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा रूसी बन्दरगाहों पर पहुँचा था। रूस में इस बेड़े का भारी स्वागत किया गया। जब स्वागत के समय रूसी राष्ट्रीय गीत की तान बजी तो फ्रांस के नाविक भावविभोर हो उठे। उसी प्रकार जब ज़ार ने मार्सेल्ज (*Marseillaise*)[1] नामक गीत की तान अपने नाविक बैंड पर सुनी तो वह भी भावा-

१. अभी तक मार्सेल्ज (Marseillaise) नामक गीत की धुन सार्वजनिक स्थानों पर वर्जित थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश में वह गया और उसने अपनी टोपी उतार ली। "जिस समय फ्रेंच बेड़ा रूसी बन्दरगाह में लंगर डाल रहा था उसी समय रूस और फ्रांस की मैत्री पक्की हो गई। अब तो केवल उस मैत्री को सरकारी भाषा में लिखना शेष था। ज़ार अपने आपको इस मैत्री में आबद्ध कर चुका था।'[1] फ्रांस के जहाज़ी बेड़े की औपचारिक यात्रा के बाद काफ़ी समय तक फ्रांस और रूस के बीच सन्धि की शर्तों पर विचार-विनिमय होता रहा। इसके अतिरिक्त रूस को फ्रांस ने एक ऋण दिया और फ्रांस के पूँजीपतियों के नाम एक अपील निकाली गई ताकि वे अपना धन रूस में लगायें।[2] १८९३ में रूसी जहाजी बेड़े ने तूलों (Toulon) की औपचारिक यात्रा की और जब रूसी अफ़सर पेरिस की सैर करने को निकले, तो कहा जाता है कि अनेक फ्रांसीसी नर और नारियाँ रूसी अफ़सरों को देखने दौड़े। कोई रूसी नाविकों के हाथों को चूमता था तो कोई नारी उनके आलिंगन से प्रसन्न होती थी। किन्तु एलेक्जैंडर तृतीय की मृत्यु के पश्चात् १८९५ में फ्रांस और रूस की स्थायी मैत्री की घोषणा हुई। इस राजनीतिक मैत्री की सारे यूरोप में किन्तु विशेष रूप से जर्मनी में कठोर प्रतिक्रिया हुई। ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि रूस और फ्रांस की मैत्री का आधार जर्मनी के प्रति दोनों देशों की सामान्य वैर-भावना थी, अतः उक्त मैत्री को आक्रामक मैत्री की संज्ञा दी गई। ग्रेट ब्रिटेन को भय हुआ कि अब फ्रांस मिस्र में विस्तार करेगा और रूस तुर्की के विरुद्ध आक्रामक कार्यक्रम अपनायेगा। कैसर ने कभी विश्वास नहीं किया था कि रूस और फ्रांस में राजनीतिक मैत्री हो जायगी, किन्तु अब उसको अल्सेसलारेन (Alsace-Lorraine) की चिन्ता हुई और उसको यह भी भय हुआ कि यदि युद्ध छिड़ गया तो उसे दो रणक्षेत्रों पर लड़ना पड़ेगा। इसलिये उसने अपनी सेना को बढ़ाया और तत्कालीन रूसी सम्राट् निकॉलस द्वितीय (Nicholas II) को, जो १८९४ में रूस के राजसिंहासन पर बैठा था, एक विरोध-पत्र भेजा। उस पत्र का सारांश यह है—

"मैं समझता हूँ कि आप हमारे ऊपर आक्रमण करने का इरादा नहीं रखते। किन्तु इसमें आश्चर्य ही क्या है यदि रूस के अधिकारियों और अफ़सरों की फ्रांस में उपस्थिति से यूरोप के देशों में उत्तेजना फैले और फ्रांस के उत्तेजनाशील लोगों का पारा ऊँचा चढ़े। इसलिए मैं तो यह चाहता हूँ कि यदि आपने फ्रांस के साथ मैत्री सन्धि की ही है—चाहे इसका परिणाम अच्छा निकले या बुरा तो आप कृपया इन दुष्टों को काबू में रखिये ताकि वे कोई उत्पात न करें।"

एक अन्य पत्र में कैसर ने रूस के सम्राट् को लिखा कि "फ्रांस और रूस की मैत्री से मुझे कोई घबराहट नहीं है। किन्तु मुझे चिन्ता इस बात की है कि आपने गण-राज्य को बढ़ावा देकर हमारे राजतन्त्र के सिद्धान्त को ठेस पहुँचाई है। प्रिय निकॉलस! मेरा विश्वास करो इन फ्रेंच दुष्टों से परमात्मा भी नाराज़ है और इनका उद्धार

---

1. Freycinet; quoted by G. P. Gooch : *History of Modern Europe (1878-1919)*, p. 172.

२. रोथ्सचाइल्ड (Rothschild) के परिवार ने रूस में अपनी पूँजी लगाना इस कारण अस्वीकार कर दिया था कि रूसी सरकार अपनी यहूदी प्रजा के ऊपर अत्याचार कर रही थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असम्भव है। हम ईसाई नरेशों और राजाधिराजों को भगवान् ने कुछ कार्य करने के लिये भेजा है। हम भगवान् की दया से राजतन्त्र के सिद्धान्त की अन्तिम समय तक रक्षा करेंगे।"[1]

इन विरोध-पत्रों के बावजूद रूस और फ्रांस की मैत्री तब तक बनी रही जब तक कि स्वयं ज़ारशाही समाप्त न हो गई। १८९६ में ज़ार और ज़ारीना ने सरकारी तौर पर फ्रांस का दौरा किया। यह पहला अवसर था जबकि किसी शासक सम्राट् ने इस प्रकार तृतीय गणराज्य का मान-वर्द्धन किया हो।

निःसन्देह फ्रांस को प्रसन्नता थी कि अब वह राजनीति में अकेला और अलग-थलग नहीं था। उसकी रूस के साथ मित्रता को कुछ लोगों ने प्राकृतिक आवश्यकता (The Cry of Nature) कहा, कुछ लोगों ने उसको भौगोलिक आवश्यकता (The Revelation of Geography) बतलाया, कुछ अन्य लोगों के अनुसार वह मैत्री युद्ध का बंधन (Bond of War) थी और कुछ और लोगों ने उसको शान्ति-सन्तुलन (Balance of Peace) की संज्ञा दी।"[2] फ्रांस में सरकारी तौर पर घोषणा की गई कि अब उसे किसी शक्ति का भय नहीं है। फ्रांस के लोग कहते थे—"आज का दिन (ड्यूएल एलायन्स का दिन) फ्रांस के सौभाग्य का मुबारक दिन है।" निस्सन्देह फ्रांस और यूरोप के इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि अगले दस वर्षों में जर्मन सम्राट् ने कई बार प्रयत्न किया कि फ्रांस और रूस की ड्यूअल एलायन्स (Dual Alliance) में और इटली, जर्मनी और ऑस्ट्रिया की ट्रिपिल एलायन्स (Trip'e Alliance) में विरोध कम हो जाय और उसके फ्रांस और रूस के साथ अच्छे सम्बन्ध हो जाएँ। एक बार तो जर्मन सम्राट् ने यहाँ तक सोचा था कि ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध एक अखिल यूरोपीय मोर्चा कायम किया जाय। उसने नवयुवक ज़ार निकॉलस के साथ मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया। पुनः उसने फ्रांस और रूस से मैत्री करके १८९५ में यह प्रयत्न किया कि जापान लायोटंग प्रायद्वीप (Liao-tung Peninsula) से दूर ही रहे। पुनः जर्मनी के सम्राट् ने रूस की खातिर १८९९ में ब्रिटिश मैत्री के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अन्त में उसने १९०५ में यह प्रयत्न किया कि किसी प्रकार जर्मनी, रूस और फ्रांस के बीच स्थायी मैत्री हो जाए। इस प्रकार उसने ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के दिमागों में, विशेषकर बोअर युद्ध (Boer War) के दिनों में यह भय बिठा दिया कि ग्रेट ब्रिटेन और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक अखिल यूरोपीय मोर्चा कायम होने जा रहा है। कारण यह था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को फ्रांस, रूस और जर्मनी तीनों ही घृणा की दृष्टि से देखते थे। किन्तु स्वयं कैसर ने जर्मन विदेश नीति का संचालन इतने भद्दे ढंग से किया कि ऐसे नाजुक मौके पर इंग्लैंड की रक्षा स्वयं कैसर की ग़लतियों ने की क्योंकि एक ओर उसने फ्रांस और रूस से सम्पर्क रखना अस्वीकार कर दिया यद्यपि प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि वह उक्त दोनों देशों के साथ

---

1. G. P. Gooch : *op. cit.*, p. 185.
2. Prof. C.R. Beazley : *op cit.*, p. 228.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सम्बन्धों को सुधारना चाहता है। और दूसरी ओर प्रारम्भ में तो उसने बोअरों (Boers) को आशा दिला दी कि वह उनकी सहायता करेगा और इस प्रकार उसने इंग्लैंड को अप्रसन्न कर दिया किन्तु बाद में बोअरों की ओर से मुंह मोड़ लिया और फिर तो उसने ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों को एक योजना प्रस्तुत की जिसके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र बोअरों अथवा असभ्य जनों (Boers) को समाप्त किया जा सके। उसी प्रकार १८९८ की फ़ैशोदा दुर्घटना (Fashoda incident)[1] के सम्बन्ध में कैसर ने पहले तो फ्रांस को बढ़ावा दे दिया कि वह इंग्लैण्ड से भिड़ जाय किन्तु बाद में उसने फ्रांस का समर्थन त्याग दिया। इस प्रकार जर्मन सम्राट् ने कई बार रूस को प्रसन्न करने की नीति के अनुसरण में ब्रिटेन के मैत्रीपूर्ण हाथ को स्वीकार नहीं किया और जापान के विरुद्ध कई बार रूस की सहायता भी की; परन्तु इस सब के बावजूद १९०४-०५ के युद्ध में उसने रूस की बिल्कुल सहायता नहीं की; बल्कि रूस की कठिनाइयों से उसने स्वयं लाभ उठाना चाहा और बल्कान प्रदेश पर ऑस्ट्रिया और जर्मनी के हितों की वृद्धि करनी चाही। इस प्रकार कैसर की कार्यवाहियों से केवल यही आभास मिलता था कि वह धोखाधड़ी या विश्वासघात करना चाहता है।[2] उधर जब कैसर ने तुर्की की हितकारी नीति अपना ली तो रूस एवं जर्मनी में मैत्री होने की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो गईं और बोस्निआ (Bosnia) के १९०८ के संकट के बाद तो ड्यूअल एलायन्स (Dual Alliance) वाले देशों अर्थात् रूस और फ्रांस की ट्रिपिस एलायन्स (Triple Alliance) वाले देशों अर्थात् जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली से मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने की आशा क्षीणतर हो गई।

इस बात की सम्भावना थी कि जर्मन सम्राट् इंग्लैण्ड की मित्रता का आकांक्षी होगा क्योंकि जर्मनी की दो शक्तिशाली पड़ोसी देशों से शत्रुता थी; दूसरी ओर यदि जर्मनी को जापान की मैत्री प्राप्त हो सकती तो भी इससे रूस के मार्ग में बाधा आती। किन्तु जर्मन सम्राट् ने प्रशान्त महासागर में जापान के साथ प्रतिद्वन्द्विता बनाए रखी और इधर पश्चिम में ग्रेट ब्रिटेन की मैत्री प्राप्त करने के कई सुन्दर अवसर खो दिए। अन्त में तो उसने इंग्लैण्ड को अपना शत्रु ही बना लिया।

ग्रेट ब्रिटेन के साथ जर्मनी के सम्बन्ध

बिस्मार्क की मुख्य रुचि यूरोप तक ही सीमित रहती थी। फिर जर्मनी के वे सब उपनिवेश, जो प्रशान्त महासागर में या पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका में या कैमरून्स (Cameroons) में उस समय थे, वे सब बिस्मार्क के कार्यकाल में ही अर्जित किए गए थे। बिस्मार्क की इच्छा थी कि जर्मनी, अफ्रीका में उपनिवेश प्राप्त करे और इस प्रकार काले महाद्वीप (Dark Continent) में अन्य शक्तियों के मुकाबले में अपना प्रभाव बढ़ावे। १८८०-९० के प्रारम्भिक वर्षों में ग्रेट ब्रिटेन जर्मनी की अफ्रीकी हलचलों से कुछ अप्रसन्न था; किन्तु बिस्मार्क की कूटनीति सफल हुई और न केवल ब्रिटेन और जर्मनी में तनाव नहीं हुआ बल्कि ब्रिटेन ने जर्मनी को अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने में सहायता दी। १८८४-८५ में

---

१. अध्याय १० देखिये।

2. *Cf.* Prof. C. R. Beazley, *op. cit.*, p. 255.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्लिन (Berlin) में एक सम्मेलन हुआ जिसमें ब्रिटेन और जर्मनी में अफ्रीका के बँटवारे के सम्बन्ध में पूर्ण समझौता हो गया ; और १८८५ के बसन्त में ग्लैडस्टन (Gladstone) ने ब्रिटिश संसद् में यहाँ तक घोषणा कर दी कि "यदि जर्मनी को उपनिवेशों की इच्छा है तो मैं जर्मनी के इस दिशा में किए गए प्रयत्नों का स्वागत करूँगा और चाहूँगा कि ईश्वर उसे इस प्रयत्न में सफल करे। भगवान् ने अनुन्नत मनुष्य जाति के उपकार का हमको जो अवसर दिया है उसके पूरा करने में जर्मनी हमारा साथ देगा।"

इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्ध १८८०-९० के अन्तिम वर्षों में और १८९०-१९०० के प्रारम्भिक वर्षों में, जबकि विलियम द्वितीय (William II) राज-सिंहासन पर बैठा और बिस्मार्क का पतन हुआ, अत्यन्त मधुर थे। इन्हीं दिनों कैसर इंग्लैण्ड गया और उसके अंग्रेज आत्मीय जन उससे मिलने जर्मनी गए। इन दिनों जर्मन सम्राट् सदैव इंग्लैण्ड के प्रति इस प्रकार की शुभकामनाएँ प्रकट किया करता था ; "इस सुन्दर देश में मुझे भारी सुख का अनुभव होता है····· जहाँ तक मुझसे बनेगा, मैं अवश्य ही इंग्लैण्ड और जर्मनी में अच्छे से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयत्न करता रहूँगा।" जर्मनी की ग्रेट ब्रिटेन से मैत्री का

जर्मनी को १८९० में हेलीगोलैण्ड प्राप्त हुआ

एक सुखद परिणाम यह हुआ कि ज़न्जीबार (Zanzibar) और विटू (Witu) के बदले में जर्मनी को हैलीगोलैण्ड (Heligoland) प्राप्त हो गया। हैलीगोलैण्ड नाम का द्वीप १८०७ से ही ब्रिटेन के अधिकार में था, और प्रस्तावित कील नहर (Kiel Canal) की महत्ता के कारण इस द्वीप का जर्मनी के लिए भारी महत्त्व था। यद्यपि बिस्मार्क ने कभी भी हेलीगोलैण्ड को इतना महत्त्व नहीं दिया था जितना कि कैसर ने ; फिर भी १८८४ में बिस्मार्क ने इसको जर्मनी के लिए प्राप्त करने का प्रयत्न किया था और उसने प्रस्ताव किया था कि इससे जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन के सम्बन्ध मधुर हो जाएँगे। किन्तु जिस समय हेलीगोलैण्ड को ब्रिटेन से माँगने की बातचीत चली थी उस समय जर्मनी और ब्रिटेन के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, अतः बिस्मार्क की प्रार्थना पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया और ब्रिटेन ने यह जला-कटा जवाब दिया कि निस्सन्देह यदि जिब्राल्टर (Gibralter) ब्रिटेन को मिल जाए तो इससे ब्रिटेन और स्पेन के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर हो सकते हैं। फिर भी छः वर्ष बाद लार्ड सेलिसबरी (Lord Salisbury) की सरकार ने हेलीगोलैण्ड नामक द्वीप जर्मनी को दे दिया। निःसन्देह ब्रिटेन और जर्मनी के बीच बिस्मार्क ने मधुर सम्बन्ध पैदा कर दिए थे और ब्रिटेन द्वारा उक्त रियायत बिस्मार्क की ब्रिटेन के प्रति उदार नीति का परिणाम थी। किन्तु चूँकि जिस समय ब्रिटेन ने जर्मनी को हेलीगोलैण्ड हस्तान्तरित किया, उस समय तक बिस्मार्क का पतन हो चुका था इसलिए कैसर ने कहा कि यह उसकी स्वतन्त्र नीति की प्रथम विजय थी। दोनों देशों में इस सम्बन्ध में पर्याप्त वाद-विवाद रहा कि कौन-सा पक्ष लाभ में रहा और कौन-सा पक्ष घाटे में। इंग्लैण्ड की सरकार का इस सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण था उसे स्टैनले (Stanley) के निम्न शब्दों में समझा जा सकता है—"हमने पतलून के एक बटन के बदले में पूरा सूट प्राप्त किया है।" जर्मनी में इस समझौते की प्रतिक्रिया के रूप में बिस्मार्क की पार्टी की तीव्र आलोचना की गई, यद्यपि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में वह आलोचना सारी सरकार की नीति की आलोचना थी। किन्तु इस प्राप्ति पर कैसर तो बहुत ही प्रसन्न था। उसने कहा—"बिना एक बूंद खून या आँसू के गिराए हमारे अधिकार में यह सुन्दर द्वीप आ गया है। मैं महामहिमामयी रानी विक्टोरिया के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ, जिनकी कृपा के बिना यह द्वीप हमको प्राप्त न होता।" कैसर जिस नौसैनिक नीति पर चल रहा था उसके अनुसार हेलीगोलैंड (Heligoland) नामक द्वीप पर जर्मनी का अधिकार अत्यन्त आवश्यक था; और उस समय यह किसी को आशंका नहीं थी कि इंग्लैण्ड और जर्मनी के बीच युद्ध होगा।

ब्रिटेन जर्मनी को मध्य अफ्रीका के उपनिवेश देना चाहता है किन्तु कैसर लेने को तैयार नहीं

जिन दिनों इंग्लैण्ड और जर्मनी के मधुर सम्बन्ध बने रहे, उन दिनों में ब्रिटेन ने जर्मनी के हित में कई लाभदायक प्रस्ताव रखे किन्तु कैसर ने उनसे पूरा लाभ नहीं उठाया। चूंकि ब्रिटेन फ्रांस के प्रभाव को कम करना चाहता था और चूंकि वह जर्मनी को मैत्रीपूर्ण पड़ोसी राष्ट्र समझे बैठा था, अतः उसने जर्मनी से अनुरोध किया कि वह चाद झील (Lake Chad) से लेकर उत्तरी नील नदी तक के सारे मध्य अफ्रीकी भू-भाग पर अधिकार कर ले। यही नहीं, ब्रिटेन ने उक्त सारे प्रदेश पर जर्मन अधिकार को मान्यता प्रदान करने का भी आश्वासन दिया। फ्रांस ने विरोध किया क्योंकि यदि इस प्रकार जर्मनी का औपनिवेशिक साम्राज्य बढ़ जाता तो इससे फ्रांस के सारे औपनिवेशिक सपने समाप्त हो जाते। फ्रांस तो इस ताक में था कि भूमध्य सागर से लेकर कांगो तक फ्रेंच साम्राज्य स्थापित होना चाहिए। इसलिए कैसर ने ब्रिटेन के उक्त प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। कैसर ने इस अवसर से लाभ नहीं उठाया, किन्तु यदि उसके स्थान पर बिस्मार्क होता तो वह निस्सन्देह इसके बदले में कुछ न कुछ अन्य लाभ तो अवश्य उठाता।[1] और इस प्रकार फ्रांस की इच्छा के सामने घुटने टेक देने से भी फ्रांस ने जर्मनी के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं की।

ब्रिटेन की दक्षिणी अफ्रीका संबन्धी नीति के कारण इंग्लैण्ड और जर्मनी के संबंध खराब हो गये

ग्रेट ब्रिटेन की दक्षिणी अफ्रीका के सम्बन्ध में जो नीति थी, उसी के ऊपर इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्धों में दरार के प्रथम लक्षण दिखाई पड़े। १८९६ में जर्मनी के किसी मन्त्री ने जर्मन सम्राट् की ओर से राष्ट्रपति क्रुगर (President Kruger) के नाम जेमीसन आक्रमण की विफलता पर एक तार भेजा। ब्रिटेन में इसको ब्रिटिश सरकार के प्रति उद्धतता समझा गया।—स्वयं कैसर ने इस तार की जिम्मेदारी अपने मन्त्रियों पर रखी, और अब यह स्वीकार किया जाता है कि उक्त तार कैसर की इच्छा के विरुद्ध भेजा गया था। किन्तु इंग्लैण्ड के लोगों की ऐसी धारणा बन गई कि जर्मनी अपने लाभ के लिए बोअरों (Boers) को उभार रहा है। बोअर युद्ध (Boer War) के जमाने में जर्मनी के लोगों ने ब्रिटिश विरोधी मनोवृत्ति प्रदर्शित की थी। केवल जर्मनी के लोगों ने ही नहीं; बल्कि सारे यूरोप के लोगों ने

---

१. क्योंकि वह कैमरून प्रदेश की मांग कर रहा था जो चाद झील (Lake Chad) तक विस्तृत था। यह मांग अवश्य मान ली जाती। *Cf.* Prof. C. R. Beazley, *op. cit.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटेन-विरोधी रुख अपनाया था; और यद्यपि कैसर ने स्पष्टतः ब्रिटिश समर्थक दृष्टिकोण अपनाया था और यद्यपि विक्टोरिया की मृत्यु के अवसर पर १९०१ में स्वयं कैसर ने इंग्लैण्ड जाकर शोक प्रदर्शित किया था फिर भी इंग्लैण्ड को जर्मनी से शिकायत बनी ही रही।

किन्तु इंग्लैण्ड के सम्बन्ध में केवल जर्मनी के हाथ ही खराब नहीं थे। इंग्लैण्ड की प्रायः सभी यूरोपीय देशों से लड़ाई थी। सत्य यह है कि १०वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में यूरोप के देशों में इंग्लैण्ड जितना बदनाम था उतना बदनाम वह कभी कहीं रहा। एक ओर चीन में रियायतें माँगी जा रही थीं; दूसरी ओर जर्मनी ने कियाओ-चाऊ (Kiao-Chau) पर अधिकार कर लिया था तथा रूस ने पोर्ट आर्थर (Port Arthur) पर अधिकार कर लिया था अतः इंग्लैण्ड की रूस और जर्मनी से अनबन थी। फैशौदा दुर्घटना के कारण इंग्लैण्ड और फ्रांस युद्ध के किनारे पर खड़े थे; और इंग्लैड की दक्षिणी अफ्रीका के सम्बन्ध में जो नीति थी उसे आक्रामक साम्राज्यवादी नीति कहा जा रहा था। जिस समय निकॉलस द्वितीय (Nicholas II) ने १८९९ में हेग (Hague) में प्रथम शान्ति सम्मेलन आहूत किया उस समय पर्याप्त संभावना थी कि इंग्लैण्ड की यूरोप की किसी अन्य बड़ी शक्ति के साथ लड़ाई छिड़ जाती या संभवतः उस संभावित युद्ध में एक ओर अकेला ग्रेट ब्रिटेन होता तथा दूसरी ओर यूरोप की तीनों बड़ी शक्तियाँ (फ्रांस, जर्मनी और रूस) होतीं। कारण यह था कि ग्रेट ब्रिटेन राजनीतिकतः अकेला पड़ गया था। यद्यपि उस समय अच्छा अवसर था जबकि फ्रांस, रूस और जर्मनी मिलकर इंग्लैण्ड से निबट सकते थे, तथापि जर्मनी ने फिर इस अवसर से लाभ नहीं उठाया। इसके कई कारण थे। जैसा कि वॉन बुलो (Von Bulow) ने हमें बतलाया है, प्रथम कारण यह था कि जर्मनी को फ्रांस पर विश्वास नहीं था, क्योंकि फैशौदा (Fashoda) की दुर्घटना से सीडान (Sedan) की पराजय भुलाई नहीं जा सकती थी; द्वितीयतः जर्मनी के पास इतनी सशक्त नौसेना नहीं थी जो वह समुद्र में ग्रेट ब्रिटेन को हरा सकता।

बोअर युद्ध के दिनों में इंग्लैण्ड राजनीतिकतः अकेला रह गया

किन्तु इस भय के कारण ब्रिटेन को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। जैसा कि लार्ड ऑक्सफोर्ड (Lard Oxford) ने कहा है, ब्रिटिश नीति में प्रथम परिवर्तन यह हुआ कि बोअर युद्ध (Boer War) के बाद से इंग्लैण्ड राष्ट्रीय तौर पर जर्मनी को शत्रु समझने लगा। द्वितीयतः, ब्रिटेन को मित्रों की तलाश होने लगी।

किन्तु उस समय ऐसा समझा जा रहा था कि जर्मनी के प्रति जो ब्रिटेन में नाराजगी है, वह दूर हो सकती है, और यह तो निर्विवाद था कि इंग्लैण्ड को जर्मनी से उतनी शिकायत नहीं थी जितनी कि उसे रूस या फ्रांस से शिकायत थी। इसलिए सर्वप्रथम इंग्लैंड ने जर्मनी से स्थायी मैत्री करने का प्रस्ताव किया। मि० जोसेफ चेम्बरलेन (Mr. Joseph Chamberlain) ने अपनी लोकप्रियता के लिए भारी खतरा उठाते हुए एक योजना प्रस्तुत की जिसके अनुसार इंग्लैण्ड, जर्मनी और संभवतः अमेरिका के बीच स्थायी मैत्री स्थापित करना

प्रस्तावित आंग्ल-जर्मन मैत्री (१८९९-१९०१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभीष्ट था किन्तु इस बार भी जर्मन सम्राट ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया क्योंकि उनके विचार से उक्त मैत्री रूस के विरुद्ध थी। इस प्रकार जर्मनी ने इंग्लैण्ड के साथ स्थायी मैत्री का एक स्वर्ण अवसर खो दिया। इस पर इंग्लैंड ने सुदूर पूर्व में जापान के साथ मैत्री सन्धि की ताकि रूस पूर्ण निश्चिन्त न रहे। ब्रिटेन अब अकेला न था।

बगदाद रेलवे योजना से ब्रिटेन चिन्तित

जब जर्मनी की बग़दाद रेलवे योजना पूरी हो गयी तो ग्रेट ब्रिटेन को भारत के बचाव की चिन्ता होने लगी। बगदाद रेलवे के अन्तिम स्टेशन पर फारस की खाड़ी में जर्मनी का विशाल सामुद्रिक अड्डा बनाने का विचार था। इससे मध्य पूर्व में ब्रिटेन के हित खटाई में पड़ सकते थे। अतः १९०३ में लार्ड लैन्सडाउन (Lord Lansdowne) ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि ब्रिटेन इस योजना का हर सम्भव उपाय से विरोध करेगा। ब्रिटेन ने उक्त क्षेत्र के स्थानीय शासन के ऊपर दबाव डाला कि वह अपने आका अर्थात तुर्की के सुलतान की अवज्ञा करे और बग़दाद रेलवे योजना को फ़ारस की खाड़ी तक न ले जाने दे।

जर्मसी की नई नौसैनिक नीति और ग्रेट ब्रिटेन से प्रतियोगिता

किन्तु जर्मनी के कैसर की नई नौसैनिक नीति के कारण ग्रेट ब्रिटेन जर्मनी के विरुद्ध ही नहीं हो गया अपितु वह अपने पुराने शत्रु फ्रांस से मैत्री सम्बन्ध बनाने पर विवश हुआ, यद्यपि बीस वर्षों से इंग्लैण्ड और फ्रांस की उपनिवेशों के सम्बन्ध में अनबन थी। अब तक इंगलैण्ड की नौसैनिक शक्ति का मुकाबला केवल फ्रांस और रूस के जहाजी बेड़ों से हुआ था। किन्तु १९०० में जर्मनी ने नयी नौसैनिक विधि (Navy Law) पास की। अब ऐसी सम्भावना बन गई थी कि जर्मन साम्राज्य के पास बड़ा समुद्री बेड़ा हो जायगा, और इस कारण इंग्लैण्ड की नौसैनिक श्रेष्ठता को खतरा पैदा हो चुका था। इस प्रकार इंग्लैण्ड का मर्मस्थल छू दिया गया था। अब इंग्लैण्ड ने अपनी सारी शक्ति नौसेना की तैयारी में लगा दी। वास्तव में इंग्लैण्ड की राजनीति का सारा दारोमदार अगले कुछ वर्षों में श्रेष्ठ जहाजी बेड़े की तैयारी पर रहा। अब ग्रेट ब्रिटेन को यह भी सूझी कि उसको कुछ यूरोपीय देशों के साथ चल रहे अपने झगड़े को निबटाना चाहिए। तत्कालीन ब्रिटिश सम्राट् एडवर्ड सप्तम (Edward VII) अत्यन्त योग्य कूटनीतिज्ञ था। उसकी व्यक्तिगत चतुरता और कूटनीतिज्ञ योग्यता से लाभ उठाते हुए इंग्लैण्ड ने अपने निकतम पड़ोसी फ्रांस से अपने सम्बन्ध अच्छे करने चाहे। वास्तव में फ्रांस के साथ इंग्लैण्ड के सम्बन्ध तनावपूर्ण थे। १९०४ में फ्रांस और इंग्लैण्ड के बिच एक समझौता हुआ। १८८२ से ही फ्रांस की इंगलैण्ड से मिस्र (Egypt) के विवाद पर शिकायत थी। यह झगड़ा भी तय हो गया। फ्रांस ने मिस्र में ग्रेट ब्रिटेन के अधिकार को स्वीकार कर लिया और इंग्लैण्ड के समर्थन का अश्वासन दिया। इसके बदले में इंग्लैण्ड ने वायदा किया कि वह मोरस्को में फ्रांस की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति को मान्यता प्रदान करेगा। इसके पश्चात् फ्रांस और स्पेन के बीच एक सन्धि हुई जिसके द्वारा मोरक्को में फ्रांस और स्पेन के हितों में

इंग्लैण्ड और रूस के बीच समझौता (१९०४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामञ्जस्य स्थापित हो गया।

इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच की मैत्री और समझौते से फ्रांस और इंग्लैण्ड की राजनीतियों को नूतन दिशा मिली। वास्तव में उक्त समझौते एक प्रकार से दोनों देशों की राजनीतियों में क्रान्ति थी। दोनों ही देशों में इस समझौते का स्वागत हुआ किन्तु केवल लार्ड रोजबरी (Lord Rosebury) ने अवश्य ही दुख प्रकट करते हुए कहा था : "मेरा दुःखपूर्ण विश्वास यह है कि इस समझौते से ब्रिटेन और फ्रांस के बीच शान्ति स्थापित होने के बजाए सम्बन्धों में जटिलता पैदा होगी।" इस समझौते द्वारा ग्रेट ब्रिटेन धीरे-धीरे जर्मनी से विरक्त होने लगा यद्यपि इस समझौते का यह आशय यह कदापि नहीं था कि ब्रिटेन जर्मनी को खिजावे या इसके द्वारा सैनिक प्रदर्शन करे। किन्तु निस्सन्देह इस समझौते ने इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सहयोग का मार्ग प्रशस्त किया और वह सहयोग निरन्तर बढ़ा और अब भी बढ़ रहा है। इस समझौते द्वारा ही ग्रेट ब्रिटेन की नीति विश्वयुद्ध तक संचालित होती रही और इसके कारण फ्रांस का आत्म-विश्वास जागा। इसी समझौते के कारण इटली को पुनर्विचार करना पड़ा कि ट्रिपिल एलायन्स (Triple Alliance) में रहे अथवा नहीं। इस समझौते के बाद इंग्लैण्ड के लिए आवश्यक नहीं रह गया था कि वह मित्र के सम्बन्ध में जर्मनी की शक्ति पर आश्रित रहे। इसी समझौते द्वारा इंगलैण्ड और रूस के सम्बन्धों में उस समय सामंजस्य बना रहा जब रूस-जापान के युद्ध के कारण इंग-लैण्ड और रूस के सम्बन्धों में तनाव का आ जाना स्वाभाविक था। इसी समझौते के कारण १९०७ में रूस के साथ भी इंग्लैण्ड और फ्रांस की सन्धि हो गयी जिससे ट्रिपिल एण्टेंटे (Triple Entente) पूरी हुई।

१९०७ में इंग्लैण्ड और रूस के बीच एक सन्धि हुई जो वास्तव में ब्रिटिश विदेश नीति में क्रांति थी। यह सन्धि तीन मुख्य घटनाओं का परिणाम थी जो निम्नलिखित हैं—रूस-जापान युद्ध १९०४-५; मोरक्को का संकट १९०५-६; और १९०६ का नवीन जर्मन नौसैनिक विधेयक।

१९०७ की आंग्ल-रूसी सन्धि १९०४-५ के रूस-जापान युद्ध का परिणाम थी

जब जापान ने रूस को हरा दिया और जब पोर्ट आर्थर रूस के हाथों से निकल गया तब तो रूस की सुदूर पूर्व में विस्तार की सारी योजनाएँ धूल में मिल गईं।[1] और चूँकि रूस में आन्तरिक क्रान्ति का भी भय था इसलिए रूस की ओर से प्रायः कोई भय नहीं रहा।

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के जो चार संकट उपस्थित हुए, उनमें सबसे पहला संकट मोरक्को का संकट था। इस संकट ने यह भी प्रथम बार ही निश्चय कर दिया कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच समझौता (Entente) पक्का है। मोरक्को का संकट १९०४ के आंग्ल-फ्रांसीसी समझौते का परिणाम था।

मोरक्को एक स्वतन्त्र मुसलमानी प्रान्त था जिसका कई कारणों से महत्त्व बढ़ गया था। मोरक्को में लौह खनिज का प्राचुर्य था; यह जिब्राल्टर (Gibralter) की

---

१. अध्याय ११ देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाड़ी के निकट अतलान्तक (Atlantic) महासागर के तट पर अवस्थित था; यह कमजोर सा राज्य था जो अपने आपको यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों से बचाने में असमर्थ था। इन कारणों से कई यूरोपीय देश स्पेन, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और इटली आदि मोरक्को पर अपना अधिकार करना चाहते थे। फ्रांस की मोरक्को में विशेष रुचि थी क्योंकि मोरक्को की सीमा एल्जीरिया (Algeria) से मिलती थी और एल्जीरिया पर फ्रांस ने हाल ही में अधिकार किया था। एल्जीरिया की सीमान्त जातियाँ झगड़ालू थीं। मोरक्को को कुछ वर्षों से यूरोपीय व्यापार का लाभकारी केन्द्र समझा जा रहा था। यही नहीं प्रायः सभी यूरोपीय देश समझते थे कि जिस देश का मोरक्को पर अधिकार होगा वही सारे अफ्रीका पर प्रभाव जमा लेगा। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विनिमय की दृष्टि से भी मोरक्को का महत्त्व था। १९०४ की आँग्ल-फ्रांसीसी सन्धि द्वारा ग्रेट ब्रिटेन ने वचन दिया था कि वह मोरक्को में फ्रांस के हितों का समर्थन करेगा। इस सन्धि के पुष्ट समर्थन पर ही फ्रांस ने मोरक्को के क्षेत्र में और अधिक घुसपैठ शुरू की। अब फ्रांस ने मोरक्को के आन्तरिक प्रशासन में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। उधर मोरक्को के आगम शुल्कों की जमानत या प्रतिभूति पर फ्रांस ने मोरक्को के सुलतान को बड़ा कर्जा दे दिया। पुनः फ्रांस ने मोरक्को के सुलतान के समक्ष आन्तरिक सुधारों की एक योजना रखी और सुलतान से आग्रह किया कि उक्त सुधार योजना को प्रान्त में क्रियान्वित किया जाय। इन सुधारों में कुछ सुधार निम्नलिखित थे—सारे प्रान्त में सड़कों और तार व्यवस्था की योजना, राष्ट्रीय बैंक की स्थापना, बन्दरगाहों और अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों पर फ्रेंच पुलिस द्वारा चौकसी आदि। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि फ्रांस धीरे-धीरे मोरक्को (Morocco) पर अधिकार करता जा रहा था। कैसर का तो यही विचार था कि फ्रांस की नीति का विकास भी मोरक्को पर जबर्दस्ती अधिकार कर लेने के उद्देश्य से हो रहा था। कैसर ने कहा था कि फ्रांस और स्पेन मोरक्को पर छा जाने का प्रयत्न कर रहे हैं और चाहते हैं कि अन्य देश मोरक्को में व्यापार न कर सकें। उसका यह भी कहना था कि विशेष रूप से जर्मनी के आर्थिक हितों को मोरक्को में हानि पहुँचाई जा रही है और उसके संधिसंगत अधिकारों का अतिक्रमण किया जा रहा है। उसने भद्दे ढंग से किन्तु अकस्मात ही हस्तक्षेप किया। १९०५ में मार्च के अन्त में जर्मन सम्राट टेंजियर (Tangier)[1] गया। वहाँ उसने मोरक्को के सुलतान

मोरक्को का संकट (१९०५-६)

---

१. सम्भवतः जर्मन सम्राट की टेंजियर यात्रा वॉन बुलो (Von Bulow) मन्त्रणा का फल थी। उसने टेंजियर यात्रा के सम्बन्ध में वॉन बुलो को लिखा था—"मैं इस देश में तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से आया हूँ क्योंकि मेरे देश की भी यही इच्छा थी। मैंने आज एक अजीब घोड़े पर सवारी की यद्यपि मेरी बाईं भुजा में चोट थी जिसके कारण मुझे घोड़े की सवारी कष्टदायक जान पड़ी और मैंने अपने जीवन को जोखिम में डाल दिया। मैं अपने इस अजीब घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे स्पेन के विप्लववादियों में भी घूमता रहा क्योंकि तुम्हारी ऐसी इच्छा थी, और क्योंकि सम्भवतः इस यात्रा से तुम्हारी नीति सफल होगी।" The Kaiser to Von Bulow quoted by G. Lowes Dickinson, *The International Anarchy*, p. 126.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपने संरक्षण में ले लिया और घोषणा कर दी कि वह मोरक्कों की स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा; सुलतान को सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न सम्राट मानेगा और इस बात का प्रयत्न करेगा कि मोरक्को में सभी यूरोपीय देशों को समान आर्थिक और व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हों। उन दिनों जर्मनी के हस्तक्षेप का एक कारण यह भी हो सकता है कि मुकडेन (Mukden) के युद्ध में उसी समय रूस की करारी हार हुई थी और कुछ समय के लिए रूस हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं रह गया था। उन दिनों जर्मनी के सम्राट की आम नीति यही थी कि मुस्लिम देशों से मेल-जोल बढ़ाया जाय। इसलिए मोरक्को में जो हस्तक्षेप किया गया उससे जर्मनी की जर्मन-विस्तारवादी पार्टी का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था और यह भी आशा की जाती थी कि इस हस्तक्षेप के फलस्वरूप आँग्ल-फ्रांसीसी मैत्री (*Anglo-French Entente*) में दरार पड़ जायगी। इस हस्तक्षेप का तत्कालीन परिणाम यह हुआ कि सुलतान की हिम्मत बढ़ गयी और उसने फ्रांस की सुधार योजना को रद्द कर दिया तथा जर्मनी के आदेश पर उसने यह माँग की कि मोरक्को सम्बन्धी प्रश्नों को निबटाने के लिए एक यूरोपीय सम्मेलन बुलाया जाय। फ्रांस ने जर्मनी के हस्तक्षेप का जोरदार विरोध किया। फ्रांस कुछ हिचका और उसे युद्ध का भय सन्निकट दिखाई देने लगा। अन्त में जब अमेरिका ने भी फ्रांस के ऊपर दबाव डाला तो फ्रांस ने सम्मेलन में शरीक होना स्वीकार कर लिया। किन्तु फ्रांस के विदेश मंत्री डेल्केस (Delcasse) ने, जिसने आँग्ल-फ्रांसीसी सन्धि में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था और जो फ्रांस की मोरक्को सम्बन्धी नीति को उचित समझता था और उसकी रक्षार्थ युद्ध मोल लेने के लिये भी तैयार था, त्यागपत्र दे दिया। जनवरी १९०६ में एल्जीसिरस (Algeciras) में सम्मेलन होना निश्चित हुआ। यह जर्मनी की कूटनीतिक विजय थी।

एल्जीसिरस के सम्मेलन का सविस्तार वर्णन करना आवश्यक नहीं है क्योंकि जहाँ तक वास्तविक प्रश्न का सम्बन्ध था दोनों पक्ष बराबर से रहे। जर्मनी के प्रधान मन्त्री वॉन बुलो (Von Bulow) ने कहा—"न तो हमारी विजय हुई और न हम हारे" और प्रायः यही विचार फ्रेंच प्रधान मंत्री का था। मोरक्को की रक्षा-व्यवस्था, बैंक व्यवस्था और कुछ अन्य प्रश्नों पर फ्रांस का माँगे मान ली गईं; केवल उन पर किसी सीमा तक अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। अब फ्रांस की मोरक्को में स्थिति अधिक नियमित हो गई क्योंकि अब उसका आधार अन्तर्राष्ट्रीय था। इसके अतिरिक्त फ्रांस स्वतन्त्र था कि शान्तिपूर्वक मोरक्को में अपने प्रभाव का विस्तार करे। अब फ्रांस जबर्दस्ती से मोरक्को पर अधिकार स्थापित नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त मोरक्को को मुक्त देश मान लिया गया और मोरक्को के सम्बन्ध में जर्मनी के अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया। इस सम्मेलन के पश्चात् वॉन बुलो (Von Bulow) ने कहा था: "इस सम्मेलन के फलस्वरूप हमने फ्रांस के ऊपर रोक लगा दी है और वह अब मोरक्को पर अधिकार न कर सकेगा। यही नहीं हमने ऐसी भी व्यवस्था कर दी है कि यदि पुनः फ्रांस मोरक्को पर छा जाने का प्रयत्न करेगा तो खतरे की घंटी बज जायेगी और सभी देश सम्मिलित होकर उक्त खतरे का सामना कर सकेंगे।" किन्तु यदि एल्जीसिरस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Algeciras) सम्मेलन के परिणामों पर सूक्ष्म रीति से विचार किया जाय, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि उक्त सम्मेलन में फ्रांस की ही विजय हुई। सम्मेलन में ऑस्ट्रिया-हंगरी के अतिरिक्त सब शक्तियों ने फ्रांस का समर्थन किया, फलस्वरूप फ्रांस की स्थिति अधिक शक्तिशाली हो गई और जर्मनी की पराजय हुई। फ्रांस, रूस और स्पेन तो जर्मनी के विरुद्ध गये ही और ग्रेट ब्रिटेन १९०४ की मोरक्को संधि (Morocco treaty) के अनुसार फ्रांस के साथ था ही—सबसे आश्चर्य की बात यह हुई कि इटली ने भी घोषणा की कि भूमध्य सागर में उसके हित फ्रांस के हितों से मेल खाते हैं अतः उसने ट्रिपिल एलायन्स (Triple Alliance) वाले अन्य दो देशों के विरुद्ध मत दिया। उधर संयुक्त राज्य अमेरिका भी, जो मध्यस्थ का रोल अदा कर रहा था, पर्दे के पीछे फ्रांस का ही समर्थन कर रहा था।

जर्मनी द्वारा मोरक्को में हस्तक्षेप के कारण आंग्ल-फ्रांसीसी सम्बन्ध बिगड़ने के बजाय और सुदृढ़ हो गये। इसके अतिरिक्त अब रूस और इंग्लैण्ड के सम्बन्ध अच्छे हो गए। इस समय के अन्तर्राष्ट्रीय संकट ने इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस और इटली को एक पक्ष में कर दिया। संसार के राष्ट्रों में गुटबन्दी कुछ-कुछ उसी आधार पर हो गई जिस आधार पर कि विश्वयुद्ध में राष्ट्रों के गुट बने।

१९०५ और १९०६ में भी आम तौर पर यह प्रश्न किया जाता था और तब से बारम्बार लोगों में यह जानने की लालसा रही है कि यदि फ्रांस और जर्मनी के बीच उस समय युद्ध छिड़ गया होता तो फ्रांस और इंग्लैण्ड की सन्धि (Entente) के अनुसार क्या इंग्लैण्ड बाध्य था कि वह फ्रांस के पक्ष में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में फँस जाता। १९०६ से लेकर १९१४ तक की ब्रिटेन की स्थिति अब स्पष्टतः प्रकाश में आ चुकी है। फ्रांस को ब्रिटेन की नाजुक स्थिति से भारी बेचैनी थी क्योंकि एक ओर तो सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) बारम्बार जर्मनी को सावधान कर रहा था कि यदि फ्रांस और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ा तो इंग्लैण्ड तटस्थ ही नहीं बना रहेगा ; किन्तु उसने उतनी ही दृढ़ता से रूस और फ्रांस की यह माँग ठुकरा दी कि वह युद्ध प्रारम्भ होने पर संशस्त्र सहायता देने का वचन दे। उसने केवल युद्ध की कल्पना पर इंग्लैण्ड को किसी ऐसे बन्धन से बाँध लेना उचित नहीं समझा जो जर्मनी को चुनौती[1] समझी जाय और जिससे स्वदेश का जनमत तत्कालीन शासन के विरुद्ध हो जाय। फिर भी तत्कालीन ब्रिटिश सरकार समझती थी कि सुदृढ़ और स्वतन्त्र फ्रांस का ब्रिटेन के लिए भारी महत्त्व है, इसलिए उससे इंग्लैण्ड और फ्रांस के सैनिक अधिकारियों में विचार-विनिमय करने की आज्ञा दे दी। इसके पश्चात् जुलाई १९१२ में इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच नौसैनिक सन्धि हुई जिसकी शर्तों के अनुसार फ्रांसीसी जहाजी बेड़े को यह कार्य सौंपा गया कि वह भूमध्यसागर में इंग्लैण्ड और फ्रांस के हितों की रक्षा करे और इंग्लैण्ड की नौसेना (Navy) को आदेश दिया कि वह इंगलिश चैनेल (English Channel) में इंग्लैण्ड और फ्रांस के

1. See Memorandum of Sir Eyre Crowe, Under Secretary for Foreign Affairs in *British Documents on the Origin of the War* vol. III.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितों की रक्षा करें। मई १९१४ में रूस के साथ भी नौसैनिक वार्ता प्रारम्भ हुई।

फिर भी जहाँ इंग्लैण्ड इस प्रकार फ्रांस के पक्ष में आ रहा था, वह जर्मनी से भी मिलने का प्रयत्न कर रहा था। इंग्लैण्ड ने चाहा कि आँग्ल-जर्मन नौसैनिक प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाय। यही नहीं, उसने १९१२ में जर्मनी के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया और उसने जर्मनी को उपनिवेशों के सम्बन्ध में कुछ रियायतें दे डालीं।

३ अगस्त, १९१४ को सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) ने कॉमन सभा (House of Commons) में घोषणा की कि इंग्लैण्ड बाध्य नहीं है कि वह फ्रांस के पक्ष में युद्ध मोल ले। इसके पश्चात् सर एडवर्ड ग्रे और लार्ड ऑक्सफोर्ड ने घोषणा कर दी कि सरकार पूर्ण स्वतन्त्र है और उसने वचन नहीं दिया है। वह चाहेगी तो युद्ध में हस्तक्षेप करेगी और चाहेगी तो युद्ध से अलग रहेगी। फिर भी चाहे वैधिक रूप से इंग्लैण्ड की सरकार ने फ्रांस का पक्ष लेने की प्रतिज्ञा की हो किन्तु यह स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के प्रायः सभी राजनीतिक यही समझते थे कि अब इंग्लैण्ड का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह युद्ध होने पर फ्रांस की सहायता करे।

जर्मन नौसेना संशोधन अधिनियम (१९०६)

१९०६ में जर्मन नौसेना संशोधन अधिनियम (The German Navy Amendment Law of 1906) पास हुआ जिसके द्वारा जर्मनी के जहाज़ी बेड़े में पाँच बड़े जंगी जहाज[1] और बढ़ा दिये गए और उक्त अधिनियम द्वारा जर्मन नौसेना पर एक-तिहाई खर्चा और बढ़ा दिया गया। यह भी एक कारण बना जिसने रूस और इंग्लैण्ड को निकटतर कर दिया। कई बार फिर भी असफल प्रयत्न किए गए कि आंग्ल-जर्मन सम्बन्धों में सुधार हो परन्तु १९०७ में तो निश्चित रूप से ब्रिटेन रूस के पक्ष में चला गया।[2]

पर्याप्त समय से रूस और इंग्लैण्ड के बीच फारस (Persia), अफगानिस्तान और तिब्बत के सम्बन्ध में तीव्र मतभेद थे। वास्तव में उक्त तीनों देशों में इंग्लैण्ड और रूस के हितों में संघर्ष था। किन्तु कहाँ तो दोनों देशों (रूस और इंग्लैण्ड)

१. ड्रेडनॉट (Dreadnought) नामक जहाज प्रथम बार १९०९ में पानी में उतारा गया था। यह जहाज रूस-जापान के युद्ध का परिणाम था। इसी आकार और प्रकार के जंगी जहाजों का निर्माण इंग्लैण्ड और जर्मनी दोनों ही कर रहे थे।

२. यह हाल ही में पता लगा है कि जर्मन सम्राट् कुछ समय से प्रयत्न कर रहा था कि ज़ार इंग्लैण्ड के विरुद्ध जर्मनी से मैत्री सन्धि कर ले। कैसर को आशा थी कि यदि ज़ार ऐसी मैत्री में सम्मिलित हो जाएगा तो बाद में फ्रांस को भी अपने पक्ष में किया जा सकता है। जुलाई, १९०५ में बिजोरके साउण्ड (Bjoerkoe Sound) नामक स्थान पर कैसर और ज़ार की भेंट हुई। उस समय कैसर द्वारा प्रस्तावित एक सन्धि-पत्र पर ज़ार ने हस्ताक्षर भी कर दिए। किन्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि रूसी सरकार के विदेश विभाग ने उक्त सन्धि-पत्र को सरकारी महत्त्व नहीं दिया, अतः उक्त सन्धि-पत्र ज़ार के असंख्य प्राइवेट कागजों की फाइलों में पड़ा रहा होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पूर्व शत्रुता और परस्पर सन्देह था और कहाँ अब दोनों देशों ने जर्मनी के भय के कारण एक-दूसरे को व्यापक रियायतें दे डालीं। इतनी रियायतें देते समय उन्होंने मूरों (Moors), फ़ारसवासियों (Persians), अफ़गानों और मिस्रवासियों (Egyptians) की भावनाओं की तनिक भी चिन्ता नहीं की यद्यपि उपर्युक्त सभी लोगों ने रूस-इंग्लैण्ड के समझौतों की निन्दा की।

आंग्ल-रूसी समझौते ने ग्रेट ब्रिटेन को फ्रांस और रूस के गुट में कर दिया। लॉर्ड ऑक्सफोर्ड (Lord Oxford) ने कहा है—"अब सदैव के लिये भारत के ऊपर छाया हुआ रूसी भय समाप्त हो चुका है। वास्तव में रूस भारत के लिए भय था और ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ उक्त भय से परेशान रहते थे।" इसमें संदेह नहीं है कि एक ओर इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच और दूसरी ओर इंग्लैण्ड और रूस के बीच व्यापक मतभेद थे और यदि वे मतभेद मिट गये तो इसमें कोई हानि नहीं हुई। किन्तु इस सम्बन्ध में लोगों में भारी मतभेद हैं कि ब्रिटेन का यह कार्य कहाँ तक उचित था जो उसने अपनी राजनीतिक पृथकता (Diplomatic isolation) को त्याग दिया। इस संबंध में यह भी याद रखना होगा कि इस राजनीतिक पृथकता के कारण ही बोअर युद्ध (Boer war) के जमाने में इंग्लैण्ड की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। यद्यपि ट्रिपिल एन्टेन्टे (Triple Entente) द्वारा न तो कोई सैनिक संधि की गई थी और न जर्मनी को सैनिक दबाव में लाने का प्रयत्न किया गया था फिर भी ट्रिपिल एन्टेन्टे (Triple Entente) निश्चित रूप से धुरी राष्ट्रों (Central Powers) के विरुद्ध एक सुरक्षात्मक व्यवस्था थी। ट्रिपल एन्टेन्टे से फ्रांस और उसके युद्ध-लोलुप प्रजाजनों की हिम्मत बढ़ी; विशेष रूप से १९११ के बाद तो फ्रांस का उत्साह खूब बढ़ा क्योंकि उस समय ब्रिटेन पूरी तरह से फ्रांस का समर्थन कर रहा था और फ्रांस की जर्मनी से बदला लेने की जो नीति थी उसके प्रति इंग्लैण्ड में आम सहानुभूति थी। बात वास्तव में यह थी कि फ्रांस की युवक-मंडली अल्सेस-लॉरेन (Alsace-Lorraine) को पुनः हस्तगत करने के लिये उतनी ही व्यग्र थी जितनी कि वृद्ध जन-मण्डली उसकी हानि से दुःखी थी। यद्यपि रूस को ब्रिटेन की सहायता का पूरा-पूरा विश्वास नहीं था, फिर भी ब्रिटेन के साथ सन्धि हो जाने से रूस में चैन की साँस ली जा रही थी; और चूंकि रूस का मार्ग एशिया (Asia) में अवरुद्ध हो चुका था, अतः अब वह बल्कान क्षेत्र में अपने हितों के प्रति जागरूक था और इस प्रकार ऑस्ट्रिया के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता अनिवार्य थी। उधर ग्रेट ब्रिटेन भी आश्वस्त हो गया और वह अब डटकर जर्मनी के साथ जंगी जहाज़ों की निर्माण सम्बन्धी प्रतियोगिता में लग गया।

ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस की त्रिदेशीय मैत्री से जर्मनी में घबराहट पैदा होने लगी और जर्मन साम्राज्यवादियों (Pan-Germans), जर्मनी के मल्लाहों और नौसैनिक कप्तानों तथा प्रशा के सेनानायकों में व्याकुलता फैलने लगी। जर्मनी में आम घबराहट महसूस की जा रही थी, उसका कारण यह नहीं था कि जर्मनी को ब्रिटेन का भय था। वास्तव में जर्मनी तो ब्रिटिश साम्राज्यवादी सफलताओं से घृणा करता था और वह ब्रिटेन से इसलिये भी घृणा करता था कि ब्रिटेन सदा यूरोप के सबसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशक्त देश से ही घृणा करता चला आया है। जर्मनी को वास्तविक भय यह था कि अब ग्रेट ब्रिटेन अल्सेस-लॉरेन (Alsace-Lorraine) के प्रश्न पर फ्रांस की मदद करेगा और बल्कान प्रदेश में वह रूस की मदद करेगा। बेथमैन हॉलवेग (Bethmann Hollweg) कहता है कि "इंग्लैण्ड भली-भाँति जानता था कि फ्रांस की आँखें अल्सेस-लॉरेन पर लगी हुई हैं; और इंग्लैण्ड भली-भाँति सुन रहा था कि फ्रांस में बदले की भावना जाग्रत हो रही थी और फ्रांस तथा रूस की मैत्री का लक्ष्य भी बदले की भावना ही था।" वह पुनः कहता है—"उस समय सारे संसार में इस आधार पर उत्तेजना फैल रही थी कि अंग्रेज़ों ने फ्रांस और रूस की नीति का समर्थन करना स्वीकार कर लिया था और वास्तव में फ्रांस और रूस की नीति के अन्तिम लक्ष्य से ही जर्मनी को वास्तविक खतरा था।"[1]

अब जर्मनी ने ब्रिटेन के विरुद्ध और विशेष रूप से सम्राट् एडवर्ड सप्तम (King Edward VII) के विरुद्ध यह इल्ज़ाम लगाना प्रारम्भ किया कि वह जर्मनी को घेर लेना चाहता है। जर्मनी में कहा जाने लगा कि ग्रेट ब्रिटेन और कुछ शत्रु राष्ट्र मिलकर जर्मनी को घेर लेना चाहते हैं और उसके विकास को अवरुद्ध करना चाहते हैं। जर्मनी के अनुसार जो देश जर्मनी को घेरे में ले लेना चाहते थे, उनमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस मुख्य थे किन्तु जापान को भी उधर मिला लिया गया था, इटली को ट्रिपिल एलायन्स (Triple Alliance) में से बरगला लिया गया था और संयुक्त राज्य अमेरिका को भी उसी षड्यन्त्र में शरीक कर लिया गया था। विश्वयुद्ध कैसर के जर्मनी ने क्यों शुरू किया इस संबन्ध में कैसर के पक्ष में उपर्युक्त दलील वास्तव में बल रखती है। जर्मनी के समर्थकों का भी यही कहना है कि जब जर्मनी को चारों ओर से घेरा जा रहा था तो सिवाय युद्ध के उसके पास अन्य चारा ही क्या था। और वास्तव में सत्य यह है कि १९३९ में भी आँग्ल-जर्मन शत्रुता का एक यही कारण था।

१९०७ के बाद से तो सशस्त्र यूरोप दो सशस्त्र गुटों में बँट चुका था और एक गुट दूसरे गुट को सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखता था। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति अत्यन्त भयावह संभावनाओं से पूर्ण थी। एक ओर शस्त्रास्त्रों का संचय हो रहा था। स्थल और समुद्रों में भी भारी सैनिक तैयारियाँ हो रही थीं। दूसरी ओर जर्मनी का समुद्री बेड़ा आश्चर्यजनक प्रगति से बढ़ रहा था और ग्रेट ब्रिटेन को यह कदापि सह्य नहीं था। तीसरी ओर फ्रांस में अल्सेस-लॉरेन पर पुनः अधिकार करने की प्रबल लालसा थी। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मोरक्को जैसी छुटपुट दुर्घटनाएँ हो ही जाया करती थीं। बल्कान प्रदेश में रूस और ऑस्ट्रिया के घात-प्रतिघात होते ही रहते थे और स्वयं बल्कान प्रदेश के राज्यों में अस्थिरता छायी हुई थी। "वास्तव में तुर्की के भविष्य के विषय में अभी तक पूर्ण अनिश्चितता छायी हुई थी।"

---

1. Theobald von Bethmann-Hollweg : *Reflections on the World War.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक देश में युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं और प्रत्येक देश में युद्ध-प्रेमी जन युद्ध का कौतुक देखना चाहते थे। लार्ड ऑक्सफोर्ड (Lord Oxford) ने लिखा है—"प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व के कुछ वर्षों में हम स्पष्ट देख रहे थे कि सारा संसार मानो समुद्र में तैरती हुई पतली बर्फ की चट्टान है और हम उस पर बैठे राग-रंग में मस्त थे तथा यूरोप की शान्ति किसी भी क्षण किसी भी अदृश्य और अकल्पित कारण से नष्ट हो सकती थी।"

युद्ध के ऐसे अदृश्य और अकल्पित कारण उन अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संकटों में से किसी एक संकट पर बन सकते थे जो अगले ६-७ वर्षों में बारंबर संसार के कई भागों में प्रकट हुए। निस्सन्देह वे संकट ऐसे थे जिनमें से किसी के कारण युद्ध छिड़ सकता था।

१९०८ में युवक तुर्कों (Young Turks) ने विद्रोह किया;[1] इसके पश्चात् ऑस्ट्रिया ने बोस्निआ (Bosnia) और हर्जेगोविना (Herzegovina) पर अधिकार करके एक नई समस्या खड़ी कर दी; इसके पश्चात् ट्रिपोली (Tripoli) पर अधिकार करने के लिए इटली ने युद्ध किया, फिर बल्कान राष्ट्रों का संघ बना और तब नए सिरे से बल्कान क्षेत्र में युद्ध हुए। इस प्रकार निकट-पूर्व में युद्ध के बादल घुमड़ने लगे।

निकट पूर्व में युद्ध की आशंका

१९०८ में बोस्निआ (Bosnia) पर ऑस्ट्रिया द्वारा अधिकार विश्वयुद्ध का कारण बन सकता था। चूंकि रूस युद्ध के लिए पूर्णतः तैयार नहीं था इसलिए युद्ध बचा रहा। ऑस्ट्रिया द्वारा बोस्निआ और हर्जेगोविना पर अधिकार कर लिया जाना भी यूरोप की शान्ति के लिए भयंकर संकट का कारण बन सकता था। इस प्रकार ऑस्ट्रिया की और उसकी पीठ पर सशस्त्र जर्मनी की मनमानी चल गई और सारा यूरोप चुपचाप देखता रहा।

अभी निकट पूर्व का संकट पूरी तरह टल भी नहीं पाया था कि मोरक्को का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न बन गया और १९११ में अगादिर (Agadir) में उपद्रव प्रारम्भ हो गया। यद्यपि अल्जेसिरस (Algeciras) में फ्रांस का मार्ग अवरुद्ध हो चुका था फिर भी वह मोरक्को (Morocco) पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए कृत-संकल्प था। इस बहाने पर कि मोरक्को में भयंकर आन्तरिक उपद्रव हो रहे हैं, फ्रांस ने मोरक्को में अपनी सेनाएँ भेज दीं और इसके पश्चात् उन सेनाओं को वहाँ से हटाना उसने अस्वीकार कर दिया। इस पर जर्मनी ने अपना युद्धपोत पैन्थर (Panther) अगादिर (Agadir) नामक बन्दरगाह की रक्षा करने के उद्देश्य से भेज दिया।

अगादिर का संकट (१९११)

अगादिर (Agadir) मोरक्को का एक बन्दरगाह था। जर्मनी ने युद्ध-पोत भेजने का बहाना तो यह लिया कि वह जर्मन हितों की रक्षा करेगा किन्तु वास्तव में जर्मनी का उद्देश्य यह था कि वह फ्रांस को आगाह कर दे। इस संकट पर भी

---

१. अध्याय ७ देखिए। यह कोई आकस्मिक घटना ही नहीं थी जो आंग्ल-रूसी मैत्री स्थापित होते ही तुरन्त अगले वर्ष तुर्की का उपद्रव होने लगता। तुर्की जानता था कि उसका हित इसी में है कि इंग्लैण्ड और रूस में अनबन रहे। ज्योंही इंग्लैण्ड और रूस में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए त्योंही तुर्की को अपनी स्वतन्त्रता की चिन्ता होने लगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध छिड़ सकता था। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने फ्रांस का समर्थन किया और जर्मनी दब गया और जर्मन लोग अगादिर (Agadir) से हट गए। जर्मनी के अगादिर से बिना युद्ध किए हट जाने का एक कारण यह भी हो सकता है कि जर्मनी समय की ताक में था। जर्मनी की युद्ध-लोलुप पार्टी अभी पूरी तैयार नहीं थी और "तत्कालीन युद्ध-विशेषज्ञों के मतानुसार उस समय जर्मनी में न तो उनकी स्थल सेना, न उनका समुद्री बेड़ा और न उनकी वित्त-व्यवस्था इस अवस्था में थी जो जर्मनी युद्ध के लिए पहल कर सकता और युद्ध छेड़ता।"[1]

जर्मनी के अगादिर (Agadir) से बिना युद्ध किए हट जाने का एक अन्य कारण यह भी हो सकता था कि सम्भवत: जर्मनी में वित्तीय संकट था या सम्भवत: ट्रिपोली के युद्ध के कारण ऑस्ट्रिया और इटली के सम्बन्धों में दरार पड़ चुकी थी। अब जर्मनी और फ्रांस में बातचीत प्रारम्भ हुई जिसके फलस्वरूप जर्मनी ने मोरक्को (Morocco) के ऊपर फ्रांस का शासन स्वीकार कर लिया किन्तु शर्त यह रही कि मोरक्को में अन्य देश भी मुक्त व्यापार कर सकेंगे। इसके बदले में फ्रांस ने जर्मनी को काँगो (Congo) का कुछ भू भाग दे दिया। अगले ही वर्ष १९१२ में फ्रांस ने मोरक्को को अपना रक्षित राज्य (Protectorate) घोषित कर दिया। १९११ की अगादिर (Agadir) की घटना वास्तव में १९१४ के युद्ध की भविष्यवाणी थी किन्तु इसमें जर्मनी की पराजय ही हुई। अगादिर की घटना ने ट्रिपिल एण्टेण्टे (Triple Entente) को शक्तिशाली बना दिया तथा फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन की मैत्री को उसी प्रकार और अधिक दृढ़ कर दिया जिस प्रकार कि १९०५-६ के टेन्जियर काण्ड ने दो देशों (फ्रांस और इंग्लैण्ड) की मैत्री को दृढ़ बनाया था।

सितम्बर, १९११ में इटली ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अक्तूबर, १९१२ में प्रथम बल्कान युद्ध प्रारम्भ हुआ और उसी दिन से यूरोप के दुर्दिन प्रारम्भ हो गए। निकट पूर्व का एक संकट तो अभी पूरी तरह टल भी न पाया था कि दूसरा संकट उपस्थित हो गया जिसने मानो प्रथम विश्वयुद्ध की बारूद में आग ही लगा दी। अध्याय ७ में बताया जा चुका है कि १९१२ और १९१३ में हर संभव उपाय द्वारा बल्कान की समस्याओं को शान्त रखा गया था, बल्कान प्रदेश के दो युद्धों को वहीं निबटा दिया गया था तथा दो अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के संकटों को भी टाल दिया गया था। किन्तु एक क्षेत्र में तनाव शेष था। एक ओर सर्बिया (Serbia) और ऑस्ट्रिया (Austria) में तनाव था दूसरी ओर ऑस्ट्रिया और रूस के बीच भी तनाव था। एक बार बिस्मार्क ने हर बेलिन (Herr Ballin)[2] से कहा था—"मेरे जीवन-काल में तो विश्वयुद्ध नहीं होगा किंतु तुम विश्वयुद्ध अवश्य देखोगे और वह निकट पूर्व से प्रारम्भ होगा।" यह ऐसी भविष्यवाणी थी जो अक्षरश: सत्य निकली।

इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्धों में निरन्तर खिंचाव हो रहा था, इस कारण दोनों देशों के राजनीतिज्ञों में चिन्ता पैदा हो रही थी, अत: नए जर्मन

---

1. The Earl of Oxford : *The Genesis of the War*, p. 95.

२. हरबेलिन (Herr Ballin), हैम्बर्ग स्टीमशिप कम्पनी (Hamburg Steamship Company) का संचालक था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चांसलर बेथमैन-हॉलवेग (Bethmann-Hollweg) और श्री एस्क्विथ (Mr. Asquith) की उदार सरकार ने प्रयत्न किया कि दोनों देशों के सम्बन्ध सुधर जाएँ। फरवरी, १९१२ में ब्रिटिश युद्ध-मन्त्री लार्ड हैल्डेन (Lord Haldane) जर्मनी गए और वहाँ उन्होंने आँग्ल-जर्मन मैत्री का आधार ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। किन्तु यह प्रयत्न दो कारणों से असफल हो गया। प्रथमतः समुद्री बेड़े के सम्बन्ध में कोई समझौता ही नहीं हो सका; द्वितीयतः, ग्रेट ब्रिटेन कोई ऐसा आश्वासन नहीं दे सका जिसके अनुसार यदि जर्मनी किसी अन्य देश के साथ लड़ाई में फँस जाता तो ग्रेट ब्रिटेन तटस्थ रहता। कैसर ने लिखा है कि लार्ड हैल्डेन (Lord Haldane) की जर्मनी-यात्रा और आँग्ल-जर्मनी की मैत्री के आधार की खोज केवल राजनीतिक चालमात्र थी और वह चाल केवल नए जर्मन-नौसेना विधेयक (New German Navy Bill) के पारित होने में विलम्ब लगाने के उद्देश्य से चली गई थी। जहाँ तक जर्मन-नौसेना विधेयक में विलम्ब करने का उद्देश्य था,[1] इंगलैण्ड की उक्त चाल विफल रही क्योंकि जून, १९१२ में उक्त विधेयक पारित होकर अधिनियमित हो गया। इस विधेयक में व्यवस्था की गई थी कि जर्मन तीन नए और युद्ध-पोत (Battle-ships) बनाए तथा दो आर्मर्ड क्रूज़र (Armoured Cruisers) बनाए। इसके अतिरिक्त उक्त विधेयक में यह भी व्यवस्था की गई थी कि जर्मनी में प्रति वर्ष छः पनडुब्बियाँ (Submarines) बनाई जाएँ। इसके पश्चात् इंग्लैंड और जर्मनी की नौसैनिक प्रतिस्पर्द्धा और अधिक उग्र रूप धारण कर गई। श्री चर्चिल (Mr. Churchill) ने १९१३ में प्रस्ताव किया कि दोनों देश नौसैनिक महानिर्माण की दिशा में कुछ समय के लिए छुट्टी मनाएँ किन्तु जर्मनी ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फलस्वरूप १९१४-१५ के वित्तीय वर्ष में इंग्लैंड ने अपने नौसैनिक कार्यक्रम पर २ करोड़ पौंड अतिरिक्त व्यय किया।

स्थल-युद्ध के लिए भी सैनिक तैयारियाँ चलती ही रहीं। १९१३ में सैनिक तैयारियाँ चरम सीमा पर पहुँच गईं। १९१२ और १९१३ में जर्मनी में दो विधियाँ पास की गईं, जिनके अनुसार जर्मन सेना की संख्या शांति काल में ४,७०,००० कर दी गई। जर्मनी के पश्चात् जुलाई, १९१३ में रूस और फ्रांस में भी सैनिक विधियाँ अधिनियमित हुईं जिसके अनुसार रूस में तो प्रत्येक वयस्क व्यक्ति के लिए सैनिक सेवा कार्यकाल बढ़ा दिया गया; और फ्रांस में प्रत्येक सैनिक सेवा योग्य व्यक्ति के लिए सैनिक सेवा कार्य काल दो वर्ष से बढ़ाकर तीन वर्ष कर दिया गया। रूस में शांति काल के लिए रूसी सेना की संख्या १२ लाख कर दी गई और फ्रांस में शांति काल में फ्रेंच सेना की शक्ति लगभग साढ़े छः लाख निश्चित कर दी गई।

जनवरी १९१३ ई० में फ्रांस गणराज्य का प्रधान एम० पोइनकेर (M. Poincare) बना। जर्मनी में ऐसा विश्वास किया जाता था कि वह जर्मनी से द्वेष रखता है। बेथमैन-हॉलवेग (Bethmann-Hollweg) ने लिखा है कि एम० पोइनकेर अत्यन्त संकुचित राष्ट्रीय विचारों का व्यक्ति था। १९१४ ई० के पूर्वार्द्ध में इंग्लैंड और फ्रांस

---

१. किन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नहीं था कि लार्ड हैल्डेन (Lord Haldane) ने वास्तव में सच्चे मन से शान्ति का हल ढूंढ़ने का प्रयास न किया हो। ग्रेट ब्रिटेन निस्सन्देह युद्ध टालना चाहता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आन्तरिक उपद्रव होते रहे। फ्रांस में तो समाजवादी लोग गड़बड़ी कर रहे थे और ग्रेट ब्रिटेन में आयरलैंड (Ireland) के राष्ट्रवादी लोग स्वाधीनता चाहते थे और इधर सारे देश में निर्वाचन-मताधिकार सम्बन्धी माँग भी जोर पकड़ रही थी।

ज्योंही कील नहर (Kiel Canal) चौड़ी होकर इस योग्य बनी कि उसमें ड्रेडनॉट्स (Dreadnoughts) नामक युद्धपोत आ जा सकें और इसके उपलक्ष्य में १९१४ की गर्मियों मे सारी जर्मनी में खुशियाँ मनाई जा रही थीं तभी २८ जून १९१४ को एकाएक यह समाचार सुनाई दिया कि ऑस्ट्रिया-हंगरी के वृद्ध सम्राट के भतीजे, तथा ऑस्ट्रिया के साम्राज्य के सिंहासन के उत्तराधिकारी फ्रांस फर्डीनेण्ड (Franz Ferdinand) और उसकी पत्नी की बोसनिया (Bosnia) की राजधानी सैराजिवो (Serajevo) में हत्या कर दी गई। इस नृशंस हत्या के परिणामस्वरूप अनेक ऐसी घटनाएँ घटीं जिनका परिणाम हुआ विश्वयुद्ध का प्रारम्भ। इसी हत्यारूपी चिनगारी ने पूरे यूरोप में आग लगा दी।

ऑस्ट्रिया के आर्च ड्यूक की सैराजिवो में हत्या और १९१४ का विश्वयुद्ध

ऑस्ट्रिया की सरकार ने इस हत्या के लिए सर्बिया की सरकार को दोषी माना। ऑस्ट्रिया की सरकार का कथन था कि यह दुष्कर्म सर्बिया के उच्च हाकिमों की सहायता से सर्बिया वालों के ऑस्ट्रिया-विरोधी प्रचार का परिणाम था। ऑस्ट्रिया ने सर्बिया के अधिकारियों पर यह भी दोषारोपण किया कि उन्होंने राजकुमार का वध इसीलिए कराया है ताकि ऑस्ट्रिया-हंगरी की स्लाव प्रजा (Slav subjects) अपने राज्य से पृथक् हो जाए। अब सम्भवतः जर्मनी के इशारे पर ऑस्ट्रिया ने यह निश्चय किया कि सर्बिया से बदला लिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि यदि ऑस्ट्रिया-हंगरी को बल्कान क्षेत्र में अपना प्रभुत्व रखना है तो सर्बिया की ऑस्ट्रिया-विरोधी हरकतों को बन्द करना ही होगा। सम्भवतः ऑस्ट्रिया और जर्मनी ने मिलकर तय किया कि ऑस्ट्रिया सर्बिया पर आक्रमण करे और उधर जर्मनी अपनी सशक्त सेना के बल पर १९०८ के समान यूरोप की अन्य शक्तियों को ऑस्ट्रिया-सर्बिया[1]

---

१. १८ जुलाई को प्रशा के राज्य-सचिव ने इंग्लैण्ड स्थित जर्मन राजदूत को एक पत्र लिखा था। उस पत्र के अंशों से भी उपर्युक्त स्पष्टीकरण सही मालूम पड़ता है। जी० लोवेस डिकिन्सन (G. Lowes Dickinson) ने अपनी पुस्तक "*The International Anarchy*" में पृ० ४१३-४१४ पर उक्त उद्धरण दिया है। उस पत्र के मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं—

१. ऑस्ट्रिया की गिनती अब बड़ी शक्तियों में नहीं रह गई है। १९०८ के बल्कान संकट से ऑस्ट्रिया की भारी मानहानि हुई। अतः जर्मनी और ऑस्ट्रिया का हित इसी में है कि ऑस्ट्रिया के मान की बल्कान प्रदेश में रक्षा की जाए।

२. यदि इस समय सर्बिया के विरुद्ध ऑस्ट्रिया ने अवसर से लाभ न उठाया तो कुछ ही वर्षों में ऐसी स्थिति बन सकती है जबकि ऑस्ट्रिया सम्भवतः कुछ नहीं कर सकेगा और तब बल्कान राष्ट्र रूस के प्रभाव-क्षेत्र में आ जाएँगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के झगड़ों में हस्तक्षेप करने से रोके रहे। इस प्रकार जर्मनी की इच्छा थी कि ऑस्ट्रिया-सर्बिया का युद्ध स्थानीय युद्ध का रूप बनाए रखे और अन्य शक्तियों को उसमें हस्तक्षेप करने का साहस ही न हो।

अब कैसर तो नॉर्वे में छुट्टी बिताने चला गया ताकि कोई यह सन्देह न कर सके कि उसी ने ऑस्ट्रिया को सर्बिया के विरुद्ध कार्यवाही करने पर मजबूर किया है।

ऑस्ट्रिया द्वारा सर्बिया को चेतावनी और जवाब-तलब (२३ जुलाई)

उधर ऑस्ट्रिया ने जर्मनी के समर्थन के बल पर १३ जुलाई को सर्बिया को एक चेतावनी दी और कड़ी भाषा में जवाब-तलब किया। उक्त पत्र में ऑस्ट्रिया ने सर्बिया को लिखा कि वह (सर्बिया) ऑस्ट्रिया-हंगरी (Dual Monarchy) के विरुद्ध द्वेषपूर्ण प्रचार कर रहा है। उसी पत्र में ऑस्ट्रिया ने सर्बिया से माँग की कि सर्बिया की सरकार को सरकारी तौर पर ऑस्ट्रिया-विरोधी प्रचार की निन्दा कर देनी चाहिए और उन सब पुस्तकों और सभाओं को गैर-कानूनी घोषित कर देना चाहिए जो ऑस्ट्रिया के विरुद्ध हों। पुनः उसी पत्र में यह भी माँग की गई कि जिन दो सर्बियन अफसरों का सैराजिवो हत्याकाण्ड (Crime of Serajevo) में हाथ था उनको तत्काल गिरफ्तार कर लिया जाय और उक्त हत्याकाण्ड की जाँच के लिए तथा ऑस्ट्रिया-विरोधी प्रचार-कार्य के दमन के लिए ऑस्ट्रिया के कुछ अधिकारियों का भी सहयोग स्वीकार कर लिया जाए तथा जिन अधिकारियों और स्कूली मास्टरों ने ऑस्ट्रिया-विरोधी प्रचार कार्य में विशेष भाग लिया है उन्हें अविलम्ब अपने-अपने पदों से अलग कर दिया जाय। ऑस्ट्रिया ने सर्बिया से जो जवाब-तलब किया उसके लिए केवल २८ घण्टों का समय दिया गया।

---

३. ऑस्ट्रिया अब सर्बिया से भयंकर बदला लेने जा रहा है और हमें यह भली-भाँति मालूम है।

४. जर्मनी सर्बिया में ऑस्ट्रिया को पूरी छूट देगा और ऑस्ट्रिया का पूरा-पूरा समर्थन करेगा।

५. हम इस बात की पूरी-पूरी कोशिश करेंगे कि ऑस्ट्रिया और सर्बिया के युद्ध में और कोई शक्ति हस्तक्षेप न करे। इस सम्बन्ध में हम कहाँ तक सफल होंगे यह तो समय बताएगा किन्तु यह बहुत कुछ रूस के रुख के ऊपर निर्भर करेगा, और द्वितीयतः रूस के मित्र राष्ट्रों के विचारों पर भी निर्भर रहेगा। जितना ही ऑस्ट्रिया सर्बिया के विरुद्ध डटा रहेगा, उतनी ही अधिक सहायता हम ऑस्ट्रिया को दे सकेंगे, और उतना ही रूस खामोश रहेगा।

६. हमारा अनुमान है कि इस समय रूस युद्ध करने के लिए उतावला नहीं है। सम्भवतः इंग्लैण्ड और फ्रांस भी इस समय युद्ध करने के लिए तैयार नहीं है।

७. यदि ऑस्ट्रिया और रूस के बीच में युद्ध छिड़ जाता है, तो जर्मनी को अपनी रक्षा के हित में ऑस्ट्रिया का समर्थन करना अनिवार्य होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५ जुलाई को सर्बिया ने ऑस्ट्रिया के पत्र का उत्तर दिया। उसने उक्त पत्र में ऑस्ट्रिया की कुछ माँगें तो स्वीकार कर लीं किन्तु कुछ माँगों को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि वे उसकी सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता (Sovereignty) के विरुद्ध हैं। ऑस्ट्रिया ने सर्बिया के उत्तर को असन्तोषजनक बतलाया और तुरन्त ऑस्ट्रिया-हंगरी का मन्त्री बेल्ग्रेड (Belgrade) से चला गया। २६ तारीख को ऑस्ट्रिया-हंगरी की सेना के कुछ भाग को सज्जित होने का आदेश दे दिया गया और २८ जुलाई को ऑस्ट्रिया-हंगरी ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

सर्बिया का जवाब (२५ जुलाई) और ऑस्ट्रिया-हंगरी द्वारा सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा

ऑस्ट्रिया और सर्बिया के बीच के इस संकट से सारा यूरोप परेशान था। रूस ने ऑस्ट्रिया के २३ जुलाई के पत्र की माँगों का यह अर्थ निकाला कि ऑस्ट्रिया-हंगरी बल्कान क्षेत्र पर अपना विस्तार करना चाहता है। इसलिए रूस ने यह अनुभव किया कि अब बल्कान क्षेत्र की उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ समाप्त होने जा रही हैं। इसलिए रूस ने सर्बिया का पक्ष ग्रहण किया। २७ जुलाई को ज़ार ने सर्बिया की सरकार को तार द्वारा सूचना दी कि सर्बिया के दुर्भाग्य की घड़ी में रूस दूर से तमाशा ही न देखता रहेगा। उधर रूस ने ऑस्ट्रिया-हंगरी को भी चेतावनी दी कि यदि वह (ऑस्ट्रिया) सर्बिया के विरुद्ध सैन्य सज्जा करेगा तो रूस भी अपनी सैन्य सज्जा करेगा।

इन्हीं दिनों २४ जुलाई के पश्चात् से सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) निरन्तर प्रयत्न कर रहा था कि फ्रांस, इटली, जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन मिलकर उक्त विवाद में मध्यस्थता द्वारा कुछ समझौता करावें। याद रहे कि उक्त चारों शक्तियाँ निकट पूर्व की समस्या में प्रत्यक्षतः सम्बद्ध नहीं थीं। किन्तु सर एडवर्ड ग्रे के इस प्रस्ताव को न तो ऑस्ट्रिया ने माना और न जर्मनी ने। उनके उक्त प्रस्ताव को न मानने का यह आधार था कि सैराजिवो की हत्या का सम्बन्ध केवल ऑस्ट्रिया से है। इस प्रकार सर एडवर्ड ग्रे द्वारा प्रस्तावित राजदूतों का सम्मेलन न हो सका जिसमें उक्त समस्या का समाधान ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाता। सत्य यह है कि जर्मनी और ऑस्ट्रिया पहले से ही फैसला कर चुके थे, जैसा कि बताया भी जा चुका है, कि सर्बिया के विरुद्ध ऑस्ट्रिया अकेला ही निबट ले।

अब जब कैसर ने देखा कि रूस सर्बिया का पक्ष लेकर मैदान में आ रहा है तो कैसर की चिन्ता बढ़ने लगी। कैसर ने २८, २९, ३० जुलाई को तीन बार ज़ार के पास तार द्वारा अपीलें भेजीं जिनमें ज़ार से प्रार्थना की गई कि वह यूरोपीय युद्ध का आह्वान न करे क्योंकि रूस द्वारा सैन्य-सज्जा करते ही यूरोपीय युद्ध छिड़ जाएगा। कैसर ने ज़ार को व्यक्तिगत और आपसी मित्रता के नाते उक्त अपीलें प्रेषित की थीं। किन्तु रूस को विश्वास था कि केवल जर्मनी की हठधर्मी के कारण ही समझौता नहीं हो रहा है; इसलिए जब २९ जुलाई को ऑस्ट्रिया ने बेल्ग्रेड (Belgrade) पर बम-वर्षा आरम्भ कर दी तो रूस ने भी अपनी सेनाओं को युद्ध के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए सज्जित हो जाने का आदेश दे दिया और जर्मनी की सीमाओं तथा ऑस्ट्रिया की सीमाओं की ओर अपनी सेनाओं का जमाव प्रारम्भ कर दिया। जर्मनी का यह प्रयत्न कि ऑस्ट्रिया-सर्विया का युद्ध स्थानीय संघर्ष बना रहे, असफल हो गया।

रूस द्वारा सैन्य-सज्जा

इन्हीं दिनों जर्मनी में युद्धप्रिय दल जोर पकड़ रहा था। यह दल वास्तव में जर्मन विदेश विभाग से कुछ अप्रसन्न भी था। सेना की कमान के अधिकारी माँग करने लगे कि युद्ध में गति और तेजी (Speed) का भारी महत्त्व होता है। तीन दिन पश्चात् उन्होंने फ्रांस के विरुद्ध भी यही माँग की कि युद्ध को शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ किया जाय और शीघ्र निर्णय का भी प्रयत्न किया जाय।

जर्मनी ने रूस द्वारा सैन्य-सज्जा की आज्ञा को अपने विरुद्ध युद्ध की घोषणा माना अतः उसने रूस को इत्थिमेत्थम (ultimatum) दे दिया और माँग की कि १२ घण्टों के अन्दर रूस सैनिक तैयारियाँ बन्द कर दे, अन्यथा जर्मनी भी सैन्य-सज्जा करेगा। उसी दिन जर्मनी ने फ्रांस से भी पूछा कि यदि रूस और जर्मनी में युद्ध छिड़ जाता है तो फ्रांस किधर जायेगा। फ्रांस को जवाब देने के लिए कुछ अधिक समय दे दिया गया।

जर्मनी द्वारा रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (पहली अगस्त)

रूस ने जर्मनी के इत्थिमेत्थम का कोई जवाब ही नहीं दिया, इसलिए पहली अगस्त को जर्मनी के युद्धप्रिय दल की प्रेरणा पर जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। किन्तु फ्रांस ने उत्तर दिया कि वह अपने हितों को देखते हुए युद्ध के सम्बन्ध में निर्णय करेगा यद्यपि उसने ३० जुलाई को सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) को सूचना दे दी थी कि वह फ्रांस और रूस की मैत्री सन्धि के अनुसार ही आचरण करेगा। जर्मनी में आम तौर पर यही विश्वास किया जाता था कि फ्रांस तटस्थ नहीं रह सकता क्योंकि वह (फ्रांस) भी सैन्य सज्जा कर रहा था। इसलिए ३ अगस्त को जर्मनी ने फ्रांस के विरुद्ध भी युद्ध की घोषणा कर दी।

जर्मनी द्वारा फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (३ अगस्त)

इटली तटस्थ

उसी दिन इटली ने घोषित किया कि वह तटस्थ रहेगा क्योंकि ट्रिपिल अलायन्स (Triple Alliance) के अन्य सदस्य राष्ट्र किसी रक्षात्मक युद्ध में ग्रस्त नहीं थे।

ग्रेट ब्रिटेन

इंग्लैण्ड अभी तक अनिश्चित था क्योंकि सर्विया की समस्या में उसके हित अन्तर्ग्रस्त न थे और वह पहले ही रूस और फ्रांस के साथ समैक्य के विरुद्ध घोषणा कर चुका था। सर एडवर्ड ग्रे के शान्ति प्रयत्न विफल हो चुके थे।

किन्तु इन्हीं दिनों कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हो चुकी थीं। २६ तारीख को ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा आज्ञा दी जा चुकी थी कि ब्रिटिश जहाजी बेड़ा, जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोर्टलैण्ड (Portland) में युद्धाभ्यास कर रहा था, वहीं डटा रहे और यहाँ से हट कर कहीं न जाय। तीन दित पश्चात् सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) ने लन्दन स्थित जर्मन राजदूत प्रिंस लिकनीवस्की (Prince Lichnowsky) को चेतावनी दी कि ब्रिटेन के लिए हर हालत में युद्ध से अलग रहना कठिन हो सकता है। उसी दिन २९ जुलाई को जर्मनी ने ब्रिटिश तटस्थता प्राप्त करने का भगीरथ प्रयत्न किया और ब्रिटेन से वायदा किया कि यदि जर्मनी का फ्रांस के विरुद्ध युद्ध होता है तो भी यदि ब्रिटेन तटस्थ रह जाये तो जर्मनी फ्रांस के किसी भू-भाग पर अधिकार नहीं करेगा। चूँकि जर्मन चांसलर इसी प्रकार की गारंटी फ्रेंच उपनिवेशों के सम्बन्ध में नहीं दे सका अतः ग्रेट ब्रिटेन ने स्पष्टतः जर्मनी की तटस्थता सम्बन्धी प्रार्थना को ठुकरा दिया। शुक्रवार ३१ जुलाई को सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Gery) ने जर्मनी और फ्रांस दोनों देशों से पूछा कि क्या वे बेल्जियम की स्वतन्त्रता और तटस्थता का आदर करेंगे अथवा नहीं। फ्रांस ने स्वीकार किया कि वह बेल्जियम की तटस्थता और स्वतन्त्रता का आदर करेगा किन्तु जर्मनी ने कपटी भाषा में छलयुक्त जवाब दिया। उसी दिन इंग्लैण्ड का स्कन्ध विनिमय विपणि (Stock Exchange) अनियमति तिथि तक के लिए बन्द कर दिया गया। पहली अगस्त को बैंक की ब्याज की दर दस प्रतिशत कर दी गयी जब कि ३१ जुलाई को बैंक दर केवल चार प्रतिशत थी। २ अगस्त को ब्रिटिश मन्त्री ने फ्रांसीसी-आँग्ल नौसैनिक समझौते के अनुसार वायदा किया कि ब्रिटिश नौसेना फ्रांस के उत्तरी और पश्चिमी तटों की जर्मन नौसैनिक आक्रमणों के विरुद्ध रक्षा करेगी।

इंग्लैण्ड में जिस गति से घटना-चक्र चल रहा था उससे यह स्पष्टतः प्रतीत हो रहा था कि ब्रिटेन शीघ्र ही युद्ध में शरीक होगा और सभी को यह दिखाई दे रहा था कि उक्त युद्ध अखिल यूरोपीय युद्ध होगा। किन्तु जिस मुख्य कारणवश इंग्लैण्ड ने युद्ध में प्रवेश किया और जिस कारण सभी अंग्रेज एक सम्मिलित इच्छा के वशीभूत अपने मतभेदों को भुलाकर युद्ध में अग्रसर हुए वह कारण स्वयं जर्मनी ने उपस्थित किया। २ अगस्त को जर्मनी ने लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) पर आक्रमण कर दिया था जबकि लक्सेम्बर्ग एक तटस्थ देश था। ४ अगस्त को बेल्जियम के राजा ने इंग्लैण्ड के सम्राट् जार्ज पंचम से सहायता माँगी। उसने यह भी बताया कि जर्मनी ने बेल्जियम से माँग की थी कि उसकी सेनाओं को बेल्जियम के मार्ग से जाने दिया जाय। उसने यह भी बताया कि जर्मनी ने वायदा किया था कि यदि उसकी सेनाओं को मार्ग दे दिया जाएगा तो युद्ध के पश्चात् बेल्जियम की प्रादेशिक स्वतन्त्रता अखण्ड बनी रहेगी किन्तु यदि बेल्जियम ने जर्मनी की सेनाओं को जाने का मार्ग नहीं दिया तो इसका अर्थ होगा जर्मनी और बेल्जियम में युद्ध। बेल्जियम के राजा ने यह भी तार द्वारा सूचना दी कि उसने जर्मनी की माँग को ठुकरा दिया है। ब्रिटिश नीति का यह अविचल सिद्धान्त रहा है कि बेल्जियम की स्वतन्त्रता का हर कीमत पर समर्थन किया जाय। इस पर सर एडवर्ड ग्रे (Sir Edward Grey) ने जर्मन सरकार को चेतावनी दी और बारह घण्टों के अन्दर उससे आश्वासन माँगा कि वह बेल्जियम की स्वतन्त्रता की रक्षा करेगी अथवा नहीं। किन्तु जर्मनी के सैनिक पहले ही बेल्जियम की सीमा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अतिक्रमण कर चुके थे, इसलिए चार अगस्त से ब्रिटेन और जर्मनी में युद्ध की घोषणा हो गई। लोकसभा में भाषण करते हुए ६ अगस्त को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री लार्ड एस्क्विथ (Lord Asquith) ने कहा था—"यदि कोई हम से पूछेगा कि हम ब्रिटिश लोग इस युद्ध में क्योंकर भाग लेने जा रहे हैं तो मैं केवल दो वाक्यों में यही उत्तर दूंगा। प्रथमतः हम एक पवित्र अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व को पूरा करने के उद्देश्य से इस युद्ध में भाग ले रहे हैं। द्वितीयतः हम इस सिद्धान्त की रक्षार्थ लड़ने जा रहे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय अन्याय द्वारा छोटी जातियों को कुचला नहीं जा सकता और शक्तिशाली राष्ट्र अपनी मनमानी द्वारा छोटे राष्ट्रों के साथ अन्याय नहीं कर सकते।"

ग्रेट ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा (४ अगस्त)

दो दिन पूर्व ही जर्मन राष्ट्रीय संसद (Reichstag) में जर्मनी के चांसलर बैथमैन-हॉलवेग (Bethmann-Hollweg) ने घोषणा कर दी थी कि जर्मनी का रूस और फ्रांस के साथ युद्ध प्रारम्भ हो चुका है। जर्मन चांसलर ने कहा था—"रीश्टाग के सभ्य सदस्यगण! मैं पुनः सम्राट कैसर के ही शब्दों को दुहराना चाहता हूं। जर्मनी इस युद्ध में शुद्ध हृदय से पवित्र उद्देश्य की रक्षार्थ भाग ले रहा है। हम अपने शान्तिपूर्ण परिश्रम के फलों के लिए लड़ रहे हैं। हमारे महान् भूतकाल और उज्ज्वल भविष्य ने हमारे ऊपर भारी राष्ट्रीय दायित्व डाले हैं जिन्हें हमें अवश्य ही पूरा करना है। हमारे राष्ट्र की अग्नि-परीक्षा होने जा रही है। हमारी वीर सेना युद्ध-क्षेत्र में है और हमारा विजयी जहाजी बेड़ा शत्रु की खोज में बेचैन है और हमारी सारी जर्मन जाति इस वीर सेना और विजयी जहाजी बेड़े के पीछे है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ९

(CHAPTER IX)

यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) और उसके पश्चात्

(The World War of 1914-18 and After)

१. महायुद्ध

(क)

युद्ध प्रारम्भ हो चुका था। धीरे-धीरे यूरोप के सभी बड़े राष्ट्र इस युद्ध में सम्मिलित हुए। उन बड़े देशों के उपनिवेशों में, अफ्रीका में, मिस्र में, भारत में, एशिया में, ऑस्ट्रेलिया में और कनाडा में और युद्ध के अन्तिम दिनों में सुदूर पूर्व में और सुदूर पश्चिम में चीन और जापान में, संयुक्त राज्य अमेरिका में और दक्षिणी अमेरिका के गणराज्य में भी युद्ध का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। स्थल पर युद्ध हुआ; समुद्र में भी युद्ध हुआ; समुद्र के गर्भ में भी युद्ध हुआ; हवा में भी युद्ध हुआ। यहाँ तक कि उद्योगों और वित्तीय व्यवस्थाओं पर भी युद्ध का प्रभाव पड़ा। इस महायुद्ध में आधुनिकतम और जटिलतम प्रचार कार्य देखा गया। यह विश्वव्यापी युद्ध था। इस युद्ध

THE WORLD WAR, 1918

Th countries marked black took part in the war.

From "Organizing Peace" by permission of the League of Nations Union

में संसार के लगभग सभी सभ्य राष्ट्रों ने, प्रायः सभी स्त्री-पुरुषों ने, सिपाहियों और सिविल नागरिकों ने, काले, गोरे, भूरे और पीले रंग की जातियों ने भाग लिया। सभी लोगों ने इस युद्ध में कुछ-न-कुछ प्रयत्न किया। किसी ने युद्ध जीतने में, किसी ने अपने देश के बचाव में, किसी ने महान् विनाश में भाग लिया। वास्तव में ऐसा घोर विनाशकारी युद्ध इतिहास में कभी नहीं हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा विश्वास किया जाता था कि कोई बड़ा आधुनिक राज्य, जिसके ऊपर अनेक आर्थिक भार हैं, अधिक दिनों तक आधुनिक युद्ध का भार वहन नहीं कर सकता। फ्रांस और जर्मनी का युद्ध केवल छः मास से कुछ अधिक काल तक चला था, ऑस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध तो केवल ६ सप्ताह तक ही चला; सभी को ऐसा विश्वास था कि युद्ध शीघ्र समाप्त होगा अतः सभी आदमियों और सभी सरकारों ने उसी के अनुसार अपनी-अपनी तैयारियाँ की थीं। किन्तु ज्यों-ज्यों उन व्यक्तियों या सरकारों को यह बोध होता गया कि यह युद्ध तो उनकी शक्ति और धैर्य की परीक्षा लेने वाला है, जिसमें उनकी भौतिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति और आर्थिक शक्ति की कठिन अग्नि-परीक्षा होगी, सभी ने धीरे-धीरे अपनी-अपनी नीतियों और योजनाओं पर पुनर्विचार किया।

युद्ध में एक ओर जर्मन तथा ऑस्ट्रिया-हंगरी थे क्योंकि इटली तो पहले ही तटस्थता का मार्ग ग्रहण कर चुका था। उसके विरुद्ध रूस, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, सर्बिया और बेल्जियम थे। दो देशों की मैत्री वाले (Dual Alliance) देशों में जर्मनी मुख्य देश था। उसको यह लाभ था कि वह प्रायः सभी देशों से आन्तरिक मार्गों द्वारा मिला हुआ था और उसकी स्थिति केन्द्रीय थी। इसके अतिरिक्त जर्मनी की सैनिक तैयारियाँ सर्वश्रेष्ठ थीं तथा उसका सैनिक संगठन आदर्श था। इसके अतिरिक्त जर्मनी की रेल व्यवस्था बहुत अच्छी थी इसलिए जर्मनी अपनी सेनाओं को इधर से उधर शीघ्रातिशीघ्र भेज सकता था। किन्तु जर्मनी को एक असुविधा थी, वह यह कि उसे दो मोर्चों (Fronts) पर बल्कि यदि सर्बिया-ऑस्ट्रिया-हंगरी के मोर्चे को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो तीन मोर्चों पर युद्ध करना पड़ रहा था। इसके अतिरिक्त जर्मनी को यह भी असुविधा थी कि उसका एक मात्र साथी देश ऑस्ट्रिया-हंगरी कमजोर था। जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस, ब्रिटेन और रूस (Entente Powers) के पास सैनिक शक्ति भी अधिक थी और उसके पास साधनों का भी प्राचुर्य था। ज्यों-ज्यों युद्ध लम्बा होता गया, त्यों-त्यों मित्रराष्ट्रों (फ्रांस, ग्रेट, ब्रिटेन और रूस) के साधन भी प्रचुरतर होते गए। इसके अतिरिक्त मित्रराष्ट्रों का समुद्रों पर सदैव अधिकार बना रहा जिस कारण उनके साधन सदैव युद्ध-स्थलों पर यथा आवश्यकता पहुंचते रहे। किन्तु इसके विपरीत मित्रराष्ट्रों को भी कुछ असुविधाएँ थीं। उनमें पूर्ण समैक्य नहीं था; वे पूरी तरह युद्ध के लिए तैयार नहीं थे और रूस उनसे भौगोलिक रूप से बहुत ही दूर था। और १९१४ के अन्तिम महीनों के पश्चात् तो तुर्की ने रूस का मार्ग सदैव के लिए अवरुद्ध कर रखा था।

(१) युद्ध के प्रथम पाँच महीने (अगस्त से दिसम्बर १९४१)

जर्मनी पश्चिमी यूरोप पर प्रहार करता है

मित्रराष्ट्रों (Entente Powers) को साधनों की जो सुविधा थी वह ऐसी सुविधा थी जो लम्बे युद्धों में कारगर होती; किन्तु धुरी राष्ट्रों (Central Powers) का इसमें लाभ था कि युद्ध शीघ्र समाप्त हो। जर्मनी को मुख्य आशा इस ओर से थी कि वह शीघ्र आक्रमण करे और शत्रुओं को परास्त करे। जर्मनी को विश्वास था

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

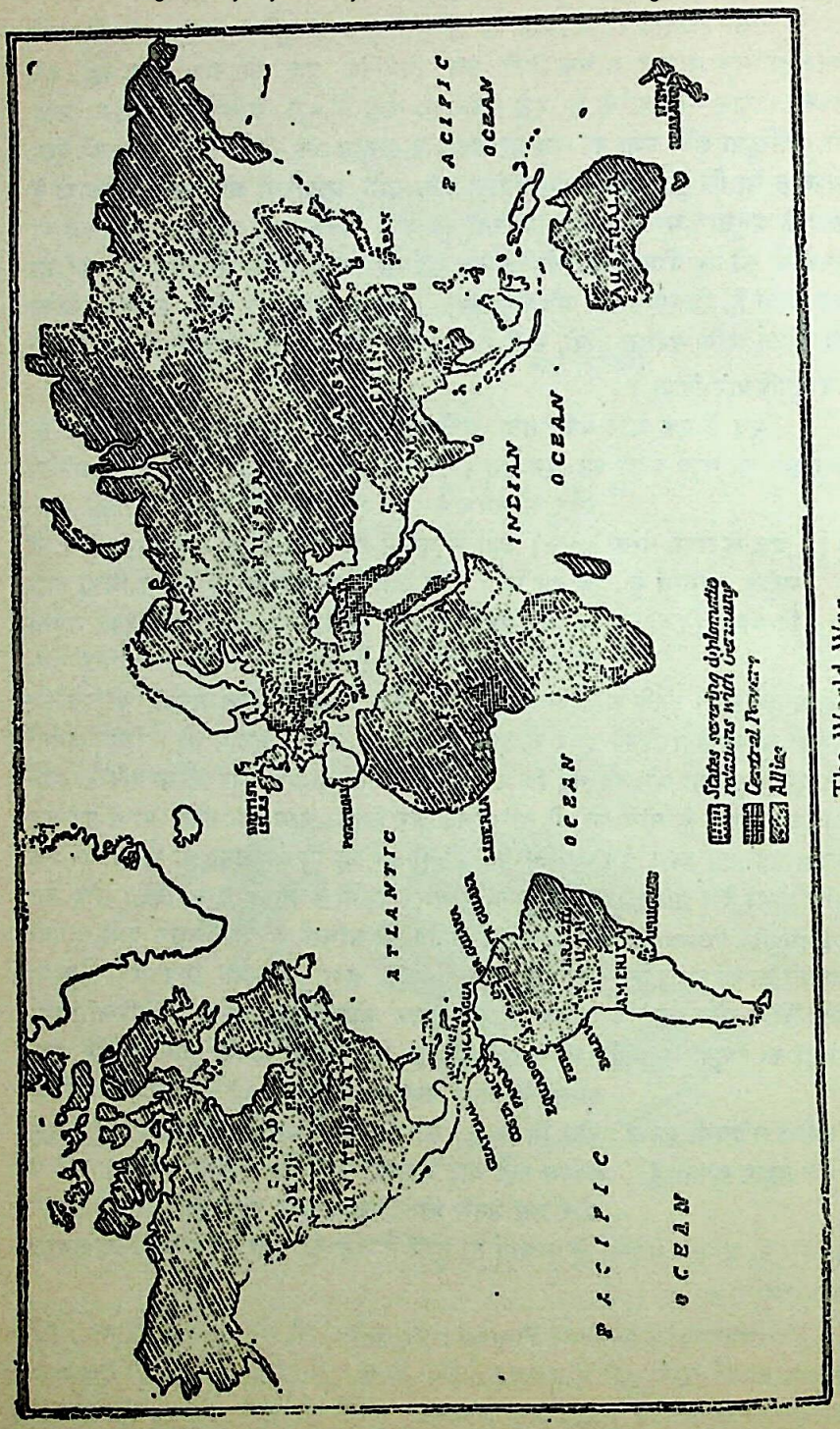

The World War

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि रूस युद्ध के लिए तैयार होने में अधिक समय लेगा अतः उसने पूर्वी मोर्चे पर थोड़े से सैनिक छोड़ दिये किन्तु अपनी पूरी शक्ति पश्चिमी मोर्चे पर लगा दी। जर्मनी ने निश्चित किया कि फ्रांस के ऊपर भयंकर प्रहार किया जाय, ताकि पूर्व इसके कि अन्य शत्रु-राष्ट्र युद्ध के लिए तैयार हों फ्रांस को समाप्त कर दिया जाए। इसमें सन्देह नहीं है कि फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी को शीघ्र सफलताएँ मिलीं और यद्यपि वह पूरी तरह फ्रांस को शीघ्र पराजित नहीं कर सका फिर भी युद्ध के चार वर्षों तक पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनी की धाक बनी रही।

जिस मार्ग से १८७० में जर्मनी या प्रशा ने फ्रांस को हराया था, वास्तव में

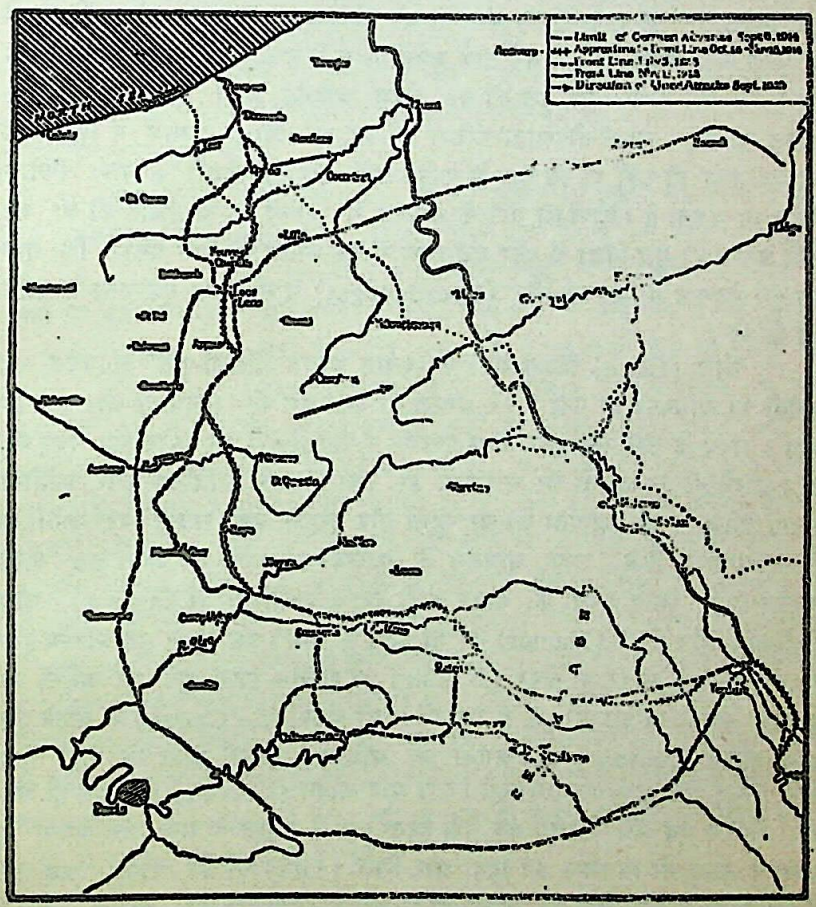

The Western Front

उसी ओर अर्थात् फ्रांस की पूर्वी सीमा पर सशक्त किलेबन्दी की गई थी जो बेल्फर्ट (Belfort) से वर्दून (Verdun) तक चली गई थी। इसलिए जर्मनी ने निश्चित किया कि बड़ी सेना के साथ उत्तर में बेल्जियम के मार्ग से फ्रांस के ऊपर आक्रमण किया जाए जिससे कि फ्रांस के कमजोर वाम पार्श्व पर प्रहार किया जा सके; किन्तु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही यह भी योजना बनी कि थोड़ी सी जर्मन सेना फ्रांस के दाहिने पार्श्व पर भी लॉरेन (Lorraine) की ओर शत्रु को घेरे रहे।

ज्योंही युद्ध की घोषणा हुई, जर्मनी की सारी सैनिक शक्ति बेल्जियम की ओर लगा दी गई। बड़ी शीघ्रता और भारी शक्ति के साथ प्रहार किया गया। लीज (Liege) ने कड़ा प्रतिरोध किया और जर्मनी का युद्ध-टाइमटेबिल तीन दिन पीछे पड़ गया। किन्तु इस मोर्चे पर जर्मनी ने १६ इंची तोपों (Sixteen-inch siege howitzers) का प्रयोग किया। अब एक-एक करके फ्रांस के मजबूत किले गिरने लगे। कुपोला (Cupola) की रक्षा-पंक्ति भी गिर गई क्योंकि उस मोर्चे पर भी ऐसी विकट तोप का प्रयोग किया गया था जो एक टन का गोला १५ मील की दूरी तक फैंक सकती थी। ये नई तोपें जर्मनी ने अभी तक गुप्त रखी थीं और किसी को इनका पता न था। इस युद्ध का यह प्रथम आश्चर्य था। मित्रराष्ट्र आश्चर्य-चकित रह गए। उनका तोपखाना घटिया दर्जे का रह गया। वास्तव में मित्रराष्ट्रों को यह सूझा ही नहीं था कि युद्ध में मशीन गनों और हॉवित्ज़रों से भारी विनाश किया जा सकता है। तोपों की मार के सम्बन्ध में जर्मनी ने जो ईजाद की थी वह उसी प्रकार की युद्ध-विद्या में और युद्ध-कला में एक क्रान्ति थी जिस प्रकार कि आठ वर्ष पूर्व ड्रेडनाट या शतघ्नी पोत (Dreadnought) ने नौसैनिक युद्ध-कला में क्रांति ला दी थी।

लीज (Liege) विजय करने के पश्चात् समस्त दक्षिणी-पूर्वी बेल्जियम पर जर्मनी का अधिकार हो गया। २० अगस्त को बेल्जियम की राजधानी का पतन हो गया। राज्य के कार्यालय और सेना एण्टवर्प (Antwerp) की ओर हटा दिए गए और राजधानी पर जर्मनों का अधिकार हो गया। इतने में ब्रिटिश[1] और फ्रांसीसी सेनाएँ बेल्जियम की सहायता को आ पहुँचीं और उन्होंने कई स्थानों पर जर्मनों के विरुद्ध आक्रमण किये। उनके आक्रमण के फलस्वरूप जर्मनों की प्रगति कुछ धीमी अवश्य पड़ी किन्तु जर्मनों का बढ़ाव जारी रहा। शार्लीराय (Charleroi), मौंस (Mons) और नैमूर (Namur) का भी पतन हो गया। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ होने के ४८ घण्टों के अन्दर ही नैमूर (Namur) का अन्तिम रक्षक दुर्ग भी जर्मनों के हाथ आ गया। ब्रिटिश और फ्रेंच सेनाओं ने ली चैट्यो (Le Cateau) के कठिन युद्ध द्वारा लॉवेन (Louvain) और जर्मनों का अधिकार काफी समय तक नहीं होने दिया किन्तु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली और लॉवेन (Louvain) का पतन हो गया तथा ब्रिटिश एवं फ्रेंच सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। अगस्त के अन्त तक जर्मनों ने फ्रांस के ऊपर भी आक्रमण कर दिया और लिले (Lille) को घेर लिया। अब तो जर्मन सेनाएँ फ्रांस में नदी की बाढ़ की तरह फैलने लगीं और उन्होंने पिकार्डी (Picardy) और चैम्पेन (Champagne) को घेर लिया। इस समय जर्मनों की

१. ८ अगस्त को युद्ध-कुशल ब्रिटिश अभियान बल जिसमें छः डिवीजनें थीं और एक घुड़सवारों की डिवीजन थी (सब मिलकर लगभग ७०,००० सैनिक थे) सर लार्ड फ्रेंच (Lord French) की कमान में उतरा किन्तु उस समय ब्रिटिश युद्ध मन्त्री अर्ल किचनर (Earl Kitchener) ने राष्ट्रीय सेना के सम्बन्ध में पूरी व्यवस्था भी नहीं की थी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति पूर्वनिश्चित व्यवस्था से भी पूर्व चल रही थी, फलस्वरूप शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ने के कारण जर्मनी की सेना अव्यवस्थित हो गई और उसकी प्रथम तथा द्वितीय सेना के बीच में भारी अन्तर रह गया था। अब जर्मन लोग पैरिस (Paris) के निकट पहुँचने लगे और युद्ध के लिये तैयारी करने लगे। ली चैट्यो (Le Cateau) में जिस छोटी-सी ब्रिटिश सेना को जर्मनों ने पीछे हटा दिया था, उसे वे तिरस्कार योग्य ही समझे बैठे थे; जो बची खुची फ्रेंच सेना थी उसे जर्मन लोग शीघ्र ही वश में करने की सोचे बैठे थे तथा अत्यन्त द्रुत गति से जर्मन लोग पेरिस के निकट जा पहुंचे और उन्होंने फ्रेंच सेना का पैरिस (Paris) से सम्बन्ध काट दिया। फ्रांसीसी सेनाओं को अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक मार्न (Marne) की ओर हटना पड़ा और सितम्बर के प्रारम्भ में युद्ध की ऐसी स्थिति थी कि जर्मन लोग पैरिस (Paris) से केवल १५ मील दूर रह गये थे। फ्रांस की सरकार बोर्डियो (Bordeaux) को पलायन कर गई और फ्रांस के सभी वर्गों में से सैनिकों की भर्ती प्रारम्भ हो गई। इस समय सारे फ्रांस में आतंक छाया हुआ था।

मार्न का युद्ध (सितम्बर ६ से १० तक)

इसके पश्चात् मार्न (Marne) का युद्ध हुआ और जर्मनों की प्रगति रोक दी गई। जनरल जॉफे (General Joffre) अभी तक तो अल्सेस लॉरेन (Alsace Lorraine) के मैदान में जर्मनों के विरुद्ध केवल बचाव का युद्ध करता रहा था, यहाँ तक कि अन्त में उसकी हार हो जाने के कारण वह सारे प्रयत्न छोड़ बैठा था किन्तु उसने अब पुनः साहस किया और मार्न नदी के दक्षिण में उसने शत्रु पर मोर्चा लेने के लिए तैयारी प्रारम्भ कर दी। मार्न (Marne) नदी पर उसने प्रथम बार डटकर शत्रु का मुकाबला किया। चार दिन तक जर्मन लोग उसकी रक्षा पंक्ति को तोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न करते रहे। जर्मनी की सेना की शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी क्योंकि उसकी दो डिविजनें पश्चिमी मोर्चे पर भेजी जा चुकी थी। अन्त में जर्मन सेना को उद्देश्य और अनुशासन के अनुसार मार्न के पीछे ऐन (Aisne) नदी के उत्तर की ओर हटने के लिए विवश होना पड़ा। अब जर्मन लोग ऐन (Aisne) के चारों ओर खाइयों में छिप गये और उन्होंने वहाँ से खाइयों का हठीला युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जर्मन लोग पैरिस को नहीं ले सके। पेरिस के विरुद्ध जर्मनों का आकस्मिक आक्रमण विफल हो गया था। वास्तव में जर्मन अधिकारियों ने घोषणा की थी कि वे फ्रांस को छः सप्ताहों में ही ले लेंगे। किन्तु केवल छः सप्ताहों में ही जर्मनी का आक्रमण रोक लिया गया था। इसी के साथ ही जर्मनी की युद्ध को शीघ्र समाप्त करने की आशाएँ भी तिरोहित हो गईं।

सितम्बर के मध्य में फ्रांस और ब्रिटेन की सेनाओं ने मिलकर ऐन (Aisne) नदी की रक्षा खाइयों पर बमवर्षा प्रारम्भ कर दी। किन्तु सम्पूर्ण महायुद्ध में देखा गया कि रक्षात्मक युद्ध करना कहीं अधिक आसान था किन्तु आक्रमण करना कठिन और अधिक जोखिम का कार्य था। जर्मन सैनिकों ने अपनी रक्षा पंक्ति को इतनी होशियारी से बनाया था कि फ्रांस और ब्रिटेन उन्हें वहाँ से उखाड़ न सके। अब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमने सामने की लड़ाई होना प्रायः बन्द था। इसलिये जहाँ ऐन (Aisne) क्षेत्र में लगातार यथास्थिति सी बनी रही, दूसरी ओर समुद्री मार्गों पर दोनों ओर से अधिकार करने के प्रयत्न किये गये। अब दोनों पक्ष अपनी-अपनी रक्षा-पंक्तियों को बढ़ाने लगे और युद्ध शनैः-शनैः समुद्र की ओर बढ़ने लगा। अब युद्धक्षेत्र १५० मील हट गया और दोनों ओर से यही प्रयत्न किया जाने लगा कि किसी भी प्रकार इंगलिश चैनेल के बन्दरगाहों पर अधिकार किया जा सके। यदि चैनेल के बन्दरगाहों पर जर्मनी का अधिकार हो जाता तो इससे उन्हें कई लाभ होते। प्रथमतः सँकरे जल-मार्ग पर जर्मनी का अधिकार हो जाता और यदि इंग्लैण्ड यूरोप में अपनी सेनाएँ उतारता या लड़ाई का सामान भेजता तो उसमें जर्मनी विघ्न डाल सकता था; इसके अतिरिक्त यदि इंग्लैण्ड जर्मनी के विरुद्ध आर्थिक अवरोध (Economic Blockade) करता तो जर्मनी उसको तोड़ने का प्रयत्न कर सकता था। यही नहीं, चैनेल के बन्दरगाहों से दूर-मार तोपों द्वारा इंग्लैण्ड के दक्षिणी किनारे पर बमवर्षा की जा सकती थी। अतः चैनेल के बन्दरगाहों पर अधिकार करने के उद्देश्य से जर्मनी ने पश्चिमी रणक्षेत्र में उत्तर की ओर आक्रामक कार्यवाही प्रारम्भ की। ९ अक्टूबर को जर्मनों ने एण्टवर्प (Antwerp) को भारी बम वर्षा का निशाना बनाया और वह जर्मनों के अधिकार में आ गया। बेल्जियम के अधिकतर अविजित भाग जर्मनों के अधिकार में आ गये। घेण्ट (Ghent), ब्रूगेस (Bruges), ऑस्टेण्ड (Ostend) और लिले (Lille) पर जर्मनों का अधिकार हो गया। किन्तु येप्रीस (Ypres) में जर्मनों को अत्यधिक कड़ा प्रतिरोध सहन करना पड़ा। कुछ भावुकतावश और कुछ राजनीतिक कारणोंवश अंग्रेज लोग बेल्जियम के अन्तिम कोने को छोड़ने को तैयार न थे अतः पश्चिमी शक्तियों ने येप्रीस (Ypres) की रक्षा में सब कुछ दाँव पर लगा दिया। जर्मनों को हार कर पीछे हटना पड़ा। वे डन्कर्क (Dunkirk) और केले (Calais) तक भी नहीं पहुँच सके येसर (Yser) के युद्ध ने जर्मनी के द्वितीय आक्रमण को उसी प्रकार विफल कर दिया था जिस प्रकार कि मार्न (Marne) के युद्ध ने जर्मनी के प्रथम आक्रमण को विफल कर दिया। फिर भी जर्मनी भारी लाभ की स्थिति में था; जर्मनों के अधिकार में प्रायः सारा बेल्जियम और उत्तरी फ्रांस का महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र था।

समुद्र पर अधिकार करने के प्रयत्न

बेल्जियम की हानियाँ

येप्रीस का युद्ध

इस प्रकार १९१४-१५ के जाड़ों भर दोनों पक्ष चार सौ मील के विस्तृत रणक्षेत्र में अपनी-अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाते रहे। यह रण-क्षेत्र फ्लैण्डर्स (Flanders) के मैदान से आल्पस (Alps) तक फैला हुआ था। इस रण-क्षेत्र में बराबर खाइयों का युद्ध होता रहा जो लगातार अनिर्णीत रहा। इस युद्ध का केवल यही परिणाम रहा कि दोनों ओर पर्याप्त संख्या में सैनिक प्रतिदिन मारे जाते रहे।

इन्हीं दिनों पूर्वी मोर्चे पर भी यह सिद्ध हो चुका था कि आक्रमणकारी की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा रक्षात्मक युद्ध करने वाला लाभ में रहता है। अतः पश्चिमी मोर्चे के समान ही पूर्वी मोर्चे पर भी पर्याप्त समय तक यथास्थिति बनी रही।

पूर्वी मोर्चा

७ अगस्त को ५० हजार रूसी सैनिकों ने पूर्वी प्रशा पर आक्रमण पर दिया यद्यपि २ अगस्त को ही रूस ने आक्रामक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी थी। रूसी सैनिक पूर्वी प्रशा में कॉनिग्जवर्ग (Konigsberg) और विस्टुला (Vistula) तक फैल गए और पश्चिमी राष्ट्रों को आशा हुई कि शायद रूस धुरी राष्ट्रों (Central Powers) की कमर तोड़ देगा। किन्तु जर्मन सेना ने पश्चिमी मोर्चे से कुछ सेनाएँ पूर्वी प्रशा में मंगा लीं और अब जर्मनों ने रूसियों की खबर ली। रूसियों की एक सहायक सेना तितत-बितर कर दी गई और मुख्य रूसी सेना को सात दिन के कठिन संग्राम के बाद हरा दिया गया। १४१० के एक युद्ध की यादगार में इस युद्ध को टैनेनवर्ग (Tannenberg) के युद्ध की संज्ञा दी गई।[1] टैनेनवर्ग के युद्ध में रूसी सेना की अपार हानि हुई। ८०,००० रूसी सैनिक बन्दी बने और बहुत सी रूसी तोपें भी जर्मनी के हाथ लगीं। रूसियों को पीछे हटना पड़ा और रूस प्रशा को न ले सका। जर्मनी के सेनापति हिण्डेनवर्ग (Hindenburg) और उप-सेनापति ल्यूडेनडार्फ़ (Ludendorff) को जर्मनी में भारी यश प्राप्त हुआ। वास्तव में २ सितम्बर को इसी प्रकार सीडान (Sedan) पर भी जर्मनों को विजय लाभ हुआ था। इस बार भी पश्चिमी मोर्चे पर पेरिस (Paris) जर्मनी के लिए केवल १५ मील दूर रह गया था और रूसी सैनिक पूर्वी प्रशा से खदेड़े जा रहे थे; अतः निस्सन्देह २ सितम्बर जर्मनों की खुशी का दिन था। वास्तव में धुरी राष्ट्रों (Central Powers) को सारे प्रथम विश्व-युद्ध में इससे अधिक मुबारक दिन नसीब नहीं हुआ।

रूसियों की पराजय

टैनेनबर्ग का युद्ध (२६ अगस्त १९१४ से १ सितम्बर १९१४ तक)

किन्तु जहाँ टैनेनवर्ग (Tannenberg) में जर्मनी को महान् सफलता मिली, ऑस्ट्रिया-हंगरी की कमजोरी के कारण वह सफलता कुछ नीरस-सी रह गई। जिस समय रूसी सैनिकों ने पूर्वी प्रशा पर आक्रमण किया था, उसी समय ऑस्ट्रिया-हंगरी ने रूस के विरुद्ध आक्रमण की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी थी। ऑस्ट्रिया के सैनिक पोलैण्ड (Poland) में घुस गए थे जहाँ वे रूसी रेल व्यवस्था के उन भागों पर अधिकार करना चाहते थे जिन पर रूस का अधिकार बने रहने के कारण धुरी राष्ट्रों को हानि हो सकती थी। रूस ने पोलैण्ड (Poland) से वफ़ादारी का वचन लेकर पोलैण्ड को पूरी स्वायत्तता का आश्वासन दे दिया और इसके उपरान्त उसने आक्रामक ऑस्ट्रिया के विरुद्ध दस लाख सैनिकों के साथ आक्रमण किया। अब तो ऑस्ट्रिया के सैनिक भाग खड़े हुए। विजयी रूसी सैनिकों ने भागते हुए ऑस्ट्रिया के सैनिकों का गैली-

---

१. १४१० के युद्ध में पोल लोगों (The Poles) और लिथुआनियावासियों (Lithuanians) ने ट्यूटानिक लोगों को हराया था और उक्त युद्ध में पूर्व की ओर जर्मनों की प्रगति रुक गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिया (Galicia) तक पीछा किया और ३ सितम्बर को लम्बर्ग (Lemberg) रूस के अधिकार में आ गया। जिस समय पश्चिमी मोर्चे पर मार्न (Marne) का युद्ध हो रहा था, उसी समय पूर्व में गैलीशिया (Galicia) के मैदान में रूस और ऑस्ट्रिया के बीच भयंकर युद्ध चल रहा था। इस युद्ध में ऑस्ट्रिया की करारी हार हुई। ऑस्ट्रिया की सेनाओं को कारपेथियन (Carpathian) पर्वत में शरण लेनी पड़ी

ऑस्ट्रिया के आक्रमण की विफलता

The Eastern Front

और बचे-खुचे सैनिक क्रेकाओ (Cracow) या प्रज़ेमिज्ल (Przemysl) की ओर प्राण लेकर भागे। ग्राण्ड ड्यूक निकॉलस (Grand Duke Nicholas) के नेतृत्व में विजयी रूसी सैनिक ऑस्ट्रिया में बराबर बढ़ रहे थे। उन्हें आशा थी कि एक ओर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे गैलीशिया (Galicia) के मार्ग द्वारा साइलीशिया (Silesia) पर अधिकार कर लेंगे जो जर्मनी का खनिज पदार्थों से भरपूर महत्त्वपूर्ण औद्योगिक प्रान्त था। दूसरी ओर उन्हें यह भी आशा थी कि वे गैलीशिया को लेने के उपरान्त हंगरी (Hungary) को भी पदाक्रान्त कर सकेंगे। किन्तु रूसियों की कोई भी आशा पूरी न हुई।

जर्मनी का प्रत्याक्रमण

टैनेनबर्ग (Tannenberg) में विजय लाभ करने के पश्चात् हिंडेनबर्ग (Hindenburg) ने सोचा कि ऑस्ट्रिया-हंगरी को सहायता पहुँचाई जाय, अतः उसने रूस के विरुद्ध प्रत्याक्रमण किया और उत्तर की ओर से पोलैण्ड के ऊपर आक्रमण किया और वारसा (Warsaw) को अपना लक्ष्य बनाया। रूस के विशाल औद्योगिक नगर लॉड्स (Lodz) का पतन हो गया किन्तु पोलैण्ड की राजधानी को लेने के प्रयत्न छोड़ दिए गए। इस प्रकार वर्ष के अन्त तक पूर्वी मोर्चे पर भी लगभग २०० मील लम्बे मोर्चे पर लगातार यथास्थिति बनी रही; अर्थात् पोलैण्ड में वारसा (Warsaw) के पश्चिम में जर्मन लोग घेरा डाले पड़े रहे और ऑस्ट्रिया में गैलीशिया (Galicia) में कारपेथियन पर्वतमाला की तलहटी में रूसी सैनिक घेरा डाले पड़े रहे।

ऑस्ट्रिया द्वारा सर्बिया के विरुद्ध असफल आक्रमण

इन्हीं दिनों ऑस्ट्रिया द्वारा सर्बिया के विरुद्ध आक्रमण विफल कर दिया गया। प्रारम्भ में तो सर्बियावालों को हरा दिया गया था और उन्हें पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी थी किन्तु बाद में उन्होंने ऑस्ट्रिया का वीरता से मुकाबला किया और ऑस्ट्रिया की सेना को सर्बिया से बाहर निकाल दिया। १९१४ के बड़े दिन अर्थात् २५ दिसम्बर को सर्बिया के राजा पीटर (King Peter) ने अपनी राजधानी बेल्ग्रेड (Belgrade) में ही बड़े दिन की खुशी मनाई।

समुद्र पर युद्ध

किन्तु इस युद्ध में जल-सेना का भारी महत्त्व था। प्रारम्भ से ही यह स्पष्ट था कि समुद्री युद्ध में जर्मनी को मुँह की खानी पड़ेगी क्योंकि ऑस्ट्रिया-हंगरी की जल-सेना प्रायः अशक्त थी। यह भी सर्वविदित था कि अगस्त १९१४ में जर्मनी का जहाज़ी बेड़ा युद्ध के लिए तैयार न था और जर्मनी का जहाज़-निर्माण का कार्यक्रम अधूरा ही रह गया था। आरम्भ से ही ब्रिटिश जल-सेना ने समुद्र पर अधिकार कर लिया जिसके फलस्वरूप जर्मनी का व्यापार समाप्त हो गया और वह चारों ओर से ब्रिटिश जल-सेना द्वारा घेरे में आ गया था। जर्मनी का उसके उपनिवेशों के साथ सम्बन्ध टूट गया। ऐसी स्थिति में जर्मनी की जल-सेना हताश हो गई और उसने जर्मनी के उपनिवेशों की रक्षा का कोई प्रयत्न ही नहीं किया और न दूरस्थ जर्मन जंगी जहाज़ों के बचाने का ही कोई प्रयत्न किया गया। अब तो जर्मनी की जल-सेना ने अपना सारा जहाज़ी बेड़ा अपने सुरक्षित बन्दरगाहों में बुला लिया और अब वे प्रतीक्षा करने लगे कि यदि कोई अवसर मिले तो ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े पर आकस्मिक आक्रमण किया जाय। जर्मनों ने रक्षात्मक कार्यवाही के रूप में अपने समुद्रों में सुरंगों का जाल बिछा दिया और सैकड़ों पनडुब्बियाँ लगा दीं ताकि ब्रिटिश जंगी जहाज़ जर्मन बन्दरगाहों से दूर रहें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए अब ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा न केवल ब्रिटिश द्वीप-समूह की जर्मन आक्रमण के विरुद्ध चौकसी कर रहा था, बल्कि वह अनेक सैनिक चैनेल के पार पश्चिमी युद्ध क्षेत्र में उतार रहा था और दूरस्थ उपनिवेशों से रक्षक सैनिक लाकर इंग्लैण्ड में पहुँचा रहा था ताकि फ्रांस में अधिक-से-अधिक सैनिक भेजे जा सकें। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा इंग्लैण्ड के व्यापार की रक्षा भी कर रहा था क्योंकि उसी पर सारे राष्ट्र का जीवन निर्भर था और सबसे ऊपर ब्रिटिश बेड़े के लिए जर्मन जहाज़ी बेड़े को जर्मन समुद्रों में रोके रखना और जर्मन समुद्री किनारे को घेरे में ले लेना आवश्यक था ताकि जर्मनी का सारे संसार से सम्बन्ध विच्छेद रहे और जर्मन जहाज़ ब्रिटेन को क्षति न पहुंचा सकें। महान् ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा उत्तरी सागर में स्केपा फ्लो (Scapa Flow) के आसपास ऑर्कनेज (Orkneys) में चक्कर लगाता रहता था ताकि यदि जर्मनी का जहाज़ी बेड़ा कहीं भी दिखाई दे तो तुरन्त उसे नष्ट किया जा सके। ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े के कुछ पुराने जंगी जहाज़ों का बेड़ा चैनेल की रक्षा हारविच (Harwich) की ओर कर रहा था। यह बेड़ा ब्रिटिश व्यापार और यातायात के मार्गों की रक्षा कर रहा था और निषिद्ध व्यापार की रोक-थाम कर रहा था। इन्हीं दिनों सारे संसार में जर्मनी का सारा व्यापार ब्रिटेन के हाथों में आ गया।

भूमध्यसागर में आँग्ल-फ्रांसीसी समझौते के अनुसार फ्रांस का जहाज़ी बेड़ा तैनात था। इसका मुख्य कार्य यह था कि जो जर्मन जहाज़ घेरे से निकल भागे हैं उनसे मित्र-राष्ट्रों के जहाजों की रक्षा करे और अफ्रीका से जो सेनाएँ फ्रांस की रक्षार्थ आ रही थीं उनकी भूमध्यसागर में जर्मन विध्वंसकों से रक्षा करे।

इस प्रकार जब प्रायः सारा जर्मन जहाज़ी बेड़ा जर्मनी के बन्दरगाहों में बन्द पड़ा था तो दोनों शत्रुओं में समुद्री युद्ध बहुत ही कम हुआ। केवल जब ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा जर्मन जहाज़ी बेड़े को घेरे में डाले रखने का प्रयत्न करता था अथवा जब विनिषिद्ध व्यापार को रोकने का प्रयत्न किया जाता था तभी यदाकदा समुद्री युद्ध हो जाता था; अथवा जब अंग्रेजी जहाज़ों ने हैलीगोलैण्ड (Heligoland) और जर्मनी के समुद्री किनारों पर आक्रामक कार्यवाही की, अथवा जब जर्मनी ने बदले की कार्यवाही के रूप में अंग्रेजी बन्दरगाहों पर आक्रमण किए अथवा उनमें बारूदी सुरंगें बिछाने का प्रयत्न किया तभी समुद्री मुठभेड़ें हुईं; अथवा जब किसी ऐसे इक्का-दुक्का जहाज़ से युद्ध हुआ जिसे वापस नहीं बुलाया जा सका अथवा जो घेरे को तोड़कर भाग निकला तभी छोटा-मोटा समुद्री युद्ध हुआ। इस प्रकार घेरे को तोड़कर भाग निकलने वाले दो जर्मन जहाज़ों ने ब्रिटेन को भारी क्षति पहुँचाई थी। उनके नाम थे ऐम्डेन (Emden) और कार्लस्रुहे (Karlsruhe)। इनमें से केवल ऐम्डेन ने चौदह ब्रिटिश जंगी जहाज़ों को डुबाया था। बाद में इन दोनों जहाज़ों को भी पकड़ लिया गया था।

इसके अतिरिक्त युद्ध प्रारम्भ होने के समय पाँच जर्मन जंगी जहाज़ों का एक बेड़ा एडमिरल वॉन स्पी (Admiral von Spee) के नेतृत्व में प्रशान्त महासागर में लंगर डाले पड़ा था। जब २३ अगस्त को जापान ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी तो प्रशान्त सागर स्थित जर्मन जहाजी बेड़े की स्थिति संकटापन्न हो गई और एडमिरल वॉन स्पी ने निश्चय किया कि अपने जहाजी बेड़े को बचाकर स्वदेश ले जाय। चिली (Chile) के निकट वॉन स्पी (von Spee) के बेड़े की सर क्रिस्टोफ़र क्रेडक (Sir Christopher Craddock) के बेड़े से टक्कर हो गई जिसमें जर्मन बेड़े ने ब्रिटिश बेड़े को करारी चोट दी और सर क्रिस्टोफर क्रेडक अपने जहाज सहित समुद्र के गर्भ में विलीन हो गया। किन्तु उसी वर्ष वॉन स्पी (von Spee) के बेड़े को भी सर डोवेटन स्टर्डी (Sir Doveton Sturdee) ने फ़ाकलैण्ड द्वीपसमूह के निकट एक युद्ध में नष्ट कर डाला।

इस प्रकार १९१४ के अन्त में पश्चिमी मित्र राष्ट्रों की नौसैनिक शक्ति पर्याप्त सुदृढ़ थी यद्यपि युद्ध के प्रारम्भ में ऐसी आशा नहीं की जाती थी। समुद्री मार्ग से जर्मन व्यापार प्रायः बन्द हो चुका था; ब्रिटेन का समुद्र पार का व्यापार प्रायः अक्षुण्ण था; उसका यातायात बन्द नहीं था और उसका समुद्री किनारा अजेय था। जर्मनी का प्रायः सारा जहाजी बेड़ा निश्चेष्ट पड़ा था। संक्षेप में इतना बताना पर्याप्त होगा कि सारे युद्ध काल में ब्रिटेन समुद्रों का स्वामी बना रहा; यद्यपि १९१७ में जर्मन पनडुब्बियों ने ब्रिटेन के सम्मुख भारी कठिनाई उपस्थित कर दी थी।

ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनाओं ने जर्मनी के समुद्र पार के उपनिवेशों पर भी अधिकार कर लिया। युद्ध के प्रथम वर्ष में ही टोगोलैण्ड (Togoland) और कैमरून्स (Cameroons) जर्मनी के हाथों से निकल गये। दक्षिण-पश्चिमी और पूर्वी अफ्रीका में जर्मनी ने प्रतिरोध किया और जर्मन प्रचार से उत्साहित होकर बोअर राष्ट्रवादियों ने विद्रोह किया।[1] इस विद्रोह का दमन करने में ब्रिटेन को कई बार बोअरों से युद्ध करना पड़ा। वास्तव में उक्त विद्रोह जनरल बोथा (General Botha) और जनरल स्मट्स (General Smuts) की सहायता से ही दबाया जा सकता था और १५ वर्ष पूर्व उक्त दोनों सेनानायक ब्रिटेन के विरुद्ध थे। यद्यपि युद्ध से पहले ब्रिटेन के शत्रु और ब्रिटेन के कुछ आन्तरिक आलोचक भी यह समझे बैठे थे कि ब्रिटिश साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जायेगा, किन्तु टोगोलैण्ड और कैमरून्स के विद्रोह को अथवा १९१६ की आयरलैण्ड की असफल सिन फ़ीन (Sinn Fein) अराजकता को अथवा मिस्र के रक्षित राज्य (Protectorate) में छोटी-मोटी गड़बड़ी को छोड़ते हुए समस्त ब्रिटिश साम्राज्य में ऐक्य बना रहा और वह विघटित नहीं हुआ। चारों ओर से ब्रिटेन के स्वायत्तशासी अधिराज्यों ने अपनी मातृभूमि ब्रिटेन को हर प्रकार की सहायता भेजी। उन्होंने स्थानीय सहायता भी दी और यूरोप में भी ब्रिटेन की सहायता की। उन्होंने धन और जन और अन्य प्रकार से भी ब्रिटेन की सहायता की। केवल कनाडा (Canada), ऑस्ट्रेलिया (Australia) और न्यूजीलैण्ड (New Zealand) ने ही दस लाख से अधिक सैनिक दिये जिन्होंने युद्धक्षेत्रों में बारम्बार अपार धैर्य और शौर्य का परिचय दिया। भारत भी वफ़ादार बना रहा और उसने भी स्वेच्छा से लगभग दस लाख सैनिक ब्रिटेन की सेवा में अर्पित किये।

---

१. दक्षिण अफ्रीका की सेनाओं ने जर्मन दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका को १९१५ तक जीत लिया था। पूर्वी अफ्रीका में प्रतिरोध १९१८ तक चलता रहा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३ अगस्त को जापान ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जिसके फलस्वरूप प्रशान्त महासागर के सारे जर्मन उपनिवेश जापान के अधिकार में आ गये विशेष रूप से कियाओ चाओ (Kiao-chau) और शाण्टंग (Shantung) से जर्मन प्रभाव नष्ट हो गया।

जब जर्मनी की जापान से शत्रुता हो गई और प्रशान्त सागर के उसके उपनिवेश छिन गए तब नवम्बर १९१४ में जर्मनी ने तुर्की की सहायता प्राप्त की जिसके लिए वह इतने दिनों से प्रयत्न कर रहा था। तुर्की की मित्रता प्राप्त हो जाने से धुरी राष्ट्रों (Central Powers) की शक्ति में चार चाँद लग गये और उन्हें मध्य यूरोप से लेकर एशिया माइनर (Asia Minor) और मैसोपोटामिया (Mesopotamia) तक के क्षेत्र में अधिकार प्राप्त हो गया। इस अधिकार से पश्चिमी शक्तियों और रूस के बीच यातायात में बाधा पड़ने लगी और इसके फलस्वरूप बल्कान क्षेत्र में शक्ति-संतुलन प्रायः डगमगा गया। इसके कारण मिस्र और भारत में भी ब्रिटेन की स्थिति को आघात पहुँचा। जिस समय गैलीपोली (Gallipoli) का युद्ध हुआ उस समय इस स्थिति से जर्मनी को लाभ हुआ और अंग्रेजों को असफलता एवं निराशा का मुँह देखना पड़ा।

(ख)

१९१५ के प्रारम्भ में मित्रराष्ट्रों की हिम्मत बढ़ी हुई थी किन्तु उक्त वर्ष उनके लिए निराशाओं और असफलताओं का वर्ष सिद्ध हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर मार्च में मित्रराष्ट्रों को न्यूवेचैपेल (Neuve-Chapelle) पर जो सफलता मिली थी उससे वे फूल गये और उन्होंने निश्चय किया कि जर्मन पंक्तियों पर आक्रमण किया जाय। किन्तु जर्मनों ने भयंकर तोपों और जहरीली गैसों के साथ येप्रीस (Ypres) के मोर्चे पर मित्र-राष्ट्रों के ऊपर आक्रमण किया। चार सप्ताहों तक येप्रीस का द्वितीय युद्ध चलता रहा। ब्रिटेन को कुछ पीछे हटना पड़ा किन्तु इससे ब्रिटिश स्थिति में कोई विशेष प्रतिकूल अन्तर नहीं पड़ा। ब्रिटेन के अनेक सैनिक खेत अवश्य रहे किन्तु वे अपने स्थानों पर प्रायः अडिग रहे। इस प्रकार न्यूवे चैपेल (Neuve Chapelle) और येप्रीस (Ypres) के प्रत्याक्रमणों के फलस्वरूप दोनों दलों की स्थिति में केवल सामान्य अन्तर पड़ा था; केवल लम्बेमोर्चे पर यत्र-तत्र सेनाएँ इधर-उधर हट भर गई थीं।

१९१५

येप्रीस का द्वितीय युद्ध (अप्रैल १९१५)

जून में मित्र-राष्ट्रों ने पर्याप्त तैयारी के बाद जर्मनों को हटा देने के उद्देश्य से आर्टोइस (Artois) में भारी आक्रमण किया किन्तु यह प्रयत्न व्यर्थ रहा। सितम्बर में पुनः चैम्पेन (Champagne) और आर्टोइस (Artois) में मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनों को हटाने का प्रयत्न किया, किन्तु फिर भी मित्र-राष्ट्र जर्मनों को हटा नहीं सके। १९१५ में जर्मनी की इच्छा यह रही कि किसी भी कीमत पर पश्चिमी मोर्चे पर जर्मन लोग चट्टानों की तरह डटे रहें और ब्रिटिश सैनिक यदि चाहें तो उन चट्टानों से टकराकर चूर-चूर हो जायें। जर्मनी की इच्छा पूर्ण हुई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व में भी पश्चिमी मोर्चे के समान १९१५ में प्रारम्भ में मित्र-राष्ट्रों को सफलताएँ मिलीं। रूस ने तुर्कों को रोक दिया, अतः तुर्क लोग जो आर्मीनिया (Armenia) के मार्ग से रूस के विरुद्ध बढ़ रहे थे उन्हें मजबूर कर दिया गया कि वे पीछे हटें। ग्राण्ड ड्यूक निकॉलस (Grand Duke Nicholas) को भी ऑस्ट्रिया के विरुद्ध सफलताएँ मिल रही थीं। उसने प्रज़ेमिज़्ल (Przemysl) ले लिया और कारपेथियन पर्वतों पर अधिकार कर लिया और ईस्टर (Easter) के पूर्व उसने क्रेकाओ (Cracow) की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। किन्तु इसके बाद रूस की पराजय की कहानी प्रारम्भ हुई।

पूर्वी मोर्चा

जिस समय ग्राण्ड ड्यूक निकॉलस (Grand Duke Nicholas), कारपेथियन पर्वतों को अधिकार में करने का प्रयत्न कर रहा था, उसी समय हिण्डेनबर्ग (Hindenburg) उत्तर में पूर्वी प्रशा के मार्ग से रूस के विरुद्ध बढ़ा चला आ रहा था। फ़रवरी में उसने मसूरियन झीलों (Masurian Lakes) के निकट रूस को करारी हार दी जिससे १०,००० रूसी बन्दी बने। इसके बाद भी वह पोलैण्ड (Poland) में बढ़ता रहा। चार अगस्त को वारसा (Warsaw) का पतन हो गया और इसके पश्चात् हिण्डेनबर्ग ने ब्रेस्ट-लिटोव्स्क (Brest-Litovsk), ग्रोडनो और विलना (Grodno and Vilna) को भी ले लिया। अब जर्मन लोग पेट्रोग्रेड (Petrograd) की ओर बढ़ने लगे किन्तु रीगा (Riga) की रूसी रक्षा पंक्तियों के निकट उनकी प्रगति रोक दी गई।

जनरल हिण्डेनबर्ग के इस अभियान की समाप्ति के पहले ही जनरल मैकेनसेन (General Mackensen) ने जर्मनी और ऑस्ट्रिया की भारी सेनाओं के सहित ग्राण्ड ड्यूक निकॉलस (Grand Duke Nicholas) के विरुद्ध गैलीशिया में युद्ध करने की तैयारी कर रखी थी। मई में जनरल मैकेनसेन ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया। रूसी सेनाएँ भाग खड़ी हुईं। डुनेजेक (Dunajec) और सान (San) नदियों की लड़ाइयों में रूसी सेनाएँ बुरी तरह हारीं और उनको तितर-बितर कर दिया गया। रूसी सेनाओं को कारपेथियन पर्वत छोड़ना पड़ा और तीन जून को प्रज़ेमिज़्ल (Przemysl) पर और उसके पश्चात् लेम्बर्ग (Lemberg) पर भी जर्मनों का अधिकार हो गया। इस प्रकार प्रारम्भिक नौ महीनों में रूसियों को जो सफलताएँ मिली थीं वे धूल में मिल गईं और जब सितम्बर में ग्राण्ड ड्यूक निकॉलस ने पुनः अपनी सेनाओं को पुनर्गठित किया उस समय उसकी रक्षा-पंक्ति वारसा (Warsaw) से दो सौ मील पूर्व की ओर थी अर्थात् रीगा (Riga) से ड्विन्स्क (Dvinsk) तक। यह नई रक्षा-पंक्ति पिंस्क (Pinsk) के दलदल को छूती हुई २०० मील लम्बी चली गई थी और दक्षिण में यह पूर्वी गैलीशिया के दक्षिणी किनारे को छूती थी। वास्तव में रूस की इतनी हानि हो चुकी थी कि वह फिर सम्भल ही न सका। उसके हाथों से गैलीशिया (Galicia), पोलैण्ड (Poland) और बाल्टिक सागर के किनारे पश्चिमी प्रान्त निकल चुके थे। रूस के राजतन्त्र को भी भारी आघात लगा। राजतन्त्र की सारी जड़ें खोखली हो गईं। ज़ारशाही लड़खड़ाने लगी और आन्तरिक रूसी राजनीति उसी प्रकार विचलित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई जिस प्रकार कि १९०५ में सारे रूस में विप्लव की-सी स्थिति पैदा हो गई थी।

यद्यपि रूस के पास अपार जन-शक्ति थी फिर भी जिन कारणों वश रूस को युद्ध में सफलता प्राप्त न हो सकी उनमें मुख्य कारण यह रहा कि रूस के पास युद्ध-सामग्री की भारी कमी थी। यदि रूस के पास पर्याप्त युद्ध-सामग्री होती तो वह १५० लाख सैनिकों की विशाल सेना खड़ी कर सकता था। युद्ध के प्रारम्भ में भी रूस के पास गोला-बारूद की कमी थी और उसके पश्चात् लापरवाही, दीर्घसूत्रता और संगठनहीनता के कारण यह कमी और भी बढ़ गई। दिसम्बर, १९१४ में रूसी सैनिकों को युद्ध के मोर्चों पर भी केवल आधी युद्ध-सामग्री मिल रही थी जब कि मोर्चों के पीछे रंगरूटों के प्रशिक्षण में तीन रंगरूटों के पास केवल एक राइफल थी। १९१५ ई० के प्रारम्भ में रूस के भण्डार में केवल इतना गोला-बारूद था जो एक सप्ताह के लिए भी शायद न चलता। कहा जाता है कि गर्मियों में जब रूसी सैनिक पीछे हट रहे थे उस समय उनको लाठियों से आमने-सामने की लड़ाई लड़नी पड़ रही थी।

दर्रे दानियाल का युद्ध (फरवरी से दिसम्बर १९१५)

रूस के पास युद्ध-सामग्री की भारी कमी थी, इसी कमी को पूरा करने के उद्देश्य से पश्चिमी शक्तियों ने गैलीपोली (Gallipoli) का अभियान प्रारम्भ किया था। निस्सन्देह सामरिक दृष्टि से इस अभियान का भारी महत्त्व था। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य यह था कि दर्रे दानियाल का मार्ग मित्र-राष्ट्रों के हाथों में आ जाय ताकि मारमोरा सागर (Sea of Marmora) और बॉस्पोरस (Bosporus) के मार्ग से रूस और मित्र-देशों के बीच यातायात खुल जाय। कारण यह था कि रूस का मार्ग चारों ओर से बन्द था। उत्तर में बाल्टिक सागर पर जर्मनी का अधिकार था और दक्षिण में काला सागर (Black Sea) तुर्की के अधिकार में था। यदि पश्चिमी राष्ट्रों और रूस के बीच यातायात का समुचित प्रबन्ध हो जाता तो पश्चिमी राष्ट्र युद्ध-सामग्री से रूस की सहायता कर सकते और उधर रूस का अतिरिक्त गेहूँ पश्चिमी राष्ट्रों के पास पहुँच सकता। इसके अतिरिक्त यदि तुर्की की राजधानी पर आक्रमण किया जाता तो तुर्क लोग अपने सैनिक रूसी मोर्चे से हटा लेते और इस सबके फलस्वरूप मेसोपोटामिया (Mesopotamia) और मिस्र (Egypt) में मित्र-राष्ट्रों की स्थिति सुदृढ़ हो जाती। यदि दर्रे दानियाल के अभियान सम्बन्धी यह सारी योजना सफल हो गई होती तो इससे बल्कान क्षेत्र की युद्ध-स्थिति पर भी मित्र-राष्ट्रों के अनुकूल प्रभाव पड़ता और सम्भवतः अनिश्चित बल्कान राज्य इस अभियान में विजयी पक्ष की ओर झुक जाते। इसके फलस्वरूप धुरी राष्ट्रों की स्थिति कमजोर हो जाती और बर्लिन (Berlin) एवं कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) के बीच के यातायात में बाधा उपस्थित हो जाती।

यह अत्यन्त कठिन और जोखिमभरा अभियान था। इसका संचालन मित्र-राष्ट्र बहुत दूर से कर रहे थे और धुरी राष्ट्रों की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी।

इंग्लैण्ड और फ्रांस के सम्मिलित समुद्री बेड़े ने दर्रे दानियाल को लेने का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न किया और आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। किन्तु दर्रे दानियाल में चारों ओर बारूदी सुरंगें बिछी हुई थीं; अथवा ऐसा विश्वास किया जाता था कि उसमें सुरंगें बिछी हुई हैं और ऐसा भी समझा जाता था कि गैलीपोली (Gallipoli) से लेकर दर्रे दानियाल तक के मार्ग में छिपाकर तोपें लगाई गई थीं। इन तैयारियों के सामने मित्रराष्ट्रों का समुद्री बेड़ा कुछ न कर सका। ब्रिटेन और फ्रांस के तीन युद्ध-पोत तुर्की सुरंगों की लपेट में नष्ट हो गये और जब मौसम भी खराब हो गया तब तो मित्रराष्ट्र पीछे हट गए।

इसके पश्चात् यह निश्चित हुआ कि सर आयन हैमिल्टन (Sir Ian Hamilton) के नेतृत्व में एक स्थल सेना भी भेजी जाय जो नए समुद्री आक्रमण में सहायता करे। किन्तु सेना को एकत्रित करना पड़ा और मई में ब्रिटिश, फ्रेंच और कुछ भारतीय तथा कुछ एन्ज़ेक (Anzacs)[1] सैनिकों की मिली-जुली सेना ने दर्रे दानियाल पर केप हेलस (Cape Helles) के मार्ग से आक्रमण प्रारम्भ किया। सेना तो उतार दी गई किन्तु उसमें इतने कम सैनिक थे कि वे अची बाबा (Achi Baba) को न जीत सके। तुर्की ने अपनी रक्षा की तैयारियाँ अच्छी तरह की थीं और कुछ महीनों

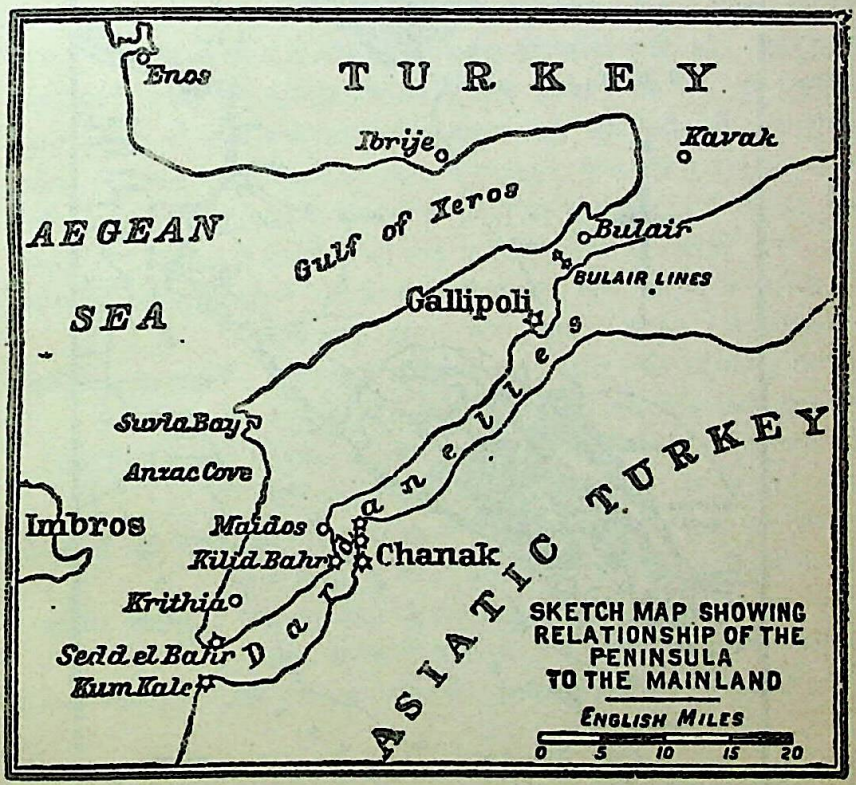

Asiatic Turkey

पूर्व जर्मन अफसरों ने उन तैयारियों में योगदान किया था। इस प्रकार तुर्की की स्थिति लाभ की थी और तुर्क लोग दूर से ही आक्रमणकारी को मार भगा सकते थे।

१. ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की सेना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रराष्ट्रों ने और अधिक सैनिक आक्रमण के लिए भेजे और उन्हें सवला की खाड़ी (Suvla Bay) में उतार दिया गया। किन्तु ये सैनिक देर से पहुंचे अतः मित्र-राष्ट्रों की पुनः हार हुई। उन्होंने समुद्र के किनारे पर तो विजय प्राप्त कर ली किन्तु वे समुद्र की सतह से ऊँचे भू-भाग को विजय न कर सके। कई बार ऐसा लगा मानो मित्रराष्ट्रों की विजय निश्चित है और उन्होंने मि० मेसफ़ील्ड (Mr. Masefield)

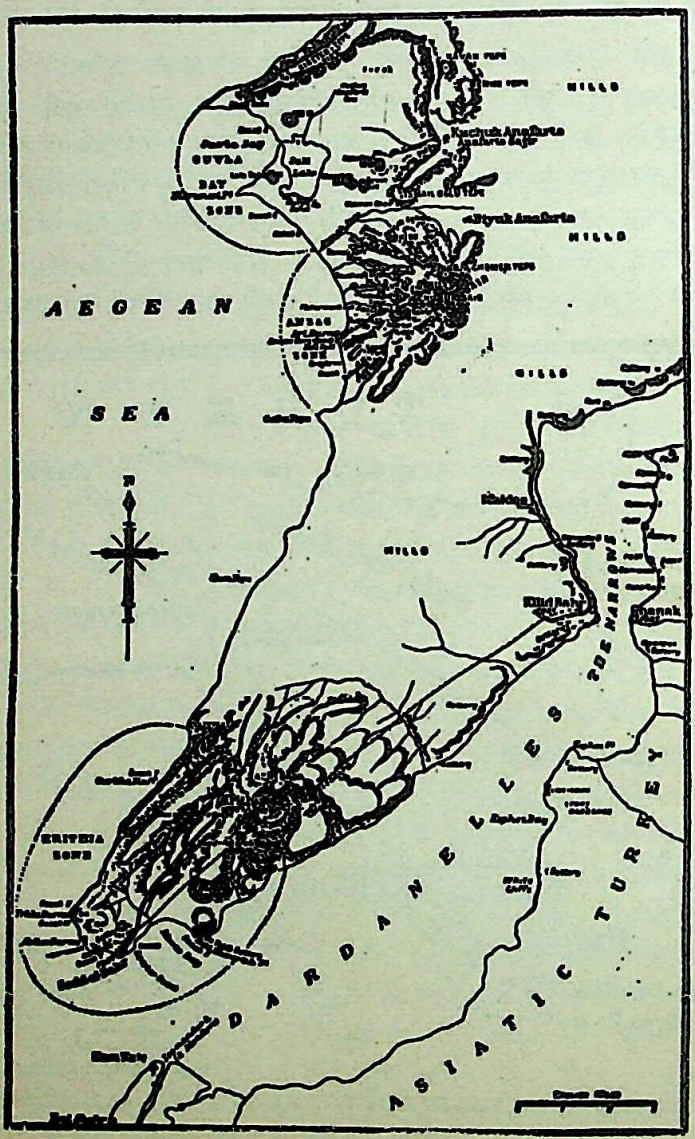

Gallipoli and the Dardanelles

के शब्दों में मारी वीरता प्रदर्शित की। किन्तु तुर्क लोगों की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी और उनके पास पर्याप्त जन-शक्ति भी थी। इसके अतिरिक्त गर्मी, बीमारी औ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यास के कारण भी लगभग उतने ही मित्र राष्ट्रों के सैनिक मरे जितने कि शत्रु की गोलियों से मरे। दिसम्बर के प्रारम्भ में सैनिकों को वापस बुला लिया गया यद्यपि एक भी सैनिक मारा नहीं गया था और अभियान को त्याग दिया गया। वास्तव में यह अभियान असफल रहा। इस असफल अभियान में पश्चिमी राष्ट्रों को कई युद्ध-पोतों से हाथ धोना पड़ा और अनेक जानें भी गईं। अभियान की असफलता के कारण मैसोपोटामिया में मित्रराष्ट्रों की स्थिति को आघात पहुँचा और बल्कान प्रदेश में भी मित्रराष्ट्रों की वेइज्जती हुई। मित्रराष्ट्रीय पक्ष के सैनिकों को निराशा हुई किंतु यदि यह अभियान सफल हो गया होता तो संभवतः युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाता।

मित्र राष्ट्रों के ऊपर एक साथ कई आघात लगे। पश्चिमी मोर्चे पर उनका आक्रमण विफल हो चुका था, रूस की शक्ति प्रायः क्षीण हो चुकी थी और गैलीपोली का अभियान भी असफल ही रहा था। अगर दर्रे दानियाल (Dardanelles) का आक्रमण सफल हो गया होता तो सम्भवतः बल्गेरिया (Bulgaria) जर्मनी और ऑस्ट्रिया से न मिला होता; अथवा यों कहिए कि यदि बल्गेरिया ने मित्रराष्ट्रों को दर्रे दानियाल के अभियान में सहायता दी होती तो मित्रराष्ट्र अवश्य सफल हो गए होते। उक्त संभावनाओं में से कोई भी सम्भावना पूरी न हो सकी और अक्तूबर में बल्गेरिया ने जर्मनी और ऑस्ट्रिया के पक्ष में प्रवेश किया। दो वर्ष पूर्व बुखारेस्ट (Bukarest) की सन्धि बल्गेरिया के लिए घातक सिद्ध हो चुकी थी। बल्गेरिया सर्बिया (Serbia) से उसी सन्धि का बदला लेना चाहता था। सर्बिया यदि चाहता तो मैसीडोनिया (Macedonia) के भू-भागों को बल्गेरिया को देकर, जिन्हें बल्कान लीग (Balkan League) में बल्गेरिया का भाग मान लिया गया था, अपनी जान छुड़ा सकता था। किन्तु सर्बिया ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया और अपने विनाश का मार्ग स्वयं प्रशस्त कर लिया। मैकेनसेन (Mackensen) के नेतृत्व में ऑस्ट्रिया और जर्मनी की सम्मिलित सेना ने उत्तर से और बल्गेरिया ने पूर्व से सर्बिया के ऊपर आक्रमण किया। बड़े दिन से पहले ही दोनों विजयी सेनाएँ मिल गईं और उन्होंने सारे सर्बिया को पदाक्रान्त कर डाला, केवल सर्बिया का एक कोना बचा रहा। इस प्रकार सर्बिया का वही हाल हुआ जो पश्चिम में बेल्जियम का हो चुका था। इसके पश्चात् विजयी सेनाओं ने मौंटीनीग्रो (Montenegro) की विजय प्रारम्भ की। अनेक शरणार्थी जाड़े की बर्फ वाली कड़कड़ाती सर्दी में भागकर इधर-उधर शरण लेने लगे। पश्चिमी शक्तियों ने सैलोनिका (Salonika)[1] से

बल्गेरिया का युद्ध में प्रवेश (अक्तूबर १९१५)

सर्बिया पददलित

---

१. नाममात्र को यूनान तटस्थ था, किन्तु वहाँ भी दो दल थे। यूनान का राजा कॉन्सटेण्टाइन (Constantine) और उसकी रायल पार्टी जर्मनी के मित्र थे, किन्तु वेनीज़ेलोस (Venizelos) के नेतृत्व में विरोधी दल मित्रराष्ट्रों का समर्थक था। सेलोनिका (Salonika) से मित्रराष्ट्रों ने जो कार्यवाही की थी वह इस आधार पर उचित थी कि यूनान के राजा ने स्वयं तटस्थता भंग की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी की सर्विया-विजय में बाधा डालनी चाही, किन्तु वे सफल न हो सके। सम्पूर्ण सर्विया और १९१६ के प्रारम्भ में मौंटोनीग्रो (Montenegro) भी शत्रुओं के हाथों में जा चुके थे और इस प्रकार जर्मनी का तुर्की के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो चुका था।

ब्रिटेन का मेसोपोटामिया का अभियान भी १९१५ के अन्त में जोखिम में दिखाई दे रहा था। मेसोपोटामिया का अभियान बहुत ही छोटे पैमाने पर प्रारम्भ किया गया था। उसका उद्देश्य केवल यह था कि आँग्ल-फ़ारसी तैल क्षेत्रों की रक्षा की जाय तथा फ़ारस की खाड़ी पर मित्रराष्ट्रों को पैर रखने को स्थान मिल जाय तथा भारत के पश्चिम में रहने वाली जातियों के ऊपर ब्रिटेन की धाक जमी रहे। किसी सीमा तक मेसोपोटामिया के अभियान का उद्देश्य यह भी था कि यदि तुर्की स्वेज नहर पर आक्रमण करता है तो फ़ारस की खाड़ी पर ब्रिटेन अधिकार कर ले। किन्तु मेसोपोटामिया की ओर कूच करने वाली सेना छोटी-सी थी जिसमें अधिकतर भारतीय सैनिक थे। ब्रिटिश-भारत सरकार को उक्त अभियान सौंपा गया था। चाहा यही गया था कि बसरा (Basra) और उसके आस-पास की भूमि पर अधिकार कर लिया जाय किंतु अनायास ही अभियान अधिक गंभीर स्वरूप धारण कर गया और इसका प्रभाव सारे मेसोपोटामिया पर पड़ा।

मेसोपोटामिया

१९१४ के अन्त तक बसरा (Basra) ब्रिटिश सेनाओं के अधिकार में आ चुका था, किन्तु ब्रिटिश सेनाएँ अभी विजय की मस्ती से बढ़ते-बढ़ते टाइग्रीस (Tigris) और यूफ्रेटीज (Euphrates) तक और फिर अमारा (Amara) और अन नासिरिया (An Nasiriya) तक जा पहुँचीं। उधर तुर्की ने और अधिक सहायक सेनाएँ भेजीं तो ब्रिटिश-भारत सरकार ने भी अपनी सेनाओं को बढ़ा दिया और यह निश्चित किया कि कुत (Kut) तक बढ़ा चला जाए। अब यह सारी योजना अधिक गंभीर स्वरूप धारण करती जा रही जी और चूंकि गैलीगोपी (Gallipoli) के प्रायद्वीप में ब्रिटेन के सम्मान को गहरी चोट लग चुकी थी अतः यह आवश्यक जान पड़ने लगा कि उक्त पराजय के बदले में कुत (Kut) से लेकर बग़दाद (Bagdad) तक ब्रिटेन अपनी धाक जमा ले। इसलिए जनरल टाउनशैंड नदी के किनारे-किनारे बढ़ता चला गया और सितम्बर में उसने कुत-एल-इमारा (Kut-al-Imara) पर अधिकार कर लिया। प्रारंभिक योजना के अनुसार जनरल टाउनशैंड को समुद्र से ७० मील से अधिक दूर नहीं जाना चाहिए था, किन्तु वह समुद्र से ३६० मील दूर शत्रु-प्रदेश में अत्यन्त भयंकर स्थिति में जा पहुँचा था जहाँ न तो उसके पास अतिरिक्त सेना थी, न यातायात के समुचित साधन थे और जहाँ न उसके पास समुचित दवाइयों और डाक्टरी सुविधाओं की सहायता थी। फिर भी वह अक्तूबर में बग़दाद जा पहुँचा किन्तु तुर्कों ने उसे हरा दिया और उसको कुत (Kut) को पुनः लौटना पड़ा। कुत में जनरल टाउनशैंड और उसके सैनिकों को तुर्की की उस सेना ने कैद कर लिया जिसका कमाण्डर एक जर्मन अफ़सर था। शीघ्र ही जनरल टाउनशैंड की सहायता के लिए और अधिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनाएँ भेजी गईं परन्तु उनको जल्दी में बिना पूरी तैयारी के ही भेज दिया गया था; अतः जब वे अनेक कठिनाइयाँ पार करके कुत पहुँचे तो उनको पीछे धकेल दिया गया। अप्रैल १९१६ में जनरल टाउनशेंड ने तुर्की के आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

जर्मन पनडुब्बियों द्वारा ब्रिटिश जहाजी बेड़े को अपार हानि

समुद्रों में ब्रिटेन ने जर्मनी के चारों ओर घेरा डाल रखा था। इस स्थिति से परेशान होकर फरवरी, १९१५ में जर्मनी ने भी घोषणा की कि वह पनडुब्बियों द्वारा ब्रिटिश द्वीपसमूह को चारों ओर से घेरे में ले लेना चाहता है। जर्मनी ने यह भी घोषणा की कि मित्रराष्ट्रों के जो भी जहाज युद्ध की परिधि (War Zone) में आ जायेंगे, उन्हें बिना पूर्व सूचना दिए टारपीडो से उड़ा दिया जाएगा और तटस्थ देशों के जहाजों को भी चेतावनी दे दी गई कि यदि वे युद्ध-परिधि में प्रवेश करेंगे तो सम्भाव्य खतरे के लिए वे ही स्वयं जिम्मेवार होंगे। शीघ्र ही ब्रिटिश व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा क्योंकि जर्मन पनडुब्बियों ने अनेक ब्रिटिश जहाजों को नष्ट कर डाला। पनडुब्बियों के इस युद्ध के प्रारम्भिक ६ महीनों में ही लगभग २०० ब्रिटिश व्यापारी जहाज नष्ट हो गए। तटस्थ देशों के भी अनेक जहाज नष्ट हुए। ७ मई को ल्यूसीटेनिया (Lusitania) नाम का ब्रिटिश यात्री जहाज आयरलैंड (Ireland) के निकट डुबा दिया गया जिसमें १ हजार से अधिक सामान्य नागरिक थे और उनमें अधिकतर अमेरिकी नागरिक थे। ब्रिटेन को इससे इस कारण प्रसन्नता हुई कि अब जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्बन्धों में बिगाड़ प्रारम्भ हो गया।

उपनिवेशों में सफलता : इटली का युद्ध में प्रवेश (मई १९१५)

यद्यपि चारों ओर से मित्रराष्ट्रों को निराशा का मुँह देखने को मिल रहा था फिर भी अफ्रीका और प्रशान्त महासागर के उपनिवेशों में मित्रराष्ट्रों को सफलताएँ प्राप्त हुई और मई में जब इटली ने पश्चिमी मित्रराष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में पदार्पण किया, तो यह भी मित्रराष्ट्रों की सफलता ही थी। इटली ने युद्ध की घोषणा करते ही ऑस्ट्रिया के विरुद्ध अपनी सेनाएँ भेज दीं और ट्रीस्ट (Trieste) तथा ट्रेण्टीनो (Trentino) पर आक्रमण कर दिया।

यद्यपि सैनिक दृष्टि से १९१५ का वर्ष धुरी राष्ट्रों के पक्ष में था, फिर भी यह स्पष्ट था कि केवल सैनिक विजयों से ही युद्ध का अन्त न होगा। १९१५ के बाद यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि इस युद्ध में दोनों पक्षों के असीम धैर्य की परीक्षा होगी और सारी राष्ट्रीय शक्ति दोनों ओर से युद्ध में लगा देने पर भी युद्ध तब तक समाप्त न होगा जब तक कि अपार आर्थिक अवसाद अथवा पूर्ण मनोवैज्ञानिक अवसाद के कारण कोई पक्ष इतना ही भूमिगत न हो जाएगा जितना कि सैनिक पराजय से हो सकता है। यदि किसी पक्ष का उपर्युक्त संभावना तक पतन संभव था तो युद्ध का अन्त अवश्यम्भावी था यद्यपि वह कुछ समय के लिए अवश्य टल सकता था। केन्द्रीय धुरी शक्तियों के साधन-स्रोत अत्यन्त संकुचित थे अतः जब तक उन्हें संयुक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य अमेरिका जैसा कोई सशक्त मित्र न मिलता, वे मित्रराष्ट्रों के मुकाबले में साधनों की दृष्टि से कमजोर ही रहते। किन्तु केन्द्रीय धुरी शक्तियों को कोई सशक्त मित्र भी नहीं मिल सका और अमेरिका से तो उन्होंने अपने सम्बन्ध बहुत ही बिगाड़ लिए। अक्तूबर १९१५ में बल्गेरिया अवश्य धुरी राष्ट्रों से मिल गया था किन्तु उसके बाद किसी अन्य राष्ट्र ने धुरी राष्ट्रों से मेल नहीं किया। पश्चिमी शक्तियों की शक्ति निरन्तर बढ़ती रही; यहाँ तक कि जैसा स्वयं कैसर ने लिखा है, मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में २८ राष्ट्र थे जो जर्मनी और उसके मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध लड़ रहे थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इंग्लैण्ड के २८ मित्रराष्ट्रों में से कुछ ने नाम मात्र को ही मित्र देशों की सहायता की होगी और १९१७ में रूस का विलग हो जाना तथा १९१८ में रूमानिया द्वारा साथ छोड़ देने से मित्र देशों का लाभ कम हो गया फिर भी जहाँ धुरी शक्तियों का संगठन श्रेष्ठ था और जहाँ उनका परिश्रम और शौर्य प्रशंसनीय था, यह भी मानना ही पड़ेगा कि मित्रराष्ट्रों के सशक्त मित्रों के संगठन के आगे धुरी राष्ट्रों की विजय अत्यन्त संदिग्ध थी।

(ग)

किन्तु १९१६ के प्रारम्भ में युद्ध का अन्त बहुत दूर था। मित्र राष्ट्रों की विजय की आशा बहुत धूमिल थी। उनके नये मित्रों ने अभी तक बिल्कुल सहायता नहीं दी थी और सैनिक स्थिति भी अत्यन्त पेचीदा थी।

१९१६

इसके अतिरिक्त मित्रराष्ट्रों अथवा पश्चिमी शक्तियों की इतनी जनहानि हुई थी और उनके इतने जहाज नष्ट हो चुके थे कि वे बहुत ही हताश थे। वे तो केवल इतना जानते थे और यही उनके शत्रु भी समझते थे कि विजय प्राप्त करने के लिए अभी उन्हें भारी परिश्रम करना होगा और उन्हें और अधिक जन शक्ति[1] एकत्रित करनी होगी और पर्याप्त मात्रा में युद्ध-सामग्री जुटानी होगी। किन्तु दोनों में से कोई भी यह नहीं कह सकता था कि अभी युद्ध के लिए किस सीमा तक बलिदान करना होगा।

जर्मनी का वर्दून पर आक्रमण (फरवरी-जून १९१६)

इधर मित्रराष्ट्र,[2] विशेषकर ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और रूस सोच रहे थे कि सब मिलकर धुरी राष्ट्रों के ऊपर धावा बोल दें और जर्मनी को चारों ओर से घेरे में ले लें किन्तु जर्मनी ने फरवरी के अन्त में फ्रांस के फाटक वर्दून (Verdun) पर एक बड़ा आक्रमण कर दिया। जर्मनी ने वर्दून के विरुद्ध तोपें लगा रखी थीं। इसके पश्चात् वर्दून के आस-पास के किलों पर भयंकर गोलाबारी की गई। कहा जाता है कि जर्मनी ने वर्दून के आक्रमण के प्रथम १२ घण्टों में दस लाख गोले दागे। इस आक्रमण के प्रथम पाँच दिनों में जर्मनों ने

---

१. इंग्लैण्ड ने जून १९१६ में सभी वयस्क और स्वस्थ पुरुषों के लिए आवश्यक सैनिक सेवा का नियम बना दिया था।

२. धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध जितने राष्ट्र युद्ध कर रहे थे उनको मित्रराष्ट्र ('Allied' and 'Allied Powers') कहा जाता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्दून (Verdun) की निकटवर्ती ८० वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया था और वे लगभग वर्दून नगर से चार मील दूर रह गए थे। फ्रांसीसी लोग गम्भीरता के साथ सोचने लगे थे कि वर्दून नगर को खाली कर दिया जाय किन्तु जोफ्र (Joffre), कैसिलनो (Castelnau) और पैतां (Petain) दृढ़-प्रतिज्ञ थे कि वर्दून की किसी भी कीमत पर रक्षा की जाय। पैतां ने ऐलान कर दिया कि जर्मनों को वर्दून में नहीं आने दिया जायेगा। वर्दून (Verdun) का युद्ध लगभग सात महीने तक चला। इस युद्ध में दोनों पक्षों की अपार हानि हुई। यह अत्यन्त भयंकर भौतिक और नैतिक लड़ाई थी। यद्यपि जर्मनों की प्रगति धीमी थी फिर भी वे लगातार बढ़ रहे थे और २३ जून को तो जर्मन लोग वर्दून से केवल एक मील दूर रह गए थे और वे वर्दून (Verdun) के अन्तिम दुर्ग पर प्रहार करने वाले थे। एक बार पुनः फ्रांसीसियों के सामने यह समस्या आ गई कि वर्दून को खाली कर दिया जाए और उन्होंने इस संबंध में सारी तैयारी कर ली। किन्तु जर्मनों को सफलता देर से मिली। समय निकल चुका था। जुलाई के प्रारम्भ में मित्रराष्ट्रों ने सौम (Somme) पर प्रत्याक्रमण किया। इसके पश्चात् अक्तूबर और नवम्बर में फ्रांसीसियों ने पुनः प्रत्याक्रमण किया और कई विजित किले जर्मनों से वापस लिए गये।

सौम पर मित्रराष्ट्रों का प्रत्याक्रमण

मित्रराष्ट्र सौम (Somme) के ऊपर आक्रमण की योजना काफी समय से बना रहे थे और वह आक्रमण विशाल पैमाने पर किया जाने को था। मित्रराष्ट्रों ने एक बड़ी सेना और पर्याप्त युद्ध-सामग्री के साथ यह आक्रमण प्रारम्भ किया। प्रथम बार यह अनुभव किया गया कि मित्रराष्ट्रों के पास अधिक सेना है या श्रेष्ठ राइफिलें हैं अथवा अधिक बमवर्षक वायुयान हैं। टैंकों के सम्बन्ध में तो मित्रराष्ट्रों ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया क्योंकि वे बिलकुल नये प्रकार के थे और सितम्बर में प्रथम बार प्रयुक्त किए गये थे। मित्रराष्ट्रों का यह आक्रमण आरास (Arras) से लेकर मौंटडीडियर (Montdidier) तक एक लम्बे मोर्चे पर किया गया था। उस समय से सौम युद्ध (Somme Fighting) से भयंकर युद्ध का अर्थ ग्रहण किया जाता है। ल्यूडेनडॉर्फ (Ludendorff) ने लिखा है कि सौम (Somme) का युद्ध अत्यन्त भयंकर युद्ध था जो पूरे नवम्बर मास चला और जिसमें दोनों पक्षों को अपार हानि हुई। नवम्बर के अन्त तक मित्रराष्ट्र छः मील बढ़ गए थे और उन्होंने शत्रु से लगभग १०० वर्गमील भूमि वापस छीन ली थी। इस प्रकार वर्दून (Verdun) में जर्मनों ने जितनी भूमि विजित की थी उससे अधिक भूमि मित्रराष्ट्रों ने सौम (Somme) के प्रत्याक्रमण में हस्तगत कर ली थी। यद्यपि मित्रराष्ट्रों ने सौम के आक्रमण में असंख्य सैनिक खोए और अपार गोला-बारूद का अपव्यय किया फिर भी वे केवल छः मील बढ़ सके और १०० वर्गमील भूमि हस्तगत कर सके तथा वर्दून (Verdun) की रक्षा कर सके। इससे अधिक वे कुछ न कर सके। फिर भी अनेक इतिहासकारों की दृष्टि में सौम (Somme) के युद्ध को वर्दून के जर्मन आक्रमण की विफलता के प्रसंग में यह समझा जाता है कि यहीं से युद्ध का पांसा पलटा। पूर्वी और पश्चिमी मोर्चों पर जर्मनी की अपार हानि हो चुकी थी और कोई भी देश इतनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हानि लगातार सदैव सहन करने में असमर्थ होता। जर्मनी के साधन प्रायः ज़वाब दे गये और ब्रिटिश जहाजी बेड़े द्वारा आर्थिक नाकेबन्दी के कारण जर्मनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब हो गई और सभी लोग अत्यन्त कष्टकारी स्थिति का अनुभव करने लगे। गर्मियों में कैसर (Kaiser) ने जनरल हिण्डेनबर्ग (Hindenburg) और जनरल ल्यूडेनडार्फ (Ludendorff) को पूर्वी रणक्षेत्र से वापस बुलाकर उन्हें सर्वोच्च कमान में ले लिया किन्तु जैसा कि स्वयं ल्यूडेनडार्फ (Ludendorff) ने लिखा है, "समस्त जर्मन सैनिक थके और निराश थे।" वह आगे लिखता है—"न केवल हमारे सैनिकों का नैतिक स्तर गिर चुका था अपितु हमारे असंख्य सैनिक या तो घायल हो चुके थे या मारे जा चुके थे। यदि हम युद्ध को शीघ्र समाप्त न कर सकते तो अवश्य ही युद्ध हमको समाप्त कर देता।" उसने पुनः आगे लिखा था—"ज्यों-ज्यों युद्ध लम्बा बढ़ रहा था त्यों-त्यों हम यह भी महसूस कर रहे थे कि मित्रराष्ट्रों के पास हम से अधिक सैनिक हैं और उनके साधन-स्रोत असीम हैं।" उपर्युक्त शब्दों से भी और जर्मनी द्वारा यह समझे जाने पर भी कि उसका विनाश निकट है, हम पश्चिमी मोर्चे की १९१६ की लड़ाई का फल सहज ही निकाल सकते हैं। फिर भी जर्मनी अभी दो वर्ष तक और लड़ता रहा।

इटली

जिस समय जर्मन लोग वर्दून (Verdun) पर आक्रमण कर रहे थे, उसी समय ऑस्ट्रिया ने आर्चड्यूक चार्ल्स (Archduke Charles) के नेतृत्व में इटली के ऊपर आक्रमण किया, यद्यपि इस आक्रमण के कारण धुरी राष्ट्रों की स्थिति पूर्वी मोर्चे पर कमजोर पड़ गई। ऑस्ट्रिया वालों ने सोचा था कि आल्प्स (Alps) पर्वत के मार्ग से वेनीशिया (Venetia) में प्रवेश करके वे इटली की मुख्य सेना को मैदान में ललकार सकेंगे। यह आक्रमण १४ मई को प्रारम्भ किया गया था और ऐसा प्रतीत होने लगा कि जर्मनी के वर्दून (Verdun) आक्रमण के समान यह भी सफल होगा। तीन सप्ताहों के अन्दर ही ऑस्ट्रिया की सेनाएँ विकेंजा (Vicenza) से केवल १८ मील दूर रह गई थीं। किन्तु वहीं पर उनकी प्रगति रोक दी गई। कुछ तो इटली ने भी ऑस्ट्रिया की प्रगति को रोका था और कुछ इटली की याचना पर रूस ने भी पूर्वी मोर्चे पर धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था; इस कारण ऑस्ट्रिया को पीछे हटना पड़ा।

रूस

यद्यपि १९१५ में ही रूस की स्थिति खराब हो चुकी थी किन्तु बाद में रूस ने अपनी सैनिक स्थिति में सुधार कर लिया था। मित्रराष्ट्रों ने रूस के पास पर्याप्त मात्रा में राइफिलें और अन्य युद्ध-सामग्री भेज दी थीं। अमेरिका से भी पर्याप्त संख्या में राइफिलें मित्रराष्ट्रों को प्राप्त हो गई थीं और इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने स्वदेशों में भी पर्याप्त युद्ध-सामग्री तैयार कर ली थी। अतः १९१६ में रूस की सैनिक स्थिति सुदृढ़तर हो गई थी और उसके मित्रराष्ट्रों को ऐसा विश्वास होने लगा था कि रूस की विशाल जनशक्ति से उनकी जीत विनिश्चित हो जाएगी। ४ जून को ब्रसिलाव (Brusilov) की कमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रूसी सेनाओं ने शत्रु की ओर बढ़ना आरम्भ किया। रूसी सेनाएँ गेलेशिया (Galicia) में प्रविष्ट हो गईं और उन्होंने बुकोविना (Bukovina) को पुनः प्राप्त कर लिया तथा वे लेम्बर्ग (Lemberg) के पास पुनः पहुंचने लगीं। रूसी सेनाओं ने हजारों ऑस्ट्रियन सैनिक बन्दी बना लिए और ऑस्ट्रिया की सेनाओं के पैर उखड़ने लगे। रूस की शक्ति के प्रदर्शन से न केवल मित्र-राष्ट्रों को बल्कि उनके शत्रुओं को भी भारी आश्चर्य हुआ। शीघ्र ही हिण्डेनबर्ग (Hindenburg) ने जर्मनी और ऑस्ट्रिया की सेनाओं की कमान संभाल ली और भागती हुई ऑस्ट्रिया की सेनाओं को सहायता पहुँचाई, जिससे अगस्त के अन्त तक रूसियों की प्रगति में बाधा डाल दी गई। रूसी ज़ारशाही की यह अन्तिम विजय थी और निस्सन्देह रूस ने मित्र-राष्ट्रों के लिए सब कुछ किया। किन्तु स्वयं रूस के हृदय में क्रान्ति की दावानल धधक रही थी।

मित्र-राष्ट्रों को गर्मियों में जो सफलताएँ प्राप्त हुई थीं, उनसे प्रभावित होकर ही रूमानिया (Rumania) ने भी मित्र-राष्ट्रों का पक्ष ग्रहण किया और अगस्त में वह युद्ध में कूद पड़ा। किन्तु रूमानिया का युद्ध में प्रवेश उसके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। रूमानिया ने जल्द-बाजी से काम लेकर ट्रांसिलवानिया (Transylvania) पर आक्रमण कर दिया किन्तु यह खयाल नहीं किया कि उसके दक्षिण में बल्गेरिया है। रूमानिया को केवल ३५ लाख अपने भाइयों की विदेशी मैगयार शासन से रक्षा करना अभीष्ट था। रूमानिया ने केवल कारपेथियन पर्वतों की ओर कूच किया किन्तु इससे आगे रूमानिया कुछ न कर सका। फ़ाकेनहेन (Falkenhayn) ने हंगरी की ओर से आक्रमण करके रूमानिया की सेनाओं को ट्रांसिलवानिया से बाहर निकाल दिया। दूसरी ओर मैकेनसेन (Mackensen) ने डैन्यूब (Danube) नदी पार करके बल्गेरिया (Bulgaria) की ओर से रूमानिया के ऊपर आक्रमण किया। ६ दिसम्बर तक बुखारेस्ट (Bukarest) पर धुरी राष्ट्रों का अधिकार हो गया और वर्ष के अन्त तक रूमानिया भी उसी प्रकार शत्रु के अधिकार में चला गया जिस प्रकार कि सर्बिया अपनी अधीनता खो चुका था। किन्तु इस डर से कि कहीं रूमानिया के तेल के स्रोत जर्मनी के हाथों में न पड़ जायें, मित्र-राष्ट्रों ने उन्हे पहले ही नष्ट कर दिया।

रूमानिया

मार्च में पुर्तगाल और जर्मनी के बीच युद्ध की घोषणा हुई जिसके कारण मित्रराष्ट्रों में पुर्तगाल भी सम्मिलित हो गया। पुर्तगाल की सहानुभूति पहले से ही मित्र-राष्ट्रों की ओर थी और उसने पहले भी मित्र-राष्ट्रों को अफ्रीका में सैनिक सहायता दी थी। १९१७ की जुलाई से तो ४०,००० पुर्तगालियों की एक सेना मित्र-राष्ट्रों की ओर से पश्चिमी रण-क्षेत्र में लड़ने लगी थी।

पुर्तगाल

यूनान में भी दो पक्ष थे। एक पक्ष यूनान की तटस्थता को त्यागने की धमकी दे रहा था तथा दूसरा पक्ष आन्तरिक क्रान्ति के लिए तैयारी कर रहा था। नवम्बर में वेनीजेलस (Venizelos) सेलोनिका (Salonika) को भाग गया और वहाँ से उसने घोषणा की कि वह तथा उसका दल मित्रराष्ट्रों अर्थात् ब्रिटेन तथा फ्रांस के पक्ष में हैं।

यूनान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि कुत (Kut) में ब्रिटेन ने आत्मसमर्पण किया था फिर भी धीरे-धीरे टाइग्रीस (Tigris) नदी की घाटी में ब्रिटेन की स्थिति सुदृढ़ होती जा रही थी क्योंकि अधिकाधिक सैनिक और युद्ध-सामग्री उस क्षेत्र को भेजी जा रही थी तथा अब ब्रिटिश सेनाएँ तुर्कों के ऊपर नया आक्रमण करने की स्थिति में थीं।

इसी बीच ब्रिटिश जहाजी बेड़े का समुद्रों पर प्रायः पूर्ण अधिकार बना रहा। इसलिए ब्रिटिश बेड़ा रूस और इटली को युद्ध-सामग्री पहुँचाता रहा; फ्रांस में अधिकाधिक सैनिक उतारता रहा; और बावजूद भारी हानियों के वह ब्रिटिश व्यापार और यातायात को चालू रखता रहा तथा वह जर्मनी के समुद्री किनारों को चारों ओर से घेरे रहा। सारे वर्ष ब्रिटेन ने जर्मनी के चारों ओर आर्थिक घेरा डाले रखा तथा जर्मनी ने उसका जवाब पनडुब्बियों के युद्ध से और नौ-सैनिक आक्रमण से दिया। इस प्रकार जर्मनी और ब्रिटेन ने अधिकाधिक प्रयत्न किया। कभी कोई आक्रमण करता तथा कभी कोई और। इसी प्रकार दोनों पक्ष अपने-अपने बचाव में संलग्न रहे। जर्मनी के नौसैनिक अधिकारी चाहते थे कि कैसर आज्ञा दे दे कि जर्मन पनडुब्बियाँ किसी भी जहाज को देखते ही टारपीडो से उड़ा दें किन्तु अभी तक कैसर ने ऐसी आज्ञा नहीं दी थी। परन्तु १९१६ में जटलैंड का युद्ध (Battle of Jutland) हुआ। वास्तव में पूरे युद्ध में यही जल-सेनाओं का एक उच्च कोटि का युद्ध हुआ था। ३१ मई को जर्मनी का एक जहाजी बेड़ा विल्हेमशेविन (Wilhelmshaven) से निकल भागा जो चाहता था कि ब्रिटिश समुद्री बेड़े को छिन्न-भिन्न कर दे तथा नष्ट कर दे। ब्रिटिश जल सेना के एडमिरल बैटी (Admiral Beatty) और एडमिरल हुड (Admiral Hood) ने चाहा कि मुक्त समुद्र में उक्त जर्मन बेड़े से युद्ध करके उसे नष्ट कर दें किन्तु जर्मन एडमिरल वॉन शीयर (Von Scheer) ब्रिटिश बेड़े से सीधी टक्कर नहीं लेना चाहता था क्योंकि ब्रिटिश बेड़ा सुदृढ़तर था और उसकी तोपें भी अधिक विनाशकारी थीं। दोनों जल-सेनाओं में युद्ध हुआ जो इतिहास में युद्ध-पोतों के आकार और संख्या की दृष्टि से सबसे भयंकर समुद्री युद्ध था। दोनों पक्षों की भारी हानि हुई और दोनों ही पक्ष अपने आपको विजयी समझते रहे। वास्तव में जर्मनों की अपेक्षा ब्रिटेन की हानि अधिक हुई क्योंकि जर्मन युद्ध-पोत युद्ध से बचकर निकल भागे और कील बन्दरगाह (Kiel Harbour) में सुरक्षित आ पहुँचे। किन्तु चूंकि ब्रिटिश बेड़ा अब भी समुद्रों का स्वामी बना रहा और जर्मनी ने जटलैंड (Jutland) के समान पुनः समुद्री युद्ध का दुस्साहस नही किया अतः यही माना जाएगा कि ग्रेट ब्रिटेन की ही विजय हुई।

समुद्री लड़ाइयाँ

जटलैंड का युद्ध

१९१६ के पश्चात् प्रथम बार शान्ति-सन्धि की चर्चा चली। जर्मन चांसलर ने जर्मन संसद् (Reichstag) में स्पष्ट चर्चा की कि शान्ति की बातचीत प्रारम्भ की जाए। किन्तु मित्र-राष्ट्रों ने शान्ति-सन्धि के जर्मन प्रस्ताव को ठुकरा दिया। वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) संयुक्त राज्य अमेरिका का पुनः राष्ट्रपति चुना गया था। उसने युद्धग्रस्त दोनों पक्षों से कहा कि वे अपने-अपने युद्ध के उद्देश्यों पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश डालें और उसने यह कहा कि "वास्तव में दोनों पक्षों के उद्देश्य समान ही हैं।" मित्र-राष्ट्रों ने यह भी पसन्द नहीं किया कि अमेरिका दोनों पक्षों के झगड़े में पंच बने। उधर यद्यपि जर्मनी ने राष्ट्रपति विल्सन के बयान का स्वागत किया, फिर भी अपनी ओर से युद्ध के उद्देश्यों पर कोई प्रकाश नहीं डाला। इसके पश्चात् दोनों पक्षों ने शान्ति-सन्धि की अपनी-अपनी शर्तें तैयार कीं किन्तु दोनों पक्षों की शर्तों में आकाश-पाताल का अन्तर था। शान्ति-शन्धि की वार्ता के लिए कोई उपयुक्त आधार न होने के कारण युद्ध चलता ही रहा।

(घ)

१९१७

फ़िर भी शान्ति-सन्धि की वार्ता का मुहूर्त्त शुभ लक्षण माना गया और १९१५ के समान ही १९१७ भी समय-पूर्व आशाओं का वर्ष रहा। १९१७ में युद्ध का अन्त तो नहीं हुआ किन्तु युद्ध-जन्य अपार कष्टों का सूत्रपात इस वर्ष में अवश्य हुआ।

धुरी शक्तियों की स्थिति भी शोचनीय थी। ऑस्ट्रिया-हंगरी बहुत कमजोर हो चुका था। ऑस्ट्रिया-हंगरी का वृद्ध सम्राट १९१६ में मर चुका था और अधीन राज्यों की प्रजा अधिक अधिकारों की माँग कर रही थी। जर्मनी ने १९१६ में ही १५ वर्ष की आयु से लेकर ६५ वर्ष की आयु तक के सभी पुरुषों को युद्ध-सेवा के लिए आवश्यकत: माँग लिया था क्योंकि उसे युद्ध जीतने के लिए एक अन्तिम प्रयत्न करना अभीष्ट था। १९१७ में जर्मनी को अपना अन्तिम अस्त्र भी प्रयोग करना पड़ा। ९ जनवरी को जर्मनी ने निश्चय किया कि पनडुब्बियों द्वारा सभी जहाजों को नष्ट कर दिया जाय। जर्मनी की जल-सेना के नायकों ने कैसर को विश्वास दिलाया कि वे छः महीने के अन्दर ही युद्ध का अन्त कर देंगे। ल्यूडेनडार्फ़ (Ludendorff) का विचार था कि एक वर्ष में तो अवश्य ही युद्ध जीता जा सकता है। इस सम्बन्ध में सभी सैनिक अफसर एकमत थे कि अनियन्त्रित पनडुब्बियों के युद्ध द्वारा युद्ध शीघ्र समाप्त किया जा सकेगा—कम-से-कम इससे पूर्व ही युद्ध समाप्त किया जा सकेगा कि अमेरिका अपने महान् साधनों के साथ मित्र-राष्ट्रों की ओर सम्मिलित हो। फरवरी से ही जर्मनी की यू० बोटों (U. Boats) ने सभी जहाजों को डुबाना प्रारम्भ कर दिया और इस विनाश के फलस्वरूप मित्र-राष्ट्रों के जहाज एक पखवाड़े में १०० जहाजों से भी अधिक जहाजों के हिसाब से नष्ट होने लगे। तटस्थ देशों के अधिकारों की भी पूर्ण अवहेलना की जाने लगी। ग्रेट ब्रिटेन को इस समय कठिन अग्नि-परीक्षा में से गुजरना पड़ रहा था।

पनडुब्बियों द्वारा मुक्त युद्ध

किन्तु यू० बोटों (U. Boats) द्वारा अनियन्त्रित युद्ध का फल यह हुआ कि जर्मनी के विरुद्ध अन्तिम सशक्त तटस्थ देश संयुक्त राज्य अमेरिका भी मैदान में आ गया। यद्यपि जर्मनी ने बारंबार संयुक्त राज्य अमेरिका को भड़काने का प्रयत्न किया था परन्तु राष्ट्रपति विल्सन ने प्रशंसनीय धैर्य से काम लिया। राष्ट्रपति विल्सन के धैर्य का एक कारण यह भी था कि अनेक जर्मन लोग संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक थे।

संयुक्त राज्य अमेरिका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त एक शताब्दी पुरानी यह परम्परा थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका यूरोपीय देशों के झगड़े में न पड़े। युद्ध-कालों में प्रायः युद्ध-ग्रस्त देशों और तटस्थ देशों में झड़पें हो ही जाया करती हैं किन्तु ग्रेट ब्रिटेन को प्रायः इस सम्बन्ध में दोषी ठहराया गया है कि वह समुद्रों पर मनमानी करता है। इसलिए युद्ध के प्रारम्भ में अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन में कुछ मन-मुटाव पैदा हो गया था। प्रेसीडेण्ट विल्सन ने ग्रेट ब्रिटेन से कहा था कि तटस्थ राष्ट्रों के अधिकारों को चुनौती न दी जाय और उसने ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के चारों ओर आर्थिक घेरा डाल देने का विरोध किया था। इसके विपरीत ग्रेट ब्रिटेन का कहना था कि तटस्थ राष्ट्रों के ज़हाज लुके-छिपे युद्ध सामग्री धुरी राष्ट्रों को पहुँचा रहे हैं। यह पुरानी लड़ाई थी। किन्तु जब जर्मनी ने पनडुब्बियों द्वारा सभी जहाजों के विरुद्ध—चाहे वे शत्रु के जहाज हों चाहे तटस्थ राष्ट्रों के हों—आम जिहाद छेड़ दी तब तो आँग्ल-अमेरिकी मतभेद फीके पड़ गए। जर्मनी ने १९१५ के आरम्भ में ही घोषणा कर दी थी कि चूँकि ब्रिटेन ने जर्मनी के समुद्री किनारों को चारों तरफ से घेर रखा है इसलिए उसके उत्तर में ब्रिटिश द्वीप-समूह के चारों ओर का क्षेत्र शत्रु-प्रदेश माना जायेगा जिसमें शत्रु के पोतों को नष्ट कर दिया जायेगा। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार यह आवश्यक था कि नष्ट किए जाने वाले जहाजों को पूर्व-चेतावनी दे दी जाय और यात्रियों तथा पोत-चालकों के जीवन की रक्षा की जाय। अमेरिका ने जर्मनी को विरोध-पत्र भेजा और बताया कि ब्रिटिश द्वीप-समूह के चारों ओर शत्रु-प्रदेश माना जाना अनुचित है और यदि कोई अमेरिका का जहाज नष्ट कर दिया गया अथवा यदि कोई अमेरिकी नागरिक मारा गया तो उसकी जिम्मेदारी जर्मनी पर होगी।

इस गम्भीर चेतावनी के बावजूद १९१५ में लगातार समुद्री दुर्घटनाएँ होती रहीं। एक अमेरिकी जहाज डुबा दिया गया; कई ब्रिटिश जहाज भी डुबाए गए जिनमें अनेक अमेरिकी नागरिकों की जानें गईं और मई में ल्यूसीटेनिया (Lusitania) नाम का प्रसिद्ध अमेरिकी जहाज टारपीडो द्वारा नष्ट कर दिया गया। राष्ट्रपति विल्सन ने ल्यूसीटेनिया नामक जहाज के डुबाए जाने पर जर्मनी को कड़ा विरोध-पत्र भेजा और माँग की कि जर्मनी उक्त क्षति की पूर्ति करे क्योंकि वह अन्तर्राष्ट्रीय विधि की अवहेलना थी और मनुष्यमात्र के अधिकारों का हनन था। इस पर जर्मनी ने उत्तर दिया कि उसने अमेरिकी समाचारपत्रों में विज्ञापन द्वारा चेतावनी दे दी थी और इसके अतिरिक्त विनष्ट जहाज में युद्ध-सामग्री शत्रु के पास पहुँचाई जा रही थी। इतने पर भी अमेरिका ने धैर्य नहीं खोया।

१९१६ में और भी कई अप्रिय घटनाएँ घटीं। मार्च में एक अंग्रेजी जहाज बिना पूर्व चेतावनी दिये ही नष्ट कर दिया गया और दुर्भाग्यवश उस जहाज में ७५ अमेरिकी नागरिक सवार थे। राष्ट्रपति विल्सन ने तुरन्त ही जर्मनी को विरोध-पत्र भेजा। जर्मनी ने कहा कि उक्त जहाज के विनाश के लिए जर्मनी उत्तरदायी नहीं है किन्तु अमेरिकी माँगों के आगे झुक कर जर्मनी ने यह स्वीकार कर लिया कि भविष्य में कोई भी व्यापारी जहाज उस समय तक नष्ट नहीं किया जायेगा जब तक कि वह भागने का प्रयत्न नहीं करेगा अथवा जब तक कि वह लड़ने का प्रयत्न नहीं करेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पश्चात् जनवरी १९१७ में जर्मनी ने घोषणा की कि सभी जहाज़ों के विरुद्ध पनडुब्बियाँ कार्यवाही करेंगी और कोई भी जहाज़ चाहे तटस्थ राष्ट्र का हो चाहे युद्ध-ग्रस्त राष्ट्र का हो, यदि वर्जित समुद्री भाग में जाएगा तो उसे देखते ही नष्ट कर दिया जाएगा। अब राष्ट्रपति विल्सन ने कुछ कदम उठाने का निश्चय किया। ३ फरवरी को उसने आज्ञा दे दी कि अमेरिका और जर्मनी के कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त कर दिए जाएँ। किन्तु अब भी विल्सन जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने में हिचक रहा था। किन्तु २ अप्रैल को उसने अमेरिकी काँग्रेस (Congress) को अपना प्रसिद्ध संदेश भेजा जिसमें उसने संयुक्त राज्य अमेरिका को सलाह दी कि वह युद्ध में प्रवेश करे और संसार में लोकतन्त्र के भविष्य की रक्षा करे। उक्त संदेश में विल्सन ने कहा था—"जिन सिद्धान्तों को हम हृदय से चाहते हैं उनकी रक्षार्थ हम अवश्य लड़ेंगे। हम लोकतन्त्र की रक्षा करेंगे; हम उन लोगों के अधिकारों की अवश्य रक्षा करेंगे जो किसी न्यायपूर्ण सत्ता का आदर करते हैं और इस प्रकार अनुशासन में रहकर अपने शासन में कुछ अधिकार चाहते हैं, हम सभी छोटे देशों और राष्ट्रों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की अवश्य रक्षा करेंगे; हम अवश्य चाहेंगे कि सारे संसार में स्वतन्त्र लोगों को पूर्ण न्यायपूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहे जिससे सभी देशों में शान्ति और सुरक्षा बनी रहे और इस प्रकार सारा संसार स्वतन्त्र रहे। आज अमेरिका के सौभाग्य से वह दिन आ गया है जबकि अमेरिका के नागरिक अपना खून और अपनी शक्ति उन सिद्धान्तों की रक्षार्थ व्यय करेंगे जिनके आधार पर अमेरिका का जन्म हुआ था, जिनके आधार पर अमेरिका को सुख और समृद्धि प्राप्त हुई थी तथा वह अमूल्य शान्ति प्राप्त हुई जिसे वह अत्यन्त महत्त्व की दृष्टि से देखता आया है।"

कुछ ही दिन पूर्व अमेरिका के लोगों को पता चला था कि जर्मनी और मैक्सिको (Mexico) में ऐसा गठबन्धन हुआ था जिसमें जर्मनी ने मैक्सिको से वायदा किया था कि वह टेक्सास (Texas), न्यू मैक्सिको (New Mexico) और एरीजोना (Arizona) दिलवाने में मैक्सिको (Mexico) का समर्थन करेगा। यह भी योजना बनी थी कि उक्त गठबन्धन में जापान को भी शरीक किया जायगा।

६ अप्रैल को संयुक्त राज्य अमेरिका ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और मई के अन्त तक अमेरिका के युद्धपोत पूर्वी अतलान्तक महासागर में जर्मन पनडुब्बियों का सफाया करने लगे। अमेरिका ने युद्ध के लिए विशाल तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। अगस्त में अमेरिका ने सभी वयस्क पुरुषों के लिए आवश्यक सैनिक सेवा का नियम लागू कर दिया। वास्तव में किसी को विश्वास न था कि अमेरिका में सभी वयस्क नागरिकों के लिए आवश्यक सैनिक-सेवा का नियम पास हो जाएगा। यही नहीं—अमेरिका ने घोषणा कर दी कि यदि आवश्यकता आ पड़ी तो वह १ करोड़ तक सैनिक युद्ध-क्षेत्र के लिए तैयार कर सकेगा। यह स्वाभाविक ही था कि अधिक संख्या में सैनिकों को युद्ध-स्थल के लिए तैयार करने में कुछ समय लगता अतः मई १९१८ तक का समय तो सैनिकों को प्रशिक्षित करने, और युद्ध-क्षेत्र तक पहुँचाने में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा और इसके पश्चात् अमेरिका की सेनाएँ धड़ाधड़ युद्ध-क्षेत्र की प्रथम पंक्तियों में दिखाई पड़ने लगीं। उसी समय से अमेरिका की शक्ति का प्रभाव युद्ध की स्थिति को प्रभावित करने लगा और जिस समय युद्ध समाप्त हुआ और दोनों पक्षों में अस्थायी तौर पर युद्ध बन्द हुआ, युद्ध-क्षेत्र की प्रथम पंक्ति में यूरोप में २० लाख से अधिक अमेरिकी सैनिक मौजूद थे जिनमें से अधिकतर फ्रांस के मोर्चों पर लड़ रहे थे। अमेरिका द्वारा हस्तक्षेप के कारण युद्ध के ऊपर नैतिक प्रभाव अवश्य पड़ा। १९१८ की गर्मियों में मध्य अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका के अनेक गणराज्यों ने भी अमेरिका की देखादेखी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उसी प्रकार चीन, यूनान और स्याम ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी; यहाँ तक कि ऐस प्रतीत होने लगा मानो सारा संसार ही जर्मनी की ट्यूटानिक जातियों के विरुद्ध हो गया है। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करते ही और मित्रराष्ट्रों के पक्ष में अमेरिका के अपार साधन-स्रोत आते ही यह प्रायः निश्चित हो गया कि युद्ध में अन्ततोगत्वा मित्रराष्ट्रों की ही विजय निश्चित है।

ज्योंही अमेरिका ने मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया, पश्चिमी देशों में खुशी की लहर दौड़ गई। इस खुशी को इस संदर्भ में ही समझा जा सकता है कि अमेरिका ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा उस समय की थी जबकि रूस में क्रान्ति हो चुकी थी और वह क्रान्ति भी प्रारम्भ में एक राजनीतिक आदर्श की सूचक मानी जा रही थी।

रूस

१९१५ की पराजय के पश्चात् रूस में आम तौर पर राजतन्त्र-विरोधी भावना घर करती जा रही थी। युद्ध-सामग्री और गोला-बारूद की कमी के कारण सभी लोग सरकार की आलोचना कर रहे थे। सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध आम तौर पर देश-द्रोह और भ्रष्टाचार के आरोप लगाए जा रहे थे; ऐसी भी अफ़वाहें थीं कि ज़ार चुपके-चुपके जर्मनी के साथ सन्धि करने जा रहा है। अतः युद्धमन्त्री को जेल में डाल दिया गया। ऐसा भी विश्वास किया जाता था कि शासन में कुछ ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो रूसी प्रजा के हितों का विरोध करते हैं और जो जर्मनी के ही हितों के बारे में सोचते हैं। रैसप्यूटिन (Rasputin) नाम का एक दुराचारी संन्यासी था जिसका राज-दरबार पर आम तौर पर और सम्राज्ञी पर विशेष रूप से प्रभाव था। उसकी हत्या कर दी गई और उस हत्या में एक ग्राण्ड ड्यूक (Grand Duke) का भी हाथ बताया जाता था। अब देश-प्रेम के साथ-साथ उदारवाद की भावना भी जोर पकड़ने लगी। सारे देश में खाद्य-सामग्री की कमी दिखाई पड़ने लगी। सर्वत्र असन्तोष ही असन्तोष दिखाई दे रहा था। कृषक वर्ग और श्रमिक वर्ग में व्यापक असन्तोष था। संसद् (Duma) के सदस्यों में और बौद्धिक वर्ग में भी, यहाँ तक कि रूढ़िवादी और अनुदार वर्ग में भी व्यापक असन्तोष था। अतः ड्यूमा या संसद् (Duma) में कई दल मिल गये और उन्होंने ज़ारशाही समाप्त करने का पक्का इरादा कर लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फरवरी १९१७ में श्रमिकों ने पेट्रोग्राड (Petrograd) में एक बड़ी हड़ताल आयोजित की और यही क्रान्ति की शंख-ध्वनि थी। सैनिकों ने बजाय हड़ताल को समाप्त करने के हड़तालियों से मेल कर लिया। अतः संसद् या ड्यूमा (Duma) ने अस्थायी सरकार की घोषणा कर दी और मार्च में ज़ार ने गद्दी त्याग दी और इस प्रकार तीन शताब्दियों तक शासन करने के पश्चात् रोमनोव राजवंश (Romanov) का अन्त हो गया।

जिस अस्थायी सरकार की ड्यूमा ने स्थापना की थी वह उदार सरकार थी। उसने कई सुधार किए। पोलैण्ड (Poland) को स्वायत्तता प्रदान कर दी गई, फ़िनलैण्ड (Finland) को पुन संविधान प्रदान कर दिया गया तथा उन सारे नियमों को तोड़ दिया गया जो यहूदियों के विरुद्ध थे। सभी नागरिकों को पूर्ण नागरिक, राजनीतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी गई। इसके अतिरिक्त नई सरकार ने घोषणा की कि उसकी सहानुभूति मित्रराष्ट्रों के साथ है और वह युद्ध जारी रखने के पक्ष में है। पश्चिमी देश, जो अभी तक रूस की मैत्री को अशुभ माने बैठे थे बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में देखे गये।

किन्तु क्रांति के आंदोलन की गति मन्द नहीं हुई। दो पीढ़ियों का दबाया हुआ सार्वजनिक जोश उबाल खा रहा था और सर्वत्र अराजकता की-सी स्थिति उत्पन्न हो रही थी जिसे अस्थायी सरकार काबू में न ला सकी। कमज़ोर उदारवादी अस्थायी सरकार के ऊपर समाजवाद हावी हो गया। सोवियटों (Soviets) की स्थापना हुई। ये सोवियतें, श्रमिकों और सैनिकों की छोटी-छोटी समितियाँ थीं, जिनमें सबसे महत्त्व-पूर्ण समिति (Soviet) पेट्रोग्राड की श्रमिकों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की परिषद् (Petrograd Council of Workingmen's and Soldiers' Delegates) थी। अब सेना में अनुशासनहीनता के दर्शन होने लगे और अफसरों के ऊपर सोवियतों या परिषदों का प्रभाव पड़ने लगा तथा सैनिक लोग देश के शत्रुओं के प्रभाव में आने लगे। अब अस्थायी सरकार में से उदारवादी तत्त्व निकाल दिए गए और उनका स्थान समाजवादियों (Socialists) ने ले लिया। केरेन्सकी (Kerensky) एक उदार समाज-वादी था किन्तु अस्थायी सरकार का एक सदस्य था। उसने स्थिति को संभालने का यत्न किया और गैलिशिया (Galicia) में जर्मनों को हटाने के लिए युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जुलाई के इस युद्ध में रूसियों को प्रारम्भ में तो सफलता मिली और जर्मन दस मील खदेड़ दिए गए किन्तु पुनः शीघ्र ही रूसियों को पीछे हटना पड़ा। रूसी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और वे सेना को छोड़कर या तो भागने लगे या अपने अफ़सरों को मारने लगे। रूस की अधीन राष्ट्रीयताओं ने, विशेषकर फ़िन लोगों (Finns) और पोल लोगों (Poles) ने घोषणा कर दी कि वे रूस की पराधीनता में नहीं रहेंगे। जनरल कॉर्नीलाव (General Kornilov) के नेतृत्व में प्रतिक्रान्ति (Counter-revolution) का भी प्रयत्न किया गया किन्तु वह प्रयत्न असफल रहा। २ सितम्बर को जर्मनी ने रीगा (Riga) पर अधिकार कर लिया।

इन्हीं दिनों समाजवादियों में भी दो वर्ग हो गए। इन वर्गों में एक वर्ग संयत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गी समाजवादियों या मेन्शेविकों (Mensheviks)[1] का था जो क्रमिक प्रगति और संवैधानिक उपायों में विश्वास करते थे; तथा दूसरा वर्ग बोलशेविकों (Bolsheviks) अथवा अतिमार्गी लोगों का था जो चाहते थे कि शीघ्र क्रांति हो और वर्ग-संघर्ष हो। नवम्बर में द्वितीय क्रान्ति हुई जिसमें केरेन्सकी (Kerensky) और अन्य संयतमार्गी नेताओं का पतन हो गया और लेनिन (Lenin)[2] तथा ट्राट्स्की (Trotsky) रूस के नेता बन गए। रूस में समाजवाद के साथ-साथ शान्ति आन्दोलन भी चल पड़ा। बोल्शेविकों (Bolsheviks) का कार्यक्रम यह था कि तुरन्त युद्ध बन्द किया जाय, ज़मींदारों की जायदादों को ज़ब्त कर लिया जाय, एक प्रसभा या सम्मेलन किया जाय और श्रमिकों एवं कृषकों की समितियों (Soviets) को सारी सत्ता दे दी जाय। १५ दिसम्बर को बोल्शेविक रूसी सरकार और जर्मनी के बीच ब्रैस्ट लिटोस्क (Brest-Litovsk) में अस्थायी सन्धि पर हस्ताक्षर हो गए और स्थायी शान्ति-सन्धि की शर्तों पर दोनों देशों के प्रतिनिधियों में बातचीत होने लगी। रूस की ओर से ट्राट्स्की (Trotsky) प्रतिनिधि था। वह चाहता था कि किसी देश के भू-भाग को न तो कोई दूसरा देश दबा ले और न किसी देश को युद्ध का हर्जाना देने के लिए मजबूर किया जाय। जर्मनी ने इस शर्त को स्वीकार नहीं किया और उस ओर से सेनाएँ पेट्रोग्राड (Petrograd) की ओर बढ़ती चली गईं। फरवरी १९१८ में यूक्रेन (Ukraine) अथवा लघु रूस ने पेट्रोग्राड की सरकार से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया और इसके पश्चात् उसने जर्मनी के साथ अलग से सन्धि कर ली। इसलिए मार्च में बोल्शेविक सरकार को मजबूरन जर्मनी की सन्धि की शर्तों को स्वीकार करना पड़ा। वास्तव में बोल्शेविक सरकार का उद्देश्य यह था कि सारे संसार में क्रांति हो; इसलिए वह आत्मसमर्पण करने को भी तैयार हो गई। समाजवादियों का कथन था कि प्रत्येक समाजवादी सामाजिक क्रान्ति की सफलता के लिए अपनी मातृभूमि के हितों को भी त्याग सकता है। इसी विचार से प्रेरित होकर रूस ने एस्टोनिया (Estonia), लिवोनिया (Livonia), कावरलैण्ड (Courland), लिथुआनिया (Lithuania) और पोलैंड (Poland) पर से अपना अधिकार त्याग दिया और यह निश्चित हुआ कि उक्त देशों का भाग्य-निर्णय उनकी प्रजा की राय जानकर स्वयं धुरी राष्ट्र (Central Powers) करें। यह भी निश्चित हुआ कि यूक्रेन (Ukraine) स्वतन्त्र गणराज्य का स्वरूप धारण करे। यह भी

मार्च १९१८ की ब्रैस्ट-लिटोस्क की सन्धि

---

१. लन्दन (London) में एक सम्मेलन १९०३ में हुआ जिसमें अल्प-मत वालों को मेन्शेविक (Mesnheviks) कहा गया और बहुमत वालों को बोल्शेविक (Bolsheviks) कहा गया था क्योंकि संयतमार्गियों (Moderates) को २५ मत मिले थे तथा अतिमार्गियों अथवा बोल्शेविकों (Bolsheviks) को २६ मत मिले थे।

२. लेनिन (Lenin) स्विट्जरलैण्ड (Switzerland) में निर्वासित जीवन बिता रहा था। किन्तु जर्मनों ने उसको बन्द रेल के डिब्बे में बिठाकर जर्मनी के मार्ग से रूस को लौट जाने की आज्ञा दे दी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित हुआ कि कॉकेशस के समीपवर्त्ती प्रान्त बातुम (Batum), अर्डाहन (Ardahan) और कार्स (Kars) को आज्ञा दे दी जाय कि वे अपने पास-पड़ोस के राज्यों, विशेषकर तुर्की की इच्छानुसार स्वभाग्य निर्णय स्वयं करें। फ़िनलैण्ड (Finland) और जॉर्जिया (Georgia) को स्वतन्त्र मान लिया गया। युद्ध की हानि-पूर्ति के रूप में रूस को भारी रकम जर्मनी के हवाले करनी पड़ी और जर्मनी को कुछ लाभप्रद आर्थिक सुविधाएँ भी रूस द्वारा दे दी गईं। सब मिलाकर रूस के अधिकार से लगभग ५ लाख वर्गमील भूमि निकल गई और लगभग ६ करोड़ ६० लाख जनसंख्या रूस के अधिकार से निकल गई। इस प्रकार रूस की लगभग ३४ प्रतिशत जनसंख्या, ३२ प्रतिशत खेती योग्य भूमि, ८५ प्रतिशत बीट शूगर पैदा करने वाली भूमि, ५४ प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र और ८९ प्रतिशत कोयले के उत्पादन क्षेत्र रूस के अधिकार से निकल गए और बाल्टिक सागर के किनारे का प्रायः सारा समुद्री किनारा रूस के हाथों से निकल गया।

ब्रेस्ट-लिटोस्क (Brest-Litovsk) की सन्धि, युद्ध की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस सन्धि द्वारा रूस की क्रान्ति पूर्ण हुई और पुरानी शासन-व्यवस्था नष्ट हो गई। इस सन्धि द्वारा जर्मनी को पूर्वी रणक्षेत्र में विजय प्राप्त हुई जिसके कारण यद्यपि जर्मनी अन्य रणक्षेत्रों पर और अधिक सैनिक भेज सका फिर भी अन्त में इस विजय के लाभ केवल अस्थायी लाभ सिद्ध हुए। यद्यपि जर्मनी ने सोचा था कि रूस के साथ सन्धि हो जाने के पश्चात् रूस से हर प्रकार की आर्थिक सहायता मिलेगी किन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई और अब भी जर्मनी को एक विशाल सेना अपनी पूर्वी सीमाओं की रक्षार्थ रखनी पड़ी। इसके अतिरिक्त रूसी एजेण्ट जर्मनी में भी साम्यवाद का प्रचार करने लगे। इससे स्वयं जर्मनी में उत्पादन के साधनों पर विषम प्रभाव पड़ने लगा और जिसके कारण जर्मनी में १९१८ के नवम्बर की क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

दूसरी ओर ब्रेस्ट-लिटोस्क (Brest-Litovsk) की सन्धि के कारण ही मित्र राष्ट्रों ने साइलीशिया (Silesia) की ओर अपनी सेनाएँ भेजीं ताकि जर्मनों का प्रभाव और प्रवेश एशिया में न बढ़ने पावे, किन्तु ठीक इसी कारण जापान को भी एशिया में अपना प्रभाव बढ़ाने की सूझी। इसके अतिरिक्त ब्रेस्ट-लिटोस्क (Brest-Litovsk) की सन्धि की शर्तों में जर्मनी ने जिस कठोरता और हृदयहीनता का परिचय दिया था उसके कारण अमेरिका और मित्रराष्ट्रों ने युद्ध जारी रखने का निश्चय किया और उक्त देशों में युद्ध बन्द करने की जो प्रवृत्ति पाई जाती थी उसको आघात पहुँचा। इस प्रकार पश्चिमी रणक्षेत्र में युद्ध चलता रहा।

१९१७ का वर्ष मित्रराष्ट्रों के लिए अशुभ वर्ष रहा क्योंकि पूर्व में रूस का विघटन हो गया और उसने इनका साथ छोड़ दिया तथा जर्मनी की पनडुब्बियों ने मित्र-राष्ट्रों को अपरिमित हानि पहुँचाई। वास्तव में १९१७ का वर्ष हर प्रकार से मित्र-राष्ट्रों के लिए बरबादी का वर्ष रहा; हाँ, अमेरिका द्वारा युद्ध में हस्तक्षेप से मित्र-राष्ट्रों की आशाएँ बँधी रहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

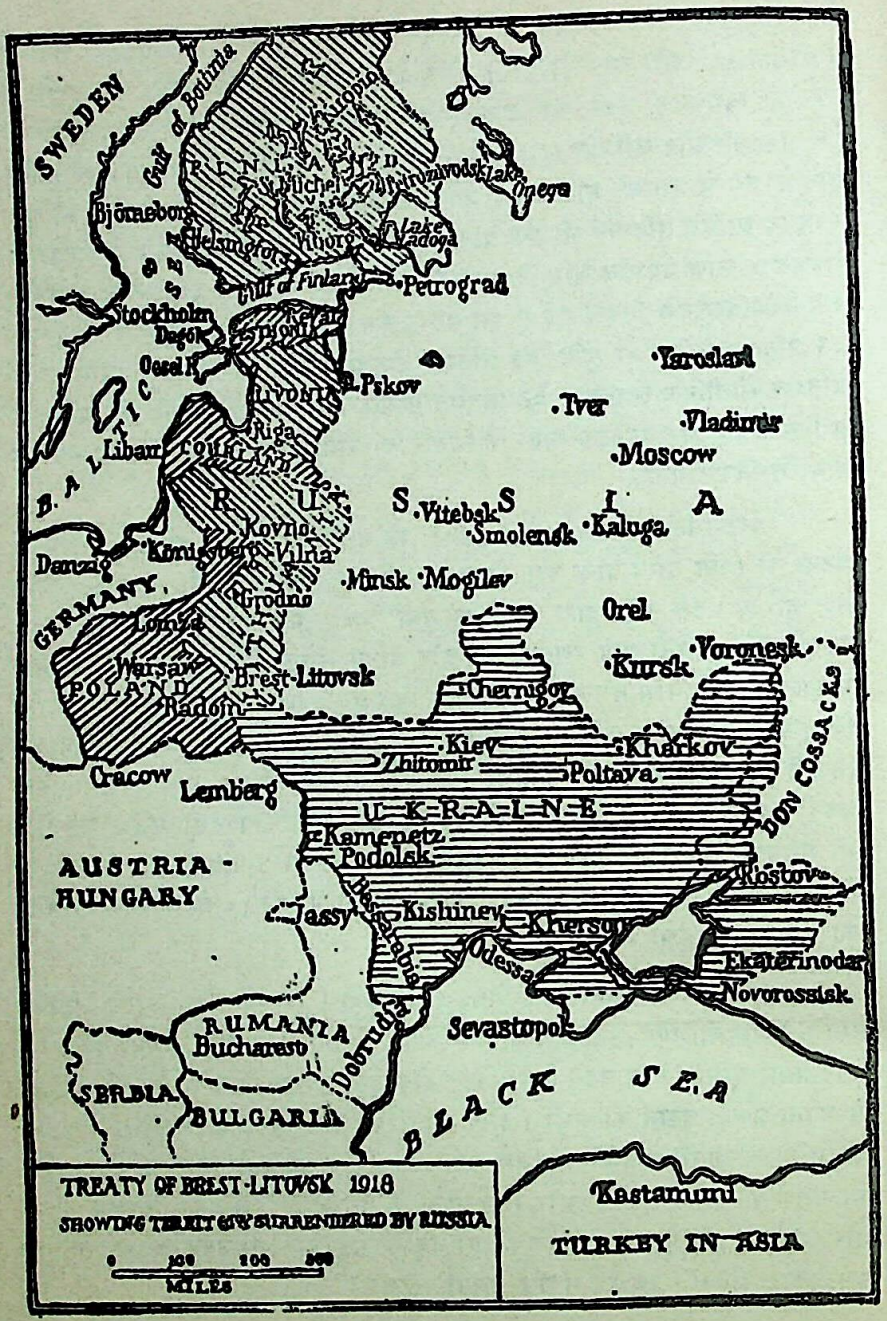

ब्रेस्ट-लिटोस्क की सन्धि, १९१८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी रणक्षेत्र में जनरल जॉफ्रे (General Joffre) और ब्रिटिश जनरल सर डगलस हेग (Sir Douglas Haig) ने सम्मिलित योजना बनाई कि सौम (Somme) के आक्रमण के समान ही शत्रु पर आक्रमण किया जाय, किन्तु इस योजना को अव्यावहारिक मानकर त्याग दिया गया तथा जनरल जाफ्रे (Joffre) का स्थान निवेले (Nivelle) ने ले लिया। वह जर्मनी के ऊपर आक्रमण करने की अपनी ही एक योजना लाया था।

पश्चिमी रणक्षेत्र

मार्च में स्वयं जर्मनों ने आक्रमण प्रारम्भ किया क्योंकि वे अपनी रण-पंक्तियों को सुव्यवस्थित करना चाहते थे। इसलिए जर्मनों ने कई रणक्षेत्रों से तो अपने सैनिक हटा लिये। किन्तु हटते हुए सैनिकों ने मार्गों को ध्वस्त कर दिया ताकि मित्र-राष्ट्रों को बढ़ने में असुविधा हो। इसके पश्चात् जर्मन लोगों ने नई रक्षा-पंक्ति का निर्माण किया जिसको हिण्डेनवर्ग रक्षा-पंक्ति (Hindenburg Line) की संज्ञा दी गई।

हिण्डेनबर्ग रक्षा-पंक्ति

ईस्टर के अवसर पर ब्रिटेन की ओर से आरास (Arras) के रणक्षेत्र में आक्रमण प्रारम्भ किया गया। यह युद्ध एक महीने तक चलता रहा। इस युद्ध में कई बार वीरतापूर्ण प्रयत्न किए गए, विशेष रूप से कनाडा (Canada) के सैनिकों ने विमी रिज (Vimy Ridge) पर भारी वीरता और शौर्य का परिचय दिया किन्तु एक महीने की कठिन लड़ाई के बाद भी न तो मित्रराष्ट्र शत्रु से एक इंच भी भूमि ले सके और न अन्य किसी प्रकार शत्रु को हिला सके।

आरास के रणक्षेत्र में ब्रिटेन द्वारा आक्रमण

अप्रैल के मध्य में निवेले (Nivelle) ने पचास मील लम्बे रणक्षेत्र में आक्रमण किया जो सोइसन्स (Soissons) से लेकर रीम्स (Reims) तक विस्तृत था। किन्तु यह आक्रमण पूर्णरूपेण विफल हुआ। जर्मन लोग पूरी तरह तैयार थे और फ्रांसीसियों को अपार हानि सहन करनी पड़ी। इस आक्रमण के प्रथम १० दिनों में ही प्रायः एक लाख सैनिक या तो मारे गये या घायल हुए। निवेले (Nivelle) को हटा दिया गया और उसके स्थान पर मार्शल पैतां (Petain) और फ़ौच (Foch) आये किन्तु फ्रांस की इतनी हानि हो चुकी थी कि वे प्रायः निराश हो गए। फ्रेंच सेना में कई बार विद्रोह हुए और सारी सेना में निराशा के भाव जाग्रत होने लगे। यद्यपि जून तक मित्रराष्ट्रों की स्थिति में सुधार दृष्टिगोचर होने लगा था, फिर भी यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि फ्रांस की प्रतिरोध शक्ति जवाब दे गई है और अब समस्त रक्षा-भार केवल ब्रिटेन को ही वहन करना पड़ेगा। मार्शल पैतां अब सँभलकर अपने सैनिकों का प्रयोग करने लगा था और उसने अपनी सेनाओं का प्रयोग केवल कुछ जर्मन प्रति-आक्रमणों को रोकने के लिए ही किया, जिसका फल यह हुआ कि म्युज (Meuse) और ऐन (Aisne) के मोर्चों पर फ्रांस को कुछ लाभ हुए।

निवेले द्वारा आक्रमण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलाई के अन्तिम सप्ताह से लेकर तीन महीने तक ब्रिटेन येप्रीस (Ypres) के तृतीय युद्ध में अपार नर-संहार सहन करता रहा। इस युद्ध को पैस्चैण्डेल (Paschendaele) का युद्ध भी कहते हैं। यद्यपि देखने में मित्र-राष्ट्रों ने कई मील भूमि पर अधिकार कर लिया किन्तु वास्तविक लाभ नहीं के बराबर था। और युद्ध में भयंकर नर-संहार हुआ—प्रायः ढाई लाख ब्रिटिश सैनिक खेत रहे।

येप्रीस का तृतीय-युद्ध

नवम्बर के अन्त में ब्रिटेन ने केम्ब्राय (Cambrai) के रण-क्षेत्र में आक्रमण किया जिसमें टैंकों के प्रयोग के फलस्वरूप ब्रिटेन को आरम्भ में ही सफलता प्राप्त हुई। किन्तु जब जर्मनी ने प्रत्याक्रमण किया तो ब्रिटेन को पीछे हट जाना पड़ा।

केम्ब्राय का युद्ध (नवम्बर १९१७)

इटली के रण-क्षेत्र में मित्र-राष्ट्र किसी प्रकार पूर्ण विनाश से बच गए। रूस की पराजय से जनरल ल्यूडेनडार्फ़ को अवसर मिल गया था कि उस रण-क्षेत्र से हटाकर अपने सैनिक अन्यत्र लगा सके। और उधर ऑस्ट्रिया-हंगरी भी लड़खड़ा रहा था इसलिए भी यह आवश्यक जान पड़ा कि किसी क्षेत्र में जर्मनी की विजय दिखाई जाय ताकि धुरी राष्ट्रों में साहस बना रहे। इसलिए उसने निश्चय किया कि इटली के विरुद्ध आक्रमण किया जाय जिसके फलस्वरूप इटली का जोश प्रायः ठण्डा पड़ गया। जर्मनी ने पूर्वी आल्पस पर्वत में एक ऐसा स्थान इटली के विरुद्ध आक्रमण के लिए चुना जहाँ आक्रमण की सुविधाओं का पूर्ण अभाव था और जहाँ से ऑस्ट्रिया के साथ यातायात के सम्बन्ध अत्यन्त कठिन थे। २४ अक्तूबर को जर्मन जनरल वॉन बुलो (Von Bulow) ने कैपोर्टो (Caporetto) के मार्ग से इटली के ऊपर आक्रमण कर दिया। प्रारम्भ में इटली की एक सेना तो नष्ट कर दी गई और दूसरी मैदान छोड़कर भागने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मित्रराष्ट्रों से सहायता पाना कठिन होगा और वेनिस (Venice) पर शत्रुओं का अधिकार हो जायेगा। किन्तु नवम्बर के द्वितीय सप्ताह में इटली की सेनाएँ वेनिस (Venice) के उत्तर में जमकर एक रक्षा-पंक्ति बना सकीं जो एड्रियाटिक (Adriatic) से लेकर गार्दा झील (Lake Garda) तक विस्तृत थी। इसी बीच फ्रांस और ब्रिटेन ने भी इटली की सहायता के लिए सैनिक भेजे, अतः जर्मनी द्वारा बारम्बार प्रयत्न किए जाने के बावजूद मित्र-राष्ट्र मजबूती से जमे रहे। जर्मनी के अन्य आक्रमणों के समान ही यह आक्रमण भी प्रायः सफल था किन्तु इस हानि के बावजूद इटली ने धैर्य नहीं त्यागा और वह मित्र-राष्ट्रों से बराबर मेल किए रहा।

इटली के रण-क्षेत्र में मित्र-राष्ट्रों की अपार हानि

अन्य रण-क्षेत्रों में मित्र-राष्ट्रों को लाभ प्राप्त हुए। मैसोपोटामिया (Mesopotamia) के रण-क्षेत्र में ब्रिटेन ने जनरल मौड (General Maude) के नेतृत्व में तुर्की के विरुद्ध आक्रमण किया। फरवरी में कुत-अल-इमारा (Kut-al-Imara) पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया और मार्च में बग़दाद (Bagdad) पर भी ब्रिटेन का झण्डा लहराने लगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्र (Egypt) से पतझड़ के मौसम में एक मित्रराष्ट्रीय सेना ने सीरिया (Syria) में प्रवेश किया और ९ दिसम्बर को जेरुसलम (Jerusalem) का पतन हो गया। लगभग बीस वर्ष पूर्व कैसर ने इसी पवित्र नगर में बड़ी धूम-धाम से प्रवेश किया था। किंतु इस समय जनरल एलेनबी (General Allenby) ने अत्यन्त साधारण रूप से और बिना किसी दिखावे के नगर में घोड़े पर चढ़कर प्रवेश किया।

समुद्री युद्ध में भी १९१७ के मध्य से ही मित्रराष्ट्रों के जहाज़ों की क्षति में कमी दृष्टिगोचर होने लगी थी; विशेष रूप से अमेरिका द्वारा नौसैनिक युद्ध में सहायता प्राप्त होने पर जर्मनी की पनडुब्बियों का उत्पात कुछ कम हो चला था।

दोनों ओर यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि युद्ध के कारण दोनों पक्ष परेशान हैं। हवाई आक्रमणों का यद्यपि युद्ध पर शीघ्र प्रभाव पड़ने की कोई सम्भावना नहीं थी फिर भी उनसे दोनों ओर के नागरिक बहुत ही दुःखी थे। सभी देशों के श्रमिक दल आग्रह कर रहे थे कि सन्धि कर लेनी चाहिए और युद्ध बन्द होना चाहिए। पोप बेनेडिक्ट १५वें (Pope Benedict XV) ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया था। राष्ट्रपति विलसन (President Wilson) ने यह विचार प्रस्तुत किया कि सभी राष्ट्रों की प्रसभा (Covenant) की जाय। मुख्य युद्धग्रस्त राष्ट्रों की ओर से भी शान्ति के प्रस्ताव आये किन्तु वे प्रयत्न विफल रहे। धुरी राष्ट्रों की ओर तुर्की की पराजय निश्चित हो चुकी थी और ऑस्ट्रिया-हंगरी लड़खड़ाने लगा था। और जर्मनी भी, यद्यपि उसकी सारी रक्षित सेना समाप्त हो चुकी थी और आर्थिक घेरे के कारण उसकी प्रजा अत्यन्त व्याकुल थी; फिर भी वह एक के बाद एक प्रयत्न करता ही जा रहा था और अभी तक उसको सफलताएँ ही प्राप्त होती जा रही थीं। वास्तव में जर्मनी की सेना, जर्मनी का राष्ट्रीय धैर्य, जर्मनी का बौद्धिक बल और सहन-शक्ति और जर्मनी की प्राविधिक विशेषज्ञता की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। किन्तु राजनीतिक दाँव-पेचों में जर्मनी प्रारम्भ से ही हारने लगा था। बेल्जियम के ऊपर आक्रमण में भी उसकी हार हुई थी। जिस निर्दयता के साथ जर्मनी ने युद्ध प्रारम्भ किया था वह भी उसकी हार का ही परिचायक था और जिस ढंग से जर्मनी ने रूस और अमेरिका के साथ बर्ताव किया उस कारण भी जर्मनी का विनाश अवश्यम्भावी हो गया।

मित्रराष्ट्रों के पक्ष में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे अभी तक युद्ध के मैदान में डटे हुए खड़े थे। वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब सहायता के लिए और सेनाएँ आवें और कब तक वे इतनी कठिनाइयों में खड़े रह सकेंगे। जुलाई के प्रारम्भ में अमेरिका की सहायक सेना का अग्रिम भाग फ्रांस पहुँचा। यह छोटी-सी सैनिक टुकड़ी थी, किन्तु यह नई दुनिया की शक्ति का प्रतीक था जो पुरानी दुनिया के लड़खड़ाते हुए पैरों को बल देने के लिए ही युद्ध में प्रवेश कर रहा था।

(ङ)

१९१८ का नया वर्ष युद्ध का चौथा वर्ष था। इस वर्ष के मार्च मास में जर्मनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रूस के बीच ब्रेस्ट-लिटोस्क की सन्धि हुई थी और मई में धुरी राष्ट्रों और रूमानिया (Rumania) के बीच बुखारेस्ट (Bukharest) की सन्धि हुई। अब रूमानिया और रूस दोनों ही युद्ध से विलग हो चुके थे किन्तु अभी पूर्व में रूस और रूमानिया के विजित प्रदेशों की रक्षा के लिए प्रायः दस लाख जर्मन सैनिक चौकसी कर रहे थे।

१९१८

इसलिए ल्यूडेनडार्फ़ (Ludendorff) ने योजना बनाई कि एक अन्तिम प्रयत्न अथवा कई प्रयत्न किए जाएँ और पश्चिमी मोर्चे पर विजय प्राप्त की जाय। गार्विन (Garvin) लिखता है कि "ल्यूडेनडार्फ की योजना के अनुसार जर्मनी इस अन्तिम प्रयत्न में न केवल अपनी सारी रक्षित सेना को युद्ध में झोंक देना चाहता था बल्कि अपनी सारी शक्ति को भी इस अन्तिम प्रयत्न-रूपी यज्ञ में स्वाहा करने के लिए कटिबद्ध था। सम्भवतः इस युद्ध में जर्मनी अपने समस्त युद्ध-अनुभवों का परीक्षण करता और नये युक्तियों और नई युद्ध-कौशल से मित्र-राष्ट्रों को आश्चर्यचकित तथा हतप्रभ करता।"[1]

मार्च के महीने में जर्मनी की ओर से बैपौम (Bapaume), पीरोन (Peronne), सेंट-क्वेंटिन (Saint-Quentin) और नोयन (Noyon) के रण-क्षेत्रों में ब्रिटेन और फ्रांस के विरुद्ध आक्रमण कर दिया गया। इन आक्रमणों का उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश और फ्रेंच सेनाएँ अलग-अलग रहें तथा समय आने पर उन्हें समुद्र में धकेल दिया जा सके। यह मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध भयंकर आक्रमण था। ब्रिटिश सेनाओं के बीच में दरार पड़ गई और उन्हें सौम (Somme) के पीछे हट जाना पड़ा। वाम पार्श्व पर भी ब्रिटिश सेनाएँ आरास (Arras) के पीछे हटने पर मजबूर कर दी गईं। फ्रेंच सेनाओं को भी मोंटडीडियर (Montdidier) तक हट जाना पड़ा। इस प्रकार १९१६ और १९१७ में मित्र-राष्ट्रों को जो कुछ विजय लाभ हुआ था वह सब छिन गया। एमींस (Amiens) फ्रांस और ब्रिटेन की सेनाओं के बीच यातायात का मुख्य द्वार था—वही अब खतरे में था। जर्मनी की तोपें एमींस (Amiens) से केवल नौ मील दूर थीं।

ल्यूडेनडार्फ द्वारा पश्चिमी रण-क्षेत्र में चार विशाल आक्रमण

इस रण-क्षेत्र में अन्तिम सैनिक तक लगा दिया गया। सर डगलस हेग (Sir Douglas Haig) ने स्वीकार कर लिया कि वह जनरल फ़ौच (Foch) के नेतृत्व में कार्य करने के लिए तैयार है, अतः जनरल फ़ौच को मित्र-राष्ट्रीय सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त कर दिया गया और इस प्रकार मित्र-राष्ट्रों को सैन्य-संचालन करने की एकता का अमूल्य लाभ प्राप्त हो गया। अन्त में इंग्लैंड और फ्रांस का प्रतिरोध सफल हुआ और एमींस (Amiens) की रक्षा हो गई। यद्यपि जर्मनी को भारी सफलता प्राप्त हुई थी; फिर भी जहाँ जर्मनी ब्रिटिश सैनिकों को समुद्र में धकेल देने की सोच

---

1. J. L. Garvin : *These Eventful Years.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था और उनका सम्बन्ध फ्रेंच सेनाओं से काट देने की युक्ति बना रहा था उसमें जर्मनी पूर्ण असफल रहा।

अतः ल्यूडेनडार्फ (Ludendorff) ने पुनः उत्तरी रण-क्षेत्र में ब्रिटिश सेनाओं के विरुद्ध आक्रमण किया। इस ओर ब्रिटिश सैनिकों के बचने का स्थान नहीं था। इस बार भी जर्मनी के सामने फ्रेंच, ब्रिटिश और पुर्तगाली सैनिकों के छक्के छूट गये किन्तु दो मुख्य स्थानों पर अर्थात् वेथ्यून (Bethune) और येप्रीस (Ypres) में बावजूद भारी दबाव के मित्र-राष्ट्र जमे रहे। मार्च में ८३,००० अमेरिकी सैनिक फ्रांस में जा पहुँचे और मई से तो प्रायः २ लाख अमेरिकी सैनिक प्रति मास मित्रराष्ट्रों की सहायता के लिए आते रहे।

मई में जर्मनी ने तृतीय आक्रमण किया। यह आक्रमण सोइसन्स (Soissons) और रीम्स (Reims) के बीच में किया गया था। यह आश्चर्यजनक आक्रमण था और इसकी सफलता से सभी को भारी आश्चर्य हुआ। ऐन (Aisne) की घाटियों पर जर्मनों का अधिकार हो गया था तथा चेमिन-डे-डेम्स (Chemin-des-Dames) पर भी आक्रमण किया गया। इस आक्रमण में एक फ्रांसीसी और एक ब्रिटिश सेना समाप्त कर दी गई। सोइसन्स (Soissons) का पतन हो गया। कुछ ही दिनों में जर्मन लोग मार्न (Marne) को भी पार कर गए और उन्होंने चैटो थियरी (Chateau-Thierry) को भी ले लिया। इस प्रकार जर्मन लोग पेरिस (Paris) से प्रायः पचास मील दूर रह गये थे। किन्तु रीम्स (Reims) पर मित्र-राष्ट्रीय सेनाएँ जमी रहीं। इस अवसर पर जनरल फ़ौच (Foch) ने अतिरिक्त सेनाएँ दबे हुए रण-क्षेत्र की ओर भेजीं। अतः इस बार भी जर्मनों को आगे नहीं बढ़ने दिया गया यद्यपि मित्र-राष्ट्रों के बहुत अधिक संख्या में सैनिक खेत रहे। २८ मई को अमेरिका के एक अग्रिम सैनिक दल की शत्रुओं से भिड़न्त हो गई और २ जून को तो पाँच डिवीज़न अमेरिकन सेना पश्चिमी रण-क्षेत्र में आगे की पंक्तियों में युद्ध करने लगी थी। किन्तु अमेरिकन सैनिकों की जर्मन सैनिकों के साथ जो भिड़न्त हुई उससे जर्मन लोगों का उत्साह भंग नहीं हुआ। वे यही समझते रहे कि अमेरिकी सैनिकों की अपेक्षा वे स्वयं अच्छे सैनिक हैं।

जुलाई के मध्य में ल्यूडेनडार्फ़ (Ludendorff) ने चौथा और अंतिम आक्रमण किया। यह आक्रमण रीम्स (Reims) के दोनों ओर प्रारम्भ किया गया था। इस आक्रमण में उसको बहुत ही थोड़ी सफलता प्राप्त हुई थी किन्तु वह अपनी सारी शक्ति स्वाहा कर चुका था। अब से आगे मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं की संख्या निरन्तर दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी थी और युद्ध का पाँसा पलट गया। अब दोनों पक्षों की स्थिति पहले की स्थिति से विपरीत हो गई। मित्र-राष्ट्र, जो अब तक रक्षात्मक युद्ध कर रहे थे, अब आक्रमण करने लग गए।

जुलाई में जनरल फ़ौच (Foch) ने पहल की और जर्मनों के ऊपर प्रत्याक्रमण किया। इस युद्ध का यही अन्तिम आक्रमण था। पहले तो धीरे-धीरे और फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्रता से मित्र-राष्ट्रीय सेनाएँ आगे बढ़ने लगीं। तीन ही दिनों में मित्रराष्ट्रों ने शत्रुओं को मार्न (Marne) से दूर तक खदेड़ डाला था और इसके पश्चात् तो उन्हें हिंडेनबर्ग रक्षा-पंक्ति तक खदेड़ा गया। जर्मनों की हिम्मत टूटने लगी और वे अव्यवस्थित होकर भागने लगे। सितम्बर में हिंडेनबर्ग रक्षा-पंक्तियाँ टूट गईं और जनरल पर्शिंग (General Pershing) के नेतृत्व में अमेरिकी सेनाओं ने वर्दून (Verdun) के निकट सेंट-मिहिल (Saint-Mihiel) पर प्रसिद्ध आक्रमण किया, जहाँ स्पष्ट दीख पड़ा कि जर्मनों का प्रतिरोध जवाब दे गया। अक्टूबर में जर्मनी की रक्षा-पंक्तियाँ टूट गईं तथा सेंट-क्वेंटिन (Saint-Quentin) और केम्ब्राय (Cambrai) का पतन हो गया, यहाँ तक कि जीब्रुग (Zeebrugge) तक का सारा फ्लेमिश समुद्री किनारा त्याग दिया गया। अब मित्रराष्ट्रों ने लिले (Lille) और लाओं (Laon) पर पुनः अधिकार कर लिया तथा फ्रांस के औद्योगिक क्षेत्रों पर भी फ्रांस का पुनः अधिकार हो गया। अक्तूबर के अन्त तक जर्मनों को फ्रांस की एक-एक इंच भूमि से हट जाना पड़ा। अब स्पष्ट दीख रहा था कि जर्मनों का आत्मविश्वास नष्ट हो चुका है और शत्रुओं की बढ़ती हुई शक्ति के आगे, विशेषकर अमेरिका की शक्ति के आगे जर्मनों के पाँव लड़खड़ा गये। "सत्य तो यह है कि जर्मनों ने कभी सोचा ही न था कि अमेरिका उनके विरुद्ध लड़ेगा ; और वे यह भी समझ रहे थे कि यदि अमेरिका ने युद्ध की घोषणा भी कर दी तो वे सेना एकत्रित नहीं कर सकेंगे और यदि उन्होंने सेना भी एकत्रित कर ली तो वे उस विशाल सेना को यूरोपीय युद्ध-क्षेत्र में उतार न सकेंगे।"[1] झूठे आत्मविश्वास के कारण ही जर्मन लोग एक भयंकर जाल में फँस गये।

मित्रराष्ट्रों का अन्तिम आक्रमण

इस समय चारों ओर से यही समाचार आ रहे थे कि जर्मनी और अन्य धुरी राष्ट्रों को भारी हानियाँ हो रही हैं। जून में ऑस्ट्रिया का इटली के ऊपर जो आक्रमण हुआ वह भी विफल कर दिया गया। वास्तव में धुरी राष्ट्रों की इस असफलता ने युद्ध की दिशा को ही बदल दिया। इस समय ल्यूडेनडार्फ़ (Ludendorff) ने अपनी डायरी में लिखा था कि "प्रथम बार हमें यह दिखाई पड़ने लगा कि पराजय साकार हमारे सामने खड़ी है।" उसने यह भी लिखा—"अभी तक हमने यह निश्चित मान रखा था कि फ्रांस में हमें विजय लाभ होगा किन्तु अब ऐसा लगने लगा मानो वह विजय का स्वप्न पियावे (Piave) नदी के धुन्ध में धूमिल पड़ गया है। मुझे अपनी मृत्यु भी निकट से दिखाई दे रही थी और सारी आशाओं का विनाश भी मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था।" दुर्भाग्यवश वही पियावे (Piave) नदी, जिसके किनारों पर ऑस्ट्रिया ने अपनी रक्षा-पंक्तियाँ निर्माण की थीं, पानी की बाढ़ से भर गई और उस बाढ़ में उसके सारे पुल भी नष्ट हो गए तथा वह नदी ऑस्ट्रियावासियों को दुःख तथा अव्यवस्था की असहाय अवस्था में छोड़ गई। शीघ्र ही विटोरियो वेनेटो (Vittorio

---

1. Prof. C.R. Beazley : *Nineteenth Century Europe and Britain*, p. 317.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Veneto) में ऑस्ट्रिया की पुनः पराजय हुई और अक्तूबर के अन्त में तो ऑस्ट्रिया के सैनिकों में भगदड़ मच गई और विशाल हैप्सबर्ग साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया। ल्यूडेनडार्फ़ ने लिखा—"विटोरियो वेनेटो (Vittorio Veneto) की लड़ाई में ऑस्ट्रिया ने न केवल युद्ध में पराजय पाई थी बल्कि उस मैदान में स्वयं ऑस्ट्रिया का विनाश हो गया और बाद में ऑस्ट्रिया ने जर्मनी को भी अपने साथ विनाश के गड्ढे में खींच लिया।"

फ़िलिस्तीन (Palestine) में जनरल एलेनबी (General Allenby) ने समरिया (Samaria) के मैदान में तुर्की को हरा दिया। उसने समस्त पवित्र भूमि को भी अधिकार में करके सीरिया (Syria) में प्रवेश किया और डैमेस्कस (Damascus) को ले लिया। समुद्री आक्रमण द्वारा मित्रराष्ट्रों ने बेरुत (Beirut) को भी अधिकार में ले लिया।

एक फ्रांसीसी कमाण्डर के नेतृत्व में मित्रराष्ट्रीय सेना ने सैलोनिका (Salonika) के रण-क्षेत्र से बल्गेरिया की सेनाओं को तितर-बितर कर दिया। समुद्रों में भी जर्मनी की पनडुब्बियों का उत्पात प्रायः समाप्त हो चला था। जीब्रुग (Zeebrugge) से जर्मनी की पनडुब्बियों का युद्ध संचालित होता था। अतः मित्र-राष्ट्रों ने जीब्रुग पर भी अधिकार कर लिया।

सितम्बर में बल्गेरिया (Bulgaria) ने मित्रराष्ट्रों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और अक्टूबर के अन्त से धुरी राष्ट्रों की पराजय स्पष्ट और शीघ्र आती हुई दिखाई देने लगी। ३१ अक्टूबर को तुर्की ने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया और ४ नवम्बर को ऑस्ट्रिया-हंगरी ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। अब जर्मनी अकेला रह गया था। उसने भी सन्धि की प्रार्थना की। जर्मनी की जल-सेना ने विद्रोह कर दिया और सारे देश में समाजवाद और विद्रोह फैलने लगा। ९ नवम्बर को कैसर ने गद्दी त्याग दी। ११ नवम्बर को युद्ध-ग्रस्त देशों के नेताओं ने युद्ध-विश्रान्ति (Armistice) की घोषणा पर हस्ताक्षर किये और उसी दिन ११ बजे से पश्चिमी रण-क्षेत्र में युद्ध बन्द हो गया।

युद्ध का अन्त (११ नवम्बर १९१८) युद्ध-विश्रान्ति दिवस

इस पुस्तक में इतने बड़े युद्ध का इतना छोटा वर्णन किया गया है कि बहुत सी घटनाओं का जिक्र ही नहीं किया जा सका और बहुत सी घटनाओं का केवल संकेत-मात्र में वर्णन किया गया है। यह सम्भव नहीं था कि प्रतिदिन युद्ध में जितने व्यक्ति मारे जाते थे उनका पूरा वर्णन किया जाता क्योंकि बड़े-बड़े आक्रमणों के अतिरिक्त भी तो पर्याप्त संख्या में सैनिक एवं नागरिक मारे जाते रहे थे। यह भी सम्भव नहीं था कि दोनों पक्षों ने जो-जो शौर्य और पराक्रम दिखाये और जो जो कष्ट सहन किये उनका सविस्तार वर्णन किया जा सकता। दुखान्त नाटक की कतिपय मधुर घटनाओं का वर्णन भी असामयिक रहता और खुदगर्जी की कुछ ऐसी मनोरंजक घटनाओं को भी स्थान नहीं दिया गया है जिनके कारण इस युद्ध के इतिहास के पन्ने काले रंगे गये हैं। इस युद्ध में अनेक नई खोजें हुईं और फिर उन खोजों के जवाब में और नई खोजें हुईं—उन सबका वर्णन भी नहीं किया जा सका। इस पुस्तक में उन करोड़ों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकों का भी वर्णन नहीं किया जा सका जिन्होंने रण-क्षेत्र के कभी दर्शन ही नहीं किये और जो या तो गोली बारूद के कारखानों में काम करते रहे या रसायन (Chemicals) बनाते रहे या जो बीमारों और घायलों की पट्टियों के बण्डल बनाते रहे। इस छोटी सी पुस्तक में समाज का युद्ध की दिशा पर क्या प्रभाव पड़ा अथवा युद्धग्रस्त देशों की वित्तीय व्यवस्था कैसी थी अथवा समाचारपत्रों की शक्ति क्या कार्य कर रही थी अथवा संसार के ऊपर मानसिक और नैतिक प्रभाव क्या-क्या पड़े—इन बातों का वर्णन किया ही नहीं जा सका। वास्तव में इस युद्ध ने मानव-जीवन के प्रत्येक पक्ष पर प्रभाव डाला और यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि मनुष्य अथवा राष्ट्र अच्छे और बुरे कर्म किस सीमा तक कर सकते हैं।

जर्मनी ने मित्रराष्ट्रों के समक्ष युद्ध-विश्रान्ति की शर्तों[1] के अनुसार आत्म-समर्पण कर दिया। इन शर्तों के कारण जर्मनी में इतनी शक्ति न रह गई थी कि वह अपनी रक्षा करने में समर्थ रहता अथवा युद्ध को जारी रख सकता। युद्ध-स्थगन इस आश्वासन पर हुआ था कि अन्तिम सन्धि की शर्तें राष्ट्रपति विल्सन की चौदह शर्तों के आधार पर रखी जायेंगी तथा उसके पश्चात् के अन्य वक्तव्यों विशेष-कर २७ सितम्बर, १९१८ के वक्तव्य के आधार पर रखी जायेंगी।[2] इसलिये १९१९ के प्रारम्भ में विजयी मित्रराष्ट्रों के अधिकारियों की बैठक हुई, जिसमें शान्ति-सन्धि की अन्तिम शर्तों पर विचार हुआ। इस सम्मेलन में ३२ राष्ट्र सम्मिलित हुए थे, किन्तु न तो रूस को ही आमन्त्रित किया गया और न धुरी राष्ट्रों में से किसी राष्ट्र को आमन्त्रण मिला। विजेताओं में फूट डलवाने वाले किसी टैलीरैण्ड (Talleyrand) जैसे व्यक्ति को उक्त सम्मेलन में सम्मिलित नहीं किया गया था। इस सम्मेलन में अनेक प्राविधिक विशेषज्ञ थे, अनेक सेक्रेटरीगण थे, और छोटे-मोटे अधिकारी लोग थे। केवल ब्रिटिश प्रतिनिधि मण्डल में ही ६०० व्यक्ति थे। कार्यवाही को शीघ्र निबटाने के उद्देश्य से दस मुख्य व्यक्तियों की एक सर्वोच्च कार्यकारिणी परिषद् (Supreme Council) बनाई गई जिसमें पाँच मुख्य राष्ट्रों अर्थात् अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन इटली और जापान के प्रतिनिधि थे किन्तु इस सम्मेलन के ऊपर महान चार व्यक्ति पूरी तरह से छाये हुए थे जो निम्नलिखित थे—फ्रांस

पेरिस का सम्मेलन (१९१९)

---

१. युद्ध-विश्रान्ति की शर्तें ये थीं—जर्मनी द्वारा विजित प्रदेशों को खाली किया जाय तथा बेल्जियम (Belgium), अल्सास-लौरेन (Alsace-Lorraine) और लक्सेम्बर्ग (Luxemburg) के नागरिकों को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति जर्मनी करे; जर्मनी निर्दिष्ट युद्ध-सामग्री और अपनी समस्त पनडुब्बियाँ मित्रराष्ट्रों के हवाले कर दे; उसका मुख्य जहाजी बेड़ा पकड़ लिया जाय, राइन (Rhine) नदी के बायें किनारे के भू-भाग पर मित्रराष्ट्रीय सेनाएँ अधिकार कर लें तथा कुछ पुलों, कुछ किलों आदि पर भी मित्रराष्ट्रों का अधिकार रहे; जर्मनी अनेक रेल-इंजिन, मोटर लारियाँ, मित्रराष्ट्रीय सैनिक बन्दी आदि लौटा दे।

२. उक्त वक्तव्य में यह घोषणा की गई थी कि ब्रिटेन द्वारा जर्मनी की आर्थिक नाकेबन्दी जारी रहेगी। यह आर्थिक नाकेबन्दी जून १९१९ के अन्त तक चली जब तक कि दोनों पक्षों में अन्तिम सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं हुए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का एम० क्लीमेंशो (M. Clemenceau) जिसे आमतौर पर चीता कहा जाता था। वह शीघ्र उत्तेजित होनेवाला देशभक्त था और जो उन सभी बातों को निस्सार समझता था जिनसे उसके देश का हित साधन न होता हो। दूसरा महान् व्यक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति विल्सन था; तीसरा महान् व्यक्ति ग्रेट ब्रिटेन का लायड जार्ज (Lloyd George) था और चौथा महान् व्यक्ति इटली का साइनोर ओरलैण्डो (Signor Orlando) था। उक्त चारों महान् व्यक्ति प्रायः सदैव अनौपचारिक और गुप्त मन्त्रणा करते रहते थे। एम० क्लीमेंशो (M. Clemenceau) को सम्मेलन का सभापति चुना गया था।

कहा जाता है कि राष्ट्रपति विल्सन चाहता था कि पेरिस का सम्मेलन, वियना की काँग्रेस (Congress of Vienna) न बन जाय। वह जिन आदर्शों पर पेरिस के सम्मेलन को चलाना चाहता था, उनका वियना की काँग्रेस में सर्वथा अभाव था। फिर भी वियना की काँग्रेस और पेरिस के सम्मेलन में एक अजीब समानान्तरता पाई जाती है; और यदि राष्ट्रपति विल्सन ने इन तथ्यों को ध्यान में रखा होता तो वह उस जाल या धोखे से बच जाता जिसमें वह स्वयं अपने आदर्शवाद के कारण बुरी तरह फँसकर रह गया। वास्तव में सन्धि करने वालों के उद्देश्य तो अत्यन्त पवित्र थे किन्तु सन्धि की शर्तें अत्यन्त कुटिल थीं। सेक्रेटरी जेन्ट्ज (Secretary Gentz) ने वियना की सभा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, प्रायः कुछ मामूली हेर-फेर के साथ वही शब्द पेरिस के सम्मेलन के सम्बन्ध में भी कहे जा सकते हैं।

जिस समय युद्ध समाप्त हुआ सन्धि की शर्तों के सम्बन्ध में मित्र-राष्ट्रों में पूर्ण मतैक्य नहीं था। प्रत्येक देश की अपनी आशाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। प्रत्येक राष्ट्र के अपने-अपने प्रोग्राम थे किन्तु सभी का एक सम्मिलित प्रोग्राम नहीं था। कारण यह था कि यह उचित नहीं समझा गया था कि युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त किये बिना सन्धि की शर्तों जैसे विवाद-ग्रस्त विषय पर विचार किया जाय। इस प्रकार की बातचीत से संभवतः मित्रराष्ट्रों में फूट पड़ती और उनकी युद्ध-क्षमता पर कुप्रभाव पड़ता और निस्सन्देह इस प्रकार के विचार-विनिमय का कोई व्यावहारिक लाभ उस समय तक नहीं था जब तक कि युद्ध में अन्तिम विजय लाभ न कर दिया जाता। दिसम्बर १९१६ और जनवरी १९१७ के अवसरों पर मित्रराष्ट्रों ने अपनी माँगें सामान्य शब्दों में रखी थीं और रूसी सरकार ने जिन गुप्त सन्धियों को प्रकाशित कराया, उनसे भी यही विदित होता था कि कुछ सदस्य व्यक्तिगत समझौते पर कार्य कर रहे थे। इस प्रकार शान्टुंग (Shantung) जापान को मिलने वाला था; अनिष्कीत भूप्रदेश इटली को मिलने वाला था और कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) के बारे में रूस को वचन दे दिया गया था कि उस पर रूस का अधिकार होगा। फ्रांस और रूस में समझौता हो चुका था कि फ्रांस को अल्सास-लौरेन (Alsace-Lorraine) वापस मिलेंगे तथा राइन (Rhine) नदी के बायें हाथ का भू-भाग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र घोषित कर दिया जायगा। उधर अरब के कुछ प्रदेशों के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड और फ्रांस में भी कुछ समझौता हो चुका था। रूमानिया ने भी मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में हस्तक्षेप इसी वायदे पर किया था कि उसे कुछ भू-भाग प्राप्त होंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध में कूद पड़ने के कारण मित्र-राष्ट्रों और धुरी राष्ट्रों को युद्ध के पश्चात् पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में कुछ आदर्शवादी सिद्धान्त सुनने को मिले जिनका उत्तरदायित्व राष्ट्रपति विल्सन ने अपने ऊपर ले लिया। वास्तव में इस सम्बन्ध में तत्कालीन ज़ार और पश्चिमी यूरोप के राजनीतिज्ञों ने भी राष्ट्रपति विल्सन का समर्थन किया। अमेरिका के राष्ट्रपति ने बारम्बार अपने वक्तव्यों में इस बात पर बल दिया[1] कि युद्ध के पश्चात् न्याय और स्थायी शान्ति की व्यवस्था होनी चाहिए, जिसका आधार सर्व-साधारण की निष्पक्ष इच्छा हो। वे यह भी चाहते थे कि यदि किसी देश की सीमाओं में कुछ हेर-फेर किए जाएँ तो वे हेर-फेर सम्बन्धित देशों की प्रजा की इच्छाओं के अनुसार हों न कि विजेताओं की मनमानी के अनुसार। विल्सन (President Wilson) ने कहा था—"हम चाहते हैं कि सारे संसार में विधि का शासन हो और उस शासन का आधार शासितों की स्वेच्छा हो तथा वह शासन समस्त विश्व के मानव-समाज की इच्छाओं और आकाँक्षाओं का दर्पण हो।" एक अन्य अवसर पर राष्ट्रपति विल्सन ने घोषणा की थी—"हम प्रत्येक देश और राष्ट्र के साथ ऐसा न्याय करना चाहते हैं जिसमें किसी को यह कहने का अवसर ही न मिले कि किसी देश के साथ हम न्याय करना चाहते थे और किसी देश के साथ हम न्याय नहीं करना चाहते थे।" इसके पश्चात् राष्ट्रपति ने अपने विचारों को प्रसिद्ध चौदह प्रस्तावों (Fourteen Proposals) के रूप में प्रस्तुत किया, जो विल्सन की राय में न्यायपूर्ण और स्थायी शान्ति स्थापित कर देते। उक्त चौदह प्रस्तावों (Fourteen points) में कहा गया था कि जर्मनी उन समस्त विजित प्रदेशों को छोड़ दे जिन पर उसने युद्ध-काल में अधिकार कर लिया था; एल्सेस लौरेन (Alsace-Lorraine) पर पुनः फ्रांस का अधिकार हो जाय; पोलैण्ड (Poland) को स्वतन्त्रता प्राप्त हो; राष्ट्रीय सिद्धान्तों के अनुसार बल्कान राज्यों तथा इटली और ऑस्ट्रिया-हंगरी के प्रदेशों और उनकी सीमाओं का पुनर्गठन हो; उपनिवेशों की माँगों के सम्बन्ध में पूर्ण निष्पक्षता और न्याय के साथ पुनर्विचार किया जाये; सदैव के लिए राष्ट्रों के बीच गुप्त कूटनीति को समाप्त कर दिया जाय और कोई देश किसी दूसरे देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध न लगा सके, सभी देशों को समुद्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता रहे, सभी देश, अपने-अपने शस्त्रास्त्रों में कमी करें और राष्ट्रसंघ की स्थापना हो। इन सिद्धान्तों की मित्रराष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने भी सराहना की थी और मित्र देशों के पास तो उस समय युद्धोत्तर समस्याओं का निर्णय करने के लिए इन चौदह सिद्धान्तों अथवा प्रस्तावों (Fourteen Points) के अतिरिक्त और कोई अन्य कार्यक्रम ही नहीं था। और पराजित देशों ने भी इन्हीं प्रस्तावों को अपनी

विल्सन के चौदह प्रस्ताव

---

१. राष्ट्रपति विल्सन ने ११ फरवरी, १९१८ को "चार सिद्धान्तों" वाली प्रसिद्ध घोषणा की थी; ४ जुलाई, १९१८ को उसने "चार परिणामों" (The Four Ends) वाली प्रसिद्ध घोषणा की थी और ७ सितम्बर, १९१८ के भाषण में उसने "पांच विवरणों" की व्यवस्था की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहमति दे दी अतः युद्ध-विश्रान्ति के अवसर पर दोनों ही पक्षों[1] ने मान लिया कि इन्हीं सिद्धांतों और मान्यताओं के आधार पर सन्धि की शर्तों का निर्माण किया जाय।

शान्ति सम्मेलन में दो विचारों में संघर्ष था। एक पक्ष चाहता था कि ऐसा निष्पक्ष न्याय हो जिसमें विजित प्रदेशों की भावनाओं का भी विचार किया जाय। दूसरा पक्ष चाहता था—जैसा कि प्रायः शान्ति सम्मेलनों में हुआ करता है—कि शक्ति-संतुलन बना रहे, पराजित देश पुनः शान्ति भंग न कर सकें तथा विजेता राष्ट्रों को प्रादेशिक और आर्थिक लाभ हों। इस संघर्ष का फल यह हुआ कि विजेता राष्ट्रों के विचारों की विजय हुई, केवल यत्र-तत्र विजितों को कुछ रियायतें दे दी गईं जो केवल नाममात्र की रियायतें थीं। राष्ट्रपति विल्सन को यूरोपीय स्थिति का उतना ज्ञान नहीं था जितना कि चतुर राजनीतिज्ञ लायड जार्ज (Lloyd George) को अथवा एम० क्लीमेंशो (M. Clemenceau) या साइनोर औरलेण्डो (Signor Orlando) को था जो न केवल चतुर थे बल्कि उतने आदर्शवादी भी नहीं थे।[2] किंतु अन्त में पेरिस के सन्धि सम्मेलन में उसी प्रकार के विचारों का प्राधान्य रहा, जिनका वियना की काँग्रेस में प्राधान्य रहा था; अर्थात् भविष्य में यूरोप में शान्ति बनी रहे तथा विजेता राष्ट्रों एवं उनके साथियों को अधिक-से-अधिक प्रादेशिक लाभ हों। पेरिस के सम्मेलनों ने भविष्य का निर्माण राष्ट्रीयता के आधार पर किया जब कि वियना की काँग्रेस ने भविष्य के लिए शक्ति-संतुलन को अपना आधार बनाया था। किन्तु दोनों ही सम्मेलनों में पराजित राष्ट्रों को हानि सहन करनी पड़ी और विजेता राष्ट्र लाभ की स्थिति में रहे। इस प्रकार पेरिस सम्मेलन ने शान्ति सन्धि की जिन शर्तों को जन्म दिया उनका कुछ लोगों ने डट कर समर्थन किया, कुछ लोगों ने उनको किसी सीमा तक उचित माना किन्तु बहुत से ऐसे भी लोग थे जिन्होंने उन शर्तों की कठोर आलोचना की। तथापि हमें सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की कठिनाइयों को ध्यान में रखना चाहिए। इस तथ्य को भी नहीं भुलाना चाहिए कि वे आपस में कम

---

१. किन्तु इटली और ऑस्ट्रिया के मध्य सन्धि के सम्बन्ध में उक्त सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया गया था। इंग्लैण्ड ने भी समुद्रों की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में सन्धि की धारा को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। यह भी प्रायः मान ही लिया गया था कि यद्यपि विल्सन के चौदह प्रस्तावों में जर्मनी से माँगे जाने वाले युद्ध के उस हर्जाने की रकम का कोई ज़िक्र नहीं था, जो सामान्य नागरिकों को उनकी निजी हानि पूर्ति के लिए दिया जाने को था, फिर भी यह प्रायः निश्चित था कि जर्मनी को ऐसी हानि पूर्ति करनी पड़ेगी।

२. कहा जाता है कि एम० क्लीमेंशो (M. Clemenceau) प्रातःकाल यह वाक्य दुहराया करता था—"मैं राष्ट्रसंघ (League of Nations) की स्थापना का समर्थन करूँगा।" किन्तु साइनोर ओरलैंडो (Signor Orlando) से जब एक बार यह पूछा गया कि राष्ट्रसंघ के बारे में आपका क्या मत है तो उसने उत्तर दिया था—"हम निःसन्देह राष्ट्रसंघ की स्थापना का स्वागत करेंगे किन्तु फ्यूम (Fiume) का प्रश्न पहले निर्णीत होना चाहिए।"

See R. B. Mowat : *European Diplomacy, 1914-25.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कम बाहरी दिखावे के लिए मेल और मतैक्य बनाये रखना चाहते थे।[1] इसके अतिरिक्त उन देशों और प्रदेशों में गहरी कटुता विद्यमान थी जो शत्रुओं के अधिकार में चले गये थे। एक द्वीप के निवासी अथवा किसी उपनिवेश के निवासी अथवा अमेरिका के किसी निवासी को उन समस्याओं का, उस भय का ज्ञान नहीं था जो यूरोप के निवासी के हृदय में घर किये हुए था। इसके अतिरिक्त ब्रेस्ट-लिटोस्क (Brest Litovsk) और बुखारेस्ट (Bukharest) की सन्धियों की शर्तें भी तो पेरिस सम्मेलन के समक्ष थीं। उनके सामने दर्पण की तरह स्पष्ट था कि यदि युद्ध में जर्मनी की विजय हुई होती तो किस प्रकार की सन्धि की शर्तें मित्र-राष्ट्रों को दी जातीं।

पेरिस के सम्मेलन में पाँच अलग-अलग सन्धियाँ हुईं जिनमें सन्धि की शर्तें रखी गईं। जर्मनी के साथ वार्साई की सन्धि (Treaty of Versailles)[2] की गई; ऑस्ट्रिया के साथ सेंट-जर्मन (Treaty of Saint-Germain)[3] की सन्धि की गई; हंगरी (Hungary) के साथ ट्रायनो (Trianon)[4] की सन्धि हुई; बल्गेरिया के साथ न्यूइली (Neuilly)[5] की सन्धि हुई तथा तुर्की के साथ सेवर्स (Sevres)[6] की सन्धि हुई। यह आवश्यक नहीं समझा गया कि इन सन्धियों की शर्तों के सम्बन्ध में विजित राष्ट्रों से बातचीत की जाय बल्कि इन शर्तों को विजेताओं ने जबर्दस्ती विजित देशों के गले उतार दिया।[7] इन सन्धियों के अनुसार निम्नलिखित प्रादेशिक हेर-फेर हुए।

निश्चित किया गया कि जर्मनी एल्सास-लॉरेन (Alsace Lorraine) का प्रांत फ्रांस को लौटा दे; प्रशा के तीन जिले मोर्सनेट (Moresnet), यूपेन (Eupen) और

---

१. इटली की फ़्यूम (Fiume) के प्रश्न में भारी रुचि थी और इस प्रश्न पर एक बार इटली का प्रतिनिधिमण्डल सम्मेलन भवन से उठकर चला गया किन्तु बाद को वह पुनः सम्मिलित हो गया। एक अन्य अवसर पर राष्ट्रपति विल्सन ने आज्ञा दे दी कि उसका निजी जहाज जार्ज वाशिंगटन (George Washington) तैयार रहे जिसमें वह तुरन्त सम्मेलन छोड़कर अमेरिका जा सके। इसके अतिरिक्त शांटुंग (Shantung) के प्रश्न पर जापान के प्रतिनिधिमण्डल ने भी कड़ा रुख अपना लिया था और उधर चीन के प्रतिनिधि भी सन्धि के ऊपर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं थे।

२. २८ जून, १९१९। ३. १० सितम्बर, १९१९।
४. ४ जून, १९२०। ५. २७ नवम्बर, १९१९।

६. १० अगस्त, १९२०। इस सन्धि को तुर्की के राष्ट्रवादियों ने कभी भी स्वीकार नहीं किया। यह मृत-पत्र की भाँति पड़ा रहा और अन्त में लॉसेन की संधि (Treaty of Lausanne) में, जो ९ जुलाई, १९२३ को हुई थी, सेवर्स (Sevres) की सन्धि की शर्तों में संशोधन हुआ। इस घटना से सन्धि की शर्तें निश्चित करने वाले विजेता राष्ट्रों की मनोवृत्ति का पता चलता है कि वे पराजित देशों के लिए कैसी सन्धि की शर्तें देना चाहते थे।

७. लॉसेन की सन्धि (Treaty of Lausanne) को यदि छोड़ दिया जाय तो निःसन्देह शेष सन्धियों की शर्तों पर विजित राष्ट्रों की राय जानने का प्रयत्न ही नहीं किया गया। सेवर्स की सन्धि (१० अगस्त, १९२०) और विचार-विनिमय के पश्चात् उसी सन्धि का परिष्कृत स्वरूप जो 'लॉसेन की सन्धि' थी—उन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैलमेडी (Malmedy) बेल्जियम को लौटा दे; बाल्टिक सागर के तटवर्ती बन्दरगाह मेमेल (Memel) को मित्र-राष्ट्रों[1] को दे दे; पोज़ेन (Posen) का अधिकतर भू-भाग तथा सम्पूर्ण पश्चिमी प्रशा पोलैण्ड को दे दे; यदि जनमत-संग्रह द्वारा अपर साइलीशिया (Upper Silesia) और पूर्वी प्रशा[2] के लोग चाहें[3] तो ये भाग भी पोलैण्ड में मिला दिये जायें। इसके अतिरिक्त जर्मनी के समस्त उपनिवेश और दूर समुद्र पार के अधिकृत प्रदेश,[4] चीन में जर्मनी के समस्त विशेषाधिकार,[5] स्याम (Siam), लाइबीरिया (Liberia), मोरक्को, मिस्र और तुर्की में भी जर्मनी को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे, वे सब छिन गये। पोलैण्ड के डैन्जिग (Danzig) नामक बन्दरगाह को स्वतन्त्र और मुक्त बन्दरगाह घोषित कर दिया गया; जर्मनी के एक ज़िले सार घाटी (Saar Valley) को १५ वर्ष के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के नियन्त्रण में स्थाई तौर पर दे दिया गया।[6] यह भी निश्चित हुआ कि इस १५ वर्ष की अवधि में सार घाटी के कोयले की खानों को फ्रांस अपने अधिकार में रखे और उनसे मनमाना लाभ उठावे क्योंकि उत्तरी फ्रांस की कोयले की खानों को जर्मनी ने प्रायः नष्ट कर डाला था। यह भी निश्चित किया गया कि १५ वर्ष के पश्चात् उक्त ज़िले (Saar Valley) में जनमत-संग्रह हो और उसके निर्णय के पश्चात् ही उक्त ज़िले के भाग्य का फैसला किया जाय।

प्रादेशिक हेर-फेर

जर्मनी की हानियाँ

ऑस्ट्रिया को इटली के पक्ष में दक्षिणी टायरौल (Tyrol) अर्थात् उत्तरी

---

१. पाँच वर्ष के वाद-विवाद और संघर्ष के पश्चात् यह बन्दरगाह अन्त में लिथुआनिया (Lithuania) को दे दिया गया और इसको स्वतन्त्र बन्दरगाह मान लिया गया। १९३९ में पुनः जर्मनी ने इस बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया।

२. इस प्रकार पूर्वी प्रशा का सम्बन्ध प्राचीन ब्रेन्डेनवर्ग (Old Brandenburg) से कट गया।

६. १९२० में पूर्वी प्रशा ने जर्मनी में मिल जाना निश्चित किया। उसी प्रकार मार्च १९२१ में उत्तरी साइलीशिया (Upper Silecia) ने भी जर्मनी से मिलाया जाना निश्चित किया। किन्तु पोलैण्ड (Poland) ने फ्रांस की सहायता पर जर्मनी में इस भाग के मिलाये जाने का विरोध किया; अतः राष्ट्रसंघ ने उस समस्या पर अपना निर्णय दिया और संशोधन किया। इस निर्णय के फलस्वरूप पोलैण्ड को भारी औद्योगिक महत्त्व का क्षेत्र मिल गया।

४. जर्मनी के उपनिवेशों और उसके समुद्र पार के अधिकृत प्रदेश ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, न्यूजीलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और बेल्जियम में बाँट दिये गये और उनको केवल संरक्षण में रखा गया तथा निश्चित हुआ कि ज्योंही उपनिवेश तथा अन्य अधिकृत प्रदेश स्वशासन के योग्य हो जायें, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाय।

५. अध्याय ११ देखिए।

६. सार की घाटी (Saar Valley) के जर्मन ज़िले में जनवरी १९३५ में जनमत संग्रह हुआ जिसमें भारी बहुमत ने निश्चित क्रिया कि उस ज़िले को जर्मनी से मिला दिया जाय। अतः उक्त निर्णय के अनुसार सार घाटी का ज़िला जर्मनी में मिला दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एडिज (Adige) और ट्रेण्टिनो (Trentino), ट्रीस्ट (Trieste) और इस्ट्रिया (Istria) छोड़ने पड़े तथा उसने इटली को चेर्सो (Cherso) और लूसिन (Lussin) के द्वीप भी दिये। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया को यूगोस्लाविया के पक्ष में बोस्निआ (Bosnia) और हर्ज़ेगोविना (Herzegovina) तथा डालमेशिया का समुद्री किनारा तथा अन्य कई टापू देने पड़े। उधर ऑस्ट्रिया ने जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia)[1] को बोहेमिया (Bohemia), मोरेविया (Moravia) और साइलीशिया का कुछ भू-भाग तथा दक्षिणी प्रान्तों का कुछ भू-भाग दिया। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया से पोलैण्ड को गेलीशिया (Galicia) और रूमानिया को बुकोविना (Bukovina) दिलवाये गये। इस प्रकार ऑस्ट्रिया का पूर्ण विघटन हो गया और जहाँ पहले ऑस्ट्रिया की जनसंख्या ३ करोड़ १० लाख थी, अब उसकी जनसंख्या केवल ६० लाख जर्मन नागरिकों की रह गई जो वियना के चारों ओर फैली हुई थी। उधर यह भी डर था कि कहीं ऑस्ट्रिया की ६० लाख जर्मन नागरिकों की जनसंख्या जर्मनी के साथ मिलने की इच्छा व्यक्त न कर बैठे और फ्रांस को इस सम्भावना से पर्याप्त भय था—इसलिए इस सन्धि (Treaty of Trianon) में यह धारा रख दी गई थी कि ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रसंघ उत्तरदायी होगा। उक्त सन्धि में यह भी निश्चित किया गया था कि यदि राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् (Council of the League) पूर्वसम्मत निर्णय द्वारा निश्चित करेगी तभी जर्मनी में ऑस्ट्रिया का विलीनीकरण हो सकेगा।[2]

ऑस्ट्रिया के समान ही हंगरी का भी विघटन हुआ। जहाँ युद्ध से पहले उसकी जनसंख्या २ करोड़ १० लाख थी, युद्ध के पश्चात् उसकी जनसंख्या केवल ८० लाख रह गई थी। हंगरी से ट्रान्सिलवानिया (Transylvania) छीनकर रूमानिया को दिला दिया गया; क्रोशिया, यूगोस्लाविया को दिला दिया गया; बानात (Banat) का ज़िला रूमानिया और यूगोस्लाविया को दिला दिया गया और स्लोवाक (Slovak) के प्रान्त जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) को दिला दिए गए।

बल्गेरिया (Bulgaria) की भी कम हानि नहीं हुई; उसका सारा ऐजियन सागर का किनारा (Aegean Coast) ग्रीस के अधिकार मे आ गया और उसके कुछ महत्त्वपूर्ण पश्चिमी भू-भाग यूगोस्लाविया (Yugoslavia) को मिल गए। लॉसेन (Lausanne) की सन्धि द्वारा तुर्की के अधिकार में से सीरिया (Syria), फ़िलिस्तीन (Palestine), मैसोपोटामिया (Mesopotamia) निकल गए तथा मिस्र के ऊपर जो तुर्की का नाममात्र का अधिकार था वह भी समाप्त हो गया।[3] किन्तु कुस्तुन्तुनिया पर अब भी तुर्की का ही अधिकार बना रहा यद्यपि मित्र-राष्ट्रों ने इसका पर्याप्त

---

१. नाजीवादी जर्मनी ने सितम्बर १९३८ में और मार्च १९३८ में युद्ध का आतंक दिखा कर इन भागों पर अधिकार कर लिया।

२. नाजीवादी जर्मनी ने मार्च १९३८ में ऑस्ट्रिया को जर्मनी में मिला लिया। इसमें षड्यन्त्र और युद्ध की धमकियों का प्रयोग किया गया।

३. यदि सेवर्स की सन्धि (Treaty of Sevres) प्रभावी होती तो तुर्की को आर्मीनिया (Armenia), स्मर्ना (Smyrna) और कुर्दिस्तान (Kurdistan) से भी वंचित होना पड़ता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध किया। वास्तव में इसका कारण यह रहा कि कोई अन्य राष्ट्र कुस्तुन्तुनिया को लेने वाला ही न रह गया था क्योंकि रूस पहले ही इस सन्धि वार्ता से बाहर था।

पेरिस सम्मेलन में निम्नलिखित सैनिक और आर्थिक शर्तें निश्चित हुईं। जर्मन सेना की संख्या कम करके एक लाख कर दी गई और अन्य लोगों को सैनिक शिक्षा देने की मनाही कर दी गई थी।[1] राइन नदी के पूर्व में ३० वर्ग मील भूमि पर जर्मन सैनिक रह न सकेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय किया गया कि जर्मनी की तोपों और युद्ध-तोपों की संख्या में भारी कमी की जायगी; तथा हैलीगोलैण्ड (Heligoland) की सैनिक चौकियों को तोड़ दिया जायगा। यह भी निश्चय हुआ कि जर्मनी का वृहत् बेड़ा (High Seas Fleet) जो युद्ध-स्थगन के दिन रोक लिया गया था ग्रेट ब्रिटेन के आधेकार में दे दिया जायेगा।[2] इसके अतिरिक्त जर्मनी को-व्यापारी बेड़ा भी त्यागना पड़ा। जर्मनी को मजबूर किया गया कि वह अपने देश के कोयले के भण्डार में से पर्याप्त मात्रा में कोयला फ्रांस, बेल्जियम और इटली को दे। इसके अतिरिक्त जर्मनी को बाध्य किया गया कि वह नागरिकों की युद्ध-काल में जो कुछ हानि हुई है उसकी भी पूर्ति करे;[3] और इस मद में मृत सैनिकों के परिवारों को जो कुछ पेंशनों के रूप में आर्थिक सहायता देनी पड़ी उसको भी शामिल कर लिया गया। यह भी निश्चित हुआ कि सन्धि की शर्तों को पूरा करने की जमानत के रूप में मित्रराष्ट्र १५ वर्षों तक राइन (Rhine) नदी के वाम पार्श्व का समस्त भू-भाग अपने अधिकार में किए रहें।

सैनिक और आर्थिक शर्तें

उसी प्रकार ऑस्ट्रिया की सेना की संख्या में कमी कर के ३०,००० कर दी गई और भविष्य में अनिवार्य सैनिक भर्ती के लिए मनाही कर दी गई। युद्ध-सामग्री का निर्माण सैनिक और नौसैनिक वायुयानों की संख्या आदि में भी कमी

---

१. राष्ट्रपति विल्सन के चौदह प्रस्तावों में चौथा प्रस्ताव यह था—"सभी राष्ट्रों को गारंटी करनी होगी कि राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों में इस सीमा तक कमी कर दी जायगी कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकतानुसार ही शस्त्रास्त्र संचय कर सके।" किन्तु फिर भी फ्रांस और कुछ अन्य छोटे यूरोपीय देशों में जबर्दस्ती सैनिक भर्ती चलती रही। १९२१ में फ्रांस की सेना में ७,३६,००० सैनिक थे जिनमें ३,९०,००० तो स्वदेश में थे किन्तु ९५,००० सैनिक अन्य देशों की भूमि पर अधिकार करने वाली सेनाओं में प्रयुक्त थे।

२. जर्मनी का समुद्री बेड़ा जर्मनी के एडमिरल ने युद्ध-विराम सन्धि के कुछ ही दिन पूर्व स्कापा फ्लो (Scapa Flow) में नष्ट कर दिया था।

३. युद्ध में मित्रराष्ट्रीय नागरिकों की कितनी हानि हुई है और इस सम्बन्ध में जर्मनी मित्रराष्ट्रों को कितनी धनराशि दे, यह निर्णय एक आयोग को करना था। मित्रदेशों के राजनीतिज्ञों को जितने भी निर्णय करने पड़े उन सब में यह निर्णय अत्यन्त कठिन और उलझा हुआ था। १९२० और १९२२ के बीच इस विवाद को सुलझाने के लिए १८ सम्मेलन हुए। १९२४ तक इस सम्बन्ध में कोई अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सका। अन्त में डौस योजना (Dawes Plan) के अनुसार १९२४ में इस समस्या का समाधान हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी गई। इसी प्रकार की पाबन्दियाँ हंगरी और बल्गेरिया के विरुद्ध भी लगा दी गईं। हंगरी की सेना की संख्या में कमी करके ३५,००० कर दी गई और बल्गेरिया को केवल २०,००० सैनिक रखने की आज्ञा दी गई। इसके अतिरिक्त बल्गेरिया को युद्ध में हुई हानि की पूर्ति करने के लिए भी बाध्य किया गया।

सन्धि में कतिपय ऐसी धाराएँ रखी गईं जिन के द्वारा बेल्जियम, पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया और यूगोस्लाविया की स्वतन्त्रता को मान लिया गया। जर्मनी को युद्ध का दोषी देश स्वीकार किया गया और सन्धि में एक ऐसी धारा भी रखी गई जिसके द्वारा चाहा गया कि भूतपूर्व कैसर तथा अन्य युद्ध को छेड़ने वाले दोषियों को जर्मनी मित्रराष्ट्रों के हवाले कर दे जिनपर मित्रराष्ट्र मुकद्दमा चलाएँ और दोषी प्रमाणित होने पर जिन्हें न्यायिक दण्ड दिया जा सके।

राजनीतिक धाराएँ

अन्ततः वार्साई की सन्धि में राष्ट्रसंघ की स्थापना सम्बन्धी धारा भी जोड़ दी गई।

सभी इस तथ्य को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि सन्धि की शर्तें कठोर थीं। किन्तु यह भी स्वीकार करना ही होगा कि वार्साई की सन्धि ऐसे वातावरण में की गई थी जब कि सभी देश अत्यन्त उत्तेजित थे और जर्मनी के विरुद्ध सभी लोगों में अत्यधिक कटुता थी और किसी भी लोकतन्त्रात्मक देश के राजनीतिज्ञ के लिए यह सरल नहीं होता कि वह लोकप्रिय भावनाओं का निरादर कर सके। जिन जर्मन प्रतिनिधियों ने पेरिस सम्मेलन में भाग लिया था और जो सन्धि की शर्तें प्राप्त करने के लिए पेरिस गये थे उन्होंने अत्यन्त दुःख के साथ कहा था; "हमें अहसास है कि सभी राष्ट्र, जो इस सम्मेलन में भाग ले रहे हैं, हमें घृणा के वातावरण में इतनी कठोर शर्तें मानने के लिए बाध्य कर रहे हैं।" श्री लायड जार्ज (Mr. Loyd George) ने भी इस बात को एक अन्य अवसर पर दूसरे ढंग से व्यक्त किया :

"सन्धि की इन शर्तों को स्याही से नहीं अपितु युद्ध में मृत अनेक वीरों के खून से लिखा गया है। हम सभी को भगवान् की इस कठोर आज्ञा का पालन करना ही होगा। हमें सदैव के लिए निश्चिन्त हो जाना होगा कि जिन लोगों ने इस युद्ध को छेड़कर सारे संसार को दुःख में डाला, वे पुनः ऐसा न कर सकें। जर्मनी के प्रतिनिधि कहते हैं कि वे इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। उनके अखबार भी यही कह रहे हैं कि उन्हें हस्ताक्षर नहीं करने चाहिएँ। जर्मनी के राजनीतिज्ञों का भी यही कहना है। किन्तु हमारा विनम्र निवेदन है कि भद्र पुरुषो! आप को हस्ताक्षर करने ही पड़ेंगे। यदि आप वार्साई (Versailles) नगर में इन शर्तों पर हस्ताक्षर नहीं भी करेंगे तो आप को बर्लिन (Berlin) में तो अवश्य ही इन शर्तों पर हस्ताक्षर करना होगा।"[1]

संक्षेप में विजेता राष्ट्रों ने जर्मनी को मनमानी शर्तें मानने पर मजबूर किया।

---

1. *The Times History of the War*; vol. XXI, पृष्ठ १६९ से उद्धृत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. दोनों महायुद्धों के बीच का इतिहास (१९१९-३९)

इस विनाशकारी महायुद्ध में[1] असंख्य प्राणी मारे गये, वेशुमार धन व्यय हुआ और धुरी राष्ट्रों (Central powers) की पराजय हुई और सभी देश, जिनमें विजेता और पराजित सब देश सम्मिलित थे, अपनी-अपनी हानिजन्य क्षतियों की पूर्ति में लग गये। सभी देशों के सामने अनेक आन्तरिक समस्याएँ थी और सभी को अपने-अपने पास-पड़ोस के अथवा विदेशों से अपने-अपने सम्बन्धों का समायोजन करना था।

वर्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) के बाद से १९३९ में जो दूसरा विश्वयुद्ध हुआ तब तक के २० वर्षों में सभी देशों के सामने जिस प्रकार की जटिल राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ आईं उनका सविस्तार वर्णन इस छोटी सी पुस्तक में करना प्रायः असम्भव होगा। वास्तव में १९१९ से १९३९ तक के बीस वर्ष राजनीतिक और सामाजिक अशान्ति एवं कर्महीनता के वर्ष थे। इन दिनों सभी देशों में अव्यवस्था, असन्तोष, आन्दोलन और बेचैनी का बोलबाला रहा यह बताना अत्यन्त कठिन है कि इस व्यापक असन्तोष का कारण क्या था। ऐसा प्रतीत होता था मानो पुराना संसार समाप्त हो चुका था और एक ऐसा नया युग आ गया था जिसकी कल्पना आसानी से नहीं की जा सकती।

१९१९ से लेकर १९३९ तक के २० वर्षों के युग को हम एक-एक दशक के दो युगों में बाँट सकते हैं। इन दोनों दशकों के बीच के १९२९ से लेकर १९३१ के संसारव्यापी आर्थिक अवसाद (World Economic Depression) को दोनों युगों के मध्य का विराम-चिन्ह मानना पड़ेगा। द्वितीय दशक के युग में नाजी जर्मनी का आश्चर्यजनक उत्थान हुआ। और प्रथम दशक में सभी देश उन राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं में उलझे रहे जिनका जन्म युद्धजन्य अव्यवस्था के कारण अथवा सन्धि की शर्तों के प्रादेशिक और आर्थिक पहलुओं की जटिलता के कारण हुआ था। कारण यह था कि यद्यपि युद्धग्रस्त देशों में शान्ति की घोषणा तो हो गई किन्तु उनमें वास्तविक शान्ति न आ सकी। अनेक समस्याएँ यूँ ही छोड़ दी गई थीं। कई प्रकार से सन्धि की शर्तों का अपमान भी किया गया। महायुद्ध के बाद भी कई युद्ध हुए और कई स्थानों पर संघर्ष हुए थे। जिन राज्यों की हानियाँ हुई थीं उनमें रोष था। जिन राष्ट्रों को सन्धि से लाभ हुए थे उनके लाभ वास्तव में पर्याप्त न थे। मित्र देशों (Allies) में भी आपसी मतभेद थे और राष्ट्रों में भी आपसी मतभेद थे। चूँकि राष्ट्रसंघ के सदस्यों में न तो संयुक्त राज्य अमेरिका था, न रूस था और न जर्मनी था इसलिए राष्ट्रसंघ को विभिन्न राज्यों के मतभेदों को दूर कराने में पर्याप्त कठिनाई

---

१. इस युद्ध में दोनों ओर से कितने आदमी मारे गये और कितना धन व्यय हुआ इस सम्बन्ध में आगणनों में मतभेद है। कहा जाता है कि एल्सास लॉरेन (Alsace Lorraine) के प्रान्त को पुनः हस्तगत करने में ही फ्रांस के इतने सैनिक मारे गये जितनी उक्त प्रान्त की जनसंख्या नहीं थी। कहा जाता है कि ब्रिटिश साम्राज्य ने इस युद्ध में १३ अरब पौण्ड व्यय किया। सभी देशों के मृत या विकलांग व्यक्तियों की संख्या २ करोड़ के लगभग अनुमान की जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अनुभव हो रहा था। पश्चिमी यूरोप में अब भी फ्रांस और जर्मनी के बीच मन-मुटाव था जो एक ओर तो इस कारण बढ़ रहा था कि जर्मनी युद्ध की हानि-पूर्ति की रकम अदा करने में असमर्थ था और दूसरे १९२३ में रूर (Ruhr) के क्षेत्र में

दखल करने वाली फ्रेंच सेनाओं से जर्मनी की प्रायः झड़पें हो जाया करती थीं।[1] इसके अतिरिक्त फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन के बीच में भी मन-मुटाव था जिसका किसी सीमा तक कारण यही था कि फ्रांस ने जर्मनी के रूर (Ruhr) क्षेत्र में अधिकार कर लिया था। पश्चिमी यूरोप में आम तौर पर असन्तोष पाया जाता था और सभी के हृदयों में कटुता के भाव थे। इस व्यक्त और प्रकट असन्तोष तथा कटुता का एक मुख्य कारण यह था कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने वर्साई की सन्धि की शर्तों को पूरा नहीं किया और उसने राष्ट्रसंघ की सदस्यता स्वीकार नहीं की। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका की त्रिसूत्री सन्धि को भी पूरा नहीं किया जिसके

---

१. फ्रांस का दावा था कि वह रूर (Ruhr) नामक जर्मनी के प्रसिद्ध जिले पर इस आधार पर अधिकार कर सकता था कि जर्मनी ने युद्ध के हर्जाने की रकम अदा नहीं की थी। राइन (Rhine) नदी के दाहिने किनारे पर खानों का यह प्रसिद्ध जिला अवस्थित था। फ्रांस की इस इच्छा का चारों ओर से तीव्र विरोध हुआ और रूर (Ruhr) प्रान्त के स्थानीय लोगों की फ्रांस के सैनिकों से झड़पें होती रहती थीं। १९२४ में डौस योजना (Dawes Plan) बनी जिसने युद्ध हर्जाने की रकम की अदायगी को नये प्रकार से हल किया। इसके पश्चात् फ्रांस ने पहले तो उक्त जिले पर से आर्थिक नियन्त्रण उठा लिया और उसके पश्चात् शनैः-शनैः उसने अपना सैनिक नियन्त्रण भी ढीला कर दिया और अगस्त १९२५ तक फ्रांस ने अपनी सारी सेना रूर (Ruhr) नामक जिले से हटा ली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार राष्ट्रपति विल्सन को आशा थी कि वह फ्रांस की 'भविष्य में सुरक्षा' की माँग को सन्तुष्ट कर सकेंगे।

दूसरी ओर पूर्वी यूरोप में प्रादेशिक हेर-फेरों के कारण प्रत्येक देश में हलचल सी मची हुई थी। इसके साथ ही प्रत्येक देश में आर्थिक संकट भी था। यूरोप के पूर्व में प्रायः ८ करोड़ व्यक्ति अपने देशों की नागरिकता त्यागने पर तथा दूसरे देश की नागरिकता स्वीकार करने पर बाध्य हुए थे। वास्तव में शायद ही कोई देश अछूता बचा हो जिसमें प्रादेशिक हेर-फेर न हुए हों या जिसकी जनसंख्या इधर से उधर न आई गई हो। उत्तरी साइलेशिया (Upper Silesia) तथा डेन्जिग (Danzig) के ऊपर तथा प्रशा के बीच में होकर जो मार्ग (Corridor) प्रशा को पोलैण्ड से मिलाता था, उन सब के ऊपर जर्मनी और पोलैण्ड में भारी वैमनस्य था, क्योंकि इन्हीं प्रदेशों के सहारे पोलैण्ड को विस्टुला (Vistula) पर अधिकार प्राप्त होता था और समुद्र से भी उसका सीधा सम्बन्ध बना हुआ था। बाल्टिक सागर की निकटवर्ती चार रियासतों को स्वतन्त्र स्वरूप प्रदान कर देने के कारण इन चारों रियासतों अर्थात् फ़िनलैण्ड (Finland), एस्टोनिया (Estonia), लैट्विया (Latvia) और लिथुआनिया (Lithuania) में सदैव अनबन-सी रहती थी और प्रायः छोटी-मोटी झड़पें भी हो जाया करती थीं। फ़िनलैण्ड (Finland) का स्वीडन (Sweden) से आलैंड द्वीपसमूह (Aaland Islands)[1] की स्वतन्त्र सत्ता के सम्बन्ध में झगड़ा था। इधर फ़िनलैण्ड (Finland) का रूस (Russia) से भी कैरेलिया (Karelia) के अधिकार के सम्बन्ध में झगड़ा था। विलना(Vilna)नामक नगर के स्वामित्व के प्रश्न को लेकर लिथुआनिया (Lithuania) की पोलैण्ड (Poland) से लड़ाई चल पड़ी और लियुआनिया ने १९२३ में पेरिस की सन्धियों की उपेक्षा करके मेमिल (Memel) नामक नगर पर अधिकार कर लिया। रूस में एक तो स्वयं ही आन्तरिक गड़बड़ी और गृह-युद्ध चल रहा था फिर फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन बढ़ावा दे रहे थे कि रूस में प्रतिक्रान्ति (Counter-revolution) हो अतः रूस अत्यन्त सतर्कता के साथ इन प्रयत्नों की रोक-थाम कर रहा था। इसके अतिरिक्त रूस को यह भी चिन्ता थी कि वह अपने दूरस्थ प्रान्तों पर अधिकार करे और एशिया एवं यूरोप में साम्यवादी प्रचार करे।

सेंट-जर्मेन (Saint-Germain) की सन्धि के कारण ऑस्ट्रिया की राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में भारी हानि हुई थी। वास्तव में ऑस्ट्रिया का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता किन्तु उसको जर्मनी से मिलाए जाने की योजना बनी। दुर्भाग्य-वश वह योजना भी पूरी न होने पाई। हंगरी (Hungary) का भी पर्याप्त मान-मर्दन हो चुका था और उसके दिल में आग सुलग रही थी कि ट्रायनोन (Trainon) की सन्धि ने उसको कई कीमती प्रान्तों से वंचित कर दिया जो यूगोस्लाविया (Yugo-slavia), रूमानिया (Rumania) और जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) में

१. राष्ट्रसंघ ने १९२१ में आलैंड द्वीपसमूह (Aaland Islands) फ़िनलैण्ड (Finland) को दे दिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलाए जा चुके थे। उधर वेसेरेबिया (Bessarabia) के प्रश्न को लेकर रूस और रूमानिया में शत्रुता थी। इधर बलगेरिया (Bulgaria), जिसके ऊपर कम दण्ड

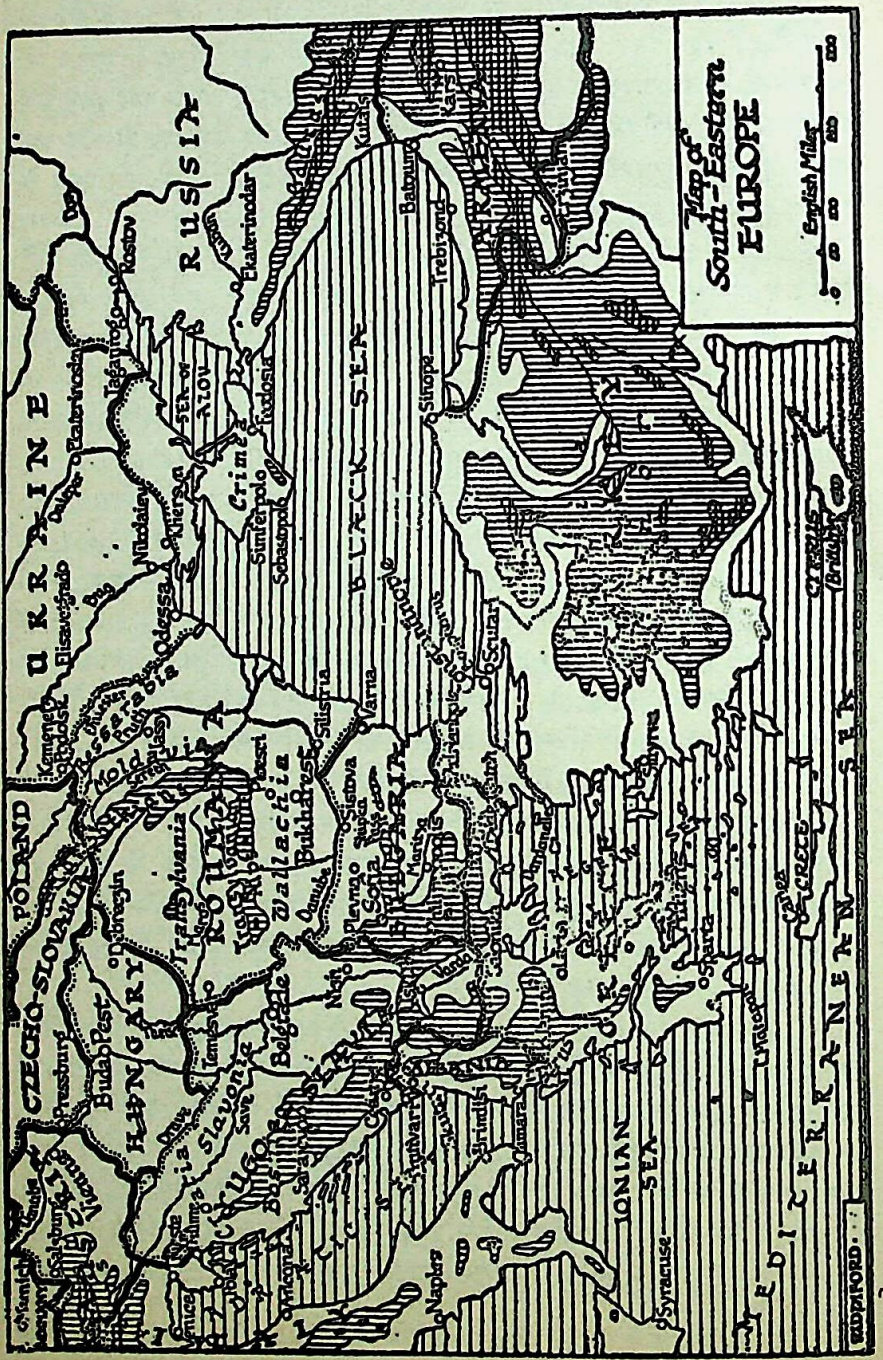
Map of South-Eastern EUROPE
English Miles
RUSSIA
UKRAINE
BLACK SEA
POLAND
CZECHO-SLOVAKIA
HUNGARY
RUMANIA
BULGARIA
GREECE
TURKEY
IONIAN SEA
MEDITERRANEAN SEA
Kursk
Kharkov
Ekaterinodar
Rostov
Taganrog
Dnepropetrovsk
Dniepr
Crimea
Simferopol
Sevastopol
Odessa
Dniester
Kishinev
Bessarabia
Prut
Sereth
Jassy
Moldavia
Galatz
Braila
Wallachia
Bukharest
Danube
Varna
Silistria
Sofia
Trajanopolis
Constantinople
Sea of Marmora
Dardanelles
Smyrna
Rhodes
Crete
Candia
Sinope
Trebizond
Batoum
Kars
Erzerum
Lemberg
Przemysl
Dukla Pass
Tarnow
Cracow
Bielitz
Teschen
Ostrau
Prerau
Pressburg
Budapest
Szegedin
Temesvar
Transylvania
Hermannstadt
Klausenburg
Debreczin
Arad
Belgrade
Save
Drave
Agram
Fiume
Laibach
Trieste
Venice
Adriatic Sea
Ancona
Rome
Naples
Syracuse
Corfu
Salonica
Monastir
Uskub
Durazzo
Scutari
Cattaro
Ragusa
Spalato
Zara
Sebenico
Fiume
Trieste
Pola
Brindisi
Otranto
Taranto
Messina
Palermo
Malta
Valetta
Gozo
Tripoli
Benghazi
Derna
Alexandria
Cairo
Port Said
Suez
Canal
Jerusalem
Beirut
Damascus
Aleppo
Mosul
Baghdad
Basra
Persian Gulf
Bushire
Bahrein
Muscat
Aden
Red Sea
Mecca
Medina
Jidda
Hodeida
Sanaa
Mokha
Abyssinia
Addis Ababa
Harrar
Somaliland
Berbera
Zeila
Gulf of Aden
Socotra
Suakin
Khartoum
Omdurman
Port Sudan
Kassala
Asmara
Massawa
Eritrea
Italian Somaliland
Mogadishu
Kismayu
Obbia
Jubaland
Italian East Africa
Tobruk
Bardia
Sollum
Egypt
Libya
Cyrenaica
Tripolitania
Fezzan
Algeria
Tunisia
Sfax
Gafsa
Gabes
Kairouan
Bizerta
Tunis
Sousse
Sicily
Catania
Messina
Reggio
Taranto
Brindisi
Bari
Foggia
Pescara
Ancona
Rimini
Ravenna
Venice
Padua
Verona
Milan
Turin
Genoa
Leghorn
Pisa
Florence
Perugia
Rome
Naples
Gaeta
Capua
Salerno
Sardinia
Corsica
Bastia
Ajaccio
Bonifacio
Elba
Piombino
Leghorn
Genoa
Nice
Marseilles
Toulon
Cannes
Monaco
Menton
Ventimiglia
Mentone
Corsica
Sardinia
Balearic Islands
Majorca
Minorca
Ivica
Barcelona
Tarragona
Valencia
Alicante
Cartagena
Almeria
Malaga
Gibraltar
Algeciras
Tangier
Tetuan
Ceuta
Melilla
Oran
Algiers
Bougie
Philippeville
Bona
Constantine
Biskra
Tebessa
Gafsa
Gabes
Tripoli
Misurata
Homs
Bengasi
Derna
Tobruk
Sollum

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाए जिससे उसे एजियन सागर (Aegean) में मुक्त प्रवेश प्राप्त हो जाए। इस प्रकार बल्गेरिया चाहता था कि राष्ट्रीयता का आधार छोड़कर उसे बल्गर प्रजा (Bulgarians) वापस मिल जाय, जिन्हें यूनानियों (Greeks) तथा सर्बियनों (Serbians) के साथ मिल जाना अच्छा नहीं लग रहा था। इधर बल्कान प्रदेश में भी मैसीडोनिया (Macedonia) में तूफ़ान उमड़ रहा था। एड्रियाटिक सागर के तटीय भू-भागों के सम्बन्ध में भी इटली, यूगोस्लाविया, यूनान और अल्बानिया के बीच संघर्ष था। १९०८ में अल्बानिया को यूरोपीय शक्तियों ने स्वतन्त्र मान लिया था, किन्तु १९१९ में यूरोपीय शक्तियों ने ही उस स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया और अल्बानिया का समस्त भू-भाग इटली, सर्बिया और यूनान में बाँट लिया गया। अपनी सत्ता के विनाश से क्रुद्ध होकर और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षार्थ अल्बानिया ने शस्त्र उठा लिए। छोटे से युद्ध के पश्चात् १९२० में बल्गेरिया ने पुनः अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली।

पेरिस सम्मेलन में फ्यूम (Fiume) न पाकर इटली में भारी निराशा थी अतः सैनिक कवि डी० एनन्जियो (D' Annunzio) ने फ्यूम (Fiume) नगर पर जबर्दस्ती अधिकार कर लिया और इस कारण इटली और यूगोस्लाविया के सम्बन्ध खराब हो गए।

सेवर्स की सन्धि (Treaty of Sevres) की शर्तों के कारण तुर्कों में भी भारी रोष था अतः तुर्की के देशभक्तों ने हथियार उठा लिए और यूनानियों को एशिया माइनर से खदेड़कर बाहर कर दिया। शीघ्र ही इस्लामी संसार में, विशेषकर मिस्र (Egypt) और अरब (Arabia) में राष्ट्रवादियों ने विद्रोह किए। भारत में भी विद्रोह का तूफान खड़ा हो गया। सीरिया (Syria) के द्रूस लोगों (Druses) और मोरक्को (Morocco) के रीफी लोगों (Rifis) ने विद्रोह कर दिया और साथ ही कीनिया (Kenya) तथा अफ्रीका के अन्य भागों में भी आन्दोलन आरम्भ हो गए। सुदूर पूर्व से भी चीनी लोगों ने वर्साई की सन्धि की शर्तों की अवहेलना कर तथा शांटुंग (Shantung) के जापान को दे दिए जाने पर कड़ा विरोध प्रदर्शित किया।

पुनर्गठित यूरोप में जो नये राज्य बने उनमें अल्पसंख्यकों की समस्या भी अत्यन्त विकट थी।[1] यद्यपि सन्धियों में ये शर्तें रखी गई थीं कि अल्पसंख्यकों को भाषा और धर्म की पूरी स्वतन्त्रता दी जाएगी किन्तु इन आश्वासनों की पूर्ण अवहेलना की गई। इसलिए रूमानिया के हंगरीवासी, जेकोस्लोवाकिया के जर्मन और

---

१. इटली के नवाधिकृत भागों में प्रायः तीन लाख ऑस्ट्रियन नागरिक रहते थे और प्रायः इतने ही स्लोवीन (Slovenes), क्रोट (Croats) और डालमेशियन (Dalmatians) भी रहा करते थे। जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) तथा अन्य जिलों में प्रायः तीस लाख जर्मन नागरिक रहते थे, प्रायः ५ लाख हंगेरियन (Hungarians) रहते थे और प्रायः पाँच लाख रूथीनियन (Ruthenians) भी थे। पोलैण्ड में भी प्रायः ३० लाख रूथीनियन थे और बड़ी संख्या में श्वेत रूसी (White Russians) थे। रूमानिया (Rumania) में भी पर्याप्त संख्या में हंगेरियन (Hungarians), जर्मन और सर्ब (Serbs) लोग रहते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूथीनियन नागरिक, ग्रीस में बसने वाले बल्गर (Bulgarians) नागरिक तथा यूगो-स्लाविया में बसने वाले क्रोट (Croats) अथवा मोंटीनीग्रिन लोग (Montenegrins) अत्यन्त असन्तुष्ट थे। सबसे कठिन समस्या यूरोप के उक्त भागों में शरणार्थियों की थी। कुछ राज्यों की सरकारों ने विभिन्न सन्धियों की जातिगत न्याययुक्तता को सिद्ध करने के लिए जनसंख्या की अदला-बदली को उचित स्वीकार कर लिया, इस कारण भी शरणार्थियों की समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया। किन्तु इन शरणार्थियों के अतिरिक्त भी तो लाखों व्यक्ति बेघर-बार घूम रहे थे जिन्हें युद्ध ने आश्रयहीन कर डाला था। एशिया माइनर से अनेक आर्मीनियन और यूनानी लोग निकाल दिए गए थे तथा अनेक बल्गर (Bulgarians), रूसी और तुर्क लोग भी इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। इन बेगिनती शरणार्थियों के खिलाने-पिलाने और रहने की भारी समस्याएँ थीं। इन समस्याओं के अतिरिक्त इस प्रश्न से सम्बन्धित अनेक राजनैतिक और आर्थिक समस्याएँ भी थीं।

इन समस्याओं के अतिरिक्त यूरोप और एशिया में बॉल्शेविज्म (Bolshevism) का भय भी छाया हुआ था। प्रायः प्रत्येक राज्य में राजनीतिक उलट-फेर हुए। कई देशों में राजाओं को राजगद्दी से उतार दिया गया और राजवंश के उत्तराधिकारियों को देश छोड़ने पर मजबूर किया गया।

राजनीतिक कठिनाइयों की अपेक्षा आर्थिक कठिनाइयाँ अधिक थीं। प्रायः सारे संसार में अभूतपूर्व औद्योगिक और आर्थिक अवसाद की काली चादर बिछी हुई थी। युद्ध के कारण बाजारों, उद्योगों और उत्पादन में अस्थिरता पैदा हो गई थी, अतः युद्ध के बाद जो शान्ति हुई उसने व्यवस्थापना सम्बन्धी नई समस्याएँ उत्पन्न कर दीं। ऑस्ट्रिया-हंगरी की आर्थिक दृष्टि से मौत हो चुकी थी, रूस विपथी हो चुका था और जर्मनी अत्यन्त नाजुक दौर से गुजर रहा था। सारे यूरोप में स्फीत पत्र मुद्राओं (Inflated Paper Currencies), भारी राष्ट्रीय ऋणों और कमर तोड़ देने वाले करों के बोझ के कारण लोग परेशान थे। सभी आवश्यक चीजों की कीमतें अत्यधिक ऊँची थीं और बेरोजगारी से सभी लोग दुःखी थे। उद्योगों की दशा भी बहुत ही खराब थी। अतः मित्र-राष्ट्रीय ऋणों (Inter-allied Debts) का भी प्रश्न था और युद्ध की हानि-पूर्ति सम्बन्धी धनराशि को चुकाने का भी अत्यन्त पेचीदा प्रश्न था। जहाँ-जहाँ आर्थिक असन्तोष था वहाँ-वहाँ राजनैतिक विद्रोह भी चले, श्रमिक वर्ग और पूंजीपति वर्ग में संघर्ष चला और हड़तालें तो प्रायः रोज सुनने में आने लगीं। सर्वत्र असन्तोष और भ्रामकता थी तथा सभी को कुछ-न-कुछ शिकायत थी।

किन्तु धीरे-धीरे युद्धोत्तर विषाद कम होता गया और सभी लोगों ने नयी परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को बनाने का प्रयत्न किया। सभी ने अपनी वर्तमान स्थिति को स्वीकार करना प्रारम्भ किया। अल्बानिया अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करके प्रसन्न था।[1] आयरलैण्ड को उपनिवेश का दर्जा प्राप्त हो चुका था। इटली को

---

१. किन्तु अप्रैल १९३९ में इटली ने पुनः अल्बानिया पर अधिकार कर लिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़्यूम (Fiume) पर अधिकार दे दिया गया; लिथुआनिया को मेमेल (Memel) मिल गया और पोलैण्ड को विल्ना (Vilna) प्राप्त हो गया था। डॉरपैट (Dorpat)[1], रीगा (Riga)[2] और मास्को (Moscow)[3] की सन्धियों के कारण फ़िनलैण्ड (Finland), एस्टोनिया (Estonia), लैट्विया (Latvia) और रूस-पोलैण्ड की सीमाओं और स्वतन्त्रता की गारंटी हो गई। तुर्की[4] के साथ भी सन्धि हो गई क्योंकि उसने भी अल्बानिया (Albania) के समान ही अपनी शक्ति का परिचय दिया था अतः उसकी माँगों पर उचित विचार किया गया। जापान ने वायदा कर लिया कि वह शाँटुंग पर से अधिकार त्याग देगा। मिस्र को स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी। फ्रांस ने जर्मनी का रूर (Ruhr) का जिला त्याग दिया था और १९२५ में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और इटली के बीच लोकार्नो (Locarno) में परस्पर सुरक्षा और अनाक्रमण की सन्धि हुई जिससे फ्रांस और जर्मनी के पुराने सीमा-विवाद सदैव के लिए तय हो गये। जब जर्मनी ने यह मान लिया कि एल्सास-लॉरेन (Alsace Lorraine) पर फ्रांस का ही अधिकार होना चाहिए तब तो फ्रांस और जर्मनी के बीच की पुरानी शत्रुता का अन्त ही हो गया।

डौस (Dawes) की योजना[5] के फलस्वरूप युद्ध के हर्जाने की रकम की

---

१. अक्तूबर १९२० में रूस और फ़िनलैण्ड के बीच की सन्धि; पुनः जून १९२१ में रूस और एस्टोनिया के बीच की सन्धि।

२. अगस्त १९२० में रूस और लैटविया के बीच की सन्धि; मार्च १९२१ में रूस और पोलैण्ड के बीच की सन्धि।

३. जुलाई १९२० में रूस और लिथुआनिया के बीच की सन्धि।

४. १९२३ की लॉसेन (Lausanne) की सन्धि।

५. युद्ध के हर्जाने की जितनी रकम जर्मनी से वसूल करना निश्चित किया गया था, वह हर प्रकार से जर्मनी की शक्ति से बाहर थी। १९२४ में इस प्रश्न को निबटाने के लिए एक आयोग की स्थापना की गई जिसका चेयरमैन संयुक्त राज्य अमेरिका निवासी जनरल डौस (General Dawes) था। उसने युद्ध के हर्जाने की रकम को इस सीमा तक कर दिया कि अब वह जर्मनी की वित्तीय और आर्थिक क्षमता के अनुसार थी। युद्ध के हर्जाने की रकम किस्तों में अदा करनी थी और किस्तों की रकम भी प्रति वर्ष कम होती जाती थी। डौस योजना के अनुसार फ्रांस को रूर (Ruhr) का जिला छोड़ना था तथा जर्मनी को आन्तरिक प्रतिभूतियों के बल पर एक बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय ऋण मिलने वाला था तथा उस योजना के कुछ और भी पहलू थे जिनसे जर्मनी को राहत पहुँचाना अभीष्ट था। जर्मनी से युद्ध के हर्जाने के रूप में जो कुछ धनराशि प्राप्त होने को थी उसका ५० प्रतिशत फ्रांस को मिलना था; ग्रेट ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेशों को उस धनराशि का २४ प्रतिशत प्राप्त होना था; बेल्जियम को १२ प्रतिशत धन प्राप्त होना था तथा सवा दो प्रतिशत संयुक्त राज्य अमेरिका को मिलना था और साढे सात प्रतिशत इटली को दिया जाना था। शेष धनराशि अन्य युद्ध-ग्रस्त देशों को मिलने वाली थी। जर्मनी और रूस ने आपसी समझौते द्वारा युद्ध के हर्जाने की रकम का आदान-प्रदान त्याग दिया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके मित्र-राष्ट्रों के बीच डौस योजना (Dawes Plan) के अनुसार ऋण सम्बन्धी जो निर्णय हुए, उनके फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका को उस धनराशि का, जो जर्मनी प्रतिवर्ष युद्ध के रूप में देगा, प्रायः ६५ प्रतिशत धन प्राप्त होता रहेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदायगी की समस्या सरल हो गई थी। १९२६ में जर्मनी राष्ट्र संघ में सम्मिलित हो गया। अब प्रायः सभी देशों में राजनीतिक और आर्थिक स्थिरता आने लगी। क्रान्तिकारी आन्दोलन ठण्डे पड़ने लगे और राष्ट्रवादी बुखार कम होने लगा। अब यूरोपीय राज्यों की सरकारें अधिक दिनों तक टिकने लगीं और उन्हें आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के अधिक अवसर प्राप्त होने लगे। यद्यपि अधिनायकों की संख्या बढ़ने लगी फिर भी वे संयम और धैर्य से काम लेने लगे। नवगठित और नव-निर्मित राज्यों की स्थिति में भी स्थायित्व आने लगा। मध्य यूरोप में अकाल और भुखमरी की अवस्था में सुधार होने लगा। व्यापारों और उद्योगों की स्थिति भी सुधरने लगी तथा बॉल्शेविज्म (Bolshevism) अथवा साम्यवाद के भूत का भय भी कम हो चला। सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ (Union of Soviet Socialist Republics) को चारों ओर से मान्यता प्राप्त होने लगी। अब संसार की शक्तियों ने गम्भीरतापूर्वक इस दिशा में सोचना प्रारम्भ किया कि विसैन्यीकरण (Disarmament) के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का कोई ठोस आधार ढूँढ़ निकाला जाय। १९२८ में १५ देशों के प्रतिनिधियों ने कैलॉग-ब्रायण्ड (Kellog-Briand) के समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसमें सभी ने 'युद्ध को शासन की नीति का साधन बनाए जाने की घोर निन्दा की' और भविष्य में युद्ध न हों, इस दिशा में सम्मिलित प्रयत्न करने का सभी ने वचन दिया।[1]

नया मानचित्र

युद्ध के पश्चात् नई संधियों की शर्तों के अनुसार यूरोप का मानचित्र युद्ध के पूर्व के मानचित्र से सर्वथा भिन्न था। ज़ार के उत्तरी बाल्टिक सागर के निकट के प्रान्तों में से काटकर चार नये स्वतन्त्र गणराज्यों की स्थापना कर दी गई थी जो निम्न थे—फ़िनलैण्ड (Finland), एस्टोनिया (Estonia), लैट्विया (Latvia) और लिथुआनिया (Lithuania)। रूस, जो अपने आपको श्रमिकों और कृषकों का समाजवादी राज्य कहता था, कई सोवियत प्रान्तों से मिलकर बना था। आजकल[2] सोवियत रूस में निम्नलिखित स्वतन्त्र गणराज्य थे—मुख्य रूस (Russia Proper), श्वेत रूस (White Russia), यूक्रेन (Ukraine), जार्जिया (Georgia), आर्मीनिया (Armenia), अजरबाइजान (Azerbaijan), तुर्कमान (Turkoman), उज़्बेक (Uzbek), तदज़िक (Tadzhik), कज़ख (Kazakh) और किरघीज (Kirghiz)। विघटित पोलैण्ड के बिखरे हुए भू-भागों को पुनः रूस, जर्मनी और ऑस्ट्रिया से निकालकर दो करोड़ सत्तर लाख व्यक्तियों का एक सम्मिलित राज्य निर्मित कर दिया गया। दक्षिण की ओर

---

१. फ्रांस के विदेशमन्त्री एम० ब्रायण्ड (M. Briand) ने फ्रेंच यथार्थवाद के अनुरूप ही आग्रह किया कि युद्ध सर्वथा वर्जित हो और स्व-रक्षा के हित में भी युद्ध का आश्रय न लेना पड़े।

२. मार्च, १९४० में केरलो फिनिश सोवियत समाजवादी गणराज्य, अगस्त १९४० में माल्डेवियन सो० स० ग०, इस्टोनियन सो० स० ग०, लैटवियन सो० स० ग० और लियूनियन सो० स० ग० १२ वें, १३ वें, १४ वें, १५ वें और १६ वें सोवियत गणराज्यों के रूप में जोड़ दिए गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) का मिला-जुला राज्य था जिसका निर्माण बोहेमिया (Bohemia), मोरेविया (Moravia), स्लोवाकिया (Slovakia), साइलीशिया (Silesia) और रूथेनिया (Ruthenia) को मिलाकर हुआ था। ये सब पहले

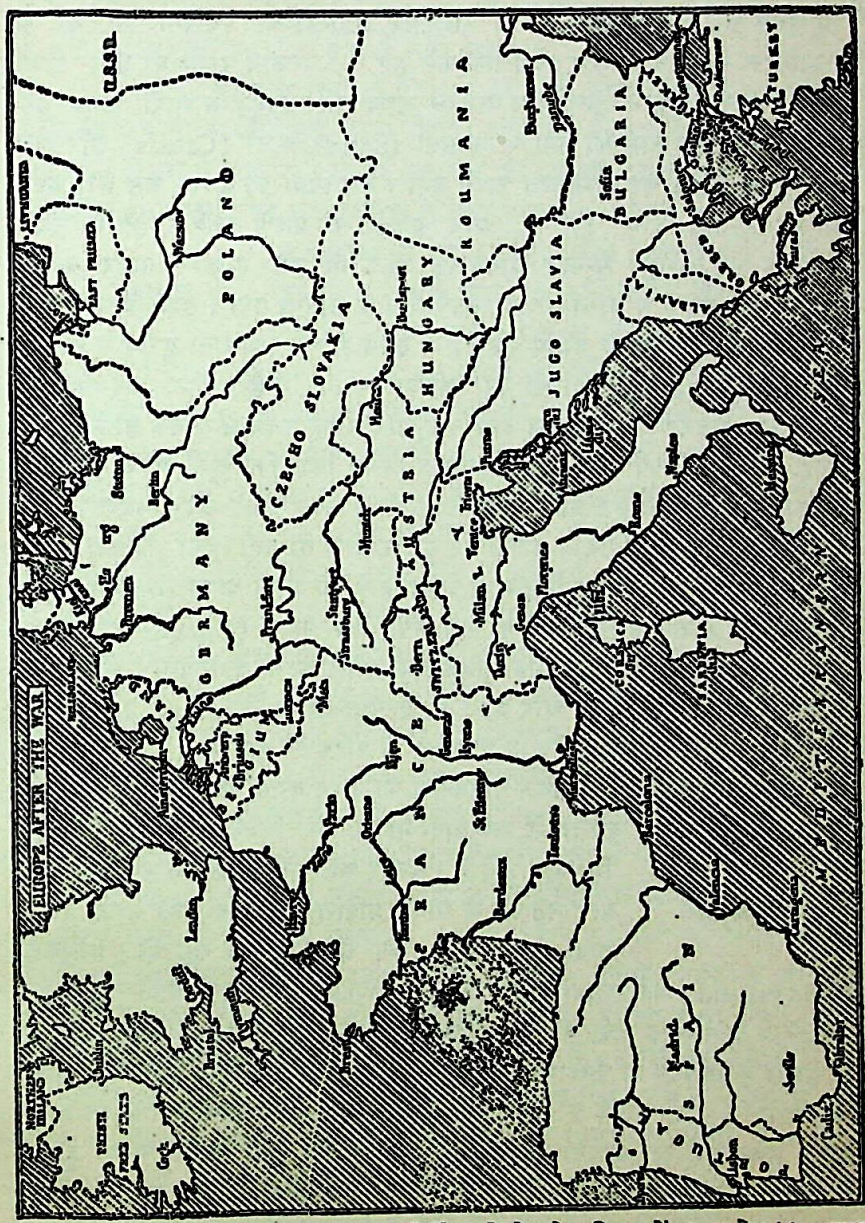

ऑस्ट्रिया के प्रान्त थे। इस प्रकार नव-निर्मित जेकोस्लोवाकिया में १ करोड़ ४० लाख मिली-जुली जातियों की जनसंख्या थी जिनमें मुख्यतः जेक (Czechs), स्लोवाक (Slovaks), जर्मन (Germans), मैग्यार (Magyars), रूथीनियन (Ruthenians), पोल (Poles) और यहूदी थे। यद्यपि हंगरी स्वतन्त्र देश था किन्तु आकार की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri.

दृष्टि से वह सिकुड़ गया था। ऑस्ट्रिया का आकार भी कम कर दिया गया था। उसकी जनसंख्या अब केवल ६० लाख रह गई थी और उसमें अब केवल जर्मन नागरिक ही थे, जो वियना प्रान्त और उसके आस-पास रहते थे। जर्मनी और रूस के बीच अनेक छोटे-छोटे अन्तस्थ राज्यों (Buffer States) की स्थापना की गई थी जो बाल्टिक सागर से बल्कान प्रदेश तक फैले हुए थे। बल्कान राज्य भी छोटे राज्यों के रूप में सिकुड़ चुके थे किन्तु तीन बल्कान राज्यों को महायुद्ध से भारी लाभ हुआ था। यूगोस्लाविया नाम का नया राज्य सर्वों (Serbs), क्रोटों (Croats) और स्लोवीनों (Slovenes) का सम्मिलित राज्य बना। रूमानिया को हंगरी, रूस और बल्गेरिया के भू-भाग प्राप्त हुए थे; और यूनान को यद्यपि तुर्की के हित में एशिया माइनर के कई लाभपूर्ण भू-भाग त्यागने पड़े, फिर भी उसे एजियन सागर का तट मिल गया जो सन्धि में बल्गेरिया को उसके हित में छोड़ना पड़ा। तुर्की के पाँव अभी तक यूरोप में फैले हुए थे यद्यपि १९२३ में उसने अपनी राजधानी यूरोप से हटाकर अंकारा (Ankara) पहुँचा दी थी जो एशिया माइनर में है। सँकरे जल-मार्ग पर १९३६ तक अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण बना रहा और उसके ऊपर से सैनिक चौकियाँ हटा दी गईं, किन्तु उसी वर्ष मौंट्रियो सम्मेलन ने निर्णय दिया कि तुर्की सँकरे समुद्रों की रक्षा का दायित्व वहन करे और वह मनमाने ढंग से उधर उनके ऊपर नियन्त्रण रखे।

दक्षिण की ओर यद्यपि इटली को उतना लाभ तो नहीं हुआ जितना उसने सोच रखा था फिर भी उसे ऑस्ट्रिया से अपने खोये हुए प्रदेश वापस मिल गये जिसके कारण उनकी सीमाएँ ब्रेनर के दर्रे को छूने लगीं तथा फ्यूम (Fiume) पर इटली का अधिकार हो जाने के कारण अब एड्रियाटिक सागर इटली के नियन्त्रण और प्रभाव क्षेत्र में आ गया। पश्चिम की ओर फ्रांस को एल्सास-लॉरेन (Alsace Lorraine) पर अधिकार मिल जाने से यूरोप के मानचित्र में परिवर्तन हुआ।

विजयी राष्ट्रवाद.

यूरोप के मानचित्र में जिन परिवर्तनों का ऊपर वर्णन किया गया है वे विजयी राष्ट्रवाद के प्रतीक थे। वास्तव में राष्ट्रवादी भावना की विजय इस युग की एक विशेषता रही है। वर्साई की सन्धि में शान्ति स्थापित करने वाले नेताओं के सामने प्रादेशिक हेर-फेर करते समय राष्ट्रवादी भावना मुख्य रूप से काम कर रही थी। निस्सन्देह पोलैण्ड (Poland), जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) और यूगोस्लाविया (Yugoslavia) के निर्माण के पीछे भी यही भावना काम कर रही थी और जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी के विघटन के पीछे भी यही भावना थी तथा रूमानिया, फ्रांस और इटली के भू-भागों में वृद्धि करने का भी यही उद्देश्य था। इसी भावना से प्रेरित होकर बाल्टिक गणराज्यों की स्थापना हुई और इसी कारण रूस का विकेन्द्रीकरण हुआ। १९ वीं शताब्दी के मध्य में जर्मनी और इटली के एकीकरण के जो प्रचण्ड आन्दोलन चले थे उनके बाद के काल में कभी भी राष्ट्रवादी सिद्धान्त की इतनी महान् सफलता देखने को नहीं मिली है। यूरोप के अधिकतर भागों में राष्ट्रवादी भावना का राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में प्राबल्य रहा है। राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित होकर ही विभिन्न राष्ट्रों ने अपनी-अपनी रक्षा पंक्तियाँ स्थापित की हैं, अपने-अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशुल्क नियम (Tariff Codes) बनाये हैं और सुरक्षित प्रदेशों का निर्माण किया है। राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित होकर ही इटली में फासिज्म और जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवाद का जन्म हुआ। रूसी साम्यवाद की तह में और जापान के अन्दर भी राष्ट्रवादी भावना का ही ज़ोर है; इसी भावना ने चीन को युगों की नींद से जगा दिया है और नवीन तुर्की का प्रेरक बल भी यही भावना है।

वर्साई की सन्धि के अनुसार यूरोप में जो नई राजनीतिक और परिवर्तित प्रादेशिक व्यवस्था स्थापित हुई, उसमें पर्याप्त अस्थिरता दिखाई देती थी किन्तु राष्ट्र-संघ की स्थापना से आशा की किरणें फूट रही थीं। पवित्र सन्धि (Holy Alliance) के समान ही राष्ट्रसंघ भी सर्वसाधारण की इस इच्छा का प्रतीक था कि संसार युद्ध से परेशान था, और सभी लोग अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के

राष्ट्रसंघ

इच्छुक थे। सभी सदस्य राष्ट्रों ने वचन दिया कि वे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के हित में सदैव अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग करते रहेंगे तथा कभी भी युद्ध का आश्रय नहीं लेंगे। राष्ट्रसंघ की व्यवस्था पवित्र सन्धि (Holy Alliance) की व्यवस्था की अपेक्षा अधिक खुली थी क्योंकि मैटरनिक (Metternich) और कैसलरी (Castlereagh) द्वारा आयोजित सामयिक राजनीतिक नेताओं के सम्मेलनों में उतनी पूर्ण और मुक्त व्यवस्था नहीं की जा सकी थी। राष्ट्रसंघ में एक ऐसी सभा की स्थापना की गई थी जिसमें प्रत्येक सदस्य राज्य को तीन प्रतिनिधि भेजने की आज्ञा थी और जो प्रतिवर्ष जेनेवा (Geneva) में सत्र में समवेत होती थी। एक छोटी कार्यकारिणी परिषद् (Working Council) की भी स्थापना की गई थी जिसमें बड़ी शक्तियों के स्थायी सदस्य थे और छोटे राज्यों के अस्थायी सदस्य थे। उक्त परिषद् वर्ष में तीन बार समवेत होती थी और आवश्यक निर्णय करती थी तथा विशेषज्ञ समितियों को आवश्यक आदेश देती थी। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में हस्तक्षेप करने के लिए एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय था; तथा राष्ट्र-संघ के साथ-ही-साथ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office) था। यह राष्ट्रसंघ के अधीन नहीं था। उक्त श्रम कार्यालय में सदस्य-राष्ट्रों के श्रमिकों के तथा मालिकों के प्रतिनिधि एकत्रित होते थे जो औद्योगिक विवादों में निर्णय देते थे तथा श्रमिकों की स्थिति में सुधार के सुझाव देते थे। किसी भी राज्य ने न तो अपनी पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता को त्यागा और न किसी ने अपनी प्रशासनिक शक्ति को राष्ट्रसंघ के हवाले किया। सत्य तो यह है कि राष्ट्रसंघ के पास न तो निजी सेना थी और न कोई अधिशासी अधिकारी। राष्ट्रसंघ की ऐसी प्रशासनिक सेवाएँ, जिनका पूर्वकालीन जर्मन अथवा तुर्की उपनिवेशों में व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से प्रयोग किया जा रहा था, कतिपय विशिष्ट सदस्य-राष्ट्रों के अफसरों के हाथों में दे दी गई थीं, जिन्हें उक्त उपनिवेशों में अधिदेश (mandate) प्राप्त थे।

पवित्र सन्धि के समान राष्ट्रसंघ को भी प्रारम्भ में सफलताएँ प्राप्त हुईं। १९२७ तक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष २६ मुकद्दमे विचारार्थ आए, जिनमें से ११ मुकद्दमों पर उसने निर्णय दिए तथा १३ मुकद्दमों में उक्त न्यायालय ने अपनी राय जाहिर की। संयुक्त राज्य अमेरिका के सदस्य न रहने के कारण राष्ट्रसंघ बहुत ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमज़ोर था फिर भी उसने १९२६ में जर्मनी को राष्ट्रसंघ की सदस्यता दे दी और १९३३ से पूर्व जिस समय पहली बार सदस्य-राष्ट्र राष्ट्रसंघ से निकलने प्रारम्भ हुए, राष्ट्रसंघ में प्रायः सभी बड़े राष्ट्र सदस्य थे, केवल संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस[1] अपवाद थे। बड़े राष्ट्रों के अतिरिक्त अनेक छोटे राष्ट्र भी संघ के सदस्य थे। राष्ट्रसंघ को भी प्रारम्भ में मेटरनिक (Metternich) की प्रारम्भिक कांग्रेसों के समान सफलताएँ मिलीं और उसने कई छोटे-छोटे विवादों में सफल हस्तक्षेप किया। उदाहरणार्थ मेमेल (Memel) की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता और आलैंड (Aaland) द्वीपसमूह के सम्बन्ध में स्वीडन और फिनलैण्ड के विवाद सफलतापूर्वक निर्णीत कर दिए गए। वास्तव में ऐसा समझने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है कि उक्त विवाद कूटनीतिक विचार-विनिमय द्वारा तय न होते। किन्तु अपनी १९वीं शताब्दी की पूर्ववर्ती संस्था के समान राष्ट्रसंघ पूर्ण असफल उस समय हो गया जबकि बड़ी शक्तियों के स्वार्थों में टकराव हुआ। जब राष्ट्रसंघ ने जापान, इटली, जर्मनी और रूस की आक्रामक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना चाहा तभी वह असफल रहा। पिछले कुछ वर्षों में जिन संकटों[2] ने संसार की शान्ति को भंग करने का प्रयत्न किया है उनको टालने में राष्ट्रसंघ को सफलता नहीं मिली। जब कभी कुछ देशों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय नियम भंग करने के प्रयत्न किए गए अथवा जब कभी यूरोपीय युद्ध को टालने का प्रयत्न करना अभीष्ट था उन सब प्रयत्नों में राष्ट्रसंघ को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसमें सन्देह नहीं है कि राष्ट्रसंघ ने इन संकटों को टालने के लिए प्रस्ताव पास किए और १९३५ में इटली के विरुद्ध कतिपय अपर्याप्त आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए तथा इटली की अबीसीनिया पर आक्रमण करने के कारण भर्त्सना की गई और उसे दोषी और आक्रामक देश ठहराया गया। यही नहीं; १९३८ में मृतप्राय राष्ट्रसंघ ने रूस के विरुद्ध प्रस्ताव पास करके उसे फ़िनलैंड (Finland) के ऊपर आक्रमण करने के कारण राष्ट्रसंघ से बहिष्कृत कर दिय।

वास्तव में अब राष्ट्रसंघ की अवहेलना करना प्रायः नित्य-प्रति की घटना थी और एक-एक करके सभी आक्रामक देश राष्ट्रसंघ से अलग होने लगे। सबसे पहले मार्च, १९३३ में जापान राष्ट्रसंघ से निकल गया। जापान राष्ट्रसंघ का प्रारम्भिक सदस्य था। सात वर्ष की अल्पकालीन सदस्यता को त्याग कर उसी वर्ष जर्मनी भी राष्ट्रसंघ से विलग हो गया, इसके पश्चात् १९३७ में इटली ने दो वर्ष का संवैधानिक नोटिस दे दिया और १९३९ में इटली सदैव के लिए राष्ट्रसंघ से विलग हो गया। जब जर्मनी और जापान राष्ट्रसंघ से अलग हो गये, और इस प्रकार उन्होंने बता दिया कि वे खुलकर आक्रामक मार्ग पर चलेंगे तो रूस में बेचैनी महसूस होने लगी और उसने

---

१. रूस को १९३४ में राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त हुई थी।

२. १९३१ में जापान द्वारा मँचूरिया पर आक्रमण; १९३५ में इटली द्वारा अबीसीनिया (Abyssinia) पर आक्रमण; १९३६ से लेकर १९३९ तक स्पेन के गृह-युद्ध की अनेक समस्याएँ; जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया पर अधिकार (१९३८); जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) पर अधिकार (१९३८-३९); और मेमेल (Memel) पर अधिकार (१९३९) तथा जर्मनी द्वारा पोलैंड पर आक्रमण १९३९; इटली द्वारा अल्बानिया (Albania) पर अधिकार जमा लेना १९३९; रूस द्वारा बाल्टिक राज्यों पर अधिकार कर लेना तथा १९३९ में रूस द्वारा फिनलैंड पर आक्रमण।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रसंघ से सहायता की याचना की। जिस वर्ष रूस को राष्ट्रसंघ से बहिष्कृत किया गया; उस वर्ष तो राष्ट्रसंघीय परिषद् का सभापति रूस का प्रतिनिधि ही था।

इसलिए, १९४० में तो राष्ट्रसंघ में बड़ी शक्तियों में से केवल ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ही रह गए थे। अब राष्ट्रसंघ ने अपना वही पुराना संकीर्ण और स्वार्थी मार्ग पकड़ा जिसके आधार पर इसका निर्माण हुआ था। १९१९ में राष्ट्रपति विल्सन ने चाहा था कि वर्साई (Versailles) की सन्धियों के साथ राष्ट्रसंघ का प्रतिज्ञा-पत्र भी जोड़ दिया जाए। इसी प्रतिज्ञा-पत्र के आधार पर राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी, किंतु इससे ऐसा आभास मिलता था मानो विजयी राष्ट्रों की इच्छा यह थी कि वर्साई की संधियों में उनको जो व्यापक राजनीतिक लाभ प्राप्त हुए थे उन्हीं की रक्षा के लिए राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ था। जर्मनी को तो यही शिकायत थी कि "प्रथम तो विजयी राष्ट्रों ने मनमाने ढंग से जो कुछ चाहा लूटा-खसोटा और अब वे राष्ट्रसंघ की स्थापना इसलिए कर रहे हैं कि सारी लूट-खसोट उन्हीं के अधिकार में सुरक्षित बनी रहे।" इसमें सन्देह नहीं है कि जर्मनी की राष्ट्रसंघ के विरुद्ध उपरोक्त शिकायत किसी सीमा तक सच थी किन्तु वह दूर हो सकती थी और काफी हद तक वह दूर हो भी चुकी थी किंतु दुर्भाग्यवश राष्ट्रसंघ का वर्साई व्यवस्था (Versailles System) से निरन्तर घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा और यही नहीं; राष्ट्रसंघ सदैव इंग्लैण्ड और फ्रांस को यूरोप के नेता देश स्वीकार किए रहा। सम्भवतः वर्साई व्यवस्था में कुछ परिवर्तन और सुधार हो जाता जो जर्मनी के लिए लाभप्रद होता किन्तु दुर्भाग्यवश राष्ट्रसंघ छोटे-छोटे अनेक राष्ट्रों का एक ऐसा भेड़ों का झुण्ड बना रहा जिसकी देखभाल करने का मानो सारा दायित्व इंग्लैण्ड और फ्रांस के ऊपर था। वास्तव में हाल के इतिहास से भी यही पता लगता है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस ने अपने ऊपर सारा उत्तरदायित्व ले लिया कि सारी वर्साई व्यवस्था का नियमतः पालन हो, यूरोप के छोटे राष्ट्रों की आक्रमण के विरुद्ध रक्षा हो सके; अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की अवहेलना न हो और यूरोपीय शक्ति-सन्तुलन बना रहे तथा सारे संसार में शान्ति बनी रहे। उनके ऊपर यूरोप का दायित्व तथा उसका चौधरीपन (Hegemony) लाद दी गई थी।[1]

१. महाद्वीप के देशों ने इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लिया था। इस बात को फ्रांस ने समझ लिया था क्योंकि वह अपनी दुर्बलता से अवगत था। इस बात को रूस ने समझ लिया था क्योंकि वह १९३४ में जर्मनी के खिलाफ लीग का संरक्षण चाहता था। इस बात को जर्मनी और इटली ने भी समझ लिया था। उस समय इंग्लैण्ड इस बात को नहीं समझ सका था। उसे युद्ध समाप्त करने के लिए युद्ध की बात से कौतूहल होता था। वह यह नहीं समझ सका था कि शाश्वत शांति की गारंटी देना मनुष्य के अधिकार में नहीं है। उसे इस बात का भी भय था कि कहीं उसके ऊपर साम्राज्यवाद का दोषारोप न कर दिया जाय। लेकिन वास्तव में यही कारण था जिसकी वजह से उसकी जर्मनी से लड़ाई हुई। उसे पंगु लीग के कथित अन्तर्राष्ट्रवाद और मनुष्य के शान्ति सम्बन्धी सद्प्रयत्नों में विश्वास था। यदि इंग्लैण्ड सम्पूर्ण स्थिति को ठीक-ठीक समझ लेता, तो सम्भवतः इस भार को वहन न करता। इंग्लैण्ड के जिन राजनेताओं ने इस स्थिति को समझ लिया था, उन्होंने इसका सामना करने के लिए दो प्रकार के उपाय किए। उन्होंने (१) शस्त्रास्त्रों को बढ़ाने का प्रयास किया; (२) उन्होंने जर्मनी और इटली की नई शक्तियों के साथ समझौता करने का प्रयास किया। ये दोनों ही उपाय समान रूप से बदनाम रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार, लीग को अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए शुरू से आखिर तक एक दलगत संगठन माना गया। यदि जर्मनी कुछ समय के लिए उसका उपयोग करने के लिए तैयार हो गया था; तो इसका कारण सिर्फ यही था कि लीग का संगठन बड़ा पेचीदा था, उसका उत्तरदायित्व विभाजित था, उसके काम बड़ी देर से होते थे और वह शान्ति की दुहाई देती रहती थी। इस स्थिति में जर्मनी का ख्याल था कि वह लीग का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग कर सकता है। हिटलर ने राइनलैंड का सैन्यीकरण करते समय यही सोचा था। लीग उदारवादी आधार पर जर्मनी के पुनर्निर्माण में सहायता देती या नहीं, यह विवादास्पद है। लेकिन, हिटलर ने जर्मनी का जिस प्रकार से पुनर्निर्माण प्रारम्भ किया, उसमें लीग बाधा ही बनती। १९३०-४० में जो नए आक्रामक उत्पन्न हुए, लीग उन्हें फूटी आँखों भी न सुहा सकी। ये आक्रामक न तो यथास्थिति (Status quo) को पसन्द करते थे, न इन्हें वर्साई की व्यवस्था को कायम रखने के सिए आँग्ल-फ्रेंच सहयोग ही पसन्द था और न ये लीग के निःस्वार्थ सिद्धान्तों को ही ठीक समझते थे।

राष्ट्रसंघ में कुछ और भी कमजोरियाँ थीं जिनके कारण उसको सफलता नहीं मिली। राष्ट्रसंघ की सारी शक्ति और उसकी सारी क्रियान्विति इंग्लैण्ड और फ्रांस की मैत्री के सिद्धान्तों पर आधारित थी। जिस प्रकार कि १९१५-२२ की काँग्रेस की सारी व्यवस्था ऑस्ट्रिया, प्रशा और रूस के इशारों पर चलती थी, इसी प्रकार राष्ट्रसंघ के निर्णय ऐसी लोकतन्त्रात्मक और संसदीय परम्पराओं पर आधारित होते थे जिनका इंग्लैण्ड और फ्रांस में पर्याप्त प्रचलन था किन्तु जिनसे आक्रामक राष्ट्र पूरी तरह परिचित नहीं थे क्योंकि उनमें अभी तक लोकतन्त्रात्मक सरकारों की स्थापना नहीं हुई थी। ऐसे राज्यों में अभी तक न तो संसदीय समझौतों के प्रति आदर था और न वे बहुमत के नियमों पर चलना ही जानते थे।

राष्ट्रसंघ की असफलता का अन्तिम कारण यह भी था कि उसके पास न तो अपनी सैनिक शक्ति थी और न उसके पास कोई प्रशासनिक अधिकार था जिनके आधार पर वह नियमविरुद्ध कार्य करने वाले राज्यों को मजबूर कर सकता था। राष्ट्रसंघ के निर्णयों को मानना न मानना राष्ट्रों की अपनी इच्छा के ऊपर निर्भर था। ये राष्ट्र किसी प्रकार के खतरे उठाने के लिए तैयार न थे।

वास्तव में अब तो सभी ने एक स्वर से राष्ट्र संघ की बुराई करना प्रारम्भ कर दिया है यद्यपि यह अनुचित है क्योंकि राष्ट्रसंघ के आलोचकों ने राष्ट्रसंघ के परम लाभकारी कृत्यों को आँखों से ओझल कर रखा है। राष्ट्रसंघ राजनीतिक संगठन का एक आदर्श-मात्र था और निस्सन्देह राष्ट्रसंघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का मार्ग प्रशस्त किया गया था। राष्ट्रसंघ द्वारा यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के विचार को ही पुष्टता मिली है। चाहे यह मान भी लिया जाए कि राष्ट्रसंघ असफल रहा फिर भी राष्ट्रसंघ की असफलताओं के ऊपर ही संसार में सहयोग स्थापित होगा। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से तो लोगों को भारी आशाएँ हैं; और राष्ट्रसंघ की विशेषज्ञ समितियों ने तो स्वास्थ्य, सामाजिक सेवा, आर्थिक समस्याओं के समाधान आदि और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों जैसे शरणार्थी समस्या के समाधान में कमाल ही कर दिखाया। राष्ट्रसंघ के कार्यालय में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर संसार के राजनीतिज्ञ और विचारक एक साथ मिलकर विचार करते हैं। लोग की बुनियादों पर ही द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्रसंघ का भवन निर्मित हुआ था। संयुक्त राष्ट्रसंघ लीग की असफलताओं के इतिहास से शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास कर रहा है।

आन्तरिक समस्याएँ

प्रायः ऐसा देखा गया है कि किसी देश की आन्तरिक समस्याओं का उस देश की विदेश नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है और कभी-कभी तो आन्तरिक समस्याओं के कारण विदेशी समस्याएँ गठीली पड़ जाती हैं। इन दिनों शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण राज्य ऐसा मिलेगा जिसे कठिन आन्तरिक परिस्थितियों से जूझना न पड़ा हो। कुछ राज्यों में तो भंयकर विद्रोह हुए हैं और कुछ राज्यों में लम्बे काल तक आन्तरिक अव्यवस्था बनी रही है। १९१७ में ज़ारशाही रूस में भयंकर रक्त-क्रान्ति हुई जिसके द्वारा ज़ारशाही का तख्ता पलट गया, धुरी राष्ट्रों (Central Powers) की पराजय के पश्चात् सारी जर्मनी और ऑस्ट्रिया में भयंकर विद्रोह हुए, जिसके फलस्वरूप प्राचीन होहेन्ज़ोलर्न राज-परिवार और हैब्सबर्ग राज-परिवार उखाड़कर फेंक दिए गये और साथ ही जर्मनी के कई छोटे राज्यों में गणराज्य स्थापित हो गए। यही नहीं, जर्मनी और हंगरी में तो ऐसा प्रतीत होने लगा था मानो भयंकर साम्यवादी आन्दोलन जोर पकड़ने वाले हैं। इटली में सैवॉय का राज-परिवार (House of Savoy) यद्यपि पूरी तरह से हटाया नहीं गया, फिर भी वह उस क्रान्तिकारी फ़ासिस्ट दल के द्वारा क्रान्तिहीन कर दिया गया जिसे १९२२ में इटली में महान् विजय प्राप्त हुई थी। बल्कान राज्यों में भी बारम्बार आन्दोलन और विद्रोह चलते रहे। ग्रीस (Greece) में भी १९२४[1] में राजतन्त्र समाप्त कर दिया गया जबकि तुर्की के विरुद्ध एनेटोलिया (Anatolia) के युद्ध में उसको पराजय का मुँह देखना पड़ा। तुर्की में भी पश्चिमी सभ्यता के पक्ष में एक ऐसी क्रान्ति हुई, जिसकी तुलना १८६७ की जापान की क्रान्ति से की जा सकती है। उक्त क्रान्ति के फलस्वरूप तुर्की की सल्तनत और खिलाफ़त (Sultanate and the Caliphate) समाप्त कर दी गई और गणतन्त्र की स्थापना हुई। इसके साथ ही अधिनायकवादी गणराज्य की स्थापना हुई, लैटिन लिपि प्रचलित की गई, स्त्रियों को सार्वजनिक क्षेत्र में पदार्पण करने की सुविधा दे दी गई तथा अन्य पश्चिमी आदर्शों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया। स्पेन में भी प्राइमो डी रिवेरा (Primo de Rivera) १९२३-३० तक उस देश का अधिनायक बना रहा जिसके प्रभाव से स्पेन में अस्थायी शान्ति स्थापित हुई किन्तु १९३० में इसका पतन हुआ। और उसके पतन के साथ १९३१ में स्पेन के राजतन्त्र का भी

---

१. १९२३ में जार्ज द्वितीय (George II) के हक में राजा कॉन्सटेण्टाइन (Constantine) को गद्दी से उतार दिया गया। इसके पश्चात् १९२४ में यूनान में गणराज्य की स्थापना हुई, किन्तु फिर १९३५ में जनमत-संग्रह के निर्णय के अनुसार पुनः जार्ज द्वितीय ही राजगद्दी पर बिठा दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन हुआ। किन्तु अब स्पेन के राजनीतिक जीवन में अस्थिरता और फूट ने घर बना लिया। १९३१ से १९३६ तक स्पेन में प्रान्तीयता, अराजकता, साम्यवादी और फ़ासिस्ट हलचलों आदि के कारण भारी अव्यवस्था बनी रही जिसके कारण १९३६ से १९३९ तक भयंकर गृह-युद्ध चला जिसमें राष्ट्रीयता की विजय हुई और जनरल फ्रांको (General Franco) विजयी होकर निकला। चीन में भी गृह-युद्ध और क्रान्ति हुई। आयरलैंड में भी गृह-युद्ध हुआ, भारत में भारी अशान्ति और हिंसक कार्यवाहियाँ हुईं; फिलस्तीन (Palestine) में भी यही हुआ। इन कारणों से ब्रिटिश साम्राज्य में भी आमतौर पर अशान्ति बनी रही। उधर फ्रांस और ब्रिटेन में भयंकर हड़तालें हुईं और श्रमिक अथवा साम्यवादी उपद्रव चलते रहे जिनके कारण उक्त दोनों देश भी चैन की साँस न ले सके।

उस समय यह स्पष्ट नहीं था कि प्रायः सभी देशों में जो विद्रोह अथवा क्रान्तिकारी उपद्रव सिर उठा रहे थे उनके पीछे क्या उद्देश्य था अथवा किस प्रकार के प्रभावों के अन्तर्गत उक्त विद्रोह किए जा रहे थे। उस समय यह भी प्रतीत नहीं था कि तत्कालीन विजयी तत्त्व ही अन्त तक विजयी रहेंगे। कोई नहीं जानता था कि राष्ट्रीयता की विजय अभीष्ट थी, या प्रान्तीयता की; लोकतन्त्र की विजय अभीष्ट थी या स्वेच्छाचारिता की; धर्मनिरपेक्ष भौतिकवाद (Secular materialism) की विजय अभीष्ट थी, या विचारों की स्वतन्त्रता की विजय अभीष्ट थी; अथवा क्या सामाजिक कल्याण की भावना बलवती थी अथवा हिंस्र श्रमिकवाद की विजय अभीष्ट थी। किन्तु साम्राज्य निरन्तर लड़खड़ा रहे थे, राज-सिंहासन पृथ्वी की धूल चाट रहे थे, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की अवहेलना की जा रही थी; धार्मिक मन्दिरों का निरादर किया जा रहा था, धर्म-गुरुओं की हत्या की जा रही थी, व्यक्तिगत सम्पत्ति लूटी जा रही थी; सर्वत्र शान्ति, विश्वास और सुरक्षा का पूर्ण अभाव था। मुख्य रूप से स्वेच्छाचारिता को बल मिला। कहीं तो व्यक्तिगत स्वेच्छाचारिता ने ज़ोर पकड़ा और कहीं राष्ट्रीय स्वेच्छाचारिता देखने में आई; कहीं दलीय स्वेच्छाचरिता थी तो कहीं अधिनायकवादी स्वेच्छाचारिता थी। किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उपरोक्त स्वेच्छाचारिता का सही-सही मूल्यांकन करना कठिन है। यद्यपि तत्कालीन राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का उक्त सर्वव्यापी स्वेच्छाचारिता से गहरा सम्बन्ध था और इन दोनों को अलग-अलग रखना कठिन था फिर भी दो स्पष्ट तथ्यों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना नितान्त आवश्यक होगा।

क्रान्ति के बादल दो विभिन्न दिशाओं से घिर कर आये हैं—वाम पक्ष और दक्षिण पक्ष। वाम पक्ष (Left) की ओर से विद्रोह के वे सब तत्त्व एकत्रित हुए हैं जिन्हें साम्यवादी तत्त्व कहा जा सकता है। साम्यवादी स्पष्ट घोषणा करते हैं कि वे वर्तमान सामाजिक ढाँचे का विनाश करके उसके स्थान पर नूतन समाज का निर्माण करेंगे। वे सारे संसार में क्रान्ति लाना चाहते हैं। उनके उद्देश्य अभी काल्पनिक अवस्था में हैं और वे संसार के त्राण की डींग मारते हैं। वे आवेश में कार्य करते हैं, खूनी हैं और वे अपने उद्देश्यों की सफलता के लिए आतंकवाद और परपीड़न आवश्यक समझते हैं।

क्रान्तिकारी साम्यवाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण पक्ष (Right) की ओर से साम्यवाद की चुनौती का जवाब आया है, जिसने कई क्रान्ति-विरोधी आन्दोलनों को जन्म दिया है। उक्त सभी आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि राष्ट्र में फूट न पड़ने पाये फिर भी उक्त आन्दोलन समय-समय पर विभिन्न नामों और विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ। इटली में क्रान्ति-विरोधी तत्त्व फासिस्टों (Fascists) के रूप में प्रकट हुए और जर्मनी में जर्मन राष्ट्रीय समाजवादी भी क्रान्ति-विरोधी तत्त्व ही थे। इटली के फासिस्ट (Fascists) और जर्मनी के राष्ट्रीय समाजवादी (National Socialists) भी अधिनायकवादी थे। वे राष्ट्र को कठोर अनुशासन में संगठित करना चाहते थे। उनके उद्देश्य अत्यन्त व्यावहारिक थे, किन्तु वे अवसरवादी थे और अपनी नीति और प्रोग्राम के ऊपर खण्डशः और धीरे-धीरे कार्य करते हुए चले थे। वे प्रगतिशील भी थे, क्रान्तिकारी थे, अत्यन्त भावुक थे, प्रायः खूनी और आतंकवादी थे और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में वे प्रायः निर्दयता का आश्रय लेने में भी नहीं चूकते थे। यद्यपि उपरोक्त दोनों आन्दोलन एक-दूसरे के विरोधी थे और उनके आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्य भी असमान थे, फिर भी उन्होंने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रायः एक ही प्रकार के उपायों को अपनाया। वे दोनों ही निर्दयता का आश्रय लेते थे और उन दोनों ही ने अधिनायकवादी स्वेच्छाचारिता और निर्दय शासन को जन्म दिया।

क्रान्ति-विरोधी आन्दोलन

क्रान्तिकारी साम्यवाद का जन्म तो जर्मन यहूदी कार्ल मार्क्स (Karl Marx) की शिक्षाओं के फलस्वरूप हुआ था, किन्तु १९१७ और उनके बाद के वर्षों की सफल बॉल्शेविक रूसी क्रान्ति से उसे बल और प्रोत्साहन मिला। ज्योंही मार्च १९१७ में जारशाही के स्थान पर लोकतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हुई, वह सरकार ढुलमिल सी थी और वह कभी मार्क्सवाद की ओर तो कभी संवैधानिक लोकतन्त्र की ओर; कभी काल्पनिक आदर्शवाद की ओर तो कभी अवसरवादी सरकार की ओर; कभी सैनिक राज्य स्थापित करने की ओर तो कभी शान्तिप्रिय शासन स्थापित करने की दिशा में सोचती थी। नवम्बर, १९१७ में लेनिन और ट्राट्स्की (Lenin and Trotsky) की बॉल्शेविक पार्टी ने केरेन्स्की (Kerensky) और उसके नरम साथियों की सरकार को हटा दिया क्योंकि केरेन्स्की आदि एक ही साथ युद्ध जारी रखने और क्रान्ति पूर्ण करने में सफल न हो सके। बॉल्शेविक दल यद्यपि उस समय अल्पसंख्यक दल था फिर भी वे लोग फ्रांस के जैकोबिन लोगों (Jacobins of France) के समान तेज और शीघ्र निर्णय करने वाले लोग थे। लेनिन ने निश्चित रूप से युद्ध से हट जाना तय किया और वह क्रान्ति को पूर्ण करने में जुट गया। उसने तुरन्त ही उग्र समाजवाद के सिद्धान्तों को वैधानिक आज्ञाओं का स्वरूप प्रदान कर दिया।[1] उसने घोषणा की कि "हम जर्मनी के साथ आदर्शों के अनुरूप सन्धि करेंगे जिसमें न तो कोई देश किसी देश के प्रदेशों पर अधिकार बनाये रखेगा और न विजित देश से विजयी देश युद्ध के हर्जाने की रकम वसूल करेगा।" उसने रूस की समस्त प्रजा को पूरी

१. १९१७ में ८ नवम्बर से लेकर ३१ दिसम्बर तक १८३ वैधानिक राजाज्ञाएँ पारित हुईं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी दे दी और ज़ारशाही की समस्त साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाओं को भी उसने त्याग दिया। उसने सारी जमीनें किसानों को दे दीं और उनके ऊपर कोई लगान भी नहीं लगाया गया। इसी प्रकार सारी निर्माणशालाओं या उत्पादन-केन्द्रों (Factories) को श्रमिकों के हवाले कर दिया गया। उसने व्यक्तिगत धन का अन्त कर दिया, धार्मिक मंदिरों को अमान्य कर दिया और वह इन्हीं आधारों पर संसार-व्यापी क्रान्ति के लिए तैयारी करने लगा।

किन्तु इसका फल यह हुआ कि समस्त रूस में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अव्यवस्था छा गई। यही नहीं, स्वयं बॉल्शेविक दल का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया और देश की एकता को भी भारी आघात पहुँचा।

जब जर्मनी ने देखा कि रूस की सैनिक शक्ति जवाब दे गई है तो उसने इस सिद्धान्त पर रूस से सन्धि करना स्वीकार नहीं किया कि न तो कोई देश किसी दूसरे देश के किसी प्रदेश पर अधिकार बनाये रखे और न विजयी देश विजित देश से युद्ध के हर्जाने की रकम माँगे (No annexations and no indemnities) बल्कि उल्टे जर्मनी ने रूस को मजबूर किया कि वह ब्रेस्ट लिटोस्क (Brest-Litovsk) की सन्धि स्वीकार करे। रूस के पिछले मित्र देश रूस से इस कारण अप्रसन्न थे कि उसने बीच में ही उनका साथ छोड़ दिया और उन्हें रूस में साम्यवादी अर्थव्यवस्था से भी चिढ़ थी अतः उन्होंने रूस की नई सरकार को मान्यता प्रदान नहीं की। यही नहीं, उन्होंने चुपके-चुपके क्रान्ति-विरोधी तत्त्वों को सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। जापान ने साइबेरिया (Siberia) पर आक्रमण किया। कई रूसी प्रान्तों ने रूस से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। रूस में कई बार आन्तरिक विद्रोह भी हुए जिनका संचालन वाम पक्ष और दक्षिण पक्ष दोनों ने ही किया। सैनिकों ने अपने अफसरों को मारना प्रारम्भ किया और उसके बाद वे अपने हिस्से की जमीनों पर अधिकार करने के लिये अपने-अपने घरों को भागे। कोई वर्ग सन्तुष्ट नहीं था केवल श्रमिक वर्ग प्रसन्न था। कृषकों ने इस स्थिति से लाभ उठाया और उन्होंने धनिक वर्गों की सम्पत्ति पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। किन्तु बॉल्शेविकों की कृपा कृषकों पर नहीं थी। एक वर्ग दूसरे वर्ग के विरुद्ध था और देश से अनेक शरणार्थी भाग-भाग कर इधर-उधर जा रहे थे। देश की औद्योगिक स्थिति खराब होने लगी क्योंकि पूंजी गायब होने लगी और श्रमिक वर्ग न तो उद्योग का संगठन कर सके और न वे उत्साहपूर्वक काम ही करते थे। देश में अकाल की सी स्थिति आ गई क्योंकि कृषक वर्ग अपनी अतिरिक्त उपज को उस समय तक देने के लिए तैयार नहीं था जब तक कि उसको अपनी उपज के बदले में वे आवश्यक वस्तुएँ न मिलतीं जिनकी उसको अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु आवश्यकता थी किन्तु देश के उद्योग की दुरवस्था के कारण नित्य-प्रति की आवश्यकताओं की चीजों का सर्वथा अभाव था। सर्वत्र अव्यवस्था और गृह-युद्ध के बादल छाये हुए थे और चारों ओर हिंसक मार-काट मची हुई थी। हजारों व्यक्ति तो भुखमरी के शिकार हुए और हजारों व्यक्ति अपने साथियों के हाथों मार डाले गये।

किन्तु लेनिन (Lenin) एक चतुर राजनीतिज्ञ भी था और सिद्धान्तवादी भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसने अत्यन्त कुशलता के साथ रूस को और बॉल्शेविक दल को विनाश से बचाने का प्रयत्न किया। उसको सफलता तो अवश्य मिली किन्तु उसको निरंकुश तानाशाही स्थापित करनी पड़ी और अपने कई सिद्धान्तों को त्यागना पड़ा। पाँच वर्षों तक रूस में गृह-युद्ध और विदेशी युद्ध के कारण सर्वनाश होता रहा। लेनिन को बारम्बार क्रांति-विरोधी आन्दोलनों का सामना करना पड़ा जिन्हें केरेन्स्की (Kerensky), कार्निलॉव (Kornilov), डेन्किन (Dennikin) और रेंजिल (Wrangel) ने चलाया था। उसने विदेशी सत्ताओं को मजबूर किया कि वे रूस के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें। उसने पोलैण्ड और बाल्टिक सागर के कई निकटवर्त्ती राज्यों से सन्धि कर ली। उसने यूक्रेन (Ukraine), ट्रांस कौकेशियन (Transcaucasian) एशिया की कई अमीर शाही रियासतों और साइबेरिया (Siberia) में सोवियत सरकार का सूत्रपात किया और शनैः-शनैः वे सभी राज्य पुनः रूसी संघ व्यवस्था में सम्मिलित हो गए। उसने प्रभावशाली कूटनीतिक व्यापार के द्वारा सुदूर पूर्व के देशों से रूस के अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिए।

रूस में लेनिन (Lenin) ने सारी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था इस प्रकार संगठित की कि समस्त सत्ता साम्यवादी दल के हाथों में केन्द्रित हो गई और अभी तक भी साम्यवादी दल ही सारे देश का तानाशाह बना हुआ है। यद्यपि कहने को तो रूसी शासन-व्यवस्था का आधार उच्चोच्च निर्वाचित परिषदों[1] की परम्परा है जो

१. इस समय सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ में सोलह गणराज्य हैं। इन गणराज्यों को स्थानीय मामलों में नाममात्र की शक्ति प्राप्त है। मास्को, की केन्द्रीय सरकार को विधायी निषेधाधिकार की शक्ति प्राप्त है। सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet) को विधायी, मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers) को प्रशासनिक और साम्यवादी दल की प्रेजीडियम को नीति-निर्माण की सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है।

सर्वोच्च सोवियत में दो निर्वाचित सदन हैं। इनमें से एक सदन राष्ट्रीय (National) है और दूसरा संघीय (Federal)। सर्वोच्च सोवियत की साल में दो बार एक-एक सप्ताह के लिए बैठक होती है। वह मुख्यतः प्रेजीडियम (Presidium) के कार्य का अनुसमर्थन करती है। प्रेजीडियम में कुल ३३ सदस्य होते हैं। प्रेजीडियम सर्वोच्च सोवियत के सत्रों के विश्रांति-काल में कार्य करती है। देश की कार्यकारी और प्रशासनिक शक्ति मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers) में निहित रहती है। मन्त्रिपरिषद् मन्त्रिमण्डल (Cabinet) के समान होती है। वह कहने के लिए तो सर्वोच्च सोवियत द्वारा नियुक्त की जाती है लेकिन वास्तव में उसकी नियुक्ति देश का प्रमुख राजनीतिक व्यक्ति करता है। अपनी मृत्यु के समय तक यह कार्य स्टालिन किया करता था। रूस में एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court of Judicature) भी है, लेकिन, उसको अतिक्रमण करने की भी शक्ति रूस के प्रोक्यूरेटर जनरल (Procurator General) को प्राप्त है। प्रोक्यूरेटर जनरल राज्य सुरक्षा विभाग का या सुरक्षा पुलिस का सेवक होता है। रूस में वास्तविक शक्ति साम्यवादी दल के हाथों में है। रूस में साम्यवादी दल ही एक मात्र कानूनी दल है। साम्यवादी दल की एक केन्द्रीय समिति होती है जिसमें १३३ मत देने वाले और १२२ अन्य सदस्य होते हैं। लेकिन दल का वास्तविक कार्य ११ सदस्यों का पोलितब्यूरो (Politburo) या प्रेजीडियम (Presidium) और एक सचिवालय करता है। राजनीतिक दृष्टि से ये ग्यारह व्यक्ति तथा प्रथम सचिव (१९५३ तक स्टालिन, उसके बाद ख्रुश्चेव और अब ब्रेजनेव) सोवियत यूनियन पर शासन करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३६ से सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होती है; किन्तु वास्तविकत: साम्यवादी दल ही सर्वेसर्वा है और वही प्रारम्भिक श्रमिक संगठनों और कृषक संगठनों के माध्यम से समस्त देश के आर्थिक जीवन को गति प्रदान करता है। बॉल्शेविक शासन की स्थापना और उसका पोषण आतंकवाद की नीति के आधार पर हुआ, अर्थात् किसी को शासन की आलोचना करने का अधिकार नहीं दिया गया, श्रमिकों की अनिवार्य भर्ती की जाती थी, बारम्बार सैनिक विधि (Martial Law) की धौंस दी जाती थी, अनेक भेदियों और गुप्तचरों को शासन का अंग बना लिया गया था, अनेक सन्देह-युक्त व्यक्तियों के घरवालों को शरीर बन्धकों (Hostages) के रूप में जेलों में डाल दिया जाता था, प्रारम्भ में अनेक लोगों पर तरह-तरह के मुकदमे चलाए गए और बारम्बार दल में एक बड़ी संख्या में लोगों को निकाल दिया गया। रूस में क्रांति-विरोधी हलचलों को समाप्त करने के उद्देश्य से, अत्यधिक मुनाफाखोरी और तोड़-फोड़ के कृत्यों को रोकने के उद्देश्य से अखिल रूसी असाधारण आयोग (All Russian Extraordinary Commission) की स्थापना की गई। उक्त आयोग ने तथा उसके उत्तराधिकारी आयोगों चेका (Cheka) तथा ऑग्पू (Ogpu) ने अनेको अमानुषिक अत्याचार किए। वास्तव में उपरोक्त बर्बर आयोगों ने जारशाही पुलिस की बर्बरताओं को भी फीका कर दिया और आधुनिक काल में नाज़ी जर्मनी की गेस्टापो (Gestapo) से ही उक्त आयोगों की किसी सीमा तक तुलना की जा सकती है। कुछ समय के लिए देश में सार्वजनिक सुरक्षा समिति की भी स्थापना हुई। केवल १९१८ से लेकर १९२२ तक के चार वर्षों में चेका (Cheka) नामक आयोग की रिपोर्ट के अनुसार तेरह हज़ार व्यक्तियों को अधिकृत फाँसियाँ दी गईं क्योंकि वे सार्वजनिक अपराधी थे अथवा बेईमान और अकुशल अधिकारी थे अथवा राजनीतिक शत्रु थे।

लेनिन को परिस्थितियों से बाध्य होकर अपनी कुछ सामाजिक और आर्थिक योजनाओं को त्यागना पड़ा और उसने अपने बहुत से आदर्शवादी काल्पनिक विचारों को भी त्याग दिया। चूंकि रूसी लोग धर्म-प्रधान थे और पारिवारिक जीवन में उनकी आस्था थी इसलिए चर्च और परिवार का विघटन कुछ समय के लिए रुक गया। देश की अर्थ-व्यवस्था को ठीक मार्ग पर लाने के उद्देश्य से लेनिन को मजबूरन प्राइवेट उद्यम और प्राइवेट पूंजी की शरण लेनी पड़ी क्योंकि पुनर्निर्माण की आर्थिक आवश्यकताओं की यह माँग थी और रूस के किसान धन संग्रह करने पर हठ कर रहे थे। रूसी किसानों ने सर्वप्रथम यह माँग रखी कि क्रांति के समय जिन ज़मीनों को ज़मीदारों से ज़ब्त किया गया या उनको उनमें बाँट दिया जाय और उनसे जो कुछ लाभ हो उस पर केवल उनका ही अधिकार हो। यद्यपि लेनिन ने कृषकों की इस व्यक्तिवादी और पूंजीवादी मनोवृत्ति को पसंद नहीं किया फिर भी वह किसी सीमा तक इन माँगों के सामने झुक गया। उसने मान लिया कि ज़मीनों पर कृषकों का स्वामित्व रहेगा। उसने यह भी मान लिया कि कृषक अपनी उपज बेच सकेंगे तथा अपनी उपज का मुनाफा भी रख सकेंगे और साथ ही वे अपनी ओर से श्रमिकों को भी अपने खेतों पर नियुक्त कर सकेंगे। अब रूस में प्राइवेट उद्यम प्रचलित कर दिया गया, व्यक्तिगत पूंजी को पुन: आमंत्रित किया गया, विदेशी पूंजीपतियों को आश्वासन दिया गया कि वे रूसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योगों में धन लगायें तथा उन्हें रूसी सरकार के साथ-साथ मुनाफे में हिस्सा दिया जाएगा। निर्माणशालाओं (Factories) में अनुशासन स्थापित किया गया, हड़तालों को अवैध ठहरा दिया गया तथा उन पूंजीपति श्रमिकों को, जिन्हें ऊँचे वेतन मिलते थे, कहा गया कि या तो वे अच्छा काम करें या अधिक देर तक कार्य करें। इसके साथ ही देश में स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन कर दिया गया। यद्यपि यत्र-तत्र बॉल्शेविक कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन कर दिया गया था और यद्यपि बॉल्शेविक लोगों को अपना कार्यक्रम पूरा करने में नृशंसता का आश्रय लेना पड़ा था फिर भी सामान्यतः लेनिन (Lenin) ने अपने पूर्व-घोषित मार्ग से पलायन नहीं किया। बॉल्शेविक दल के संसार-व्यापी क्रांति उत्पन्न करने के कार्यक्रम को यद्यपि कई देश अपने लिए खतरे की घंटी समझते थे फिर भी उक्त कार्यक्रम में वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीयता के बीज वर्तमान थे। यद्यपि बॉल्शेविक को राज्य को समाप्त कर देने की बात राज्य के सर्वाङ्गीण कल्याणकारी कृत्यों के सामने हवा हो गई और यद्यपि साम्यवाद की वर्ग-संघर्ष की मान्यता में और व्यक्तिगत पूंजीवाद के विनाश में अत्याचार और हिंसा की गन्ध आती है, फिर भी लेनिन के नेतृत्व में बॉल्शेविक शासन ने उस तंग दिल राष्ट्रीयता और स्वार्थी अभ्याक्रमण नीति का आश्रय कभी भी नहीं लिया जिस पर वह स्टालिन (Stalin) के नेतृत्व में चला।

साम्यवादी दल के जनरल सेक्रेटरी स्टालिन को १९२४ में लेनिन की मृत्यु पर रूस की सर्वोच्च शक्ति मिली। उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि "वह छोटी बुद्धि और अधिकारी प्रकृति का आदमी था, अल्पभाषी था, उबा देने वाला वक्ता था, अत्यन्त धैर्यशील था, षड्यन्त्र रचने में अत्यन्त पटु था, धूर्त था, झूठा था और चालाक था, यहाँ तक कि लेनिन और ट्राट्स्की दोनों से अधिक निर्दय और धोखेबाज था।"

फौलाद के इस आदमी (Man of Steel) ने धीरे-धीरे एक केन्द्रीकृत शक्ति-व्यवस्था का निर्माण किया और वह स्वयं ही उसका सर्वे-सर्वा बन बैठा। उसने स्वयं को इस केन्द्रीकृत शक्ति-व्यवस्था के साथ समीकृत कर दिया। उसे दूसरों के ऊपर संदेह और अविश्वास था। अपने ध्यय के प्रति उसके अन्दर अदम्य लगन थी। उसके मन में किसी प्रकार का संकोच अथवा झिझक नहीं थी। वह बुद्धिवाद के संशय से भी पूरी तरह मुक्त था।[1] उसके मार्ग में जो भी रोड़ा आया, उसने उसे दूर हटा दिया। उसने अपने शत्रुओं को पहचाना और उन्हें ट्राट्स्काइट (Trotskyites), विपथगामी (Deviationists), विध्वंसक (Saboteurs), देशद्रोही (Traitors) अथवा संक्षेप में "जनता के शत्रु" (Enemies of the People) कहा तथा उनका अन्त कर दिया। इसके साथ ही उसने राज्य के अन्दर अपने व्यक्तिगत शत्रुओं, उठते हुए पूंजीपतियों तथा व्यक्तिवादी तत्त्वों को भी नष्ट कर दिया। उसने स्वयं को लेनिन का उत्तराधिकारी तथा उसके सिद्धान्तों का व्याख्याता[2] बताया और ट्राट्स्की (Trotsky) को विधर्मी (heretic) कह कर निन्दा की। स्टालिन ने ट्राट्स्की के भूतकाल पर

1. *The Times*, April, 1956.

२. हिटलर की तरह स्टालिन ने भी अपनी एक पाठ्य-पुस्तक *The Foundations of Leninism* लिखी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो पर्दा डाल ही दिया उसे देशनिकाला भी दे दिया।[1] स्टालीन ने ट्राट्स्की अनुयायियों का भी सफाया कर दिया। १९१७ की क्राँति के इतिहास से उसका नाम हटा दिया तथा १९१७ की क्राँति का एक इतिहास स्वयं लिखा जिसमें अपनी प्रशंसा के पुल बाँध दिए।[2]

१९३०-४० में उसने हज़ारों कुलकों को समाप्त कर दिया। कुलक छोटे-छोटे स्वतन्त्र किसानों के समुदाय थे। बहुत से कुलकों की जानबूझकर हत्या कर दी गई, बहुत से कुलकों को उनकी सम्पत्ति से वंचित कर दिया गया और बहुत से कुलकों को दण्ड दिया गया। लेकिन, इससे राष्ट्र के अन्दर अकाल भी पड़ गया। कुछ वर्ष बाद १९३६-३८ में उसने दल, प्रशासन और सेना में से अवांछनीय तत्त्वों को निकाल दिया। परिणामतः, जिस समय रूस की जर्मनी से लड़ाई शुरू हुई थी, उस समय रूस का सैनिक संगठन बड़ा शिथिल था।

समाहार शिविर (Concentration Camp) और फायरिंग स्क्वैड, प्राणदन्ड, और निर्वासन, दूसरे देशों के उदार तत्त्वों के निष्कासन, राज्य के प्रत्येक कार्य पर अपने व्यक्तित्व की छाप डालकर तथा स्वयं को समस्त निष्ठाओं का केन्द्र बनाकर स्टालिन ने एक कठोर और व्यापक व्यक्तिगत निरंकुशता (Personal despotism) की सृष्टि की। विनियमन, नियन्त्रण और आयोजन के द्वारा, पंचवर्षीय उत्पादन कार्यक्रमों के कुशल उपयोग[3] के द्वारा, स्टाखनोवाइट इंडस्ट्रियल शाक ब्रिगेडों की उत्तेजना तथा 'सहकारी प्रतियोगिता' की उत्तेजना द्वारा उसने 'एक राज्य में समाजवाद' के अपने सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। उसने कृषि को सामूहिक आधार पर गठित किया[4], उत्पादन म वृद्धि की, उद्योग-धन्धों का विकास किया और रूस को एक प्रमुख निर्माणकारी राज्य (Manufacturing State) बना दिया।[5] उसने निरक्षरता को दूर कर दिया और वैज्ञानिक गवेषणा को प्रोत्साहन दिया, विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्। रूसी राज्य का इस प्रकार निर्माण करने में वह अक्तूबर क्रान्ति की कई घोषणाओं से दूर हट गया। अब रूस में एक ऐसा धनी और विशेषाधिकार युक्त वर्ग सामने आ गया है जिसका पद, शक्ति या राज्य की सेवा से सम्बन्ध है। अन्तर्राष्ट्रवाद

---

१. यह स्टालिन की अनुभवहीनता थी। बाद में तो वह उसकी हत्या ही कर डालता।

२. *The Short Biography of Stalin* तथा *The Short Course of the History of the All-Union Communist Party* पुस्तकों की रचना स्टालिन के निर्देश में एक समिति ने की थी। ये दोनों पुस्तकें स्कूलों में सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्य-पुस्तकें थीं।

३. १९२८-३२; ३३-३७; ३८-४२ (युद्ध); ४६-५०; ५१-५५। रूस में पंचवर्षीय योजनाओं को सामान्यतः ४ वर्षों में ही पूरा किया बताया गया। अल्पकालीन योजना स्वेच्छाचारी शासकों का एक प्रिय-हथियार हो गई है जिसके द्वारा वे अपने कार्यक्रमों के दीर्घकालीन परिणामों को अस्पष्ट रखना चाहते हैं।

४. हाल में अर्जित प्रदेशों में कुछ कुलक थे, लेकिन १९४८ में उनके विरुद्ध भी अभियान किया गया।

५. अब रूस के उद्योग-धन्धों में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का ४० प्रतिशत धन लगा हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लक्ष्य पर अब लौह आवरण पड़ गया है। पहले विश्वयुद्ध में रूस का नारा था कि न तो किसी देश की भूमि पर अधिकार किया जाय और न किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति दी जाए। लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद रूस ने भी अपना क्षेत्रीय विस्तार करने का प्रयास किया है। रूस में राज्य का विलोप होना तो दूर रहा, उसका संगठन बड़ा कठोर हो गया है और उसकी सर्वाधिकारवादी शक्तियाँ जारकालीन शासन से भी अधिक व्यापक हो गई हैं। रूस में श्रमिक वर्ग का अधिनायकत्व (Dictatorship of the Proletariat) अवश्य स्थापित हो गया है लेकिन वह वांछित अर्थ में स्थापित नहीं हुआ है। रूस में क्रान्ति के पश्चात् श्रमिक वर्ग ही शेष बचा है। लेकिन जहाँ वह क्रान्ति का साधन है, वह क्रान्ति का शिकार भी है। रूस में शासन के सारे सूत्र केवल दर्जन भर व्यक्तियों या उनमें से भी कुछ प्रमुख व्यक्तियों के हाथों में ही केन्द्रित हैं।

रूस एक पीढ़ी में ही एक 'टाइर' की ओर ही वापिस लौट गया है। बॉल्शेविक क्रान्ति ने भी एक परम्परागत प्रतिमान (Pattern) का विकास किया है। पीटर महान् (Peter the Great) की भान्ति ही उसने भी अपूर्व प्रशासनिक और तकनीकी उन्नति की है। रूस के इतिहास में यह क्रान्ति भी एक महत्त्वपूर्ण अध्याय का रूप धारण करेगी। स्टालिन की केन्द्रित निरंकुशता जारों की अर्द्ध-प्राच्य निरंकुशता (Semi-Oriental despotism) की याद दिलाती है। रूस के साम्यवादी शासन में प्राचीन निरंकुशता के अनेक लक्षण उपलब्ध होते हैं। हिंसा, राष्ट्रीय संगठन, विदेशी प्रभाव, काल्पनिक प्रवृत्तियाँ, जीवन और संसाधनों का अपार विनाश, व्यक्ति के प्रति उदासीनता, साइबेरिया के शिविर, आर्थिक आयोजन, भीषण आर्थिक संकट, श्रमिकों की दयनीय परिस्थिति, दल और सिद्धान्त की कठोरता आदि बातों में, रूस का वर्तमान शासन प्राचीन निरंकुशता से अपूर्व साम्य रखता है। १९५३ में स्टालिन की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने फिर पैंतरा बदल दिया है। उन्होंने उसके अधिनायकवाद की निन्दा की है, उसकी 'व्यक्ति पूजा (Cult of Personality)' पर प्रहार किया है, उसकी कठोरता को कुछ कम कर दिया है, उसके शासनकाल में बन्दी बनाए गए बहुत से व्यक्तियों को मुक्त कर दिया है, और उसके मित्रों तथा साथियों को अपदस्थ कर दिया है। उन्होंने उसके कारनामों की निन्दा की है, उसकी बड़ी-बड़ी तस्वीरों को हटा दिया है और काली करतूतों को उजागर कर दिया है। यद्यपि रूस के अन्दर बाहर का कोई प्रभाव नहीं आया है, लेकिन कोमिंटर्न (Comintern)[1] और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से जो रूस के नियन्त्रण

१. "कोमिन्टर्न (Comintern) को १९४३ में मास्को के आदेश से भंग कर दिया गया था और उसके स्थान पर अक्तूबर, १९४७ में कोमिनफार्म (Cominform) की स्थापना हुई। कोमिनफार्म का अभिप्राय कम्युनिस्ट इन्फार्मेशन (Communist Information) है। इसकी स्थापना पोलैंड में मार्शल योजना (Marshall Plan) के विरोध में हुई थी। १९४९ के बाद इसकी कोई बैठक नहीं हुई लेकिन यह अपना एक पत्र निकालती रही। १९५६ में बुल्गानिन (Bulganin) और ख्रुश्चेव इंग्लैंड गए। उस समय कोमिन्फार्म का विघटन कर दिया गया। इसके विघटन से कुछ देशों को यह रास्ता मिल गया कि वे अपनी संसदों के अन्तर्गत ही समाजवाद की स्थापना कर सकते हैं।" (प्रवदा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हैं, दूसरे देशों पर रूस का प्रभाव पड़ा है। शुरू-शुरू में तो रूस ने विश्व-क्रान्ति (World Revolution) के नाम पर व्यापक प्रचार किया था। बाद में उसका उद्देश्य रूस और साम्यवाद दोनों की एक ही समय में सेवा करना रहा। इस प्रकार रूस को अनेक देशों में कहीं खुले और कहीं छिपे एजेंटों का समर्थन प्राप्त हो गया। ये पंचगामी रूस के इशारे पर अपने देश में आन्दोलन, षड्यन्त्र और विद्रोह तक करने पर उतारू रहते थे। उन्होंने स्पेन के गृहयुद्ध में खुलकर भाग लिया। अन्य देशों में उन्होंने राजनीतिक फूट डाली और आर्थिक अव्यवस्था उत्पन्न की। बदले में इन देशों की सरकारों ने उन्हें देश-निकाला दिया और उनके खिलाफ अन्य कार्यवाहियाँ कीं। रूस की विदेश नीति के इस रूप में अनेक त्रुटियाँ रही हैं, लेकिन इससे रूस को कुछ लाभ भी हुए हैं। सैनिक आधिपत्यों (military occupations) या सैनिक आवश्यकताओं (military exigencies) के बहाने रूस ने अपने चारों ओर पिछलग्गू साम्यवादी देशों का एक जाल सा बिछा रखा है।[1] साम्यवाद ने एशिया और अफ्रीका में लोगों को राष्ट्रवाद की प्रेरणा दी है। इन देशों में अनेक असन्तुष्ट तत्त्व साम्यवाद के नाम पर एक हो गए हैं।

इस राजद्रोहात्मक आन्दोलन के साथ-साथ, जिसे रूस कभी तो स्वीकार करता है और कभी नहीं, रूस की विदेशनीति कुछ दृष्टियों से ज़ारकालीन शासन के परम्परागत सिद्धान्तों के अनुसार भी चली है। जब १९३०-४० में जर्मनी और जापान का उत्थान हुआ, रूस ने पश्चिमी लोकतन्त्रों का, जिनसे वह सदैव घृणा करता था, सहारा पकड़ा। उसने फ्रांस के साथ समझौता किया, राष्ट्रसंघ (League of Nations) की सदस्यता स्वीकार की और नाजियों का खतरा बढ़ने पर जर्मनी के खिलाफ एक साझा मोर्चा बनाने के सम्बन्ध में पश्चिमी शक्तियों के साथ लम्बी बातचीत की। लेकिन, इसमें बड़ी बाधाएँ थीं। दोनों का एक-दूसरे पर अविश्वास था। तभी समझौते की बातचीत टूट गई और रूस ने जर्मनी के साथ अनाक्रमण समझौता (Non-aggression Pact) कर लिया। इस समझौते के आवरण में ही जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण किया और दूसरे विश्व-युद्ध का पहला ऐक्ट शुरू हो गया।

फासिज्म

इटली का फासिज्म (Fascism) प्रारम्भ में साम्यवाद की प्रतिक्रिया थी और उसने एक प्रकार से साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को क्षीण किया। किन्तु फासिज्म वास्तव में इससे अधिक कुछ और था। इटली में पूर्ण अशान्ति और विशृङ्खलता का बोलबाला था। फासिज्म एक प्रकार से आकस्मिक प्रेरणा थी कि सारे देश में एकता, स्थिरता और दृढ़ शासन स्थापित किया जाय। तथ्यतः फासिज्म (Fascism) कट्टर राष्ट्रीयता का ही रूप था। प्रारम्भ में फासिज्म अन्तर्जात प्रकृति (Instinct) के रूप में उदित हुआ किन्तु, बाद में वही एक वाद अथवा सिद्धांत और

---

१. ये साम्यवादी देश हमेशा ही रूस के इशारे पर नहीं नाचते। यूगोस्लाविया के टीटो ने एक बार कॉमिन्फार्म (Cominform) की अवहेलना की थी। बाद में उसने रूस के साथ सुलह कर ली। कभी-कभी अन्य क्षेत्रों में भी प्रतिरोध दिखाई देता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशेष शासन-प्रणाली के रूप में विकसित हुआ। विश्व-युद्ध के पश्चात् के कुछ वर्षों में इटली में सर्वत्र वित्तीय एवं आर्थिक प्रभावों के कारण व्यापक असन्तोष और पूर्ण अव्यवस्था का बोलबाला था। उधर सन्धि की शर्तों से भी इटली में भारी निराशा छायी हुई थी, अमेरिका ने विदेशियों के उस देश में आ बसने पर कुछ पाबन्दियाँ लगा दी थीं, जिसका कुप्रभाव इटली पर सीधा पड़ा था। इसके अतिरिक्त इटली में कहीं तो कृषकों के उपद्रव हो रहे थे; कहीं निर्माणशालाओं (Factories) में हड़तालें और तोड़-फोड़ की घटनाएँ हो रही थीं; कहीं साम्यवादी उग्र प्रदर्शन कर रहे थे; कहीं श्रमिक वर्ग जबर्दस्ती निर्माणशालाओं पर अधिकार किए बैठे थे; और कहीं कृषक वर्ग जमीनों पर अनधिकृत अधिकार किए बैठे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो इटली में साम्यवादी क्रान्ति का विस्फोट होने वाला है। संसदीय शासन-प्रणाली में अनेक कमियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं जिनका परिहार केवल लम्बे अनुभव और श्रेष्ठ राजनीतिक परम्पराओं के द्वारा ही सम्भव था। नित्ती (Nitti) और ज्योलित्ति (Giolitti) की सरकारों से कुछ भी करते-धरते न बना। ऐसी व्यापक अराजकता और अशान्ति की स्थिति में अनेक स्वयंसेवकों के जत्थों ने इटली की दशा सुधारने का बीड़ा उठाया। इन स्वयंसेवकों में अधिकतर भूतपूर्व सैनिक थे किन्तु कुछ अन्य युवक देशभक्त भी थे। इन स्वयंसेवकों के जत्थों का संगठन बेनिटो मुसोलिनी (Benito Mussolini) ने किया जो स्वयं कभी समाजवादी रह चुका था। उन्होंने काले रंग की कमीज को अपनी वर्दी बनाया और लोहे की छड़ों के गट्ठर (Fasces)[1] को अपना सांकेतिक चिन्ह बनाया और उन्होंने अपने विरोधियों के प्रति लाठी और डण्डे का प्रयोग किया। इस प्रकार वे प्रत्यक्ष कार्यवाही पर उतर आए। इस समय सम्पूर्ण इटली में पूर्ण अव्यवस्था का साम्राज्य छा गया। वहाँ एक ओर समाजवादी और उपद्रवी उपद्रव करने पर उतारू थे तथा दूसरी ओर फासिस्ट उनको लड़ाई के लिए ललकार रहे थे। ऐसी अवस्था में वैधानिक सरकार से कुछ भी करते-धरते न बना। किन्तु फासिस्टों का आन्दोलन ज़ोर पकड़ता गया। १९२२ में मुसोलिनी (Mussolini) ने अपनी काली कमीज़ों वाली सेना के साथ रोम को घेर लिया और शासन-सत्ता हथिया ली। यदि इटली के राजा ने विरोध किया होता तो सम्भवतः इटली गृह-युद्ध का अखाड़ा बन गया होता किन्तु राजा विक्टर इमेन्युएल (Victor Emmanuel) ने इटली के होने वाले तानाशाह को अपने पक्ष में कर लिया, और इस प्रकार १९२२ से १९४४ में अपने पतन तक मुसोलिनी ही इटली का वास्तविक शासक बना रहा और फासिज्म, राजतन्त्र के समर्थन का प्रतीक बन गया। मुसोलिनी ने १९२९ की लैटरन सन्धि (Lateran Treaty of 1929) के द्वारा चर्च के साथ भी समझौता कर लिया। १८७० के बाद से पोपशाही और इटली के राजतंत्र में जो विवाद चला आ रहा था, इस सन्धि ने उसे समाप्त कर दिया। 'रोम का सवाल (The Roman Question) समाप्त हो गया और वेटिकन के कैदी को आजादी

---

१. प्राचीन रोम (Rome) में लोहे की छड़ों के गट्ठरों को सत्ता और अधिकार का प्रतीक माना जाता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल गई। पोपशाही ने सेवॉय वंश की अधीनता में इटली के राज्य को मान्यता दी और रोम को उसकी राजधानी मान लिया। इटली के राज्य ने वेटिकन नगर के ऊपर पोप की पूर्ण प्रभुसत्ता मान ली। इस स्थान का क्षेत्रफल थोड़ा-सा ही था, परन्तु इसे स्वतन्त्र प्रभुसत्ता का दर्जा दिया गया। वित्त, धर्म, शिक्षा और विवाह आदि के मामलों में इटली की सरकार तथा पोपशाही के बीच करार हो गए। पोपशाही तथा राजतन्त्र के साथ मुसोलिनी के सम्बन्ध हमेशा मधुर नहीं रहे। लेकिन लैटरन की सन्धि (Lateran Treaty) नेपोलियन के १८०१ के कान्कोर्डेट (Concordat) की भाँति ही एक श्रेष्ठ राजनीतिक चाल थी। रुष्ट चर्च फासिस्ट शासन और अधिकार के लिए सतत खतरा रहता।

इटली में अभी तक एकता का अभाव था। मुसोलिनी ने फासिस्ट पार्टी और फासिस्ट अनुशासन के द्वारा इटली में नए जीवन का संचार करना प्रारंभ किया। मुसोलिनी का कार्यक्रम उदारवादी न होकर अधिकनायकवादी था और वह रोमन युग की याद दिलाता था। मुसोलिनी ने संसदीय शासन तथा विरोधी दलों को समाप्त कर दिया। मजदूरों के लिए हड़ताल करना अवैध हो गया। समाचारपत्रों के ऊपर अनेक पाबन्दियाँ लगा दी गईं और वे सरकारी नीति के ही प्रवक्ता हो गए।

फासिस्ट राज्य पर समाजवाद या सर्वहारावाद (Proletarianism) की हल्की-सी छाप थी। यद्यपि मुसोलिनी ने व्यक्तिगत उद्यम को प्रोत्साहन दिया, परन्तु उसने समतावादी तथा समुदायवादी सिद्धान्तों के साथ उसका समन्वय[1] बैठाने की कई कोशिशें कीं।

१९३९ तक मुसोलिनी ने एक नई संवैधानिक व्यवस्था (Constitutional Machinery) का विकास कर लिया था। आशा थी कि यह व्यवस्था राजनीति-विज्ञान के लिए एक अमूल्य भेंट सिद्ध होगी। यह व्यवस्था साम्यवाद के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के लिए फासिस्म का मुँहतोड़ जवाब था। यह फासिस्ट सिण्डिकलिज्म (Fascist Syndicalism) के सिद्धांत पर आधारित थी और प्रादेशिक प्रतिनिधित्व के आधार पर नहीं, प्रत्युत् व्यावसायिक प्रतिनिधित्व (Functional representation) के आधार पर कार्य करती थी। मुसोलिनी ने मजदूरों और मालिकों के बीच सहयोग रखने की चेष्टा की और आर्थिक शक्ति का विधायी अथवा राजनीतिक शक्ति के साथ सामंजस्य रखने का प्रयास किया। इटली में पहले प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों का एक संसदीय सदन (Parliamentary Chamber) हुआ करता था। अब इसके स्थान पर फेसिओज (Fascios) तथा निगमों का एक सदन बनाया गया। इसमें फासिस्ट पार्टी तथा २२ निगमों के प्रतिनिधि शामिल थे।

---

१. वर्गों को समान करने के अपने उपायों के बारे में उसने कहा था, "समाजवाद कहा करता था कि 'सब समान और सब अमीर रहें।' प्रयोग ने इस बात को असंभव कर दिखाया है। हम कहते हैं, 'सब समान और सब काफी गरीब।'"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसोलिनी ने देश की समस्त आर्थिक गतिविधियाँ इन २२ निगमों में केन्द्रित कर दी थीं।[1]

तथापि, इन प्रतिनिधियों पर सरकार की मंजूरी होती थीं। अपने सम्पूर्ण जीवन-काल में सदन के पास केवल सलाह देने की ही शक्ति रही। फासिज्म के पतन के पश्चात् इस प्रयोग को त्याग दिया गया। वास्तव में इस प्रयोग की पूरी जाँच कभी नहीं हुई। वास्तव में मुसोलिनी ने शक्ति का केन्द्रीकरण कभी नहीं किया। वह अपने द्वारा नियुक्त मन्त्रियों की सहायता से स्वयं ही शासन करता रहा। वह कभी-कभी नामांकित ग्रांड कौंसिल (Grand Council) अथवा दल के नायकों से अवश्य सलाह ले लेता था।

फासिस्टों ने शुरू से ही प्राचीन रोम के गौरव का गान किया और युद्ध के गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रकट किया। लेकिन उनकी इन अतिशयोक्तियों पर किसी ने गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। १९३० के बाद मुसोलिनी ने अपनी विस्तारवादी आकांक्षाओं को व्यावहारिक रूप देना प्रारम्भ किया। इससे यूरोप सशंकित हो गया और संसार की शक्ति खतरे में पड़ गई। १९३५ में उसने अबीसीनिया (Abyssinia) पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। इस पर राष्ट्र संघ (League of Nations) ने उसके ऊपर आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए। राष्ट्रसंघ इन आर्थिक प्रतिबन्धों को पूरे मन से लागू नहीं कर सका। इससे इटली ने अपने पुराने मित्रों को छोड़ दिया और वह अधिकाधिक हिटलर की ओर झुकता गया। १९३६ में इटली और जर्मनी में एक समझौता हुआ। अगले वर्ष जापान भी इस समझौते में शामिल हो गया। इस समझौते के बाद तीनों दुस्साहसी देशों ने अपने-अपने विस्तारवादी कार्यक्रम पर तेज़ी से अमल करना प्रारम्भ कर दिया। १९३४ में मुसोलिनी ने ऑस्ट्रिया और जर्मनी के ऐक्य का विरोध किया था। १९३८ में उसने यह ऐक्य स्वीकार कर लिया यद्यपि मुसोलिनी यह अच्छी तरह जानता था कि जर्मनी का निरन्तर विस्तार एक दिन इटली के लिए भी खतरा बन सकता है। लेकिन, उसे आशा थी कि जवाब में वह भी इटली का विस्तार करेगा। जर्मनी और इटली दोनों ने ही अपने साम्राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि दोनों शक्तियाँ निर्हस्तक्षेप का बहाना करती रहीं,

---

१. निगम (Corporations) तीन प्रकार के होते हैं—(क) प्रथम प्रकार के निगम भोजन, तेल उद्योग, शराब उद्योग, फूल, तरकारी, फल, चुकन्दर, जानवर व मछली उद्योग, लकड़ी उद्योग, कपड़ा उद्योग आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। (ख) द्वितीय प्रकार के निगम धातुकर्म उद्योग, यंत्र-रचना (mechanism), तैयार कपड़ों का उद्योग, कागज व छपाई-उद्योग गृह-निर्माण, जल, गैस, बिजली उत्पादन, खनिज-उद्योग, काँच-उद्योग और मृच्छिल्प (ceramics) आदि उद्योगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। (ग) तृतीय प्रकार के निगम वे हैं जो बीमा अथवा आगोप तथा उधार आगोप, कलाओं एवं व्यापारी अथवा प्राविधिक शिक्षा प्रबन्ध आदि, समुद्री एवं हवाई यातायात, आन्तरिक संचार, सार्वजनिक लोक-कल्याण, और पर्यटक सुविधाओं सम्बन्धी उद्योगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक निगम (Corporation) को आदेश रहता है कि वह अपने अधीन कार्यों और उद्योगों में उन्नति करे तथा सम्बन्धित श्रमिक समस्याओं, उत्पादन समस्याओं और प्राविधिक समस्याओं का समाधान करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन दोनों ने ही स्पेन के गृहयुद्ध में फ्रांको (Franco) की सहायता की। मुसोलिनी ने फ्रांस को उत्तेजित करने के भी कई कार्य किए। १९३९ में जहाँ हिटलर ने चेको-स्लोवाकिया (Czechoslovakia) को जीता, मुसोलिनी ने अल्बानिया को विजित कर लिया।

यद्यपि मुसोलिनी ने धुरी देशों की सहभागिता (Axis Partnership) में अपनी समानता और स्वतन्त्रता प्रदर्शित करने का प्रयास किया, फिर भी वह स्पष्ट रूप से दूसरे दर्जे का सदस्य हो गया था और उसे इटली का गौलिताटर (Gauleiter of Italy)[1] कहा जाने लगा था।

जब सितम्बर, १९३९ में लड़ाई शुरू हुई, कुछ महीनों तक मुसोलिनी इस असमंजस में रहा कि वह लड़ाई में भाग ले या न ले। वह यह जानता था कि इंग्लैंड लड़ाई में भाग ले सकता है।[2] वह यह भी जानता था कि इटली का राजा, वहाँ की जनता का एक बड़ा भाग और उसके कुछ मन्त्री तक लड़ाई के खिलाफ थे। लेकिन, जब उसने देखा कि जर्मनी बराबर जीतता जा रहा है, जर्मनी ने पोलैण्ड को जीत लिया, फ्रांस को पददलित कर दिया, और इस सहभागिता में रूस भी लाभ उठा रहा है, तो लूट के माल में हिस्सा लेने के प्रलोभन को वह भी न रोक सका। मुसोलिनी ने १९४० में युद्ध में भाग लेने का निर्णय करते समय १९१८, १८७० और १८६६ के ऐतिहासिक दृष्टान्तों को भी अपने सामने रखा था। १० जून, १९४० को उसने इंग्लैंड और फ्रांस के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और दक्षिणी दिशा से फ्रांस पर आक्रमण किया। यह "जिस समय फ्रांस घुटने के बल झुका हुआ था, उसकी पीठ में छूरा भोंकने के समान था।"[3] एक बार मुसोलिनी ने कहा था, "मैं बिल्ली की भाँति चतुर और चौकस हूँ। लेकिन जब मैं कूदता हूँ, जहाँ चाहता हूँ, वहाँ पहुँच जाता हूँ।"

लेकिन, बिल्ली का हर बार का कूदना कारगर नहीं होता। ऐतिहासिक दृष्टान्त भी कभी-कभी धोखा दे जाते हैं। मुसोलिनी ने जून में फ्रांस में और अगस्त में ब्रिटिश सोमालीलैण्ड में आसानी से विजय प्राप्त कर ली। लेकिन उत्तर अफ्रीका और मिस्र की लड़ाई में तथा अक्तूबर, १९४० में यूनान के हमले में जो बिना सोचे-समझे गलत तरीके से हुआ था, मुसोलिनी को मुँह की खानी पड़ी तथा दोनों बार उसकी जर्मनी ने रक्षा की।

यह शीघ्र ही प्रकट हो गया कि फासिज्म की उग्र और आक्रामक नीतियाँ इटली के जनमानस को अपनी ओर न खींच सकीं। इटली की सांस्कृतिक परम्परा सैन्यवाद के खिलाफ रही थी। इटली के पास इतने संसाधन नहीं थे कि वह लम्बे समय तक युद्ध जारी रख सके। युद्ध में इटली के पास विश्वास के बल का अभाव था।

---

१. नाजी पार्टी का क्षेत्रीय नेता।

२. "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अंग्रेज लोग बाइबिल पढ़ते हैं। उनके चरित्र में वाणिज्यवाद के साथ-साथ रहस्यवाद का भी पुट है। इस समय रहस्यवाद की प्रधानता है और वे लड़ाई में कूद सकते हैं।"—सिआनो (Ciano) के प्रति मुसोलिनी का वचन, मार्च, १९३९।

३. फ्रांस के राजदूत का सिआनो (Ciano) के प्रति वचन।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके मित्र वे थे, जो उससे घृणा करते थे। उसे उन मित्रों से लड़ना पड़ रहा था जो भूत काल में उसके मित्र थे और जिनकी वह इज्जत करता था।

१९४३ में इटली की भूमि पर आक्रमण हुआ। मुसोलिनी के पतन के बाद बादोग्लिओ (Badoglio) की सरकार बनी। यद्यपि बादोग्लिओ की सरकार ने युद्धविराम कर लिया था, तथापि इटली की भूमि पर अठारह महीनों तक जर्मनी और पश्चिमी शक्तियों के बीच लड़ाई के फलस्वरूप इटली का बहुत सा गौरव धूल में मिल गया।

सैनिक पराभव के पश्चात् राजनीतिक पराभव आया। फासिज्म की बड़ी दुर्गति हुई। अप्रैल १९४५ में इटली के किसानों ने मुसोलिनी को पकड़ लिया और उसकी हत्या कर दी। पकड़े जाने के समय मुसोलिनी इटली-स्विस सीमान्त की ओर भाग जाने का प्रयास कर रहा था। फरवरी १९४७ में इटली ने पैरिस में शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के फलस्वरूप इटली ने अपनी फासिस्टकालीन समस्त विजयों को त्याग दिया। इसके अतिरिक्त उसने अपनी सीमान्त के चार जिले फ्रांस को दिए, वेनेजिया ग्यूलिया (Venezia Giulia) का सारा प्रान्त यूगोस्लाविया को दिया, डोडेकेनीज (Dodecanese) यूनान को दिया। सेरेनो का द्वीप अल्बानिया को दिया। उसने अपने पूर्वकालीन उपनिवेशों को भी त्याग दिया और अल्बानिया, इथियोपिया, यूनान, यूगोस्लाविया तथा रूप की क्षतिपूर्ति करने का वचन दिया।

अन्त में राजनीतिक कार्यवाही के लिये राजतन्त्र उपयोगी प्रमाणित हुआ। लेकिन, राजतन्त्र बहुत लम्बे समय तक फासिज्म के साथ समीकृत रहा था। इसलिए अब जब देश में गणतन्त्रवाद (Republicanism) की लहर उठी तो राजतन्त्र उसका सामना न कर सका। जून, १९४४ में विक्टर इमैनुअल (Victor Emmanuel) ने अपने पुत्र अम्बर्टो (Umberto) के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। १९४६ में जनमत संग्रह (Referendum) के पश्चात् सैवाय वंश ने राज्य त्याग दिया। इस वंश ने ६०० वर्षों तक पीडमौंट को शासक तथा १८६१ के बाद से इटली को राजा दिये थे। विक्टर इमैनुअल और उसका लड़का इटली छोड़कर बाहर चले गये। इटली लोक-तन्त्रात्मक गणराज्य घोषित हो गया और वहाँ एक नये संविधान के अनुसार इटली की संसद् में दो सदन थे। ये सदन प्रादेशिक आधार पर निर्वाचित होते थे। फासिज्म का अन्त हो गया।

यह स्वाभाविक ही है कि फासिस्ट प्रकरण पर उसके विनाशक अन्त के संदर्भ में ही विचार किया जाये। मुसोलिनी का अन्त बड़ा दर्दनाक हुआ था। मिलान के बाजार में उसके पैरों को उसकी पत्नी के पैरों के साथ बांध दिया गया था। भीड़ ने उसका मजाक उड़ाया और उसको बेइज्जत किया।

लेकिन, मुसोलिनी के पतन के पूर्व उसकी सफलताओं की बड़ी प्रशंसा की गई। मुसोलिनी की सफलताओं को अब भी सराहा जा सकता है। मुसोलिनी लैटिन यथार्थ-वाद से वंचित नहीं था और उसके बाद रचनात्मक विचारों का भी अभाव नहीं था। उसने इटली को आधुनिक राज्य बनाने में मदद दी और इटली की एकता की प्रक्रिया को एक कदम और आगे बढ़ाया। उसने जमीन को सुधारा, सिंचाई योजना को कार्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्वित किया, कृषि, उद्योग और विज्ञान की उन्नति की। इटली की अशिक्षित और निर्धन जनता के बीच मुसोलिनी ने शिक्षा तथा लोककल्याण की अनेक योजनाएँ चालू कीं। उसने इटली की वास्तुकला को एक नई शैली प्रदान की।

प्रारम्भ में जर्मनी की राष्ट्रीय समाजवादी क्रान्ति के बारे में यह सोचा गया था कि वह तो केवल इटली की उग्रराष्ट्रिकता (Italian Fascism) की नकल मात्र थी, तथा उसने कुछ बातों में तो रूस की बॉल्शेविज्म की तथा कुछ बातों में इटली की फासिज्म अथवा उग्रराष्ट्रिकता की नकल मात्र की है। किन्तु जर्मनी की विशिष्ट समस्याओं और आवश्यकताओं के अनुरूप तथा जर्मनी की राष्ट्रीय मनःस्थिति के अनुरूप ही नाजी-क्रान्ति का स्वरूप कुछ अनोखापन लिए था। वास्तव में नाजी-क्रान्ति राष्ट्रीय समाजवाद था जिसके द्वारा जर्मनी का पुनरुत्थान हुआ और जिसने जर्मनी की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया तथा जिसके कारण १९३० से लेकर १९४० तक के दशक में जर्मनी का महान् और ऐतिहासिक विकास हुआ।

नाजी क्रान्ति

१९१८ में जर्मनी की पराजय हुई और उसने आत्मसमर्पण किया। इसके फलस्वरूप जर्मनी की मान-हानि हुई, जर्मनी को संधि भी अत्यन्त अपमानजनक मिली क्योंकि सन्धि की एक धारा में जर्मनी को युद्ध का दोषी ठहराया गया; जर्मनी को विसैन्यीकरण के लिए भी मजबूर किया गया; जर्मनी के प्रदेश भी छीन लिए गए, तथा जर्मनी को इतनी भारी युद्ध के हर्जाने की रकम देने के लिए मजबूर किया गया जो जर्मनी के बूते से बाहर थी। इस कारण जर्मनी की राष्ट्रीय चेतना को भारी आघात पहुंचा, और फलस्वरूप जर्मनी के युद्ध-विक्षत लोगों में भारी गम और गुस्से की लहर दौड़ गयी। यही नहीं, लोग क्रान्ति पर उतर आए और उनमें नैतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक अवसाद और भारी निराशा छा गई। उन अपार आपत्तियों से बचने का, जिनमें वे फँस गए थे, उनको केवल यही मार्ग दिखाई दिया कि वे अपनी सरकार को उलट दें तथा राजतन्त्र का अन्त कर दें। उन्होंने १९१९ में एक भंयकर साम्यवादी उपद्रव का दमन किया जिसे स्पार्टेसिस्ट विद्रोह (Spartacist revolt) भी कहा जाता है[1] और तत्पश्चात् उन्होंने संसदीय गणतन्त्र की स्थापना की जिसका हैडक्वार्टर वीमर (Weimar) में स्थापित किया गया। लगभग १२ वर्ष तक वीमर गणराज्य की समाजवादी लोकतन्त्रात्मक सरकार प्रयत्नपूर्वक देश की नैतिक-राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं से लड़ती रही। एक ओर जर्मनी के लोग असंगठित थे, निराश थे, कष्टकारी अवस्था में थे, तथा जिन्हे संसदीय शासन के प्रति न तो मोह था और न जिसका उन्हें कोई अनुभव था, जो दलीय व्यवस्था की कठिनाइयों से सर्वथा अपरिचित थे तिस पर भी बीस या तीस राजनीतिक दलों के कारण वे और

---

१. स्पार्टेसिस्ट लोगों (Spartacists) ने अपना यह नाम स्पार्टेकस (Spartacus) के नाम पर धारण किया था जो प्राचीन रोम के एक गुलाम विद्रोह का नेता रह चुका था। उनके अन्य नेता लोगों कार्ल लिबनेवट (Karl Liebknecht) और रोजा लक्सेम्बर्ग (Rosa Luxemburg) को सरकार ने पकड़ लिया। बाद में उत्तेजित भीड़ के द्वारा उनका वध कर दिया गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by eGangotri Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भी अधिक हैरान थे। इसके अतिरिक्त भयंकर मुद्रास्फीति के कारण सर्वसाधारण की आर्थिक कठिनाइयाँ बहुत अधिक बढ़ गई थीं और मुद्रा-स्फीति के साथ-साथ उद्योगों में भी व्यापक अराजकता छाई हुई थी। यही नहीं, जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में नए और हिंसक प्रयोग किए जा रहे थे तथा ऐहिक, भौतिकवादी, असंगत एवं न्याय-विरुद्ध तथा संवेदनात्मक सभी प्रकार के वादों की मानो जर्मनी में बाढ़-सी आ गई थी, जिनसे सभी क्षेत्रों में नैतिक पतन दृष्टिगोचर होने लगा था क्योंकि वास्तव में जर्मन लोग सेना और कठिन अनुशासन में रहने के अभ्यस्त थे और दुर्भाग्यवश उसी अनुशासन का पूर्ण अभाव था इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि जर्मन लोग आंदोलन-कारियों और ऐसे लोक-नेताओं के प्रभाव में शीघ्र बह जाते थे जिनकी पीठ पर कुछ प्राइवेट सैनिकों का भी बल रहता था। इसलिए जर्मन लोग अतीव इच्छुक थे कि उन्हें कोई ऐसा जन-नेता मिले जो उनके खोए हुए आत्मसम्मान और टूटे हुए गर्व की रक्षा करे और जो उन्हें ऐसे मार्ग पर ले चले जिस पर उन्हें किसी प्रकार के उत्तर-दायित्वों के निर्वहन का कष्ट न हो और जहाँ उनकी अच्छी या बुरी आन्तरिक भाव-नाओं की पुष्टि हो सके।

दूसरी ओर विदेशी शक्तियाँ थीं और जर्मनी के पिछले शत्रु देश जो निरन्तर दबाव डाल रहे थे कि जर्मनी सन्धि की शर्तों को पूरा करे। युद्ध-विराम के पश्चात् १९१९-१९२३ तक के प्रथम चार वर्षों में जर्मनी ने सन्धि की शर्तों से बचने के हर सम्भव उपाय किए। जर्मनी ने विरोध प्रदर्शन किया, अहिंसक विरोध या सत्या-ग्रह भी किया तथा भयंकर मुद्रा-स्फीति के कारण भी बचना चाहा, किन्तु इन सब प्रयत्नों से उल्टे जर्मनी की स्थिति और भी अधिक खराब हो गई। इससे फ्रांस अप्रसन्न हो गया और फ्रांस तथा बेल्जियम ने मिलकर जर्मनी के रूर (Ruhr) नामक प्रान्त पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार जर्मनी की कठिनाइयाँ भी बढ़ीं और उसकी और अधिक मान-हानि हुई। मुद्रा-स्फति के कारण जर्मनी ने अपने-आपको दिवालिया बना लिया, मध्य वर्ग अत्यन्त कष्टकारी अवस्था को पहुँच गया। इस प्रकार जर्मनी के राष्ट्रीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग नष्टप्राय हो गया।

इस पर जर्मनी ने स्ट्रेसमैन (Stresemann) की सलाह पर अपनी नीति बदली[1]; तथा १९२९ तक जब स्ट्रेसमैन की मृत्यु हुई थी, जर्मनी ने अपने शत्रुओं के साथ सहयोग किया और बड़ी शक्तियों से सहायता की याचना की। विशेष रूप से जर्मनी ने संयुक्त राज्य अमेरिका को अपनी ओर आकर्षित करना चाहा था। उसने डौस योजना (Dawes Plan) को स्वीकार कर लिया तथा यह भी मान लिया कि उसकी वित्तीय व्यवस्था का विदेशी लोग पर्यवेक्षण करते रहें। इसके अतिरिक्त जर्मनी ने लोकार्नो सन्धि (Locarno Treaty) पर भी हस्ताक्षर कर दिए जिसके अनुसार फ्रांस की पश्चिमी सीमा पूर्ण सुरक्षित हो गई। इसके बदले में जर्मनी को भी पर्याप्त लाभ मिला। अब विदेशी लोगों की भी जर्मन लोगों के प्रति सहानुभूति बढ़ने लगी। जर्मनी को हर्जाने के रूप में जितनी धन-राशि अदा करनी थी उससे प्रायः दूनी धन-

१. स्ट्रेसमैन (Stresemann) की डायरियों के छपने से अब पता चला है कि उसने भी केवल थोड़े से समय के लिए नीति-परिवर्तन करने की सलाह दी थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राशि विदेशों से सहायता के रूप में प्राप्त हो गई। इस विदेशी पूंजी के बल पर जर्मनी ने अपने उद्योगों की दशा को सुधारा तथा चुपके-चुपके शस्त्रास्त्र संचय करना प्रारम्भ कर दिया। उक्त पूंजी से जर्मनी ने अनेक कल्याणकारी योजनाओं की भी पूर्ति की। वर्साई की सन्धि की कठोर गाँठें भी ढीली पड़ने लगीं। १९२६ में राइनलैंड के तीन अधिकृत प्रदेशों में से एक प्रदेश खाली कर दिया गया। उसी वर्ष जर्मनी को राष्ट्र-संघ की सदस्यता प्रदान की गई और उसको राष्ट्रसंघीय परिषद् का स्थायी सदस्य स्वीकार कर लिया गया। १९२९ में अन्तःमित्रराष्ट्रीय सैनिक नियन्त्रण आयोग (Inter-allied-Military-Control Commission) को विघटित कर दिया गया। यही आयोग, सदस्य देशों के शस्त्रास्त्र संचय को नियन्त्रित करता था। १९२९ में राइनलैंड (Rhineland) का द्वितीय प्रदेश भी खाली कर दिया गया। १९२९ में जब जर्मनी ने तिरस्कार-योग्य यंग योजना (Young Plan) को स्वीकार कर लिया तो राइनलैंड के तृतीय प्रदेश को भी खाली कर दिया गया और जर्मनी की वित्तीय व्यवस्था पर से विदेशी नियन्त्रण हटा लिया गया।

इधर जर्मन लोग चाहते थे कि सन्धि की शर्तों पर शीघ्र पुनर्विचार हो, परन्तु मित्रराष्ट्र इस मार्ग पर बहुत ही धीमे-धीमे चलना चाहते थे। यद्यपि जर्मनी की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थिति अच्छी होती जा रही थी फिर भी जर्मनी की आन्तरिक स्थिति अभी तक अच्छी नहीं थी। १९२९ से १९३१ तक के काल में संसारव्यापी आर्थिक अवसाद के कारण जर्मनी में बेरोजगारी की समस्या भी बहुत ही विषम हो चली थी; ब्रूनिंग (Bruning) की सरकार आर्थिक कठिनाइयों के कारण असफल हो गई।[1] संसदीय शासन में दरारें पड़ने लगीं। ब्रूनिंग (Bruning) ने संविधान के अनुच्छेद ४८ के अधीन आपातकालीन आज्ञप्तियों (Emergency Decrees) का अधिकाधिक सहारा लिया। ढाई वर्षों में ही संसद् का तीन बार विघटन किया गया और १९३२ में तीन बार निर्वाचन हुए (जिनमें राष्ट्रपति पद का निर्वाचन भी शामिल था)। इन घटनाओं से संसद् की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का पहुँचा। इस अवस्था में लोक-नेताओं (demagogues) की बन आई। अब जन-भाषणों, राजनीतिक हिंसा और आन्तरिक षड्यन्त्रों ने संवैधानिक कार्यवाही का स्थान ले लिया। हर नए निर्वाचन में अतिवादियों को कुछ-न-कुछ लाभ पहुँचा। अगस्त, १९३२ में संसद् के कुल ६०८ स्थानों में से राष्ट्रीय समाजवादियों (National Socialists) को २३० स्थान मिल गए।[2] राष्ट्रीय समाजवादी दल की वास्तविक शक्ति संसदीय वाद-विवाद तथा व्यवस्था में नहीं थी प्रत्युत सदन के बाहर थी। हिटलर का जनसाधारण के ऊपर अतुलित प्रभाव था, उसने दल को अपने अधीन कर रखा था, दल के राजनीतिक गुरिल्लाओं स्टार्म ट्रूपर्स

---

१. १९३०-३२।

२. १९३०, अगस्त, १९३२, नवम्बर, १९३२ और मार्च, १९३३ की चार संसदों में विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति इस प्रकार थी : राष्ट्रीय समाजवादी (NSDAP) १०७, २३०, १९६, २८८; साम्यवादी (KPD) ७७, ८९, १००, ८१, सामाजिक लोकतन्त्रवादी (SPD) १४३, १३३, १२१, १२०; जर्मन राष्ट्रवादी (DNVP), ४१, ३७, ५२, ५२; कैथोलिक और क्वेरियन पीपल्स पार्टी (Z-BVVP) ८७, ९७, ९०, ९२; अन्य दल ७२, ११, १२, ७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Storm Troopers) के ऊपर भी उसका नियन्त्रण था। जिन वर्गों ने वीमर गणराज्य (Weimar Republic) को कभी पसन्द नहीं किया था, वे भी पृष्ठभूमि में रहकर उसके विरुद्ध कार्य कर रहे थे। बड़े-बड़े उद्योगपति, पूंजीपति और राजतन्त्रवादी—ये सब लोग गणराज्य के विरुद्ध थे। उस समय जर्मनी के राष्ट्रपति हिंडनबर्ग (Hindenburg) थे। वे वयोवृद्ध तथा बुद्धिमान व्यक्ति थे। इनके पीछे जनरल वान श्लीशर (Generel Von Schleicher) था। सेना और श्रमिक संघों में इसके बहुत से अनुयायी थे। वह सैनिकों और मजदूरों की सहभागिता (Partnership) की कल्पना किया करता था। वॉन पेपन (von Papen) और राष्ट्रपति के पुत्र ओस्कर (Oscar) के साथ मिलकर वह मन्त्रालयों में उखाड़-पछाड़ किया करता था।

मई, १९३२ में ब्रूनिंग (Bruning) का पतन हो गया। उसने ऑस्ट्रिया के साथ सीमाशुल्क सम्बन्धी एकता (Customs Union) का प्रस्ताव किता था। यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया था।[1] वह जनेवा सम्मेलन (Geneva Conference) में जर्मनी के पुनश्शस्त्रीकरण की आजादी प्राप्त करने में भी असफल रहा था।[2] उसके स्थान पर वॉन पेपन (von Papen)[3] और फिर नवम्बर, १९३२ में स्वयं वॉन श्लीशर (von Schleicher)[4] सत्तारूढ़ हुआ। जनवरी, १९३३ में राजनीतिक षड्यन्त्र के द्वारा पद से हटा दिया गया। वॉन पेपन (von Papen) ने राष्ट्रपति को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह हिटलर को चांसलर तथा उसे उप-चांसलर बना दे। नवम्बर के निर्वाचनों में राष्ट्रीय समाजवादी दल (National Socialist Party) को कम वोट मिले थे। वॉन पैपन (von Papen) का विचार था कि जर्मन नेशनलिस्ट पार्टी (German Nationalist Party) के हुगेनबर्ग (Hugenburg)[5] और स्टॉलहेम (Stahlhelm)[6] के सेल्टे (Seldte)[7] के सहयोग से वह हिटलर तथा अन्य दो

---

१. इस प्रस्ताव का फ्रांस ने विरोध किया था। हेग के स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of International Justice at Hague) ने भी इसे अग्राह्य बताया था।

२. उसने थोड़ा-सा निरस्त्रीकरण करके शस्त्रास्त्र खरीदने का प्रस्ताव रखा था। इसके कारण राष्ट्रवादियों (Nationalists) ने उसका समर्थन बन्द कर दिया। उसने S. A. पर प्रतिबन्ध लगा दिया और हिटलर तथा साम्यवादी थालमान (Thalmann) के विरुद्ध हिंडेनबर्ग (Hindenburg) की पुनर्विजय के लिए प्रयास किया। इससे राष्ट्रीय समाजवादी (National Socialists) भी उससे नाराज हो गये थे। दिसम्बर १९३२ में मित्र-देशों ने शस्त्रीकरण की समानता स्वीकार कर ली थी।

३. ३० जून, १९३४ में वॉन पैपन (von Papen) को गिरफ्तार किया गया और पद से हटा दिया गया। उसे सेना के हस्तक्षेप ने मौत से बचाया।

४. वॉन श्लीशर (von Schleicher) को ३० जून, १९३४ को गोली मार दी गई।

५. हुगेनबर्ग (१८६५-१८५१) नेशनलिस्ट पार्टी का नेता। उसे १८३४ में मन्त्रिमण्डल से अलग कर दिया गया।

६. पुराने सिहाहियों का संघ। बाद में उसे S.A. में शामिल कर लिया गया।

७. सेल्टे (Seldte)—स्टालहेम का नेता। वह १९४५ तक मंत्रिमण्डल का सदस्य रहा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वहीन साथियों गोएरिंग (Goering)[१] तथा फ्रिक (Frick)[२] के खिलाफ अपनी सत्ता कायम रख सकता है। हिटलर के महत्त्व को कम समझने वालों में यह पहला या अन्तिम व्यक्ति नहीं था। हिटलर के व्यक्तित्व को अन्य कई व्यक्ति भी ठीक से नहीं समझ सके थे।[३]

इस प्रकार एडोल्फ हिटलर (Adolf Hitler) रीश (Reich) का चाँसलर बन गया। वह ऑस्ट्रिया का निर्वासित नागरिक था। कुछ समय उसने फौज में कार्पोरल के पद पर कार्य किया था और लोहे का क्रास जीता था। वह राजनीतिज्ञ बनना चाहता था। वह न तो मजदूर था, न सिपाही और न बुद्धिजीवी।[४] वह राजनीतिक पुनरुत्थानवादी (Political Revivalist) था। उसमें अपूर्व सम्मोहन शक्ति थी जिसके द्वारा वह जनसमूह को अपने साथ बहा ले जाता था। राष्ट्रवाद की दृष्टि से वह पूरी तरह धर्मान्ध व्यक्ति था। कौन-सा कार्य किस समय किया जाए इसे वह अच्छी तरह समझता था। उसमें संगठन की भी आश्चर्यजनक क्षमता थी। इसी संगठनक्षमता के बल पर वह अपने दल को सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर ले गया था। अभी पूरे दस वर्ष नहीं हो पाये थे जबकि उसने बवेरियन सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया था और उसे जेल में डाल दिया गया था। आगे के छः वर्षों से कुछ अधिक समय में ही उसने जर्मनी को युद्ध में झोंक दिया। आगे के छः वर्षों में उसने अपना और जर्मनी दोनों का विनाश कर लिया।

हिटलर ने जिन हथकण्डों और हिंसात्मक कार्यवाहियों के द्वारा अपनी शक्ति का विस्तार किया, उन सबका यहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता। उसने मरुत्वेग से नियन्त्रण के समस्त साधनों पर अधिकार कर लिया और जर्मन राज्य तथा जर्मन राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निर्माण प्रारम्भ किया। मार्च में नए निर्वाचन हुए। इनमें उसे केवल ४३·९ प्रतिशत मत प्राप्त हुए। उन्हीं दिनों संसद् भवन में अग्निकांड हो गया। हिटलर ने इसके लिए साम्यवादियों को दोषी ठहराया। इस आरोप के आधार पर उसने साम्यवादियों को संसद् से निकाल दिया और संसद् को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वह चार वर्ष के लिए सम्पूर्ण विधायी शक्ति मन्त्रिमण्डल में विहित कर दे। हिटलर की बाद की कार्यवाहियों के लिए यह संवैधानिक आधार हो गया।

इसके बाद समस्त विरोधी दलों को भंग कर दिया गया। अकेले नाजी दल

---

१. गोएरिंग (Goering) अन्त तक हिटलर का प्रधान सहयोगी। लुफ्टवेफ (Luftwaffe) का निर्माता और कमांडर। १ सितम्बर, १९३९ को वह अधिकृत रूप से हिटलर का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। २९ जून, १९४१ को वह हिटलर का नायक नियुक्त किया गया।

२. फ्रिक (Frick) १९३३-४३ में गृहमन्त्री।

३. १९३२ में हिंडेनबर्ग (Hindenburg) से कहा गया था कि वह चाँसलर पद के लिए हिटलर के नाम पर भी विचार करें। उस समय उन्होंने कहा था, "क्या! वह आदमी! उसे मैं पोस्टमास्टर बना दूंगा। वह मेरे चित्रों वाले स्टाम्प छापता रहेगा।"

४. यद्यपि उसने *Mein Kampf* नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ जर्मन राष्ट्र का धर्मग्रन्थ बन गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ही वैधानिक माना गया और उसे सरकार का एक अंग मान लिया गया। इस प्रकार, रूस की भाँति जर्मनी में भी दल और राज्य के संगठन एक-दूसरे से अभिन्न हो गए। पुलिस की व्यवस्था को पहले तो प्रशा में तथा बाद में अन्य राज्यों में हटा दिया गया और उसके स्थान पर नाजी दल के सुरक्षा सैनिकों को रख दिया गया।[1] संघ के अठारह राज्यों को भी नियन्त्रण में ले लिया गया। उनके प्रभुसत्ता सम्बन्धी अधिकार रीश (Reich) को हस्तांतरित कर दिए गए, उनका प्रशासन गृह मन्त्रालय की अधीनता में कर दिया गया और बिस्मार्क के एकीकरण के संघात्मक स्वरूप को नष्ट या पूर्ण, जैसा भी समझा जाए, कर दिया गया। प्रशासनिक सेवाओं में भी परिवर्तन किये गए। छोटे-बड़े सभी अधिकारी हिटलर के 'चमचे' हो गये। राज्य के सभी कार्यों और संगठनों में नाजीवाद की विचारधारा का प्रचार आ गया। उद्योग, वाणिज्य, कृषि, परिवहन, वित्त, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा संस्कृति—ये सभी विभाग नाजी दल के नियन्त्रण में हो गए। प्रचार, खेल-कूद तथा अन्य प्रयोजनों के लिए नयी एजेन्सियों का निर्माण हुआ। उत्पादन, बिक्री, श्रम तथा कीमतों आदि का, अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र का नये सिरे से आयोजन किया गया। सेना को धीरे-धीरे १९३५, १९३८ और १९४२ में हिटलर की कमान में ले लिया गया।[2] जर्मनी वर्साई की संधि (Treaty of Versailles) के विरुद्ध अनिवार्य सैनिक भर्ती (Conscription) शुरू कर दी गई और शस्त्रीकरण का कार्यक्रम भी तेजी से चलने लगा। साधारण नागरिक को रजिस्ट्रेशन की तीन विभिन्न पद्धतियों के द्वारा नियंत्रण में रखा गया और विदेश स्थित जर्मन राष्ट्रिकों को भी संगठन के द्वारा पंजे में कस लिया गया।

अगस्त, १९३४ में हिंडेनबर्ग (Hindenburg) की मृत्यु हो गई। हिटलर ने राष्ट्रपति-पद को भी धारण कर लिया। उसके प्रतियोगियों, विरोधियों और असुविधाजनक मित्रों को ३० जून, १९३४ की रात को समाप्त कर दिया गया। वह चांसलर और राष्ट्रपति था। १९३५ के बाद से वह सेनाओं का प्रधान सेनापति भी हो गया। लेकिन उसे अपना नाम 'फ्यूहरर' अधिक पसंद था। वह प्रशासन तथा दल का प्रधान था, उसे उच्चतम विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शक्ति प्राप्त थी। वह समस्त महत्त्वपूर्ण दर्दों पर नामांकित करता था। उसने चौदह मंत्रालयों की परा-

---

१. जर्मनी की पुलिस व्यवस्था अत्यधिक जटिल थी। यहाँ हम सुरक्षा पुलिस की दो शाखाओं का ही उल्लेख करेंगे। एक तो गेस्टापो (Gestapo) या गुप्त पुलिस थी। दूसरी एलाइट गार्ड की सुरक्षा सेवा थी। नाजी स्टार्म ट्रुपर्स शुरू में एस० ए० कहलाते थे। उन्होंने १९३४ के पश्चात् अपेक्षाकृत नगण्य कार्य किया। दल की मीटिंगों में उसके ७५०,००० सदस्य प्रदर्शन का ही कार्य करते थे। (देखिए (Pollock and Thomas, *Germany in Power and Eclipse*)

२. जे० डब्ल्यू० व्हीलर बेनेट (J. W. Wheeler-Bennett) ने अपनी पुस्तक *'The Nemesis of Power'* में यह बताया है कि जर्मनी में सेना की शक्ति को किस प्रकार धीरे-धीरे कम किया गया और उसे हिटलर के अधीन किया गया। सेना हिटलर के खिलाफ षड्यन्त्र रचती रहती थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्श समितियाँ मात्र बना रखा था, समस्त आन्तरिक और बाह्य नीति पर उसका ही नियन्त्रण था। दो आयोजित राष्ट्रीय जनमत संग्रहों (National Plebiscites) ने उसे उच्चतम पद के लिए निर्वाचित किया। रीश्टाग उसकी प्रतिध्वनि मात्र थी। उसके शत्रु या तो कब्रों में थे या जेलों में और या श्रम शिविरों में। उसके विरोध में कोई आवाज तक नहीं निकाल सकता था। सर्वाधिकारवादी, श्रेणीबद्ध एक-दलीय राज्य की प्रक्रिया पूरी हो चुकी थी।[1]

हिटलर के उत्कर्ष के साथ ही जर्मनी में लोकतन्त्र का एक अन्य परीक्षण विफल हो चुका था। हिटलर कहा करता था कि उसने वैधानिक उपायों द्वारा शक्ति प्राप्त की है। कुछ अंशों में यह बात सही भी है। मुसोलिनी के ब्लैक शर्ट्स ने बाकायदा रोम पर हमला करके सत्ता हथियाई थी। हिटलर के स्टार्म ट्रुपर्स को यह नहीं करना पड़ा। लेकिन हिटलर के विकृत मस्तिष्क में वैधानिकता का कोई अर्थ न था। वह तो अपनी इच्छा को ही सब कुछ मानता था।[2] हिटलर ने कानूनी या गैरकानूनी आश्वासन,

---

१. पोलक और थामस (Pollock and Thomas) द्वारा लिखित *'Germany in Power and Eclipse'* नामक पुस्तक में तीसरे रीश (Third Reish) के गठन का पूरा विश्लेषण उपलब्ध होता है।

२. इस बात को नाजी दल ने भी पूरी तरह मान लिया था और यह राजकीय विधि का आधार हो गई थी।

"फ्यूहरर की इच्छा ही न्याय है।" गोएरिंग।

"विधि फ्यूहरर की इच्छा और योजना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" प्रो० कार्ल स्किम्ट।

"हिटलर के मत से जो कुछ जर्मनी के लाभ के लिए है वह तो वैधानिक है और जो कुछ इसके नुकसान के लिए है वह अवैधानिक है।" फ्रैंक, पोलैण्ड का गवर्नर जनरल, १९४२।

राष्ट्रीय समाजवाद के रहस्यवादी तत्त्वों तथा उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि को ठीक-ठीक बताना जरा मुश्किल है। नाजी राज्य सर्वथा परम्पराहीन नहीं था। लेकिन, फ्यूहरर को साधारण अधिनायक से कुछ भिन्न समझा जाता था। वह राष्ट्रीय आत्मा की शुद्ध और सच्ची अभिव्यक्ति था। वह राष्ट्रीय अवतार, सामूहिक व्यक्तित्व, दैवी प्रेरणा से युक्त व्यक्ति था। उसके सम्बन्ध में कभी-कभी धार्मिक शब्दावली का भी प्रयोग किया जाता था। उसके व्यक्तिगत स्वार्थ कतई नहीं थे। "फ्यूहरर जनता के अचेतन हित को राष्ट्र की चेतन आत्मा में बदल देता है।"

फ्यूहरर की इच्छा को विधि के साथ समीकृत करने की धारणा न्यायिक वस्तुवाद (Juristic Positivism) में निहित थी। काँट और हीगेल के दर्शन में उसके कुछ संकेत मिलते हैं। फिश्टे (Fichte), नीत्शे (Nietzsche), ट्रीट्शे (Treitschke), बर्नहार्डी (Bernhardi), ओस्वाल्ड हेकेल (Oswald Haekel) जैसे जर्मन दर्शनिकों, गोबिन्यू (Gobineau) और हाउस्टन स्टेवर्ट चैम्बरलेन (Houston Stewart Chamberlain) जैसे विदेशियों, और १९१८ के बाद से स्पेंगलर (Spengler) और मोएलर वॉन डर ब्रुक (Moeller van der Brucke) आदि की रचनाओं में जर्मनी के विशेष समाजिक मिशन की चर्चा मिलती है। एक अन्य संकल्पना (concept) और विचारणीय है। वह ऐतिहासिक गतिवाद (historical dynamism) की है। यह एक सतत क्रान्तिकारी शक्ति है जो शाश्वत अचेतन को चेतन बनाती है और राज्य का कायाकल्प कर देती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धमकी, डर, धोखा किसी भी उपाय से सही, सत्ता हस्तगत कर ली। जहाँ कहीं उसका काम सध जाता था, वह जनता का अनुमोदन प्राप्त कर लेता था। वह जनमत-संग्रह के अवसर पर भी ऐसे ही गरजता था जैसे कि पार्टी रैली में। उसने औपचारिक रूप से वीमर गणराज्य को कभी समाप्त नहीं किया। उसने रीश्टाग (Reichstag) को भी बनाये रखा। लेकिन, सबसे ऊपर उसकी अपनी इच्छा थी। वह शक्ति का उपासक था। उसके अनुयायी बिना किसी नन्-नच के उसके आदेशों का पालन करते थे। उसने शासन के साधनों और शक्तियों का बड़े विकृत ढंग से उपयोग किया। हिटलर ने जर्मनी में अधिनायकवादी शासन की स्थापना की। १९३३ से अपने अन्तिम समय तक हिटलर ने आतंकवाद और हिंसा का आश्रय लिया; तथ अधिनायकवादी वक्तृताओं, मार्मिक और भ्रान्त अपीलों, सैनिक प्रदर्शनों, निरन्तर प्रचार, छलपूर्ण तरकीबों तथा झूठे वायदों के द्वारा उसने अपने आपको तथा नाजी दल को सत्तारूढ़ बनाये रखा और उसने जर्मनी में ऐसा शासन बनाये रखा जिसने रूस के अत्याचारी शासन के समान हर प्रकार के अत्याचार किये। उसने जर्मन लोगों को न तो राजनीतिक स्वतन्त्रता दी, न अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता दी। इसके अतिरिक्त जर्मनी में साम्यवादियों को, यहूदियों को, उदार वर्गों को, शान्तिप्रिय लोगों को, कैथोलिकों को, धर्म-प्रचारकों को, बल्कि सभी प्रकार के लोगों को सताया गया जिसके फलस्वरूप लाखों जर्मन लोग अपना घरबार छोड़कर विदेशों में शरण लेने चले गये। इस कारण संसार के बहुत बड़े जन-समूह को जर्मनी से घृणा हो गयी। चूंकि जर्मनी में खूनी अराजकता का प्राधान्य रहा और आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार से नाजी शासन ने जर्मनीवासियों को मनमाने ढंग से लूटा अतः जर्मनी की आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को भारी आघात लगा, यद्यपि हिटलर ने समय-समय पर नाजी शासन और नाज़ी दल की हर सम्भव उपाय से उन्नति करने का प्रयत्न किया। जर्मनी के प्रोग्रामों को यदि समझने का प्रयत्न किया जाय तो केवल यही निष्कर्ष निकलेगा कि नाजी दल को सत्ता हथियाने की प्रबल लालसा थी। नाज़ी नेता यही चाहते थे कि जर्मनी में अपना दल सर्वोपरि रहे और यूरोप में जर्मनी सर्वोपरि रहे। प्रत्येक समस्या का समाधान समय की आवश्यकता के अनुरूप होता था। इस प्रकार इस दल की नीतियाँ विभिन्न प्रकार की थीं। कभी तो दल साम्यवाद-विरोधी था और कभी वह यहूदियों का विनाश चाहता था। नाजी दल स्त्रियों को अधिकार देने के विरुद्ध था और बौद्धिक वर्ग के भी विरुद्ध था। यह दल उदार वर्गों के विरुद्ध था, शान्तिवादियों के विरुद्ध था एवं अन्तर्राष्ट्रवादियों के विरुद्ध था। नाजी दल चीख-चीखकर प्रचार कर रहा था कि वह देश में केवल जर्मन जाति को ही रखना चाहता है, तथा केवल जर्मन जाति ही ससार की सर्वश्रेष्ठ जाति है। नाजी खून और पृथ्वी की पवित्रता की डींग हाँकते थे तथा आर्यत्व की प्रशंसा करते थे और जर्मनों को शुद्ध आर्यों की सन्तान बताते थे। वे कहते थे कि जर्मनी में कोई बेरोजगार नहीं रहेगा, सभी जातियों का एकीकरण होकर सभी विशुद्ध जर्मन बन जायेंगे। उनका यह भी कथन था कि देश को शस्त्रास्त्रों से लैस करेंगे और सैनिकवादी शासन की ही स्थापना करके उसकी शक्ति को बढ़ावेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी के सभी व्यक्तियों ने फ्यूहरर (Fuhrer) को नेता मान लिया किन्तु भेद केवल इतना है कि जहाँ वयोवृद्ध जनों ने हिटलर का नेतृत्व संदेह और असमंजस के साथ ग्रहण किया, नवयुवतियों ने सहर्ष और उत्साह के साथ उसको अपना नेता माना, नवयुवकों एवं नवयुवतियों ने हिटलर को इस कारण अपना नेता स्वीकार किया कि वे अनर्गल प्रचार के शिकार हो गये। उन्होंने हिटलर के उज्ज्वल भविष्य के झूठे वायदों पर विश्वास किया, उन्हें हिटलर की प्राइवेट पुलिस-सेना का भय था उन्हें सिवाय भयंकर क्रान्ति और अपार संकटों के और कोई वैकल्पिक मार्ग ही न सूझता था। सभी ने हिटलर को अपना नेता इस कारण भी चुना कि उसने सारी जर्मन जाति को एकता और पूर्णता के तागे में पिरो दिया और जहाँ वीमर गणराज्य (Weimar Republic) में व्यवस्था और शान्ति का पूर्ण अभाव था, अब समस्त जर्मन देश में पूर्ण व्यवस्था और अनुशासित शासन की स्थापना हो गई। अपने पुनश्शस्त्रीकरण के प्रोग्राम को क्रियान्वित करके उसने जर्मनी की बेरोजगारी की समस्या को हल कर दिया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही जर्मनी को यूरोपीय देशों में सम्मानपूर्ण स्थिति प्राप्त हुई, यद्यपि किसी सीमा तक जर्मनी के आतंकवाद के कारण न कि उसके प्रति आदर के कारण उसका सम्मान बढ़ा था। उसने वर्साई सन्धि की कठोर मर्यादाओं को तोड़ डाला और कुछ समय तक तो उसकी विदेश नीति इतनी सफल रही कि वह प्रति छः मास कोई-न-कोई विजय करके जर्मनी को लाभान्वित करता रहा। इसके अतिरिक्त सभी जर्मन निवासियों ने सम्पूर्ण हृदय से हिटलर को इस कारण अपना नेता स्वीकार किया क्योंकि वह ऑस्ट्रिया निवासी होते हुए भी जर्मनी के लिए जीता था और जर्मनी की हित-चिन्तना में ही लगा रहता था। वह जर्मनी के गहरे आत्म-सम्मान और उसके साम्राज्य के विस्तार की बात को कर्कश स्वर से चिल्ला-चिल्ला कर कहता था और हठपूर्वक कहता था जिससे जर्मनी-निवासियों को आन्तरिक और आत्मिक सुख मिलता था। जबकि उदार वर्ग (The Liberals) अथवा समाजवादी अथवा डेमोक्रेट लोग (Democrats) जो कुछ कहते थे वह अजर्मन था और कभी-कभी तो वे ऐसी बातें भी कह जाते थे जिससे जर्मन राष्ट्रीयता की भावना को ठेस लगती थी। इसलिए जर्मन नर-नारियों ने हिटलरशाही की कठोरताओं, नृशंसताओं, न्यूनताओं और भद्देपन की ओर ध्यान दिया, तथा उन्होंने हिटलर के नजरबन्दी घरों की यातनाओं को, गोली मार देने वाले सैनिक समूहों की बर्बरताओं को, गेस्टापो पुलिस (Gestapo) के काले कारनामों को, धार्मिक पुस्तकों के जलाये जाने को और अनेक ऐसे झूठे मुकद्दमों को सहन कर लिया जो किसी सीमा तक जर्मनों की पागल जैसी मनोवृत्तियों के लिए सर्वथा उचित थे और जिनसे जर्मनों की विक्षिप्त भावनाओं को कुछ विपरीत-सा सुख अनुभव होता था।

जहाँ तक हिटलर ने जर्मनी के लोगों के साथ नृशंसता का व्यवहार किया, उन्होंने उसको सहन किया किन्तु जब नाजी सरकार ने विदेशी मामलों में भी अनुचित हस्तक्षेप करना आरम्भ किया और आक्रामक रुख अपनाया तो इससे सारे संसार के कान खड़े हो गये। अब संसार ने देखा कि नाजी जर्मनी के इशारों पर राज्य उलटे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहे हैं, वर्साई सन्धि की पग-पग पर अवहेलना की जा रही है, अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का जान-बूझकर निरादर किया जा रहा है, विदेशी हितों की उपेक्षा की जा रही है, बहुत से पुराने समझौतों को एकबारगी बिना सम्बन्धित पक्ष से पूछे तोड़ा जा रहा है, बारम्बार अग्रिम कार्यवाहियाँ की जा रही हैं और जर्मन साम्राज्यवाद संसार की शान्ति के लिए खतरा बन रहा है तो यूरोप के राजनीतिज्ञों की आँखें खुलीं। यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ही दो ऐसे देश थे जिन्हें यूरोप में शक्ति-संतुलन बनाये रखने की सबसे अधिक चिन्ता थी; किन्तु ये दोनों देश धैर्यपूर्वक चुप रहते आये और उन्होंने जर्मनी के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया। किन्तु इन्हीं दिनों जर्मनी ने राष्ट्रसंघ छोड़ा, जबर्दस्ती सैनिक भर्ती प्रारम्भ की, राइनलैण्ड (Rhineland) में पुनः सैनिक चौकियाँ स्थापित कर लीं, लोकार्नो सन्धि को त्याग दिया, समझौते के विरुद्ध स्पेन के गृह-युद्ध में हस्तक्षेप किया, एक सुसज्जित सेना खड़ी कर ली, ऑस्ट्रिया पर जबर्दस्ती अधिकार कर लिया, जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) के सुडेटेनलैण्ड (Sudeten-land) पर भी अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् मैमेल (Memel) पर भी अधिकार कर लिया और अन्त में जेकोस्लोवाकिया की स्वाधीनता का भी अपहरण कर लिया। यद्यपि जर्मनी निरन्तर भड़काने वाले कार्य कर रहा था फिर भी इंग्लैण्ड और फ्रांस शान्त रहे क्योंकि वे हृदय से चाहते थे कि जर्मनी का पुनर्निर्माण का कार्यक्रम पूरा हो जाय। वे इसलिए भी न बोले कि शायद नाज़ी क्रान्ति का साम्राज्य-वादी जोश कुछ समय में अपने आप ही ठण्डा पड़ जाये। सबसे अधिक चिन्ता इंग्लैण्ड और फ्रांस को यह थी कि किसी भी कीमत पर युद्ध न छिड़ने पाये। किन्तु ज्यों-ज्यों यूरोपीय शक्तियों ने जर्मनी की आक्रामक कार्यवाहियों को सहन किया, ज्यों-ज्यों हिटलर की विजयों को सिद्ध वस्तु स्थिति (Fait Accompli) के रूप में स्वीकार किया त्यों-त्यों नाज़ी सरकार के अग्रिम कार्य बढ़ते रहे, उसकी माँगें और अधिक बढ़ने लगीं और उसके बहाने भी बढ़ने लगे। आखिरकार जब जर्मनी ने पोलैण्ड को भी अपने आक्रमण और अत्याचार का निशाना बनाया तब तो पश्चिमी लोकतन्त्रात्मक सरकारों ने पक्का इरादा कर लिया कि अब वे और अधिक सहन न करेंगी और जर्मनी को समस्त यूरोप का स्वामी न बनने देंगी। पश्चिमी शक्तियों ने स्पष्ट शब्दों में हिटलर को बता दिया कि यदि पोलैण्ड जर्मनी के आक्रमण का विरोध करेगा तो वे युद्ध में पोलैण्ड की सहायता करेंगी। किन्तु हिटलर को अभिमान था कि उसने रूस (Russia) के साथ अप्रत्याशित सन्धि (२३ अगस्त, १९३९) करके इतनी शक्ति बढ़ा ली है कि वह इंग्लैण्ड और फ्रांस को धता बता सकता है, अतः वह अपने आक्रा-मक इरादों पर दृढ़ रहा और १ सितम्बर को ज़र्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया गया।

इसलिए ३ सितम्बर को ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने पोलैण्ड को दिये गये वचन के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय नियमों और सार्वदेशिक स्वतन्त्रता और सुरक्षा की रक्षार्थ, तथा कमजोर देशों की स्वतन्त्रता के अपहरण को रोकने के उद्देश्य से तथा अपनी स्वतन्त्रता और सुरक्षा के हित में भी तथा अपनी सामाजिक व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखने के पवित्र उद्देश्य से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग छः वर्षों तक भयंकर और विस्तृत युद्ध चला, तब कहीं निर्णय हो पाया। इस समय धुरी राष्ट्र अपने विजेताओं के पैरों तले सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक पराधीनता की जिन्दगी बिता रहे हैं और अब यूरोप में और सारे संसार में शक्ति-संतुलन पुनः स्थापित हो गया है। युद्ध के प्रारम्भिक दो वर्षों में तो धुरी राष्ट्रों को ऐसी अपूर्व विजय प्राप्त हुई थी कि प्रायः सारा यूरोप, भूमध्य सागर, उत्तरी अफ्रीका और प्रायः समस्त सुदूर पूर्व भी धुरी राष्ट्रों की अधीनता में आ गया। किन्तु वे बावजूद अन्धाधुन्ध बमवर्षा के ब्रिटेन को न जीत सके, और जब जून १९४१ में हिटलर रूस पर आक्रमण करने की गलती कर बैठा और दिसम्बर १९४१ में जब हिटलर ने संयुक्त राज्य अमेरिका को भी अपना शत्रु बना लिया तब तो धुरी राष्ट्रों की आरम्भिक विजयों का सारा लाभ काफूर हो गया। १९४२ से इंग्लैण्ड, रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्मिलित और विशाल साधन-स्रोतों, वैज्ञानिक विशेषताओं और जन-शक्ति के आगे धुरी राष्ट्रों की एक न चली और धीरे-धीरे युद्ध का पाँसा पलटता-सा दिखाई देने लगा। अक्तूबर-नवम्बर १९४२ में अल-अलामीन (El-Alamein) और स्टालिनग्राड में धुरी राष्ट्रों की पराजय हुई; जुलाई-अगस्त १९४३ में सिसिली (Sicily) में धुरी राष्ट्र परास्त कर दिये गये; जून-सितम्बर, १९४४ में फ्रांस में धुरी राष्ट्र हारे; राइन (Rhine) क्षेत्र में तथा जर्मनी के अन्दर भी सितम्बर, १९४४ से लेकर मई, १९४५ तक जर्मनी की हारें होती रहीं। १९४३-१९४५ तक बर्मा से भी धुरी राष्ट्रों को हटना पड़ा और प्रशान्त महासागर में भी मित्रराष्ट्रों की विजय हुई। इस प्रकार धुरी राष्ट्र सर्वत्र परास्त कर दिये गये यहाँ तक कि उनको पूर्ण और बिना शर्त आत्मसमर्पण करना पड़ा।

दूसरा महायुद्ध (१९३९-४५)
(The Second World War, 1939-45)

अपनी सफलताओं से हिटलर को यह भरोसा हो गया था कि वह जर्मनी की प्रादेशिक सीमाओं का अपूर्व विस्तार कर सकता है। "मुझे जितनी शक्ति अथवा जर्मन जाति का जो विश्वास है, वह अन्य किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होगा..... मुझे समय नहीं खोना चाहिए.....लड़ाई मेरे अनुकूल अवसर पर होनी चाहिए।"[१]

इस प्रकार, १९३९-४५ की लड़ाई एक प्रकार से हिटलर की लड़ाई थी। इस लड़ाई में जर्मनी का सैन्य-संचालन स्वयं हिटलर ने किया और उसने यह कार्य उसी विश्वास के साथ किया जिस विश्वास के साथ वह राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करता था। युद्धकाल की दृष्टि से यह लड़ाई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी और इसने एक नये युग का सूत्रपात किया। यहाँ हम लड़ाई की मुख्य घटनाओं का ही वर्णन करेंगे।

हिटलर ने पोलैण्ड पर हमला करने का समय कुछ ऐसा चुना था जो सब प्रकार से उसके अनुकूल था। यद्यपि, १९३९ में जर्मनी में ऐसा उत्साह नहीं था, जैसा

---

१. २७ अगस्त, १९३९, ओबरसाल्जबर्ग में हिटलर का अपने सेनापतियों के समक्ष भाषण।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि १९१४ में था, फिर भी देश सैनिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से युद्ध के लिए तैयार था। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को बिना किसी बाधा के युद्ध के अनुकूल कर लिया गया। भरती की गई फौज को चार वर्षों से प्रशिक्षण दिया जा रहा था। वायु-सेना को स्पेन में रक्त का स्वाद मिल चुका था। हथियारों के कारखानों में उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। पार्टी का फौज के ऊपर भी नियन्त्रण स्थापित हो गया था। सेनाध्यक्षों ने लड़ाई की पूरी योजना तैयार कर ली थी। पोलैण्ड की सीमा पर गुप्त रूप से फौजों का जमाव शुरू हो गया था।

१ सितम्बर को मध्याह्नपूर्व ४-४० पर जर्मनी के हवाई जहाजों (Luftwaffe) ने पोलैण्ड के विमान क्षेत्रों (airfileds), सैनिक अड्डों (bases), प्रशिक्षण-केन्द्रों और रेलों पर बम गिराये। ५ बजे ५ फौजें लिथुआनिया (Lithuania) से कार्पेथियन्स (Carpathians) की ओर चलीं। पोलैण्ड का विमान बल तुरन्त ही बेकार हो गया। पोलैण्ड की फौज पूरी तरह तैयार ही नहीं हो सकी। पोलैण्ड ने बड़ी वीरता से अपनी रक्षा करने का प्रयास किया, लेकिन संख्या, युद्धकला, शस्त्रास्त्र की कमी के कारण वह सफल नहीं हो सका। अब चल-युद्ध (Mobile warfare) का युग प्रारम्भ हो गया था और पोलैण्ड उसका पहला शिकार हुआ। एक सप्ताह के भीतर ही पश्चिम की रक्षा-पंक्ति भंग हो गई, साइलेशिया का औद्योगिक क्षेत्र जर्मनी के हाथों में आ गया, तोरन (Torun) और वार्सा (Warsaw) के लिए खतरा पैदा हो गया। दूसरे सप्ताह का अंत होते-होते पोलैण्ड की सेना का एक बड़ा भाग काफी हद तक शांत था और वह सिर्फ पीछे की लड़ाई लड़ रहा था। जर्मनी के लड़ाई के टैंक ईंधन की कमी के कारण रुकना शुरू कर रहे थे। १७ सितम्बर को रूसी-जर्मन समझौते के अनुसार रूसी पूर्व की ओर आगे बढ़े। अब पोल दोनों ओर से घिर गये। अब उनके सामने सिर्फ यही उपाय था कि वे या तो रूसियों के आगे आत्म-समर्पण करें या जर्मनों के आगे। गोलाबारी और अग्निकाण्ड होने के बावजूद वार्सा २८ सितम्बर तक और हाल पेनिनसुला २ अक्तूबर तक डटा रहा। एक महीने के अन्दर ही पोण्लैंड का प्रतिरोध जवाब दे गया और उसकी सेना नष्ट हो गई। ५००,००० कैदियों को रूस या जर्मनी के शिविरों में बाँट दिया गया। ५०,००० सैनिक हंगरी और रूमानिया भाग गए। बाद को वे युद्धक्षेत्रों में फिर प्रकट हुए। साढ़े तीन करोड़ लोग पराधीनता के पाश में जकड़ गए। पोलैण्ड का रूस और जर्मनी के बीच पाँचवीं बार विभाजन हुआ और एक राज्य के रूप में पोलैण्ड की सत्ता समाप्त हो गई।

यद्यपि पोलैण्ड की लड़ाई ऑस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया की तरह सुगम नहीं रही थी, तथापि उसमें भी हिटलर ने आसानी से विजय प्राप्त कर ली थी। पश्चिमी शक्तियों के साथ सन्धि करके इस विजय को पुष्ट किया जा सकता था। उन्होंने पोलैण्ड की सहायता के लिए कुछ भी नहीं किया था। हिटलर का विचार था कि पश्चिमी शक्तियाँ उसके इस कार्य को भी स्वीकार कर लेंगी।[1] उसने उनके साथ सन्धि की

१. पोलैण्ड की एक पुरानी कहावत है, "पोलैण्ड के केवल दो मित्र हैं—ईश्वर और फ्राँस और दोनों ही बहुत दूर हैं।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातचीत शुरू की। लेकिन, पश्चिमी शक्तियों ने इसे अस्वीकार कर दिया। इसके परिणामस्वरूप हिटलर को पहला विशाल युद्ध लड़ने के लिए विवश होना पड़ा। इस युद्ध की विशालता को हिटलर ने और उसके सेनापतियों ने दोनों ने ही कम नहीं आँका था।[1] हिटलर ने पश्चिमी शक्तियों पर १२ नवम्बर को आक्रमण करने का आदेश दिया था लेकिन, उसे मौसम के कारण स्थगित कर दिया गया। इस आक्रमण को चौदह बार स्थगित किया गया। इस बीच पश्चिमी शक्तियों ने भी कुछ सैनिक तैयारी कर ली।

यद्यपि इंग्लैण्ड और राष्ट्रमण्डल का उत्साह बढ़ा हुआ था, लेकिन लड़ाई के शुरू होने के समय उनकी तैयारी बिलकुल नहीं थी और उन्हें अपने साधनों को एकत्रित करने में कुछ समय लगा। इंग्लैण्ड की वायुसेना अत्यन्त श्रेष्ठ थी। इंग्लैण्ड की नौ-सेना भी पनडुब्बियों में नहीं तो कम-से-कम सतही जहाज़ों में जर्मन नौ-सेना से बेहतर थी। लेकिन इंग्लैण्ड की थल सेना कम थी। इंग्लैण्ड के पास अस्त्र-शस्त्रों की भी कमी थी। इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को भी युद्ध के स्तर पर लाने में कुछ दिक्कतें थीं।[2]

फ्रांस की थल सेना अपेक्षाकृत बड़ी थी। उसकी नौ-सेना भी अच्छी थी। लेकिन, फ्रांस की वायु सेना बहुत कमज़ोर थी। उसके पास हथियारों की भी बहुत कमी थी। उसकी सम्पूर्ण युद्ध-नीति और दृष्टिकोण मैजिनॉट प्रतिरक्षा तन्त्र (Magi. not Defence System) से मर्यादित था। लेकिन, यह पर्याप्त नहीं था। यह बेल्जियम की सीमा पर कमजोर पड़ता था। उसका उत्साह भी हलका था। १९१४-१८ की लड़ाई में उसकी जो हानि हुई थी, उसे वह अभी तक पूरा नहीं कर सका था। उसमें काफी असन्तोष और निराशा की-सी भावना थी। इस समय इंग्लैण्ड के साथ भी उसके सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे।

१९३९-४० के जाड़े में थल और आकाश में बहुत कम युद्ध हुआ। मुख्य युद्ध समुद्र में हुआ। इसमें इंग्लैण्ड को काफी नुकसान हुआ। लड़ाई शुरू होने से पहले अनेक यू-नौकाएँ (U-Boats) समुद्र में उतार दी गई थीं। चुम्बक की खानों (Magnetic mines) ने भी बहुत नुकसान पहुँचाया। यह पहला गुप्त हथियार था जिसका जर्मनी ने लड़ाई में इस्तेमाल किया।

लेकिन जहाँ मुख्य पक्ष रक्षा में ही दत्तचित रहे थे, रूस हिटलर के साथ अपनी मैत्री की कीमत वसूल करने के लिए आगे बढ़ा। रूस आधे पोलैंड को तो हड़प ही चुका था, अब उसने लैट्विया (Latvia) और एस्टोनिया (Estonia) के

---

१. "मैं एक भयानक जुआ खेल रहा हूँ। मुझे विजय और विनाश में से एक को चुनना है। मैं किसी बात का संकोच नहीं करूँगा। जो मेरा विरोध करेगा, मैं उसका नाश कर दूँगा। इस संघर्ष में या तो मेरी विजय होगी या मैं खत्म हो जाऊँगा। मैं अपने राष्ट्र की पराजय के बाद जिंदा नहीं रहूँगा। लेकिन पराजय नहीं होगी। हम विजयी होंगे। हमारा युग हमारे राष्ट्र के इतिहास में विलीन हो जाएगा।" (२३ नवम्बर, १९३९, हिटलर का अपने सेनापतियों के समक्ष भाषण।)

२. मार्च, १९४० में इंग्लैण्ड में साढ़े बारह लाख लोग बेरोजगार थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्टिक गणराज्यों को भी आत्मसात् कर लिया तथा फिनलैंड के भी कुछ हिस्से की माँग की। जब उसे ये नहीं मिले उसने हेलसिंकी (Helsinki) तथा फिनलैंड के अन्य शहरों पर बमबारी की और उनकी भूमि पर आक्रमण कर दिया। फिनलैंड ने डटकर मुकाबला किया, लेकिन मार्च में उसने हथियार डाल दिये। फिनलैंड के प्रति सबकी सहानुभूति जाग्रत हुई। इंग्लैंड और फ्रांस ने आपस में सलाह-मशविरा भी किया, लेकिन उन्होंने सहायता के लिए फिनलैंड फौज नहीं भेजी। इस संभावना से कि कहीं इंग्लैंड और फ्रांस नार्वे की तटस्थता को भंग न कर दें, हिटलर को अप्रैल में स्कैंडिनेवियायी देशों के खिलाफ कार्यवाही करने का बहाना मिल गया। डेनमार्क राजनीतिक दबाव के कारण झुक गया। नार्वे ने कुछ मुकाबला किया, लेकिन वायु सेना और नौसेना के आक्रमण के सामने उसे भी घुटने टेकने पड़े। इंग्लैंड और फ्रांस ने तुरन्त ही हस्तक्षेप किया, लेकिन वह व्यर्थ प्रमाणित हुआ। विजय का सेहरा एक बार फिर हिटलर के सर बँधा। अब नार्वे के बन्दरगाह और स्वीडन का कच्चा लोहा हिटलर के नियन्त्रण में थे। नार्वे का नाजी क्विज़लिंग (Quisling) वहाँ उनका नायब नियुक्त हुआ। जहाँ हिटलर की प्रतिष्ठा और बढ़ी, इंग्लैंड और फ्रांस की कम हो गई। दोनों देशों में अन्दर-ही-अन्दर तीव्र आलोचना हुई और वहाँ की सरकारें अपदस्थ हो गईं। १० मई को श्री विन्स्टन चर्चिल (Mr. Winston Churchill) इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री हो गये।

इसी दिन जर्मनी ने अपना पश्चिमी आक्रमण शुरू किया। उसने थल और आकाश से हालैण्ड, बेल्जियम और लक्ज़ेम्बर्ग पर आक्रमण किया। सैनिक अड्डों और संचार साधनों पर बमबारी की गई और १५० मील लम्बे सीमांत को कई स्थानों पर पार किया गया। इन दोनों ही देशों ने इंग्लैंड और फ्रांस से सहायता माँगी। इसके पहले उन्होंने इन राज्यों के साथ या एक-दूसरे के साथ सहयोग करना स्वीकार नहीं किया था।

मित्र देशों के प्रधान सेनापति गेमलिन (Gamelin) ने तुरन्त ही प्लान डी (Plan D) पर अमल शुरू कर दिया।[1] फ्रांस की रक्षा पंक्ति (Defence line) को छोड़कर, जो जाड़े में तैयार की गई थी, तीस डिवीजनें बेल्जियम और दक्षिणी हालैंड में मोर्चे पर डट गईं।

लेकिन जर्मनी ने बड़ी तेजी से आक्रमण किया था। इस तेजी के सामने निम्न-

---

१. यह योजना इस आकस्मिकता को ध्यान में रखकर ही तैयार की गई थी। इस बार जर्मनी १९१४ की लड़ाई की श्लीफ़ेन योजना (Schlieffen Plan) के अनुसार और भी व्यापक आधार पर, जिसमें इंग्लैण्ड भीशा मिल था, अमल कर रहा था।

१९४० में पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनी की १२६ डिवीजनें थीं। उसकी ४७ डिवीजनें रिजर्व में थीं। दस वख्तरबन्द डिवीजनें थीं। प्रायः ३,००० वख्तरबन्द गाड़ियाँ थीं और १,००० भारी टैंक थे। २६ डिवीजनों ने हालैण्ड और बेल्जियम को पादाक्रांत कर दिया।

फ्रांस के पास १०३ डिवीजनें थीं। इंग्लैण्ड के पास नौ डिवीजनें थीं। एक डिवीजन सार (Saar) में और थी। दो डिवीजनें बाद में मैदान में उतार दी गईं। हालैण्ड की दस और बेल्जियम की बाईस डिवीजनें थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थ देश (Low Countries) एक-एक करके पराभूत होते जा रहे थे। पहले दिन जर्मनी के सैनिकों ने आर्नहेम (Arnhem) के निकट मास (Mass) को पार किया, मास्ट्रिच (Maastricht) पर अधिकार कर लिया, लुक्जेम्बर्ग (Luxemburg) को पादाक्रांत किया। दूसरे दिन उन्होंने मोएरडीक पुलों पर अधिकार किया और वे एक बचे हुए पुल पर से होकर एल्बर्ट कैनाल पर जा पहुँचे। रोटरडम के किलेबन्दी के क्षेत्र (Fortress area) में एक मज़बूत पैराशूट दस्ता उतर गया और भयंकर युद्ध के द्वारा हेग को जीत लिया गया। हालैण्ड का छोटा-सा विमान दल नष्ट कर दिया गया। उसके शहरों और बन्दरगाहों पर बमबारी की गई। १४ मई को रोटरडम के एक बड़े क्षेत्र को बमबारी से बिलकुल नष्ट कर दिया गया। यूट्रेच (Utrecht) के ऊपर एक आतंकवादी आक्रमण की धमकी ने उसे १५ ता० को घुटने टेक देने के लिए विवश कर दिया।

हालैण्ड पराजित हो गया था। लेकिन, बेल्जियम के सैनिक इंग्लैण्ड और फ्रांस की सैनिक सहायता पाकर अभी तक एंटवर्प (Antwerp) और लाउवेन (Leuvain) के बीच में डटे रहे। १३ ता० को लीज (Liege) ले लिया गया। १४ ता० को जर्मनी की सेना नामूर तक पहुँच गई। जर्मनी को अपने नये हथकण्डों के कारण युद्ध में आशातीत सफलता मिली। १४ ता० को वोन रंडस्टेट(von Rundstedt) की सेना ने सीडान (Sedan) के दोनों ओर फ्रांस की नवीं सेना को काट दिया। १५ ता० को वह फ्राँस की सीमा से ६० मील दूर रह गई। १७ ता० को वह सेंट क्वेंटिन (Saint Quentin), १८ ता० को अमीन्स (Amiens) और सोम (Somme) पहुँच गई। सीडान (Sedan) पर ७० मील चौड़ी दरार पड़ गई थी। फ्रांस की नवीं सेना में अव्यवस्था फैल गई। उसका अपने संचार-साधनों से भी सम्पर्क टूट गया। अब जर्मन सैनिक समुद्रतट की ओर बढ़ रहे थे। उन्होंने इंग्लैण्ड और फ्रांस की प्रायः ३० डिवीजनों को चारों ओर से घेर लिया था।

फ्रांसीसियों की भयंकर सैनिक पराजय हुई थी। १५ ता० को मोशियो रेनाउड (M. Reynaud) ने श्री चर्चिल (Mr. Churchill) को फोन किया कि सब कुछ हाथ से जा चुका है। १६ ता० को क्वाइ डी ओरसे (Quai d'Orsay) के प्रांगण में पुराने अभिलेखों को जला दिया गया। वेगंड (Weygand) की जगह गेमलिन (Gameline) आया। जर्मनी की तीव्र वेग से बढ़ती हुई सेना को वह भी न रोक सका। हालत काबू से बाहर होती गई। आदेशों पर आदेश दिये गये। लेकिन किन्हीं का पालन नहीं हो सका। शत्रु ने समुद्र में छिपे-छिपे बमबारी की। उधर शरणार्थियों का भी बराबर तांता लग रहा था। इसकी वजह से मित्र देशों की सेना के आने-जाने में बहुत बाधा पड़ रही थी। १८ मई को बेल्जियम ने घुटने टेक दिये। अब तो पृथक् पड़े हुए सैनिकों की स्थिति और भी खराब हो गई।

फ्रांस की पराजय और डन्कर्क (Dunkirk) से ३३७,००० आंग्ल-फ्रेंच सैनिकों के निष्क्रमण की ४० दिन की कहानी सचमुच आश्चर्यजनक है। आपद्ग्रस्त सैनिकों की सहायता के लिए सब तरह के जहाज, नौकाएँ और मोटर-बोटें पहुँच गईं। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य में जन और धन की भी काफी हानि हुई। फ्रांसीसियों को कुछ शिकायत भी रही।[१]

इसं बीच में फ्रांस की प्रतिरोध शक्ति निःशेष हो गई थी। १० जून को जब जर्मन सैनिक सीन (Seine) पर थे, इटली ने फ्रांस और ब्रिटेन के खिलाफ़ लड़ाई का ऐलान कर दिया तथा फ्रांस पर मोंट ब्लाक (Mont Blanc) से भूमध्य सागर तक हमला कर दिया। १४ जून को पेरिस पर स्वस्तिक का निशान उड़ने लगा। १६ ता० को श्री चर्चिल ने फ्रांस से अपनी लड़ाई जारी रखने की अपील की और फ्रांस को दावत दी कि वे इंग्लैण्ड और फ्रांस का राजनीतिक संघ (Political Union) बनाने के लिए तैयार हैं। यह प्रस्ताव इंग्लैंड और फ्रांस के इतिहास में अपूर्व था। लेकिन, तब तक मैजिनॉट रक्षापंक्ति (Maginot Defenee Line) टूट चुकी थी। १६ ता० को मार्शल पेतां (Marshal Petain) ने, जो फ्रांस की पराजय के समय उसके सूत्रधार थे, शान्ति-सन्धि की प्रार्थना की। २२ ता० को युद्धविराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। यह हस्ताक्षर उसी स्थान पर और उसी रेलवे कोच में हुए थे, जहाँ १९१८ में जर्मनों ने आत्मसमर्पण किया था। इस रेलवे कोच को इस काम के लिए संग्रहालय से बाहर निकाला गया था। ६ दिन पूर्व ही जनरल डिगाल (General de Gaulle) ने लंदन से ब्राडकास्ट किया जिसमें उन्होंने दुश्मनों से मुकाबला करते रहने की प्रतिज्ञा की और समस्त फ्रांसीसियों से सहयोग माँगा।

अभी फ्रांस और जर्मनी की अन्तिम सन्धि होने में कुछ समय था। जर्मनी को आशा थी कि इंग्लैण्ड के साथ लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो जाएगी और इस लड़ाई के समाप्त होने के बाद ही सन्धि की जाएगी। जब तक सन्धि न हो, तब तक के लिए यह तय हुआ कि सभी फ्रांसीसी और अतंलान्तिक चैनल बन्दरगाह, उत्तरी फ्रांस का आधा भाग और पश्चिमी तट का प्रायः सत्तर मील लम्बा भूभाग जर्मनी के नियन्त्रण में चला जाएगा।[२] शेष फ्रांस की राजधानी विशि (Vichy) रही और वह जनरल

---

१. फ्रांस को शिकायत थी कि जहाँ २,२४,५०० ब्रिटिश सैनिकों को बचाया गया, फ्रांस और बेल्जियम के केवल १,१२,००० सैनिकों को बचाया गया था। इंग्लैण्ड ने २५ विमान स्क्वैड्रनों को अपनी रक्षा के लिए रोक रखा था। लेकिन यह स्पष्ट है कि यह अतिरिक्त सहायता भी फ्रांस की रक्षा नहीं कर सकती थी।

२. स्वयं फ्रांस का एक बड़ा भूभाग, स्विस सीमा से उत्तर-पश्चिम की तरफ का भाग तथा स्पेन की सीमा से दक्षिण की ओर का भाग जर्मनी के आधिपत्य में जाना तय हुआ। जर्मनी की योजना थी कि वह पश्चिमी समुद्र तट के भाग और इस भाग से इंग्लैंड पर हमला करेगा। चैनल और एटलांटिक के सभी बन्दरगाह हिटलर के हाथ में आ गये। फ्रांस की सेनाओं का निरस्त्रीकरण कर देना तय हुआ। जर्मनी अपनी इच्छानुसार फ्रांस की युद्ध-सामग्री का उपयोग कर सकता था। फ्रांस के जहाजी बेड़े का भी निरस्त्रीकरण कर देना तय हुआ। लेकिन हिटलर ने कहा कि वह सन्धि होने पर इस जहाजी बेड़े को नहीं लेगा। फ्रांस के जहाजों को आज्ञा दी गई कि वे बन्दरगाहों को न छोड़ें। सभी वायरलैस स्टेशनों को बन्द कर दिया गया। जर्मनी के संकेत के अनुसार फ्रांस की भूमि के सभी शरणार्थियों को और फ्रांस स्थित जर्मन राष्ट्रिकों को जर्मनी को सौंप देना था। जर्मन कैदी आजाद होने को थे, लेकिन फ्रेंच कैदी (१,९००,०००) नहीं।

आधिपत्य का सारा खर्च फ्रांस के सर था। अनुमान है कि फ्रांस के प्रायः २०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेताँ (Petain) की अधीनता में नाममात्र को स्वतन्त्र रहा। लेकिन इस अवशिष्ट फ्रांस के ऊपर भी जर्मनी का दवाव वढ़ता रहा और नवम्बर, १९४२ में उसे भी पादाक्रांत कर दिया गया।

फ्रांस की इटली के साथ भी लड़ाईवन्दी हुई। कुछ फ्रेंच और औपनिवेशिक क्षेत्रों का विसैन्यीकरण हुआ।[1] लेकिन, हिटलर ने इटली को इस बात की आज्ञा नहीं दी कि वह इस समय फ्रांस के किसी भाग पर आधिपत्य स्थापित कर ले।

फ्रांस का जिस द्रुत गति से पतन हुआ था, उसकी हिटलर तक को उम्मीद नहीं थी। एक वर्ष से कम समय में ही सारा पश्चिमी यूरोप हिटलर के चरणों में नत था। छः आक्रमण हिटलर की अपनी योजना के अनुसार सफल हुए थे। इससे हिटलर का अपना आत्मविश्वास बढ़ा और उसकी नीति के सम्बन्ध में उसके जनरलों के संदेह निराधार सिद्ध हो गए। वह रूस को छोड़कर सम्पूर्ण यूरोप का भाग्यविधाता था और उसके सम्पूर्ण संसाधन, जिनमें रूस के कुछ संसाधन भी शामिल थे, उसके नियंत्रण में थे। विजित प्रदेशों में उसकी इच्छा ही कानून थी।

हिटलर के मित्रों ने अपना विस्तार और भी अधिक साहस के साथ किया। सुदूर पूर्व में जापान ने एशिया के लिए एक नई व्यवस्था की घोषणा की। भूमध्यसागर में इटली ने मिस्र और उत्तरी तथा पूर्वी अफ्रीका में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास किया। स्पेन ने टैन्जियर (Tangier) के इंटरनेशनल जोन (International Zone) पर अधिकार कर लिया और उसने जिब्राल्टर फ्रेंच अफ्रीका के कुछ भागों तथा जर्मनी की आर्थिक और सैनिक सहायता के बदले लड़ाई में भाग लेना स्वीकार कर लिया। रूस ने लिथुआनिआ (Lithuania) पर अधिकार स्थापित करके समस्त बाल्टिक राज्यों को अपने नियंत्रण में ले लिया। उसने बल्कान क्षेत्र में रूमानिया से बसाराबिया (Bessarabia) और उत्तरी बुकोविना (Northern Bukovina) की माँग की। बल्गेरिया (Bulgaria) और हंगरी (Hungary) ने भी रूमानिया से कुछ क्षेत्रों की माँग की। हिटलर के पंचनिर्णय पर उन्हें वियना पंचाट (Vienna award) के अनुसार दोब्रुजा (Dobrudja)) तथा ट्रांसिल्वानिया (Transylvania) मिल गए। एटलांटिक के पार अमेरिका बड़ी चिन्ता से यह देख रहा था कि इंग्लैंड निरन्तर एकाकी पड़ता जा रहा है।

लेकिन, अभी इंग्लैंड बचा हुआ था। इंग्लैंड ने शान्ति अथवा आत्मसमर्पण के सारे विचार त्याग दिए और वह हिमालय की तरह तन कर खड़ा हो गया। उसने अपने प्रयत्नों से तो अपनी और अपने उदाहरण से यूरोप की रक्षा की। इंग्लैण्ड कई देशों की निर्वासित सरकारों का प्रधान केन्द्र हो गया। इन सब की आशाएँ इंग्लैंड पर ही टिकी थीं। इस समय इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल थे। उन्होंने

लाख सिपाही बन्दी बनाए गए, मारे गए और घायल हुए। जर्मनी के २५,००० सैनिक मारे गए और ७०,००० घायल हुए।

१. फ्रांस ट्यूनीशिया, अल्जीरिया और फ्रेंच सोमालीलैण्ड के कुछ क्षेत्रों का विसैन्यीकरण कर दिया गया। तूलो (Toulon), विजर्टा (Bizerta), अजासियो (Ajaccio) और ओरां (Oran) के जहाजी अड्डों को और इटली की सेना से लड़ने वाले फ्रेंच सिपाहियों के समस्त हथियारों को इटली को सौंप दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ओजस्वी वक्तृत्व कला से अपने देश की हिम्मत बाँधे रखी। उन्होंने शत्रु की चुनौती को खुलकर स्वीकार किया।[1]

इस समय तनाव बहुत अधिक बढ़ा हुआ था। पश्चिमी यूरोप के सारे बंदरगाह हिटलर के नियंत्रण में थे। इस स्थिति में इंग्लैंड का विनाश निकट ही मालूम पड़ता था। लेकिन, नेपोलियन की तरह हिटलर को भी यह दीख रहा था कि इंग्लैंड के विनाश में अनेक समस्याएँ हैं। हिटलर ने आक्रमण की योजनाएँ तैयार कीं। इंग्लैण्ड ने भी रक्षा की तैयारियाँ कीं। उसने होमगार्ड का संगठन किया। उसने एक छोटी-सी सेना उत्तर आयरलैण्ड में भेज दी। इसका कारण यह था कि इस युद्ध में आयरलैण्ड तटस्थ

---

१. श्री चर्चिल के भाषणों के निम्नलिखित उद्धरण लिंकन के गेट्सबर्ग भाषण अथवा रानी एलिजाबेथ प्रथम के टिल्बुरी भाषण के समान ही प्रख्यात हो गए हैं—

१३ मई "मेरे पास आपको देने के लिए सिर्फ खून, पसीना और आँसू हैं। आप पूछते हैं—हमारी नीति क्या है? मैं कहूँगा हमारी नीति युद्ध करना है—जल, थल और आकाश में अपनी सम्पूर्ण ताकत के साथ और ईश्वर-प्रदत्त संपूर्ण शक्ति के साथ। यही हमारी नीति है। आप पूछते हैं, हमारा लक्ष्य क्या है? मैं केवल एक शब्द में ही जवाब दे सकता हूँ: विजय—सभी कीमतों पर विजय, आतंक के बावजूद विजय, विजय चाहे मार्ग कितना ही लम्बा और कठिन क्यों न हो? क्योंकि विजय के बिना हमारी विजय नहीं।"

४ जून यद्यपि यूरोप के अनेक भाग तथा पुराने और प्रसिद्ध राज्य पराजित हो चुके हैं या हो सकते हैं, हम घुटने नहीं टेकेंगे। हम अन्त तक लड़ते रहेंगे। हम फ्रांस में लड़ेंगे, हम समुद्रों और महासमुद्रों में लड़ेंगे, हम बढ़ती हुई शक्ति और बढ़ते हुए विश्वास से हवा में उड़ेंगे, हम अपने द्वीप की रक्षा करेंगे, चाहे हमें कुछ भी कीमत चुकानी पड़े। हम समुद्रतटों पर लड़ेंगे, हवाई जहाज उतरने की जगहों पर लड़ेंगे, हम मैदानों में, सड़कों पर, पहाड़ियों पर लड़ेंगे, हम कभी नहीं झुकेंगे। यदि यह द्वीप या इस द्वीप का एक बहुत बड़ा भाग हमारे हाथ से निकल जाए और भूखों मरने लगे, तो समुद्र पार का हमारा साम्राज्य ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े से रक्षित और सशस्त्र होकर उस समय तक लड़ाई जारी रखेगा जब तक कि उचित समय पर नई दुनिया अपनी पूरी शक्ति और सत्ता के सहित, पुरानी दुनिया की मुक्ति और रक्षा के लिए आगे नहीं आ जाती।"

१८ जून (डन्कर्क के बाद) "यदि जरूरी हुआ, तो हम सालों तक अकेले लड़ेंगे। जनरल वीगांड ने कहा है कि फ्रांस की लड़ाई समाप्त हो गई। मेरा खयाल है कि इंग्लैण्ड की लड़ाई शुरू होने वाली है। शत्रु का सारा क्रोध शीघ्र ही हमारे ऊपर होने वाला है। हिटलर यह जानता है कि या तो उसे यह द्वीप पराजित करना होगा या वह युद्ध हार जाएगा। यदि हम उसका मुकाबला कर सके, तो सारा यूरोप आजाद होगा और दुनिया की जिन्दगी उन्नत होगी, उसे रोशनी मिलेगी। लेकिन यदि हम पराजित हो जाते हैं, तो सारा संसार, जिसमें अमेरिका भी शामिल है, नए अन्धकार युग में पहुँच जाएगा। यह अंधकार युग विकृत विज्ञान के द्वारा और भी अधिक भयानक होगा। इसलिए हमें अपने कर्त्तव्य-पथ पर डटे रहना चाहिए जिससे कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य और उसका राष्ट्रकुल हजार साल भी जीवित रहे, तो लोग यह कहें "यह उनकी सर्वश्रेष्ठ वेला थी।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और आयरलैंड की तटस्थता के कारण इंग्लैंड की सैनिक स्थिति का पर्दाफाश हो जाता था। उसने जर्मनी के कुछ अड्डों पर बमबारी की। उसने अमेरिका से भी अतिरिक्त सैनिक सहायता की माँग की और वह उसे मिली।

जर्मनी ने तय किया कि वह इंग्लैंड पर आक्रमण करे या न करे, उसे अपनी विमान शक्ति को मजबूत कर लेना चाहिए। काफी तैयारी के बाद जर्मनी ने अगस्त में आक्रमण शुरू कर दिया। सबसे पहले उसने इंग्लैण्ड के जहाजों, बन्दरगाहों और पत्तनों पर हमला किया। जब जर्मनी को इसमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली, तो उसने बाकायदा लंदन पर तथा इंग्लैण्ड के अन्य बड़े औद्योगिक शहरों पर बमबारी शुरू की।

लेकिन, जर्मनी की बमबारी से न तो इंग्लैंड नष्ट हुआ और न इंग्लैंड के लोगों का उत्साह ही कम हुआ।

१२ अक्तूबर को हिटलर ने इंग्लैंड का आक्रमण रोक दिया। उसने इस आक्रमण को १९४२ के लिए स्थगित कर दिया। हिटलर इंग्लैंड को पराजित न कर सका। हिटलर की अपराजेयता का दंभ चूर-चूर हो गया। अब महायुद्ध का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।

लड़ाई में इटली के प्रवेश, फ्रांस की पराजय और स्पेन की धुरी शक्तियों के साथ प्रत्याशित मित्रता के कारण, भूमध्य सागर में शक्ति-संतुलन बिगड़ गया। इंग्लैंड की रक्षा के लिए यह भी आवश्यक था कि भूमध्य सागर पर उसका अधिकार बना रहे। फलतः इंग्लैंड ने भूमध्य सागर की रक्षा के लिये भी प्राणों की बाजी लगा दी।

यद्यपि भूमध्य सागर में इटली का खतरा इतना भयंकर प्रमाणित नहीं हुआ जैसी कि उम्मीद थी, लेकिन अगस्त में इंग्लैण्ड को ब्रिटिश सोमालीलैंड से हटना पड़ा। उसे भूमध्य सागर में कुछ और स्थान भी इटली के लिए छोड़ने पड़े। १९४१ के शुरू के महीनों में इंग्लैंड की दो सेनाओं ने, जिनमें से एक सूडान से चली और दूसरी कीन्या से, इटली को सोमालीलैंड, एरीट्रिया और पूर्वी अफ्रीका से खदेड़ दिया। उत्तरी अफ्रीका में वैवेल (Wavell) ने इटली को करारी हार दी। लेकिन इसी बीच रोमेल (Rommel) की अधीनता में जर्मनी की एक विशाल सेना वहाँ पहुँच गई। वैवेल को भी अपनी कुछ शक्ति यूनान की लड़ाई में लगानी पड़ी। दिसम्बर, १९४० से मार्च, १९४१ तक के वैवेल के इस अभियान ने इंग्लैण्ड को पहली ठोस विजय दी, इटली की दुर्बलता को प्रमाणित कर दिया और स्पेन के नीति-निर्माताओं को सावधान कर दिया।

हिटलर की भी अपनी समस्याएँ थीं। नेपोलियन की समस्याओं के समान ही विजय के साथ-साथ उसकी समस्याएँ बढ़ती गईं। उसके दल के विभिन्न गुटों में प्रतिद्वंद्विता थी, दल में और सेना में भी कुछ खींचतान थी। फिर विजित प्रदेशों में भी विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। यद्यपि यूरोप के समस्त संसाधन हिटलर के हाथों में थे, तथापि, उसे अपनी नई व्यवस्था (New Order) को कार्यान्वित करना था और इसे कार्यान्वित करने में असंख्य समस्याएँ थीं। नार्वे, पोलैंड, स्पेन सबकी अपनी-अपनी समस्याएँ थीं। इधर इंग्लैंड का हौसला बराबर बढ़ता जा रहा था। अमेरिका की उसको बराबर मदद मिल रही थी और यह हिटलर के लिए बहुत बड़ा सरदर्द था। जर्मनी के मित्र भी हिटलर के लिए परेशानी के कारण थे। रूस की ताकत बढ़ रही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। इटली संतुष्ट नहीं था। उसने हिटलर से बिना कहे ही यूनान पर हमला कर दिया। लेकिन, इस युद्ध में उसे पीछे हटना पड़ा और अल्बानिया की रक्षा में दत्तचित्त होना पड़ा।

इस आड़े समय में हिटलर ने इटली की सहायता करना अपना फर्ज समझा। उसने हंगरी, रूमानिया और बल्गारिया होकर अपनी सेना भेजी। यूगोस्लाविया ने उसका विरोध किया। इस पर हिटलर ने यूगोस्लाविया को पराजित किया तथा उसे अपने मित्र देशों में बाँट दिया। इसके बाद वह यूनान पहुँचा। वहाँ इंग्लैंड की कुछ फौज भी अफ्रीका से पहुँच चुकी थी।

इंग्लैण्ड और यूनान की संयुक्त रक्षापंक्ति शीघ्र ही टूट गई। अप्रैल के अन्त में इंग्लैण्ड ने बड़ी कोशिश के बाद अपने प्रायः ४४,००० सैनिकों को युद्धक्षेत्र से निकाला। इंग्लैंड ने क्रीट में मुकाबला करने की कोशिश की, लेकिन वहाँ भी जर्मनी की सेनाओं ने उसे खदेड़ दिया। यह इंग्लैंड की भारी पराजय थी। इंग्लैंड को प्रायद्वीप से बाहर निकलना पड़ा। उत्तर अफ्रीका में भी उसकी विजय की संभावना कम हो गई। लेकिन इस लड़ाई से मित्र देशों को एक लाभ हुआ। इससे हिटलर को रूस पर आक्रमण करने में देरी हो गई। बाद में हिटलर ने अपने पतन का मुख्य कारण यूनान पर मूसोलिनी का अनधिकृत हमला बताया था।

रूस और जर्मनी का समझौता सितम्बर, १९३९ में हुआ था। तब से कहने के लिए तो रूस और जर्मनी में मित्रता चल रही थी, लेकिन भीतर ही भीतर दोनों का एक-दूसरे के ऊपर अविश्वास था। पश्चिम की ओर तो रूस का साम्राज्य बढ़ता जा रहा था और पूर्व की ओर जर्मनी का। पोलैंड के विभाजन से दोनों का एक सामान्य सीमान्त हो गया था। रूस ने बाल्टिक और बल्कान्स में अपनी सत्ता कायम कर ली थी। इससे जर्मनी के मन में अविश्वास और सन्देह पैदा हो गया था। इसके विपरीत, स्टालिन को बल्कान्स में जर्मनी का हस्तक्षेप पसन्द नहीं था। जापान को रूसी-जर्मन समझौता पसन्द नहीं था। रूस को १९४० का धुरी राष्ट्रों और टोकियो के समझौते का पुनरुत्थान अच्छा नहीं लग रहा था।

हिटलर अपनी नयी व्यवस्था के लिए यूक्रेन की सरसब्ज जमीन चाहता था। हिटलर के मन में रूस के प्रति घृणा थी और उसने अपने मित्रों से कह रखा था कि इंग्लैंड से निबटने के बाद वह रूस को देखेगा। इंग्लैण्ड की लड़ाई ने उसकी नीति को बदल दिया। उसने सोचा कि पहले रूस से ही निबट लिया जाय। उसका विचार था कि वह अपनी आधुनिक सैनिक शक्ति से रूस को शीघ्र ही पराजित कर देगा।

हिटलर ने २२ जून, १९४१ को रूस पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी की सेना बड़ी द्रुत गति से आगे बढ़ती गई। अगस्त के अन्त तक जर्मनी की एक सेना स्मोलेंस्क (Smolensk) तक पहुँच गई और वह मास्को की ओर बढ़ने लगी, दूसरी सेना कीव (Kiev) तक पहुँच गई, तीसरी सेना पीपस झील (Lake Peipus) से आगे पहुँच गई और लेनिनग्राड (Leningrad) की ओर बढ़ने लगी। चौथी सेना ने ओडीसा (Odessa) और खर्सोन (Kherson) ले लिया और वह नीपर (Dnieper) के निकट तक पहुँच गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

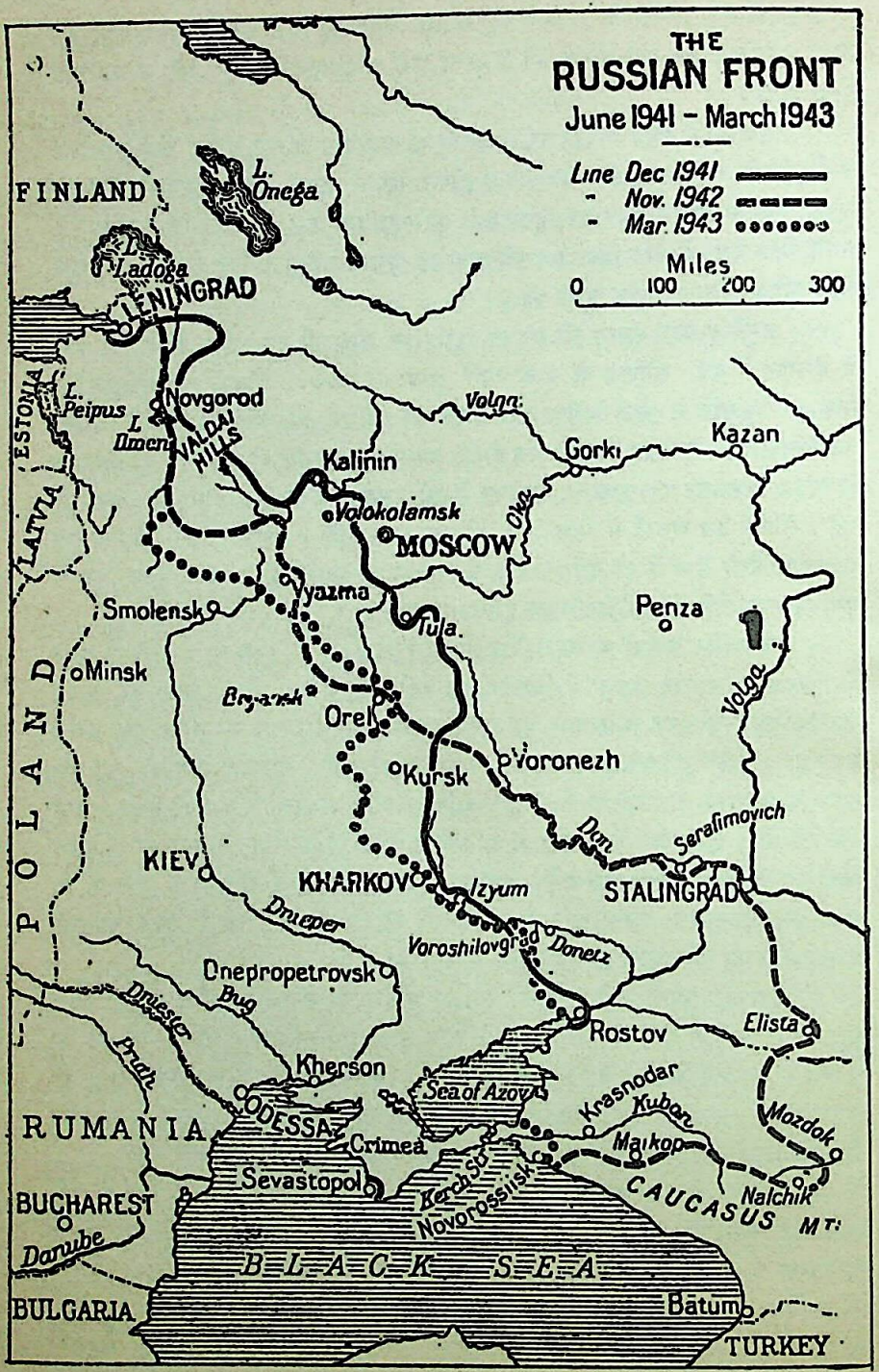

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़े से विराम के बाद, जिसमें टॉट श्रम संगठन (Todt Labour Organization) ने सड़कों और रेलों का निर्माण किया, जर्मनी ने अपने अभियान को फिर जारी किया। इस बार जर्मन सेना बढ़ते-बढ़ते मास्को से केवल ६० मील दूर रह गई। लेकिन जुखोव (Zhukov) मोर्चे पर डटा रहा। इसी बीच बर्फ गिरनी शुरू हो गई। इस पर भी हिटलर ने नवम्बर में एक और हमले की आज्ञा दी। इस अभियान में जर्मन सेनाओं को क्रेमलिन (Kremlin) की मीनारें दिखाई देने लगी थीं। लेकिन मास्को सर न हुआ और न·स्टालिन ने शाँति की प्रार्थना की।

७ सितम्बर को हिटलर ने बड़े झिझकते-झिझकते जाड़े भर के लिए लड़ाई बन्द करने का आदेश दिया। इसी दिन रूसियों ने जर्मन सेना के ऊपर आक्रमण किया। जर्मन सेना जाड़े के कारण पहले से ही परेशान थी। रूसियों ने जर्मन सेना को काफी नुकसान पहुँचाया। जर्मन सेना में भगदड़ मच गई। हिटलर को खुद कमान सम्हालनी पड़ी। उसने बड़ी मुश्किल से स्थिति को सम्हाला और दूसरे वर्ष नए सिरे से आक्रमण करने की योजना बनाई। दक्षिण में जर्मन सेनाओं को भारी सफलता प्राप्त हुई। दक्षिणी सेना ने सेवास्तपूल (Sebastopol) छोड़कर शेष क्रीमिया रौंद डाला। यह फौज डान (Don) तक पहुँच गई।

हिटलर पूर्व के अलावा और सब जगह जीता था। इंग्लैण्ड के अलावा अन्य सब शत्रुओं पर उसने विजय प्राप्त की थी। लेकिन, अब स्थिति बिगड़ गई थी। पहले रूस जर्मनी का मित्र था। अब वह उसका शत्रु हो गया था। इंग्लैण्ड ने इच्छा न होते हुए भी तुरन्त स्टालिन के साथ राजनीतिक सन्धि की। लन्दन स्थित पोलैण्ड की स्वतन्त्र सरकार ने भी रूस के साथ सन्धि की। अमेरिका ने भी हर तरफ से रूस की मदद करना स्वीकार किया।

रूस के साथ लड़ाई शुरू होने पर यह बहुत आवश्यक हो गया कि भूमध्य-सागर और मध्यपूर्व खुला रहे। इस क्षेत्र में जर्मनी भी अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। ३ अप्रैल को ईराक में जर्मनी के पक्ष में राजनीतिक क्राँति हुई। इससे इंग्लैंड के सन्धि अधिकारों के लिये खतरा पैदा हो गया। लेकिन, इंग्लैंड ने जल्दी ही अपनी स्थिति सम्हाल ली। फ्रेंच सीरिया में भी जर्मनी का प्रभाव बढ़ता हुआ प्रतीत हो रहा था। वहाँ भी इंग्लैंड ने डी गॉल (De Gaulle) के सहयोग से सैनिक आधिपत्य कायम किया। उत्तरी अफ्रीका में जर्मन सेना के आ जाने से वैवेल की विजय रुक गई। इसकी वजह से भूमध्यसागर इंग्लैंड के जहाजों के लिए बन्द हो गया और माल्टा की रक्षा बहुत मुश्किल हो गई। लेकिन, माल्टा भारी बमबारी के बावजूद डटा रहा और इंग्लैंड का एक जहाजी बेड़ा काफी हानि सहकर वहाँ पहुँच गया।

इसी बीच वैवेल के बाद आचिनलेक (Auchinleck) आया। उसने नवम्बर, १९४१ में सीडी रेज़ेघ की लड़ाई में रोमेल (Rommel) को हरा दिया। उसने एक बार फिर शत्रु को सिरेनैका (Cyrenaica) से बाहर निकाल दिया। लेकिन, आचिन-लेक को भी अपनी कुछ फौज सुदूर पूर्व की ओर भेजनी पड़ी।

जर्मनी द्वारा रूस पर हमला करने से जापान खुश हो गया था। उसे सुदूर पूर्व में ब्रिटिश तथा अन्य यूरोपीय साम्राज्यों की दुर्बलता का भान था। इस समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशान्त महासागर में एकमात्र महत्त्वपूर्ण शक्ति अमेरिका की थी। ७ दिसम्बर को जिस दिन रूस ने प्रत्याक्रमण किया था, जापान ने पर्ल हार्बर (Pearl Harbour) पर आक्रमण किया। इस तड़ित आक्रमण में उसने प्रशान्त महासागर में अमेरिका की रक्षा-व्यवस्था को भंग कर दिया। इसके बाद उसने यूरोपीय साम्राज्यों के छोटे-मोटे उपनिवेशों को जीत लिया। छः महीने के भीतर ही वह दक्षिण-पूर्व एशिया तथा पश्चिमी प्रशांत का स्वामी हो गया। अब आस्ट्रेलिया, लंका, भारत और बर्मा के लिए भी खतरा पैदा हो गया।

जापान की कार्यवाही ने युद्ध के नक्शे को एक बार फिर बदल दिया। अब लड़ाई विश्वव्यापी हो गई थी। अमेरिका भी धीरे-धीरे युद्ध की लपेट में आ गया। इस समय हिटलर के खिलाफ शत्रु काफ़ी प्रचण्ड हो गए थे। हिटलर अपने युद्ध संसाधनों का पूरी तरह संगठन कभी नहीं कर सका। उसकी योजना में गहराई नहीं थी। यदि वह अपने युद्ध साधनों का योजनापूर्वक पूरी तरह संगठन कर लेता, तो उसकी विजय की सम्भावना अधिक हो सकती थी।

अमेरिका 'लोकतन्त्र का आयुधागार' (Arsenal of democracy) हो गया था। उसके शस्त्रास्त्र तटस्थता के आवरण में युद्धक्षेत्र में पहुँच गये थे। इस आवरण के हट जाने से सप्लाई में कमी ही हो सकती थी। इसका कारण यह था कि जर्मनी की यू-बोटें अमेरिका के जलक्षेत्रों पर आक्रमण कर रही थीं। १९४२ में एटलांटिक की लड़ाई को उन्होंने करीब-करीब जीत ही लिया था। इससे चर्चिल के शब्दों में, "लड़ाई बहुत लम्बी हो सकती थी।"

सुदूर पूर्व में जापान की सफलता ने मित्र देशों के पुनरुत्थान को कई वर्षों के लिए टाल दिया था। अफ्रीका में मई के अन्त में रोमेल ने आचिनलेक को पराजित कर दिया और जून में तोबुक (Tobruk) पर अधिकार कर लिया तथा २०,००० सैनिकों को युद्धबन्दी बना लिया। ब्रिटिश फौजों को मिस्र की ओर हटना पड़ा। वहाँ बड़ी कठिनाई से सिकन्दरिया से सिर्फ सत्तर मील दूर आचिनलेक ने अल-अलामीन (El Alamein) नामक स्थान पर अपने मोर्चे को मजबूत किया।

इन सफलताओं को ध्यान में रखते हुए हिटलर का विचार था कि यदि वह रूस की सहायता के लिए अमेरिका की फौज पहुँचने से पहले ही, रूस पर नये सिरे से आक्रमण कर दे, तो सम्भवतः जीत सकता है। इस बार उसने १५० मील लम्बे मोर्चे पर अत्यन्त शक्तिशाली आक्रमण किया। उसका उद्देश्य यह था कि वह रूसी सेना को तहस-नहस कर दे, बचे हुए औद्योगिक क्षेत्र को नष्ट कर दे, काकेशिया की तेल की सप्लाई के रास्ते को काट दे और रोमेल के साथ मिल जाए। उधर रोमेल मिस्र से होकर सिकन्दरिया पहुँचता। अगस्त के अन्त तक जर्मन सेना स्टालिनग्राड के दरवाजे पर पहुँच गई। यहाँ जर्मनी और रूस का निर्णायक युद्ध हुआ। यह लड़ाई दो तानाशाहों के बीच लड़ाई थी। लड़ाई दो महीनों तक चलती रही—शहर में, कारखानों में, गलियों में, मकानों में, कमरों में। लेकिन स्टालिनग्राड ने घुटने नहीं टेके।

नवम्बर में जुखोव (Zhukov) ने जर्मन सेनाओं पर आक्रमण किया। जुखोव ने १९४२ में मास्को की और १९४१ में स्टालिनग्राड की रक्षा की थी। उसने जर्मन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

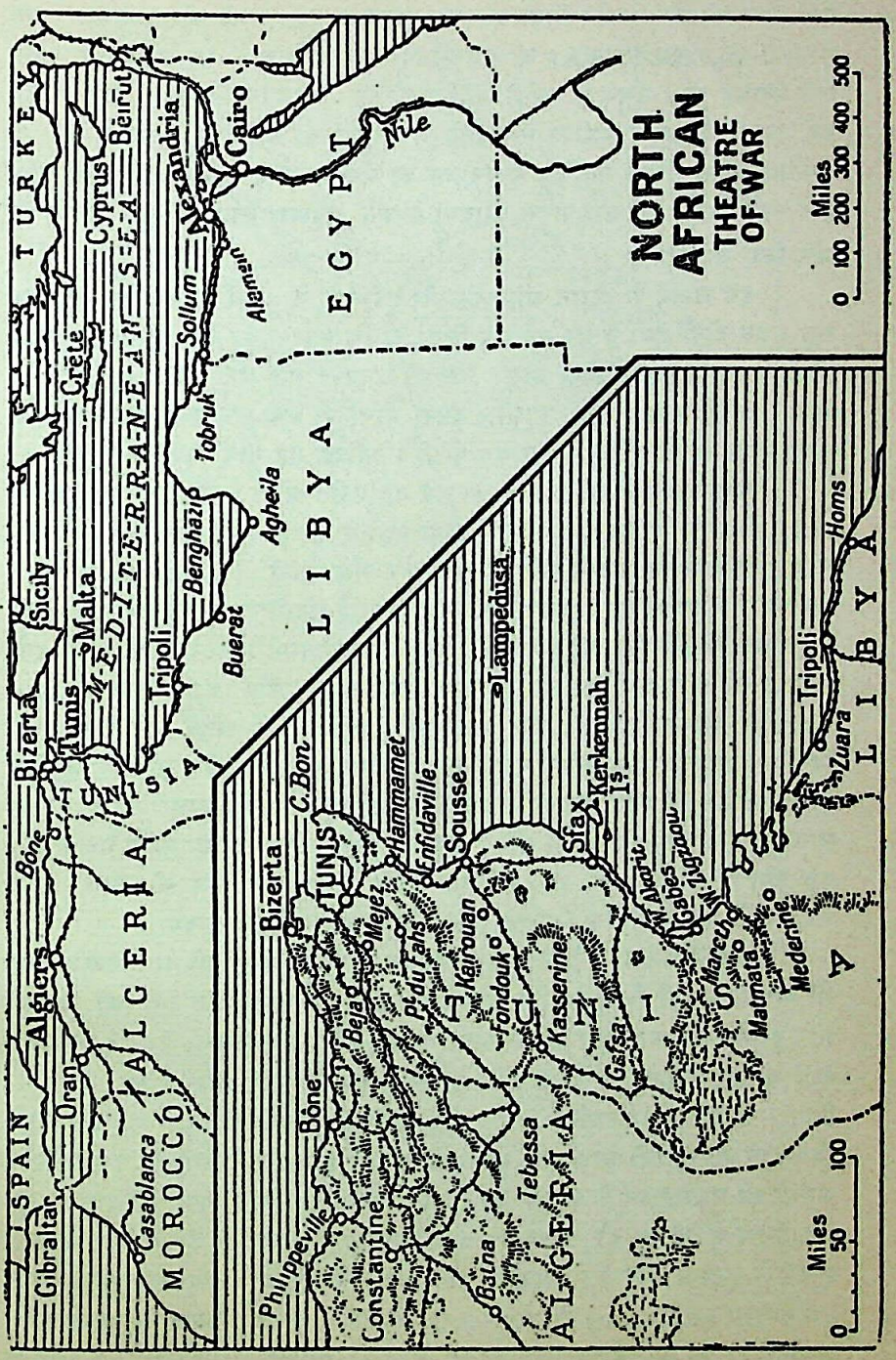

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना को चारों ओर से घेर लिया और ३१ जनवरी, १९४३ को फील्ड मार्शल पौलस (Field-Marshal Paulus) को आत्मसमर्पण करना पड़ा। यह जर्मनी की सबसे बड़ी पराजय थी। उत्तर में जर्मनी की सेनाओं को लेनिनग्राड से खदेड़ दिया गया। मई, १९४३ में उत्तरी अफ्रीका में जर्मनी को पराजय का मुँह देखना पड़ा। अब तो जर्मनी में योग्य सैनिक मत युद्ध में पराजय का अनुभव करने लगा। वहाँ यह षड्यन्त्र होने लगा कि देश को उस पागल आदमी से कैसे बचाया जाए जो उसे विनाश की ओर लिए जा रहा था।

इस लड़ाई के दौरान अमेरिका और इंग्लैण्ड में अपूर्व राजनीतिक सहयोग रहा। इन दोनों देशों ने यह तय कर लिया था कि सुदूर पूर्व की अपेक्षा यूरोप के मोर्चे को ज्यादा महत्त्व दिया जाए। रूस की अनवरत माँग को ध्यान में रखते हुए यह भी तय हो गया था कि यथाशीघ्र दूसरा मोर्चा भी शुरू कर दिया जाए। रूस यह मोर्चा यूरोप में ही चाहता था लेकिन परिस्थितियोंवश यह मोर्चा अफ्रीका में खुला।

अल अलामीन (El Alamein) में यह प्रतीत होता था कि रोमेल (Rommel) की शक्ति जवाब दे चुकी है। दोनों पक्षों ने नए सिरे से तैयारी की। इस समय मित्र-देशों की आठवीं फौज का कमाण्डर मोंटगोमरी (Montgomery) था। उसने अल अलामीन पर भयंकर आक्रमण किया। स्टालिनग्राड की लड़ाई की तरह यह लड़ाई भी निर्णायक थी। नवम्बर के शुरू में रोमेल पीछे हटने लगा था। इसी समय इंग्लैंड और अमेरिका की एक बहुत बड़ी संयुक्त फौज कासाब्लैंका (Casablanca), ओरन (Oran) और अल्जीयर्स (Algiers) में पहुँच गई। फ्रांस के विरोध के बावजूद वहाँ सैनिक अड्डे बना लिए गए और एक फौज जल्दी से ट्यूनिस (Tunis) भेज दी गई। हिटलर ने बाकी बचे हुए फ्रांस को रौंद डाला और भूमध्य-सागर से होकर ट्यूनीसिया में सैनिक सहायता पहुँचा दी। यहाँ छः महीने तक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें अन्त में १३ मई को जर्मन सेनाओं ने, जिनकी संख्या प्रायः २५०,००० थी, केप बॉन (Cape Ban) में आत्म-समर्पण कर दिया।

अब मित्र-देशों ने सिसली पर आक्रमण करने का फैसला किया। उन्होंने यह भी घोषणा कर दी कि दुश्मनों से शान्ति-समझौते की कोई बात नहीं की जाएगी और दुश्मनों को बिना शर्त आत्म-समर्पण करना पड़ेगा। ९ जुलाई, १९४३ को मित्र देशों की सेनाएँ इटली में पहुँच गईं। उन्होंने इटली की रक्षा-व्यवस्था को नष्ट कर दिया। लेकिन उत्तर अफ्रीका से निष्क्रांत कुछ जर्मन सेना वहाँ पहुँच गई और उसने मित्र-देशों की सेनाओं का डटकर मुकाबला किया। इसी बीच इटली की पराजय और जर्मनी की नृशंसताओं के कारण इटली में राजनीतिक संकट पैदा हो गया। २६ जुलाई को मुसोलिनी को गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में उसे हिटलर के स्टार्म ट्रूपर्स ने छुड़ाया और उसे लोम्बार्डी का गौलीटर बना दिया। विक्टर इमैनुअल ने बाडोग्लिओ (Badoglio) से कहा कि वह मित्र देशों से लड़ाई-बन्दी की बात करे। ३ सितम्बर को युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर हो गए और इटली पर मित्र-देशों के आधिपत्य की व्यवस्था की गई। जर्मनों को इस स्थिति का ज्ञान था। उन्होंने इटालियनों को निहत्था कर दिया, हजारों इटालियनों को मजदूर बनाकर रोम भेज दिया,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

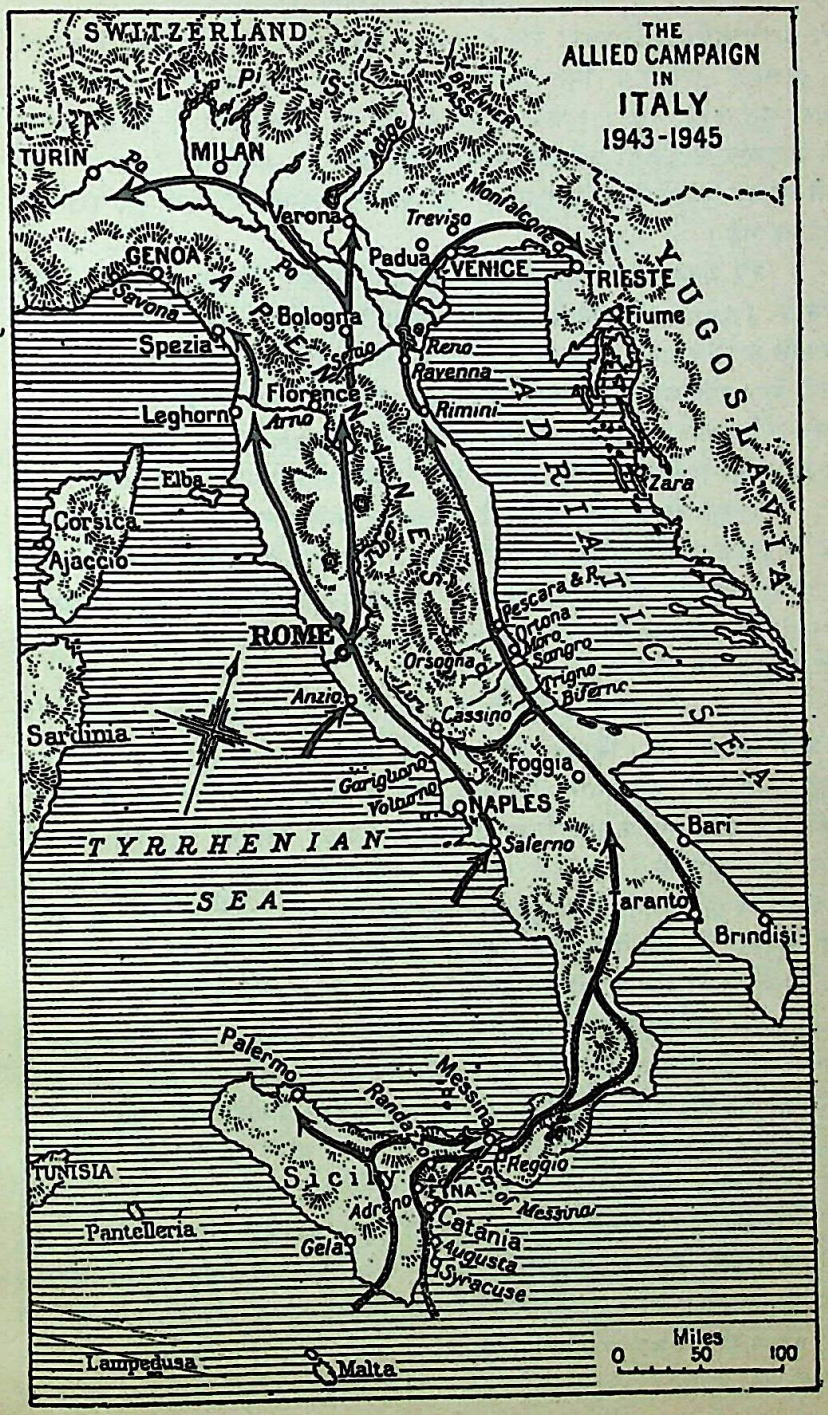

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोम को घेर लिया और सम्पूर्ण प्रायद्वीप पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया। राजा और बाडोग्लिओ किसी प्रकार रोम से बचकर निकल भागे। इसलिए, जब ९ सितम्बर को इटली के दक्षिण में मित्र सेनाएँ उतरीं, तो उन्हें एक-एक इंच जमीन के लिए भयंकर युद्ध करना पड़ा। १ अक्टूबर को नैपिल्स पर अधिकार कर लिया गया लेकिन इस अधिकार के पूर्व ही जर्मन सेनाओं ने सारे नगर को ध्वस्त कर दिया था। मित्र देशों को इस लड़ाई में जो निराशा हो रही थी, वह नवम्बर में उनकी एक पराजय से और बढ़ गई।

२२ जनवरी, १९४४ को मित्र देशों ने जर्मन सेना का ध्यान बँटाने के लिए अंज़ियो (Anzio) में अपनी एक सेना उतारी। लेकिन जर्मन सेना वहाँ बड़ी द्रुतगति से पहुँच गई। अंज़ियो में मित्र-देशों की सेना अलग पड़ गई। मित्र-देशों की दूसरी सेना बड़ी कठिनाई से वहाँ पहुँच सकी। मित्र-देशों की सेनाओं ने ४ जून को रोम पर अधिकार कर लिया। लेकिन कैसलरिंग (Kesselring) ने अपनी सेनाओं को फिर वहाँ से निकाल लिया और उत्तर में एक नयी रक्षापंक्ति कायम की।

६ जून को फ्रांस पर पश्चिमी शक्तियों ने भयंकर आक्रमण किया। १९४२ के शुरू से इंग्लैंड और अमेरिका के हवाई जहाजों ने जर्मनी के हथियारों के कारखानों पर भीषण बमबारी प्रारम्भ कर दी थी। इस बमबारी के फलस्वरूप जर्मनी की अपरिमित सैनिक और औद्योगिक हानि हुई और उसकी यू-नौकाओं (U-boats) का खतरा बहुत कम हो गया।

१९४३ की गरमी के बाद से पासा पलटने लगा। एटलांटिक की लड़ाई अन्त में जीती जा रही थी। मित्रदेशों की वायुशक्ति जर्मनी से ज्यादा बढ़ी हुई थी, यह बात सिद्ध हो गई थी। भूमध्यसागर को साफ किया जा रहा था, इटली रौंद दिया गया था, जर्मन सेना स्टालिनग्राड की पराजय से अभी सम्हल नहीं सकी थी, सुदूर पूर्व में जापान पीछे हट रहा था। फिर भी, जुलाई, १९४३ में हिटलर ने रूस के कुर्स्क क्षेत्र पर आक्रमण किया। जर्मनी ने दो-एक स्थानों पर कुछ छोटी-मोटी विजयें प्राप्त कीं, लेकिन जब अगस्त में रूस ने जवाबी हमला शुरू किया, तो जर्मन सैनिक न टिक सके। २५ सितम्बर को रूस ने स्मोलैंस्क (Smolensk) ले लिया और वह नीपर (Dnieper) तक आ गया। नीपर १९४१ से जर्मनी के हाथों में रहा था। रूस के दूसरे जवाबी हमले ने नीपर के दूसरे मोर्चे को ४०० मील विस्तृत कर दिया। रूस के तीसरे हमले ने जर्मनी को और पीछे खदेड़ दिया। उत्तर में भी जर्मन सेनाओं पर भीषण हमला किया गया और उन्हें लेनिनग्राड से खदेड़ दिया गया। मार्च, १९४४ तक रूसी सेना लेक पीपस (Lake Peipus) तक आ गई और फ़िनलैंड अकेला पड़ गया।

इसके बाद, पश्चिम में मित्र-राष्ट्रों का महान् आक्रमण प्रारम्भ हुआ। मित्र-राष्ट्रों ने इस आक्रमण की तैयारी बड़े विशाल पैमाने पर की थी और अपनी ओर से कुछ उठा न रक्खा था। वह सारी तैयारी शत्रु से गुप्त रक्खी गई थी। ६ जून को सीन की खाड़ी पर भयंकर हमला किया गया। जर्मन सेनाओं ने मुकाबला करने की कोशिश की, लेकिन वे सम्हल नहीं सकीं। इसके फलस्वरूप मित्र सेनाओं ने फ्रांस पर अधिकार कर लिया। जर्मन सेना ने जर्मन सीमांत पर रक्षापंक्ति कायम करने की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशिश की। १५ अगस्त को एक अमेरिकी सेना भी इटली से दक्षिण फ्रांस में आ गई और उसने जर्मन सेना को जर्मन सीमांत से भी खदेड़ने का प्रयास किया। १५ सितम्बर तक मित्र-देशों ने ब्रुसेल्स (Brussels), एंटवर्प (Antwerp) और लुक्जेम्बर्ग (Luxemburg) जीत लिया और उन्होंने जर्मनी को चारों ओर से घेरना प्रारम्भ कर दिया।

इस बीच, पूर्व में रूसियों ने काफी विजय प्राप्त की। वसन्त में रूसियों ने क्रीमिया प्राप्त कर लिया। मौसम अच्छा होने पर उन्होंने उत्तर और मध्य में ताजे आक्रमण किये।

जून में जब मित्र-देशों ने पश्चिम में आक्रमण प्रारम्भ किया था, रूसियों ने फिनलैण्ड पर आक्रमण कर दिया था और उसे युद्ध से बाहर कर दिया।[1] इसके बाद उसने ह्वाइट रशा पर हमला किया, विटेब्स्क (Vitebsk) और मिंस्क (Minsk) को जीत लिया, पूर्वी पोलैण्ड को रौंद डाला और वह वार्सा (Warsaw) तक पहुँच गया। वहाँ पहुँचने पर रूसी सैनिक रुक गए। पोलैण्ड में भूमिगत प्रतिरोध आन्दोलन (Underground Resistance Movement) शुरू हो गया, जिसे जर्मन सैनिकों ने नष्ट कर दिया। इस समय रूसियों ने इंग्लैण्ड के सैनिकों को न तो कोई सहायता दी और न इंग्लैण्ड के हवाई जहाजों को अपने हवाई अड्डों का प्रयोग ही करने दिया। रूसी जनवरी, १९४५ में वार्सा ले सके। इसकी वजह से और 'काटीं हत्याओं' (Katyn Murders) की वजह से रूस और लंदन स्थित पोलैण्ड की सरकार का विरोध बहुत बढ़ गया।

दक्षिण में बल्कान में रूस के सशक्त राजनीतिक हित थे। वहाँ उन्होंने आगे बढ़ना जारी रक्खा और रूमानिया, बल्गेरिया तथा हंगरी को जीत लिया। रूसियों ने जहाँ कहीं विजय प्राप्त की, वहीं अपनी साम्यवादी व्यवस्था लागू कर दी।

यूगोस्लाविया में दो विरोधी प्रतिरोध आन्दोलन चल रहे थे—एक मिहेलोविच (Mihailovich) की अधीनता में और दूसरा टीटो (Tito) की अधीनता में। रूस ने साम्यवादी टीटो को सहायता दी। इससे टीटो की विजय निश्चित हो गई।

इसी बीच रूसी उत्तर में भी आगे बढ़ गए थे। १९ अक्तूबर, १९४४ को वे पूर्वी प्रशा में घुस गए। यह पहली जर्मन भूमि थी जहाँ इस लड़ाई में शत्रुओं ने प्रवेश किया।

१९४४ के अन्त तक जर्मनी की सैनिक स्थिति बिलकुल खराब हो गई। नाज़ी जर्मनी के अधीन राज्यों के लिए विजेताओं से सन्धि करने के अलावा और कोई चारा न रहा। डैन्यूब घाटी के किनारे उत्तर में बाल्टिक की ओर उन्हें साम्यवादी रूस से समझौता करना पड़ा। युद्धोत्तर काल में इसकी वजह से अनेक राजनीतिक उलझनें पैदा हुईं।

लगातार सैनिक पराजयों के कारण जर्मनी की आन्तरिक स्थिति भी बहुत खराब होती जा रही थी। सेना के कुछ वर्गों में भी असन्तोष फैल गया था। २० जुलाई, १९४४ को हिटलर की हत्या करने की एक असफल कोशिश की गई। हिटलर ने इसका बड़ी बेदर्दी से बदला लिया।

---

१. फिनलैण्ड ने सितम्बर में समझौता कर लिया। उसे कुछ प्रदेश से हाथ धोना पड़ा और ६ करोड़ पौंड युद्ध का हर्जाना देना पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध के इस चरण में हिटलर का मानसिक संतुलन कुछ बिगड़ गया था। उसे जर्मनी के भविष्य का कोई ध्यान नहीं था। उसे अब भी भ्रम था कि वह जीतेगा और शत्रु अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के कारण लड़खड़ा जायेंगे। उसने सारी जर्मनी में आतंक का शासन पैदा कर दिया। कुछ तो डर की वजह से और कुछ देशभक्ति की वजह से जर्मन लोग अब भी हिटलर के आदेश पर मर-मिटने के लिए तैयार थे।

दिसम्बर में जर्मनी ने अपना अन्तिम मोर्चा जमाने का प्रयास किया। उसने पूर्वी और इटालियन मोर्चे को कायम रक्खा तथा पश्चिम में एक भयंकर प्रत्याक्रमण किया, जिसे अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। लेकिन, मित्र-देशों की सेना फिर सम्हल गई और उसने जर्मनी को चारों ओर से घेर लिया। हिटलर ने जर्मनों को मंत्रमुग्ध रखने की बहुत कोशिश की लेकिन अब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पूरी तरह से हिटलर के हाथ से निकल गई थी। जर्मन सेना बराबर पीछे हटती गई। २३ अप्रैल, १९४५ को रूसी सेना बर्लिन में पहुँच गई। इस स्थिति में हिटलर ने अपनी नवपरिणीता पत्नी के साथ आत्महत्या कर ली।

अब जर्मन सेनाएँ पूरी तरह से आत्मसमर्पण कर रही थीं। २ मई को बर्लिन पर अधिकार हो गया। इसी दिन इटली की सेना पराजित हो गई। ७ मई को रीम्स (Reims) में जर्मनी की जल-थल और वायु सेनाओं ने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया। पश्चिम के इतिहास में इतनी महान् पराजय कभी किसी देश की नहीं हुई थी। राज्य के समस्त सैनिक युद्धबन्दी हो गए। राष्ट्रीय प्रभुसत्ता काट दी गई। शासन का सूत्र आधिपत्यकारी सैनिक शक्तियों ने अपने हाथ में ले लिया।

इस प्रकार नाज़ियों की कहानी खत्म हुई और हिटलर का विनाश हो गया। जर्मनी के पतन के साथ ही सम्पूर्ण यूरोप का पतन हुआ क्योंकि युद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण यूरोप के पुनर्निर्माण का दायित्व विजेता राष्ट्रों के ऊपर पड़ा।

युद्ध के कारण पूर्वी और पश्चिमी राज्यों में कुछ काल के लिए समझौता हो गया। इन राज्यों में केवल एक ही समानता थी कि वे हिटलर का विनाश करना चाहते थे। युद्ध के पश्चात् उनके पारस्परिक मतभेद प्रखर रूप से सामने आ गये।

ब्रिटेन और अमेरिका ने अपने युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों को अगस्त, १९४८ में एटलांटिक चार्टर में घोषित कर दिया था। वे यूरोप के पुनर्प्रतिष्ठित राष्ट्रों को स्वतन्त्रता देकर, अपने उपनिवेशों को स्वशासन देकर तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था का विकास कर अपने उद्देश्यों को यथासंभव कार्यान्वित करने के लिए तैयार थे। १९४५ में ५१ राष्ट्रों के समर्थन से संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी। इंग्लैण्ड और अमेरिका की अपनी प्रादेशिक महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं थीं। वे यूरोप तथा सुदूर पूर्व में जहाँ तक हो सकता था, युद्धपूर्व की-सी व्यवस्था कायम करना चाहते थे। वे जर्मनी और जापान में फिर से सैन्यवाद को रोकने की व्यवस्था करना चाहते थे। दोनों ने यह समझ लिया था कि अब संसार के मामलों में अमेरिका के सक्रिय योग की आवश्यकता है।

रूस संसार में सिर्फ दो ही बड़ी शक्तियों को मानता था, एक खुद को और एक अमेरिका को। वह अपनी सुरक्षा इस बात में समझता था कि जर्मनी और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान की शक्ति का पुनरुत्थान न हो, अमेरिका के पूंजीवाद का प्रचार न हो और संसार के विविध भागों में साम्यवादी कार्यक्रमों का प्रचार हो।

सैनिक आधिपत्य ने रूस को सुनहरा मौका दिया। पूर्वी यूरोप में फिनलैंड और यूनान के बीच में सभी 'स्वतन्त्र' राज्य साम्यवादी हो गए। जर्मनी और ऑस्ट्रिया में उसके कुछ भूतपूर्व मित्रों का भी हाथ रहा था। इसलिए, यहाँ की समस्याएँ नहीं सुलझ सकीं और उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का रूप धारण कर लिया। ऑस्ट्रिया से समस्त आधिपत्यकारी सेनाएँ हटा ली गईं और वहाँ १९५५ में नाम मात्र की स्वतन्त्रता के आधार पर शान्ति स्थापित हो गई।

लेकिन, जर्मनी की समस्या का अभी तक समाधान नहीं हो सका है। जिस समय उसने आत्मसमर्पण किया, वहाँ कोई मान्य राष्ट्रीय सरकार नहीं थी। फलतः, जर्मनी का प्रशासन अपने-अपने आधिपत्य-क्षेत्रों में चार प्रधान सेनापतियों को सौंपा गया। सामान्य उद्देश्यों के लिए एक सामान्य नियंत्रण परिषद् (Common Control Council) की स्थापना की गई। बर्लिन रूसी क्षेत्र में पड़ता था। अतः वह चतुर्मुखी शासन की अधीनता में रक्खा गया। १९४५ में पोट्सडम कान्फ्रेंस में कुछ निदेशक सिद्धान्तों को रखा गया। रूस और पोलैंड के बीच जर्मनी के सीमान्त का अस्थायी रूप से संशोधन कर दिया गया।

शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि जहाँ रूस अपना प्रादेशिक विस्तार कर रहा था, वहाँ पोलैंड को और पूर्वी यूरोप के अन्य राज्यों को अपने नियंत्रण में ला रहा था। उसका अन्य शक्तियों के साथ मिल कर जर्मनी के हित में कार्य करने का कोई इरादा नहीं था। वह अपने आधिपत्य-क्षेत्र से भी नहीं हटना चाहता था। वहाँ उसने अपनी सोवियत व्यवस्था को लागू किया।

पश्चिमी जर्मनी का प्रशासन भी अपने ढंग से चलता रहा। पश्चिमी जर्मनी के क्षेत्र अब आँग्ल-अमेरिकी संरक्षण के अधीन संघात्मक गणराज्य (Federal Republic) के नाम से संगठित हो गए हैं। वहाँ सार जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान भी हो गया है। तथापि, सम्पूर्ण जर्मनी के लिए अभी कोई शांतिसंधि नहीं हो सकी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि जर्मनी पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी नामक दो भागों में सदैव के लिए विभाजित हो गया है। दोनों की शासन-व्यवस्थाएँ, विचारधाराएँ और निष्ठाएँ अलग-अलग हैं।

रूस के विरोध तथा यूरोप और सुदूरपूर्व दोनों स्थानों में उसके विस्तार की इच्छा ने इंग्लैण्ड और अमेरिका की एकता को पुष्ट किया तथा उन्हें यूरोप में नाटो (N. A. T. O.) और सुदूरपूर्व में सिआटो (S. E. A. T. O.) जैसे प्रादेशिक समझौते करने की प्रेरणा दी।

युद्धोत्तर काल की मुख्य समस्या पूर्व और पश्चिम का संघर्ष है। अन्य आनुषंगिक समस्याएँ ये हैं—जर्मनी का एकीकरण, पूर्वी यूरोप तथा बल्कान राज्यों की स्वतन्त्रता, अफ्रीका और मध्यपूर्व में मिस्र तथा अरब की महत्त्वाकांक्षाएँ, चीन का समेकन, जापान का पुनरुत्थान और भारत तथा पाकिस्तान का सामंजस्य। इसके साथ ही अणु हथियारों का खतरा भी बहुत विकट है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १०

(CHAPTER X)

यूरोप का विस्तार (१७८९-१९५०)

(The Expansion of Europe, 1789-1950)

१९वीं शताब्दी की एक विलक्षण बात यूरोपीय शक्तियों का अ-यूरोपीय संसार पर छा जाने का प्रयत्न था। १५वीं शताब्दी से ही लगातार यूरोप की शक्ति और प्रभाव में वृद्धि हुई है और यूरोप के लोग या तो धन की तलाश में या व्यापार की तलाश में या धर्म-प्रचार के लिए या स्वतन्त्रता की रक्षार्थ विदेशों में बहुत बड़ी संख्या में गये और वहाँ जाकर उन्होंने यूरोपीय प्रभाव को बढ़ाया। इस प्रकार पुर्तगीज (Portuguese), स्पेनवासी (Spaniards) डच लोगों (Dutch), फ्रांस के लोगों और अंग्रेजों ने बाहर जाकर अ-यूरोपीय देशों पर अधिकार जमाया। किन्तु उन्नीसवीं सदी में यूरोप का विस्तार अत्यन्त तीव्र गति से हुआ था और संसार या तो यूरोपीय राज्यों के उन साम्राज्यों का अंग बन गया जिन पर यूरोपीय वंशजों का राज्य था अथवा कम-से-कम शेष संसार पर यूरोपीय मशीनी सभ्यता का पूर्ण प्रभाव स्थापित हो गया। उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भूभाग, अफ्रीका के समुद्री किनारों को छोड़कर प्रायः सारे अफ्रीका और प्रायः समस्त आस्ट्रेलिया को यूरोपीय या अर्द्ध-यूरोपीय[1] जातियों ने ही खोज निकाला और इन भू-भागों पर उन्हीं का अधिकार भी रहा। नेपोलियन के युद्धों से लेकर महायुद्ध के प्रारम्भ तक प्रायः पूरी १९वीं शताब्दी में यूरोपीय लोग बहुत बड़ी संख्या में विदेश-गमन करते रहे हैं। इस प्रकार जहाँ कहीं थोड़े-बहुत यूरोपीय जन थे, उनकी संख्या बढ़ती रही और उन्होंने अ-यूरोपीय देशों को बसाया और उनमें अपना कारोबार जमाया।[2]

यूरोपीय शक्तियों का अ-यूरोपीय संसार पर छा जाने का प्रयत्न

पिछली शताब्दी में यूरोपीय प्रभाव इस सीमा तक क्यों बढ़ा, इसके कई कारण थे। यह नई औद्योगिक और राजनीतिक आवश्यकताओं का फल था और किसी सीमा तक यूरोप के इस आश्चर्यजनक विस्तार ने यूरोप के उद्योगों और उसकी राजनीति को प्रभावित भी किया। आधुनिक यूरोप जब तक शेष संसार के साधनों को प्राप्त न कर लेता, तब तक उसका जीवित रहना कठिन था। संयुक्त राज्य अमेरिका की इतनी आकस्मिक समृद्धि का एकमात्र कारण यह रहा कि उसको अपने ही द्वार पर विशाल प्राकृतिक साधन और कच्चे माल के अक्षय भण्डार प्राप्त हो गये और नये

१. इस संदर्भ में अमेरिका की सभ्यता भी यूरोपीय सभ्यता का अंग है।

२. ऐसा अनुमान किया जाता है कि १८१६ से १८२० तक प्रायः ४०,००० व्यक्ति यूरोप छोड़कर प्रतिवर्ष विदेशों को जाते रहे। किन्तु १९०० से लेकर १९१० तक प्रायः १२ लाख से भी अधिक व्यक्ति प्रति वर्ष यूरोप छोड़कर विदेश गमन करते रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश को महाद्वीपों के बड़े बाजार भी उसको अनायास ही प्राप्त हो गये। बड़े पैमाने पर उत्पादन और सारे संसार में माल की खपत इन दोनों का चोली-दामन का साथ है; आधुनिक उद्योगों में भारी विभागीकरण होता है। इसलिए यूरोप पूरी तौर से या अधिकतर विदेशी साधन-स्रोतों पर टिका हुआ है क्योंकि उसको अपने उद्योगों के लिए विभिन्न तथा अनेक प्रकार के कच्चे मालों की आवश्यकता होती है, जैसे रबर, तेल और धातुएँ आदि। औद्योगिक जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है और कभी-कभी बेरोजगारी और आर्थिक अवसाद का दौर भी चलता ही है और इसके साथ-साथ राजनीतिक आन्दोलन भी चलते ही रहते हैं। अतः इन कारणों से अनेक दुखी मनुष्य या खोटे मनुष्य भी पुरानी दुनियाँ छोड़कर नई दुनिया की शरण में भूमि प्राप्त करने या नया घर बसाने या रोजगार करने जाते रहे हैं। यूरोप के लोगों में खोज करने और साहसिक जोखिम उठाने की भी प्रेरणा हुई, विशेषकर जब कैलीफोर्निया (California), दक्षिणी अफ्रीका, एलास्का (Alasca) और आस्ट्रेलिया में सोने की विशाल खानों का पता लगा। इस दिशा में धार्मिक प्रचार ने भी अपना काम किया और यूरोप के विस्तारकाल के लम्बे इतिहास में चीन और अफ्रीका में बसने वाले धार्मिक पादरियों ने बड़ा परिश्रम करके यूरोप का प्रभाव उक्त देशों में बढ़ाया। तब लोगों में आम तौर पर अपने घर से दूर जाकर बसने की इच्छा पाई जाती थी और यातायात के सुलभ साधन तथा पत्र-व्यवहार एवं संचार की सुविधाओं के कारण भी संसार के विभिन्न भागों में विचारों और व्यक्तियों का आदान-प्रदान सहज हो गया।

संक्षेप में, इतना कहना पर्याप्त होगा कि उपनिवेशीकरण तथा समुद्र पार के दूरस्थ देशों में जाकर बसना और जोखिम उठाना सरल हो गया, और लाभदायक भी हो गया। और जब पुरानी दुनिया के साधन स्रोत निबटने लगे और वह कच्चे माल के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर न रह सकी तो यूरोपीय राज्यों की चिन्ता बढ़ने लगी और वे उपनिवेश बसाने और विदेशी भूमि पर अधिकार करने की भाषा में सोचने लगे जिससे उनकी बढ़ती हुई जनसंख्या का कुछ भार हल्का हो तथा जिनके साधन-स्रोतों से तथा कच्चे माल से उनके उद्योग चलें, तथा जिसमें स्वदेश का तैयार माल खपाया जा सके। इस प्रकार सोचा गया कि उपनिवेशों के प्राप्त होने से ही कोई देश दुनिया की औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा में टिक सकेगा। इस समय उपनिवेशीकरण का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारी महत्त्व हो गया।

उपनिवेशीकरण का इसलिए भी महत्त्व है क्योंकि १९वीं शताब्दी का प्रारम्भ निराशाजनक परिस्थितियों के बीच हुआ, विशेषकर उपनिवेशों की ओर से लोगों की चिन्ताएँ बढ़ गई थीं। कारण यह था कि यूरोपीय शक्तियों ने जो अपने लिए चारों दिशाओं में पिछली शताब्दियों में बड़े-बड़े उपनिवेश स्थापित किए थे, वे धीरे-धीरे विघटित हो रहे थे। १७८३ से १८२५ तक प्रायः प्रत्येक साम्राज्य को भारी हानियाँ सहन करनी पड़ी थीं और केवल ब्रिटिश साम्राज्य को अपवादस्वरूप मानकर तत्कालीन सभी बड़े-बड़े साम्राज्यों का विनाश हुआ। उनमें से फ्रांस, नीदरलैण्ड्स (Netherlands), स्पेन और पुर्तगाल विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

साम्राज्यों का पतन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस के हाथों से सेंट लारेंस (St. Lawrence) और मिसिसिप्पी (Mississippi) के प्रदेश निकल गये और उसके भारत में साम्राज्य स्थापित करने के सारे प्रयत्न भी निष्फल हो गये। नेपोलियन के युद्धों में पुनः फ्रांस को कई प्रदेशों से वंचित होना पड़ा था; यहाँ तक कि १८२५ में फ्रांस के समुद्र-पार के विशाल साम्राज्य में से उसके अधिकार में केवल वेस्ट इण्डीज के कुछ द्वीप रह गये थे, दक्षिणी अमेरिका में बहुत ही थोड़ा-सा प्रदेश रह गया था तथा एक दो नगर भारत में उसके अधिकार में रह गये।

फ्रांस

यूरोप की जातियों में डच जाति ने सर्वप्रथम विदेश-गमन और विदेशों से व्यापार प्रारम्भ किया था। यद्यपि डच लोगों के साधन सीमित थे और वे उपनिवेश बसाने की स्थिति में नहीं थे फिर भी प्रायः प्रत्येक महाद्वीप में उनकी पहुँच थी। उन्होंने ऑस्ट्रिया और न्यूजीलैण्ड का पता लगाया था किन्तु वे उक्त दोनों देशों को विकसित न कर सके। उत्तरी अमेरिका में न्यू एम्सटरडम (New Amsterdam) पर भी उनका अधिकार था किन्तु ब्रिटेन ने उसे भी डच लोगों से छीन लिया था। नेपोलियन के युद्धों के जमाने में डच लोगों को दक्षिणी अफ्रीका, श्रीं लंका, गाइना (Guiana) और दक्षिणी अमेरिका के उपनिवेशों से हाथ धोना पड़ा था; और १८२५ तक तो उनके साम्राज्य की प्रायः वही स्थिति रह गई थी जो इस समय है अर्थात् उनके अधिकार में मलाया द्वीपसमूह में कुछ द्वीप रह गये थे जिन्हें डच ईस्ट इण्डीज (Dutch East Idnies) कहा जाता है और एक या दो स्थानों पर वेस्ट इण्डीज (West Indies) में भी उनका अधिकार बना रहा था।[1]

नीदरलैण्ड्स

फ्रांसीसियों और डच लोगों के प्रदेश उस समय विशेष रूप से उनके अधिकार से छिन गये जबकि उनकी अन्य यूरोपीय जातियों से लड़ाइयाँ चल रही थीं। स्पेन तथा पुर्तगाल के साम्राज्य आन्तरिक विद्रोह के फलस्वरूप नष्ट हो गये।

१७८३ में स्पेन के अधिकार में अनेक उपनिवेश थे, जो उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में फैले हुए थे। इनमें से कुछ उपनिवेशों पर तो स्पेन का तीन सौ वर्षों से अधिकार चला आ रहा था। केवल उत्तरी अमेरिका में स्पेन का साम्राज्य इतना बड़ा था जितना कि ब्रिटिश साम्राज्य भी न था। मिसिसिप्पी (Mississippi) नदी के पश्चिम में स्पेन के अधिकार में विस्तृत भू भाग था, और उत्तर में स्पेन का साम्राज्य आधुनिक कनाडा-अमेरिका की सीमाओं को छूता था। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम २५ वर्षों में स्पेन का उक्त सारा साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। १८०१ में स्पेन को बाध्य होकर मिसीसिप्पी और रॉकीज (Rockies) के बीच लूसियाना (Louisiana) प्रदेश को

स्पेन

---

१. डच गाइना (Dutch Guiana) या सुरीनाम (Surinam) दक्षिणी अमेरिका के मुख्य भाग पर स्थित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपोलियन के हक में त्यागना पड़ा;[1] १८१९ में स्पेन ने फ्लोरिडा (Florida) नामक उपनिवेश संयुक्त राज्य अमेरिका के हाथों बेच दिया। मध्य अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका में जो कुछ साम्राज्य स्पेन के अधिकार में बचा था, वह आन्तरिक विद्रोहों के कारण उसके हाथों से निकल गया। कुछ तो उपनिवेशों को स्पेन से शिकायतें भी थीं, कुछ अमेरिका की स्वतन्त्रता तथा फ्रेंच क्रान्ति की सफलता से भी उत्साहित होकर और कुछ नेपोलियन के युद्धों के कारण तथा नेपोलियन के अधिकार में आ जाने से स्पेन की जर्जर अवस्था से भी लाभ उठाने के उद्देश्य से तथा पेनिन्सुला के युद्धों के कारण भी स्पेन की स्थिति डाँवाँडोल हो जाने के कारण तथा किसी सीमा तक अपनी स्वतन्त्र स्थिति बनाने के उद्देश्य से उपनिवेशों का साहस बढ़ गया था और उन्होंने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। नेपोलियन के पतन के पश्चात् जब सम्राट् फर्डिनेण्ड सप्तम (Ferdinand VII) स्पेन के राज-सिंहासन पर लौटा, तो उसने उपनिवेशों की प्रजा को वही अधिकार दे देना स्वीकार नहीं किया जो स्पेन की प्रजा को प्राप्त थे। इस पर उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया और उन्होंने स्पेन से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। अमेरिका की ओर कुछ इधर-उधर छोटे-मोटे युद्ध हुए जिनमें वेनेज्वेला के प्रसिद्ध साइमन बोलिवार (Simon Bolivar of Venezuela) ने अपार वीरता प्रदर्शित की। बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन ने विद्रोही उपनिवेशों की सहायता की,[2] अतः अमेरिका स्थित प्रान्तों ने एक-एक करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। अन्त में १८२५ में ग्रेट ब्रिटेन ने उक्त प्रान्तों की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया और तब से स्पेन के साम्राज्य में केवल केनरीज़ (Canaries), क्यूबा (Cuba), पोर्टोरिको (Puerto Rico) और फिलिपाइन द्वीपसमूह ही बच रहे। बाद के तीन देश उसे १८९८ में अमेरिका को देने पड़े।

पुर्तगाल

पुर्तगाल का भी यही हाल हुआ। उसका सबसे बड़ा उपनिवेश ब्राजील (Brazil) था जिसने १८२२ में स्पेन के अमेरिकी उपनिवेशों के विद्रोह के समय अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। इस प्रकार १८२५ में पुर्तगाल के हाथों में भी कुछ छोटे-छोटे प्रदेश अफ्रीका और भारत के समुद्री किनारों पर ही रह गये थे। १९६१ में पुर्तगाल के भारत स्थित उपनिवेशों को भारत सरकार ने भारत संघ में शामिल कर लिया।

ग्रेट ब्रिटेन

यह पहले ही बताया जा चुका है कि जहाँ १९वीं शताब्दी में साम्राज्य निरन्तर लड़खड़ा रहे थे, ब्रिटिश साम्राज्य अपवादस्वरूप टुकड़े-टुकड़े होने से बचा रहा। किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त में ग्रेट ब्रिटेन का भी उपनिवेशों के सम्बन्ध में आत्मविश्वास शिथिल हो चला था। हाल ही मे ब्रिटेन के अधिकार से अमेरिका स्थित उपनिवेश निकल चुके थे। कनाडा भी, जो एक विजित प्रान्त था और जिसमें अधिकतर

---

१. १८०३ में लूसियाना (Louisiana) प्रदेश को नेपोलियन ने संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) के हाथों बेच दिया था।

२. अध्याय ५ देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस निवासी रहते थे, विद्रोह के कगार पर खड़ा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कनाडा (Canada) भी अपने आपको अन्य अमेरिका स्थित यूरोपीय उपनिवेशों की देखा-देखी स्वतन्त्र घोषित करने वाला था। इसलिए ग्रेट ब्रिटेन में भी उपनिवेशों की ओर से निराशा थी और वहाँ के अधिकतर राजनीतिज्ञ तुर्गोट (Turgot) के

इस विचार से सहमत थे कि उपनिवेश तो फलों के समान बेवफा होते हैं जो केवल उसी समय तक पेड़ से सम्बन्ध रखते हैं जब तक कि कच्चे रहते हैं किन्तु परिपक्व हो जाने पर वे पेड़ से नाता तोड़ लेते हैं। पहले यह माना जाता था कि व्यापार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दृष्टि से उपनिवेश से केवल स्वामी देश (Mother Country) ही आर्थिक लाभ उठा सकता है। किन्तु अब अमेरिका के उपनिवेशों द्वारा विद्रोह किए जाने के फल-स्वरूप उपनिवेशों से किसी देश को किसी प्रकार के आर्थिक लाभ की आशा नहीं रह गई थी। अब तो सभी देश समझने लगे थे कि उपनिवेशी प्रजा साम्राज्यवादी स्वामियों की आज्ञाओं को इस मान्यता पर कदापि न स्वीकार करेगी, विशेषकर जबकि स्वयं स्वामी देशों में भी स्वतन्त्र और मुक्त व्यापार की दिशा में सोचा जा रहा था। इसलिए आम तौर पर लोगों की ऐसी धारणा बन गई थी कि उपनिवेश बसाने और साम्राज्य निर्माण करने में जितना धन व्यय करना पड़ता है और जितना जोखिम उठाना पड़ता है उतना उससे लाभ नहीं होता।

फिर भी यह स्वीकार करना ही होगा कि ग्रेट ब्रिटेन एक अपवाद था। ग्रेट ब्रिटेन के हाथों से केवल अमेरिकन उपनिवेश निकले थे ; किन्तु उक्त उपनिवेशों की स्वतन्त्रता मान लिए जाने के दिन के बाद ही ग्रेट ब्रिटेन निरन्तर अपने साम्राज्य का पोषण करता रहा और उसे बढ़ाता रहा और फलस्वरूप ग्रेट ब्रिटेन संसार की उच्च कोटि की साम्राज्यवादी शक्ति बना रहा। उसको कोई न कोई बहाना भी मिलता रहा जिसके आधार पर वह या तो अपना साम्राज्य बढ़ाता रहा या अपने साम्राज्य का शोषण करता रहा। उसने किसी प्रदेश को अपने जहाजों के उतारने के बहाने आवश्यक कॉलिंग स्टेशन (Calling Station) मानकर हथिया लिया, किसी स्थान या प्रदेश में निर्वासित व्यक्तियों को बसा दिया, किसी स्थान को इस आधार पर आबाद किया कि अपने निहित स्वार्थों की रक्षार्थ उस स्थान का बसाया जाना आवश्यक था और किसी स्थान पर इस कारण अधिकार कर लिया कि वह किसी विजित यूरोपीय शक्ति का प्रदेश था जिस पर युद्धोत्तर सन्धि में विजेता ब्रिटेन का अधिकार स्वीकार कर लिया गया था।

जैसा कि बताया भी जा चुका है, १७८३ से लेकर १८२५ तक के काल में जब डच लोगों, स्पेन के लोगों और पुर्तगालियों के साम्राज्य या तो विजय किये जा रहे थे या आन्तरिक विद्रोहों के कारण छिन्न-भिन्न हो रहे थे, ब्रिटिश साम्राज्य चतुर्मुखी उन्नति कर रहा था और निरन्तर विकास को प्राप्त हो रहा था।

ऑस्ट्रेलिया

१७८३ से लेकर १८२५ तक के काल में प्रथम बार ऑस्ट्रेलिया में श्वेत जातियाँ आकर बसीं और उन्होंने उसे उपनिवेश बनाया। चाहे चीनी लोग मार्को पोलो (Marco Polo), फ्रेंच लोग, पुर्तगाली लोग और स्पेन यात्री लोग पहले से ही आस्ट्रेलिया के बारे में जानकारी रखते रहे हों किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि १७ वीं शताब्दी के डच अन्वेषकों ने प्रथम बार आधुनिक संसार को ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के बारे में कुछ निश्चित जानकारी कराई किन्तु वे भी इसके आगे का साहस न कर सके और आगे चलकर ब्रिटिश नाविक, कप्तान कुक (Captain Cook) ने अपनी नाविक यात्राओं में अठारहवीं शताब्दी के १७७०-१७८० के युग में पुनः ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलण्ड को खोज निकाला। इसके पश्चात् उसने ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी किनारे का पता लगाया तथा वह बॉटनी की खाड़ी (Botany Bay) में उतरा और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी ने प्रथम बार ऑस्ट्रेलिया की मुख्य भूमि पर ब्रिटिश ध्वज को फहराया। संयोग-वश जिस समय ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का पता लगा उसी समय अमेरिकी उप-निवेशों ने विद्रोह किया। अब यह प्रश्न उठा कि ब्रिटिश अपराधियों को किस अज्ञात या दूरस्थ प्रदेश में भेजा जाय। अभी तक तो बहुत दिनों से ब्रिटिश बंदियों और अपराधियों को ब्रिटेन के अमेरिकी उपनिवेशों में भेजा जाता रहा था, जहाँ वे ठेकेदारों और खेतों के मालिकों के नीचे कम वेतन पर मजदूरी करते रहे थे। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार बन्दियों के पोषण आदि की समस्या से मुक्त हो जाती थी और उधर उपनिवेशों के खेतों और कारखानों में इन बन्दियों से सहायता प्राप्त होती थी। इससे एक अतिरिक्त लाभ यह भी होता था कि अपराधियों और बन्दियों को स्वर्णावसर प्राप्त हो जाता था जिसके द्वारा वे स्वतंत्र और समृद्ध जीवन में प्रवेश कर सकते थे। किन्तु १७७६ के पश्चात् ब्रिटेन के अमेरिकी उपनिवेशों में ब्रिटेन को उक्त सुविधा सुलभ न रही, अतः ब्रिटिश अपराधियों और बन्दियों को बसाने की समस्या आई। ब्रिटिश संसद् सोच रही थी कि ब्रिटेन में ही उक्त बन्दियों और अपराधियों के लिए सुधार गृह (Penitentiaries) विकसित किए जाएँ किन्तु उसी समय कप्तान कुक (Captain Cook) की खोजों के फलस्वरूप ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में उपर्युक्त अपराधियों और बन्दियों को बसाये जाने की सम्भावना प्रकट हो गई। अतः संसद् ने निश्चित किया कि अपराधियों और बन्दियों को अब भी निर्वासित किया जाता रहे। उक्त निर्णय के अनुसार नौ जहाज दो युद्ध-पोतों के साथ ऑस्ट्रेलिया की ओर १७८७ में अनेक निर्वासित व्यक्तियों को लेकर चल पड़े। १७८८ में उक्त जहाजी बेड़ा बाटनी बे पहुँचा और शीघ्र ही पोर्ट जैक्सन (Port Jackson) जा पहुँचा। उस समय समस्त ऑस्ट्रेलिया को न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) की संज्ञा दी गई थी। टसमानिया (Tasmania) को ऑस्ट्रेलिया की मुख्य भूमि का ही भाग माना जाता था। इस प्रकार न्यू साउथ वेल्स और टसमानिया दोनों को मिलाकर ब्रिटिश राज्य के अधीन उपनिवेश के रूप में आबाद किया गया। इसके पश्चात् अन्य स्थानों पर भी उपनिवेशों का अधिकार होता रहा। किन्तु ऑस्ट्रेलिया की स्थिति अमेरिका की स्थिति के समान नहीं थी और नई बस्तियों की उन्नति आशाजनक नहीं थी। जो ब्रिटिश अपराधी या बन्दी आस्ट्रेलिया को निर्वासित किए गए थे वे खेती करना नहीं जानते थे और न उन्होंने अग्रिम निर्जन स्थानों में जाना और वहाँ कार्य करना स्वीकार किया। फलस्वरूप वे इस नए समाज के आत्मनिर्भर व्यक्तियों के रूप में न रह सके। इन नए बंदी उपनिवेशों के खाने का प्रबन्ध भी इंग्लैंड को ही करना पड़ रहा था। उधर इतनी अधिक संख्या में बन्दी और अपराधी ऑस्ट्रेलिया को भेजे जा चुके थे कि अनेक स्वतन्त्र लोगों को प्रार्थना करने पर भी उधर नहीं भेजा गया यद्यपि बहुत से ऐसे इच्छुक व्यक्तियों ने सरकारी अधिकारियों को तदर्थ रिश्वतें भी दी थीं। वास्तव में अनेक स्वतन्त्र लोग चाहते थे कि उन्हें ऑस्ट्रेलिया भेज दिया जाय जहाँ वे बन्दियों और अपराधियों को सस्ती मजदूरी पर लगाकर उपनिवेश को समृद्ध बनावें और व्यक्तिगत लाभ उठायें। किन्तु यह भी याद रखना होगा कि ये वर्ष यूरोप के लम्बे युद्ध के वर्ष थे जबकि अनेक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों और भारी धनराशि की इंग्लैंड को यूरोपीय युद्ध के लिए ही आवश्यकता थी, अतः वह ऑस्ट्रेलिया में गए हुए उपनिवेशों की यथा आवश्यकता सहायता नहीं कर सका।

इसलिए कुछ वर्षों तक स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रही, केवल उपनिवेशों की रक्षार्थ महँगी लड़ाई चलती रही जिसका कोई निर्णायक फल नहीं निकला। किन्तु इस स्थिति से भी कुछ निश्चित और लाभकारी फल मिले। प्रथमतः ऑस्ट्रेलिया पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया और वह ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया। इस प्रकार नेपोलियन की ऑस्ट्रेलिया सम्बन्धी सारी योजनाएँ धूल में मिल गईं। द्वितीयतः ब्रिटिश सरकार ने भारी व्यय करके और गवर्नर मेक्वेरी (Governor Macquarie) की सिफारिशों पर विशाल निर्माण का कार्यक्रम तैयार किया जिसकी पूर्ति होने पर भविष्य में ऑस्ट्रेलिया में बसने वाले उपनिवेशियों को भारी लाभ हुए। विशाल सड़कें, पुल, स्कूल और गिरजाघरों का निर्माण किया गया। उसके अतिरिक्त नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् स्थिति और भी अधिक आशाजनक दिखाई पड़ने लगी। न्यूकैसिल (Newcastle) में कोयले की विशाल खानों का पता लगा और बढ़िया ऊन वाली मेरिनो भेड़ों के विशाल पैमाने पर पालने से उपनिवेशियों की रोटी की समस्या हल हो गई। जिस समय इंग्लैंड अपार आर्थिक अवसाद से घिरा हुआ था उस काल में अनेक स्वतन्त्र लोग ऑस्ट्रेलिया में जाकर बसने लगे। अब ऑस्ट्रेलिया के समुद्री किनारों और दूरस्थ भागों की भी खोज प्रारम्भ हुई। १७९८ में टसमानिया (Tasmania) के चारों ओर की यात्रा सम्पन्न हुई, किन्तु कुछ वर्षों तक लोगों को ऑस्ट्रेलिया का बहुत ही कम ज्ञान रहा। वे केवल सिडनी (Sydney) के ७० मील उत्तर और ७० मील दक्षिण तक के भू-भाग से परिचित थे तथा नीले पर्वतों (Blue Mountains) और समुद्र के बीच के ५० मील चौड़े भू-भाग के बारे में कुछ जानकारी रखते थे। किन्तु १९ वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में स्वयं उपनिवेशी लोग ही नीले पर्वतों (Blue Mountains) को पार कर गये। इसके अतिरिक्त इंग्लैंड ने भी कई खोजी दल भेजे जिनमें ने एक दल विशेष उल्लेख्य है, जिसका नेता लेफ्टीनेण्ट ऑक्सले (Lieutenant Oxley) था। उक्त दलों ने सिडनी (Sydney) के उत्तर में ७०० मील तक का प्रदेश छान डाला ताकि उन्हें इंग्लैंड के अपराधियों और बन्दियों को बसाने के लिए कोई उपयुक्त स्थान मिल सके।

कनाडा

इस समय ऑस्ट्रेलिया में जितने लोग उपनिवेशियों के रूप में रह रहे थे उनका बसाना मानो अपराधियों के ऊपर सामान्य प्रकार के प्रयोग करना था। किन्तु उसी काल में दुनिया के दूसरे छोर पर दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कनाडा में किया जाने वाला था, जिसका ब्रिटिश साम्राज्य के लिए भविष्य में भारी महत्त्व होने को था।

कनाडा स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण तथ्य ध्यान में रखे जाने चाहिएँ। प्रथमतः क्वीबेक (Quebeck), कनाडा का सबसे बड़ा प्रान्त था जिसको १७६३ में ब्रिटेन ने फ्रांस से जीता था। द्वितीयतः कनाडा के उपनिवेश संयुक्त राज्य अमेरिका के अतीव निकट थे और संयुक्त राज्य एक नवस्थापित गणराज्य था। प्रथम तथ्य से यह निष्कर्ष निकला कि ग्रेट ब्रिटेन को ऐसे उपनिवेशियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्बन्ध स्थापित करने थे, जिनका धर्म, जाति, वंश और राजनीतिक दृष्टिकोण सभी कुछ भिन्न था। यही फ्रेंच उपनिवेशी ब्रिटेन से प्रसन्न न थे, कम-से-कम वे ब्रिटेन के प्रति उदासीन अवश्य थे। द्वितीय तथ्य से यह निष्कर्ष निकला कि कनाडा पर अमेरिका का रंग आसानी से चढ़ सकता था और इस प्रकार कनाडा में गण-तन्त्रीय स्वतन्त्रता सम्बन्धी प्रचार के लिए साफ भूमि थी। १७७४ में अमेरिकी उप-निवेशों के विद्रोह से पूर्व लार्ड नार्थ (Lord North) की सरकार ने क्वीवेक अधि-नियम (Quebeck Act) पास किया जिसके अनुसार क्वीबेक के सैनिक शासन को कुछ ढीला कर दिया गया ; फ्रेंच निवासियों को उन्हीं की सिविल विधियों का शासन प्रदान कर दिया गया तथा उनको अपना रोमन कैथोलिक धर्म पालने की पूरी-पूरी आज्ञा दे दी गई। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इस अधिनियम से कनाडा के फ्रेंच निवासियों का ब्रिटिश विरोधी रुख कुछ नरम हो गया, अन्यथा अमेरिका के स्वातन्त्र्य-युद्ध में उन लोगों ने भी खुलकर विद्रोह किया होता। इसके अतिरिक्त स्वातन्त्र्य-युद्ध के पश्चात् अनेक राजभक्त अमेरिकन अमेरिका छोड़कर कनाडा (Canada) में आ बसे। इससे कनाडा की स्थिति में भारी अन्तर और सुधार हुआ। इन राज-भक्त आगन्तुकों को ब्रिटिश सरकार ने अपने राज्य में से अनेक जागीरें दे डालीं। इनमें से बहुत बड़ी संख्या में लोग समुद्रों के किनारे बसे। इनको अमेरिका की प्रभुभक्त प्रजा (United Empire Loyalists) कहा जाता था। दूसरे लोगों ने सेंट लारेंस (St.Lawrence) के उत्तर का भू-भाग बसाया जो अंग्रेजी बस्ती बनी। अर्थात् यह नई बस्ती क्वीबेक (Quebeck) नामक फ्रेंच प्रान्त में बसी। इससे भविष्य में फ्रांसीसी और ब्रिटिश उपनिवेशियों में झगड़े होने लगे; अतः १७९१ में ब्रिटिश सरकार ने कनाडा अधिनियम पास किया जिसके अनुसार कनाडा को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। एक तो उत्तरी कनाडा (Upper Canada) था जो पूर्ण रूप से ब्रिटिश जनों का प्रान्त तथा दूसरा दक्षिण कनाडा (Lower Canada) था जो अधिकांश रूप में फ्रेंच लोगों का था। प्रत्येक को एक निर्वाचित द्विसदनात्मक एसेम्बली दे दी गई और एक नियुक्त कार्यकारिणी परिषद् स्थापित कर दी गई। किन्तु एसेम्बली या संसद् का कार्यकारिणी परिषद् पर कोई नियन्त्रण नहीं रखा गया। पिट की सरकार ने निराशा की सी स्थिति में उक्त अधिकार प्रदान किये थे क्योंकि समझा यह जा रहा था कि कनाडा और ग्रेट ब्रिटेन का सम्बन्ध टूटने ही वाला है, किन्तु उक्त वैधानिक सुधारों के आशातीत शुभ फल हुए। एक फल तो यह हुआ कि संयुक्त राज्य की ओर से और अधिक संख्या में राजभक्त आये जिन्हें पहले क्वीबेक (Quebeck) की सैनिक सरकार नहीं आने दे रही थी। वे सब उत्तरी कनाड़ा में ब्रिटिश कनाडा के भाग में आ बसे। बढ़ते-बढ़ते इन अमेरिकी राजभक्तों की संख्या ८०,००० तक जा पहुँची। उक्त १७९१ के अधिनियम के कुछ परिणाम भी हुए जिनका वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। किन्तु जहाँ एक ओर तो प्रजातन्त्रात्मक लोक-सदन की स्थापना की गई वहीं उसके साथ उत्तरदायी कार्यकारिणी परिषद् का पूर्ण अभाव था। यह वास्तव में सच्चा लोकतन्त्र न होकर उसकी केवल छाया मात्र थी। अतः व्यवस्थापिका सभा जो निर्वाचित और लोकप्रिय थी, उसका उत्तरदायित्वहीन कार्यकारिणी से रोज झगड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने लगा। इस स्थिति का समाधान होना अत्यावश्यक था। और इसी समाधान ने साम्राज्यों की शासन-प्रणालियों और साम्राज्यवादी विचारों में एक क्रान्ति सी पैदा कर दी।

इसी काल में भारत में भी ब्रिटिश साम्राज्य का विकास हो रहा था जो कनाडा और ऑस्ट्रेलिया दोनों साम्राज्यों से भिन्न था। यह ब्रिटिश साम्राज्य का तीसरा विकास था। भारत में न तो ऑस्ट्रेलिया के समान बन्दियों और अपराधियों की समस्याएँ थीं और न कनाडा के समान वैधानिक समस्याएँ ही थीं। भारत में तो एक दो सौ वर्ष पुरानी ब्रिटिश व्यापारिक कम्पनी थी जिसका नाम ईस्ट इंडिया कम्पनी (East India Company) था जिसने व्यापार करते-करते भारत देश में अपार शक्ति संचय कर ली थी। भारत प्राचीन सभ्यता का देश था किन्तु उसकी राजनीतिक अवस्था शोचनीय थी। उक्त कम्पनी के अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार भी थी जो उस कम्पनी को अपने अधिकार में रखना चाहती थी क्योंकि प्रायः उसके अभिकर्त्ता (Agents) अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर जाते थे और कभी-कभी अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भी कर बैठते थे। ब्रिटिश सरकार ने लार्ड नार्थ (Lord North) के १७७३ के विनियामक अधिनियम (Regulating Act of 1773) के द्वारा पिट (Pitt) के १७८४ के भारत अधिनियम के द्वारा यह अधिकार प्राप्त कर लिया था कि वह कम्पनी के गवर्नर-जनरल और मुख्य राजनीतिक अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं करे और इस प्रकार वह उक्त कम्पनी की राजनीतिक हलचलों पर नियन्त्रण कर सके।

भारत

भारत में कुछ स्वतन्त्र देशी राजा भी थे जिनमें कुछ महत्त्वाकांक्षी, शक्ति-सम्पन्न और कम्पनी के प्रति शत्रुता का भाव रखते थे। इनमें मैसूर का टीपू सुलतान तथा कुछ मरहठा राजे विशेष उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय राजनीतिक मैदान में फ्रेंच लोग भी थे जो भारत में अपने पाँव जमाना चाहते थे और ब्रिटिश प्रभुत्व को कमजोर कर देना चाहते थे। जिस समय यूरोप में ब्रिटेन और फ्रांस के बीच युद्ध चल रहा था-उस समय विशेष रूप से फ्रेंच लोगों ने भारत से ब्रिटिश प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न किया। फ्रांस और ब्रिटेन दोनों ही देशी राजाओं का सहयोग प्राप्त करके अपना मतलब साधना चाहते थे तथा जिस सत्ता को दोनों प्रतिस्पर्द्धी यूरोपीय शक्तियाँ हस्तगत करना चाहती थीं और जिस प्रयत्न में ब्रिटेन को सफलता मिली, वह सत्ता अथवा चेष्टा वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से भारतीय प्रदेशों पर अधिकार जमा लेने की नहीं थी बल्कि वे दोनों ही (ब्रिटेन एवं फ्रांस) देशी राजाओं को अपने-अपने अप्रत्यक्ष प्रभाव में लाना चाहते थे। इसीलिए भारत की स्थिति प्रायः विषम, क्रमहीन और पेचीदा थी। किन्तु इस काल में भारत में ब्रिटिश लोगों का जो प्रभाव बढ़ा वह इसी अव्यवस्था का परिणाम था। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय न तो साम्राज्य नीति का परिणाम था, न वह ब्रिटिश सरकार द्वारा किसी सुविचारित योजना का फल था। वास्तव में ब्रिटिश सरकार ने कभी भी भारत में साम्राज्य स्थापित करने की आज्ञा नहीं दी थी और उसके अभिकर्त्ताओं ने जो कुछ किया या इस दिशा में जो कुछ हुआ वह प्रायः ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बिना बल्कि ब्रिटिश सरकार की इच्छा के विरुद्ध हुआ। १७८४ के भारत अधिनियम में तो एक धारा थी जिसने भारत में और अधिक प्रदेशों को हस्तगत करने की मनाही कर दी थी, किन्तु यद्यपि ब्रिटिश संसद् में बारम्बार भारतीय स्थिति के बारे में विरोध प्रदर्शित किया जाता रहा, तब भी प्रायः प्रत्येक गवर्नर यही समझता था कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का स्थापित करना और उसका अधिकाधिक पोषण करना अतीव आवश्यक था, ब्रिटिश सरकार तो केवल यह चाहती थी कि भारत में जो कुछ ब्रिटिश सरकार का राज्य पहले से ही स्थापित हो चुका था उसकी सम्यक् व्यवस्था बनी रहे। किन्तु जो ब्रिटिश अधिकारीगण भारत में काम कर रहे थे, यह उन्हीं लोगों का काम था कि भारत में ब्रिटिश सत्ता के पैर जमे और ब्रिटेन की स्थिति शक्तिशाली बनी। उन अधिकारियों ने बिगड़ी हुई भारतीय परिस्थितियों से लाभ उठाया तथा अपने यूरोपीय शत्रु फ्रांस की महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को धूल में मिलाने के उद्देश्य में सफलता प्राप्त की।

वारेन हेस्टिंग्ज़ (Warren Hastings) १७७२ से १७८५ तक भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर था। उसे रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) ने १८ वीं शताब्दी का सबसे महान् अंग्रेज कहा है।[1] अमेरिका के स्वातन्त्र्य-युद्ध के जमाने में भारत के देशी राजे, उनके फ्रांसीसी मित्र, दक्षिण का हैदर अली तथा उत्तर और मध्य भारत के मरहठा सरदार सबने मिलकर यह भगीरथ प्रयत्न किया कि भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़कर समुद्र में धकेल दिया जाय। किन्तु इस विषम परिस्थिति में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने ही भारत में ब्रिटिश राज्य की रक्षा की थी। उसने बंगाल में शान्ति और व्यवस्था कायम की तथा वहाँ की शासन-व्यवस्था में आवश्यक सुधार किये थे। किन्तु जब वह लौटकर स्वदेश वापस गया तो इनाम में उस पर भयंकर और लम्बा मुकद्दमा चलाया गया।

वारेन हेस्टिंग्ज़ के पश्चात् १७८६ से १७९२ तक कार्नवालिस (Cornwallis) गवर्नर रहा। उसको इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत भेजा गया था कि भारत में आक्रामक नीति न बरती जाय, किन्तु उसे भी मजबूर होकर अपनी पूर्वगामी नीति का ही अनुसरण करना पड़ा। उसने बंगाल के शासन में आवश्यक सुधार करके वारेन हेस्टिंग्ज़ के अधूरे काम को पूरा किया। वारेन हेस्टिंग्ज़ के समान ही उसको भी मैसूर के शक्तिशाली नवाब टीपू सुलतान के साथ युद्ध करना पड़ा जो पुराने शत्रु हैदरअली का पुत्र था। इस युद्ध में विजय हुई और यह विजय ग्रेट ब्रिटेन की विजय थी।

१७९८ से १८०४ तक लार्ड वेलेज़ली (Lord Wellesley) भारत में गवर्नर रहा। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की वास्तविक स्थापना वेलेज़ली ने ही की थी। जिस समय लार्ड वेलेज़ली ने भारत में १७९८ में अपना पद संभाला, वह भारत में ब्रिटिश शासन का सबसे नाजुक समय था। उस समय नेपोलियन मिस्र (Egypt) के दरवाजे तक पहुँच चुका था और इस प्रकार वह भारत के निकट आ गया था। उसी समय फ्रांसीसियों ने भारतीय देशी राजाओं से साँठ-गाँठ कर ली, अतः उस समय

1. Ramsay Muir : *The Expansion of Europe.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में ब्रिटिश हितों को भारी खतरा उत्पन्न हो गया था। किन्तु वेलेज़ली ने टीपू सुलतान को हरा दिया और बाद में उसने अपने छोटे भाई ड्यूक ऑफ वेलिंगटन (Duke of Wellington) की सहायता से मरहठों की शक्ति को भी तोड़ दिया। उसने दक्षिणी और उत्तरी-पूर्वी भारत में ब्रिटिश अधिकार बढ़ाए तथा ब्रिटिश सरकार के हित में कई नए प्रदेश जीते। उसी ने अन्तिम रूप से फ्रांस की भारतीय महत्त्वाकांक्षाओं को चूर-चूर कर दिया और भविष्य में कभी भी भारत में फ्रांसीसियों ने सिर नहीं उठाया।

१८१३ से १८२३ तक लार्ड हेस्टिंग्ज़ भारत का गवर्नर रहा। वह अग्रिम नीति (forward policy) में विश्वास करता था और वह समझता था कि भारत का हित ब्रिटिश आधिपत्य में ही है। उसने मरहठा शक्ति को सदैव के लिए समाप्त कर दिया और ब्रिटिश साम्राज्य के पैर भारत भूमि पर जमाकर रख दिए। इस प्रकार स्थानीय अव्यवस्था और फ्रांस की इंग्लैण्ड के प्रति चुनौती तथा देशी भारतीय नरेशों की ब्रिटिश सत्ता के प्रति शत्रुता के कारण एक विशाल आंग्ल-भारतीय साम्राज्य की स्थापना हुई। यदि उस चुनौती का सामना न किया जाता तो ब्रिटेन को वह स्थान छोड़कर भागना पड़ता जो उसने भारत में अपने लिए बना लिया था। इसके अतिरिक्त उसको क्लाइव (Clive) की सफलताओं से भी वंचित होना पड़ता तथा दो शताब्दियों के धैर्यपूर्ण और कठिन संघर्ष की सफलताओं से वंचित होना पड़ता। और उस चुनौती की स्वीकृति का अर्थ था प्रभाव और साम्राज्य का विस्तार। १७८५ में जिस समय वारेन हेस्टिंग्ज़ (Warren Hastings) ने भारत से विदा ली, उस समय ब्रिटिश अधिकार में केवल बंगाल का प्रान्त था, सरकार नामक समुद्री किनारे का जिला था, और मद्रास तथा बम्बई की प्रेसीडेन्सियाँ थीं। किन्तु १७८५ के चालीस वर्ष पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन के अधिकार में अवध को छोड़कर सारी गंगा की घाटी का इलाका था, मध्य भारत में विस्तृत मरहठों का भू-भाग था और प्रायः समस्त दक्षिण भारत था। लार्ड हेस्टिंग्ज़ की गर्वोक्ति को यहाँ उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

"यह मेरी गर्वोक्ति कही जा सकती है किन्तु यह वितान्त सत्य है कि हमने करोड़ों भारतीय लोगों को सुख और समृद्धि प्रदान की है। इस थोड़े से समय में भी हज़ारों ही नहीं बल्कि लाखों की संख्या में लोग ऐसी कन्दराओं और निर्जन स्थानों से निकल आए हैं, जहाँ वे वर्षों से पड़े थे। अब वे निर्भय होकर अपने पुराने त्यागे हुए गाँवों में पहुँचकर अपने खेतों पर खेती कर रहे हैं। जिन त्यागी हुई जमीनों पर वर्षों से हल नहीं चला था और जिनको केवल खूनी सैनिक घुड़सवारों के घोड़ों के खुरों ने रौंदा था, उन्हीं पर आज उनके पुराने मालिक किसान सकुशल हल चला रहे हैं।"

इतने पर भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर शिकायत कर रहे थे कि व्यर्थ ही भारत में ब्रिटिश राज्य का विस्तार किया जा रहा है।

इसी काल में इंग्लैंड ने फ्रांस से और फ्रांस के मित्रराष्ट्रों से फ्रेंच-क्रांति के काल में एवं नेपोलियन के युद्धों के काल में कई प्रदेश एवं भू-भाग जीते थे—यह ब्रिटिश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य का चौथा विकास था। सबसे लाभदायक प्रदेश तो हॉलैण्ड से छीने गए थे। उसने इंग्लैण्ड के हित में केप ऑफ गुड होप (Cape of Good Hope)[1], श्रीलंका (Ceylon) और गायना (Guiana) का भू-भाग त्याग दिया। उस समय केप ऑफ गुड होप के अन्तरीप का केवल यही महत्त्व समझा जाता था कि वह भारत के मार्ग में एक सामाजिक महत्त्व का स्टेशन है किन्तु बाद में वही बहुमूल्य सिद्ध हुआ और उसी के आधार पर दक्षिणी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। श्रीलंका से ब्रिटेन के भारतीय साम्राज्य की शोभा में वृद्धि हुई और गायना (Guiana) की प्राप्ति से ब्रिटेन को दक्षिणी अमेरिका में भी पैर टेकने को स्थान मिल गया। इंग्लैण्ड को कुछ अन्य द्वीप भी मिले जो इधर-उधर बिखरे हुए थे। उनका यह लाभ था कि या तो वे जहाज़ों के रुकने योग्य बन्दरगाहों का काम देते थे या वे निकटवर्ती किसी बड़े ब्रिटिश अधिराज्य की वृद्धि करते थे। इन द्वीपों में मुख्य ये थे—स्पेन (Spain) से प्राप्त किया गया ट्रिनिडाड (Trinidad); नाइट्स ऑफ सेंट जॉन (Knights of St. John) से प्राप्त किया गया माल्टा द्वीप, तथा फ्रांस से हस्तगत किए गए सिचेलीज़ (Seychelles), मौरीशस (Mauritius) एवं कुछ अन्य द्वीप।

फ्रेंच युद्धों के काल में ब्रिटेन की विजयें

१८२५ में ग्रेट ब्रिटेन न केवल सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति थी, बल्कि यदि रूस के साइबेरिया नामक बड़े साम्राज्य को छोड़ दिया जाय तो ब्रिटेन ही एक ऐसी शक्ति थी जिसके पास पर्याप्त और सबसे अधिक उपनिवेश थे। ब्रिटेन का साम्राज्य दूर-दूर तक फैला हुआ था और विकसित था तथा उसके पास साम्राज्य के विभिन्न भागों के बीच विस्तृत सागर थे। ग्रेट ब्रिटेन को इतना बड़ा साम्राज्य दो सुविधाओं के कारण हस्तगत हो गया था जिनका एक-दूसरे से घनिष्ठ लगाव था। ब्रिटेन की प्रथम सुविधा यह थी कि वह समुद्रों का स्वामी था। इस कारण उसने अनेक विदेशी प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था और उनको स्वयं विकसित कर लिया था; और द्वितीय सुविधा यह थी कि ब्रिटेन एक द्वीप था जिसके कारण वह यूरोप के झगड़ों में हस्तक्षेप तो करता रहता था किन्तु वह स्वयं अपनी सुविधानुसार यूरोप के झगड़ों से अलग भी रहा आता था।

नई दुनिया की खोज के पश्चात् मुख्यतः यूरोपीय देश ही उपनिवेश के स्वामी बन गए थे और इसके बाद लगभग ५० वर्षों तक भी स्थिति ऐसी ही रही। स्पेन के उपनिवेश के विद्रोह के पश्चात् अथवा नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् १८७८ की बर्लिन की काँग्रेस तथा यूरोप के राजनीतिज्ञों का ध्यान मुख्यतः यूरोपीय घटनाओं की ओर ही केन्द्रित रहा। यूरोप का ध्यान पैरिस (Paris), बर्लिन (Berlin), अथवा वियना

१८२५-७८

---

१. ग्रेट ब्रिटेन ने हालैंड (Holland) को १८१५ में ६० लाख पौण्ड देकर आशा अन्तरीप (Cape of Good Hope), श्रीलंका और डिमेरारा (Demerara) प्राप्त किए थे। ब्रिटेन ने जावा (Java) को भी पुनः प्राप्त कर लिया जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वीर सेनानी सर स्टेम्फर्ड रैफल्स (Sir Stamford Raffles) ने युद्ध करके विजय किया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Vienna) की घटनाओं की ओर अधिक रहता था और उसे कनाडा (Canada), ऑस्ट्रेलिया (Australia), अफ्रीका (Africa) अथवा भारत की घटनाओं से कुछ भी मतलब नहीं था। वास्तव में यूरोप की दिलचस्पी साम्राज्य की ओर न थी बल्कि उसकी रुचि उदारवाद (Liberalism) अथवा राष्ट्रीयता के विचारों के प्रचार की ओर विशेष रूप से थी। यूरोप केवल यूरोपीय दृष्टिकोण से यूरोपीय घटनाओं को ही कुछ महत्त्व देता था। यूरोप की बड़ी शक्तियों की नीतियाँ तथा मेटरनिक (Metternich), कैवूर (Cavour), बिस्मार्क (Bismarck) आदि की रुचियाँ केवल इटली, स्पेन, ग्रीस और पोलैण्ड की क्रांतियों के फल के आधार पर बनती थीं, अथवा वे फ्रांस, जर्मनी, ऑस्ट्रिया और ऑस्ट्रिया-सार्डीनिया या ऑस्ट्रिया-प्रशा की क्रान्तियों या उनके संघर्षों के आधार पर बनती थीं, अथवा वे बल्कान क्षेत्र से रूस की हलचलों या भूमध्य सागर में फ्रांस की अग्रिम कार्यवाहियों के आधार पर बनती थीं। इस समय (१८२५-७८) में तो केवल उन्हीं राज्यों ने साम्राज्य बढ़ाने और उपनिवेश विकसित करने एवं बसाने की ओर रुचि रखी जिनको यूरोपीय घटनाओं में विशेष दिलचस्पी नहीं रही थी—इनमें एक तो संयुक्त राज्य अमेरिका था जो यूरोप से दूर भी था और जो भिन्न भाषा में सोचता था, दूसरा देश रूस था जो यूरोप से दूर के छोर पर स्थित था; तीसरा फ्रांस था जो कभी-कभी अपनी आवश्यतानुसार अपनी प्रजा का ध्यान दूर के मामलों में ले जाने का प्रयत्न किया करता था और अन्तिम ऐसा देश ग्रेट ब्रिटेन था।

तत्कालीन मुख्य यूरोपीय समस्याओं की ओर ग्रेट ब्रिटेन प्रायः तटस्थ था। वह क्रीमिया के युद्ध में फँसा हुआ था इसलिए उसने ग्रीस और इटली की स्वतन्त्रता की ओर कम ध्यान दिया और राष्ट्रीय तथा लोकतंत्रात्मक संघर्ष की धारा ने उसको बिल्कुल प्रभावित नहीं किया; युद्ध और क्रान्ति की ओर उसने प्रायः बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। वास्तव में ग्रेट ब्रिटेन अलग तटस्थ भाव से खड़ा रहा। उसने युद्ध में स्वयं भाग नहीं लिया किन्तु वह दूर से अपने हितों को ताकता रहा; वह अपनी भाग्य-रूपी नौका का स्वय कर्णधार बना रहा; वह समुद्रों का स्वामी बना रहा; वह सब झगड़ों से स्वतन्त्र और मुक्त रहा ताकि वह अपनी समस्याओं को स्वयं निबटा सके अथवा अपना व्यापार और साम्राज्य बढ़ा सके। इन समस्याओं में से आन्तरिक सुरक्षा तथा विदेशी व्यापारों पर ग्रेट ब्रिटेन ने विशेष ध्यान दिया, किन्तु साम्राज्य के विस्तार की ओर ब्रिटेन की रुचि उतनी न रही। वास्तव में इस काल में ब्रिटेन की रुचि संसदीय शासन के सुधार में या स्थानीय स्वशासन के सुधार में या मताधिकार की वृद्धि में या देश की वित्तीय साधनों की वृद्धि में या मुक्त व्यापार के बढ़ाने में या श्रमिक व्यवस्थापन अथवा आयरलैण्ड की समस्याओं में अथवा धार्मिक प्रश्नों में; शिक्षा के सुधारों में अथवा सामाजिक कल्याणकारी कार्यों में लगी रही। और जब कभी ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के सम्मुख उपनिवेशों से सम्बन्धित प्रश्न आते थे, तो ऐसे प्रश्नों से वे ऊब जाते थे। सत्य यह है कि उस काल के प्रथम कोटि के राजनीतिज्ञों में कोई ऐसा राजनीतिज्ञ या नेता नहीं था जो साम्राज्य-वादी जहनियत रखता हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई बार ऐसे अवसर आए जबकि ब्रिटिश साम्राज्य ने सरकार के विस्तार को और नए उपनिवेश बसाने को अस्वीकृत कर दिया। फिर भी एक के बाद दूसरा उपनिवेश ब्रिटेन के हाथों लगता ही रहा। इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य बिना किसी क्रम के और बिना प्रयत्नों के अनायास ही बिना निश्चित नीति के बढ़ता ही रहा।

कनाडा

कनाडा (Canada) के मानचित्र में जिस लाल रंग से ब्रिटिश साम्राज्य का बोध कराया जाता है, वह धीरे-धीरे समस्त आधुनिक कनाडा के ऊपर छा गया। जहाँ पहले के मानचित्रों में वह रंग केवल थोड़े से भू-भाग पर दिखाया जाता था जो सेंट लारेंस (St. Lawrence) नदी के आस-पास बिखरा हुआ था अब वही ब्रिटिश प्रभुत्व का द्योतक रंग उस सारे भू-भाग पर छाया हुआ है जो सेंट लारेन्स नदी से प्रशान्त सागर तक चला गया है। शनैः-शनैः कनाडा और संयुक्त राज्य के बीच सीमाओं सम्बन्धी सारे प्रश्न तय कर लिए गए। हडसन बे (Hudson Bay) की प्रसिद्ध फ़र कम्पनी ने अपना व्यापार-क्षेत्र बढ़ा दिया और बाद में मॉन्ट्रियल (Montreal) की नार्थवेस्ट कम्पनी भी उसी में मिल गई। प्रारम्भ में १८१२ में सेल्कर्क की हाईलैण्ड कॉलोनी (Selkirk's Highland Colony), रेड नदी (Red River) पर बसाई गई थी किन्तु बाद में मध्य के मैदानों में भी उपनिवेशी पहुँचे। इंग्लैंड से लगातार उपनिवेशी कनाडा की ओर गमन करते रहे जिससे कनाडा की जनसंख्या निरंतर बढ़ती रही। चूंकि नई दुनिया में निरन्तर नए प्रदेशों की खोजें हो रही थीं इसलिए लगातार कनाडा और संयुक्त राज्य की ओर लोग जाते रहे और पश्चिमी किनारों पर प्रशान्त सागर के किनारे पर अधिकाधिक संख्या में बसने लगे। जब ब्रिटिश कोलम्बिया नामक उपनिवेश में सोने की खानों का पता लगा तब तो बहुत बड़ी संख्या में उपनिवेशी इधर आए और जब इन नए उपनिवेशों में सड़कों, नहरों, रेलों का निर्माण हुआ तब और अधिक जनसंख्या बढ़ी और कनाडा की उन्नति हुई।

ऑस्ट्रेलिया

ऑस्ट्रेलिया में बन्दियों और अपराधियों की बस्तियाँ कायम करके और नए-नए प्रदेशों की खोज करके ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हुआ था। १८४० तक बन्दियों और अपराधियों की बस्तियाँ न्यू साऊथ वेल्स (New South Wales) और विक्टोरिया (Victoria) में बसाई जाती रहीं और १८५३ तक टस्मानिया (Tasmania) में ऐसी ही बस्तियाँ बसाई जाती रहीं। ब्रिटेन में कुछ उपनिवेशी संस्थाएँ स्थापित हुईं जिन्होंने पश्चिमी और दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया में भी बस्तियाँ बसाईं। जब ऑस्ट्रेलिया में ताँबे और सोने की खानों का पता लगा तब तो बहुत बड़ी संख्या में उपनिवेशी ऑस्ट्रेलिया की ओर आकर्षित हुए, यहाँ तक की दूर-दूर तक उपनिवेश ही उपनिवेश बसे हुए दिखाई देते थे और इस प्रकार समस्त महाद्वीप पर ग्रेट ब्रिटेन का अधिकार हो गया।

ब्रिटिश सरकार के ऊपर देश की नई उपनिवेशी संस्थाएँ निरन्तर दबाव डाल रही थीं कि अधिकाधिक संख्या में लोगों को न्यूज़ीलैंड (New Zealand) में बसने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये भेजा जाय और इस प्रकार उस देश पर अधिकार किया जाय। किन्तु ब्रिटिश सरकार उस समय तक न मानी जब तक कि यह डर न मालूम हुआ कि शीघ्र ही न्यूजीलैण्ड में फ्रांस पहल करने वाला है और जब तक ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास न हो गया कि यदि न्यूजीलैण्ड पर उसने अपने अधिकार की घोषणा न की तो सम्भावना है कि वे ब्रिटिश व्यापारी और उपनिवेशी जो न्यूजीलैण्ड में पहले से ही पहुँच चुके थे काबू में न रखे जा सकेंगे। अतः अन्त में ब्रिटिश सरकार ने न्यूजीलैण्ड पर अपना अधिकार घोषित कर दिया। १८४० में दोनों द्वीपों पर ब्रिटिश पताका फहराने लगी। वैटांगी (Waitangi) की सन्धि के द्वारा मावरी (The Maori) ने मान लिया कि न्यूज़ीलैण्ड पर मलका विक्टोरिया (Queen Victoria) का सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्य रहेगा किन्तु उनको (The Maori) उनकी जमीनों और जंगलों तथा मछलीगाहों (Fisheries) से वंचित नहीं किया जायेगा। इस समझौते के बावजूद मावरी लोगों (The Maori) को यह अप्रिय लगा कि बहुत बड़ी जनसंख्या में ब्रिटिश उपनिवेशी उनके देश में घुसते आ रहे हैं, जो विशेष रूप से सोने की खानों की खोज तथा भेड़ पालने एवं कृषि कर्म करने की व्यापक सम्भावनाओं से विशेष रूप से न्यूजीलैण्ड की ओर आकृष्ट हो रहे थे। १८४० के बाद केवल अगले चालीस वर्षों में जहाँ न्यूजीलैण्ड पर ब्रिटिश अधिकार होते समय केवल दो हजार ब्रिटिश उपनिवेशी थे, १८८० के आस-पास उसी द्वीप में लगभग ५ लाख ब्रिटिश लोग पहुंच चुके थे। इन चालीस वर्षों के काल में गोरे उपनिवेशियों और काले मावरियों में प्रायः जातीय संघर्ष होते रहे। कई बार इन संघर्षों का कारण यह भी रहता था कि ब्रिटिश उपनिवेशी प्रायः मावरियों को सताते थे। किन्तु अन्त में मावरी लोगों का विरोध समाप्त कर दिया गया।

न्यूजीलैण्ड

दक्षिणी अफ्रीका में दुहरी समस्या थी। एक ओर तो न्यूजीलैण्ड के समान देशी जातियाँ भी दक्षिणी अफ्रीका में रहती थीं। दूसरी ओर कनाडा के समान दक्षिणी अफ्रीका में स्वयं श्वेत जातियों में संघर्ष था। एक ओर बुशमैन (Bushmen) या झाड़ियों में रहने वाली जातियाँ थीं, हॉटेण्टोट (Hottentots) थे, काफिर (Kafirs) थे, जूलू लोग (Zulus) थे, और इसी प्रकार की अन्य जातियाँ थीं जो दक्षिणी अफ्रीका की ओर अपना प्रसार चाहती थीं और जो जमीनों पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिये अंग्रेजों और अन्य यूरोपियनों से लड़ रही थीं। दूसरी ओर दो श्वेत जातियाँ अन्तरीप (Cape) के उत्तर की ओर फैल रही थीं। इन लोगों में से एक तो डच बोअर (Dutch Boer) किसान थे जो अकेले थे, अर्द्ध-जंगली थे और अर्द्ध खानाबदोश थे। ये डच बोअर जाति के लोग गुलामों के स्वामी थे, और वे प्राचीन अफ्रीकी निवासियों के साथ बर्बरता का व्यवहार करते थे। दूसरी श्वेत जाति के लोग अंग्रेज थे जिनमें से कुछ सैनिक थे, कुछ ब्रिटिश अधिकारी थे और कुछ ब्रिटिश उपनिवेशी थे जो सरकारी सहायता प्राप्त करके दक्षिणी अफ्रीका में जा बसे थे। इस प्रकार ब्रिटिश दक्षिणी अफ्रीका के इतिहास की दो मुख्य विशेषताएँ थीं, एक

दक्षिणी अफ्रीका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सरहदी लड़ाइयाँ और दूसरी थी महान् प्रवास (The Great Trek)। स्पष्ट है कि यूरोपियन लोगों और काफिरों का मुकाबिला ही क्या था, अतः ब्रिटिश सरकार की अतीव अनिच्छा के बावजूद काफ़िरों की पराजय हुई और ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हुआ। किन्तु १८३६-४० के चार वर्षों में लगभग ७,००० डच लोगों को ब्रिटिश दक्षिणी अफ्रीका से हटना पड़ा था और उन्हें उत्तर की ओर ऑरेन्ज (Orange) और वाल (Vaal) नदी के मैदानों में शरण लेनी पड़ी थी। इन स्थानों तक अभी श्वेत जातियों की पहुँच नहीं हुई थी और डच लोगों को देशी लोगों ने पर्याप्त कष्ट दिये थे। निश्चित रूप से इस महान् प्रवास (The Great Trek) के कारण भी ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार ही हुआ था। किन्तु बोअर लोगों को ब्रिटिश सरकार से यह शिकायत रही कि उन्होंने बोअरों (Boers) की हॉटेण्टोट (Hottentots) से और काफ़िरों के अत्याचार से भी रक्षा नहीं की। उनको यह भी शिकायत थी कि अंग्रेजों ने भी अपनी आंखों के सामने अपने ईसाई पादरियों को देशी लोगों में बोअरों के विरुद्ध प्रचार करने से नहीं रोका और पादरी लोग बोअरों के खिलाफ जो कुछ कहते थे वे उसको चुपचाप सुनते रहे। सबसे अधिक शिकायत उसको इस बात की थी कि अंग्रेजों ने गुलाम-प्रथा को बन्द करके बोअरों को भारी आर्थिक हानि पहुँचाई थी। इसलिये डच बोअरों ने अंग्रेजी साम्राज्य से हटकर उत्तर में नैटाल की ओर जाकर ऑरेन्ज नदी के आस-पास अपना उपनिवेश बसाना निश्चित किया। इससे अंग्रेज सरकार के सामने एक नई समस्या खड़ी हो गई। उसको भय हुआ कि कुछ तो शत्रु राज्य पहले ही से ब्रिटिश दक्षिणी अफ्रीका के आस-पास थे और दूसरा शत्रु बोअर राज्य बन जायगा। डच बोअरों के पास सामुद्रिक शक्ति भी थी और वे नैटाल (Natal) में फैले हुए थे। इस प्रकार सम्भवतः नैटाल, अन्तरीपीय उपनिवेश के लिये खतरा बन सकता था। ब्रिटेन ने अस्थिर और डाँवाँडोल-सी तथा कुछ भड़काने वाली नीति का आश्रय लिया। कुछ समय तक बोअरों को स्वतन्त्र रहने दिया गया। इसके पश्चात् १८४२ में ब्रिटिश सरकार ने नैटाल पर अपना अधिकार बताया और १८४८ में उसने ऑरेन्ज नदी की बस्तियों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। इसके पश्चात् बोअर लोग पुनः वहाँ से हटकर और ऊपर उत्तर की ओर ट्रान्सवाल (Transvaal) में जा बसे। अब ग्रेट ब्रिटेन ने अपनी नीति में परिवर्तन किया। उसने ट्रान्सवाल की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार कर लिया और ऑरेन्ज नदी के उपनिवेशों को बोअरों के हवाले कर दिया यद्यपि नैटाल (Natal) उनको नहीं दिया गया। ऑरेन्ज नदी के स्वतन्त्र उपनिवेशों का नाम ऑरेंज फ्री स्टेट (Orange Free State) रख दिया गया। किन्तु १८७० के बाद एक बार पुनः ब्रिटेन ने अपना निर्णय बदला। उस समय तक दक्षिणी अफ्रीका में अंग्रेजों का शासन पश्चिम में ऑरेन्ज नदी तक फैला हुआ था तथा पूर्व में नैटाल (Natal) के उत्तरी किनारे तक फैला हुआ था। किन्तु बोअर लोगों ने दक्षिणी अफ्रीका में श्वेत लोगों का राज्य लिम्पोपो (Limpopo) नदी तक बढ़ा लिया था जो अन्तरीप से प्रायः १,००० मील दूर तक फैला हुआ था।

१८२५ के पश्चात् के ५० वर्षों में नी भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व उतनी ही तीव्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति से बढ़ा जितनी तीव्र गति से १८२५ से पूर्व की अर्द्ध-शताब्दी में बढ़ा था।

भारत

ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को सदैव सोने की चिड़िया समझा गया है। ब्रिटिश भारत में महान् सम्पत्ति थी और उसमें व्यापार की अपार सुविधाएँ थीं। और चूंकि भारत मे देशी जातियाँ ही रहती थीं जिनमें अभी तक स्वतन्त्रता की भावना नहीं थी, अतः ऐसा समझा जा रहा था कि भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य पर्याप्त समय तक चलेगा। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि उस समय भारत पर अधिकार बनाये रखना ब्रिटिश हितों के अनुकूल माना जा रहा था। किन्तु चूंकि भारत में श्वेत जातियों का बसाया जाना सम्भव नहीं था इसलिए भारत के लोगों को काबू में रखने के लिए यह आवश्यक था कि या तो हथियारों के बल पर उनको दबाया जाता रहे या फिर उनके हृदयों को जीता जाय। निस्सन्देह भारतीय लोगों के हृदयों को भी कई बार जीता गया; और कई बार ऐसा हुआ कि किसी-न-किसी भारतीय देशी राज्य ने स्वयं ही अपना अधिकार ब्रिटिश सरकार के हितों में त्याग दिया। ग्रेट ब्रिटेन ने भी भारतीय प्रजा की उन्नति में वास्तविक रुचि दिखाई और उसकी उन्नति को अपना उत्तरदायित्व माना। किन्तु उस काल में समूचे भारत में राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक अस्त-व्यस्तता छायी हुई थी, अतः सर्वसाधारण की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। यह स्वीकार करना ही होगा कि ब्रिटेन का भारतीय साम्राज्य हथियारों के बल पर ही जीता गया था और तलवारों की नोक पर ही साम्राज्य का पोषण हो रहा था। इंग्लैण्ड ने भारत में व्यापार करने के बहाने प्रवेश किया था। किन्तु वह वहाँ पहुँचकर प्रादेशिक विजयों में लग गया, यद्यपि यह भी उल्लेख्य है कि १८५७ के गदर के समय तक जिन सेनाओं के बल पर भारत में ब्रिटिश सत्ता का रक्षण हुआ था उनमें अधिकतर सैनिक भारतीय ही थे।

किन्तु १९ वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में अत्यधिक विस्तार हुआ था और यह सब युद्धों और विजयों का परिणाम था। लार्ड वेलेजली (Lord Wellesley) ने फ्रांस की भारतीय महत्त्वाकाक्षाएँ धूल में मिला दी थीं किन्तु मध्य एशिया में भारत के उत्तर-पश्चिमीय छोर पर रूसी साम्राज्य विस्तार कर रहा था। इससे कुछ ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और भारत के गवर्नरों को भय लगने लगा। अफगानिस्तान (Afghanistan) में रूसी प्रभाव-क्षेत्र को सीमित करने के लिए ब्रिटेन द्वारा कार्यवाही अफ़गान युद्धों का कारण बनी जो १८२७ से १८४३ तक चले और पुनः उस कार्यवाही के कारण ब्रिटेन के सिंध (Sind) प्रान्त और पंजाब प्रान्त से भी सम्बन्ध खराब हो गये। उक्त दोनों प्रान्त उत्तरी भारतीय सीमा के प्रान्त थे। १८४३ में सिंध विजय कर लिया गया और १८४९ में पंजाब विजय कर लिया गया और १८२४-२६ के युद्धों में तथा पुनः १८५२ के युद्ध के कारण ब्रिटेन को बर्मा (Burma) का भारी भू-भाग प्राप्त हुआ। लार्ड डलहौज़ी (Lord Dalhousie)[1] ने निश्चित किया कि जिन सामन्ती राजाओं तथा नवाबों के कोई सन्तान न होगी उनके

१. लार्ड डलहौजी (Lord Dalhousie) १८४८-५६ तक भारत का गवर्नर जनरल था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के भाग बन जायेंगे। इस आज्ञा के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन को सतारा, करौली और नागपुर के राज्य प्राप्त हो गये। इसके अतिरिक्त दूषित शासन के बहाने अवध का प्रान्त १८५६ में हस्तगत कर लिया गया। लार्ड डलहौजी (Lord Dalhousie) ने लिखा था—"हमारी सरकार ईश्वर और मनुष्य की निगाहों में दोषी ठहराई जाती यदि हमने ऐसे दोषी शासनों को और अधिक दिनों तक टिकने दिया होता जिनसे लाखों-करोड़ों मनुष्यों को अपार कष्ट थे।"

डलहौजी के शासन-काल में भी उसी प्रकार प्रजा के कल्याण की इच्छा निरन्तर ब्रिटिश सरकार के हृदय में बनी रही जिस प्रकार कि लार्ड विलियम बैंटिंक (Lord Willian Bentinck)[1] के शासन-काल में सती[2] की अमानुषिक प्रथा तथा ठगी[3] को रोकने के प्रयत्न किए गए थे। लार्ड डलहौजी ने भारत में अनेक सुधार किए। उसने भारत में नई सड़कें, बन्दरगाहें, रेलें, तार व्यवस्था और स्कूल बनवाये, मानो वह इंग्लैण्ड के व्यापार आयोग (Board of Trade) का सदस्य था। किन्तु उसकी नीति के परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश सामाज्य का अत्यधिक विस्तार हुआ और भारतीय लोगों की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँचा[4]। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो प्राचीन भारतीय सभ्यता के स्थान पर ब्रिटिश सभ्यता को भारतीयों के ऊपर जबर्दस्ती लादा जा रहा था।

डलहौजी (Dalhousie) के शासन और उससे पूर्व के दस वर्षों की ब्रिटिश नीति का परिणाम भारतीय गदर था। यह विद्रोह १८५७ में प्रारम्भ हुआ और वर्ष के अन्त तक उसको दबा भी दिया गया। अन्त तक यह सैनिकों का विद्रोह ही बना रहा किन्तु यह अवध, दिल्ली और रुहेलखण्ड के भागों में लोकप्रिय विद्रोह का रूप धारण कर गया। यद्यपि पंजाब के सिक्खों को ब्रिटिश सरकार ने हाल में ही जीता था फिर भी वे शान्त रहे और विद्रोह केवल उत्तरी गंगा की घाटी तक ही सीमित रहा।

१८५७ के विद्रोह के पश्चात् भारत सरकार का स्वरूप ही बदल गया। पुरानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी से उसके सारे कृत्य छीन लिये गये और अन्त में उसको समाप्त कर दिया गया। उक्त कम्पनी की सेना, उसका समस्त प्रशासन और उसके अन्य सभी कर्त्तव्यों को ब्रिटिश सरकार ने अपने प्रबन्ध में ले लिया और पुनः ब्रिटिश सरकार ने

---

१. लार्ड विलियम बैंटिंक (Lord William Bentinck) १८२८-३५ तक भारत का गवर्नर-जनरल था।

२. सती (Suttee) प्रथा के अनुसार पति के मर जाने पर विधवा स्त्री को पति के साथ उसी की चिता पर जलाया जाता था।

३. ठगी एक अर्द्ध-धार्मिक प्रथा थी जिसके अनुसार साधुओं के वेश में ठग लोग अबोध नागरिकों की गला घोटकर हत्या कर दिया करते थे।

४. भारत सरकार के अभिलेखों की खोज-पड़ताल करने पर ज्ञात हुआ कि भारतीय सिपाहियों के इस आरोप में कुछ सत्य अवश्य था कि नये कारतूसों के बनाने में गाय और सूअर की चर्बी का प्रयोग होता था। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica) में भारत (India) के सम्बन्ध में लेख पढ़िये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे कृत्य भारत-मंत्री (Secretary of State for India) तथा उसकी सहायता करने वाली एक परिषद् को सौंप दिये। इस व्यवस्था के पश्चात् भारत में बीस वर्षों तक पूर्ण शान्ति रही। देशी राज्यों को हड़पने की नीति को त्याग दिया गया किन्तु भारतीय साधनों का आन्तरिक विकास निरन्तर होता रहा। १ जनवरी, १८७७ को भारत में पुरानी मुगल राजधानी दिल्ली में एक शाही दरबार आयोजित किया गया जिसमें सम्राज्ञी विक्टोरिया (Queen Victoria) को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया गया।

इस प्रकार इस काल में कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का निरन्तर विस्तार हुआ। चीन में भी ब्रिटिश साम्राज्य के पैर जमने प्रारम्भ हुए। चीन में ब्रिटेन की घुस-पैठ का वर्णन अन्यत्र किया जायगा।[1]

साम्राज्य के सम्बन्ध में बदले हुए एवं उदार विचार

तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य के विकास का एक और भी पहलू था जो साम्राज्य के विस्तार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस काल में ब्रिटेन के सर्वसाधारण और ब्रिटिश सरकार के विचारों में उपनिवेशों के सम्बन्ध में भारी परिवर्तन हुआ था और साम्राज्य के प्रबन्ध सम्बन्धी सिद्धांतों में भी सुधार दृष्टिगोचर हो रहा था। किन्तु यह तो बताना सम्भव नहीं है कि उस काल के विचारों और नीति-सम्बन्धी कृत्यों में सदैव अनुरूपता और समानता रही। यद्यपि बार-म्बार यही घोषणा की जाती थी कि ब्रिटिश सरकार और अधिक साम्राज्य-विस्तार नहीं चाहती, फिर भी साम्राज्य का विस्तार निरन्तर होता ही रहा, उसी प्रकार उपनिवेशों के सम्बन्ध में भी प्रायः ऐसी नीतियों का आश्रय लिया जाता रहा जो कभी-कभी एक दूसरे के विरुद्ध होती थीं। इससे सरकार की नीति का स्वरूप प्रायः अस्थिर और परस्पर-विरोधी प्रतीत होता था। फिर भी शनैः-शनैः विभिन्न विचारों वाले तत्त्वों के बीच से एक नई और उदार साम्राज्यवादी नीति का उदय हुआ।

मुक्त व्यापार

सबसे प्रथम, साम्राज्य-सम्बन्धी नीति में परिवर्तन मुक्त व्यापार (Free Trade) की मान्यताओं में दृष्टिगोचर हुआ। इससे पुरानी व्यापार पद्धति को भारी आघात पहुँचा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक प्रायः उन समस्त समुद्र-व्यापार-सम्बन्धी अधिनियमों को समाप्त कर दिया गया जो अमेरिकी उपनिवेशों को सदैव विशेष अप्रिय लगे थे। अब इंग्लैण्ड और उसके उपनिवेशों के बीच व्यापार उन्हीं शर्तों पर होने लगा जिन शर्तों पर कि ब्रिटेन का व्यापार अन्य स्वतन्त्र देशों से होता था।

मुक्त व्यापार के कारण ब्रिटेन को अब अपने उपनिवेशों से उतना आर्थिक लाभ

---

१. अध्याय ११ देखिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहा था जितना कि पहले था ; परन्तु अब उपनिवेशों का मूल्य इसलिए बढ़ गया कि उनमें इंग्लैण्ड के दुःखी मजदूर और कारीगर जाकर बस सकते थे क्योंकि पितृ देश में आर्थिक अवसाद था। जैसा कि बताया भी जा चुका है क्रमपूर्ण उपनिवेशीकरण की दिशा में कई योजनाएँ बनीं और उन योजनाओं के अनुसार सफल उपनिवेशीकरण की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई। इस सम्बन्ध में कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में सफल प्रयोग किए गए। इन योजनाओं की सफल क्रियान्विति के साथ एडवर्ड गिबन वेकफील्ड (Edward Gibbon Wakefield) नाम जुड़ा हुआ है। किन्तु इस प्रकार के नियन्त्रित तथा सहायता-प्राप्त उपनिवेशीकरण के लिए यह आवश्यक था कि उन अविकसित जमीनों या प्रदेशों पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण रहे जिन्हें उपनिवेशियों को सस्ती कीमतों पर दे दिया गया था। किन्तु जब स्वयं उपनिवेशों को ही जमीनें उठा देने का अधिकार मिल गया तभी क्रमपूर्ण उपनिवेशीकरण का भी अन्त हो गया।

क्रमपूर्ण उपनिवेशीकरण

तृतीयतः, आन्तरिक मामलों में जिस नई मानवतावादी दयाभावनापूर्ण नीति द्वारा शासन होता था, वहीं कल्याणकारी और समाजवादी भावना साम्राज्य के प्रशासन में भी दिखाई पड़ने लगी। इस नयी मानवतावादी भावना का स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि १८३३ का दासता अधिनियम (Slavery Act) तोड़ दिया गया, और इसके लिए ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश प्रजा ने अत्यन्त विषम आर्थिक अवसाद के समय भी २० करोड़ पौंड केवल इसलिए दिये ताकि समस्त ब्रिटिश साम्राज्य में से दास-प्रथा उठा दी जाय। किन्तु ब्रिटेन की इस दयालुता को किसी ओर भी नहीं सराहा गया। न तो वैस्ट इण्डीज (West Indies) के उपनिवेशों ने इसे अच्छा समझा, न दक्षिणी अफ्रीका के उन कृषि-कर्म करने वाले मालिकों ने ही दास-प्रथा का अन्त करना उचित समझा जिनके नीचे दास लोग कार्य करते थे। सत्य यह है कि ब्रिटेन की दास-प्रथा-विरोधी नीति के कारण ही डच बोअर (Dutch Boers) लोगों ने ब्रिटिश प्रभुत्व को त्यागने का उपक्रम किया था।

मानवतावादी और दयालु भावना

इसी मानवतावादी और दयापूर्ण भावना से प्रेरित होकर ही साम्राज्य की गैर-ईसाई जातियों में ईसाई धर्म-प्रचारकों को बड़ी संख्या में भेजा गया था। वास्तव में चूंकि ब्रिटिश सरकार भारत के देशी लोगों को सभ्य बनाना अपना उत्तरदायित्व समझती थी और चूंकि भारत की पिछड़ी जातियों की रक्षा का भार ब्रिटेन अपने सर पर समझता था, इसलिए उसने ईसाई धर्म प्रचारकों को पिछड़े लोगों में सभ्यता और शिक्षा फैलाने के उद्देश्य से भारत भेजा।

अन्ततः, उपनिवेशों के प्रति बदला हुआ और मानवतावादी दृष्टिकोण इस तथ्य से भी प्रकट होता था कि अब उपनिवेशों को भी स्वशासन की दिशा में तैयार किया जा रहा था। तत्कालीन व्हिग (Whigs) और उदार (Liberals) दल मुक्तकंठ से बारम्बार कह रहे थे कि उपनिवेशों को स्वशासन दे दो। वास्तव में कनाडा के राजनीतिक संकट ने भी उनको यही

उपनिवेशों में स्वशासन की लहर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा दी थी कि ब्रिटिश अधिराज्यों अथवा डोमिनियनों को अविलम्ब स्वशासन दे दिया जाय।

कनाडा

१७७१ के पिट (Pitt) के कनाडा अधिनियम (Canada Act) के द्वारा अंग्रेज बहुल-प्रान्त दक्षिणी कनाडा को फ्रेंच-बहुल प्रान्त से अलग कर दिया गया और दोनों भागों में प्रतिनिधि शासन का सूत्रपात कर दिया गया यद्यपि दोनों का शासन प्रतिनिधि होते हुए भी उत्तरदायी न था। वास्तव में इन दोनों भागों में कुछ इस प्रकार के शासन का सूत्रपात किया गया था, जैसा कि क्रान्ति से पूर्व अमेरिका की बस्तियों में पाया जाता था अथवा जैसा शासन कि स्टुअर्ट राजाओं के अधीन इंग्लैण्ड में प्रचलित था। यद्यपि कॉमन सभा (House of Commons) निर्वाचित होकर आती थी किन्तु उसका नामांकित (Nominated) कार्यकारिणी परिषद् के ऊपर बिल्कुल नियन्त्रण नहीं था; और उपर्युक्त दोनों स्थानों पर व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में बारम्बार झगड़े और कलह होते रहते थे, विशेषकर वित्त के नियंत्रण के प्रश्न पर क्योंकि १८१२ के आंग्ल-अमेरिकी युद्ध के कारण दोनों ओर बहुत व्यय हो रहा था। फ्रेंच-बहुल दक्षिणी कनाडा में जातिगत प्रश्न के आधार पर स्थिति बहुत ही खराब हो गई थी, क्योंकि जहाँ निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा में अधिकतर लोग फ्रांसीसी थे, नामांकित कार्यकारिणी परिषद् में सभी अंग्रेज थे।

विद्रोह

इसी व्यापक असन्तोष ने अन्त में राजनीतिक संकट का रूप धारण कर लिया। कनाडा के दोनों प्रान्तों में विद्रोह की ज्वाला फूट पड़ी। उत्तरी कनाडा के विद्रोह का नेतृत्व मेकेन्ज़ी (Mackenzie) कर रहा था किंतु दक्षिणी कनाडा का विद्रोह पैपीन्यू (Papineau) के हाथों में था। ब्रिटिश साम्राज्य में उपनिवेशों द्वारा यह द्वितीय विद्रोह था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अमेरिका की स्वतन्त्रता के इतिहास की पुनरावृत्ति होने जा रही है। आम लोगों की यह धारणा बन चुकी थी कि ब्रिटेन के उपनिवेश शीघ्र ही छिनने वाले हैं।

इस समय इंग्लैण्ड में व्हिग (Whigs) सरकार थी जिसका नेता लार्ड मेल्बोर्न (Lord Melbourne) था। उसने तय किया कि लार्ड डरहम (Lord Durham) को कनाडा का उच्चायुक्त (High Commissioner) बनाकर भेजा जाय। लार्ड डरहम लार्ड ग्रे (Lord Grey) का दामाद था और उस समय वह व्हिग दल (Whig Party) का सबसे योग्य और सबसे उदार व्यक्ति था। हँसी में लोग उसको "रैडीकल जैक" (Radical Jack) कहा करते थे। लार्ड डरहम ने अपने साथ दो प्रमुख साम्राज्यवादियों को भी लिया जिनमें एक तो चार्ल्स बुलर (Charles Buller) था तथा दूसरा एडवर्ड गिब्बन वेकफ़ील्ड (Edward Gibbon Wakefield) था। वेकफ़ील्ड एक प्रसिद्ध पुस्तक का लेखक भी था जिसका नाम *A View of the Art of Colonization* था।

डरहम (Durham) ने कनाडा पहुँचकर देखा कि उस देश के विद्रोह भयंकर नहीं थे अतः उन्हें शीघ्र ही दबा दिया गया। किन्तु जब उसने कुछ विद्रोहियों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध कठोर कार्यवाही की और उनको बर्मुदा द्वीपों (Bermudas) में निर्वासित करने की आज्ञा जारी कर दी तो ब्रिटिश संसद् में इस कार्य-

लार्ड डरहम

वाही का कठोर विरोध किया गया जिसके फलस्वरूप उसको त्यागपत्र देना पड़ा। किन्तु लार्ड डरहम ने स्वदेश लौटने के पहले ही अपनी रिपोर्ट के लिए पर्याप्त सामग्री और तथ्य एकत्रित कर लिए थे। वास्तव में डरहम की रिपोर्ट आधुनिक साम्राज्यवादियों की पाठ्य-पुस्तक बन गई है और निस्संदेह यह औपनिवेशिक शासन के ऊपर सर्वोत्कृष्ट साहित्य प्रस्तुत करती है।

लार्ड डरहम की रिपोर्ट का सार यह था कि उसने कनाडा की दो मुख्य बीमारियों की शिनाख्त की और उन दोनों बीमारियों के दो इलाज तजवीज किए। कनाडा की एक बीमारी वैधानिक थी अर्थात् प्रान्तों को अपनी-अपनी कार्यपालिकाओं के ऊपर पूरा नियंत्रण मिलना ही चाहिए, अर्थात् प्रान्तों में ब्रिटिश शासन के समान पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना होनी चाहिए।[1] कनाडा की दूसरी बीमारी जातीय बीमारी थी। लार्ड डरहम ने लिखा है—"मैंने समझा था कि कनाडा में सरकार और शासितों के बीच संघर्ष होगा, किन्तु मैंने देखा कि एक ही सरकार की दो राष्ट्रीयताएँ आपस में लड़ रही हैं।" इस समस्या के समाधान के लिए डरहम ने प्रस्ताव किया कि दोनों प्रान्तों का संघ बने ताकि बढ़ती हुई ब्रिटिश जनसंख्या में फ्रेंचजन समा जाएँ।

स्वशासन (१८४०)

इन्हीं आधारों पर ब्रिटिश संसद् ने जुलाई १८४० में कनाडा संघ अधिनियम (Union of Canada Act) पास किया। पाँच ही दिन बाद लार्ड डरहम की मृत्यु हो गई। लार्ड डरहम के मुख से मरते समय यह वाक्य निकला—"सम्भवतः किसी दिन कनाडा मुझे याद करेगा।" और शीघ्र ही वह दिन आ गया क्योंकि यद्यपि "उसने अपना राजनीतिक जीवन बिगाड़ लिया फिर भी उसे सन्तोष था कि उसने एक राष्ट्र को जन्म दिया।"

१८४० के कनाडा अधिनियम (Union of Canada Act of 1840) के फलस्वरूप १८६७ का कनाडा अधिराज्य अधिनियम (Dominion of Canada Act of 1867) पास हुआ। उपनिवेशों के स्वराज्य सम्बन्धी सिद्धान्तों को तो १८४० के अधिनियम में ही स्वीकार कर लिया गया था। अब इस सिद्धान्त पर अक्षरशः पालन किया गया जैसा कि बाद में कुछ वर्षों में प्रकट हुआ, जब कि उपनिवेशों को आज्ञा मिल गई कि वे स्वयं पितृ देश अर्थात् इंग्लैण्ड के माल पर भी आगम शुल्क लगा सकेंगे। बाद के दस वर्षों में कनाडा के अन्य प्रान्तों अर्थात् न्यू ब्रन्सविक (New Brunswick), नोवा स्कोटिया (Nova Scotia), और प्रिंस एडवर्ड द्वीप (Prince Edward Island) को भी स्वशासन की सुविधा प्रदान कर दी गई। साम्राज्य के

---

१. डरहम (Durham) की रिपोर्ट का सार इन शब्दों में भरा है—"ब्रिटिश सरकार को मानना होगा कि कनाडा की सरकार वे ही लोग चलाएँगे जिनमे सर्वसाधारण के प्रतिनिधियों को विश्वास होगा। इस समय तो उक्त वक्तव्य साधारण सत्य प्रतीत होता है किन्तु इसी वक्तव्य के द्वारा प्रथम बार एक उत्तरदायित्वपूर्ण ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने उपनिवेशों के लिए स्वशासन का सिद्धान्त स्वीकार किया।" (Stuart J. Reid : *The Life and Letters of the Frirst Earl of Durham, 1792-1840, vol. II, p. 314.*)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठन में इस परिवर्तन से क्रांति-सी आ गई और आज के ब्रिटिश साम्राज्य का ढाँचा बहुत कुछ उसी परिवर्तन का परिणाम है। किन्तु डरहम का द्वितीय प्रस्ताव, जिसमें उसने दोनों प्रान्तों के संघ की सिफ़ारिश की थी, उतना लोकप्रिय नहीं हुआ। फ्रांस और ब्रिटेन के कनाडियन नागरिकों में संघर्ष निरन्तर चलते रहे; और १८६० के निकट जब यह योजना प्रस्तुत की गई कि कनाडा के कुछ प्रान्त संघ में संगठित हो जाएँ तो ऑण्टेरियो (Ontario)[1] और क्वीवेक (Quebec)[2] नामक प्रान्तों ने आपस के सम्बन्धों को तोड़ लिया और वे दोनों भी अन्य प्रान्तों के समान उन्हीं शर्तों पर अधिराज्य (Dominion) में शरीक हो गए।

कनाडा का संघ

यद्यपि कनाडा अधिराज्य अधिनियम, १८६७ (Dominion of Canada Act of 1867) को ब्रिटिश संसद् ने अधिनियमित किया था किंतु वह कनाडा के प्रान्तों के प्रतिनिधित्व पर ही आधारित था। वह स्पष्ट रूप से कनाडा को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में स्वीकार करता था। वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्य में कनाडा प्रथम संघ[3] था और संयुक्त राज्य अमेरिका के संघ की स्थापना के पश्चात् भी कनाडा का संघ संसार का प्रथम संघ था। संघ की मान्यताओं को अन्यत्र समझाया गया है।[4] यद्यपि कनाडा संघ पर निश्चित रूप से अमेरिका के संघ की छाप दृष्टिगोचर होती है फिर भी कई प्रकार से यह अमेरिका के संघ के समान नहीं है। प्रथमतः, कनाडा का संघ कसा हुआ संघ है, न कि शिथिल या ढीला-ढाला। कनाडा की संघीय सरकार को अमेरिका की संघीय सरकार की अपेक्षा अवशिष्ट शक्तियों के अलावा और भी कुछ अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। कनाडा के संविधान-निर्माता उस समय अपने भावी संविधान के विषय में विचार-विनिमय कर रहे थे जब कि अमेरिका का गृह-युद्ध चल रहा था। अमेरिका के गृह-युद्ध से कनाडा के संविधान-निर्माताओं को यह भय हुआ कि संघ के एककों को अधिक शक्तियाँ दे देना खतरे से खाली नहीं है। इसलिए उन्होंने निश्चित किया कि केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाया जाय।

इस सिद्धान्त को मान लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो गया कि कनाडा के संघ के विभिन्न राज्यों अथवा एककों को संघीय संसद् में असमान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। यह स्थिति अमेरिका के राज्यों से सर्वथा भिन्न है यद्यपि १८७१ के जर्मन साम्राज्य की स्थिति से मिलती-जुलती है। इस प्रकार संघीय संसद् में ऑन्टेरियो

---

१. उत्तरी कनाडा (Upper Canada)।

२. दक्षिणी कनाडा (Lower Canada)

३. प्रारम्भ में कनाडा का संघ केवल चार प्रान्तों का संघ था जिसमें ऑन्टेरियो (Ontario), क्वीवेक (Quebec), नोवास्कोटिया (Nova Scotia) और न्यूब्रन्सविक (New Brunswick) थे। बाद में उक्त संघ में निम्न प्रान्त भी सम्मिलित हो गए : मनिटोबा (Manitoba), ब्रिटिश कोलम्बिया (British Columbia), प्रिंस एडवर्ड द्वीप (Prince Edward Island), सेस्केचीवां (Saskatchewan), और एल्बर्टा (Alberta)। न्यूफाउण्डलैण्ड (Newfoundland) अब भी कनाडा के संघ से बाहर है।

४. अध्याय १२ देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Ontario) को २४ स्थान, नोवा स्कोटिया (Nova Scotia) को दस स्थान तथा ब्रिटिश कोलम्बिया को केवल छः स्थान प्राप्त हैं।

चूंकि कनाडा का अधिराज्य ब्रिटिश साम्राज्य का भाग था इसलिए ब्रिटिश संसद् को भी पूर्ण प्रभुता के विभाजन के लिए कनाडा के संघ में स्थान दिया गया। संघ में प्रत्येक एकक पर्याप्त सीमा तक स्वतन्त्र और प्रभु शक्तियों का भोक्ता होता है। संघ की यह आवश्यक शर्त है। बहुत से लोगों को शंका थी कि इस प्रकार कनाडा के संघ की शक्तियों का चार शक्तियों में विभाजित होना उचित होगा अथवा नहीं। इस प्रकार जनता के प्रतिनिधियों में, एककों की सरकारों में, संघ सरकार में तथा ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश सम्राट् में कनाडा के संघ की शक्तियाँ विभाजित हैं। समस्त शंकाओं के बावजूद कनाडा का संघ शासन अत्यन्त सफलता के साथ चलता आ रहा है। तथ्यतः ब्रिटिश सम्राट् और ब्रिटिश संसद् ने अपने पास केवल नाम-मात्र की शक्तियाँ रखीं और उन नाम-मात्र की शक्तियों का प्रयोग भी यदा-कदा बहुत सोच-विचार के बाद किया गया। ब्रिटिश क्राउन तथा ब्रिटिश संसद् ने मुख्यतः गवर्नर जनरल की नियुक्ति, संघीय संविधान में परिवर्तन[1] तथा ऐसे विधेयकों की अस्वीकृति जो शाही आज्ञाओं और शाही सन्धियों की आज्ञा का उल्लंघन करती हों आदि शक्तियों को अपने अधिकार में रखा। कनाडा के न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति में अपील भी की जा सकती है।[2]

इस प्रकार ब्रिटिश उपनिवेशों में कनाडा को सर्वप्रथम पूर्ण स्वराज्य मिला और कनाडा ने सर्वप्रथम अपने लिए संघीय शासन स्वीकार किया। १८४० के अधिनियम को आधार मानकर ब्रिटिश सरकार ने अन्य उपनिवेशों को भी स्वशासन देने की दिशा में कार्य करना प्रारम्भ किया। जैसा कि बताया जा चुका है, १८४० के पश्चात् कनाडा के अन्य प्रान्तों को भी स्वशासन का अधिकार मिल गया; और १८५२ में ऑस्ट्रेलिया के उपनिवेशों को भी अधिकार दिया गया कि वे अपनी-अपनी संविधान सभाएँ निर्वाचित करें तथा अपने लिए स्वयं संविधान बनावें। ऑस्ट्रेलिया के उपनिवेशों ने ब्रिटिश शासन के मॉडल पर अपना संविधान तैयार किया। इसके पश्चात् न्यूज़ीलैण्ड में भी १८५४ में स्वशासन स्थापित हो गया किन्तु दक्षिणी अफ्रीका में शत्रुतापूर्ण बोअरों की स्थिति से वहाँ की समस्या उलझी हुई थी। दक्षिणी अफ्रीका की अन्तरीपीय औपनिवेशिक बस्ती (Cape Colony) को तो १८५३ में ही स्वशासन दे दिया गया था। किन्तु अन्य प्रान्तों को काफी समय बाद स्वशासन दिया गया। भारत[3] को भी स्वराज्य दे देना उचित नहीं समझा गया। भारत के अतिरिक्त विषुवत् रेखा के निकटवर्ती उपनिवेशों, वेस्ट इण्डीज़ द्वीपों और साम्राज्य के अन्य सैनिक चौकियों वाले अथवा जहाज़ों के ठहरने वाले स्थानों आदि को भी स्वशासन देना स्वीकार नहीं किया गया।

---

१. ब्रिटिश संसद अथवा ब्रिटिश सम्राट् को केवल संघीय संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार है, प्रान्तों के संविधानों में सुधार करने का नहीं।

२. वेस्टमिन्स्टर के १९३१ के परिनियम के अनुसार इसमें कुछ सुधार हुआ है।

३. बारहवाँ अध्याय देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटिश साम्राज्य के विकास और विस्तार के इस संक्षिप्त वर्णन में पाठकों ने देखा होगा कि संसार-भर में जितने अयूरोपीय प्रदेशों पर अन्य जातियों ने या तो अधिकार किया या बस्तियाँ बसाईं उनमें से अधिकतर प्रदेश ब्रिटिश लोगों के अधिकार में आये। ठीक ही इस युग को ब्रिटिश एकाधिकार का युग कहा गया है। फिर भी १९वीं शताब्दी के इस काल में तीन अन्य महत्त्वपूर्ण साम्राज्य भी विकास कर रहे थे।

संसार में ब्रिटिश एकाधिकार का युग (१८२५-७८)

सुदूर पश्चिम में अतलान्तक सागर के पार दूसरे छोर पर संयुक्त राज्य अमेरिका एक विशाल स्थल साम्राज्य का निर्माण कर रहा था। उक्त साम्राज्य के निर्माण में अमेरिका ने युद्ध भी लड़े और उपनिवेश भी बसाये। अमेरिका का साम्राज्य बहुत विशाल था जो अतलान्तक सागर (Atlantic Ocean) से प्रशान्त महासागर तक फैला हुआ था।[1]

संयुक्त राज्य अमेरिका

पूर्व में एक और भी बड़ा स्थल साम्राज्य बन रहा था जो निरन्तर अपने आकार को बढ़ा रहा था। पहले ही बताया जा चुका है कि पूर्व में पोलैण्ड तथा उत्तर में फिनलैंड, दक्षिण में कौकेशियन प्रान्तों (Caucasian Provinces), मध्य एशिया में खेनेटीज (Khanates) और तुर्किस्तान, चीन के किनारों पर अमूर प्रान्त और सखालीन (Sakhalin) द्वीप का आधा भाग हड़पकर रूस ने अपने आकार में वृद्धि कर ली थी। रूसी साम्राज्य का यह विस्तार प्रायः रूसी राष्ट्रवाद का परिणाम था। किन्तु साथ ही यह निरन्तर वैधानिक प्रतिक्रियावाद के काल के साठ वर्षों के युद्ध और सन्धियों का भी परिणाम था। रूसी जारों (Tsars) ने भी अपनी प्रजा को साम्राज्य के विस्तार की ओर अग्रसर किया था ताकि वे पश्चिमी उदारवाद की जहरीली हवा से बचे रहें और क्रीमिया के युद्ध में रूस की जो हार हुई उसकी निराशापूर्ण शर्म से भी वे बचे रहें। रूसी साम्राज्य के विस्तार का मुख्य परिणाम यह हुआ कि रूस का सम्पर्क फारस, अफ़गानिस्तान, चीन और जापान से हुआ। इस कारण रूस में आधुनिक काल के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कृतिसम्बन्धी आन्दोलन प्रारम्भ हुए। रूस का प्रभाव फारस की खाड़ी तक तथा भारत के उत्तर-पश्चिम तक दिखाई पड़ने लगा और अब रूस की ब्रिटेन से प्रतिद्वन्द्विता ठन गई। तुर्की साम्राज्य और उसके अधीन राज्यों के भविष्य में रूस की भारी रुचि हो गई और इस्लाम (Mohammedanism) रूस की प्रजा का धर्म हो गया। जहाँ प्रशान्त महासागर में अन्य शक्तियाँ दक्षिण की ओर से घुस-पैठ कर रही थीं, रूस ने उसमें उत्तर की ओर से प्रवेश किया। इस प्रकार प्रशान्त महासागर की बढ़ती हुई समस्याओं ने रूस में भी कुछ समस्याएँ उत्पन्न कर दीं। इस प्रकार जब रूस का विस्तार कॉकेशियन पर्वतों तक, मध्य एशिया के

रूस

---

१. बारहवां अध्याय देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेगिस्तानों तक तथा अमूर नदी तक फैल गया तो निस्सन्देह उसकी गिनती संसार के बड़े राष्ट्रों में होने लगी।

फ्रांस

वाटरलू (Waterloo) के युद्ध के पश्चात् के ६० वर्षों में नवीन फ्रेंच साम्राज्य की नींव पड़ी जो समय पाकर ब्रिटिश साम्राज्य और रूसी साम्राज्य के पश्चात् तीसरे दर्जे का साम्राज्य बना।

सम्भवतः यह तथ्य महत्त्वपूर्ण था कि फ्रांस का प्रवेश उत्तरी अफ्रीका के उस भाग में हो गया जो भूमध्य सागर और एटलस पर्वत (Atlas Mountains) के बीच में स्थित था। एल्जीरिया और उत्तरी अफ्रीका के डाकू लोग शताब्दियों से यूरोप वालों की नाक में दम किये हुए थे और कई देशों ने समय-समय पर अपनी सेनाएँ भेजी थीं ताकि उक्त उपद्रवियों को दबाया जा सके। एल्जीरिया के निवासियों ने कई बार फ्रांस के राष्ट्रीय झण्डे का अपमान किया था और एल्जीरिया के गवर्नर डे ने भी १८२७ में फ्रांस के दूत की अप्रतिष्ठा की थी, इसीलिए फ्रांस को मजबूर होकर एल्जियर्स (Algiers) के विरुद्ध उनको दण्ड देने के लिए एक सेना भेजनी पड़ी। जुलाई, १८३० में एल्जियर्स नामक नगर पर फ्रांसीसियों का अधिकार हो गया। लगभग इसी समय पेरिस में बूरबन राजवंश (Bourbon Monarchy) का अन्त हुआ। उस समय फ्रांस में उदार विचारों वाले लोगों का प्राधान्य था। इसलिए पराये प्रदेशों की विजय को लोग अच्छी नजर से नहीं देख रहे थे। चूँकि क्रान्ति के काल में तथा नेपोलियन के युद्धों के काल में फ्रांस को महान् विजय-लाभ हुए थे इसलिए इन औपनिवेशिक विजयों को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया जा रहा था। फिर भी एल्जियर्स को त्यागा नहीं गया बल्कि हुआ यह कि कुछ समय की हिचकिचाहट के पश्चात् एल्जीरिया (Algeria) को जीतने के लिए ऑर्लियन्स ने सुनियोजित प्रयत्न प्रारम्भ किए। १७४७ तक एल्जीरिया की विजय पूर्ण हो गई और १८५८ में उक्त प्रान्त को औपचारिक रूप से फ्रांस के साम्राज्य का भाग घोषित कर दिया गया। एल्जीरिया के साथ चलने वाले युद्ध के फलस्वरूप फ्रांस की मोरक्को (Morocco) से भी अनबन हो गई किन्तु मोरक्को तथा पूर्व में स्थित ट्यूनिस (Tunis) प्रान्तों पर कुछ वर्षों पश्चात् फ्रांस का अधिकार हुआ।

इस प्रकार उत्तरी अफ्रीका में फ्रेंच साम्राज्य की नींव पड़ी। फ्रांस ने इन प्रान्तों के निवासियों को शिक्षित करने और विकसित करने का बीड़ा उठाया। अब इन लोगों को ऐसी समृद्धि और उन्नति के दर्शन होने लगे जो उन्हें कभी रोमन साम्राज्य में प्राप्त थी। सभी जातियों के श्वेत उपनिवेशियों को इन प्रान्तों में बसने के लिए अपार सुविधाएँ प्रदान की गईं। फ्रांस के सैनिकों को वहाँ आमन्त्रित किया गया और उन्हें मुफ्त जमीनें दी गईं। एल्सेस (Alsace) के उन लोगों से इन उपनिवेशों में बसने के लिए आग्रह किया गया जिन्होंने १८७१ में एल्सेस (Alsace) और लॉरेन (Lorraine) प्रान्तों को जर्मनी को दिये जाने का विरोध किया था। एल्जीरिया (Algeria) में अनेक जर्मन, अनेक इटलीवासी और बड़ी संख्या में स्पेनवासी जा कर बसे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु लुई फ़िलिप (Louis-Philippe) के राज्य के अन्तिम काल में लोगों में उपनिवेश बसाने और साम्राज्य के बढ़ाने की प्रबल इच्छा हुई। इस दिशा में लुई फ़िलिप ने तो केवल प्रारम्भ किया, किन्तु नेपोलियन तृतीय ने उसके अधूरे कार्य को जारी रखा। फ्रांस का प्रभाव चारों ओर बढ़ रहा था। सेनेगल (Senegal) पर तथा अफ्रीका के पश्चिमी तट पर जो कुछ पुराने फ्रेंच [illegible]रगाह थे, उन पर कुछ महत्त्वपूर्ण उपनिवेश बन रहे थे। लुई फ़िलिप (Louis-Philippe) के शासन-काल में फ्रांस ने प्रयत्न किया कि मेहमत अली (Mehemet Ali) की कृपा के सहारे उनका प्रभाव मिस्र में बढ़ जावे। तीन वर्ष पश्चात् फ्रांस के इंजीनियरों ने फ्रांस के अपार धन के व्यय से स्वेज़ नहर का निर्माण किया।[1] दूरस्थ प्रदेश ताहिती (Tahiti) तथा प्रशान्त महासागर स्थित मार्क्विसस द्वीपसमूह तथा न्यूकैलीडोनिया द्वीप (Marquesas Islands and New Caledonia) पर फ्रांस का अधिकार हो गया एवं न्यूजीलैण्ड (New Zealand) भी प्रायः फ्रांस का ही उपनिवेश बन चुका था। उधर १८६२ में कोचीन-चाइना (Cochin-China) में भी फ्रांस की घुसपैठ प्रारंभ हो गई जबकि उसने कोचीन का दक्षिणी अनाम प्रान्त (Southern Annam) विजय कर लिया। इण्डोचाइना के बारे में फ्रांस ने पश्चिमी संसार को भारी जानकारी कराई। उधर नेपोलियन तृतीय का मैक्सिको अभियान (Mexico Expedition) पूर्ण असफल रहा था। इसलिए अमेरिका में फ्रांस के विशाल साम्राज्य स्थापित करने के सपने टूट गए।

प्रशान्त महासागर में, इण्डोचाइना में और अफ्रीका में इसी काल में विशाल फ्रेंच साम्राज्य की नींव रखी गई। किन्तु इस साम्राज्य में प्रायः सभी प्रदेश परम उष्ण और उष्ण कटिबन्ध के थे जिनमें श्वेत जातियों के बसाने की सुविधा नहीं थी। इसलिए उक्त उपनिवेशों का केवल व्यापारिक लाभ की दृष्टि से ही कुछ महत्त्व था।

किन्तु प्रथम विश्व-युद्ध से पूर्व के चालीस वर्षों में उपनिवेश बसाने के सम्बन्ध में यूरोपीय लोगों के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन आ गया। यूरोप के दो अन्य राष्ट्र इटली और जर्मनी भी यूरोप की बड़ी शक्तियों की गिनती में आ गये। अब तक यूरोपीय देश राष्ट्रीय युद्धों में लगे हुए थे। वे युद्ध भी समाप्त हो चुके थे। अब यूरोप के लोग वास्तविक स्थिति की ओर मुखातिब हुए। उन्होंने देखा कि पश्चिम में एक अत्यन्त सशक्त शक्ति का उदय हो रहा था। अमेरिका का राज्य प्रायः आधे से अधिक अमेरिका नामक महाद्वीप पर छा गया था। उन्होंने भय के साथ यह भी देखा कि पूर्व में विशाल रूसी साम्राज्य का उदय हो रहा था जो पोलैण्ड (Poland) से लेकर चीन तक चला गया था। इन दोनों नवीन शक्तियों के अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य प्रायः

१८७८-१९१४

१. दुर्भाग्यवश इंग्लैण्ड ने फ्रांस द्वारा स्वेज नहर के बनाये जाने पर एक समय घोर आपत्ति की थी क्योंकि ब्रिटेन की दृष्टि में यह प्रयत्न फ्रांस की पूर्वी मामलों में अनधिकृत रुचि प्रदर्शित करता था। उक्त नहर को डी लेसेप्स (De Lesseps) नामक फ्रेंच इन्जीनियर ने तैयार कराया था। इसके ऊपर सारा व्यय फ्रांस ने किया था और इसका औपचारिक उद्घाटन फ्रेंच सम्राज्ञी यूजीनी (Eugenie) के कर-कमलों द्वारा १८६९ में हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी पृथ्वी पर छाया हुआ था और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे विशाल देश थे तथा भारत के धनी प्रान्त थे। इसके अतिरिक्त सुदूरपूर्व में भी पश्चिमी प्रभाव धीरे-धीरे पैर जमा रहा था और जापान में नई संस्कृति का विकास हो रहा था।

यह स्पष्ट था कि मूल्यों के मापदण्ड में परिवर्तन हो रहा था और यूरोप के लिए अब यह सम्भव नहीं रह गया था कि वही सारे संसार पर छाया रहे और संसार की राजनीति का चौधरी बना रहे। अब सुदूरपूर्व के देश तथा सुदूर पश्चिम का देश विशाल शक्ति के साथ संसार-क्षेत्र में प्रवेश कर रहे थे। सबसे बड़े देश वे ही माने जाते थे जिनके हित और जिनकी रुचियाँ सारे संसार में फैली हुई थीं। हितों और रुचियों का अर्थ यही था कि वे सारे संसार पर अधिकार कर लेना चाहते थे। १८७० से १९१४ तक तीन नई शक्तियों—जापान, जर्मनी और इटली का उदय हुआ। यह तथ्य भी इस बात का परिचायक था कि इस युग में नई चेतना आ रही थी। यद्यपि जापान दूर था और अभी तक यूरोपीय देशों के विकास के तमाशे दूर से ही देख रहा था, फिर भी उसने अच्छी तरह समझ लिया था कि उन्नतिशील राष्ट्र के लिए साम्राज्य-विस्तार अत्यन्त आवश्यक है। अतः जापान ने भी अपनी साम्राज्य विस्तार की दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। जर्मनी में भी नई राष्ट्रीयता का उदय हुआ था और उसे भी अपने साम्राज्य-विस्तार की सूझी; यद्यपि बिस्मार्क ने १८७१ में कहा था कि जर्मनी सन्तुष्ट देश है और वह किसी अन्य देश पर छा जाने का इच्छुक नहीं है। इटली पर भी नई साम्राज्यवादिता का नशा चढ़ा और उसकी भी इच्छा हुई कि अ-यूरोपीय प्रदेश पर वह अधिकार करे।

ब्रिटिश साम्राज्य के विशाल आर्थिक साधन स्रोत थे जिनको अभी तक विकसित नहीं किया गया था। यूरोप के महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रों की आकांक्षाएँ बढ़ीं और वे भी इसी प्रकार के साम्राज्य को हस्तगत करने के लिए तथा उस पर अपना व्यापार सम्बन्धी एकाधिकार स्थापित करने की दिशा में सोचने लगे। इसमें सन्देह नहीं है कि ब्रिटिश साम्राज्य में भी अन्य देशों को मुक्त व्यापार की नीति के अनुसार व्यापार करने की सुविधा थी फिर भी स्वभावतः फ्रेंच और जर्मन लोग यह सोचते थे कि फ्रांस और जर्मनी को ब्रिटिश उपनिवेशों में बहुत बड़ी पूंजी लगानी पड़ती है तथा भारी जोखिम उठानी पड़ती है किन्तु उसका अधिक लाभ ब्रिटेन को जाता है तथा फ्रांस और जर्मनी इस दृष्टि से घाटे म रहते हैं। अतः यूरोपीय देशों को प्रतीत होने लगा कि अपने उपनिवेशों का भारी लाभ है क्योंकि उनसे उनको कच्चा माल मिलेगा तथा उनमें उनका तैयार माल बिकेगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने सोचा कि अपने उपनिवेशों में पूंजी लगाना अधिक लाभदायक होगा। इस प्रकार ज्यों-ज्यों यूरोपीय देशों में साम्राज्य अथवा उपनिवेशों की चाह बढ़ी त्यों-त्यों उनकी इच्छा व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त करने की ओर भी बढ़ने लगी।

एक अन्य लाभ भी था जिसने बड़ी शक्तियों को साम्राज्य के विस्तार की ओर प्रेरित किया। हाल ही में देखा गया है कि अ-यूरोपीय देशी सैनिकों ने यूरोपीय देशों में सैनिक वीरता प्रदर्शित की है। यह एक अनहोनी-सी घटना थी। ज्यों-ज्यों सामुद्रिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातायात की दशा में सुधार हुआ और लोगों की सैनिकवादी रुचि बनने लगी त्यों-त्यों यूरोप के लोगों को यह स्पष्ट दीखने लगा कि उपनिवेशों का भी भारी सामरिक महत्त्व हो सकता है। इसके अतिरिक्त हजारों-लाखों उपनिवेशी १९ वीं शताब्दी में यूरोप, अमेरिका और ब्रिटिश साम्राज्य को छोड़-छोड़कर उपनिवेश बसाने चले गये थे। इस प्रकार इन देशों के लाखों नागरिक चले गये थे। यदि युद्ध के लिये आवश्यकता होती तो स्वदेश की रक्षार्थ, इतने देश त्यागकर जाने वाले नागरिकों में से कई सेनाएँ तैयार करके खड़ी की जा सकती थीं।

संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि पिछली कुछ शताब्दियों में यूरोप के देशों ने जो साम्राज्य का विस्तार किया था और अपने उपनिवेश बसाये थे उसका परिणाम अब दृष्टिगोचर होने लगा था। अब केवल राष्ट्रीयता की भावना पर्याप्त न थी। अब यूरोप हर प्रकार आत्म-निर्भर और आत्म-संतुष्ट नहीं था। रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) के शब्दों में, "नये युग का श्रीगणेश हो चुका था। अब यूरोप के सभी देशों में प्रतिस्पर्द्धा थी कि वे संसार के अविकसित और अधिकृत प्रदेशों पर अधिकार करें। ऐसे अविकसित प्रदेशों की साधारण-से-साधारण घटना भी यूरोप के बड़े देशों के लिए भारी महत्त्व की घटना बन जाती थी जिन पर अभी तक किसी बड़ी शक्ति का अधिकार नहीं हुआ था, चाहे वह प्रदेश कितनी ही दूर क्यों न हो। इस प्रकार चीन या स्याम या मोरक्को या सूडान या प्रशान्त महासागर के द्वीपों से सम्बन्धित साधारण प्रश्नों पर भी समस्त संसार की शान्ति खतरे में पड़ गई।"[1]

ग्रेट ब्रिटेन ने तो साम्राज्य-विस्तार अपना धर्म ही बना लिया। फ्रांस के एल्सेस (Alsace) और लॉरेन (Lorraine) प्रान्तों को जर्मनी ने छीन लिया था, अतः फ्रांस अपनी इस हानि की पूर्ति अफ्रीका और चीन से करना चाहता था। सभी देश यकायक ऐसे प्रत्येक देश या प्रदेश को हथियाने के लिए दौड़े जिस पर किसी बड़े देश का अधिकार या संरक्षण नहीं था। जर्मनी सशक्त और सशस्त्र विदेश-नीति (Weltpolitik) की दिशा में सोचने लगा।

संसार के दो प्रदेशों में अब भी यूरोप के देशों के प्रवेश की सुविधा थी। एक ओर अफ्रीका खाली था तथा दूसरी ओर प्रशान्त महासागर के दक्षिण में भी कई प्रदेश खाली पड़े थे।

अफ्रीका का विभाजन

इस काल में अफ्रीका का बँटवारा हुआ। यह भी उस काल के इतिहास की एक आश्चर्यकारी घटना थी। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं थी कि इतना बड़ा और विशाल देश बिना यूरोपीय युद्ध के ही यूरोपीय शक्तियों ने आपस में बाँट लिया।

यद्यपि अफ्रीका का महाद्वीप यूरोप के अत्यन्त निकट था फिर भी उसके बारे में संसार को बहुत ही कम जानकारी थी और यूरोपीय लोगों का अभी अफ्रीका के बहुत ही थोड़े भू-भाग पर अधिकार हो पाया था। उत्तरी अफ्रीका में फ्रांस ने एल्जी-

1. Ramsay Muir : *The Expansion of Europe*, p. 135.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिया पर अधिकार कर रखा था, दक्षिण में ग्रेट ब्रिटेन और डच बोअरों ने ऑरेन्ज (Orange) और वॉल (Vaal) नदियों तक के भू-भाग पर अधिकार जमा रखा था। इसके अतिरिक्त पुर्तगाल, फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन के अधिकार में पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका के समुद्री किनारे के कुछ नगर और स्थान भी थे। ट्यूनिस (Tunis) और ट्रिपोली (Tripoli) पर तुर्की का आधिपत्य था, मोरक्को यद्यपि पतनोन्मुख हो रहा था, फिर भी वह स्वतन्त्र नगर था जिसमें अधिक जनसंख्या बर्बरों (Berbers) और अरबों की थी। मिस्र (Egypt) एक अधीन और कर चुकाने वाला राज्य था, किन्तु फिर भी आन्तरिक प्रबन्ध में वह स्वतन्त्र था और किसी सीमा तक उस पर यूरोपीय सभ्यता का रंग चढ़ चुका था। वास्तव में वह तुर्की का एक प्रान्त था। अफ्रीका का अधिकतर भू-भाग, जिसमें अनेक पर्वत हैं, अनेक रेगिस्तान हैं तथा जिसमें अनेक असभ्य और जंगली जातियाँ निवास करती हैं, आधुनिक काल तक भी अज्ञात और अगम्य देश बना रहा। इस देश में खोजों और अनुसन्धानों के लिए अब भी व्यापक क्षेत्र पड़े हैं।

सबसे पहले ईसाई धर्म-प्रचारकों और भौगोलिक आविष्कर्त्ताओं ने यूरोप-वासियों को बताया कि अफ्रीका के आन्तरिक भागों में अनुसंधान और खोज की बहुत व्यापक सम्भावनाएँ हैं। बर्टन (Burton), स्पेक (Speke), ग्राण्ट (Grant), बेकर (Baker), लिविंगस्टोन (Livingstone), स्टेनली (Stanley) आदि अनेक आविष्कर्त्ताओं ने अफ्रीका की चार मुख्य नदियों—नील (Nile), नाइजर (Niger), काँगो (Congo) और जैंबैसी (Zambesi)—के मार्गों का पता लगाया। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने गाइना के किनारे (Guinea Coast) और दक्षिणी अफ्रीका में व्यापक प्रचार किया। स्टेनली (Stanley) की पुस्तकों[1] के प्रकाशित हो जाने से यूरोप में ठीक उसी समय अफ्रीका के सम्बन्ध में भारी जिज्ञासा के भाव फैले जबकि यूरोप के लोगों की रुचि उपनिवेश प्राप्त करने की ओर विशेष रूप से जाग्रत हो रही थी। अब यूरोप के लोग समझने लगे थे कि अफ्रीका में अपार सम्पत्ति है तथा कीमती साधन-स्रोत हैं और भविष्य में अफ्रीका से आर्थिक लाभों की सम्भावना है।

यह भी एक अनोखी सी बात थी कि सबसे पहले बेल्जियम सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय ने ही अफ्रीका का पता लगाने का प्रयत्न किया और इस दिशा में यूरोप की बड़ी शक्तियों में से किसी ने पहल नहीं की। १८७६ में सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय (Leopold II) ने ब्रूसेल्स (Brussels) में भूगोल-वेत्ताओं का एक गैर-सरकारी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया। उक्त सम्मेलन से सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय ने माँग की कि वह ऐसे उपाय सुझाये जिनके द्वारा अफ्रीका की खोज की जा सके तथा

---

१. स्टेनली (Stanley) की प्रसिद्ध पुस्तकें निम्नलिखित हैं :—
1. *How I found Livingstone* (1872).
2. *Through the Dark Continent* (1878).
3. *In Darkest Africa* (1890).

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ्रीका के निवासियों को सभ्य बनाया जा सके ; तथा साथ ही अफ्रीका के आन्तरिक भागों के साथ व्यापार की सम्भावनाएँ खोजी जा सकें। एक अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीका अन्वेषक सभा की स्थापना की गई और उसकी उप-समितियाँ विभिन्न देशों में स्थापित की गईं। किन्तु अफ्रीका के अन्वेषण में प्रारम्भ में जो अन्तर्राष्ट्रीय जाग्रति दिखाई दे रही थी वह शीघ्र ही लुप्त हो गई। स्टेनली की यात्राओं के फलस्वरूप अफ्रीका का अन्वेषण करने वाली सभा का ध्यान मुख्य रूप से कांगो नदी की घाटी की ओर गया, अतः एक नई समिति बनी जिसने कांगो नदी की घाटी का पता लगाने का बीड़ा उठाया। इस कार्य में प्रायः सारा व्यय सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय ने किया। अतः यह प्रायः पूरी तरह से बेल्जियम का साहस और प्रयत्न रहा। कुछ वर्षों के पश्चात् इस प्रयत्न के फलस्वरूप कांगो फ्री स्टेट (Congo Free State) नाम के एक पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्य की स्थापना हुई जिसका शासक स्वयं सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय बना।

ज्योंही सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय की रुचि अफ्रीका के अन्वेषण और उप-निवेशीकरण की ओर हुई, त्योंही अन्य यूरोपीय राज्यों की भी उधर रुचि जागी। फ्रांस और पुर्तगाल ने भी कहा कि वे भी कांगो की घाटी के दावेदार हैं। अनेक यूरोपीय देशों के दूत और अभिकर्त्ता अफ्रीका पहुँचे और उन्होंने आन्तरिक अफ्रीका के राजाओं से बातचीत की। प्रदेशों की अदला-बदली के बारे में बातचीत भी हुई यद्यपि अफ्रीकी राजा लोग इतने अज्ञानी थे कि वे कुछ समझते ही न थे। उन्होंने बिना कुछ समझे-सोचे विभिन्न यूरोपीय देशों में अफ्रीका के प्रदेशों को बाँट दिया और इस प्रकार अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग देशों का प्रभाव-क्षेत्र मान लिया गया। १८८४-१८८५ में बर्लिन में एक सम्मेलन हुआ जिसमें अफ्रीका का उक्त विभाजन स्वीकार कर लिया गया। इसके बाद भी अफ्रीका का विभाजन चलता ही रहा। प्रारंभ में तो उक्त विभाजन तेजी के साथ हो रहे थे किन्तु बाद में विभाजनों की गति धीमी हो गई। १९१४ तक प्रायः सारा अफ्रीकी देश यूरोपीय देशों की भेंट चढ़ चुका था। केवल एबीसीनिया (Abyssinia) और लाइबीरिया (Liberia) ही दो ऐसे प्रदेश या उप-प्रदेश थे जिन पर यूरोपियनों का अधिकार न था और वे स्वतन्त्र थे।

बेल्जियम के आधीन कांगो प्रांत

१९०८ तक कांगो नदी की विशाल घाटी पर बेल्जियम के सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय क व्यक्तिगत आधिपत्य बना रहा। किन्तु उसी वर्ष बेल्जियम की सरकार ने कांगो की घाटी को अपने अधिकार में ले लिया, क्योंकि बेल्जियम की वे व्यवसायी कम्पनियाँ, जिनको उस प्रान्त की जमीनें पट्टे पर दे दी गई थी, कांगो के मूल निवासियों को सता रही थी और उनका अत्यधिक शोषण कर रही थीं।

बेल्जियम की कांगो की घाटी के उपनिवेश के दक्षिण में पुर्तगाल ने अपने उपनिवेश बसाने का प्रयत्न किया था। जहाँ पहले पुर्तगाल के अधिकार में केवल छकु समुद्री स्टेशन थे, अब पुर्तगाली अधिकार में अंगोला (Angola) नाम का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरा प्रान्त आ गया था। अफ्रीका के पूर्वी छोर पर भी पुर्तगाल ने एक उपनिवेश बसाया था जिसको मोजेम्बीक (Mozambique) या पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका कहा जाता था। किन्तु पुर्तगाल की इच्छा यह थी कि उसका अधिकार अफ्रीका के आर-पार के उस सारे प्रदेश पर हो जाय जो उसके पूर्वी और पश्चिमी साम्राज्य अर्थात् अंगोला (Angola) तथा पूर्वी अफ्रीका (East Africa) के प्रान्तों को मिलाता था। इस दिशा में पुर्तगाल की आशाएँ पूरी नहीं हुईं।

पुर्तगाली बस्तियों का विस्तार

अफ्रीका में साम्राज्य निर्माण करने की दिशा में इटली को बहुत देर में सूझा। फिर भी उसने एरीट्रिया (Eritrea) और इटालवी सोमालीलैण्ड (Italian Somaliland) पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् १९११-१२ में उसने तुर्की (Turkey) को हरा कर उससे ट्रिपोली (Tripoli) और साइरीनिका (Cyrenaica) नामक प्रान्त छीन लिये। उस समय इटली एबीसीनिया (Abyssinia) पर अधिकार नहीं कर सका। अफ्रीका के साम्राज्य में इटली की भारी रुचि थी किन्तु उस दिशा में इटली और फ्रांस के हितों में टकराव होता था अतः फ्रांस के आगे इटली का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

इटली

यहाँ पर सविस्तर यह वर्णन करना उचित नहीं होगा कि अफ्रीका में जर्मनी ने किस प्रकार पैर जमाये। यद्यपि बिस्मार्क की नीति यह नहीं थी कि जर्मनी समुद्र पार के प्रदेशों में अपना साम्राज्य बढ़ावे, फिर भी बाद में उसने हिचकिचाते हुए अपनी नीति में कुछ परिवर्तन कर लिया था और फलस्वरूप जर्मनी ने अफ्रीका में दक्षिण-पश्चिम की दिशा में तथा दक्षिण-पूर्व में एवं कैमरून (Cameroons) तथा टोगोलैण्ड (Togoland) में पर्याप्त भू-भाग पर अधिकार कर लिया था।

जर्मनी

स्पेन ने भी अफ्रीका में पदार्पण किया और कुछ साम्राज्य हस्तगत किया। अफ्रीका के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर स्पेन को कुछ प्रदेश प्राप्त हुआ और १९०९ में जिब्राल्टर (Gibralter) के सामने के समुद्री किनारे पर स्पेन को पैर रखने का अवसर मिल गया।

स्पेन

किन्तु अफ्रीका में सबसे अधिक प्रादेशिक लाभ दो देशों को हुए—एक तो फ्रांस को और दूसरे ग्रेट ब्रिटेन को।

अफ्रीका में उत्तरी समुद्रतट पर फ्रांस के अधिकार में कुछ प्रदेश तो पहले से ही थे। १८८२ में फ्रांस का अधिकार ट्यूनिस (Tunis) पर हो गया और १९१२ में उसको प्रायः सारा मोरक्को (Morocco) प्रान्त भी मिल गया। इन प्रान्तों के दक्षिण में लगभग सारे सहारा प्रान्त (Sahara Region) पर भी फ्रांस का प्रभुत्व छा गया। इस प्रकार फ्रांस का अफ्रीकी साम्राज्य सेनेगल (Senegal) और आइवरी कोस्ट (Ivory Coast) तक पहुँच गया और कांगो (Congo) भी उसके प्रभाव की परिधि में आ गया। इस प्रकार फ्रांस ने अफ्रीका में एक सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना कर ली।

फ्रांस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८९६ में फ्रांस के अधिकार में मैडेगास्कर (Madagascar) का द्वीप भी आ गया जो अफ्रीका के पूर्वी किनारे पर स्थित है।

किन्तु ग्रेट ब्रिटेन सबसे अधिक लाभ में रहा। ब्रिटेन के कतिपय साम्राज्यवादी राजनीतज्ञों के सपने साकार हो गए। केवल जर्मनी के पूर्वी अफ्रीका नामक उपनिवेश को छोड़कर प्रायः सारा भूभाग काहिरा (Cairo) से लेकर अन्तरीप (Cape) तक ब्रिटेन के अधिकार में आ चुका था।[1] ब्रिटेन का जो साम्राज्य दक्षिणी अफ्रीका और रोडेशिया (Rhodesia) में था उससे अब ब्रिटेन का प्रभुत्व टंगानायिका झील (Lake Tanganyika) तक तथा जर्मन ईस्ट अफ्रीका (German East Africa) के दक्षिणी छोर तक पहुँच चुका था। उधर ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका (British East Africa), उगण्डा का संरक्षित प्रान्त (Uganda Protectorate) तथा आँग्ल-मिस्री प्रदेश पर ब्रिटिश आधिपत्य हो जाने के कारण ब्रिटेन का भूमध्य सागर तक प्रभाव हो गया। इनके अतिरिक्त भी अफ्रीका में ब्रिटेन का साम्राज्य था जो सोमालीलैण्ड (Somaliland) के पूर्वी समुद्री किनारे पर था, पश्चिमी गैम्बिया (West Gambia) में था, सीयरा लियोन (Sierra Leone), गोल्ड कोस्ट (Gold Coast) और नाइजीरिया के बड़े प्रान्त में फैला हुआ था।

ग्रेट ब्रिटेन

ब्रिटेन की दक्षिणी अफ्रीका में साम्राज्य-वर्द्धन की कहानी का प्रवाह कुछ-कुछ उस समय रुक गया जब कि हिचकिचाहट और सन्देह के वातावरण में ब्रिटेन ने और अधिक प्रदेशों पर अधिकार करना अस्वीकृत कर दिया तथा दो डच गणराज्यों—ट्रांसवाल (Transvaal) एवं ऑरेन्ज फ्री स्टेट (Orange Free State)—को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। यद्यपि ऑरेन्ज फ्री स्टेट के साथ ब्रिटेन के सम्बन्ध सदैव अच्छे रहे किन्तु दुर्भाग्यवश ट्रांसवाल के साथ १९वीं शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेन के सम्बन्ध कटुतापूर्ण रहे। १८७७ में ट्रांसवाल (Transvaal) में अत्यधिक गड़बड़ी रही और चूँकि भय इस बात का था कि शायद जुलू लोग (The Zulus) ट्रांसवाल पर अधिकार न कर लें, अतः ग्रेट ब्रिटेन ने उस पर अधिकार कर लिया। किन्तु ज्योंही ब्रिटेन ने ट्रांसवाल पर अधिकार किया त्योंही पहले तो उसको जुलू लोगों का सशस्त्र विरोध सहन करना पड़ा[2] और बाद में डच बोअरों से भी युद्ध ठन गया। थोड़े से युद्ध के पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन ने अपनी नीति पर पुनर्विचार किया और १८८१ में उसने ट्रांसवाल (Transvaal) को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी यद्यपि केवल नाममात्र को अब भी ट्रांसवाल ब्रिटिश-संरक्षण में बना रहा। सम्भवतः इसको डच बोअरों ने ब्रिटिश कमजोरी का द्योतक समझा, अतः पॉल क्रुगर (Paul Kruger) के नेतृत्व में बोअरों ने

---

१. और जब प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् जर्मन ईस्ट अफ्रीका (German East Africa) कुछ समय के लिए ब्रिटेन के शासन के अधीन (Mandate) दे दिया गया तो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के रहे-सहे सपने भी साकार हो गए।

२. इसी जुलू युद्ध में बोनापार्ट प्रिंस इम्पीरियल (Bonaparte Prince Imperial) की मृत्यु हुई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोर ब्रिटिश-विरधी आन्दोलन छेड़ दिया। इसके प्रत्युत्तर में ऐसा ही ब्रिटिश राष्ट्र-दादी आन्दोलन चल पड़ा जिसका नेता ऑक्सफोर्ड (Oxford) का विद्वान् सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) था और जिसने दक्षिणी अफ्रीका की हीरे के खानों से अपरिमित धन पैदा किया था।

फलस्वरूप दक्षिणी अफ्रीका में जातिगत प्रभुत्व की स्थापना के हेतु कठिन संघर्ष चल पड़ा। रोड्स (Rhodes) की बहुत बड़ी-बड़ी योजनाएँ थीं और वह बड़ा ही गतिशील था। वह न केवल समस्त दक्षिणी अफ्रीका पर ब्रिटिश प्रभुत्व चाहता था, बल्कि वह तो यह चाहता था कि अन्तरीप से काहिरा (From the Cape to Cairo) तक का सारा भू-भाग ब्रिटिश नियन्त्रण में आ जाए। उसके गतिशील नेतृत्व में एक शासन-अधिकार-पत्र-प्राप्त (Chartered) कम्पनी की स्थापना हुई जिसने मेशोनालैण्ड (Mashonaland) एवं मैटेबिललैण्ड (Matabeleland) पर, जिसको अब रोडेशिया (Rhodesia) कहा जाता है, अधिकार प्राप्त करके उस प्रदेश में उपनिवेश स्थापित कर दिये। जब रोडेशिया में ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना हो गई, और बेचुआनालैण्ड (Bechuanaland) के संरक्षित राज्य में ब्रिटिश नियन्त्रण स्थापित हो गया तो फलस्वरूप ऑरेन्ज फ्री स्टेट (Orange Free State) और ट्रांसवाल (Transvaal) के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया। इसके अतिरिक्त जब ट्रांसवाल (Transvaal) में हीरे की खानों का पता लगा तो उस प्रदेश में बहुत बड़ी संख्या में हीरे की खानों में काम करने वाले लोग यूइटलैण्डर (Uitlanders) आ गए जिनमें बहुत बड़ी संख्या ब्रिटिशजनों की थी। इससे ट्रांसवाल की स्थिति में ब्रिटेन के दृष्टि-कोण से कुछ सुधार हुआ किन्तु यूइटलैण्डरों (Uitlanders) एवं डच बोअर कृषकों में निरन्तर अनबन रहने लगी। वास्तव में यह जातीय संघर्ष था जो वर्ष-प्रतिवर्ष और अधिक उग्र होता गया। १८९५ में स्वयं यूइटलैंडरों (Uitlanders) ने अन्तरीपीय उपनिवेश (Cape Colony) के तत्कालीन प्रधान मन्त्री रोड्स (Rhodes) की सहायता से ट्रांसवाल में विप्लव कर दिया। इस सशस्त्र विप्लव का नेतृत्व डा० जेम्सन (Dr. Jameson) कर रहा था। किन्तु यह विप्लव सफल नहीं हुआ, बल्कि उल्टे इससे संघर्ष उग्रतर हो गया और १८९९ में बोअर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में एक ओर ट्रांसवाल (Transvaal) और ऑरेन्ज फ्री स्टेट (Orange Free State) नामक दो बोअर गणराज्य थे और विरोध में ब्रिटिश सरकार थी। ट्रांसवाल वालों (The Transvaalers) ने वीरतापूर्वक युद्ध किया। उन्होंने नैटाल (Natal) और अन्तरीप उपनिवेश (Cape Colony) पर आक्रमण किया तथा ब्रिटेन को भारी हानि सहन करनी पड़ी, किन्तु कहाँ ट्रांसवाल जैसी छोटी-सी शक्ति और कहाँ ब्रिटिश साम्राज्य के विशाल साधन। अन्त में ट्रांसवाल की तथा ऑरेन्ज फ्री स्टेट की पराजय हुई और उनको आत्मसमर्पण करना पड़ा। १९०२ में सन्धि हो गई और दोनों बोअर गण-राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में ले लिया गया।

जिस साम्राज्यवादी नीति के कारण बोअर युद्ध हुआ उसकी सर्वत्र आलोचना की गई। न केवल ब्रिटेन में बल्कि विदेशों में भी ब्रिटिश नीति की निन्दा की गई। किन्तु सन्धि के शीघ्र पश्चात् ब्रिटेन ने अपनी नीति को बदल दिया। पाँच वर्षों के अंदर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही दोनों प्रान्तों को (जो पहले बोअर गणराज्य थे) स्वराज्य दे दिया गया। और आठ वर्षों के अन्दर ही ब्रिटिश सम्राट के अधीन उक्त दोनों प्रान्त एक संघ में विलीन हो गए जिसमें केप कोलोनी (Cape Colony) और नैटाल (Natal) भी सम्मिलित हुए। इसी संघ का प्रथम प्रधान मन्त्री लुई बोथा (Louis Botha) हुआ। १९१४ में बोअर सेनाओं ने जनरल स्मट्स (General Smuts) और लुई बोथा (Louis

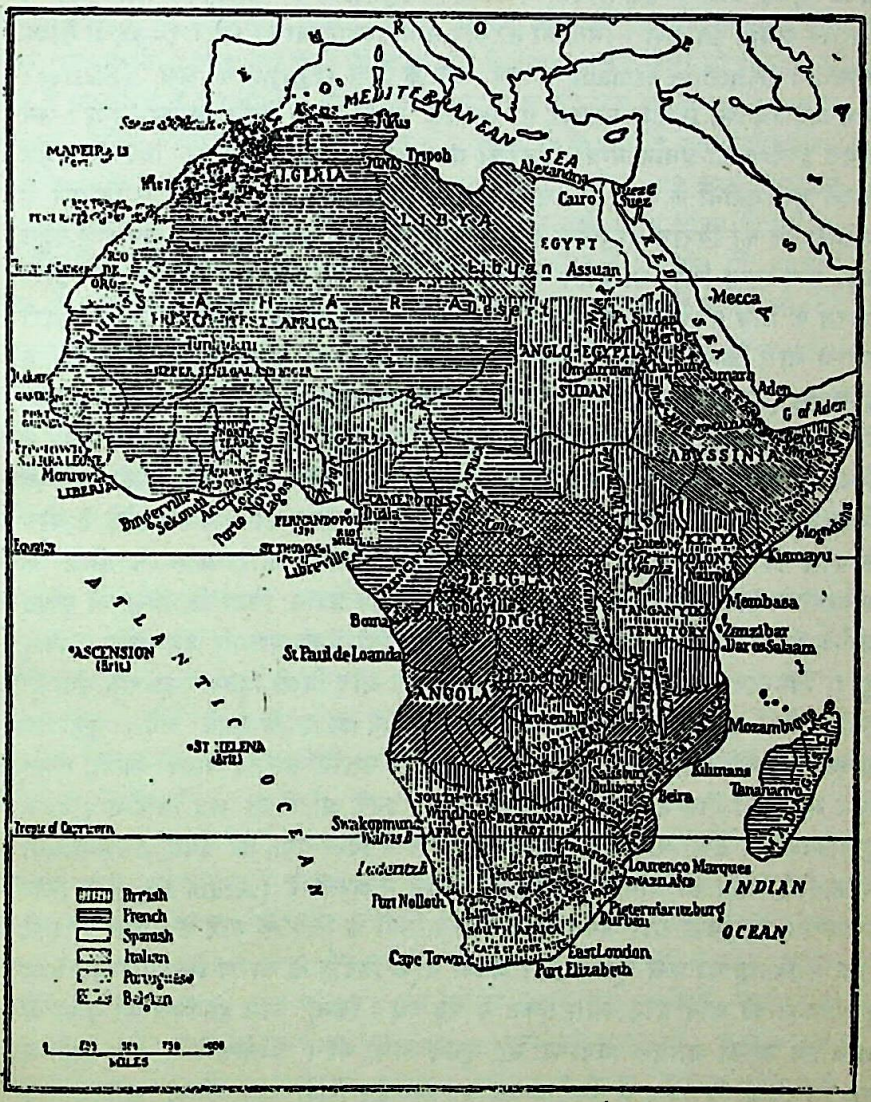

Africa in 1914

Botha) के नेतृत्व में जर्मन ईस्ट अफ्रीका (German East Africa) को विजय किया और पुनः १९२८ में भी दक्षिणी अफ्रीका ने खुले हृदय से ब्रिटेन की सहायता की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटिश साम्राज्य-निर्माण के इतिहास में मिस्र (Egypt) के ऊपर ब्रिटिश अधिकार एक अजीब-सी घटना है। प्रारम्भ में वह एक वित्तीय समस्या थी। मेहमत अली (Mehemet Ali) एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था जो अल्बानिया का निवासी (Albanian) था। उसने सूडान (Sudan) को विजय किया किन्तु इस विजय के फलस्वरूप तथा महमत अली के उत्तराधिकारियों की फिजूलखर्ची के फलस्वरूप भी मिस्र में वित्तीय अभाव छा गया। मिस्र की सरकार प्रायः दिवालिया हो गई। १८७५ में खेदिव इस्माइल (Khedive Ismail) के स्वेज नहर के मिस्र (Egypt) के अंश (Shares) बेच दिये जिनको ब्रिटिश सरकार ने चालीस लाख पौंड देकर खरीद लिया। उस समय इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री डिजरैली था। इस धन से मिस्र का वित्तीय संकट केवल कुछ महीनों के लिए ही टला। यद्यपि किसी समय स्वेज नहर के निर्माण के प्रति ब्रिटेन का विरोध था किन्तु अब न केवल ब्रिटेन ने उक्त नहर के व्यापार में बहुत बड़ा भाग प्राप्त किया था बल्कि वह यह भी मानने लग गया था कि उक्त नहर द्वारा भारत के मार्ग की दूरी कम हो गई थी और इसलिए उसका ब्रिटेन के लिए भारी महत्त्व था। किन्तु १८७६ में मिस्र की आर्थिक व्यवस्था डाँवाँडोल हो गई। खेदिव इस्माइल (Khedive Ismail) ने विदेशी ऋणों को चुकाना स्थगित कर दिया। चूंकि मिस्र में अधिकतर पूंजी इंग्लैण्ड और फ्रांस की लगी हुई थी, अतः उक्त दोनों देशों ने मिस्र की वित्तीय अवस्था की जाँच की। इस प्रकार इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों देशों को मिस्र के वित्तीय मामलों में हस्तक्षेप करने की सुविधा मिल गई। केवल थोड़े से बीच के काल को छोड़कर प्रायः छः वर्षों तक लगातार इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिस्र के मन्त्रियों के साथ सहयोग बनाए रखा और हर संभव प्रयत्न किया कि मिस्र की दूषित अर्थ-व्यवस्था में सुधार हो और वह वित्तीय साधनों में स्वावलम्बी बन सके। किंतु दुहरा नियन्त्रण असफल हो गया। यूरोपीय हितों और मिस्री हितों में टकराव पैदा हो गया। दोनों एक दूसरे की शक्ति को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। यूरोपीय शक्तियों ने खेदिव इस्माइल को मिस्र की गद्दी से उतरने के लिए बाध्य किया, किन्तु फिर भी दुहरा नियन्त्रण सफल नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त जब मिस्र में १,४०० यूरोपियनों को ऊँची राजकीय सेवाओं में स्थान दे दिया गया, तो इससे मिस्रवासियों में जातीय विद्वेष की भावना फैली और १८८२ में अरबी बे (Arabi Bey) ने मिस्र में विप्लव कर दिया और उसने 'मिस्र मिस्रवासियों के लिए' के नारे के समर्थन में सारे मिस्र में विद्रोह का शंख फूंक दिया। अरबी बे के विद्रोह के कारण मिस्र में रहने वाले यूरोपियनों की जानें और माल संकट में पड़ गए। किन्तु साथ ही मिस्र भी संकट में था बल्कि उसकी आर्थिक व्यवस्था भी टूटने वाली थी। इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों ने निश्चित किया कि मिस्र में सेना के बल पर हस्तक्षेप किया जाए किन्तु अन्तिम क्षण फ्रांस हट गया। केवल इंग्लैण्ड ने मिस्री विद्रोह का दमन किया। इसका यश ब्रिटेन के सर गार्नेट वूल्सले (Sir Garnet Wolseley) को मिला। इस प्रकार मिस्र पर इंग्लैण्ड का नियन्त्रण प्रारम्भ हुआ। और यह भी याद रखना चाहिए कि यह सब श्री ग्लैडस्टन

मिस्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Mr. Gladstone) के निर्देशन में हुआ, जो ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में सबसे कम साम्राज्यवाद का पोषक था।

विद्रोह को दबाने के पश्चात् ब्रिटेन को चिन्ता हुई कि मिस्र की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को भी सुधारा जाय; किन्तु यह बहुत भारी और बहुत देर का काम था अतः ब्रिटेन का मिस्र के ऊपर नियन्त्रण बहुत समय तक चला। इसी समय सूडान में महदी का विद्रोह प्रारम्भ हो गया। उसने मिस्र की सेनाओं को तबाह कर दिया और मिस्री सरकार को उलट दिया। अब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को चिन्ता हुई और वे असमंजस में पड़ गये कि क्या वे सूडान को मिस्र से अलग हो जाने दें या सूडान को पुनः विजित करके मिस्र के अश्रित कर दें। कुछ देरी के पश्चात् यह निर्णय किया गया कि ब्रिटेन अपने कन्धे पर और अधिक उत्तरदायित्व न ले। उस समय जनरल गॉर्डन (General Gordon) की अजीब दशा थी जब उसको यह आज्ञा दी गई कि वह शेष मिस्री सैनिकों को सूडान के अन्दर से वापस निकाल ले। गॉर्डन की दयनीय दशा किसे मालूम न होगी। जब उसने आदेशों से अधिक कार्यवाही कर डाली, तो मेहदी (Mahdi) ने उसे खार्तूम में पकड़ लिया और मरवा डाला। गॉर्डन की सहायता के लिए जो सेना आई वह देर से पहुँची क्योंकि उसको बेमन से तो भेजा ही गया था। शीघ्र ही उसको भी वापस बुला लिया गया। मेहदी सूडान में गर्व से फूल कर आतंकवादी शासन करने लगा और चारों ओर विनास और आतंकवाद की लपटें फूटने लगीं। कुछ वर्षों तक ब्रिटेन ने कोई कार्यवाही न की, और इन दिनों में मिस्र में लार्ड क्रोमर (Lord Cromer) ने ऐसा श्रेष्ठ शासन-प्रबन्ध किया जैसा कि उस शताब्दी में शायद ही कहीं देखा गया हो। आखिरकार जब मेहदी का अत्याचारी शासन असह्य हो गया तो ब्रिटेन को हस्तक्षेप करना पड़ा; और १८९९-१९०० में जनरल बाद में अर्ल—किचनर (General—Later Earl—Kitchener) ने पुनः सूडान को विजय किया। सूडान जिले पर इंग्लैंड और मिस्र का सम्मिलित अधिकार हो गया। इससे मिस्र पर ब्रिटिश नियन्त्रण कुछ वर्षों के लिए बढ़ गया; और १९१४ में मिस्र, ब्रिटिश संरक्षण में दे दिया गया।

यद्यपि यूरोप के देशों ने अफ्रीका को आपस में बिना युद्ध के ही बाँट लिया था फिर भी इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय तनाव अवश्य पैदा हुआ। कई प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हुए तथा कई बार विभिन्न देशों के बीच सीमाओं का स्थिरीकरण हुआ। कांगों के सम्बन्ध में फ्रांस और पुर्तगाल के बीच मनमुटाव रहा। फ्रांस द्वारा ट्यूनीशिया (Tunisia) पर अधिकार कर लेने के फलस्वरूप इटली में भारी रोष उत्पन्न हुआ, और जैसा कि बिस्मार्क (Bismarck) को भी आशा थी, इसी कारण इटली ने त्रिराष्ट्रीय संधि को स्वीकार किया। एक दशक से भी अधिक समय तक इंग्लैंड और फ्रांस के बीच भी कटुता बनी रही; और जब १८९८ में फ्रांस की सेना ने श्वेत नील (White Nile) पर स्थित फिशौडा (Fashoda) पर फ्रांस का झंडा गाड़ दिया, तब तो ऐसा प्रतीत होने लगा था मानो दोनों देशों के बीच युद्ध छिड़ने जा रहा है। किन्तु जब १९०४ में मोरक्को (Morocco) और मिस्र (Egypt) के सम्बन्ध में फ्रांस और इंग्लैंड को सन्तोषजनक सुविधा प्राप्त हो गई तभी जाकर दोनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशों के सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ। किन्तु कुछ ही समय के बाद १९०६ में और पुनः १९११ में मोरक्को के प्रश्न पर यूरोप में संकट उत्पन्न हो गये थे।

एशिया में भी यूरोपीयकरण हो रहा था और यूरोप के देश धीरे-धीरे एशिया में अपना विस्तार कर रहे थे। पहले ही बताया जा चुका है कि चीन में यूरोपीय देशों की महत्वाकांक्षाएँ जाग चुकी थीं और जापान एक विशाल शक्ति के रूप में उत्पन्न हो चुका था।[1] चीन के दक्षिण में फ्रांस का अधिकार टाँकिन (Tonkin) और अनाम (Annam) पर हो गया और ग्रेट ब्रिटेन ने बर्मा (Burma) विजय करके अपने साम्राज्य में वृद्धि की। संगठित मलय राज्यों, सारावक (Sarawak), उत्तरी बोर्नियों का कुछ भाग, न्यूगायना (New Guinea) तथा दक्षिणी प्रशान्त महासागर स्थित कुछ द्वीपों पर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया। इंग्लैंड का इन प्रदेशों पर अधिकार हो जाने के पश्चात् १९०० में ऑस्ट्रेलिया के प्रान्तों के संघ की स्थिति भी सुदृढ़ हो गई और ऑस्ट्रेलिया के संघीय प्रान्तों पर ब्रिटिश अधिकार होने के कारण दक्षिणी एशिया पर छा जाने में ब्रिटेन को सुविधा हुई। फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी महासागर के अन्य द्वीपों पर अधिकार किया। अमेरिका ने स्पेन के कमजोर हाथों से कुछ फिलीपाइन द्वीप छीन लिए। संसार के इस भाग में हालैण्ड के अधिकार में भी कुछ द्वीप थे।

एशिया में यूरोप का विस्तार

१९१४ से लेकर १९१८ तक के प्रथम विश्व-युद्ध में संसार की प्रमुख शक्तियों में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, जर्मनी और संयुक्त राज्य नामक देश थे, जिनके अधिकार में बड़े-बड़े संसारव्यापी साम्राज्य थे। किन्तु युद्ध में जर्मनी की पराजय हो जाने के कारण जर्मनी का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। जर्मनी से उसका सारा सुदूरव्यापी साम्राज्य छिन गया जिसका क्षेत्रफल प्रायः १० लाख वर्गमील था और जिसमें प्रायः १५० लाख जनसंख्या थी। जर्मनी से हस्तगत किए हुए सारे साम्राज्य को विजेता देशों ने आपस में बाँट लिया, जिनके सम्बन्ध में राष्ट्र संघ (League of Nations) ने यह शर्त लगा दी कि वे एक अधिदेश (Mandate) के अनुसार शासित किए जाएँगे। जर्मन पूर्वी अफ्रीका (German East Africa) को ग्रेट ब्रिटेन और बेल्जियम के अधिकार में दे दिया गया। टोगोलैंड (Togoland) और कैमरून्स (Cameroons) को ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के सम्मिलित नियन्त्रण में दे दिया गया। जर्मनी का दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीकी साम्राज्य (German South-West Africa) दक्षिणी अफ्रीकी संघ (South African Union) को दे दिया गया। प्रशान्त महासागर स्थित विषुवत् रेखा के उत्तर के जर्मन द्वीप जापान की देखरेख में दिए गए। इन द्वीपों के अतिरिक्त जापान को शान्टंग (Shantung) द्वीप पर भी जर्मनी के विगत अधिकार प्राप्त हो गए। विषुवत् रेखा के दक्षिण में स्थित जर्मनी के प्रशान्त महासागर वाले द्वीप ऑस्ट्रेलिया की देख-रेख में दिये गए। जर्मनी का समोआ (Samoa) द्वीप न्यूजी-

महायुद्ध

---

१. अध्याय ११ देखिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लैंड को मिला।[1]

प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१८) ने भली-भाँति यह स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटिश साम्राज्य एक भारी शक्ति थी। उससे यह भी प्रकट हो गया था कि साम्राज्य के विभिन्न अंग और विभिन्न हित एक दूसरे के पूरक हैं। अतः ब्रिटिश साम्राज्य में स्वस्थ आन्तरिक विकास होने लगा। प्रथम विश्व-युद्ध की नाजुक और निर्णायक घड़ियों में ब्रिटिश साम्राज्य और भारत ने ब्रिटेन की धन और जन से अपार सहायता की थी। युद्ध-मन्त्रिमण्डल (War Cabinet) में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधियों को लिया गया था। इसके अतिरिक्त पेरिस के सम्मेलन (Conference of Paris) में तथा शान्ति-सन्धि की शर्तों के दृढ़ीकरण के समय भी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया था, और राष्ट्रसंघ (League of Nations) में भी ब्रिटिश साम्राज्य को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ था। जब १९२५ में ब्रिटिश केबिनेट में ब्रिटिश अधिराज्य सचिव (Secretary for Dominion Affairs) के नवीन पद का सृजन हुआ तो ऐसा माना गया कि ब्रिटिश अधिराज्यों (Dominions) को साम्राज्य में सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया। १९२६ में शाही सम्मेलन (Imperial Conference) ने अधिराज्यों (Dominions) की यह परिभाषा की थी कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्तशासी समुदाय हैं। उन सबका दर्जा बराबर है; वे किसी भी स्थिति में ब्रिटेन के अधीन नहीं हैं न उनमें कोई किसी दूसरे के अधीन है। अपने-अपने आन्तरिक और विदेशी मामलों के निर्वहन में वे पूर्ण स्वतन्त्र हैं। केवल उन सबको सम्राट के प्रति पूर्ण निष्ठा बनाये रखना आवश्यक होगा। १९३१ के वेस्टमिन्स्टर स्टेट्यूट (Statute of Westminster, 1931) द्वारा ब्रिटिश अधिराज्यों के ब्रिटिश सरकार के साथ के सम्बन्धों को निश्चित कर दिया गया जिससे प्रशासनिक सुविधा हो गई और सम्बन्धों का स्वरूप कानूनी बन गया।

इस समय १९३२ के ओटावा समझौते द्वारा राष्ट्र-मंडल के आर्थिक सहयोग के विकास की दिशा में एक नया कदम उठाया गया। इसने पारस्परिक आगम शुल्कों (reciprocal tariffs) के द्वारा १९२९-३२ की मंदी की विकट समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। महान् मंदी के दिनों में इस बात की कोशिश की गई कि अधिराज्यों की औद्योगिक उन्नति की जाये। न्यूफाउण्डलैंड (Newfoundland) की आर्थिक स्थिति खराब थी। अतः उसकी संवैधानिक स्थिति में परिवर्तन किया गया। १९३३ में उसका संविधान स्थगित किया गया। कुछ काल पश्चात् १९४९ में उसे कनाडा संघ के दसवें प्रान्त के रूप में कनाडा संघ में शामिल कर लिया गया

---

१. प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् तुर्क साम्राज्य के कुछ भाग अधिदेश (Mandate) के अनुसार फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन के नियन्त्रण में भी दे दिए गए। सीरिया (Syria) फ्रांस को मिला। (उसको १९३६ में स्वायत्त शासन प्राप्त हुआ था।) ईराक (Iraq) ग्रेट ब्रिटेन को मिला। (उसको १९२७ में स्वायत्त शासन प्राप्त हुआ तथा १९३२ में उसे राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त हुई) ग्रेट ब्रिटेन को फिलस्तीन (Palestine) भी मिला।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२२ में दक्षिण आयरलैंड की २२ काउंटियों को डोमिनियन स्टेटस प्राप्त हो गया। इन्होंने मिलकर आयरलैंड गणराज्य (Republic of Ireland) का निर्माण किया। इन्होंने ब्रिटिश राजमुकुट (British Crown) के प्रति कोई निष्ठा नहीं रखी। दूसरे महायुद्ध में आयरलैंड तटस्थ रहा। उत्तरी आयरलैंड की छः काउंटियों की अपनी अलग प्रान्तीय सरकार है और वे इंग्लैंड के साथ मिली हुई हैं। वे वेस्ट-मिन्स्टर संसद् में अपने प्रतिनिधि भेजती है। आयरलैण्ड की विभाजन की समस्या को अभी सुलझाना शेष है।

भारत में प्रथम महायुद्ध के पूर्व ही स्वशासन की मांग की गई थी। १९१४-१८ की लड़ाई में कुछ उग्रवादियों (Extremists) को छोड़कर भारत में इंग्लैंड की निष्ठापूर्ण सहायता की। १९१७ में ब्रिटिश सरकार ने यह आश्वासन दिया कि भारत में धीरे-धीरे स्वशासन स्थापित किया जायेगा। आगे के तीस वर्षों में इंग्लैंड ने अपने इस वचन पर धीरे-धीरे अमल किया।

१९१९ के अधिनियम द्वारा इस दिशा में पहला कदम उठाया गया। देश के अन्दर उत्तरदायी शासन की नहीं, प्रत्युत प्रतिनिधिक शासन की स्थापना की गई। भारत की राष्ट्रवादी भावनाओं को इससे संतोष नहीं हुआ। देश में असहयोग तथा सविनय आवज्ञा आन्दोलन हुए। १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने एक ओर तो प्रान्तों को उत्तरदायी शासन प्रदान किया तथा दूसरी ओर एक अखिल भारतीय संघ (All India Federation) की स्थापना का सुझाव दिया। द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने तक अखिल भारतीय संघ की स्थापना के सम्बन्ध में कोई समझौता न हो सका। द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने तक भारत की स्थिति कुछ स्पष्ट हो गई थी। मुस्लिम लीग अब भारतीय मुसलमानों के लिए एक पृथक स्वतन्त्र देश पाकिस्तान की मांग पर अडिग थी। कांग्रेस भी इसके लिए तैयार हो गई। इंग्लैण्ड ने भारत के प्रश्न को सुलझाने का पक्का इरादा कर लिया था। १९४६ में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री एटली (Attlee) ने घोषणा की कि यदि भारत चाहे, तो राष्ट्रमंडल को छोड़ सकता है। १९४७ में श्री एटली ने कहा कि इंग्लैंड १८ महीनों के भीतर स्वयं भारत छोड़कर चला जायेगा। लेकिन इंग्लैंड वास्तव में छः महीने के भीतर ही चला गया। १५ अगस्त, १९४७ को भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (Indian Independence Act) लागू हो गया। इस अधिनियम के फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हो गई।

फरवरी, १९४८ में, कई अवस्थाओं से गुजरने के बाद लंका को भी डोमीनियन मान लिया गया।

जिस समय दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ था, बर्मा भी स्वशासन की दिशा में उन्नति कर रहा था। वहाँ पर कुछ विशेष समस्याएँ थीं। तीन वर्ष तक बर्मा जापान के नियन्त्रण में रहा था। उसके ऊपर जापान का भी प्रभाव था और साम्यवाद का भी। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद बर्मा को यह छूट दी गई कि वह डोमोनियन स्टेटस या पूर्ण पृथक्करण इन दोनों में से किसी एक को स्वीकार कर ले। उसने पूर्ण पृथक्करण मंजूर किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा महायुद्ध ब्रिटिश साम्राज्य की एकता के लिये एक कसौटी भी था और उसके आगे के विकास के लिये एक निर्णायक प्रभाव भी। लड़ाई शुरू होने पर आयरलैण्ड के अतिरिक्त अन्य समस्त डोमिनियनों ने जर्मनी और उसके मित्र-देशों के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और उन्होंने राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य की रक्षा के लिये इंग्लैण्ड के साथ हर प्रकार से सहयोग किया। उनमें से किसी के ऊपर शत्रु का वास्तविक आक्रमण नहीं हुआ। हाँ, १९४२ में ऑस्ट्रेलिया के ऊपर जापान के आक्रमण का अवश्य खतरा हो गया था। इस संकट में ऑस्ट्रेलिया ने अमेरिका का सैनिक संरक्षण स्वीकार किया। यह अमेरिका की प्रशान्त रक्षा-योजना में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। १९५४ में वह तथा न्यूजीलैंड सीटो (S. E. A. T. O. या South East Asia Treaty Organisation) के सदस्य बन गए। यह दक्षिण-पूर्वी एशिया की रक्षा के लिए प्रादेशिक समझौता था। इसका अध्यक्ष अमेरिका था। इस प्रकार से तथा और भी कई दृष्टियों से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का स्वरूप निरंतर बदलता जा रहा है।

दूसरे महायुद्ध ने औपनिवेशिक संसार पर व्यापक प्रभाव डाला। सारे औपनिवेशिक संसार में स्वशासन की माँग बल पकड़ने लगी। मलय प्रायद्वीप में विघटनकारी और आतंकवादी तत्त्वों का जोर रहा। इन तत्त्वों को चीनी और रूसी साम्यवादियों से भी सहायता मिलती थी। काफी ऊहापोह के बाद १९४८ में मलाया के लिए एक संघात्मक संविधान स्वीकार किया गया। अगस्त, १९५७ में मलाया संघ स्वतंत्र हो गया।

अफ्रीका के अन्दर भी स्वतन्त्रता-आन्दोलनों ने जोर पकड़ा और वहाँ कीनिया, घाना आदि विविध देश एक-एक करके आजाद हो गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् ये सभी देश धीरे-धीरे उन्नति कर रहे हैं। विश्व-राजनीति के विकास में अब इन देशों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ है।

अंग्रेज १९५५ में सूडान से हटे। अंग्रेजों का यह कार्य मुख्य रूप से आंग्ल-मिस्री सम्बन्धों का परिणाम रहा है। १९१४ में अंग्रेजों का मिस्र के ऊपर जो संरक्षण स्थापित हुआ था, वह १९२२ में समाप्त हो गया। हाँ, इंग्लैण्ड ने १९३६ तक कुछ प्रशासनिक और सैनिक शक्तियाँ अपने पास अवश्य रखीं। इंग्लैंड और फ्रांस के बीच मित्रता की एक सन्धि हुई जिसके अनुसार दूसरे महायुद्ध में स्वेज नहर की रक्षा के लिए इंग्लैंड ने अपनी फौजें भेजीं। १९४० में धुरी देशों ने मिस्र पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध के पश्चात् उन्हें १९४२ में ही मिस्र से हटाया जा सका। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् अंग्रेज स्वेज नहर और सूडान से पूरी तरह हट गये है। अब मध्यपूर्व[1]

१. पिछले कुछ वर्षों से मध्यपूर्व अन्तर्राष्ट्रीय घटना-क्रम का मुख्य केन्द्र रहा है। वहाँ कई तत्त्व एक साथ कार्य कर रहे हैं। वहाँ तेल के संसाधन विशाल मात्रा में पाये जाते हैं, अरब-इजरायल में प्रचंड शत्रुता है, इंग्लैंड और फ्रांस का प्रभाव वहाँ घट रहा है तथा रूस और अमेरिका वहाँ अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं, अरब संसार के राज्यों में आपस में घोर प्रतिद्वन्द्विता है। इन सब बातों से मध्यपूर्व की स्थिति बड़ी प्रज्वलनशील हो जाती है। १९५६ में इंग्लैंड और फ्रांस ने स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के विरोध में मिस्र के साथ लड़ाई छेड़ दी थी लेकिन रूस, अमेरिका और एशियाई राज्यों के दबाव के कारण उन्हें वहाँ से हटना पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मिस्र का सितारा चढ़ती पर है और मिस्र सम्पूर्ण अरब संसार के नेतृत्व के लिए प्रयत्न कर रहा है।

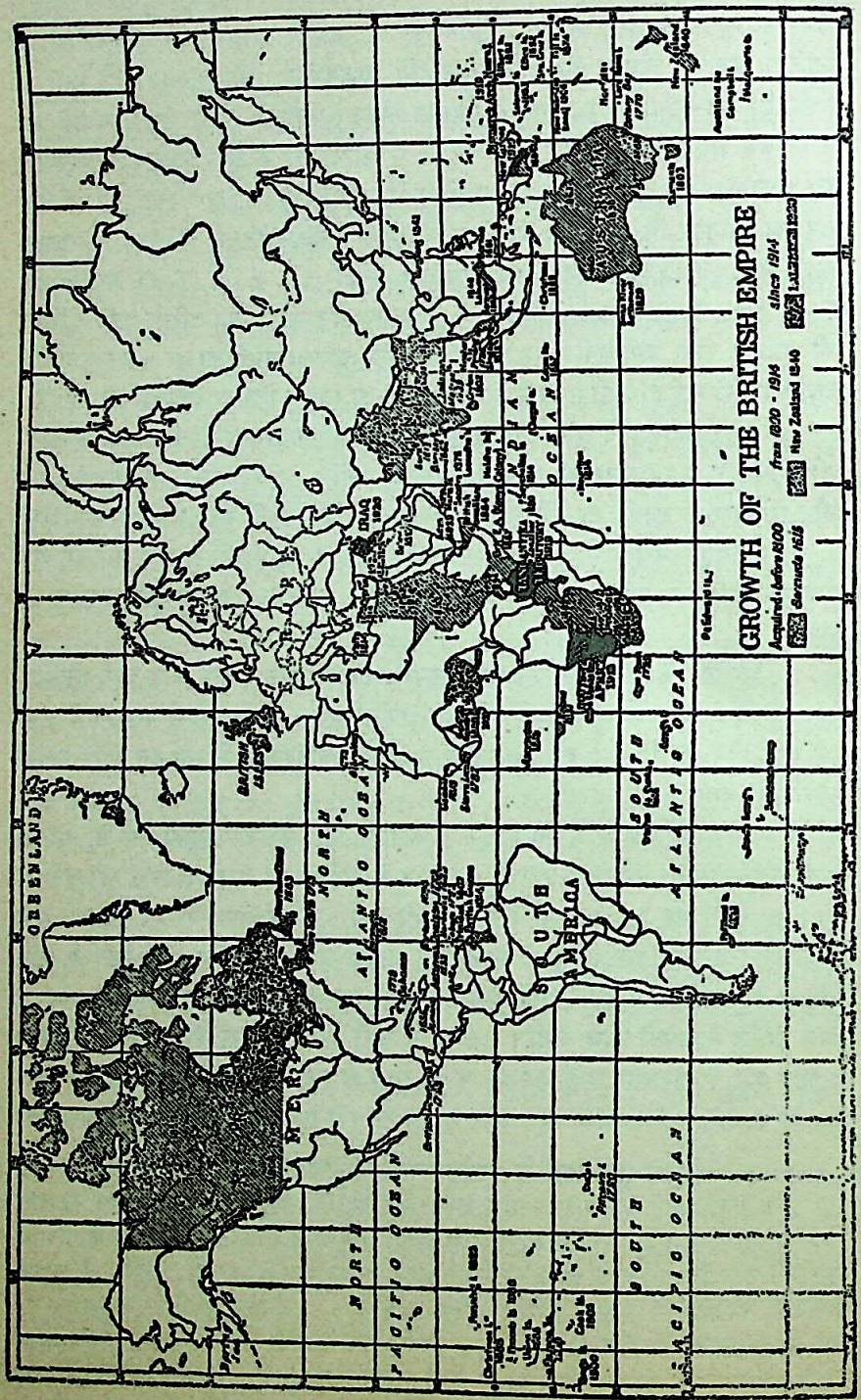

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औपनिवेशिक उपद्रवों और स्वदेशी स्वतन्त्रता आन्दोलन ने इंग्लैंड की भाँति अन्य यूरोपीय साम्राज्यों के ऊपर भी प्रभाव डाला है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हिंदेशिया नीदरलैण्ड्स के नियन्त्रण से स्वतन्त्र हो गया। १९४९ में फ्रांस ने हिंदचीन के तीन राज्यों विएतनाम (टोंकिन, अन्नाम और कोचिन-चाइना,) कम्बोडिया और लाओस को आजादी दे दी। लेकिन विएतनाम में गृहयुद्ध छिड़ गया, जिसमें फ्रांस को हस्तक्षेप करना पड़ा। फ्रेंच उत्तर अमेरिका में भी आजादी की लड़ाई चल रही है।

युद्धकाल में अमेरिका ने फ़िलिप्पाइन को आजादी देने का वचन दिया था। अमेरिका ने युद्ध के बाद अपने वचन को पूरा कर दिया है।

पूर्व और पश्चिम में रूस का भी निरन्तर विस्तार हो रहा है।

प्रथम विश्वयुद्ध तथा नेपोलियन के युद्धों के समान ही द्वितीय विश्वयुद्ध से भी यह स्पष्ट हो गया कि साम्राज्य तथा उसके आधार में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। साम्राज्य की शक्ति उसके गृहदेश की शक्ति है। यह स्मरणीय है कि ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के अन्तर्गत राजनैतिक शक्ति के स्वतन्त्र तथा समान वितरण के साथ ही साथ इंग्लैंड का महत्त्व भी डोमीनियनों में बढ़ता जा रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के बाद से यूरोपीय या 'श्वेत व्यक्ति' की सत्ता में कमी हुई है। तथापि, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसका प्रभाव नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में यह बात विशेष रूप से सही है। एशियाई और अफ्रीकी देशों के इतिहास में इंग्लैण्ड का निर्णायक हाथ रहा है। उसने इन देशों के निवासियों को अनेक लाभ पहुँचाए हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ११
(CHAPTER XI)

सुदूर पूर्व
(THE FAR EAST)

सन् १८०० के पश्चात् का सुदूर पूर्व का इतिहास एक आन्दोलन का इतिहास है जो कई रूपों में प्रकट हुआ। वास्तव में १८०० के पश्चात् का इतिहास पश्चिमी जातियों का पूर्वी देशों में धृष्टतापूर्ण बिना आज्ञा घुस पैठने का इतिहास है। पश्चिमी देश पूर्व की छाती के ऊपर बिना उनकी आज्ञा के जबर्दस्ती चढ़ बैठे और पूर्व के देशों का हजारों वर्षों का ऐकान्तिक जीवन एकाएक टूट गया। चीन और जापान का इतिहास भी यही बताता है कि पश्चिम ने पूर्व के ऊपर बलात् छा जाने का प्रयत्न किया। किन्तु उक्त दोनों देशों के इतिहास का शेष भाग कुछ छिन्न-भिन्न हो गया और जब पश्चिमी राष्ट्र चीन और जापान में आ ही गये तो दोनों ने भिन्न उपायों का अवलम्बन लेकर तिरस्कार-योग्य पश्चिमी देशों का भिन्न प्रकार से स्वागत किया। एक ओर चीन (China) का धन और उसकी कमजोरी तथा आपसी फूट विदेशियों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे और इसीलिए विदेशियों ने चीन को खुलकर और डटकर लूटा। चीन के ऊपर पश्चिमी सभ्यता ने यहाँ तक अधिकार जमा लिया था कि ऐसा प्रतीत होने लगा मानो चीन का सारा साम्राज्य ही पश्चिमी राष्ट्रों के अधिकार में चला जायगा; किन्तु इसके विपरीत जापान ने समय की आवश्यकतानुसार पैंतरा बदल लिया। उसने शत्रुओं के विरुद्ध उन्हीं के हथियारों का प्रयोग किया। उसने भी उसी चालाकी और मक्कारी का आश्रय लिया जिसके पश्चिमी देश अभ्यस्त थे। उसने उन्हीं का जामा पहिना; उन्हीं की सी अपनी भी महत्त्वाकांक्षाएँ बनाईं, उन्हीं के समान उसने भी अपने आपको सशस्त्र किया और फिर उनको ऊपरी मन से मित्र कहकर उनका अभिवादन किया। उसने अपने समस्त भू-भाग को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त रखा तथा साम्राज्य-विस्तार के लिए और व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से जापान पश्चिमी राष्ट्रों की प्रतिस्पर्द्धा करने लगा। यही नहीं, अब जापान ने पैर फैलाने प्रारम्भ किए और उसने चीन से प्रदेशों की माँग की। अन्त में चूँकि पश्चिमी राष्ट्र दूर थे अतः उनकी असुविधा का लाभ उठाते हुए जापान ने पश्चिमी राष्ट्रों को मात दे दी और दूसरे युद्ध में वह स्वयं पूर्व के उपर छा जाने के प्रयत्न में सफल हो गया।

वास्तव में पूर्व १९वीं शताब्दी तक ऐकान्तिक जीवन बिता रहा था। वह आत्म-निर्भर था और अपने अकेलेपन में मस्त था। चीन ने जानबूझकर अपनी ऐकान्तिक जीवनचर्या को नहीं त्यागा। पूर्व के ऊपर तो पश्चिम ने डोरे डालने प्रारम्भ किये और अन्त में उसने जबर्दस्ती पूर्व को अपने अधिकार में कर लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन के पूर्व में समुद्र था, पश्चिम तथा उत्तर में रेगिस्तान तथा पहाड़ थे अतः वह अपने आपको अजेय समझता था, इसके अतिरिक्त चीन को अपनी सभ्यता पर गर्व था अतः वह शान्त और निर्भर था तथा विदेशियो से घृणा करता था। जबकि बर्बर और लुटेरे विदेशियों के साम्राज्य बन रहे थे और गिर रहे थे, चीन का विदेशों से बहुत कम सम्पर्क था। रोम के सौदागर प्रायः सिल्क का व्यापार करने चीन आया करते थे; कभी-कभी अरबों और फारसवासियों को चीन के सम्राट् की कृपा प्राप्त हो जाया करती थी, रोमन कैथोलिक चर्च कभी-कभी अपने धर्म-प्रचारकों को चीन में धर्म-प्रचार के हेतु भेजते थे किन्तु चीन के लोग उन पादरियों को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। कभी-कभी यात्री लोग कैथे (Cathay) तक जाते थे और लौट कर वे पश्चिमवासियों को सुनाया करते थे कि पूर्व में धन के अपार भण्डार हैं।

चीनियों का ऐकान्तिक जीवन और विदेशियों के प्रति उनका घृणा-भाव

यूरोप के लोग चीन को सोने की चिड़िया समझते थे और उन लोगों का विचार था कि ज्योंही सुविधा हो, उक्त चिड़िया को हस्तगत करना चाहिए। पश्चिमी लोलुपता के सहारे पश्चिमी व्यापार और क्रिया-कलाप चले; और जब समुद्री मार्गों का अनुसन्धान हो गया तो समुद्री राष्ट्रों के जहाज पूर्व की ओर चल पड़े।

धीरे-धीरे यूरोपीय व्यापारियों ने चीन में पैर जमाना प्रारम्भ किया और फलस्वरूप चीन की एकान्तता टूटने लगी। अब यूरोपीय देश चीन के दक्षिणी किनारे से जोंक की तरह चिपट गये। १६वीं शताब्दी में पुर्तगाली लोग मकाओ (Macao) में बस गये। सत्रहवीं शताब्दी में हालैण्ड (Holland) के व्यापारी, स्पेन के व्यापारी और अंग्रेज व्यापारी कैण्टन (Canton) में जम गये, यद्यपि चीनी साम्राज्य ने इन विदेशी व्यापारियों का स्वागत नहीं किया था फिर भी वह उन्हें अपने साम्राज्य से हटा नहीं सका। चीनी साम्राज्य ने विदेशी व्यापारियों की हर प्रकार अप्रतिष्ठा की, और उनके ऊपर तरह-तरह के बन्धन लगाये। चीन में यूरोपीय आगन्तुकों को सम्राट् के समक्ष पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम करना पड़ता था। यही नहीं, विदेशियों को चीनी नागरिकता प्राप्त करने के सम्बन्ध में भारी असुविधाएँ थीं। विदेशियों की प्राइवेट जिन्दगी में हस्तक्षेप किया जाता था और उनके व्यापार को तरह-तरह की हानियाँ पहुँचाई जाती थीं। इसके अतिरिक्त विदेशियों के ऊपर कई प्रकार के कर भी लगाये जाते थे तथा उनको चीनी भाषा सीखने की सुविधा भी नहीं थी। चीनी लोग यूरोपियनों को घटिया दर्जे के नागरिक मानते थे और उनकी कष्ट-गाथाओं पर चीन की सरकार कोई ध्यान नहीं देती थी। फिर भी चीन इन आगन्तुकों से अपना पीछा न छुड़ा सका। यद्यपि विदेशी व्यापारी बारम्बार प्रार्थना कर रहे थे कि उन्हें रियायतें दी जाएँ किन्तु जवाब में उनको बन्धन और अधिकाधिक मर्यादाओं का सामना करना पड़ रहा था। फिर भी इतनी अपार कठिनाइयों के बावजूद वे लोग चीन में व्यापार करते ही रहे।

यूरोप द्वारा चीन को पटाने के प्रयत्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं दिनों एक अन्य राष्ट्र भी चीन में प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था। यह राष्ट्र रूस था जो चीन के उत्तर की ओर स्थल मार्ग द्वारा चीन पर छा जाने का प्रयत्न कर रहा था। रूस भी चीन के साथ व्यापार सम्बन्धी सुविधाएँ चाहता था किन्तु उसका एशियाई साम्राज्य चीन की प्रादेशिक सीमाओं को छूता था अतः प्रायः चीन और रूस में सीमा-संघर्ष होते रहते थे। इन सीमा-युद्धों के निवारणार्थ चीन की सरकार ने १६८९ में रूस के साथ एक सन्धि की जिसको नर्चकिंक (Nerschink) की सन्धि कहते हैं। यह प्रथम सन्धि थी जो चीन और एक यूरोपीय देश के बीच हुई थी। चीन ने रूस को व्यापार करने के अधिकार तो दिए किन्तु उन अधिकारों पर कई प्रकार की मर्यादाएँ लगा दी गईं। उदाहरणार्थ रूसियों को समुद्री मार्ग द्वारा व्यापार करने की सुविधा नहीं दी गई। चूंकि वे स्थल मार्ग से चीन में आये थे अतः उनको केवल स्थल मार्ग से ही व्यापार करने की सुविधा दी गई। रूसियों के लिए आवश्यक था कि वे चीनियों के सामने झुककर दण्डवत् प्रणाम करें। जब कई महीने की कठिन यात्रा करने के बाद रूसी कारवाँ चीनी सीमाओं पर पहुँचते थे तो चीनी सैनिक ही उनको अपने साथ लेकर चीन में प्रवेश करने देते थे और उनको पेकिंग (Peking) तक पहुँचाते थे। उनको पेकिंग से बाहर जाने की आज्ञा नहीं थी और उन्हें अपना माल आवश्यकतः पेकिंग में ही किसी भी मूल्य पर बेचना पड़ता था। उनके माल को खरीदने की केवल थोड़े से चीनी व्यापारियों को ही आज्ञा थी। बदले में रूसी व्यापारियों को केवल कुछ प्रकार की सामग्रियाँ ही अत्यन्त ऊँचे दामों पर खरीदने की सुविधा थी। इसके पश्चात् रूसी व्यापारियों के कारवाँ को चीनी सैनिक चीनी सीमाओं के बाहर तक पहुँचा देते थे। इसके बाद १८वीं शताब्दी में चीन और रूस के बीच कई सन्धियाँ हुईं किन्तु रूसी व्यापार को विशेष विस्तार सम्बन्धी सुविधाएँ नहीं दी गईं; और चूंकि रूस को विशेष लाभ नहीं था अतः रूस और चीनी के बीच का व्यापार प्रायः ठप्प हो गया।

इस प्रकार चाहे रूस को चीन में विशेष मान्यता मिली हो, किन्तु समुद्री देश ही चीन में लाभ की स्थिति में रहे। दक्षिणी चीन के समुद्री किनारों पर चाय, सिल्क, और अन्य वस्तुओं का व्यापार निरन्तर उन्नति करता गया और यूरोपीय व्यापारियों ने मनमाने लाभ उठाये। चूंकि चीन के स्थानीय अधिकारी भ्रष्ट थे अतः उन्होंने मनमाने लाभ उठाये और द्वितीयतः उन भ्रष्ट अधिकारियों ने अपने व्यक्तिगत लाभ के पीछे यूरोपीय व्यापारियों को दूरस्थ पेकिंग सरकार से भी हर प्रकार की रियायतें दिलवाईं। विशेष रूप से ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने चीन से व्यापार करके भारी उन्नति की थी। ज्यों-ज्यों उक्त कम्पनी का व्यापार उन्नति करता गया, त्यों-त्यों वह माँग करती गई कि उसके ऊपर से व्यापारिक प्रतिबन्ध हटाये जाएँ तथा उसको बराबरी की व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान की जाएँ और इस दिशा में लिखित सन्धि की जाय। ब्रिटिश सरकार ने अब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से सरकारी स्तर पर चीन सरकार से लिखा-पढ़ी की; किन्तु चीन की सरकार ने नहीं माना। न तो निजी तौर पर व्यक्तिगत सुझावों का कोई फल निकला, न कम्पनी के अभिकर्त्ताओं के प्रयत्नों से कोई लाभ हुआ और न ब्रिटिश सरकार के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्टमण्डलों[1] के हस्तक्षेप से चीन की सरकार मानी। ब्रिटिश सम्राट् जार्ज तृतीय और ब्रिटिश रीजेण्ट ने जो उपहार चीनी सम्राट् की सेवा में भेजे थे इनको चीन के सम्राट् ने राजकर के रूप में स्वीकार कर लिया। चीनी सम्राट् ने उन राजकरों को भी केवल इसलिए स्वीकार कर लिया था कि ब्रिटिश सरकार ने अत्यन्त विनयभाव के साथ उन्हें चीन के सम्राट् की सेवा में प्रेषित किया था। परंतु, चीन की सरकार ने ब्रिटिश सम्राट् की व्यापारिक सन्धि सम्बन्धी प्रार्थना को ठुकरा दिया। चीन ने स्पष्ट शब्दों में बतला दिया कि वह किसी भी पश्चिमी देश के साथ किसी प्रकार की सन्धि नहीं करेगा। चीन तो केवल पश्चिमी व्यापारियों को व्यापारियों के रूप में आने देने के लिए सहमत था और उन्हें एक अधीन देश की प्रजा के रूप में व्यापारिक सुविधाएँ देने के लिए तैयार था। चीन न तो पश्चिमी देशों के प्रति आकर्षित था और न वह उनसे व्यापार सम्बन्ध बढ़ाने का इच्छुक था। अतः यदि पश्चिमी देशों के लोग चीन के साथ व्यापार करने के इच्छुक थे तो उनके लिए आवश्यक था कि वे चीन की मनमानी शर्तों पर चीन में प्रवेश करें। १३० वर्ष पूर्व चीन के सम्राट् च्येन लंग (Chien Lung) ने ब्रिटिश साम्राज्य जार्ज तृतीय को लिखा था—"आपके राजदूत ने अपनी आँखों से स्वयं ही देखा होगा कि हमारे पास किसी वस्तु का अभाव नहीं है। मुझे नई वस्तुओं अथवा सुन्दर वस्तुओं का मोह नहीं है। मुझे आपके देश की बनी हुई वस्तुओं की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है।"[2] कुछ तो इस कारण कि चीन के लोग पश्चिमी विदेशियों के

१. ब्रिटिश सरकार ने चीन के सम्राट् की सेवा में दो शिष्टमण्डल भेजे थे। प्रथम शिष्टमण्डल १७९३ में लार्ड मैकार्टने (Lord Macartney) के नेतृत्व में भेजा गया था तथा द्वितीय शिष्टमण्डल १८१६ में लार्ड एमहर्स्ट (Lord Amherst) के नेतृत्व में भेजा गया था। लार्ड मैकार्टने के शिष्टमण्डल के सदस्यों को चीन के सम्राट् के दरबार में इस शर्त पर उपस्थित होने दिया गया था कि वह शिष्टमण्डल यह स्वीकार कर ले कि वह इंग्लैण्ड से राजकर या उपहार (Tribute) लेकर चीन के सम्राट की सेवा में उक्त राजकर को भेंट करने ही आया था।

२. चीन के सम्राट् ने ब्रिटिश सम्राट् जार्ज तृतीय (George III) को जो अधिकारपूर्ण आज्ञा-पत्र (Mandate) लिखा उसमें से कुछ अन्य उद्धरण दिए जा रहे हैं। "ऐ राजा जार्ज तृतीय! आप बहुत दूर समुद्र पार के देशों में रहते हैं। फिर भी चूँकि आपने हमसे विनम्र प्रार्थना की है कि आप हमारी उच्च एवं उन्नतिशील सभ्यता से लाभान्वित होना चाहते हैं और चूँकि आपने-अपने एक शिष्टमण्डल (Mission) द्वारा अपनी प्रार्थना हमारी सेवा मे उपस्थित की है।...हमने आपकी प्रार्थना को पढ़ा है। इसकी भाषा अत्यन्त विनीत है, अतः हम इसको पढ़कर प्रसन्न हुए।

"चूँकि आपका दूत और उसका साथी बहुत दूर से आए हैं और वे साथ में आपकी प्रार्थना और आप की ओर से उपहार अथवा राजकर भेंट करने लाए हैं अतः हमने उनको उचित आदर-सत्कार प्रदान किया है और उनको अपने समक्ष उपस्थित होने की आज्ञा प्रदान की। हमने आप के दूतों पर अनुग्रह किया कि उनको शाही दावत के लिए आमन्त्रित किया और उनको बहुमूल्य भेंट और इनाम दिये।...

"आपने प्रार्थना की है कि आप अपने किसी ऐसे अधिकारी को हमारे राज-दरबार में भेजना चाहते हैं जो आपके देश का तथा चीन का व्यापार नियन्त्रित करे। आपकी यह प्रार्थना हमारे राजवंश की परम्पराओं और प्रार्थनाओं के सर्वथा विरुद्ध है। अतः हम प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकते। हमने आपकी इस प्रार्थना पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति घृणा-भाव रखते थे और कुछ इस कारण कि चीनी व्यापारी इंग्लैण्ड या किसी अन्य पश्चिमी देश में जाकर व्यापारिक लौट-फेर करने के लिए उत्सुक नहीं थे। अतः चीन में पश्चिमी देशों का व्यापार प्रायः ठप्प हो गया। वास्तव में चीन और यूरोप का व्यापार प्रायः इकतरफा बना रहता किन्तु अफ़ीम एक ऐसी चीज़ थी कि जिसकी माँग चीन में लगातार बढ़ती गई, और इसी अफ़ीम के व्यापार से चीन के इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

पूर्व और पश्चिम के इस लम्बे विवाद का अन्त में युद्ध द्वारा निर्णय हुआ और इस दिशा में ब्रिटेन ने पहल की। १८१६ में लार्ड एम्हर्स्ट (Lord Amherst) के विफल प्रयत्न के पश्चात् चीन और इंग्लैण्ड के सम्बन्धों में निरन्तर दरार बढ़ती गई। इन्हीं दिनों ब्रिटेन और चीन के पारस्परिक व्यापार में भी वृद्धि हुई थी। जब १८३४ में ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया तो कई नए प्रतिद्वन्द्वी चीन के साथ व्यापार करने के लिए मैदान में आ गए। एक ओर तो चूँकि ब्रिटेन का व्यापार उन्नति कर रहा था, अतः उस व्यापार के विनियमन करने की आवश्यकता थी; दूसरी ओर चीनी सरकार ब्रिटेन के प्रति शत्रुभाव रखती थी और ज्यों-ज्यों ब्रिटिश व्यापार उन्नति कर रहा था, त्यों-त्यों चीनी सरकार ब्रिटिश हितों पर नियन्त्रण लगाती जा रही थी। १८३३ में ग्रेट ब्रिटेन ने व्यापार-अधिकारी (Trade Superintendent) की नियुक्ति की जिसे चीनी लोग बर्बर प्रहरी (Barbarian eye) कहते थे। प्रथम व्यापार अधिकारी लार्ड नेपियर (Lord Napier) को बनाया गया। वह कृतसंकल्प होकर चीन को चला था कि चीन में ब्रिटिश व्यापार के हितों की दृढ़तापूर्वक रक्षा की जाएगी। वह चाहता था कि चीन में व्यापार करने वाले ब्रिटिश नागरिकों को समानता के अधिकार दिए जाएँ। किन्तु चीन की सरकार ने लार्ड नेपियर के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित कर दीं। चीन की सरकार चाहती थी कि ब्रिटिश व्यापारी चीन की अधीनता में व्यापार करें किन्तु लार्ड नेपियर ने

यूरोप के द्वारा चीन के ऊपर बेजा दबाव

विचार किया कि आप हमारी उक्त संस्कृति से लाभान्वित होना चाहते हैं, किन्तु इस संबन्ध में हमको कहना है कि हमारी प्रथाएँ और हमारी विधियाँ आपकी प्रथाओं और आपके नियमों से इतनी भिन्न हैं कि यदि किसी प्रकार आपके दूत हमारी सभ्यता और संस्कृति के संसर्ग से कुछ लाभान्वित हो भी सके तो भी आप हमारे देश की प्रथाओं और आचार-व्यवहार को अपने देश में पल्लवित न कर सकेंगे। अतः आपके राजदूतों को अपने दरबार में आश्रय यदि मैं दे भी दूँ तो भी इससे उनको और आपके देशवासियों को कोई स्थाई लाभ नहीं होगा।

"हमारा सारे संसार पर शासन है और हमारा केवल एक ही उद्देश्य है कि हम न्यायप्रिय शासन करें और राज्य तथा प्रजा का हित-साधन करते रहें। हमको नई अथवा सुन्दर वस्तुओं का मोह नहीं है। यदि हमने आपकी भेजी हुई भेंट या राजकर के रूप में भेजे हुए उपहार स्वीकार कर लिए हैं तो उसका कारण केवल यह था कि आपने इतनी दूर से हमको अत्यन्त आदर के साथ उक्त राजकर भेंट किया है। हमारे परम महिमान्वित राजवंश के प्रति संसार के प्रत्येक देश का यही व्यवहार रहता है। संसार के सभी देशों के राजाओं ने समय-समय पर हमको समुद्री मार्गों से आकर या स्थल मार्ग से आकर हमारी सेवा में अत्यन्त अनुपम और बहुमूल्य भेंटें दी हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं माना। फलस्वरूप उसके प्रयत्नों में गतिरोध हो गया और व्यापार शनैः ठप्प ही होने जा रहा था कि १८३४ में लार्ड नेपियर की असामयिक मृत्यु हो गई। वास्तव में लार्ड नेपियर को सफलता नहीं मिली। केवल उसने चीन की सरकार को भड़काया और अप्रसन्न किया।

इस प्रकार की तनावपूर्ण स्थिति में अफ़ीम के व्यापार सम्बन्धी प्रश्न ने संकट-काल उपस्थित कर दिया। पुर्तगालियों के चीन में प्रवेश करने से पहले ही चीन-वासियों को अफ़ीम का शौक हो गया था, किन्तु अफ़ीम का प्रयोग १७७३ के बाद चीन में बहुत बढ़ गया था क्योंकि उस वर्ष अंग्रेज़ों ने भारतीय अफ़ीम चीन के हाथों खुलकर बेची। चूंकि चीन में भारतीय अफ़ीम की बहुत मांग थी अतः यह व्यापार का माध्यम बन गई। ज्यों-ज्यों अधिकाधिक मात्रा में अफ़ी का आयात होने लगा त्यों-त्यों चीन में अफ़ीम की मांग भी बढ़ती गई। इस प्रकार पन्द्रह वर्षों के अन्दर चीन में अफ़ीम का आयात चौगुना बढ़ गया। चीन की सरकार ने १७२९ के बाद बारम्बार अफ़ीम के आयात को रोकना चाहा और अफ़ीम के प्रयोग पर भी पाबन्दियाँ लगाईं किन्तु कोई परिणाम नहीं हुआ। १८०० में अफ़ीम के व्यापार को पूर्णतया निषिद्ध कर दिया गया, फिर भी अफ़ीम का व्यापार बढ़ता ही गया क्योंकि स्थानीय-चीनी अधिकारियों की स्वीकृति से ब्रिटिश व्यापारी चोरी से चीन में माल लाते रहे। स्थानीय चीनी अधिकारी इस तस्कर व्यापार से मनमाना व्यक्तिगत लाभ उठाते रहे। १८३३ में एक चीनी अधिकारी कैंटन पहुंचा जहाँ वह अफ़ीम के तस्कर व्यापार को रोकना चाहता था किन्तु उसने भारी आश्चर्य के साथ देखा कि उसका विरोध न केवल विदेशी व्यापारी कर रहे थे बल्कि स्वयं चीनी अधिकारी भी उसके प्रयत्नों में बाधक हो रहे थे। उसको यह देखकर भारी निराशा हुई कि उसने जिन नौकाओं को तस्कर व्यापार रोकने के लिए नियुक्त किया था वही नौकाएँ अफ़ीम के तस्कर व्यापार को सहायता देने लगी थीं।

प्रथम चीन युद्ध १८३९-४२ या प्रथम अफ़ीम युद्ध

इस पर १८३९ में चीनी सरकार ने लिन (Lin) नामक एक विशेष कमिश्नर को चोरी से अफ़ीम लाने के कार्य का दमन करने के लिए तथा अफ़ीम के आयात को बन्द करने के लिए भेजा। उसने ब्रिटिश व्यापारियों से मांग की कि वे अपना अफ़ीम का सारा स्टाक उसके हवाले कर दें और उसने उन्हें यह भी धमकी दी कि यदि वे सारी अफ़ीम उसके हवाले न करेंगे तो वह ब्रिटिश व्यापारियों को पकड़ लेगा और इस प्रकार उनको भूखों मरना पड़ सकता था। बचाव का और कोई उपाय न देख कर तत्कालीन ब्रिटिश व्यापार-अधिकारी (Superintendent of Trade), कैप्टन ईलियट (Captain Elliot) ने भी ब्रिटिश व्यापारियों को यह सलाह दी कि वे अपने अफ़ीम के २०,००० बक्से चीनी अधिकारी के हवाले कर दें। वास्तव में कप्तान ईलियट पहले ही से ब्रिटिश व्यापारियों को यह सलाह दे रहा था कि वे तस्कर व्यापार बन्द कर दें। अफ़ीम के उक्त २०,००० बक्से नष्ट कर दिए गए। कप्तान ईलियट ने विरोध किया और उसने घोषणा की कि सम्राज्ञी विक्टोरिया चीन की सरकार से इस हानि का बदला लेंगी। इसके पश्चात् कमिश्नर लिन (Lin) ने अंग्रेज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारियों से प्रतिज्ञा करानी चाही कि वे कभी भी भविष्य में अफ़ीम का तस्कर व्यापार न करेंगे। उसने उनको यह भी धमकी दी कि यदि वे कभी इस आज्ञा का उल्लंघन करेंगे तो उनके विरुद्ध चीनी विधि के अनुसार कठोरतम कार्यवाही की जा सकती है अर्थात् उनको प्राणदण्ड तक दिया जा सकता है। चीनी सरकार ने उक्त निर्णय करते समय बड़ी ही उद्धतता से काम लिया था। सत्य यह है कि दोनों पक्ष अपनी जगह हठ कर रहे थे और किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार न थे। इसके पश्चात् दोनों ओर से हिंसक कार्यवाहियाँ हुईं जिससे शान्तिमय निर्णय करना अतीव कठिन हो गया और दोनों ओर तीव्र उत्तेजना जाग्रत हो गई। संक्षेप में दोनों पक्ष युद्ध की ओर अग्रसर हो रहे थे।

उन्हीं दिनों कैण्टन (Canton) नदी के मुहाने में ब्रिटिश युद्ध बेड़े के दो युद्ध-पोत लंगर डाले पड़े थे। उन्होंने युद्ध की पहल की, तथा २९ चीनी नौकाओं को, जो अंग्रेजी युद्ध-पोतों के ऊपर आक्रमण के हेतु वहाँ एकत्रित की गई थीं, तितर-बितर कर दिया। इस मुठभेड़ को चीनी अधिकारियों ने चीनी सम्राट् के दरबार में अपनी विजय के रूप में निवेदित किया। इससे चीनी सम्राट् ने प्रसन्न होकर उक्त नौकाओं के संचालक (Admiral) की पदोन्नति की और उसने घोषणा की कि भविष्य में ब्रिटिश व्यापारी चीन में किसी प्रकार का व्यापार न कर सकेंगे।

यह युद्ध, जिसे प्रथम अफ़ीम युद्ध या प्रथम चीनी युद्ध भी कहा जाता है, तीन वर्षों तक चला जिसमें कई बार ब्रिटेन की जीत हुई। बीच में कई बार सुलह के असफल प्रयत्न भी किए गए। चेर्सन (Cherson) का द्वीप ब्रिटिश अधिकारियों के अधिकार में आ गया और निंगपो (Ningpo) तथा एमॉय (Amoy) नामक नगरों पर भी ब्रिटिश अधिकार हो गया। यही नहीं, शंघाई (Shanghai) का बन्दरगाह और हाँगकाँग (Hongkong) द्वीप भी विदेशियों ने हथिया लिये। चीन की तत्कालीन राजधानी पेकिंग (Peking) पर भी आक्रमण किया गया तथा प्राचीन राजधानी नानकिंग[1] (Nanking) पर भी सीधा आक्रमण किया गया। अब चीन के सम्राट् ने संधि की। कारण यह था कि चीन अपनी रक्षा करने में असमर्थ था। केवल नानकिंग (Nanking) में कुछ सैनिक चौकियाँ तथा कुछ अन्य रक्षा-साधन थे। चीन के पास केवल कुछ शाही आज्ञाएँ थीं तथा चीनियों का साहस था जिनके बल पर वे अपनी रक्षा करना चाहते थे किन्तु वे दोनों साधन जवाब दे चुके थे। चीन सरकार बारम्बार आज्ञाएँ निकालती थी कि विद्रोही जंगलियों (Rebellious Barbarians) को निकाल दो। कई आज्ञाओं में कमिश्नर लिन (Lin) और उसके अधिकारियों को पदच्युत करके अन्य अधिकारियों को नियुक्त किया गया और उनको आज्ञा दी गई कि वे पेकिंग (Paking) पहुंचकर दुष्ट विदेशियों को नष्ट कर दें किन्तु उक्त सभी आज्ञाएँ व्यर्थ गईं और कमिश्नर लिन तथा उसके उत्तराधिकारियों की मान-हानि हुई। चीनियों ने अपूर्व साहस का परिचय दिया और नानकिंग (Nanking) के पुनः हस्तगत करने के प्रयत्न में चीनी लोग बहुत बड़ी संख्या में मारे गए, यद्यपि उनमें से बहुत से सामने

१. १९२८ में चीन के कोमिन-ताँग (Kuomin-Tang) दल ने पुनः नानकिंग (Nanking) को चीन की राजधानी बनाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पक्ष के लोगों द्वारा मारे गये थे किन्तु शत्रुओं के हाथों से उतने लोग नहीं मारे गये थे।

ग्रेट ब्रिटेन की विजय, वास्तव में आधुनिक शस्त्रास्त्रों की तथा पश्चिमी सभ्यता की विजय थी। इस विजय पर यूरोप की समस्त १९वीं शताब्दी की सुदूर पूर्वीय नीति निर्धारित की गई। इसी विजय के आधार पर चीन का द्वार विदेशियों के लिए खुला और इसी विजय ने जापान को संसार की प्रथम कोटि की शक्तियों की पंक्ति में ला खड़ा किया और इसी विजय के फलस्वरूप जापान की रुचि प्रशान्त महासागर की समस्याओं की ओर बढ़ी। इस विजय ने चीन की आँखें खोल दीं और उसको विश्वास हो गया कि उसे यूरोप की माँगों के सामने झुकना पड़ेगा और यूरोप वालों को भी विश्वास हो गया कि चीन उनके आगे टिक नहीं सकता। यह सत्य है कि इस तथाकथित अफ़ीम युद्ध का उद्देश्य यह था कि चीन में अफ़ीम का तस्कर व्यापार चले। युद्ध का परिणाम अनुकूल हुआ। किन्तु इस यद्ध के कुछ और भी छिपे हुए उद्देश्य थे।[1] विदेशी व्यापार और विदेशी व्यापारियों की स्थिति भी अफ़ीम के व्यापार के प्रश्न से जुड़ी हुई थी। इस युद्ध द्वारा पश्चिमी देशों ने चीन के ऊपर दबाव डाला कि उन्हें चीन में व्यापार करने का स्वाभाविक हक मिलना चाहिए, तथा चीन में यूरोपीय सभ्यता को रोका नहीं जा सकता और इस युद्ध द्वारा यह भी चाहा गया था कि चीन में विदेशियों को समानता के आधार पर स्वीकार करना ही होगा। यदि ब्रिटिश व्यापारियों को उपरोक्त तीनों अधिकार मिल गये होते तो सम्भवतः अफीम युद्ध की नौबत कभी न आती। इसके विपरीत यदि इस युद्ध में चीन की विजय हो गई होती तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्रिटिश व्यापारियों को ही नहीं, किसी भी यूरोपियन को चीन में प्रवेश न मिलता।

नानकिंग (Nanking) की सन्धि द्वारा अफ़ीम का युद्ध समाप्त हुआ। इस सन्धि के अनुसार चीन प्रथम बार किसी पश्चिमी देश के साथ सन्धि[2] की शर्तों

---

१. प्रथम अफीम युद्ध के उद्देश्यों को एक चीनी विद्वान् की भाषा में उसी की लेखनी द्वारा लिखित देखिये। वह लिखता है—"विदेशी लेखकों का कहना है कि इस युद्ध का कारण यह था कि पश्चिमी देश बराबरी के आधार पर चीन के साथ दौत्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे तथा व्यापार के संबंध में बराबरी के अधिकार चाहते थे। किन्तु बराबरी और समानता! बराबरी और समानता का प्रश्न ही कहाँ उठता है जब चीन को यह स्वतन्त्रता भी न रही कि वह भयंकर और विषैली तथा हानिकर औषधियों का आयात निषिद्ध कर सकता। निस्संदेह बराबरी और समानता का तो बहाना मात्र था। हमारी स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में भी यही लिखा है और हमारे अध्यापक भी लेक्चरों में अपने शिष्यों को यही बताते हैं कि अफीम युद्ध का कारण यह था कि चीनी लोग इंग्लैंड के साथ व्यापारिक सम्बन्धों को तोड़ना चाहते थे। सत्य यह है कि हमारे देशवासियों को अफीम से उतनी हानि नहीं हुई है जितनी कि साम्राज्यवादी जहर से हुई है।" (Wong Ching-Wai, 1927, *China and the Nations.*)

२. चीन ने रूस (Russia) को वे व्यापारिक सुविधाएँ देना अस्वीकृत कर दिया जो अन्य पश्चिमी देशों को दी गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा आबद्ध हुआ। इस सन्धि के अनुसार चीन ने इंग्लैण्ड को हांगकांग (Hong Kong) दे दिया और यूरोपीय व्यापार के लिए कैंटन (Canton), फूचो (Foochow), निंगपो (Ningpo), एमॉय (Amoy) और शंघाई (Shanghai) के पाँच बन्दरगाह खोल दिए। इस प्रकार प्रायः सारा दक्षिणी चीन यूरोपीय व्यापार के लिए खोल दिया गया। चीन युद्ध का भारी हर्जाना देने के लिए भी तैयार हो गया तथा उसने इंग्लैण्ड से समान स्तर पर वार्ता करना भी स्वीकार कर लिया। चीन ने यह भी स्वीकार कर लिया कि ब्रिटिश सामग्रियों पर उचित आगम शुल्क लिए जायेंगे तथा चीन के व्यापार पर से को-होंग (Co-Hong) का एकाधिकार हटा दिया जायगा।[1]

नानकिंग की सन्धि (१८४२)

ब्रिटिश बन्दूकों ने चीन में एक दरार बना दी थी जिसके बनाये हुए मार्ग से न केवल पश्चिमी देशों का व्यापार चल पड़ा बल्कि उस दरार द्वारा यूरोप की अन्य जातियों ने भी चीन में प्रवेश किया। १८४४ में ब्रिटिश विजय से लाभ उठाने के लिए अमेरिका और फ्रांस ने भी चीन में प्रवेश किया और पुनः तीन वर्ष पश्चात् नार्वे (Norway) और स्वीडन (Sweden) ने भी चीन के साथ सन्धि करके चीन में प्रवेश प्राप्त किया। इनके अतिरिक्त बेल्जियम (Belgium) ने भी ब्रिटिश-चीनी सन्धि के पाँच बन्दरगाहों पर व्यापार करने का विशेषाधिकार प्राप्त कर लिया।

किन्तु ऐतिहासिक सम्भावनाओं की दृष्टि से यह सम्भव नहीं था कि चीन की स्थिति सदैव वही बनी रहती जो उक्त सन्धियों द्वारा उत्पन्न हो गई थी। यह भी सम्भव नहीं था कि यूरोप को जितनी सुविधाएँ प्राप्त हुई थीं उनसे और अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने का वह प्रयत्न न करता। यूरोप को चीन में प्रवेश प्राप्त हो चुका था। किन्तु केवल प्रवेश मात्र ही प्राप्त नहीं हुआ था। यूरोप की स्थिति दुःखपूर्ण थी। अभी यूरोप के पैर अच्छी तरह जमे नहीं थे। यद्यपि १८४२ की सन्धि द्वारा यह मान लिया गया था कि चीनी राजदरबार में सरकारी स्तर पर वार्ता करते समय ब्रिटिश अधिकारियों को चीनी अधिकारियों के समान दर्जा प्राप्त होगा, किन्तु इसके यह अर्थ नहीं थे कि बन्दरगाहों पर भी यूरोपीय व्यापारियों के साथ भेद-भाव नहीं बरता जायगा। चीन में ऐसा माध्यम नहीं था जिसके द्वारा दौत्य कर्म अथवा कूटनीतिक वार्त्तालाप की सुविधा हो। चीन में न तो विदेश मन्त्रालय (Foreign office) था और न चीन ने विदेशों में अपने दूतावास (Embassies) खोल रखे थे। पूर्वी देशों के लोग अपने आपको श्रेष्ठ जाति के लोग समझते थे और वे प्रायः विदेशियों के साथ भला बर्ताव नहीं करते थे। कैंटन (Canton) के लोगों को यह अच्छा नहीं लगा कि १८४२ की सन्धि के अनुसार उनका बन्दरगाह विदेशियों के

---

१. को-होंग (Co-Hong) चीनी व्यापारियों का एक प्राइवेट निगम था और यूरोपीय व्यापारी केवल को-होंग व्यापारी वर्ग के साथ ही चीन में व्यापार कर सकते थे। चूंकि को-होंग का एकाधिकार था, अतः वे अत्यधिक ऊँची कीमतों पर चीन का माल बेचते थे। यूरोपीय व्यापारी के पास ऐसा कोई उपाय नहीं था जिसके द्वारा वह किसी दिवालिया व्यापारी से अपना रुपया वसूल कर सकता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मुक्त कर दिया गया। उन्होंने लिखित पोस्टर प्रदर्शित किये जिनमें लिखा था कि "यदि बर्बर विदेशी कैंटन के इधर-उधर जायेंगे तो उन्हें मार डाला जायगा और सारे नगर में घास और पेड़-पत्ती तक छील डाली जायगी ताकि विदेशी भूखों मर जायें।" यद्यपि पामर्सटन (Palmerston) ने शक्ति के प्रदर्शन का संकेत किया तथा कैंटन (Canton) नगर पर कई बार मुसीबतें आईं फिर भी ब्रिटेन और चीन में मैत्री और सौहार्द का सूत्रपात न हो सका।

यद्यपि १८४२ की सन्धि से ब्रिटिश व्यापारी निश्चित लाभ की स्थिति में रहे थे फिर भी वे असन्तोष व्यक्त करते रहे और इस बात पर बल देते रहे कि उनके अधिकार बढ़ाये जाएँ तथा उक्त सन्धि पर पुनः विचार किया जाय। वे अपने लाभों से सन्तुष्ट नहीं थे फिर भी वे भारी संख्या में आते रहे। सत्य यह है कि ब्रिटेन की नीयत समस्त यांग्त्सी की वादी (Yangtse Valley) पर अधिकार कर लेने की थी। किन्तु १८४२ की सन्धि की पुनर्निरीक्षण सम्बन्धी ब्रिटिश माँगों का चीन सदा विरोध करता रहा।

अफीम के युद्ध ने चीन की दुर्बलता को प्रकट कर दिया था। अतः नानकिंग (Nanking) की सन्धि से प्राप्त सुविधाओं के बाद और अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों में और अधिक साहस आ गया था। उनके व्यापारिक लोभ ने, जो कि अपने अधिक शक्तिशाली होने की चेतना से अधिक प्रबल हो गया था, उनके मस्तिष्क को युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। चीन में यूरोपियनों का व्यापार निरन्तर उन्नति करता जा रहा था। अंग्रेज लोग सोचने लगे कि सन्धि में प्राप्त पाँच बन्दरगाहों से ही क्योंकर सन्तोष कर लिया जाय। क्यों न चीनी साम्राज्य के अधिकतम भू-भागों पर ब्रिटिश अधिकार हो। और फिर अंग्रेजों के दिमाग में शक्तिशाली होने की चेतना भी अपना काम कर रही थी। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि जिन आधुनिक शस्त्रास्त्रों के बल पर उन्होंने पिछले लाभ प्राप्त किये थे वे शस्त्रास्त्र अब भी उनके अधिकार में थे।

द्वितीय चीन-युद्ध (१८५७-५८)

द्वितीय चीन-युद्ध में इंग्लैण्ड के साथ फ्रांस[1] भी था। अन्य बहुत-सी घटनाओं ने युद्ध की दिशा में उत्तेजना पैदा की। फरवरी, १८५८ में फ्रांस के एक कैथोलिक पादरी को क्वांग्सी (Kwangsi) के स्थानीय अधिकारी ने फाँसी दे दी थी क्योंकि वह सन्धि के बन्दरगाह से चला गया था और उसके ऊपर यह इल्जाम लगाया गया था कि वह विद्रोह कराना चाहता था। फ्रांस के राजदूत ने विरोध-पत्र भेजा और कहा कि फ्रांस के नागरिकों के ऊपर चीनी न्यायाधिकरणों द्वारा निर्णय करके उन्हें दण्डित करना उनके अधिकारों का अतिक्रमण है। उसी वर्ष ऐरो (Arrow) नाम के एक पोत पर ब्रिटिश झण्डा लहरा रहा था जो वास्तव में समुद्री किनारों पर तस्कर व्यापार कर रहा था। उसको चीनी अधिकारियों ने पकड़ लिया। इन दोनों मामलों के तथ्यों की गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है।

---

१. अन्य कुछ देश भी चीन के विरुद्ध थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली घटना अर्थात् फ्रांस के कैथोलिक पादरी की हत्या से फ्रांस में उत्तेजना फैली तथा दूसरी ऐरो (Arrow) नामक पोत सम्बन्धी घटना से ब्रिटेन को बहाना मिल गया। अतः नेपोलियन तृतीय ने चाहा कि क्रीमिया युद्ध की आंग्ल-फ्रांसीसी मैत्री को पुनर्जीवित किया जाय और दोनों देश मिलकर चीन को आक्रान्त करें। युद्ध की घोषणा कर दी गई और यद्यपि १८५७ के प्रारम्भ में भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के छिड़ जाने से चीनी आक्रमण में कुछ विलम्ब हुआ फ़िर भी १८५८ में छोटे से युद्ध के बाद ही चीन झुक गया और सन्धि के लिए तैयार हो गया। चीन जब २० वर्ष पहले केवल इंग्लैण्ड के विरुद्ध खड़ा नहीं रह सका था, तो अब वह इंग्लैण्ड और फ्रांस की सम्मिलित शक्ति के सामने कैसे खड़ा रह सकता था। इसके अतिरिक्त चीन में गृह-युद्ध छिड़ गया क्योंकि भयंकर तैपिंग विद्रोह (Taiping rebellion) के कारण १८५१ से १८६४ तक चीन में भयंकर फूट रही और कई राजवंश चीन के अधिकार के लिए परस्पर लड़ते रहे।[1] पूर्व इसके कि सन्धि की शर्तें स्थिर होतीं; पुनः युद्ध छिड़ गया। इन्हीं युद्धों में ब्रिटिश सैनिकों ने ब्रिटिश अधिकारियों की आज्ञा से चीन के सम्राट् का सुन्दर ग्रीष्म-कालीन आवासगृह नष्ट कर डाला था क्योंकि वे चीनियों से इस बात का बदला लेना चाहते थे कि उन्होंने ब्रिटिश और फ्रेंच कैदियों को अपार यन्त्रणाएँ दी थीं। जब ब्रिटेन और फ्रांस की सम्मिलित फौजें पेकिंग में प्रवेश करने लगीं तो चीनी सरकार सन्धि की बातचीत करने लगी और अन्त में सन्धि की शर्तें निश्चित हो गईं और १८६१ में टींटसिन (Tientsin) में सन्धि पर दोनों ओर के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हो गये।

टींटसिन की सन्धियाँ (१८६१)

टींटसिन (Tientsin) की सन्धियों[2] से चीन और यूरोपीय देशों के बीच के सम्बन्धों पर पुनर्विचार हुआ जिसकी सभी यूरोपीय देश माँग कर रहे थे। इन संधियों द्वारा यूरोपीय देशों को चीन में और अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो गईं। कोलून (Kowloon) ब्रिटेन के अधिकार में दे दिया गया और ग्यारह अन्य नये बन्दरगाहों पर विदेशियों को व्यापार करने की आज्ञा दे दी गई। इस प्रकार कुल सोलह चीनी बन्दरगाहों पर विदेशियों को व्यापार करने की छूट प्राप्त हो गई। इसके अतिरिक्त चीन को इंग्लैण्ड और फ्रांस के लिए बहुत बड़ी धनराशि युद्ध के हर्जाने के रूप में चुकानी पड़ी तथा पेकिंग में विदेशी दूतावासों को रहने की आज्ञा

---

१. तैपिंग का विद्रोह (Taiping Rebellion) कुछ-कुछ मेहदी के विद्रोह (Rising of the Mahdi) से मिलता-जुलता था। यह अर्द्ध-धार्मिक और अर्द्ध-राजनीतिक आन्दोलन था जिसका उद्देश्य मंचू राजपरिवार (Manchu dynasty) को अपदस्थ करना था। इन विद्रोहियों का गढ़ दक्षिणी चीन था और ऐसा समझा जाता था कि नानकिंग (Nanking) इन उपद्रवकारियों की राजधानी थी। १८६३-६४ में जनरल गार्डन (General Gordon) की सहायता से इस विद्रोह का दमन कर दिया गया था।

२. चीन को कष्टमय स्थिति में देखकर रूस ने भी अवसर से लाभ उठाना चाहा और उसने चीन से लाभदायक शर्तें प्राप्त कर लीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल गई। यही नहीं, विदेशी नागरिकों को आज्ञा प्रदान कर दी गई कि वे पासपोर्ट प्राप्त करके चीन के किसी भी भाग में यात्रा कर सकेंगे। चीन की सरकार ने वायदा किया कि चीन में विदेशी धर्म-प्रचारकों के प्राणों की यथासम्भव रक्षा की जायेगी तथा यह भी गारन्टी कर दी गई कि व्यापारिक लेन-देन में विदेशियों को संविदाओं (Contract) की छूट होगी। चीन के अपमान का प्याला इस बात को स्वीकार करने से लबालब भर गया कि विदेशियों को चीन की कानूनी अदालतों द्वारा दण्ड नहीं दिया जायेगा अपितु उन्हें अपने देश की विधियों के अनुसार अपने ही देश में दण्डित किया जा सकेगा।[1]

१८६१ तक चीन का द्वार पश्चिमी विदेशियों के लिये पूरी तरह खुल चुका था यद्यपि यह सब चीन की इच्छा के विरुद्ध हुआ था। पश्चिमी विदेशियों को चीन में व्यापार करने की पूरी छूट मिल चुकी थी। यही नहीं, उन्हें विशेष राज्य-क्षेत्रातीत विशेषाधिकार भी प्राप्त हो चुके थे और पूरी चीनी आगम शुल्क व्यवस्था पर भी प्रायः वे पूरा अधिकार प्राप्त कर चुके थे। विदेशी लोग चीन के आन्तरिक भागों में भी प्रवेश कर गये थे और यांगट्सी (Yangtse) की घाटी में वे मनमाने ढंग से फैल रहे थे। यही नहीं, विदेशी सौदागर चीन की आन्तरिक राजनीति में भी हस्त क्षेप कर रहे थे। शंघाई (Shanghai) में पश्चिमी विदेशियों के इशारों पर एक सेना एकत्र की गई थी जो सदा विजयी सेना (Ever Victorious army) थी। इस सेना को विदेशी व्यापार की सहायता के लिए खड़ा किया गया था। इस सेना में सारे अफ़सर विदेशी ही थे। यह सेना अब चीनी सम्राट की सेना के साथ मिलकर तैपिंग विद्रोह (Taiping Rebellion) का दमन करने में लगी हुई थी। कारण यह था कि मञ्चू राजाओं ने विदेशियों को विशेषाधिकार प्रदान किये थे अतः यह पश्चिमी देशों के हित में था कि चीन में मञ्चू राजाओं का राज्य ही बना रहे।

यद्यपि हृदय से चीन विदेशियों को न तो अपने बराबर मानता था और न अपने से श्रेष्ठ, किन्तु परिस्थितियों ने चीन को मजबूर कर दिया कि वह उन्हें अपने

---

१. पश्चिमी विदेशियों को राज्यक्षेत्रातीत विशेषाधिकारों की माँग करने की इसलिए आवश्यकता पड़ गई क्योंकि चीनी विधियाँ अविश्वसनीय स्थिति और अज्ञात वैधिक आचारों पर अवलम्बित हैं। यह अधिकार स्वयं ईसाई राज्यों में भी समान रूप से प्रत्येक ईसाई राष्ट्र में प्रचलित नहीं है; इसलिए चीनी लोग राज्यक्षेत्रातीत अधिकार को और भी अधिक घृणा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि इसे वे अपने देश की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न स्थिति के प्रति अनादर मानते थे। "साम्राज्यवादी देशों की यह चाल रही है कि वे जिस पराये देश में घुसपैठ प्रारम्भ करते हैं उसमें सबसे पहले विशेष राज्यक्षेत्रातीत विशेषाधिकार (Extra-territorial privileges) प्राप्त करते हैं। उनका उद्देश्य यह है कि न केवल इस राष्ट्र के राष्ट्रीय सम्मान को गिराएँ बल्कि विदेशियों की निगाहों में चीनी राजसत्ता (Sovereignty) या प्रभुता को गिराएँ, इसमें सन्देह नहीं है।" (Wong Ching-Wai, *op. cit.*) विशेष रूप से इन्हीं अधिकारों के कारण असमान सन्धियों के प्रति चीन में और अन्यत्र आम तौर पर घृणा पाई जाती थी। ये राज्यक्षेत्रातीत अधिकार १९२९ में समाप्त हो गये। प्रारम्भ में जापान ने भी विदेशियों को राज्यक्षेत्रातीत विशेषाधिकार प्रदान किये थे किन्तु बाद में विदेशी सत्ताओं ने उन अधिकारों को त्याग दिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उच्च और श्रेष्ठ जाति माने। धीरे-धीरे चीन की सरकार को ऐसा बोध होने लगा कि उसको संसार के अन्य देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने चाहिएँ। १८६१ में सुंगली येमन (Tsungli-Yamen) अथवा विदेश विभाग की स्थापना हुई। यह कमजोर और पंगु-सा विभाग था जिसने चालीस वर्षों तक विदेशी सम्बन्धों का बेहूदा ढंग से निर्वहन किया। फिर भी सुंगली येमन या चीनी विदेश-विभाग चीन के बदले हुए दृष्टिकोण का द्योतक था। चीन के सम्राट् ने तैपिंग विद्रोह (Taiping Rebellion) के दमन के उपलक्ष्य में गॉर्डन (Gordon) की चीनी सेनाओं को धन्यवाद दिया और उसने गॉर्डन (Gordon) को इनाम में कुछ धन देना चाहा जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। यही नहीं, सम्राट् ने उसको स्वर्ण-पदक दिया तथा चीन का सर्वोच्च आदरसूचक पदक भी उसको भेंट किया गया तथा उसको आदरसूचक पीली जाकट एवं मोर पंख भेंट किया गया। यह सत्य है कि गॉर्डन (Gordon) उन अनेक यूरोपियनों से भिन्न था जो चीन के साथ अफ़ीम का व्यापार करके चीनवासियों से घुल-मिल गये थे। १८७३ में प्रथम बार पेकिंग (Peking) के दरबार में विदेशी राजदूतों को सम्राट् के समक्ष आमन्त्रित किया गया। चार वर्ष पश्चात् प्रथम चीनी राजदूत लंदन (London) भेजा गया और अगले वर्ष तो चीनी दूत प्रायः प्रत्येक यूरोपीय राजधानी में रहने लगा।

सुदूर-पूर्व की समस्या (१८६१-९५)

द्वितीय चीनी युद्ध के पश्चात् सुदूर पूर्व की समस्या ने नया रुख अख्तियार किया। १७९६ से १८६० तक पूर्व में पश्चिमी देशों की यही कोशिश रही थी कि किसी प्रकार चीन में पश्चिमी देशों को व्यापार करने की सुविधा मिले। १८६० तक यूरोप ने व्यापार के सिवाय अन्य किसी बात पर ध्यान नहीं दिया था। और न पश्चिमी देशों का ध्यान प्रशान्त महासागर के अन्य किसी देश की तरफ था। पश्चिम का लक्ष्य तो चीन में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना था। किन्तु १८६० के पश्चात् सुदूर पूर्व की समस्या जटिल हो गई और उसमें नये गुल खिलने लगे। अब पश्चिमी देश केवल व्यापार ही नहीं चाहते थे; साम्राज्य भी स्थापित करना चाहते थे। अब उनका लक्ष्य केवल चीन न था; वे जापान में भी घुसपैठ करना चाहते थे। अब व्यापारिक लाभ के अतिरिक्त वे राजनीतिक लूट के लिए भी इच्छुक थे।

इस प्रकार एक ओर तो चीन से पश्चिमी देशों ने अधिकाधिक आर्थिक लाभ उठाया; परन्तु दूसरी ओर एक-एक करके चीन के सीमावर्ती अधीन स्थानों को उससे छीना जाने लगा। केवल यूरोपीय शक्तियों ने ही चीन के अधीन भू-भागों पर अधिकार नहीं कर लिया, बल्कि शीघ्र ही जापान भी उन्हीं लूटेरों में शरीक हो गया। चीन में नये-नये देशों ने प्रवेश किया और उन्हें नये-नये विशेषाधिकार प्राप्त हुए। अतः उन्हें अब साम्राज्य बढ़ाने की लालसा हुई और वे अधिकाधिक भू-भाग हस्तगत करने की सोचने लगे। यद्यपि कहने भर को पश्चिमी देश चीन की प्रभुसत्ता का आदर करते थे किन्तु एक-एक करके उन्होंने चीन के अधीन प्रदेश हड़पने प्रारम्भ किये। इस प्रकार पश्चिमी देश चीन के सीमावर्ती भू-भाग को जीतते-जीतते स्वयं चीन की सीमा पर जा पहुँचे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त जापान के उत्थान ने चीन की स्थिति को बहुत बदल दिया और इस कारण उसने सुदूर पूर्व के प्रश्न के स्वरूप को ही पूरी तौर से बदल दिया। जापान विश्व की शक्ति के रूप में अवतरित हुआ और उसका प्रभाव प्रशान्त महासागर में बहुत बढ़ गया। किन्तु जापान पश्चिमी देश न था। वह तो पूर्व का ही एक देश था।

तीन समानान्तर विकास (१) आर्थिक विस्तार; (२) राजनीतिक लूट; और (३) जापान की शक्ति का विकास

अतः, १८६० से लेकर १८९५ तक का काल तीन मुख्य और समानान्तर विकासों का काल है। प्रथमतः, पश्चिमी देशों ने प्रशान्त महासागर के दो मुख्य देशों—चीन और जापान में व्यापार के बहाने अपने आर्थिक हितों को दृढ़ कर लिया। द्वितीयतः, पश्चिमी देशों में राजनीतिक लूट की प्रवृत्ति घर कर गई और इसके फलस्वरूप यूरोपीय देशों ने चीन के अधीन उस की सीमा पर के प्रदेशों को चीन से छीन लिया; और तृतीयतः, जापान एक विश्व-शक्ति के रूप में अवतरित हुआ।

आर्थिक विस्तार

प्रथम दो विकासों का संक्षिप्त वर्णन किया जा सकता है। विदेशी व्यापार और विशेष रूप से ब्रिटिश व्यापार की आशातीत उन्नति हुई। यूरोपीय देशों के व्यापारिक लाभ को देखकर अन्य देशों के मुँह में भी पानी भर आया और वे भी चीन के साथ सन्धि करने दौड़े। सर्वप्रथम प्रशा ने चीन के साथ सन्धि की प्रार्थना की किन्तु चीन ने यह कह कर टाल दिया कि उसने प्रशा का कभी नाम भी नहीं सुना। किन्तु बाद में चीन और प्रशा के बीच एक संक्षिप्त-सी सन्धि हो गई। इसके पश्चात् अन्य देशों ने भी चीन में अपने दूतावास खोले। द्वितीय चीनी युद्ध के पश्चात् तक केवल ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, नॉर्वे (Norway) और स्वीडन नाम के पाँच देशों ने चीन के साथ सन्धियाँ की थीं। किन्तु अगले ३० वर्षों में ११ अन्य राज्यों ने चीन के साथ सन्धियाँ कर ली थीं, जिनमें ८ यूरोपीय देश थे[1], दो दक्षिणी अमेरिका के स्वतन्त्र राष्ट्र थे[2] और एक देश एशिया का था।[3] इन ग्यारह देशों को भी चीन के साथ व्यापार करने की सुविधा प्राप्त हो गई थी।

किन्तु अब पश्चिमी लुटेरों ने चीन को और अधिक चूसना चाहा। ब्रिटिश व्यापार दूत श्री मर्गेरी (Margary) की हत्या का बहाना पाकर ब्रिटेन ने चीन को दबाया और उससे और अधिक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। अब ब्रिटेन ने चीफ़ो (Chefoo) निर्णय द्वारा चीन के साथ एक नया सम्बन्ध स्थापित किया।

---

१. प्रशा (Prussia) १८६१; डेनमार्क और नीदरलैण्ड्स (Denmark and the Netherlands) १८६३; स्पेन (Spain) १८६४; बेल्जियम (Belgium) १८६५; इटली (Italy) १८६६; आॉस्ट्रिया-हंगरी (Austria-Hungary) १८६९; पुर्तगाल (Portugal) १८८७।

२. पीरू (Peru) १८७४; ब्राजील (Brazil) १८८१।

३. जापान (Japan) १८७२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नये सम्बन्ध के अनुसार १८७६ में इंग्लैण्ड को चीन से हर्जाने के रूप में विशाल धनराशि प्राप्त हुई और अन्य महत्त्वपूर्ण लाभ भी प्राप्त हुए। इस सन्धि के अनुसार चीन ने न केवल क्षमा-याचना की बल्कि उसने हर्जाने की रकम दी तथा विदेशी व्यापारियों को आन्तरिक आगम शुल्क[1] क्षमा कर दिये। इसके अतिरिक्त चीन ने विदेशी व्यापार के लिए चार अन्य बन्दरगाह खोल दिये तथा अंग्रेजी व्यापारियों को और भी कई प्रकार की सुविधाएँ दे दी गईं। इंग्लैंड को यांग्ट्सी (Yangtse) की घाटी में चार अन्य महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गये जिससे उसकी आर्थिक स्थिति यांग्ट्सी की घाटी में सुदृढ़ हो गई। यही नहीं, ग्रेट ब्रिटेन को कूटनीतिक लाभ भी हुए। चीन ने वायदा किया कि ब्रिटेन के यात्रियों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया जायगा। चीन की न्याय-व्यवस्था में भी कुछ हेर-फेर कर दिये गये जिससे ब्रिटेन को लाभ हुआ। ब्रिटेन को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि यांग्ट्सी (Yangtse) की घाटी में उसकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गई।

चीन से पूर्व अफ्रीका की भी यही गति हो चुकी थी और १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप की साम्राज्य-लोलुपता चीन के भू-भागों को हड़पकर शान्त हुई। अब रूस ने एशिया में फैलना प्रारम्भ किया क्योंकि क्रीमिया से युद्ध में हारने से उसकी प्रगति यूरोप में अवरुद्ध हो चुकी थी। रूस ने एशिया में दक्षिण की ओर फ़ारस (Persia) और अफ़गानिस्तान (Afghanistan) में अपने पैर फैलाये तथा पूर्व में वह चीन में अपने प्रभाव का विस्तार करने लगा। किन्तु दक्षिण में रूस की ब्रिटिश हितों से टक्कर हुई और पूर्व में कमजोर चीनी सम्राज्य उसको रोक नहीं सका। अतः दृढ़ता के साथ रूस ने अपना प्रभाव पूर्व में बढ़ाया और फलस्वरूप प्रशान्त महासागर में उसे ऐसा समुद्री किनारा मिल गया जो बर्फ से जमा नहीं रहता था। १८५३ में रूस ने चीन के साथ ऐगुन (Aigun) की सन्धि की। इस समय चीन के ऊपर दुहरी मुसीबत थी; एक तो देश में तैपिंग विद्रोह (Taiping Rebellion) चल रहा था और दूसरे चीन की पश्चिमी देशों से भी लड़ाई चल रही थी। ऐसे आड़े समय में चीन से रूस ने उक्त सन्धि द्वारा अमूर (Amur) नदी तक का सारा भू-भाग प्राप्त कर लिया। दो वर्ष पश्चात् ब्रिटेन और फ्रांस के विरुद्ध चीन की मित्रता का बहाना करके रूस ने चीन से समुद्री किनारे पर पर्याप्त भू-भाग प्राप्त कर लिया जहाँ उसने व्लाडीवोस्टक (Vladivostok) नाम का प्रसिद्ध बन्दरगाह बनाया। व्लाडीवोस्टक शब्द के शाब्दिक अर्थ भी हैं "पूर्व का विजेता" (Conqueror of the East)। इन प्राप्तियों के पश्चात् रूस कोरिया (Korea) के निकट तक पहुँच गया और अब वह प्रायः इस स्थिति में था कि मंचूरिया को चारों ओर से घेर सके क्योंकि रूस पहले ही से कृतसंकल्प था कि मंचूरिया के बर्फ़ रहित बंदरगाह पर अधिकार करे। १८७५ में जापान के साथ कठिन संघर्ष करने के पश्चात् रूस ने सखालीन (Sakhalin) पर अधिकार कर लिया। कारण यह था कि सखालीन द्वीप पर जापान अपना अधिकार

---

१. लिकिन (Likin) चीनी शब्द है जिसका अर्थ है चीन का अन्तःप्रान्तीय आगम शुल्क।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जताता था। इसके अतिरिक्त १८८१ में कई सीमा संघर्षों के बाद रूस ने तुर्किस्तान (Turkestan) की ओर इली (Ili) के पश्चिमी भाग पर अधिकार कर लिया।

पूर्व में अपने साम्राज्य को बढ़ाने की इच्छा फ्रांस की भी थी। जिस प्रकार कि क्रीमिया युद्ध और १८७० की पराजय के पश्चात् रूस अपनी प्रादेशिक हानियों के बदले में कुछ भू-भाग प्राप्त करना चाहता था, उसी प्रकार फ्रांस में भी साम्राज्य-विस्तार की लालसा थी। अतः चीन के प्रदेश छीनकर फ्रांस ने अपना साम्राज्य बढ़ाया और शनैः-शनैः बढ़ते-बढ़ते फ्रांस के गणराज्य ने १९वीं शताब्दी के पिछले दो दशकों में टोंकिन (Tonkin) और अनाम (Annam) पर अधिकार कर लिया। ग्रेट ब्रिटेन की पूर्व में उपनिवेश बसाने या साम्राज्य-विस्तार करने की बिलकुल इच्छा नहीं थी। वह तो व्यापार-विस्तार का इच्छुक था; न कि साम्राज्य-विस्तार का। किन्तु फ्रांस द्वारा टोंकिन (Tonkin) और अनाम (Annam) पर अधिकार कर लेने के पश्चात् ब्रिटेन ने अनुभव किया कि पूर्व में शक्ति-संतुलन बिगड़ गया था और ब्रिटेन के भारतीय हितों को खतरा था। अतः उसने बर्मा (Burma) पर आक्रमण कर दिया और १८८६ में बर्मा पर उसका अधिकार हो गया। इसके पश्चात् ब्रिटेन ने सिक्किम (Sikkim) पर भी १८९० में अधिकार किया। श्याम (Siam) के कुछ भू-भाग ब्रिटेन ने हथिया लिए और कुछ भू-भाग फ्रांस ने हथिया लिए। श्याम के शेष भूभागों को तटस्थ राज्य मान लिया गया और उस पर ब्रिटिश बर्मा (British Burma) एवं फ्रेंच अनाम (French Annam) का संयुक्त नियन्त्रण-सा बना रहा। जर्मनी और इटली भी साम्राज्य प्राप्त करने की लालसा से इधर लपके किन्तु वे अभी कुछ समय पश्चात् आए। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि केवल यूरोप की शक्तियों ने ही चीन के प्रदेश की छीना-झपटी नहीं की। जापान ने भी आक्रामक और साम्राज्य-वादी रुख अपनाया और पश्चिमी सभ्यता की नकल की। उसने भी अपने पड़ोसी चीन देश के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया रखा और १८८१ में जापान ने लूचू (Loochoo) द्वीप पर अधिकार करके यह दिखा दिया कि उसने भी पश्चिमी सभ्यता की चादर ओढ़ ली थी। लूचू (Loochoo) विजय के पश्चात् तो जापान ने सदैव चीन को दबाये रखा। इस प्रकार जापान चीन की सुरक्षा के लिए १९४५ तक निरन्तर खतरा बना रहा और इससे प्रशान्त महासागर की समस्या का स्वरूप ही बदल गया।

जापान का प्रारम्भिक इतिहास भी कई प्रकार से चीन के प्रारम्भिक इतिहास से मिलता-जुलता है। चीन के समान जापान भी ऐकान्तिक देश बना रहा। इसमें सन्देह नहीं है कि १६वीं शताब्दी के अन्त में पुर्तगाल (Portugal), स्पेन (Spain) और नीदरलैण्ड्स (Netherlands) के व्यापारियों ने जापान में प्रवेश किया था और उनके पश्चात् कैथोलिक धर्म-प्रचारक पादरी भी जापान में आये किन्तु जापानी लोग विदेशियों की घुसपैठ से भयभीत हो गये। जापानी लोग देख चुके थे कि अमेरिका में भी पहले धर्म-प्रचारकों ने ही प्रवेश किया था और बाद को अमेरिका की राजनीतिक स्वतन्त्रता का अपहरण किया गया। कहा जाता है कि स्पेन के युद्ध-पोत (Galleon) के एक कप्तान ने संसार के नक्शे को दिखाते

जापान १८६७ से पूर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए बताया कि स्पेन का राज्य एक विस्तृत साम्राज्य है। जब उससे पूछा गया कि स्पेन ने इतने भू-भाग कैसे प्राप्त कर लिए तो उसने जवाब दिया था—"यह सब हमारे ईसाई धर्म-प्रचारकों की कृपा का फल है। हम सारे संसार में ईसा के बताये हुए मार्ग का प्रचार करने के लिए अपने पादरियों को भेजते हैं। ज्योंही ये धर्म-प्रचारक किसी नई भूमि में पर्याप्त धर्मानुयायी बना लेते हैं त्योंही हमारा सम्राट् उस देश में अपनी सेनाएँ भेज देता है। वह सेना नये धर्म-परिवर्त्तितों (New converts) की सहायता से उस देश को जीत लेती है और इसी प्रकार हमारा साम्राज्य बढ़ा है।" इसके अतिरिक्त विदेशी लोग जापान में जापानी आचारों और जापानी विधियों की बिलकुल चिन्ता नहीं करते थे और चूंकि सभी विदेशी न तो एक ही चर्च के मानने वाले थे और न ही एक देश के निवासी थे अतः वे आपस की लड़ाई के कारण भी कमजोर थे। १७वीं शताब्दी के आरम्भ से ही जापान ने ईसाइयों और ईसाई धर्म-प्रचारकों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया था और १६३७ में दो राजाज्ञाएँ निकाली गईं जिन्होंने जापान का द्वार विदेशियों के लिए पूरी तरह बन्द कर दिया। केवल चीनी नागरिकों और डच नागरिकों को छोड़कर—क्योंकि इन लोगों को न तो पूर्ण ईसाई समझा जाता था और न सशक्त सैनिक शक्ति समझा जाता था—सभी विदेशियों का जापान में प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया और घोषणा की गई कि यदि कोई अन्य विदेशी जापान में घुसेगा तो उसके प्राण ले लिए जाएँगे। इसी आज्ञा के अनुसार यह भी घोषित किया गया कि यदि कोई जापानी विदेश जायगा तो उसे भी प्राण-दण्ड मिलेगा। इस प्रकार किसी जापानी को ५० टन से अधिक बड़ा जहाज बनाने की आज्ञा नहीं थी। दो शताब्दियों तक जापान ने अपने आपको कठिन एकान्तवास में रखा। केवल हॉलैण्ड के कुछ व्यापारी यदा-कदा जापान में आते-जाते रहे। और जो ज़िद्दी विदेशी चीन के साथ व्यापार करके मालामाल हो रहे थे, वे जापान को गरीब समझ कर छोड़ दिया करते थे और उसमें घुसना या उसके साथ व्यापार करना लाभ की दृष्टि से अवांछनीय समझते थे। इसके अतिरिक्त जापान में घुसना खतरे से भी खाली नहीं था। इस ऐकान्तिक नीति के फलस्वरूप जापान का समुद्री व्यापार समाप्त हो गया और जापान में भयंकर अकाल पड़ गया जिसमें भारी संख्या में जापानी मर गए। ऐसी स्थिति कभी न आती यदि जापान ने अपने आपको इतने कठिन आर्थिक एकान्तवास में न रखा होता।

किन्तु १९वीं शताब्दी में प्रशान्त महासागर की यूरोपीय हलचलों का कुछ प्रभाव जापान पर भी पड़ने लगा। जापान के सागर (Sea of Japan) में रूसी जहाज आने-जाने लगे। डच लोग चीन के समुद्र (China Sea) में बढ़ते हुए ब्रिटिश व्यापार से आकर्षित हुए और वे भी पूर्व में आये। किन्तु इससे जापान ने और भी अधिक अपने आपको एकान्तवास में छिपा लिया और १८२५ में तो उसने आज्ञा निकाली कि यदि कोई विदेशी जहाज जापान में उतरेगा तो उस पर गोली मार दी जायगी। इसके बाद प्रथम चीनी युद्ध हुआ जिसमें उसके पड़ोसी देश चीन की करारी पराजय हुई। अब तो जापान में भी खतरे की घंटी सुनाई देने लगी और जापान को भय लगने लगा। जापान ने कुछ डच बन्दूकों का आयात किया और अपनी सैनिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था पर पुनर्विचार किया। फिर भी जापान अपनी ऐकान्तिक नीति पर डटा रहा यद्यपि जापानी लोग समझते थे कि ऐसी नीति खतरे से खाली नहीं थी।

वास्तव में जापान के ऊपर पश्चिमी संकट अमेरिका की ओर से आया न कि यूरोप के किसी देश द्वारा; और जिस प्रकार कि अफीम के युद्ध ने चीन का द्वार विदेशियों के लिए खोल दिया था उसी प्रकार अमेरिका की घुसपैठ के कारण जापान का द्वार भी विदेशियों के लिए खुल गया। बहुत काल से अमेरिका एटलांटिक सागर के देशों से व्यापार करता चला आ रहा था। १९वीं शताब्दी के द्वितीय दशक से अमेरिका अपने पश्चिमी किनारों के व्यापार को समुन्नत करने में लगा हुआ था। १८४८ में अमेरिका ने कैलीफोर्निया (California) और सैन फ्रांसिस्को (San Francisco) पर अधिकार किया था। अमेरिका में सोने की खानों का पता लगने से उसकी जनसंख्या बहुत बढ़ गई थी और अब अमेरिका की रुचि प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ने लगी थी और वह एशिया में अपने प्रभाव का विस्तार करना चाहता था। ज्यों-ज्यों अमेरिका ने अपने पैर पश्चिम में बढ़ाए त्यों-त्यों उसका सम्पर्क जापान से हुआ। अमेरिका के कई जहाज जापान के किनारों पर ध्वस्त हो गए। १८४६ में एक अमेरिकी जहाज कठिनाई में फँस गया और उसने जापान के एक बन्दरगाह में शरण लेनी चाही किन्तु जापान ने उस पर कृपा नहीं की। ज्यों-ज्यों अमेरिका के हित प्रशान्त महासागर में बढ़ते गये, त्यों-त्यों उसे आवश्यकता मालूम पड़ने लगी कि उसके अधिकार में प्रशान्त महासागर के कुछ बन्दरगाह आने ही चाहिएँ जहाँ उसके जहाज विश्राम कर सकें। अमेरिका में यह आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी कि प्रशान्त महासागर के देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये जाएँ।

१८५३ में संयुक्त राज्य अमेरिका की नौ सेना का कमोडोर पैरी (Commodore Perry) चार युद्ध-पोत लेकर यीडो (Yeddo)[1] की खाड़ी में उतरा और उसने जापान के अधिकारियों से प्रार्थना की कि वे जापान के बन्दरगाहों में अमेरिकी युद्ध-पोतों को ठहराने की सुविधा दें। उसने उपहार के रूप में पश्चिमी तार और रेल-व्यवस्था के दो मॉडेल (Models) भेंट किए और साथ ही जापान के सम्राट के नाम एक पत्र भी दिया। उसने वचन दिया कि ठीक एक वर्ष के पश्चात् वह उक्त पत्र का उत्तर लेने आवेगा। निश्चित तिथि पर वह आठ युद्ध-पोत लेकर जापान पहुँचा। उन युद्ध-पोतों में चार हजार सैनिक भी सवार थे। यीडो (Yeddo) में विचार-विनिमय हुआ क्योंकि इस एक वर्ष की अवधि में उस पत्र का उत्तर तैयार नहीं किया गया था। एक पक्ष विदेशियों के विरुद्ध था। उस पक्ष का कहना था कि, "पहले तो विदेशी हमको शिक्षा देंगे, औजार देंगे, मशीनें देंगे और अन्य आराम के साधन देंगे और फिर हर सम्भव उपाय द्वारा वे अज्ञानी देशवासियों को धोखा देंगे। चूंकि उनका उद्देश्य तो व्यापार है इसलिए वे शनैः शनैः देश का धन चूसकर देश को गरीब कर देंगे। इसके बाद वे जैसा चाहेंगे हमारे साथ व्यवहार करेंगे, सम्भवतः वे हमारे साथ भद्दा व्यवहार करें और हमारी बेइज्जती करें और अन्त में वे हमारी स्वाधीनता

१. यीडो (Yeddo) को ही बाद में टोकियो (Tokyo) कहने लगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अपहरण करेंगे।" किन्तु दूसरे पक्ष का कहना था कि जापान की नीति यह होनी चाहिए कि पश्चिमी देशों के साथ सन्धियाँ करे और उनकी विद्याओं और कलाओं को सीखकर अपने देश को सशक्त बनावे ताकि हम लोग पश्चिमी देशों का मुकाबला कर सकें। अन्त में दूसरे पक्ष की बात मान ली गई क्योंकि अपने बन्दगाहों में आठ युद्ध-पोतों की उपस्थिति से वे लोग कुछ भयभीत थे। एक सन्धि हो गई। अमेरिकी जहाजों के ठहरने के लिए दो बन्दरगाह खोल दिए गये, यद्यपि उस समय उन दो बन्दरगाहों को केवल यात्रियों की भोजन-व्यवस्था के उद्देश्य से खोला गया था न कि व्यापार के उद्देश्य से, किन्तु उक्त सन्धि के अनुसार अमेरिका को व्यापारिक सुविधाएँ देना अभीष्ट था।

इस प्रकार जापान का द्वार खुल गया, और उस द्वार में विशेषाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से पश्चिम के अन्य राष्ट्र भी शीघ्रतापूर्वक आ गए। १८६७ तक लगभग यूरोपीय देशों ने जापान के साथ सन्धियाँ कर ली थीं जिनके द्वारा उन्होंने व्यापारिक सम्बन्ध प्राप्त कर लिए, बन्दरगाह खुलवा लिए, भूमि के अतिरिक्त अधिकार प्राप्त कर लिए तथा चुंगी की दरें कम करा लीं। उस समय ग्रेट ब्रिटेन रूस के साथ युद्ध में फँसा हुआ था, किन्तु उसने सोचा कि यदि उसको प्रशान्त महासागर में मैत्रीपूर्ण उपायों द्वारा जापान का एक बन्दरगाह मिल सके तो इससे भारी लाभ होगा। इस प्रकार प्रथम आंग्ल-जापानी सन्धि हुई जिसके द्वारा निश्चित हुआ कि जापानी बन्दरगाहों में ब्रिटिश जहाजों की मरम्मत तो हो सकेगी किन्तु उन्हें व्यापारिक सुविधाएँ नहीं दी गईं। किन्तु जापान ने उन सभी देशों को, जिनके साथ उसने सन्धियाँ की थीं, आश्वासन दिया कि उन्हें अपने धर्म की छूट होगी तथा वे समस्त जापान में बिना किसी रोक-टोक के यात्रा कर सकेंगे।

१८६७ तक तो जापान का इतिहास भी चीन के इतिहास के समानान्तर चल रहा था। दोनों ही देश पश्चिमी देशों के साथ ऐसी सन्धियों द्वारा बँधे हुए थे जो विदेशियों के अधिक अनुकूल थीं। विदेशियों ने दोनों ही देशों को अपने लाभ के लिए खूब लूटा था। जापान और चीन दोनों का भविष्य इस बात पर आश्रित था कि पूर्वी और पश्चिमी सभ्यताओं की लड़ाई का अन्तिम फल क्या होता है। यह ऐसा संघर्ष था जिसका जवाब न तो यूनान के संघर्ष में, न रोम के संघर्ष में, न स्पेन के संघर्ष में और न ब्रिटिश विजयों में ही कहीं मिलता था।

जापान की क्रांति (१८६७)

और इसी संघर्ष में से चीन और जापान नाम के दो राष्ट्रों का जन्म हुआ किन्तु उन दोनों का विकास दो विभिन्न दिशाओं में हुआ। चीन की पश्चिमी सभ्यता के सामने पराजय हुई फिर भी चीन ने उस पराजय को पराजय नहीं माना; जापान ने पश्चिमी सभ्यता ही अपना ली ताकि उसको पश्चिमी सभ्यता के सामने पराजित न होना पड़े।

जापान के ऊपर पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव का प्रथम परिणाम यह हुआ कि जापान में राजनीतिक हलचलें प्रारम्भ हो गईं। १९वीं शताब्दी के मध्य तक उगते हुए सूर्य के साम्राज्य का स्वरूप प्रायः सामन्तवादी था, सैनिकवादी था और वंशगत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। राज्य की समस्त सत्ता डेमिओज (Damios) या फ्यूडल लार्डों के हाथों में केन्द्रित रहती थी। उक्त डेमिओज (Damios) या सामन्तों के पास अनेक सैनिक वर्ग या समूराई (Samurai) रहते थे। नाममात्र को तो मिकाडो या सम्राट (Mikado) राष्ट्र का सर्वोच्च अध्यक्ष था जो १२वीं शताब्दी से चला आ रहा था। वह क्योटो (Kyoto) में एकान्तवास में रहता था और उसको एक ऐसी पवित्र आत्मा के समान समझा जाता था जो संसार के प्रति बिलकुल विरक्त हो। किन्तु वास्तविक शासक शोगुन (Shogun) था जिसे यीडो (Yeddo) का शोगुन (Shogun) कहा जाता था। शोगुन का वास्तविक अर्थ है 'जनरल'। माना तो यह जाता था कि शोगुन (Shogun) मिकाडो (Mikado) का अभिकर्त्ता मात्र था किन्तु वास्तव में उसने राज्य की सब शक्तियों पर अपना एकमात्र अधिकार स्थापित कर लिया था। सारे विदेश या तो अज्ञानवश या सम्राट के प्रति घृणावश शोगुन (Shogun) के साथ ही सन्धियाँ कर रहे थे। वास्तव में तो वह एक मुख्य वंश का प्रमुख या सामन्त था किंतु चूंकि जापान में अन्य सामन्त भी थे और वे भी शक्तिशाली थे, इसलिए यद्यपि यीडो का शोगुन (Shogun of Yeddo) मिकाडो (Mikado) के नाम पर सारा राज्य-कार्य चला रहा था, फिर भी वह अन्य सामन्ती वंशों को कभी भी पूर्णरूपेण अपने वश में न ला सका।

विदेशी विरोधी आन्दोलन, वास्तव में मिकाडो की शक्ति के प्रत्यास्थापन का प्रयत्न था

पश्चिमी विदेशियों के आगमन पर से रोक हट जाने के फलस्वरूप और उन्हें सन्धियों द्वारा सुविधाएँ प्राप्त हो जाने के फलस्वरूप जापान में विदेशियों के विरुद्ध लहर उठी और फलस्वरूप प्रायः हिंसक उपद्रव भी होने लगे। चूंकि सारे जापान में असन्तोष था और चूंकि सामन्त-शाही कमजोर हो रही थी, अतः पश्चिमी विरोधी आन्दोलन जोर पकड़ गया। और चूंकि स्वयं सामन्ती वंशों में भी आपस में विद्वेष था अतः विदेशी-विरोधी आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन के रूप में परिणत हो गया जिसका उद्देश्य यह बन गया कि किसी भी प्रकार शोगुन (Shogun) को सत्ताच्युत किया जाए और सम्राट मिकाडो (Mikado) को सारी सत्ता सौंप दी जाए। इसी प्रकार मिकाडो की शक्ति के प्रत्यास्थापन के पीछे यह इच्छा काम कर रही थी कि जापान से विदेशियों को निकाल दिया जाए। १८७६ ई० में शोगुन-व्यवस्था का अन्त कर दिया गया और 'सम्राट की जय हो' तथा 'जंगली विदेशियों को निकाल दो' की गूंज के बीच सम्राट की शक्ति को प्रत्यास्थापित कर दिया गया। इस प्रकार मिकाडो (Mikado) को राज्य की समस्त शक्ति प्राप्त हो गई। सत्य तो यह है कि जब अराजकता और आन्दोलन समाप्त हो गया तो राजसत्ता का प्रत्यास्थापन सरल हो गया; जहाँ पहले टोकुगावा सामंती वंश (Tokugawa) के हाथों में राजसत्ता थी, अब उसके स्थान पर सत्सुमा (Satsuma) और चोशु (Choshu) सामन्ती वंशों के हाथों में राजसत्ता पहुँच गई। फिर भी यह एक वास्तविक क्रांति थी क्योंकि नई सरकार ने बिलकुल नई व्यवस्था स्थापित करनी चाही और अनेक पश्चिमी तरीकों को अपनाया गया। एक जापानी विद्वान् ने लिखा है कि "१८६८ से जापान पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों के पीछे कुत्ते की तरह दुम हिलाए हुए भागा जा रहा था।" जापान ने अपनी प्राचीन ललित कलाओं को त्याग दिया और उनके स्थान पर मशीनों द्वारा छपी हुई तस्वीरों का आयात किया। पुराने सुन्दर पीतल और ताँबे के बर्तनों के स्थान पर टीन के बर्तनों का आयात आरम्भ हो गया। जापान ने अपने पंच-मंजिले पगोडाओं (Pagodas) को गिराने की बजाय जलाया ताकि उनके गिराने में अधिक खर्च न करना पड़े। इस प्रकार पश्चिमी आदर्शों पर देश की सैनिक व्यवस्था और शासन व्यवस्था को स्थापित किया गया और सारे देश की औद्योगिक व्यवस्था और वैज्ञानिक दिनचर्या पर भी पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ गया।

सामन्ती प्रथा समाप्त कर दी गई और कुलीनों या सामन्तों को या तो पेंशनें दे दी गईं या उनकी जमीनों को खरीद लिया गया। राजवंशों की प्रतिद्वन्द्विता समाप्त हो गई। प्राचीन काल में समाज का जो विस्तृत वर्गीकरण था उसके स्थान पर अब समाज में केवल तीन वर्ग रह गए; स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों की फ्रेंच प्रशासनिक इकाइयों के आदर्श पर व्यवस्था कर दी गई। समूराई (Samurai) या सैनिक वर्ग से उनके सैनिक अधिकार छीन लिए गये और उसके स्थान पर जर्मन सिद्धान्तों के अनुसार नई सेना संगठित की गई। जापानी समुद्री बेड़े को ब्रिटिश नौसेना के आदर्शों पर खड़ा किया गया। उद्योगों और इंजीनियरी में ब्रिटिश आदर्शों का अनुसरण किया गया। जापान में रेलें चलीं, तार-व्यवस्था का सूत्रपात हुआ, प्रकाश-गृह बने और जहाजों के ठहरने के बन्दरगाह बने। इसके अतिरिक्त जापान में कोयले की खानों से कोयला निकालने का कार्य शुरू हुआ तथा अन्य खानों का भी विकास किया गया और सिल्क की मिलें खुलीं। एक जापानी जहाजी कम्पनी भी खुली। इसके अतिरिक्त स्कन्ध विनिमय विपणि (Stock Exchange) खुली और व्यापार मन्त्रालय (Chamber of Commerce) की स्थापना हुई। यही नहीं, राष्ट्रीय औद्योगिक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया।

इंग्लैंड में १८७० में ग्लैड्स्टन (Gladstone) ने शिक्षा अधिनियम पास करके सारे देश में सभी के लिए प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी थी। और उसके केवल दो वर्ष पश्चात् जापान में भी अनिवार्य शिक्षा का सूत्रपात किया गया। विश्वविद्यालय और प्राविधिक शिक्षा संस्थाएँ (Technical Schools) राज्य के तत्त्वावधान में स्थापित की गयीं। देश में विदेशी शिक्षकों को आमन्त्रित किया गया। स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया और प्रस्ताव किया गया कि अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया जाए। यही नहीं, कुछ लोगों ने तो यहाँ तक प्रस्ताव किया कि अंग्रेजों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करके जापानी नस्ल को भी पश्चिमी नस्ल का बना लिया जाए।

ईसाई-विरोधी आज्ञाएँ वापस ले ली गईं और उन आज्ञाओं को भी वापस ले लिया गया जिनके द्वारा जापानियों को विदेश-यात्रा करना वर्जित था। विदेशों में जापानी शिष्टमण्डल भेजे गए जिनको आदेश दिए गए कि वे प्रत्येक विषय पर पश्चिमी विचारों और पश्चिमी तरीकों का अध्ययन करें। शिन्टो (Shinto) अब राष्ट्रीय धर्म नहीं रह गया था; वह अब केवल राजदरबार का धर्म था। जापान में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया केलेंडर (Gregorian Calendar) प्रचलित हो गया। जमीन पर राज्य-कर लगाया गया और सारी जमीन का पर्यवेक्षण कराया गया। जापान की विधिसंहिता में भी सुधार किया गया और विदेशी विधि-वेत्ताओं की सहायता से नयी अपराध-संहिता (Criminal Code) का निर्माण किया गया। और चूँकि प्रत्येक उन्नति-शील राज्य में निश्चित संविधान के अनुसार शासन-व्यवस्था चलती थी, अतः जापान में भी १८८९ में प्रशा के संविधान के नमूने का संविधान स्वीकार किया गया। वास्तव में यूरोपीय विचारों और यूरोपीय सभ्यता ने जापान में तीन बार में प्रवेश किया। प्रथम दशक में अंग्रेजी उपयोगितावादियों ने जापान के ऊपर अत्यधिक प्रभाव डाला; द्वितीय दशक में फ्रांस के लोकतन्त्री लेखकों का जापान पर प्रभाव पड़ा और रूसो (Rousseau) के विचारों का जापानी भाषा में अनुवाद हुआ। सबसे अन्त में किन्तु सबसे अधिक प्रभाव, जापान के ऊपर जर्मन राष्ट्रवादी राजनीतिज्ञों का पड़ा।[1]

केवल बीस वर्षों के अल्पकाल में जापान की शक्ल ही बदल गई। अब ऐसा माना जाता है कि जापान का उतना काया-पलट नहीं हुआ जितना कि बढ़ा-चढ़ा कर उसको दिखाया गया था। वास्तव में जापान की आत्मा अब भी पूर्वी ही है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि १८८० के बाद जापान ने पश्चिमी सभ्यता की नकल करना प्रायः छोड़ दिया। वास्तव में सैनिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रसंगों को छोड़कर प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में जापान ने प्रयत्न किया है कि जापानी राष्ट्रीयता और जापानी आत्मा को न त्यागा जाय।

शक्तिशाली विदेश नीति

जापान आधुनिक और शक्तिशाली होकर संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों में अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए शक्तिशाली विदेश नीति का विकास करने लगा। उसने सबसे पहले, विवश होकर उसे पश्चिमी शक्तियों से जो असमान सन्धियाँ करनी पड़ी थीं और उनके द्वारा उसमें जो हीनता की भावना आ गई थी, उसे दूर करना चाहा। उसने चाहा कि ऐसी सन्धियों को बदला जाय। अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों को संचालित करने वाले सिद्धान्तों की दुहाई देते हुए जापान ने उन विदेशों से विरोध किया जिनके साथ उसने अज्ञानवश असमान सन्धियाँ की थीं। १८७१ में जापान ने यूरोप को इवाकुरा शिष्टमण्डल (Iwakura Mission) भेजा ताकि वह यूरोपीय देशों को अनुकूल करके असमान सन्धियों में परिवर्तन करावे। उक्त शिष्टमण्डल पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी शासन-प्रणाली पर पर्याप्त सामग्री एकत्रित करके लाया किन्तु उसका वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ अतः जापान के मन में यह विश्वास घर कर गया कि जापान के लिए केवल सभ्य होना ही पर्याप्त नहीं था। उसे यूरोपियनों के बराबर सामाजिक स्थिति प्राप्त करने के लिए शक्तिशाली भी बनना चाहिए। दूसरे शब्दों में जापान को विश्वास हो गया कि सुदूर-पूर्वी समस्या का वास्तविक हल शक्ति द्वारा ही हो सकता है। शक्ति के आधार पर ही चीन की बेइज्जती हुई थी और उसके गले असमान सन्धियाँ मढ़ दी गई थीं; और शक्ति की धौंस से ही जापान का

---

१. दूसरे महायुद्ध के बाद जापान के ऊपर सबसे अधिक अमेरिका का असर रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान-मर्दन हुआ था। अतः, जापान ने अपनी सारी शक्ति लगाकर अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाना चाहा और आत्मरक्षा के लिए भी तो जापान को सैनिक शक्ति बढ़ाना अभीष्ट था। अतः, जापान ने अपने पड़ोसी देशों के प्रति शक्तिशाली विदेश नीति अपनायी।

१८७२ में जापान ने चीन को मजबूर किया कि वह जापान के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करे। उसकी यह कार्यवाही ठीक उसी प्रकार थी जिस प्रकार कि पहले पश्चिमी देशों ने की थी। जब कोरिया (Korea) ने जापान को व्यापार करने की आज्ञा नहीं दी तो जापान ने कोरिया के ऊपर बम वर्षा की और उसके बन्दरगाहों को अपार क्षति पहुँचाई। जापान ने चीन से भी लड़ाई कर ली और १८७४ में उसने फ़ॉर्मोसा (Formosa) पर आक्रमण कर दिया, किन्तु शीघ्र ही वह उस द्वीप से हट गया। १८७७ में जापान में सामन्ती विद्रोह हो गया किन्तु उसकी नयी सेना ने उस विद्रोह को शीघ्र ही दबा दिया। इससे सिद्ध हो गया कि जापान की सेना शक्तिशाली थी और जापान में आत्मविश्वास की लहर-सी दौड़ गई। १८७९ में जापान ने लूचू द्वीप समूह (Loochoo Islands) पर अधिकार कर लिया।

परन्तु यूरोप की शक्तियाँ अब भी उन सन्धियों पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार नहीं थीं जो उन्होंने जापान के साथ की थीं; हाँ केवल ग्रेट ब्रिटेन ने १८८४ में वायदा कर लिया कि वह उक्त सन्धियों पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार है। अतः, जापान ने पुनः शक्ति का प्रदर्शन करना तय किया। जापान ने पहले भी कोरिया (Korea) में चीन को चुनौती दी थी। अब की बार उसने कोरिया और चीन से अच्छी तरह निबट लेने की ठान ली।

जापान और चीन के बीच युद्ध (१८९४-९५)

जापान की कोरिया प्रायद्वीप में बहुत दिनों से रुचि थी। १६वीं शताब्दी में कोरिया पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से चीन और जापान में लम्बा युद्ध हो चुका था, जिसमें जापान पराजित हुआ था। चूँकि कोरिया जापान के अत्यन्त समीप है अतः कोरिया जापान के भाग्य के साथ कई प्रकार से जुड़ा हुआ है। कोरिया का स्वतन्त्र होना जापान की सुरक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक था। यदि यह मान लिया जाय कि बेल्जियम की स्वतन्त्रता ब्रिटेन की सुरक्षा के लिए आवश्यक है तो फिर कोरिया की स्वतन्त्रता जापान के लिए और भी आवश्यक हो जाती है। कम से कम जापानी लोग ऐसा समझते थे। उनका कथन था—"यदि कोरिया पर शत्रुओं का अधिकार रहेगा तो उससे जापान को सदैव खतरा बना रहेगा।"

चीन ने मंचू सम्राटों से १७वीं शताब्दी में कोरिया पर अधिकार किया था और तभी से कोरिया चीन का अधीन प्रदेश माना जाता था। चीन ने कोरिया के साथ प्रायः कभी कोई ज्यादती भी नहीं की। किन्तु चूँकि चीन का शासन दूषित और नियन्त्रण ढीला-ढाला था अतः यह जापान के लिए खतरा बन सकता था। और चूँकि जापान कृतसंकल्प था कि उसे किसी भी कीमत पर संसार की बड़ी शक्ति बनना था, अतः उसके विचार से कोरिया का स्वतन्त्र होना अत्यन्त आवश्यक था। चूँकि चीन की नीति कोरिया में हस्तक्षेप करने की नहीं थी और चूँकि कोरिया में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर गड़बड़ी और राजनीतिक अस्थिरता बनी रहती थी, अतः यह जापान के लिए उपयुक्त बहाना था कि वह कोरिया में हस्तक्षेप करे अन्यथा इस बात की नितान्त सम्भावना थी कि पश्चिमी शक्तियाँ कोरिया में हस्तक्षेप कर बैठतीं। पश्चिमी शक्तियों ने पहले से ही कोरिया (Korea) के साथ सन्धियाँ कर रखी थीं ; वे पहले भी चीन के अधीन प्रदेशों पर अधिकार कर चुकी थीं ; रूस ने उत्तर की ओर से आकर पहले ही कोरिया में एक पैर जमा लिया था ; यद्यपि पश्चिमी शक्तियों के द्वेष के कारण उसने अपना पैर कोरिया की छाती पर से हटा लिया था। इसलिए, जापान को भय लगा कि कहीं कोई यूरोपीय शक्ति कोरिया को अपने अधीन न कर ले क्योंकि यूरोप के अधीन कोरिया जापान के लिए अधिक कष्टकर और असह्य सिद्ध होगा किन्तु चीन के अधीन कोरिया फिर भी सह्य है। चीन-जापान का युद्ध वास्तव में चीन के ऊपर आक्रमण था, किन्तु पश्चिमी देशों ने उसे अपने प्रति जापान की चुनौती समझा। जापान के एक यूरोपीय दूत ने कहा था—"मैं वह निश्चयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि हम कोरिया को उस समय तक नहीं छोड़ेंगे जब तक कि हमारा उद्देश्य किसी न किसी प्रकार पूरा नहीं हो जाता। हम अपने भविष्य के लिए और अपनी स्वतन्त्रता के लिए कोरिया में युद्ध कर रहे हैं। हम को पूरा भय है कि यदि कोरिया किसी यूरोपीय शक्ति के हाथों में पड़ जाता है तो हमारी स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जायेगी।"[1]

चीन और जापान के युद्ध के बीस वर्ष पूर्व से ही जापान ने कोरिया की राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। कभी तो वह कोरिया की स्वतन्त्रता का दम भरता, कभी वह कोरिया के सुधारवादी दल को उभारता, कभी वह कोरिया में चीन के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न करता, कभी कोरिया की सहायता करने का स्वाँग भरता और कभी वह कहता कि विदेशी आक्रमण के विरुद्ध उसको कोरिया का बचाना आवश्यक है अन्यथा स्वयं उसकी स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जायेगी ; कभी वह कहता कि उसका उद्देश्य कोरिया में चीन के प्रभाव को कम करना है। १८७६ में उसने कोरिया के साथ सन्धि की जिसमें कोरिया को चीन की अधीनता से मुक्त मान लिया गया। १८८४ के उपद्रवों के पश्चात् जापान ने चीन के साथ समझौता किया जिसमें निश्चय किया गया कि दोनों में से कोई भी शक्ति कोरिया में बिना पूर्व सूचना दिये अपनी सेनाएँ न भेजे।

१८९४ में कोरिया में पुनः विद्रोह हुआ जिसका नेतृत्व टोंघकों (Tonghaks) ने किया था। यह एक राजनीतिक दल था जो राजनीतिक और सामाजिक सुधारों का पक्षपाती था तथा जो कोरिया में से विदेशियों को हटाना चाहता था। कोरिया की सरकार ने चीन की सरकार से सहायता के लिए याचना की और चीन की सरकार ने २५०० सैनिक कोरिया में उतार दिये। जापान ने विरोध किया कि इतनी बड़ी संख्या में चीन के सैनिकों का कोरिया में पहुँचना सन्धि की शर्तों के विरुद्ध था। साथ ही उसने अपने ८००० सैनिक कोरिया में उतार दिये। किन्तु विद्रोह पहले ही शान्त

---

1. Quoted in Bau : *The Foreign Relations of China*, p. 33.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो चुका था। अब अत्यन्त कठिन समस्या सामने आ गई। चीन और जापान की सेनाएँ कोरिया में आमने-सामने खड़ी थीं।

कुछ समय के लिए बातचीत द्वारा चीन और जापान का युद्ध टल गया। चीन ने प्रस्ताव रखा कि दोनों देश अपनी-अपनी सेनाएं हटा लें और दोनों ही भविष्य में कभी कोरिया की राजनीति में हस्तक्षेप न करें। जापान ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और यह प्रस्ताव रखा कि चीन और जापान दोनों मिलकर सहयोगपूर्वक कोरिया में आन्तरिक सुधार करें। चीन ने जापान के इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। सत्य यह है कि दोनों पक्ष युद्ध की तैयारी कर रहे थे और उपर्युक्त कूटनीतिक वार्त्ता केवल युद्ध का बहाना ढूंढने के लिए की जा रही थी। जापान युद्ध के लिए कृतसंकल्प था। "वह अपनी सैनिक शक्ति का प्रदर्शन करना चाहता था ताकि वह पश्चिमी शक्तियों को विश्वास दिला सके कि वह अपनी न्याय-व्यवस्था और अपनी आगमशुल्क व्यवस्था का स्वयं प्रबन्ध कर सकता है और उनमें मनमाने ढंग से परिवर्तन कर सकता है।"[1]

अगस्त में एक चीनी जहाज चीनी सैनिकों सहित कोरिया (Korea) की ओर जा रहा था। जापान ने मार्ग में ही उसे पकड़ लिया। चूँकि उक्त जहाज ने आत्म-समर्पण नहीं किया, अतः उस पर आक्रमण कर दिया गया, फलस्वरूप प्रत्येक चीनी यात्री समुद्र में डुबो दिया गया। इस घटना से क्षुब्ध होकर चीन ने युद्ध की घोषणा कर दी और दोनों पक्ष युद्ध-ग्रस्त हो गये।

यह युद्ध लगभग नौ महीनों तक चला जिसमें जापानियों की विजय हुई। स्थल-युद्ध में भी और जल-युद्ध में भी चीन की करारी पराजय हुई। जापान की बहुत ही श्रेष्ठ सैनिक तैयारियाँ थीं, वास्तव में चीन और जापान का मुकाबला ही नहीं था। जापान ने सैनिक तैयारियों में कोई कसर न छोड़ी थी। जापान की डेढ़ लाख सेना सुदक्ष थी। उसको श्रेष्ठ प्रशिक्षण दिया गया था। जापानी सैनिकों को यथा-समय वेतन मिलता था और उसके जनरल अनुभवी और अत्यन्त योग्य थे। जापानी सेना के साथ युद्ध-विद्या-विशारद और विशेषज्ञ भी रहते थे। जापान की सेना गतिशीलता में बढ़ी-चढ़ी थी। उसको गोली बारूद तथा अन्य रसद आदि की वस्तुएँ यथासमय तथा यथावश्यकता मिलती रहती थीं। जापानी नौ सेना में पर्याप्त संख्या में यात्री जहाज थे जो सेना को अथवा युद्ध-सामग्री को एक रणक्षेत्र से दूसरे रणक्षेत्र में शीघ्रता से पहुँचा सकते थे। जापानी स्थल सेना के समान ही जापान का युद्ध बेड़ा भी मज़बूत था। संक्षेप में जापानी सेना संगठन सुदृढ़ और चुस्त था।

चीन की सेना के पास न तो शस्त्रास्त्र थे, न उसके सैनिक प्रशिक्षित थे; और उसकी सेना के सैनिकों को नियमित वेतन भी न मिलता था। केवल ली हंग-चांग (Li Hung-Chang) की छोटी-सी सेना अपवाद थी। यद्यपि कहने भर को चीन का युद्ध जहाजी बेड़ा मजबूत था और उसके युद्ध-पोत आधुनिक नमूने के थे; किन्तु चीन की सेना और नौ सेना के कमाण्डर अत्यन्त अयोग्य थे। इसके अतिरिक्त चीन का

---

1. Bau : *The Foreign Relations of China*, p. 32.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन-प्रबन्ध भी दूषित और भ्रष्टाचारी था।[1] फल यह हुआ कि चीन के बड़े युद्ध-पोतों की तोपों के लिए जिन गोलों और बारूदों की व्यवस्था की गई वे युद्ध-स्थल में लकड़ी के गोले और लकड़ी का बुरादा निकले।

ऐसी हालतों में चीन की पराजय अवश्यम्भावी थी। वास्तव में युद्ध के प्रारम्भ से अन्त तक कभी भी चीन को तनिक भी सफलता नहीं मिली। सितम्बर के अन्त तक चीनी सैनिकों को कोरिया से भगा दिया गया और यालू नदी (Yalu River) की मुठभेड़ में चीन का बेड़ा टूट गया। जापान की एक सेना ने मंचूरिया पर भी आक्रमण किया। जापान की एक अन्य सेना ने लियाओ-टंग (Liao-tung) प्रायद्वीप पर आक्रमण किया। किंगको (Kingkow) और तलीवाँ (Talienwan) का पतन हो गया। और नवम्बर में पोर्ट आर्थर (Port Arthur) पर भी जापान का अधिकार हो गया जो चीन का सबसे मजबूत बन्दरगाह समझा जाता था।

१८९५ के प्रारम्भ में जापानी सेनाएँ शांटुंग (Shantung) जा पहुँचीं जो कोरिया के दूसरे छोर पर स्थित है। चीन लियाओ-टंग प्रायद्वीप (Liao-tung) से घिरे हुए शाटुंग द्वारा ही टींटसिन (Tientsin) और पेकिंग के मार्ग की रक्षा करता था। फरवरी के मध्य तक वी-है-वी (Wei-hai-wei) का भी पतन हो गया। उत्तर में भी कई रक्षा-चौकियों का पतन हो गया। अब तो जापानी सेनाएँ चीन की राजधानी को घेरती हुई आ रही थीं।

ली हंग-चांग (Li Hung-Chang) नामक चीनी दूत ने जापान से प्रार्थना की कि युद्ध बन्द कर दिया जाय और अप्रैल १८९५ में शिमोनोसेकी (Shimonoseki) की सन्धि द्वारा युद्ध बन्द हो गया। उक्त सन्धि की शर्तों के अनुसार चीन ने कोरिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया। उसने फार्मोसा द्वीप जापान को दे दिया और पेस्केडोरस (Pescadores) तथा लियाओ-टंग प्रायद्वीप भी जापान को मिले और उसने युद्ध के हर्जाने के रूप में बहुत बड़ी धनराशि भी जापान के हवाले की। इसके अतिरिक्त चीन ने जापान को भी उन्हीं शर्तों के साथ व्यापार करने की सुविधाएँ प्रदान कर दीं जो पश्चिमी देशों को प्राप्त थीं।[2] उसने चार बन्दरगाह जापान

१. सभी लोग मानते हैं कि चीन में भ्रष्टाचार का बोलबाला है और इसी कारण चीन का राजनीतिक जीवन भी भ्रष्टाचार-मय रहता ही है। किन्तु इस भ्रष्टाचार का कारण यह बताया जाता है कि चीन में पारिवारिक जीवन के प्रति बहुत ही अधिक आकर्षण है। चीन में परिवार के कल्याण की भावना के सामने समाज के अन्य वर्गों के कल्याण की भावना को भुला दिया जाता है। नौबत यहाँ तक आ जाती है कि कोई चीनी परिवार के कल्याण के लिए यदि चाहे तो अपने पड़ोसी को ठग सकता है या राज्य को भी धोखा दे सकता है।

२. चीन और जापान की व्यापारिक सन्धि पर जब पुनर्विचार हुआ तो उसमें एक धारा यह जोड़ दी गई कि जापान को चीन में व्यापार करने की सुविधा देते समय उसके हितों को प्राथमिकता दी जायेगी। चूँकि यह धारा उन सभी सन्धियों में भी मौजूद थी जो चीन ने पश्चिमी देशों के साथ की थी; अतः इस धारा का यह अर्थ लिया जाने लगना स्वाभाविक ही था कि यदि कोई विशेषाधिकार एक देश को प्राप्त है तो वह दूसरे देशों को देना होगा। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र उन्हीं विशेषाधिकारों की माँग करने लगा जो प्राथमिक हितों वाले राष्ट्र (Most Favoured Nation) को प्राप्त थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के व्यापार के लिए मुक्त कर दिए।

सुदूर पूर्व के आधुनिक इतिहास में चीन-जापान युद्ध एक नाजुक और निर्णायक घटना थी और इसके कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। इस युद्ध का प्रथम परिणाम यह हुआ कि जापान ने यूरोपीय शक्तियों द्वारा बनाई गई असमान सन्धियों से मुक्ति प्राप्त कर ली। उसने अपनी न्याय-संहिता में सुधार किया और अपनी शक्ति का सफल प्रदर्शन किया। अब पश्चिमी शक्तियों के लिए यह आवश्यक नहीं रह गया था कि वे अपने नागरिकों की रक्षा के लिए विशेष संरक्षण चाहते। जापान ने पूरी तरह से असमान सन्धियों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। जापान में विदेशियों के राज्य-क्षेत्रातीत अधिकार (Extraterritorial Rights) समाप्त कर दिये गए थे। जापान को चुंगी की स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो गई ; दूसरे शब्दों में उसे अपनी चुंगी की दरों को नियन्त्रित करने की अनुमति दे दी गई। इसमें अब यूरोपीय शक्तियाँ किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती थीं।

इस युद्ध का द्वितीय परिणाम यह हुआ कि यूरोपीय शक्तियों को पता लग गया कि चीन अत्यन्त दुर्बल है। चीन किसी शक्तिशाली पश्चिमी देश से पराजित नहीं हुआ था, बल्कि वह तो एशिया की ही एक बौनों की जाति से पराजित हुआ था जिसको चीन शताब्दियों से घृणा की दृष्टि से देखता चला आ रहा था। चीन इतना कमजोर था कि उसकी भूमि पर आक्रमण हुआ। उसे न केवल अपने आश्रित प्रदेश दे देने पड़े बल्कि उसको स्वदेश का कुछ भू-भाग भी लुटेरों को दे देने पर विवश होना पड़ा। जब चीनवासियों को अपनी कमजोरी का भान हुआ तो उनको निराशा ने घेर लिया और उनमें विद्रोह और क्रोध की ज्वाला जलने लगी। दूसरी ओर अब चीन में आन्तरिक सुधार होने लगे और शनैः-शनैः मञ्चू साम्राज्य का पश्चिमीकरण होने लगा। इस युद्ध के परिणाम यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों पर भी पड़े बिना न रहे। यूरोप को प्रतीत हो गया कि चीन साम्राज्य विघटित होने जा रहा है ; वे समझने लगे कि अफ्रीका की भाँति चीन भी टुकड़े-टुकड़े होने जा रहा है और उसको भी यूरोपीय देशों में बाँट लिया जाएगा। इस प्रकार चीन के विभाजन की योजना बनने लगी और पश्चिमी देश चीन को लूटने के लिए लालायित जान पड़ने लगे ; इसके पश्चात् चीन के तीनों तथाकथित मित्र जर्मनों के पट्टों, अन्य सुविधाओं और प्रभाव-क्षेत्रों के लिए चीन पर दबाव डालने लगे, यही नहीं, वे चीनी भूमि के बड़े-बड़े टुकड़े स्वयं ही चीन से छीनने लगे। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होने लगा कि चीन का लुटेरों में विभाजन होने जा रहा है। १९वीं शताब्दी के अन्त में शायद ही कोई ऐसा यूरोपीय राजनीतिज्ञ था जिसे चीनी साम्राज्य के पूर्ण विनाश का विश्वास न हो।

तृतीयतः, १८९५ की विजय ने जापानी साम्राज्यवाद को उत्तेजना दी। २५ वर्षों से जापान अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को दबाये पड़ा था। वह अपनी सेना का निर्माण कर रहा था तथा अपने साधन जुटा रहा था। इस युद्ध में जापान ने अपनी शक्ति की जाँच कर ली और और अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ प्राप्त कर लीं। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जापान को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई ; और इस सफलता के फलस्वरूप जापान को और अधिक विजयों की लालसा बढ़ी। अगले दस वर्षों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान ने एक यूरोपीय शक्ति को भी चुनौती दी और उसे पछाड़ दिया। और इस युद्ध के पन्द्रह वर्षों के अन्दर जापान ने कोरिया पर अधिकार कर लिया, यद्यपि एक बार स्वयं जापान ने कोरिया की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध किया था। जापान-चीन युद्ध के बीस-बाईस वर्षों के अन्दर जापान ने अपार उन्नति की थी।

चीन-जापान युद्ध में जापान ने यूरोप वालों को दिखा दिया था कि वह मामूली शक्ति नहीं थी, यूरोपवासी समझ गए थे कि सुदूर पूर्व में एक नए सूर्य का जन्म हुआ है और पूर्व की विजयों के लिए एक नया प्रत्याशी पैदा हो गया है। एशिया में जापान के विस्तार को यूरोपवासी भय की दृष्टि से देखते थे और उसे पीला भय (Yellow Peril) कहते थे। निस्सन्देह यूरोपवासियों के जापान-सम्बन्धी भय सत्य थे और जापान की शक्ति निरन्तर बढ़ती ही गई।

चीन-जापान के युद्ध के साथ एक युग का अन्त हुआ और दूसरे का प्रारम्भ। इस युद्ध के साथ उस युग का अन्त हुआ जिसमें चीन में विदेशी लोग निरन्तर घुसपैठ कर रहे थे और वे चीन को चारों ओर से घेरते चले आ रहे थे, जिसके फल-स्वरूप चीन के नौ अधीन प्रदेशों पर विदेशियों ने अधिकार कर लिया था और जिसके फलस्वरूप चीन का दक्षिणी कोना इंग्लैण्ड और फ्रांस ने दबा लिया था और उत्तरी कोना रूस ने दबा लिया था। किन्तु इस युद्ध द्वारा उस युग का प्रारम्भ हुआ जिसमें जापान ने अपार उन्नति की और उसने पश्चिमी उपायों और साधनों का अनुकरण करके अपनी शक्ति को बढ़ाया और अपने पड़ोसी देश चीन को हराया।

यही नहीं चीन-जापान के युद्ध ने सुदूर पूर्व की समस्याओं में एक ऐसे युग का श्रीगणेश किया जो १९१९ की वार्साई की सन्धि (Peace of Versailles) तक चला। इस युग को सामान्यतः चीन के ऊपर यूरोपीय शक्तियों का एवं जापान के आक्रमण का युग कहा जा सकता है। किन्तु इस युग की घटनाओं से हम किसी सामान्य परिणाम पर नहीं पहुँच सकते। यह कई प्रकार की उलझी हुई घटनाओं का युग था। प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा में सुदूरपूर्वी समस्या प्रकट हो रही थी और उसके ऐसे विकास और परिणाम देखने में आ रहे थे जिन्होंने उक्त समस्या के प्रारम्भिक विकासों को प्रायः आच्छादित कर लिया था। यूरोपीय देश बारम्बार चीन की भूमि पर आक्रमण कर रहे थे; यूरोपीय शक्तियों में चीन की छीना-झपटी के सम्बन्ध में आपस में मतभेद और ईर्ष्या थी क्योंकि हर एक शक्ति चीन के अधिकतम भू-भाग पर अधिकार कर लेना चाहती थी। इसके अतिरिक्त रूस अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहता था अतः सभी उसकी ओर से भयभीत थे; सभी को संसार में शक्ति-संतुलन की चिन्ता थी। उधर जापान भी विश्व-शक्ति के रूप में अवतरित हो चुका था। उसको कोई भी शक्ति या तो मित्र मान सकती थी या शत्रु मान सकती थी, किन्तु उसकी सर्वथा उपेक्षा करना संभव नहीं था; वह किसी भी बड़ी-से-बड़ी शक्ति की स्पर्द्धा और प्रतियोगिता का विषय था। और यदि यह मान लिया जाय कि यूरोपीय शक्तियों में जापान के विरुद्ध अपने हितों के सम्बन्ध में कोई

सुदूर पूर्व की समस्या (१८९५-१९१९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता थी तो वह एकता १९०२ की आँग्ल-जापानी मित्रता से टूट गई। इसके अतिरिक्त चीन भी, जो अब तक चुपचाप सब अन्याय और हरण सहन करता चला आया था अब सक्रिय विरोध के मार्ग पर आरूढ़ हो गया था। अन्ततः, संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन की भी इसमें सहमति थी कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और प्रतियोगिता के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। वास्तव में ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका चाहते थे कि तत्कालीन कतिपय उग्र समस्याओं का समाधान 'खुले द्वार' (Open Door) की नीति द्वारा हल किया जाय।

तीन शक्तियों का हस्तक्षेप (१८९५)

नये युग का श्रीगणेश तीन शक्तियों के हस्तक्षेप के साथ हुआ। शिमोनोसेकी (Shimonoseki) की सन्धि की स्याही अभी सूखी भी नहीं थी कि जापान को मजबूर किया गया कि वह उन लाभों को त्याग दे जो उसे उक्त सन्धि द्वारा प्राप्त हुए थे। कारण यह था कि जापान की विजयों से चीन की सुरक्षा को इतना भय महसूस नहीं किया जा रहा था जितना कि रूसी महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति उसे शक्तिशाली अंकुश माना जा रहा था। चूँकि जापान के अधिकार में लियाओ-टुंग (Liao-Tung) प्रायद्वीप आ चुका था और उसके साथ ही पोर्ट आर्थर (Port Arthur) बन्दरगाह पर भी जापान का अधिकार हो चुका था जो सदैव बर्फ़ से मुक्त रहता था; और चूँकि जापान अब पेकिंग (Peking) पर सीधे आक्रमण करने की स्थिति में था अतः मंचूरिया (Manchuria) में जापान और रूस के हितों में टकराव होने लगा। काउंट विटे (Count Witte) ने ज़ार निकालस द्वितीय (Tsar Nicholas II) से कहा था—"हम नहीं चाहते कि जापान अपने द्वीप को छोड़कर एशिया की मुख्य भूमि पर अधिकार करे। हम शान्ति के साथ सुदूर पूर्व के साथ अपने व्यापारिक सम्बन्ध बनाना चाहते हैं। जापान उसमें बाधक होगा।" ली हंगचांग (Li Hung-Chang) की प्रार्थना पर ज़ार ने चीन के पक्ष में हस्तक्षेप करना निश्चित किया। सेंट पीटर्सबर्ग (St. Petersburg) से एक पत्र प्रेषित किया गया, जिसमें जापान को सावधान किया गया कि वह सदैव के लिए लियाओटंग (Liao-tung) प्रायद्वीप पर अधिकार नहीं कर सकेगा "क्योंकि इससे सुदूर पूर्व में राजनीतिक संतुलन में गड़बड़ हो जायगी।" इस पत्र का ग्रेट ब्रिटेन ने विरोध किया किन्तु चूँकि फ्रांस और रूस की मैत्री होने वाली थी, अतः फ्रांस ने इसका समर्थन किया। जर्मनी के कैसर विलियम द्वितीय (Kaiser William II) ने भी रूस के विरोध का समर्थन किया क्योंकि या तो जर्मनी को जापान का प्रभाव-वर्द्धन अच्छा नहीं लगता था या वह प्रशान्त महासागर में अपने प्रभाव का विस्तार चाहता था या वह रूस की मैत्री से लाभान्वित होना चाहता था। इस प्रकार जब रूस, फ्रांस और जर्मनी ने जापान का विरोध किया तो जापान ने विजय के प्रादेशिक लाभों को त्याग दिया। लियाओ-टंग (Liao-tung) प्रायद्वीप और बन्दरगाह पोर्ट आर्थर चीन को कुछ धन के एवज़ में वापस दे दिये गए। जापान चीन से हट तो गया किन्तु उसे रूस के रुख से भारी निराशा और क्रोध था। इंग्लैण्ड ने जापान के विरुद्ध रूस, जर्मनी और फ्रांस का साथ नहीं दिया था क्योंकि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको भी जापान के समान रूस की महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति भय था। इस प्रकार इंग्लैण्ड और जापान की मैत्री का बीज उगा।[1]

फ्रांस, रूस और जर्मनी द्वारा चीन में रियायतों की माँग

यद्यपि लियाओ-टंग (Liao-tung) प्रायद्वीप पर जापान का अधिकार न रहने से रूस को लाभ हुआ परन्तु मुख्यतः वह चीन का हित था; अतः तीनों शक्तियों ने चीन को जो लाभ कराया था, उसके एवज में वे चीन से रियायतें और सुविधाएँ माँगने लगे। चीन की सरकार को बहुत बड़ी रकम जापान को अदा करनी थी, अतः अपने जीवन में प्रथम बार चीन को किसी विदेश से ऋण माँगना पड़ा। इस प्रकार चीन की अर्थ-व्यवस्था के ऊपर विदेशी नियन्त्रण हुआ और फलस्वरूप चीन विदेशियों के चंगुल में अधिकाधिक फँसता गया। चीन ने १८९५ में प्रथम ऋण रूस और फ्रांस से प्राप्त किया। फ्रांस को चीन में निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त हो गईं। टोंकिन (Tonkin) और चीन के बीच सीमा का स्थिरीकरण हो गया; युन्नान (Yunnan), क्वाँग्सी (Kwangsi) और क्वान्टंग (Kwangtung) में फ्रांस की खानों को विकसित करने की आज्ञा प्रदान कर दी गई, अनाम रेलवे को चीन तक ले जाने की आज्ञा दे दी गई और फ्रांस के व्यापार के लिए कई नये चीनी बन्दरगाह खोल दिए गए। इसी प्रकार १८९६ में मंचूरिया में रूस को भी कई विशेषाधिकार प्राप्त हो गए। रूस ने ट्रांस साइबेरियन रेलवे को[2] व्लाडीवोस्टक (Vladivostok) के प्रान्त से होकर बढ़ा लिया, रूस को कतिपय खान खोदने के अधिकार भी प्राप्त हुए और कुछ सैनिक विशेषाधिकार भी रूस को दिए गए जिसके अनुसार युद्ध की अवस्था में रूस पोर्ट आर्थर (Port Arthur) और कियाओ-चाऊ (Kiao-chau) नामक बन्दरगाहों का नौ-सैनिक अड्डों के रूप में प्रयोग कर सकता था। चीन के उत्तरी भू-भाग में रूस का प्रभाव बढ़ गया और दक्षिण में फ्रांस का प्रभाव बढ़ा; इससे ग्रेट ब्रिटेन को चिन्ता बढ़ी। जर्मनी को भी निराशा होने लगी क्योंकि चीन में रूस और फ्रांस को भी सुविधाएँ मिल गईं किन्तु वह यूँही हाथ मलता रह गया, यद्यपि उसने भी जापान के विरुद्ध रूस और फ्रांस के साथ चीन का समर्थन किया था।

फ्रांस

रूस

१८९७ में दो जर्मन कैथोलिक धर्म-प्रचारकों की शांटुंग (Shantung) में हत्या कर दी गई। इससे क्रुद्ध होकर जर्मनी ने कियाओ-चाऊ (Kiao-chau) पर अधिकार कर लिया और अपनी शर्तें चीन के समक्ष उपस्थित कर दीं। चीन और

---

१. १८९८ में जोसेफ चेम्बरलेन (Joseph Chamberlain) ने इंग्लैण्ड और जापान की मैत्री की चर्चा की थी।

२. ट्रांस साइबेरियन रेलवे का रूस के लिए वही महत्त्व था जो बगदाद रेलवे का जर्मनी के लिए था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्मनी के बीच संधि हो गई जिसके परिणामस्वरूप कियाओ-चाऊ पर ९९ वर्षों के लिए जर्मनी का अधिकार हो गया तथा उसे पट्टे-प्राप्त प्रदेश (Leased Territory) में पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गए। इसके अतिक्ति उक्त प्रदेश के बाहर पचास किलोमीटर भूमि और अधिक जर्मनी के अधिकार में दे दी गई जिसमें जर्मनी को अधिकार दिया गया कि वह मुफ्त अपनी सेनाएँ ले आ-जा सकेगा, तथा उसको शाँटुंग (Shantung) में दो रेलें निकालने की आज्ञा दे दी गई। यही नहीं, चीन ने वचन दिया कि यदि कभी उक्त प्रान्त में विदेशी सहायता की आवश्यकता होगी तो सबसे पहले उक्त सहायता के लिए जर्मनी से प्रार्थना की जाएगी। इससे चीन में जर्मनी की शक्ति बहुत बढ़ गई और चीन की प्रभुसत्ता तथा चीन की प्रादेशिक अखण्डता के लिए एक भारी खतरा उत्पन्न हो गया। इससे अन्य पश्चिमी राष्ट्र भयभीत हुए। जर्मनी से उसके व्यापक लाभों को छीनने के लिए शक्ति-संतुलन के सिद्धान्त की आड़ नहीं ली जा सकती थी। इसलिए उन्होंने भी चीन से उसी प्रकार की रियायतें चाहीं। उन्होंने चीन से अधिकाधिक हर्जाना और रियायतें चाहीं जो उन्हें मिलती गईं और अन्त में चीनी साम्राज्य के मुख्य मर्म-स्थलों पर विदेशी लोग अधिकार करके बैठ गए।

जर्मनी

१८९७ के अन्त में रूस ने चीन को धमकाया कि ग्रेट ब्रिटेन पोर्ट आर्थर पर अधिकार करने वाला है, अतः उसने पोर्ट आर्थर और तैलीवां (Talienwan) पर अधिकार करके बाद में उक्त दोनों स्थानों को पट्टे पर माँगा। रूस की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। उसने निश्चित किया कि पोर्ट आर्थर (Port Arthur) सब देशों के लिए मुक्त बन्दरगाह नहीं रहेगा, बल्कि वह केवल रूस और चीन के जहाज़ों के लिए खुला रहेगा। बाद में रूस को और अधिक रियायतें दे दी गईं, जिनका सम्बन्ध रेलों से था। इस पर फ्रांस ने क्वांग च्वान (Kwang-Chouan) को पट्टे में माँगा और चाहा कि उसे टोंकिन (Tonkin) से लेकर युन्नान (Yunnan) तक रेल बनाने की सुविधा प्रदान की जाय, और उसने कई अन्य राजनीतिक माँगें भी उपस्थित कीं। उदाहरणस्वरूप फ्रांस ने माँग की कि चीनी डाक व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी फ्रांस का नागरिक हो। १८९८ में उक्त सभी माँगें स्वीकार कर ली गईं। शक्ति-संतुलन के रक्षणार्थ ग्रेट ब्रिटेन ने भी अपने लिए कुछ माँगें पेश कीं। १८९७ में फ्रांस को टोंकिन में दिए गए विशेषाधिकारों और रियायतों के बदले में इंग्लैण्ड ने बर्मा में अपनी सीमाओं में लाभदायक हेर-फेर कर लिए। इसके पश्चात् इंग्लैण्ड ने चाहा कि उसके हाँगकाँग (Hong-Kong) के प्रदेश में कुछ अन्य भू-भाग और जोड़ दिए जाएँ तथा उसके प्रदेश में आन्तरिक नदियों में अग्नि बोट (Steam Boats) चलाने की सुविधा दे दी जाय और वे-हे-वे (Wei-Hei-Wei) को पट्टे पर उस समय तक के लिए दे दिया जाय जब तक पोर्ट आर्थर (Port Arthur) रूस के अधिकार में रहे। इस प्रकार ब्रिटेन ने दिखा दिया कि उसे रूस की ओर सन्देह था। चूँकि फ्रांस ने चीन

रूस

फ्रांस

ग्रेट ब्रिटेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को डाक व्यवस्था पर अपना नियन्त्रण कर लिया था, अतः उसके एवज़ में ब्रिटेन ने चाहा कि सामुद्रिक आगम शुल्कों की व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारीपद उस समय तक किसी ब्रिटिश नागरिक को दिया जाय जब तक कि ब्रिटिश व्यापार सब से अधिक है।

यहीं अन्त नहीं हुआ। इटली तक ने समुद्री अड्डा माँगा यद्यपि इटली का कोई धर्म-प्रचारक मारा नहीं गया था। किन्तु इटली देर कर गया। चीनी राजदरबार में विद्रोह हो गया जिसके फलस्वरूप चीनी शासन की बागडोर वृद्धा सम्राज्ञी विधवा से सी (Tse Hsi) के हाथों में आ गई। वह बहुत ही योग्य शासक थी। लोग उसको वृद्धा बुद्ध कहते थे और उसका आदर करते थे। सम्राज्ञी से सी (Tse Hsi) ने खुशामद और गिड़गिड़ाना त्यागकर साहस से काम लिया। उसने यांगट्सी के गवर्नरों को आदेश दिया कि वे इटली की माँगों का विरोध करें। इस पर इटली ने अपनी माँगें वापस ले लीं।

यूरोप की शक्तियों ने चीन से यह भी मनवा लिया कि कुछ यूरोपीय शक्तियों के अधिकार में जो कतिपय जिले हैं वे किसी हालत में उनसे रिक्त नहीं कराये जायेंगे। दूसरे शब्दों में, चीन की सरकार ने मान लिया कि चीनी साम्राज्य में कतिपय अन्य शक्तियों का भी प्रभुत्व है और उन क्षेत्रों में उसी विदेशी शक्ति को विशेषाधिकार दिये जाएँगे। इस प्रकार फ्रांस के अधिकार में हैनान (Hainan) और टोंकिन (Tonkin) की सीमा का प्रदेश आ गया, यांगट्सी (Yangtse) की घाटी ब्रिटेन के हाथ रही; जापान का अधिकार फ़ुकीन (Fukien)[1] पर हो गया; तथा जर्मनी को शाँटुंग (Shantung) में विशेषाधिकार प्राप्त हुए; रूस ने मञ्चूरिया (Manchuria), मंगोलिया (Mangolia) और चीनी टर्किस्तान (Chinese Turkestan) पर अपना प्रभाव फैलाया।

किसी देश की रेलवे व्यवस्था का उस देश की आर्थिक, सैनिक और वित्तीय स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रेलों की निर्माण व्यवस्था के सम्बन्ध में चीन में रूस, फ्रांस, जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन को पहले से ही कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हो चुके थे। अब उपर्युक्त शक्तियाँ और अधिक रियायतें चाहने लगीं और इन रियायतों के संबंध में ये शक्तियाँ एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न करने लगीं।

रेलें

मुख्य संघर्ष पेकिंग-हैंकाऊ (Peking Hankow) रेलवे लाइन के निर्माण के सम्बन्ध में था, जिसके द्वारा चीनी राजधानी या यांगट्सी (Yangtse) की वादी से मिलाया जाना अभीष्ट था। ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, और रूस एवं फ्रांस द्वारा समर्थित बेल्जियम सभी उक्त रेलवे लाइन के निर्माण को अपने हाथों में लेना चाहते थे, किन्तु फ्रांस और रूस की सहायता के कारण यह रियायत बेल्जियम को मिली। ग्रेट ब्रिटेन को इससे भारी निराशा हुई और उसने माँग की कि चूँकि उस क्षेत्र में शक्ति-संतुलन गड़बड़ा गया है, अतः उसे हर्जाना दिया जाय। उसने अपनी नौ-सैनिक शक्ति का प्रदर्शन भी किया और फल-

१. और १९१५ में जापान के नियन्त्रण में शाँटुंग (Shantung) भी आ गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप उसको कतिपय खानों और रेलों के सम्बन्ध में कुछ रियायतें मिल गईं। अमेरिका-चीन विकास कम्पनी (America-China Development Company) ने भी हर्जाना माँगा और इसी प्रकार रूस, फ्रांस और जर्मनी की माँगों को भी संतुष्ट करना पड़ा। एक के बाद एक पश्चिमी शक्ति चीन में अधिकाधिक घुस-पैठ करती गई। धीरे-धीरे यूरोपीय शक्तियाँ चीन का लहू जोंकों की तरह चूसने लगी थीं। चीन की मजबूत रक्षा-चौकियाँ विदेशियों के अधिकार में आ रही थीं, उसका विदेशी व्यापार और उसके आगम-शुल्क विदेशियों के नियन्त्रण में थे, उसके वित्तीय साधन और आन्तरिक प्रबन्ध पर भी विदेशी लोग छाये हुए थे। यही नहीं चीनी मुख्य भूमि पर चलने वाली रेलों पर भी विदेशी शक्तियों का ही पूर्ण नियन्त्रण था। चीनी प्रभुसत्ता नाममात्र को थी। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि चीनवासी भी और यूरोपनिवासी भी चीन में प्रभाव-क्षेत्र कायम करके चीन के विभाजन की तैयारी कर रहे थे।

फिर भी पश्चिमी शक्तियों में चीन का विभाजन नहीं हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के तीन फल हुए। वास्तव में यूरोपीय संघर्ष और यूरोपीय प्रतिस्पर्द्धा के कारण सुदूरपूर्व की घटनाओं पर तीन प्रभाव पड़े। वे थे : उन्मुक्त द्वार का सिद्धान्त (Open Door Doctrine), बॉक्सर उपद्रव (Boxer Riots) और १९०२ की आँग्ल-जापानी मैत्री (The Anglo-Japanese Alliance of 1902)।

कुछ वर्षों से संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीन के प्रति ऐसा अच्छा व्यवहार रखा था कि चीन उसको पश्चिमी राष्ट्रों में एकमात्र मित्र मानने लगा था।[1] १८८४

---

१. किन्तु कुछ चीनी लोग समझते थे कि अमेरिका द्वारा चीन का जो आर्थिक शोषण हुआ था वह भी उतना ही हानिप्रद था जितना कि अन्य शक्तियों द्वारा प्रादेशिक अपहरण। कुछ चीनी क्षेत्रों में तो अमेरिका के प्रति घोर अविश्वास पाया जाता है ; वे लोग ऐसा मानते हैं कि अमेरिका ने वायदे तो बहुत किए किन्तु वायदों के प्रति वह वफ़ादार नहीं रहा। इस सम्बन्ध में दो उदाहरण भी दिए जाते हैं। (१) १८६८ में बर्लिंगेम (Burlingame) नामक पेकिंग स्थित अमेरिकी राजदूत यूरोप गया जहाँ उसने प्रयत्न किया कि पश्चिमी देश चीन के प्रति कुछ नरम रुख अपनावें। उसने संयुक्त राज्य अमेरिका को राजी कर लिया कि वह चीन के साथ एक ऐसी सन्धि करे जिसमें "दोनों पक्ष वायदा करें कि प्रत्येक देश के नागरिकों को जन्मसिद्ध अधिकार है कि वे अपना देश छोड़कर दूसरे देश में जाकर बस सकते हैं और उस नये देश के प्रति निष्ठावान बन सकते हैं, तथा दोनों देशों के नागरिकों के आदान-प्रदान से दोनों देशों को लाभ होगा चाहे वे स्वदेश कुतूहलवश छोड़ें या व्यापार के लिए छोड़ें या दूसरे देश में सदैव के लिए जा बसें। अतः उस समय यह माना गया था कि यदि कोई विदेशी स्वेच्छा से अपने देश को वापस लौटना चाहेगा तभी उसको वापस जाने दिया जायेगा।" चीन में ऐसा समझा जाता है कि अमेरिका ने चीनी लोगों को अमेरिका से निकाल कर उक्त प्रतिज्ञा को तोड़ा। (२) १९१७ में चीन ने जर्मनी के विरुद्ध अमेरिका की इस घोषणा के विश्वास पर युद्ध छेड़ा था कि राष्ट्रीयता संबंधी अधिकारों को मान्यता दी जायेगी। किन्तु अपनी पुरानी घोषणाओं के विरुद्ध १९१९ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने शांटुंग (Shantung) प्रान्त पर जापान का अधिकार स्वीकार कर लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निरन्तर संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीन के व्यापार के विकास में सहायता दी थी। अमेरिका ने चीन के साथ युद्ध नहीं किया था;[1] बल्कि अमेरिका प्रायः सर्वप्रथम देश था जिसने अफ़ीम युद्ध (Opium War) के पश्चात् पेकिंग की सरकार के साथ सन्धि की थी और १८५८ से १८६० तक के संघर्ष में विदेशियों को जो कुछ लाभ हुए थे उनमें अमेरिका ने भी लाभ उठाया था। उसको भी वही व्यापारिक और कूटनीतिक विशेषाधिकार प्राप्त हुए जो अन्य देशों को हो चुके थे। अन्य यूरोपीय शक्तियों के समान ही संयुक्त राज्य अमेरिका को भी राज्यक्षेत्रातीत शुल्काधिकार थे और सर्वाधिक प्रिय देश के भी अधिकार उसको प्राप्त थे। १८७१ में अमेरिका ने कोरिया (Korea) को सैनिक शक्ति पर मजबूर किया था कि वह अपने बन्दरगाह व्यापार के लिए खोले; और जैसा कि बताया भी जा चुका है अमेरिका ने आठ युद्ध-पोतों के बल पर जापान को मजबूर किया था कि वह अमेरिकी जहाज़ों को ठहरने के लिए अपने बन्दरगाह खोल दे। इस प्रकार, सुदूर पूर्व में व्यापार करने के उद्देश्य से अमेरिका भी अन्य देशों के साथ पूर्व में गया और उसने बल का भी प्रयोग किया, कम-से-कम शक्ति का प्रदर्शन भर तो अवश्य किया ताकि उसके उद्देश्य की पूर्ति हो सके। किन्तु यह भी स्वीकार करना ही होगा कि अमेरिका ने अत्यन्त संयम के साथ बल का प्रयोग किया और चीन के ऊपर उसने सिवाय उन व्यापारिक और न्यायिक विशेषाधिकारों के और किसी अन्य प्रकार का राजनीतिक दबाव नहीं डाला, जिनकी तत्कालीन अवस्था में नितान्त आवश्यकता थी। उसने न तो चीन में अपने प्रभाव-क्षेत्र की स्थापना का प्रयत्न किया न उसने कठिन रियायतें ही कभी माँगीं। उसने चीन के किसी अधीन प्रदेश पर अधिकार नहीं किया। रेल-निर्माण के सम्बन्ध में जिन रियायतों की माँग अमेरिका ने की थी वह केवल एक व्यापार संबंधी रियायत की माँग थी। संक्षेप में इतना समझ लेना पर्याप्त होगा कि अमेरिका की चीन में नीति उस समय भी और आजकल भी व्यापार के लाभ की दृष्टि से संचालित होती रही है।

उन्मुक्त द्वार का सिद्धान्त

किन्तु संसार के प्रायः सभी देश चीन में रियायतों के लिए और अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र कायम करने के लिए लालायित थे अतः इससे अमेरिका की स्थिति अत्यन्त नाजुक हो गई। १८९८ में अमेरिका का स्पेन के साथ चलने वाला युद्ध समाप्त हुआ था, जिसके फलस्वरूप अमेरिका के इतिहास में प्रथम बार उसके अधिकार में ऐसा उपनिवेश आया जिसको फ़िलिपाइन द्वीपसमूह कहते हैं। वह प्रशांत महासागर में स्थित था, और चीन तथा जापान के अत्यन्त निकट था। कुछ लोगों का तो यह अनुमान था कि अमेरिका भी साम्राज्यवादी देश बनने जा रहा है। उन्होंने ऐसी धारणा बना ली थी कि फिलिपाइन द्वीपों को आधार बनाकर अमेरिका चीन पर आक्रमण करेगा, जिस प्रकार कि सभी लोगों को भय था कि अनाम (Annam) को आधार बनाकर फ्रांस चीन पर आक्रमण करेगा अथवा बर्मा

१. यद्यपि अमेरिका के युद्ध-पोत १८५८ में ताकू (Taku) की रक्षक चौकियों तक आ गये थे; परन्तु उन्होंने किसी प्रकार की आक्रामक कार्यवाही नहीं की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Burma) को आधार बनाकर इंग्लैंड चीन को वश में करना चाहता है; अथवा प्रिमोर्स्क (Primorsk) से रूस चीन के ऊपर आक्रमण करेगा।[1] किन्तु अमेरिका में फ़िलिपाइन द्वीपसमूह पर अधिकार कर लेने का तीव्र विरोध किया गया था क्योंकि यह अमेरिकी गणराज्य की मौलिक नीति के विरुद्ध था। अतः यह स्पष्ट था कि यदि अमेरिकी सरकार चीन में साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करती है तो इसे गणराज्य का जनमत कभी स्वीकार न करता। इसके अतिरिक्त जब यूरोपीय शक्तियों ने चीन के अपने-अपने हस्तगत किए हुए प्रदेश पर कठोर नियन्त्रण स्थापित कर रखा था; तो यह बिलकुल सम्भव था कि अमेरिका जैसा देश चीन के साम्राज्य से पूरी तरह बहिष्कृत रहता क्योंकि अमेरिका की रुचि चीन के प्रदेशों को हड़पने की तो बिलकुल नहीं थी। जब फ्रांस ने क्वांगसी (Kwangsi) पर, जापान ने फ़ूकीन (Fukien) पर, ब्रिटेन ने यांगट्सी की वादी (Yangtse Valley) पर और रूस ने मञ्चूरिया (Manchuria) पर अधिकार जमा रखा था, तो यह नितान्त सम्भव था कि उपर्युक्त लुटेरे देश अपने-अपने अधिकृत प्रदेश में ऐसी शत्रुतापूर्ण चुंगी-व्यवस्था रखते जिससे अमेरिका, चीनी साम्राज्य के व्यापार से पूर्ण बहिष्कृत रहता और उस लाभ से वंचित रह जाता। इसलिए यह उचित ही था कि अमेरिका ने चीन में रेलवे सम्बन्धी कुछ रियायतें चाहीं। अमेरिका ने मुक्त द्वार के सिद्धान्त की घोषणा की। सितम्बर, १८९९ में राष्ट्रपति मैकिन्ले (President McKinley) के मुख्य सचिव जॉन हे (Secretary of State John Hay) ने लन्दन (London), बर्लिन (Berlin) और सेंट पीट्र्सबर्ग (St. Petersburg) को एक गश्ती-पत्र भेजा और नवम्बर १८९९ में उसने टोकियो (Tokyo), रोम (Rome), और पेरिस (Paris) को लिखा और उसने यह घोषणा करने की माँग की कि चीन में सभी देशों को व्यापार करने की समान सुविधाएँ दी जाएँगी, सभी से समान आगम-शुल्क और बन्दरगाह का किराया लिया जायगा और इस सम्बन्ध में किसी एक देश के साथ दूसरे की अपेक्षा रियायत नहीं की जायगी। हे (Hay) ने अपने गश्ती-पत्र में यह भी माँग की कि सन्धि की शर्तों के अनुसार चीन को आगम-शुल्कों में से उसका भाग दिया जाता रहेगा और चीनी सरकार का चुंगी वसूल करने का अधिकार अक्षुण्ण बना रहेगा। दूसरे शब्दों में सचिव हे (Hay) ने उन देशों से जो चीन की छाती पर चढ़े बैठे थे, यह घोषणा करने को कहा कि चीन में मुक्त व्यापार की नीति बरती जायगी। उसने यह भी माँग की कि जिन शक्तियों ने चीन में अपने प्रभाव-क्षेत्र कायम कर लिए हैं उनमें वे मुक्त द्वार की नीति बरतेंगे और सभी देशों से समान दरों से आगम-शुल्क और चुंगी वसूल की जायगी।[2]

सत्य यह है कि चीन के ऊपर कब्जा कृत राष्ट्रों को मुक्त द्वार की नीति की घोषणा करनी थी न कि चीन को। चीन की सरकार को मजबूरी की असहाय

१. प्रिमोर्स्क (Primorsk) का प्रान्त असूरी (Usuri) नदी और प्रशान्त महासागर के किनारे के बीच में स्थित है।

२. प्रायः आधी शताब्दी से ब्रिटेन की नीति मुक्त व्यापार की नीति रही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था में अपने देश के व्यापार का द्वार उन विदेशी लुटेरों को खोलना पड़ा था जो अब उसी द्वार को अन्य किसी राष्ट्र या आपस में भी एक-दूसरे के विरुद्ध बन्द करना चाहते थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि अमेरिका की माँग भी अपने लाभ को दृष्टि में रखकर ही की गई थी। इस माँग के पीछे चीन में अमेरिका का प्रभाव-क्षेत्र बनाने की इच्छा भी दिखाई देती है। परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अमेरिका की माँग के पीछे यह स्पष्ट इच्छा थी कि चीन का विघटन और अधिक न किया जाय और चीन साम्राज्य को टुकड़े-टुकड़े होने से बचा लिया जाय। एक ओर अमेरिका की उक्त माँग अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये याचना थी और दूसरी ओर चीनी साम्राज्य को विघटिन होने से बचाने की एक युक्ति थी। अमेरिका के उपर्युक्त गश्ती पत्र में कहा गया था कि "हमारी सरकार हृदय से यह चाहती है कि अमेरिका के नागरिकों के साथ चीन में उन देशों द्वारा, जिन्होंने अपने प्रभाव-क्षेत्र कायम कर लिए हैं और जिनका चीन के कुछ भागों पर अधिकार हो गया है, ऐसा अन्याय-पूर्ण व्यवहार न हो जिससे हमारे नागरिकों को शिकायत का मौका मिले। हमारी सरकार यह भी चाहती है कि चीन में संसार के प्रत्येक देश को व्यापार करने की समान सुविधाएँ हों। हम यह भी चाहते हैं कि ऐसे सभी अवसरों को तुरन्त हटा दिया जाय जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय कटुता उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार हम चाहेंगे कि सभी देश मिल-जुलकर चीन में ऐसी व्यवस्था कायम करें जिससे पेकिंग सरकार में आवश्यक सुधार हो जाय। इस प्रकार चीन की सरकार सुदृढ़ होगी और चीनी साम्राज्य की अखंडता बनी रहेगी। हम सभी पश्चिमी राष्ट्र चीन को समृद्ध और उन्नतिशील देखना चाहते हैं।"

अमेरिका के इस गश्ती पत्र पर रूस के अतिरिक्त सभी प्रार्थित देशों ने सहानुभूतिपूर्वक विचार किया और मुक्त द्वार के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। किन्तु रूस, रेलों के समान भाड़े और समान दर पर एवं बन्दरगाहों के किराये के प्रश्न पर सहमत नहीं हुआ। ग्रेट ब्रिटेन भी संयुक्त राज्य अमेरिका के समान मुक्त द्वार की नीति में दिलचस्पी रखता था, क्योंकि यद्यपि उसने आत्मरक्षा के लिए चीन में कुछ भू-भाग पर अधिकार कर लिया था फिर भी उसकी इच्छा यह नहीं थी कि वह प्रशांत महासागर में और अधिक दायित्व अपने ऊपर ले। ग्रेट ब्रिटेन भी व्यापार बढ़ाने का इच्छुक था न कि साम्राज्य-विस्तार का।

इस प्रकार सहयोग के एक नए सिद्धांत को स्वीकार किया गया। मुख्यतः इस सिद्धांत की आवश्यकता दो विकासों का फल थी। प्रथमतः, अत्यधिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता और द्वितीयतः, यूरोपीय शक्तियों द्वारा चीन की स्वतन्त्रता के अपहरण के कारण मुक्त द्वार के सिद्धांतों की मान्यता अत्यन्त आवश्यक दिखाई पड़ने लगी थी। चीन में भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता और चीन की स्वतन्त्रता के अपहरण के विरुद्ध कठोर प्रतिक्रिया पनप रही थी।

बॉक्सर आन्दोलन (Boxer Movement) मुख्यतः विदेशियों के विरुद्ध था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी सीमा तक यह चीन के सम्राट् की चाल भी थी ताकि मञ्चू राज्यवंश चीन का सर्वेसर्वा बना रहे। इस विद्रोह का कारण यह था कि एक ओर तो चीन में आमतौर पर विदेशियों के प्रति घृणा थी और सभी लोग चीन से विदेशियों को निकाल देना चाहते थे; दूसरी ओर मञ्चू राजघराने के विरुद्ध भी लोगों में यह धारणा घर कर गई थी कि चीन की छाती पर जो विदेशी छाए हुए हैं, उस बेइज्जती का मुख्य कारण मञ्चू राजघराने की क्षमता और अयोग्यता ही है। चीनी लोगों में यह धारणा भी घर कर गई थी कि स्वयं मञ्चू राजघराना भी विदेशियों का था जिन्होंने १७वीं शताब्दी में चीन को विजय किया था। विधवा सम्राज्ञी सेसी (Tse Hsi) ने सोचा कि मञ्चू राजपरिवार के विरुद्ध चीनियों में जो असन्तोष पाया जाता है उसको शमन करने के लिए यह आवश्यक है कि चीनियों की पश्चिमी देशों के विरुद्ध घृणा को उभारा जाये।

बॉक्सर विद्रोह (१९००)

द्वितीय चीनी युद्ध से ही चीन के लोग इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक पादरियों और धर्म-प्रचारकों से घृणा करने लगे। वे समझते थे कि किसी स्वतन्त्र देश को गुलाम बनाने में इन्हीं ईसाई पादरियों का मुख्य हाथ रहता था। पादरियों ने अपने हाथों में इतनी शक्ति संचित कर ली थी कि चीनी लोग उनसे द्वेष करते थे; वे नए ईसाई चीनियों को चीनी न्यायालयों में दण्ड से मुक्त करा देते थे; वे अधिकारी जामा पहिनते थे और प्रायः चीनी शासन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करते थे। चीन में सब कहीं यह कहा जाता था कि ईसाई पादरी चीनी बच्चों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से उठा ले जाते हैं या फिर उन बच्चों को मार डालते हैं। इस आरोप का सम्भवतः यह आधार था कि कभी-कभी ईसाई पादरी भूले-भटके और आश्रयहीन लावारिस बच्चों को अपने घर ले आते थे और उन्हें पालते थे। लगभग उसी समय जबकि श्री बर्लिंगेम (Mr. Burlingame), जो पेकिंग (Peking) में अमेरिकी दूत थे, यूरोप में और अमेरिका में भ्रमण कर रहे थे और प्रयत्न कर रहे थे कि चीन के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाय, और वे सर्वत्र चीन के प्रति मैत्रीपूर्ण जनमत तैयार कर रहे थे चीन में ईसाई पादरियों के विरुद्ध बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया जा रहा था। यद्यपि बॉक्सर विद्रोह (Boxer Rebellion) में अनेक ईसाई पादरियों की हत्या की गई थी फिर भी जानें उनकी बेकार नहीं गईं क्योंकि सदा की भाँति इस बार भी पश्चिमी देशों ने पादरियों की हत्या के एवज में और अधिक विशेषाधिकार[1] चीन की सरकार से प्राप्त कर लिए थे।

चीन में पहले से ही पश्चिमी देशों के विरुद्ध घृणा थी

---

१. बॉक्सर विद्रोह में पादरियों की जो हत्याएँ हुई थीं उनसे पश्चिमी देशों ने दो लाभ उठाए : (१) पश्चिमी देशों ने चीनी जालिमों के जुल्मों के विरुद्ध चीन की सरकार से भारी हर्जाने की रकम वसूल की, (२) पश्चिमी सरकारों को स्वर्णावसर प्राप्त हुए और उन्होंने अपने देशवासियों को बताया कि चीन में कठोर कार्यवाही करना नितान्त आवश्यक था। इस प्रकार स्वदेश के आलोचकों का मुँह बन्द कर दिया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु बॉक्सर आन्दोलन, किसी स्थानीय पादरी के विरुद्ध एक आकस्मिक आक्रमण की घटना नहीं थी। यह एक बड़ा विद्रोह था जो पश्चिमी देशों के प्रति अपनायी गई चीन की नीति के विरुद्ध प्रदर्शन था। जहाँ तक उत्तरी चीन का सम्बन्ध था, यह राष्ट्रीय विद्रोह था। इस विद्रोह में देश के उच्च वर्गों का हाथ था। १८९० के आसपास इस विद्रोह की घटाएँ घुमड़ने लगी थीं। इस विद्रोह के तीन मुख्य कारण थे—जापान द्वारा चीन की दुर्दशापूर्ण पराजय; यूरोपीय विदेशियों की अत्यधिक रियायतों की माँगें और सम्राट क्वांग-सू (Kwang-Su) की पश्चिमीकरण की नीति।

जापान की तुलना में चीन की श्रद्धा पश्चिमीकरण की ओर उतनी नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्षों में, चीन की रुचि कतिपय पश्चिमी चीजों की ओर हुई थी। चीन में रेल-मार्गों का निर्माण और तार-व्यवस्था का श्रीगणेश हो चुका था। पश्चिमी ढंग के जहाजों का निर्माण भी आरम्भ हो चुका था और रक्षक चौकियाँ नये ढंग की तैयार होने लगी थीं। शिक्षा के क्षेत्र में कुछ पश्चिमी प्रस्ताव तो विचाराधीन थे किन्तु सिवाय चीनी-परीक्षा-पद्धति को समाप्त कर देने के और सिवाय एक-दो सभाओं द्वारा पश्चिमी साहित्य के प्रचार के कोई ठोस कार्य नहीं किया गया। इस प्रकार १९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक चीनी दृष्टिकोण को बदलने का कोई ठोस उपाय ही नहीं किया गया था।

पश्चिमीकरण-सम्बन्धी आन्दोलन

चीन-जापान युद्ध में चीन की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय हुई थी। फलस्वरूप चीनी साम्राज्य के दक्षिणी और केन्द्रीय भागों में चीनी नवयुवकों का एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उक्त आन्दोलन एक ओर तो सुधारों और पश्चिमीकरण की नीति के विरुद्ध था और दूसरी ओर उसका उद्देश्य यह था कि किसी भी प्रकार मञ्चू राजवंश को पदच्युत किया जाय। उक्त आन्दोलन के कार्यकर्त्ता अन्धकार से आच्छादित थे और वे हिंसा में विश्वास रखते थे। यकायक विदेशी साहित्य की पुस्तकों की माँग बढ़ गई। प्रायः १५०० नवयुवक, जिनका जन्म उच्च कुलों में हुआ था, पेकिंग (Peking) के विदेशी विषयों को पढ़ने वाले विश्वविद्यालय में नाम लिखाने पहुँच गये। चीन में अनेक विदेशी भाषाएँ पढ़ाने वाले स्कूल खुल गये और अनेक नई संस्थाओं का जन्म हुआ। स्वयं सम्राट भी पश्चिमीकरण के पक्ष में हो गया और कुछ ही महीनों में कई राजाज्ञाएँ निकलीं जिनसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो चीन की भी उतनी ही शीघ्रता के साथ कायापलट होने वाली है जितनी शीघ्रता के साथ कि जापान का पश्चिमीकरण हुआ था। प्राचीन चीनी भाषाओं की परीक्षाएँ समाप्त हो गईं, नये-नये स्कूल स्थापित किए गए। विदेशी साहित्य को चीनी भाषाओं में अनूदित करने के लिए एक नये विभाग की स्थापना हुई। मञ्चू राजकुमारों और अन्य चीनी नवयुवकों को प्रोत्साहित किया गया ताकि वे विज्ञान का अध्ययन करें और विदेश-भ्रमण करें। कई व्यर्थ के पदों और कार्यालयों को तोड़ दिया गया। चीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पुरुषवर्ग सिर पर चोटी रखते थे। अब पश्चिमी सभ्यता के रंग में चीनी लोग चुटिया रखने में शर्म महसूस करने लगे थे।

इसकी प्रतिक्रियास्वरूप विदेशी आचारों के प्रति शत्रुता के भाव जाग उठे। सम्राट द्वारा किये राजनीतिक सुधारों का फल जिन लोगों के हितों के विरुद्ध पड़ा वे सब अप्रसन्न हो गये थे। उन लोगों ने इस असन्तोष को भड़-

पश्चिमीकरण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विदेशियों के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख

काया। देश के सभी अनुदार वर्ग और प्रतिक्रियावादी तत्त्व मिल गये। उनका कहना था कि पश्चिमीकरण की नीति ने चीनियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाई थी; चीनी कब्रिस्तानों की रेलों के बिछाने से रेड़ लग गई थी यद्यपि उन्होंने यह नहीं सोचा कि कब्रिस्तानों के कारण कितनी जमीन बेकार पड़ी रहती है। उन्हीं दिनों दुर्भाग्यवश सम्राट के महल में आग लग गई; इसका अर्थ यह लगाया गया कि देवताओं के कोप के कारण ही यह दुर्घटना हुई थी।

विधवा सम्राज्ञी से सी (Tse Hsi)[1] ने देखा कि अब उपयुक्त अवसर है अतः उसने प्रयत्न किया कि अपनी शक्ति बढ़ावे और मञ्चू राजपरिवार की प्रतिष्ठा बढ़ावे। उसने राज्य-पर्युत्क्षेपण (Coup d'etat) द्वारा सम्राट क्वांग सू (Kwang-Su) को गिरफ्तार कर लिया और उसको मजबूर किया कि वह वृद्धा विधवा सम्राज्ञी को पुनः शास्ता (regent) के पद पर नियुक्त करे। अब उसने सुधार विरोधी और विदेशी विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। सम्राट की पुरानी आज्ञाएँ वापिस ले ली गईं; साहित्यिक सभाएँ तोड़ दी गईं और विदेशी समर्थक अखबारों का दमन कर दिया गया। पश्चिमीकरण के विरुद्ध प्रतिक्रिया और अधिक जोर पकड़ने लगी। विदेशियों के विरुद्ध आक्रमण नित्यप्रति की घटनाएँ बन गईं। यहाँ तक कि १८९९ के अन्त में चीनी सर्वसाधारण का दृष्टिकोण इस सीमा तक विदेशियों के विरुद्ध हो गया था कि पेकिंग स्थित कई विदेशी दूतावासों ने चीन की सरकार से सहायता की प्रार्थना की। चीन में कुछ गुप्त संस्थाएँ भी काम कर रही थीं जो तलवार में और मुक्के के प्रदर्शन में विश्वास करती थीं। इन संस्थाओं के प्रभाव से बॉक्सर आन्दोलन (Boxer Movement) हिंसामय हो गया था। मुक्कों के प्रदर्शन में विश्वास रखने वाली संस्था का नाम बॉक्सर सोसाइटी (Boxer Society) था और उसी के नाम पर १९०० के विद्रोह को बाक्सर-विद्रोह कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन गुप्त और हिंसक समुदायों के लोग प्रायः गुण्डे थे किन्तु सम्राज्ञी ने चतुरतापूर्वक इस हिंसक आन्दोलन को ऐसा मोड़ दिया कि वह मञ्चू राजवंश के विरुद्ध आन्दोलन न बनकर

---

१. जब युवक सम्राट बालिग हो गया, तो विधवा सम्राज्ञी से सी (Tse Hsi) को राजसत्ता त्यागनी पड़ी यद्यपि हटने के बाद भी उसकी बहुत भारी महिमा रही। उसके नाम के साथ अनेक विशेषण जुड़े हुए थे। उसे परम महिमामयी, दयालु, शुभे, अभ्रान्ता, परमरक्षिका, शक्तिमती, ज्योतिर्मयी, विचारशीला, परम सन्तुष्टा, सत्यनिष्ठा, सनातना, परम आदरमयी, शान्ता, अर्चना, अकृतघ्ना, परम महिमान्विता राजमाता सम्राज्ञी से सी (Tse Hsi) कहकर सम्बोधित किया जाता था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशियों के विरुद्ध आन्दोलन का स्वरूप धारण कर गया। आश्चर्य की बात यह थी कि मुक्के बाजों (Boxers) के झण्डों पर लिखा देखा गया था; "विदेशियों को निकालेंगे" और "मञ्चू राजवंश जिन्दाबाद" !

इन दुर्घटनाओं से क्षुब्ध होकर पश्चिमी शक्तियों ने सुंगली-यमन (Tsungli-Yamen) या विदेश मन्त्रालय से और चीनी सरकार से अपील की और कहा कि पश्चिमी देशों की प्रजा की रक्षा की जाए। किन्तु सुंगली-यमन ने उन्हें बातचीत में उलझाये रखा और किया कुछ भी नहीं।

बॉक्सर विद्रोह जुलाई १९०० में अत्यन्त उग्र रूप धारण कर गया जबकि लूट, हत्या और आग लगाने की घटनाएँ आम बातें हो गईं। पेकिंग और टींटसिन (Tientsin) पर विद्रोहियों ने कब्जा कर लिया। राजधानी में तो शाही सेना के सैनिक भी विद्रोहियों से मिल गये और मञ्चू राजघराने ने भी उन लोगों को हर प्रकार की सहायता दी। न केवल विदेशी पादरियों की हत्याएँ की गईं, बल्कि चीनी ईसाइयों पर भी आक्रमण हुए। जर्मनी का राजदूत और जापानी दूतावास का एक उच्चाधिकारी विद्रोहियों की हिंसा के शिकार हो गये। राजधानी के अधिकतर यूरोपीय नागरिकों ने विदेशी दूतावासों में जाकर शरण पाई। विद्रोही लोगों ने छः सप्ताहों तक विदेशी दूतावासों को घेरे रखा। विदेशी लोग साहस और धैर्य के साथ चीनी विद्रोहियों का मुकाबला करते रहे किन्तु जब आखिरकार विदेशियों के पास न भोजन बचा न गोली-बारूद और वे सब प्रायः मरणासन्न थे, उसी समय सौभाग्यवश सात देशों की एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना[1] ने आकर उनका उद्धार किया। यह सेना किसी प्रकार विद्रोहियों का सफाया करती राजधानी तक पहुँच ही गई। जब यूरोपीय सेनाएँ[2] पर्याप्त संख्या में चीन में आ गईं तो उन्होंने चीनी विद्रोहियों और विदेशी सैनिकों को काबू में किया। वास्तव में कुछ विदेशी सैनिक भी काबू से बाहर हो गये थे और उन्होंने चीनी राजधानी में खूब लूट-पाट और मार-काट की और इस प्रकार चीनी हिंसा का जवाब हिंसा से दिया था।

एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना द्वारा बाक्सर विद्रोह दबा दिया गया

चीन की सरकार के पास बाक्सर विद्रोह (Boxer Revolution) की बर्बरतापूर्ण घटनाओं का कोई जवाब नहीं था क्योंकि वह स्वयं उन सब काण्डों के लिए जिम्मेदार थी। विधवा सम्राज्ञी और राजदरबार पेकिंग छोड़कर भाग गए। चीन से विदेशियों को निकाल देने की सारी चालें विफल हो गईं और चीन सारे संसार की

---

१. अन्तर्राष्ट्रीय सेना में इंग्लैण्ड, रूस, फ्रांस, जर्मनी, इटली, अमेरिका और जापान के सैनिक थे।

२. सितम्बर के अन्त में २०,००० जर्मन सैनिक भी फील्ड मार्शल काउण्ट वॉन वॉल्डरसी (Field-Marshal Count von Waldersee) के नेतृत्व में चीन में आ गए। अपने उच्चपद के कारण वॉल्डरसी (Count Waldersee) को ही सम्मिलित सेना का कमाण्डर नियुक्त किया गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निगाहों में दोषी प्रमाणित हो गया, क्योंकि उसने अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की अवहेलना की थी। चीन का भाग्य और भविष्य अब संसार की प्रमुख शक्तियों के हाथों में था।

यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर था जब कि चीन को विदेशी शक्तियाँ आपस में विभाजित कर लेतीं। किन्तु विभाजन की केवल सम्भावना ने अनेक नई समस्याओं को जन्म दिया। अब यह समस्या आई कि यदि चीन का विभाजन हुआ तो अमेरिका और जापान की क्या स्थिति होगी। जुलाई १९०० में हे (Hay) ने पुनः मुक्त द्वार (Open Door) की नीति को दुहराया और घोषणा की कि संयुक्त राज्य अमेरिका चीन की प्रादेशिक अखण्डता का समर्थन करेगा। अक्तूबर १९०० में ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये और घोषणा की कि "वे चीनी साम्राज्य में किसी प्रदेश पर अधिकार नहीं करना चाहते तथा वे चीन के सन्धि के बन्दरगाहों में मुक्त द्वार की नीति का आश्रय लेंगे और यदि कोई अन्य शक्ति चीन की प्रादेशिक अखण्डता का उल्लंघन करेगी तो वे दोनों (ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी) मिल-जुलकर उस शक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करेंगे।" चीन की प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा की दिशा में यह एक अत्यन्त ठोस कदम था।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी की उक्त घोषणा से प्रथम बार चीन की प्रादेशिक अखण्डता का विश्वास दिलाया गया। इस प्रकार चीन के विभाजन का भय तो टल गया, किन्तु पश्चिमी शक्तियों ने चीन से भारी हर्जाने की रकमें माँगीं। चीन के पश्चिमी देशों के साथ सामान्य कूटनीतिक सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गए किन्तु शर्त यह ठहरी कि चीन भारी हर्जाने की रकमें[1] अदा करे जो चीन के आगम-शुल्कों से वसूल की जायेंगी। यह भी शर्त रखी गई कि उत्तरी चीन में विदेशी फौजें रखी जाएंगी तथा सैनिक टुकड़ियाँ पेकिंग-टींटसिन रेलवे पर भी रखी जाएँगी; यही नहीं, सभी विदेशी दूतावासों पर भी विदेशी सैनिक रक्षक रहेंगे। एक शर्त यह भी थी कि चीन व्यापारिक सन्धियों की शर्तों पर पुनर्विचार करे और चीन अपने विदेश विभाग (Tsnugli-Yamen) का सुधार करे।

बॉक्सर विद्रोह के कारण होने वाली हानि के लिए हर्जाने की शर्तें

बॉक्सर-विद्रोह-जन्य उपद्रवों के शमन में और अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय विद्वेषों और प्रतियोगिताओं के कारण भी पर्याप्त बाधा सामने आई। विशेष रूप से रूस ने बहुत अड़चनें डालीं क्योंकि उसको ब्रिटेन और जर्मनी का चीन सम्बन्धी समझौता अप्रिय लगा और वह चीन के साथ सीधी बातचीत द्वारा अधिक रियायतें प्राप्त करने की सोच रहा था।

रूस की महत्त्वाकांक्षाएँ किस दिशा में थीं। इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। प्रायः पचास वर्षों के अन्दर रूस का मञ्चूरिया (Manchuria) पर, आउटर

---

१. पश्चिमी शक्तियों ने ६७,०००,००० पौंड से भी अधिक हर्जाने की रकम चीन से वसूल की और जर्मन राजदूत जापानी कूटनीतिक अधिकारी की हत्या के कारण कुछ और विशेष रकम भी चीन से वसूल की गई थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगोलिया (Outer Mongolia) पर और पूर्वी तुर्किस्तान पर आधिपत्य छा गया था।

रूसी नीति

रूस को इस घुस-पैठ का अवसर कभी तो सैनिक विजयों के फलस्वरूप प्राप्त हुआ था; कभी वह रजामन्दी से भी चीन में प्रवेश पा गया था; किन्तु अधिकतर उसने चीन की कुछ तथाकथित सेवाओं के उपलक्ष्य में प्रादेशिक लाभ प्राप्त किये थे। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते रूस की सीमाएँ अमूर नदी (Amur) तक और कोरिया (Korea) तक पहुंच गईं थीं और मञ्चूरिया को हड़प लेने की तैयारी में लगा था। चूँकि अपने विस्तार के मार्ग में रूस, जापान को एक बाधा समझता था, अतः उसने १८९५ में जापान को लियाओ-टंग (Liao-tung) प्रायद्वीप से बहिष्कृत कर दिया और १८९७ में पोर्ट आर्थर (Port Arthur) पर स्वयं अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् रूस को आज्ञा मिल गई कि वह अपनी ट्रांस-साइबेरियन रेलवे का विस्तार मञ्चूरिया प्रान्त के मार्ग से व्लाडीवॉस्टक (Vladivostok) और पोर्ट आर्थर (Port Arthur) तक कर ले; और १८९५ के पश्चात् मुख्यतः ली हंग चांग (Li Hung Chang) के समर्थन पर रूस को चीनी राजदरबार में सबसे अधिक आदर मिलने लगा और पेकिंग सरकार रूस को सर्वाधिक निकट दिखाई पड़ने लगी। बॉक्सर उपद्रवों के कारण रूस को स्वर्णावसर प्राप्त हुआ कि वह चीन में और अधिक सुविधाएँ प्राप्त करे। किसी रूसी-विरोधी प्रदर्शन को आधार मानकर रूस ने मञ्चूरिया प्रान्त पर अधिकार कर लिया और फिर उसने चाहा कि चीन की ओर से वह यूरोपीय शक्तियों के बीच चौधरी का काम करे और इस प्रकार चीन का अनुग्रह प्राप्त करके मञ्चूरिया में अपनी स्थिति पक्की कर ले। उदाहरणस्वरूप उसने यह नहीं माना कि बॉक्सर उपद्रवों में विधवा सम्राज्ञी राजमाता का हाथ था। इस समर्थन के बदले में रूस ने चाहा कि मञ्चूरिया को रूस के सैनिक संरक्षण में दे दिया जाय। इस दिशा में इच्छित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से चीन और रूस में विचार-विनिमय भी प्रारम्भ हो गया। किन्तु प्रस्तावित रियायतों के विरुद्ध अन्य पश्चिमी शक्तियों में इतनी कटु प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने इतना कठोर विरोध प्रदर्शित किया कि अन्त में चीन ने उक्त रियायतें देना स्थगित कर दिया और रूस ने भी इस उपालम्भ के साथ, कि उसे गलत समझा जा रहा है, अपनी माँग वापस ले लीं।

रूस की इन चालों से इंग्लैण्ड और जापान में भय फैल गया और १९०२ में आंग्ल-जापानी मैत्री की घोषणा हो गई। दोनों देशों ने मुक्त द्वार (Open door) के सिद्धान्त को स्वीकार किया और आपस में करार किया कि यदि दोनों में से किसी पर दो शत्रु देश आक्रमण करेंगे तो दूसरा देश आपद्ग्रस्त मित्र देश की सशस्त्र सहायता करेगा। १९०२ की उक्त आंग्ल-जापानी मैत्री १९०५ में और फिर १९११[1] में पुनः दुहराई गई। इन पश्चात्वर्ती मैत्री सन्धियों द्वारा जापान का कोरिया पर अधिकार स्वीकार कर लिया गया। यह सन्धि १९२३ तक

आंग्ल-जापानी मैत्री (१९०२)

१. किन्तु इन्हीं दिनों १९०७ में इंग्लैण्ड और रूस के सम्बन्ध पुनः सुधर गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावी रही और इसका स्थान चार शक्तियों के १९२३ के समझौते (Four Power Agreement of 1923) ने ले लिया। १९०२ की आँग्ल-जापानी मैत्री का प्रायः विरोध किया गया है, विशेष रूप से चीन और अमेरिका में इसकी भर्त्सना की गई है और इसको सुदूर पूर्व के मामलों में अनुचित हस्तक्षेप कहा गया है। यह पहला अवसर था जबकि एक प्रथम कोटि की यूरोपीय शक्ति ने पूर्व की एक शक्ति के साथ समानता के आधार पर सम्बन्ध स्थापित किया था। इस सन्धि (Alliance) ने जापान की शक्ति को बहुत बढ़ाया और जापान का सम्मान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बहुत बढ़ गया।[1] इसी मैत्री की आधार-शिला पर जापान ने भविष्य में अपने साम्राज्य का भवन खड़ा किया और वही जापानी साम्राज्य सुदूर पूर्व की शान्ति के लिए भारी खतरा बन गया। इसके अतिरिक्त यद्यपि लार्ड लैंसडाऊन (Lord Lansdowne) ने उक्त सन्धि रूसी महत्त्वाकांक्षाओं के विरुद्ध की थी किन्तु यथार्थ में इसका उद्देश्य यह भी था कि रूस और जापान का अवश्यम्भावी युद्ध उन्हीं दोनों देशों तक सीमित रहे।

रूस और जापान के बीच युद्ध (१९०४-०५)

इंग्लैण्ड और जापान के बीच उक्त सन्धि का प्रथम परिणाम यह हुआ कि रूस और जापान के बीच तनाव चरम सीमा तक पहुँच गया; और चूँकि उक्त सन्धि द्वारा फ्रांस को रूस की सहायता करने से रोक दिया गया क्योंकि अन्यथा फ्रांस को इंग्लैण्ड की शत्रुता मोल लेनी पड़ती, अतः जापान की सामुद्रिक शक्ति बहुत बढ़ गई और अन्त में इसी श्रेष्ठ नौसैनिक शक्ति के कारण जापान ने रूस के विरुद्ध विजय लाभ किया।

१९०२ की आँग्ल-जापानी मैत्री से घबराकर रूस ने स्वीकार कर लिया कि वह छः-छः महीने के अन्तर से अपनी सारी सेना मञ्चूरिया से निकाल कर ले जायेगा। किन्तु शीघ्र ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि रूस मञ्चूरिया पर से सेनाएँ हटाने को तैयार नहीं था। सेनाएँ हटाने की प्रथम अवस्था तो एक प्रवंचनामात्र थी क्योंकि रूस ने अपनी सेनाओं को मञ्चूरिया के एक भाग में से हटाकर उसके दूसरे भाग में केन्द्रित कर दिया। दूसरी अवस्था में अपनी सेनाओं को हटाने के स्थान पर रूस उस प्रान्त को अपने लिए अपनी आवश्यकता के समय के लिए बनाए रखने के उद्देश्य से मञ्चूरिया में नई-नई सुविधाएँ माँगने लगा। इन माँगों के सम्बन्ध में उसने चीन से स्पष्टीकरण भी माँगा। उन सुविधाओं में से एक सुविधा यह थी कि मञ्चूरिया से रूस के अतिरिक्त और कोई देश किसी प्रकार का आर्थिक लाभ न उठा सकेगा। अन्य शक्तियों ने रूस की उक्त माँग का विरोध किया। चीन तो रूस से भी डरता था। और अन्य शक्तियों से भी डरता था अतः वह कुछ निश्चय न कर सका। अगस्त १९०३ में मास्को (Moscow) और पोर्ट आर्थर (Port Arthur) के बीच सीधी रेलवे लाइन बन गई और सुदूर पूर्व के लिए एक रूसी वाइसराय की नियुक्ति की

---

१. इस सन्धि को प्रायः १६वीं शताब्दी की फ्रांस-टर्किश-मैत्री (France-Turkish Alliance) की समानता दी जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई जिसका वास्तविक उद्देश्य यह घोषित करना था कि मञ्चूरिया केवल रूस का एक प्रान्त था। इसके पश्चात् रूस ने कोरिया में यालू (Yalu) नदी के तट पर लकड़ी काटने के अधिकार के बहाने वहाँ अपनी सेना भेज कर जापान के प्रभाव को क्षीण करना चाहा। जापान ने इसका विरोध किया और रूस से एक सन्धि का प्रस्ताव किया जिसके अनुसार चीन और कोरिया की प्रादेशिक अखण्डता का आश्वासन माँगा गया तथा रूस से मुक्त द्वार (Open Door) की नीति पर चलने का वायदा कराया गया। साथ में यह भी प्रस्ताव किया गया कि उक्त सन्धि द्वारा मञ्चूरिया में रूस के हित सुरक्षित रहें तथा कोरिया में जापान के हित सुरक्षित रहें। किन्तु उक्त प्रस्तावों के विषय में रूस असहमत रहा। उसने कोरिया में जापान के हितों को स्वीकार करना अस्वीकृत कर दिया। किन्तु रूस मञ्चूरिया में मनमानी करते रहना चाहता था। इस प्रकार स्पष्ट था कि रूस मञ्चूरिया पर एकाधिकार[1] चाहता था किन्तु वह जापान को कोरिया में वही सुविधा देने को तैयार नहीं था।

रूस को विश्वास था कि आँग्ल-जापानी मैत्री के बावजूद जापान रूस की माँग को स्वीकार कर लेगा और इस प्रकार रूस का मञ्चूरिया के ऊपर एकाधिकार स्वीकार कर लिया जायेगा। किन्तु जापान ने उक्त प्रश्न को युद्ध द्वारा निर्णय कर लेने की ठान ली; और फरवरी १९०४ में जब प्रायः दस सन्धि मसविदों पर भी मतैक्य न हो सका तो जापान ने सन्धि वार्ता भंग कर दी और रूस के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार जो युद्ध प्रारम्भ हुआ वह एशिया की एक शक्ति और यूरोप की एक महाशक्ति के बीच का प्रथम महान् युद्ध था।

इस युद्ध में अनहोनी बात यह हुई कि एक महान् यूरोपीय शक्ति की पराजय एक पूर्वी शक्ति द्वारा हुई, यद्यपि यही पूर्वी शक्ति केवल पचास वर्ष पहले केवल धनुषबाणों से युद्ध किया करती थी। जहाँ तक दोनों देशों के आकारों और साधनों का सम्बन्ध था, यह युद्ध वास्तव में राक्षस और बौने के बीच युद्ध था। स्थल युद्धों में तो यही प्रतीत होता था कि एक बौना केवल अपने अदम्य साहस और अद्भुत रण-कौशल से भारी भरकम देव को पछाड़ रहा था। मई १९०४ में यालू नदी (Yalu River) पर भयंकर युद्ध हुआ, अगस्त में लियाओयांग (Liao-Yang) पर नौ दिन तक कठोर युद्ध हुआ, अक्तूबर में दस दिन तक शा-हो (Sha-ho) में भयंकर रक्तपात हुआ। पोर्ट आर्थर लम्बे समय तक जापान के घेरे में पड़ा रहा, और फरवरी १९०५ में १४० मील के लम्बे रणक्षेत्र में मुकडेन (Mukden) का कठिन युद्ध हुआ जो

---

१. डा० बॉ (Dr. Bau) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *The Foreign Relations of China* में पृष्ठ १०२-१०३ पर जान हे (John Hay) का एक पत्र राष्ट्रपति रूजवेल्ट (President Roosevelt) के नाम दिनाँक १२ मई, १९०३ को उद्धृत किया है जिसमें हे (Hay) ने लिखा था : "मैंने रूसी दूत कैसिनी (Cassini) को बता दिया है कि यदि रूस अपनी आक्रामक नीति न छोड़ेगा तो फल यह होगा कि विभिन्न शक्तियाँ चीन के विभिन्न प्रान्तों पर अधिकार कर लेंगी और इस प्रकार चीनी साम्राज्य का विघटन हो जायगा।" इसके उत्तर में कैसिनी (Cassini) ने क्रोधयुक्त भाषा में मुझे डाँटते हुए उत्तर दिया है, "चीन तो पहले से ही विघटित हो चुका है, रूस को उसका उचित भाग मिलना शेष है।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णायक और अन्तिम युद्ध था। उपर्युक्त सभी युद्धों में जापानी विजयी रहे किन्तु विजयी वीर इतने थक गये थे कि वे रूस को सदैव के लिए निर्जीव न कर सके। पोर्ट आर्थर (Port Arthur) ने जापानियों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया यद्यपि अभी तक उनके पास तीन महीने की भोजन सामग्री और पर्याप्त गोला-बारूद था। मुकडेन (Mukden) की विजय के पश्चात् स्थल पर कोई युद्ध नहीं हुआ। कारण यह था कि यद्यपि जापान विजयों का इच्छुक था किन्तु उसके साधन-स्रोत सीमित हो चले थे; रूस के पास यद्यपि साधन-स्रोत शेष थे किन्तु उसकी हिम्मत पस्त हो चुकी थी।

रूस और जापान के युद्ध की निर्णायक लड़ाइयाँ समुद्र में लड़ी गईं। इस युद्ध की विशेषता यह थी कि एक सशक्त और महान् शक्ति अपनी स्वाभाविक कमजोरी के कारण कमजोर शक्ति के मुकाबले में हार गई। रूस के दो जहाजी बेड़े प्रशान्त महासागर में मौजूद थे जिनमें से एक पोर्ट आर्थर (Port Arthur) में लंगर डाले पड़ा था तथा दूसरा व्लाडीवोस्टक (Vladivostok) में तैयार था। जापान का उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार दोनों बेड़े अलग-अलग रहें और इस ओर जापान को सफलता मिली यद्यपि रूस ने अथक प्रयत्न किये। किन्तु अक्तूबर में रूस का बाल्टिक सागर का जहाजी बेड़ा पूर्व की ओर चल पड़ा। यह बेड़ा सारी गर्मियों भर युद्ध का अभ्यास करता रहा था। मई, १९०५ में यह बेड़ा चीन सागर (China Sea) में पहुँच गया यद्यपि डॉगर बैंक (Dogger Bank) में इस बेड़े की अंग्रेजी युद्ध-पोतों से भिड़न्त भी हुई जिसके करण रूस और इंग्लैंड के बीच युद्ध छिड़ते-छिड़ते बचा। यह बेड़ा जापान और कोरिया के बीच सुषिमा (Tsushima) के अन्तरीप के मार्ग से व्लाडीवोस्टक (Vladivostok) पहुँचना चाहता था। वहाँ जापान के एडमिरल टोगो (Admiral Togo) ने उस बेड़े को नष्ट कर दिया। उक्त रूसी बेड़े के दो-तिहाई जहाज तो डुबो दिये गए, छः जहाज पकड़ लिये गये और केवल चार जहाज व्लाडीवोरटक पहुँच सके; शेष जहाजों ने तटस्थ देशों के बन्दरगाहों में शरण ली। ट्राफ़लगर के युद्ध के पश्चात् ऐसी नौसैनिक विजय देखने को नहीं मिली थी। ज्योंही रूस का बाल्टिक सागर का बेड़ा नष्ट हुआ त्योंही युद्ध का भी अन्त निकट आ गया, और अमेरिका के राष्ट्रपति के हस्तक्षेप को दोनों ने स्वीकार कर लिया। पोर्ट स्माउथ की सन्धि पर हस्ताक्षर होने तक जापान ने कई और भी विजय-लाभ किए। इस सन्धि के अनुसार रूस ने कोरिया में जापान के अधिकारों को स्वीकार कर लिया, उसे लियाओ-टंग (Liao-tung) का पट्टा दे दिया और पोर्ट आर्थर नामक हिम-रहित बन्दरगाह भी जापान को दे दिया। इसके अतिरिक्त रूस ने पोर्ट आर्थर तक की रेल का आधा भाग जापान के सुपुर्द कर दिया। रूस ने सखालीन (Sakhalin) का दक्षिणी आधा भाग भी जापान को दे दिया और मञ्चूरिया

सुषिमा में जापान की नौसैनिक विजय (१८ मई, १९०५)

पोर्ट स्माउथ की सन्धि (अगस्त १९०५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Manchuria) को खाली करना उसने स्वीकार कर लिया जो बाद में चीन के अधिकार में आ गया। रूस ने युद्ध का हर्जाना नहीं दिया।

न तो जापान को युद्ध से विशेष प्रादेशिक लाभ हुए और न युद्ध के ऊपर खर्च की गई रकम ही रूस से युद्ध के हर्जाने के रूप में वसूल की गई; अतः जापान में सख्त नाराज़ी का इज़हार किया गया। कारण यह था कि जापान ने इस युद्ध में अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया था और उसे कई शानदार विजयें भी प्राप्त हुई थीं। किन्तु जापान के नेता समझते थे कि उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ थीं। जापान ने साहस, युद्ध-कौशल, एकाग्रचित्तता और धैर्य आदि गुणों के कारण निस्सन्देह विजयें प्राप्त की थीं, जिनके कारण उसका गर्वोन्मत्त हो जाना स्वाभाविक ही था। किन्तु रूस अपनी गलतियों का शिकार हो गया था। रूस बहुत विशाल था और उसके नेताओं में एकमतता नहीं थी। रूस को जापान के साधनों और जापानियों के राष्ट्रीय चारित्रिक गुणों का ज्ञान नहीं था। रूस तो समझता था जैसा कि एक विद्वान् ने लिखा था कि "सुदूर पूर्व के प्रश्न यूरोप में ही हल हो सकते हैं।" रूस को बड़ी दूर से सैनिक अड्डों से सुदूर पूर्व में युद्ध करना पड़ रहा था। यह रूस के मार्ग में भारी असुविधा थी। यद्यपि रूस के अधिकार में मॉस्को-मंचूरिया रेल लाइन (Moscow-Manchurian Railway) थी किन्तु वह अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुई। इसके अतिरिक्त रूस की पराजय का मुख्य कारण यह था कि रूस में व्यापक मतभेद थे; रूसी प्रजा में विद्रोह की भावना थी और रूस के नेताओं में न तो एकमतता थी और न वे एक नीति पर चल रहे थे।

रूस-जापान के युद्ध की प्रतिक्रिया रूस और जापान के अतिरिक्त चीन और यूरोप में भी देखी गई। कुछ समय के लिए सुदूर पूर्व में रूसी साम्राज्य की प्रगति कुण्ठित हो गई और ज़ार का ध्यान पुनः बल्कान क्षेत्र और निकटपूर्व की राजनीति की ओर गया। यही नहीं, रूस में आन्तरिक विद्रोह की घटना ने जो पर्याप्त लम्बे समय से घिरती चली आ रही थी, अकस्मात् रूस में क्रान्ति का तूफान पैदा कर दिया।

जापान के लिए तो रूस और जापान का युद्ध जिन्दगी और मौत का सवाल था। यदि जापान हार गया होता तो उसकी समस्त महत्त्वाकांक्षाएँ, उसकी समस्त पूर्वकालिक सफलताएँ और उसकी समस्त नीति जहाँ की तहाँ रखी रह जाती। जापान की विजय के कारण दक्षिणी मंचूरिया से रूस का प्रभाव उठ गया और जापान का प्रभाव कायम हो गया। यही नहीं, जापान की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और चीन में और सारे सुदूर पूर्व में जापान की तूती बोलने लगी। रूस के ऊपर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जापान भी चीन में अन्य यूरोपीय शक्तियों के समान राजनीतिक और व्यापरिक प्रतियोगिता में लग गया और अब जापान की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाएँ खूब जाग्रत हो गईं। फलस्वरूप जापान ने १९१० में कोरिया (Korea) पर अधिकार कर लिया, फिर शांटुंग (Shantung) पर अधिकार किया। तत्पश्चात् महायुद्ध में जापान ने अपनी २१ माँगें प्रस्तुत कीं। उसके बाद से जापान ने ऐसी नीति पर आचरण किया जिसने प्रशान्त महासागर की समस्याओं को उलझा दिया। सत्य यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि आगे के चालीस वर्षों के लिए जापान ही स्वयं प्रशान्त महासागर की एक कठिन समस्या बन गया।

चीन के ऊपर भी रूस-जापान के युद्ध का प्रभाव पड़े बिना न रहा। चीन में एक ओर तो पश्चिमी राष्ट्रों में सुविधाएँ प्राप्त करने को और शक्ति अर्जित करने की मानो होड़-सी लग गई। जापान अब चीन में पश्चिमी देशों का मुख्य प्रतिद्वन्द्वी था। इस प्रकार जापान सहित सभी पश्चिमी देश चीन में एक दूसरे से बढ़ जाने की और एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करने लगे। प्रत्येक देश चीन में रेल-मार्ग बनाने या चीन को ऋण देने के लिए चीन पर दबाव डालने लगा। किन्तु अन्त में सभी को समझ आ गई और उन्होंने निश्चय किया कि चीन में या तो सहविनाश का मार्ग है या फिर सहअस्तित्व और सहयोग का मार्ग श्रेयस्कर है। चीन में इस युद्ध ने अपूर्व जाग्रति को जन्म दिया। दस वर्ष पूर्व १८९४-९५ में जो चीन-जापान का युद्ध हुआ था और तत्पश्चात् विदेशियों में चीन से अधिकतम सुविधाएँ प्राप्त करने की जो होड़-सी लग गई थी उसी के फलस्वरूप चीन में बॉक्सर विद्रोह (Boxer Riots) हुए थे। पुनः रूस-जापान के युद्ध के फलस्वरूप और तत्पश्चात् चीन के ऊपर यूरोपियन शक्तियों के दबाव के फलस्वरूप ही चीन में १९११ की क्रान्ति हुई थी।

चीन की क्रान्ति (१९११)

चीन की क्रान्ति को दो रूपों में देखना होगा। चीन का इतिहास बतलाता है कि चीन में एक के बाद अनेक राजवंशों का राज्य चला। वहाँ एक राजवंश कुछ समय के लिए राज्य करता था, उसके बाद उसका पतन हो जाता था, फिर कुछ समय के लिए अव्यवस्था और अराजकता फैल जाती थी और फिर उसका स्थान दूसरा राजवंश ले लेता था। सम्भवतः, १९११ में मंचू राजवंश का जो पतन हुआ वह मिंग राजवंश (The Mings), युएन राजवंश (Yuens), सुंग राजवंश (The Sungs), और ऐसे ही अनेक राजवंशों के पतन के क्रम के इतिहास की पुनरावृत्ति था। इसमें सन्देह नहीं है कि मंचू राजवंश पतन की ओर जा रहा था। उसकी योग्यताओं और भ्रष्ट नीति के कारण ही चीन के ऊपर कई बार मुसीबतों के पहाड़ टूटे थे। यह भी याद रखना चाहिए कि यद्यपि चीन में सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति अपार श्रद्धा है फिर भी उसको इतना दैवी महत्त्व नहीं दिया जाता कि वह कु-शासन करे। केवल विधवा सम्राज्ञी राजमाता से ही (Tsi Hsi) के व्यक्तित्व के कारण ही मंचू राजवंश का जीवन-काल बढ़ गया था और ज्योंही १९०८ में उसकी मृत्यु हुई कि मंचू राजवंश का अन्त निश्चित हो गया। सन् १९०० में जब मंचू राजवंश पर मुसीबत के बादल घिर रहे थे, उस समय उसने चीनी विद्रोहियों के क्रोध को मंचू राजवंश के ऊपर से हटाकर विदेशियों की ओर फेर दिया था। उस समय उसने आवश्यकतावश प्रतिक्रियावादियों का नेतृत्व किया था। १९०६ में पुनः उसने देखा कि रूस-जापान युद्ध के कारण देश में असन्तोष पाया जा रहा था। इस बार भी उसने मंचू राजवंश को बचाया और इस बार उसने सुधारों का मार्ग पकड़ा। उसने देश में अनेक सुधार किए। उसने सेना में कई सुधार किए, मन्दिरों को स्कूलों में बदल दिया, स्कूलों की पुरानी परीक्षा-प्रणाली को समाप्त कर दिया और शासन-प्रणाली में भी पर्याप्त सुधार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए। यही नहीं, उसने वायदा कर लिया कि चीन में संसदीय शासन-प्रणाली प्रारम्भ कर दी जाएगी। जब तक वह जीवित रही, मंचू राजवंश का बाल बाँका भी नहीं हुआ और उसकी मृत्यु के पश्चात् ही मंचू राजवंश का पतन हुआ।

इसके विपरीत यह सभी जानते हैं कि चीन की क्रान्ति के कुछ ऐसे कारण भी बन गए थे जिन्होंने चीन के इतिहास की कतिपय मान्यताओं को नष्ट कर दिया है। मुग़ल साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत की उस दशा से भी चीन की दशा की तुलना नहीं की जा सकती जो १८वीं शताब्दी में थी। एक प्रकार से १९११ की चीन की क्रांति का मुकाबला १८६७ की जापान की स्थिति से किया जा सकता है। अर्थात् जिस प्रकार कि १८६७ के संकेत ने जापान को सुप्तावस्था से जाग्रत अवस्था में पहुँचा दिया था; प्रायः उसी प्रकार १९११ की चीन की क्रांति ने भी चीन को अफ़ीम के नशे से चेतन कर दिया। १९११ की क्रांति ने मानो सारे संसार में ऐलान कर दिया कि अब चीन अपनी स्थिति का स्वयं स्वामी है। १९११ के चीन के आन्दोलन की दो मुख्य विशेषताएँ थीं; यह आन्दोलन सुधारवादी था और यह मुख्यतः राष्ट्रीय था, क्योंकि इस आन्दोलन का संचालन कुओमिंगतांग (Kuomingtang) या गणतन्त्री दल कर रहा था। राजवंश के पतन के पश्चात् कई बार चीन के इतिहास में ऐसे अवसर आए हैं जब कि शासन के बदलने पर भी स्वार्थी हितों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। निस्सन्देह कई बार ऐसा भी हुआ है कि नेताओं की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के कारण देश की राजनीति पर घातक प्रभाव पड़े हैं। इसमें भी पर्याप्त सत्य है कि चीन की राजनीतिक अस्थिरता से विदेशियों ने बहुत लाभ उठाया है। परंतु १९११ की जिस गणतन्त्री पार्टी को दक्षिणी चीन में मुख्य समर्थन मिला है, वह कुओमिंगतांग दल (Kuomingtang Party) है। इस दल की स्थापना करने वाले डा० सन यात सेन (Dr. Sun yat Sen) थे। १८९५ से ही डा० सन यात सेन या डा० सन यात वेन (Dr. Sun yat Wen) क्रान्तिकारी थे। चीन के लोगों में उनको सन वेन के नाम से पुकारा जाता था। यह उन्हीं का काम था जो १९११ का मंचू राजवंश-विरोधी आंदोलन गणतन्त्री आंदोलन का स्वरूप धारण कर गया था। डा० सन यात सेन ही चीनी गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे किन्तु शीघ्र ही १९१२ में डा० सन यात सेन ने राष्ट्रपति पद त्याग दिया और उक्त पद एक राजवंशीय सेनापति युआन-शे-काई (Yuan Shih-Kai) को अर्पित कर दिया क्योंकि डा० सन का विचार था कि युआन (Yuan) जैसे दृढ़ शासक के नेतृत्व में गणतन्त्री दल की एकता बनी रहेगी जो सम्भवतः उनके नेतृत्व में इतनी शीघ्र प्राप्त न होती।[1] किन्तु डा० सन यात सेन को यह देख कर बड़ी निराशा हुई कि युआन-शे-काई (Yuan Shih-Kai) अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए विदेशियों के हाथों में खेलने लगा था। उसने विदेशियों को आश्वासन दे दिया कि उनकी असमान

डा० सन यात सेन और उनका गणतन्त्री दल

---

१. सन यात सेन स्वयं ईसाई मतावलम्बी थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्धियों को बना रहने दिया जाएगा और इस प्रकार उनके समर्थन पर यह एक नए राजवंश की स्थापना करने की युक्तियाँ सोचने लगा। और नौबत यहाँ तक आ पहुँची थी कि १९१६ में अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व युआन-शे-काई को चीन का सम्राट् घोषित किया जा चुका था।

अतः अब डा० सन यात सेन ने पुनः गणतन्त्री दल को सुचारु रूप से संगठित करना चाहा। किन्तु उनको प्रतीत हुआ कि वह दल अब उनके विरुद्ध है। उनकी मृत्यु १९२५ में हुई थी। तब तक वह जीवनपर्यन्त गणतन्त्री सिद्धान्तों की रक्षार्थ संघर्ष करते रहे थे। तभी तो उन्हें साम्राज्यवादियों का कोप-भाजन बनना पड़ता था; कभी उन्हें युद्धप्रिय लोगों की रक्त-पिपासा को शान्त करना पड़ता था और कभी उन्हें ऐसे लोगों से विरोध मोल लेना पड़ता था जो चीन की अस्थिरता से लाभ उठा कर स्वयं अपना राज्य चीन में स्थापित करना चाहते थे। डा० सन यात सेन कोरे सिद्धान्तवादी थे। उन्हें न तो व्यावहारिक राजनीति का ज्ञान था और न वे सह-योगियों का पूरा-पूरा सहयोग कभी प्राप्त कर सके थे। दुर्भाग्यवश उन्हें अच्छे सहयोगी भी न मिल सके थे। अतः अपने जीवन-काल में डा० सन को मनोवांछित सफलताएँ प्राप्त नहीं हो सकीं। डा० सन यात सेन ने चीन के उद्धार को अपना सामान्य धर्म और उत्कट विश्वास बना लिया। उन्होंने गणतन्त्री दल को संगठित किया और उसका नेतृत्व किया। उन्होंने साम्यवादी रूस को चीन का मित्र बनाया और गणतन्त्री दल को राजनीतिक सिद्धान्तों वाला एक सुगठित और व्यापक कार्यक्रम दिया।[1] डा० सन की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य चियांग-काई-शेक (Chiang Kai-shek) ने चीन का नेतृत्व ग्रहण किया, और इस नए नेता के नेतृत्व में कुओमिंग तांग ने कैण्टन (Canton) से आगे अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाना प्रारम्भ किया। १९२८ तक रूसी सहायता से कुओमिंग-तांग ने हैंकाउ (Hankow), नानकिंग (Nanking), शंघाई (Shanghai) और पैकिंग (Peking) को अपने अधिकार में ले लिया था। अब ऐसा प्रतीत होने लगा था कि नानकिंग सरकार के नेतृत्व में चीन में राष्ट्रीय एकता पैदा हो रही है।

गणतन्त्री दल के सिद्धान्तों और उसकी मान्यताओं पर स्वयं डा० सन यात सेन ने प्रकाश डाला है।[2] उन्होंने लिखा है : "हमने गणतन्त्री दल की स्थापना ऐसे तीन सिद्धान्तों की आधारशिला पर की है जिनके द्वारा हम अपने चीन देश का उद्धार करेंगे—वे तीन सिद्धान्त हैं, राष्ट्रीयता, लोकतन्त्र और समाजवाद।" राष्ट्रीयता की परिभाषा करते हुए उन्होंने बतलाया कि हमारी राष्ट्रीयता हमारे राजनीतिक विश्वासों और हमारी आत्म-निर्भरता तथा एक सुदृढ़ संगठन पर आधारित होगी; हम अन्तर्रा-

---

१. डा० सन यात सेन की मृत्यु के पश्चात् भी उनकी शक्ति और उनका प्रभाव क्षीण नहीं हुए। उन्होंने एक राजनीतिक वसीयतनामा छोड़ा है जिसे कुओमिंग-तांग (Kuoming-tang) राजनीतिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करती है।

२. देखिए— *International Developement of China, Three Principles of a People* आदि आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्ट्रीय शान्ति का न कि साम्राज्यवाद का पोषण करेंगे; किन्तु साथ ही हम हर कीमत पर असमान सन्धियों को अवश्य समाप्त करेंगे और पश्चिमी देशों के साथ केवल समानता के आधार पर सम्बन्ध रखना चाहेंगे। लोकतन्त्र के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि चीन का आन्तरिक शासन-प्रबन्ध लोकतन्त्रात्मक होगा जिसमें प्रतिनिधिक सरकार होगी और सभी नागरिकों को समान अधिकार होंगे।[1] समाजवाद की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा कि हमारे समाजवादी ढाँचे में देश का और समाज का आर्थिक संरक्षण होगा, समाज को हर संभव उपाय से ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाएगा और देश की कृषि और उद्योगों को हर प्रकार प्रोत्साहित किया जाएगा।

चीन की क्रान्ति और कुओमिंग-तांग दल के संघर्ष के कारण चीन की समस्या में कुछ सुधार हो गया। इसके पश्चात् विश्व-युद्ध चला जिसमें पश्चिमी राष्ट्र घिरे रहे और वे चीन में विशेष हस्तक्षेप नहीं कर सके। इन दो विशेष परिस्थितियों ने पश्चिमी देशों के चीन के साथ के सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव डाला। फलस्वरूप चीन में उसके दो महान् पड़ोसी राष्ट्र—रूस और जापान—ही मनमानी करने के लिए रह गए। १९११ की चीन की क्रांति से लाभ उठाकर तुरन्त रूस ने आउटर मंगोलिया (Outer Mangolia) को चीन से अलग करा दिया और उसमें अपने आर्थिक एवं सैनिक नियन्त्रण में एक तथाकथित स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर दी। इस प्रकार १९१२-१९१४ के बीच आउटर मंगोलिया (Outer Mongolia) चीन और रूस के बीच एक अन्तस्थ राज्य बन गया। अन्य कुछ शक्तियों ने भी इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। चीन की कमजोर गणतन्त्री सरकार को मनमानी शर्तों पर ऋण दिए गए और इस प्रकार हर सम्भव उपाय किया गया कि चीन में विदेशी शक्तियों के पाँव मजबूती से जम जाएँ। किन्तु विश्व-युद्ध के कारण रूस तथा अन्य पश्चिमी देश उधर ही उलझे रहे। उनकी शक्ति और उनके वित्तीय साधन भी उधर विश्व-युद्ध में प्रयुक्त होते रहे और उनका ध्यान चीन में अग्रिम घुसपैठ करने की ओर नहीं गया। इससे जापान को स्वर्णावसर प्राप्त हो गया। और चूंकि चीन में फूट थी और महायुद्ध के कारण पश्चिमी देश चीन में हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं थे, अतः जापान की बन आई।

जापानी साम्राज्यवाद और महायुद्ध

जापान चूँकि ग्रेट ब्रिटेन का मित्र था अतः उसने सबसे पहले काम यह किया कि २३ अगस्त, १९१४ को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और शानटुंग (Shantung) में अपनी सेनाएँ भेज दीं तथा उसने कियाओ-चाऊ (Kiao chau) पर अधिकार करके समस्त जर्मन विशेषाधिकारों पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त जापान ने सिंगताओ (Tsingtao) से लेकर

---

१. कहा तो यह गया था कि चीन में सभी नागरिकों को समान अधिकार होंगे। किन्तु वस्तुतः इस मान्यता की उपेक्षा करके एक दलीय शासन की स्थापना कर दी गई, यद्यपि उस समय यह कहा गया था कि ऐसा केवल थोड़े समय के लिए किया जा रहा है जिससे चीन लोकतन्त्री शासन के लिए प्रशिक्षित हो सके।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनान (Tsinan)[1] तक की रेलवे लाइन पर भी अधिकार कर लिया और इस रेलवे लाइन के किनारे-किनारे समस्त जर्मन खनिज उद्योगों की सामग्री को अपने अधिकार में ले लिया। यही नहीं, जापान ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के बहाने चीन की तटस्थता का अपमान करना आरम्भ कर दिया और वह मजबूती के साथ शैनटुँग में जमकर बैठ गया। इससे चीन में व्यापक असन्तोष फैला।

जापान की चीन के विरुद्ध इक्कीस माँगें (१९१५)

इसके पश्चात् जापान ने जनवरी १९१५ में चीन के सामने अपनी इक्कीस माँगें प्रस्तुत कीं। यह सुदूर पूर्व के इतिहास में एक अपूर्व घटना थी। जापान के चीन स्थित राजदूत ने चुपके-चुपके रात में आकर चीन के राष्ट्रपति युआन-शे-काई (Yuan Shih-Kai) को उक्त माँगों वाला सरकारी पत्र प्रस्तुत किया ताकि किसी को कानों-कान खबर न हो सके। हर संभव उपाय किया गया कि उक्त माँगों के बारे में यूरोपीय शक्तियों को पता न चले फिर भी खबर फूट निकली। उक्त इक्कीस माँगें पाँच समूहों में की गई थीं। प्रथम समूह में शानटुँग (Shantung) के सम्बन्ध में माँगें थीं; द्वितीय समूह में मंचूरिया (Manchuria) और पूर्वी आंतरिक मंगोलिया के सम्बन्ध में माँगें पेश की गई थीं; तृतीय समूह में जापान ने चीन से कोयले और लोहे की खानों के संबंध में कुछ विशेष रियायतें चाही थीं; चतुर्थ समूह में चाहा गया था कि चीन की खाड़ियों, बन्दरगाहों और समुद्री किनारों पर जापान को पूर्ण अन्याक्रमण विरोधी अधिकार (Non-alienation Rights) प्राप्त हो जायें; तथा पाँचवें समूह में जापान ने छः माँगें रखी थीं जिनके द्वारा चाहा गया था कि चीन में जापानी सलाहकारों की नियुक्ति की जाय, चीन जापान से ही शस्त्रास्त्र खरीदे, चीन में जापान को स्वतन्त्र रूप से धार्मिक प्रचार करने की सुविधा हो, चीनी पुलिस पर जापान का नियन्त्रण रहे, और प्रत्येक आर्थिक मामले में जापान के हितों को प्राथमिकता दी जाय। फलस्वरूप जापान की इच्छा यह थी कि फूकिन (Fukien) पर जापान का पूर्णाधिकार स्थापित हो जाय।

निस्सन्देह ये माँगें साधारण माँगें नहीं थीं और जापान ने चीन के राष्ट्रपति युआन-शे-काई (Yuan Shih-Kai) पर इन माँगों को तुरन्त स्वीकार करने के लिए दो ओर से दबाव डाला। प्रथमतः, उसको आश्वासन दिया गया कि जापान उसको हर प्रकार की सहायता देगा ताकि वह अपनी स्थिति को मजबूत कर सके। द्वितीयतः उसके ऊपर दबाव डाला गया कि यदि वह नहीं माना तो वह युद्ध के लिए तैयार हो जाय। ७ मई को जापान ने चीन को इत्थिमेत्थम् (Ultimatum) दे दिया। जिस पत्र पर वह इत्थिमेत्थम् लिखा गया था उस पर वाटर मार्क में भारी युद्ध-पोतों, मशीन गनों आदि के छाया-चित्र अंकित थे। युआन शे-काई (Yuan Shih-Kai) डर गया और उसने प्रथम चार समूहों की माँगों को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार

---

१. सिनान (Tsinan), शैनटुँग (Shantung) की राजधानी है, अतः सिनान से जर्मनों के बजाय चीनी लोग ही हटाए गए थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान को शानटुंग (Shantung) में जर्मनी के समस्त विशेषाधिकार सौंप दिए गए और रेलवे का विशेषाधिकार अलग से मुनाफे में दे दिया गया। इस प्रकार दक्षिणी मंचूरिया पर जापान को पूर्ण नियन्त्रण मिल गया। यही नहीं, जापान को चीन में कोयले और लोहे की खानों से लाभ उठाने के पूरे अधिकार प्राप्त हो गए और चीन के समुद्री किनारे पर जापान को पूर्ण अन्याक्रमण-विरोधी अधिकार (Non-alienation Rights) प्राप्त हो गए। वस्तुतः अन्याक्रमण-विरोधी अधिकारों द्वारा जापान को आश्वासन दे दिया गया कि चीन के समुद्रों और बन्दरगाहों पर अन्य कोई विदेशी बिना जापान की आज्ञा के व्यापार नहीं कर सकेगा। किन्तु, जैसा कि एक चीनी विद्वान् ने लिखा है, यदि पाँचवें समुदाय की माँगें भी स्वीकार कर ली गई होतीं तो चीन की प्रभुसत्ता का ही अन्त हो गया होता, अतः उक्त माँगें भविष्य के लिए छोड़ दी गईं।

चूंकि यूरोपीय शक्तियाँ महायुद्ध में फँसी हुई थीं अतः जापान ने एक ही बार में भारी लाभ प्राप्त कर लिए। चीन के राष्ट्रपति युआन शे-काई (Yuan Shih-Kai) को भी लाभ हुआ क्योंकि उसने हुंग शिन (Hung Shien)[1] राजवंश की नींव रखी। किन्तु हुंग शिन राजवंश केवल एक ही वर्ष चला क्योंकि प्रथम सम्राट् अपने राज्याभिषेक के एक वर्ष के अन्दर ही स्वर्ग-लोक को सिधार गया। किन्तु जिस सन्धि द्वारा युआन-शे-काई सम्राट् बना, उसको न तो चीन ने और न चीनवासियों ने ही कभी स्वीकार किया है।

युआन-शे काई और जापान के बीच यह व्यक्तिगत समझौता था, जिसके आधार पर युआन-शे काई चीन का सम्राट् बना। डा० सन यात सेन के एक शिष्य ने लिखा है—"यदि वैधिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो युआन-शे काई और जापान का समझौता मान्य नहीं है क्योंकि इसको संसद् ने पास नहीं किया। यदि व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो भी उक्त समझौता मान्य नहीं है क्योंकि युआन शे-काई को पहले ही देशद्रोही घोषित किया जा चुका था और वह चीन की ओर से कोई समझौता जापान के साथ नहीं कर सकता था क्योंकि उस समय सभी चीनियों की निगाह में जापान घृणा का पात्र था।"[2]

किन्तु जापान ने जिस चालाकी और मक्कारी द्वारा चीन से अपनी इक्कीस माँगें मनवाने का अनुरोध किया था वे धीरे-धीरे प्रकाश में आईं। जापान की जिन माँगों का सम्बन्ध चीन में जर्मनी के विशेषाधिकारों को प्राप्त करने से सम्बन्धित था, उनको तो केवल सभी मित्रराष्ट्र (Allied Powers) मिलकर ही जापान को दे सकते थे। चीन ने तो केवल अपनी ओर से शानटुंग (Shantung) प्रान्त में जापान को जर्मनी का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। परन्तु विश्व-युद्ध के मित्रराष्ट्रों का विचार था कि जर्मनी के शैनटुंग सम्बन्धी विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में अन्तिम

---

१. युआन शे-काई ने सम्राट् बनने के पश्चात् हुंग शिन (Hung Shien) की उपाधि धारण की।

२. चीनी राष्ट्रवादियों की युआन शे-काई के बारे में ऐसे ही भावना थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय युद्ध के पश्चात् ही किया जाना चाहिए। अब जापान ने अलग-अलग मुख्य शक्तियों से आश्वासन माँगने प्रारम्भ किए ताकि शैनटुग में उसकी स्थिति दृढ़ हो जाय। जापान को इस दिशा में पहला अवसर १९१७ की वसन्त ऋतु में मिला जब मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी की पनडुब्बियों के आक्रमण से त्रस्त होकर जापान से प्रार्थना की कि वह उन्हें अपने जहाज दे और पनडुब्बियाँ दे। जापान ने मित्रराष्ट्रों को जहाज देना स्वीकार कर लिया किन्तु बदले में उसने इंग्लैंड, फ्रांस और इटली से यह आश्वासन माँगा कि वे युद्ध के बाद शान्ति सम्मेलन में शैनटुंग (Shantung) के सम्बन्ध में जापान के हितों का ध्यान रखेंगे। उसी प्रकार उसने १९१७ के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ लैन्शिग-इशी (Lansing-Ishi) समझौता किया जिसके द्वारा अमेरिका ने स्वीकार कर लिया कि प्रादेशिक समीपता का भी देशों के आपसी सम्बन्धों पर अवश्य असर पड़ना चाहिए। इस प्रकार अमेरिका ने मान लिया कि चीन में जापान को कतिपय विशेषाधिकार अवश्य मिलने चाहिएँ। दूसरे शब्दों में संयुक्तराज्य अमेरिका ने स्वीकार कर लिया कि शैनटुंग (Shantung) पर जापान का वैध अधिकार होना चाहिए।[२]

परन्तु जब १४ अगस्त, १९१७ को चीन ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तो सारी स्थिति अत्यन्त जटिल हो गई। यद्यपि युआन शे-काई (Yaun Shih-Kai) ने १९१५ में भी मित्रराष्ट्रों से प्रार्थना की थी कि वे उसे अपने पक्ष में युद्ध में भाग लेने दें किन्तु उस समय जापान और ग्रेट ब्रिटेन ने इस प्रार्थना को अस्वीकृत कर दिया था। किन्तु सत्य यह है कि चीन के लोग युद्ध में भाग लेने पर एकमत नहीं थे, परन्तु जब अमेरिका ने युद्ध में नेतृत्व किया और राष्ट्रपति विल्सन ने तटस्थ राष्ट्रों से प्रार्थना की तो चीन ने भी जर्मनी से सम्बन्ध तोड़ लिए।

युद्ध में चीन के प्रवेश को जापान ने ठीक न समझा। जापान को भय था कि सम्भवतः मित्रराष्ट्र युद्धोपरान्त चीन को विशेष रियायतें दे डालेंगे, यद्यपि उसने स्वयं अलग-अलग मित्रराष्ट्रों से सन्धियाँ कर रखी थीं। चीन और मित्रराष्ट्रों के बीच कोई विशेष समझौते नहीं किए गए यद्यपि उन्होंने चीन से वायदा कर लिया था कि वे बॉक्सर विद्रोह (Boxer Rebellion) के सम्बन्ध में निश्चित की गई हर्जाने की रकम को क्षमा कर देंगे और आगम-शुल्कों संबंधी समझौतों पर पुनर्विचार करेंगे। फिर भी इंग्लैंड और अमेरिका के राजनीतिज्ञ जिस सहानुभूतिपूर्ण ढंग से चीन के बारे में अपने विचार व्यक्त कर रहे थे उससे चीन की आशाएँ जाग उठीं और चीनी लोग सोचने लगे कि शायद मित्रराष्ट्र अपने विशेषाधिकारों को त्याग दें। राष्ट्रपति विल्सन

---

१. प्रथम विश्वयुद्ध में जापान ने केवल यह सहायता मित्रराष्ट्रों को दी थी कि अपने युद्धपोतों के संरक्षण में उसने मित्रराष्ट्रों की सेनाओं को समुद्रों में इधर से उधर पहुँचाया। इस युद्ध में केवल ३०० जापानी मारे गए थे जबकि मित्रराष्ट्रों और धुरी राष्ट्रों के दो करोड़ व्यक्ति या तो मारे गए थे या सदैव के लिए घायल और बेकार हो गए थे।

२. यह समझौता बाद में १९२३ में रद्द कर दिया गया था; किन्तु उस समय इससे जापान का हित-साधन हो चुका था।

CC-0.Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चौदह सूत्रों के कारण तो चीन को विश्वास हो गया कि अब उसको आत्म-निर्णय का अवसर मिलेगा।

इसके पश्चात् पेरिस का सन्धि-सम्मेलन हुआ। जापान ने उक्त शान्ति सन्धि-सम्मेलन में शैनटुँग (Shantung) पर अपना अधिकार माँगा। इसके विपरीत चीन के प्रतिनिधियों[1] ने माँग की कि शैनटुँग का प्रान्त पुनः चीन के अधिकार में आ जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त चीन ने माँग की कि चीन में किसी विदेशी सत्ता को राज्यक्षेत्रातीत अधिकार (Extra Territorial Rights) नहीं रहेंगे। उसने अपने अधिकार में आगम-शुल्क व्यवस्था रखने की भी माँग की। चीन ने इसके अतिरिक्त यह भी चाहा कि चीन के किसी प्रदेश में विदेशी प्रभुत्व सहन नहीं किया जाएगा। चीने ने यह भी माँग की कि तुरन्त ही चीन से विदेशी सेनाएँ हट जानी चाहिएँ और जिन विदेशी अधिकारियों का चीन की डाक और व्यवस्था पर नियन्त्रण है उन्हें वापस बुलाया जाय। सारतः विदेशियों द्वारा प्राप्त सारी विशेष सुविधाएँ चीन ने उनसे वापस लेने की माँग की। किन्तु चीन को सब ओर से केवल निराशा का मुँह ही देखने को मिला। जहाँ तक शैनटुँग (Shantung) का सम्बन्ध था ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने शैनटुँग (Shantung) पर जापान के अधिकार का समर्थन किया। चूँकि जापान ने संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S A.) को धमकी दी थी कि यदि उसकी माँगों का विरोध किया जाएगा तो वह संयुक्त राष्ट्रसंघ (League of Nations) में शरीक न होगा, अतः राष्ट्रपति विल्सन (President Wilson) ने लैन्सिग-इशी समझौते (Lansing-Ishii agreement) के सम्बन्ध में पूर्ण अनभिज्ञता प्रदर्शित की और उसने भी शैनटुँग के सम्बन्ध में जापान का पक्ष ग्रहण किया।

पेरिस का सन्धि सम्मेलन

इस प्रकार शैनटुँग के जर्मन विशेषाधिकार जापान को प्राप्त हो गये। चीन की अन्य माँगों पर विचार ही नहीं किया गया। चीन के प्रतिनिधि पेरिस के शान्ति सन्धि सम्मेलन से पूर्ण निराश और खाली हाथ लौटे, यहाँ तक कि उन्होंने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर भी नहीं किये। चूँकि चीन के राष्ट्रीय सम्मान को भारी आघात लगा था इसलिए चीन में व्यापक कटुता के भाव फैल गये और चीन का राष्ट्रवाद उग्र रूप धारण करने लगा।

चीन की निराशा

१९१९ में वार्साई की सन्धि (Treaty of Versailles) हुई। इस सन्धि के साथ वह युग समाप्त हुआ जो १८९४-९५ के चीन-जापान युद्ध के साथ प्रारम्भ

---

१. चीन के दो प्रतिनिधिमण्डल पेरिस सम्मेलन में भाग लेने गए थे, जिनमें से एक प्रतिनिधि मण्डल उत्तरी चीन की ओर से गया था तथा दूसरा दक्षिणी चीन का प्रतिनिधित्व करता था। दक्षिणी चीन के प्रतिनिधिमण्डल में एक सदस्य डा० वेलिंगटन कू (Dr. Wellington Koo) था जो वाशिंगटन (Washington) में चीनी राजदूत था। उसने चीन की ओर से मुख्य रोल अदा किया था। वास्तव में उसकी प्रतिभा के सामने चीनी प्रतिनिधि मंडल का नेता भी हतप्रभ रहा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था। यह सन्धि जापान के साम्राज्यवाद के इतिहास में सीमा-चिन्ह बन गई।

जब पश्चिमी देशों के रुख से चीन को निराशा का मुख देखना पड़ा तो चीन में असन्तोष और अराजकता फैली। चीन के राष्ट्रीय तत्त्व विदेशी प्रभावों से उकता गये और वे शीघ्रातिशीघ्र विदेशियों को चीन से निकालने के लिए कटिबद्ध हो गए। विशेष रूप से चीन में ब्रिटिश विरोधी भावना फैली। ब्रिटेन को दिए गये विशेषाधिकारों के विरुद्ध कार्यवाहियाँ आम तौर पर होने लगीं। चूँकि चीन की सरकार कमजोर थी अतः वह न तो विद्रोह एवं असंतुष्ट राष्ट्रवादी तत्त्वों को काबू में रख सकी और न असन्तुष्ट प्रान्तों में वह विधि का शासन ही चला सकी। प्रतिद्वन्द्वी और महत्त्वाकांक्षी युद्ध-प्रिय तत्त्वों में गृहयुद्ध छिड़ गया। सर्वत्र हिंसा और अराजकता फैलने लगी। चीन की सरकार के पास न तो इतने साधन थे कि वह देश का पुनरुद्धार कर सकती और न उसके पास इतनी शक्ति थी कि वह देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर सकती।

महायुद्ध के पश्चात् सुदूर पूर्व की समस्या

यह सत्य है कि कभी पश्चिमी देश ऐसी भी कोई बात कह दिया करते थे जो चीन के हित में होती थी; किन्तु उनका वास्तविक उद्देश्य यही रहता था कि चीन में उनके विशेषाधिकार अक्षुण्ण बने रहें। प्रथम विश्व-युद्ध से पूर्व यूरोपीय देश मिल-जुल कर चीन में अपना आर्थिक जाल फैलाने लगे थे किन्तु १९२० में एक नए साहचर्य (Consortium) का श्रीगणेश हुआ। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका (U.S.A.) और जापान ने मिलकर चीन में कई बैंक खोले और महाजनी दुकानें खोलीं। इस व्यवस्था का नाम चार शक्तियों का आर्थिक साहचर्य (Four Power Consortium) रखा गया। इस विदेशी साहचर्य ने चीन में पूंजी लगाई और चीन को ऋण दिये। इस साहचर्य समुदाय को अपने देशों की सरकारों से सहायता मिलती थी। बाद में इस साहचर्य (Consortium) में रूस और बेल्जियम भी सम्मिलित हो गये। सर फ्रेडेरिक वाइट (Sir Frederick Whyte)[1] ने लिखा है कि "इस एवं इससे पूर्व के साहचर्य का केवल यही प्रयोजन था कि चीन की रक्षा हो और विदेशी शक्तियाँ चीन का अत्यधिक शोषण न कर सकें। विदेशी आर्थिक साहचर्य की चीन में आवश्यकता को इस आधार पर न्यायसंगत कहा जा सकता है कि चीन की केन्द्रीय सरकार कमजोर थी और चीन के प्रान्तों में आपस में फूट थी। यदि चीन में आर्थिक साहचर्य न होता तो चीन को अत्यधिक दरों पर प्राइवेट लोगों से उधार लेना पड़ता, जिससे चीन का आर्थिक पुनरुद्धार कठिन हो जाता, किन्तु आर्थिक साहचर्यों का यह मुख्य कर्त्तव्य होता है कि वे किसी देश के पुनर्निर्माण में योग दें। साहचर्य (Consortium) के अभाव में सभी विदेशी शक्तियाँ रियायतों और विशेषाधिकारों की माँग करतीं। फल यह होता कि चीन अन्त में विदेशी दास बनकर रह जाता।"

१९२१ में जो वाशिंगटन सम्मेलन (Washington Conference) हुआ, उसमें सुदूर पूर्व के विषयों पर भी काफी विवेचना हुई, यद्यपि यह निःशस्त्रीकरण के

1. *China and Foreign Powers* (1927 edition), pp. 22.23

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये। अमेरिका का विचार था कि सुदूर पूर्व में जापान की स्थिति के विकास का कारण ऐंग्लो-जापानी-मैत्री (Anglo-Japanese Alliance) थी, जिसने जापान के सैन्यवाद को भूतकाल में प्रोत्साहित किया था और जो सम्भवतः भविष्य में भी ऐसा ही करेगी। अतः अमेरिका की प्रेरणा पर ऐंग्लो-जापानी मैत्री (Anglo-Japanese Alliance) को, जिससे युद्ध-काल में ब्रिटेन को भारी लाभ हुआ था, समाप्त कर दिया गया और उसका स्थान चार शक्तियों की सन्धि ने ले लिया, जिस पर ब्रिटेन, जापान, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका ने हस्ताक्षर किये। इसके अतिरिक्त एक नौ शक्तियों की सन्धि[1] भी हुई जिसके अनुसार हस्ताक्षर करने वाली शक्तियों को खुले द्वार की नीति को तथा चीन की प्रादेशिक पूर्णता को एवं चीन की स्वाधीनता तथा प्रभुसत्ता को स्वीकार करना पड़ा।

वाशिंगटन सम्मेलन में चीन के आगम-शुल्कों पर और असमान तथा अनुचित सन्धियों के समाप्त करने पर एवं राज्यक्षेत्रातीत अधिकारों के भी समाप्त कर देने पर विचार-विनिमय हुआ था।[2] यद्यपि सिद्धान्त स्वरूप सभी देश स्वीकार करते थे कि चीन की असमान सन्धियों को समाप्त किया जाय किन्तु व्यवहार में सभी देश कई वर्षों तक जोंकों की तरह चीन का लहू पीते रहे। यद्यपि चीन की राष्ट्रीयता की यह माँग थी कि विदेशी लोग अपने-अपने विशेषाधिकार तुरन्त त्यागें किन्तु विदेशियों ने यह बहाना लिया कि जब तक चीन में अराजकता और अस्थिरता बनी हुई है तब तक यदि विशेषाधिकारों को त्याग दिया जाएगा तो यूरोपीय नागरिकों के जीवन संकट में पड़ जायेंगे। इसके पश्चात् १९२६ में पेकिंग (Peking) में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें तेरह राष्ट्रों ने भाग लिया। उक्त सम्मेलन ने सिफारिश की कि विदेशियों को नागरिकता, व्यापार और कुछ अन्य नागरिक अधिकार तो अवश्य दे दिये जाएँ परन्तु उनके राज्यक्षेत्रातीत विशेषाधिकार (Extra-Territorial Rights) तुरन्त छीन लिये जाएँ। दो वर्ष बाद संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीन को आगम-शुल्कों के सम्बन्ध में पूरी छूट दे दी और इसके बाद तुरन्त ग्रेट-ब्रिटेन ने भी चीन के साथ सन्धि की, जिसके द्वारा ब्रिटेन ने चीन को आगम-शुल्कों के सम्बन्ध में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर दी और अपने समस्त राज्यक्षेत्रातीत विशेषाधिकार स्वयं त्याग दिये। इसके पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन ने हैंकाऊ (Hankow) सम्बन्धी समस्त सुविधाओं और विशेषाधिकारों को भी स्वयं ही त्याग दिया।

किन्तु वाशिंगटन-सम्मेलन के निर्णयों को चीन में क्रियान्वित करने में पर्याप्त देर हुई और किसी सीमा तक अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन ने चीन की आन्तरिक एकता

---

१. नौ शक्तियों की सन्धि पर संयुक्त राज्य अमेरिका, बेल्जियम, ग्रेट ब्रिटेन, चीन, फ्रांस, इटली, जापान, नीदरलैण्डस (Netherlands) और पुर्तगाल ने हस्ताक्षर किये थे।

२. १९०८ में भी महायुद्ध से पूर्व कई पश्चिमी देश चाहते थे कि चीन में सब राष्ट्र अपने-अपने विशेषाधिकार त्याग दें। किन्तु चूँकि सभी राष्ट्र अपने-अपने स्वार्थों में अन्धे हो रहे थे अतः इस सम्बन्ध में कोई ठोस परिणाम न निकले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्थिरता स्थापित कराने में कोई व्यावहारिक दिलचस्पी भी नहीं ली,[1] इसलिए चीन को मजबूरन अधिकाधिक रूस का मुखापेक्षी बन जाना पड़ा। इस प्रकार चीन निरन्तर साम्यवादी रूस से सहायता लेता रहा और फलस्वरूप चीन की राजनीति अधिकाधिक जटिल होती गई। सोवियत रूस इच्छुक था कि चीन की सहायता के बहाने उसे चीन में पैर जमाने का अवसर प्राप्त हो। यद्यपि रूसी क्रान्ति के उपरान्त रूस ने ज़ार की चीनी नीति को बदल दिया था फिर भी चीन में रूस के प्रति बहुत आदर और विश्वास नहीं था और १९१९ से लेकर १९२४ तक चीन में रूस की बहुत इज्जत नहीं थी। किन्तु उसी वर्ष अर्थात् १९२४ में रूस ने चीन के उत्तरी और दक्षिणी भागों के साथ अलग-अलग समान स्तर पर सन्धियाँ कीं।[2] इस प्रकार रूस ने एक सन्धि उत्तरी चीन की अनुदार सरकार के साथ की और उसी प्रकार दक्षिणी चीन में सन यात सेन (Dr. Sun) तथा उनके क्रान्तिकारी दल के साथ भी रूस ने सन्धि की।

उत्तरी चीन में रूस की लोकप्रियता बहुत दिनों तक नहीं चली अतः रूस ने दक्षिणी चीन में कोमिंतांग (Kuoming-tang) राष्ट्रीय गणतन्त्री दल पर डोरे डालने प्रारम्भ किए। रूस की सहायता से अगले पाँच-छः वर्षों में कोमिंतांग दल ने चीन में भारी सफलताएँ प्राप्त कीं; और कोमिंतांग के दल के प्रभाव में चीन में ब्रिटिश विरोधी भावनाएँ घर कर गईं। १९२७ तक तो चीन में रूस का साम्यवाद पर्याप्त जड़ें पकड़ गया; किन्तु रूस के साम्यवादी प्रचार के फलस्वरूप चीन में व्यापक फूट, संघर्ष और प्रतिक्रिया के दर्शन होने लगे। चीन की उन्नति के साथ-साथ चीन में आतंकवाद और प्रति आतंकवाद का दौर आया जिसके कारण चीन की सहानुभूति साम्यवाद से हटने सी लगी; और जब रूस ने स्पष्ट रूप से चीन में साम्यवादी और बॉल्शेविक कार्यक्रम चलाना चाहा, तब तो कोमिंतांग (Kuoming-tang) दल के नेता रूस के विरुद्ध हो गए।

ज्योंही चीन में रूस का साम्यवादी प्रभाव कुछ-कुछ क्षीण हुआ त्योंही ग्रेट ब्रिटेन और अन्य पश्चिमी राष्ट्रों की बन आई और उन्होंने चीन में पुनः कुछ सम्मान प्राप्त किया। वे भी कैण्टन सरकार को आन्तरिक सुधारों और देश के पुनर्निर्माण के विषय में सहायता देने लगे। किन्तु अभी तक कोमिंगतांग (Kuomingtang) को कई प्रकार के शत्रुओं से मोर्चा लेना शेष था। चीन का सोवियत गणराज्य १९३६ तक चला; किन्तु चीन के प्रायः बहुमत वाले प्रदेश ने कैण्टन गणराज्य को ही मान्यता दे दी; इस प्रकार चीन में शनैः-शनैः राष्ट्रीय एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हो रहा था।

पेकिंग से लेकर कैण्टन तक (The Peking-Canton) की रेल का निर्माण किया गया; सारे देश में हवाई और स्थलीय यातायात के साधन तैयार कर दिये गए तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई।

---

१. ब्रिटेन की नीति ही यह थी कि चीन स्वयं अपने पाँवों पर खड़ा रहकर अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करे। इसी कारण ब्रिटेन ने चीन के आन्तरिक मामलों को बिल्कुल भी नहीं छुआ।

२. समान स्तर की सर्वप्रथम सन्धि चीन के साथ जर्मन गणराज्य ने १९२१ में की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रसंघ (League of Nations) के सिंचाई विशेषज्ञों ने चीन में सिंचाई के साधनों को उन्नत करने के लिए आवश्यक परामर्श दिया और सर फ्रेडरिक लीथ-रॉस (Sir Frederick Leith Ross) ने चीन की वित्तीय व्ययस्था को समुन्नत करने की दिशा में महान् उद्योग किया। फलस्वरूप चीन में १९३६ में नई मुद्रा-व्यवस्था का सूत्रपात किया गया जिससे चीन में विदेशी लोगों की पूंजी आकर्षित होने लगी। इसी समय चीन की राष्ट्रीय सरकार के ऊपर जापान ने आक्रमण कर दिया और फलस्वरूप चीन के राष्ट्रीय प्रयत्नों को भारी आघात लगा।

दो विश्वयुद्धों के बीच में प्रशान्त महासागर की राजनीति में जापानी साम्राज्य का विस्तार एक गम्भीर समस्या बनी। १९१५ से १९१९ तक जापान ने बारम्बार प्रशान्त महासागर में अग्रिम कार्य किए किन्तु विश्व-युद्ध के पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ कि जापान कुछ शान्त हो चला है। जापान को कई ओर से निराशाओं का मुंह देखना पड़ा था। साइबेरिया में वह बिलकुल प्रगति नहीं कर सका[1]; ऑग्ल-जापानी मैत्री समाप्त हो गई; अन्य शक्तियों का विश्वास जापान ने खो दिया. क्योंकि वे जापान के प्रति सशंकित थे और इसलिए वे प्रशान्त महासागर में अपनी सैनिक चौकियाँ स्थापित कर रहे थे। यही नहीं, पश्चिमी राष्ट्र खुलकर चीन की प्रादेशिक अखण्डता का समर्थन कर रहे थे। और चूंकि जापान ने राष्ट्रसंघ की सदस्यता को स्वीकार कर लिया तो इससे यही निष्कर्ष निकला कि जापान अब अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का इच्छुक था। इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय था कि जापान की गृह-नीति भी अत्यधिक उदार हो चली थी।

१९२० से १९३० तक तो ऐसा स्पष्ट आभास मिल रहा था कि मानो जापान ने अपनी साम्राज्यवादी नीति को त्याग दिया। किन्तु १९३० के बाद जापान में क्रान्तिकारी जागृति देखी गई क्योंकि उसे चीन की प्रादेशिक अखण्डता का विश्वास हो गया और क्योंकि रूस का प्रभाव चीन में बहुत बढ़ने लगा था और १९२९-३१ में सारे संसार में आर्थिक अवसाद की आँधी घिरी हुई थी। सभी लोग मानते हैं कि जापान की श्रेष्ठ आर्थिक स्थिति के कारण ही जापानी साम्राज्य का विस्तार हुआ है। जापान के छोटे द्वीपों में अत्यधिक जन्म संख्या के कारण आबादी आवश्यकता से अधिक बढ़ रही थी और इस कारण जापान की अर्थ-व्यवस्था भी क्रमशः टूट रही थी। उधर अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया ने अपने देशों में जापानियों का प्रवेश बन्द कर दिया था, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उन्हें जापानी प्रतियोगिता का सामना करना पड़े। जापान की प्रजा को चीन में बसाने के लिए भेजना भी लाभप्रद नहीं दिखाई

१. १९१७ में जेकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) के कुछ सैनिक ऑस्ट्रिया की सेना में से निकलकर साइबेरिया की ओर भागे थे। वे साइबेरिया के लम्बे मार्ग को पार करके पश्चिमी रण-क्षेत्र पर पहुँचना चाहते थे। किन्तु साइबेरिया में उस पलायमान सैन्य दल की बॉलशेविक सैनिकों से मुठभेड़ हो गई। १९१८ में उक्त सैन्य दल की सहायतार्थ फ्रांस, ब्रिटेन, जापान और अमेरिका ने एक मिली-जुली सेना भेजी। जापान ने चाहा कि इस हस्तक्षेप के बहाने उसे पूर्वी साइबेरिया में पैर जमाने का अवसर प्राप्त हो जाए। किन्तु भारी कठिनाइयों के बाद जापानी सैनिकों को व्लाडीवॉस्टक (Vladivostok) से १९२१ में हटना ही पड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे रहा था क्योंकि एक तो चीन में जापान-विरोधी भावनाएँ काम कर रही थीं; द्वितीयतः, चीनी नागरिकों को कोरिया के कुलियों के साथ रहने में असुविधा होती। आर्थिक रूप से भी जापान अब संसार के अन्य देशों पर आश्रित था क्योंकि उसे विदेशों से भोजन और कच्चा माल खरीदना पड़ता था और अपने तैयार माल को खपाने के लिए भी उसे विदेशी बाजारों की आवश्यकता थी। जापान मुख्य रूप से सिल्क निर्यात करता था। किन्तु उसका निर्यात भी संसार की आर्थिक समृद्धि पर निर्भर था, जब अमेरिका और कुछ अन्य देशों ने अपने उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से आर्थिक अवसाद के कारण विदेशी माल का आयात बन्द कर दिया और ऊँचे आयात कर लगाकर जापान का माल अपने बाजारों से बहिष्कृत कर दिया तो जापान की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। जापान के पास इतनी पूँजी नहीं थी कि वह अधिक दिनों तक तैयार माल को अपने पास रोके रहता। अतः जापान की अर्थव्यवस्था डगमगाने लगी।

इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि जापान ने माँग की कि प्रशान्त महासागर के उत्तरी-पश्चिमी भागों पर जापान को व्यापार करने का पूर्णाधिकार रहे। यूरोप में भी इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। दूसरे शब्दों में जापान की माँग यह थी कि 'एशिया एशियावालों के लिए रहे'। यह माँग एशिया का मनरो सिद्धांत (Asiatic Monroe Doctrine) कहलाती थी।

जापान को अपने व्यापार के विस्तार के लिए चीन उचित क्षेत्र लगता था। जापान के अधिकार में कोरिया (Korea) था और मंचूरिया (Manchuria) में भी उसके पैर जमे हुए थे। यदि जापान चीन में और अधिक प्रदेशों की सैनिक विजय कर लेता तो निस्सन्देह जापान के अधिकार में बहुत बड़ा आर्थिक क्षेत्र आ जाता जो अभी भी विकसित नहीं था और जिसमें संरक्षित आगम-शुल्क व्यवस्था के द्वारा तथा वित्तीय नियन्त्रण के द्वारा एकाधिकार वाले बाजार प्राप्त होते और कच्चे माल के ऐसे अखण्ड स्रोत प्राप्त होते जहाँ से किसी अन्य देश को कोई कच्चा माल खरीदने की आज्ञा ही नहीं होती। अभी तक चीन के कई प्रदेशों पर ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका को व्यापक विशेषाधिकार और भारी सुविधाएँ प्राप्त थीं। जापान को इन दोनों प्रतिद्वन्द्वियों से चिढ़ थी। चूँकि रूस भी चीन में घुस-पैठ करता जा रहा था इसलिए रूस भी जापान की घृणा का पात्र था। उधर चीन में भी राष्ट्रवादी भावनाओं का जोर बढ़ रहा था तथा चीन का तेजी से उद्योगीकरण भी हो रहा था और इसके साथ ही चीन में राजनीतिक एकता भी पैदा हो रही थी। इन सब कारणों से जापान ने सोचा कि चीन में जल्दी ही कुछ कार्यवाही करनी चाहिए। चीन की आन्तरिक कमजोरी से भी जापान का साहस बढ़ा और वह चीन में शीघ्र कुछ कार्यवाही करने के लिए उतावला हो गया क्योंकि जापान की आर्थिक आवश्यकताएँ और साम्राज्य-वादी महत्त्वाकांक्षाएँ भी उसको चीन में कुछ कर डालने के लिए प्रेरणा दे रही थीं।

१९३१ में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और वहाँ पर अपने नियन्त्रण में मंचूको (Manchukuo) नाम के कठपुतली राज्य की स्थापना की। अब जापान ने चीन के ऊपर अधिकाधिक दबाव डालना प्रारम्भ किया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन ने राष्ट्रसंघ से अपील की। राष्ट्रसंघ ने एक पड़ताल की और कुछ प्रस्ताव उपस्थित किये। जापान ने इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया और वह १९३३ में राष्ट्रसंघ से अलग हो गया। अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं था। उसने अमान्यता के सम्बन्ध में स्टिमसन सिद्धान्त (Stimson Doctrine of nonrecognition) के साथ सहयोग करने का प्रयास किया। इस सिद्धान्त के अनुसार उसने घोषणा की कि वह पूर्वी एशिया में किसी प्रकार के प्रादेशिक परिवर्तनों को स्वीकार नहीं करेगा। उसने यह भी कहा कि वह चीन की प्रादेशिक अखण्डता पर किये गए किसी प्रहार को भी मान्यता नहीं देगा। लेकिन इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला और जापान तथा अमेरिका के विरोध में वृद्धि हो गई।

१९३४-३७ के बीच जापान की प्रगति रुकी रही। इस बीच जापान ने मंचुकुओ (Manchukuo) में अपनी स्थिति दृढ़ करने का प्रयास किया। वहाँ उसने रेलें बनाईं, कुछ विकास कार्यक्रम चालू किए और जापानियों को वहाँ रहने के लिए भेजा। लेकिन, इसमें जापान को विशेष सफलता न मिली। मंचुकुओ नीति में जापान को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हो रही थी। रूस मंचुकुओ पर जापान के नियंत्रण का विरोधी था। अमूर नदी तथा मँचूरिया के सीमान्त पर उसके रूस के साथ झगड़े भी हुए। चीन में साम्यवाद का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और वह मुख्य रूप से जापान का विरोधी था। अब जापान में इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि अग्रिम नीति (Forward Policy) अपनायी जाये।

१९३६- ७ में जापान, जर्मनी और इटली ने रूस के विरोध में एक कोमिंटर्न विरोधी समझौता (Anti-Comintern Pact) किया। इस समझौते से जापान का हौसला बढ़ा। उसे अमेरिका की तटस्थता और ऐकांतिता का भरोसा था। देश के अन्दर सैनिक और साम्राज्यवादी प्रभाव जोर पकड़ता जा रहा था, जापान को अपनी शक्ति में चीन के विघटन में यकीन था ही। फलतः उसने १९३७ में विजय और नियन्त्रण का व्यापक अभियान प्रारम्भ किया। इसके फलस्वरूप १९४२ तक वह सम्पूर्ण पश्चिमी प्रशांत का मालिक हो गया तथा १९४५ तक उसका विनाश हो गया।

दिसम्बर, १९४१ तक और इंग्लैण्ड व अमेरिका से लड़ाई शुरू होने से पहले उसने उत्तरी चीन के अधिकांश भाग पर विजय प्राप्त कर ली थी और नानकिंग में वांग चिंग वी (Wang Ch'ing Wei) के नियन्त्रण में एक कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी थी।

जापान की प्रचण्ड सैनिक शक्ति के सामने चीन हतप्रभ था। चीन में साम्यवादी और गणतन्त्री दलों ने अपने आपसी मतभेदों को दूर कर जापान के खिलाफ अपूर्व साहस के साथ मोर्चा जमाया। सितम्बर, १९४० में जापान और धुरी शक्तियों ने कोमिण्टर्न विरोधी समझौते को एक सैनिक सन्धि का रूप दे दिया। इसके अनुसार जर्मनी और इटली तो यूरोप में नयी व्यवस्था के तथा जापान एशिया में नई व्यवस्था का नेता हो गया।

१९४१ में ऐसा मालूम पड़ता था कि जिस प्रकार पश्चिम पर जर्मनी का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियन्त्रण निश्चित है, उसी प्रकार पूर्व पर जापान का। चीन का पतन आसन्न था। यूरोप के आपद्ग्रस्त साम्राज्य दक्षिणी-पूर्वी एशिया और पूर्वी द्वीपसमूह में अपने हितों की रक्षा करने या जापान के प्रसार को रोकने में अपने को असमर्थ पा रहे थे।

लेकिन, अभी अमेरिका बचा हुआ था। जापान ने कई वर्षों तक उसे अपना मित्र समझा था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से जापान और अमेरिका के स्वार्थों में टक्कर होने लगी थी। अमेरिका के चीन में कोई प्रादेशिक स्वार्थ नहीं थे यद्यपि उसने फिलिप्पाइन ले लिया था और इस प्रकार वह पश्चिमी प्रशान्त शक्ति बन गया। लेकिन, चीन में उसके आर्थिक और वित्तीय स्वार्थ बढ़ गये थे। उसने चीन के सम्बन्ध में 'मुक्त द्वार' की नीति अपनाई थी। इससे प्रतिद्वंद्वी यूरोपीय शक्तियों की महत्त्वाकाक्षांओं पर रोक लगती थी। जापानी साम्राज्यवाद के मार्ग में भी अमेरिका एक बड़ी बाधा था। पोर्ट स्माउथ की सन्धि में अमेरिकी ने मध्यस्थता की थी। इससे जापान अपने कुछ 'वैध' लाभों से वंचित रह गया। अमेरिकी राजनय के कारण चीन ने प्रथम महायुद्ध में १९१७ में प्रवेश किया था। अमेरिका ने १९१९ में जापान को जर्मन सम्पत्ति नहीं मिलने दी थी। अमेरिका ने जापान के प्रवासियों के साथ भी भेदभाव किया था। वर्साई की सन्धि में अमेरिका ने जातीय समानता के सिद्धान्त को कार्यान्वित नहीं होने दिया था।

तीसरे दशक में अपनी जनता के दृढ़ पार्थक्यवाद (Isolationism) और युद्ध के भय के कारण अमेरिका ने जापान की आक्रामक नीति को रोकने के लिए कोई विशेष कार्यवाही नहीं की। उसने मान्यता न देने के स्टिमसन-सिद्धान्त (Stimson Doctrine of non-recognition) की और चीन की प्रादेशिक अखंडता के सिद्धान्त की ही घोषणा की। लेकिन अब ज्यों-ज्यों जापान आगे बढ़ता जा रहा था, अमेरिका उससे दूर हटता जा रहा था। अमेरिका ने सैनिक हस्तक्षेप के बिना ही जापान और चीन के मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया, लेकिन स्थिति बराबर बिगड़ती गई। अमेरिका ने 'मुक्त द्वार सिद्धान्त' (Open Door Policy) की फिर से घोषणा की, वांग चिंग वी शासन को या विशी फ्रांस की सन्धियों को अस्वीकार किया, अपने प्रशान्त द्वीपों में सैनिक और नौसैनिक शक्ति बढ़ानी शुरू की, जापान के साथ अपनी वाणिज्यिक सन्धि को तोड़ दिया, जापान को हथियार, तेल तथा अन्यान्य निर्यात देने बन्द कर दिये, अपने यहाँ जापान की परिसम्पत्ति (assets) को जब्त कर लिया और पनामा नहर में जापान की जहाजरानी बन्द कर दी। लेकिन, समझौते की बातचीत १९४१ के अन्त तक चलती रही। चीन के निष्क्रमण (evacuation) को मुख्य प्रश्न बनाकर अमेरिका ने जापान को लड़ाई मोल लेने के लिए विवश कर दिया। अमेरिकी विदेश विभाग के आग्रह और आर्थिक नाकेबन्दी (Economic blockade) के कारण जापान में उदार दल कमज़ोर पड़ गया और वहाँ तोजो तथा युद्ध-समर्थक दल प्रबल हो गया। अमेरिकी विदेश सचिव हुल (Hull) ने अपने २६ नवम्बर के नोट में वही पुरानी माँगें दुहराई थीं। जापान ने इसका अन्तिम उत्तर दे दिया। ७ दिसम्बर को वाशिंगटन स्थित उसके राजदूत ने औपचारिक उत्तर दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उत्तर में जापान ने अमेरिका और इंग्लैण्ड के ऊपर यह आरोप लगाया कि उन्होंने जापान और चीन के बीच शान्ति स्थापना तथा एशिया में स्थिरता कायम करने के उसके रचनात्मक प्रयत्नों में रोड़े अटकाए हैं। इसी दिन जापान की थल, जल और वायु सेना ने पर्ल हार्बर में अमेरिका के जहाजी बेड़े को डुबा दिया, गुआम, वेक तथा अन्य प्रशान्त द्वीपों पर आक्रमण किया, अमेरिका के मुख्य हवाई अड्डों को नष्ट कर दिया, शंघाई की अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती पर अधिकार कर लिया, हाँगकाँग में प्रवेश किया, सिंगापुर में बमबारी की और उत्तरी मलाया में अपनी सैनिक टुकड़ियाँ उतार दीं। इसके बाद उसने अमेरिका, इंग्लैण्ड और नीदरलैण्ड्स ईस्ट इंडीज के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। ११ दिसम्बर को त्रिपक्षीय सन्धि (Tripartite Alliance) की धाराओं के संदर्भ में जर्मनी और इटली ने भी अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी।

जापान का अमेरिका के खिलाफ युद्ध में उतर आना उसके लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ। यद्यपि उसे कुछ समय के लिए विजय प्राप्त हुई, लेकिन अंततोगत्वा उस को भयंकर पराजय का मुँह देखना पड़ा।

जापान को पहले छः महीनों में आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त हुईं। बड़े दिन पर हाँगकाँग और सरवाक का पतन हो गया। फरवरी तक मलय प्रायद्वीप और सिंगापुर जापान के हाथ में आ गये। मार्च के बीच तक नीदरलैण्ड्स ईस्ट इंडीज पर जापान का अधिकार हो गया। ऑस्ट्रेलिया के ऊपर भी जापान के आक्रमण की संभावना आसन्न दिखाई दे रही थी। ९ अप्रैल को जापान ने फिलिप्पाइन द्वीपसमूह में बटान प्रायद्वीप को हथिया लिया। अप्रैल में जापान ने लंका पर भी बमबारी की। जापान के जहाज बंगाल की खाड़ी में पहुँच गए थे और भारत को खतरा पैदा हो गया था। मई तक जापानियों ने बर्मा पर अधिकार कर लिया और चीन के लिए बर्मा का मार्ग बन्द कर दिया।

इंग्लैंड और नीदरलैंड्स के प्रशान्त महासागर स्थित साम्राज्य नष्ट हो गए थे। अमेरिकनों को मध्य, पश्चिमी और दक्षिणी प्रशान्त से भगा दिया गया था और उन पर उत्तर तथा पूर्वी प्रशान्त में आक्रमण किया जा रहा था। स्याम और थाईलैंड जापान के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो गए थे। जापान दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा प्रशान्त का नियंता बन बैठा था।

लेकिन जिन साधनों से जापान इतनी तेजी से आगे बढ़ रहा था; उन साधनों का ही उसके खिलाफ प्रयोग किया जा सकता था। जापान के संसाधन चुकते जा रहे थे। जापान ने दक्षिणी-पूर्वी एशिया और प्रशान्त में 'वृहत्तर पूर्व एशिया सह-समृद्धि क्षेत्र' (Greater East Asia Co-prosperity Sphere) नाम से अपने जिस विशाल साम्राज्य की सृष्टि की थी, उसमें शताधिक छेद थे। आरम्भिक आघातों के बाद अमेरिका शीघ्र ही सम्भल गया। उसने जापान के शहरों पर बमबारी की और अपने जहाजी बेड़े का पुनर्निर्माण किया। मई, १९४२ में कोरल सी (Coral Sea) की लड़ाई के बाद अमेरिका ने प्रत्याक्रमण शुरू किया। जून में मिडवे की लड़ाई (Battle of Midway) में जापान को करारी शिकस्त मिली।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूंकि अमेरिका के संसाधन अधिक थे और चूंकि इस समय ब्रिटेन पश्चिमी युद्ध में फँसा हुआ था, इसलिए जापान के साथ युद्ध का अधिकाँश भाग अमेरिका को ही वहन करना पड़ा। ऑस्ट्रेलिया ने जापान को अपने महाद्वीप से हटाने का अवश्य प्रयास किया। १९४४ तक ब्रिटेन ने भी भारत में अपनी सैनिक शक्ति संचित करनी आरम्भ कर दी और उसकी नौसेना हिन्द माहसागर में सक्रिय हो गई। अब पासा पलट गया। इंग्लैंड और अमेरिका की फौजों ने जल, थल और आकाश सभी ओर से जापान को दबाना शुरू कर दिया और एक-एक करके उसके समस्त अधिकृत प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

१९४५ के वसंत तक यह स्पष्ट हो गया था कि जापान हार गया है। जापान का जहाजी बेड़ा नष्ट हो गया था। उसके उद्योग और कारखाने नष्ट होते जा रहे थे। जापान के शहर बमबारी का शिकार हो रहे थे। रूस भी जापान के खिलाफ होता जा रहा था। जापान में भी शान्तिवादी दल का प्रभाव बढ़ रहा था और उसने तोजो को अपदस्थ कर दिया। उसने सेना के विद्रोह के बावजूद सम्राट को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि रूस से मध्यस्थता के लिए प्रार्थना की जाए।

लेकिन, स्टालिन ने फरवरी, १९४५ में माल्टा में रूजवेल्ट के साथ सौदा कर लिया था। रूस इस बात के लिए राजी हो गया था कि जर्मनी की पराजय के बाद वह जापान के खिलाफ लड़ेगा और इसके बदले में उसे कुछ प्रादेशिक तथा अन्य रियायतें प्राप्त होंगी। जुलाई, १९४५ में पोटस्डम घोषणा में तीन मित्र देशों ने जापान को चेतावनी दी कि या तो वह बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दे या उसके शहरों का समूल विनाश कर दिया जायेगा। जापान की सरकार तो आत्मसमर्पण के लिए तैयार थी लेकिन सेना नहीं मानी। ६ अगस्त को अमेरिका ने हिरोशिमा के ऊपर पहला एटम बम गिराया। प्रायः ७०-८० हजार आदमी मर गए और ४ वर्ग मील का शहर नष्ट हो गया। ९ अगस्त को नागासाकी पर दूसरा बम गिराया गया। इसके एक दिन पहले रूस ने अपनी तटस्थता की सन्धि भंग कर दी और जापान के खिलाफ लड़ाई की घोषणा कर दी। १४ तारीख को जापान की सरकार ने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया।

जापान को अपने पचास सालों के लाभों से हाथ धोना पड़ा। उसके पास अपने चार गृहद्वीप ही रह गये। चीन ने जो कुछ भी खोया था, उसे वह सब मिल गया। मंचूरिया, फार्मोसा और पेस्काडोर्स पर चीन का पुनः अधिकार हो गया। रूस को कुरीले द्वीप तथा साखालिन का दक्षिणी आधा भाग प्राप्त हुआ। अमेरिका को फिलिप्पाइन तथा प्रशान्त में अन्य जापानी द्वीपों पर ट्रस्टीशिप प्राप्त हुई। अमेरिका ने अपने एक युद्धकालीन वचन के अनुसार फिलिप्पाइन को आजादी दे दी लेकिन उसे सुरक्षा की गारंटी दी। कोरिया पर वहाँ स्वतन्त्र सरकार की स्थापना होने तक अमेरिका और रूस की संयुक्त सेनाओं का आधिपत्य रहा। इंग्लैण्ड, फ्रांस और नीदरलैण्ड्स ने अपने पूर्वकालीन प्रदेशों को प्राप्त कर लिया, हालाँकि कुछ समय के बाद ही ये प्रदेश भी स्वतन्त्र हो गए।

शान्ति सन्धि होने तक जो १९५२ में हुई, जापान पर अमेरिका का आधिपत्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। उसके साम्राज्यवादी तत्त्वों का सफाया किया गया, उसके युद्ध अपराधियों पर मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें फाँसी दी गई, उसे एक अनुमोदित संविधान दिया गया और उसके पुनर्निर्माण का कार्यक्रम चालू किया गया। यद्यपि अब जापान स्वतन्त्र हो गया है और उसमें राजनैतिक चेतनता आती जा रही है, फिर भी उसके घाव अभी पूरी तरह भरे नहीं हैं और वह यह प्रदर्शित नहीं कर सका है कि रूस, अमेरिका और नये चीन के प्रति उसकी क्या नीति होगी तथा अधिक जनसंख्या की पुरानी समस्या और साम्यवाद की नई समस्या के सम्बन्ध में वह क्या करेगा।

अब प्रशान्त महासागर में केवल दो ही शक्तियाँ रह गईं—रूस और अमेरिका। युद्ध-समाप्ति के बाद उनकी युद्धकालीन एकता शीघ्र ही समाप्त हो गई। अब रूस के संसाधन भी पहले से बहुत बढ़े हुए हैं और उसके पास क्रान्तिकारी साम्यवाद के हथियार हैं। दूसरी ओर अमेरिका है जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख प्रतिनिधि है और सीएटो (अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, थाईलैंड और फिलिप्पाइन) का प्रधान है।

नये साम्यवादी चीन में माओत्से तुंग तथा चाउ एन लाई के नेतृत्व में एक नई शक्ति का उदय हुआ है, जिसकी भावी संभावनाओं का अभी पूरी तरह मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यद्यपि युद्धकाल में मित्र-देशों में यह तय हुआ था कि वे चुंग-किंग सरकार को अपने पैरों पर खड़ा करने का प्रयास करेंगे, लेकिन व्यवहार में यह असंभव सिद्ध हुआ। इसके कई कारण थे—चुंगकिंग सरकार को पर्याप्त सहायता नहीं दी गई, रूस ने सैद्धान्तिक समानता होने के कारण साम्यवादियों को सहायता दी, और साम्यवादी दल अत्यन्त योग्य तथा सुसंगठित दल था। युद्ध समाप्त होने के बाद साम्यवादियों ने राष्ट्रवादियों के साथ समझौता करना बिल्कुल स्वीकार नहीं किया, गृह-युद्ध छेड़ दिया तथा राष्ट्रवादी दल को चीन से भगा दिया। १९४९ में चियांग काई शेक फार्मोसा भाग गया। १९४९ में साम्यवादियों ने जनवादी चीनी गणराज्य (People's Republic of China) की घोषणा की। रूस, इंग्लैण्ड तथा २५ अन्य देशों ने उसे मान्यता दे दी। काफी अरसे बाद अमेरिका ने भी मान्यता दे दी है। साम्यवादियों की नई राजधानी पेकिंग है। वे चीन को सोवियत ढंग पर ढाल रहे हैं।[1]

चीन ने कोरिया पर भी नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया, लेकिन संयुक्त राष्ट्रसंघ ने लड़ाई के द्वारा उसे ऐसा करने से रोक दिया। इस लड़ाई में १६ राष्ट्रों ने भाग लिया लेकिन सबसे अधिक जन-हानि अमेरिका की हुई (प्रायः १४४,०००)। कोरिया का प्रश्न अभी अनिर्णीत है। तथापि कोरिया की लड़ाई में संयुक्त राष्ट्र-संघ ने पहली बार हथियार उठाये। युद्ध एक परीक्षा-युद्ध था। इसने प्रशान्त में साम्यवाद के प्रसार को रोक दिया है।

---

१. इन पंक्तियों के लिखे जाने के बाद चीनी राज्य की नीति बहुत कुछ स्पष्ट हो गई है। तिब्बत को हड़प कर और फिर भारत की सीमा पर आक्रमण कर चीन ने अपनी विस्तारवादी नीति का परिचय दिया है। इस समय चीन और रूस के सम्बन्ध भी काफी खिंचे हुए हैं।—संपादक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १२

(CHAPTER XII)

संयुक्त राज्य अमेरिका

(The United States of America)

१. नए राज्य की स्थापना और आरम्भिक कठिनाइयां
(New State—Its Formation and Early Problems)

जिस दिन वर्साई (Versailles) में स्टेट्स जनरल (States General) का सम्मेलन हो रहा था, उससे केवल ६ दिन पूर्व ३० अप्रैल सन् १७८९, को न्यूयार्क (New York) में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति स्वनामधन्य जॉर्ज वाशिंगटन को राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई गई। विश्व के इतिहास पर दोनों घटनाओं ने अपनी-अपनी अमिट छाप छोड़ी है। पश्चिम में एक ऐसे राज्य का जन्म हुआ था, जिसने प्रायः एक शताब्दी से कुछ अधिक समय में ही इतनी उन्नति की जितनी कि उससे कहीं अधिक समय में शायद ही किसी यूरोपीय देश ने की हो।

१९१४ से लेकर १९१८ तक के प्रथम विश्व-युद्ध में प्रथम बार अमेरिका और जर्मनी युद्ध में शत्रुओं के रूप में आमने-सामने मिले; और संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व को प्रथम बार समझा गया। विश्वयुद्ध से पूर्व समस्त १९वीं शताब्दी में कुछ तो अपनी इच्छा से और कुछ इस कारण भी कि वह यूरोप से दूर था, अमेरिका यूरोपीय राजनीति की मुख्य धारा से प्रायः दूर रहा। अमेरिका ने जान-बूझकर ऐसी नीति अपनायी थी जिससे वह संघर्षशील सन्धियों के जाल में न फँसे। उसने जान-बूझकर ऐसी नीति ग्रहण की जिससे वह यूरोपीय युद्धों और राजनीति के झगड़ों से बचा रहा। इसने उसे काफी हद तक सैनिक सुरक्षाओं की आवश्यकताओं से मुक्त कर दिया। अतः वह इस स्थिति में था कि अपनी उन शक्तियों को अपने आन्तरिक विकास में लगा दे, जिन्हें यूरोपीय देशों ने अपनी सुरक्षा की समस्या पर व्यय कर दिया था। फलतः बीसवीं शताब्दी से पूर्व अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रमुख भाग नहीं ले सका। अमेरिका की हलचलों पर प्रायः कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कैनिंग (Canning) ने एक बार कहा था कि "नई दुनिया किसी दिन पुरानी दुनिया को ताक में रख देगी।" यदि कैनिंग के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका को देखा जाय तो भी ऐसा मानना ही होगा कि मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) ने कुछ समय के लिए अमेरिका को विश्व-राजनीति के मंच पर अभिनेता का रोल अदा करने से रोके रखा।

संयुक्त राज्य अमेरिका के विलक्षण और द्रुतगामी विकास का किसी सीमा तक मुख्य कारण यह था कि वह किसी गम्भीर विदेशी समस्या में उसझने से बचा रहा। "ऐसा लगता है कि संयुक्त राज्य ने एक शताब्दी में ही इतनी ऐतिहासिक प्रक्रियाएं प्राप्त कर लीं जिनके लिए यूरोप में एक हजार से भी अधिक वर्ष लग गये थे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त राज्य अमेरिका के संक्षिप्त जीवन में भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ आ चुकी हैं—उसका विदेशी जातियों से संघर्ष रहा ; उसे स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ना पड़ा था और उसे एक भीषण गृह-युद्ध का भी सामना करना पड़ा था। इन समस्याओं के अतिरिक्त अमेरिका में कृषि समस्या, औद्योगिक समस्याएँ तथा और भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ थीं ; जिन सबको पार करके अमेरिका यदि पुराने यूरोपीय देशों से आगे नहीं बढ़ गया है तो कम-से-कम वह उनसे पीछे भी नहीं है। किन्तु ऐसा कहना अमेरिका के साथ पक्षपात करना होगा। सम्भवतः अमेरिका के सम्मुख पवित्र रोमन साम्राज्य जैसी जटिल समस्या नहीं थी, न अमेरिका में मध्यकालीन चर्च की कोई समस्या थी और नई दुनिया में दूषित सामन्ती व्यवस्था भी नहीं थी। अमेरिका में नव-जाग्रति ने भी कोई नई समस्या उत्पन्न नहीं की थी। संक्षेप में अमेरिका के अन्दर न तो कोई प्रत्यक्ष समस्या थी और न कोई निहित स्वार्थ थे। इस प्रकार की समस्याओं से यूरोप को लाभ भी हुआ और उसने विशाल अनुभव अर्जित किया और वह अपने कई प्रकार के दोषों से मुक्त हुआ। अमेरिका इस प्रकार के लाभों और अनुभवों से वंचित रहा। शताब्दियों तक कष्ट सहन करने के उपरान्त अमेरिका के बिखरे हुए राज्य एक गणराज्य में परिणत नहीं हुए थे। सत्य यह है कि अमेरिका का राष्ट्रीय जीवन केवल १५० वर्ष पुराना नहीं है। वह यूरोप का जात है। अमेरिका वास्तव में सामाजिक विकास के विभिन्न स्तरों का एक अजीब-सा ताना-बाना है।

प्रायः सभी यूरोपीय देशों ने और विशेषकर इंग्लैण्ड ने अमेरिका को समझने में यही गलती की है कि वे बाहरी समानताओं को तो देखते हैं किन्तु मौलिक असमानताओं को भुला देते हैं। १७७० की अनुदार दल की ब्रिटिश सरकार ने भी यही गलती की थी। डा० जॉन्सन (Dr. Johnson) ने यही सलाह दी थी कि "हमारी ब्रिटिश प्रजा और अमेरिकी प्रजा में विभेद करने की आवश्यकता नहीं है।" सम्राट् जार्ज तृतीय (George III) ने डा० जॉन्सन की सलाह मानकर ही अमेरिका जैसा विशाल साम्राज्य खो दिया था। यूरोप और अमेरिका में समानता करना न्यायोचित नहीं है। कारण यह है कि अमेरिका उपनिवेश मात्र था इसलिए उसकी अपनी समस्याएँ थीं और उसकी विशेष आवश्यकताएँ थीं। अमेरिका ने अपनी समस्याओं और आवश्यकताओं के हल भी स्वयं ही निकाले हैं। अमेरिका के लोगों के सिद्धान्त और विचार सीमावर्ती खानाबदोशों के-से हैं क्योंकि उनका जीवन सीमावर्ती लोगों का-सा जीवन रहा है। अमेरिका संसार के इतिहास में सबसे बड़ा राजनीतिक प्रयोग है और उसी प्रकार सबसे महान् सामाजिक और आर्थिक उपक्रम भी है। अमेरिका संसार की सर्वाधिक कठिन प्रस्थापना (Proposition) है। किन्तु यूरोप और अमेरिका के बीच आकाश-पाताल का अन्तर है। अमेरिका की सफलताओं को यूरोपीय रुचियों के आधार पर नहीं आँका जा सकता। उसी प्रकार यूरोपीय समस्याएँ अमेरिका की रीतियों के द्वारा हल नहीं की जा सकेंगी। सत्य यह है कि अमेरिका रूपी सूर्य अपने ढंग की एक नई संस्कृति लेकर पश्चिम में उदित हो रहा है।

और इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अमेरिका की स्वतन्त्रता के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे इंग्लैण्ड की परम्पराएँ और फ्रांस के दार्शनिक सिद्धान्त काम कर रहे थे। अमेरिका के नागरिक भविष्य में कैसे भी बन जाएँ किन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि वे यूरोप के विभिन्न प्रकार के विचारों, संस्कारों और अनुभवों को लिए

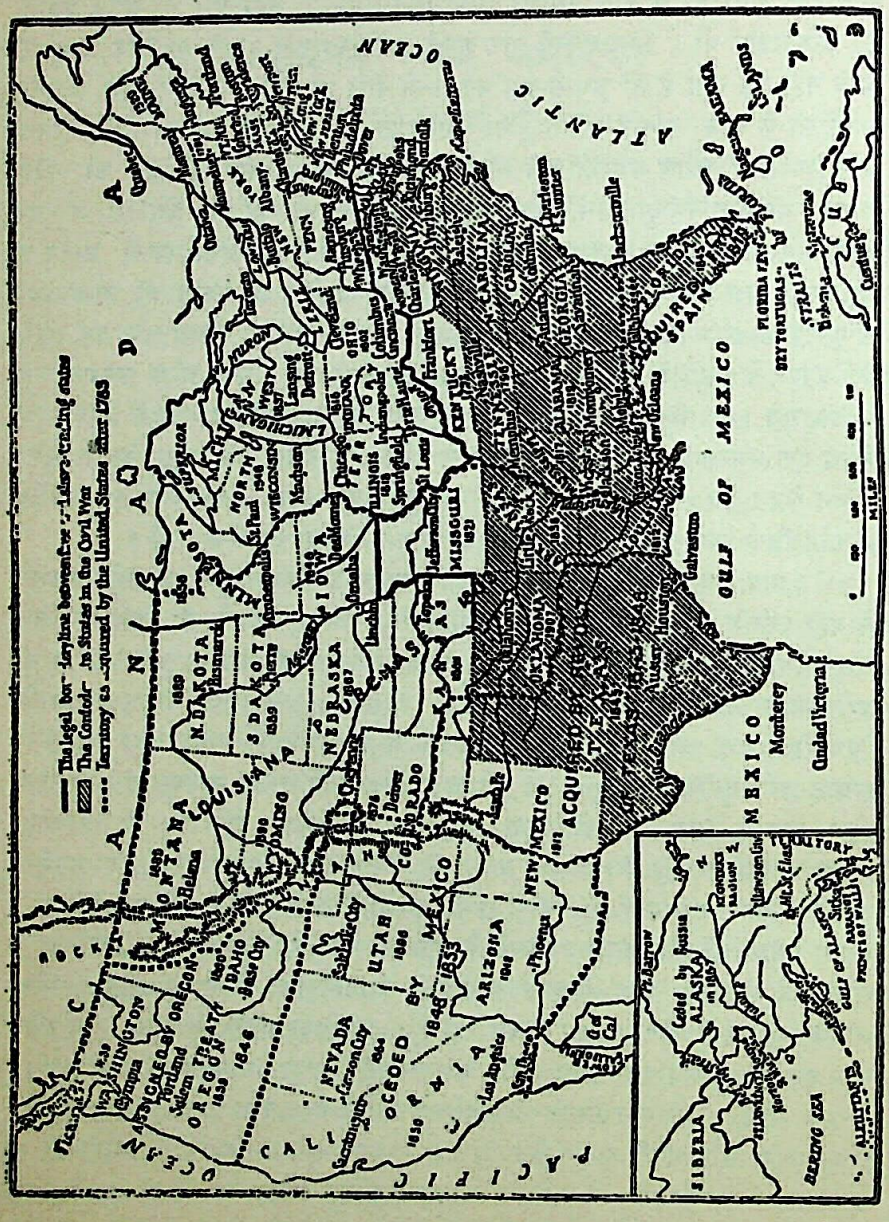

हुए यूरोप के अप्रत्यक्ष जात ही थे। इस प्रकार अमेरिका निर्धारित ज्ञान, आत्म-विश्वास और आत्म-साहस तथा समयोचित अवसरों का एक मिश्रण है जिसके बारे में एक अर्थशास्त्री ने भविष्यवाणी की थी कि "यह उस गूढ़ ऐतिहासिक पहेली का स्पष्ट उत्तर है जिसे यूरोप अनेक शताब्दियों तक भी न पा सका था।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७७६ में अमेरिका के तेरह उपनिवेशों ने अपनी स्वतन्त्रता की निम्न शब्दों में घोषणा की थी—"अतः हम संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधिगण आज देश की प्रतिनिधि सभा के रूप में सम्मिलित होकर भगवान् के सामने अपने पवित्र इरादों की शपथ लेकर इन उपनिवेशों के श्रेष्ठ नागरिकों की ओर से उनके द्वारा दिए गए अधिकार पर गम्भीरतापूर्वक घोषणा करते हैं कि ये सभी अमेरिका की बस्तियाँ स्वतन्त्र और आजाद हैं—यह इनका जन्म-सिद्ध अधिकार है—और संसार की कोई ताकत इनको गुलाम नहीं रख सकेगी।" १७८३ तक अमेरिका ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। वह स्वतन्त्रता थोड़े-से हठी देश-सेवकों के कठिन साहस और एक धैर्य-मूर्त्ति नेता के असीम धैर्य का फल थी। इस स्वतन्त्रता के प्राप्त करने में कई अन्य तत्त्वों ने भी योग दिया था जिनको भुलाया नहीं जा सकता। इंग्लैण्ड दूर था और वह यूरोप की राजनीति की दलदल में बुरी तरह फँसा हुआ था। फ्रांस इंग्लैण्ड से १७६३ में कनाडा छीने जाने का बदला लेना चाहता था। अतः उसने इंग्लैण्ड के विरुद्ध अमेरिकन उपनिवेशों की हर प्रकार सहायता की थी। किन्तु ज्योंही अमेरिका की स्वतन्त्रता की लड़ाई समाप्त हुई, अमेरिका के नए गणराज्य के सामने इतनी समस्याएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित हो गईं जितनी सम्भवतः पहले नहीं थीं। युद्धोपरान्त सन्धि के साथ लोगों में नैतिक पतन दिखाई देने लगा तथा आर्थिक कठिनाइयों ने राजनीतिक अशांति को जन्म दिया। फलस्वरूप अमेरिका में गृह-युद्ध के आसार दिखाई देने लगे। जार्ज वाशिंगटन अपनी सेनाओं से विदा ले चुका था और अपना उच्च सैनिक पद कांग्रेस को सौंप चुका था। वह माउण्ट वर्नान (Mount Vernon) में अपने खेतों की देख-भाल करने लगा था। युद्ध की समाप्ति पर अनेक सैनिकों को सेना से निकाल दिया गया था, वे असन्तुष्ट थे। जो सेना में थे वे भी अपने तुच्छ वेतन और उस थोड़ी सी जमीन से सन्तुष्ट नहीं थे जो जार्ज वाशिंगटन ने उनको दिला दी थी। ऐसे समस्त असन्तुष्ट तत्त्व पश्चिम की ओर एलेगनीज़ (Alleghenies) की ओर पलायन करने लगे। उधर उन लोगों ने केंटुकी (Kentucky), टेनेसी (Tennessee) आदि प्रान्तों को बसाया। उन्हीं दिनों प्रायः एक लाख ब्रिटिश राज्य-भक्त[1] टोरी लोगों ने ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज़ (British West Indies) को आबाद किया। इस श्रेणी के अनेक ब्रिटिश समर्थक लोग उत्तर में कनाडा में जा बसे और बहुत से दक्षिण में स्पेन के उपनिवेश फ्लोरिडा (Florida) में जा बसे। इस प्रकार देश की राजनीतिक स्थिरता डाँवाँडोल-सी होने लगी।

युद्ध-काल में सारा व्यापार ठप्प हो गया और उत्पादन के नाम पर देश में कुछ भी नहीं था। जिस समय अमेरिकी उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य के अंग थे, उस समय वे ब्रिटिश करों का विरोध करते थे। किन्तु अब, जब उनके ऊपर नए-नए व्यापारिक बन्धन लगने लगे, तो उन्हें ऐसा लगा मानो उनकी स्थिति दयनीय हो गई है। अब वे ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज़ (British West Indies) के साथ व्यापार नहीं कर सकते थे;

---

१. एक समय ब्रिटेन की अमेरिका-स्थित सेना में इतने अमेरिकन उपनिवेशी थे, जितने सम्भवतः वाशिंगटन की समस्त सेना में भी नहीं थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पेन ने भी अपने कई बन्दरगाह उनके व्यापार के लिए बन्द कर दिए थे। फ्रांस भी उन कई प्रकार की सुविधाओं को अमेरिका की स्वतन्त्र बस्तियों से वापस ले रहा था जिन्हें वह पहले उनको दे रहा था। अमेरिका के राज्य चाहते थे कि ब्रिटिश-नौपरिवहन-अधिनियम (British Navigation Act) के अनुरूप अमेरिका में भी संरक्षणात्मक आगम-शुल्क-व्यवस्था चालू होनी चाहिए, किन्तु इस दिशा में मुख्य बाधा यह थी कि अमेरिका के राज्यों में आपसी फूट थी और अमेरिका की काँग्रेस निर्जीव थी। इसलिए समस्त अमेरिका में एक ही विधि की क्रियान्विति कठिन थी। सभी राज्य आपसी विद्वेष के कारण अपनी-अपनी आगम-शुल्क-व्यवस्था निर्धारित कर रहे थे। फल यह होता था कि कभी-कभी एक राज्य दूसरे राज्य के विरुद्ध भी आगम-शुल्क लगा दिया करता था।

ऐसा प्रतीत होने लगा था कि स्वतन्त्रता के साथ उत्पन्न अमेरिकी संघ विघटित होने जा रहा है। १७८१ में अमेरिका के राज्यों ने अपने आपको सदैव के लिए एक अस्थाई संघात्मक विधान (Articles of Confederation and Perpetual Union) के द्वारा एक संघ में संगठित कर दिया था किन्तु उक्त विधान की शर्तों को परस्पर द्वेषी राज्यों ने नहीं माना। यद्यपि समस्त परिसंघ (Confederation) की केन्द्रीय सत्ता काँग्रेस (Congress) में निहित थी परन्तु वह भी परस्पर-विरोधी राज्यों को अंकुश में रखने में असमर्थ थी। वास्तव में काँग्रेस न तो सभी राज्यों के लिए एक सामान्य नीति निर्धारित कर सकती थी और न वह उन समस्याओं की ओर अपना पूरा ध्यान दे सकती थी जो उसके सामने आये दिन आ रही थीं। "काँग्रेस तो वास्तव में केवल एक सलाह देने वाली संस्था मात्र बन कर रह गई थी, जिसको सभी लोग अब उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे थे।" काँग्रेस के पास वास्तविक सत्ता का अभाव था। काँग्रेस तो केवल राज्य को कुछ सिफारिशें भेज सकती थी, और राज्यों की सरकारें चाहतीं तो उन आज्ञाओं या सिफारिशों को स्वीकार करतीं और चाहे उन्हें क्रियान्वित करना अस्वीकार भी कर सकती थीं। उनके ऊपर समय की भी कोई पाबन्दी नहीं थी। काँग्रेस की किसी आज्ञा को कोई राज्य कब क्रियान्वित करे, इस सम्बन्ध में भी काँग्रेस के पास कोई प्रभावी शक्ति नहीं थी। किसी राज्य की इच्छा के विरुद्ध काँग्रेस कोई कदम नहीं उठा सकती थी। काँग्रेस की स्थिति यहाँ तक दयनीय थी कि उसके प्रस्तावों को पारित होने के लिए काँग्रेस के दो-तिहाई मतों की आवश्यकता पड़ती थी। और काँग्रेस उस समय तक अपना सुधार नहीं कर सकती थी जब तक कि तत्सम्बन्धी प्रस्ताव काँग्रेस में सर्वसम्मति से पास न हो जाय।

काँग्रेस राज्य में कर नहीं लगा सकती थी। वह तो केवल विभिन्न राज्यों से प्रार्थना कर सकती थी और उन्हें वह वसूल करने के लिए कह सकती थी और इस प्रकार जो धन राज्यों की ओर से केन्द्रीय खजाने में आता था उसी के सहारे युद्ध का व्यय किया जाता था। किन्तु कई राज्य ऐसे थे जो युद्ध के खर्चे से बचना चाहते थे। काँग्रेस के पास प्रभावी शक्ति का अभाव था। अतः, काँग्रेस उन राज्यों से ही और अधिक धन वसूल करती थी जो केन्द्रीय कोष को धन देते थे। किन्तु इस प्रकार जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ राज्यों को अपनी शक्ति से अधिक धन देना पड़ता था तो उन राज्यों की स्थिति भी खराब होने लग गई थी। उन्होंने काग़ज के सिक्के चलाने आरम्भ कर दिए और फलस्वरूप उनकी अर्थ-व्यवस्था प्रायः ठप्प हो गई। उन राज्यों के ऊपर देश का और विदेशों का भारी ऋण हो गया। देश इतना गरीब हो चला था कि वह विदेशी ऋणों का ब्याज भी चुकाने में असमर्थ था। उस समय आम लोगों की यही राय थी कि देश की साख एक कॉन्टीनेण्टल (Continental)[1] अथवा काग़ज़ी नोट की भी नहीं रह गई है।

राज्य भी ऋणों से दबे हुए थे और चूंकि कई राज्यों ने काग़ज़ी मुद्रा चलाई थी, अतः साख प्रायः समाप्त हो चली थी। फलतः वे अवैध आर्थिक और राजनीतिक उपायों का अवलम्बन लेकर अपने उत्तरदायित्वों से बचने लगे।

कठिनाइयाँ

आर्थिक कठिनाइयों ने सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया। एक बार तो उद्दण्ड सैनिकों ने काँग्रेस के कार्यालय पर ही धावा बोल दिया और काँग्रेस को फ़िलैडेलफ़िया (Philadelphia) छोड़कर पलायन करना पड़ा। इसके बाद उन्होंने बैंक के ऊपर आक्रमण कर दिया। पुनः १७८६ में ऋणी लोगों ने खुल्लम-खुल्ला विद्रोह कर दिया और मैसेशुसेट्स (Massachusetts) में डेनियल शेस (Daniel Shays) के नेतृत्व में भयंकर विद्रोह हो गया।

जब बाहरी देशों ने देखा कि नव-स्वतन्त्रता-प्राप्त अमेरिकी उपनिवेशों की ऐसी बुरी अवस्था है तो वे अमेरिका से घृणा करने लगे; और यदि उनमें से किसी को अमेरिका से अपनी पूंजी वापस लेनी थी तो वे अमेरिका से बहुत चिढ़-से गए। सब से अधिक नाराज़ी फ्रांस को थी और अब फ्रांस और स्पेन में बहस चलने लगी कि किसके अधिकार में अमेरिका का कौनसा राज्य आयेगा। सभी को आशा थी कि अमेरिका की स्वतन्त्रता काग़ज़ी नाव के समान खतरे में थी। इंग्लैण्ड ने अमेरिका में राजदूत नियुक्त करना अस्वीकार कर दिया और सन्धि की शर्तों के विरुद्ध उसने अमेरिका में रक्षा दुर्गों को कायम रखा ताकि वह अपने व्यापारियों का अमेरिका के ऊपर जो ऋण था उसे बल-प्रयोग के द्वारा समय आने पर वसूल कर सके। स्पेन (Spain) ने वेस्ट इंडियनों (Indians) के साथ साँठ-गाँठ कर ली और वे मिलकर अमेरिका में अपना साम्राज्य बढ़ाने लगे। वे मिसिसिपी (Mississippi) नदी के व्यापार में भी बाधा डालने लगे।

इस स्थिति से हैमिल्टन (Hamilton) को भारी निराशा थी। वह सोचता था कि अमेरिका के अत्यन्त विशाल साधन स्रोत है फिर भी क्योंकर हमारी ऐसी बुरी अवस्था है। सभी सोचने लगे कि अमेरिका में तानाशाही की आवश्यकता है। बहुत से लोगों का, जिनमें फ्रेडेरिक महान् (Frederick the Great) भी एक था, ऐसा भी

---

१. काँग्रेस ने एक कागजी मुद्रा का प्रचलन किया था जिसका नाम कान्टीनेण्टल (Continental) था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार था कि अमेरिका जैसा विशाल देश गणराज्य के उपयुक्त नहीं है। कुछ लोग ऐसे षड्यन्त्र भी रचने लगे कि वाशिंगटन (Washington) को अमेरिका का राजा घोषित कर दिया जाय। बहुत से लोग आशा करने लगे थे कि परिसंघ (Confederation) शीघ्र ही विघटित होने वाला है।

संभव था कि यदि वाशिंगटन राजवंश की स्थापना अमेरिका में हो गई होती तो अमेरिका का संघ दृढ़ हो गया होता, किन्तु स्वयं वाशिंगटन ने इस विचार को स्वीकार नहीं किया। और इसमें भी संदेह है कि यदि वाशिंगटन ने राजपद स्वीकार ही कर लिया होता, तो भी क्या वह उतना शक्तिशाली हो सकता जितना कि वह राष्ट्रपति के रूप में शक्तिशाली था। वास्तव में कुछ और ही कारण थे जिनसे प्रभावित होकर राज्य संघ से विलग नहीं हो गए। वे थे—विदेशों के आक्रमण का भय, व्यापारिक सुविधाएँ और निहित स्वार्थ। वास्तव में अमेरिका का संघ अनिच्छुक राज्यों का संघ था किन्तु आवश्यकताओं ने उन्हें बिलकुल मजबूर कर दिया था। हैमिल्टन (Hamilton) चाहता था—"हम अपने तेरह राज्यों का पक्का और अभेद्य संघ बनाएँ, जिससे एक शक्तिशाली और महान् अमेरिका का निर्माण हो सके। हम ऐसा पुष्ट संघ बनाना चाहते हैं जो यूरोप को भी प्रभावित कर सके और जिसके इशारों पर नई दुनिया और पुरानी दुनिया के सम्बन्धों की सृष्टि हो।"

संगठन या संघ के पक्ष में दलीलें

तत्कालीन राजनीतिक विचारधारा में लोकतन्त्री आदर्शों का भी पुट था और लोगों में आम धारणा थी कि नव-विजित स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अमेरिका के संघ का भारी महत्त्व होगा। जैफ़रसन (Jefferson) ने लिखा था—"यद्यपि हमारी शासन-व्यवस्था में अनेक दोष हैं फिर भी यह सर्वश्रेष्ठ शासन-व्यवस्था है।" एक अन्य अवसर पर जैफ़रसन ने कहा था—"यदि अन्य देशों की सरकारों के साथ हम अमेरिकी सरकार की तुलना करें तो स्वर्ग-लोक और नर्क-लोक का अन्तर दिखाई देगा—किन्तु इंग्लैंड का राज्य मानो पृथ्वी-लोक है जो दोनों के बीच का स्टेशन है।"

संघ के पक्ष में एक तो यह दलील दी जा चुकी है कि उसके द्वारा व्यापारिक समृद्धि की अधिक सम्भावना थी। दूसरी दलील संघ के पक्ष में यह थी कि कुछ प्रदेश ऐलीगनीज़ (Alleghenies) से दूर थे। वह सर्वनिष्ठ भूमि थी जिसमें अमेरिका के सभी राज्यों की रुचि थी। १७८१ में इस भूमि को राष्ट्रीय प्रदेश के समान समझकर उसका बँटवारा करने के लिए उसे काँग्रेस को दे दिया गया था। कारण यह था कि कुछ पूर्वी समुद्री किनारे के राज्य तो अपनी सीमाओं को बढ़ा नहीं सकते थे। ऐसे राज्यों में मेरीलैण्ड (Maryland) और डीलावेयर (Delaware) प्रमुख थे। उन्होंने विरोध किया कि कुछ राज्य निरंतर पश्चिम की ओर विस्तार कर रहे हैं। ऐसे राज्यों में वर्जीनिया (Virginia), पेन्सिलवानिया (Pennsylvania) और कैरोलीना के दोनों भाग (North Carolina and South Carolina) थे। इसलिए एलीगनीज़ (Alleghenies) प्रदेश को संघ की भूमि मान लिया गया जो एक प्रकार से संघ का उपनिवेश था; किन्तु जान-बूझकर उपनिवेश के स्थान पर भूमि या प्रदेश (Territory) शब्द

राष्ट्रीय भूमि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग किया गया था। १७८३ की सन्धि में यह स्वीकार कर लिया गया कि ऐलीगनीज़ प्रदेश (Alleghenies) पर संघ का प्रभुत्व रहेगा और १७८७ के उत्तरी-पश्चिमी अध्यादेश द्वारा काँग्रेस ने उक्त प्रदेश पर केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य जमा लिया। उक्त अध्यादेश ने केन्द्रीय सरकार को अधिकार प्रदान कर दिया था कि वह चाहे तो उसकी जमीनों को बेचे, चाहे उसका सर्वेक्षण (Survey) कराये। काँग्रेस ने उक्त संघीय भूमि में गुलाम प्रथा का अन्त कर दिया और इसके अतिरिक्त उसने आदेश दिया कि उक्त प्रदेश में धीरे-धीरे न्यायोचित शासन-प्रबन्ध चालू किया जाय ताकि कुछ काल के प्रशासनिक अनुभव के पश्चात् उक्त प्रदेश को भी एक राज्य के रूप में संगठित करके अमेरिका के संघ में आदरपूर्ण स्थान प्राप्त हो सके।[1]

फ़िलाडेल्फ़िया की प्रसभा (१७८७)

उपर्युक्त तथ्य संघ के पक्ष में विकसित हो रहे थे। उन्हीं दिनों प्रत्येक राज्य को अपनी निजी चुंगी-व्यवस्था बनाने का अधिकार होने के कारण अन्तःराज्यीय व्यापार चलाने में इतनी अधिक अव्यवस्था फैल गई थी कि उसको सुलझाने के लिए एक सम्मेलन या प्रसभा (Convention) का बुलाना प्रायः अनिवार्य हो गया था। उक्त सम्मेलन या प्रसभा में परिसंघ या कनफ़ेडेरेशन (Confederation) की धाराओं (Articles of Confederation) पर भी पुनर्विचार करने का निश्चय किया गया। १७८७ में जार्ज वाशिंगटन की अध्यक्षता में प्रसभा या कन्वेंशन की सभा हुई। किन्तु प्रसभा कुछ भी न कर सकी। महसूस यह किया गया कि पुराने विधान में संशोधन करना प्रायः असम्भव था। कुछ राज्यों ने बहुत ही बे-मन से अपने प्रतिनिधि भेजे।

सम्भवतः संसार के किसी भाग में कभी भी इतने व्यवहारकुशल और योग्य व्यक्ति संविधान बनाने के लिए एक साथ एकत्रित नहीं हुए थे; वे कोरे सिद्धान्तवादी ही नहीं थे—और न वे विद्रोह की भावना को लेकर ही एकत्रित हुए थे। ऐसे अनेक लोग फ़िलाडेल्फ़िया के सम्मेलन में उपस्थित ही नहीं हुए थे जो आन्दोलनकारी भावुक वक्ता अथवा कोरे सिद्धान्तवादी थे। उदाहरणस्वरूप एडम्स बन्धु-द्वय इस सम्मेलन में भाग नहीं ले सके थे। जेफ़रसन उस समय फ्रांस में था, पैट्रिक हेनरी (Patrick Henry) यद्यपि उक्त सम्मेलन के लिए निर्वाचित हो गया था किन्तु उसने सम्मिलित होना स्वीकार ही नहीं किया। इस सम्मेलन में भाग लेने वालों में अधिकतर लोग सैनिक थे, या राजनीतिज्ञ थे या अर्थ-विशेषज्ञ थे। उनमें कुछ लोग अविशेषज्ञ (Amateurs) भी अवश्य थे, किन्तु अधिकतर ऐसे ही व्यक्ति थे जिन्हें सभाओं का या काँग्रेस की समितियों का अनुभव था। उन सभी की इच्छा यह थी कि अमेरिका के लिए श्रेष्ठ

---

१. उस समय ऐसा कोई विचार नहीं था कि उक्त संघीय प्रदेश को घटिया दर्जे के राज्य का दर्जा दिया जायेगा। प्रशासनिक प्रौढ़ता प्राप्त करने के उपरान्त उस प्रदेश को भी अन्य राज्यों के समान दर्जा प्रदान कर दिया गया। यह तत्कालीन काँग्रेस की भारी दूरदर्शिता थी और राजनीति तथा आधुनिक शासन-विज्ञान की भारी देन थी। किन्तु उक्त व्यवस्था में संघात्मक शासन-व्यवस्था निहित थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन विधान मिलना चाहिए। उन सब को प्रशासन का व्यावहारिक अनुभव था और सभी को देश के कल्याण की कामना थी। वाशिंगटन (Washington) ने कहा था—"हमको ऐसे महल का निर्माण करना चाहिए जिसकी आवश्यकता पड़ने पर भविष्य सन्ततियाँ मरम्मत कर सकें। भगवान् परमपिता हमको ऐसी सद्बुद्धि दे।" फ़िलाडेल्फ़िया के प्रतिनिधियों में प्रायः सारे के सारे ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने १७७६ से बाद के दस वर्ष देखे थे। यदि १७७६ के तुरन्त बाद यह प्रसभा (Convention) हुई होती तो अवस्था दूसरी होती किन्तु १७७६ से १७८७ तक उन लोगों ने आजादी के तीखे फल खाए थे। उनका सभापति जार्ज वाशिंगटन (George Washington) एक सैनिक और किसान था। उनका वरिष्ठ सदस्य बेन्जामिन फ्रेंकलिन (Benjamin Franklin) था जिसे लोग सोक्रेटीज (Socrates) के समान बुद्धिमान् समझते थे। वह कूटनीतिज्ञ, विज्ञान-वेत्ता, दार्शनिक और पढ़ा-लिखा विद्वान् था। यद्यपि उसने प्रसभा (Convention) के वाद-विवादों में भाग नहीं लिया फिर भी उसके ८० वर्षों के अनुभव तथा परिपक्व योग्यता का सभी लोग लोहा मानते थे। उसकी महती प्रतिष्ठा थी, उसकी देश-सेवा विख्यात थी और वह अत्यन्त सीधा-सादा व्यक्ति था। उस प्रसभा में रॉबर्ट मॉरिस (Robert Morris) भी था जिसने अमेरिका की स्वतन्त्रता की खातिर अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया था। उस सम्मेलन में एक योग्य वकील जेम्स विल्सन (James Wilson) था जो स्कॉटलैंड (Scotland) का मूल निवासी था किन्तु जो इससे पहले काँग्रेस का भी सदस्य रह चुका था। एक सदस्य गवर्नर मॉरिस (Morris) था, जो कठोर प्रकृति का होते हुए भी बुद्धिमान था। उसकी प्रकृति का असर उसकी भाषा-शैली पर भी पड़ा था और उसकी पदावलियाँ ज्यों-की-त्यों संविधान में ले ली गई थीं। उन ५५ प्रसभा सदस्यों में कुछ नवयुवक सदस्य भी थे। एक ऐसा सदस्य जेम्स मेडिसन (James Madison) था, जो विद्वान था, राजनीति-शास्त्र का ज्ञाता था, सैनिक भी रह चुका था, और संविधानों का उसे भारी ज्ञान था। अतः संविधान की भाषा पर उसका भी भारी प्रभाव पड़ा था। एक अन्य युवक सदस्य एलेक्जेण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) था जिसके निर्देशन में प्रसभा आहूत की गई थी और जो कम उम्र का होते हुए भी उस समय का सर्वोच्च राजनीतिज्ञ था। वह चाहता था कि केन्द्रीय सरकार मजबूत हो—अंग्रेजी सरकार के नमूने की हो—किन्तु यद्यपि उसकी सभी प्रशंसा करते थे फिर भी उसकी यह बात नहीं मानी गई। फिर भी जब देश ने संविधान को स्वीकार कर लिया तो उसने उस संविधान को सफल बनाने में वाशिंगटन से भी अधिक कार्य किया।

इन्हीं आदमियों ने अमेरिका के विशाल राज्य को जन्म दिया। जेफ़रसन इन लोगों को देवता कहता था। किन्तु वे देश के ठोस और सच्चे अर्थों में अनुदार वर्गों या व्यापारिक हितों या वित्तीय हितों के प्रतिनिधि थे। वे व्यावहारिक सुधार चाहते थे ताकि अमेरिका की सरकार ऐसी सशक्त हो जो व्यापार को सुचारु रूप से संचालित कर सके, जो राष्ट्रीय ऋणों से देश को मुक्त करा सके, जो देश की कमजोर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रा व्यवस्था को सुधार सके और जो अमेरिका की नव-अर्जित स्वतन्त्रता की रक्षा की गारन्टी दे सके।

संविधान पर प्रसभा की पूरी छाप थी। वह संक्षिप्त और व्यावहारिक प्रलेख था। उसमें ५ हजार से भी कम शब्द थे। यह एक रूढ़िवादी और अनुदार-सा संविधान था जो सुरक्षा के लिए रचा गया था न कि शीघ्र फल प्राप्त करने के लिए। यह वास्तव में एक समझौतावादी संविधान था जिसमें परीक्षणों और सन्तुलनों को बहुत महत्त्व दिया गया था। कई प्रकार से यह अंग्रेजी संविधान की परम्पराओं का अनुसरण करता था। कई अर्थों में अमेरिका का संविधान मानो महान् मैग्ना कार्टा (Magna Carta) का ही संशोधित स्वरूप था अथवा महान् अधिकार-पत्र (The Bill of Rights) का उत्तराधिकारी था। इस संविधान पर उपनिवेशों के आज्ञापत्रों और राज्यों के संविधान की भी स्पष्ट छाप थी। महान् स्वतन्त्रता की घोषणा में प्रजातन्त्र और समानता आदि जिन पवित्र उद्देश्यों की घोषणा की गई थी उनका इस संविधान में अभाव था। १७७६ में मनुष्य-मात्र की समानता पर, मनुष्य मात्र के जन्मसिद्ध अधिकारों पर और मनुष्यों की प्राकृतिक पूर्णता पर बल दिया गया था। उन्होंने इंग्लैंड के तत्कालीन सम्राट् जार्ज तृतीय को अत्याचारी कहा था और राजतन्त्र को अत्याचार का प्रतीक माना था। किन्तु उनके विपरीत १७८६ के अमेरिकी संविधान के निर्माताओं ने मनुष्यों के व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों को स्वीकार कर लिया था और इस प्रकार उन्होंने प्राकृतिक विभेदों को भी स्वीकार कर लिया था। १७८७ के संविधान के निर्माता रूसो (Rousseau) के सिद्धान्त के प्रति उदासीन हो चले थे और वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि मनुष्य स्वभावतः और जन्मना ईमानदार है। वे कॉलविन (Calvin) के सिद्धान्त के अनुसार यह मानते थे कि मनुष्य अवश्य पाप और गलती करता है। वे अपने वाद-विवादों को एकान्त में करते थे[1] और पैट्रिक हैनरी (Patrick Henry) के शब्दों में "१७८७ के संविधान में राजतन्त्र की गन्ध आती थी।"

न्यू इंग्लैंड (New England) के एक प्रतिनिधि गैरी (Gerry)[2] ने कहा था, "हम सब अत्यधिक लोकतन्त्र की बीमारी के शिकार हैं।" वर्जीनिया (Virginia) के एक अन्य प्रतिनिधि मैसन (Mason) ने कहा था कि "सर्वसाधारण राष्ट्रपति का चुनाव उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार कि अंधे लोग रंगों का चुनाव कर सकते हैं।" स्वयं वाशिंगटन सोचता था कि हम मनुष्य जाति की पवित्रता पर आवश्यकता से अधिक बल दे रहे हैं। उसका विचार था कि यदि मनुष्यों को अंकुश से मुक्त कर दिया जाय तो वे अपना शासन स्वयं न चला सकेंगे। और हैमिल्टन (Hamilton) ने तो स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि "मनुष्य बुद्धियुक्त जानवर से अधिक कुछ नहीं है।"

---

१. प्रसभा के वाद-विवादों का वर्णन प्रथम बार १८४० में छापा गया।

२. गैरी (Gerry) से ही Gerrymander शब्द निकला, जिसका अर्थ है मनमाने ढंग से किसी दल के द्वारा निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संविधान

इस प्रकार अमेरिका का नया संविधान किसी सीमा तक रूढ़िवादी प्रतिक्रिया का प्रतिफल था। यद्यपि इसका निर्माण कुछ थोड़े से व्यक्तियों ने परिषद्-भवन में बैठकर किया था, फिर भी वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय और औपनिवेशिक[1] अनुभवों के आधार पर तैयार किया गया था।

संविधान के निर्माताओं के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि राज्यों के अपनी स्थानीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में बड़े प्रबल विचार थे। अतः सबसे विकट समस्या यह थी कि ऐसी सरकार कैसे बनाई जाय जो प्रभावी केन्द्रीय नियन्त्रण के साथ व्यक्तिगत राज्यों की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता को भी बनाये रखे। इसके अतिरिक्त संविधान के निर्माताओं के समक्ष यह भी समस्या थी कि छोटे राज्य स्वभावतः बड़े और समृद्ध राज्यों के प्रति ईर्ष्यालु थे और उत्तर के उद्योग-प्रधान राज्य दक्षिण के उन कृषिप्रधान राज्यों से ईर्ष्या रखते थे जो दास रखते थे।

संघात्मक विधान

संविधान-निर्माताओं ने संघात्मक राज्य की स्थापना की। संघात्मक संविधान की मुख्य विशेषता यह होती है कि केन्द्रीय सरकार और राज्यों की सरकारों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन रहता है। जिस प्रकार कि अंग्रेजी संसद् की सत्ता सभी ब्रिटिश प्रजा को मान्य है और वह राज्य की किसी भी अन्य सत्ता का प्रभाव अमान्य कर सकती है और कहा तो यहाँ तक गया है कि ब्रिटिश संसद् सभी कुछ कर सकती है—केवल पुरुष को स्त्री या किसी स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती; किन्तु उन्हीं अर्थों में अमेरिका में ऐसी कोई सर्वशक्तिमान् सत्ता नहीं है जो स्वयं सर्वोच्च विधियाँ तैयार कर सके। इसके विपरीत इस समय अमेरिका में ४९ सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न विधान-मण्डल हैं जिनमें एक-एक विधान-मण्डल तो प्रत्येक राज्य में है और एक विधान-मण्डल समस्त अमेरिकी संघ के लिए है। १७८७ में संविधान ने १४ विधानमण्डलों की व्यवस्था की थी। संघात्मक शासन में प्रत्येक विधानमण्डल अपने अधिकार-क्षेत्र में स्वतन्त्र और सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न होता है, किन्तु अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर वह प्रभावहीन हो जाता है। केन्द्रीय या संघीय सरकार ही विदेशों के साथ सम्बन्ध चलाती है, वही कूटनीतिक सम्बन्धों का निर्वहन करती है, वही विदेशों के साथ युद्ध की घोषणा या सन्धियाँ करती है। वही सारे देश की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार समस्त व्यक्तिगत राज्यों के हितों की देख-भाल का दायित्व संघीय या केन्द्रीय सरकार के ऊपर रहता है और जहाँ एक राज्य के हित दूसरे राज्य के हितों से टकराते हैं वहाँ भी संघीय सरकार का प्रभाव माना जाता है। संक्षेप में, जहाँ सभी राज्यों के एवं समस्त प्रजा के हितों का प्रश्न आता है वहाँ केन्द्रीय सत्ता का प्रभाव सर्वोपरि रहता है। किन्तु यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार या संघ सरकार

---

१. श्री ग्लैडस्टन (Mr. Gladstone) ने अमेरिका के संविधान की तारीफ़ करते हुए कहा था कि "वह मनुष्य के श्रेष्ठ दिमाग़ और पवित्र उद्देश्य का जात है।" किन्तु ऐसी खुशामदी तारीफ़ के बावजूद यह संविधाग रूढ़िवादी और औपनिवेशिक-सा था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी राज्यों के ऊपर निष्पक्ष राजा के समान या निष्पक्ष सरपंच (Arbiter) के समान शासन करती है।

केन्द्रीय या संघ सरकार को मुख्यत: १८ शक्तियाँ[1] दी गई हैं। वे शक्तियाँ एक प्रकार से राज्य सरकारों की शक्तियों को सीमित करती हैं, ताकि राज्य अपनी वैयक्तिक इच्छा से युद्ध या सन्धि न कर सकें, वे अपनी-अपनी प्राइवेट सेना न रख सकें, न मुद्रा संचालित कर सकें। इस प्रकार राज्य सरकारों के ऊपर संघ सरकार की शक्तियाँ अंकुश रखती हैं जिससे वे सरकार के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण न कर सकें।[2]

अन्य प्रत्येक मामले में हर एक एकक राज्य पूर्ण स्वतन्त्र होता है। प्रत्येक

---

१. केन्द्रीय सरकार की शक्तियों के लिए अमेरिका के संविधान को पढ़िये। अमेरिका के इतिहास की मुख्य पुस्तकों में भी अमेरिका का संविधान दिया गया है।

२. प्राय: एरिस्टोटिल (Aristotle) के आधार पर राज्यों के तीन प्रकार माने गये हैं—राजतन्त्र (Monarchies), अभिजाततन्त्र (Aristocracies), और लोकतन्त्र (Democracies)। किन्तु आजकल राज्यों के केवल दो प्रकार माने जाते हैं—कुछ राज्य एकात्मक (Single or Unitary) राज्य होते हैं और कुछ संग्रथित या संघात्मक राज्य (Composite or Federal States) होते हैं। इस संदर्भ में संघात्मक शासन की कतिपय मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालना अनुचित न होगा, क्योंकि संघात्मक शासन-व्यवस्था संसार की अनेक राजनीतिक बीमारियों का एक मात्र इलाज है।

(१) संघात्मक शासन-व्यवस्था ऐसे राज्यों के लिए हितकारी होगी जो अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बनाए रखना चाहते हैं किन्तु जिनके कुछ ऐसे सामान्य हित भी हों जिनकी रक्षा के लिए वे सब एक ढीले संघात्मक बन्धन में बंधने के लिए भी तैयार हों।

(२) संघीय सरकार में शक्तियों का या प्रभुसत्ता का केन्द्रीय सरकार और राज्यों की सरकारों के बीच स्पष्ट विभाजन रहता है। इसलिए किसी राज्य के विधान-मण्डलों को देखकर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि वह एकात्मक राज्य (Unitary State) है अथवा संघात्मक राज्य (Federal State)। यदि किसी राज्य में केवल एक सर्वोच्च विधान निर्मात्री निकाय है तो उसे एकात्मक राज्य कहेंगे। किन्तु यदि उसमें एक से अधिक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न विधानमण्डल हैं तो उसे संघात्मक राज्य कहेंगे।

(३) केवल आन्तरिक शासन-प्रबन्ध से सम्बन्धित विषयों सम्बन्धी शक्तियों का ही विभाजन हो सकता है। विदेशों से सम्बन्धित सारा शासन-प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र का विषय होता है। इसलिए विदेशों के साथ युद्ध और सन्धि करने का अधिकार केवल संघीय सरकार को होता है।

(४) ऐसे समस्त विषय जिनका सम्बन्ध समस्त देश की समृद्धि से हो, जैसे व्यापार या ऐसा विषय, जिसका सम्बन्ध सभी लोगों के अधिकारों से हो, जैसे कापीराइट आदि, ऐसे विषय केन्द्रीय सरकार या संघीय सरकार की शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

(५) कुछ अवशिष्ट (residuary) शक्तियाँ भी रहती हैं। यदि शिथिल संघ हुआ तो वे अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दे दी जाती हैं, और यदि कठोर प्रकृति का संघ है तो वे शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के पास ही रहेंगी। शिथिल संघ का अर्थ ऐसे संघ से है जहाँ व्यक्तिगत या एकक राज्य अपनी स्वतन्त्रता को संघ की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। कठोर संघ इसके विपरीत होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य अपने मन की शासन-व्यवस्था रखने में स्वतन्त्र होता है, वह चाहे तो एक सदन का विधानमण्डल रखे, चाहे तो दो सदनों वाला विधानमण्डल रखे, बशर्ते कि वह सामान्यतः गणतन्त्र जैसा राज्य बना रहे। यह राज्य के अधिकार की बात है कि वह अल्पवयस्कों या विदेशियों तक को मताधिकार दे सकता है, और जब तक कोई राज्य गोरे[1] और काले के बीच अथवा स्त्रियों[2] और पुरुषों के बीच मताधिकार सम्बन्धी कोई विभेद नहीं करता, वह चाहे तो पागलों को मताधिकार दे सकता है या करोड़पतियों तक को मताधिकार से वंचित कर सकता है। राज्य को अधिकार है कि वह किसी धर्म को भी राज्य के धर्म के रूप में स्वीकार करे। यदि राज्य चाहे तो प्रत्येक राज्य के कर्मचारी को बाध्य कर सकता है कि वह बाइबिल के प्रथम खण्ड पर विश्वास लावे। कारण यह है कि केवल संघीय या केन्द्रीय सरकार ने ही धर्म और विश्वास के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है। राज्य को यहाँ तक स्वतन्त्रता है कि वह विवाहों पर या मोटरकारों के प्रचलन पर पाबन्दी लगा सकता है। राज्य चाहे तो खानों (Mines) और बच्चों तक का राष्ट्रीयकरण कर सकता है। अमेरिका के नागरिकों को जितनी विधियों का पालन करना पड़ता है उनमें से प्रायः ९/१० राज्यों की विधियाँ हैं। इंग्लैण्ड में १९ वीं शताब्दी में जितने सामाजिक विषयों पर मतभेद चला, जैसे संसद् के सुधार सम्बन्धी प्रश्न अथवा स्त्रियों को मताधिकार दे देने का प्रश्न, अथवा दरिद्र विधि (Poor Laws), अथवा स्थानीय संस्थाओं का सुधार, अथवा चर्च का विघटन अथवा शिक्षा, तलाक, बेरोजगारी और उद्योगों आदि सम्बन्धी विधियाँ—अमेरिका में उनमें से अधिकतर प्रश्न राज्यों के अधिकार-क्षेत्र के प्रश्न बनते और वे संघीय अधिकार क्षेत्र में कभी न आते। "वास्तव में अमेरिका में आम तौर पर सभी विधियाँ राज्यों की विधियाँ हैं, संघीय विधियाँ तो केवल अपवाद मात्र हैं।" यही कारण है कि अमेरिका में इन सब प्रश्नों पर भारी विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। और यदि कहीं अमेरिका के सभी राज्यों में अंग्रेजी सामान्य विधि (English Common Law) का समान रूप से व्यापक प्रचलन न होता तो उक्त विभिन्नता और भी अधिक खटकती।

किन्तु अमेरिका के संविधान की केवल यही विशेषताएँ नहीं हैं कि उस देश

---

(६) अनुभव के आधार पर यह वांछनीय है यद्यपि अनिवार्य नहीं कि केन्द्रीय सरकार देश के समस्त नागरिकों से करारोपण द्वारा, न्यायालयों द्वारा तथा सेना द्वारा सीधा सम्पर्क बनाये रखे। मुख्यतः इसी विशेषता के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.), कनाडा (Canada), ऑस्ट्रेलिया (Australia), बिस्मार्क का जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड (Switzerland) आदि कतिपय संघात्मक देश सफल हो सके; किन्तु उक्त विशेषता के अभाव में प्रारम्भिक काल के कई संघ असफल हो गये थे।

(७) संघात्मक संविधान आवश्यकतः लिखित संविधान होना चाहिए। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि लिखित संविधान कठोर होता है और उसके संशोधन की प्रक्रिया जटिल होती है।

१. १८७० में पास किए गए १५ वें संशोधन द्वारा।

२. १९२० में पास किए गए १७ वें संशोधन द्वारा, स्त्रियों को केवल लिंग-भेद के कारण मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघ शासन का स्वरूप

में केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है अथवा वहाँ के राज्यों की सरकारें केन्द्र के नियन्त्रण से काफी स्वतन्त्र हैं। आंशिक संघों का भी तो संसार में काफी समय से प्रचलन रहा है और १७७६ के अमेरिकी संविधान अथवा परिसंघ के अनुच्छेदों (Articles of Confederation) और अमेरिका के नये संविधान में केवल यही अन्तर नहीं था कि केन्द्रीय सरकार और राज्यों के अधिकार-क्षेत्र स्वतः स्पष्ट और सीमित थे। वास्तव में फिलाडेल्फिया में संविधान के निर्माताओं ने जिस नूतन संविधान का निर्माण किया, उसकी मुख्य विशेषता संघ शासन के स्वरूप में निहित थी। नये संविधान ने केन्द्रीय सरकार के कर्त्तव्यों का इस प्रकार निरूपण किया कि वह अपने पूर्वजों से श्रेष्ठ संविधान स्वीकार किया गया।

१७८७ के संविधान से पूर्व जितने परिसंघों (Confederations)[1] का निर्माण हुआ था उनमें केन्द्र में केवल एक सलाह देने वाली समिति या परिषद् (Advisory or Deliberative Council) की स्थापना होती थी, जिसमें कभी-कभी समितियाँ या उप-समितियाँ भी रहती थीं। किन्तु उन प्रारम्भिक परिसंघों में केन्द्र में ऐसी कार्यपालिका शक्ति कभी नहीं रहती थी जिसका नियन्त्रण एकक राज्यों के ऊपर भी रहता हो। प्रारम्भिक परिसंघों और नये अमेरिकी संविधान में मुख्य अन्तर इसी बात का था।

संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय सरकार उसी प्रकार की पूर्ण शक्तिशाली सरकार है जिस प्रकार की सरकार किसी एकात्मक राज्य में हो सकती है। अमेरिका की संघीय सरकार का एक द्विसदनात्मक विधानमण्डल है, जो सारे देश के लिए विधियों का निर्माण करता है, एक कार्यपालिका है जो राष्ट्रपति में निहित है और उसका अपना सर्वोच्च न्यायालय है जो ऐसे दोषों की छानबीन करता है जो केन्द्रीय या संघीय सरकार के विरुद्ध किये जाते हैं। अमेरिका की शासन-व्यवस्था प्रायः ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में मिलती-जुलती है, अन्तर केवल यह है कि अमेरिका की कार्यपालिका अर्थात् अमेरिका का राष्ट्रपति, अमेरिका के विधानमण्डल के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लोकसभा के बहुमत के प्रति उत्तरदायी रहता है। इस अन्तर का मुख्य कारण यह था कि अमेरिका में माँण्टेस्क्यू (Montesquieu) के सिद्धान्तों के प्रति आदर था, जिसने भ्रमवश यह प्रतिपादित किया था कि इंग्लैण्ड में नागरिकों की स्वतन्त्रता का आधार यह था कि वहाँ विधानमण्डल और कार्यपालिका एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हैं।

संघात्मक संविधान की क्रियान्विति का विस्तृत वर्णन करना कठिन होगा। इसलिए उसकी मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन ही किया जाएगा।

---

१. जिन परिसंघों में केन्द्र में वास्तविक कार्यपालिका शक्ति का अभाव रहता है, उन्हें संघ के बजाय परिसंघ कहना अधिक उचित होगा। संघात्मक राज्य केवल उन्हीं राज्यों को कहना चाहिए जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका की-सी वास्तविक शक्तियों वाली केन्द्रीय कार्यपालिका सत्ता रहती है। जर्मन भाषा में दो स्पष्ट शब्द हैं जिनके द्वारा उक्त भेद स्वतः स्पष्ट रहता है। वे हैं स्टाटेनबन्द (*Staatenbund*) और बुन्देस्टाट (*Bundestaat*)।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायपालिका

संघीय संविधान में न्यायपालिका ही संघीय विधियों की व्याख्या करती है, संविधान का निर्वचन करती है और वही ऐसे सब विवादों का अन्तिम निर्णय देती है जिनमें केन्द्रीय सरकार वादी या प्रतिवादी होती है।

कार्यपालिका

अमेरिका का राष्ट्रपति किसी सीमा तक १८वीं शताब्दी के अंग्रेजी सम्राट का, १९वीं शताब्दी के ब्रिटिश प्रधान मन्त्री का और जर्मन सम्राट का मिला-जुला-सा स्वरूप है। राष्ट्रपति आनुवंशिक उत्तराधिकार के दोषों से मुक्त है, वह राजत्व के दैवी गुणों से भी मुक्त है और वह गणराज्य की सी पोशाक पहिने रहता है। उसको विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं। सर्वसाधारण द्वारा वह चार वर्षों के लिए निर्वाचित होता है और वह उन्हीं के प्रति उत्तरदायी होता है।[1] संविधान के इक्कीसवें संशोधन (१९५१) के अनुसार राष्ट्रपति दो बार से अधिक अपने पद के लिए निर्वाचित नहीं हो सकता। उसका वेतन इतना थोड़ा है कि वह न तो शान से रह सकता है, और न वह विधानमण्डल को प्रभावित कर सकता है। उसको यह भी अधिकार नहीं है कि वह उपाधियों आदि का लालच देकर लोगों को अधिक संख्या में अपनी ओर कर सके। फिर भी युद्धकाल में अथवा आन्तरिक उपद्रवों की अवस्था में अमेरिका के राष्ट्रपति की शक्तियाँ इतनी विशाल हो जाती हैं कि वह प्रायः अधिनायक ही बन बैठता है।

अमेरिका का विधानमण्डल द्विसदनात्मक है। यह अत्यन्त रोचक प्रयोग है

---

१. १७८९ में राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति को बहुत ही अधिक सराहा गया था, किन्तु सत्य यह है कि राष्ट्रपति का चुनाव संविधान के निर्माताओं की इच्छा के बिलकुल विपरीत हो रहा है। संविधान में राष्ट्रपति के चुनाव की जो प्रक्रिया दी गई है, उसके अनुसार प्रत्येक राज्य अपने विधानमण्डल के निर्देश के अनुसार कुछ निर्वाचक नियुक्त करता है। इन निर्वाचकों की संख्या उतनी ही होगी जितनी संख्या में उस राज्य को काँग्रेस के दोनों सदनों—सीनेटों और प्रतिनिधि सभा—में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। प्रत्येक निर्वाचक से आशा की जाती है कि वह स्व-विवेक से राष्ट्रपति के लिए अपना वोट दे। किन्तु व्यवहारतः राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय नीति के अनुसार होता है। प्रत्येक दल को पता रहता है कि राष्ट्रपति के निर्वाचकमण्डल में कौन व्यक्ति है क्योंकि स्वयं इन निर्वाचकों का चुनाव भी दलगत राजनीति के आधार पर ही होता है। इस प्रकार वास्तव में राष्ट्रपति का चुनाव तो नवम्बर में ही हो लेता है जबकि राष्ट्रपति के निर्वाचनमण्डल का चुनाव पूर्ण हो चुकता है; यद्यपि देखने में राष्ट्रपति का चुनाव कुछ दिन पश्चात् जनवरी में घोषित होता है और राष्ट्रपति की पद-प्रतिष्ठा मार्च में होती है। इसके कारण कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो गए हैं, जिनका किसी सीमा तक १९३३ के बीसवें संशोधन द्वारा कुछ समाधान हो गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि चूँकि निर्वाचन-क्षेत्र बिना अल्पमतों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिये ही स्थापित कर दिए गए हैं, अतः कभी-कभी थोड़े वोटों के आधार पर भी राष्ट्रपति का निर्वाचन हो जाता है। उदाहरणार्थ १८७६ में राष्ट्रपति हेज (Hayes) को टिल्डेन (Tilden) की अपेक्षा २,५२,००० मत कम प्राप्त हुए थे और १८८८ में राष्ट्रपति हैरीसन (Harrison) को क्लीवलैंड (Cleveland) की अपेक्षा ९५,५३४ मत कम प्राप्त हुए थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे आधुनिक संघात्मक शासन के लिए एक अनोखी देन समझा जाता है। बहुत से विद्वान् प्रश्न करते हैं कि एक ही राज्य में द्विसदनात्मक विधानमण्डल की क्या आवश्यकता है। किन्तु सत्य यह है कि संघात्मक राज्य में ही तो द्विसदनात्मक विधानमण्डल की अतीव और वास्तविक आवश्यकता है। कारण यह है कि किसी संघात्मक राज्य में उसके विधानमण्डल के दोनों सदन उस राज्य की एकता और विभिन्नता को एक ही साथ प्रकट करते हैं। इस प्रकार जहाँ एक ओर संघात्मक राज्य एक संयुक्त राज्य होता है, वहाँ वह दूसरी ओर कई स्वतन्त्र और विलग राज्यों का समूह भी है। अमेरिका के सीनेट (Senate) अथवा उच्च सदन में प्रत्येक राज्य के दो सदस्य होते हैं। इस प्रकार वे समान स्थिति वाले और पूर्ण प्रभुराज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। कारण यह था कि छोटे राज्य बड़े राज्यों के प्रति ईर्ष्यालु थे और उन्होंने इस बात पर आग्रह किया कि चाहे कोई राज्य छोटा हो या बड़ा, सभी राज्यों को सीनेट में समान प्रतिनिधित्व दिया जाय। इसके विपरीत प्रतिनिधि सदन अथवा निम्न सदन (House of Representatives) में समस्त संघ का प्रतिनिधित्व रहता है। प्रतिनिधि सदन के लिए जो निर्वाचन होता है उसमें समस्त देश जनसंख्या के आधार पर एक इकाई के रूप में भाग लेता है। इस प्रकार प्रतिनिधि सदन में प्रत्येक राज्य को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है; किन्तु फिर भी इतना अवश्य मान लिया गया है कि प्रत्येक राज्य को कम से कम एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार अवश्य होगा, चाहे वह आकार में कितना भी छोटा हो। न्यूयार्क (New York) राज्य, सीनेट में तो केवल दो प्रतिनिधि ही भेजता है, किन्तु प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) के लिए ४३ प्रतिनिधि निर्वाचित करता है। इसके विपरीत डीलावेयर (Delaware) राज्य इतना छोटा है कि वह प्रतिनिधि सदन में केवल एक प्रतिनिधि ही भेज पाता है, किन्तु सीनेट में उसको भी दो स्थान प्राप्त हैं।

विधानमण्डल

किन्तु अब उन राज्यों के प्रतिनिधित्व की समस्या थी जिनमें काले दासों की संख्या अत्यधिक थी। प्रत्येक गुलाम को मताधिकार देने का तो प्रश्न ही नहीं था, किन्तु वास्तविक समस्या यह थी कि क्या गुलामों को भी प्रतिनिधित्व देना और मताधिकार देना आवश्यक था? दक्षिणी राज्यों के लिए यह प्रश्न जिन्दगी और मौत का प्रश्न था। अन्त में यह तय हुआ कि समस्त गुलाम प्रजा की ३/५ जनसंख्या को फिलहाल मताधिकार प्रदान किया जाय। यह एक समझौता मात्र था, जिसका औचित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। केवल इस समझौते से यह लाभ हुआ कि दक्षिणी कैरोलिना (South Carolina) के दोनों राज्य भी संघ में सम्मिलित हो गए। किन्तु इस समझौते द्वारा दक्षिणी राज्यों की गुलाम समस्या कुछ समय के लिए केवल टल गई क्योंकि उस समय संघ इस स्थिति में नहीं था कि उस कठिनाई का सामना कर सकता। किन्तु यह समझौता स्थायी नहीं था। इसने केवल उक्त समस्या को ७० वर्षों के लिए टाल दिया।

अमेरिका के संविधान की एक अन्य विशेषता भी है। यह विशेषता शक्तियों के वितरण में और केन्द्रीय सरकार की व्यापक शक्तियों में निहित है। यह आधुनिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघवाद का मौलिक सिद्धान्त बन गया है, और यह स्थायी-सा दिखाई देता है। आधुनिक संघों और उन प्रारम्भिक संघों के बीच जो अब प्रायः समाप्त हो चुके हैं, यह विशेषता मानो स्पष्ट विभाजन-रेखा खींचती है। केन्द्रीय या संघीय सरकार को जो शक्तियाँ प्राप्त हैं, उनके आधार पर वह न केवल एकक राज्यों को प्रभावित करती है वरन् वह राज्यों के नागरिकों को भी प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है। जिस प्रकार महान् विजेता विलियम (William, the Conqueror) ने अपने अधीन राजाओं की प्रजा से माँग की थी कि वे सीधे उसके प्रति निष्ठावान होने की शपथ लें, उसी प्रकार केन्द्रीय या संघीय सरकार भी अपने एकक राज्यों की प्रजा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाए रखती है। प्रतिनिधि भवन में प्रजा के जो प्रतिनिधि आते हैं, उनके साथ संघीय सरकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता ही है। संघीय सरकार ही राज्यों की प्रजा को संघीय सेना में भर्ती करती है। संघीय राज्य ही संघीय न्यायालयों में प्रजा के मुकद्दमों का निर्णय करता है। संघीय सरकार प्रजा के ऊपर प्रत्यक्ष कर लगाती है और १९१३ के संशोधन के बाद तो संघीय सरकार के अधिकारी प्रत्यक्षतः सारी प्रजा के ऊपर कर लगाते हैं; और यदि कोई नागरिक करों के सम्बन्ध में चोरी करता है तो वें संघीय अधिकारी ही उस पर मुकदमे चलाते हैं। केन्द्रीय सरकार ये सब कृत्य खुद करती है और इनके सम्बन्ध में उसे राज्य सरकारों से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार अमेरिका का कोई भी नागरिक संघीय सरकार से उतना ही प्रभावित होता है और उसके सम्पर्क में उतना ही आता है, जितना कि किसी नगर का निवासी अपनी काउण्टी के शेरिफों (Sheriffs) या अपने नगर के कान्स्टेबिलों के निकट सम्पर्क में आने पर मजबूर है।

केन्द्रीय सरकार का देश के नागरिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध

अमेरिकी संविधान के आलोचकों की भी कमी नहीं है। अमेरिका की न्यायपालिका को अत्यधिक शक्ति दे दी गई है क्योंकि वही संविधान की अन्तिम निर्वाचक है। लिखित संविधान स्वभावतः कठोर होता है और चूँकि संविधान की धाराओं को किसी विशेष समुदाय या राज्यों के समुदाय के हित में नहीं लिखा गया था अतः संविधान की किसी धारा का संशोधन देर-तलब और कठिन होता है। यद्यपि अभी तक अमेरिका के संविधान में १७०० संशोधनों के सुझाव आ चुके हैं, परन्तु अभी तक केवल २१ संशोधन ही पास किये जा सके हैं,[1] जिनमें से १२ संशोधन तो संविधान स्वीकृत होने के प्रथम पाच वर्षों में पास करने पड़े थे। इस प्रकार अमेरिका के १५० वर्षों के संवैधानिक इतिहास में केवल ९ संवैधानिक संशोधन स्वीकृत हुए हैं; और यद्यपि अमेरिका में कई बार राजनीतिक संकट उपस्थित हुए फिर भी उन संकटों का अमेरिका के संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

अमेरिका के संविधान के दोष

किन्तु ग्रेट ब्रिटेन के संविधान की अलिखित परम्पराओं के समान ही अमेरिका

संविधान के संशोधन

१. १७९१—संशोधन नं० १—१० तक। उक्त संशोधन उन प्रस्तावों के आधार पर किये गये थे जिन्हें संविधान की स्वीकृति के समय मान लिया गया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संविधान के साथ भी अनेक अलिखित परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं। अमेरिका के संविधान का भी व्यवहारों, कांग्रेस द्वारा पारित विधियों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के द्वारा विस्तार हुआ है।[1] प्रत्येक संविधान लचीला होना ही चाहिए और अमेरिका के संविधान का लचीलापन सिद्ध हो चुका है क्योंकि यह केवल ४० लाख व्यक्तियों के लिए बना था किन्तु वही १० करोड़ की आबादी के लिये भी उतना ही उपयुक्त है। यह संविधान उस सारे महाद्वीप की आवश्यकताओं के लिए सक्षम है जो अतलान्तक और प्रशान्त महासागरों को मिलाता है और जो कनाडा से लेकर मैक्सिको की खाड़ी तक के विस्तृत भूभाग में स्थित है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया है, त्यों-त्यों अमेरिका का संघ भी सुदृढ़तर ही हुआ है। इसमें भावुकताओं और समागमों ने भी योग दिया है और किसी सीमा तक केन्द्रीय सरकार द्वारा

इन संशोधनों का सम्बन्ध व्यक्ति की भाषण सम्बन्धी स्वतन्त्रता, समाचारपत्रों और धर्म की स्वतन्त्रता से था। इस प्रकार उक्त संशोधनों को अमेरिका की स्वतन्त्रता का अधिकार-पत्र कहा जाता है।

१७९४—संशोधन नं० ११-१२। इन संशोधनों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के संविधान के निर्वचन को अमान्य कर दिया गया था और राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति में कुछ सुधार किये गये थे।

१८६८—संशोधन नं० १३
१८६९— ,, १४ } इस संशोधनों द्वारा गुलाम प्रथा के अन्त की ओर पग बढ़ाया गया था और काले हब्शियों
१८७०— ,, १५ } को कुछ मताधिकार दिये गये थे।

१९१३—संशोधन नं० १६ और १७ द्वारा कांग्रेस को अधिकार दिया गया कि वह आय कर लगा सकेगी और सीनेट (Senate) के लिए होने वाले निर्वाचनों में कुछ हेर-फेर कर सकेगी।

१९१९—संशोधन नं० १८ द्वारा एल्कोहाल (Alcohol) युक्त शराबों की बिक्री पर कुछ पाबन्दी लगाई गई।

१९२०—संशोधन नं० १९ द्वारा निर्णय किया गया कि लिंग-भेद के कारण स्त्रियों को मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकेगा।

१९३३—संशोधन नं० २० द्वारा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति की पद-प्रतिष्ठापन की तिथियों को बढ़ा दिया गया तथा उक्त संशोधनों द्वारा कांग्रेस के निर्गामि-सदस्य-सत्र (Lame duck Session) को बन्द कर दिया गया।

१९५१—२१वें संशोधन द्वारा १८वें संशोधन को समाप्त कर दिया गया।

१. अमेरिका के शासन में अनेक परम्पराओं और प्रथाओं ने भी घर बना लिया है जिनका संवैधानिक विधि से कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मन्त्रियों की सीनेट द्वारा आवश्यक स्वीकृति, संघीय कार्यालयों में किसी राज्य में नियुक्तियों के सम्बन्ध में सीनेट सदस्यों का नियन्त्रण, कांग्रेस के दोनों सदनों का समितियों के रूप में विभाजन, उक्त समितियों के काम तथा स्पीकर का महत्त्व जो उक्त समितियों की रचना करता है, काकस (Caucus) नामक दलीय यन्त्र की नियुक्ति, स्पॉइल्स प्रथा (Spoils System) अर्थात् प्रत्येक राष्ट्रपति द्वारा अपने निर्वाचन के पश्चात् संघीय पदों पर अपने दल के समर्थकों की नियुक्ति, ऐसा नियम जिसके द्वारा कांग्रेस के सदस्य का उस प्रान्त में रहना आवश्यक है जिससे वह निर्वाचित हुआ हो, आदि-आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियन्त्रित रेलों और तार-व्यवस्था के कारण भी अमेरिका का संघ पुष्ट हुआ है।

अमेरिका के आधुनिक संविधान की, जिसे फ़िलाडेल्फ़िया की संविधान प्रसभा (Convention of Philadelphia) ने स्वीकार किया था, यही मुख्य विशेषताएँ हैं। किन्तु उक्त संविधान प्रसभा को केवल यही अधिकार दिया गया था कि वह संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत करे।

राज्यों द्वारा स्वीकृति

उक्त संविधान तब तक प्रभावी नहीं हो सकता था जब तक कि कम-से-कम नौ एकक राज्य उसे स्वीकार न कर लें। जिस समय राज्यों द्वारा उक्त संविधान की स्वीकृति का समय आया तो मानो विरोध का तूफान ही उपस्थित हो गया। हजारों-लाखों जलसे हुए, व्याख्यान और वाद-विवाद हुए और इश्तहार-बाजी हुई। इस अवसर पर जिस उत्कृष्ट विरोधपूर्ण साहित्य का सृजन हुआ वह अंग्रेजी प्यूरिटन आन्दोलन की याद ताजा कर देने वाला है। ऐसा प्रतीत होता था कि ऐसे अल्पवयस्क राज्य में आदर्शों और श्रेष्ठ भावों की मानो बाढ़-सी आ गई है। उन्हीं दिनों हैमिल्टन (Hamilton), मैडिसन (Madison) और (Jay) ने न्यूयार्क (New York) में एक श्रेष्ठ लेखमाला प्रारम्भ की। आज तक संविधान के गुण-दोषों पर उनसे अच्छी टीकाएँ देखने को नहीं मिली हैं। इन लेखों का तत्काल प्रभाव यह हुआ कि न्यूयार्क नामक राज्य संघ के पक्ष में हो गया। न्यूयार्क की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उपरोक्त तीनों विद्वानों के जो लेख छपे थे उनको बाद में फ़ेडेरेलिस्ट (Federalist) नाम की पुस्तिका में संग्रहीत कर लिया गया। आज भी संविधान के सम्बन्ध में फ़ेडेरेलिस्ट सर्वश्रेष्ठ टीका और संहिता मानी जाती है।

बड़ी बाधाओं और मान-मनौअल के बाद न्यू हैम्पशायर (New Hampshire) और वर्जीनिया (Virginia) नामक राज्यों ने संविधान को स्वीकार करते हुए संघ में प्रवेश करने की स्वीकृति दी। १४ जुलाई, १७८८ को पेनसिल्वानिया पैकेट (Pennsylvania Packet) नामक समाचार-पत्र ने उक्त घोषणा की। इस प्रकार संघ में प्रवेश करने वाले राज्यों की संख्या १० हो गई और संघीय संविधानरूपी जलपोत मानो तूफानों से बचकर बन्दरगाह पहुँचा। इस संघीय संविधानरूपी जल-पोत का कमांडर था अक्षय संघ (*Perpetual Union*)। उस पोत में जो गौरव-पूर्ण यात्री अमेरिका में उतरे, वे थे—उन्नत व्यापार, सार्वजनिक विश्वास, पूर्ण निष्ठा और पूर्ण न्याय। अमेरिका में संघ बन ही गया। १३ उन्मुक्त उपनिवेशों ने जो कभी गुलाम थे, अपार कठिनाइयों और बाधाओं को पार करके आशाओं और आराम के युग में प्रवेश किया, जो उनके अपने जीवन के नये इतिहास का प्रथम पाठ था।

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति पद के लिए सभी की निगाहों में एक ही उपयुक्त व्यक्ति था। वही व्यक्ति सर्वसम्मति से प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। आधुनिक काल में शायद ही किसी अन्य व्यक्ति ने अपने सभी देश-वासियों का मन इस सीमा तक मोह लिया होगा जितना कि जार्ज वाशिंगटन ने मोह लिया था। उसका व्यक्तित्व मानो नैतिक सिद्धान्तों और सार्वजनिक गुणों का भण्डार था। जार्ज वाशिंगटन एक व्यक्ति नहीं था वह तो

जार्ज वाशिंगटन, प्रथम राष्ट्रपति (१७८९-१७९७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् गौरव और संतुलित अनुशासन का मानो अवतार था। उसको न तो कोई वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा थी और न उसमें कृत्रिमता थी। वह न तो बहुत पढ़ा-लिखा था और न अत्यधिक बुद्धिमान् था और अपने जीवन के अन्त तक उसके हृदय में कृषि-कर्म के प्रति प्रेम बना रहा।

फिर भी हैनरी ली (Henry Lee) के शब्दों में वह "शान्ति में प्रथम, युद्ध में प्रथम और अपने देशवासियों के हृदय में प्रथम था।" जिस समय जार्ज वाशिंगटन की मृत्यु हुई थी उस समय ब्रिटिश जहाजों ने अपने झण्डों को आधा गिरा दिया और नैपोलियन ने वाशिंगटन की याद में एक प्रसिद्ध यादगार का निर्माण कराया। सत्य यह है कि वाशिंगटन की सत्यनिष्ठा, सार्वजनिक सेवा आदि गुणों के कारण ही अमेरिका का नवजात गणराज्य प्रतिष्ठा और गौरव के योग्य बना था। अमेरिका का संघ और अमेरिका की स्वतन्त्रता केवल वाशिंगटन के प्रयत्नों के फल थे। उसको सच्चे अर्थों में ही अपने देश का जनक कहा गया है।

वह जॉन हैम्पडन (John Hampden) के समान देशभक्त और चरित्रवान् व्यक्ति था। अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध उसने डटकर युद्ध किया था। यद्यपि उसके पास नाम मात्र की सेना थी फिर भी उसने ब्रिटिश सेनाओं का कड़ा मुकाबला किया। उसके अदम्य साहस के आगे ब्रिटिश साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उसकी सेना अजेय नहीं थी क्योंकि कई युद्धों में उसे भी हटना पड़ा था। परन्तु उसकी विजयों का रहस्य यह था कि वह अपार धैर्यवान्, अपार आत्म-संयमी और अदम्य उत्साह और साहस का व्यक्ति था। उसके हृदय में देश-सेवा और परोपकार के भाव हिलोरें ले रहे थे। वह निश्चित उद्देश्यों पर निष्ठापूर्वक आचरण करता था। इन्हीं मानवीय गुणों के कारण तो वह नंगी-भूखी सेना के अनुशासनहीन सैनिकों को वश में रख सका और वे सैनिक अपार कष्ट सहन करते हुए, थोड़े समय के वेतन क्रम में गोली, बारूद, कपड़े और रसद की कमी के बावजूद डटकर जमे रहे यद्यपि देश का जनमत उनके पीछे नहीं था और वे हर प्रकार के देशद्रोहों के और षड्यन्त्रों के शिकार थे। वाशिंगटन ने कहा था—"यदि आवश्यकता आ पड़े तो हमको पीछे हटने में भी कोई संकोच नहीं होगा।" ऐसा त्यागी और निष्कपट व्यक्ति अपने शत्रु से कभी भी हार नहीं सकता।

उसका राष्ट्रपति पद स्वीकार कर लेना अमेरिका का भाग्यवर्द्धक था। उसके असीम सम्मान ने, व्यक्तिगत प्रसिद्धि ने, अजेय सच्चाई ने और अपने देश की आवश्यकताओं के सामने अपने को बिलकुल भूल जाने ने, उसके अत्यन्त योग्य और विचारशील मस्तिष्क ने, असीम धैर्य और दयापूर्ण बर्ताव ने, धार्मिक प्रवृत्ति और कठोर विश्वास ने, अनुशासन-प्रेम और व्यवस्था के प्रति आदर ने और अपार संयम ने उसे अमेरिका का नियति पुरुष बना दिया था।

जार्ज वाशिंगटन की निःस्पृह निःस्वार्थता अमेरिका के लिए वरदान सिद्ध हुई। अपनी ईमानदारी और सरलता के कारण वह इतने उच्च पद पर होते हुए भी कभी अप्रिय नहीं हुआ। वह अपने युग के लोगों से बहुत आगे नहीं था। वह जमीनों और अन्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता था और यद्यपि उसने अन्य लोगों के साथ मिल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गुलामों अथवा दासों की मुक्ति का प्रयत्न किया, परन्तु जिस समय उसकी मृत्यु हुई उस समय उसके अधिकार में कितने ही गुलाम थे। वह स्वयं योग्य राजनीतिज्ञ नहीं था। सार्वजनिक प्रशासन में वह सदैव अपने मित्र और सहयोगी एलेक्जेण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) की राय पर चलता था। परन्तु इस वर्जीनिया के देहाती शरीफ़ राष्ट्रपति में पवित्र नेकनीयती थी, राजनीतिक दूरदर्शिता थी, प्रकाण्ड अनुभव था और ब्रिटिश पुरखों की योग्य प्रशासन-निपुणता थी।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जिस समय वाशिंगटन ने राष्ट्रपति पद सँभाला उस समय नए राज्य के सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं। राज्य के पास न तो धन था, न राष्ट्रपति के लिए निवास-स्थान था, न काँग्रेस की बैठकों के लिए उपयुक्त भवन था। न तो उस समय संघ सरकार की उचित व्यवस्था थी, न संगठित सेना थी। राष्ट्रपति को अपने मन्त्रिमण्डल और न्यायाधीशों की नियुक्ति करनी थी। किन्तु देश के योग्य व्यक्ति उक्त पदों को स्वीकार करने में हिचकते थे क्योंकि उक्त पदों का वेतन अत्यन्त कम था। विभागीय क्रियान्विति की जटिलता भी एक कठिनाई थी क्योंकि जितने लोगों ने विभागों को सँभाला था उनमें से किसी को प्रशासनिक अनुभव नहीं था। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि संविधान की क्रियान्विति करनी थी और उसकी व्यावहारिक क्रियान्विति की परीक्षा भी करनी थी। बड़ी कठिनाई यह भी थी कि राज्यों ने संविधान में जिन संशोधनों की माँग की थी, उन्हें भी संविधान में जोड़ना था।

राज्यों में आपसी द्वेष था और देश के ४० लाख नागरिकों के भिन्न हित थे और विभिन्न रुचियाँ थीं, जिनमें काले, गोरे और लाल रंग के सभी प्रकार के नागरिक थे। देश के सामने आर्थिक और वित्तीय संकट था और विदेशों में अमेरिका की स्थिति पूर्ण सन्तोषजनक नहीं थी। देश के सभी वर्ग संघ का समर्थन भी नहीं कर रहे थे। जिन राज्यों ने संविधान को स्वीकार कर लिया था, उनमें भी प्रबल अल्प मत संघ का विरोध कर रहे थे। उत्तरी कैरोलीना (North Carolina) और रहोड द्वीप (Rhode Island) अभी तक भी संघ में सम्मिलित नहीं हुए थे। किन्तु उत्तरी कैरोलीना ने नवम्बर १७८९ में संघ में प्रवेश किया और रहोड द्वीप १७९० की मई में संघ में तब सम्मिलित हुआ जब कि उसको अन्य राज्यों ने चेतावनी दी कि यदि वह संघ में शरीक न होगा तो उसका व्यापारिक बहिष्कार या बायकाट कर दिया जायेगा।

उसका मंत्रिमण्डल

वाशिंगटन ने बहुत ही अनिच्छा के साथ राष्ट्रपति पद स्वीकार किया था। उस समय उसकी आयु प्रायः ६० वर्ष की थी। राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित होने से पूर्व उसने जनरल नॉक्स (General Knox) को लिखा था—"राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित होने से पूर्व मेरी कुछ ऐसी भावना है जैसी किसी दोष-प्रमाणित व्यक्ति की उस समय होती है जब वह फाँसी के तख्ते पर झूलने के लिए ले जाया जाता है।" उसने अपने मन्त्रिमण्डल में उस समय के योग्यतम और अपने विश्वास-पात्र व्यक्तियों को चुना। विदेश विभाग (Department of State) के मन्त्री पद के लिए उसने टॉमस जैफ़रसन (Thomas Jefferson) को चुना। जनरल हैनरी नॉक्स (General

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Henry Knox) को उसने युद्ध-मन्त्री (Secretary for War) बनाया। जनरल नॉक्स किसी समय बोस्टन (Boston) में पुस्तकें बेचा करता था और अब वह अत्यन्त योग्य सेनापति समझा जाता था। एडमण्ड रैण्डल्फ (Edmond Randolph) वर्जीनिया (Virginia) का एक वकील था। वह अत्यन्त योग्य व्यक्ति था यद्यपि उतना दृढ़ नहीं था। उसको वाशिंगटन ने मन्त्रिमण्डल में महान्यायवादी (Attorney General) का पद दिया। और राष्ट्रपति ने मन्त्रिमण्डल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वित्त-मन्त्री का पद (Secretary of Treasury) अपने निकटतम मित्र एलेक्जैण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) को दिया।

एलेक्जैण्डर हैमिल्टन (१७५७-१८०४)

एलेक्जैण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) देशभक्त होने के साथ-साथ सिपाही, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, वक्ता और न्यायविद् भी था। उसके बारे में उस समय यह समझा जाता था कि वह नई दुनिया का योग्यतम व्यक्ति था और वाशिंगटन के बाद वही नये राज्य का निर्माता था। निकॉलस मरे बटलर (Nicholas Murray Butler) ने हैमिल्टन के विषय में लिखा है—"उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा न्यूयार्क प्रान्त स्थित किंग्ज़ कालिज (King's College) में प्राप्त की थी जिसे अब कोलम्बिया विश्वविद्यालय कहा जाता है। अपने कालिज में वह अत्यन्त मेधावी छात्र समझा जाता था। उसने यौवन-काल में उपनिवेशियों के पक्ष में धड़ाधड़ लेख लिखे थे। सेना में भी वह योग्य और निर्भीक सैनिक अफसर समझा जाता था। उसने सेना में रहकर ही वाशिंगटन का विश्वास और प्रेम प्राप्त किया था: न्यूयार्क में उसे अत्यन्त योग्य वकील समझा जाता था। वह श्रेष्ठ और शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का प्रबल समर्थक था। वित्तमन्त्री के रूप में तो उसकी सफलताओं ने उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा दिये थे। शासन-विज्ञान पर उसने जो गवेषणात्मक लेख लिखे हैं, उनसे उसकी गिनती एरिस्टाटिल (Aristotle) के समकक्ष की जाती है। सत्य यह है कि हैमिल्टन (Hamilton) की योग्यताओं और आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन करना कठिन है।[1]

हैमिल्टन एक अत्यन्त योग्य और अर्थशास्त्री राजनीतिज्ञ था और संघ का कट्टर पक्षपाती था, किन्तु उसकी लोकतन्त्र में आस्था नहीं थी। फिलाडेल्फिया की प्रसभा (Convention of Philadelphia) में और बाद में न्यूयार्क के प्रति अपील में भी उसने माँग की कि अमेरिका में सशक्त कार्यपालिका होनी चाहिए और राज्यों का संगठन अत्यन्त दृढ़ आधार पर होना चाहिए। वह वित्त-मन्त्री के पद पर आसीन हुआ तो उसने हर सम्भव उपाय द्वारा संघ को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया और संघ की दृढ़ता को और अधिक बल देने के उद्देश्य से उसने साहसी अर्थनीति का आश्रय लिया तथा देश के सर्वाधिक शक्तिशाली तत्त्वों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया।

---

1. Nicholas Murray Butler: *Master Builders of the Nation.* किन्तु निकॉलस मरे बटलर ने हैमिल्टन की वित्तीय योग्यता के बारे में जो सहानुभूतिपूर्ण लेख लिखा है उसके बारे में आधुनिक लेखक पूर्णतः सहमत नहीं हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन की आर्थिक नीति

हैमिल्टन जानता था कि अमेरिका के नये संघ की स्थिति तब तक दृढ़ न होगी जब तक कि देश की आर्थिक स्थिति पूर्ण स्वस्थ न होगी। हैमिल्टन यह भी जानता था कि संघीय सरकार की सफलता के लिए उसके पास पर्याप्त आय के स्रोत होने आवश्यक हैं। यही नहीं, देश की आन्तरिक सुरक्षा की यह माँग थी और विदेशों में अमेरिका के मान में वृद्धि तभी सम्भव थी जबकि अमेरिका की आर्थिक साख सुदृढ़ हो।

उसने आयातों (Imports) पर कर लगाए और शराबों पर उत्पादन कर (Excise Tax) लगाये। टनेज अधिनियम (Tonnage Act) द्वारा उसने जहाजी यात्रा को प्रोत्साहित किया और इसके द्वारा विदेशी जहाजों के मुकाबले में अमेरिकी जहाजों की आय बढ़ गई। उसने ऋणों को संचित किया तथा विभिन्न राज्यों के ऋणों को ले लेने के लिए सरकार पर जोर डाला तथा काँग्रेस की तदर्थ स्वीकृति प्राप्त कर ली। उसने राष्ट्रीय बैंक की भी स्थापना की।

नये राज्य के लिए यह एक साहसिक नीति थी किन्तु यह सफल सिद्ध हुई, क्योंकि विशेषकर यूरोपीय युद्धों के जमाने में तटस्थ राज्यों के व्यापार से अमेरिका को बहुत लाभ हुआ था। फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका में हैमिल्टन की आर्थिक नीति का घोर विरोध हुआ। एक आरोप यह था कि नई सरकार अपनी शक्तियों का अतिक्रमण कर रही थी। राज्यों के ऋणों का संघ सरकार द्वारा अपने सर पर लिया जाना उन राज्यों को बिलकुल अच्छा नहीं लगा, जिन्होंने जी-जान से कोशिश करके स्वयं ही अपने ऋणों को अदा कर दिया था। कुछ लोगों का कथन था कि काँग्रेस ने बिना सोचे-समझे ऐसी विधि पास कर दी थी और इसके लिए उनका विचार था कि दक्षिणी राज्यों को रिश्वत दी गई थी, और वह रिश्वत थी दक्षिणी राज्यों में अमेरिका की राजधानी की स्थापना। इस प्रकार अमेरिका के संघ की राजधानी वाशिंगटन नगर को बनाया गया था जो पोटोमेक (Potomac) के किनारे पर स्थित था। यह स्थान उत्तरी राज्यों और दक्षिणी राज्यों की सीमाओं को छूता है। गृह-युद्ध के जमाने में वाशिंगटन नगर की रक्षा के प्रायः लाले पड़ गए थे।

विरोध

जब संघ सरकार ने समस्त राष्ट्रीय ऋण अपने ऊपर ले लिया तो सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय प्रारम्भ हो गया और कुछ विरोधी लोग कहने लगे कि संघ सरकार ने कुछ राज्यों के साथ रियायत की है। विरोधियों ने कहा कि संघीय बैंक इंग्लैंड के मौण्टेग बैंक (Montague's Bank) के समान है, और उसको अल्पमत के राज्य (Oligarchy) की एक चाल बताया गया जिसके द्वारा वह राज-सत्ता को हथियाये रहना चाहता था। अब भी राज्य कर लगाये जाने के विरुद्ध थे। हैमिल्टन ने प्रस्ताव किया था कि सारे संघ में एक उत्पादन कर (Excise tax) लगाया जाय किन्तु उसका भी उतना ही विरोध हुआ जितना कि मुद्रांक अधिनियम (Stamp Act) का चारों ओर से विरोध हुआ था। इन सब बातों के कारण फ़ैडरल सरकार का सम्मान तो बढ़ा किन्तु १७९४ में नशीले द्रव्यों पर उत्पादन कर (Excise tax) लगाये जाने के विरोधस्वरूप पेंसिलवानिया (Pennsylvania) के सीमान्त प्रदेश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासियों ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को विस्की-विद्रोह (Whisky Insurrection) की संज्ञा दी गई थी। उक्त विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया।

शीघ्र ही नये गणराज्य की विदेश नीति भी आलोचना की विषय बनने लगी। फ्रांस की क्रान्ति प्रारम्भ होने से संयुक्त राज्य में क्रांति की ओर लोगों की दिलचस्पी बढ़ी। अमेरिकावासियों को ऐसा लगा कि अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा की गूंज यूरोप में भी पहुँची। अमेरिका में लोकतन्त्री सभाओं की स्थापना होने लगी और एक सभा तो जैकोबिन क्लब (Jacobin Club) से सम्बद्ध हो गई। सभी लोग अपने आपको स्वतन्त्र नागरिक कहने लगे और अमेरिका में दावतें उड़ीं और जश्न मनाए गए; और इस प्रकार सारी अमेरिकी जाति ने फ्रांस की क्रान्ति का सहानुभूति तथा उत्साह के साथ स्वागत किया। किन्तु ज्यों-ज्यों फ्रेंच क्रान्ति हिंसक रूप धारण करती गई और वहाँ पर फ्रेंच सम्राट् की मृत्यु के फलस्वरूप यूरोप में युद्ध की अधिकाधिक आशंका होने लगी, त्यों-त्यों अमेरिका के लोगों के फ्रेंच क्रान्ति के सम्बन्ध में विचार बदलने लगे। अमेरिका में एक जनतन्त्रवादी दल था, जिसकी अंग्रेजी रैडीकल दल (Radical Party) के समान ही फ्रांस की लोकतन्त्रात्मक परम्पराओं और उसकी बर्बरताओं के प्रति भी आस्था थी। जनतन्त्रवादियों का कथन था : "स्वतन्त्रता रूपी वृक्ष को भी साधारण वृक्षों की तरह ही देशभक्तों और जालिमों के खून रूपी पानी से सींचते रहना चाहिए।" उक्त जनतन्त्रवादी दल (Popular Party) बल देकर कहता था कि १७७८ की सन्धि के अनुसार अमेरिका को फ्रांस की सहायता करनी चाहिए। अमेरिका की जनता फ्रांस के प्रति कृतज्ञ थी क्योंकि आज़ादी के युद्ध में फ्रांस ने अमेरिका की हर प्रकार सहायता की थी। अमेरिकी जनता की सहानुभूति के प्रकटीकरण पर विश्वास करके सिटिजन जेनेट (Citizen Genet) जो कि संयुक्त राज्य में फ्रांस का प्रतिनिधि था, अंग्रेजों के जहाजों और व्यापार पर आक्रमण करने के लिए अमेरिका के बन्दरगाहों से लुटेरे जहाज भेजने लगा। उसने फ्रांस के लुटेरे जहाजों को प्रोत्साहित किया कि अंग्रेजी जहाजों को लूटकर अमेरिका के बन्दरगाहों में शरण लें।

विदेश नीति और विदेश सम्बन्ध

परन्तु वाशिंगटन ने ब्रिटेन के विरुद्ध फ्रांस की सहायता करने की अमेरिकी जनता की माँग को स्वीकार नहीं किया। सिटिजन जेनेट (Citizen Genet) यह नहीं समझ सका कि यद्यपि अमेरिका के लोग उसका स्वागत करते थे फिर भी अमेरिका की सरकार क्योंकर फ्रांस की सहायता नहीं कर रही थी। वाशिंगटन और संघ-समर्थक तत्त्वों ने विचार-विनिमय करके यह स्थिर किया कि उनके ग्रेट ब्रिटेन के साथ बौद्धिक और सामाजिक सम्बन्ध हैं; और चूंकि फ्रेंच-क्रान्ति अराजकता और हिंसा का मार्ग पकड़ रही है; अतः १७७८ की सन्धि द्वारा उनको तुरन्त ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की आवश्यता नहीं थी। तत्पश्चात् वाशिंगटन ने अप्रैल १७९३ में सिटिजन जेनेट (Citizen Genet) के चार्ल्सटन (Charleston) पहुँचने के १५ दिन बाद तथा उसके फिलाडेल्फिया (Philadelphia) में पहुँचने के

निषपक्षता की घोषणा (१३ अप्रैल, १७९३)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले ही तटस्थता की घोषणा कर दी।

आजकल यह सर्वविदित है कि युद्ध-काल में तटस्थ देश व्यापार की दिशा में भारी लाभ उठाते हैं। इस प्रकार की वाशिंगटन की नीति से अमेरिका को भारी आर्थिक लाभ हुए, किन्तु अमेरिका में बहुत से लोग ऐसे भी थे जो अमेरिका की तटस्थता को फ्रांस के प्रति कृतघ्नता समझ रहे थे। शीघ्र ही अमेरिका में तटस्थ व्यापार ज़ोर पकड़ गया और अनेक आवश्यक वस्तुओं के लिए फ्रांस अमेरिका का मुखापेक्षी हो गया किन्तु इंग्लैंड को अमेरिका-फ्रांस के इस व्यापारिक आदान-प्रदान से नाराजी थी। इंग्लैंड को अपनी नौ-सैनिक शक्ति पर नाज था अतः उसने अमेरिका के जहाजी व्यापार को हर प्रकार हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया। इंग्लैंड ने सामान की उस सूची में वृद्धि कर दी जिसका व्यापार निषिद्ध था। ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज में ब्रिटेन ने अनेक जहाज पकड़ लिए। इस प्रकार जब अमेरिकी व्यापारियों को और अमेरिकी जहाजों को भारी क्षति होने लगी, तो अमेरिका में ब्रिटेन को समुद्री डाकू कहा जाने लगा। इस प्रकार के आचरण से अमेरिका में ब्रिटेन के विरुद्ध उत्कट कटुता फैलने लगी और अमेरिका के प्रजातन्त्रवादी ज़ोर-ज़ोर से युद्ध की माँग करने लगे।

परन्तु वाशिंगटन (Washington) निष्पक्षता की अपनी नीति अपनाए रहा। यह मानना पड़ेगा कि वाशिंगटन की निष्पक्षता की नीति इंग्लैंड के प्रति अधिक उदार थी। उसने फ्रांस से माँग की कि सिटिजन जेनेट (Citizen Genet) को वापस बुला लिया जाय। उसने इंग्लैंड के साथ सन्धि की वार्ता करके तनातनी की स्थिति को सुधारना चाहा। उसने इस काम के लिए सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश जे (Jay) को इंग्लैंड भेजा जिसने इंग्लैंड जाकर वहाँ के अधिकारियों से बातचीत करके एक सन्धि की। इस समझौते को १७९५ की जे की सन्धि (Jay's Treaty of 1795) कहते हैं। उक्त सन्धि द्वारा दोनों देशों के कुछ गम्भीर झगड़े सुलझ गए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद नए गणराज्य की इंग्लैंड के साथ यह पहली सन्धि थी। किन्तु अमेरिका में इस सन्धि को अपमानजनक और हानिकारक समझा गया। अमेरिकी काँग्रेस के निम्न सदन में केवल तीन मतों के बहुमत से उक्त सन्धि स्वीकृत हो सकी।

इस समय देश में तीव्र कटुता तो थी ही, अतः सिद्धान्तों और भावनाओं की लड़ाई में देश में कई राजनीतिक दलों की स्वतः स्थापना हो गई। संविधान की स्वीकृति के बाद ही देश में विरोध की धारा बह निकली थी, वही धारा संघ की स्थापना के बाद और भी उग्र रूप धारण कर गई। जो विवाद संविधान को लेकर उठ खड़ा हुआ था, वह तो इस कारण समाप्त हो गया था कि संविधान पहले ही स्वीकृत हो चुका था; अतः अब उस संविधान के निर्वचन को लेकर विवाद का तूफान उठ खड़ा हुआ। एक ओर तो संघवादी (Federalists) थे जिनके हाथों में सरकार थी और जो अभिजात वर्ग या कुलीन वर्ग थे (Aristocrats) तथा जो अनुदार थे, वे चाहते थे कि कठोर संघ हो, सशक्त कार्यपालिका हो और संघ सरकार के हाथों में व्यापक कार्यक्रम हो। वे यह भी चाहते थे कि राज्यों की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया जाय तथा केन्द्रीय

राजनीतिक दल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार की शक्तियों का उदारतम और व्यापकतम अर्थ लिया जाय। दूसरी ओर रिपब्लिकन (Republicans) थे जो बाद में अपने आप को डेमोक्रेट्स (Democrats) कहने लगे थे। वे संघ को अविश्वास की दृष्टि से देखते थे, हैमिल्टन (Hamilton) को खतरनाक आदमी समझते थे और वाशिंगटन (Washington) को सम्राट् होने का महत्त्वाकांक्षी बताते थे। वाशिंगटन की सरकार के बारे में उनका यह विचार था कि वह अमेरिका के नागरिकों की स्वतन्त्रता का अपहरण करना चाहती है। वे संघ सरकार की शक्तियों को अत्यन्त सीमित रखना चाहते थे। वे प्रजातन्त्रवादी थे, उनमें से अधिकतर लोग रैडीकल समुदाय (Radicals) के थे किन्तु सत्य यह है कि वे सब फ्रांस के समर्थक थे। वे मुक्त व्यापार चाहते थे क्योंकि उनको संघ द्वारा आयात कर लगाना पसन्द नहीं था। वे न तो यह चाहते थे कि अमेरिका अपनी नौसेना (Navy) पर इतना व्यय करे, न वे चाहते थे कि अमेरिका में विश्वविद्यालय की स्थापना हो; क्योंकि इन दोनों को वे राष्ट्रीय आय का अपव्यय और लोकतन्त्र का अतिक्रमण मानते थे। पैट्रिक हैनरी (Patrick Henry) प्रायः क्रोध के आवेग में पूछा करता था कि क्या हम उन राष्ट्रों का अनुकरण कर रहे हैं जिन्होंने छोटी सरकार को विकसित करके महान् संविधान बनाए हैं? रिपब्लिकन लोग कहते थे कि जे (Jay) ने जो सन्धि इंग्लैण्ड के साथ की थी वह स्वेच्छाचारिता के प्रति रियायत थी। अमेरिकी सरकार द्वारा ह्विस्की-विद्रोह (Whisky insurrection) को दबा देना उनकी निगाहों में सर्वसाधारण के प्रति अत्याचार था। जैफ़रसन (Jefferson) का हैमिल्टन (Hamilton) के विषय में विचार था कि वह पिट (Pitt) का चापलूस सेवक था और राज-दरबार के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। वे क्रान्तिकारी युद्ध के अवसर-प्राप्त अफ़सरों की इस सरकार की आलोचना करते थे और उस सरकार को अभिजाततन्त्री सरकार (aristocracy) कहते थे। अतः सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रथम वेतन विधेयक (salaries bill) पर गरमागरम बहस हुई। उनको एतराज था कि वाशिंगटन क्योंकर अर्द्ध-राजसी ठाठ से रहता है। वे चिढ़ते थे कि वाशिंगटन क्योंकर अनेक मेहमानों की आवभगत करता है। वाशिंगटन की स्त्री के सजे हुए कमरों को देखकर उन लोगों को ईर्ष्या होती थी और वाशिंगटन के चार कीमती घोड़ों को देखकर तो वे बहुत झुँझलाते थे। वाशिंगटन के जन्मदिवस को राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाना उन्हें फूटी आँखों से भी नहीं सुहाता था। दोनों पक्षों में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं थी जो यह समझते थे कि शीघ्र ही गणतन्त्र का स्थान राजतन्त्र ले लेगा। एडम्स (Adams) तो यहाँ तक चाहता था कि गणराज्य के प्रधान को 'महामहिम राष्ट्रपति' (His Majesty the President) कहकर सम्बोधित किया जाय। कई बार लोगों ने वाशिंगटन का अभिवादन इन शब्दों के साथ किया था—"भगवान् आपके राज्य की रक्षा करे।"

वाशिंगटन ने भरसक प्रयत्न किया कि वह दलबन्दी में न फँसे। उसके मन्त्रिमण्डल में फूट थी क्योंकि जैफ़रसन (Jefferson) हैमिल्टन का विरोधी था। वह डेमोक्रेट्स (Democrats) का नेता माना जाता था। वाशिंगटन प्रायः इन दोनों विरोधी सदस्यों के प्रस्तावों को एक दूसरे को दिखा दिया करता था ताकि उसको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक विषय पर दोनों की प्रतिक्रिया का पता चलता रहे। किन्तु वाशिंगटन धीरे-धीरे हैमिल्टन के पक्ष में चला गया और वह फेडेरेलिस्ट दल (Federalists) का समर्थक बन गया। १७९३ में जब जैफरसन ने वाशिंगटन (Washington) के मन्त्रि-मण्डल से त्यागपत्र दे दिया तो वाशिंगटन ने अपने मन्त्रिमण्डल में फेडेरेलिस्ट या संघ-शासनवादी दल के अधिक सदस्य रखे। अतः प्रजातन्त्रवादी अथवा डेमोक्रेट तत्त्व अपने समाचार-पत्रों में वाशिंगटन की आम तौर पर तीव्र आलोचना करने लगे। कभी-कभी तो वाशिंगटन को ऐसे भद्दे शब्द सुनने पड़ते थे जैसे सम्भवतः किसी नीग्रो को भी या किसी चोर या जेबकतरे को भी न सुनने पड़ते हों। एक बार टॉमस पेन (Thomas Paine) ने राष्ट्रपति वाशिंगटन को लिखा था—"संसार को ऐसी बातें आपके विरुद्ध पढ़कर यह निश्चय करना कठिन हो सकता है कि 'क्या आप गद्दार या नास्तिक हैं अथवा रँगे हुए सियार हैं'।"

वाशिंगटन ने तृतीय बार राष्ट्रपति बनना अस्वीकार कर दिया और फलतः १७९७ में उसने त्याग-पत्र दे दिया। अपने पद से विदा होते समय उसने देश के नाम संदेश प्रसारित किया और अपील की कि सभी लोग एकमत होकर देश का कल्याण करें। उसके राष्ट्रपति-पद से अलग होने की सूचना औरॉरा (Aurora) नामक पत्र की भाषा में पढ़िये—"अमेरिका के सम्पूर्ण दुर्भाग्य का एकमात्र कारण जार्ज वाशिंगटन आज अन्य समस्त अमेरिकी नागरिकों के समान धरातल पर आ गिरा है। उसकी वे सारी शक्तियाँ छिन गई हैं जिनसे वह अमेरिका के कष्टों को बढ़ा रहा था।"

वाशिंगटन का त्याग-पत्र (१७९३)

जार्ज वाशिंगटन के पश्चात् फेडेरेलिस्ट या संघ-शासनवादी दल (The Federalists) ने जॉन एडम्स (John Adams) को राष्ट्रपति पद के लिए खड़ा किया जो केवल तीन निर्वाचकों के बहुमत से अमेरिका का राष्ट्रपति निर्वाचित हो गया। स्वतन्त्रता की क्रांति में जॉन एडम्स ने बड़ा ही काम किया था; किन्तु वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) के शब्दों में, "वह स्वयं द्वेषों का शिकार था और उसने व्यर्थ ही राष्ट्रपति पद प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। वह भावुक, जल्दबाज और तीखे स्वभाव का था। वह अस्थिर, असहनशील और क्रोधी भी था। वह चंचल-चित्त और रूक्ष भी था।" जेम्स जी० ब्लेन (James G. Blaine) ने १८७५ में लिखा था—"आज तक जॉन एडम्स के बाद कोई ऐसा नेता नहीं हुआ जिसने अपने दल को इस सीमा तक निस्सार कर दिया हो।" वृद्ध जॉन एडम्स कई प्रकार से बहुत ही श्रेष्ठ व्यक्ति था। १७९६ में उसे फेडरल या संघ-शासनवादी दल का नेता चुना गया था। उस समय उस दल को योग्य नेतृत्व प्राप्त था और उस दल का सर्वत्र सम्मान भी था। उस समय तक देश के गरीब-अमीर, शिक्षित और अशिक्षित सभी इस दल का समर्थन करते थे। देश की स्वस्थ परम्पराएँ भी इस दल के पक्ष में थीं, किन्तु एडम्स (Adams) के राष्ट्रपतित्व के चार वर्षों ने इस दल की मिट्टी पलीत कर दी। उसके पश्चात् दो पीढ़ियों तक इस दल का सम्मान उभर नहीं सका।

जॉन एडम्स राष्ट्रपति (१७९७-१८०१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश के अच्छे राजनीतिज्ञ दो पीढ़ियों तक इस दल के सम्पर्क से बचे रहे।" सत्य यह है कि संघ शासनवादी या फेडेरेलिस्ट दल का ह्रास प्रारम्भ हो चुका था। डेमोक्रेट्स (Democrats) ने जैफरसन (Jefferson) को उप-राष्ट्रपति के पद पर खड़ा किया था। किन्तु संघ-शासनवादी या फ़ेडरलिस्ट दल के पतन के लिए स्वयं एडम्स (Adams) की भयंकर भूलें ही उत्तरदायी थीं।

प्रारम्भ में विदेश सम्बन्धों में तनाव की स्थिति आ जाने से अमेरिका के विरोधी दलों का विरोध किसी सीमा तक शान्त हो चला। फ्रांस की यद्यपि स्थल पर विजय हो रही थी किन्तु समुद्री युद्धों में फ्रांस को बारम्बार पराजयों का ही मुख देखना पड़ रहा था। अतः १७७८ की सन्धि शर्तों के अनुसार फ्रांस अमेरिका के ऊपर दबाव डालने लगा कि वह फ्रांस के पक्ष में युद्ध में सम्मिलित हो और ऋण का सारा रुपया भी फ्रांस को तुरन्त दे। उसने यह भी धौंस दी कि इंग्लैंड के साथ अमेरिका ने जो 'जे की सन्धि' (Jay's Agreement) की थी वह फ्रांस के प्रति शत्रुता-सूचक सन्धि थी। फ्रांस और अमेरिका के सम्बन्धों में तनावपूर्ण स्थिति तो थी ही, १७९६ में पुनः जॉन एडम्स के राष्ट्रपति-पद पर चुने जाने के फलस्वरूप फ्रांस को भारी क्षोभ हुआ और अब उसने अमेरिका के प्रति कड़ा रुख अपना लिया। फ्रांस ने अमेरिका के कई जहाज़ों को रोक लिया और जान-बूझकर उसने अमेरिका के राजदूतों की बेइज़्ज़ती की। फ्रांस की इन उत्तेजनात्मक कार्यवाहियों के कारण अमेरिका में भी उत्तेजना फैली। अमेरिकी कांग्रेस ने जॉन एडम्स से स्पष्ट कह दिया कि "हम देश की सुरक्षा के लिए करोड़ों रुपये दे सकते हैं किंतु फ्रांस की खुशामद के लिए एक पाई भी न देंगे।" जॉन एडम्स ने भी खुली घोषणा कर दी कि "जब तक फ्रांस क्षमा-याचना न करेगा और जब तक वह हमारे राजदूत को उचित सम्मान प्रदान न करेगा तब तक हम अपना राजदूत उस देश में नहीं भेजेंगे।"

विदेशी संबंध

फ्रांस के साथ युद्ध की-सी स्थिति, १७९८

अमेरिका की सरकार ने युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। दोनों देशों के जहाज़ों में झगड़े होने लगे, यद्यपि युद्ध की वास्तविक घोषणा नहीं हुई थी। अन्त में नैपोलियन ने अमेरिका के साथ १८०० में एक समझौता कर लिया, जिसके अनुसार पुरानी सन्धियों का दायित्व समाप्त कर दिया गया और इस प्रकार संयुक्त राज्य को तटस्थ हो जाने की सुविधा दे दी गई।

अब संघ-शासनवादियों (Federalists) ने एक भयंकर भूल की। उन्माद में भरे हुए प्रजातन्त्रवादी (Republicans or Democrats) हाल की घटनाओं के कारण अत्यन्त उत्तेजित थे। उनकी उत्तेजना को रोकने के लिए एडम्स (Adams) की अधीनता में संघ शासनवादियों ने कुछ प्रस्ताव जिन्हें एलियन एण्ड सेडीशन ऐक्ट्स (Alien and Sedition Acts) कहते हैं, स्वीकृत किये। संघ-शासनवादियों (The Federalists) ने सोचा था कि सैनिक आवश्यकता का बहाना बताकर अपने राजनीतिक विरोधियों से बदला लेना श्रेयस्कर होगा, अतः उन्होंने

विदेशी और राज-द्रोह निरोधक अधिनियम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार अधिनियम पास किए। इन्हीं को विदेशी और राजद्रोह निरोधक अधिनियम (Alien and Sedition Acts) कहते हैं। इस अधिनियम द्वारा समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता पर तथा अनर्थकारी विदेशियों के अमेरिका में आयात पर पाबन्दियाँ लग गईं और सरकार की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हो गई। ये अधिनियम एक प्रकार से प्रजातन्त्रवादियों (Republicans or Democrats) के विरुद्ध करारी चोट थी। टॉमस पेन (Thomas Paine) ने अमेरिका को मनुष्य मात्र के लिए खुला हुआ देश कहा था तो फिर विदेशियों के विरुद्ध ऐसा कठोर कदम उठाने की क्या आवश्यकता आ पड़ी थी। सत्य यह है कि एक ही चोट में संघ-शासनवादियों (Federalists) ने क्रांति के सिद्धान्तों को, व्यक्ति की स्वतन्त्रता को और राज्यों की स्वाधीनता को पैरों-तले रौंद डाला था।

संघ-शासनवादियों (Federalists) की इस चोट का जवाब प्रजातन्त्रवादी नेताओं ने दुहरी चाल चलकर दिया। जैफरसन और मैडीसन (Jefferson and Madison) ने संविधान के निर्माण में भारी योग दिया था, किन्तु अब वे दोनों राज्यों की स्वाधीनता का समर्थन करने लग गए थे। उन दोनों नेताओं के नेतृत्व में वर्जीनिया (Virginia) और केंटकी (Kentucky) के विधानमण्डलों ने प्रस्ताव स्वीकृत किए और घोषणा की कि संघ सरकार अपनी शक्तियों का अतिक्रमण कर रही है और इसलिए प्रत्येक राज्य स्वतन्त्र है कि वह संघ सरकार की आज्ञाओं को माने या न माने। उनका तात्पर्य था कि राज्यों का संघ ऐच्छिक था और यदि राज्य चाहें तो संघ से अलहदा हो सकते हैं। यद्यपि उसी समय उक्त प्रस्तावों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु इसके द्वारा अमेरिका के संघ की और अमेरिका की नागरिकता की जड़ें ही खोखली हो गईं। इन प्रस्तावों द्वारा एक प्रकार से राज्यों को अधिकार प्राप्त हो गया कि वे चाहें तो केन्द्रीय विधानमण्डल की आज्ञाओं को अस्वीकार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन प्रस्तावों का यह भी आशय था—यद्यपि बाद में प्रजातन्त्रवादियों (Democrats) ने इसे स्वीकार किया था—कि यदि कोई राज्य चाहे तो संघ से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर सकता था। इस प्रकार उक्त प्रस्तावों ने आने वाले गृह-युद्ध की छाया उपस्थित कर दी थी। इन प्रस्तावों के पीछे दो राजनीतिज्ञों का हाथ था जो बाद में आठ-आठ वर्षों के लिए बारी-बारी से अमेरिका के राष्ट्रपति बने।

कैंटकी (Kentucky) और वर्जीनिया (Virginia) के प्रस्ताव, आम असंतोष और भय का राज्य, संघ-शासनवादियों में आपसी फूट, एडम्स और हैमिल्टन की अनबन, १७९९ में जार्ज वाशिंगटन की मृत्यु आदि ऐसे कारण बन गए जिनसे संघ-शासनवादियों (Federalists) की मान-हानि हुई और उनका अमेरिका की शासन-सत्ता से पतन हो गया। उनके पतन का दूसरा कारण यह भी था कि प्रजातन्त्रवादियों (Democratic Republicans) में राजनीतिक योग्यता अधिक थी जिसके आधार पर उन्होंने न्यूयार्क (New York) के सारे वोट हथिया लिए थे। इस प्रकार संघ-शासनवादियों (Federalists) का पतन निश्चित ही था। १८०० के आम चुनाव में एलेक्ज़ैण्डर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) और जैफ़रसन (Jeffer-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

son) के संयुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप जैफ़रसन अमेरिका का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। जैफ़रसन ही पहला राष्ट्रपति था जो संघ की राजधानी वाशिंगटन (Washington) में जाकर बसा, जिसमें १८०१ तक केवल ३,००० व्यक्तियों की जनसंख्या थी। उस समय के वाशिंगटन नगर में नगर का केवल एक भाग तैयार हुआ था, ह्वाइट हाउस (White House) अभी तक पूरी तरह तैयार नहीं था, कहीं-कहीं उसकी पुताई भी नहीं हुई थी, उसकी छतें चू रही थीं और उसकी मुख्य सीढ़ियों का निर्माण प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। नगर में सात या आठ होटल थे जिनमें भोजनार्थियों की भीड़ रहती थी; एक दर्जी की दुकान थी, एक मोची की दुकान, एक रंगरेज, एक छापाखाना, एक धोबन, एक पंसारी, एक जनरल मर्चेण्ट और एक खिलौनों की दूकान भी थी। इसके अतिरिक्त नगर में कुछ थोड़े से घर थे, काफी दलदल थी, एक घाट था जो शायद कभी काम भी नहीं आता था। इनके अतिरिक्त नगर के दूसरी ओर एक और दलदल था जिसके चारों ओर कुछ सार्वजनिक मकान थे और लगभग दो या तीन सौ लकड़ी के मकान थे।

अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) के बाद आदर और लोकप्रियता के आधार पर केवल टॉमस जैफ़रसन का नाम लिया जा सकता है। वर्जीनिया (Virginia) नामक राज्य ने अनेक योग्य व्यक्तियों को जन्म दिया है जिनमें वाशिंगटन (Washington), मैडीसन (Madison), जॉन मार्शल (John Marshall), एडमण्ड रैण्डल्फ़ (Edmund Randolph), और पैट्रिक हैनरी (Patrick Henry) प्रमुख हुए हैं। जैफ़रसन भी इन्हीं के समान एक अत्यन्त योग्य और लोकप्रिय व्यक्ति था। फिर भी वह उपरोक्त शृंखला के व्यक्तियों में सबसे महान् और अनोखा व्यक्ति था। कुछ लोगों की दृष्टि में वह भद्दी और लम्बी आकृति का मनुष्य था और कुछ लोग उसको दब्बू और बुज़दिल भी कहते थे; किन्तु अनेक लोग ऐसे भी थे जो उसके व्यक्तित्व में सौन्दर्य और सम्भाषण में मोहिनी शक्ति का अनुभव करते थे और जिनका मत था कि जैफ़रसन के चरित्र में और उसके द्वारा निर्मित इतिहास में परस्पर विरोधाभास था। उसके माता-पिता स्काटलैण्ड और वेल्श के निवासी थे और वह स्वयं एक अत्यन्त देशभक्त अमेरिकन नागरिक था, फिर भी वह ब्रिटेन से कुछ घृणा-सी करता था। उसका स्वभाव फ्रांस के सिद्धान्तवादी क्रांतिकारियों से कुछ-कुछ मिलता-जुलता-सा था। अपने परिवार के लिए वह मानो निर्दय और विद्वान् सन्त था किन्तु देश के सम्मुख उसने सर्वश्रेष्ठ लोकतन्त्र का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया। वह महान् लोक-नेता और महान् वक्ता था; वह दार्शनिक भी था और राजनीति कला का महापण्डित भी था। बाहरी तौर पर वह दयालु प्रकृति का मनुष्य था किन्तु व्यक्तिगत रूप से वह कपटी और प्रतिशोधात्मक प्रकृति का व्यक्ति था। उसको लोकतन्त्र के प्रचलित सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था थी किन्तु वह उक्त सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने में हिचकता था। वह मनुष्यों के अधिकारों का पूर्ण समर्थक था, फिर भी यह विरोधाभास है कि वह ऐसे दल का संस्थापक था जो दास-प्रथा का

टामस जैफ़रसन (१७४३-१८२६) राष्ट्रपति (१८०१-१८०९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन करता था। उसकी वक्तृताओं में पूर्ण ज्ञान और विवेक के दर्शन अवश्य होते हैं किन्तु साथ ही उनमें बौद्धिक असंगति का पुट भी अवश्य रहता था। सम्भवतः उसकी सबसे अच्छी अच्छाई और सबसे बुरी बुराई यह थी कि वह सभी का विश्वास करता था। किन्तु वह १७७६ का ही व्यक्ति बना रहा और उसने युद्धोत्तर अनुभवों से लाभ नहीं उठाया; यद्यपि उसके समय में अनेक देशवासियों के लोकतन्त्रात्मक विचारों पर युद्धोत्तर घटनाओं ने उदार प्रभाव डाला था। इसका कारण यह था कि सन्धि के बाद से संघ के निर्माण तक वह लगातार फ्रांस में रहा था जहाँ वह सहानुभूति के साथ फ्रेंच राज्य क्रान्ति के उतार-चढ़ावों को देखता रहा था। वह १७८९ के सिद्धान्तों के प्रति भी उतना ही वफ़ादार बना रहा जितना कि वह १७७६ के सिद्धान्तों के प्रति वफ़ादार था। "उसने अपने गौरव के लिए केवल इतना पर्याप्त समझा (जिसका उसने अपने समाधि लेख में वर्णन किया था) कि वह अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा का लेखक था; उसने वर्जीनिया (Virginia) में स्वतन्त्रता की देवी की एक प्रस्तर-मूर्ति खड़ी करवा दी थी और वह वर्जीनिया विश्वविद्यालय का संस्थापक था।"

जब अमेरिका के शासन की बागडोर डैमोक्रेटों (Democrats) और जैफ़रसन के हाथ में आई, तो मानो अमेरिका में क्रान्ति की लहर दौड़ गई। निस्सन्देह यह किन्हीं अर्थों में क्रान्ति ही थी। सरकार की नीतियों में तो क्रान्ति का सूत्रपात नहीं हुआ किन्तु दलीय कार्यक्रमों में निस्सन्देह क्रान्ति-सी आ गई। अमेरिका की दलगत राजनीति में न तो सैद्धान्तिक एकरूपता पाई जाती है, और न उसमें नाम-मात्र की भी एकरूपता होती है। एक दल के सिद्धान्तों को बड़ी आसानी से दूसरा दल अपना लेता है—किन्तु ऐसा, कोई दल केवल तभी तक करता है जब तक कि वह सत्तारूढ़ रहता है। किन्तु ज्यों ही उक्त दल सत्ताहीन हो जाता है, वह अपने मौलिक सिद्धान्तों की दुहाई देने लगता है। जैफ़रसन जिस दल का नेता था वह देश की अर्थ-व्यवस्था में स्थिरता लाना चाहता था और संघ को जो शक्तियाँ दी गई थीं उनको वह अत्यन्त सीमित अर्थों में लेना चाहता था। वह चाहता था कि शासन सादा हो और मितव्ययी हो किन्तु यह भी अजीब-सा विरोधाभास था कि उसने केन्द्रीय सरकार के व्ययों को बहुत बढ़ा दिया और मनमाने ढंग से संघीय शक्तियों का प्रयोग किया।

डैमोक्रेटिक दल का सत्तारूढ़ हो जाना १८०१ की महान् क्रान्ति थी

अपने, राष्ट्रपति पद के प्रतिष्ठापन के अवसर पर जैफ़रसन (Jefferson) ने घोषणा की थी—"हम सभी के साथ पूर्ण न्याय करेंगे, सभी देशों के साथ मैत्री रखेंगे और किसी देश के साथ किसी देश के विरुद्ध सन्धि-जाल में नहीं फँसेंगे।" वह राज्य-सरकारों के अधिकारों का समर्थक था। उसका विचार था कि देश में गणराज्य तभी सफल हो सकता है जब कि राज्यों को अधिक से अधिक स्वायत्तता रहे। वह सर्वसाधारण के निर्वाचन-अधिकार का समर्थक था, बहुमत के शासन को वह अच्छा समझता था; कृषि को वह प्रोत्साहित करना चाहता

जैफ़रसन का राष्ट्रपति-पद पर प्रतिष्ठापन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और उसके साथ ही वह व्यापार और वाणिज्य का भी विस्तार चाहता था। संक्षेप में, वह सार्वजनिक व्यवस्था का समर्थक था। उसने चेतावनी दी कि यदि राज्यों की स्वाधीनता का अपहरण किया जायेगा तो क्रान्ति हो सकती है। वह चाहता था कि शिक्षा का अधिकतम प्रसार हो, प्रचार पर अधिकतम व्यय हो, धार्मिक स्वतन्त्रता रहे और समाचारपत्रों तथा व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा की जाए।

दलीय प्रतिशोध

इसके पश्चात् उसने विदेशी और राजद्रोह-निरोधक अधिनियमों (the Alien and Sedition Acts) को समाप्त कर दिया और उन सभी बन्दियों को मुक्त कर दिया जो उक्त अधिनियम के अन्तर्गत कैद किए गये थे। उसने ऐसी दलगत नियुक्तियाँ नामञ्जूर कर दीं जिन्हें उसके पूर्वज राष्ट्रपतियों ने दलीय निष्ठा के आधार पर किया था। बाद में तो उसने यहाँ तक किया कि सर्वोच्च न्यायालय के ऊपर भी उसने आक्षेप करने प्रारम्भ कर दिए और प्रयत्न किया कि सर्वोच्च न्यायालय भी दलीय शासनिक उपकरणमात्र बन जाय। उसने सोलह संघात्मक रुचि के अधिकारियों को अपने पदों से हटा दिया और उनको यह भी नहीं बताया गया कि उनका दोष क्या था। उक्त सोलह स्थानों पर उसने अपने डेमोक्रेटिक दल के व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया।

इसके पश्चात् जैफ़रसन को मजबूर होकर अन्धाधुन्ध व्यय करना पड़ा। उसे एक युद्ध करना पड़ा, जहाजों के निर्माण पर भी भारी व्याय करना पड़ा। उसने संघीय अधिकारों और शक्तियों का अत्यधिक खुलकर प्रयोग किया।

सड़क-निर्माण का कार्यक्रम

चूँकि पश्चिमी अमेरिका की जनसंख्या में भारी वृद्धि हो रही थी और १८०३ में ओहियो (Ohio) नाम के एक नए राज्य की रचना हो चुकी थी, अतः काँग्रेस ने सबसे पहले सड़क-निर्माण का एक महान् कार्यक्रम अपने हाथ में लिया और पुरानी राष्ट्रीय सड़क को केन्द्रीय सरकार ने अपने कोष से बनवाया, यद्यपि बाद में उक्त सड़क को उन राज्यों को दिया गया जिनमें होकर वह सड़क गुजरती थी। इस प्रकार ऐसी सड़क के ऊपर संघीय कोष का रुपया व्यय किया गया जो बाद में राज्यों को दे दी गई और आश्चर्य की बात तो यह थी कि इस व्यय की अनुमति ऐसी सरकार ने दी थी जो संघीय सरकार की शक्तियों को संकुचित अर्थों में लेनेवाले दल की थी।

ट्रिपोली का युद्ध (१८०१-०५)

सड़क-निर्माण के कार्यक्रम के पश्चात् जैफ़रसन को दूसरा निर्णय ट्रिपोली के विरुद्ध भूमध्यसागर में एक समुद्री युद्ध करने के सम्बन्ध में करना पड़ा। कारण यह था कि ट्रिपोली के बर्बर लुटेरे अमेरिकी जहाजों को खुले समुद्र में लूट रहे थे। इस युद्ध में पूर्ण सफलता मिली।

लूसियाना का क्रय (१८०३)

किन्तु जैफ़रसन की नीति की सबसे बड़ी सफलता थी फ्रांस के हाथों से लूसियाना (Louisiana) का क्रय। उस समय यह आवश्यकता अनुभव की जा रही थी कि मिसीसिपी (Mississippi) पर अमेरिका का अधिकार होना बहुत जरूरी था, यद्यपि यह भी ठीक ही था कि उक्त नदी का महत्त्व अमेरिका के पश्चिमी भाग के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए अधिक था, पूर्वी भाग के लिए उतना नहीं। लूसियाना का पश्चिमी भाग और मिसीसिपी के मुहाने पर स्थित न्यू ऑर्लियन्स (New Orleans) नामक नगर स्पेन के अधिकार में थे, जिसने अमेरिका के व्यापारिक विकास को अवरुद्ध कर रखा था। स्पेन ने अमेरिका को यह अधिकार नहीं दिया था कि वह मिसीसिपी नदी के मुहाने पर अपने जहाजों को भर सके या खाली कर सके। इसके लिए अमेरिका के जहाजों को भारी कर देने पड़ते थे। इस स्थिति के कारण प्रायः अमेरिका में स्पेन के विरुद्ध नाराजी-सी रहती थी, विशेष रूप से इसलिए भी स्पेन कभी-कभी अत्यधिक अनुदार वर्ताव करने लगता था। किन्तु १८०१ में संसार की बड़ी शक्तियों ने विशेष कर फ्रांस ने स्पेन के ऊपर दबाव डाला और मजबूर होकर स्पेन ने लूसियाना (Louisiana) फ्रांस के हवाले कर दिया। फ्रांस ने लूसियाना पर क्यों अधिकार किया; इस सम्बन्ध में कई अटकलें लगाई जाती हैं। हो सकता है कि टैलीरैंड (Talleyrand) फ्रांस का साम्राज्य पुनः स्थापित करना चाहता था अथवा सम्भव था कि मिस्र में फ्रांस की जो प्रादेशिक हानि हुई थी उसके बदले में वह पूर्व में फ्रांस का साम्राज्य बढ़ाना चाहता था; किन्तु इसका प्रभाव अमेरिका के ऊपर गहरा पड़ा क्योंकि स्पेन फिर भी एक कमजोर देश था और अब उसकी टक्कर फ्रांस से किसी भी समय हो सकती थी। जैफ़रसन (Jefferson) ने पेरिस स्थित अपने दूत को लिखा था—"जिस दिन से फ्रांस के अधिकार में न्यू ऑर्लियन्स (New Orleans) नामक नगर आ जायगा उसी दिन से अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की मैत्री पक्की हो जायेगी क्योंकि हम दोनों देश (ब्रिटेन और अमेरिका) सारे समुद्रों पर अधिकार कर सकते हैं। अब हम ब्रिटिश समुद्री बेड़े के साथ मिलकर सारा काम करेंगे।"

अब जैफ़रसन (Jefferson) ने अमेरिका के कुछ आयुक्तों को मिसीसिपी (Mississippi) नदी के मुहाने को खरीदने के लिए भेजा। इस भूभाग में न्यू ऑर्लियन्स (New Orleans) और पश्चिमी फ्लोरिडा (West Florida) शामिल थे। सम्भवतः या तो इसलिए कि नेपोलियन (Napoleon) उपनिवेशों के अर्जन से उकता चुका था अथवा इसलिए कि अमेरिका में फ्रांस के नए उपनिवेशों का विरोध किया जा रहा था अथवा इसलिए कि इंग्लैण्ड के साथ चलने वाले युद्ध के कारण फ्रांस चिन्तित था और शायद इसलिए भी कि फ्रांस के पास नकद धन की कमी थी अतः नेपोलियन ने प्रस्ताव किया कि अमेरिका ही लूसियाना का सारा भू-भाग स्पेन से खरीद ले। जैफ़रसन तो हक्का-बक्का रह गया। एक करोड़ डालर तो केवल न्यू ऑर्लियन्स (New Orleans) और उसके पास के भू-भाग की कीमत आँकी जा रही थी; किन्तु अब तो १.५० करोड़ डालर में आधा महाद्वीप खरीदा जा सकता था। जैफ़रसन ने सोचा कि यह क्रय-सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा। उसने सोचा कि ऐसा बड़ा सौदा सरकार की शक्ति के बाहर की चीज है। वह कुछ हिचकचाया। किन्तु उसके आयुक्तों ने राष्ट्रपति जैफ़रसन के ऊपर दबाव डाला और कहा कि नेपोलियन अमेरिका के लिए रुका नहीं रहेगा। अतः अपने मित्रों के आग्रह के आगे जैफ़रसन झुक गया और उसने सोचा कि यदि आवश्यकता आ ही पड़ेगी तो संविधान में आवश्यक संशोधन करा लिया जाएगा। इस प्रकार अमेरिका के अधिकार में लूसियाना प्रान्त आ गया,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका क्षेत्रफल ८ लाख वर्ग मील था। इतना विस्तृत भू-भाग केवल १.५० करोड़ डालरों में प्राप्त हो गया। सम्भवतः, कभी भी इतने बड़े भू-भाग का क्रय-विक्रय नहीं सुना गया है। इस भू-भाग का अर्जन इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि इसके लिए संविधान में संशोधन करना भी आवश्यक नहीं समझा गया।

इस भू-भाग को प्राप्त करके अमेरिका की शक्ति में चार चाँद लग गये, और इसके आशातीत फल निकले। अमेरिका के इतिहास में लूसियाना प्रान्त के क्रय का उतना ही महत्त्व है जितना कि स्वतन्त्रता की घोषणा का अथवा १७८७ के अमेरिका के संविधान का। लूसियाना नामक उप-देश में से छः राज्यों का निर्माण हुआ। इन राज्यों ने अमेरिका की राजनीति को नई दिशा प्रदान की है और पश्चिमी तथा पूर्वी अमेरिका के सम्बन्धों पर भी इन राज्यों का प्रभाव अवश्य पड़ा है। साथ ही इन राज्यों के कारण गुलाम-प्रथा के समर्थक राज्यों और गुलाम-प्रथा के विरोधी राज्यों के सम्बन्धों पर तीक्ष्ण प्रभाव पड़े हैं।

यहाँ तक जो कुछ वर्णन किया गया है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जैफ़रसन का शासन-काल अमेरिका के लिए वरदान सिद्ध हुआ। किन्तु आगे जैफ़रसन ने जो कुछ किया उसके फलस्वरूप अगले राष्ट्रपति के शासन-काल में इंग्लैण्ड के साथ भयंकर युद्ध हुआ। यद्यपि इंग्लैण्ड युद्ध को भूल चुका है, किन्तु अमेरिका के इतिहास में यह युद्ध एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

इंग्लैण्ड अमेरिका के (१८१२-१४) के युद्ध के प्रधान कारण

यह युद्ध वास्तव में नेपोलियन के युद्धों की ही एक शाखा थी। स्थल-युद्ध में तो नेपोलियन की ही विजयें होती रहीं, यद्यपि समुद्री युद्धों में इंग्लैण्ड की विजय हुई फिर भी इंग्लैण्ड फ्रांस को पूर्ण रूप से पराजित नहीं कर सका। अतः इंग्लैण्ड ने निश्चित किया कि वह फ्रांस को आर्थिक घेरे में लेकर भूखों मार डाले, उसके व्यापार को नष्ट कर दे और अन्त में उसको वश में कर ले। इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों ही महाशक्तियाँ थीं और हर एक शक्ति ने भरसक प्रयत्न किया कि दूसरी को पछाड़ दे। दोनों ओर से दनादन आज्ञाएँ निकाली जा रही थीं जिनमें घोषणाएं होती थीं कि अमुक पदार्थों का व्यापार बन्द हो जाएगा, अथवा अमुक बन्दरगाह व्यापार के लिए बन्द हो गये हैं अथवा उपरोक्त आज्ञाओं का उल्लंघन दण्डनीय होगा जिसमें तस्कर व्यापारी पकड़े जा सकते हैं। इन रुकावटों का सबसे बुरा प्रभाव अमेरिका के ऊपर पड़ा, क्योंकि ऐसा कोई भी सुरक्षित बन्दरगाह न बचा जहाँ कोई अमेरिकी जहाज सुरक्षित आश्रय ले सकता। किन्तु यद्यपि खतरा बहुत था और किराये के तथा बीमा कम्पनियों के व्यय भारी थे फिर भी इस व्यापार में इतना अधिक लाभ था कि तटस्थ देशों का व्यापार बावजूद सब प्रकार की कठिनाइयों के लगातार बढ़ता ही रहा। इसके पश्चात् दोनों युद्ध-ग्रस्त देशों के संघर्ष और भी उग्र होते गये और दोनों तटस्थ देशों के अधिकारों का अतिक्रमण प्रारम्भ कर दिया। दोनों देश एक दूसरे पर दोषारोपण करते थे। इंग्लैण्ड को पहले तटस्थ राष्ट्रों से शिकायत थी क्योंकि बिना वास्तविक शक्ति के आर्थिक घेरा केवल मजाक था

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इंग्लैण्ड का यह भी कहना था कि "तटस्थ जहाजों में वस्तुएँ भी मुफ्त ही पहुँचती हैं।"[1] स्थिति यहाँ तक बिगड़ चली थी कि दोनों युद्ध-ग्रस्त पक्ष (इंग्लैण्ड और फ्रांस) अमेरिका के जहाजों को पकड़ लेते थे और उनकी अवैध माल के लिए तलाशी लेते थे। किन्तु अमेरिका के समुद्रों में इंग्लैड और फ्रांस दोनों के जहाज निर्द्वन्द्व घूमते थे और इस प्रकार वे अमेरिका के समुद्रों की प्रादेशिक सीमाओं का अतिक्रमण करते थे।

सत्य यह है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों ही अमेरिका के ऊपर जुल्म कर रहे थे, यद्यपि इंग्लैण्ड का दोष अधिक था क्योंकि समुद्र में वही अधिक शक्तिशाली था और इसीलिए उसे अत्याचार करने के अधिक अवसर उपलब्ध थे। अमेरिका के एक विद्वान् लेखक ने लिखा है कि "इन दिनों में अमेरिका के पास पर्याप्त कारण थे जिनसे वह इंग्लैण्ड या फ्रांस किसी भी देश के विरुद्ध युद्ध छेड़ सकता था।"[2]

किन्तु अन्त में इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच जो युद्ध हुआ वह एक अन्य लम्बे संघर्ष का परिणाम था जो उक्त दोनों देशों में चला आ रहा था। उस संघर्ष के कारण अमेरिका और फ्रांस के बीच युद्ध छिड़ने की कतई सम्भावना नहीं हो सकती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इंग्लैण्ड के अनेक नाविक (Sailors) अपने पदों और अपने जहाजों को छोड़-छोड़ कर अमेरिका के जहाजों में नौकरी करने आ रहे थे। चूंकि अमेरिका की नागरिकता सभी के लिए आसानी से उपलब्ध थी और चूंकि अमेरिका के जहाज अच्छे वेतन का लालच दे रहे थे अतः बहुत बड़ी संख्या में ब्रिटिश मल्लाहों ने अमेरिका में जाकर शरण ले ली, इंग्लैण्ड ने इस पर घोर आपत्ति की। इंग्लैण्ड के नागरिकता के सिद्धान्तों के अनुसार राष्ट्रीयता त्यागी नहीं जा सकती थी और चूँकि इंग्लैण्ड में कुशल नाविकों की अत्यन्त आवश्यकता थी इसलिए इंग्लैण्ड नहीं चाहता था कि उसके नाविक अपनी राष्ट्रीयता त्याग कर अमेरिका की राष्ट्रीयता ग्रहण करें। इसलिए इंग्लैण्ड ने अमेरिकी जहाजों की तलाशी न केवल युद्ध के अवैध माल की तलाशी के लिए बल्कि अपने भागे हुए नाविकों को पकड़ने के लिए भी करना शुरू की। इसके कारण अमेरिका बहुत ही ज्यादा चिढ़ गया और जब १८०७ में लियोपार्ड (the Leopard) नामक पचास तोपों वाले ब्रिटिश युद्ध पोत ने बिना चेतावनी दिये ही अमेरिका के चेसपीक (Chesapeake) नामक जहाज पर आक्रमण कर दिया और उसमें से चार भागे हुए ब्रिटिश नाविकों को पकड़ लिया तो ऐसा मालूम

---

१. १७८० और १८०० की तटस्थताओं के विरुद्ध यही मुख्य शिकायत थी। कागजी आर्थिक नाकेबन्दी का यह अर्थ था कि किसी देश को दूसरे देश के विरुद्ध आर्थिक घेरे की घोषणा उस समय तक नहीं करनी चाहिए जब तक कि उसके (घोषणा करने वाले देश के) पास पर्याप्त युद्ध-पोत न हों जिनसे वह उक्त आर्थिक नाकेबन्दी क्रियान्वित करा सकने की क्षमता रखता हो। "तटस्थ जहाजों द्वारा मुक्त वस्तुएँ पहुँचती हैं।" (Free Ships make Free goods) का अर्थ यह था कि कोई तटस्थ जहाज चाहे तो शत्रु देश के पास भी आवश्यक वस्तुएँ पहुँचा सकता था किन्तु उसे प्रतिषिद्ध वस्तुएँ लाने या ले जाने की आज्ञा नहीं थी।

2. Max Farrand : *The Development of the United States.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ने लगा मानो इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच युद्ध अत्यन्त निकट है। [उन चार भागे हुए नाविकों में से एक को इंग्लैण्ड में फाँसी दे दी गई और एक की मृत्यु हो गई और दो नाविकों को पाँच वर्ष की कठिन यातना के पश्चात् चेसपीक (Chesapeake) नामक जहाज पर वापस आने की आज्ञा दे दी गई।]

इस घटना के कारण अमेरिका में बहुत सनसनी फैली और यदि इसी समय जैफ़रसन (Jefferson) ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया होता तो समस्त देश ने जैफ़रसन का साथ दिया होता। किन्तु जैफ़रसन निश्चित नहीं कर सका और वह युद्ध को टाल गया। उसने शान्तिपूर्ण दवाव की नीति को पसन्द किया और अमेरिका के वन्दरगाहों से गुजरने वाले सव जहाजों पर १८०७ में प्रतिवन्ध लगा दिए। इस आज्ञा के फलस्वरूप अमेरिका का और विशेष रूप से न्यू इंग्लैण्ड (New England) नामक राज्य का सारा व्यापार ठप्प हो गया। यद्यपि वारम्वार उक्त १८०७ को निषेधाज्ञा को अधिक कड़ाई के साथ कार्यान्वित करने की आज्ञाएँ निकाली गईं किन्तु कोई फल नहीं निकला। अन्त में जव जैफ़रसन (Jefferson) ने देखा कि उक्त निषेधाज्ञा का अतिक्रमण अधिक हो रहा है और उससे अमेरिका के व्यापारिक हितों की हानि हो रही है तो उसने अन्त में उक्त १८०७ की निषेधाज्ञा को वापस ले लिया। जैफ़रसन के शासन की यह अन्तिम आज्ञा थी और यह उसके शासन की असफलता की परिचायक थी। अव उसने इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों के साथ व्यापारिक सम्वन्ध समाप्त कर दिये अथवा व्यापार-निषेध अधिनियम (Non-Intercourse Acts) पास कर दिये; किन्तु उसमें यह धारा भी वढ़ा दी कि यदि इंग्लैण्ड या फ्रांस अपने सपरिषद् आदेशों (Orders-in-Council) को वापस ले लें तो उनके साथ पुनः व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किए जा सकेंगे। किन्तु इन अधिनियमों से भी अमेरिका के व्यापारियों के कष्ट वढ़े ही। अमेरिका में जैफ़रसन की नीति को कायर तथा अपमानजनक समझा जा रहा था। इन्हीं दिनों जैफ़रसन के स्थान पर मैडीसन (Madison) अमेरिका का राष्ट्रपति बना। उसने जैफ़रसन की नीति को त्याग दिया। उसको आशा थी कि जैफ़रसन जो कुछ धौंस और दवाव द्वारा प्राप्त नहीं कर सका था उसे वह लालच देकर प्राप्त कर सकेगा। अतः उसने निश्चित किया कि अमेरिका को इंग्लैंड तथा फ्रांस दोनों देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध कायम रखना चाहिए और यदि उक्त दोनों देशों में से कोई एक भी अपने सपरिषद् आदेश वापस ले ले तो अमेरिका भी उस देश के साथ तो अपना व्यापार आरम्भ कर दे, किन्तु साथ ही उस दूसरे देश के साथ अपना व्यापार वन्द कर दे जिसने अपने सपरिषद् आदेश वापस न लिए हों।

इस निश्चय की पृष्ठभूमि में नेपोलियन की यह प्रतिज्ञा मैडीसन (Madison) के दिमाग में काम कर रही थी कि वह अमेरिका के विरुद्ध अपनी आज्ञाओं को वापस ले लेगा। अतः मैडीसन (Madison) ने ब्रिटेन को चेतावनी दी। काँग्रेस में युद्ध-प्रिय दल का प्रभाव था। हैनरी क्ले (Henry Clay) एक पश्चिमी प्रान्त का निवासी था और जॉन सी० कैलहॉन (John C. Calhoun) दक्षिण का प्रतिनिधि था। उन लोगों ने मैडीसन के ऊपर दवाव डाला कि वह राष्ट्रीय मान की रक्षा करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने युद्ध की माँग की और सरकार पर दबाव डाला कि वह सम्मान-हीन शिथिलता का मार्ग त्याग दे। पश्चिमी अमेरिका के लोगों को कनाडा से शिकायत थी, जो अमेरिका के इण्डियन लोगों को भड़काता रहता था। उस वर्ष राष्ट्रपति का निर्वाचन होने को था, अतः ऐसा समझा जाता है कि पुनर्निर्वाचित होने की आकांक्षा में उसने युद्ध करना मंजूर कर लिया। यह घटना उन दिनों की है जबकि संचार-साधन अविकसित थे और अमेरिका द्वारा युद्ध की घोषणा के पाँच दिन पूर्व ही इंग्लैण्ड की लोकसभा में घोषणा हो चुकी थी कि अमेरिका के विरुद्ध सपरिषद् आदेश समाप्त कर दिए जाएँगे।

युद्ध, १८१२-१४

इस युद्ध के तीन भाग थे। कनाडा (Canada) में युद्ध हुआ; समुद्रों में भी युद्ध हुआ और अमेरिका पर भी इंग्लैण्ड ने दो बार आक्रमण किये।

अनेक अमेरिकावासी चाहते थे कि कनाडा पर अमेरिका अधिकार कर ले। वे समझते थे कि यदि कनाडा के ऊपर अमेरिका का अधिकार हो जाता है तो फिर इंग्लैण्ड के साथ मनमानी शर्तों पर सन्धि की जा सकेगी। हैनरी क्ले ने शेखी भरे शब्दों में कहा था—"कैंटुकी राज्य (Kentucky) की सेना ही समस्त कनाडा और मॉन्ट्रियल (Montreal) को जीत सकती है।" इस अभिप्राय से कई प्रयत्न किये गये। एक प्रयत्न में टॉरण्टो (Toronto) को भारी क्षति भी हुई किन्तु कोई परिणाम न निकला। इंग्लैण्ड, कनाडा के बचाव में कोई भाग नहीं ले सका फिर भी कनाडा अपने ही पैरों पर अमेरिका के विरुद्ध खड़ा रहा तो भी उसने इंग्लैण्ड का साथ नहीं छोड़ा। कनाडा ने भी अमेरिका के ऊपर प्रत्याक्रमण किया किन्तु अमेरिका ने कनाडा को चैम्पलेन (Champlain) झील के युद्ध में करारी हार दी।

समुद्रों के इक्के-दुक्के जहाजों में यदाकदा युद्ध होते रहे। यद्यपि अंग्रेजों के दृष्टिकोण से सबसे महान् समुद्री युद्ध वह था जिसमें १८१३ में शैनन (Shannon) नामक अंग्रेजी जहाज के कप्तान ब्रुक (Brooke) ने चेसपीक (Chesapeake) नामक अमेरिकन जहाज को पकड़ लिया था; फिर भी सामुद्रिक युद्धों में अमेरिकनों ने अत्यन्त कुशलता से काम लिया और एक-एक जहाजों के युद्धों में प्रायः अमेरिका को ही विजय प्राप्त हुई थी। उदाहरणस्वरूप कॉंस्टीट्यूशन (The Constitution) नामक अमेरिकी युद्ध-पोत ने गेरियर (Guerriere) नामक जहाज को पकड़ लिया था और जावा (Java) नामक जहाज को उसने डुबा दिया था। अमेरिका की सामुद्रिक विजयों के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वत्र खुशियाँ मनाई गई थीं और इंग्लैण्ड में मातम सा छा गया था; किन्तु दोनों ही देशों में आश्चर्य अवश्य महसूस किया जा रहा था। इन विजयों से अमेरिका के आत्म-सम्मान को तुष्टि मिली। अमेरिका के जहाजों की कमान श्रेष्ठ और योग्य सेनापतियों के हाथों में थी जो प्रायः स्वयंसेवक थे। उनमें श्रेष्ठ तोपें लगी हुई थीं और उनका वजन भी आकार के प्रायः अनुरूप ही था इस लिए वे प्रायः अधिक गतिशील थे। किन्तु अन्त में सामुद्रिक युद्ध का पाँसा ब्रिटेन के ही हित में रहा था क्योंकि अंग्रेजी युद्ध-पोत बड़े थे और उनकी संख्या भी अमेरिकी जहाजों से कहीं अधिक थी। युद्ध समाप्त होने से पहले ही अमेरिकी जहाजों का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रों से सफाया हो चुका था।

प्रायद्वीप युद्ध (The Peninsular War) के समाप्त होने पर ही इंग्लैण्ड अपनी सेनाएँ अमेरिका की ओर भेज सका। इंग्लैण्ड ने अत्यन्त अनुभवी सैनिकों के दो दल अमेरिका भेजे। उनमें से एक दल ने वाशिंगटन (Washington) पर अधिकार कर लिया और वाशिंगटन के प्रसिद्ध ह्वाइट हाउस (White House) नामक सरकारी भवन पर भी अधिकार कर लिया और उसको जला डाला। दूसरा दल जो न्यू आर्लियन्स (New Orleans) पर अधिकार करने के लिए भेजा गया था बुरी तरह असफल रहा क्योंकि अमेरिकी जनरल एण्ड्रयू जैक्सन (Andrew Jackson) ने जनवरी १८१५ में उस दल को करारी हार दी। इस पराजय के समाचार के इंग्लैंड पहुँचने से पहले ही १८१४ में घैंट (Ghent) की सन्धि द्वारा युद्ध बन्द कर दिया गया था।

घैंट की सन्धि ऐसी शुभ मुहूर्त की सन्धि थी जो अभी तक टूट नहीं सकी है। सन्धि की शर्तों ने युद्ध के कारणों के सम्बन्ध में कोई विनिश्चय नहीं किये, यद्यपि नेपोलियन के युद्धों के समाप्त हो जाने के फलस्वरूप अमेरिकनों की तटस्थ व्यापार के अधिकार सम्बन्धी तथा इंग्लैंड से अमेरिका गए हुए ब्रिटिश नाविकों के सम्बन्ध की सारी शिकायतें स्वतः दूर हो गई थीं। घैंट की सन्धि (Peace of Ghent) के फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा के बीच विवाद समाप्त हो गये। दोनों देशों अर्थात् अमेरिका और कनाडा के बीच निश्चित किया गया कि कोई देश अपनी सीमा पर सेनाएँ नहीं रखेगा और यह भी निश्चित किया गया कि बड़ी झीलों (Great Lakes) के आस-पास से सेनाएँ हटा ली जाएँगी। इस प्रकार एक अत्यन्त शुभ नीति का सूत्रपात हुआ जिसकी सफलता को अभी तक सभी मानते हैं।

किन्तु युद्ध के फलस्वरूप संघवादी दल (The Federalist Party) की तो मानो मृत्यु ही हो गई। इस दल ने कुछ वर्ष पूर्व लूसियाना (Louisiana) के क्रय में भी बाधाएँ उपस्थित की थीं। युद्ध के कारण तथा युद्ध से पूर्व की अमेरिकी आर्थिक नीति के कारण भी लूसियाना प्रायः स्वतन्त्र होने के सपने देख रहा था। संघवादी दल (The Federalist Party) की मुख्य शक्ति न्यू इंग्लैंड (New England) नामक राज्य में थी जहाँ पर निषिद्ध व्यापार (Embargo) और व्यापार सम्बन्ध समाप्त कर देने वाली विधियों (Non-Intercourse Act) का सबसे घातक प्रभाव पड़ा था। उत्तरी राज्यों की सेनाओं ने कनाडा पर आक्रमण करना अस्वीकार कर दिया था; और न्यू इंग्लैंड (New England) ने तो ब्रिटिश सेनाओं की सहायता की थी। इंग्लैंड ने भी उक्त तीन राज्यों को आर्थिक घेरे से मुक्त कर रखा था। अन्त में १८१४ के अन्तिम दिनों में एक सम्मेलन हार्टफर्ड (Hartford) में बुलाया गया जिसमें वर्जीनिया और कैंटुकी (Virginia and Kentucky) के प्रस्तावों के सदृश प्रस्ताव उपस्थित किये जाने को थे। किन्तु घैण्ट (Ghent) की सन्धि के कारण उक्त सम्मेलन सफल नहीं हो सका। फिर भी पृथकतावादी सरगर्मियों के कारण संघवादी दल (The Federalist Party) की प्रतिष्ठा प्रायः समाप्त हो गई।

अतः अब डेमोक्रेटों (Democrats) और संघवादियों ने अपने-अपने प्रोग्रामों को आपस में बदल लिया। अब संघवादी लोग केन्द्रीय सरकार की शक्तियों को संकु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित अर्थों में ग्रहण करने लगे (Strict Constructionists); और वे राज्यों के विशेष अधिकारों के समर्थक बन गए। दूसरी ओर डेमोक्रेट लोग (The Democrats) संघीय सरकार के लिए अधिक अधिकारों की माँग करने लगे और वे चाहने लगे कि केन्द्रीय सरकार के क्रियाकलापों में वृद्धि हो। १८१६ में डेमोक्रेटों (The Democrats) ने जान बूझकर हैमिल्टन (Hamilton) की पुरानी नीति ग्रहण कर ली जिसके द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की, यद्यपि १८११ में इन्हीं लोगों ने राष्ट्रीय बैंक का आज्ञा-पत्र समाप्त कर दिया था। संघवादियों के समान ही इन लोगों ने भी पश्चिमी भाग में आरन-बर (Aaron-Burr) के षड्यन्त्र में भाग लिया था। वे संघवादियों के बाद जीवित तो रहे किन्तु उन्हें उनका कार्यक्रम अपनाना पड़ा था।

२. अमेरिका का विस्तार (१८१५-५०)

(The Development of America, 1815-50)

कई दृष्टिकोणों से १८१२ का युद्ध संयुक्त राज्य के इतिहास में नए युग का प्रवर्त्तक बना। इसने राष्ट्रीय चेतना की भावना को जन्म दिया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो अमेरिका में नए युग ने प्रवेश किया है। अमेरिका में धीरे-धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही थी जिसने अमेरिकावासियों के दृष्टिकोण को ही बदल दिया और उनके जीवन में आकाश-पाताल का अन्तर आ गया। वह पुराना अमेरिका धीरे-धीरे मिट रहा था जिसने १७७६ की क्रान्ति की थी। वह अमेरिका था ही क्या—केवल छोटा-सा पूर्वी पराधीन उपनिवेश था जिसमें मुश्किल से २० लाख व्यक्ति निवास करते थे और केवल छः बड़े नगर थे। १७७६ का वह अमेरिका कृषि-प्रधान देश था जिसमें उत्तर में कई स्थानों पर मछलियाँ पकड़ी जाती थीं, जो यूरोप की हर बात में नकल करता था और जो ब्रिटेन से प्रेरणा ग्रहण करता था। सत्य यह है कि अमेरिका की क्रान्ति पुराने अमेरिका को नष्ट कर रही थी। अमेरिका के सामाजिक और आर्थिक जीवन में मानो क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चले थे। अमेरिका के अछूते प्राकृतिक साधनों ने तो इस क्रान्ति में और अधिक शीघ्रता पैदा कर दी थी।

जार्ज वाशिंगटन (George Washington) की मृत्यु हो चुकी थी, और एलेक्जैंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) को केवल ४७ वर्ष की आयु में ही आरन-बर (Aaron-Burr) नाम के एक बदमाश की दुष्टता के कारण राजनीति से संन्यास लेना पड़ा था। आरन-बर (Aaron Burr) ने अमेरिका के इतिहास-नाटक में असफल खलनायक का रोल अदा किया था। ४ जुलाई, १८२६ को स्वतन्त्रता की घोषणा के ठीक ५० वर्ष पश्चात् जॉन एडम्स (John Adams) और टॉमस जैफरसन (Thoms Jefferson) भी काल के गाल में समा गए। अब अमेरिका के निर्माण का सारा बोझ नये नेताओं के कन्धों पर आ पड़ा। इन नये निर्माताओं में मुख्य व्यक्ति प्रमुख न्यायाधीश मार्शल (Chief Justice Marshall) था। वह वर्जीनिया (Virginia) का पुराने विचारों का व्यक्ति था। कुछ अन्य व्यक्ति, जिन्होंने अमेरिका के नव-निर्माण में योग दिया, निम्न थे—डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster), एंड्रयू जैक्सन (Andrew Jackson), हेनरी क्ले (Henry Clay), और जॉन काल्डवेल कैल्हाउन (John Caldwell Calhoun) आदि। वाशिंगटन (Washington), हैमिल्टन (Hamil-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ton) और जैफ़रसन (Thomas Jefferson) ने जिस नये राज्य की नींव रखी थी, अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों को पार करके दिन-प्रतिदिन उन्नतिशील और शक्तिशाली होता जा रहा था और अमेरिका अविनाश्य राज्यों के एक अविनाश्य एवं अत्यन्त दृढ़ संघ का स्वरूप धारण करता जा रहा था। कैण्टुकी प्रस्ताव (Kentucky Resolution) द्वारा और हार्टफर्ड सम्मेलन में जिस पृथकतावादी भावना के दर्शन हुए थे, वह भावना अमेरिका के बढ़ते हुए वैभव और उसकी बहुमुखी प्रतिभा में दब गई। १८२० के मिसौरी समझौते (Missouri Compromise) ने गुलाम प्रथा के प्रश्न की उग्रता को भी किसी सीमा तक धीमा कर दिया था। १८२१ तक अमेरिका में दस राज्य सम्मिलित हो चुके थे। वे एक विश्वास के साथ अमेरिका के संघ में प्रगति-पथ पर आरूढ़ हुए थे। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अमेरिका में राष्ट्रीय चेतना का उदय हो रहा है, अधिकाधिक आर्थिक और प्रादेशिक विकास होने जा रहा है तथा अमेरिका नए लोकतन्त्र का नया प्रतीक बनने जा रहा है। युद्ध के दिनों में के (Key) ने लिखा था कि 'हमारा ध्वज चमकते हुए सितारों का ध्वज है।' निस्सन्देह, १८१८ में अमेरिका का सितारों और धारियों का एक अत्यन्त सुन्दर ध्वज विकसित हुआ।

राष्ट्रीय चेतना का विकास

१८१२ में इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच जो युद्ध हुआ था, उसे प्रायः स्वतन्त्रता का द्वितीय युद्ध कहा जाता है। इस युद्ध ने नये आर्थिक अवसर प्रदान किये और सारे देश को एक नयी राष्ट्रीय चेतना प्रदान की। १८१२ के बाद अमेरिका से प्रान्तीयता की भावना मानो कूच कर गई। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् अमेरिका का यह प्रथम राष्ट्रीय युद्ध था। यद्यपि १७९८ में भी युद्ध हुआ था किन्तु उसको युद्ध कहना उचित न होगा क्योंकि वह तो कुछ नाविकों और मल्लाहों के करतब मात्र थे जिनको राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के हेतु बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया था। यद्यपि कहीं-कहीं पृथकतावादी भावना ने भी सर उठाने का यत्न किया था किन्तु आमतौर पर सारा देश एक सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना के सहारे कार्य कर रहा था। संघवादी दल (The Federalist Party) के कमजोर हो जाने का मुख्य कारण यही था कि उसने राष्ट्रीय भावना के साथ गद्दारी की।

विदेशी सम्बन्ध

विदेशी सम्बन्धों के निर्वहन में भी अमेरिका की प्रतिष्ठा बढ़ी। १८१६ में संयुक्त राज्य अमेरिका के कनाडा के साथ कुछ व्यापारिक प्रश्नों पर मतभेद हो गए, किन्तु उक्त मतभेद को लेकर संयुक्त राज्य ने ग्रेट ब्रिटेन के प्रति ऐसा कठोर रुख अपनाया कि ग्रेट ब्रिटेन को अमेरिका के सामने झुकना पड़ा। जॉन एडम्स (John Adams) ने लिखा था—"स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात् अब की बार संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत ही एक छोटे प्रश्न पर ब्रिटेन के विरुद्ध अड़ गया था, और उसने अपने मन की कर ली।"[1] अब तक अमेरिका हीनभावना के आश्रित अपने

1. Quoted by Max Farrand, *The Development of the United States.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी सम्बन्धों का निर्वहन किया करता था। अब उस हीनभावना का अन्त हो गया। जे की सन्धि (Jay's Treaty) अथवा फ्रांस के साथ समझौते आदि अर्द्ध विजयों का युग बीत चुका था। इस बार अमेरिका को ग्रेट ब्रिटेन के ऊपर भारी कूट-नीतिक विजय प्राप्त हुई थी।

छः वर्ष उपरान्त मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) की घोषणा हुई जिसके द्वारा अमेरिका ने यूरोप के पवित्र सन्धि वाले देशों को अमेरिका से दूर रहने का आदेश दिया। काँग्रेस को दिए गए अपने एक प्रसिद्ध सन्देश में राष्ट्रपति मनरो (Monroe) ने कहा था—"अमेरिका के स्वतन्त्र राज्य पूर्ण स्वतन्त्र हैं, अतः भविष्य में कोई यूरोपीय देश हमारे स्वतन्त्र राज्यों में उपनिवेश न बसा सकेगा.....। पवित्र सन्धि में आबद्ध यूरोपीय देशों की शासन-व्यवस्था अमेरिका की शासन-व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है.....।

.....अतः हम विनम्रतापूर्वक किन्तु निर्भय होकर यह घोषणा करते हैं कि अमेरिका के साथ उक्त यूरोपीय देशों के अच्छे सम्बन्ध तभी रह सकते हैं जबकि वे अपनी शासन-व्यवस्था को हमारे ऊपर लादने के प्रयत्न छोड़ दें। हम अपनी स्वतन्त्रता और सुरक्षा के लिए यूरोपीय देशों की अमेरिका में घुसपैठ को हानिकर समझते हैं।"

सम्भवतः उस समय मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) का केवल यही अर्थ लगाया जाता था कि अमेरिका यूरोपीय देशों को अपना आर्थिक शोषण न करने देगा और वह प्रशा (Prussia) तथा ऑस्ट्रिया (Austria) में स्वेच्छाचारी शासनों का समर्थन नहीं करेगा; इसका यह अर्थ भी लगाया जा रहा था कि अमेरिका के राजनीतिक जीवन में न तो वैधता या न्याय्यता (legitimacy) को और न प्रति-क्रियावाद (reaction) को ही कोई स्थान मिलेगा। संक्षेप में मनरो सिद्धान्त का यही अर्थ लगाया जा रहा था कि नई दुनिया में लोकतन्त्र की रक्षा की जायगी और इसके बदले में स्वयं अमेरिका भी यूरोप में अपने लोकतन्त्रात्मक विचारों का प्रचार नहीं करेगा और न वह यूरोपीय शक्तियों के झगड़े में हस्तक्षेप करेगा। उसी समय अमेरिका यह भी चाहता था कि रूस का अलास्का (Alaska) की ओर बढ़ना रुक जाय और स्पेन के अमेरिकी उपनिवेशों पर फ्रांस का अधिकार हो जाय। मुख्य रूप से अमेरिका की नीति इस कारण सफल रही कि ग्रेट ब्रिटेन की शक्ति का हाथ अमेरिका की पीठ पर था।

मनरो सिद्धान्त

परन्तु मनरो सिद्धान्त अशुभ मार्ग का सूचक सिद्ध हुआ। जैसे-जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका शक्तिशाली होता गया, वह अपने हितों के अनुकूल मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) की व्यवस्था करने लगा और इस प्रकार मनरो सिद्धान्त अमेरिका के हितों को साधने वाला एक साधन बन गया। इस सिद्धान्त को अपने विभिन्न हितों के अनुकूल बनाने के लिए अमेरिकन लोग उसकी मनमानी व्याख्या करने लगे और इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने आपको पश्चिमी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार का संरक्षक बना लिया। इस प्रकार वह सिद्धान्त सर्वअमेरिकनवाद[1] की ओर एक संकेत था और साम्राज्यवाद का अग्रगामी था। अब अमेरिका नई दुनिया के दोनों भागों (North and South Americas) पर स्वामित्व स्थापित करने के लिए लालायित दीख पड़ा। इस सिद्धान्त के अनुसार अमेरिका के गणराज्य का यूरोप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। मनरो सिद्धान्त मानो इस तथ्य की घोषणा थी कि अमेरिका का यूरोप से राजनीतिक विच्छेद हो गया। वह अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा का मानो पूरक था।

किन्तु वास्तव में अमेरिका की रुचि अब यूरोप से हटकर एशिया की ओर जाग्रत हो रही थी। अमेरिका में यह विश्वास घर कर रहा था कि उसका भाग्योदय पश्चिम दिशा में होगा न कि पूर्व में। सत्य यह है कि अमेरिका की महत्त्वाकांक्षाएँ तभी पूर्ण हो सकती थीं जब कि वह यूरोप की ओर से कुछ समय के लिए विमुख हो जाय और अपना सारा ध्यान पश्चिम की ओर लगाये। इसलिए मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) वास्तव में अमेरिका के विस्तार की कहानी का आरम्भ मात्र था। अमेरिका की साम्राज्यवादी लिप्सा की पृष्ठभूमि में ही टेक्सास (Texas) पर, ओरीगन (Oregon) पर और कैलीफ़ोर्निया (California) पर अमेरिका के अधिकार की काली छाया को समझा जा सकता है। साम्राज्यवाद की आड़ में ही अमेरिका ने क्यूबा (Cuba) नाम की स्पेन की बस्ती और ब्रिटेन के कनाडा (Canada) नामक उपनिवेशों को लेने का प्रयत्न किया था। अमेरिका में राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था और यद्यपि उस समय यूरोप अमेरिका की वास्तविक इच्छाओं को समझ नहीं पाया फिर भी वह अमेरिका की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्व-सूचना थी।

अमेरिका की राष्ट्रीय चेतना का विकास अन्य क्षेत्रों में भी देखा गया। यदि उस समय के प्रसिद्ध अमेरिकनों के व्याख्यानों को पढ़ा जाय, यदि स्टीफन डीकेटर के उस प्रसिद्ध टोस्ट सम्बन्धी भाषण (Toast) को पढ़ा जाय जिसमें उसने कहा था—"चाहे गलत करें चाहे सही करें, हम अपने देश का समर्थन करेंगे ही" और डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster) के उन वाक्यों को पढ़िये जिसमें उन्होंने अमेरिका की सरकार को पूर्ण स्वतन्त्र और एकमात्र प्रतिनिधिक शासन बताया था, तथा जिसमें पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया था। यही नहीं, उसने यह भी कहा था कि अमेरिका में सभी को इतना विचार-स्वातन्त्र्य है, सभी को ज्ञान उपलब्ध करने के इतने अपार अवसर हैं जितने कि अन्यत्रकिसी देश में नही हैं।

इस काल में साहित्य के क्षेत्र में भी अमेरिका में चामत्कारिक उन्नति हुई। साहित्य के साथ ही विधि-विधान और विश्व-प्रेम की ओर भी अमेरिकनों की रुचि बढ़ी। १८२९ में एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना (Encyclopaedia Americana) प्रकाशित हुई और इसी काल में इमरसन (Emerson), हॉथॉर्न (Hawthorne), फेनीमोर (Fenimore), कूप (Cooper), पो (Poe), ह्विटियर (Whittier),

---

१. राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने दिसम्बर १९०४ में इस विचार को सरकारी मान्यता प्रदान की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लांगफेलो (Longfellow), बेंक्राफ्ट (Bancroft) और हॉम्स (Holmes) आदि साहित्यिक, राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण कर रहे थे। इसी समय जॉन मार्शल (John Marshall) जैसा विद्वान् और यशस्वी मुख्य न्यायाधीश अवतरित हुआ जिसने अपने न्यायिक निर्णयों से देश की एकता को सुरक्षित रखा और जिसके प्रसिद्ध निर्णयों के कारण अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को संसार का सर्वश्रेष्ठ न्यायाधिकरण समझा जाता है। मार्शल (Marshall) के सम्बन्ध में जॉन एडम्स (John Adams) ने भविष्यवाणी की थी कि वह हेल (Hale), होल्ट (Holt) और मेन्सफील्ड (Mansfield) की प्रतिभाओं वाला एक महान् न्यायाधीश सिद्ध होगा और यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकली।

इसी समय देश में व्यापार की अपूर्व वृद्धि हुई, यातायात के साधनों का भी विस्तार हुआ, अनेक सड़कें बनीं, नौ-साधनों की भी उन्नति हुई, ऐरी नहर (Erie Canal) खुली, प्रथम बार अग्निबोट (Steamboat) के दर्शन हुए जिसने नौ व्यापार में अपूर्व वृद्धि की, नई रेलें बनीं जिनको प्रारम्भ में हास्यास्पद बताया गया, आदि, आदि। इन सब विकासों और परिवर्तनों के फलस्वरूप देश में अपूर्व एकता के भाव जागे। इनसे पूर्वी और पश्चिमी अमेरिका का संयोग हुआ और उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका में भी प्रेम-भाव के दर्शन हुए। इस सब के बावजूद देश में जो आर्थिक समृद्धि आई, वह राष्ट्रीय समैक्य के मार्ग में काँटा बन गई।

अमेरिका के इतिहास के मध्य-काल का वास्तविक तथ्य यह है कि अमेरिका ने जो भारी आर्थिक उन्नति की है, वह राष्ट्रीय उन्नति न होकर केवल क्षेत्रीय उन्नति ही रही। दुर्भाग्यवश उत्तरी, दक्षिणी और पश्चिमी अमेरिका के विभिन्न आर्थिक हित थे जिसके कारण देश में अनेक राजनीतिक समस्याएँ उठ खड़ी हुईं और अंत में जिसके कारण गृह-युद्ध भी हुआ। डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster) ने लिखा था, "हमारे पतन की पराकाष्ठा हो गई है। कोई संघ के हितों की दुहाई देता है, तो कोई लोकतन्त्र का पक्ष लिए हुए है। कोई दिवालियों का हितरक्षक है तो कोई कट्टर रूढ़िवाद का समर्थक है। किसी का मध्य अमेरिका की उन्नति में स्वार्थ है तो कोई किसी अन्य क्षेत्र की दुहाई देता है। किन्तु दुःख की बात यह है कि किसी को राष्ट्रीय हितों की चिन्ता नहीं है। सत्य यह है कि सभी ने राष्ट्रीय हितों को तिलांजलि दे डाली है।" किन्तु डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster) ने क्षेत्रीय हितों की सूची अधूरी ही दी। इस समय अमेरिका में एक ओर श्रमिकों के हित थे तो दूसरी ओर मिल-मालिकों के भी हित थे, एक ओर गुलामों के हित थे तो दूसरी ओर गुलाम-पतियों के हित थे; एक ओर रूई-कपास के हित थे तो दूसरी ओर लोहे और इस्पात के हित थे, एक ओर फैक्टरियों के हित थे तो दूसरी ओर कृषकों के हित थे; संक्षेप में उत्तर के हित दक्षिण के हितों से टकराते थे और पूर्वी अमेरिका के हित पश्चिमी अमेरिका के हितों से टकराते थे।

क्षेत्रीय आर्थिक विकास

१८१२ के युद्ध के फलस्वरूप अमेरिका में ब्रिटिश तैयार माल का आयात प्रायः बन्द हो गया; अतः अमेरिका को आवश्यक वस्तुओं के लिए आत्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भर होना पड़ा। अमेरिका के उत्तरी और मध्यवर्ती राज्यों के शिशु उद्योगों को इससे भारी प्रोत्साहन मिला। उत्तर में अनेक कल-कारखाने खुल गए और व्यापक औद्योगिक विकास के दर्शन हुए। किन्तु अमेरिका और यूरोप के बीच शान्ति सन्धि के उपरान्त यूरोप की अमेरिकी व्यापार के साथ प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी, अतः उत्पादकों अथवा मिल मालिकों ने दुहाई दी कि शिशु उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया जाय। इसके अतिरिक्त उत्तर में श्रमिक आन्दोलन भी सर उठाने लगे थे, क्योंकि कोई भी श्रमिक तत्कालीन अमेरिका में दैनिक मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार न था—बात यह थी कि कोई भी श्रमिक पश्चिमी अमेरिका में जाकर ज़मीन प्राप्त करके स्वयं मालिक बन सकता था। अतः श्रमिकों को उदार छूट देनी पड़ी; उनके वेतन बढ़ाये गये, काम के घण्टे कम कर दिये गये। फलस्वरूप अनेक शिशु उद्योगों के पैर लड़खड़ाने लगे और वे बिना सरकारी संरक्षण के अपने पैरों पर खड़े रहने में असमर्थ थे। अमेरिका के कई सहिष्णु राष्ट्रपतियों ने हाथ-करघे के बुने कपड़ों का प्रयोग किया ताकि अमेरिका के घरेलू उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय। राष्ट्रपति मेडीसन (Madison) स्वयं लिविंगस्टोन (Livingstone) के फार्म के कपड़े पहना करता था। यह रक्षण प्रशुल्क (Protective tariff) की दिशा में कदम था जिसका श्रीगणेश १८१६ में किया गया था, और जिस पर अगले १५ वर्षों में डटकर प्रयोग किया गया। कुछ समय के पश्चात् इन आगम शुल्कों से बचत होने लगी। इस बचत के धन को शनैः-शनैः आन्तरिक विकासों के कार्यों पर व्यय किया गया और उसी धन से देश में यातायात और संचार के साधनों का विकास किया गया।

उत्तरी अमेरिका के उत्तरी राज्य

किन्तु इसके विपरीत जहाँ अमेरिका के उत्तरी भागों में उत्पादकों, धनाढ्यों, पूँजीपतियों और महाजनों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों आदि का बोलबाला था, जो उच्च आगम शुल्कों से मालदार होना चाहते थे और जो अपने तैयार माल के लिए बाजार स्थापित करने के अतीव इच्छुक थे तथा जो हर प्रकार से उन्नति करना चाहते थे; वहीं दक्षिणी अमेरिका में किसान लोग रहते थे जिनके अधिकार में अनेक गुलाम थे। वे अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को उत्तरी भागों से खरीदने पर बाध्य थे; अपनी खेती के योग्य ढोर और बीज आदि के लिए वे पश्चिमी अमेरिका पर आश्रित थे। दक्षिणी भाग के लोग घोड़ों की सवारी के शौकीन थे और आज्ञा देने के अभ्यस्त थे। संक्षेप में, दक्षिणी अमेरिका के लोग वीर और लड़ाकू प्रकृति के योद्धा थे।

दक्षिणी अमेरिका

सम्भवतः, उद्योगीकरण और गुलाम प्रथा में जातिगत बैर है। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच आरम्भिक वैर-भाव का कारण यह भी हो सकता था कि कपास-सभ्यता का प्रभाव दक्षिण पर अधिक पड़ा, जहाँ उद्योगीकरण देर से आया। दक्षिणी अमेरिका की समृद्धि, उसका इतिहास, वास्तव में दक्षिणी अमेरिका का भाग्य ही कपास के पौधे पर और रूई ओटने की जिन (gin) नामक मशीन पर आश्रित था। १७९३ में रूई ओटने की मशीन (gin) का आविष्कार एली विटने (Eli Whitney) नामक एक येल विश्वविद्यालय के विद्यार्थी ने किया था। उक्त मशीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपास में से विनौला अलग कर देती थी और रेशे को अलग कर देती थी।

आधुनिक काल में रूई ने हमारे जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। रूई के वस्त्रों की माँग सारे संसार में १९ वीं शताब्दी में विशेष रूप से बढ़ी है। पहले जहाँ प्रायः सभी लोग अपने बड़े भाइयों या बहनों या माताओं अथवा पिताओं के उतारे हुए पुराने किन्तु कीमती ऊनी या रेशमी वस्त्र पहना करते थे, अब आमतौर पर सभी लोग नये किन्तु सस्ते और कम दिनों चलने वाले सूती वस्त्र पहिनने लगे। परिवारों में रेशमी बिछौनों का स्थान सूती गद्दों और दरियों ने ले लिया और जहाँ पहले सभी जहाजों के पाल रेशमी वस्त्रों के बनाये जाते थे, अब केवल युद्ध-पोतों में तो रेशमी पालों का प्रचलन रहा किन्तु शेष सब प्रकार के जहाजों में सूती पाल प्रयुक्त होने लगे। यही नहीं, संसार के जिन असभ्य लोगों में स्त्री और पुरुष कपड़े से शरीर को ढकते ही न थे, उन भागों में अब अधिकाधिक सूती वस्त्रों की माँग बढ़ने लगी।[1]

इस सामाजिक क्रान्ति के फलस्वरूप न केवल लंकाशायर (Lancashire) की श्रीवृद्धि हुई; बल्कि उत्तरी अमेरिका के कतिपय दक्षिणी राज्यों की भी समृद्धि हुई। जहाँ कहीं कपास योग्य भूमि मिली, वहीं कपास की खेती शुरू की गई। दक्षिणी राज्यों की देखा-देखी अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में भी कपास की पैदावार बढ़ी; इस प्रकार दक्षिण-पश्चिमी अमेरिका में कपास की उपज बहुत बढ़ गई और इन भागों में समान आर्थिक हित विकसित हुए। अब ये लोग अपनी कपास की पैदावार को इंग्लैण्ड या उत्तरी अमेरिका के बाजारों में भेजने लगे।

रूई की पैदावार और सूती वस्त्रों की अत्यधिक माँग के साथ दक्षिणी राज्यों की समृद्धि जगी और उस भू-भाग की सामाजिक व्यवस्था में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। यही नहीं, यह गुलाम-प्रथा की भी जननी थी। रूई के नरम गोलों में से ही गुलाम प्रथा का जन्म हुआ।

प्रारम्भ में गुलाम प्रथा को अस्थायी दोष समझा जाता था। किन्तु धीरे-धीरे वह दोष अमेरिका में स्थायी घर कर गया। उस समय ऐसा समझा जाने लगा था कि बिना दास-प्रथा के श्रमिक-समस्या हल ही नहीं हो सकती। धीरे-धीरे दास-प्रथा का महत्त्व बढ़ा और बाद को तो यह व्यापारिक लाभ की कुञ्जी मानी जाने लगी। कपास के पौधे के साथ-साथ दास-प्रथा पश्चिम की ओर भी पहुँची; और दक्षिणी अमेरिका ने अपनी आर्थिक व्यवस्था को ठीक करने के लिए ऐसे नियम बनाना तो आवश्यक समझा जिनसे गुलाम भाग न सकें किन्तु उन्होंने उच्चतर आगम शुल्क लगाना उतना आवश्यक नहीं समझा। इस प्रकार उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की आर्थिक आवश्यकताओं में आकाश-पाताल का अन्तर था। सत्य यह है कि दोनों की अर्थ-व्यवस्थाएँ एक दूसरे के विरुद्ध थीं। उत्तरी राज्य सस्ते मजदूर चाहते थे; किन्तु दक्षिणी राज्य उत्तरी राज्यों की बनी सस्ती चीजें चाहते थे। अतः दक्षिणी राज्य ऊँची आगम शुल्कों की दरों से चिढ़ते थे क्योंकि उन्हें तैयार माल के लिए अधिक कीमत चुकानी पड़ती थी। दक्षिणी राज्यों को यह भी पसन्द नहीं था कि उच्चतर

1. E. Channing, *History of the United States*, Vol. IV, p. 407.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगम शुल्कों से जो अतिरिक्त आय उत्तरी राज्यों को होती थी वह देनी तो पड़ती थी दक्षिण के लोगों को किन्तु उस धन से लाभ होना था उत्तरी राज्यों को। इसी प्रश्न ने राज्यों के अधिकारों के सिद्धान्त को जन्म दिया जिसका प्रतिपादन कैलहाउन (Calhoun) और हेन (Hayne) ने किया था और १८३१-३२ के आगम शुल्कों सम्बन्धी विवाद के अवसर पर यह प्रश्न मूर्त्त-स्वरूप धारण कर गया। यद्यपि उस प्रश्न-विशेष पर तो उक्त सिद्धान्त लागू नहीं हो सका, किन्तु निःसन्देह दक्षिणी राज्यों ने अच्छी तरह से समझ लिया था कि राज्यों की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता ही उनके आर्थिक हितों का रक्षण करेगी। अतः, दास-प्रथा के प्रश्न पर दक्षिणी राज्यों ने अपनी प्रभुता (Sovereignty) की दुहाई दी।

पश्चिमी राज्य

किन्तु पश्चिमी राज्य न तो सस्ते मजदूर चाहते थे और न वे सस्ता माल चाहते थे। वे तो सस्ती जमीनें चाहते थे। पश्चिमी राज्य न तो उद्योग-प्रधान थे और न वे कृषि-प्रधान थे; वे तो जमींदारों के बड़े-बड़े इलाके थे। पश्चिमी भू-भाग में साहसिक शिकारी लोग, और मुख्यतः नये उपनिवेशी लोग जाकर बसे थे जो पुराने राज्यों को छोड़कर खेती-योग्य जमीनों या जानवरों की चरागाहों की तलाश में पश्चिम में जा बसे थे। वे लोग कम दरों पर जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों की तलाश में थे। उन्होंने तत्कालीन सरकार पर यहाँ तक दबाव डाला कि १८२० में अस्सी एकड़ के टुकड़े सवा डालर प्रति एकड़ के हिसाब से बिके। इसके अतिरिक्त अपनी जमीनों को खरीदने और उनको विकसित करने के लिए उन्हें पूंजी की भी आवश्यकता थी। और वे लोग सस्ती ब्याज की दरों पर पूंजी चाहते थे। इस प्रकार पश्चिमी अमेरिका कर्जदारों या आसामियों का क्षेत्र बना; और स्वभावतः ही इस भाग के लोग सस्ती और प्रचुर मुद्रा के इच्छुक थे। वे चाँदी या कागज की मुद्रा को अधिक पसन्द करते थे किन्तु स्वर्ण-मुद्रा उन्हें उतनी प्रिय नहीं थी। वे स्थानीय साहूकारों से ऋण लेना अधिक पसन्द करते थे किन्तु राष्ट्रीय बैंक की कठोर शर्तों का पालन उन्हें दूभर लगता था। इसके विपरीत पूर्वी अमेरिका ऐसे पूंजीपतियों का प्रदेश था जो स्थायी मुद्रा और दृढ़ वित्तीय व्यवस्था के इच्छुक थे। चूंकि पूर्वी भागों की रुचि उद्योगीकरण और उत्पादन-वृद्धि में थी, अतः वे जमीनों की ऊँची दरों से प्रसन्न होते थे क्योंकि सस्ती जमीनों की ओर उनके श्रमिक लोग खिंचे चले जा रहे थे, जिससे उनकी अर्थ-व्यवस्था डगमगा रही थी।

निस्सन्देह अमेरिका के आश्चर्यजनक विकास में पश्चिमी अमेरिका का बहुत भारी हाथ रहा है। पश्चिमी अमेरिका की बेकार जमीनों का इस सीमा तक विकास हुआ है कि अब उस भाग की एक-एक इञ्च जमीन से सुमधुर साहित्य, विकसित अर्थ-व्यवस्था, उच्चतम राजनीति और सुसंस्कृत संस्कृति की भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही है। लगभग एक शताब्दी तक संयुक्त राज्य अमेरिका की भौगोलिक सीमाओं का विस्तार होता रहा है। अमेरिका का प्रायः एक शताब्दी का इतिहास उसके आविष्कर्त्ताओं और उपनिवेशियों का इतिहास रहा है। वास्तव में अमेरिका का इतिहास इस तथ्य की एक लम्बी कहानी है कि वहाँ पर आ बसने वाले लोगों ने किस प्रकार प्रकृति पर विजय प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की; उन्होंने किस प्रकार वहाँ के जंगलों को खेतों में परिणत किया; और किस प्रकार मूल निवासियों को बाहर खदेड़कर उन्होंने जंगलों को साफ किया तथा किस प्रकार उन्होंने घने जंगलों में मार्ग निकाले। निस्सन्देह अमेरिका का इतिहास विस्तार का इतिहास है जहाँ यूरोप के प्रायः सभी देशों के लोगों ने आकर उस विस्तार में योगदान किया। यूरोप के राजनीतिक संकटों के कारण भी अनेक लोग अपने देशों को छोड़-छोड़कर अमेरिका जाने पर विवश हुए। यह अनोखी घटना थी जो आज तक किसी सभ्य देश के इतिहास में घटित नहीं हुई है। हैरियट मार्टीन्यू (Harriet Martineau) का कथन है कि "लोगों के झुण्ड के झुण्ड कबूतरों के झुण्डों की तरह अपने-अपने देशों को छोड़कर अमेरिका की ओर प्रयाण कर रहे थे।" वह आगे लिखता है—"१८३० के आसपास सभी लोगों को केवल एक ही लालसा थी—कि किसी भी प्रकार अमेरिका में कुछ जमीन हासिल की जाय। अमेरिका के लोगों की सभी सामाजिक बीमारियो का केवल एक ही इलाज था कि किसी भी कीमत पर अमेरिका में भूमि अर्जित कर ली जाय। यदि कोई व्यक्ति राजनीति या प्रेम में निराश होता था तो भी उसके लिए केवल एक ही मार्ग था कि वह ज़मीन खरीदकर नया जीवन प्रारम्भ करे। यदि किसी व्यक्ति की बेइज्जती हो जाये तो वह जमीन खरीदकर पश्चिमी भाग में नए सिरे से जीवन प्रारम्भ करना ही ठीक समझता था। यदि किसी चीज़ की माँग कम हो जाती थी तो भी उत्पादक को नए प्रदेश की ही शरण लेनी पड़ती थी। यदि किसी नागरिक को ऐसा आभास होता था कि उसके पड़ोसी उससे आगे बढ़ गए हैं तो भी वह सुनसान और अविकसित क्षेत्र में जाकर ही अपने मन की पीड़ा को शान्त कर सकता था। प्रत्येक कारीगर इसीलिए काम करता था कि मरते समय वह अपनी ज़मीन पर मरे। प्रत्येक किसान इसलिए कम खर्च करता था कि वह अपने पुत्र को ज़मीन का मालिक बना सके। किसानों की लड़कियाँ भी तो पुतलीघरों में नौकरी करने निकल जाती थीं ताकि वे पैसा पैदा करके अपने माता-पिता की जमीनों का कर्ज अदा करें और इस प्रकार स्वयं स्वतन्त्र जमीन-मालकिन बनने का गर्व अर्जित कर सकें।"[1].

वर्जीनिया (Virginia) और कैरोलीनस (Carolinas) से लोग टेनेसी (Tennessee) और केन्टुकी (Kentucky) पहुँचे और वहाँ से इण्डियाना (Indiana), इलिनोइस (Illinois) और मिसौरी (Missouri) पहुँचे। उसी प्रकार दक्षिण की ओर से मेक्सिको की खाड़ी के पास से गुजरता हुआ अपार जन-प्रवाह मिसीसिपी (Mississippi) तक टेक्सास (Texas) में प्रवेश कर गया और उत्तर की ओर से लोगों ने आयोवा (Iowa) और मिनेसोटा में प्रवेश किया। कुछ दिन बाद कुछ राजनीतिक धर्म-प्रचारक ओरीगन (Oregon) में जा पहुँचे और पश्चिम-दक्षिण में सोने की खानों के लालच ने लाखों व्यक्तियों को कैलीफ़ोर्निया (California) में आकर्षित किया। १८३० के आस-पास रेलों का प्रचलन हुआ और घास के मैदानों में रेलों के साथ अपार जनसमूह पहुँच गया; फिर भी १८६० तक मिसीसिपी (Mississippi) से

1. Harriet Martineau, quoted by Max Farrand in *The Development of the United States.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे मनुष्यों की आबादी नहीं पहुँच सकती थी। सत्य यह है कि पश्चिमी अमेरिका की सभ्यता बहुत ही नई है।

१७८७ में अमेरिकी संघ सरकार ने एक अध्यादेश द्वारा अविकसित और अविनियोजित जमीनों का सर्वेक्षण, बिक्री और विनियमन अपने हाथों में ले लिया। किन्तु अग्रगामी लोगों में बेहद जोश था। उन्होंने सर्वेक्षण करने वालों से पहले ही जमीनों पर कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि सरकार ने हर सम्भव उपाय से ऐसे लोगों को रोका, फिर भी वे असर्वेक्षित जिलों में जबर्दस्ती घुसपैठ करने लगे और उन लोगों से झगड़ा करने लगे जिन्होंने वैध तरीके से उन जमीनों पर अधिकार प्राप्त किया था। अन्त में सरकार को दबना पड़ा और उन लोगों को स्वीकार करना पड़ा जिन्होंने अवैध रूप से जमीनों पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार अनधिकृत अधिकार करने वालों को बढ़ावा मिला।

प्रायः सभी राष्ट्रों के इतिहासों का ताना-बाना उनकी प्रादेशिक सीमा के चारों ओर पूरा जाता है। उदाहरणार्थ रोम (Rome) का इतिहास उसकी विकसित रक्षा पंक्तियों के आस-पास लिखा गया ; प्रशा (Prussia) के इतिहास में उसके दलदली क्षेत्रों का भारी महत्त्व है, और इंग्लैण्ड के इतिहास पर और उसकी सारी प्रादेशिक सुरक्षा पर उसके समुद्री किनारे ने बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है। किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका का सीमान्त न तो देश को सुरक्षा प्रदान करता है और न वह उसके लिए कोई रोक पैदा करता है। सत्य यह है कि अमेरिका का सीमान्त एक अपूर्व अवसर और एक अपूर्व खजाना प्रदान करता था। अतः उन अपूर्व अवसरों और खजानों की तलाश में करोड़ों लोग पुरानी और नई दुनिया से दौड़े चले आये।

सीमान्त

द्वितीयतः इस अपार जन-समूह के प्रवास के फलस्वरूप जो सभ्यता संयुक्त राज्य अमेरिका में आई वह कुछ नई प्रकार की ही सभ्यता थी। इन लोगों का जीवन अनवरत संघर्ष का जीवन था। उन्हें प्रकृति से, खूँखार जानवरों से, आदिम मूल निवासियों से और साथी उपनिवेशियों से लगातार संघर्ष-रत रहना पड़ता था। वे लोग ऐसा जीवन व्यतीत करते थे मानो डेरों में रहते हों और सदैव जुआ खेलते हों, उनका धर्म और उनका वेदान्त केवल शिकार खेलने तक सीमित थे ; वे प्रायः अर्द्ध-जंगली जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनका अनुशासन 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' पर आश्रित था। यह प्रदेश जेलों से भी बदतर था। उन लोगों में चुनाव भी होते थे किन्तु चुनावों का निर्णय घूंसों से अधिक होता था, मतों से कम। उन लोगों में पढ़े-लिखे लोग प्रायः बिलकुल नहीं थे और किसी धार्मिक पादरी के लिए यह आवश्यक माना जाता था कि वह कुर्सी बुनना जानता हो या लकड़ी चीरने में सिद्ध-हस्त हो। लोगों का कथन था—"बुजदिल कोई तरक्की नहीं कर सकते और कमजोरों की मौत पहले होती है।" यही अमेरिका के सीमान्तों का जीवन था। किन्तु इस बुराई में भी मीठा फल छिपा था। ऐसे कठोर और संघर्षमय जीवन ने उन लोगों को अदम्य उत्साह, कठोर सहिष्णुता और दृढ़ता, साधनपूर्णता, पौरुष, तेज, व्यग्रता और ऐसा व्यक्तित्व प्रदान किया जिसने उन्हें महान् राष्ट्र का जनक बनाया ; किन्तु उक्त जीवन के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलस्वरूप जिस प्रकार के लोकतन्त्र का सूत्रपात अमेरिका में हुआ उसके अनुसार उस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का बोलबाला था, इस प्रकार के जीवन ने लोगों में ईमानदारी और चालाकी के भाव जाग्रत किये। वे दयालु और बर्बर एक साथ ही बने। साथ ही संघर्षमय जीवन-जन्य काल्पनिकता ने भी उनके चरित्रों में घर कर लिया। किन्तु उनके चरित्रों में परम्पराओं के प्रति भक्ति अथवा संस्कृति, अथवा गाम्भीर्य का प्रवेश न हुआ और वे स्वभावतः विधियों का पालन करने वाले न बन सके। उस समाज में शिक्षा के प्रति विशेष मोह न था। सत्य यह है कि "अमेरिका में एक साथ ही ऐसे समाज का उदय हो रहा था जो असभ्य और जंगली था किन्तु जो अत्यधिक सुसंस्कृत भी था।"[1]

इमर्सन (Emerson) ने लिखा था—"यूरोप एलीघनीज (Alleghenies) तक फैला हुआ है और अमेरिका उससे परे है।" लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) ने भी इस मत की पुष्टि की है। किन्तु पूर्वी अमेरिका पश्चिमी अमेरिका के सामने मन्दाभ हो चुका है। पश्चिमी अमेरिका में बारम्बार सामाजिक उलटफेर हुए हैं और कई बार राजनीतिक उलटफेर भी हुए हैं क्योंकि वहाँ पर कई बार प्रारम्भ से ही नई राजनीतिक इमारत बनाई गई है। कई बार पश्चिमी अमेरिका से ही नई नीति का सूत्रपात हुआ। पश्चिमी अमेरिका ने कई बार यूरोप के सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को नई दिशा प्रदान की है। पश्चिमी अमेरिका ने ही पुकार लगाई कि अमेरिका को साम्राज्य-विस्तार की ओर ध्यान देना चाहिए। पश्चिमी अमेरिका से ही नई प्रजातन्त्री व्यवस्था का सूत्रपात हुआ जिसने "वर्जीनिया के प्रमुख राजनीतिज्ञों को मन्दाभ करके अमेरिका की राजनीति में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन ला दिये।" और पश्चिमी अमेरिका ने ही अमेरिका की राजनीति में वह शक्ति-संतुलन उपस्थित किया जिसके प्रभाव से अमेरिका का नवीन संघ विघटित होने से बच गया।

प्रादेशिक विस्तार

यह एक अनहोनी-सी बात होती कि वही अमेरिका, जो यूरोपीय देशों की साम्राज्यवादी नीति का विरोधी रहा था, स्वयं साम्राज्य-वादी नीति अपनाता। बोरबनवंशीय फ्रेंच सम्राट और उनके पश्चात् फ्रेंच गणराज्य चाहते तो यह थे कि बेल्जियम के कुछ भाग पर अधिकार करें अथवा राइन (Rhine) नदी के बाएँ किनारे के कुछ भू-भाग को हड़प करें किन्तु कहते यह थे कि उन्हें प्राकृतिक सीमाएँ प्राप्त होनी चाहिएँ। अमेरिका ने तो डटकर साम्राज्य विस्तार किया और वह प्रशान्त महासागर तक बढ़ता ही चला गया। इस प्रकार एक ओर तो अमेरिका ने ग्रेट ब्रिटेन के भू-भागों को चुनौती दी, दूसरी ओर उसने मेक्सिको (Mexico) के भू-भाग छीने; और स्वयं आधे महाद्वीप का स्वामी बन बैठा। इस प्रकार अमेरिका का जो साम्राज्य स्थापित हुआ, वह रोम (Rome) के साम्राज्य से कम नहीं था। अमेरिका ने इस काल में जिस साम्राज्य का विस्तार किया वह उसके इतिहास का अनोखा अध्याय रहेगा। यह साम्राज्य उस साम्राज्य के अतिरिक्त था जो उसने पश्चिमी भू-भागों में पहले ही स्थापित कर लिया था। १८०३ में अमेरिका ने फ्रांस से लूंसियाना (Louisiana)

1 Wakefield, quoted by Max Farrand.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश खरीद लिया था। उसके पश्चात् १८१९ में अमेरिका ने स्पेन से पूर्वी फ्लोरिडा एक सन्धि द्वारा प्राप्त कर लिया था। दक्षिणी अमेरिका के लोगों की रुचि दास व्यापार में थी और वे कपास की उपज में भी विशेष रुचि रखते थे; किन्तु मेक्सिको (Mexico) के लोगों की इस ओर विशेष रुचि न थी ; अतः अमेरिका ने मेक्सिको के टेक्सास (Mexican state of Texas) राज्य में घुसपैठ प्रारम्भ कर दी। १८३३ में टेक्सास (Texas) ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और नौ वर्ष पश्चात् टेक्सास (Texas) राज्य अमेरिकी संघ में मिला लिया गया। मैक्सिको (Mexico) के विरुद्ध युद्ध करने का यह एक बहाना मात्र था क्योंकि इससे अमेरिका को बहुत बड़ा भू-भाग मिला जो टेक्सास (Texas) और प्रशान्त महासागर के बीच में अवस्थित है और जो क्षेत्रफल में न्यू मेक्सिको (New Mexico), एरीज़ोना (Arizona) और कैलीफोर्निया (California) के सम्मिलित क्षेत्रफल से भी बड़ा है। बदले में अमेरिका ने मेक्सिको (Mexico) को केवल १५० लाख डालर दिये। यह उपहासास्पद दानशीलता थी। अमेरिका के इतिहास में छली साम्राज्य की इससे हीनतर मिसाल देखने को नहीं मिलेगी। वास्तव में अमेरिका की इच्छा यह थी कि कैलीफ़ोर्निया (California) पर अधिकार किया जाय और प्रशान्त महासागर की ओर एक अच्छा बन्दरगाह प्राप्त किया जाय। विल्बर (Wilbur) नामक पादरी ने ठीक ही कहा था कि मेक्सिको (Mexico) का युद्ध वास्तव में दास-व्यापार के समर्थन में लड़ा गया था और अमेरिका के हित-रक्षण की बात केवल बहानामात्र थी। कुछ लोगों ने तो गम्भीरतापूर्वक यहाँ तक कहा था कि सम्पूर्ण मैक्सिको (Mexico) पर ही क्यों न अधिकार कर लिया जाय।

किन्तु कैलोफ़ोनिया का अर्जन, अमेरिका के सौभाग्य का वर्द्धक सिद्ध हुआ। १८४८ में एक सैनिक अधिकारी ने एक धातु का टुकड़ा पाया जो सोना सिद्ध हुआ। यह इतिहास की कहानी बन चुकी है कि किस प्रकार हज़ारों-लाखों व्यक्ति सोने की तलाश में कैलीफ़ोर्निया की ओर लपके, १८४९ में कितने लोगों ने अपार धनराशि प्राप्त की और कितने लोगों ने उसी वर्ष एक पखवाड़े में जितना अपार धन पैदा किया सम्भवतः उतना ही वे शराबखोरी और जुए में नष्ट कर गए। इसके पश्चात् कितनी चोरियाँ और हत्याएँ हुईं, कितना अनाचार बढ़ा और कितनी निराशा बढ़ी, यह इतिहास में पढ़ने को मिलेगा।

कुछ समय पूर्व कुछ ईसाई पादरियों ने बताया कि ऑरीगन (Oregon) में पर्याप्त मात्रा में बसने योग्य भूमि है। एक अन्तर्राष्ट्रीय संविदा द्वारा यह निश्चय किया गया कि ऑरीगन (Oregon) पर ब्रिटेन और अमेरिका का संयुक्त नियन्त्रण रहेगा। किन्तु अमेरिका की इच्छा थी कि इंग्लैण्ड को हटा दिया जाय अतः उसने इंग्लैण्ड के ऊपर दबाव डाला और उक्त संविदा या संधि को बदल डाला। इस प्रकार कनाडा (Canada) की सीमाएँ प्रशान्त महासागर को न छू सकीं। पुनः अमेरिका के साम्राज्यवादी कहने लगे कि यदि ५४° तक हमारा साम्राज्य नहीं पहुँचता तो हमको युद्ध करना चाहिए। वास्तव में अमेरिका की इच्छा समस्त ओरीगन (Oregon) ले लेने की थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार १८४४ से १८४८ तक के चार वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका का आकार दूना हो चुका था और ऑरीगन (Oregon) तथा मेक्सिको (Mexico) नामक प्रदेशों के अतिरिक्त लाभ से अमेरिका को जितना प्रादेशिक लाभ हुआ था, वह १७७६ के साम्राज्य से भी अधिक था। अमेरिका ने क्यूबा (Cuba) और दक्षिणी अमेरिका में भी घुसपैठ की। कुछ लोग कनाडा को भी ले लेने की ताक में थे। १८६७ में अमेरिका ने रूस से अलास्का (Alaska) खरीद लिया था। इस क्रय का इस आधार पर स्वागत किया गया था कि जब कभी सम्पूर्ण उत्तरी अमेरिका पर (कनाडा सहित) अधिकार हो जायेगा, उस समय अलास्का पर जो झण्डा लहराया जायगा वह समस्त उत्तरी अमेरिका की शान का प्रतीक होगा। अब अमेरिका ने जापान के साथ व्यापारिक मार्ग खोले और ऐमेजन (Amazon) की वादी की खोज प्रारम्भ की गई।

किन्तु पश्चिम से साम्राज्वाद के साथ-साथ क्रांतिवाद (Radicalism) की भी लहर आई। १८२९ तक संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन की बागडोर रूढ़िवादियों के हाथों में रही थी। वास्तव में संयुक्त राज्य का शासन एक वर्ग के अधिकार में रहा था और उसका लोकतन्त्र प्रायः राजतन्त्री लोकतन्त्र ही था। अमेरिका के प्रायः राष्ट्रपति वर्जीनिया के सारे निवासी थे; केवल दो राष्ट्रपति अपवाद थे। ज्यों-ज्यों पश्चिमी राज्यों का विकास हुआ, शनैः-शनैः पश्चिम का प्रभाव बढ़ने लगा और राज्यों की सरकारों का स्वरूप लोकतन्त्रात्मक बनने लगा। किन्तु पश्चिम की सबसे बड़ी विजय यह थी कि १८२९ में टेनेसी (Tennessee) राज्य का निवासी एण्ड्रू जैक्सन (Andrew Jackson) पुनः अमेरिका का राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ।

नया लोकतन्त्र

एण्ड्रू जैक्सन (१८२९-३७)

वह सम्पूर्ण अमेरिका के जनसाधारण का नेता था। वह न केवल अमेरिका के जंगली निवासियों को युद्ध में कई बार खदेड़ चुका था; बल्कि उसने कई प्रसिद्ध यूरोपीय रणविद्या-विशारदों को भी बुरी तरह पराजित किया था। युद्धों में उसकी कई हड्डियाँ टूट चुकी थीं और टेनेसी (Tennessee) में कई बार द्वन्द्व-युद्ध भी लड़ चुका था तथा दक्षिणी और पश्चिमी मल्ल-युद्ध-वीरों से भी वह कई बार विजयी युद्ध लड़ चुका था। वह विशेष पढ़ा-लिखा न था किन्तु उसके शरीर पर घावों के कई निशान थे। तेज दौड़ने वाले घोड़ों पर तो वह जान देता था।[1]

एण्ड्रू जैक्सन, जॉन क्विन्सी एडम्स (John Quincy Adams) के स्थान पर राष्ट्रपति चुन कर आया था। एडम्स एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, एक बड़ी ज्योतिषीय वेधशाला और एक बृहद् प्रकाश-गृह के निर्माण के लिए बहुत बड़ी धनराशि चाहता था; वह बहुत ही अच्छा और प्रियदर्शन व्यक्ति था। वह न्यू इंगलैण्ड (New England) की सारी नदियों, खाड़ियों और मार्गों से भली-भाँति परिचित था। वह अतलान्तक महासागर को पार करके यूरोपीय देशों की भी यात्रा कर चुका था और

1. Carl Sandburg, *Abraham Lincoln.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने टेम्स (Thames) अथवा सीन (Seine) नदियों के दृश्यों को प्रेम से देखा था; किन्तु मिसिसिपी (Mississippi) अथवा वाबाश (Wabash) नदियों से उसे बिलकुल मोह न था।[1]

एण्ड्रू जैक्सन का राष्ट्रपति पद पर आना मानो अमेरिका में एक भारी सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति का प्रतीक था। जिस समय उसका राष्ट्रपति-पद पर प्रतिष्ठापन हुआ, उस समय अजीब दृश्य था।

कैन्टुकी (Kentucky) के किसान और टेनेसी के पहलवान बहुत बड़ी संख्या में ह्वाइट हाउस में घुस आए। वे राजनीतिज्ञों, धर्म-प्रचारकों, व्यापारियों, सट्टेबाजों और तमाशाइयों के बीच आराम के साथ बैठे थे। वे कभी तो शराब पीते थे, कभी आपस में लड़ते थे, कभी कीमती वर्तनों को तोड़ते थे, कभी कीमती गद्दों वाली कुर्सियों पर चढ़कर बैठ जाते थे और वे सभी अपने प्रिय राष्ट्रपति जैक्सन की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे।[2]

एण्ड्रू जैक्सन अपने साथ व्यवहार संहिता का नया मापदंड और लोकप्रियता की नई कसौटी लाया। उसके साथ अमेरिका के सामाजिक जीवन में समानता के नए विचारों का मानो ज्वार ही टूट पड़ा। जैफ़रसन (Jefferson) ने स्वतन्त्रता की घोषणा में सभी की समानता की बात कही थी; किन्तु सत्य यह है कि जब एण्ड्रू जैक्सन के प्रतिष्ठापन के समय सभी खास व आम ह्वाइट हाउस में घुस पड़े तभी सबने समानता का वास्तविक अर्थ समझा। जैक्सन के साथी उसको वृद्ध हिकोरी (Old Hickory) कहा करते थे। अब सभी ने अनुभव किया कि अमेरिका में वास्तविक लोकतन्त्र का उदय हुआ। यह लोकतन्त्र पश्चिमी लोकतन्त्र था। यदि हम अमेरिकी स्वतन्त्रता की घोषणा को अमेरिका के इतिहास का प्रथम सीमा-चिह्न मानें और यदि मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) उसका दूसरा सीमा-चिह्न था, तो निश्चय ही जैक्सन का अमेरिका के राष्ट्रपति-पद पर आसीन होना अमेरिका के इतिहास का तृतीय सीमा-चिह्न था।

किन्तु जैक्सन निस्सन्देह एक वीर योद्धा था। वह क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति था और कभी-कभी भद्दी भाषा का भी प्रयोग कर जाता था। वह स्वेच्छाचारी था, और शीघ्र उत्तेजित हो जाता था। किन्तु वह निराले व्यक्तित्व का व्यक्ति था और वह लोकप्रिय किन्तु निरंकुश भी था। राष्ट्रपति-पद पर पहुँचने के बाद उसने सबसे पहला काम यह किया कि सभी अस्थाई संघीय अधिकारियों को अपने पदों से वियुक्त कर दिया और उनके स्थानों पर अपने समर्थकों को नियुक्त किया। उसका विचार था—"विजयी दल को लूट का माल मिलना ही चाहिए।" जैक्सन का कथन था कि संघीय अधिकारी भ्रष्ट हो गए थे। इस प्रकार पदों की लूट-प्रथा का सूत्रपात हुआ जिसने अमेरिका की राजनीति को गन्दा कर दिया है।

जैक्सन (Jackson) पश्चिमी राज्यों के लोगों की भाँति ही राष्ट्रीय बैंक का विरोधी था। उसने राष्ट्रीय बैंक का विघटन कर दिया। यह उसकी स्वेच्छाचारिता

1. Carl Sandburg : *Abraham Lincoln.*
2. *Ibid.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पक्षपात का प्रतीक था। उसने इतना भी धैर्य न रखा कि राष्ट्रीय बैंक को तब विघटित करता जब उसका चार्टर बदला जाता; उसने राष्ट्रीय बैंक से सारी सरकारी पूंजी निकाल ली और उस पूंजी को राज्यों के अपने दल के लोगों के बैंकों में बाँट दिया। इसके पश्चात् उसने सारा राष्ट्रीय ऋण क्षमा कर दिया। और जब देखा गया कि खज़ाने में कुछ अतिरिक्त पूंजी है तो उसने उस पूंजी को भी राज्यों में अप्रत्यक्ष रूप से बाँटना निश्चित किया। इसी समय जब स्थानीय बैंकों ने देखा कि उनके पास बहुत बड़ी सरकारी पूंजी है तो उन्होंने डटकर काग़ज़ी मुद्रा चलाई और पश्चिमी राज्यों के ज़मीन-मालिकों को इतने कम सूद पर ऋण दिया कि ज़मीनों की खरीद-फ़रोख्त बहुत बढ़ गई। बारम्बार ज़मीनें खरीदी जाती थीं; फिर उनको बैंकों में गिरवी रखा जाता था और फिर उनको बार-बार बेचा जाता था। इस सब व्यापार में काग़ज़ी मुद्रा का ही प्रयोग होता था और इस प्रकार बैंकों में काग़ज़ी मुद्रा के ढेर लग गए। सारे देश में मुद्रा-स्फीति छा गई। अब जैक्सन को सूझा और उसने तुरन्त आज्ञा दी कि ज़मीनों के लिए सिक्कों में ही भुगतान हो। इसका फल यह हुआ कि स्थानीय बैंकों ने अपना रुपया वापस माँगना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप बैंकों की साख घट गई और नकद सिक्कों की कमी अनुभव होने लगी। १८३७ में तो वित्तीय आपात की-सी स्थिति पैदा हो गई। राज्यों की सरकारों ने सुधार और विकास की कई योजनाएँ प्रारम्भ की थीं; किन्तु उन्हें वे सब योजनाएँ त्यागनी पड़ीं। अब प्राइवेट ठेकेदार मनमाने दामों पर ठेके देने लगे। कई राज्यों ने सार्वजनिक ऋण लिए थे; किन्तु उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वे उन ऋणों का ब्याज भी न दे सकेंगे। कई राज्य दिवालिए हो गए। यही देखकर ही तो डिकिन्स (Dickens) ने कहा था कि "संयुक्त राज्य में तो कोई कर्ज़दार अपने कर्ज़ को अदा ही नहीं करता।" पश्चिमी अमेरिका की ज़मीनें ही तो इस आर्थिक विषम स्थिति के लिए ज़िम्मेदार थीं, किन्तु उनकी माँग भी घटने लगी। इसलिए बैंक-व्यवस्था में सुधार करना बहुत ही आवश्यक हो गया। जैफ़रसन (Jefferson) और लिंकन (Lincoln) के बीच एण्ड्रयू जैक्सन बड़ा प्रतापी और नामवर राष्ट्रपति हुआ है। किन्तु उसका नाम न तो इस कारण है कि उसका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर था, न राष्ट्रीय बैंक के विघटन के लिए ही वह प्रसिद्ध है; वह इसलिए भी विख्यात नहीं है कि उसने राजनीति को लाभदायक पेशा बना दिया, वह इसलिए भी आदर के साथ याद नहीं किया जाता कि उसने राष्ट्रपति के पद को विशेष कार्यपालिका शक्ति से अभिप्रेत कर दिया। वह इसलिए भी प्रसिद्ध नहीं है कि वह पश्चिमी अमेरिका की विजय का प्रतीक था। सत्य यह है कि १८३२ के विवाद में उसने संघ का पक्ष लिया और संघ को अटूट बन्धन बताया। केवल इसी कारण जैक्सन की महत्तम राष्ट्रपतियों में गिनती की जाती है।

१८२८ में राष्ट्रपति जॉन क्विन्सी एडम्स (John Quincy Adams) ने उच्च रक्षण प्रशुल्क जारी किए। किन्तु दक्षिणी राज्यों ने इन रक्षण प्रशुल्कों का तीव्र विरोध किया। इस विवाद को लेकर देश में दो विरोधी दल हो गए। दक्षिणी अमेरिका का नेता जॉन सी० कैलहाउन (John C. Calhoun) था जो अमेरिका का उपराष्ट्रपति भी था। सीनेट सदस्य हेन (Senator Hayne) भी दक्षिणी अमेरिका के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण का समर्थक था। इन दोनों विरोधियों ने राज्यों के विशिष्ट अधिकारों की माँग की यद्यपि कैण्टुकी प्रस्तावों (Kentucky Resolutions) में राज्यों की विशिष्ट अधिकारों की बात पहले ही निर्णीत हो चुकी थी। केलहाउन (Calhoun) और हेन (Hayne) का कथन था कि अमेरिका का संघ, सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्यों का संघ है, और इस प्रकार के संघ का प्रत्येक राज्य संघ में प्रविष्ट हो लेने पर भी पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न ही बना रहता है। इसलिए उनका कथन था कि किसी राज्य को पूर्ण अधिकार था कि वह अपने प्रतिनिधियों से यह विचार कराए कि कहीं संघ सरकार राज्यों के अधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं कर रही है। उनका यह भी कथन था कि यदि ऐसा प्रतीत हो कि संघ सरकार ने राज्यों के अधिकारों पर आघात किया है जैसा कि रक्षण प्रशुल्कों के सम्बन्ध में किया गया है तो राज्यों को अधिकार होगा कि वे ऐसे किसी संघीय आदेश या विधि को अपनी सीमाओं में तब तक के लिए निलम्बित रखें जब तक कि काँग्रेस उस प्रश्न पर राज्यों के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय न कर ले और तदर्थ तीन-चौथाई बहुमत प्राप्त करके संविधान में इच्छित संशोधन स्वीकृत न कर दे।

इस प्रश्न को लेकर सीनेट में उग्र वाद-विवाद चला। इस सम्बन्ध में हेन (Hayne) और डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster) में जो वाद-विवाद चला, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। यदि हैमिल्टन (Hamilton) के संघ समर्थक लेख संघ की पुरानी बाइबिल हैं तो डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster) की वक्तृताएँ संघीय शासन की नई बाइबिल हैं। उसने बताया कि संघ अभेद्य है और उसकी दलीलों का न केवल अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) पर गहरा प्रभाव पड़ा बल्कि उसने समस्त अमेरिकी जाति को भी इस दिशा में प्रभावित किया।

यह निश्चय किया गया कि नए राष्ट्रपति के विचारों को परखा जाय, क्योंकि वह रक्षण प्रशुल्कों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के आधार पर दक्षिणी राज्यों के समर्थन पर ही राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ था। जैफ़रसन (Jefferson) के जन्म-दिन पर डेमोक्रेटिक दल ने एक भोज का आयोजन किया। उस अवसर पर अनेक वक्ताओं ने भाषण दिए और उनके भाषणों का सार यही था कि राज्यों की पूर्ण प्रभुता अक्षुण्ण है। यह सब सुन चुकने के उपरान्त राष्ट्रपति जैक्सन (Jackson) उत्तर देने के लिए खड़ा हुआ। उसने कहा—"संघ जिन्दाबाद!" इस पर कैलहाउन (Calhoun) ने उत्तर दिया—"हमारी स्वतन्त्रता जिन्दाबाद! पहले स्वतन्त्रता, फिर संघ!" कैलहाउन (Calhoun) ने चुनौती दे दी थी और जैक्सन ने उस चुनौती को स्वीकार कर लिया।

१८३२ में दक्षिणी कैरोलीना (South Carolina) ने रक्षण प्रशुल्क संबंधी आदेश को निलम्बित करने की धमकी दी। घोषणा की गई कि दक्षिणी राज्यों का एक उपसंघ बनेगा जिसका राष्ट्रपति कैलहाउन (Calhoun) होगा। दक्षिणी उपसंघ का झंडा भी तैयार कर लिया गया जिसमें ध्वनि निकलती थी—"हम उत्तरी राज्यों का जुल्म नहीं सहेंगे!" राज्यपाल हेन (Hayne) ने राज्य के सैनिक दस्ते बुला लिए और घोषणा कर दी कि रक्षण प्रशुल्कों पर अमल नहीं होगा।

जैक्सन ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। उसने संघीय बलों को तैयार रहने का आदेश दे दिया और काँग्रेस से माँग की कि वह आवश्यक विधेयक पास करे ताकि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोही राज्य से निबटा जा सके। फिर भी वह तैयार था और काँग्रेस के आदेश के बिना भी वह कार्य के लिये आतुर था। उसने दक्षिणी कैरोलीना (South Carolina) की सरकार के पास संदेश भेजा—"खबरदार! अगर किसी ने भी संघ के विरुद्ध हाथ उठाने की दुस्साहस किया तो मैं अपनी पूरी शक्ति के साथ राज्य (South Carolina) को कुचल दूंगा।" उसने निजी तौर पर यह भी बता दिया कि वह जॉन सी० कैलहाउन (John C. Calhoun) के विरुद्ध कठोरतम कार्यवाही करेगा।

जैक्सन (Jackson) युद्ध के लिए तैयार था किन्तु रक्षण प्रशुल्क के प्रश्न पर हैनरी क्ले (Henry Clay) के प्रयासों से समझौता हो गया। किन्तु यह प्रश्न तो बना ही रहा कि क्या संघ के आदेश को कोई राज्य सरकार अस्वीकृत कर सकती है। सत्य यह है कि रक्षण प्रशुल्कों का प्रश्न तो केवल बहाना मात्र ही था। इससे अधिक कठिन समस्या सामने आने वाली थी। जैक्सन (Jackson) ने कहा था—"रक्षण प्रशुल्क तो बहानामात्र था, अगला प्रश्न, जिस पर ताकत आजमाई होगी, वह या तो काले हब्शियों का प्रश्न होगा या दासों का प्रश्न होगा।"

जैक्सन (Jackson) की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। रक्षण प्रशुल्कों के प्रश्न पर दक्षिणी राज्यों की विजय हुई थी; किन्तु वास्तविक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि पश्चिमी अमेरिका ने एण्ड्रू यू जैक्सन (Andrew Jackson) और अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) जैसे दो महान् संघ-समर्थक राष्ट्रपति देश को दिए।

पुराने दलों का नया वर्गीकरण

इसी काल में अमेरिका के राजनीतिक इतिहास में दलों का नए रूप में वर्गीकरण हुआ। पहले तो संघवादियों (Federalists) का ह्रास हो रहा था किन्तु वाद में उनकी स्थिति मजबूत हो गई। एण्ड्रू यू जैक्सन (Andrew Jackson) के राष्ट्रपति होते ही दलगत विवाद पुनः खड़े हो गए। वास्तव में डेमोक्रेटिक दल (Democratic Party) ही, जो जैफरसन (Jefferson) को अपना प्रथम नेता मानता था, जैक्सन का मुख्य समर्थक था। इसलिए जैक्सन (Jackson) के विरोधियों ने एक विरोधी दल स्थापित कर लिया और उसका नाम ह्विग दल (Whigs) पड़ा। ह्वीग दल वास्तव में अमेरिका के संसदीय जीवन में केवल संयोगवश पैदा हुआ। ह्वीग दल न तो किसी राजनीतिक वाद का जात था और न ह्विग दल के सभी समर्थक एक ही विचारधारा के लोग थे। वह तो जैक्सन के विरोधियों का संयुक्त मोर्चा था और यद्यपि जैक्सन के वाद भी ह्विग दल का अस्तित्व बना रहा; फिर भी १८५० के लगभग उक्त दल प्रायः समाप्त हो चला। ह्विग दल को केवल दो वार अपना राष्ट्रपति चुनवाने में सफलता मिली;

डेमोक्रेट दल और ह्विग दल

किन्तु दोनों वार ही ह्विग राष्ट्रपति की राष्ट्रपति बनने के वाद शीघ्र मृत्यु हो गई। यह तो कहना कठिन है कि ह्विग राष्ट्रपतियों ने कोई मार्के का काम किया था। सत्य यह है कि ह्विग दल और उसके विरोधियों में सिद्धान्तों सम्बन्धी स्पष्ट विभाजन-रेखा खींचना सरल नहीं है। ह्विग लोग न तो कुलीनतन्त्री लोग थे और न वे लोकतन्त्री ही थे। ह्विग नाम से यही ध्वनि निकलती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी कि वे संसदीय शासन में विश्वास करते थे और राष्ट्रपति को स्वेच्छाचारी शक्ति देने के विरोधी थे। अधिकतर ह्विग लोगों ने क्ले (Clay) की अमेरिकी नीति का समर्थन किया। वे राष्ट्रीय सुधार योजनाओं, आन्तरिक विकासों और रक्षण प्रशुल्कों (Protective tariffs) के समर्थक थे। बहुत से ह्विग (किन्तु सब नहीं) गुलाम-प्रथा के विरोधी थे और उन्होंने राष्ट्रपति पोक (Polk) की उस नीति का विरोध किया था जिससे मेक्सिको का युद्ध छिड़ गया था। दक्षिण में ह्विग लोगों की भारी संख्या थी किन्तु उत्तर में डेमोक्रेटों की संख्या भी कम न थी; फिर भी माना यही जाता था कि ह्विग दल उत्तरी अमेरिका का है और डेमोक्रेट दल दक्षिणी अमेरिका का है। इसके अतिरिक्त ह्विग दल अधिकतर संघ शक्ति का समर्थक था किन्तु डेमोक्रेट दल राज्यों के विशद अधिकारों का समर्थक था। जैसा कि सामान्यतः होता है, विरोधी दल में अधिक योग्य नेता होते हैं; इसीलिए ह्विग दल में तेज और कुशाग्र बुद्धिवाले नेता थे। उनमें हेनरी क्ले (Henry Clay), डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster), जॉन क्विन्सी एडम्स (John Quincy Adams), अब्राहम लिंकन आदि योग्यतम व्यक्ति थे। इन्हें कुछ विदेशी निष्कासित व्यक्तियों की भी सहायता मिल गई जिनमें विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) प्रमुख था। ये लोग १८४८ की असफल यूरोपीय क्रान्ति से बचकर अमेरिका में भाग आये थे।

ह्विग लोगों को भी अपना दलीय संगठन उन्हीं आधारों पर करना पड़ा जिन पर कि डेमोक्रेट दल के लोग करते थे। डेमोक्रेट दल की प्रथा यह थी कि वे क्षेत्रीय सभाओं द्वारा दलीय कार्यक्रम तैयार कराते थे और उसी सभा द्वारा संघीय पदों के लिए प्रत्याशी चुने जाते थे।[1] यद्यपि आम तौर पर सैनिक प्रतिभा वाले व्यक्तियों को राष्ट्रपति पद के लिए अधिक योग्य समझा जाता था; फिर भी कभी-कभी बिल्कुल अनजाने व्यक्तियों को भी उच्चतम पदों के लिए मनोनीत कर लिया जाता था। इसका कुछ तो यह कारण था कि दलीय कार्यक्रम स्पष्ट न थे और कुछ यह भी कारण था कि अमेरिका की राजनीति में स्वार्थ ने घर कर लिया था। सत्य यह है कि दलीय संगठन और पदों की लूट-प्रथा (Spoils System) के कारण ही अमेरिका की राजनीति में गंदगी घर कर गई थी। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि पश्चिमी अमेरिका के विकास में और अमेरिका के आर्थिक स्रोतों के विकास में सभी अमेरिकी नागरिकों ने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया था और फलस्वरूप उनकी राजनीति बिल्कुल शुष्क हो चली थी। इस प्रकार शासन का कार्य-भार ऐसे लोगों के कन्धों पर आ पड़ा था जो शासन से व्यक्तिगत लाभ उठाने की ताक में थे। अतः, अब अमेरिका में दो वर्ग पैदा हो गये। एक तो वह वर्ग था जो व्यापार में लीन था; और दूसरा छोटा वर्ग वह था जो राजनीति में अभिरुचि रखता था। अथवा यूँ कहिये कि

---

१. स्थानीय दलीय संगठनों से जिलों के संगठनों के लिए प्रतिनिधि चुने जाते थे। जिलों के संगठनों से राज्यों के लिए प्रतिनिधि चुने जाते थे और राज्यों से राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि चुने जाते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी लोग स्वार्थ-साधन में लगे थे ; केवल थोड़े लोग ऐसे थे जो केवल राजनीति से ही पेट पूजा करना चाहते थे। अमेरिका में राजनीति, पेट पूजा का साधन है यह ऐसा सत्य है जिसे अमेरिका के इतिहास के परिशीलन में पग-पग पर याद रखना होगा।[1]

३. दास प्रथा और राज्यों का संघ से सम्बन्ध विच्छेद (१८५०-७०)

(Slavery and Secession, 1850-70)

अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) ने ठीक ही सोच लिया था कि गृह-युद्ध से अमेरिका का विनाश हो जायगा अतः उसने कहा था—"यदि हम को विनष्ट होना है तो क्यों न हम स्वयं अपना विनाश कर डालें। हम स्वतन्त्र जाति के लोग हैं इसलिए या तो हम सदैव स्वतन्त्र हो कर जियेंगे या स्वयं आत्मघात करेंगे।" इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता कि गृह-युद्ध दास-प्रथा के प्रश्न पर हुआ था अथवा राज्यों के आत्म-निर्णय के अधिकार के प्रश्न पर हुआ था। दोनों प्रश्नों का एक ही रूप है। प्रारम्भ से ही संघ और राज्यों के आपसी सम्बन्धों के बारे में लोगों के विभिन्न और परस्पर विरोधी मत थे। कुछ लोग राज्यों के विशिष्ट अधिकारों के सिद्धान्तों के समर्थक थे। विरोधी दलों के हाथ में यह ऐसा प्रभावी शस्त्र था जिससे सत्तारूढ़ दल को कभी भी विचलित किया जा सकता था। इसके विपरीत दास-प्रथा जैसे गम्भीर आर्थिक प्रश्न पर विरोध इस सीमा तक बढ़ चुका था कि समझौता असम्भव हो गया और गृहयुद्ध की नौबत आ गई। इस प्रकार कुछ लोग दास-प्रथा के प्रश्न को अपना अन्तिम ध्येय समझते थे और उस ध्येय को प्राप्त करने का साधन राज्यों का संघ से सम्बन्ध विच्छेद मानते थे। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो चाहते थे कि राज्यों को संघ से पृथक होने की छूट रहे और वे दास-प्रथा के प्रश्न की आड़ में अपना हित-साधन करना चाहते थे अर्थात् राज्यों के संघ से पृथक होने की छूट चाहते थे।

यह याद रखना आवश्यक होगा कि स्वतन्त्रता की घोषणा के समय सभी राज्यों में दास-प्रथा का प्रचलन था; केवल मैसेचुसेट्स (Massachusetts) नाम का राज्य इस सम्बन्ध में अपवाद था। यह भी सभी जानते हैं कि अमेरिका में स्वतन्त्रता की घोषणा से भी दो सौ वर्ष पहले से दास-व्यापार फल-फूल रहा था। एक दिन वार का डचमैन (Dutchman of Warre), जेम्सटाउन (Jamestown) में उतरा और उसने अमेरिका में केवल बीस हब्शी दास बेचे थे। बढ़ते-बढ़ते दो सौ वर्ष बाद १८वीं शताब्दी के अन्त तक हब्शी गुलामों की संख्या २० लाख हो गई। उन दिनों कुछ लोग कहने लगे थे कि "सभी को भगवान् ने समान बनाया है।" यह तो कहना कठिन है कि उक्त वक्तव्य हब्शियों और दासों पर लागू होता था या नहीं परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि १८वीं शताब्दी के अन्त में अमेरिका के

---

1. Max Farrand; *The Development of the United States.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम लोग दास-व्यापार को बुरी नजरों से देखने लगे थे। उत्तरी अमेरिका में तो दास-व्यापार समाप्त कर दिया गया। दास-प्रथा उत्तर में पेन्सिलवानिया (Pennsylvania) की दक्षिणी सीमा तक बन्द हो गई। इस सीमा-रेखा को मेसन-डिक्सन सीमा (Mason-Dixon line) कहा जाता था। एलीगनीज़ (Alleghenies) के पश्चिम के नये प्रदेश में और ओहियो (Ohio) नदी के उत्तर में दास-व्यापार १७८७ के अध्यादेश द्वारा बन्द किया जा चुका था। दक्षिणी अमेरिका में भी दास-व्यापार धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था; किन्तु दक्षिण में कानून द्वारा न होकर यह कार्य व्यक्तियों के हृदय-परिवर्तन द्वारा पूरा हो रहा था। वाशिंगटन (George Washington) जैसे जमींदारों ने स्वयं ही दासों को मुक्त कर दिया और जैफ़रसन (Jefferson) ने एक ऐसी योजना तैयार की थी जिसके अनुसार कुछ दासों को तो अमेरिका से चले जाने पर[1] मजबूर किया जाता था और कुछ को धीरे-धीरे मुक्त कर दिया जाता। यदि उस समय की जैफ़रसन की शिक्षा को मान लिया गया होता तो अमेरिका कई प्रकार की आधुनिक कठिनाइयों से बच गया होता।

दास व्यापार के प्रति आम अरुचि

कई राज्यों ने धीरे-धीरे करके दास-व्यापार को बन्द कर दिया किन्तु संघीय आदेश के रूप में दास-व्यापार १८०८ से पहले बन्द नहीं किया जा सका।

संघीय प्रश्न के रूप में दास-व्यापार का यह प्रथम स्वरूप था। एली ह्विटने (Eli Whitney) ने जब कपास ओटने की चरखी या मशीन (gin) का आविष्कार किया और उसके साथ-साथ जब रूई की पैदावार बढ़ी तो दास-व्यापार के प्रश्न का महत्त्व बढ़ा। पहले ही बताया जा चुका है कि उद्योगों की उन्नति के साथ-साथ दास-व्यापार बहुत ही लाभप्रद व्यापार हो गया और इसलिए अब कोई भी इस लाभदायक व्यापार को छोड़ने के लिए तैयार न था। अब लाभ के सामने लोगों की मानवतावादी शेखी काफूर हो गई क्योंकि सैन डोमिंगो (San Domingo) में दासों ने विद्रोह किया और उत्तरी अमेरिका के स्वतन्त्र हब्शियों ने दक्षिणी अमेरिका के दास-व्यापार को बहुत हानि पहुँचाई थी। इससे दक्षिणी अमेरिका के लोगों को कुछ ज़िद हुई और उन्होंने स्व-हितों के आगे मानवतावादी विचारों को अंगीकार नहीं किया। वैसे चाहे वे स्वयं धीरे-धीरे दास-व्यापार के व्यक्तिगत लाभ को त्याग भी देते किन्तु अब दक्षिणी अमेरिका वालों के ऐसे विचार बन गए कि दास-व्यापार को किसी भी कीमत पर बनाए रखेंगे। धीरे-धीरे अमेरिका की राजनीति में दास-व्यापार अत्यन्त जटिल प्रश्न बनकर रह गया। इस प्रश्न को लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका के कई

---

१. अमेरिका से हब्शी दासों को निष्कासित करने के सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि ज्योंही हब्शियों को मुक्त करके अफ्रीका वापस भेजा जाता था त्योंही उन्हें कोई अन्य व्यापारी खरीद लेता था और फिर उसको या तो पुनः दास जीवन वहीं बिताना पड़ता या पुनः उसे किसी गोरे देश में बेच दिया जाता था। इसी समस्या के समाधान के लिए सियरे लियोन (Sierra Leone) को एक आदर्श राज्य के रूप में संगठित किया गया था जहाँ स्वतन्त्र हब्शी अपना स्वतन्त्र जीवन बिता सकें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदार यूरोपीय देशों के साथ सम्बन्ध खराब हो गये ; इसी प्रश्न के कारण अमेरिका ने जल्दी-जल्दी पश्चिम में विस्तार करना चाहा था किन्तु इसी प्रश्न ने अमेरिका की पश्चिम की ओर प्रगति को रोक दिया। वास्तव में अमेरिका की काँग्रेस में प्रारम्भ से ही इस प्रश्न पर गहरे मतभेद थे और समतर के किले (Fort Sumter) पर आक्रमण के समय तक यह प्रश्न तीव्र मतभेद का कारण बना रहा था। "सत्य यह है कि स्वातन्त्र्य-युद्ध के बाद से ही अमेरिका में गृह-युद्ध की तैयारियाँ होने लगी थीं।"

यदि दक्षिणी राज्यों में विवाद का केवल दास-प्रथा या दास व्यापार ही कारण होता तो सम्भवत: कुछ-न-कुछ समझौता भी हो ही गया होता। यहाँ भी पश्चिमी अमेरिका ने झगड़े को बढ़ाने में शह दी; वास्तव में दास-व्यापार के पीछे अमेरिका अपनी सीमाएँ पश्चिम की ओर बढ़ाने की फ़िक्र में था। इस कारण दास-व्यापार के बारे में समझौते के सब प्रयत्न विफल हो गये।

वास्तव में प्रारम्भ से ही उत्तरी और दक्षिणी राज्य आपस में एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न कर रहे थे और परस्पर रियायतें कर रहे थे। स्वतन्त्रता की घोषणा के प्रारूप में एक धारा यह थी कि दास-व्यापार जार्ज तृतीय का पाप था, किन्तु बाद में दक्षिणी कैरोलीना (South Carolina) और जार्जिया (Georgia) की इच्छाओं के प्रति मान रखने की नीयत से उक्त धारा को निकाल दिया गया था। १७८७ के अध्यादेश ने ओहियो नदी (Ohio River) के उत्तर में सारे प्रदेश में दास-व्यापार बन्द करा दिया था, फिर भी यह रियायत रखी गयी थी कि जो दास-हब्शी भाग जाय उसको पुन: पकड़ा जा सकेगा। अमेरिका के संविधान के निर्मातागण समय की आवश्यकता के अनुरूप दास-प्रथा के प्रश्न पर समझौता कर गए। संविधान में स्वीकार कर लिया गया कि राज्यों के विधानमण्डलों के निर्वाचनों में हब्शी-दासों को भाग मिलेगा किन्तु बन्दिश यह रखी गई थी कि हब्शी-दासों की संख्या के ३/५ भाग को ही उक्त अधिकार प्रदान किया गया।

प्रारम्भ से ही दास-व्यापार पर समझौता करने की आम प्रवृत्ति थी

इसके पश्चात् १८२० में एक समझौता हुआ जिसे मिसूरी समझौता कहा जाता है। इस समझौते के आधार पर दास-व्यापार तीस वर्ष और चला। उस वर्ष लूसियाना के क्रय के एक भाग मिसूरी (Missouri) ने दास राज्य के रूप में यूनियन में सम्मिलित होने के लिए आवेदन-पत्र भेजा। १८०३ में जैफ़रसन (Jefferson) ने नेपोलियन (Napoleon) से लूसियाना क्रय किया था। १७८७ के अध्यादेश ने ओहियो नदी (Ohio River) को विभाजन-रेखा स्वीकार किया था कि मिसिसिपी (Mississippi) नदी के पूर्व में ओहियो नदी के उत्तर में दास-व्यापार निषिद्ध रहेगा किन्तु दक्षिण में दास-व्यापार चल सकेगा। उक्त नदी के पश्चिम में ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया गया किन्तु मिसूरी के यूनियन में प्रविष्ट होने की प्रार्थना पर काँग्रेस के सामने दास-व्यापार का प्रश्न मूर्त्त रूप में आ गया। अन्त में निश्चित हुआ कि मिसूरी को ही दास राज्य के रूप में यूनियन में सम्मिलित कर लिया जाय, परन्तु भविष्य के राज्य, जो अक्षांश के समानान्तर

मिसूरी समझौता १८२०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६° ३०′ पर मिसिसिपी (Mississippi) के पश्चिम की भूमि से बने उन्हें 'स्वतन्त्र राज्य' माना जाय। इस प्रकार तीस वर्ष तक १८२० से १८५० तक यह समझौता माना गया। इस समझौते के अनुसार दास-व्यापार मेसन-डिक्सन सीमा-रेखा (Mason-Dixon Line) से एलीगनीज (Alleghenies) तक, ओहियो (Ohio) नदी से मिसिसिपी (Mississippi) नदी तक, पुनः मिसूरी की उत्तरी सीमा तक और अंशतः अक्षांश ३६° ३०′ के दक्षिण और पश्चिम में चलता रहा।

किन्तु धीरे-धीरे दास-व्यापार अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में अधिकाधिक चलने लगा, यहाँ तक कि दक्षिणी राज्यों का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन दास-व्यापार पर ही आश्रित रहने लगा। पश्चिमी अमेरिका की आश्चर्यजनक प्रगति वहाँ के निवासियों के साहस के कारण हुई है किन्तु दक्षिणी अमेरिका के लोग साहस के कभी अभ्यस्त नहीं रहे। दास-व्यापार से स्वयं काले हब्शियों को लाभ ही हुआ है। आम तौर पर उनके साथ श्वेत जातियों ने सभ्य व्यवहार किया और बुढ़ापे में उनके साथ प्रायः अच्छा व्यवहार किया जाता था। दो सौ वर्षों के दास-व्यापार-काल में केवल तीन विद्रोह दासों ने किये। दासों की कीमत उनकी शारीरिक क्षमता पर निर्भर रहती थी। अनेक दक्षिणी अमेरिका-निवासी दासों के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझते थे और वे उनके प्रति सामान्यतः उसी प्रकार अच्छा व्यवहार करते थे जिस प्रकार कि कोई अंग्रेज या अरब अपने घोड़े के प्रति अच्छा व्यवहार करता है। प्रायः ऐसा भी देखा गया था कि हब्शी दासों और उनके मालिकों में वास्तविक प्रेम भाव रहता था। कभी-कभी तो कुछ दास बचपन से बुढ़ापे तक एक ही परिवार से सम्बद्ध रहते थे। ऐसे दास प्रायः वफ़ादार भी होते थे। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि कुछ मुक्त दासों ने पुनः दास बनने की प्रार्थना की। कुछ मुक्त दास स्वयं भी अपने आधिपत्य में दास रखते थे। इन दासों की भी श्रेणियाँ थीं। घरों में काम करने वाले हब्शी दास खेतों में काम करने वाले दासों को हीन समझते थे, और उक्त दोनों श्रेणियों के दास गरीब श्वेत दासों को नफरत की निगाहों से देखते थे क्योंकि दास-व्यापार के कारण गरीब और आश्रय-हीन श्वेत सेवकों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त हीन बन गई थी।

इसके विपरीत दास-व्यापार के कुछ निश्चित दोष भी थे जिन्हें दासों के मालिक भी बुरा समझते थे और दास-व्यापार के विरोधी भी बुरा मानते थे। जहाँ दासों के मालिक श्रेष्ठ विचारों वाले व्यक्ति होते थे, वहाँ दास-व्यापार के दोष स्पष्टतः सामने आ जाते थे। अवैध रूप से भी दासों का आयात होता रहता था, जो सरकार की आज्ञाओं का स्पष्ट उल्लंघन था। यदि कोई व्यक्ति साहस करके कुछ स्त्रियों और पुरुषों को दास-रूप में क्रय कर लेता था और उन्हें भेड़ों की तरह जहाज में भरकर या उनकी टाँगें बाँधकर अतलान्तक सागर के पार किसी प्रकार उतार देता था तो उसे लाखों-करोड़ों डालर की आय अनायास ही हो जाती थी। जिस समय खुले बाजार में दासों की बोली होती थी और उनकी नीलामी की कीमत पुकारी जाती थी उस समय का हृदय-विदारक दृश्य बहुत से लोगों से देखा भी न जाता था क्योंकि नीलाम के फलस्वरूप कई परिवार सदैव के लिए तितर-बितर हो जाते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासों के बारे में तरह-तरह की दुश्चरित्र सम्बन्धी बातें भी फैला करती थीं और कभी-कभी भागे हुए दासों के साथ बर्बर व्यवहार किया जाता था। यद्यपि सभी लोग इन बुराइयों को मानते थे, फिर भी इन दोषों से बचने का कोई उपाय न था क्योंकि दासों के पालक, दासों के व्यापारी और दासों को पकड़ने वाले अनिच्छापूर्वक भी अपने-अपने कार्यों में रत थे। ऐसे लोग दक्षिणी अमेरिका में अधिक थे किन्तु मेसन-डिक्सन सीमा के उत्तर में भी ऐसे लोगों का सर्वथा अभाव नहीं था।

अनेक दास-व्यापारी ऐसे भी थे जो दास-व्यापार को बुरा समझते थे, किन्तु वे उक्त दोषों के लिए स्वयं को उत्तरदायी नहीं मानते थे। उनका कथन था कि श्वेतों और अश्वेतों को सिवाय मालिक और दास सम्बन्ध के और किसी सम्बन्ध से साथ-साथ रखा ही नहीं जा सकता। उनका यह भी कथन था कि श्वेत मालिकों की छत्र-छाया में हब्शी दास पर्याप्त सुखी हैं। वे तो यहाँ तक कहते थे कि उत्तरी अमेरिका के किसी कारखाने का श्वेत सेवक या इंग्लैंड का खेतों पर काम करने वाला श्वेत सेवक उतना सुखी नहीं है जितना कि दक्षिणी अमेरिका का हब्शी दास सुखी और समृद्ध है। वे तो यह कहते थे कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था में दास-व्यापार का आवश्यक महत्त्व है। ऐसे विचारक यह भी नहीं चाहते थे कि दासों की बौद्धिक उन्नति हो क्योंकि यदि दास पढ़-लिखकर होशियार हो जाएँगे, तो वे विद्रोही भी अवश्य हो जायेंगे। वे दासो को पढ़ने-लिखने की सुविधा देने के तीव्र विरोधी थे। वे लोग दासों को बाइबिल भी नहीं पढ़ाना चाहते थे। नियमतः सात हब्शियों का एक स्थान पर एकत्रित होना अपराध था यदि उनके मध्य एक श्वेत व्यक्ति भी न हो।

कुछ ऐसे लोग भी थे जो दास-व्यापार का खुलकर समर्थन करते थे। इनमें प्रमुख प्रोफेसर टॉमस राडरिक ड्यू (Prof. Thomas Rodrick Dew) थे जो वर्जीनिया विश्वविद्यालय में राजनीति और अध्यात्म विद्या और इतिहास के प्राध्यापक थे। जो आलोचक जैफ़रसन (Jefferson) की इस उक्ति "दासों और स्वामियों का सम्बन्ध नीति-विरुद्ध है" का सहारा लेकर दास-व्यापार को बुरा कहते थे, उनको प्रोफेसर रॉडरिक ड्यू का यह जवाब था कि "दासों के स्वामी सर्वत्र उच्च विचारों के व्यक्ति हैं और वे दासों का हित साधन ही करते हैं।" जो लोग कहते थे कि "दास व्यापार प्रकृति और मानवीय अधिकारों का अतिक्रमण करता है" उनको उसका यह जवाब था कि "ईश्वर और प्रकृति का यही विधान है कि श्रेष्ठ बुद्धि वाले और अधिक शक्तिशाली व्यक्ति हीनतर बुद्धि के अथवा कम शक्ति के व्यक्तियों पर शासन करें।" कुछ अन्य ऐसे भी आलोचक थे जो कहते थे कि दास-व्यापार ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। उनसे वह कहा करता था —

"हम इस बात को नहीं मान सकते कि पुरानी या नई बाईबिल में कहीं भी ऐसा आदेश है कि दास रखने में कोई पाप है। नई बाइबिल के अनुशीलन पर यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा कि महान् यीशु मसीह ने कहीं भी और कभी भी मनुष्यों की व्यवस्था में दखल नहीं दिया। वह (यीशु प्रभु) तो पतितों को तारने के लिए आया था न कि मनुष्यों को मनुष्यों से लड़ाने के लिए। उसने कभी भी विद्रोह की आज्ञा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं दी। उसने कभी भी असन्तोष का बीज नहीं बोया। उसने सदैव सभी को आज्ञाकारिता और संयम का उपदेश दिया था।"

संक्षेप में प्रोफेसर रॉडरिक ड्यू का कथन था कि हब्शी की दासता से उसे ही लाभ था और दासत्व से वह अनेक मानवीय दुर्गुणों का शिकार होने से बच जाता था।

इसमें सन्देह नहीं है कि दास-व्यापार से दासों को प्रायः सन्तोष था; फिर भी दास-व्यवहार के समर्थकों के तर्कों में स्वार्थ की गन्ध अवश्य है। अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) कहता था कि "यदि दास-व्यापार का भी समर्थन किया जा सकता है, तो फिर दुनिया में अनैतिक है ही क्या ?" यदि एक बार वैधिक रूप से दासों को सम्पत्ति मान लिया गया तो फिर सारे अमेरिका में दास-व्यापार वैध रूप से प्रचलित हो जायगा। दक्षिणी अमेरिका का कोई भी नागरिक अपनी चल-सम्पत्ति को लेकर अमेरिका के किसी भी भाग में जाकर बसने के लिए स्वतन्त्र है। उत्तरी कैरोलिना (North Carolina) के सीनेटर बैंड्गर (Senator Badger) ने पूछा था—"आपको क्या आपत्ति है यदि दक्षिणी अमेरिका का कोई नागरिक किसी ऐसी नर्स को अपने साथ रखना चाहता है जो उसके बच्चों की परवरिश करती है, अथवा वह किसी ऐसी बुढ़िया नौकरानी को अपने साथ रखता है जिसने उसे बचपन में पाला था और जिसे वह ममी कहता रहा है और जिसकी बुढ़ापे में वह रक्षा करना चाहता है। ऐसी स्थिति में यदि दक्षिणी अमेरिका का कोई नागरिक ऐसे प्रिय और मधुर सम्बन्धों वाले दासों को लेकर अपने परिवार की उन्नति के उद्देश्य से उत्तरी अमेरिका में जाकर बस जाता है तो इससे किसी की क्या हानि होती है ?" इस तर्क के उत्तर में ओहियो के सीनेटर वेड (Senator Wade of Ohio) ने कहा : "सीनेटर बैंड्गर महोदय (Senator Badger) ने गलत समझा है। हमको कोई आपत्ति नहीं यदि वे स्वयं अपनी ममी (Mammy) को लेकर कैन्सैस (Kansas) राज्य में जा बसें। हम तो केवल यही चाहते हैं कि वे कैन्सैस (Kansas) में ले जाकर उस ममी या हब्शिन दासी को पुनः बेच न दें।"[1]

दक्षिणी अमेरिका को केवल दास-व्यापार के लाभों से वंचित हो जाने का ही भय न था। उन्हें इस बात पर भी रोष था कि उत्तरी अमेरिका के सारे महाद्वीप पर तानाशाही छाई जा रही थी। अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) के साथ अनेक उत्तरी अमेरिका के निवासी भी स्वीकार करते थे कि दास-व्यापार अनैतिक व्यापार था किन्तु जहाँ उसको संघ की शर्तों के रूप में स्वीकार किया जा चुका था तो फिर दक्षिणी राज्यों के साथ न्याय यही माना जाएगा कि उस क्षेत्र में

---

1. Quoted by Max Farrand : *The Development of the United States.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास-व्यापार बना रहे। इसलिए वे लोग चाहते थे कि दास-व्यापार का दूषण उत्तर में न आने पावे। और उनका यह भी विश्वास था कि दास-व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा देने से भी धीरे-धीरे दास-व्यापार स्वयं समाप्त हो जाएगा। इसके विपरीत उत्तर में अपार जनमत दास-व्यापार की जड़ खोदने पर तुला हुआ था। वे कहते थे कि दास-व्यापार के साथ किसी भी प्रकार का समझौता मौत और पाप के साथ समझौता होगा। वे यह भी कहते थे कि जो लोग दास-व्यापार के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करेंगे वे न केवल संघ के शत्रु होंगे बल्कि वे संघ के विघटनकारियों के एक प्रकार से सहायक होंगे। दक्षिणवासी कहते थे कि हमने कतिपय लाभों और संरक्षणों को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही संघ में प्रवेश करना स्वीकार किया था। वे यह भी कहते थे कि प्रत्येक अन्य राज्य ने भी कतिपय आर्थिक लाभों के लिए अपने पड़ोसी राज्यों से कुछ न कुछ समझौते किए थे। वे दृढ़ता से कहते थे कि उन्होंने संघ में प्रवेश करके भी अपनी प्रभुता (Sovereignty) को नहीं खोया। वे ऐलानिया कहते थे कि यदि संघ में रहने से उनके आर्थिक हितों को या उनकी स्वतन्त्रता को आघात पहुँचेगा तो उन्हें संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने का पूरा हक होगा। दक्षिणी अमेरिका के लोगों को यह भी अप्रिय लगता था कि उत्तरी अमेरिका के लोग दान-शीलता और मानवीय सद्गुणों की तो बात करते थे किन्तु वास्तव में वे दक्षिणी अमेरिका का बुरी तरह आर्थिक शोषण कर रहे थे। दक्षिणी अमेरिका के निवासियों को बच्चों के खिलौनों से लेकर बुड्ढों के कफन तक के लिए उत्तरी अमेरिका के उद्योगों पर निर्भर रहना पड़ता था। यह भी बहुत ही आपत्तिजनक बात थी कि जहाँ दास-व्यापार पर दक्षिणी अमेरिका की सारी अर्थ-व्यवस्था आश्रित थी, उसी दास-व्यापार के विनियमन के लिए उत्तरी अमेरिका विधान तैयार करता था, यद्यपि स्वयं उत्तरी अमेरिका के आर्थिक हित दास-व्यापार के सर्वथा विरुद्ध थे। अनेक लोग ऐसे थे जो इस स्थिति को सहन नहीं करना चाहते थे और वे इस स्थिति को टालने के लिए संघ का विघटन भी सहन कर सकने को तैयार थे।

उत्तर में दास-व्यापार की जड़ खोदने वाले अनेक व्यक्ति थे

संवैधानिक आपत्तियाँ

आर्थिक हानियाँ

मैक्सिको का जो भू-भाग (Spoils of Mexico) अमेरिका के अधिकार में आया उसी में १८४० के आस-पास गृह-युद्ध का वातावरण तैयार हुआ। मैक्सिको का जो भू-भाग अमेरिका में मिला था वह अक्षांश ३६° ३०′ के दक्षिण में था किन्तु मिसूरी समझौते के अनुसार जो सीमा रेखा निश्चित की गई थी, वह विशेष रूप से उस प्रदेश पर लागू होती थी जो लूसियाना (Louisiana) से खरीदा गया था। उत्तर में सर्वत्र दास-व्यापार के प्रति घृणा थी। साथ ही मैक्सिको के युद्ध (Mexican War) को दासों के स्वामियों का युद्ध कहा जाता था। इसलिए जब लोगों को यह भय हुआ कि टैक्सास राज्य में दास-व्यापार प्रवेश करने वाला है यद्यपि उक्त राज्य में मैक्सिको ने दास-प्रथा का अन्त कर दिया तो इससे ऐसी उत्तेजना फैली कि नव अर्जित भू-भागों में ऐसे राज्य स्थापित नहीं होने चाहिएँ जहाँ दास-व्यापार फले-फूले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलमोट की यह शर्त (Wilmot Proviso) थी कि उन सभी नए प्रदेशों में, जिन्हें मैक्सिको (Mexico) से प्राप्त किया जाय, दास-व्यापार निषिद्ध रहे। किन्तु उक्त शर्त झूठी पड़ चुकी थी, और काँग्रेस असमंजस में पड़ गई कि क्या करे और क्या न करे। अब यह विवाद कैलीफ़ोर्निया (California) की ओर मुड़ा क्योंकि वही प्रदेश सोने की चिड़ियों का प्रदेश समझा जाता था। वहाँ पर सोने की खानों में काम करने वाले मजदूरों ने काँग्रेस की किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता से लाभ उठाकर एक नया संविधान तैयार कर डाला जिसमें दास-व्यापार को अवैध घोषित किया गया। कैलहाउन (Calhoun) ने घोषित किया कि कैलीफ़ोर्निया (California) ने बहुत ही बेहूदेपन का काम किया है अतः दक्षिणी राज्यों ने कैलीफ़ोर्निया को संघ में स्वतन्त्र राज्य के रूप में सम्मिलित होने से रोका। इस प्रकार दक्षिणी राज्य जबर्दस्ती कर रहे थे और कैलीफ़ोर्निया पर दबाव डाल रहे थे कि वह दास-व्यापार की हिमायत करे। इसी प्रश्न पर उत्तर और दक्षिण में ठन गई होती और सम्भवतः इससे भी पहले युद्ध छिड़ गया होता यदि जैकरी टेलर (Zachary Taylor) नामक ह्विग-दलीय राष्ट्रपति ने कैलीफ़ोर्निया को जल्दी से संघ में सम्मिलित कर लिया होता। किन्तु समझौता हो गया जिसका सारा श्रेय हेनरी क्ले (Henry Clay) और डेनियल वेब्सटर (Daniel Webster) को मिलेगा। १८५० का समझौता अस्थायी समझौता था जिसके द्वारा संघ विघटित होने से बच गया। उक्त समझौते के अनुसार कैलीफ़ोर्निया (California) दास-व्यापार से मुक्त रहा। शेष प्रदेशों के लिए यह आदेश दिया गया कि वे अपने बहुमत आदेश का पालन करें। तत्पश्चात् एक नया भगेड़ू दास अधिनियम (Fugitive Slave Act) पास किया गया जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार के पास ऐसी शक्ति आ गई जिससे वह भागे हुए दासों और गुलामों को पकड़ सके और उन्हें पुनः मालिकों के सुपुर्द कर सके।

कैलीफ़ोर्निया का संघर्ष (१८५०)

क्ले (Clay) के समझौते का राजनीतिक महत्त्व है। उक्त समझौते द्वारा कम-से-कम नाममात्र को तो दक्षिणी राज्यों को दास-व्यापार की आज्ञा वैध रूप से दे दी गई और अक्षांश ३६°३० के उत्तर की ओर दास-व्यापार की सम्भावना का मार्ग मुक्त हो गया। वास्तव में अत्यन्त कठोर दास अधिनियम पास करके संघीय सरकार स्वयं दास व्यापार की समर्थक बन चुकी थी।

फिर भी उक्त समझौते के फलस्वरूप संघर्ष होते-होते बचा लिया गया। कई लोग तो ऐसा मानने लगे थे कि उक्त समझौता स्थायी है और अब वे उत्तरी और दक्षिणी राज्यों के बीच व्यापारिक आदान-प्रदान की कामना करने लगे थे। किन्तु १८५२ में एक पतली-दुबली सी सती एवं धार्मिक महिला हैरियट बीचर स्टोवे (Harriet Beecher Stowe) ने, जिसका गरीब पति था और जो छः बच्चों की माँ थी, भगेड़ू दास अधिनियम (Fugitive Slave Act) के विरुद्ध एक पुस्तक अंकिल टाम्स केबिन *'Uncle Tom's Cabin'* लिखी जो उस समय की सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक रही। इस पुस्तक द्वारा न केवल लेखिका के सौभाग्य में चार चाँद लगे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि दास-प्रथा का प्रश्न, जो अब तक राजनीतिक प्रश्न बना हुआ था, वह अब सर्वसाधारण के लिए लोकप्रिय धर्म-युद्ध का नैतिक प्रश्न बन गया। सम्भवतः आज तक भी किसी पुस्तक की इतनी बिक्री नहीं हुई।

अब क्ले (Clay), वेब्सटर (Webster) और कैलहाउन (Calhoun) मर चुके थे। वास्तव में इन्हीं तीनों व्यक्तियों को आक्रामक दक्षिणी राज्यों का प्रवक्ता समझा जाता था। अब दक्षिण की कमान सीवर्ड (Seward), समर (Summer), जैफ़रसन (Jefferson), डेविस (Davis) और स्टीफेन डगलस (Stephen Douglas) आदि नए नेताओं के हाथों में थी। स्टीफेन डगलस (Stephen Douglas), डेमोक्रेटिक दल के ऊपर पूरी तरह छाया हुआ था। उसको उपहास में छोटा देव (Little giant) कहा जाता था। उसको केवल महत्त्वाकांक्षी और स्वार्थी कहना तो उसके साथ अन्याय करना होगा किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उस समय वह अपनी महत्त्वाकाक्षांओं के पीछे दीवाना था और उसे किसी अन्य बात की उतनी चिन्ता नहीं थी। यहाँ तक कि उसे दास-व्यापार की भी उतनी फिक्र न थी। हाँ, वह अमेरिका की आन्तरिक उन्नति का अवश्य इच्छुक था। बाद में तो उसने संघ की रक्षा का भरसक प्रयत्न किया था, किन्तु इस समय वह उचित अवसर की ताक में था। जिस समय उसने काँग्रेस में अपनी मिसूरी (Missouri) के पश्चिम की भूमि को केन्सास (Kansas) और नेब्रास्का (Nebraska) नाम के दो राज्यों में संगठित करने के सम्बन्ध में विधेयक प्रस्तुत किया था, उस समय उसने प्रयत्न किया था कि मिसूरी समझौते (Missouri Compromise) को भंग करके और दास-व्यापार को अवैध रूप में स्वीकार करके वह दक्षिणी राज्यों के मत अपने लिए हासिल करे। १८५४ में कैन्सास-नेब्रास्का अधिनियम (Kensas-Nebraska Act) ने विधि का रूप धारण किया। इसका प्रथम परिणाम यह हुआ कि सभी प्रकार के लोगों में कैन्सास (Kansas) राज्य में जमीनें खरीदने की मानो होड़ सी लग गई। वहाँ पर दास-व्यापार के समर्थक भी पहुँचे और विरोधी भी; इस प्रतिस्पर्धा में मक्कारी, धूर्तता, रिश्वत और हत्याओं का भी मुक्त प्रदर्शन हुआ। द्वितीयतः, मिसूरी समझौते (Missouri Compromise) के भंग हो जाने के फलस्वरूप दास-व्यापार के विरोधियों में निराशा सी छा गई क्योंकि उनका ६० वर्षों का परिश्रम एक ही बार में व्यर्थ कर दिया गया। उत्तरी अमेरिका के दास-प्रथा-विरोधियों को ऐसा अनुभव होने लगा कि दास-व्यापार की अब उन्नति होगी और वह सम्भवतः सारे अमेरिका में प्रचलित होगा। उत्तरी लोगों को विशेष रूप से उन उपायों से चिढ़ थी जिनका आश्रय लेकर दक्षिणी लोगों ने कैन्सास (Kansas) में दास-व्यापार प्रारम्भ कराया था। इसके पश्चात् १८७५ में सर्वोच्च न्यायालय ने ड्रेड स्काट निर्णय (Dred Scott Decision) दिया। इस निर्णय से तो उत्तरी अमेरिका के दास-व्यापार-विरोधियों की सारी आशाओं पर वज्रपात हो गया। उक्त निर्णय द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने दासों को अधिकार-विहीन बन्धक या चल सम्पत्ति स्वीकार किया और मिसूरी

कैन्सास-नेब्रास्का अधिनियम (१८४५)

ड्रेड स्काट निर्णय (१८५७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझौते को अवैधानिक घोषित कर दिया; यही नहीं, उक्त निर्णय ने इस तथ्य को भी स्वीकार कर लिया कि अमेरिका के संघ से किसी भी राज्य में दास-व्यापार के विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकेगा।

१८५९ में जॉन ब्राउन (John Brown) नामक एक धर्मान्ध ने दासों को अपने स्वामियों के विरुद्ध विद्रोह करने में समर्थ करने के लिए उन्हें सशस्त्र करने के उद्देश्य से हार्पर्स फैरी (Harper's Feary) में सरकारी शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया। ब्राउन को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे मृत्यु दण्ड भी मिला, किन्तु उसके प्राणदण्ड से उत्तर में अनेक लोगों को उसके साथ सहानुभूति हो गई। यहाँ तक कि विलियम लायड गैरीसन (William Lloyd Garrison) ने खुले बाजार में संविधान की होली जलाई और उसको शैतानी समझौता कहा। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उत्तरी अमेरिका के लोग ही संघ को समाप्त करने जा रहे हैं। १८५४ में कैन्सास-नेब्रास्का अधिनियम (Kansas Nebraska Act) के साथ-साथ एक नए दल का उदय हुआ जिसका नाम गणतन्त्री दल (Republican Party) था। उक्त दल का उद्देश्य दास-व्यापार की वृद्धि को रोकना था। किन्तु दल के कार्यक्रम में न तो संविधान को रद्द करना अभीष्ट था और न दास-व्यापार का अन्त करना ही अभीष्ट था। गणतन्त्री दल (The Republican Party) तो लिंकन (Lincoln) के शब्दों में दास-व्यापार को उतने क्षेत्र में ही सीमित रखना चाहता था जहाँ संविधान के निर्माताओं ने उसे छोड़ा था। किन्तु यह तथ्य था कि गणतन्त्री दल की सहानुभूति ऐसे लोगों से थी जो दास-व्यापार को समाप्त करना चाहते थे। इस प्रकार पर्दे के पीछे उक्त दल की सहानुभूति गैरीसन (Garrison) के शिष्यों तथा जॉन ब्राउन (John Brown) के समर्थकों के साथ अवश्य थी यद्यपि अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) खुलकर दोनों की आलोचना करता था। वास्तव में गैरीसन के शिष्यों और जॉन ब्राउन (John Brown) के समर्थकों को दक्षिणी कैरोलीना (South Carolina) में भय था कि यदि अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ तो गृह-युद्ध छिड़ जाएगा। स्वयं लिंकन ने भी स्वीकार किया था कि इसी शंका के कारण संघ इस बात को सदैव के लिए सहन नहीं कर सकता था कि उसमें कोई राज्य तो दास-व्यापार से फले-फूले और किसी राज्य में दास-व्यापार वर्जित हो। एक बाधा यह भी थी कि उत्तरी अमेरिका अधिक समृद्ध था और वह चाहता तो दास-प्रथा को समाप्त कर सकता था या यदि वह चाहता तो दास-व्यापार को सीमित कर सकता था। चूँकि उत्तरी अमेरिका के राज्यों की जनसंख्या अधिक थी, इसलिए प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) में उत्तरी राज्यों का बहुमत था। इसके अतिरिक्त दास-व्यापार विरोधी राज्यों की संख्या भी अधिक थी, अतः सीनेट पर भी दास-प्रथा के विरोधियों का ही प्रभाव था। और अब आम निर्वाचन में भी उत्तरी राज्यों का प्रतिनिधि ही विजयी हुआ तब तो देश के शासन की बागडोर भी उत्तर के हाथों में ही आ गई। लॉवेल (Lowell) ने ठीक ही कहा था कि "दक्षिणी राज्यों को वास्तविक शिकायत १८६० की मर्दुमशुमारी (Census) से थी।" लिंकन की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय से यह सिद्ध हो चुका था कि उत्तरी अमेरिका के राज्यों के प्रतिनिधि अपनी बहुमत संख्या के बल पर जो चाहें सो निर्णय कर सकते हैं। निर्वाचन के आँकड़ों से भी यही पता चलता था कि दक्षिणी अमेरिका की हार निश्चित थी। वास्तव में उक्त निर्वाचन ने निश्चित कर दिया था कि दक्षिणी राज्यों के विशेषाधिकार, उनकी स्वतन्त्रता और उनकी आक्रामक नीति का एकदम दिवाला निकल गया था।

१८६० की मर्दुमशुमारी

अमेरिका के इतिहास में अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) का वही महत्त्व है जो यूरोप के इतिहास में नैपोलियन बोनापार्ट (Napoleon Bonaparte) का था। किन्तु उक्त वक्तव्य विवादास्पद है। निस्सन्देह लिंकन एक महान राष्ट्रपति था किन्तु उसकी महत्ता की कसौटी आँकना कठिन है। न तो उसके चरित्र में दृढ़ता थी न वह अवसरों से लाभ उठाने की योग्यता रखता था। वास्तव में उसके जीवन का अन्त ही दुःखमय कारणों से हुआ। यह एक महान् आश्चर्य है कि उसने थोड़े से जीवन में इतनी सफलता पा ली और यह महान् दुःख की बात है कि वह और अधिक जीवित नहीं रहा अन्यथा वह बहुत कुछ कर जाता; वास्तव में वह जो कुछ कर गया, वह सब दैवयोग मात्र था।

अब्राहम लिंकन (१८०९-६५)

अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) का जन्म १८०९ में कैण्टुकी राज्य (Kentucky) में एक छोटी-सी कोठरी में हुआ था। उसका सारा बाल्य-जीवन जंगलों में बीता था और वह देहाती साथियों में ही खेला था। वह लकड़ी के शहतीरों को चीर सकता था और तख्तों की कोठरी तैयार कर सकता था। वह घास छील सकता था और गेहूँ बो सकता था। वह कुल्हाड़ी से सबसे अच्छी लकड़ी फाड़ सकता था। सैंगामो (Sangamo) नदी में वह बड़ी-बड़ी नावों को आसानी से चला सकता था और दो बार वह मिसिसिपी (Mississippi) नदी में नावों के काफिले को उसके मुहाने तक ले गया था।

वह लम्बा, भद्दी आकृति का विचित्र-सा, बड़े बेडौल पैरों वाला, और अद्भुत शौर्य और पराक्रमशील वीर था, किन्तु वह बहुत ही भद्दी आकृति का और भद्दे स्वभाव का व्यक्ति था। कभी-कभी वह बहुत ही रूक्ष और उदास हो जाया करता था, यद्यपि वह मिलनसार और हँसमुख था। उसे कहानी कहने का और नई कहानी गढ़ने का बहुत शौक था। स्त्रियों के बीच उसकी बोलती बन्द हो जाती थी किन्तु जानवरों के प्रति उसे बड़ी दया थी। वह सदैव नई बातें सीखने को उत्सुक रहता था और उसकी समझ-बूझ असाधारण थी। उसने एक बार कहा था—"मैं उस व्यक्ति को बहुत चाहता हूँ जो मुझे ऐसी पुस्तक देता है जिसे मैंने पहले कभी न पढ़ा हो।" किन्तु उन दिनों पुस्तकों का बाहुल्य न था।

स्टीफ़ेन डगलस (Stephen Douglas) के साथ वाद-विवाद से पूर्व किसी को पता न था कि लिंकन एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है। किसी को आशा भी नहीं थी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि लिंकन इतना महान् और सफल होगा। उसने प्रारम्भिक जीवन में न्यू सलेम (New Salem) में कुछ दिन दुकान की थी। कुछ दिन उसने सैनिक सेवा भी की थी, जिसमें उसने एक इण्डियन की अपने ही साथियों के विरुद्ध रक्षा की थी। उसने आठ वर्ष तक इलिनोइस (Illinois) के विधानमण्डल में भी बिताए थे किन्तु वहाँ भी उसकी प्रतिभा चमक नहीं सकी। केवल एक बार दो वर्ष के लिए वहाँ काँग्रेस में भी निर्वाचित हो चुका था। इसके पश्चात् उसको यह सोचना पड़ा कि क्या उसे लोहारी का काम करना चाहिए या बढ़ई का काम करना चाहिए। एक बार उसने गम्भीरतापूर्वक यह भी सोचा था कि क्या उसे वकील बनना चाहिए या कानूनी सलाह देने वाला सॉलिसिटर (Solicitor) बनना उसके लिए ठीक होगा। उसने केवल कुछ दिन के लिए डाकखाने में नौकरी की थी। उसने इतना ही संघीय प्रशासन का अनुभव अर्जित किया था। उक्त सर्टीफिकेट वह सदैव अपनी टोपी में हिफाजत से छिपाए रखता था। उसका गृहस्थ जीवन सुखी नहीं था। वह ह्विग दल (Whig Party) का समर्थक था किन्तु उक्त दल मुश्किल से ही सत्तारूढ़ हो सका, और जब उक्त दल के हाथों में शासन सत्ता आई तो भी उसे गृह विभाग (General Land Office) का कमिश्नर पद नहीं मिल सका जिसका वह इच्छुक था। इसके विपरीत उक्त दल ने उसको ओरीगन (Oregon) राज्य का राज्यपाल पद दिया किन्तु वह लिंकन ने सधन्यवाद अस्वीकार कर दिया। उसने राजनीति पर भी कुछ पढ़ा था और राजनीतिक अवसरवादिता को भी सीखने का कुछ अभ्यास किया था। दलीय व्यवस्था और प्रबन्ध में उसने पटुता प्रदर्शित की थी और स्वतन्त्र चिंतन उसका व्यसन था। उसे पर्याप्त समान्य ज्ञान था और उसने यूक्लिड (Euclid) की प्रथम छः पुस्तकें कण्ठस्थ कर रखी थीं। किन्तु १८४०-१८५० के बीच एवं आस-पास जब संघर्ष उठ रहे थे तब लिंकन सार्वजनिक जीवन से कुछ-कुछ संन्यास ले चुका था क्योंकि उसे चतुर्दिक असफलताओं का ही मुँह देखने को मिला था। अन्त में हारकर उसने इलिनोइस राज्य में वकालत प्रारम्भ की थी। यद्यपि सामान्यतः लिंकन आदर का पात्र था किन्तु उसकी वकालत बहुत जोर की नहीं थी।

मिसूरी समझौते के टूट जाने से, गणतन्त्री दल (Republican Party) के उदय से, सर्वोच्च न्यायालय के ड्रेड स्काट निर्णय से और दास-व्यापार के फैलने के भय से अब्राहम लिंकन ने पुनः राजनीति में प्रवेश किया। १८५८ में इलिनोइस (Illinois) राज्य की सीट के लिए एक सीट रिक्त हो गई। उसके लिए वह प्रत्याशी के रूप में खड़ा हुआ और स्टीफ़ेन डगसल (Stephen Douglas) के साथ उसका वाक्-युद्ध तथा कलम-युद्ध चला। इस विवाद के फलस्वरूप देश ने जाना कि लिंकन नए दल का सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता है। फिर भी जिस समय रिपब्लिकन दल ने लिंकन को राष्ट्रपति पद के लिए नामांकित किया, उस समय वह प्रायः अज्ञात व्यक्ति ही था। चूँकि डेमोक्रेटिक दल में फूट पड़ गई इसलिए लिंकन विजयी हुआ। किन्तु उसको केवल उन्हीं राज्यों से समर्थन मिला था जो दास-प्रथा के विरोधी थे और वह अल्प बहुमत से ही विजयी हुआ था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणी कैरोलिना का संघ से सम्बन्ध विच्छेद

अब्राहम लिंकन के राष्ट्रपति निर्वाचित होने की घोषणा के केवल छः सप्ताह बाद दक्षिणी कैरोलिना ने संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया; वहाँ से संघ का झण्डा हटा दिया गया और उसका स्थान ताड़ के पेड़ के आकृति के नए झण्डे ने ले लिया जो इस राज्य का निशान था।

तीस वर्ष पूर्व राष्ट्रपति जैक्सन (Jackson) के साहस ने और हैनरी क्ले (Henry Clay) के चतुर समझौते ने संघ को विघटित होने से बचा लिया था; किन्तु इस समय बुचानन (Buchanan) राष्ट्रपति था, जिसे तीन महीने और उसी पद पर बना रहना था। किन्तु वह जैक्सन के समान योग्य न था। दक्षिणी कैरोलिना की बग़ावत के जवाब में तत्कालीन राष्ट्रपति बुचानन ने केवल एक प्रभाव-शून्य वक्तृता झाड़ दी। रिपब्लिकन नेता सीवार्ड (Seward) के अनुसार राष्ट्रपति बुचानन ने यह समझाने का प्रयत्न किया था कि "प्रथम तो कोई राज्य उस समय तक संघ से सम्बन्ध तोड़ ही नहीं सकता जब तक कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय न कर ले, और द्वितीयतः यह राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह उस समय तक संघीय विधियों का सारे संघ में पालन कराये जब तक कि उसका विरोध न हो।"

क्ले के शिष्य क्रिटेण्डन (Crittenden, the disciple of the Clay) ने समझौता कराने का भी प्रयत्न किया था किन्तु स्वयं लिंकन के विरोध के आगे समझौता-वार्ता भंग हो गई। क्रिटेण्डन ने चाहा था कि अक्षांश ३६°३०′ को पुनः दास-राज्यों और स्वतन्त्र राज्यों के बीच की विभाजन-रेखा मान लिया जाय। इस सम्बन्ध में कैलीफोर्निया राज्य को अपवाद मानते हुए उसे स्वतन्त्र राज्य ही स्वीकार किया जाय। किन्तु सर्वोच्च न्यायालय के ड्रेडस्काट निर्णय के कारण उक्त समझौता कांग्रेस तो स्वीकार कर नहीं सकती थी, अतः यह आवश्यक था कि तत्सम्बन्धी धाराओं को लेकर संविधान में ही संशोधन किया जाता। इस प्रकार भय था कि दास-व्यापार को वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी जाती यद्यपि ऐसा कभी नहीं हुआ था। अब दास-व्यापार संवैधानिक औचित्य की परिधि में आ जाता और वह नए लोकतन्त्र रूपी आइने की एक भद्दी प्रतिकृति दिखाई देता। यही नहीं, यदि संवैधानिक संशोधन द्वारा दास-व्यापार ३६°३०′ अक्षांश के दक्षिण में स्वीकृत हो जाता तो भी विनष्ट होते हुए अनिष्टकारी व्यापार का जीवन बढ़ जाता और संवैधानिक स्वीकृति द्वारा इसको बढ़ावा मिलता। इसी कारण स्वयं लिंकन (Lincoln) ने क्रिटेण्डन समझौते को अस्वीकार करके इस गम्भीर उत्तरदायित्व को अपने ऊपर लिया।

क्रिटेण्डन के समझौते को अस्वीकृत कर दिया गया

क्रिटेण्डन समझौते की विफलता के पश्चात् जनवरी १८६१ में रूई राज्यों का ठोस समूह संघ से विलग हो गया। उक्त समूह में अलाबामा (Alabama), फ्लोरिडा (Florida), मिसिसिपी (Mississippi), लूसियाना (Louisiana), टेक्सास (Texas) और जार्जिया (Georgia) थे· जिन्होंने उपरोक्त क्रम से संघ छोड़ा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन विलग होने वाले राज्यों ने नया परिसंघ (Confederacy) निर्माण किया जिसका राष्ट्रपति जैफ़रसन डेविड (Jefferson David) हुआ। उन्होंने संयुक्त राज्य के संविधान के समान अपना संविधान बनाया किन्तु उन्होंने उक्त परिसंघ के एककों की पूर्ण प्रभुसत्ता को स्वीकार किया जिसमें एकक राज्यों के परिसंघ से अलग होने के अधिकार को स्पष्टतः स्वीकार किया गया।

सूई राज्यों का समूह भी यूनियन से अलग हो गया

इस प्रकार ज्वालामुखी का विस्फोट सन्निकट था। उत्तर में सर्वत्र आश्चर्य और सन्नाटा था। किन्तु संघीय शस्त्रागार पर आक्रमण एक गम्भीर चुनौती थी। होरेस ग्रीली (Horace Greeley) न्यूयार्क ट्रिब्यून (New York Tribune) के संपादक थे। उनकी राय थी कि इस उत्पात पर विशेष ध्यान न दिया जाय। गैरीसन (Garrison) दास-व्यापार का प्रबल विरोधी था। उसकी भी यह इच्छा थी कि शस्त्रागार सम्बन्धी घटना पर युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। उसने यह भी कहा था—"जिस समय मैंने संविधान को मौत का पट्टा और नरक से समझौता (A Covenant with Death and an Agreement with Hell) कहा था, उस समय मैंने यह नहीं समझा था कि मौत और नरक संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लेंगे।"

किंतु लिंकन कृतसंकल्प था कि यूनियन को हर बलिदान पर बचाना होगा। अतः जब १२ अप्रैल सन् १८६१ को दक्षिणी कैरोलिना (South Carolina) ने सम्टर (Sumter) के किले पर बम फेंककर यूनियन के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया तो लिंकन ने युद्ध के लिए स्वयंसेवकों की माँग की। इस माँग या अपील के ये अर्थ लिए गए कि प्रभुसत्ताधारी राज्यों पर दबाव डालना अभीष्ट था, अतः सीमा के चार अन्य राज्य भी संघ से विलग हो गए जिनके नाम थे—वर्जीनिया (Virginia), टेनेसी (Tennessee), उत्तरी कैरोलिना (North Carolina) और अर्केन्सास (Arkansas)। दक्षिणी परिसंघ में वर्जीनिया के प्रवेश को बहुत महत्त्व दिया गया और उसकी राजधानी रिचमांड (Richmond) बना दी गई। इस प्रकार गृह-युद्ध के लिए दो स्पष्ट पक्ष आमने-सामने मैदान में डट गए। सीमा के अन्य तीन राज्य मिसूरी (Missouri), केण्टुकी (Kentucky) और मेरीलैंड लिंकन की चतुर कूटनीति के कारण उत्तर के पक्ष में रहे। वास्तव में यूनियन का भाग्य इन तीन राज्यों के समर्थन पर ही निर्भर था। उत्तरी अमेरिका में २ करोड़ व्यक्ति थे और इस प्रकार जनसंख्या में, धन में, युद्ध की सामग्री बनाने वाले कारखानों में और हर प्रकार की सामग्री में उत्तर अधिक शक्तिशाली था। संघीय नौ-सेना के कारण भी समुद्रों पर उत्तर का ही आधिपत्य था। इनके अतिरिक्त उत्तर के पास श्रेष्ठ संगठन और संघीय शासन की प्रतिष्ठा थी। उत्तर के पास आधी सेना भी थी। इसके विपरीत दक्षिण के पास केवल ५५ लाख व्यक्ति थे किन्तु उनमें पूर्ण एकता थी जिसका उत्तर के पास प्रायः अभाव था। इसके अतिरिक्त दक्षिण के पास साहस और शौर्य था तथा सर्वश्रेष्ठ सेनापति थे। साथ ही दक्षिण का अनुशासन अनुकरणीय था और ऐसा भी विश्वास किया जाता था कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद दक्षिण को विदेशी सहायता मिल जाएगी। यही नहीं दक्षिण को लम्बी सीमा का भी लाभ था और दक्षिण वालों का पक्ष न्यायपूर्ण था।

फिर भी दक्षिण अथवा परिसंघ (Confederacy) की स्थिति चिन्ताजनक थी। किंतु जुलाई १८६१ में बुल रन (Bull Run) के युद्ध में उत्तर की पराजय हुई।

युद्ध

वर्जीनिया (Virginia) में उत्तर का आक्रमण विफल कर दिया गया। यद्यपि पश्चिमी वर्जीनिया में उत्तर को कुछ सफलता मिली और पश्चिम में कुछ अन्य स्थानों पर भी उत्तर वालों को कुछ सफलता मिली फिर भी १८६२ के एण्टीटम (Antietam) के युद्ध से पहले उत्तर की अवस्था निरन्तर शोचनीय ही बनी रही। इस युद्ध में भी पूरी तौर पर उत्तर की विजय नहीं मानी जा सकती फिर भी इस युद्ध के बाद उत्तर की स्थिति संभलने लगी थी। इस युद्ध के बाद मेरीलैण्ड (Maryland) में दक्षिण का प्रभाव प्रायः समाप्त हो गया और दक्षिण के सेनापति रॉबर्ट ली (Robert Lee) को मेरीलैंड (Maryland) छोड़कर वर्जीनिया (Virginia) में शरण लेनी पड़ी। इस युद्ध के पश्चात् मेरीलैंड सदैव के लिए दक्षिणी परिसंघ से विमुख हो गया।[1]

द्वितीयतः, १८६२ के एण्टीटम के युद्ध का फल यह हुआ कि इससे लिंकन को बहाना मिल गया और उसने १ जनवरी, १८६३ को यूनियन के साथ युद्ध करने वाले सब राज्यों के दासों की मुक्ति की घोषणा कर दी।

लिंकन द्वारा दासों की मुक्ति की घोषणा

लिंकन की स्थिति को समझ लेना आवश्यक होगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वह दास-व्यापार का विरोधी था और उनको मुक्त देखना चाहता था। वह यह भी जानता था कि यूनियन के कुछ राज्यों में दास-व्यापार का प्रचलन और कुछ राज्यों में स्वतंत्र दास एक साथ नहीं चल सकते। फिर भी इतना सत्य है कि उसका पूर्ण विश्वास था कि दास-व्यापार मरणासन्न था और स्वयं आर्थिक दबाव के कारण समाप्त हो जाएगा। इसलिए वह दास व्यापार के विस्तार का हार्दिक विरोधी था।

दूसरी ओर वह संविधान के विरुद्ध किसी भी हालत में जाने को तैयार नहीं था। अतः जिन राज्यों में पहले ही से दास-व्यापार का प्रचलन था उन राज्यों में लिंकन दास-व्यापार को बन्द करने का इच्छुक नहीं था।

---

१. दक्षिण के लोगों को विश्वास था कि मेरीलैण्ड (Maryland) की हार्दिक सहानुभूति दक्षिण से थी और वह संघ से संबंध तोड़ना चाहता था। केवल मेरीलैण्ड उत्तर के सैनिक बल के दबाव में संघ से नहीं हट रहा था। इस विचार ने सिपाहियों के एक नए गीत को जन्म दिया जिसकी प्रथम पंक्ति थी—

"ऐ मेरीलैण्ड! तेरी छाती पर स्वेच्छाचारियों ने सवारी गाँठ रखी है; तू दुष्टों द्वारा त्रस्त है।"

उक्त गीत की अन्तिम पंक्तियाँ ये थीं—

"मेरीलैण्ड अभी मरा नहीं है, वह गूँगा या बहरा भी नहीं है; देखो! वह उत्तर से घृणा करता है। वह आहें भर रहा है, वह जल रहा है, वह आएगा, वह आएगा और मेरीलैण्ड हमारी सहायता अवश्य करेगा।"

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः जब गृह-युद्ध छिड़ गया तो लिंकन ने घोषणा की कि वह तो यूनियन की रक्षार्थ युद्ध में जा रहा था और उसकी रुचि दासों की मुक्ति में नहीं थी। उसने ऐलानिया कहा—"जिन राज्यों ने यूनियन को छोड़ा है वे देशद्रोह के पापी हैं और उन्हें ज़बर्दस्ती संघ में मिला दो।" लिंकन ने होरेस ग्रीली (Horace Greeley) को एक पत्र में १८६२ में लिखा था—"इस युद्ध में मैं केवल इस उद्देश्य से प्रवेश कर रहा हूँ कि यूनियन बचा रहे। दासों की मुक्ति में या दास-व्यापार में मुझे विशेष रुचि नहीं है। यदि मैं किसी दास को मुक्त किए बिना यूनियन को बचा सका तो भी मैं यूनियन को बचाऊँगा। यदि मैं सब दासों को मुक्त कराके यूनियन को बचा सका तो भी मैं यूनियन को बचा लूँगा। और यदि मैं कुछ दासों को मुक्त कराके और अन्य दासों को बंधन में छोड़कर भी यूनियन की रक्षा कर सका तो भी मैं पहले यूनियन की रक्षा करूँगा। मैं दास-व्यापार के विरोध में काले हब्शियों के साथ जो कुछ करना चाहता हूँ, उसमें मेरा केवल एक ही उद्देश्य है कि उसके द्वारा मैं संघ या यूनियन की रक्षा करना चाहता हूँ। मैं जो कुछ करने से हिचक रहा हूँ उस हिचक का भी यही उद्देश्य है कि इससे यूनियन की रक्षा होगी।"

अतः यद्यपि १८६२ की लिंकन की दासों की मुक्ति की घोषणा उसके सिद्धांतों के अनुरूप ही थी फिर भी यह उसकी युद्ध की ही एक चाल थी। उसने दक्षिण के दासों को जब्त कर लिया मानो शत्रु की ऐसी सम्पत्ति छीन ली जिससे शत्रु सैनिक लाभ उठा सकता था।

इस घोषणा के सुदूरगामी परिणाम हुए। प्रथम परिणाम तो यह हुआ कि दास-व्यापार सदैव के लिए समाप्त हो गया। यहाँ तक कि गृह-युद्ध समाप्त भी न होने पाया था कि दक्षिणी राज्यों के परिसंघ में दासों को सैनिक रूप में भर्ती किया जाने लगा और उन्हें आश्वासन दिया जा रहा था कि सैनिक सेवा में भर्ती होने पर उन्हें दासत्व से मुक्ति दे दी जाएगी।

इसका द्वितीय परिणाम यह हुआ कि उत्तर के साथ विदेशी शक्तियों की सहानुभूति हो गई। विशेषकर ब्रिटेन का रुख उत्तर के पक्ष में हो गया। यद्यपि ब्रिटेन का श्रमिक दल उत्तर के पक्ष में था किन्तु उस देश का सत्तारूढ़ दल दक्षिण के दृष्टिकोण का समर्थक था। रूढ़िवादी लोगों की सहानुभूति दक्षिण की ओर थी। कारण यह था कि वे समझते थे कि विभक्त और कमज़ोर अमेरिका से उन्हें लाभ होगा; किन्तु संयुक्त और सशक्त अमेरिका से उन्हें सदैव भय रहेगा। एक ओर ट्रेण्ट (Trent)[1] की घटना घटी; दूसरी ओर अलाबामा (Alabama)[2] की घटना हुई। इन घटनाओं

१. दक्षिणी राज्यों के दो राजदूत ब्रिटिश युद्ध-पोत ट्रेण्ट (Trent) में इंग्लैंड जा रहे थे। मार्ग में संयुक्त राज्य के कमाण्डर कैप्टन विल्कस (Captain Wilkes) ने उन्हें पकड़ लिया। यह अन्तर्राष्ट्रीय नियम के विरुद्ध था। अतः लिंकन ने क्षमा माँगी और हर्जाना देकर उक्त दोनों अधिकारियों को छोड़ दिया।

२. अलाबामा (Alabama) एक ब्रिटिश जहाज़ था जो लिवरपूल (Liverpool) के जहाज़ी कारखाने में तैयार हुआ था। इंग्लैण्ड के अधिकारियों की असावधानी से या मक्कारी से उक्त जहाज़ अमेरिका जा पहुँचा जहाँ वह दक्षिणी राज्यों के हाथ में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से संयुक्त राज्य और ग्रेट ब्रिटेन के बीच मन-मुटाव हो गया। यह कल्पना करना व्यर्थ होगा कि क्या ग्रेट ब्रिटेन दक्षिण को उसी प्रकार सहायता देता जिस प्रकार कि फ्रांस (France) ने १७७८ में उपनिवेशों को ब्रिटेन के विरुद्ध सहायता दी थी। सत्य यह है कि लिंकन की दासों की मुक्ति सम्बन्धी घोषणा के पश्चात् किसी भी उदार देश द्वारा दास-व्यापार का समर्थन प्रायः असम्भव था। अतः सम्भावना यही थी कि ग्रेट ब्रिटेन दक्षिण के पक्ष में यूनियन से युद्ध मोल न लेता।

इसके पश्चात् दक्षिणी परिसंघ प्रायः सदैव घिरा रहा। ली (Lee) ने पेन्सिलवानिया (Pennsylvania) पर आक्रमण करके उत्तर को दो भागों में बाँट देने की चाल चली थी, किन्तु १८६३ में गेटिसवर्ग (Gettysburg) की पराजय से ली (Lee) के सब प्रयत्न विफल हो गए। वास्तव में यहीं से युद्ध का पाँसा पलटा। उत्तर वालों द्वारा न्यू आर्लियन्स (New Orleans) पर अधिकार कर लेने से और उसके बाद विक्सवर्ग (Vicksburg) पर भी अधिकार हो जाने से मिसिसिपी (Mississippi) पर और अन्य पश्चिमी विद्रोही राज्यों पर उत्तर वालों का प्रायः नियंत्रण हो गया। इसके अतिरिक्त एक महीने पूर्व जैक्सन (Jackson) नाम के परमवीर सेनापति की मृत्यु ने भी दक्षिण की कमर तोड़ दी थी। जैक्सन पत्थर और लोहे की दीवार के समान अडिग था और राबर्ट ली (Robert Lee) के बाद दक्षिण के पास वही महान सेनापति बच रहा था। प्रारम्भ में दक्षिण ने शतघ्नी युद्ध-पोत (Ironclads) प्रयोग करके उत्तर को हतप्रभ कर दिया किन्तु बाद में उत्तर के अधिकार में भी उसी प्रकार से शतघ्नी पोत आ गए जिससे दक्षिण की स्थिति कमजोर पड़ गई।

दक्षिण की पराजय

१८६४ में उत्तर के दो सेनापतियों शर्मन (Sherman) और ग्राण्ट (Grant) ने एक जोरदार युद्ध प्रारंभ किया जिससे दक्षिण के परिसंघ की टाँगें लड़खड़ाने लगीं। दक्षिण का वीर सेनापति जॉन ब्राउन (John Brown) अन्त समय तक वीरता से लड़ता रहा और उसे वीर-गति प्राप्त हुई।

९ अप्रैल सन् १८६५ को युद्ध समाप्त हुआ। एपोटोमैक्स राजमहल (Appotomax Court House) में उत्तर और दक्षिण के सेनापति शान और गौरव के साथ एक दूसरे को देख रहे थे। सन्धि की शर्तें नरम थीं। दक्षिण के आत्म-समर्पण के बाद ग्राण्ट (Grant) तो तुरन्त अपने पुत्र को लेकर स्कूल में भर्ती कराने चला गया। और महान् दक्षिणी सेनापति ली (Lee) ने गर्व के साथ अपने जवानों से कहा—"मैंने तो तुम्हारी विजय के लिए कुछ उठा न रखा।" इन शब्दों के साथ उस परम वीर और योद्धा सेनापति ने अपनी सैनिक वर्दी त्याग दी और वह भविष्य में एक कालिज का प्रिंसिपल बनकर प्रायः अज्ञात जीवन बिताता रहा।

१९१४ तक जितने युद्ध हुए थे उनमें अमेरिका का गृह-युद्ध, युद्ध में संलग्न मनुष्यों की संख्या की दृष्टि से और जितने विस्तीर्ण क्षेत्र में यह युद्ध लड़ा गया इस दृष्टि से भी सबसे बड़ा युद्ध था। केवल १२ महीनों में ही अमेरिका के तथाकथित

पड़ गया। उन्होंने इस जहाज का उपयोग किया और अनेक उत्तरी जहाज इस जहाज (Alabama) के द्वारा नष्ट किए गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति-पूर्ण लोगों ने ५ लाख सैनिकों की फ़ौज तैयार कर ली थी। आश्चर्य यह था कि इतनी बड़ी सेना विना किसी दवाव के स्वयंसेवकों के स्वयं के आग्रह पर खड़ी की जा सकी और युद्ध के बाद उक्त ५ लाख सैनिक शान्तिपूर्वक सामान्य जानता में ऐसे मिल गये जैसे कोई विशेष घटना ही घटित नहीं हुई थी। युद्ध के बाद केवल २५,००० सैनिकों की नियमित सेना रखी गई। इस प्रकार गृह-युद्ध के दिनों में जो सेनावाद और बोनापार्टवाद की अनर्गल बातें कही जा रही थीं वे सब असत्य प्रमाणित हुईं। उन्हीं दिनों यह भय भी प्रकट किया जा रहा था कि गृह-युद्ध के फलस्वरूप दक्षिण के पराजित राज्य उत्तर के विजयी राज्यों से सम्भवतः कभी भी मिलकर सहयोग नहीं करेंगे। किन्तु बावजूद इसके कि युद्ध के पश्चात् के दशक में उत्तर वालों ने दक्षिण-वालों के साथ अच्छा वर्ताव नहीं किया फिर भी ऐसे लोगों की आशाएँ असत्य प्रमाणित हुईं और अन्त में उत्तर और दक्षिण के लोगों के हृदय आपस में मिल ही गए। दक्षिणवालों ने राष्ट्रवाद की एक न्याय्य समस्या पर नया राजनीतिक प्रयोग किया था जो असफल हुआ, किन्तु आम तौर पर दक्षिण के प्रायः सभी लोग उस असफलता से दुःखी नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के आतुर राष्ट्रवादियों और आशावान राष्ट्र-नायकों को अमेरिका के गृह-युद्ध से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करनी है।

लिंकन की हत्या

ली (Lee) के आत्म-समर्पण के केवल पाँच दिन पश्चात् १४ अप्रैल के गुड फ्राइडे (Good Friday) के दिन अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) के सिर में थियेटर हाल में एक दीवाने अभिनेता जॉन विल्क्स बूथ (John Wilkes Booth) ने गोली मार दी। इस प्रकार क्रूर शासकों में सबसे उदार, सरल चित्त, अत्यन्त महान् और अत्यन्त हठी राष्ट्रपति इस संसार से विदा हो गया। "वह दयालु और सत्यनिष्ठ, वीर और दूरदर्शी था। वह बुद्धिमान्, धैर्यवान्, आत्मश्लाघा से बचने वाला किन्तु दूसरों के भी दोषों को अपने ऊपर लेने वाला सरल व्यक्ति था। और वह नई दुनिया का नए प्रकार का राष्ट्रपति था।"[1] उसके हाथों में अपार शक्ति संचित हो गई थी। उसने उत्तर की भीरुता और दक्षिण के कठिन प्रतिरोध का एक-सा विरोध किया। उसने यूनियन को बचा लिया। ज्यों-ज्यों उसके हाथों में शक्ति आई, त्यों-त्यों वह महत्तम होता गया। वह आत्म-विश्वास के साथ सदैव देश की सेवा में रत रहा। उसने यूनियन की रक्षा को अपना लक्ष्य बना लिया था। उक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया। लिंकन की अधीनता में अमेरिका की स्वतन्त्रता का वह जन्म हुआ जो उसका पवित्र आदर्श और लक्ष्य था। उसकी दृढ़ तथा उदार राजनीतिज्ञता ने यूनियन को बचा लिया जिससे वहाँ पर "जनता की जनता द्वारा और जनता के लिए" जो सरकार थी, वह संसार को स्वतन्त्रता का प्रकाश दिखाती रही।

लिंकन की मृत्यु के बाद तो उसकी उदार राजनीतिज्ञता की और भी अधिक आवश्यकता थी। अपने पद के द्वितीय प्रतिष्ठापन के अवसर पर उसने अमेरिका के

---

1. James Russell Lowell ; *Ode* (1865)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख किया था—"हमको किसी से वैर नहीं है। हम सभी के साथ दया और क्षमा का वर्ताव रखना चाहते हैं। हम सत्य और न्याय की हर कीमत पर रक्षा करेंगे। ईश्वर में पूर्ण विश्वास के साथ हम आगे बढ़ेंगे और पुनर्निर्माण का अधूरा कार्य पूरा करेंगे। हमें राष्ट्र के जख्मों को भरना है। जो लोग युद्ध में काम आए हैं उनकी विधवाओं और उनके अनाथ बच्चों की परवरिश भी हम-को ही करनी है। हम हर सम्भव प्रयत्न द्वारा अपने देश और संसार में स्थायी शान्ति बनाये रखने का प्रयत्न करेंगे।"

लिंकन ने एक व्यावहारिक योजना तैयार की थी जिसके अनुसार ज्योंही लूसियाना (Louisiana) पुनः यूनियन में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट करता; त्योंही वह परिसंघ का ऋण (Confederate Debt) रद्द कर देता; और ज्योंही वह संविधान के तेरहवें संशोधन को स्वीकार कर लेता, जिसके अनुसार १८६५ में दासों की मुक्ति स्वीकार कर ली गई थी, उसी समय वह (Louisiana) पूरी तौर से यूनि-यन का एकक राज्य तुरन्त स्वीकार कर लिया जाता। किन्तु लिंकन की हत्या से पुनर्निर्माण का कार्य एण्ड्रू जॉन्सन के अयोग्य कन्धों पर आ पड़ा। नया राष्ट्रपति इतने कठिन उत्तरदायित्व के योग्य था ही नहीं। चूँकि वह डेमोक्रेट (Democrat) था और दक्षिणी था, अतः उसे उत्तर के रिपब्लिकनों ने सहयोग प्रदान नहीं किया। और चूँकि गृह-युद्ध के काल में वह यूनियन का समर्थक बना रहा था अतः दक्षिण के यूनियन-विरोधी तत्त्व उससे अप्रसन्न थे। और चूँकि वह क्रोधी और कलहप्रिय था और चूँकि न तो वह निर्वाचन में राष्ट्रपति पद के लिए चुना गया था और न उसने युद्ध-विजय प्राप्त की थी, अतः वह किसी को प्रसन्न न रख सका। फलस्वरूप राष्ट्रपति और काँग्रेस में नित्य-प्रति कटुतापूर्ण झगड़े रहने लगे। इधर काँग्रेस में रिपब्लिकनों का पूर्ण बहुमत था, इसीलिए राष्ट्रपति के निषेधाधिकार की भी काँग्रेस चिन्ता नहीं करती थी। यही नहीं, काँग्रेस ने राष्ट्रपति के विरुद्ध अभियोग चलाया जो अन्त में असफल हुआ और राष्ट्रपति निर्दोष प्रमाणित हुआ। किन्तु अपनी पदावधि के अन्त में यूलेसिस एस० ग्राण्ट (Ulysses S. Grant) ने उसका स्थान ग्रहण किया। ग्राण्ट (Grant) उत्तरी अमेरिका का यशस्वी और विजयी जनरल था। राष्ट्रपति पद पर जाते ही उसकी महत्ता समाप्त हो गई और वह केवल रिपब्लिकन दल के हाथों का खिलौना मात्र बन कर रह गया। कतिपय दक्षिणी राज्यों ने हब्शियों के विरुद्ध काले कानून (Black Codes) पास किए थे किन्तु रैडीकल दल ने ऐसे कानूनों को लेकर शोर मचाना शुरू किया, और शनैः शनैः उक्त दल का रिपब्लिकन दल में प्राधान्य हो गया। अब रैडी-कल दल (The Radical Party) ने दक्षिणी राज्यों के पुनर्निर्माण का प्रश्न प्रभावित करना प्रारम्भ किया। इस दिशा में वे पूर्व दासों को मताधिकार देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते थे। संविधान के १४वें और १५वें संशोधनों द्वारा हब्शी लोगों (Negroes) को पूर्ण मताधिकार प्रदान कर दिया गया और उन्हें समान नागरिक अधिकार भी प्रदान कर दिए गए। यही नहीं, जिन लोगों ने संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने के सम्बन्ध में प्रयत्न किया था उनको सभी प्रकार के पदों से वंचित कर दिया गया। कतिपय हठी दक्षिणी

पुनर्निर्माण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यों ने १४वें संशोधन का बायकाट किया, किन्तु इसके फलस्वरूप उक्त राज्यों में सैनिक शासन स्थापित कर दिया गया। उत्तर के दलीय सचेतक (Carpet Baggers of the North) और दक्षिण के बेकार के नेता लोग (Scalawags)[1] मिलकर मताधिकार-प्राप्त हब्शियों पर दबाव डालने लगे और उन्होंने रिश्वत देकर काले हब्शियों की पुलिस को भी अपने साथ मिला लिया। इस प्रकार वे अब अज्ञानी और भोले मताधिकार-प्राप्त काले हब्शियों से मनमाना लाभ उठाने लगे। यही नहीं, अब इन काले भूतपूर्व दासों ने मिलकर गोरे लोगों पर भी राजनीतिक अत्याचार करना प्रारम्भ किया जिसे दक्षिण में काला आतंक या भयंकर भय (Black Terror) समझा जाता था।

दक्षिण के जिन राज्यों ने काले कानून (Black Codes) पास किए थे, उन्हें विवश होकर उक्त कानून वापस लेने पड़े। शासनिक निकायों में या तो हब्शी लोग भर गए या उनके समर्थक; और इस प्रकार स्थानीय शासनिक निकायों में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। भूतपूर्व दास अपने मतों (Votes) को आय का साधन बनाने लगे। एक हब्शी ने कहा था—"मैं पाँच बार बेचा और खरीदा गया हूँ; किन्तु मैं ईश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ कि मुझे अबकी बार पहली मर्तबा ही कुछ धन प्राप्त हुआ है।"[2] "राज्यों के ऊपर ऋण-भार बढ़ने लगे क्योंकि प्रत्येक अधिकारी सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करता था। राजनीतिक भ्रष्टाचार के साथ-साथ सामाजिक अन्याय, लूट-खसोट और नैतिक पाप एवं हिंसा और व्यभिचार भी अमेरिका में घर कर गये। संक्षेप में अमेरिका में अनाचार और अनैतिकता का बोल-बाला था।"[3]

शीघ्र ही दक्षिण ने 'भयंकर भय' या काले आतंक (Black Terror) से अपनी रक्षा की व्यवस्था की। अब अकस्मात् ही देहातों में घुड़सवार सैनिक दिखाई पड़ने लगे जो दक्षिणी परिसंघ के भूतपूर्व सैनिक थे। वे छाँट-छाँटकर हब्शियों और उनके अभिकर्ताओं से बदला लेने लगे। किन्तु एक बुराई से अभी रक्षा भी न हो पाई थी कि दूसरी बुराई पैदा हो गई। काले आतंक (Black Terror) की प्रतिक्रिया-स्वरूप कू क्लक्स क्लान (Ku Klux Klan)[4] नाम की गुप्त पार्टी पैदा हो गई।

किन्तु जब रिपब्लिकन बहुमत वाले उत्तरी राज्यों ने राष्ट्रपति पद के लिए रदरफ़ोर्ड बी हेज़ (Rutherford B. Hayes) को नामांकित किया तो उन्होंने मान लिया कि दक्षिणी राज्यों से सेना हटा ली जायगी। धीरे-धीरे दक्षिण में पुनः गोरे

---

1. Carpet baggers and Scalawags were political agents.

2. Quoted by C. Chesterton : *History of the United States*, p. 222.

3. Quoted by C. Chesterton : *History of the United States* p. 222.

४. मई १८६६ में कूक्लौस (Kuklos) नाम की एक गुप्त संस्था टेनेसी (Tennessee) राज्य के पुलस्की (Pulaski) नामक स्थान में पैदा हुई। इसी गुप्त संस्था को कू क्लक्स क्लान (Ku Klux Klan) कहा जाता था। बाद में इसी गुप्त संस्था की शाखा के रूप में अनेक गुप्त समाजों की नींव पड़ी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों का अधिकार हो गया। यह स्वाभाविक ही था कि अपनी रक्षार्थ गोरे लोगो ने कालों के विरुद्ध एक सामाजिक और वैधानिक नींव खड़ी कर ली। वे खुलकर तो संविधान के १५वें संशोधन का विरोध कर नहीं सकते थे, क्योंकि उक्त संशोधन में स्पष्टतः कहा गया था कि "जाति-भेद, रंग-भेद, या पूर्वावस्था के आधार पर किसी व्यक्ति को मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।" किन्तु दक्षिण के गोरे लोगों ने अन्य बहानों से कालों (Negroes) को मताधिकार से वंचित करना प्रारम्भ किया। इन बहानों में एक बहाना अशिक्षा का था तथा दूसरा बहाना सम्पत्ति का अभाव था। किन्तु जो गोरे लोग अशिक्षित या सम्पत्ति-विहीन थे उनको मताधिकार देने के लिए दादा परदादा की धारा (Grandfather Clause) लगा दी गई। इस धारा का यह आशय था कि जो लोग १८६७ में मताधिकार-सम्पन्न थे या जिनके दादा या परदादा कभी मताधिकार प्राप्त थे उन्हें मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त श्वेत लोगों ने अश्वेत लोगों को सामाजिक विधियों द्वारा भी अपने से पृथक् रखा।

इन्हीं दिनों अनेक स्वतन्त्र दास स्वप्न देखने लगे कि वे सुख और शान का जीवन व्यतीत करेंगे अतः उन्होंने देहातों की नौकरी छोड़ दी और वे शहरों में आकर बसने लगे। दक्षिण के बड़े-बड़े कपास के फार्म समाप्त होने लगे और दक्षिण में उद्योगों की उन्नति होने लगी। किन्तु उद्योगीकरण से दक्षिण की आर्थिक और सामाजिक जीवन-चर्या पर गहरा प्रभाव पड़ा। अब दक्षिण उत्तरी उद्योगों पर उतना निर्भर नहीं था।

४. सीमान्त का लोप
(The End of the Frontier)

जिन दो प्रश्नों के समाधान में संयुक्त राज्य प्रारम्भ से ही लगा था, उनका समाधान प्राप्त हो चुका था। किन्तु यह तो भविष्य ही बता सकेगा कि क्या वह समाधान अन्तिम और संतोषजनक था या नहीं।

यह निश्चित हो चुका था कि दास-व्यापार किसी रूप में भी अमेरिका में सहन नहीं किया जायगा। अमेरिका को ऐसा स्वतन्त्र देश बनाना अभीष्ट था, जहाँ के सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार दिए जाने थे और जहाँ क्रान्ति के सिद्धान्तों को व्यावहारिक जामा पहिनाना अभीष्ट था। अमेरिका में काले हब्शियों को भी गोरों के समान राजनीतिक अधिकार दिए जाने थे। काले लोगों की योग्यता और गोरे लोगों के द्वेष में संघर्ष होना अवश्यम्भावी था, किन्तु देश की संविधान-विधि के सम्मुख प्रत्येक काले हब्शी को भी जीवित रहने का, स्वतन्त्रता का और आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने का उतना ही अधिकार था जितना कि किसी गोरे दक्षिणी किसान को या किसी गोरे न्यू इंग्लैंड-निवासी उद्योगपति को था।

द्वितीयतः, यह भी निश्चित हो चुका था कि अमेरिका का संघ पूर्ण और अविच्छेद्य राज्यों का अविच्छेद्य संघ होगा। संघ के एकक राज्यों की अलग-अलग पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्नता (Sovereignty) या तिरस्कार कर दिया गया और यह भी सदैव के लिए निश्चित हो गया कि संघ से कोई भी राज्य कभी अपना सम्बन्ध विच्छेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कर सकेगा। यही नहीं, किसी राज्य का संघ से सम्बन्ध तोड़ लेना उतना ही भयंकर अपराध और देशद्रोह माना जायगा जितना कि यदि केण्ट (Kent) का जिला इंग्लैंड से सम्बन्ध तोड़ ले तो वह देशद्रोह और अपराध माना जाएगा। दक्षिणी परि-संघ (Southern Confederacy) ने उत्तर से सम्बन्ध तोड़कर जो दुस्साहस किया था, वह यदि सफल हो गया होता, तो निस्सन्देह राष्ट्रीयता का द्योतक माना जाता; किन्तु अब तो यह निश्चित हो चुका था कि यह प्रयत्न व्यर्थ और असफल रहा। सत्य यह है कि अमेरिका में लोकतन्त्र और संघवाद की पूर्ण विजय हुई।

इस प्रकार जब सम्पूर्ण अमेरिका में एक संविधान के अन्तर्गत शासन स्थापित हो गया तो सभी का ध्यान आर्थिक वैषम्य की ओर गया। अतः अमेरिका ने अपने प्राकृतिक संसाधनों को विकसित करने का बीड़ा उठाया और इस प्रकार सभी के हृदयों में समृद्धि की लालसा जागी। अमेरिका के अगले पचास वर्षों का इतिहास वास्तव में अमेरिका के विकास और विस्तार का इतिहास है। उसी के परिणामस्वरूप अमेरिका संसार की एक मानी हुई शक्ति बन गया है। इसी विकास और विस्तार के साथ अमेरिका की सभ्यता का अध्याय पूर्ण हुआ जो प्रारम्भ उस समय हुआ था जब एलीघनीज (Alleghenies) के उस पार उपनिवेशियों ने नए राज्य बसाये थे। एक राजनीतिक लेखक ने १३ मार्च सन् १९२८ के "दी टाइम्स" (The Times) नामक अखबार में लिखा था—"मैं समझता हूँ कि हमारे यूरोपीय दृष्टिकोण से ७० वर्ष पूर्व का संयुक्त राज्य अमेरिका आज के अमेरिका से कहीं अधिक प्रौढ़ और सम्पन्न था।" उपरोक्त शब्द एक अंग्रेज राजनीतिक लेखक के हैं जो यह समझता है कि पुरानी दुनिया की निगाहों में नवीन सभ्यता अमेरिका के ऊपर पूरी तरह छाई हुई है; और यद्यपि उक्त नवीन सभ्यता यूरोप के राजनीतिक आदर्शों की जात है फिर भी वह नई दुनिया के ऐसे नये लोगों के नये संस्कारों के अनुरूप निरन्तर ढल रही है, मानो वे उस सभ्यता से भली-भाँति पूर्व-परिचित हैं, और जो उस सभ्यता-जन्य समस्याओं के लिए अपने नये समाधान भी नित्य खोज रहे हैं।

अमेरिका का आन्तरिक विकास

बीसवीं शताब्दी प्रारम्भ होने के पूर्व तक अमेरिका, यूरोप से बचकर रहता रहा। किन्तु अमेरिका के अविकसित प्रदेशों का विकास होता रहा और १८८९ और १८९० में अमेरिका की यूनियन में छः नये राज्य और शामिल हुए। प्रशान्त महासागर तक अमेरिका के आर-पार रेल निकली और उसके बाद तो सारे अमेरिका में मानो रेलों का जाल-सा बिछ गया। सरकार ने भी उदारतापूर्वक व्यक्तियों को और निकायों को जमीनें पट्टों पर दीं। यदि कोई व्यक्ति पांच वर्ष तक किसी जमीन पर हल चलाने को तैयार हो जाता तो उसे १६० एकड़ भूमि मुफ्त दे दी जाती थी। यदि कहीं भूमि का कोई विस्तृत टुकड़ा खाली पड़ा मिलता था तो वह सरकार को लाभकारी रिश्वत के रूप में प्राप्त होता था और वहाँ पर सरकारी फ़ार्म खुल जाता था। किन्तु शर्त यह थी कि ऐसे किसी टुकड़े पर किसी का स्वामित्व न हो। ज्योंही बिसन (bisan) बैल अमेरिकी भूमि में अप्राप्य हो गया, त्योंही सारे अमेरिका में पशु-पालन जोर-शोर से बढ़ने लगा और ग्वालों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी अमेरिका में बहुत इज्जत बढ़ गई। किन्तु ज्यों-ज्यों जनसंख्या पश्चिम की ओर बढ़ने लगी, त्यों-त्यों लोगों का ध्यान पशु-पालन से हटकर गेहूँ की खेती की ओर गया। किन्तु ज्यों-ज्यों पश्चिमी भागों में उद्योगीकरण का विस्तार होता गया, त्यों-त्यों गेहूँ की खेती का भी ह्रास होने लगा।

मिसिसिपी (Mississippi) के पार के क्षेत्र में गोरे लोगों के बस जाने के साथ ही रैड इण्डियनों के साथ अनेक छोटे-छोटे संघर्ष होने लगे। यही नहीं, अमेरिकावाद की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने पीली जातियों के साथ भी संघर्ष उत्पन्न कर दिया। लूसियाना (Louisiana) क्रय के समय रैड इण्डियनों (Red Indians) को पश्चिम की ओर भगा दिया गया था और कुछ भूमि उनके लिए नियत कर दी गई थी। उनसे वायदा किया गया था कि उन्हें छेड़ा न जाएगा। किन्तु उक्त वायदा पूरा नहीं किया गया और जब प्रशान्त की रेल की सड़कों के बन जाने के बाद गोरे लोग बहुत बड़ी संख्या में उधर जाकर बसने लगे तो रैड इण्डियनों की अधिरक्षित भूमि का भी अतिक्रमण किया जाने लगा। गृह-युद्ध के पश्चात् राष्ट्रपति ग्राण्ट (Grant) ने घोषणा की थी कि रैड इण्डियनों के साथ युद्ध करने के बजाय हम उनको भोजन देंगे। फलस्वरूप रैड इण्डियनों को बड़े-बड़े झुण्डों में एकत्रित करके कुछ अधिरक्षित स्थानों पर बसा दिया गया। रैड इण्डियन लोगों का मुख्य भोजन बिसन (Bison) था, जो अब प्रायः अप्राप्य था, अतः वे मान गये और अधिरक्षित स्थानों पर झुण्डों में रहने लगे। किन्तु यहाँ भी उन्हें चैन से नहीं रहने दिया गया। ज्यों-ज्यों खाली जमीनें समाप्त होती गईं; लोग रैड इण्डियनों के लिए छोड़ी गई अधिरक्षित भूमि पर भी अधिकार करने लगे। १८८७ में ऐसी अधिरक्षित भूमि के कई टुकड़ों को इस बहाने पर अधिकार में ले लिया गया कि प्रत्येक रैड इण्डियन (Red Indian) को अलग-अलग छोटे-छोटे भूमि के टुकड़े दिये जायेंगे। यद्यपि अभी तक भी रैड इण्डियन लोग झुण्डों या समूहों में ही रहते हैं, फिर भी उनकी उपजाऊ जमीनों पर गोरों ने अवैध अधिकार कर रखा है।[1] काले हब्शियों के समान ही रैड इण्डियनों को

रैड इण्डियनों की समस्या

---

१. राष्ट्रपति विल्सन (Wilson) ने लिखा है कि "इण्डियनों की अधिरक्षित भूमि के लिए भी लोगों में अपार प्रतिस्पर्द्धा थी। १८८९ में सरकार ने उन रैड इण्डियनों के क्षेत्र में कुछ जमीनें खरीदी थीं जो कैन्सास (Kansas), अर्कैन्सास (Arkansas) और टैक्सास में थीं और उन जमीनों को गोरे लोगों में बाँट देने का विचार किया गया था। ओकलाहोमा (Oklahoma) नाम का प्रदेश सबसे सुन्दर प्रदेश था, जिसे उनके प्रदेश का हृदय समझा जाता था। सारा देश उस प्रदेश में जाकर बसने की कामना करता था। प्रायः पचास हजार लोग ओकलाहोमा प्रदेश के सिरे पर डेरा डाले पड़े रहे ताकि उन्हें उस प्रदेश में अपनी इच्छित भूमि पर कब्जा करने को मिले। २२ अप्रैल, १८८९ की दोपहर को ज्योंही बिगुल बजा जिसका अर्थ था कि राष्ट्रपति ने घोषणा कर दी और सभी इन्तजार करने वाले लोग पागलों की तरह से दौड़े और उन्होंने एक ही दिन में समस्त प्रदेश को आबाद कर दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानो यह कोई पूर्व-निश्चित ड्रामा था जिसका अभिनय किया गया था। यह सारी घटना इतनी आकस्मिक थी, इतनी प्राकृतिक थी और लोगों में इतना जोश था कि सारी घटना नाटक का दृश्य जैसा था। इस प्रकार २२ अप्रैल, १८८९

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पूरे राजनीतिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं और प्रथम विश्व-युद्ध में दस हजार से अधिक रैड इण्डियनों ने सैनिक सेवा की थी।

किसी सीमा तक रैड इण्डियनों का अमेरिका की भूमि पर कुछ अधिकार माना भी जा सकता है किन्तु चीनियों को और बाद में जापानियों को तो कोई अधिकार ही न था कि वे अमेरिका में अधिकार के साथ बसते।

पूर्वी जातियों का देशान्तर वास

सबसे पहले चीनी लोगों ने अमेरिका के प्रशान्तसागरीय तट पर झुण्डों में आना प्रारम्भ किया। वे कम वेतन पर काम करते थे और उनकी सभ्यता दूसरी प्रकार की थी। अतः उनका और गोरे लोगों का संघर्ष अवश्यम्भावी था। प्रशान्त महासागर के तट पर सभी यूरोपीय जातियों को इस समस्या का सामना करना पड़ा है। संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार को भी कई-कई अधिनियम पास करने पड़े ताकि पीली जातियों का अमेरिका में आना रुके। १८९२ में संघीय आज्ञा द्वारा उन सभी चीनी लोगों को अमेरिका से निकल जाने का आदेश दे दिया गया जिन्होंने पहले ही अमेरिका में बसने का अधिकार प्राप्त नहीं कर लिया था। राष्ट्रपति विल्सन ने कहा था—"हम चीनियों को मजदूरों के रूप में अवश्य रखना चाहते हैं और उन्हें अपने देश की नागरिकता न भी दें। हमारे पूर्वी तट पर जितने अनेक विभिन्न जातीयताओं के लोग आते हैं, उनमें चीनी हमको सबसे प्रिय हैं।"[1]

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से जापानी लोगो ने अमेरिका में घुसपैठ प्रारम्भ की। इनका आना अमेरिकावासियों को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। अतः १९०५ से १९१३ तक अमेरिकी सरकार ने कई ऐसे अधिनियम पास किये जिनका उद्देश्य विदेशी नागरिकों और विशेषकर जापानी नागरिकों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाना अभीष्ट था।

सारे संसार की लोलुप आँखें अमेरिका की दौलत की ओर लगी थीं। सभी को ऐसा लग रहा था कि अमेरिका में जाकर हम शीघ्र मालामाल हो जायेंगे। और फिर अमेरिका में अपेक्षाकृत अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता भी थी। १८ वीं शताब्दी के मध्य से अन्त तक अमेरिका के पूर्वी तट पर सभी देशों के प्रवासी आए और बस गए। यद्यपि प्रारम्भ में अधिकतर प्रवासी जर्मनी (Germany), ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैण्ड और अन्य उत्तरी-पश्चिमी देशों से आकर बसे; किन्तु शीघ्र ही बहुत बड़ी संख्या में प्रवासी रूस (Russia), पोलैण्ड (Poland), इटली (Italy), ऑस्ट्रिया (Austria) और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप से आये। इस अवसर पर हम विभिन्न देशों के प्रवासियों की उपनिवेशीकरण की अपेक्षाकृत शक्ति और उनके विभिन्न नागरिक गुणों का विवेचन नहीं करेंगे क्योंकि जहाँ तक प्रवासियों की शिक्षा, प्राविधिक योग्यता और उनके सांस्कृतिक गुणों का सम्बन्ध है, वहाँ तक शनैः-शनैः ज्यों-ज्यों प्रवासी आते गये त्यों-त्यों

देशान्तरवास

का दिन उपनिवेशीकरण के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। (*A History of the American People*, Vol. V, p. 212)

1. President Wilson *A History of the American People*, p. 213.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटिया दर्जे के प्रवासी ही आए। फल यह हुआ कि बाद में आए हुए प्रवासी न तो स्वशासन-कला से परिचित थे और न उन्हें श्रेष्ठ लोकतन्त्रात्मक परम्पराओं का अनुभव था, अतः वे अमेरिका के गोरे लोगों की दया पर आश्रित रहे और उनको उस देश के पुराने उद्योगपतियों ने भी ठगा और राजनीतिक दलपतियों (Party Bosses) ने भी उनका शोषण किया। फलस्वरूप अमेरिका की औद्योगिक दशा भी खराब हो गई और उसका राजनीतिक जीवन भी दोषमय और कमजोर पड़ने लगा। प्रारम्भ में इन प्रवासियों को इसलिए सहन कर लिया गया कि वे श्रमिक वर्ग के उत्तरोत्तर क्रम में निम्नतर वर्ग में काम करते थे।[1] किन्तु शीघ्र ही ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि प्रवासियों का अमेरिका में देशान्तरवास रोकना अनिवार्य है। अतः और अधिक प्रवासियों को रोकने के लिए आवश्यक नियम पास किये गए। अब तो विदेशों से आने वाले प्रवासियों की संख्या निश्चित कर दी गई है और आने वालों के लिए कुछ शिक्षा आदि की शर्तें लगा दी गई हैं। इन उपायों का फल यह हुआ है कि किसानों का आना बिल्कुल बन्द है किन्तु नगरों के कुशल कारीगरों को अभी भी आज्ञा है कि वे अमेरिका में आ सकते हैं। फिर भी चूँकि लगभग चार करोड़ विदेशी एक ही शताब्दी में अमेरिका में आकर बस गये अतः यह अवश्यम्भावी था कि अमेरिका की सभ्यता और अमेरिका के जीवन पर उसकी जनसंख्या की विभिन्नता का प्रभाव पड़ता। फलस्वरूप अमेरिका में आम तौर पर उदारता पाई जाती है और संकीर्णता का अभाव पाया जाता है।

औद्योगिक विकास

यदि गृह-युद्ध के बाद के पचास वर्षों में अमेरिका का सर्वांगीण विकास मुख्य घटना थी तो यही काल अमेरिका के औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। १८८० तक संयुक्त राज्य अमेरिका कृषि-प्रधान देश था, किन्तु १८८० के बाद से अमेरिका ने उद्योगों के क्षेत्र में भारी उन्नति की है। अब अमेरिका के उद्योग-धन्धे और उसका व्यापार इस सीमा तक विकसित हुए हैं कि जहाँ वह १८१२ तक दूसरे देशों के आयात पर निर्भर रहता था, अब वह संसार का प्रमुख निर्यातक देश (Exporting Nation) माना जाता है। अमेरिका के महान् औद्योगिक विकास में उसको स्थान और समय (Place and time) से भारी सहायता प्राप्त हुई है। स्थानीय सहायता का तात्पर्य यह है कि अमेरिका को विशाल गृह-बाजार (Internal market) और महाद्वीपीय बाजार (Continental market) मिला जिसका आकार अद्वितीय था। और समय की सहायता का तात्पर्य यह है कि उसको प्राविधिक ज्ञान था। वैज्ञानिक खोजों पर अन्धाधुन्ध रुपया खर्च करके अमेरिका के लोगों ने विज्ञान और उद्योगों के क्षेत्र में अपार प्रगति की है। इस समय अमेरिका जैसी वस्तुओं का उत्पादन करता है वे वस्तुएँ संसार के अनेक भागों में आश्चर्य के साथ देखी जाती हैं। ज्यों-ज्यों उद्योगों का विकास हुआ त्यों-त्यों संगठनों की समस्या भी उठी। अब औद्योगिक संगठन पनपने लगे किन्तु उसके साथ श्रमिकों में भी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने की रुचि जागने लगी। किन्तु इसके परिणाम स्वरूप उत्पादन विशाल पैमाने

1. President Wilson : *A History of the American People*, p. 114.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर होने लगा। विशाल पैमाने पर उत्पादन अपने साथ बड़े-बड़े बाजार भी लाया अतः इस समय अमेरिका बड़े-बड़े और विस्तृत बाजारों पर अवलम्बित है। इन सब विकासों के परिणामस्वरूप जहाँ अमेरिका ने चमत्कारपूर्ण प्रगति की है वहीं इस देश में कम-कम से वैषम्य पाया जाता है और व्यक्तिगत प्रतिस्पर्द्धा तथा वैयक्तिक कलाप्रियता का भी अमेरिकी जीवन में पूर्ण अभाव है।

इस विकास का एक परिणाम यह हुआ कि अमेरिकावासियों की क्रयशक्ति बहुत अधिक बढ़ गई है अतः औद्योगिक मुनाफ़ों का कुछ निश्चित प्रतिशत सर्वत्र उपभोक्ताओं की तैयार माल के प्रति रुचि तैयार कराने में खर्च किया जाता है। इस प्रकार रुचि तैयार कराने में कला और चालाकी एवं छल का भी खुल कर प्रयोग होता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अमेरिका में सभी वर्गों के लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो गया है और सभी लोग आराम से रहने के आदी हो गए हैं और चूँकि अमेरिका में श्रमिकों की वास्तविक कमी है अतः वहाँ पर श्रमिकों के वेतन दर अत्यधिक ऊँचे हैं। जिन परिस्थितियों का अमेरिका के श्रमिकों पर और उस देश की औद्योगिक अवस्थाओं पर प्रभाव पड़ता है उनमें यह एक तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि उस देश में श्रमिकों का जीवन-स्तर बहुत ही ऊँचा है। इसके साथ ही वहाँ उन श्रमिकों को सूद बहुत देना पड़ता है जो औद्योगिक मन्दी या आर्थिक अवसाद के समय अपनी सम्पत्ति को बैंकों में गिरों रखकर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। अन्ततः अमेरिका में व्यापारिक और आर्थिक विधियाँ राज्यों के क्षेत्राधिकार में आती हैं और वे केन्द्रीय व्यवस्थापन से परे हैं, इसलिए भी विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के औद्योगिक नियम हैं; और श्रमिकों को सभी प्रकार की विषमताओं के लिए तैयार रहता पड़ता है।

१९१४-१८ के विश्व-युद्ध ने न केवल अमेरिका के निर्यात व्यापार क बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया बल्कि अमेरिका ने द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति से भी पूरा-पूरा लाभ उठाया जो युद्ध से पूर्व विद्युत शक्ति के विकास का सीधा परिणाम थी। फलस्वरूप कुछ नये उद्योगों पर तो अमेरिका का प्रायः पूर्ण एकाधिकार हो गया। इन नये उद्योगों में मोटर कार उद्योग, सिनेमा उद्योग आदि प्रमुख थे। यह कारण था कि प्रथम विश्व-युद्ध के दिनों में डेट्रोइट (Detroit) और लॉस एन्जेलेस (Los Angeles) आदि विश्वविख्यात औद्योगिक केन्द्र बन गए किन्तु १९३९ में द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व इन नगरों के औद्योगिक महत्त्व को चुनौती दी जा रही थी। इसके अतिरिक्त चूँकि अमेरिका अभी तक भी आर्थिक क्षेत्र में पूर्ण आत्म-निर्भर है केवल रबर अथवा एक दो अन्य वस्तुएँ ऐसी हों जो इस कथन की अपवाद हों, अतः अमेरिका ने सदैव उच्च चुंगी दरों द्वारा अपने उद्योगों की विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से रक्षा की है।

अमेरिका ने अपने उद्योगों से अपार धनराशि अर्जित की है और उसकी वित्तीय शक्ति संसार में सबसे अधिक दृढ़ है। १९१४-१८ के युद्ध में अमेरिका संसार का सबसे बड़ा साहूकार देश (Creditor) बन गया यद्यपि इससे पहले इंग्लैण्ड को यूरोप का साहूकार देश समझा जाता था। इसका एक प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार में जर्मनी से युद्ध के हर्जाने के रूप में जितना धन प्राप्त होता था वह प्रायः सारे-का-सारा अमेरिकी कोष में आता था। दूसरे युद्ध के बाद अमेरिका ने युद्ध से जर्जरित देशों को १९४७-५२ के बीच में ४० बिलियन डालर दिए।

विदेशी नीति

१९वीं शताब्दी के अन्त तक अमेरिका की विदेश नीति का कोई विशेष महत्त्व नहीं था; किन्तु २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से अमेरिका की विदेश नीति का आदर होता है और वह निरन्तर विस्तारवादी रुख अपना रही है।

गृह-युद्ध ने यूनियन को संगठित कर दिया था और राष्ट्रीय एकता के ज्ञान ने संयुक्त राज्य की विदेश-नीति को बहुत प्रभावित किया था। उसने अपनी स्थिति और सम्मान को अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में स्वीकार कराने के लिये दृढ़ विदेश नीति ग्रहण की। अतः गृह-युद्ध के पश्चात् रिपब्लिकन दल का एक वर्ग यह चाहता था कि गृह-युद्ध से जो राष्ट्रीय एकता प्राप्त हुई थी उससे लाभ उठाने के लिए एक विदेशी युद्ध मोल ले लिया जाय ताकि देश के सभी वर्गों में राष्ट्रीय एकता की भावना घर कर जाये। इन्हीं दिनों युद्ध का अवसर भी आ गया था। नेपोलियन तृतीय (Napoleon III) ने अमेरिका की गृह-युद्धजन्य कठिनाइयों से लाभ उठाकर मनरो सिद्धान्त के प्रतिकूल मैक्सिको (Mexico) पर आक्रमण कर दिया।

नैपोलियन तृतीय भी अपने चाचा की तरह पश्चिम में फ्रेंच साम्राज्य के सपने देख रहा था। यह मनरो का सिद्धान्त (Monroe Doctrine) की अवज्ञा थी। वास्तव में नेपोलियन तृतीय उस समय ऑस्ट्रिया के मैक्सीमिलियन (Maximilian) को मैक्सिको (Mexico) का सम्राट् बनाकर ऑस्ट्रिया का अनुग्रह प्राप्त करना चाहता था। किन्तु नेपोलियन तृतीय का दुस्साहस पूर्ण असफल हुआ। ज्योंही गृह-युद्ध समाप्त हुआ, संयुक्त राज्य अमेरिका ने कठोर रुख अपनाया और नेपोलियन को स्पष्ट चेतावनी दे दी कि वह तुरन्त नई दुनिया से हट जाये। फ्रेंच सम्राट में इतना दम नहीं था कि संयुक्त राज्य से युद्ध मोल लेता, अतः वह तुरन्त हट गया। किन्तु अभागा आर्च ड्यूक, जो नेपोलियन की महत्त्वाकांक्षाओं का शिकार बना हुआ था, मैक्सिको (Mexico) में ही पड़ा रहा, जहाँ उसकी हत्या कर दी गई। उसकी स्त्री अपने प्रिय पति की मधुर याद में विक्षिप्त हो गई और वह १९२७ तक वहीं कहीं असहाय जीवन बिताती रही।

अलबामा (Alabama) नाम के ब्रिटिश जहाज ने, जो अमेरिका को क्षति पहुँचाई थी उसके विरुद्ध अमेरिका ने ब्रिटेन के प्रति कठोर रुख अपनाया और ग्लैडस्टन (Gladstone) की सरकार को पर्याप्त रकम (लगभग ३२॥ लाख पौंड) हर्जाने के रूप में अमेरिका को अदा करनी पड़ी।

१८६७ में अमेरिका ने रूस से ७० लाख डालर में अलास्का (Alaska) खरीद लिया। उक्त प्रान्त से अमेरिका को अपार लाभ हुआ है। क्रय-मूल्य से कहीं अधिक का सोना ही अलास्का से प्राप्त हो चुका है। सोने के अतिरिक्त अलास्का में लकड़ी, कोयला और मछलियों के अपार साधन स्रोत हैं और उक्त प्रान्त में कृषि से भी पर्याप्त आय होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८९५ में मनरो सिद्धान्त के वाक्-छलपूर्ण अर्थ लगाकर संयुक्त राज्य ने इंग्लैण्ड और वेनेज्वेला (Venezuela) के बीच एक सीमा सम्बन्धी विवाद में हस्तक्षेप किया और इंग्लैण्ड के विरुद्ध मनमाना निर्णय दे दिया।

दो वर्ष के पश्चात् अमेरिका ने स्पेन के विरुद्ध इस आधार पर युद्ध छेड़ दिया कि वह क्यूबा (Cuba) में कुशासन कर रहा था। इस युद्ध में संयुक्त राज्य सफल हुआ और अमेरिका के संरक्षण में क्यूबा को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। इसके साथ लाभ में अमेरिका को पोर्टो रीको (Puerto Rico) और गुआम (Guam) नाम के दो फिलिपाइन द्वीप भी प्राप्त हुए। उसी वर्ष अमेरिका से दो हजार मील दूर स्थित हवाइयन द्वीपसमूह (Hawaiian Islands) पर भी वहीं के निवासियों की प्रार्थना पर अमेरिका का अधिकार हो गया। अब अमेरिका का गणराज्य एक साम्राज्य का स्वामी बनता जा रहा था क्योंकि उसके अधिकार में कुछ उपनिवेश आ गये थे।

स्पेन-अमेरिका युद्ध ने अमेरिका के इतिहास में एक नया अध्याय खोल दिया। इसने अमेरिकन साम्राज्यवाद की निश्चित रूप से नींव डाली। बहुत समय तक आन्तरिक विवादों में फँसे रहने के बाद और गृह-युद्ध से निबटने तथा अपने प्राकृतिक संसाधनों के विकास का अध्याय खोलने के बाद अमेरिका ने आक्रामक साम्राज्यवादी नीति अपनायी और वह साम्राज्य विस्तार की भाषा में सोचने लगा। अमेरिका के इतिहास में प्रथम बार उसके अधिकार में उपनिवेश और प्रजाजन आये। प्रथम बार अमेरिका का अधिकार कैरीबियन सागर (Caribbean Sea) पर हुआ। उधर फिलिपाइन द्वीपसमूह पर अधिकार हो जाने के फलस्वरूप अमेरिका सीधे जापान के संसर्ग में आया। जापान का सूर्य इस समय उग रहा था। संक्षेप में यह समझना चाहिए कि अमेरिका साम्राज्यवादी देश बन रहा था और उसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बढ़ता जा रहा था।

१९०१ से लेकर १९०९ तक थियोडोर रूजवेल्ट (Theodore Roosevelt) अमेरिका का राष्ट्रपति रहा। उसी वर्ष १९०१ में इंग्लैण्ड में एडवर्ड सप्तम (Edward VII) राजसिंहासन पर बैठा। दोनों का दोनों देशों की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह महत्त्वाकांक्षी था और उसमें नेतृत्व के श्रेष्ठ गुण थे। उसके प्रभावी नेतृत्व में संयुक्त राज्य ने अपनी अलग रहने की पुरानी नीति को त्याग दिया और वह विश्व-राजनीति में प्रभावपूर्ण स्थान प्राप्त करने के प्रयत्न करने लगा। अब अमेरिका का प्रभाव न केवल अमेरिका तक सीमित था बल्कि सारे यूरोप और सारे एशिया में अमेरिका को आदर और महत्त्व के साथ देखा जाता था।

किन्तु जापान के संसर्ग में आने में अमेरिका को प्रशान्त महासागर में भी पैर फैलाने के अवसर मिले। अमेरिका को यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि यूरोप से दूर सुदूरपूर्व में जापान का सूर्य उग रहा था जिससे कभी-न-कभी टक्कर लेनी ही होगी। १९०४-५ के रूस-जापान युद्ध में संयुक्त राज्य ने मध्यस्थता की थी जिससे अमेरिका विश्व-शक्ति के रूप में अवतरित हुआ। यद्यपि युद्ध में जापान की रूस पर विजय हुई थी किन्तु रूजवेल्ट ने जापान की सैनिक विजय को कूटनीतिक पराजय के रूप में परिणत कर दिया था। अतः, जापान और अमेरिका के बीच एक प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कटुता-सी उत्पन्न हो गई थी, जो कैलीफ़ोर्निया के साथ देश-प्रवासियों के झगड़ों के कारण और भी बढ़ गई। भावनाओं का यह तनाव अमेरिका से जहाजी बेड़े के १९०७ में प्रशान्त की ओर भेजे जाने से प्रकट होता था, क्योंकि वास्तव में रूज़वेल्ट का उद्देश्य जापान को संयुक्त राज्य की शक्ति से प्रभावित करना था।

संयुक्त राज्य अमेरिका की बढ़ती हुई विश्व-चेतना का एक अन्य उदाहरण उसका १९०६ में एल्जीसिरस (Algeciras) सम्मेलन में मोरक्को (Morocco) के प्रश्न पर भाग लेना था। सत्य यह है कि मोरक्को का प्रश्न पूर्णतः यूरोपीय प्रश्न था, और इस प्रश्न पर सम्मेलन में भाग लेकर अमेरिका ने मनरो सिद्धान्त से पलायन किया था।

सम्भवतः अमेरिका की नयी विदेश-नीति का आक्रामक स्वरूप स्पष्ट रूप से कैरीबियन सागर (Caribbean sea) और मध्य अमेरिका के मामलों में देखने को मिला। इस क्षेत्र में अमेरिका ने घुसते ही सबसे पहला कार्य यह किया कि प्रशान्त महासागर और अतलान्तक महासागर के बीच नहर की योजना को कार्यान्वित किया। किन्तु इस नहर के निर्माण में कोलम्बिया ने कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित कीं। अतः रूज़वेल्ट (Roosevelt) ने पहले तो पनामा राज्य को कोलम्बिया के विरुद्ध खड़ा कर दिया और फिर कोलम्बिया पर दबाव डालकर पनामा को स्वतन्त्र राज्य स्वीकार करा लिया। तत्पश्चात् पनामा से आवश्यक भूमि खरीद ली गई और शीघ्रता के साथ पनामा नहर का निर्माण हो गया। उधर मनरो सिद्धान्त की दुहाई देकर संयुक्त राज्य ने वेस्ट इण्डीज (West Indies) और यूरोपीय देशों के बीच हस्तक्षेप किया। बात यह थी कि यूरोपीय देशों का नागरिकों का कर्जा वेस्ट इण्डीज पर था और वे उक्त कर्जा वसूल करना चाहते थे।

अमेरिका को भय था कि कहीं वित्तीय अस्थिरता के साथ-साथ वेस्ट इण्डीज में राजनीतिक अस्थिरता भी उत्पन्न न हो जाय, अतः जब अमेरिका ने वेस्ट इण्डीज़ का पक्ष लेकर इस विवाद में भी हस्तक्षेप करना चाहा तो इससे दिवालिया वेस्ट इण्डीज़ को तो प्रसन्नता हुई किन्तु लैटिन अमेरिका के देशों को सन्देह होने लगा और वे अपने शक्तिशाली पड़ोसी देश (संयुक्त राज्य) के प्रति शंकालु से रहने लगे।

किसी-न-किसी उपाय द्वारा—प्रायः युद्ध या धमकियों द्वारा—अमेरिका ने पनामा नहर के बृहद् क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया है। उस क्षेत्र में कुछ राज्यों पर अमेरिका का संरक्षण है और कुछ द्वीपों पर अमेरिका का वित्तीय नियन्त्रण भी है; यही नहीं हैती (Haiti) द्वीप पर अमेरिका का राजनीतिक नियन्त्रण भी है। वहाँ के मार्गों पर अमेरिका को पूर्ण एकाधिकार प्राप्त है। उसे यह भी अधिकार है कि उस क्षेत्र में यदि किसी देश में उपद्रव हो तो वह तुरन्त शान्त कर दे और उसने समुद्रों के किनारों के ऐसे स्टेशनों पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया है जहाँ जहाज़ों के ठहरने की या कोयले के लेने की सुविधा है।

इन्हीं दिनों अमेरिका में पान अमेरिकन (Pan-American) आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन का यह उद्देश्य और अर्थ था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्पूर्ण अमेरिकन महाद्वीप के राज्यों को संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में एक सूत्र में संग-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठित कर लिया जाय। पान अमेरिकन आन्दोलन (Pan-Americanism) के समर्थकों ने रूज़वेल्ट की आक्रामक और शक्तिशाली विदेश नीति का समर्थन किया। किन्तु कुछ दिन पहले इस नीति को उतना ही भयंकर और आक्रामक समझा जाता था जितना कि यूरोप में पान-जर्मनवाद (Pan Germanism) और पान-स्लाविज्म (Pan-Slavism) को आक्रामक समझा जाता था। यद्यपि आजकल पान-अमेरिकनवाद (Pan-Americanism) का केवल यही उद्देश्य है कि अमेरिकी महाद्वीप पर स्थित सभी देशों में पूर्ण मेल और एकता बनी रहे, फिर भी कुछ उतावले दक्षिणी अमेरिका के राज्यों में पान-अमेरिकनवाद (Pan-Americanism) के नाम पर पृथकतावादी भाव जाग्रत हो जाते हैं। अमेरिका में कई पान-अमेरिकन सम्मेलन हो चुके हैं जिनमें नई दुनिया के प्रायः सभी स्वतन्त्र राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। आजकल वाशिंगटन (Washington) में पान-अमेरिकन संस्था का केन्द्रीय संघ है। इस संघ का यह कार्य है कि उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में मेल-जोल और सामंजस्य बनाए रखे और दोनों भागों के प्राकृतिक संसाधनों से सब को अवगत रखे तथा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के निवासियों में प्रेम-भाव की वृद्धि करे।[1]

१९१४-१८ के विश्व-युद्ध में प्रायः तीन वर्ष तक संयुक्त राज्य ने किसी ओर से कोई भाग नहीं लिया क्योंकि अमेरिका के लोग एकमत नहीं थे, विशेषकर इस लिए कि अमेरिका की जनसंख्या का पाँचवाँ भाग जर्मन नागरिकों का है। किन्तु अन्त में अमेरिका का विशाल जनमत पश्चिमी मित्रराष्ट्रों के पक्ष में हो गया और अप्रैल १९१७ में अमेरिका ने मनरो सिद्धान्त को ताक में रखते हुए पश्चिमी मित्रराष्ट्रों का पक्ष ग्रहण किया। १९ महीनों तक अमेरिका युद्ध-रत रहा और पाँच महीनों तक अमेरिका के जवान सैनिक मोर्चों पर लड़े। कहा जाता है कि उस युद्ध के फलस्वरूप अमेरिका में केन्द्राभिग तत्त्वों (Centripetal Forces) को बल मिला।

१९१४-१८ के विश्व-युद्ध में अमेरिका के प्रवेश का बहुत से लोगों ने यह अर्थ लगाया कि उसने मनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) में निहित अपनी पृथकतावादी नीति का सदैव के लिए परित्याग कर दिया। किन्तु ऐसा नहीं था। प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति पर अमेरिका विजयी होकर निकला फिर भी उसने दृढ़ निश्चय के साथ यह घोषणा की कि भविष्य में वह कभी भी यूरोपीय विवादों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। यद्यपि राष्ट्रसंघ (League of Nations) अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन (Wilson) के प्रयत्नों का फल था फिर भी अमेरिका स्वयं राष्ट्रसंघ में प्रविष्ट नहीं हुआ। अमेरिका ने शांति संधि की शर्तों की क्रियान्विति की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ली और युद्धोपरान्त की पुनर्निर्माण संबंधी समस्याओं के समाधान का उत्तरदायित्व भी अमेरिका ने अपने ऊपर नहीं लिया। अमेरिका ने प्रथम विश्व-युद्ध में विशेष रूप से ग्रेट

१. पैन-अमेरिकन नीति का नया उदाहरण यह था कि राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी० रूज़वेल्ट (Franklin D. Roosevelt) ने घोषणा की थी कि "यदि अमेरिका के दोनों भागों में से किसी पर भी वाह्य आक्रमण होगा तो संयुक्त राज्य अपनी पूरी सैनिक शक्ति से उक्त वाह्य आक्रमण का मुकाबला करेगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटेन की रक्षा के लिए हस्तक्षेप किया था किन्तु जब ग्रेट ब्रिटेन ने ही अमेरिका का युद्धजन्य ऋण देना टाल दिया क्योंकि स्वयं ब्रिटेन को अन्य देशों से जो धनराशि मिलनी थी वह नहीं मिली, तब अमेरिका को बड़ी निराशा हुई और उसका दिल यूरोपीय राष्ट्रों की ओर से खट्टा हो गया। और जब इटली और अबीसीनिया के बीच युद्ध छिड़ा तब अमेरिका ने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि वह किसी ओर से भी युद्ध का समर्थन नहीं करेगा। उसने तटस्थता सम्बन्धी विधि भी पास करके यह स्पष्ट कर दिया कि युद्ध-सामग्री का निर्यात करके भी वह यूरोपीय झगड़ों में नहीं पड़ेगा। जब १९३३-३९ के बीच जर्मनी में नाज़ी शक्ति का विशेष उदय हुआ और इंग्लैण्ड एवं फ्रांस का जर्मनी से युद्ध छिड़ गया, तब राष्ट्रपति रूज़वेल्ट (Roosevelt) ने और उसके डेमोक्रेटिक दल ने ऐसी विधियों को समाप्त करना चाहा जो लोकतन्त्रों (इंग्लैंड और फ्रांस) को सहायता देने में बाधक थीं। युद्ध छिड़ने से पूर्व अगस्त १९३९ में इस दिशा में पहला प्रयत्न विफल हो गया क्योंकि पृथकतावादी तत्त्वों का अमेरिका में जोर था। किन्तु युद्ध प्रारम्भ होने के तीन सप्ताह बाद पुनः उस दिशा में प्रयत्न किया गया। इस बार रूजवेल्ट को सफलता मिली।

जिस समय दूसरी लड़ाई शुरू हुई, अमेरिका के लोगों की सहानुभूति शुरू से ही पश्चिमी शक्तियों के साथ थी। युद्ध शुरू होते ही अमेरिका में तटस्थता अधिनियम (Neutrality Act) अपने आप लागू हो गया। लेकिन, अमेरिका प्रथम विश्वयुद्ध के अनुभव को नहीं भूला था। इस बार अमेरिका यह अच्छी तरह समझता था कि इस युद्ध में उसकी सुरक्षा को भी खतरा है। १९४० की घटनाओं, हिटलर द्वारा पश्चिमी यूरोप की विजय, ब्रिटेन के विनाश के आसन्न खतरे ने तीव्र संकट उपस्थित कर दिया। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट शुरू से ही नाज़ियों के विरुद्ध रहे थे। उन्होंने धीरे-धीरे देश को तटस्थता त्यागने पर राजी किया और वे उसे खींचकर युद्ध में ले आए। समर वैलेस पीस मिशन (फरवरी १९४०) की असफलता के बाद, धीरे-धीरे तटस्थता अधिनियम को समाप्त करने के बाद (कैश एण्ड कैरी कंसेशन, नवम्बर १९३९; डेस्ट्रायर नेवल बेस डील, सितम्बर, १९४०; लैंड-लीज एग्रीमेंट, मार्च १९४१) सेनाध्यक्षों की गुप्त वार्ता के पश्चात्, अमेरिका का शस्त्रों का उत्पादन बढ़ाने के बाद, पश्चिमी देशों को रक्षा के अधिकाधिक आश्वासन देने के बाद, अमेरिका धीरे-धीरे युद्ध की ओर अग्रसर हो गया। पृथकतावादी तत्त्वों ने भी डटकर संघर्ष किया, लेकिन अन्त में वे पराजित हो गए।[१]

---

१. जिस समय लैण्ड-लीज समझौता (Lend-Lease Agreement) हुआ, सीनेटर वैंडेनबर्ग ने अपनी डायरी में लिखा था कि अमेरिकी गणराज्य अपनी हत्या करने जा रहा है। "हमने प्रादेशिक विदेशनीति के १५० वर्षों से नाता तोड़ लिया है। हमने वाशिंगटन के विदा अभिभाषण की अवहेलना की है। हमने अपने आपको पूरी तरह से यूरोप, एशिया और अफ्रीका की शक्तिमूलक राजनीति और स्पर्द्धी युद्धों में झोंक दिया है। हमने अब एक ऐसे रास्ते को पकड़ लिया है जिससे हम पीछे की ओर नहीं मुड़ सकते।" (Quoted in Foster Rhea Dulles, *America's Rise to World Power*, p. 198).

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदूर पूर्व की घटनाओं ने अमेरिका का युद्ध में प्रवेश अनिवार्य कर दिया। जापान सुदूर पूर्व में और चीन में निरन्तर विस्तारवादी नीति अपना रहा था। यह चीज अमेरिका की आँखों में खटक रही थी। ७ दिसम्बर, १९४१ को जापान ने पर्ल हार्बर पर हमला कर दिया। इसके फलस्वरूप अमेरिका का जापान से तुरन्त ही और कुछ दिनों के बाद जर्मनी और इटली से युद्ध छिड़ गया। वैंडेनबर्ग (Vandenberg) ने लिखा था, "उस दिन किसी भी यथार्थवादी के लिए पृथकतावाद समाप्त हो गया।"

अमरिका ने किस प्रकार युद्ध में भाग लिया, उसने किस प्रकार १ करोड़ २० लाख सेना एकत्रित की, किस प्रकार उसने अपने संसाधनों का संगठन किया, इसका विवेचन हम पीछे कर चुके हैं। इस बार राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने यह पक्का फैसला कर लिया था कि वे युद्ध के बाद सामूहिक सुरक्षा की एक ऐसी व्यवस्था को स्थापित करेंगे जिससे कि संसार को दुबारा युद्ध का मुँह न देखना पड़े। अगस्त, १९४४ में डम्बरटन ओक्स के सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्रसंघ का बीजवपन हो गया। इस बार अमेरिका पीछे नहीं हटा। इस युद्ध के बाद अमेरिका पहले से कई गुना शक्तिशाली होकर विश्व राजनीति के मंच पर उदित हुआ। युद्ध के पश्चात् अमेरिका के ऊपर जो भी दायित्व आए उनका उसने बड़ी सफलता से निर्वाह किया। उसने संयुक्त राष्ट्रसंघ में और प्रादेशिक समझौतों में सामूहिक और प्रादेशिक सुरक्षा की पूरी व्यवस्था कर ली। उसने पिछड़े हुए देशों को करोड़ों-अरबों रुपये की सहायता दी है। उसने रूस के साथ शीत-युद्ध का और कोरिया (१९५०-५३) में प्रत्यक्ष युद्ध का सारा बोझ सहा है। उसने अपनी सैनिक तैयारी पूरी कर रखी है और अणु हथियारों का भी विकास किया है। सबसे ज्यादा आश्चर्य की बात यह है कि अमेरिकी सरकार की इन नीतियों में अमेरिकी जनता भी पूरी तरह उसके साथ रही है। यद्यपि अमेरिका में गौण विषयों पर अवश्य थोड़े से मतभेद रहे हैं; तथापि मूल बातों पर वहाँ राष्ट्रीय एकता रही है। अमेरिका की यह नीति द्विदल पद्धति तथा काँग्रेस के सहयोग के आधार पर कार्यान्वित होती रही है। अमेरिका अपने राजनीतिक सिद्धान्तों के स्वाभाविक प्रयोग द्वारा मनरो सिद्धान्त से बढ़कर ट्रुमैन सिद्धान्त तक पहुँच गया। इस बीच में उसने अपने प्राकृतिक संसाधनों तथा शक्तियों का भी पूर्ण विकास किया है। अब्राहम लिंकन ने कहा था कि अमेरिकी संघ आधा दास और आधा स्वतन्त्र होकर सदैव जीवित नहीं रह सकता। ट्रुमैन ने यह सिद्धान्त सारे संसार पर लागू किया। "मेरे विचार से अमेरिका को उन स्वतन्त्र राष्ट्रों की सहायता करनी चाहिए जो सशस्त्र अल्पसंख्यकों अथवा बाहर के दबावों द्वारा स्थापित नियंत्रण का विरोध कर रहे हैं। संसार जड़ नहीं है और स्थिरता पवित्र नहीं है। लेकिन, हम राजनीतिक हस्तक्षेप अथवा बलप्रयोग द्वारा संयुक्त राष्ट्र-संघ के चार्टर का उल्लंघन करते हुए वर्तमान स्थिति में परिवर्तन सहन नहीं करेंगे। संसार के स्वतन्त्र राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए हमारी ओर देखते हैं।"[1]

अमेरिका की राजनीति और उसके शासन के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना

---

१. काँग्रेस के समक्ष भाषण, १२ मार्च, १९४७।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुचित न होगा। गृह-युद्ध के पश्चात् अमेरिका की राजनीति में भ्रष्टाचार और व्यावसायिकता ने घर कर लिया है और इसका संगठन बहुत ही दुरूह हो गया है। यद्यपि अमेरिका में एक-दो बार तृतीय राजनीतिक दल के निर्माण का भी प्रयत्न किया गया है किन्तु इस ओर सफलता नहीं मिल सकी। आज भी अमेरिका के राजनीतिक जीवन में द्विदल-पद्धति का ही प्रचलन है। यद्यपि देश से दास-व्यापार समाप्त हो चुका है फिर भी उन दोनों राजनीतिक दलों के वही नाम आज भी चले आ रहे हैं जो दास-व्यापार के समय थे। रिपब्लिकन दल, जो सदैव उत्तरी अमेरिका के हितों का समर्थक रहा है, अब बड़े उद्योगों और उद्योगपतियों के हितों का समर्थक है और वह अब रक्षण प्रशुल्कों (Protective tariff) का प्रबल समर्थक है। गृह-युद्ध के ५० वर्ष बाद तक रिपब्लिकन दल का अमेरिका की सीनेट (Senate) में और प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) में भी प्राधान्य रहा और एक-दो अपवादों को छोड़ते हुए प्रायः प्रत्येक बार इस गृह-युद्ध के बाद के ५० वर्षों में रिपब्लिकन दल के प्रत्याशी ही अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए।

राजनीति

बीसवीं शताब्दी में डेमोक्रेटिक दल ने तीन बार राष्ट्रपति का पद धारण किया है—विल्सन ने १९१३-२१ में, फ्रेंकलिन रूजवेल्ट और ट्रुमैन ने १९३३-५३ में। विल्सन के काल में अमेरिका ने प्रथम विश्वयुद्ध में तथा रूजवेल्ट और ट्रुमैन के काल में दूसरे विश्वयुद्ध में भाग लिया।

उसी पचास वर्ष के काल में संविधान में भी कोई संशोधन नहीं हुआ किन्तु फिर बीसवीं शताब्दी के द्वितीय और तृतीय दशकों में अमेरिका के संविधान में छः संशोधन हुए।

पहले तो ऐसा प्रतीत होता था कि अमेरिका भौतिकवाद का पुजारी है, किन्तु अब इस शताब्दी में ऐसा प्रतीत होता है कि उस देश में भौतिकवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया जागी है और देश के सामाजिक, राजनीतिक, आन्तरिक और बाह्य जीवन में वास्तविक आदर्शवाद ने घर कर लिया है। अमेरिका का आदर्शवाद वास्तव में विज्ञानवाद है। इस समय अमेरिका में शिक्षा के क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में और सामाजिक प्रयोगों के क्षेत्र में जो कुछ हो रहा है, वह विज्ञानवाद अथवा वैज्ञानिक आदर्शवाद का ही परीक्षण और प्रयोग है। १९१८-१८ के युद्ध में अमेरिका ने जो सशस्त्र हस्तक्षेप किया और १९३६-३९ के स्पेन के गृह-युद्ध में भी अमेरिका ने जो अपने देश के नागरिकों को स्वयंसेवकों के रूप में स्पेन जाने की अनुमति दे दी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नैतिक विषयों पर जो सदैव अमेरिका ने न्याय और नैतिकता का समर्थन किया और अन्तर्राष्ट्रीय मंच-फैसले द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाए रखने के प्रयत्नों में जो अमेरिका ने पहल की [जैसा कि १९२८ के ब्रायण्ड-कैलाग पैक्ट (Briand-Kellogg Pact of 1928) के अवसर पर हुआ था], ये सब तथ्य अमेरिका की आदर्शप्रियता की ओर ही संकेत करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका की आधुनिक इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना यह थी कि अब उस देश की वैभागिकता का लोप हो चुका है। एलीग़नीज (Alleghenies) और प्रशान्त महासागर के बीच की सारी भूमि अब हरी-भरी हो चली है। नवीनतम भूमि पर भी राज्य स्थापित हो गये हैं जो संघ के एकक राज्य हैं। प्रायः एक शताब्दी तक अमेरिका में पश्चिम की ओर बसने की तीव्र लालसा रही, और अपार जन-समूह धन और अवसरों की आशा में पश्चिम की ओर दौड़ा; किन्तु अब होड़ समाप्त हो चुकी है क्योंकि अमेरिका के सभी क्षेत्र विकसित और आबाद हो चुके हैं। अतः अमेरिका के विकास की प्रथम शताब्दी की मुख्य समस्या का अब समाधान हो चुका है। भविष्य में अमेरिका को इससे पर्याप्त लाभ होगा।

वास्तव में १९१७ से पूर्व अमेरिका की सारी शक्ति पश्चिमी अमेरिका में विस्तार करने में व्यय होती रही, किन्तु जब पश्चिम की ओर बसने की भी भौगोलिक सम्भावनाएँ समाप्त हो चुकीं तभी अमेरिका ने प्रथम विश्वयुद्ध में प्रवेश किया। अतः प्रथम विश्वयुद्ध में अमेरिका का प्रवेश सिद्ध करता था कि उसका ध्यान पश्चिमी अमेरिका से हटकर अन्यत्र लग रहा है। सत्य यह है कि अब पश्चिम की ओर अधिक जन-धन-शक्ति का लगाया जाना लाभपूर्ण नहीं है। उसमें अब न तो आर्थिक लाभ की आशा है और न सामाजिक कल्याण की ही आशा है। उस प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण उपयोग किया जा रहा है। उससे और अधिक आर्थिक लाभ की बिलकुल आशा नहीं है। फिर भी अमेरिका के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि उसका पश्चिम की ओर फैलाव ज्योंही बन्द हुआ, त्योंही सारे संसार पर आर्थिक, सामाजिक और नैतिक विनाश के काले बादल मँडराने लगे। प्रथम विश्वयुद्ध के कारण निस्संदेह सारे संसार में आर्थिक, सामाजिक और नैतिक अवसाद छा गया। और यह भी आकस्मिक घटना नहीं थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने अन्य स्वावलम्बी राष्ट्रों के समान धैर्य और साहस के साथ अपनी आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान किया और फिर व्यापक संघीय व्यवस्थापन द्वारा अपनी स्थिति को स्वदेश में दृढ़ कर लिया। दास-व्यापार को विधि द्वारा समाप्त करने के बाद इस समय तक इतने कठोर और व्यापक संघीय व्यवस्थापन का आश्रय नहीं लेना पड़ा था।

इस छोटी-सी पुस्तक में यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन करना सरल नहीं है कि राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने १९३३ में अपने पद पर पहुँचने के बाद प्रचलित आर्थिक और सामाजिक अवसाद को दूर करने की दिशा में क्या प्रयत्न किए। उसने देश की वित्तीय अवस्था को स्थिर किया; बैंकों को फेल होने से बचाया; अनेक प्रकार के ऐसे प्रचलित भ्रष्टाचारों को रोकने के लिए अनेक संघीय अधिकारियों की नियुक्ति की जिनको रोकना राज्यों की सामर्थ्य से बाहर था। इसके अतिरिक्त रूज़वेल्ट (Roosevelt) ने अनेक ऐसी विधियाँ पारित करने के लिए काँग्रेस को प्रोत्साहित किया जिनका उद्देश्य आर्थिक मन्दी और आर्थिक अवसाद को समाप्त करना था, व्यापार और उद्योगों को उन्नत करना था, कृषि को लाभप्रद बनाना था, बेरोजगारी को दूर करना था और सभी देशवासियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को सुधारना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था।[1] उसके व्यापक सुधारों के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार की शक्ति में अपार वृद्धि हुई, अतः यह स्वाभाविक ही था कि केन्द्रापग अथवा पृथकतावादी तत्त्व अपना सिर उठाते और राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की विधियों को असंवैधानिक कहकर न्यायालयों की शरण ताकते। अमेरिका में ऐसे तत्त्वों की कमी नहीं थी जो रूज़वेल्ट के आर्थिक कार्यक्रम के विरोधी थे। फलस्वरूप केवल १९३४ और १९३५ में ही अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) ने रूज़वेल्ट की तीन-चौथाई विधियों को असंवैधानिक घोषित कर दिया।

अब यह प्रश्न सामने आया कि वही सर्वोच्च न्यायालय जो कभी संविधान के अभिरक्षक के रूप में स्थापित किया गया था, आज डेमोक्रेटों (Democrats) की नज़रों में सम्पत्ति और विशेषाधिकारों का संरक्षक बन गया था। आम तौर पर यह प्रश्न किया जाने लगा कि क्या सर्वोच्च न्यायालय का रोल प्रगति का विरोध करना ही है। सत्य यह है कि सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति सामान्य काँग्रेसीय व्यवस्थापन से परे है, अतः राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के पास केवल एक उपाय था जिससे कि वह सर्वोच्च न्यायालय के राष्ट्र-विरोधी और प्रगति-विरोधी रुख में परिवर्तन ला सकता था। उसने काँग्रेस में एक विधेयक उपस्थित किया जिसका उद्देश्य यह था कि सर्वोच्च न्यायालय के जो न्यायाधीश अति वृद्ध हो चुके थे उन्हें हटाकर उनके स्थानों पर सहानुभूतिपूर्ण और उदार विचार वाले न्यायाधीशों की नियुक्ति कर दी जाय। उस समय सर्वोच्च न्यायालय में कई वृद्ध न्यायाधीश थे जो विचारों के अनुदार भी थे। यद्यपि रूज़वेल्ट की उक्त योजना स्वीकार न हो सकी फिर भी उसके प्रस्ताव का यह फल अवश्य हुआ कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कान खड़े हो गए और भविष्य में उन्होंने रूज़वेल्ट के आर्थिक कार्यक्रम सम्बन्धी व्यवस्थापन पर अधिक उदार दृष्टिकोण से विचार करना प्रारम्भ किया। रूज़वेल्ट की आर्थिक कार्यक्रम सम्बन्धी कई विधियों को सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया। परन्तु अनेक वैधानिक और आर्थिक जटिलताओं का समाधान अभी शेष है।

जब दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ, तो मतभेद समाप्त हो गए। लेकिन, युद्ध समाप्त होने के बाद मतभेद पुनः सामने आ गये। लेकिन, ये प्रश्न चौथे और पाँचवें दशक में तीसरे दशक की अपेक्षा कम स्पष्ट थे। इसका कारण यह था कि अब नयी आर्थिक परिस्थितियाँ पैदा हो गई थीं। रूज़वेल्ट के अधिकांश कार्यक्रम को अन्य राज्यों में सामाजिक कल्याण की योजनाओं के अन्तर्गत व्यावहारिक रूप दे दिया गया

---

१. राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत जो कुछ विधियाँ पारित हुईं, उन्हें न्यू डील (New Deal) की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्रीय औद्योगिक अभ्युत्थान अधिनियम (National Industrial Recovery Act) और राष्ट्रीय कृषि सुधार अधिनियम (Agricultural Adjustment Act) इस दिशा में सर्वविदित हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ट्रुमैन ने १९४८-५२ में 'फेयर डील' कार्यक्रम चालू किया। इसके अन्तर्गत उसने रूज़वेल्ट के कार्यक्रम को दृढ़ किया तथा मजूरी, सामाजिक लाभ, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा आवास आदि के सम्बन्ध में भी संघीय विधियों को लागू किया। वाद-विवाद अब भी चालू है लेकिन मध्य शताब्दी में यह बात स्पष्ट हो गई थी कि अमेरिकी जनता के बहुमत ने शासन के उचित कार्यक्षेत्र को समझ लिया था और उनका मत-भेद सिर्फ इस प्रश्न को लेकर था कि प्रगतिशील राज्य की दिशा में कितनी मात्रा में तथा किस गति से बढ़ा जाये।[1] अमेरिका में राष्ट्रपति की तथा संघीय सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ने में एक अन्य तत्त्व ने कार्य किया है। वहाँ राष्ट्रपति को अब राष्ट्र का प्रतीक माना जाने लगा है। राष्ट्रपति आइज़नहावर अमेरिकी जनता की निगाहों में 'राष्ट्रपिता', 'महान् प्रमुख' समझे जाते थे। वे दूसरे युद्ध में सफल सेनापति रहे थे। वे पहले १९५३ में तथा दुबारा १९५७ में राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

———

1. A.S. Link, *American Epoch : A History of the United States since the 1890's*, p.642.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PRESIDENTS OF THE UNITED STATES OF AMERICA

1. George Washington (March 4, 1789—March 4, 1793)
2. George Washington (March 4, 1793—March 4, 1797)
3. John Adams (March 4, 1797—March 4, 1801)
4. Thomas Jefferson (March 4, 1801—March 4, 1805)
5. Thomas Jefferson (March 4, 1805—March 4, 1809)
6. James Madison (March 4, 1809—March 4, 1813)
7. James Madison (March 4, 1813—March 4, 1817)
8. James Monroe (March 4, 1817—March 4, 1821)
9. James Monroe (March 4, 1821—March 4, 1825)
10. John Quincy Adams (March 4, 1825—March 4, 1829)
11. Andrew Jackson (March 4, 1829—March 4, 1833)
12. Andrew Jackson (March 4, 1833—March 4, 1837)
13. Martin van Buren (March 4, 1837—March 4, 1841)
14. William Henry Harrison (March 4, 1841—April 4, 1841)
15. John Taylor (April 4, 1841—March 4, 1845)
16. James K. Polk (March 4, 1845—March 4, 1849)
17. Zachary Taylor (March 4, 1849—July 9, 1850)
18. Millard Fillmore (July 9, 1850—March 4, 1853)
19. Franklin Pierce (March 4, 1853—March 4, 1857)
20. James Buchanan (March 4, 1857—March 4, 1861)
21. Abraham Lincoln (March 4, 1861—March 4, 1865)
22. Abraham Lincoln (March 4, 1865—April 15, 1865)
23. Andrew Johnson (April 15, 1865—March 4, 1869)
24. Ulysses S. Grant (March 4 1869—March 4, 1873)
25. Ulysses S. Grant (March 4, 1873—March 4, 1877)
26. Rutherford B. Hayes (March 4, 1877—March 4, 1881)
27. James A. Garfield (March 4, 1881—September 19, 1881)
28. Chester A. Arthur (September 19, 1881—March 4, 1885)
29. Grover Cleveland (March 4, 1885—March 4, 1889)
30. Benjamin Harrison (March 4, 1889—March 4, 1893)
31. Grover Cleveland (March 4, 1893—March 4, 1897)
32. William McKinley (March 4, 1897—March 4, 1901)
33. William McKinley (March 4, 1901—September 14, 1901)
34. Theodore Roosevelt (September 14, 1901—March 4, 1905)
35. Theodore Roosevelt (March 4, 1905—March 4, 1909)
36. William H. Taft (March 4, 1909—March 4, 1913)
37. Woodrow Wilson (March 4, 1913—March 4, 1917)
38. Woodrow Wilson (March 4, 1917—March 4, 1921)
39. Warren G. Harding (March 4, 1921—August 3, 1923)
40. Calvin Coolidge (August 3, 1923—March 4, 1925)
41. Calvin Coolidge (March 4, 1925—March 4, 1929)
42. Herbert Hoover (March 4, 1929—March 4, 1933)
43. Fraklin D. Roosevelt (March 4, 1933—April 12, 1945)
44. Harry S. Truman (April 12, 1945—January 20, 1953)
45. Dwight D. Eisenhower (January 20, 1953—January 20, 1961
46. Kennedy (January 20, 1961—November 22, 1963)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

GENEALOGICAL TABLES

THE HOUSE OF BOURBON IN THE OLDER AND YOUNGER (ORLEANS) LINE

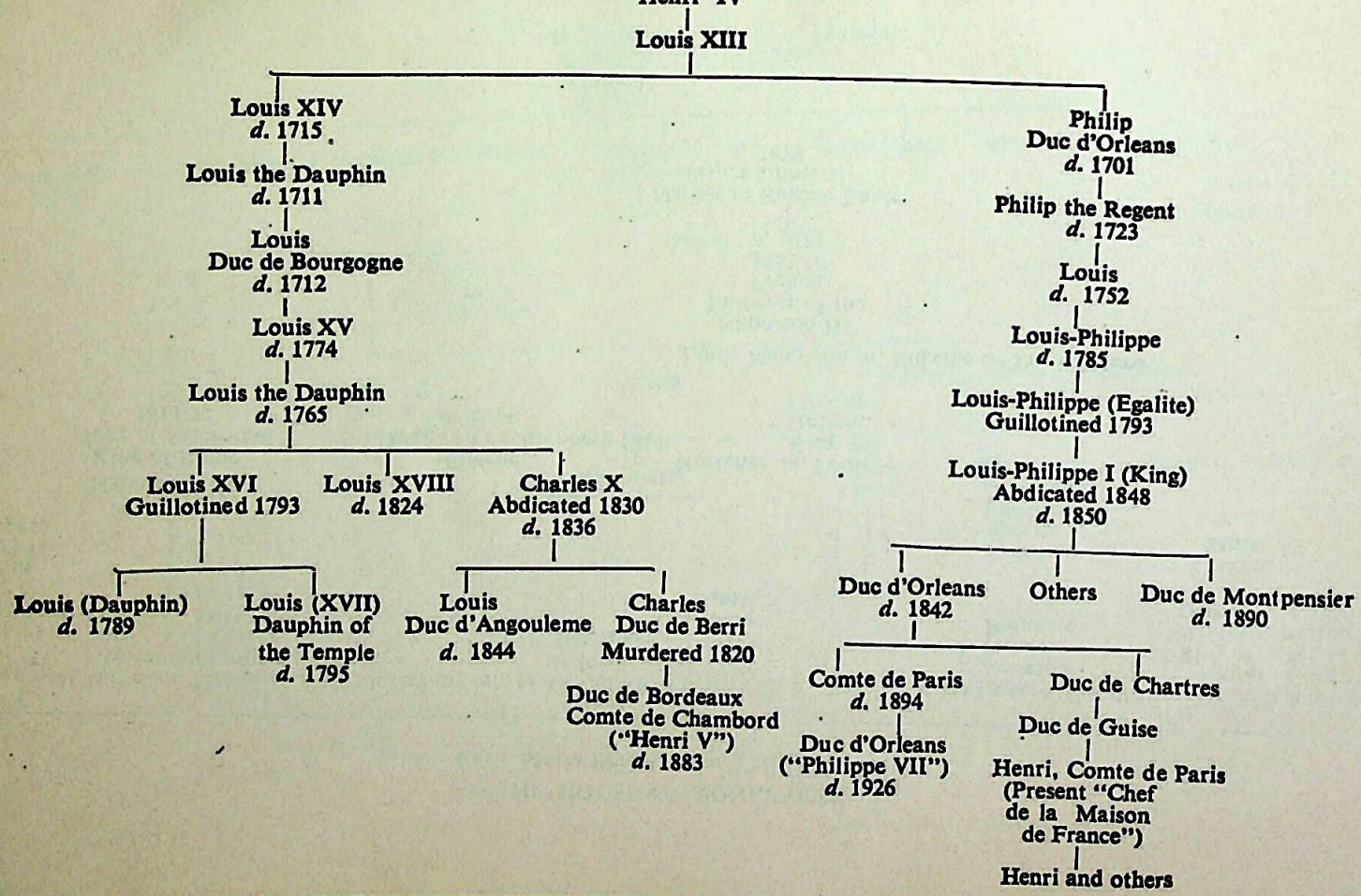

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE HOUSE OF BONAPARTE

Carlo Maria Bonaparte *m.* Letizia Ramolino

- **Joseph** — King of Naples 1806-8; King of Spain 1808-14; *d.* 1845
- **(2) Marie Louise of Austria** — *m.* **Napoleon** Emperor of France 1804-15; *d.* 1821
  - **Napoleon (II)** King of Rome, Duke of Reichstadt 1811-32
- **(1) Josephine** *m.* **(1) Alexandre de Beauharnais**
  - **Eugene** Duke of Leuchtenberg 1814; *d.* 1824
  - **Hortense** *m.* **Louis** King of Holland 1806-10
    - **Louis Napoleon** *m.* **Eugenie de Portocarrero**
      - **Napoleon III** Emperor of the French 1852-70; *d.* 1873
        - **Napoleon Eugene Louis** Prince Imperial; *d.* 1879
- **Lucien** *d.* 1840
  - Descendants
- **Elise**
- **Pauline** *m.* **(1) General Leclerc** (2) Prince Borghese
- **Caroline** *m.* **Joachim Murat** King of Naples 1808-15
  - Descendants
- **Jerome** *m.* **King of Westphalia** *d.* 1860
  - **(1) Elizabeth Paterson** (marriage annulled)
  - **(2) Princess of Wurttemberg**
    - Descendants

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE HOUSE OF HABSBURG-LORRAINE

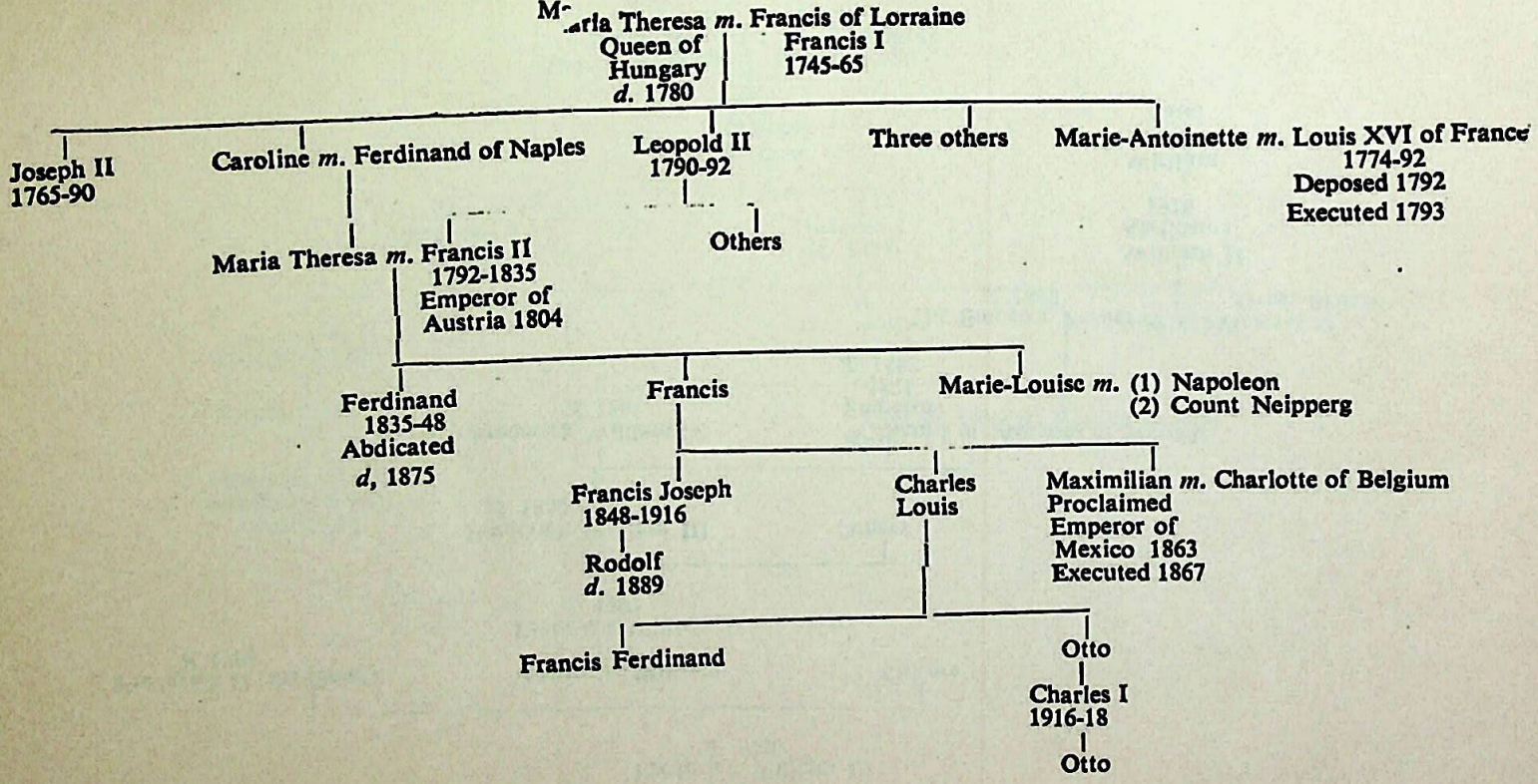

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE HOUSE OF HOHENZOLLERN

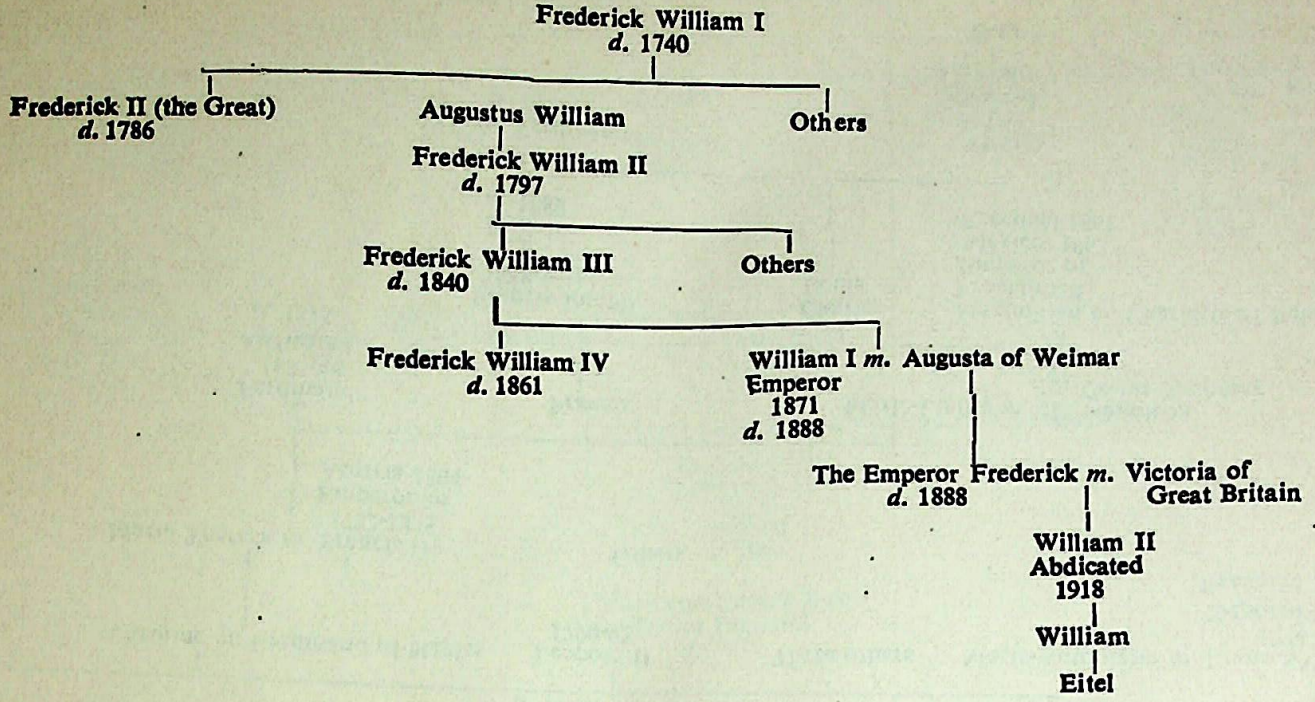

CC-0.Panini Kanya,Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE HOUSE OF ROMANOU

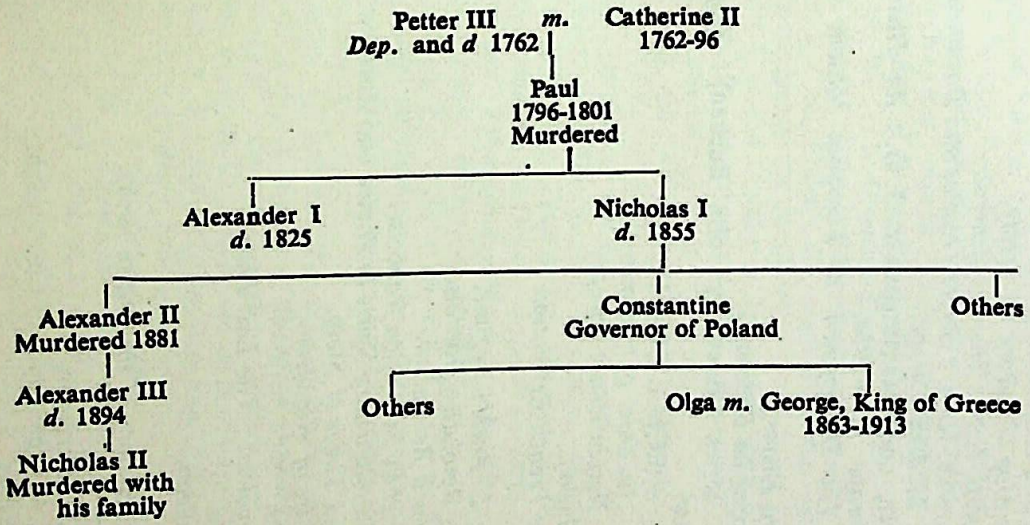

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A FEW SUGGESTIONS FOR FURTHER READING

GENERAL

BEAZLEY, C.R. : *Nineteenth-Century Europe and Britain.*
FISHER, H.A.L. : *The Republican Tradition in Europe.*
FYFFE, C.H. : *History of Modern Europe.*
GOOCH, G.P. : *History and Historians in the Nineteenth Century.*
HERTSLET, Sir E. : *The Map of Europe by Treaty.*
LAVISSE, E. and RAMBAUD, A.N. : *Histoire Generale.*
OAKES, Sir A., and MOWAT, R. B. : *Select Treaties and Documents.*
PHILLIPS, W. ALISON : *Modern Europe.*
ROBERTSON, C. GRANT, and BARTHOLOMEW, J. G. : *An Historical Atlas of Modern Europe, 1789-1914.*
ROSE, J. HOLLAND : *The Development of European Nations* (New edition 1922).
The Cambridge Modern History.
Articles in the *Encyclopaedia Britannica.*
"Nations of To-day" series (edited by John Buchan) : *Belgium* ; *France* ; *Italy* ; *Japan*

SPECIAL SUBJECTS
(*in order of treatment*)

STEPHENS, H. MORSE : *Revolutionary Europe.*
——*The French Revolution.*
MADELIN, LOUIS : *The French Revolution*
———*Danton.*
DE TOCQUEVILLE, A. : *L' Ancien Regime.*
GAXOTTE, PIERRE : *La Revolution francaise*
AULARD, A. : *The French Revolution.*
SOREL, A. : *L' Europe et la Revolution francaise.*
FAY BERNARD : *The Revolutionary Spirit in France and America.*
SEELEY, J. R. : *Life and Times of Stein.*
ROSE, J. HOLLAND : *Life of Napoleon.*
——*Napoleonic Studies.*
ROSEBERY, LORD : *Napoleon : The Last Phase.*
LUDWIG, E. : *Napoleon.*
FISHER, H.A.L. : *Napoleon.*
——*Bonapartism.*
FORTESCUE, Sir J. W. : *History of the British Army.*
——*Wellington.*
WARD, A.W. : *History of Germany.*
WESBTER, C. K. : *The Foreign Policy of Castlereagh.*
——*The Congress of Vienna.*
——*The European Alliance, 1815-25.*
TEMPERLEY. H.W.V. : *The Foreign Policy of Canning.*
METTERNICH : *Memoirs of Prince Metternich.*
BISMARCK : *Reflections and Reminiscences.*
PHILLIPS, W. ALISON : *The Confederation of Europe.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ROBERTSON, C. GRANT : *Bismarck* ("Makers of the Nineteenth Century").
LUDWIG, E. : *Kaiser Wilhelm II.*
DAWSON, W.H. : *The Evolution of Modern Germany.*
KING BOLTON : *History of Italian Unity.*
TREVELYAN, G.M. : *Garibaldi's Defence of the Roman Republic.*
——*Garibaldi and the Thousand.*
——*Garibaldi and the Making of Italy.*
——*Manin and the Venetian Revolution.*
SIMPSON, F.A. : *Louis Napoleon and the Recovery of France.*
GUEDALLA, PHILIP : *The Second Empire.*
DE LA GORCE, P. : *Histoire du Second Empire.*
MARRIOTT, Sir J.A.R. : *The Eastern Question.*
SETON-WATSON : *Racial Problems in Hungary.*
——*The Rise of Nationality in the Balkans.*
MILLER, W. : *The Ottoman Empire.*
WALLACE, Sir DONALD MACKENZIE : *Russia.*
BEAZLEY, C.R., FORBES, N., and BIRKETT, G.A. ; *Russia from the Varangians to the Bolsheviks.*
WHYTE, G.F. : *A Century of Spain and Portugal.*
GOOCH, G.P. : *History of Modern Europe, 1878-1919.*
GREY, VISCOUNT : *Twenty-five Years..*
HANOTAUX, G. : *La France Contemporaine.*
BODLEY, J.E.C. : *France.*
RUSSELL, BERTRAND : *Roads to Freedom.*
SHADWELL, A. : *The Socialist Movement, 1824-1924.*
GOOCH, G.P. and TEMPERLEY, HAROLD (editors) : *British Official Documents on the Origins of the War, 1898-1914.*
"*The Times*" *Documentary History of the War*
BUCHAN, JOHN : *History of the War.*
POLLARD, A. F. : *A Short History of the Great War.*
(The official publications of the belligerent nations should be consulted, and much evidence can be obtained from contemporary memoirs.)
DICKINSON, G. LOWES : *The International Anarchy.*
MOWAT, R.B. : *A History of European Diplomacy. 1914-25.*
GOOCH, G.P. : *Recent Revelations of European Diplomacy.*
TEMPERLEY, H.W.V. : *A History of the Peace Conference of Paris.*
TOYNBEE, A. J. : *Survey of International Affairs, 1920-25.*
STURZO, LUIGI : *Italy and Fascismo.*
GIBBONS, H. A. : *Europe since 1918.*
SLOSSON, P. W, : *Twentieth-century Europe.*
RAINE, G. E. and LUBOFF, E. : *Bolshevik Russia.*
MUIR, RAMSAY : *The Expansion of Europe.*
HERTSLET, Sir, E. : *The Map of Africa by Treaty.*
JOHNSTON, Sir, C. : *The Opening Up of Africa.*
LUCAS, Sir, C. : *The Partition of Africa.*
LIVINGSTONE, D. : *Missionary Travels.*
LIVINGSTONE, D. : *Researches in South Africa.*
STANLEY, Sir, H. M. : *How I found Livingstone.*
STANLEY, Sir, H. M. : *In Darkest Africa.*
CROMMER, EARL OF ; *Modern Egypt.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MORRIS, H. C. : *A History of Colonization.*
EGERTON, H. E. : *A Short History of British Colonial Policy.*
KEITH, A. B. : *Imperial Unity of the Dominions.*
——*War Government of the British Dominions.*
WHYTE, Sir, A. F. : *China and the Foreign Powers.*
BAU, J. : *The Foreign Relations of China.*
DOUGLAS, R. K. : *Europe and the Far East.*
WONG CHING WAI : *China and the Nations.*
GOLOVIN : *The Problems of the Pacific in the Twentieth Century.*
YEN, E. T. : *The Open Door Policy.*
MCLAREN, W. W. : *A Political History of Japan.*
HARA, KATSURO : *An Introduction to the History of Japan.*
BLAND, J. O. P. : *China, Japan and Korea.*
League of Nations Publications.
Statesman's Year-book, China Year-book, Europe Year-book, etc.
BANCROFT, G. : *History of the United States.*
FARRAND, MAX : *The Development of the United States.*
RHODES, J. F. : *History of the United States Since 1850.*
CHANNING, E. : *History of the United States Since 1850.*
BEARD, C. A. : *An Economic Interpretation of the Constitution of the United States.*
WILSON, WOODROW : *A History of the Americon People.*
MORISON, S. E. : *The Oxford History of the United States.*
PERKINS, D. *The Monroe Doctrine.*
ADAM, R. G. : *A History of the Foreign Policy of the United States.*
BRYCE, LORD : *The American Commonwealth.*
CHARNWOOD, LORD : *Abraham Lincoln.*
SANDBURG, CARL : *Abraham Lincoln.*
BEVERIDGE, A. S. : *Abraham Lincoln.*
GARRISON, G. P. : *Westward Expansion.*
POLLARD, A. F. : *Factors in American History.*

The opportunity afforded by new editions has been taken to add the following :

BERLIN, I. ; *Karl Marx* ("Home University Library").
LINDSAY, A. D. : *Karl Marx's "Capital"* (World's Manuals")
ENSOR, R. C. K. : *England, 1870-1914.*
VON BULOW, PRINCE : *Memoirs.*
BRANDENBURG, E. : *From Bismarck to the World War.*
OXFORD AND ASQUITH EARL OF : *The Genesis of the War.*
HART, B. H. LIDDELL : *A History of the World War.*
CRUTTWELL, C. R. M. F. : *A History of the Great War, 1914-18.*
NICOLSON, H. : *Sir Arthur Nicloson, Bart, First Lord Carnock*
——*Peacemaking, 1919.*
——*Curzon : the Last Phase, 1919-1925.*
——*The Congress of Vienna.*
CHURCHILL, SIR WINSTON S. : *The World Crisis.*
CHURCHILL, SIR WINSTON S. : *The Second World War.*
WHEELER-BENNETT, J. W. : *Brest-Litovsk.*
——*The Nemesis of Power.*
GATHORNE-HARDY, G. M. : *A Short History of International Affairs 1920-38.*
ADAMS, J. T. : *The Epic of America.*

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FREEMAN, D. S. : *General Robert E. Lee.*
SCHEELE, G. : *The Weimar Republic.*
ROPER H. R. TREVOR : *The Last Days of Hitler.*
FALLS, CYRIL : *The Second World War.*
LINK, A. S. : *American Epoch* : *A History of the U. S. since the 1890's.*
MORISON and COMMAGER : *The Growth of the American Republic.*
GREEN, F. C. : *Jean-Jacques Rousseau.*
VALENTININ, V. : *1848* : *Chapters in German History.*
TAYLOR, A. J. P. ; *Bismarck.*
PHILLIPS, C. S. : *The Church in France.*
LEYS, M. D. R. : *Between two Empires, 1814-48.*
SIMPSON, F. A. : *The Rise of Louis Napoleon.*
THOMPSON, J. M. ; *Napoleon III.*
GUERARD, A. : *Napoleon III.*
BROGAN, D. W. : *The Third Republic.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panihi Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास व राजनीति पर कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

के० डी० गोतम
पूर्व और पश्चिम एशिया का इतिहास

विद्याधर महाजन
प्राचीन भारत का इतिहास
आधुनिक भारत का इतिहास
दिल्ली सल्तनत का इतिहास
मुगलकालीन भारत
मुस्लिमकालीन भारत
यूरोप का इतिहास (१७८९ से आगे)
इंग्लैंड का इतिहास (१४८५ से आगे)
(१६८८ से आगे)

कैटलबी
आधुनिक काल का इतिहास

जी० पी० गूच
आधुनिक यूरोप का इतिहास

बे० एन० रस्तोगी
एस० एन० शर्मा
भारतीय धर्म एवं संस्कृति

भंडाकर
अशोक

के० के० कुलश्रेष्ठ एवं
एस० पी० कश्यप
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

आर० सी० अग्रवाल
विश्व के प्रमुख संविधान
भारतीय संविधान का विकास तथा
राष्ट्रीय आन्दोलन
राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय
संविधान का विवेचन

भारत सरकार तथा राजनीति का
अध्ययन
भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
राजनीतिक विचार-धाराएँ
राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त
तुलनात्मक सरकारें
भारतीय संविधान का विकास
प्रशासन
भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
आधुनिक सरकारों के सिद्धान्त
व्यवहार
भारतीय संविधान तथा राजनीतिक
विचारक

बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल
आधुनिक भारतीय इतिहास : एक नवीन
मूल्यांकन
भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा
संवैधानिक विकास

अनूप चन्द कपूर
राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त
विष्णुभगवान तथा विद्याभूषण
लोक प्रशासन के सिद्धान्त

बे० के० ओझा
मेवाड़ का इतिहास

सुरेशचंद्र एवं शिवकुमार गुप्ता
आधुनिक विश्व का इतिहास

डी० पी० एस० मनराल
प्राचीन भारत का राजनीतिक
तथा सांस्कृतिक इतिहास

सेबाइन
राजनीति-दर्शन का इतिहास

13 023 A

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०
रामनगर, नई दिल्ली-110055

Rs. 45.00

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.